हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

[दूसरा खंड]

संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल   जगन्मोहन वर्म्मा

अमीरसिंह   भगवानदीन

रामचंद्र वर्म्मा ।

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग, में मुद्रित ।

१९१६

मूल्य ६)   डाकव्यय अतिरिक्त ।

Printed by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

संकेताक्षरों का विवरण।

अं० = अंगरेज़ी भाषा
अ० = अरबी भाषा
अनु० = अनुकरण शब्द
अने० = अनेकार्थनाममाला
अप० = अपभ्रंश
अयोध्या = अयोध्यासिंह उपाध्याय
अर्द्धमा० = अर्द्ध मागधी
अल्प० = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य० = अव्यय
आनंदघन = कवि आनंदघन
इब० = इबरानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तरचरित = उत्तररामचरित
उप० = उपसर्ग
उभ० = उभयलिंग
कठ० उप० = कठवल्ली उपनिषद्
कबीर = कबीरदास
केशव = केशवदास
कोंक = कोंकण देश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि०अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि०प्र० = क्रियाप्रयोग
क्रि०वि० = क्रियाविशेषण
क्रि०स० = क्रिया सकर्मक
क्व० = क्वचित् अर्थात् इसका प्रयोग बहुत कम देखने में आया है।
खानखाना = अब्दुर्रहीम खानखाना
गि०दा० वा गि०दास = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर = गिरिधरराय (कुंडलियावाले)
गुज० = गुजराती भाषा
गुमान = गुमानमिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
चरण = चरणचंद्रिका
चिंतामणि = कवि चिंतामणि त्रिपाठी
छीत = छीतस्वामी
जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी
जावा० = जावा द्वीप की भाषा
ज्यो० = ज्योतिष
डिं० = डिंगल भाषा
तु० = तुरकी भाषा
तुलसी = तुलसीदास
तोष = कवि तोष
दादू = दादूदयाल
दीनदयालु = कवि दीनदयालु गिरि
दूलह = कवि दूलह
दे० = देखो
देव = देव कवि (मैनपुरीवाले)
देश० = देशज
द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
निश्चल = निश्चलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्माकर = पद्माकर भट्ट
पर्या० = पर्याय
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुंलिंग
पु० हिं० = पुरानी हिंदी
पुर्त्त० = पुर्त्तगाली भाषा
पू० हिं० = पूर्वी हिंदी
प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया = प्रियादास
प्रे० = प्रेरणार्थक
प्रे० सा० = प्रेमसागर
फ़० = फ़रासीसी भाषा
फ़ा० = फ़ारसी भाषा
बंग० = बँगला भाषा
बरमी० = बरमी भाषा
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
बुं० खं० = बुंदेलखंडी बोली
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भाव० = भाववाचक
भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी
मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी
मला० = मलायलम भाषा
मलूक = मलूकदास
मि० = मिलाओ
मुहा० = मुहाविरे
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो वा अधिक शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँनरेश
रसखान = सैयद इब्राहीम
रसनिधि = राजा पृथ्वीसिंह
रहीम = अब्दुर्रहीम खानखाना
लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू = लल्लू लाल
लश० = लशकरी भाषा अर्थात् हिंदुस्तानी जहाजियों की बोली
लाल = लाल कवि (छत्रप्रकाश वाले)
लै० = लैटिन भाषा
वि० = विशेषण
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी
व्या० = व्याकरण
व्यास = अंबिकादत्त व्यास
शं० दि० = शंकर दिग्विजय
शृं० सत० = शृंगार सतसई
सं० = संस्कृत
संयो० = संयोजक अव्यय
संयो० क्रि० = संयोज्य क्रिया
स० = सकर्मक
सबल = सबलसिंह चौहान
सभा० वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी
सूदन = सूदनकवि (भरतपुरवाले)
सूर = सूरदास
स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री० = स्त्रीलिंग
स्पे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
हरिदास = स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र = भारतेंदु हरिश्चंद्र

---

* यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त है।
† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है।
‡ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप ग्राम्य है।

उसकी गरदन पर अपनी कलाई और कोहनी के बीच की हड्डी से रगड़ते हुए किया जाता है । रद्दा । घस्सा ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।

संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, हिं० कन्ना] (१) पतंग या गुड्डी के वे दोनों कोने जिनके बीच में कमानी लगी रहती है । (२) पायजामे की वह तिकोनी कली जो दोनों पायचों के ऊपर मध्य में रहती है ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

संज्ञा पुं० [सं० कुंड = कड़ाही] भुना हुआ दूध । खोवा । मावा ।

मुहा०—कुंदा कसना या भूनना = दूध से खोवा तैयार करना ।

कुंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुंदा] (१) धुले या रँगे हुए कपड़ों की तह करके, उनकी सिकुड़न और रुखाई दूर करने तथा तह जमाने के लिये उसे लकड़ी की मोगरी से कूटने की क्रिया ।

विशेष—इस देश में इस्तरी की प्रथा का प्रचार होने से पहले धोबी इसी का व्यवहार करते थे । आज कल भी कमख़ाब आदि पर कुंदी ही की जाती है ।

(२) खूब मारना । ठोंकना । पीटना ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—कुंदीगर ।

कुंदीगर—संज्ञा पुं० [हिं० कुंदी + गर (प्रत्य०)] कुंदी करनेवाला ।

कुंदुर—संज्ञा पुं० [सं० । अ०] (१) एक प्रकार का सुगंधित पीला गोंद । यह एक प्रकार के कँटीले पौधे से निकलता है जो दो हाथ ऊँचा होता है और अरब के यमन आदि पथरीले स्थानों में मिलता है । इसके फल और बीज कड़ुए होते हैं । जब सूर्य्य कर्क राशि में होता है तब गोंद इकट्ठा किया जाता है । हकीम लोग इसे पुष्ट, हृद्य और रक्तस्राव को रोकनेवाला मानते हैं । (२) एक प्रकार का सुगंधित गोंद जो सलई के पेड़ से निकलता है । वैद्यक में यह रुचिकारक, स्वेदनाशक, त्वचा को हितकारी और जूँ को दूर करनेवाला माना जाता है ।

पर्या०—सौराष्ट्री । पालंकी । तीक्ष्णगंध । कुंदारु । भीषण । सुगंध । बिड़ालाक्ष । खपुर । नागवधूप्रिय । शल्लकीनिर्य्यास ।

कुँदेरना—क्रि० स० [सं० कुदलन = खोदना] खुर्चना । छीलना । खरोटना ।

कुँदेरा—संज्ञा पुं० [हिं० कुँदेरना + एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० कुँदेरी] खरादनेवाला । खरादी । कुनेरा । उ०—कनकदंड दुइ भुजा कलाई । जानहु फेर कुँदेरे भाई ।—जायसी ।

कुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुंभी] (१) कायफल । (२) कुंभी । जलकुंभी । (३) कुंभनायक पेड़ ।

कुंभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिट्टी का घड़ा । घट । कलश ।

यौ०—कुंभज । कुंभकर्ण । कुंभकार ।

(२) हाथी के सिर के दोनों ओर ऊपर उभड़े हुए भाग । उ०—मत्त नाग तम कुंभ विदारी । ससि केसरी गगन बन चारी । (३) एक राशि का नाम जो दसवीं मानी जाती है । यह धनिष्ठा नक्षत्र के उत्तरार्द्ध शतभिष और पूर्व-भाद्र के तृतीय-चरण तक उदय रहती है । इसका उदय-काल ३ दंड ४८ पल है । यह राशि शीर्षोदय है । (४) एक मान जो दो द्रोण वा ६४ सेर का होता है । इसे सूर्य भी कहते हैं । किसी किसी के मत से बीस द्रोण का एक कुंभ होता है । (५) योगशास्त्रानुसार प्राणायाम के तीन भागों में से एक । कुंभक । (६) एक पर्व का नाम जो प्रति बारहवें वर्ष पड़ता है । इस अवसर पर हरिद्वार में बड़ा मेला होता है । यह पर्व इस लिये कुंभ कहलाता है कि जब सूर्य्य कुंभ राशि का होता है तभी यह पड़ता है । (७) मिट्टी आदि का वह घड़ा जो देवालयों के शिखर पर वा घरों की मुंडेरी पर शोभा के लिये रक्खा जाता है । कलश । (८) गुग्गुल । (९) वह पुरुष जिसने वेश्या रख ली हो । वेश्यापति ।

यौ०—कुंभदासी ।

(१०) जैन मतानुसार वर्त्तमान अवसर्पिणी के उन्नीसवें अर्हत् का नाम । (११) बौद्धों के अनुसार बुद्ध देव के गत चौबीस जन्मों में से एक जन्म का नाम । (१२) एक राग का नाम जो श्रीराग का आठवाँ पुत्र माना जाता है । यह संपूर्ण जाति का राग है और संध्या के समय रात के पहले पहर में गाया जाता है । संगीत-दामोदर में इसे सरस्वती और धनाश्री रागिनियों के योग से बना हुआ संकर राग माना है । (१३) एक दैत्य का नाम । यह दानव था और प्रह्लाद का पुत्र था । (१४) एक राक्षस का नाम जो कुंभकर्ण का पुत्र था । (१५) एक वानर का नाम । (१६) एक पेड़ का नाम जो बंगाल, मद्रास, अवध और आसाम के जंगलों में होता है । इसकी लकड़ी मज़बूत होती है और छाल काले रंग की होती है । लकड़ी मकान और आरायशी चीज़ों के बनाने के काम में आती है और पानी में नहीं सड़ती । इसकी छाल रेशेदार होती है और उससे रस्सी बटी जाती है । यह औषधों में भी काम आती है । इसके फल को खुबी कहते हैं जिसे जाबी स्वयं खाते तथा पशुओं को खिलाते हैं । इसके पत्ते माघ फागुन में झड़ जाते हैं । इसे कुंबी और अर्जमा भी कहते हैं । कुंभी ।

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं । यह क्रिया-पूरक के बाद की जाती है और इसमें मुँह बंद करके नाक के रंध्रों को एक ओर से अँगूठे और दूसरी ओर से मध्यमा

तथा अनामिका से दबा कर बंद कर देते हैं, जिससे उसमें वायु आ जा नहीं सकती। इसे कुंभ भी कहते हैं।

कुंभकर्ण–संज्ञा पुं० एक राक्षस का नाम जो रावण का भाई था। रामायण के अनुसार यह छः महीने सोता था।

कुंभकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार वह वर्णसंकर जाति जिसकी उत्पत्ति विश्वकर्मा पिता और शूद्रा माता से हुई है। कुम्हार। जातिमाला में इसे पट्टआ (पटिका) पिता और गोप माता से उत्पन्न माना है। (२) कुक्कुट। मुर्गा।

कुंभकारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुंभकार की स्त्री। (२) कुलथी। (३) मैनसिल।

कुंभज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घड़े से उत्पन्न पुरुष। (२) अगस्त्य मुनि। (३) वशिष्ठ। (४) द्रोणाचार्य्य।

कुंभजात–संज्ञा पुं० [सं०] दे० "कुंभज"।

कुंभदासी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुटनी। दूती। (२) कुंभिका। जलकुंभी।

कुँहड़ा–संज्ञा पुं० दे० "कुम्हड़ा"।

कुंभनदास–संज्ञा पुं० ब्रज के अष्टछाप के कवियों में से एक कवि। यह सखाभाव से कृष्ण की उपासना करते थे।

कुंभयोनि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगस्त्य मुनि का एक नाम। (२) गूमा का पेड़।

कुंभला–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी।

कुंभसंधि–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी के सिर का वह गड्ढा जो उसके दोनों कुंभों के बीच में होता है।

कुंभसंभव–संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि का एक नाम। उ०—जयति लवणांबुनिधि कुंभसंभव महादनुज-दुर्जन-दवन दुरित हारी।—तुलसी।

कुंभहनु–संज्ञा पुं० [सं०] रावण के दल के एक राक्षस का नाम जिसे वाल्मीकि के अनुसार तार नामक बंदर ने मारा था।

कुंभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या।

कुंभांड–संज्ञा पुं० [सं०] बाणासुर के एक मंत्री का नाम।

कुँभार–संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकार] कुम्हार।

कुंभिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नपुंसक।

कुंभिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुंभी। जलकुंभी। (२) वेश्या। (३) कायफल। (४) आँख का एक रोग जिसमें पलकों के किनारे आँखों की कोरों में छोटी छोटी फुंसियाँ हो जाती हैं। वैद्यक के अनुसार यह रोग त्रिदोष से उत्पन्न होता है। इसे बिलनी भी कहते हैं। (५) परवल का पेड़। (६) एक रोग जिसमें लिंग पर जामुन के बीज की तरह फुड़िया होती हैं। यह रोग उन लोगों को हो जाता है जो लिंग के बढ़ाने का इलाज करते हैं। शूक रोग।

कुंभिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी। (२) जमालगोटा।

कुंभिल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह चोर जो सेंध लगाता हो। सेंधिया चोर। (२) वह संतान जो अपूर्ण वयस में अथवा अपूर्ण गर्भ से उत्पन्न हो। (३) साला। (४) एक प्रकार की मछली।

कुँभिलाना–क्रि० अ० [हिं०] दे० "कुम्हलाना"।

कुंभी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी। (२) मगर। (३) गुग्गुल का वा वह पेड़ जिससे गुग्गुल निकलता है। (४) एक ज़हरीला कीड़ा। (५) पारस्कर के अनुसार एक राक्षस जो बच्चों को क्लेश देता है। (६) एक प्रकार की मछली।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटा घड़ा। (२) कायफल का पेड़। (३) दंती का पेड़। दांती। (४) पांडर का पेड़। (५) तरबूज़। (६) बंसी। (७) एक पेड़ जिसकी लकड़ी इमारतें और आरायशी चीज़ों के बनाने में काम आती है। इसकी छाल से चमड़ा सिझाते और रस्सी बटते हैं। और फल जिसे कुम्भी कहते हैं पंजाब के लोग खुद खाते और पशुओं को खिलाते हैं। (८) एक वनस्पति जो जलाशयों में पानी के ऊपर फैलता है। इसके पत्ते चार पाँच अंगुल लंबे और उतने ही चौड़े और मोटे दल के होते हैं। उसकी जड़ भूमि में नहीं होती बल्कि पानी पर सतह के नीचे होती है। यह फूलती फलती दिखाई नहीं देती पर इसके बीज अवश्य होते हैं। इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं, जिनकी पत्तियाँ भिन्न भिन्न आकार की होती हैं। जलकुंभी। (९) एक नरक का नाम। कुंभीपाक नरक (१०) सलई का पेड़। (११) गनियारी या अर्णी का पेड़।

कुंभीक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का नपुंसक। इसे गुद-योनि भी कहते हैं। कुंभिक। (२) कुंभी। जलकुंभी। (३) पुन्नाग वृक्ष।

कुंभीका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुंभी। जलकुंभी। (२) आँख का एक रोग। कुंभिका। बिलनी। (३) एक प्रकार का रोग जो व्यभिचारियों और लिंग बढ़ाने की औषध करने-वालों को हो जाता है। कुंभिका। शूक रोग।

कुंभी धान्य–संज्ञा पुं० [सं०] घड़ा वा मटका भर अन्न जिसे कोई गृहस्थ या परिवार ६ दिन वा किसी किसी के मत से साल भर खा सके।

विशेष—मनु, याज्ञवल्क्य आदि संहिताकारों के मत से प्रत्येक व्यक्ति को अपने कुटुंब के पालन के लिये कुछ निश्चित दिनों के वास्ते अन्न संग्रह कर रखना चाहिये। इस प्रकार रक्खे हुए अन्न को कुंभी धान्य कहते हैं।

कुंभीधान्यक–संज्ञा पुं० [सं०] घड़ा भर अन्न रखनेवाला। उतना अन्न रखनेवाला जितना कोई गृहस्थ छः दिन वा किसी किसी के मत से साल भर खा सके।

कुंभीनस—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुंभीनसा] (१) क्रूर साँप। (२) एक प्रकार का ज़हरीला कीड़ा। (३) रावण।

कुंभीनसि—संज्ञा पुं० [सं०] शंबर नाम का असुर।

कुंभीनसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लवणासुर की माता, जो सुमाली राक्षस की चार कन्याओं में से एक थी और कैतुमती से उत्पन्न हुई थी।

कुंभीपाक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक नरक जिसमें मांस खाने के लिये पशु पक्षी मारनेवाले लोग खौलते हुए तेल में डाले जाते हैं। (२) एक प्रकार का सन्निपात जिसमें नाक के रास्ते काला ख़ून जाता और सिर घूमता है।

कुंभीपुर*—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिनापुर। पुरानी दिल्ली।

कुंभीमुख—संज्ञा पुं [सं०] चरक के अनुसार एक प्रकार का फोड़ा।

कुंभीर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नक्र या नाक नामक जंतु जो जल में होता है। (२) एक प्रकार का छोटा कीड़ा। (३) एक यक्ष।

कुंभीरासन—संज्ञा पुं० [सं०] योग में एक प्रकार का आसन जिस में भूमि पर चित लेट कर एक पैर को दूसरे पैर पर और दोनों हाथों को माथे पर रख लेते हैं।

कुंभेर—संज्ञा स्त्री० [सं०] खंभारी खंभारि। गंभारि।

कुंभोदर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव के एक गण का नाम। रघुवंश के अनुसार इसी ने सिंह बन कर नंदिनी पर आक्रमण किया था।

कुंभोलूक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उल्लू जो बहुत बड़ा होता है।

कुँवर—संज्ञा पुं० [सं० कुमार, प्रा० कुँवार] [स्त्री० कुँवरि] (१) लड़का। पुत्र। बेटा। (२) राजपुत्र। राजा का लड़का।

कुँवरि—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमारी] (१) कुँमारी (२) राजकन्या।

कुँवरी—संज्ञा स्त्री० दे० "कुँवरि"

कुँवरेटा—संज्ञा पुं० [कुँवर + एटा (प्रत्य०)] बालक। छोटा लड़का। बच्चा।

कुँवाँ—संज्ञा पुं० [सं० कूप, प्रा० कूव] दे० "कुआँ"।

कुँवारा—वि० [सं० कुमार, प्रा० कुँवार] [स्त्री० कुँवारी] जिसका ब्याह न हुआ हो। बिन ब्याहा।

कुँहकुँह—संज्ञा पुं० [सं० कुंकुम] केशर। ज़ाफ़रान। उ०—कोइ कुँहकुँह परिमल लिये रहैं। लावैं अंग रहस जनु चहैं।—जायसी।

कु—उप० [सं०] संज्ञा के पहले लग कर यह विशेषण का काम देता है। जिस शब्द के पहले यह लगाया जाता है उसके अर्थ में "नीच" "कुत्सित" आदि का भाव आ जाता है। उ०—संग, कुसंग। पुत्र, कुपुत्र। टेव, कुटेव आदि। पर जिन शब्दों के आदि में स्वर होता है उनमें लगने से पहले इसका रूप 'कत्' (कद्) हो जाता है। जैसे—कदन्न, कदाचार, कदुष्ण।

संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

यै०—कुज।

कुआँ—संज्ञा पुं० [सं० कूप, प्रा० कूव] पानी निकालने के लिये पृथ्वी में एक गहरा गड्ढा जो भीतर पानी की तह तक चला जाता है। इसके किनारे को लोग ईंट वा पत्थर से बाँधते हैं। इसके घेरे को जो पहले खोदा जाता है भगाड़ वा ढाल कहते हैं। भगाड़ खोदे जाने पर उसमें लकड़ी का पहिये के आकार का चक्र रखते हैं जिसे निवार वा जमवट कहते हैं। इसी निवार के ऊपर ईंटों की जोड़ाई होती है जिसे कोठी कहते हैं। किसी किसी कोठी में दो निवार लगाए जाते हैं। दूसरा निवार पहले निवार से पाँच छः हाथ ऊपर रहता है और दोनों के बीच में पतली लकड़ियों की पटरियाँ लगाई जाती हैं जिन्हें कैंची कहते हैं। कोठी तैयार हो जाने पर उसके बीच की मिट्टी निकाली जाती है जिससे कोठी नीचे धँसती जाती है, और कुआँ गहरा होता जाता है। इस क्रिया को कोठी गलाना कहते हैं। इस प्रकार कई बार कोठी गलाने पर भीतर पानी का स्रोत मिलता है। पतले स्रोत को सोती और मोटे स्रोत को मूसला कहते हैं। कुएँ के ऊपर उसके मुँह पर जो चबूतरा बनाया जाता है वह जगत कहलाता है। कुएँ के मुँह पर के चौकठे को जाल कहते हैं।

पर्या०—कूप। अंधु। प्रहि। उदपान। अवट। कोट्टार। कात्त। कर्त्त। वव्र। काट। खात। अवत। क्रिवि। सूद। उत्स। ऋष्यदात्। कारोतरात्। कुशेष। केवट।

मुहा०—कुआँ खोदना = (१) दूसरे की बुराई का सामान करना। दूसरे का नाश करने वा उसे हानि पहुँचाने का प्रयत्न करना। उ०—जो दूसरे के लिये कुआँ खोदता है वह आप गिरता है। (२) जीविका के लिये परिश्रम करना। उ०—उन्हें तो रोज़ कुआँ खोदना और खाना है। कुआँ चलाना वा जोतना = कुएँ से खेत सींचने के लिये पानी निकालना। कुआँ वा कुएँ झाँकना = यत्न में इधर उधर दौड़ना। खोज में चारों ओर मारे मारे फिरना। कोशिश में हैरान घूमना। उ०—इसके लिये हमें कितने कुएँ झाँकने पड़े। कुआँ वा कुएँ झकाना, झकवाना = खोज में हैरान करना। यत्न में इधर उधर घुमाना। उ०—इस वस्तु ने हमें कितने कुएँ झकवाए। (लोगों का विश्वास है कि कुत्ते के काटने का विष सात कुएँ झाँकने से उतर जाता है। इसी बात से यह मुहावरा लिया गया है) कुएँ में गिरना = आपत्ति में फँसना। विपत्ति में पड़ना। उ०—जो जान बूझ कर कुएँ में गिरता है, उसे कोई कहाँ तक बचावेगा। कुएँ की मिट्टी कुएँ में लगना = जहाँ की आमदनी हो वहीं ख़र्च होना। कुएँ में डाल देना = जन्म नष्ट करना। सत्यानाश करना। उ०—ऐसी जगह संबंध

करके तुमने लड़की कुएँ में डाल दी। कुएँ में बाँस डालना = बहुत तलाश करना। बहुत ढूँढना। बहुत छान बीन करना। उ०—तुम्हारे लिये कुओं में बाँस डाले गए, इतनी देर तक कहाँ थे। कुएँ में बाँस पड़ना = बहुत खोज होना। कुएँ में भाँग पड़ना = मंडली की मंडली का उन्मत्त होना। सब की बुद्धि मारी जाना। उ०—यहाँ तो कुएँ में भाँग पड़ी है, कोई कुछ सुनता ही नहीं है। कुएँ में बोलना वा कुएँ में से बोलना = इतने धीरे बोलना कि सुनाई न पड़े। कुएँ पर से प्यासे आना = ऐसे स्थान पर पहुँच कर भी निराश लौटना जहाँ कार्य्य-सिद्धि की आशा हो।

यौ०—अंधा कूआँ = वह अँधेरा कूआँ जिसमें पानी न हो और जो घास पात से ढँका हो।

कुआड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + आड़ी] संगीत में वह लय जिसमें बराबर और ड्योढ़ी (आड़ी) दोनों लय पाई जायँ।

कुआर—संज्ञा पुं० [सं० कुमार, प्रा० कुँवार] [वि० कुआरा] हिंदुस्तानी सातवाँ महीना जो भादों के बाद और कातिक के पहले होता है। शरद ऋतु का प्रारंभ इसी महीने से माना जाता है। इस महीने के कृष्णपक्ष को पितृपक्ष और शुक्लपक्ष को देवपक्ष कहते हैं। सूर्य्य इस महीने में कन्या राशि का होता है और कन्या संक्रांति प्रायः इसी महीने में पड़ती है। आसिन। आश्विन। असौज।

कुआरा—वि० [हिं० कुआर] [स्त्री० कुआरी] कुआर का। जो कुआर में हो। उ०—(क) कुआरी फ़सल। (ख) माघ पूस की बादरी, और कुआरा घाम। ई तीनों परितेज के, करै पराया काम।

कुइंदर†—संज्ञा पुं० [हिं० कुआँ + दर = जगह] वह गड्ढा जो कुएँ के दब वा बैठ जाने से उस स्थान पर बन जाता है।

कुइयाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुआँ] छोटा कुआँ।

यौ०—कठकुइयाँ।

कुकटी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी = सेमल] कपास की एक जाति जिसकी रुई ललाई लिए सफ़ेद रंग की होती है। यह गोरखपुर बस्ती आदि ज़िलों में बोई जाती है।

कुकड़ना—क्रि० अ० [हिं० सिकुड़ना] सिकुड़ के रह जाना। संकुचित हो जाना। उ०—कोढ़िनि सी कुकरे कर कंजनि केशव श्वेत सबै तन तातो।—केशव।

कुकड़बेल—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + कटुवल्ली] बंडाल।

कुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी] (१) कच्चे सूत का लपेटा हुआ लच्छा जो कात कर तकले पर से उतारा जाता है। मुड्ढा। अंटी। उ०—छः मास तागा बरख दिन कुकुरी। लोग बोलें भल कातल बपुरी।—कबीर। (२) मदार का डोडा वा फल। (३) दे० "खुखड़ी"।

कुकनू—संज्ञा पुं० [यू०] एक पक्षी जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह अकेला नर ही पैदा होता है। यह गाने में बहुत निपुण समझा जाता है। इसकी चोंच में बहुत से छेद होते हैं, जिनमें से तरह तरह के स्वर निकलते हैं। कहते हैं कि इसका गान ऐसा विलक्षण होता है कि उससे आग निकलती है। जब यह पूर्ण युवा होता है तो वसंत ऋतु में लकड़ियाँ संग्रह कर उस पर बैठ कर गाता है। इसके गाने से आग उत्पन्न होती है और यह जल कर भस्म हो जाता है। जब बरसात आती है तब पानी पड़ने से उसकी राख में से एक अंडा निकल आता है जिससे कुछ दिन में एक दूसरा पक्षी निकलता है। इसे फ़ारसी में "आतशजन" कहते हैं। उ०—कुकनू पंखि जइस सर साजा। तस सर साजि जरा चह राजा।—जायसी।

कुकरी‡*—[सं० कुक्कुट, पु० हिं० कोकड़ा (मुसरो)] मुरगी। बन-मुरगी। उ०—हारिल चरज आइ बँद परे। बनकुकरी, जलकुकरी धरे।—जायसी।

† संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) पीड़ा। दर्द। (२) वह झिल्ली वा सल जो घाव पर पड़ जाती है। पर्दा। झिल्ली। (३) खुखड़ी।

कुकरौंदा—संज्ञा पुं० दे० "कुकरौंधा"।

कुकरौंधा—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुरद्रु] एक प्रकार का छोटा पौधा जिसकी पत्तियाँ पालकी की पत्तियों से कुछ बड़ी होती हैं। इससे एक प्रकार की कड़ी गंध निकलती है। बरसात के अंत में ठंढी जगहों या मोरियों के किनारे यह उगता है। पहले इसकी पत्तियाँ बड़ी होती हैं पर डालियाँ निकलने पर वे क्रमशः छोटी होने लगती हैं। पत्तियों और डालियों पर छोटे छोटे घने रोएँ होते हैं जिनके कारण वे बहुत मुलायम मालूम होती हैं। जब यह हाथ डेढ़ हाथ का हो जाता है तब इसकी चोटी पर मंजरी लगती है जिसमें तुलसी की भाँति बीज निकलते हैं जो पानी में डालने पर इसपगोल की भाँति फूल जाते हैं। वैद्यक के अनुसार यह कड़ुवा, चरपरा, और ज्वर-नाशक है, तथा रक्त और कफ़ के दोष को दूर करता है। यह आमरक्त, संग्रहणी और रक्तातीसार में भी उपकारी होता है।

पर्या०—कुकुंदर। कुक्कुरद्रु। ताम्रचूड़। कुकुरमुत्ता। कुकरौंदा।

कुकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा काम। खोटा काम।

कुकर्मी—वि० [हिं० कुकर्म] बुरा काम करनेवाला। पापी।

कुकुंदर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुकरौंधा। (२) चूतड़ पर का गड्ढा।

कुकुत्संद—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध जो गौतम से पहले हुए थे।

कुकुभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राग का नाम। दे० "ककुभ"। (२) एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सोलह और चौदह के विश्राम से तीस मात्राएँ होती हैं। इस छंद के

पादांत में दो गुरु का होना आवश्यक है। उ०—गिरिधर मोहन बंसीधारी, राधापति हरि बलबीरा। ब्रजबासी संतन हितकारी, शूरा हलधर, रणधीरा। सुंदर रामप्रताप मुरारी, जसुदा को पीयो छीरा। चक्रपाणि कह सुनौ बिहारी, चितवन से हर मम पीरा।

कुकुभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी। दे० "ककुभा"।

कुकुर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यदुवंशी क्षत्रियों की एक जाति। ये लोग अंधक राजा के पुत्र कुकुर के वंशज माने जाते हैं।

पर्या०–यादव। दाशार्ह। सात्वता। कुक्कुर।

(२) एक प्रदेश जहाँ कुकुर जाति के क्षत्रिय रहते थे। यह देश राजपूताने के अंतर्गत है। (३) एक साँप का नाम। (४) कुत्ता। (५) गंठिवन का पेड़।

कुकुरआलू–संज्ञा पुं० [हिं० कुकुर + आलू] एक बेल जो नैपाल, भूटान, आसाम और छोटा नागपुर आदि के जंगलों में होती है। इसके कंद वा जड़ को अकाल के दिनों में गरीब लोग खाते हैं।

कुकुरखाँसी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कुक्कुर + खाँसी] वह सूखी खाँसी जिसमें कफ न गिरे। ढाँसी।

कुकुरढाँसी–संज्ञा स्त्री० दे० "कुकुरखाँसी"।

कुकुरदंत–संज्ञा पुं० [हिं० कुक्कुर + दंत] [वि० कुकुरदंता] वह दाँत जो किसी किसी को साधारण दाँतों के अतिरिक्त और उनसे कुछ नीचे आड़ा निकलता है तथा जिसके कारण होंठ कुछ उठ जाता है।

कुकुरदंता–वि० [हिं० कुकुरदंत] जिसके मुँह में कुकुरदंत हो।

कुकुरभँगरा–संज्ञा पुं० हिं० कुक्कुर + भँगरा] काला भँगरा। भँगरैया। दे० "भँगरा"।

कुकुरमाछी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कुक्कुर + माछी] एक प्रकार की मक्खी जो घोड़े, बैल और कुत्ते आदि पशुओं के शरीर में लगती और काटती है। इन मक्खियों का रंग कुछ ललाई लिए हुए भूरा होता है।

कुकुरमुत्ता–संज्ञा पुं० [हिं० कुक्कुर + मूतना] एक प्रकार की खुमी जिसमें से बुरी गंध निकलती है। दे० "खुमी"।

कुकुरी†–संज्ञा स्त्री० (१) दे० "कुकड़ी"। (२) कुतिया। दे० "कुक्कुर"।

कुकुरौंछी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० कुक्कुर + माछी] एक प्रकार की ललाई लिए हुए भूरे रंग की मक्खी जो कुत्ते, घोड़े, बैल आदि पशुओं के शरीर पर लगती है और बहुत दृढ़ होती है।

कुकुही*†–संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुभ, प्रा० कुक्कुह] बनमुर्गी। उ०—मानुस तें बड़ पापिया, अक्षर गुरुहि न मान। बार बार बन कूकही गर्भ धरे चौखान।—कबीर।

संज्ञा स्त्री० [देश०] बाजरे की फसल का एक रोग जिसमें बाल पर महीन महीन काली बुकनी सी जम जाती है और दाने नहीं पड़ते।

कुकूणक–संज्ञा पुं० [सं० कुकूणक] आँखों का एक रोग जो प्रायः बच्चों को होता है। इस रोग में आँखों की पलकों में खुजलाहट होती है और पलक खोलने और मूँदने में कष्ट होता है। इस रोग में लड़के प्रायः आँख मलते हैं, तथा नाक और माथा रगड़ा करते हैं। कुथुरू। रोहा।

कुक्कुट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुर्गा।

यौ०—कुक्कुटध्वनि। कुक्कुटमस्तक। कुक्कुटशिख। कुक्कुटांडक। कुक्कुटभुल्य।

(२) चिनगारी। (३) लुक। (४) जटाधारी। मुर्गकेश।

कुक्कुटक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बनमुर्गी। कुकुही। (२) निषादी माता और शूद्र पिता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति।

कुक्कुटनाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक टेढ़ी नली वा यंत्र जिससे भरे बरतन वा स्थान से खाली बरतन वा स्थान में पानी आदि पहुँचाया जाता है।

कुक्कुटपाद–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का प्राचीन नाम जिसे अब कुर्किहार कहते हैं। यह पर्वत गया से आठ कोस उत्तर पूर्व की ओर है। चीनी यात्रियों के यात्राविवरण से मालूम होता है कि यह उस समय बौद्धों का एक प्रधान तीर्थस्थान था। अब भी इसके आस पास कई टूटे फूटे स्तूप और मूर्तियाँ पाई जाती हैं।

कुक्कुटमस्तक–संज्ञा पुं० [सं०] चव्य। चाब।

कुक्कुटव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो भादों की शुक्ला सप्तमी को होता है। इस दिन स्त्रियाँ संतान के लिये शिव और दुर्गा की पूजा करती हैं।

कुक्कुटशिख–संज्ञा पुं० [सं०] कुसुम का पेड़ वा फूल।

कुक्कुटांडक–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक धान जो खाने में कसैला और मीठा होता है। दुद्धी।

कुक्कुटी–संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटि] (१) मुर्गी। (२) दंभचर्य्या। पाखंड। (३) सेमल का पेड़। (४) एक प्रकार का कीड़ा।

कुक्कुर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुक्कुरी] (१) कुत्ता। श्वान। (२) अग्रवंश का एक यदुवंशी राजा। (३) यदुवंशियों की एक शाखा। कुकुर। (४) एक मुनि का नाम। (५) गाँठदार। गँठीला।

कुक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] पेट। उदर।

कुक्षि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पेट।

यौ०—कुक्षिंभरि = पेटू। स्वार्थी।

(२) कोख।

यौ०—कुक्षिगत। कुक्षिज।

(३) किसी चीज़ के बीच का भाग। (४) गुहा। (५) संतति।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक दानव का नाम। (२) बलि नामक दानव राजा का नाम। (३) रामायण के अनुसार इक्ष्वाकु का एक पुत्र जो विकुक्षि का पिता था। (४) बलि का दूसरा नाम। (५) प्रियव्रत का दूसरा नाम। (६) एक प्राचीन देश।

कुक्षिभेद–संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार सात प्रकार के ग्रहण के मोक्ष के भेदों में से एक। इसके दो भेद होते हैं—दक्षिण कुक्षिभेद, और वाम कुक्षिभेद। जब मोक्ष दाहिनी ओर से होता है तब उसे दक्षिण कुक्षिभेद और जब बाईं ओर से होता है तो उसे वाम कुक्षिभेद कहते हैं।

कुखेत–संज्ञा पुं० [सं० कुक्षेत्र, पा० कुखेत] बुरा स्थान। खराब जगह। कुठाँव। उ०— (क) असगुन होहिँ नगर पैठारा। रटहिँ कुभाँति कुखेत करारा।—तुलसी। (ख) चारों ओर ब्यास खगपति के झुंड झुंड बहु आये। ते कुखेत बोलत सुनि सुनि के सकल अंग कुम्हिलाये।—सूर।

कुख्यात–वि० [सं०] निंदित। बदनाम।

कुख्याति–संज्ञा स्त्री० [सं०] निंदा। बदनामी।

कुगति–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गति। दुर्दशा। बुरी हालत।

कुगहनि–संज्ञा स्त्री० [सं० कु+ग्रहण] अनुचित आग्रह। हठ। ज़िद्। उ०—महामद अंध दसकंध न करत कान मीचु बस नीच हठि कुगहनि गही है।—तुलसी।

कुघा*–संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्षि] दिशा। ओर। तरफ़। उ०—चौहूँ कुघा तड़िता तड़पै डरपै वनिता कहि केशव साँचै।—केशव।

कुघात–संज्ञा पुं० [हिं० कु+घात] (१) कुअवसर। बेमौक़ा। (२) बुरा दाँव। बुरी चाल। छल कपट। उ०—बड़ कुघातु करि पातकिनि कहिसि कोपगृह जाहु। काजु सँवारहु सजग सब सहसा जनि पतियाहु।—तुलसी।

कुचंदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रक्त चंदन। लाल चंदन। देवी चंदन। (२) बक्कम। पटरँग। (३) कुंकुम।

कुच–संज्ञा पुं० [सं०] स्तन। छाती।

वि० (१) संकुचित। (२) कृपण। कंजूस।

कुचकार–संज्ञा पुं० [देश०] भेड़ की एक जाति जो गिलगिट के उत्तर हंज़ा में पाई जाती है। यह पामीर में भी होती है। कुलंजा।

कुचकुचवा†–संज्ञा पुं० [अनु०] उल्लू।

✓**कुचकुचाना**–क्रि० स० [अनु० कुचकुच] (१) लगातार कोंचना। बार बार नुकीली चीज़ धँसाना या बींधना, जैसे (मुरब्बे के लिये) आँवला कुचकुचाना। (२) थोड़ा कुचलना।

✓**कुचना***–क्रि० अ० [सं० कुंचन] सिकुड़ना। सिमटना। [क्व०]। उ०—कँपै वर बानी डगै उर डीठ तुचाति कुचै सकुचै मति बेली।—केशव।

कुचमर्दन–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन वा पटुआ जिससे रस्से बनाए जाते हैं।

कुचक्र–संज्ञा पुं० [सं०] दूसरों को हानि पहुँचानेवाला गुप्त प्रयत्न। षड्यंत्र।

क्रि० प्र०—चलाना।—रचना।—खड़ा करना।

कुचक्री–संज्ञा पुं० [सं०] षट्यंत्र रचनेवाला। गुप्त प्रयत्न करके दूसरों को हानि पहुँचानेवाला।

कुचर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरे स्थानों में घूमनेवाला। आवारा। (२) नीच कर्म्म करनेवाला। (३) वह जो पराई निंदा करता फिरे।

कुचरा†–संज्ञा पुं० [हिं० कूँचा] [स्त्री० अल्प० कुचरी] झाड़ू।

✓**कुचलना**–क्रि० स० [हिं० कूँचना। अनु०] (१) किसी चीज़ पर सहसा ऐसी दाब पहुँचाना जिससे वह बहुत दब और विकृत हो जाय। मसलना। उ०—फूल की सी माल बाल लाल जो लपटि लागी तन मन ओट पट कपट कुचिलगे।—देव। (२) पैरों से रौंदना। पाँव से दबाना।

सं० क्रि०—जाना।—डालना।—देना।

मुहा०—सिर कुचलना = पराजित करना। मान ध्वंस करना।

कुचला–संज्ञा पुं० [सं० कच्चीर] (१) एक प्रकार का वृक्ष जो सारे भारतवर्ष में पर बंगाल और मदरास में अधिकता से होता है। इसकी पत्तियाँ पान के आकार की चमकीले हरे रंग की होती हैं और फूल लंबे, पतले और सफ़ेद होते हैं। फूल झड़ जाने पर इसमें नारंगी के समान लाल और पीले फल लगते हैं जिनके भीतर पीले रंग का गूदा और बीज होता है। कच्चा फल, मलावरोधक, वातवर्धक और ठंढा होता है और पक्का फल भारी, कफ, वात, प्रमेह और रक्त के विकार को दूर करता है। इसका स्वाद कुछ मिठास लिए हुए कड़ुवा और कसैला होता है। इस वृक्ष की छाल और इसके बीज का उपयोग औषध में होता है। इसकी लकड़ी में घुन नहीं लगता और वह बहुत मज़बूत और चिमड़ी होती है और गाड़ियाँ, हल, तख्ते आदि बनाने के काम में आती है। (२) इस पेड़ का बीज। यह गोल और चपटा होता है। इसके ऊपर मटमैले रंग का छिलका होता है जिसके अंदर दो दालें होती हैं। यह बहुत अधिक कड़ा होता है इसलिये इसका पीसना या तोड़ना बड़ा कठिन होता है। यह कड़ुवा, गरम, मादक और बहुत विषैला होता है और कफ, वात, रुधिरविकार, कुष्ट और बवासीर को दूर करता है। वमन कराने और सुगंधि सुँघाने से इसका विष उतर जाता है। कुत्ते के लिये यह बहुत घातक होता है।

पर्या०—कारस्कर। विषतिंदु। कालकूटक। मर्कटतिंदु। कुपाक। किंपाक।

कुचली–संज्ञा स्त्री० [हिं० कुचलना] वे दाँत जो डाढ़ों और राजदंत

के बीच में होते हैं। ये नोकदार और बड़े होते हैं। कीला। सीता दांत।

कुचाल-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० चाल] (१) बुरा आचरण। खराब चाल चलन।

क्रि० प्र०—चलना।

(२) दुष्टता। पाजीपन। खोटाई। बदमाशी। उ०—(क) राजा दसरथ रानी कोसिला जाये। कैकयी कुचाल करि कानन पठाये।—तुलसी। (ख) नाहिं तो ठाकुर है अति दारुण करिहै चालु कुचाली हो।—कबीर।

क्रि० प्र०—करना।

कुचालिया-संज्ञा पुं० दे० "कुचाली"।

कुचाली-संज्ञा पुं० [हिं० कुचाल] (१) कुमार्गी। बुरे आचरणवाला। (२) दुष्ट। पाजी। बदमाश।

कुचाह*-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० चाह] अमंगल। अशुभ बात। उ०—जातुधान तिय जानि वियोगिनि दुखई सीय सुनाइ कुचाहैं।—तुलसी।

कुचिक-संज्ञा पुं० [सं०] ईशान दिशा का एक प्राचीन देश, जो कदाचित् आधुनिक कूचबिहार हो।

कुचिया†-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंचिका वा गुंजिका] छोटी छोटी टिकिया।

कुचिया दाँत-संज्ञा पुं० [हिं० कूंचना से कुचिया + दाँत] वह दाँत जिससे प्राणी अपने आहार को कुचल कुचल कर खाते हैं। डाढ़। चौभर।

कुचिलना†-क्रि० स० दे० "कुचलना"।

कुचिला-संज्ञा पुं० दे० "कुचला"।

कुचील*†-वि० [सं० कुचैल] मैले वस्त्रवाला। मैला कुचैला। मलिन। उ०—(क) हौं कुचील मतिहीन सकल विधि तुम कृपालु जग जान। सूर मधुप निशि काम कोश वश करो कृपा दिन भान।—सूर। (ख) कज्जल कीच कुचील किये तट अंचर अधर कपोल। थकि रहे पथिक सुयश हित ही के हस्त चरन मुख बोल।—सूर।

कुचीला-वि० दे० "कुचैला"।

कुचुमार-संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र के एक प्रधान आचार्य्य का नाम जिसका मत वात्स्यायन के कामशास्त्र में उद्धृत मिलता है।

कुचैल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मैला कपड़ा। मलिन वस्त्र। (२) पाठा।

वि० (१) मैला कपड़ा पहननेवाला। जिसके कपड़े मैले हों। (२) मैला। गंदा। मलिन।

कुचेष्ट-वि० [सं०] बुरी चेष्टावाला। जिसकी बुरी चेष्टा हो।

कुचेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कुचेष्ट] (१) बुरी चेष्टा। कुप्रयत्न। हानि पहुँचाने का यत्न। बुरी चाल। (२) चेहरे का बुरा भाव।

कुचैन*-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० चैन] कष्ट। दुःख। व्याकुलता। उ०—सोवत जागत सपन बस रस रिस चैन कुचैन। सुरति स्याम घन की सुरति बिसरेहू बिसरै न।—बिहारी।

वि० बेचैन। व्याकुल। उ०—साजे मोहन मोह को मोहीं करत कुचैन। कहा करौं उलटे परे टोने लोने नैन।—बिहारी।

कुचैला-वि० [सं० कुचैल] [स्त्री० कुचैली] (१) जिसका कपड़ा मैला हो। मैले कपड़ेवाला। (२) मैला गंदा। उ०—(क) मैली कुचैली धोती। (ख) रे कुचैल तन तेलिया अपना मुख तो हेर। सुमनन बासे तेल को काहे डारत पेर।—रसनिधि। (ग) वस्त्र कुचैल दीन द्विज देखत ताके तहूँ लखाये हो। संपति दइ वाके पत्नी को मन अभिलाख पुराये हो।—सूर।

कुचोद्य†-संज्ञा पुं० [सं० कु + चोद्य] कुत्सित प्रश्न। वितंडा। कुतर्क। खुचुर।

क्रि० प्र०—करना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग काशी के पंडित ही बहुधा करते हैं।

कुच्ची†-संज्ञा पुं० [फा० कूज़ा] मिट्टी का एक लंबा बरतन जिससे तेली तेल नापते हैं।

कुच्छित*-वि० [सं० कुत्सित] कुत्सित। नीच। उ०—सुरधुनी ओघ संसर्ग तें नाम बदल कुच्छित नरौ। परमहंस बंसानि में भयो विभागी बानरौ।—नाभा।

कुछ-वि० [सं० किंचित्, पा० किंची, पू० हिं० किछु] थोड़ी संख्या वा मात्रा का। ज़रा। थोड़ा सा। टुक। उ०—(क) पेड़ में देखो कुछ फल हैं। (ख) कुछ लोग तो आरहे हैं। (ग) कुछ देर ठहरो तो बातचीत करें।

मुहा०—कुछ एक = थोड़ा सा। कुछ कुछ = थोड़ा। उ०—आज बुखार कुछ कुछ उतरा है। कुछ ऐसा = विलक्षण। असाधारण। उ०—(क) रात तो कुछ ऐसी नींद आई कि पड़ते ही सो गए। (ख) वह लड़का कुछ ऐसा घबराया कि उसे भागते ही बना। कुछ न कुछ = थोड़ा बहुत। कम या ज़्यादा। बहुत कुछ, कितना कुछ = बहुत। अधिक।

सर्व० [सं० कश्चित्, पा० कोचि] (१) कोई (वस्तु)। उ०—(क) कुछ खाओ, तो ले आवें। (ख) कुछ दिलवाओ। (ग) हम कुछ नहीं जानते।

मुहा०—कुछ का कुछ = और का और। विपरीत। उलटा। उ०—वह सदा कुछ का कुछ समझता है। कुछ से कुछ होना = भारी उलट फेर हो जाना। विशेष परिवर्त्तन हो जाना। कुछ कह बैठना = कड़ी बात कह देना। ऊँची नीची सुना देना। गाली दे देना। कुछ कहना = कड़ी बात कहना। गाली देना। बिगड़ना। उ०—तुम्हें किसी ने कुछ कहा है? कुछ सुनोगे या कुछ सुनने पर लगे हो? = ऊँचा नीचा

सुनोगे। गाली खाओगे। उ०—तुम नहीं मानते हो, अब कुछ सुनोगे। कुछ खा लेना = विष खा लेना। उ०—इसने कुछ खा तो नहीं लिया। कुछ खा कर मर जाना = विष खा कर मर जाना। कुछ कर देना = जादू टोना कर देना। मंत्र प्रयोग कर देना। उ०—जान पड़ता है कि किसी ने उस पर कुछ कर दिया है। कुछ हो जाना = कोई रोग वा भूत प्रेत की बाधा हो जाना। उ०—उसको कुछ हो तो नहीं गया। (किसी बुरी बात वा वस्तु का नाम न लेकर लोग कभी कभी केवल इसी सर्वनाम का प्रयोग कर देते हैं, जैसे—(क) उसे कुछ हो तो नहीं गया? (ख) उसने कुछ खा तो नहीं लिया? (ग) किसी ने कुछ कहा तो नहीं? इत्यादि) कुछ हो = चाहे जो हो।

(२) कोई बड़ी बात। कोई अच्छी बात। उ०—यदि ५०) ही दिये तब तो कुछ नहीं किया। (३) कोई सार वस्तु। कोई काम की वस्तु। उ०—उसमें तो कुछ भी न निकला।

मुहा०—कुछ लगाना = (अपने को) बड़ा वा श्रेष्ठ समझना। कुछ हो जाना = किसी योग्य हो जाना। किसी बात में समर्थ वा किसी गुण से युक्त हो जाना। गण्यमान्य हो जाना। उ०—(क) यह लड़का परिश्रम करेगा तो कुछ हो जायगा। (ख) यदि यह काम चमक गया तो हम भी कछ हो जाँयगे।

कुजंत्र—संज्ञा पुं० [सं० कुयंत्र] बुरा यंत्र। अभिचार। टोटका। टोना। ब०—कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू।—तुलसी।

कुजंभा—वि० [सं०] विकराल दाँतवाला।

संज्ञा पुं० एक असुर जो प्रह्लाद का पुत्र था।

कुज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंगल ग्रह। उ०—(क) मानो गुरु शनि कुज आगे करि शशिहि मिलन तम के द्रुम भाए। उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत उढ़ाए।—सूर। (ख) भाल लाल बेंदी ललन आखत रहे विराजि। इंदुकला कुज में बसी मनो राहु भय भाजि। (२) वृक्ष। पेड़। उ०—चंदन बंदन जोग तुम धन्य द्रुमन के राय। देत कुकुज कंकोल लों देवन सीस चढ़ाय।—दीनदयालु। (३) नरकासुर का नाम जो पृथ्वी का पुत्र माना जाता था।

वि० (मंगल के समान) लाल रंग का। लाल। उ०—(क) फहरी अनंत सोहैं धुजा। सित स्याम रंग कीती कुजा।—सूदन। (ख) बहु स्याम धुजा बहु रंग कुजा।—सूदन।

कुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कु = पृथ्वी + जा = जायमान] (१) सीता। जानकी। उ०—टूटे धनुष कठिन है व्याहू। बिन भंजे को बरी कुजाहू।—विश्राम। (२) कात्यायिनी का एक नाम।

कुजात—संज्ञा स्त्री० दे० "कुजाति"।

कुजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी जाति। नीच जाति। उ०—दुख सुख, पाप, पुण्य दिन राती। साधु, असाधु, सुजाति कुजाती।—तुलसी।

संज्ञा पुं० (१) बुरी जाति का आदमी। नीच पुरुष। उ०—नहिं तोष विचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भये मँगता।—तुलसी। (२) पतित वा अधम पुरुष। उ०—(क) क्रूर कुजाति कपूत अघी सबकी सुधरै जो करै नर पूजा।—तुलसी। (ख) करै विचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवनि विधि राती।—तुलसी।

कुजाष्टम—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक योग जो जन्मकुंडली के चक्र में मंगल के आठवें स्थान पर होने से होता है। यह योग बड़ा ही अशुभ माना जाता है। ज्योतिषियों का मत है कि कुजाष्टम योग कुंडली के अन्य शुभ योगों को नष्ट कर देता है।

कुजिया†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कूज़ा = प्याला] छोटी घरिया।

कुजून†—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० जून = समय] (१) कुसमय। बुरा समय। (२) अतिकाल। देर। नावक्त।

कुजोग—संज्ञा पुं० [सं० कुयोग] (१) कुसंग। कुमेल। बुरा मेल। उ०—ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग। होंहिं कुवस्तु सुवस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग।—तुलसी। (२) बुरा संयोग। बुरा अवसर। प्रतिकूल अवस्था।

कुजोगी*—वि० [सं० कुयोगी] असंयमी। उ०—पुरुष कुजोगी जिमि उर गारी। मोह विटप नहिं सकहिं उपारी।—तुलसी।

कुज्जा—संज्ञा पुं० [फ़ा० कूज़ा = प्याला] (१) मिट्टी का प्याला। पुरवा। (२) मिट्टी के कूज़े में जमाई हुई मिस्री। मिस्री की गोल डली।

कुटंत†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना + त (प्रत्य०)] (१) कूटने का भाव। कुटाई। (२) मार। प्रहार। उ०—(क) जाव, घर पर खूब कुटंत होगी। (ख) जेहिं जियत इंद्रपुर यों कुटंत। गज बाज ऊँट वृषभा लुटंत।—सूदन।

कुट—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुटी] (१) घर। गृह। (२) कोट। गढ़। (३) कलश। (४) वह घन जिससे पत्थर तोड़ा जाता है। (५) वृक्ष। (६) पर्वत।

संज्ञा स्त्री० [सं० कुष्ठ, प्रा० कुट्ठ] एक बड़ी मोटी झाड़ी जो कश्मीर के किनारे की ढालू पहाड़ियों पर ८००० से ९००० फुट की ऊँचाई तक होती है। चनाब और झेलम के ऊँचे कछारों में भी यह मिलती है। कश्मीर में इसकी जड़ खोद कर बहुत इकट्ठी की जाती है और छोटे छोटे टुकड़ों में काट कर बाहर कलकत्ते और बँबई भेजी जाती है जहाँ से उसकी चलान चीन और यूरप को होती है। कश्मीर में इसका संग्रह राज्य की ओर से होता है। प्रत्येक काश्तकार को कुछ जड़ कर के रूप में देनी पड़ती है। इसकी सुगंध बड़ी मनोहर होती है और चीन में उसे धूप की तरह जलाते हैं। इससे

बाल भी मला जाता है। इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इससे सफ़ेद बाल काले हो जाते हैं। कश्मीर में शाल के व्यापारी इसे दुशालों की तह में उन्हें कीड़ों से बचाने के लिये रखते हैं। पहले लोग असली कश्मीरी माल की पहचान इसी की महँक से करते थे। वैद्यक में यह गरम, कफ़ बात नाशक, दाद, खुजली, कोढ़ आदि को दूर करनेवाली और शुक्र-जनक मानी गई है। हकीम लोग कुट तीन प्रकार की मानते हैं। एक मीठी, तौल में हलकी, सुगंधित और पीलापन लिए सफ़ेद होती है। दूसरी कड़ुई, कुछ करौंछे रंग की और बिना महँक की होती है। तीसरी लाल रंग की और स्वाद में फीकी और उसमें से घीकार की सी महक होती है।

पर्या०—कुष्ठ। व्याधि। पारिभाव्य। व्याप्य। पाकल। उत्पल। कदारव्य। दुष्ट। आप्य। जरण। कौबेर। भासुर। गदाह्व। कुठिक। काकल। नीरुज। आमय। रुजा। गद। पारिभद्रक। कुत्सित। पावन।

संज्ञा पुं० [सं० कुट = कूटना] (१) कूटा हुआ टुकड़ा। टुकड़ा।

यौ०—कसकुट। तिसकुट।

मुहा०—कुट करना = मैत्री खंडित करना। दे० "कुट्टी (४)"। (२) दे० "कुट्टी (३)"।

कुटका—संज्ञा पुं० [हिं० काटना] [स्त्री० अल्प० कुटकी] (१) छोटा टुकड़ा। उ०—साधुन की झुपड़ी भली, ना साकट को गाँव। चंदन की कुटकी भली, ना बबूल बनराँव।—कबीर। (२) कसीदे में तिकोना बूटा। सिँघाड़ा।

कुटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुटका] (१) एक पौधा जो पच्छिमी और पूरबी घाटों में तथा अन्य पहाड़ी प्रदेशों में भी होता है। इसकी पत्तियाँ लंबी लंबी कटावदार और ऊपर को चौड़ी होती हैं। इसकी जड़ में गोल गोल बेडौल गाँठें पड़ती हैं जो औषध के काम में आती हैं। स्वाद में कुटकी कड़ुई, चरपरी और रूखी होती है। प्रकृति इसकी शीतल है। यह भेदक, कफनाशक तथा पित्तज्वर, श्वास, कोढ़ और कृमि को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसमें दीपक और मादक गुण भी होता है। यह २ रत्ती से ४ रत्ती तक खाई जा सकती है। इसे काली कुटकी भी कहते हैं।

पर्या०—तिक्ता। काडेरुहा। अरिष्टा। चक्रांगी। शकुलादिनी। कटुका। मत्स्यपित्ता। नकुलासादिनी। शतपर्वा। द्विजांगी। मलभेदिनी। कृष्णा। कृष्णमेदा। कृष्णभेदी। महौषधी। कटवी। अंजनी। कटु। वामघ्नी। चित्रांगी।

(२) एक जड़ी जो शिमले से कश्मीर तक पाँच से दस हज़ार फुट की ऊँचाई पर पहाड़ों में होती है। यह जिनशियन नाम की अंग्रेज़ी दवा के स्थान में व्यवहृत होती है। यह बल और वीर्य्य वर्धक होती है।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक छोटी चिड़िया जो भारत के घने जंगलों में होती है और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है। यह पाँच इंच लंबी होती है और तीन चार अंडे देती है। यह कभी जोड़े में और कभी फुट रहती है। बोली इसकी कड़ी होती है। यह पत्ते, फूस, बाल, कपास आदि गूँथ कर घोंसला बनाती है। (२) बाढ़िये के पेंच का वह भाग जिसमें लोहे की कीलों वा छड़ों में पेंच बनाया जाता है।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० कुटका = छोटा टुकड़ा] कँगनी। चेना।

संज्ञा स्त्री० [सं० कट्ट + कीट] एक उड़नेवाला कीड़ा जो कुत्ते बिल्ली आदि पशुओं के शरीर के रोयों में घुसा रहता है और उन्हें काटता है।

कुटज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुरैया। कर्ची। (२) अगस्त्य मुनि। (३) द्रोणाचार्य्य का नाम।

कुटनई†—संज्ञा स्त्री० दे० "कुटनपन"।

कुटनपन—संज्ञा पुं० [सं० कुट्टन] (१) कुटनी का काम। स्त्रियों को फोड़ने फाँसने का काम। दूतीकर्म्म। (२) इधर की उधर लगाने का काम। झगड़ा लगाने का काम।

कुटनपेशा—संज्ञा पुं० दे० "कुटनपन"।

कुटनहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना + हारा (प्रत्य०)] धान कूटने का काम करनेवाली स्त्री। वह स्त्री जो धान कूट कर भूसी और चावल अलग करने का व्यवसाय करती हो।

कुटना—संज्ञा पुं० [हिं० कुटनी] (१) स्त्रियों को बहँका कर उन्हें पर-पुरुष से मिलानेवाला अथवा एक का सँदेसा दूसरे तक पहुँचाने वाला व्यक्ति। स्त्रियों का दलाल। दूत। टाल। (२) एक की बात दूसरे से कह कर दो आदमियों में झगड़ा करानेवाला। चुग़लख़ोर।

संज्ञा पुं० [हिं० कूटना] (१) वह हथियार जिससे कुटाई की जाय। (२) कूटे जाने की क्रिया।

यौ०—कुटना पिसना = कूटे और पीसे जाने का काम।

क्रि० अ० [हिं० कूटना] (१) कूटा जाना। (२) मारा या पीटा जाना।

कुटनाना—क्रि० स० [हिं० कुटना] (१) किसी स्त्री को बहँका कर कुमार्ग पर ले जाना। (२) बहँकाना।

कुटनापन—संज्ञा पुं० दे० "कुटनपन"।

कुटनापा—संज्ञा पुं० दे० "कुटनपन"।

कुटनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुट्टनी] (१) स्त्रियों को बहँका कर उन्हें पर पुरुष से मिलानेवाली अथवा एक का सँदेसा दूसरे तक पहुँचाने वाली स्त्री। दूती। (२) चुग़ली खाकर दो व्यक्तियों में झगड़ा करानेवाली। इधर की उधर लगानेवाली।

कुटनीपन-संज्ञा पुं० दे० "कुटनपन"।

कुटन्नक-संज्ञा पुं० [सं०] केवट मोथा। कसेरू।

कुटन्नट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्योनाक। छौंका। (२) केवट मोथा। कैवर्त्त मुस्ता।

कुटर कुटर-संज्ञा पुं० [अनु०] किसी कड़ी वस्तु के चबाने का शब्द।

कुटवाना-क्रि० स० [कूटना का प्रे०] कूटने की क्रिया कराना। कूटने में तत्पर करना।

कुटाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना] (१) कूटने का काम। (२) कूटने की मज़दूरी।

कुटार-संज्ञा पुं० [हिं० काटना] नटखट टट्टू।

कुटास-संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना] खूब मारना। पीटना।

कुटिया-संज्ञा स्त्री० [सं० कुटी] छोटी झोपड़ी।

कुटिल-वि० [सं०] [स्त्री० कुटिला] (१) वक्र। टेढ़ा।

यौ०—कुटिलकीट = साँप।

(२) दग़ाबाज़। कपटी। छली।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) शठ। खल। (२) वह जिसका रंग पीलापन लिए सफ़ेद हो और आँखें लाल हों। (३) चौदह अक्षर का एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में स, भ, न, य, ग, ग, होते हैं। उ०—सुभ नायो गगरिक तुव गंगा पानी। जिन शंभू सिर जननि दया की खानी। तजि सारे कुटिलन कपटी को साथा। तिन पाई अति शुभ गति गावै गाथा। (४) तगर का फूल।

कुटिल कीट-संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप। उ०—तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मात पिता हूँ।—तुलसी।

कुटिलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) टेढ़ापन। (२) खोटाई। धोखेबाज़ी। छल। कपट।

कुटिलपन-संज्ञा पुं० दे० "कुटिलता"।

कुटिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती नदी। (२) एक प्राचीन लिपि जिसका प्रचार भारतवर्ष में अठवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक था। (३) असवरग नामक गंध द्रव्य जिसका उपयोग औषधों में भी होता है। (४) चैतन्य संप्रदाय के अनुसार राधिका की ननद और आयानघोष की बहिन।

कुटिलाई†-संज्ञा स्त्री० दे० "कुटिलता"।

कुटिहा†-वि० [हिं० कूट + हा] कूट कहनेवाला। व्यंग्य से हँसी उड़ानेवाला। दिल्लगीबाज़।

कुटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जंगलों या देहातों में रहने के लिये घास फूस से बनाया हुआ घर। पर्णशाला। कुटिया। झोपड़ी। (२) मुरा नामक गंध द्रव्य।

कुटीचक-संज्ञा पुं० [सं०] चार प्रकार के संन्यासियों में से पहला। इस कोटि का संन्यासी शिखासूत्र-त्याग नहीं करता। यह तीन दंड और कमंडलु रखता, कषाय पहनता और त्रिकाल-संध्या करता है। यह अपने कुटुंब और बंधुओं के अतिरिक्त दूसरे के घर भिक्षा नहीं लेता। मरने पर इसका दाहकर्म किया जाता है।

कुटीचर-संज्ञा पुं० दे० "कुटीचक"।

संज्ञा पुं० [सं० कुचर] कुटिल। कपटी। छली।

कुटीर-संज्ञा पुं० दे० "कुटी"।

कुटुंब-संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब] परिवार। कुनबा। खानदान।

कुटुंबिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक क्षुद्र गुल्म जो मीठा, संग्राहक, कफ-पित्त-नाशक, रक्तशोधक और व्रण में उपकारी होता है।

कुटुंबी-संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्बिन्] [स्त्री० कुटुंबिनी] (१) परिवार-वाला। कुनबेवाला। (२) कुटुंब के लोग। संबंधी। नातेदार।

कुटुम*†-संज्ञा पुं० दे० "कुटुंब"।

कुटुवा-संज्ञा पुं० [हिं० कूटना] (१) कूटनेवाला। (२) बैल या भैंसे को बधिया करनेवाला।

कुटेक-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० टेक] अनुचित हठ। बुरी ज़िद।

कुटेव-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० टेव] खराब आदत। बुरी बान। बुरा अभ्यास। उ०—नैनन यहै कुटेव परी। लूटत स्याम रूप आपुन ही निसि दिन पहर घरी।—सूर।

कुटेशन-संज्ञा पुं० दे० "कोटेशन"।

कुटौनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना] (१) धान कूटने का काम। उ०—कर्कशा अपढ़ स्त्रियों का दिलबहलाव लड़ाई है, घर गृहस्थी के सब काम पिसौनी कुटौनी से छुट्टी पाय जब तक दाँत न कर लें, आपस में झोंटीझोटा न कर लें तब तक कभी न अघायँ।—हिंदी प्रदीप।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—कुटौनी पिसौनी = धान कूटने और गेहूँ पीसने का काम। जीविका के लिये कठिन परिश्रम (स्त्रियों का)। उ०—माँ तो कुटौनी पिसौनी करती है और बेटे का यह हाल है।

(२) धान कूटने की मज़दूरी। उ०—दो मन धान की कुटौनी कितनी हुई ?

कुट्टन-संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य में वह मुद्रा जिसमें वृद्धावस्था के कारण दाँत से दाँत बजने का भाव दिखाया जाता है।

कुट्टनी-संज्ञा स्त्री० (१) कुटनी। दल्लाला। (२) मनमोटाव करने के लिये एक आदमी की बात दूसरे आदमी से कहनेवाली। इधर की उधर लगानेवाली।

कुट्टमित-संज्ञा पुं० [सं०] सुख के समय में स्त्रियों की मिथ्या दुःख-चेष्टा। यह ग्यारह प्रकार के हावों में माना गया है। हेमचंद्र ने इसे स्त्रियों के दश प्रकार के अलंकारों में गिनाया है।

कुट्टा-संज्ञा पुं० [हिं० कटना] पर-कटा कबूतर। वह कबूतर जिसकी पूँछ के पर कतर कर उसे उड़ने के अयोग्य कर देते हैं और जिसे दूसरे कबूतरों को बुलाने के लिये हाथ में लेकर उछालते हैं।

कुट्टिम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह भूमि जिस पर कंकड़, पत्थर वा ईंटें बैठाई हों। पक्का फ़र्श। गच। (२) अनार। दाड़िम।

कुट्टी-संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना] (१) घास पयाल या और चारे को छोटे छोटे टुकड़ों में काटने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) गँड़ासे से बारीक कटा हुआ चारा। (३) कूटा और सड़ाया हुआ काग़ज़ जिससे पुट्ठे और क़लमदान इत्यादि बनते हैं। (४) लड़कों का एक शब्द जिसका प्रयोग वे एक दूसरे से मित्रता तोड़ने के समय दाँतों पर नाखून खुट से बुला कर करते हैं। मैत्रीभंग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(५) परकटा कबूतर। दे० "कुट्टा"।

कुठला-संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठ, प्रा० कोट्ठ + ला (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्प० कुठली] (१) अनाज रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन। (२) चूने की भट्टी।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

कुठाँउ, कुठाँय-संज्ञा स्त्री० दे० "कुठाँव"।

कुठाँव-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० ठाँव] बुरी ठौर। बुरी जगह। उ०—यह सब कलजुग को परभाव। जो नृप के मन गयो कुठाँव।—सूर।

मुहा०—कुठाँव मारना = मर्म स्थान पर मारना, अथवा ऐसे स्थान पर ले जाकर मारना जहाँ बहुत कष्ट वा दुर्गति हो। घोर आघात पहुँचाना। बुरी मौत मारना। उ०—धरमधुरंधर धीर धरि नयन उघारे राव। सिर धुनि लीन्ह उसास असि मारेसि मोहिँ कुठाँव।—तुलसी।

कुठाकु†-संज्ञा पुं० [देश०] कठफोड़वा पत्ती।

कुठाट-संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० ठाट] (१) बुरा साज। बुरा सामान। (२) बुरा प्रबंध। बुरा आयोजन। उ०—(क) राग को न साज न विराग जोग जाग जिय काया नहिँ छाड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।—तुलसी। (ख) नट ज्यौं जिन पेट कुपेट कु कोटिक चेटक कोटि कुठाट ठटो।—तुलसी। (ग) मोहि लगि यह कुठाट तेहि ठाटा। घालेसि सब जग बारह बाटा।—तुलसी।

कुठाय-संज्ञा स्त्री० दे० "कुठाँव"।

कुठार-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुठारी] (१) कुल्हाड़ी। (२) परशु। फरसा। उ०—कर कुठार मैं अकरन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही।—तुलसी।

यौ०—कुठाराघात। कुठारपाणि।

(३) नाश करनेवाला। सत्यानाशी। कुलकुठार।

संज्ञा पुं० [हिं० कोठा] अनाज आदि रखने का बड़ा बरतन। कोठिला।

कुठारपाणि-वि० [सं०] जो हाथ में परशु वा कुल्हाड़ी लिए हो। संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम जी का नाम। उ०—निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि मानी त्रास औनिपन मानो मौनता गही।—तुलसी।

कुठाराघात-संज्ञा पुं० [सं०] कुल्हाड़ी का आघात। कुल्हाड़ी का घाव। गहरी चोट।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कुठारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुल्हाड़ी। टाँगी। उ०—(क) रामकथा कलि विटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी।—तुलसी। (२) नाश करनेवाली उ०—गहि पद विनय कीन्ह बैठारी। जनि दिनकरकुल होसि कुठारी।—तुलसी।

कुठाली-संज्ञा स्त्री० [सं० कु + स्थाली = बटलोई] मिट्टी की घरिया जिसमें सोना चाँदी गलाते हैं। घरिया। उ०—पंडित जी ने संखिया मँगा दिया तो बाबा जी ने तुरंत कुठाली में डाल के पंडित जी के हाथ से एक बूटी का रस उसके ऊपर गिरवाया।—श्रद्धाराम।

कुठाहर-संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० ठाहर = जगह] (१) कुठौर। कुठाँव। बुरा स्थान। उ०—कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर वास तुम्हारा।—तुलसी। (२) बे-मौक़ा। बुरा अवसर। उ०—सो सब मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू।—तुलसी।

कुठिया†-संज्ञा स्त्री० [सं० कोष्ठ, प्रा० कोट्ठ] अनाज रखने का मिट्टी का गहरा बरतन।

कुठिला†-संज्ञा स्त्री० दे० "कुठला"।

कुठी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कटाली, बरैं वा कुसुम का पेड़ जो बंगाल में होता है और रंग बनाने के काम में आता है।

कुठौर-संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० ठौर] (१) कुठाँव। बुरी जगह। (२) बे-मौक़ा। बे-ठिकाना। अनुपयुक्त अवसर।

कुड़-संज्ञा पुं० [सं० कुष्ठ, पा० कुट्ठ] कुट नाम की ओषधि।

संज्ञा पुं० [देश०] अन्न की राशि। कूरा।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कोड़ना = खोदना] हल की अगवाँसी। जाँघा।

कुड़कुड़-संज्ञा पुं० [अनु०] एक निरर्थक शब्द जिसकी सहायता से पत्ती, पशु आदि खेतों से हटाये जाते हैं।

कुड़कुड़ाना-क्रि० अ० [अनु०] किसी अनुचित या अप्रिय बात को देख या सुन कर भीतर ही भीतर क्षुब्ध होना। मन ही मन कुढ़ना। कुड़बुड़ाना।

क्रि० स० [अनु०] खेत में चिड़ियों को उड़ाना या जानवरों को भगाना। उ०—वह दिन भर खेत में बैठा कौआ कुड़कुड़ाया करता है।

कुड़कुड़ी-संज्ञा स्त्री० [अनु०] भूख वा अजीर्ण से पेट की गुड़गुड़ाहट।

मुहा०—कुड़कुड़ी होना = किसी बात को जानने के लिये गहरी उत्कंठा वा आकुलता होना। पेट में चूहे कूदना।

कुड़प—संज्ञा पुं० दे० "कुडव"।

कुड़पना—क्रि० स० [हिं० कुंड़ = हल की लकीर] कँगनी के खेत को उस समय जोतना जब फ़सल एक एक बित्ते की हो जाय।

कुड़बुड़ाना—क्रि० अ० [अनु०] मन ही मन कुढ़ना। कुड़कुड़ाना।

कुडमल—संज्ञा पुं० दे० "कुड्मल"।

कुडरिया—संज्ञा स्त्री० दे० "कुड़री"।

कुड़री—संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडली] (१) गेंडुरा। इँडुरी। बिड़ई। बिड़वा। (२) वह भूमि जो नदी के घूमने से बीच में पड़ कर तीन तरफ़ जल से घिर जाय। कुडरिया।

कुड़ल—संज्ञा स्त्री० [सं० कुंचन] शरीर में ऐंठन जो रक्त की कमी वा उसके ठंढे पड़ने से होती है। यह अवस्था मिरगी आदि रोगों में वा निर्बलता के कारण होती है। तशन्नुज।

कुड़व—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे या लकड़ी का अन्न नापने का एक पुराना मान जो चार अंगुल चौड़ा और उतना ही गहरा होता था।

विशेष—१२ प्रकृति या मुट्ठी का एक कुड़व और ४ कुड़व का एक प्रस्थ होता है। पर वैद्यक में कुड़व ३२ तोले का होता है और प्रकृति १६ तोले की मानी जाती है।

कुड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कुटज] इंद्रजौ का वृक्ष। कुरैया।

संज्ञा पुं० दे० "कुढ़ा"।

कुड़ाली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुठारी] कुल्हाड़ी [लश०]।

कुडुक—संज्ञा पुं० [देश०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा० क़ुरक] (१) अंडा न देनेवाली मुरग़ी। (२) व्यर्थ। ख़ाली।

मुहा०—कुडुक बोलना = व्यर्थ होना। ख़ाली जाना।

कुडेर—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुडेरना] वह नाली जो कुरिया में राब का सीरा निकालने के लिये बनाई जाती है।

कुडेरना—क्रि० स० [देश०] राब के बोरों को एक दूसरे पर इस प्रकार रखना जिसमें उसकी जूसी बह कर निकल जाय।

कुडौल—वि० [सं० कु + हिं० डौल] बेढंगा। भद्दा।

कुड्मल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कली। मुकुल। (२) इक्कीस नरकों में से एक नरक।

कुढंग—संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० ढंग] बुरा ढंग। कुचाल। बुरी रीति।

वि० (१) बुरे ढंग का। बेढंगा। भद्दा। बुरा। उ०—कुढँग कोप तजि रँग रली करति जुवति जग जोइ। पावस बातन गूढ़ यह, बूढ़नहूँ रँग होइ।—बिहारी। (२) बुरी तरह का। बद-वज़ा। कुढंगा।

कुढंगा—वि० [हिं० कुढंग] [स्त्री० कुढंगी] (१) बुरी चाल का। बेशऊर। उजड्ड। (२) बेढंगा। भद्दा।

कुढंगी—वि० [हिं० कुढंग] कुमार्गी। बुरी चालचलन का। उ०—परयो एक पतित पराउ तीर गंगा जू के कुटिल कृतघ्नी कोढ़ी कुंठित कुढंगी अंध।—पद्माकर।

कुढ़न—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रुद्ध, प्रा० कुड्ढ] (१) वह क्रोध जो मन ही मन रहे। वह क्रोध जो भीतर ही भीतर रहे, प्रकट न किया जाय। चिढ़। (२) वह दुःख जो दूसरे के अनिवार्य्य कष्ट को देख कर हो।

कुढ़ना—क्रि० अ० [सं० क्रुद्ध, प्रा० कुड्ढ] (१) भीतर ही भीतर क्रोध करना। मन ही मन खीझना वा चिढ़ना। बुरा मानना। (२) डाह करना। जलना। उ०—चंद्रगुप्त से उसके भाई लोग बुरा मानते थे और महानंद अपने और सब पुत्रों का पक्ष करके इससे कुढ़ता था।—हरिश्चंद्र। (३) भीतर ही भीतर दुःखी होना। मसोसना। उ०—देवकी जी ने कहा कि पुत्र तुम्हारे छः भाई जो कंस ने मार डाले हैं उनका दुःख मेरे मन से नहीं जाता।........श्रीकृष्णचंद्र इतना कह पाताल पुरी को गये कि माता तुम अब मत कुढ़ो, मैं अपने भाइयों को अभी जाय ले आता हूँ।—लल्लू। (४) दूसरे के कष्ट को देख भीतर ही भीतर मसोस कर रह जाना।

कुढब—वि० [सं० कु + हिं० ढब] (१) बुरे ढंग का। बेढब। (२) कठिन। दुस्तर।

कुढ़ा—संज्ञा पुं० [अ० करहा] सूज़ाक के रोग में वह गाँठ जो पेशाब की नली में पड़ जाती है और जिसके कारण पेशाब बाहर नहीं निकलता और बड़ी पीड़ा होती है। यह गाँठ रक्त और पीब के जम जाने से भीतर पड़ जाती है।

कुढ़ाना—क्रि० स० [हिं० कुढ़ना] (१) क्रोध दिलाना। चिढ़ाना। खिझाना। (२) दुःखी करना। कलपाना।

कुण—संज्ञा पुं० [सं०] (१)। चीलर। (२) नाभि की मैल। कीट। (३) बच्चा। उ०—कोल कोलकुण कीचर माहीं। बल ते भिरे सकोप तहाँ हीं।—गोपाल।

कुणप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शव। मृत शरीर। लाश। (२) इंगुदी। गोंदी। (३) राँगा। (४) बरछा। भाला।

कुणपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बरछी। भाला।

कुणपाशी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का प्रेत जो मुर्दा खाता है। (२) मुर्दा खानेवाला जंतु, जैसे—गीध, कौआ, गीदड़।

कुणि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुन का पेड़। (२) वह मनुष्य जिसकी बाहु टेढ़ी हो गई हो वा मारी गई हो।

कुतक—संज्ञा पुं० दे० "कुतका"।

कुतका—संज्ञा पुं० [हिं० गतका] (१) गतका। (२) मोटा डंडा। सोंटा। उ०—लै कुतका कहै 'दम्म मदारा'। राम रहै उनहूँ ते न्यारा।—कबीर। (३) भाँग घोटने का डंडा। भँगघोटना।

मुहा०—कुतका दिखलाना वा देखाना = किसी चीज़ के देने से साफ़ इनकार कर जाना। अँगूठा दिखलाना।

कुतना–क्रि० अ० [हिं० कूतना] कूतने का कार्य्य होना। कूता जाना।

कुतप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिन का आठवाँ मुहूर्त्त जो मध्याह्न समय में होता है। (२) मिताक्षरा के अनुसार आठ वस्तु जिनकी श्राद्ध में आवश्यकता है, अर्थात्—मध्याह्न, खड्गपात्र वा गैंडे के चमड़े का पात्र, नेपाली कंबल, चाँदी का बरतन, कुश, तिल, गाय और दौहित्र। (३) एक बाजा। (४) बकरी के बाल का कंबल। (५) सूर्य्य। (६) अग्नि। (७) द्विज। (८) अतिथि। (९) भांजा।

कुतरन–संज्ञा पुं० [हिं० कुतरना] कुतरा हुआ टुकड़ा।

कुतरना–क्रि० स० [सं० कर्तन = कतरना] (१) किसी वस्तु में से बहुत थोड़ा सा भाग दाँत से काट कर अलग करना। दाँत से छोटा सा टुकड़ा काट लेना। उ०—(क) चूहों ने कई जगह कपड़े कुतर डाले हैं। (ख) हिरन पौधों की पत्तियाँ कुतर गए हैं। (२) किसी वस्तु में से कुछ अंश निकाल लेना। बीच ही में से कुछ अंश उड़ा लेना। उ०—५) रु० हमें मिले थे उसमें से २) तुम्हीं ने कुतर लिए।

कुतर्क–संज्ञा पुं० [सं०] बुरा तर्क। बेढंगी दलील। बकवाद। वितंडा।

कुतर्की–संज्ञा पुं० [सं०] व्यर्थ तर्क करनेवाला। बकवादी। वितंडावादी।

वि० कुतर्कदूषित। उ०—हरि हर पद रत, मति न कुतरकी। तिन कहँ मधुर कथा रघुवर की।—तुलसी।

कुतला†–संज्ञा पुं० [हिं० कतरना] हँसिया।

कुतवार–संज्ञा पुं० [हिं० कूतना + वार (प्रत्य०)] वह पुरुष जो बटाई के लिये खेत की फसल का कनकूत करे।

*संज्ञा पुं० [हिं० कोतवाल] कोतवाल। उ०—नौ पौरी तेहि गढ़ मँझियारा। औ तहँ फिरहिं पाँच कुतवारा।—जायसी।

कुतवारी*–संज्ञा स्त्री० [सं० कोटपाली] (१) कोतवाल का काम। उ०—शेष न पायो अंत पुहुमि जाकी फनवारी। पवन बुहारत द्वार सदा संकर कुतवारी।—सूर। (२) कोतवाल का कार्य्यस्थान।

कुतवाल†–संज्ञा पुं० दे० "कोतवाल"।

कुतवाली–संज्ञा स्त्री० दे० "कुतवारी"।

कुतार‡–संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० तार] अंडस। असुविधा।

कुताही–संज्ञा स्त्री० दे० "कोताही"।

कुतिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० कुत्ती] कुत्ते की मादा। कूकरी। कुत्ती।

कुतुप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिनमान का आठवाँ मुहूर्त्त। कुतप। (२) तेल रखने की चमड़े की कुप्पी।

कुतुब–संज्ञा पुं० [अ०] ध्रुवतारा।

यौ०—कुतुबनुमा।

कुतुबख़ाना–संज्ञा पुं० [फ़ा०] पुस्तकालय।

कुतुबनुमा–संज्ञा पुं० [अ०] एक यंत्र जिससे दिशा का ज्ञान होता है। यह एक छोटी डिबिया के आकार का होता है, जिसके भीतर एक लोहे की सुई के मुँह पर अयस्कांत की शक्ति रहती है जिससे वह सदा उत्तर दिशा की ओर रहा करती है। यह यंत्र सामुद्रिक नौकाओं और मापकों के काम आता है। दिग्दर्शक यंत्र।

कुतुबफ़रोश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] पुस्तकविक्रेता। किताब बेचनेवाला।

कुतुरमा–संज्ञा पुं० [देश०] एक हरा पक्षी जिसकी चोंच, पीठ और पैर लाल होते हैं।

कुतुली–संज्ञा स्त्री० [देश०] इमली का कोमल फल जिसके बीज मुलायम हों। कँटिया।

कुतूणक–संज्ञा पुं० दे० "कुथुआ"।

कुतूहल–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुतूहली] (१) किसी वस्तु के देखने वा किसी बात के सुनने की प्रबल इच्छा। उत्कंठा। (२) वह वस्तु जिसके देखने की इच्छा हो। कौतुक। (३) क्रीड़ा। खिलवाड़। उ०—काम कुतूहल में विलसै निशि वारबधू मनमान हरे।—केशव। (४) आश्चर्य्य। अचंभा। (५) नायिका का एक अलंकार।

कुतूहली–वि० [सं० कुतूहलिन्] (१) जिसे वस्तुओं को देखने वा जानने की अधिक उत्कंठा हुआ करे। तमाशा देखनेवाला। (२) कौतुकी। खिलवाड़ी।

कुत्ता–संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० कुत्ती] (१) भेड़िये, गीदड़ और लोमड़ी आदि की जाति का एक हिंसक पशु जिसे लोग साधारणतः घर की रक्षा के लिये पालते हैं। इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ हैं और यह सारे संसार में पाया जाता है। इसकी श्रवणशक्ति बहुत प्रबल होती है और ज़रा से खटके से यह जाग उठता है। अपने स्वामी का यह बहुत शुभचिंतक और भक्त होता है। किसी किसी जाति के कुत्ते की घ्राणशक्ति बहुत प्रबल होती है जिसके कारण वह किसी के पैरों के निशान सूँघ कर उसके पास जा पहुँचता है। शिकार में भी इससे बहुत सहायता मिलती है। पागल कुत्ते के काटने से आदमी उसी की भाँति भूँकने लगता और कुछ दिनों में मर जाता है। बरसात में इसके विष का दौरा अधिक होता है। काटे हुए स्थान पर कुचला घिस कर लगाना लाभदायक होता है। श्वान। कूकर।

यौ०—कुत्तेखसी = व्यर्थ और तुच्छ कार्य्य।

मुहा०—क्या कुत्ते ने काटा है ? = क्या पागल हुए हैं ? उ०—क्या हमें कुत्ते ने काटा है जो हम इतनी रात को वहाँ जायँगे ? (साधारणतः पागल कुत्ते के काटने से मनुष्य पागल हो जाता है, इसी से यह मुहावरा बना है। इसका प्रयोग प्रायः प्रश्न के रूप में होता है और काकु अलंकार से अर्थ सिद्ध होता है।) कुत्ते ने नहीं काटा है = दे० "क्या कुत्ते ने काटा है" ? । कुत्ते घसीटना = नीच और तुच्छ कार्य्य करना। कुत्ते की मौत मरना = बहुत बुरी तरह से मरना। कुत्ते की हुड़क उठना = (१) पागल कुत्ते के काटने की लहर उठना। (२) अचानक या कुसमय में किसी वस्तु के लिये आतुर होना। कुत्ते का दिमाग़ होना या कुत्ते का भेजा खाना = बहुत अधिक बकवाद करने की शक्ति होना। बहुत बक्की होना। कुत्ते की दुम = कभी अपनी बुरी चाल न छोड़नेवाला। जिस पर समझाने बुझाने या सत्संग आदि का कुछ भी प्रभाव न पड़े। (कुत्ते की दुम सदा टेढ़ी रहती है, वह कभी सीधी नहीं होती। इसी से यह मुहावरा बना है।)

(२) एक प्रकार की घास जिसकी बाल कपड़ों में लिपट जाती है और जिसे लपटौवाँ कहते हैं। (३) कल का वह पुरज़ा जो किसी चक्कर को उलटा या पीछे की ओर घूमने से रोकता है। (४) लकड़ी का एक छोटा चौकोर टुकड़ा जो करगहने में लगा रहता है और जिसके नीचे गिरा देने पर दरवाज़ा नहीं खुल सकता। बिल्ली। (५) बंदूक का घोड़ा। (६) नीच या तुच्छ मनुष्य। क्षुद्र।

कुत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुत्ता] कुकुरी। कुतिया। कुत्ते की मादा।

कुत्स—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम, जिनकी बनाई हुई बहुत सी ऋचाएं ऋग्वेद में हैं।

कुत्सन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुत्सित] (१) निंदा। (२) नीच काम। निंदित काम।

कुत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निंदा।

कुत्सित—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुष्ठ वा कुट नाम की ओषधि। (२) कुड़ा। कोरैया।

वि० नीच। अधम। निंदित। गर्हित। ख़राब।

कुत्स्य—वि० [सं०] निंदनीय। निंदा के योग्य।

कुथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कथरी। कंथा। (२) हाथी की झूल। (३) रथ, पालकी आदि का ओहार। (४) एक कीड़ा। (५) प्रातःकाल स्नान करनेवाला ब्राह्मण।

कुथरी†—संज्ञा स्त्री० दे० "कथरी"।

कुथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या।

कुथरू—संज्ञा पुं० [सं० कूतूण] आँख का एक रोग।

कुथुआ—संज्ञा पुं० [सं० कुतूणक] बालकों की आँख का एक रोग जिसमें पलकों के भीतर दाने से पड़ जाते हैं और बड़ी खुजली होती है।

कुदई†—संज्ञा स्त्री० दे० "कोदो"।

कुदकना—क्रि० अ० [हिं० कूदना] कूदना।

कुदका†—संज्ञा पुं० [हिं० कूदना] उछलकूद।

मुहा०—कुदका मारना = इधर उधर कूदते फिरना।

कुदरत—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) शक्ति। प्रभुत्व। इख़तियार। सामर्थ्य। उ०—कुदरत पाई खरी सो, चित सों चित्त मिलाय। भँवर बिलंबा कमल रस अब कैसे उड़ि जाय।—कबीर। (२) प्रकृति। माया। ईश्वर शक्ति। महिमा। उ०—(क) कुदरत वाकी भर रही, रसनिधि सबही जाग। ईँधन बिन बनि यों रहै, ज्यों पाहन में आग।—रसनिधि। (ख) पढ़ैं फ़ारसी बेचैं तेल। यह देखो कुदरत का खेल। (३) कारीगरी। रचना।

कुदरती—वि० [अ०] (१) प्राकृतिक। स्वाभाविक। (२) दैवी। ईश्वरीय।

कुदरा†—संज्ञा पुं० [सं० कुद्दाल] कुदार। उ०—कुदरा खुरपा बेल गुलसफ़ा छुरा कतरनी। नहनी सौंहन परी डरी बहु भरना भरनी।—सूदन।

कुदर्शन—वि० [सं०] जो देखने में बुरा मालूम हो। कुरूप। बदसूरत। भद्दा। अभव्य। उ०—आछो गात अकारथ गारयो। करी न प्रीति कमललोचन सों, जन्म जुआ ज्यों हारयो। निसि दिन विषय विलासनि बिलसत फूटि गईं तव चारयो। अब लाग्यो पछितान पाइ दुख दीन दई को मारयो। कामी कृपण कुचील कुदर्शन कौन कृपा करि तारयो। ताते कहत दयालु देव मुनि काहे सूर बिसारयो।—सूर।

कुदलाना*—क्रि० [हिं० कूदना] कूदते हुए चलना। उछलना कूदना। उ०—एहि विधि बरषा ऋतु के माहीं। बन बछरू तिन सम कुदलाहीं।

कुदाली—संज्ञा स्त्री० दे० "कुदाल"।

कुदाँव—संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० दाँव] (१) बुरा दाँव। कुघात। विश्वासघात। दग़ा। धोखा। उ०—(क) पूरे को पूरा मिलै पूरा परसे दाँव। निगुरा तो कुब्बट चलै, जब तब करै कुदाँव।—कबीर। (ख) समुझि सुमित्रा राम-सिय रूप सुसील सुभाव। नृपसनेह लखि धुनेउ सिर, पापिनि दीन्ह कुदाँव।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

† (२) औचट। बुरी स्थिति। संकट की स्थिति। (३) बुरा स्थान। विकट स्थान।

कुदाइँ*—वि० [हिं० कुदाँव] बुरे ढँग से दाव घात करनेवाला। छली। विश्वासघाती। उ०—बार बहारन भोर ही हौं पठई मतिहीन मतो कै लुगाइन। छेरी किवार उघारत ही अलि मोर चकोर कठोर कुदाइन।—देव।

कुदान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा दान। (लेने वाले के लिये)

विशेष—शय्यादान, गजदान आदि लेनेवाले के लिये बुरे समझे जाते हैं।
(२) कुपात्र अयोग्य आदि को दान।
संज्ञा स्त्री० [हिं० कूदना] (१) कूदने की क्रिया। कूदने का भाव। बहुत पहुँच कर कहना। दूर की कौड़ी लाना। (२) उतनी दूरी जितनी एक बार कूदने में पार की जाय। उ०—वह पाँच पाँच गज़ की कुदान मारता है।
क्रि० प्र०—मारना।
(३) कूदने का स्थान। उ०—लोरिक की कुदान।

कुदाना—क्रि० स० [हिं० कूदना] (१) कूदने का प्रेरणार्थक रूप। कूदने में प्रवृत्त करना। उ०—सन्मुख जाइ सुबाजि कुदाई। तजत शूल काढ्यो रिसि छाई।—गोपाल। (२) घोड़े आदि पर चढ़ कर उसे दौड़ाना। उ०—घोड़ा कुदाना।

कुदाम*—संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० दाम] खोटा सिक्का। खोटा रुपया। उ०—जौं पै चेराई राम की करतो न लजातो। तौ तूँ दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो—तुलसी।

कुदाय—संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० दाँव] कुदाँव। उ०—कलिकाल कायर मुएहि घालत घाय। लेत केहरि को बयरु जनु भेक हनि गोमाय। त्योंहिं रामगुलाम जानि निकाम देत कुदाय।—तुलसी।

कुदार†—संज्ञा स्त्री० दे० "कुदाल"।

कुदारी†—संज्ञा स्त्री० दे० "कुदाली"।

कुदाल—संज्ञा स्त्री० [सं० कुद्दाल] लोहे का बना हुआ एक औज़ार जो प्रायः एक हाथ लंबा और चार अंगुल चौड़ा होता है। इसके एक सिरे पर छेद में लकड़ी का लंबा बेंट लगा रहता है। यह ज़मीन या मट्टी खोदने और खेत गोड़ने के काम आता है।
मुहा०—कुदाल बजना = (घर का) खोदा जाना।

कुदाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुदाल] छोटी कुदाल।

कुदाव—संज्ञा पुं० [हिं० कूदना] कुदान।

कुदास—संज्ञा पुं० [?] जहाज़ की पतवार का खंभा। खड़ा पठान।

कुदिन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आपत्ति का समय। कष्ट के दिन। ख़राब दिन। (२) दिन का वह परिमाण जो एक सूर्योदय से लेकर दूसरे सूर्योदय तक के मध्य में होता है। सावन दिन। (३) वह दिन जिसमें ऋतुविरुद्ध या इसी प्रकार की और कष्ट देनेवाली घटनायें हों। जैसे—पूस माघ में ख़ूब वर्षा होना, बरसात में बिलकुल जल न बरसना, अथवा दिन रात लगातार जल बरसना, आदि।

कुदिष्ट*—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + दृष्टि] बुरी दृष्टि। बुरी नज़र। पापदृष्टि। बद निगाह। उ०—अनुजबधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ ये कन्या सम चारी। इन्हहिं कुदिष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।—तुलसी।

कुदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुरी नज़र। पापदृष्टि। बदनिगाह। (२) वह तर्क जो वेद से अनुमोदित न हो। वेद से स्वतंत्र तर्क।

कुदेव—संज्ञा पुं० [सं० कु = भूमि + देव = देवता] भूदेव। भूसुर। ब्राह्मण। उ०—कुदेव देव नारि को न बाल वित्त लीजिये। विरोध विप्र वंश सों सो स्वप्नहू न कीजिये।—केशव।
संज्ञा पुं० [सं० कु = बुरा + देव = देवता] (१) राक्षस। दैत्य। दानव। उ०—देव कुदेवनि के चरणोदक बोरयो सबै कलि को कुलपानी।—केशव। (२) जैनियों के अनुसार ऐसे देवता जो उनसे भिन्न धर्म्मवालों के हों।

कुद्रव—संज्ञा पुं० [सं०] कोदो। कोदई।
संज्ञा पुं० [देश०] तलवार चलाने के ३२ हाथों या प्रकारों में से एक। उ०—तिमि सव्य जानु विजानु संकोचित सुआहित चित्र को। धृतलपन कुद्रव जिस सव्येतर तथा उत्तरत को।—रघुराज।

कुधर—संज्ञा पुं० [सं० कुध्र] (१) पहाड़। पर्वत। भूधर। उ०—कुधर समान सरीर विसाला। गरजि सिंधु इव रन विकराला।—द्विज। (२) शेषनाग।

कुधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुरी धातु। (२) लोहा। उ०—सठ सुधरहिं सत संगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई।—तुलसी।

कुधी—वि० [सं०] मंदबुद्धि। दुर्बुद्धि। मूर्ख।

कुनकुना—वि० [सं० कदुष्ण, प्रा० कउण्ह] आधा गरम (पानी)। कुछ गरम (पानी)। गुनगुना।

कुनख—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें नख ख़राब हो जाते और प्रायः पक कर गिर जाते हैं। वैद्यों ने इसे त्रिदोषज माना है।

कुनखी—वि० [सं०] (१) बुरे नखवाला। (२) कुनख रोगवाला।

कुनना—क्रि० स० [सं० क्षुणन वा घुणन = घुमाना] (१) खरादना। (२) खुरचना। छीलना।

कुनप—संज्ञा पुं० दे० "कुणप"।

कुनबा—संज्ञा पुं० [सं० कुटुंब, प्रा० कुडुंब] कुटुंब। परिवार। ख़ानदान।
मुहा०—कुनबा जोड़ना = नाते गोते के लोगों को इकट्ठा करना। परिवार जुटाना। उ०—कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा।

कुनबी—संज्ञा पुं० [सं० कुटुंब, हिं० कुनबा] हिंदुओं की एक जाति जो प्रायः खेती करती है। कहीं कहीं ये लोग अपने को गृहस्थ कहते हैं।

कुनलई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कँटीला छोटा पेड़ जिसमें बहुत सी पतली टहनियाँ होती हैं। इसकी छाल ऊपर से सफ़ेद होती है। पत्तियाँ ३—४ अंगुल की होती हैं। गरमी के दिनों

में इसमें बहुत छोटे छोटे पीले फूल लगते हैं। इसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है और खेमों के खूँटे आदि बनाने के काम में आती है।

कुनवा–संज्ञा पुं० [हिं० कुनना] [स्त्री० कुनवी] खरादी। खरादनेवाला मनुष्य। बर्तन आदि चरख पर चढ़ा कर खरादनेवाला मनुष्य।

कुनह–संज्ञा स्त्री० [फा० कीना] [वि० कुनही] (१) द्वेष। मनोमालिन्य। मनमोटाव। उ०—कौन कुनह बिन गुनह जिन तिन सुख सुना न पात्र। सहसबाहु सुरनाथ भृगु अत्रिय सुत भृगराव।—विश्राम। (२) पुराना बैर।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।—रखना।

कुनही—वि० [हिं० कुनह] द्वेष रखनेवाला। बुरा माननेवाला।

कुनाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० कुनना = खरादना, खुरचना] (१) वह चूर वा बुकनी जो किसी वस्तु को खरादने वा खुरचने पर निकलती है। बुरादा। (२) खरादने की क्रिया। (३) खरादने की मजदूरी।

कुनाभि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बवंडर। वातावर्त्त। (२) नव निधियों में से एक।

कुनाम–संज्ञा पुं० [सं०] कुख्याति। बदनामी। उ०—वृंदावन हरि बैठे धाम। काहे को गथ हरयो सबन को काहे अपनो कियो कुनाम।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कुनित*–वि० [सं० क्वणित] शब्द करता हुआ। गुंजार करता हुआ। बोलता हुआ। बजता हुआ। झनकार करता हुआ। उ०—(क) किंकिणी कटि कुनित कंकन कांचुरी झनकार। हृदय चौकी चमकि बैठी सुभग मोतिन हार।—सूर। (ख) सखि हरषि झूले वृषभानुनंदिनी सोभि सँग नँदलालनो। मणिमय नूपुर कुनित कंकन किंकिनी झनकारनो।—सूर।

कुनिया–संज्ञा पुं० [हिं० कुनना] खरादनेवाला।

संज्ञा पुं० [हिं० कूतना] कनकूत करनेवाला।

कुनैन–संज्ञा पुं० [अं० क्विनिन] एक ओषधि जो अँगरेज़ी चिकित्सा में ज्वर के लिये अत्यंत उपकारी मानी जाती है। यह एक पेड़ की छाल का सत है, जिसे सिंकोना कहते हैं। यह पेड़ पहले दक्षिण अमेरिका में ही होता था, पर अब यह भारतवर्ष के नीलगिरि, मैसूर, सिकिम आदि ऊँचे पहाड़ी स्थानों में भी लगाया जाता है। यह दो ढंग से लगाया जाता है। कहीं तो बीज बो कर पौधे उगाते हैं और कहीं डालियाँ काट कर कलम लगाते हैं। इसके बीजों को घना बोते हैं और खूब सिंचाई करते हैं। ऊपर से फूस आदि की छाया भी कर देते हैं। ४०—४१ दिनों में अँखुए निकल आते हैं। जब दो या तीन जोड़ी पत्तियाँ निकल आती हैं तब पौधों को दूसरी जगह लगाते हैं। इसी प्रकार पौधों को कई बार उखाड़ उखाड़ कर अन्यत्र लगाना पड़ता है। ये पौधे चार चार या छः छः फुट के अंतर पर लगाए जाते हैं। सिंकोना कई प्रकार का होता है—भूरी छाल का, लाल छाल का, और पीली छाल का। लाल छाल का पेड़ बड़ा होता है, भूरी छाल का मध्यम आकार का होता है, और पीली छाल का झाड़ी के आकार का छोटा होता है। जब पौधा चार वर्ष का होता है तब उसकी छाल में अच्छी तरह क्षार आ जाता है और वह काम लायक़ हो जाती है। सातवें वर्ष से क्षार कुछ घटने लगता है। इस से १२ या १४ वर्ष के भीतर ही सारे पेड़ छाल के लिये उखाड़ लिए जाते हैं। जड़ में क्षार का अंश विशेष होता है इससे वह और भागों की अपेक्षा बहुमूल्य समझी जाती है।

कुपंथ–संज्ञा पुं० [सं० कुपथ] (१) बुरा मार्ग। (२) निषिद्ध आचरण। कुचाल। उ०—रघुबंसिन कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पग धरैं न काऊ।—तुलसी।

क्रि० प्र०—पर चलना।

(३) बुरा मत। कुत्सित सिद्धांत।

कुपढ़–वि० [सं० कु + हिं० पढ़ना] अनपढ़। मूर्ख।

कुपथी–वि० [सं० कुपथ्य] कुपथ्य करनेवाला। असंयमी।

संज्ञा पुं० वह व्यक्ति जो पथ्य से न रहे। बद-परहेज आदमी।

कुपथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा रास्ता। (२) निषिद्ध आचरण। बुरी चाल।

यौ०—कुपथगामी = कुमार्गी। निषिद्ध आचरण का।

*संज्ञा पुं० [सं० कुपथ्य] वह भोजन जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो। उ०—कुल करतूति भूति कीरति सुरूप गुन जोबन ज्वर जरत परै न कल कहीं। राज काज कुपथ कुसाज भोग रोग को है वेद बुध विद्या वाय विवस बलकहीं। गति तुलसीस की लखै न कोऊ जो करति पब्बै ते छार पब्बै से उपल कहीं। कासों कीजै रोस दोस दीजै काहि पाहि राम कियो कलिकाल कुलि खलल खलकहीं।—तुलसी।

कुपथ्य–संज्ञा पुं० [सं०] वह आहार विहार जो स्वास्थ्य को हानिकारक हो। बदपरहेजी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कुपना*–क्रि० अ० दे० "कोपना"।

कुपाठ–संज्ञा पुं० [सं०] बुरी मंत्रणा। बुरी सलाह। उ०—कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। जिमि न नवै पुनि उकठि कुकाठू।—तुलसी।

कुपाठी–वि० [सं० कुपाठिन्] बदमाश। नटखट। दुष्ट। उत्पाती।

कुपात्र–वि० [सं०] (१) किसी विषय का अनधिकारी। अयोग्य। नालायक़। (२) वह जिसे दान देना शास्त्रों में निषिद्ध है।

कुपार*—संज्ञा पुं० [सं० अकूपार] समुद्र। उ०—देखु अब रंक लंक जारत निशंक तेरी तऊ न बुझैगी जौ लौं आइहैं कुपार को।—हनुमान।

कुपित—वि० [सं०] (१) क्रुद्ध। क्रोधित। (२) अप्रसन्न। नाराज़।

कुपीन—संज्ञा पुं० दे० "कौपीन"।

कुपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कपूत। दुष्ट पुत्र। वह पुत्र जो कुपथ-गामी हो।

कुप्पक—संज्ञा पुं० [सं० कोप] घोड़ों का एक रोग जिसमें उन्हें ज्वर आता है और उनकी नाक से पानी बहता है।

कुप्पल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की सज्जी जिसके कलम बारीक और नुकीले होते हैं। यह लाल रंग की होती है और बरार की लोनार झील के पानी को सुखा कर निकाली जाती है।

कुप्पा—संज्ञा पुं० [सं० कूपक] [स्त्री० अल्प० कुप्पी] चमड़े का बना हुआ घड़े के आकार का एक बड़ा बर्तन जिसमें घी तेल आदि रक्खे जाते हैं।

यौ०—कुप्पासाज़।

मुहा०—कुप्पा लुढ़ना या लुढ़कना=(१) किसी बड़े आदमी का मरना। (२) अधिक व्यय होना। कुप्पा होना या हो जाना=(१) फूल जाना। सूजना। वरम होना। उ०—भिड़ के काटने से उसका मुँह कुप्पा हो गया। (२) मोटा होना। हृष्ट पुष्ट होना। उ०—वह दो महीने में ही कुप्पा हो गया। (३) रूठना। रूठ कर बोल चाल बंद करना। उ०—वह ज़रा सी बात में कुप्पा हो जाते हैं। फूल कर कुप्पा होना=(१) मोटाना। हृष्ट पुष्ट होना। (२) अत्यंत हर्षित होना। आनंद से फूल जाना। उ०—जिस समय वह यह सुनेगा, फूल कर कुप्पा हो जायगा। किसी का मुँह कुप्पा होना=किसी का नाराज़ होकर मुँह फुलाना। किसी का रूठ कर बोल चाल बंद करना। उ०—ज़रा सी बात पर तुम्हारा मुँह कुप्पा हो जाता है। कुप्पा सा मुँह करना=मुँह फुलाना। रूठ कर बोल चाल बंद करना।

कुप्पासाज़—संज्ञा पुं० [हिं० कुप्पा+फा० साज़] कुप्पा बनानेवाला।

कुप्पी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुप्पा का अल्प०] चमड़े का बना हुआ कुप्पे से छोटा बर्तन जिसमें तेल फुलेल आदि रखते हैं। फुलेली।

कुफुर*†—संज्ञा पुं० [अ० कुफ़्र] मुसलमानी मत के विरुद्ध अन्य मत। उ०—ढाहि देवालय कुफुर मिटाऊँ। पातसाह को हुकुम चलाऊँ।—लाल। दे० "कुफ़्र"।

कुफेन—संज्ञा स्त्री० [सं०] काबुल नदी का पुराना नाम। इसे वैदिक काल में कुभा कहते थे।

कुफ़्र—संज्ञा पुं० [अ०] (१) मुसलमानी मत से भिन्न अन्य मत। (२) मुसलमानी धर्म के विरुद्ध वाक्य।

क्रि० प्र०—बकना।

कुफ्ल—संज्ञा पुं० [अ०] ताला। जंतरा।

कुफली—संज्ञा स्त्री० दे० "कुल्फी"।

कुबंड*—संज्ञा पुं० [सं० कोदंड] धनुष। उ०—(क) कुबंड कियो विविखंड महा बरबंड प्रचंड भुजा बल ते।—हनुमान। (ख) बहुत सही याकी सबहि किंतु कुबंड भृगु बंस। अब लछिमन विनती करें रघुकुल मानस हंस।—हनुमान। (ग) भुसुंडिय और कुबंडिय साधि। परे दुहुँ ओरन ते भट आँधि।—सूदन।

*वि० [सं० कु+वंठ=खंज] खोंडा। विकृतांग। उ०—हौं जीति सुरेश महेश को पूत गणेश को दंत उपारि लियो। यम को वश के पुनि बाहन को जिन तोरि विषाण कुबंड कियो। दस मूँडन लै जिन दान दियो शिव लौं छिन माँहिं रिझाय लियो। सोइ रावण पाइँ रह्यो गहिं के न उठाय दुहूँ कर मान दियो।—हनुमान।

कुबजा—संज्ञा स्त्री० दे० "कुब्जा"।

कुबड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कुब्ज] [स्त्री० कुबड़ी] वह पुरुष जिसकी पीठ टेढ़ी हो गई या झुक गई हो। उ०—सबसे अधिक किरात डरे जो थे भी ठीक गँवार। कुबड़े नीचे नीचे चल के डर से हो गये पार।—रत्नावली।

वि० टेढ़ा। झुका हुआ। उ०—तन सूखा कुबड़ी पीठ हुई घोड़े पर ज़ीन धरो बाबा।—नज़ीर।

कुबड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुबड़ा] (१) दे० "कुबरी"। (२) वह छड़ी जिसका सिरा झुका हुआ हो। टेढ़िया।

कुबत*†—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+हिं० बात] (१) बुरी बात। निंदा। उ०—करौ कुबत जग कुटिलता तजौं न दीनदयाल। दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल।—बिहारी। (२) कुचाल। बुरी चाल। उ०—कहति न देवर की कुबत, कुल तिय कलह डराति। पंजर गत मंजार ढिग सुक लौं सूखत जाति।—बिहारी।

कुबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुबड़ा] (१) कंस की एक दासी, जिसकी पीठ टेढ़ी थी। यह कृष्णचंद्र पर अधिक प्रेम रखती थी। कुब्जा उ०—योग कथा पठई ब्रज को सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी। ऊधो जू क्यों न कहै कुबरी जो बरी नट नागर हेरि हलाकी।—तुलसी। (२) वह छड़ी जिसका सिरा झुका हो। टेढ़िया। (३) एक प्रकार की मछली जो भारत, लंका और चीन में पाई जाती है।

कुबलयापीड़—संज्ञा पुं० दे० "कुवलयापीड़"।

कुबली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुवलय=गोला] पिंडी। गोला।

कुबाक*—संज्ञा पुं० [सं० कुवाक्य] (१) कुवचन। टेढ़ा बोल। कठोर वचन। कड़ी बात। उ०—तजी संक सकुचति नचति बोलति बाक कुबाक। दिन छिनदा छाकी रहति छुटत न छिन छबि छाक।—बिहारी। (२) गाली। (३) शाप।

कुबानि–संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० बानि] बुरी आदत । बुरी टेव । बुरी लत । कुटेव ।

कुबासन–संज्ञा स्त्री० दे० "कुवासन" ।

कुबिचार*–वि० दे० "कुविचार" ।

कुबिचारी*†–वि० दे० "कुविचारी" ।

कुबिजा*–संज्ञा स्त्री० दे० "कुब्जा" ।

कुबुद–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगला ।

कुबुद्धि–वि० [सं०] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो । दुर्बुद्धि । मूर्ख । संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूर्खता । बेवकूफ़ी । (२) बुरी सलाह । कुमंत्रणा ।

कुबेर–संज्ञा पुं० दे० "कुवेर" ।

कुबेला–संज्ञा स्त्री० [सं० कुवेला] बुरा समय । अनुपयुक्त काल ।

कुबोलनी–वि० स्त्री० [हिं० कुबोल] कुभाषिणी । बुरा बोल बोलनेवाली । उ०—युवति कुरूप कुबोलनि जाके । सदा शोक हिय ह्वै है ताके ।—निश्चल ।

कुब्ज–वि० [सं०] [स्त्री० कुब्जा] जिसकी पीठ टेढ़ी हो । कुबड़ा । संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक रोग जिसमें वायु के विकार से छाती या पीठ टेढ़ी होकर ऊँची हो जाती है । यह दो प्रकार का होता है । एक में पीठ आगे की ओर और दूसरे में पीछे की ओर झुकती है । (२) अपामार्ग । लहचिचिड़ा । लटजीरा ।

कुब्जकंठ–संज्ञा पुं० [सं०] सन्निपात का एक भेद जिसमें कंठ रुक जाता है और रोगी के गले के नीचे पानी नहीं उतरता । इसमें दाह मोह आदि भी होता है । वैद्यक में इसे असाध्य माना है, और उसकी अवधि १३ दिन की बतलाई है ।

कुब्जक–संज्ञा पुं० [सं०] मालती ।

कुब्जा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कंस की एक दासी जिसकी पीठ कुबड़ी थी । यह कृष्णचंद्र से अधिक प्रेम रखती थी । कुबरी (२) कैकेयी की मंथरा नाम की एक दासी । उ०—लषनु, भरतु, रिपुदमन सुमित्रा कुबरी के उर साल ।—तुलसी ।

कुब्जिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आठ वर्ष की अवस्था की लड़की । (२) दुर्गा देवी का एक नाम ।

कुब्बा†–संज्ञा पुं० [हिं० कुबड़ा] डिल्ला । कूबड़ ।

कुभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी की छाया । (२) बुरी दीप्ति । (३) काबुल नदी ।

कुभृत्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पर्वत । (२) सात की संख्या । (३) शेष नाग ।

कुमंठी*–संज्ञा स्त्री० [सं० कमठ = बाँस] पतली लचीली टहनी । उ०—पाता बड़ बड़ देखि कै चढ़े कुमंठी धाय । तरुवर होय तो भार सह टूट रेंड अरराय ।—गिरिधर ।

कुमंत्रणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी सलाह ।

कुमक–संज्ञा स्त्री० [तु०] (१) सहायता । मदद । उ०—लार्ड आकलैंड ने जाने से पहले जलालाबाद वालों की कुमक के लिये पेशावर में फ़ौज जमा होने के लिये हुक्म जारी किया ।—शिवप्रसाद । (२) पक्षपात । हिमायत । तरफ़दारी ।

क्रि० प्र०—करना ।—पहुँचना ।—पहुँचाना ।—देना ।—लेना ।—आना ।

मुहा०—कुमक पर होना = हिमायत करना । पक्ष लेना । तरफ़दारी करना ।

कुमकी–वि० [तु० कुमक] (१) कुमक का । कुमक से संबंध रखनेवाला । जैसे—कुमकी फ़ौज ।

संज्ञा स्त्री० हाथियों के पकड़ने में सहायता करने के लिये सिखाई हुई हथनी ।

कुमकुम–संज्ञा पुं० [सं० कुंकुम] (१) केशर । उ०—जहाँ स्याम घन रास उपायो । कुमकुम जल सुख वृष्टि रमायो ।—सूर । (२) कुमकुमा । उ०—चंदन कालकूट सम जानहु । कुमकुम पवि प्रहार इव मानहु ।—मधुसूदन दास ।

कुमकुमा–संज्ञा पुं० [तु० कुमकुमा] (१) लाख का बना हुआ एक प्रकार का पोला गोल या चिपटा लट्टू जिसमें अबीर और गुलाल भर कर होली में लोग एक दूसरे पर मारते हैं । इसके टूटने से गुलाल अबीर आदि इधर उधर बिखर जाता है । (२) एक प्रकार का तंग मुँह का छोटा लोटा । (३) एक प्रकार की टांकी जिससे सुनार नक्काशी किए हुए गहनों के उभरे हुए रवे दबा कर चौरस करते हैं । (४) काँच के बने हुए पोले छोटे गोले जो कई रंग और आकार के होते हैं । छोटे दानों की माला बनती है जिसे स्त्रियाँ पहनती हैं और बड़े गोले सजावट के लिये लटकाने के काम में आते हैं ।

कुमकुमी–वि० [हिं० कुमकुमा] कुमकुमे के आकार का ।

विशेष—यह शब्द लोटे के लिये प्रयोग होता है जिसे कुमकुमा कहते हैं ।

कुमरिया–संज्ञा पुं० [?] हाथियों की एक जाति । इस जाति का हाथी अधिक लंबा चौड़ा होता है और अच्छा माना जाता है । इसकी पीठ अधिक कुबड़ी नहीं होती ।

कुमरी–संज्ञा स्त्री० [अ०] पंडुक की जाति की एक चिड़िया जो सफ़ेद कबूतर और पंडुक से उत्पन्न होती है । यह सफ़ेद रंग की होती है और इसके गले में कंठी या हँसुली होती है । इसके पैर लाल होते हैं और बोली बड़ी गंभीर और मनोहर होती है । यह प्रायः उजाड़ स्थानों में रहती है । इसका पालना अशुभ समझा जाता है ।

कुमसुम–संज्ञा पुं० [देश०] एक वृक्ष जिसकी लकड़ी भूरे रंग की और बहुत मज़बूत होती है और इमारत के काम में आती है । आसाम में इसकी डोंगी बनाई जाती है । यह वृक्ष बहुत ऊँचा होता है और बीजों से पैदा होता है जो माघ फागुन में बोये जाते हैं । यह कमायूँ और पश्चिमी घाट में बहुत होता है ।

कुमाच-संज्ञा पुं० [अ० कुमाश] (१) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। उ०—का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये सांच। काम जो आवै कामरी, का लै करै कुमाच।—तुलसी। (२) गंजीफ़े के पत्ते के एक रंग का नाम। (३) दे० "कौंच"।
संज्ञा पुं० [देश०] बेडौल रोटी जो कहीं से मोटी और कहीं से पतली हो।

कुमार-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुमारी] (१) पाँच वर्ष की आयु का बालक। (२) पुत्र। बेटा। लड़का। (३) युवराज। (४) कार्तिकेय। (५) सिंधु नदी। (६) सुग्गा। तोता। (७) खरा सोना। (८) सनक सनंदन, सनत् और सुजात आदि कई ऋषि जो सदा बालक ही रहते हैं। (९) युवावस्था वा उससे पहले की अवस्थावाला पुरुष। उ०—वाल्मीकि मुनि बसत निरंतर राम मंत्र उच्चार। ताको फल मोहिं आज भयो मोहिं दर्शन दियो कुमार।—सूर। (१०) जैनियों के अनुसार वर्त्तमान अवसर्पिणी के १२वें जिन। (११) एक ग्रह जिसका उपद्रव बालकों पर होता है। (१२) मंगल ग्रह। (१३) साईस। (१४) अग्नि के एक पुत्र का नाम, जिन्होंने कई वैदिक मंत्रों का प्रकाश किया था। (१५) अग्नि। (१६) एक प्रजापति का नाम। (१७) भारतवर्ष का एक नाम। (१८) एक ऊँचा वृक्ष जिसका पतझार वर्षा में होता है। इसकी लकड़ी कुछ पीलापन या ललाई लिए सफ़ेद रंग की नरम, चिकनी, चमकीली और मज़बूत होती है। इसकी अलमारी, मेज़, कुरसी और आरायशी चीज़ें बनती हैं। बरमा में इस पर खुदाई का काम अच्छा होता है। इसकी छाल और जड़ औषध में काम आती हैं और फल खाया जाता है। इसकी कलम लगती है और बीज भी बोया जाता है। यह वृक्ष पहाड़ों पर तीन हज़ार फ़ुट की ऊँचाई तक मिलता है। यह बरमा, आसाम, अवध, बरार और मध्य प्रांत में बहुत होता है। सेवँ।
वि० [सं०] बिन ब्याहा। कुँआरा।

कुमारग-संज्ञा पुं० [सं० कुमार्ग] कुमार्ग। बुरा मार्ग। उ०—रे तिय चोर कुमारगगामी। खल मलराशि मंदमति कामी।—तुलसी।

कुमारतंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का वह भाग जिसमें बच्चों के रोगों का निदान और चिकित्सा हो। बालतंत्र।

कुमारभृत्य-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गर्भिणी को सुख से प्रसव कराने की विद्या। (२) गर्भिणी वा नवप्रसूत बालकों के रोगों की चिकित्सा का काम।

कुमारललिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सात अक्षर का एक वृत्त जिसमें एक जगण, एक सगण और अंत में गुरु होता है। उ०—जु सोगहिँ नसावै। प्रमोद उपजावै। अतीव सुकुमारी। कुमार ललिता री। (२) बालकों की क्रीड़ा।

कुमारलसिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] आठ अक्षर का एक वृत्त, जिसमें एक जगण, एक सगण और अंत में एक लघु और एक गुरु होता है। उ०—भजो जु सुखकंद को। हरो जु दुख दुंद को।

कुमारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी।

कुमारिल भट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] प्रसिद्ध मीमांसक और शबर भाष्य तथा अन्य श्रौत सूत्रों के टीकाकार। इन्होंने पहले जैन धर्म्म ग्रहण किया था पर कुछ समय पीछे अपने जैन गुरु को शास्त्रार्थ में परास्त करके ये वैदिक धर्म्म का प्रचार करने लगे थे। कहते हैं कि गुरुसिद्धांत का खंडन करने के प्रायश्चित्त के लिये ये कटाग्नि में जल मरे थे। यह भी कहा जाता है कि इनके अग्नि में जलने के समय शंकराचार्य्य इनके पास भेंट करने के लिये गये थे।

कुमारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बारह वर्ष तक की अवस्था की कन्या।
यौ०—कुमारीपूजा।
(२) घीकुआँर। (३) नवमल्लिका। (४) बाँझ ककोड़ी। (५) बड़ी इलायची। (६) श्यामा पक्षी। (७) सीता जी का एक नाम। (८) पार्वती। (९) दुर्गा। (१०) एक अंतरीप, जो भारतवर्ष के दक्खिन में है। (११) चमेली। (१२) सेवती। (१३) पृथिवी का मध्य भाग। (१४) शाकद्वीप की सात नदियों में से एक। (१५) अपराजिता।
वि० विना ब्याही। जिस (स्त्री) का विवाह न हुआ हो।

कुमारीपूजन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की पूजा जो देवीपूजन के समय होती है और जिसमें कुमारी बालिकाओं का पूजन करके उन्हें मिष्टान्न आदि दिया जाता है।

कुमार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुमार्गी] (१) बुरा मार्ग। बुरी राह। (२) अधर्म।

कुमार्गगामी-वि० [सं०] (१) कुपंथी। कुमार्गी (२) अधर्मी।

कुमार्गी-वि० [सं० कुमार्गिन्] [स्त्री० कुमार्गिनी] (१) बदचलन। कुचाली। (२) अधर्मी। धर्महीन।

कुमालक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन प्रदेश जो वर्त्तमान मालवा के अंतर्गत था। इसे सौवीर भी कहते हैं। (२) उस देश के निवासी।

कुमाला-संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड़ जो देहरादून, अवध, छोटानागपुर, बंबई तथा दक्षिण भारत में होता है। यह ८-१० फुट ऊँचा होता है और इसकी पत्तियाँ चार पाँच इंच लंबी होती हैं। यह जेठ असाढ़ में फूलता है और इसका फल खाया जाता है।

कुमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रावण के दुर्मुख नामक एक योद्धा का नाम। उ०—कुमुख, अकंपन, कुलिस रद, धूमकेतु

अतिकाय। एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय।—तुलसी। (२) सूअर।

वि० पुं० [सं०] [स्त्री० कुमुखी] बुरे मुखवाला। जिसका चेहरा देखने में अच्छा न हो।

कुमुद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुईं। कोका। (२) लाल कमल।

यौ०—कुमुदबंधु = चंद्रमा।

(३) चाँदी। (४) विष्णु। (५) एक बंदर का नाम जो राम-रावण के युद्ध में लड़ा था। (६) एक प्रकार के दैत्य। (७) एक द्वीप का नाम। (८) कपूर। (९) एक नाग का नाम। (१०) आठ दिग्गजों में से एक, जो दक्षिण पश्चिम कोण में रहता है। (११) विष्णु का एक पारिषद्। (१२) एक केतु तारा जो कुईं के आकार का है। यह पश्चिम में उदय होता है और एक ही रात को दिखाई देता है। इसकी शिखा पूर्व ओर होती है। इसके उदय होने पर दस बरस तक दुर्भिक्ष रहता है। (१३) संगीत में एक ताल।

वि० (१) कंजूस। कृपण। (२) लोभी। लालची।

कुमुदनी-संज्ञा स्त्री० दे० "कुमुदिनी"।

कुमुदबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

कुमुदिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुईं। कोईं। (२) वह स्थान जहाँ कुमुद हों।

विशेष—इस शब्द के साथ 'पति' वाची शब्द जोड़ने से जो समस्त शब्द बनते हैं, वे चंद्रमा का अर्थ देते हैं।

कुमुदिनीपति-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

कुमुद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुईं। (२) लाल कमल। (३) निर्दय। बेरहम। (४) कंजूस।

कुमुद्वती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) षड्ज स्वर की चार श्रुतियों में से दूसरी श्रुति। (२) नागराज कुमुद की भगिनी और कुश की स्त्री।

कुमेड़िया-संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटी जाति का हाथी।

कुमेरु-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणी ध्रुव।

कुमैड़†-संज्ञा पुं० [देश०] छल। कपट। धोखा। दग़ा।

कुमैड़िया-संज्ञा पुं० [हिं० कुमैड़] छली। कपटी। दग़ाबाज़।

कुमोद*-संज्ञा पुं० [सं० कुमुद] कुईं। उ०—चीली सबै मालत सँग भूले कमल कुमोद। बेध रही है गन गंधरब बास परिमलामोद।—जायसी।

कुमोदनी*-संज्ञा पुं० दे० "कुमुदिनी"।

कुमोदिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "कुमुदिनी"।

कुम्मैत-संज्ञा पुं० [तु० कुमेत] (१) घोड़े का एक रंग, जो स्याही लिए लाल होता है। लाखी। (२) वह घोड़ा जिसका रंग स्याही लिए लाल हो। इस रंग का घोड़ा बहुत मज़बूत और तेज़ होता है।

वि० कुम्मेत रंग का।

यौ०—आठों गाँठ कुम्मैत = अत्यंत चतुर। छटा हुआ। चालाक। धूर्त।

कुम्मैद*-संज्ञा पुं० दे० "कुम्मैत"।

कुम्हड़ा-संज्ञा पुं० [सं० कूष्माण्ड, पा० कुम्हंड, प्रा० कुभंड] (१) एक फैलनेवाली बेल जिसके पत्ते बड़े गोल और रोएँदार होते हैं। पत्ते का डंठल बड़ा और पोला होता है। इसमें बड़े बड़े घंटी के आकार के पीले फूल लगते हैं। कुम्हड़े की बेल बहुत दूर तक फैलती है। इसके फल गोल और बहुत बड़े बड़े ७-८ सेर तक के होते हैं। कुम्हड़ा दो प्रकार का होता है, एक सफ़ेद, दूसरा पीला। सफ़ेद रंग के कुम्हड़े को पेठा कहते हैं। यह खाने में कुछ फीका सा होता है। इसका लोग मुरब्बा डालते हैं और इसके महीन टुकड़ों को पीठी में मिलाकर बरी भी बनाते हैं। पीले कुम्हड़े का गूदा लाल रंग का और खाने में मीठा होता है। इसकी दो फ़सलें होती हैं। एक गरमी, दूसरी बरसात में। गरमी का कुम्हड़ा ज़मीन पर और बरसात का छप्पर आदि पर फैलता है। कुम्हड़े के फल की तराकरी होती है और फूल और पत्तों का साग बनता है।

पर्या०—काशीफल।

(२) कुम्हड़े का फल।

मुहा०—कुम्हड़े की बतिया = (१) कुम्हड़े का छोटा कच्चा फल। (२) अशक्त और निर्बल मनुष्य। उ०—इहाँ कुम्हड़-बतिया कोउ नाहीं। जो तर्जनि देखत मरिजाहीं।—तुलसी।

कुम्हड़ौरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुम्हड़ा + औरी] एक प्रकार की बरी जो पीठी में पेठ कर कुम्हड़े के महीन महीन टुकड़े मिला कर बनाई जाती है। बरी।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

कुम्हलाना-क्रि० अ० [सं० कु + म्लान] (१) ताज़गी का जाता रहना। सरसता और हरापन न रहना। मुरझाना। जैसे—पौधे, पत्ते, फूल आदि का कुम्हलाना। उ०—तरु पर फूल कमल पर जल-कण, सुंदर परम सुहाते हैं। अल्प काल के बीच किंतु वे कुम्हला कर मिट जाते हैं।—श्रीधर पाठक। (२) सूखने पर होना। (३) प्रफुल्लतारहित होना। कांति का मलिन पड़ना। प्रभाहीन होना। उ०—(क) सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख-दुति कुम्हिलानी।—तुलसी। (ख) इतनी धूप में आए हो, चेहरा कुम्हलाया हुआ है।

कुम्हार-संज्ञा पुं० [सं० कुंभकार, प्रा० कुंभार] [स्त्री० कुम्हारिन] (१) मिट्टी के बरतन बनानेवाला मनुष्य। (२) मिट्टी के बरतन बनानेवाली जाति।

कुम्ही*†–संज्ञा स्त्री० [सं० कुंभी] एक पौधा जो पानी पर फैलता है । उ०—लोचन सपने के भ्रम भूले । जो छबि निरखत सो पुनि ताही भरम हिंडोरे झूले । इकटक रहत तृप्त नहिँ कबहूँ एते पर हैं भूले । निदरे रहत मोहिं नहिं मानत कहत कौन हम तूले । मोते गए कुम्ही के जर ज्यौं ऐसे वे निरमूले । सूरश्याम जलराशि परे अब रूप रंग अनुकूले ।—सूर ।

विशेष—दे० "कुंभी" ।

कुयोनि–संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्र जंतुओं की कोटि । तिर्यग्योनि ।

कुरंग–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुरंगी] (१) बादामी वा तामड़े रंग का हिरन । (२) मृग । हिरन ।

यौ०—कुरंगलांछन ।

(३) बरवै छंद का एक नाम ।

संज्ञा पुं० [सं० कु+हिं०रंग] (१) बुरा रंग ढंग । बुरा लक्षण । (२) घोड़े का एक रंग जो लाह के ऐसा होता है । नीला । कुम्मैद । लखौरी । (३) इस रंग का घोड़ा । कुलंग । लखौरी । उ०—हरे कुरंग महुअ बहु भांती । गरर कोकाह बलाह सुपाँती ।—जायसी ।

वि० बुरे रंग का । बदरंग ।

कुरंगलांछन–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

कुरंगिन*–संज्ञा स्त्री० [सं० कुरंग] हिरनी । उ०—चंदन माँझ कुरंगिन खोजू । तेहि को पाव को राजा भोजू ।—जायसी ।

कुरंगसार–संज्ञा पुं० [सं०] कस्तूरी । मुश्क । उ०—केसर कुरंगसार रंग से लिपित दोऊ दुहूँ मैं दिपति औ छिपति जात छाती मैं ।—देव ।

कुरंटक–संज्ञा पुं० [सं०] पीली कटसरैया ।

कुरंड–संज्ञा पुं० [सं० कुरुविंद=माणिक] एक खनिज पदार्थ जो एक प्रकार का मूर्च्छित अलमीनम है और मिश्री की चमकीली डली के रूप में जमा हुआ मिलता है। कड़ाई में यह हीरे से कुछ ही कम होता है । इसके चूर्ण को लाख आदि में सान कर हथियार तेज़ करने की सान बनाते हैं । अविशुद्ध अवस्था में चुंबक आदि से मिला हुआ जो दानेदार कुरंड मिलता है वह मानिक रेत कहलाता है जिससे सोनार सोने चाँदी के गहनों पर जिला देते हैं । अधिक कांतिवाले जो कुरंड मिलते हैं वे रत्न माने जाते हैं और रंग के अनुसार उन्हें मानिक (लाल), नीलम, पुखराज, गोमेद आदि कहते हैं ।

संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जो खेतों के किनारे और इधर उधर उगता है । इसमें सफ़ेद रंग के फूल लगते हैं । यह औषध के काम में आता है । वैद्यक में इसे अग्निदीपक, रुचिकारक, वीर्य्यवर्द्धक और मूत्रकृच्छ्र को दूर करनेवाला माना है ।

कुरंडक–संज्ञा पुं० [सं०] पीली कटसरैया ।

कुरंबा–संज्ञा पुं० [देश०] भेड़ की एक जाति जो डील डौल में छोटी होती है और जिसके बाल नीचे से काले पर सिरे पर सफ़ेद होते हैं । इसका मांस अच्छा और स्वादिष्ट होता है ।

कुरकनी–संज्ञा स्त्री० [देश०] घोड़े या गदहे के चमड़े का अगला भाग जिसका कीमुख्त नहीं बन सकता ।

कुरका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सलई । चीड़ । (२) दक्षिण का एक देश जिसे अब कुर्ग कहते हैं । (३) एक नगर जो कुर्ग देश में ताम्रपर्णी नदी के किनारे था और जहाँ वैष्णव आचार्य्य शठकोप का जन्म हुआ था ।

कुरकी–संज्ञा स्त्री० दे० "कुर्की" ।

कुरकुंड–संज्ञा पुं० [देश०] एक घास जिसे रीहा और कनखुरा भी कहते हैं । यह आसाम और बंगाल में होती है । इसका रेशा बहुत दृढ़ और बारीक होता है और जाल कपड़ा आदि बनाने के काम में आता है ।

विशेष—दे० "रीहा" ।

कुरकुट–संज्ञा स्त्री० [सं० कुट=कूटना] किसी वस्तु का छोटा टुकड़ा ।

कुरकुटा–संज्ञा पुं० [सं० कुट=कूटना] (१) टुकड़ा । किसी वस्तु का कूटा हुआ रवा । (२) रोटी का टुकड़ा । उ०—कैसे सहब खिनहिं खिन भूँखा । कैसे खाब कुरकुटा रूखा ।—जायसी ।

कुरकुर–संज्ञा पुं० [अनु०] खरी वस्तु के दब कर टूटने का शब्द । उ०—पापड़ दाँत के नीचे कुरकुर बोलता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—बोलना ।

कुरकुरा–वि० [हिं० कुरकुर] [स्त्री० कुरकुरी] खरा और करारा जिसे तोड़ने पर कुरकुर शब्द हो ।

कुरकुराहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरकुर] कुरकुर शब्द होने का भाव ।

कुरकुरी–संज्ञा पुं० [देश० । अनु०] (१) घोड़े की एक बीमारी जिस में उसका पाखाना पेशाब बंद हो जाता है और पेट फूल आता है । (२) पतली मुलायम हड्डी, जैसे-कान की ।

कुरगरा–संज्ञा पुं० [?] एक छोटी थापी जिससे दर्जबंदी तथा कारनिस आदि का बारीक काम किया जाता है ।

कुरच†–संज्ञा पुं० [सं० क्रौंच] कराकुल पक्षी । उ०—(क) इहि विधि रोदति जाति सिय, कुरच सरिस नभ माहिँ । हे रघुवर हे प्राणपति केहि अब राखहु नाहिँ । (ख) बारहिँ बार विलाप करि, कुरच सरिस रघुराइ । तब लगि मैं सिष्यन सहित पहुँचेउ तेहि बन आइ ।—मधुसूदन दास ।

कुरचिल्ल–संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा ।

कुरड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० कुरडी] अरबी और तुरकी जाति के घोड़ों के जोड़े से उत्पन्न एक दोगली जाति का घोड़ा । इस जाति के घोड़े अरब में मिलते हैं ।

कुरता–संज्ञा पुं० [तु०] [स्त्री० कुरती] एक पहनावा जो सिर

डाल कर पहना जाता है और जिसमें सामने छाती के नीचे किसी प्रकार का जोड़ वा परदा नहीं होता।

कुरती–संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरता] (१) स्त्रियों का एक पहनावा जो फतूही की तरह होता है। (२) (सोनार लोगों की बोली में) स्त्री।

कुरथी†–संज्ञा स्त्री० दे० "कुलथी"।

कुरन–संज्ञा पुं० दे० "कुरंड"।

कुरना*†–क्रि० अ० [हिं० कूरा = ढेर] (४) ढेर लगना। कूरा लगना। उ०—(क) वैभव विभव ब्रह्मानंद की अपार धार कौशल की कोश एक बारही कुरै परी।—रघुराज। (ख) पारावार, पूरन, अपार परब्रह्म रासि, जसुदा की कोरै एक बार ही कुरै परी।—देव।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

(२) दे० "कुरलना"। उ०—सारी सुआ जो रहचह करहीं। कुरहिँ परेवा औ करबरहीं।—जायसी।

कुरबक—संज्ञा पुं० [सं०] कटसरैया।

कुरबनही–संज्ञा स्त्री० [हिं० कोर + बनाना] बढ़इयों का एक औज़ार जो रुखानी के आकार का होता है और जिससे कोने की कसर छील कर साफ़ करते हैं। इसमें दस्ता नहीं होता।

कुरबान–वि० [अ०] (१) जो न्योछावर किया गया हो। जो बलिदान किया गया हो।

मुहा०—कुरबान करना = न्योछावर करना। वारना। उ०—चंचल चारु विशाल विवि लोचन मोचन मान। चितवत दिशि कब देखिहैं मनको करि कुरबान।—विश्राम। कुरबान जाना = न्योछावर होना। बलि जाना। कुरबान होना = (१) न्योछावर होना। (२) मरना। प्राण देना।

कुरबानी–संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी देवता आदि के लिये किसी जीव को बलिदान करने की क्रिया। कुरबान करने का काम।

क्रि० प्र०—करना।—चढ़ाना।—देना।

कुरमा†–संज्ञा पुं० [फा० कुनबा] कुटुंब। परिवार।

कुरमा का बाँक–संज्ञा पुं० [देश०] वह आड़ी लकड़ियाँ जो जहाज़ के नीचे अंदर की ओर शहतीरों के बीच में उनको जकड़े रहने के लिये लगाई जाती हैं। (लश०)

कुरर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गिद्ध की जाति का एक पक्षी। (२) करांकुल। क्रौंच।

कुररा–संज्ञा पुं० [सं० कुरर] [स्त्री० कुररी] (१) करांकुल। क्रौंच। उ०—छत्र बिटप बट पट्ट पिक डाढ़ी। कुरर नकीब करत धुनि गाढ़ी।—देव। (२) टिटिहरी। उ०—(क) लै कै कंत भा कुररा लोपी। कठिन बिछोह जियहिँ किमि गोपी।—जायसी। (ख) लै दच्छिन दिसि गयो गुसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं।—तुलसी।

कुररी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आर्य्या छंद का एक भेद जिसमें चार गुरु और उनचास लघु होते हैं। (२) कुररा का स्त्री लिंग। दे० "कुररा"।

कुरलना*–क्रि० अ० [सं० कलरव वा कुरव, हिं० कुर्र] मधुर स्वर से पक्षियों का बोलना। उ०—(क) कुरलहिँ सरस करहिँ हुलासा। जीवन मरन सु एकहु पासा।—जायसी। (ख) कौतुक केल करहिँ दुख नासा। कूदहिँ कुरलहिँ जनु सर हंसा।—जायसी।

कुरला–संज्ञा पुं० दे० "कुल्ला"।

कुरव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वृक्ष जिसके फूल लाल होते हैं। लाल कुरय्या। कुरबक। मडुवा। लाल फूल की कटसरैया। उ०—बट बकुल कदंब पनस रसाल। कुसुमित तरुनिकर कुरव तमाल।—तुलसी (२) सफ़ेद मदार। आक। (३) सियार। (४) जिसका स्वर कर्णकटु हो। कर्कश स्वरवाला।

कुरवक–संज्ञा पुं० दे० "कुरव" (१)।

कुरवा–संज्ञा पुं० [सं० कुरवक] कटसरैया।

[हिं० कुडव] लकड़ी का एक बर्तन जो अन्न मापने के काम में आता है। यह एक सेर का होता है।

कुरवारना†–क्रि० स० [सं० कर्त्तन] खोदना। करोदना। खरोंचना। उ०—(क) राधा हरि की गरब गहीली। मंद मंद गति मत मतंग ज्यों अंग अंग सुख पुंज भरीली। पग द्वै चलति ठटकि रहै ठाढ़ी मौन धरे हरि के रस गीली। धरनी नख चरनन कुरवारति सौतिन भाग सुहाग डहीली। नेक नहीं पिय ते कहुँ बिछुरति ताते नाहिन काम दहीली। सूर सखी बूझै यह कैहैं आजु भई इह भेद पहीली।—सूर। (ख) कौन्यों थिरिकि बैठु तेहि डारा। कौन्यों कली केल कुरवारा।—जायसी।

कुरविंद–संज्ञा पुं० दे० "कुरुविंद"।

कुरसथ–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मैली खाँड।

कुरसा–संज्ञा पुं० [देश०] एक वृक्ष जो बहुत शीघ्र बढ़ता है और देखने में बहुत अच्छा मालूम होता है। इसकी लकड़ी लाल रंग की और मज़बूत होती है और मकान और पुल के बनाने में काम आती है। यह कमायूँ, नीलगिरि, अवध, बंगाल, आसाम और मद्रास में होता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० कुलिश] एक प्रकार की बड़ी मछली।

कुरसी–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) एक प्रकार की चौकी जिसके पाए कुछ ऊँचे होते हैं और जिसमें पीछे की ओर सहारे के लिये पटरी वा इसी प्रकार की और कोई चीज़ लगी रहती है। किसी किसी में हाथों के सहारे के लिये दोनों ओर दो लकड़ियाँ भी लगी रहती हैं। यह केवल एक आदमी के बैठने योग्य बनाई जाती है।

विशेष—कुरसी प्रायः लकड़ी की बनती है और उसमें बैठने और सहारा लगाने का स्थान बेंत से बिना या चमड़े आदि से मढ़ा होता है। कभी कभी पत्थर लोहे या किसी दूसरी

धातु से भी कुरसी बनाई जाती है। यह कई आकार और प्रकार की होती है।

यौ०—आराम कुरसी = एक प्रकार की बड़ी कुरसी जिस पर आदमी लेट सकता है।

(२) वह चबूतरा जिसके ऊपर इमारत या इसी प्रकार की और कोई चीज़ बनाई जाती है। यह आस पास की भूमि से कुछ ऊँचा होता है और पानी सीड़ आदि से इमारत की रक्षा करता है। (३) पीढ़ी। पुश्त।

यौ०—कुरसीनामा।

(४) एक चौकोर तावीज़ जो हमेल के बीच में रहती है। चौकी। उरबसी। (५) नाव के किनारे किनारे की तख्ताबंदी। जहाज़ में इसी तख्ताबंदी पर नीचे का पाल बँधा रहता है। (६) जहाज़ के मस्तूल के ऊपर की वे आड़ी तिरछी लकड़ियाँ जिन पर खड़े होकर मल्लाह पाल की रस्सियाँ तानते हैं।

कुरसीनामा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह पत्र जिसमें किसी की वंश-परंपरा लिखी हो। वंशवृक्ष। शजरा। पुश्तनामा।

कुरा—संज्ञा पुं० [अ० कुरह] वह गाँठ जो पुराने जख्म में पड़ जाती है। इसमें पीब जमा रहता है और नासूर हो जाता है।

[सं० कुरव] कटसरैया। उ०—कुरे की डाल में अंचल उलझा है।—लक्ष्मणसिंह।

कुराई*—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुराह] बुरा रास्ता। तंग और नीचा ऊँचा रास्ता। उ०—कुश कंटक काँकरी कुराई। कटुक कठोर कुवस्तु दुराई।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [देश०] पाँव में डालने का काठ।

कुरान—संज्ञा पुं० [अ०] अरबी भाषा की एक पुस्तक जो मुसलमानों का धर्म्मग्रंथ है। उनका विश्वास है कि ईश्वर ने इस ग्रंथ के वाक्यों को भिन्न भिन्न काल में जिबरईल के द्वारा मुहम्मद साहब के पास भेजा था। इस ग्रंथ में तीस भाग हैं जिन्हें "पारा" कहते हैं।

विशेष—मुसलमान लोग आदर के लिये कुरान के साथ "शरीफ़" "मजीद" आदि शब्द भी जोड़ देते हैं।

कुरानी—वि० [हिं० कुरान + ई (प्रत्य०)] कुरान पर विश्वास करनेवाला। मुसलमान।

कुराय*—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + फ़ा० राह] रास्ते का ऊँचा नीचा स्थान। गड्ढा। खदरा। दे० "कुराई"। उ०—राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे।............ ......काँट कुराय लपेटन लोटनि ठाँवहि ठाँव बझाऊ रे। जस जस चलिय दूरि तस तस निज बासन भेंट लगाऊ रे।—तुलसी।

कुराल—संज्ञा पुं० [देश०] एक वृक्ष का नाम। यह हिमालय के उत्तर-पश्चिम विभाग में शिमला, गढ़वाल और कमाऊँ आदि स्थानों में होता है। इसमें फलियाँ लगती हैं।

कुराह—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + फ़ा० राह] [वि० कुराही] कुमार्ग। बुरी राह। ख़राब रास्ता।

कुराहर*†—संज्ञा पुं० [सं० कोलाहल] शोर। गुलगपाड़ा। कोलाहल। उ०—कुहकहिँ मोर सुहावन लागा। होय कुराहर बोलहिँ कागा।—जायसी।

कुराही—वि० [हिं० कुराह + ई (प्रत्य०)] कुमार्गी। बदचलन। उ०—कुटिल कुराही कुलदोषी सो कलंक भरो कुमति मते मैं अति महामदपूर है।—रघुनाथ।

संज्ञा स्त्री० बदचलनी। दुराचार।

कुरिंद—संज्ञा पुं० [?] दरिद्र। (डिं०)।

कुरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुटी वा कुटीका] (१) फूस की झोपड़ी। मँड़ई। कुटी।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—छाना।

(२) बहुत छोटा गाँव।

[हिं० कुरैना] (१) ढेर। बोझ। गाँज। (२) राब के बोरों को जूसी निकलने के लिये तले ऊपर रखना।

कुरियाल—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्लोल] चिड़ियों का मौज में बैठकर पंख खुजलाना वा झड़झड़ाना।

मुहा०—कुरियाल में आना = (१) चिड़ियों का आनंद में होना। (२) मौज में आना। आनंद वा उमंग में होना। कुरियाल में गुलेला लगना = रंग में भंग होना। आनंद में विघ्न पड़ना।

कुरिल†—संज्ञा पुं० [सं० कुरट] जूता बनानेवाला वा चमड़े का कारबार करनेवाला चमार।

कुरी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चेना नाम का अन्न। (२) अरहर की फलियाँ।

* [सं० कुल] वंश। घराना। ख़ानदान। उ०—(क) भइ आहाँ पदुमावति चली। छत्तिस कुरि भइ गोहन भली।—जायसी। (ख) नित नव मंगल कोसलपुरी। हरषित रहहिँ लोग सब कुरी।—तुलसी।

[देश०] कोल्हू।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कूरा = ढेर, भाग] विभाग। खंड। टुकड़ा।

मुहा०—कुरी कुरी होना = टुकड़े टुकड़े होना। उ०—जाके रूप आगे रंभा रति उरबसी शची हची मान मैनका को ह्वै गयो कुरी कुरी।—रघुनाथ।

कुरीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुरी रीति। कुप्रथा। (२) कुचाल।

कुरु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैदिक आर्य्यों का एक कुल। (२) एक प्राचीन देश जो दो भागों में विभक्त था, उत्तर कुरु और दक्षिण कुरु। दक्षिण कुरु हिमालय के दक्षिण में था जिसमें पांचालादि देश थे और उत्तर कुरु हिमालय के उत्तर में था जिसमें फ़ारस तिब्बत आदि थे। इसको लोग स्वर्ग भी कहते थे। (३) एक सोमवंशी राजा का नाम जिसके वंश में पांडु

और धृतराष्ट्र हुए थे। (४) कुरु के वंश में उत्पन्न पुरुष। (५) कर्त्ता। (६) भात। पका हुआ चावल।

कुरुश्रा–संज्ञा पुं० [सं० कुडव] अन्न मापने का एक मान जो दस छटांक के बराबर होता है।

कुरुई–संज्ञा स्त्री० [सं० कुडव] बांस या मूँज की बुनी हुई छोटी डलिया। मौनी।

कुरुक्षेत्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत प्राचीन तीर्थ जो सरस्वती नदी के बाएँ किनारे पर अंबाले और दिल्ली के बीच में है। ऋग्वेद के कई ब्राह्मणों में लिखा है कि प्राचीन काल में ऋषि लोग इसी स्थान पर यज्ञादि किया करते थे। अब तक यहाँ एक बहुत पवित्र और प्राचीन सरोवर के चिह्न वर्त्तमान हैं, जिसका नाम ऋग्वेद में "सर्य्यनावत" लिखा है। किसी समय में इसके अंतर्गत अनेक बड़े और पवित्र तीर्थ थे, जिनके कुछ चिह्न अब तक पाए जाते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि यहाँ के ब्रह्मसर नामक सरोवर में परशुराम ने स्नान करके अपने आपको क्षत्रिय-हत्या के पाप से मुक्त किया था और महाराज पुरूरवा ने इसी के किनारे बिछुड़ी हुई उर्वशी को फिर से पाया था। चंद्रवंशी राजा कुरु इन्हीं सरोवरों में से किसी एक के तट पर बहुत दिनों तक तप करके गुप्त हुए थे, तभी से इसका नाम धर्म्म क्षेत्र और कुरुक्षेत्र पड़ा। महाभारत के प्रसिद्ध युद्ध के सिवा इस स्थान पर और भी अनेक बड़े बड़े युद्ध हुए थे। पीछे से यहीं पर स्थाणु नामक महादेव की एक मूर्ति स्थापित हुई और स्थाण्वीश्वर (थानेसर) नामक नगर बसा, जहाँ राजा पुष्यभूति ने वर्द्धन नामक राजवंश की प्रतिष्ठा की जिसमें प्रसिद्ध महाराज हर्षवर्द्धन हुए। ग्रहण, पर्व आदि अवसरों पर अब भी यहाँ बहुत बड़े बड़े मेले होते हैं।

कुरुखेत†–संज्ञा पुं० [सं० कुरुक्षेत्र] कुरुक्षेत्र। उ०—निंदक न्हाय गहन कुरुखेत। अरपै नारि सिँगार समेत। चौंसठ कुआँ बाउ खुदवावै। तबहूँ निंदक नरकहिँ जावै।—कबीर।

कुरुख–वि० [सं० कु+फा० रुख] मुँह बनाए हुए। नाराज़। कुपित। उ०—(क) थकित सुमन दृग अरुन उनींदे कुरुख कटाक्ष करत मुख थोरी। खंजन मृग अकुलात घात उर श्याम व्याध बाँधे रति डोरी।—सूर। (ख) मिलतहिँ कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हों सरजा, सुरेस ज्यों दुचित्त वृजराज को।—भूषण।

कुरुजांगल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश जो पांचाल देश के पश्चिम में था।

कुरुल–संज्ञा पुं० [सं०] बाल की लट जो माथे पर बिखरी हो। संज्ञा पुं० दे० "कुरंड"।

कुरुला–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की गमक। (संगीत)।

कुरुविंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोथा। (२) काच लवण। (३) उरद। (४) मानिक। (५) दर्पण। (६) ईंगुर। शिंगरफ़।

कुरुविल्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पद्मराग मणि। मानिक। (२) बनकुलथी।

कुरूप–वि० [सं०] [स्त्री० कुरूपा] बदसूरत। बुरी शकल का। बेडौल। बेढंगा।

कुरूपता–संज्ञा स्त्री० [सं०] बदसूरती। कुरूप का भाव।

कुरेदना–क्रि० स० [सं० कर्त्तन] खुरचना। खरोचना। करोदना। उ०—(क) कभी कभी साँप के काटने से एक सामान्य छाला सा पड़ जाता है और सुई के करोदने के से दाग़ पड़ जाते हैं।—दुर्गाप्रसाद मिश्र। (ख) पत्तियों का कुरेदा हुआ... ....।—लक्ष्मण सिंह।

कुरेदनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरेदना] लकड़ी या लोहे आदि का एक औज़ार जो भट्ठे की आग, ढेर आदि के कुरेदने के काम आता और लंबा, नुकीला, और छड़ के आकार का होता है।

कुरेभा–संज्ञा स्त्री० [सं० करभ=बच्चा] एक प्रकार की गाय जो साल में दो बार बच्चा देती है।

कुरेर–संज्ञा पुं० [सं० कल्लोल] कुलेल। आमोद प्रमोद। उ०—हँसहिँ हंस औ करहिँ कुरेरा। चुनहिँ रतन मुकताहल हेरा।—जायसी।

कुरेलना–क्रि० स० [हिं० कुरेदना] खोदना। करोदना। **संयो० क्रि०**—डालना।

कुरेलनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरेलना] दे० "कुरेदनी"।

कुरैत–संज्ञा पुं० [हिं० कूरा=भाग या ढेर] [स्त्री० कुरैतिन] भाग पानेवाला। हिस्सेदार।

कुरैना†–संज्ञा पुं० [हिं० कूरा] [स्त्री० कुरैनी] ढेर। राशि।

कुरैया–संज्ञा स्त्री० [सं० कुटज] एक वृक्ष जो जंगलों में होता है और जिसकी पत्तियाँ लंबी और लहरदार होती हैं। इसमें लंबे और सुगंधित फूल लगते हैं जो सफ़ेद, लाल, पीले और काले या नीले रंग के होते हैं। फूल के रंगों के विचार से ही इसके चार भेद हैं जिनके गुण भी वैद्यक शास्त्र में पृथक् पृथक् माने गये हैं। सफ़ेद फूल की कुरैया का बीज मीठा इंद्रयव, और काले फूल की कुरैया का बीज कड़ुआ इंद्रयव कहलाता है। यह कसैला, दीपक और हलका होता है और बवासीर, अतिसार और संग्रहणी को दूर करता है। यह बरसात में फूलता है और देखने में बहुत भला मालूम होता है।

पर्या०—कुटज। वत्सक। गिरिमल्लिका। वरतिक्त। पांडुर। कुटक। कटुक। कौटज। तिक्तक। रक्तनाशक। वृक्षक। कूटज। काही। कालिंग। प्रावृष्य। यवफल। संग्राही। प्रावृषण। महागंध। इंद्रद्रु। कौट।

कुरौना*†–क्रि० स० [हिं० कूरा=ढेर] ढेर लगाना। कूरा लगाना।

कुरौनी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० कूरा] ढेर। राशि।

कुर्क-वि० [तु० कुर्क] [संज्ञा कुर्की] ज़ब्त ।
यौ०—कुर्कअमीन । कुर्कनामा ।

कुर्कअमीन-संज्ञा पुं० [तु० कुर्क+फ़ा० अमीन] वह सरकारी कर्म्मचारी जो अदालत के आज्ञानुसार जायदाद की कुर्की करता है ।

कुर्कनामा-संज्ञा पुं० [तु० कुर्क+फ़ा० नामा] अदालत का वह परवाना जिसके अनुसार कुर्कअमीन किसी की जायदाद की कुर्की करता है । ज़ब्ती का परवाना ।

कुर्की-संज्ञा स्त्री० [तु० कुर्क+ई० (प्रत्य०)] देना चुकाने या भागे हुए अपराधी को अदालत में हाज़िर कराने के लिये कर्ज़दार या अपराधी की जायदाद का सरकार द्वारा ज़ब्त किया जाना ।
विशेष—कभी कभी महाजन के विशेष कारण दिखलाने पर कर्ज़दार की जायदाद फैसला या डिग्री होने से पहले ही इस लिये ज़ब्त कर ली जाती है कि जिसमें वह जायदाद इधर उधर न कर सके । इसे कच्ची कुर्की कहते हैं ।
मुहा०—कुर्की उठाना=ज़ब्त की हुई जायदाद को छोड़ देना । कुर्की बैठाना=कुर्क करना । ज़ब्त करना । कुर्की ले जाना=कुर्कनामा लेकर किसी की जायदाद कुर्क करने के लिये जाना ।

कुर्ता-संज्ञा पुं० दे० "कुरता" ।

कुर्ती-संज्ञा स्त्री० दे० "कुरती" ।

कुर्दमी-संज्ञा स्त्री० [देश०] जहाज़ का रस्सा । आलात । [लश०] ।

कुर्पासक-संज्ञा पुं० [सं०] अँगिया । चोली ।

कुर्बानी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० "कुरबानी" ।

कुर्मी-संज्ञा पुं० [सं० कुटुंब, प्रा० कुडुम्ब] एक जाति जो खेती करती है । कुनबी । कहीं कहीं इस जाति के लोग अपना परिचय "गृहस्थ" कह कर देते हैं ।

कुर्मुक-संज्ञा पुं० [सं० क्रमुक] सुपारी । [डिं०]

कुर्रना-क्रि० अ० दे० "कुरलना" ।

कुर्री-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) हेंगा । पटरा । पटैल । सुहागा । (२) कुरकुरी हड्डी । दे० "कुरकुरी (२)" ।

क़ुर्स-संज्ञा पुं० [अ० क़ुर्स=गोल टिकिया] (१) गोल टिकिया । (२) अरब देश का चाँदी का एक सिक्का जो लगभग डेढ़ आने मूल्य का होता है । (३) चीन देश का सोने या चाँदी का एक सिक्का जो नाव के आकार का होता है और जो तौल में पचास या सौ तोले और इससे कम या अधिक भी होता है ।
[देश०] एक प्रकार की घास जिसकी जड़ लंबी, नरम और मज़बूत होती है और रस्सी बटने और चटाई बनाने के काम में आती है । इसकी खेती केवल जड़ के लिये ही होती है ।

कुर्सी-संज्ञा स्त्री० दे० "कुरसी" ।

कुर्सीनामा-संज्ञा पुं० दे० "कुरसीनामा" ।

कुलंग-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक पक्षी जिसका सिर लाल और बाकी शरीर मटमैले रंग का होता है । इसकी गरदन लंबी होती है । यह लकलक से बड़ा होता है और पानी के किनारे रहता है । उ०—तीतर, कपोत, पिक केकी, कोक, पारावत, कुरर, कुलंग, कलहंस गहि लाये हैं ।—केशव । (२) मुर्गा । कुक्कुट । (३) लंबी टाँग का आदमी । (व्यंग्य)

कुलंज-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "कुलंजन" ।
[देश०] घोड़े का एक दोष जिसमें चलते समय उसकी टाँगें आपस में टकराती हैं ।

कुलंजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अदरक की तरह का एक पौधा जो बरमा, मलायाद्वीप और चीन आदि में होता है । इसकी रेशेदार जड़ बाहर बहुत भेजी जाती है । यह कड़ुई, गरम और दीपन होती है तथा मुख की दुर्गंध को दूर करती है । कुलंजन के दो भेद हैं, बड़ा कुलंजन और छोटा कुलंजन ।
पर्या०—कुलंज । कुलीज । गंधमूल ।
(२) पान की जड़ या डंठल । इसे लोग खाली या पान की तरह चूना कत्था आदि मिला कर खाते हैं । इससे गला खुल जाता है ।

कुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वंश । घराना खानदान ।
यौ०—कुलकानि । कुलपति । कुलकलंक । कुलांगार । कुलतिलक । कुलभूषण । कुलकंटक, आदि ।
मुहा०—कुल बखानना=(१) वंशविरदावली वर्णन करना । (२) बहुत गालियाँ देना ।
(२) जाति । (३) समूह । समुदाय । झुंड । जैसे—कविकुलभूषण । कविकुलतिलक, आदि (४) भवन । घर । मकान । जैसे—गुरुकुल । ऋषिकुल, आदि । (५) तंत्र के अनुसार प्रकृति, काल, आकाश, जल, तेज, वायु, आदि पदार्थ । (६) वाममार्ग । कौल धर्म । (७) संगीत में एक ताल जिसमें इस प्रकार १५ ताल होते हैं । द्रुत, लघु, द्रुत, लघु, द्रुत, लघु, द्रुत, द्रुत, द्रुत, लघु, द्रुत, द्रुत, द्रुत, द्रुत और लघु ।
वि० [अ०] समस्त । सब । सारा । पूरा । तमाम ।
यौ०—कुल जमा=सब मिला कर । केवल । मात्र ।

कुलकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] अपनी कुचाल से अपने वंशवालों को दुःखी करनेवाला ।

कुलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकर तेंदुआ नाम का वृक्ष । (२) कुचिला । (३) परवल या उसकी लता । (४) हरा साँप । (५) दीपक । (६) (संस्कृत में) गद्य लिखने का एक ढंग ।

कुलकना-क्रि० अ० [हिं० किलकना] आनंदित होना । ख़ुशी से उछलना ।

कुलकर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं०] वंश का आदिपुरुष या संस्थापक । कुलपति ।

कुलकलंक-संज्ञा पुं० [सं०] अपनी कुचाल से अपने वंश की कीर्ति में धब्बा लगानेवाला ।

कुलकानि–संज्ञा स्त्री० [सं० कुल + हिं० कान = मर्य्याद] कुल की मर्यादा। कुल की लज्जा। उ०—छूटेउ लाज डगरिया औ कुलकानि। करत जात अपरधवा परि गइ बानि।—रहीम।

कुलकी†–संज्ञा स्त्री० [सं०] चिलम।

कुलकुंडलिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक शक्ति, सारा संसार जिसका एक अंश है। इसकी महिमा "प्रकृति" वा "शक्ति" के समान ही कही जाती है और इसकी उपासना होती है।

कुलकुलाना–क्रि० अ० [अनु०] कुल कुल शब्द करना।

मुहा०—आँतें कुलकुलाना = अत्यंत भूखा होना। उ०—पेट की आँतें कुलकुला रही थीं।—दुर्गेशनंदिनी।

विशेष—जब पेट खाली होता है तो आँतों से कुलकुल शब्द निकलता है।

कुलक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा लक्षण। बुरा चिह्न। (२) कुचाल। बदचलनी।

वि० [सं०] [स्त्री० कुलक्षणा] (१) बुरे लक्षणवाला। (२) दुराचारी।

कुलक्षणी–संज्ञा पुं० [सं० कुलक्षण + ई (प्रत्य०)] (१) बुरे लक्षणवाला। (२) दुराचारी।

संज्ञा स्त्री० (१) बुरे लक्षणवाली। (२) दुराचारिणी।

कुलचंडी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी।

कुलचा–संज्ञा पुं० [फ़ा० कलीचा] (१) एक प्रकार की ख़मीरी रोटी जो ख़ूब फूली होती है। (२) तंबू वा ख़ेमे के डंडे के ऊपर का गोल लट्टू। † (३) छिपा कर इकट्ठा किया हुआ रुपया।

कुलच्छन–संज्ञा पुं० दे० "कुलक्षण"।

कुलच्छनी–संज्ञा पुं० दे० "कुलक्षणी"।

संज्ञा स्त्री० दे० "कुलक्षणी"। उ०—(क) विहतर यह है कि राजा से कहिये, यह कुलच्छनी है आपके योग नहीं।—लल्लू। (ख) पति को दुःख देनेवाली मैं कुलच्छनी सती हूँ।—लक्ष्मणसिंह।

कुलज–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुलजा] (१) उत्तम वंश में उत्पन्न पुरुष। (२) परवल।

कुलजा–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की जंगली भेड़ जो पामीर और गिलगित्त में होती हैं। यह डील डौल में बड़ी होती है। कुचकार।

कुलजात–वि० [सं०] वंश में उत्पन्न। वंशोद्भव।

कुलट–वि० [सं०] [स्त्री० कुलटा] बदचलन। बहुत स्त्रियों से प्रेम रखनेवाला। व्यभिचारी। उ०—श्याम सखी कारेहु ते कारे। तिन सों प्रीति कहा कहि कीजै मारग छाड़ि सिधारे। लोक चतुर्दश विभव कहत हैं पदुमपत्र जल न्यारे। सरवर त्यागि विहंग उड़े ज्यों फिरि पाछे न निहारे। तब चितचोर भोर ब्रजबासिन प्रेम नेक ब्रत टारे। लै सरबस नहिँ मिले सूर प्रभु कहियत कुलट विचारे।—सूर।

कुलटा–वि० स्त्री० [सं०] बहुत पुरुषों से प्रेम रखनेवाली (स्त्री)। छिनाल। बदचलन। व्यभिचारिणी। पुंश्चली।

पर्या०—पुंश्चली। स्वैरिणी। पांशुला। व्यभिचारिणी।

संज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जो बहुत पुरुषों से प्रेम रखती हो।

कुलतंतु–संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसे छोड़ और कोई दूसरा सहारा उसके कुलवालों को न हो।

कुलतारन–वि० [सं० कुल + हिं० तारन] [स्त्री० कुलतारनी] कुल को तारनेवाला। कुल को पवित्र करनेवाला। उ०—सुतहिँ कह्यो तैं भो कुलतारन। मोहिँ दरसायो बारन-तारन।—रघुराज।

कुलत्थ–संज्ञा पुं० [सं०] कुलथी। कुरथी।

कुलत्थिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलथी। कुरथी।

कुलथ–संज्ञा पुं० [सं० कुलत्थ] कुलथी।

कुलथी–संज्ञा स्त्री० [सं० कुलत्थ वा कुलत्थिका] उरद की तरह का एक मोटा अन्न जो प्रायः बरसात में ज्वार के साथ बोया जाता है। इसकी बेल भी उरद की भाँति पृथ्वी पर फैलती है पर इसकी पत्तियाँ पंजे के आकार की होती हैं। फलियाँ गुच्छों में लगती हैं और एक एक फली में तीन तीन चार चार दाने निकलते हैं। दाने उरद ही के से होते हैं पर कुछ चिपटे और भिन्न भिन्न रंगों के, जैसे—भूरे, लाल, काले, होते हैं। कुलथी घोड़ों और चौपायों को बहुत खिलाई जाती है। ग़रीब लोग इसकी दाल भी खाते हैं। यह कदन्न मानी गई है। वैद्य लोग इसे धातु शोधने के काम में लाते हैं। वैद्यक में इसे रूखी, कसैली, गरम, कब्ज करनेवाली तथा रक्त-पित्तकारिणी मानते हैं।

पर्या०—ताम्रबीज। श्वेतबीज। सितेतर। कालवृंत। ताम्रवृंत।

कुलदेव–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुलदेवी] वह देवता जिसकी पूजा परंपरा से किसी कुल में होती आई हो। ऐसे देवताओं की पूजा विवाह आदि उत्सवों के समय वा वार्षिक नवरात्र आदि के दिनों में होती है। कुलदेवता।

कुलदेवता–संज्ञा पुं० [सं०] वह देवता जिसकी पूजा किसी कुल में परंपरा से होती आई हो। कुलदेव।

कुलदेवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह देवी जिसकी पूजा किसी कुल में परंपरा से होती आई हो।

कुलधर–संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र। बेटा।

कुलधारक–संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र। बेटा।

कुलन–संज्ञा स्त्री० [हिं० कल्लाना] दर्द। टीस। जैसे,—दाँतों की कुलन।

कुलनक्षत्र–संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार भरणी, रोहिणी, पुष्य, मघा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़, श्रवण, उत्तरभाद्रपद कुलनक्षत्र कहलाते हैं।

कुलना–क्रि० अ० [हिं० कल्लाना] टीस मारना। दर्द करना। जैसे,—आज कल दाँत कुल रहे हैं।

कुलनायिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वाम मार्ग वा कौलधर्म के अनुसार वे स्त्रियाँ जिनकी पूजा कौल लोग चक्र में करते हैं। ये नव प्रकार की होती हैं—नटी, कापालिनी, वेश्या, धोबिन, नाइन, ब्राह्मणी, शूद्रा, अहीरिन, और मालिन।

कुलनार–संज्ञा पुं० [देश०] एक खनिज पदार्थ वा पत्थर जो सफ़ेद वा कुछ सुरमाई लिए होता है। इसे सिलखड़ी, संगजराहत, सफ़ेद सुरमा, और कपूर-शिलासित भी कहते हैं। इसे भस्म करके गच वा प्लास्टर आफ़ पैरिस बनाते हैं। इस भस्मचूर्ण में यह गुण होता है कि यह पानी पाने से लस पकड़ने लगता है और अंत में सूखने पर उसके सब कण मिल कर फिर ठोस पत्थर हो जाते हैं। इसकी मूर्तियाँ, खिलौने, इलेक्ट्रो टाइप के साँचे तथा और बहुत सी चीज़ें बनती हैं। इससे शीशे भी जोड़ते हैं। कुलनार मद्रास, पंजाब, राजपूताना तथा भारतवर्ष के और कई भागों में मिलता है। जोधपुर और बीकानेर में इसकी बड़ी बड़ी खानें हैं, और इससे बहुत से काम होते हैं। इससे खिड़की की जालियाँ बड़े कौशल के साथ बनाते हैं। गच वा गीले कुलनार की दो बराबर पट्टियाँ लेते हैं और उनमें एक ही नक़्क़ाशी की जालियाँ काटते हैं। फिर एक पट्टी की जालियों पर रंग बिरंग के शीशे बैठा कर ऊपर से दूसरी पट्टी भी सटीक जमा कर बाँध देते हैं। इस प्रकार दोनों पट्टियाँ मिल कर एक हो जाती हैं और कटाव के बीच रंग बिरंग के शीशे दिखाई पड़ते हैं। आगरे, लाहौर, आमेर आदि के शीशमहल इसी गच की सहायता से बने हैं। कुलनार वा सिलखड़ी का चूरा खेतों में भी खाद के लिये डाला जाता है। नील की खेती के लिये इसकी खाद बड़ी उपयोगी होती है। पेशाब लाने के लिये भी हकीम और वैद्य सिलखड़ी का चूरा दूध के साथ खिलाते हैं।

कुलपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर का मालिक। मुखिया। सरदार। (२) वह अध्यापक जो विद्यार्थियों का भरण पोषण करता हुआ उन्हें शिक्षा देवे। शास्त्रानुसार वह ऋषि जो दश हज़ार मुनि वा ब्रह्मचारियों को अन्नदान और शिक्षा दे। (३) महंत।

कुलपर्वत–संज्ञा पुं० [सं०] सात पहाड़ों का एक समूह जिसके अंतर्गत ये पर्वत हैं—महेंद्र, मलय, सह्य, शुक्ति, ऋक्ष, विंध्य, और परियात्र।

कुलपूज्य–वि० [सं०] जिसका मान कुलपरंपरा से होता आया हो। जो कुल का पूज्य हो। उ०—गुरु वसिष्ठ कुलपूज्य हमारे।—तुलसी।

कुलफ*†–संज्ञा पुं० [अ० क़ुफ़ुल] ताला। उ०—श्री रघुराज मनो जुलफैं की जँजीरन की कुलफैं खुलवाई।—रघुराज। (कुछ लोग इसे स्त्री लिंग मानते और लिखते हैं।)

कुलफा–संज्ञा पुं० [फ़ा० ख़ुर्फ़ा] एक साग जिसके पत्ते दलदार, नीचे डंठल के पास नुकीले और सिरे पर चौड़े होते हैं। ये पत्ते दो अंगुल लंबे और डंठल में दो दो आमने सामने लगते हैं। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। फूल झड़ जाने पर छोटे छोटे कँगूरे निकलते हैं जिनमें काले काले, गोल, चिपटे दाने होते हैं। ये दाने बहुत छोटे होते हैं और दवा के काम में आते हैं। लोग ठंढाई में इन्हे प्रायः डालते हैं। पौधा एक बालिश्त से डेढ़ बालिश्त तक ऊँचा होता है और ठंढी जगह में होता है। यह वसंत ऋतु के पहले बोया जाता है और गरमी में तैयार होता है। इसका पौधा बहुत जल्द बढ़ता है। बरसात में यह आपसे आप खेतों में जमता है। इसका लोग साग खाते हैं। वैद्यक में यह ठंढा माना गया है। इसी की छोटी जाति को लोनी, अमलोनी वा नोनिया कहते हैं।

पर्या०—बृहल्लोणी। घोलिका।

कुलफ़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कुलफ] (१)। पेंच। (२) टीन या किसी और धातु मिट्टी आदि का बना हुआ चोंगा जिसमें दूध आदि भर कर बर्फ़ जमाते हैं। (३) उपर्युक्त प्रकार से जमा हुआ दूध, मलाई वा कोई शर्बत। जैसे,—मलाई की कुलफ़ी। (४) पीतल या ताँबे आदि की गोल या झुकी हुई नली जिसे नरकुल में लगा कर नैचा बाँधा जाता है।

कुलबुल–संज्ञा पुं० [अनु०] [संज्ञा कुलबुलाहट] छोटे छोटे जीवों के हिलने डोलने की आहट।

कुलबुलाना–क्रि० अ० [अनु० कुलबुल] (१) बहुत से छोटे छोटे जीवों का एक साथ मिलकर हिलना डोलना। इधर उधर रेंगना जैसे,—मोरी में कीड़े कुलबुला रहे हैं। (२) धीरे धीरे हिलना डोलना। जैसे,—बच्चा गोद में कुलबुला रहा है। (३) चंचल होना। आकुल होना। जैसे,—(क) सोया हुआ लड़का कुलबुला कर उठ बैठा। (ख) भूख के मारे अँतड़ियाँ कुलबुला रही हैं।

कुलबुलाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० कुलबुल] धीरे धीरे हिलने डोलने का भाव।

कुलबोरन–वि० [हिं० कुल + बोरना] (१) कुल को डुबानेवाला। वंश की मर्य्यादा भ्रष्ट करनेवाला। कुल में दाग़ लगानेवाला। कुल-कुठार। (२) अयोग्य। नालायक़।

कुलबधू–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलवती स्त्री। मर्य्यादा से रहनेवाली स्त्री। उ०—किती न गोकुल कुलबधू, काहि न केहि सिख दीन ?—बिहारी।

कुलबाँसा–संज्ञा पुं० [हिं० कुल + बाँस] जुलाहों के करघे का एक बाँस जिसमें कंघी बँधी रहती है ।

कुलवंत–वि० [सं०] [स्त्री० कुलवंती] कुलीन । उ०—(क) जोबन चंचल ढीठ है करै निकाजै काज । धनि कुलवंति जो कुल धरै, कै जोबन मन लाज ।—जायसी । (ख) कुलवंत निकारहिँ नारि सती ।—तुलसी ।

कुलवान्–वि० [सं०] [स्त्री० कुलवती] कुलीन । अच्छे वंश का । अच्छे खानदान का ।

कुलसंकुल–संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक ।

कुलसन–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया ।

कुलह–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कुलाह] (१) टोपी । (२) शिकारी । चिड़ियों की आँखों पर का ढक्कन । टोपी । अँधियारी । उ०—बात दढ़ाइ कुमति हँसि बोली । कुमति-कुबिहँग-कुलह जनु खोली ।—तुलसी ।

कुलहवरा†–संज्ञा पुं० [फ़ा० कुलाह + वाला] बच्चों के पहनने का एक कंटोप जिसके नीचे पीछे की ओर पैर तक लटकता हुआ लंबा कपड़ा चुन कर सिला रहता है ।

कुलहा*–संज्ञा पुं० [फ़ा० कुलाह] टोपी । शिकारी चिड़ियों की आँख ढकने की अँधियारी । ढोका । उ०—बगुला झपटत बाज पै, बाज रहै सिर नाय । कुलहा दीने पग बँधे, खोंटे दे फहराय ।—सभाविलास ।

कुलही†–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कुलाह] बच्चों के सिर पर देने की टोपी । कनटोप उ०—(क) आँगने खेलत आनंद कंद ।.......... कुलही चित्र विचित्र झगूली । निरखहिँ मातु मुदित मन फूली । गहि मनिखंभ डिंभ डगि डोलत । कलबल बचन तोतरी बोलत ।—तुलसी । (ख) कहाँ लौं सुमिरौं सुंदरताई । खेलत कुअँर कनक आँगन में नैन निरखि छबि छाई । कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति बहुबिधि सुरँग बनाई ।—सूर ।

कुलांगार–संज्ञा पुं० [सं०] कुल का नाश करनेवाला । सत्यानाशी ।

कुलाँच–संज्ञा स्त्री० [तु० कुलाच] (१) दोनों हाथों के बीच की दूरी । (२) चौकड़ी । छलाँग । उछाल । उ०—(क) लेत कुलाँच लखो तुम अबहीं । धरत पाँव धरती जब तबहीं ।—लक्ष्मणसिंह । (ख) दसयोजन कर बीच तहँ, पहुँचे एक कुलाँच । सिंहासन तें अवनि पर पटक्यो मारि तमाँच ।—विश्राम ।

क्रि० प्र०—करना ।—भरना ।—मारना ।—लेना ।

कुलाँट*–संज्ञा स्त्री० [तु० कुलाच] छलाँग । चौकड़ी । उछाल । उ०—अप्रमान हथ्थीन दा विक्रम बड़काया । करि कुलाँट अंतुक मनौं किलकार सुधाया ।—सूदन ।

कुलाकुल–संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार कुछ निश्चित नक्षत्र, वार और तिथियाँ, जैसे—आर्द्रा, मूल, अभिजित् आदि नक्षत्र, बुधवार और द्वितीया, छट, और द्वादशी आदि तिथियाँ ।

कुलाचल–संज्ञा पुं० दे० "कुलपर्वत" ।

कुलाचार्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] कुलगुरु । पुरोहित ।

कुलाधि–संज्ञा स्त्री० [सं० कुल = समूह + आधि = रोग, दोष] पाप । दोष । उ०—मछरी तुरकै पकरिया, बसै गंग के तीर । धोये कुलाधिन भाजही, राम न कहै सरीर ।—कबीर ।

कुलाबा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) लोहे का जमुरका जिसके द्वारा किवाड़ बाजू से जकड़ा रहता है । पायजा । (२) मछली फँसाने का काँटा । (३) वह लकड़ी जो चकवा के बीच में लगी रहती है (जोलाहे) । (४) नली जिसमें हो कर पानी निकलता है । मोरी ।

कुलाय–संज्ञा पुं० [सं०](१) शरीर । (२) खोंता । घोंसला । (३) स्थान । जगह ।

कुलायिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पक्षिशाला । चिड़ियाघर ।

कुलाल–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुलाली] (१) कुम्हार । मिट्टी के बरतन बनानेवाला । (२) जंगली मुर्गा । (३) उलूक । उल्लू ।

यौ०—कुलाल चक्र = कुम्हार का चाक ।

कुलालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चिड़ियाखाना ।

कुलाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुम्हारिन । कुम्हार की स्त्री । कुम्हार जाति की स्त्री ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] दूरबीन । [डिं०]

कुलाह–संज्ञा स्त्री० [सं०] भूरे रंग का घोड़ा जिसके पैर गांठ से सुमों तक काले हों ।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की ऊँची टोपी जो फ़ारस और अफ़ग़ानिस्तान में पहनी जाती है ।

कुलाहल*–संज्ञा पुं० दे० "कोलाहल" ।

कुलिंग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पक्षी । (२) चिड़ा । गौरा । (३) पक्षी । चिड़िया । (४) काकड़ासींगी ।

संज्ञा स्त्री० एक नदी का नाम ।

वि० बुरे लिंग का ।

कुलिंगक–संज्ञा पुं० [सं०] चिड़ा । गौरवा पक्षी । चटक । (डिं०)

कुलिंजन–संज्ञा पुं० दे० "कुलंजन" ।

कुलिंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश जो उत्तर-पश्चिम भारत में था । कुनिंद । (२) उस देश का निवासी । (३) उस देश का राजा ।

कुलि†–वि० दे० "कुल" ।

कुलिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिल्पकार । दस्तकार । कारीगर । (२) उत्तम वंश में उत्पन्न पुरुष । (३) आठ महानागों में से एक । (४) घुँघची का पेड़ । (५) तालमखाना । (६) किसी जाति या कुल का प्रधान पुरुष । (७) ज्योतिष में दिन और रात का कुछ निश्चित अंश जो यात्रा वा अन्य शुभ कर्म्मों के लिये निषिद्ध समझा जाता है । (८) केंकड़ा ।

कुलिश—संज्ञा पुं० (१) हीरा। उ०—माणिक मर्कत कुलिश पिरोजा। चीर कोरि पच रचे सरोजा।—तुलसी। (२) वज्र। बिजली। गाज। बिजली। उ०—भयो कुलाहल अवध अति, सुनि नृप राउर शोर। विपुल विहँग बन परयो निसि, मानौ कुलिस कठोर।—तुलसी। (३) ईश्वरावतार राम कृष्णादि के चरणों का एक चिह्न जो वज्र के आकार का माना जाता है। उ०—अरुण चरण अंकुशध्वज, कंज कुलिश चिह्न रुचिर, भ्राजत अति नूपुर बर मधुर मुखरकारी।—तुलसी।

यौ०—कुलिशधर = वज्रधर। इंद्र।

(४) कुठार। (५) एक प्रकार की मछली।

कुलिशधर—संज्ञा पुं० [सं] इंद्र। सुरराज।

कुलिशासन—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध देव का एक नाम।

कुलिशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वेदोक्त नदी जो आकाश के मध्य में मानी जाती है।

कुलींजन—संज्ञा पुं० दे० "कुलंजन"।

कुली—संज्ञा पुं० [तु०] मज़दूर। बोझ ढोनेवाला।

यौ०—कुली कबारी = छोटी जाति के लोग।

कुलीन—वि० [सं०] [संज्ञा कुलीनता] (१) उत्तम कुल में उत्पन्न। अच्छे घराने का। खानदानी। (२) पवित्र। शुद्ध। साफ़। उ०—गंग जो निरमल नीर कुलीना। नार मिले जल होइ मलीना।—जायसी।

संज्ञा पुं० एक प्रकार के बंगाली ब्राह्मण जो उन पाँच ब्राह्मणों की संतान हैं जिन्हें पंचगौड़ के महाराज आदिशूर अपने राज्य में सात्विक ब्राह्मण न होने के कारण आठवीं शताब्दी के आरंभ में काशी से अपने साथ ले गये थे।

कुलीर—संज्ञा पुं० [सं०] केंकड़ा।

कुलुफ—संज्ञा पुं० [अ० कुफ्ल] ताला। उ०—नैना न रहैं री मेरे हटके। कछु पढ़ि दिये सखी यहि ढोटा घूँघरवारे लटकै। कज्जल कुलुफ मेलि मंदिर में पलक सँदूक पट अटकै।—सूर।

कुलुसा—संज्ञा पुं० [सं० कुलिश] एक प्रकार की मछली जो सिंध, संयुक्त प्रांत, बंगाल और आसाम में पाई जाती है। लंबाई में यह पाँच फुट तक होती है। इसे लोग तालाबों में पालते हैं। कुरसा।

कुलू—संज्ञा पुं० [सं० कुलूत] कुल्हू नामक प्राचीन देश जो काँगड़े के पास है।

संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी मुलायम छाल के पर्त निकलते हैं। पत्तियाँ १०-१२ इंच लंबी होती हैं और टहनियों के सिरों पर गुच्छों में होती हैं। इसके फूल छोटे छोटे और गंधकी रंग के होते हैं। यह पेड़ नैपाल की तराई, बुंदेलखंड तथा बंगाल में होता है। इसमें से एक प्रकार की गोंद निकलती है जिसे कतीरा वा कतीला कहते हैं। दे० "गुलू"।

कुलूत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० "कुलू" या "कुल्हू"।

कुलेल—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्लोल] क्रीड़ा। कलोल।

कुलेलना*—क्रि० अ० [हिं० कुलेल] क्रीड़ा करना। आमोद प्रमोद करना। उ०—देखि सरोवर हँसै कुलेली। पदुमावति सँग कहहिँ सहेली।—जायसी।

कुल्टू—संज्ञा पुं० दे० "कोटू" या "कुटू"।

कुल्थी—संज्ञा स्त्री० दे० "कुलथी"।

कुल्फ—संज्ञा स्त्री० दे० "कुलुफ"।

कुल्फी—संज्ञा स्त्री० दे० "कुलफी"।

कुल्माष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुलथी। (२) उर्द। माष। (३) बोरो धान। (४) वह अन्न जिसमें दो भाग या दाल हों, जैसे—चना, उर्द, मटर आदि। (५) बन कुलथी। (६) सूर्य्य का एक पारिपार्श्वक। (७) खिचड़ी। (८) काँजी। (९) एक रोग।

कुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नहर। कृत्रिम नदी। (२) नदी। नाला। (३) पनारा। नाली। (४) कुलीन स्त्री। (५) जीवंती नामक ओषधि।

कुल्ला—संज्ञा पुं० [सं० कवल] [स्त्री० कुल्ली] (१) मुँह को साफ़ करने के लिये उसमें पानी लेकर और इधर उधर हिला कर फेंकने की क्रिया। गरारा।

क्रि० प्र०—करना।—फेंकना।—होना।

(२) उतना पानी जितना एक बार मुँह में लिया जाय।

संज्ञा पुं० [सं० कुल्या] ईख के खेत की वह हलकी सिँचाई जो अंकुर निकलने पर होती है।

संज्ञा पुं० [?] (१) घोड़े का एक रंग जिसमें पीठ की रीढ़ पर बराबर काली धारी होती है। (२) इस रंग का घोड़ा।

संज्ञा पुं० [फ़ा० काकुल। सं० कुंतल] [स्त्री० कुल्ली] बाल। जुल्फ़। काकुल। पट्टा।

कुल्ली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुल्ला] (१) मुँह को साफ़ करने के लिये उसमें पानी लेकर और इधर उधर हिला कर फेंकने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) उतना पानी जितना एक बार मुँह में लिया जाय।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा० काकुल। सं० कुंतल] बाल। जुल्फ़। पट्टा। उ०—विश्वामित्र ने आकर उस राजा से यज्ञ की रक्षा के लिये कुल्लियोंवाला राम माँगा।—लक्ष्मणसिंह।

कुल्लुक—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस। दे० "बाँसिनी"।

कुल्लूक—संज्ञा पुं० [सं०] मनुसंहिता के प्रसिद्ध टीकाकार जो दिवाकर भट्ट के पुत्र थे।

कुल्हड़—संज्ञा पुं० [सं कुल्हर] [स्त्री० कुल्हिया] पुरवा। चुक्कड़।

कुल्हा—संज्ञा पुं० दे० "कूल्हा"।

कुल्हाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कुठार] [स्त्री० अल्प० कुल्हाड़ी] एक औज़ार जिससे बढ़ई आदि पेड़ काटते और लकड़ी चीरते

हैं। यह बारह चौदह अंगुल लंबा और चार छ अंगुल चौड़ा लोहे का होता है जिसके एक सिरे पर, जो तीन चार अंगुल मोटा होता है, एक लंबा गोल छेद, इंच सवा इंच व्यास का होता है जिसमें लकड़ी का दस्ता लगाया जाता है और दूसरा सिरा पतला लंबा और धारदार होता है। कुठार। टांगा।

कुल्हाड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कुल्हाड़ा का अल्प०] (१) छोटा कुल्हाड़ा। कुठार। टाँगी। (२) बसूला। [लश०]

कुल्हारा†–संज्ञा पुं० दे० "कुल्हाड़ा"।

कुल्हिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० कुल्हड़] छोटा पुरवा। चुकड़। छोटा कुल्हड़। उ०—तोरैं चोंच न कीर ! तू यह पंजर है लोह। खुलिहै खुले कपाट के तजि कुल्हिया को मोह।—दीनदयालु।

मुहा०—कुल्हिया में गुड़ फोड़ना = कोई कार्य्य इस प्रकार करना जिसमें किसी को कानों कान खबर न हो।

कुल्हू–संज्ञा पुं० [सं० कुलूत] एक देश का नाम जो कांगड़े के पास है। कुलू।

कुवंग–संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नाम की धातु।

कुव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) फूल।

कुवज–संज्ञा पुं० [सं०] (कमल से उत्पन्न) ब्रह्मा। उ०—सुत मरीचि, नाती कुवज, देव दनुज के ताप। तपत यहाँ परजापती, सहित सुरन की मात।—लक्ष्मणसिंह।

कुवर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] अति वृष्टि। बहुत अधिक वर्षा होना।

कुवलय–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुवलयिनी] (१) नील कोंईं। कोका। (२) नील कमल। (३) भूमंडल। (४) एक प्रकार के असुर।

कुवलयापीड़–संज्ञा पुं० [सं०] एक हाथी का नाम जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिये धनुष यज्ञ के मंडप के द्वार पर रख छोड़ा था। इसे कृष्णचंद्र ने मार डाला था।

कुवलयाश्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धुंधुमार राजा का एक नाम। (२) प्रतर्दन का एक नाम। (३) ऋतुध्वज राजा का नाम। (४) एक घोड़ा जिसे ऋषियों का यज्ञ विध्वंस करनेवाले पातालकेतु को मारने के लिये, पुराणों के अनुसार, सूर्य्य ने पृथिवी पर भेजा था।

कुवाँ–संज्ञा पुं० दे० "कुआँ"।

कुवाँट†–संज्ञा पुं० [सं० कु + पाटल] जंगली गुलाब।

कुवाक्य–संज्ञा पुं० [सं०] दुर्वचन। अयोग्य बात। गाली।

कुवाच्य–वि० [सं०] जो कहने योग्य न हो। गंदा। बुरा। संज्ञा पुं० कठोर शब्द। दुर्वचन। गाली।

कुवाट*–संज्ञा पुं० [सं० कपाट] किवाड़। दरवाज़ा। [डिं०]

कुवाण*–संज्ञा पुं० [सं० कृपाण] धनुष। [डिं०]

कुवार–संज्ञा पुं० [सं० अश्विनी = कुमार] [वि० कुवारी] आश्विन का महीना। असोज।

कुवारी–वि० [हिं० कुवार] कुवार के महीने में होनेवाला। कुवार का—जैसे कुवारी फसल। कुवारी धान।

कुवासना–संज्ञा–स्त्री० [सं०] दुष्ट इच्छा। बुरी इच्छा।

कुविंद–संज्ञा पुं० [सं०] जुलाहा। कोरी।

कुविचार–संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट विचार। बुरा विचार।

कुविचारी–वि० [सं० कुविचारिन्] [स्त्री० कुविचारिणी] बुरे विचारवाला। जिसके विचार बुरे हों।

कुवेर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवता जो इंद्र की नौ निधियों के भंडारी और महादेव जी के मित्र समझे जाते हैं। यह विश्रवस् ऋषि के पुत्र और रावण के सौतेले भाई थे। इनकी माता का नाम इड़विड़ा था। कहते हैं कि इन्होंने विश्वकर्म्मा से लंका बनवाई थी। पर जब रावण ने इन्हें वहाँ से निकाल दिया तो इनके तपस्या करने पर ब्रह्मा ने इन्हें देवता बना कर उत्तर दिशा का राज्य दे दिया और इंद्र का भंडारी बना दिया। यह समस्त संसार के धन के स्वामी समझे जाते हैं। इनके एक आँख, तीन पैर और आठ दाँत हैं। देवता होने पर भी इनका पूजन नहीं होता। कोई कोई इन्हें पुलस्त्य ऋषि का भी पुत्र बतलाते हैं।

यौ०—कुवेराचल। कुवेराद्रि।

(२) जैन मत में वर्त्तमान अवसर्पिणी (काल-गति) के उन्नीसवें अर्हत् का एक उपासक। (३) तुन का पेड़।

पर्या०—त्र्यंबकसखा। यक्षराज। गुह्यकेश्वर। मनुष्यधर्मा। धनद। राजराज। धनाधिप। किन्नरेश। वैश्रवण। नरवाहन। यक्ष। एकपिंग। ऐलविल। श्रीद। पुण्यजनेश्वर। हर्य्यक्ष। अलकाधिप।

कुवेराचल–संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत का एक नाम।

कुवेराद्रि–संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत का एक नाम।

कुशंडिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुशकंडिका।

कुश–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुशा, कुशी] (१) काँस की तरह की एक घास जिसकी पत्तियाँ नुकीली, तीखी, और कड़ी होती हैं। प्राचीन काल में यज्ञों में इसका उपयोग बहुत होता था। इसकी रस्सियाँ ईंधन लपेटने, जुआ बाँधने आदि कामों में आती थीँ। अब भी कुश पवित्र माना जाता है, और कर्मकांड तथा तर्पण आदि में इसका उपयोग होता है। दाभ। डाभ। दर्भ। उ०—कुश किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई।—तुलसी।

पर्या०—कुथ। दर्भ। पवित्र। याज्ञिक। बर्हि। ह्रस्वगर्भ। कुतुप। सूच्यग्र।

(२) जल। पानी। (३) एक राजा जो उपरिचर वसु का पुत्र था। (४) रामचंद्र का एक पुत्र। (५) पुराणानुसार सात द्वीपों में एक द्वीप। (६) बलाकाश्व का पुत्र। (७) फाल। कुसिया। कुसी (हल की)।

वि० (१) कुत्सित । नीच । (२) उन्मत्त । पागल ।

कुशकंडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदी पर वा कुंड में अग्नि-स्थापन करने की अनुष्ठानिक क्रिया जिसका विधान ऋग्वेदियों, यजुर्वेदियों और सामवेदियों के लिये भिन्न भिन्न है । इसमें होम करनेवाला कुशासन पर बैठ दहिने हाथ में कुश लेकर उसकी नोक से वेदी पर रेखा खींचता जाता है ।

कुशकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा । (२) राजा कुशध्वज ।

कुशद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक जो चारों ओर घृत समुद्र से घिरा है ।

कुशध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ह्रस्वरोम राजा के पुत्र और सीरध्वज जनक के छोटे भाई । इनकी कन्याएँ मांडवी और श्रुतिकीर्ति भरत और शत्रुघ्न को ब्याही थीं । (२) एक ऋषि जो बृहस्पति के पुत्र और वेदवती के पिता थे।

कुशन-संज्ञा पुं० [अं०] मोटा गद्दा ।

कुशनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के राजा कुश का पुत्र ।

कुशपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] फोड़ा चीरने का एक औज़ार ।

कुशप्लवन-संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ जिसका नाम महाभारत में आया है ।

कुशमुद्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुश की बनी हुई अँगूठी । पवित्री । पैंती । उ०—कुशमुद्रिका समिधैं स्रुवा कुश औ कमंडल को लिये ।—केशव ।

कुशल-वि०-[सं०] [स्त्री० कुशला] (१) चतुर । दक्ष । प्रवीण । उ०—पर उपदेश कुशल बहुतेरे ।—तुलसी । (२) श्रेष्ठ । अच्छा । भला । (३) पुण्यशील ।

संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुशला, कुशली] (१) क्षेम । मंगल । ख़ैरियत । राज़ी ख़ुशी । उ०—अब कहु कुशल बालि कहँ अहई । बिहँसि बचन अंगद अस कहई ।—तुलसी ।

यौ०—कुशल क्षेम । कुशल मंगल ।

(२) वह जिसके हाथ में कुश हो । (३) शिव का एक नाम । (४) कुशद्वीपनिवासी ।

कुशलक्षेम-संज्ञा पुं० [सं०] राज़ी ख़ुशी । ख़ैर आफ़ियत ।

कुशलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चतुराई । निपुणता । चालाकी । (२) योग्यता । प्रवीणता ।

कुशलप्रश्न-संज्ञा पुं० [सं०] किसी का कुशल मंगल पूछना ।

क्रि० प्र०—करना ।—पूछना ।

कुशलाई*-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुशल] कल्याण । क्षेम । ख़ैरियत । कुशल । उ०—मेरो कह्यो सत्य कै जानौ । जो चाहौ बृज की कुशलाई तौ गोवर्धन मानौ ।—सूर ।

कुशलात*-संज्ञा स्त्री० [सं० कुशलता] कुशल समाचार । मंगल समाचार । ख़ैरियत । उ०—(क) दच्छ न कछु पूछी कुशलाता ।—तुलसी । (ख) बार बार बूझी कुशलाता ।—तुलसी । (ग) मधुकर ल्याए योग सँदेसो । भली श्याम कुशलात सुनाई सुनतहिँ भयो अँदेसो ।—सूर ।

कुशली-वि० [सं० कुशलिन्] [स्त्री० कुशलिनी] (१) कल्याण-युक्त । सकुशल । (२) नीरोग । तंदुरुस्त ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अश्मंतक या आवुटा नामक वृक्ष । (२) क्षुद्राम्लकी । लोना या अमलोनी नामक साग ।

कुशवन-संज्ञा पुं० [सं०] एक बन जो बृज में गोकुल के पास है ।

कुशवारी-संज्ञा स्त्री० दे० "कुशयारी" ।

कुशस्तरण-संज्ञा पुं० [सं०] होम करने के पहले यज्ञ भूमि वा यज्ञ कुंड के चारों ओर कुश बिछाने का काम । कुश-कंडिका ।

कुशस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) द्वारका का एक नाम । (२) कुशावती नामक नगरी जो विंध्य पर्वत पर थी और जहाँ रामचंद्र जी के पुत्र कुश राज्य करते थे ।

कुशहस्त-संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध तर्पण या दानादि करने के लिये उद्यत ।

कुशांब-संज्ञा पुं० [सं०] निमि वंशीय राजा कुश का पुत्र जिसने पिता के आदेश से कौशांबी नगरी बसाई थी ।

कुशांबु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "कुशांब" । (२) कुश के अगले भाग से टपकता हुआ पानी ।

कुशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुश । (२) रस्सी । (३) एक प्रकार का मीठा नीबू ।

कुशाग्र-वि० [सं०] कुश की नोक की तरह तीखा । तीव्र । तेज़ । नुकीला । उ०—कुशाग्र बुद्धि ।

कुशादगी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फैलाव । विस्तार । चौड़ाई ।

कुशादा-वि० [फ़ा०] [संज्ञा कुशादगी] (१) खुला हुआ । आवरण रहित । (२) विस्तृत । लंबा चौड़ा । खुलता ।

मुहा०—कुशादा करना=(१) खोलना । (२) फैलाना । चौड़ा करना ।

कुशारणि-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्वासा ऋषि ।

कुशावर्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरिद्वार के एक तीर्थ का नाम । (२) एक ऋषि का नाम ।

कुशाश्व-संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकुवंशी एक राजा जिसकी राज-धानी विशाला थी । यह सहदेव का पुत्र और सोमदत्त का पिता था ।

कुशासन-संज्ञा पुं० [सं० कुश + आसन = कुशासन] कुश का बना हुआ आसन । कुश की चटाई ।

विशेष—शास्त्रों में दान, यज्ञ, श्राद्ध, उपासना आदि के समय कुशासन पर ही बैठने का विधान है ।

कुशिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन आर्य्य वंश । विश्वामित्र जी इसी वंश के थे । (२) एक राजा जो विश्वामित्र के पितामह और गाधि के पिता थे । महाभारत में लिखा है कि जब च्यवन ऋषि को ध्यान से यह विदित हुआ कि कुशिक वंश के द्वारा उनके वंश में क्षत्रियधर्म का संचार होगा तब

उन्होंने कुशिक वंश को भस्म करना विचारा और वे राजा कुशिक के पास गये। बहुत दिनों तक अनेक प्रकार के कष्ट देने पर भी जब राजा और रानी में उन्होंने शाप देने के लिये कोई छिद्र न पाया तब उन्होंने प्रसन्न होकर राजा कुशिक को वर दिया कि तुम्हारा पौत्र ब्राह्मणत्व लाभ करेगा। (३) कुशिक वंश का पुरुष। (४) हल की कुसी। फाल। (५) बहेड़ा। (६) साल वा साखू। (७) तेल की तलछट।

कुशी–संज्ञा पुं० [सं० कुशिन्] (१) कुशवाला। जिसके हाथ में कुश हो। (२) वाल्मीकि ऋषि।

कुशीद–संज्ञा पुं० दे० "कुसीद"।

कुशीनार–संज्ञा पुं० [सं० कुशनगर] वह स्थान जहाँ सालवृक्ष के नीचे गौतमबुद्ध का निर्वाण हुआ था। यह स्थान गोरखपुर के ज़िले में है और इसे आजकल कसया कहते हैं।

कुशीलव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कवि। चारण (२) नट। नाटक खेलनेवाला। (३) गवैया। (४) वाल्मीकि ऋषि का एक नाम।

कुशूल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अन्न रखने का घेरा। कोठला। कोठार। डेहरी।

यौ०—कुशूलधान्य। कुशूलधान्यक।

(२) तुषाग्नि। (३) कड़ाही। (४) एक राक्षस। (५) बुरी पीड़ा। बुरा दर्द।

कुशूलधान्यक–संज्ञा पुं० [सं०] गृहस्थों का एक भेद। वह गृहस्थ जिसके पास तीन वर्ष तक के लिये खाने भर को अन्न संचित हो।

कुशेशय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पद्म। कमल। (२) सारस। (३) कनक चंपा। कनिआरी। (४) कुशद्वीप का एक पर्वत।

कुशोदक–संज्ञा पुं० [सं०] (दान के लिये हाथ में लिया हुआ) कुश-मिला जल।

कुशोदका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

कुश्ता–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह भस्म जो धातुओं को रासायनिक क्रिया से फूँक कर बनाया जाय। भस्म। जैसे—अबरक का कुश्ता। चाँदी का कुश्ता। सोने का कुश्ता।

कुश्ती–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दो आदमियों का परस्पर एक दूसरे को बलपूर्वक पछाड़ने या पटकने के लिये लड़ना। मल्लयुद्ध। पकड़।

यौ०—कुश्तीबाज़ = कुश्ती लड़नेवाला।

क्रि० प्र०—लड़ना।—जीतना।—हारना।—करना।—होना।

मुहा०—कुश्ती में बद़ा रहना = कुश्ती में जीत होना। कुश्ती बराबर रहना या छूटना = कुश्ती में किसी का न हारना। दोनों पक्षों का बराबर रहना। कुश्ती मारना = कुश्ती जीतना। कुश्ती में दूसरे को पछाड़ना। कुश्ती बदना = कुश्ती लड़ने का निश्चय करना। कुश्ती मांगना = (किसी को) अपने साथ कुश्ती लड़ने के लिये कहना। कुश्ती लड़ाना = (किसी को) शिक्षा देने के लिये (उससे) लड़ना। कुश्ती खाना = कुश्ती में हार जाना। कुश्तमकुश्ता = मुठभेड़। लड़ाई।

कुश्तीबाज़–वि० [फ़ा०] कुश्ती लड़नेवाला। लड़ंता। पहलवान।

कुषुंभ–संज्ञा पुं० [सं०] कीड़ों की वह थैली वा कोश जिसमें उनका विष रहता है।

कुष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोढ़। (२) कुट नामक ओषधि। (३) कुड़ा नामक वृक्ष।

कुष्ठकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] भुईंखखसा नाम की लता। मार्कंडिका। भूम्याहुल्य।

कुष्ठगंधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] एलुआ।

कुष्ठघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] हितावली नाम की ओषधि।

कुष्ठघ्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कठूमर।

कुष्ठसूदन–संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

कुष्ठहृत्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खैर का पेड़। (२) विटखदिर। (३) कुष्ठनाशक।

कुष्ठारि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अर्कपत्र। (२) गंधक। (३) परवल। (४) दे० "कुष्ठहृत्"।

कुष्ठी–संज्ञा पुं० [सं० कुष्ठिन्] [स्त्री० कुष्ठिनी] कोढ़ी। वह जिसे कोढ़ हुआ हो।

कुष्मांड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुम्हड़ा। (२) एक प्रकार के देवता जो शिव के अनुचर हैं। (३) जरायु। गर्भस्थली।

कुसंग–संज्ञा पुं० [सं०] बुरे लोगों का साथ। बुरी सोहबत। उ०—उपजै विनसै ज्ञान जिमि, पाइ सुसंग कुसंग।—तुलसी।

कुसंगति–संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरों का संग। बुरे लोगों के साथ उठना बैठना। उ०—को न कुसंगति पाइ नसाई।—तुलसी।

कुसंस्कार–संज्ञा पुं० [सं०] बुरा संस्कार। चित्त में बुरी बातों का जमना। अंतःकरण में अयथार्थ वा निषिद्ध बात का प्रभाव जिससे बुद्धि ठीक निश्चय न कर सके वा मन अच्छे कामों की ओर न जाय।

कुस–संज्ञा पुं० दे० "कुश"।

कुसगुन–संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० सगुन] (१) बुरा सगुन। असगुन। कुलक्षण। उ०—कुसगुन लंक अवध अति सोकू।—तुलसी।

कुसमय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा समय। (२) अनुपयुक्त अवसर। वह समय जो किसी कार्य्य के लिये ठीक न हो। (३) नियत से आगे वा पीछे का समय। (४) संकट का समय। दुःख के दिन।

कुसर–संज्ञा पुं० [देश०] पानीबेल वा मूसल नामक लता की जड़ जो दवा के काम में आती है।

कुसल*†–वि०, संज्ञा पुं० दे० "कुशल"।

कुसलई*–संज्ञा स्त्री० [सं० कुशल + ई (प्रत्य०)] निपुणता। चतुराई।

उ०—जो कहुँ सिखई जाहिँ सुनैनी कला कुसलई सारी। तौ मनुजन की कौन चलाई मोहित हाेंय चतुरभुजधारी।—प्रताप।

कुसलछेम–संज्ञा पुं० दे० "कुशलक्षेम"।

कुसलाई*–संज्ञा स्त्री० [सं० कुशल + ई (प्रत्य०)] (१) कुशलता। निपुणता। (२) कुशल क्षेम। खैरियत। आनंद मंगल। उ०—कौसिक राउ लिये उर लाई। कुहि असीस पूछी कुसलाई।—तुलसी।

कुसलात*–संज्ञा स्त्री० दे० "कुशलात"।

कुसली*–वि० दे० "कुशली"।

† संज्ञा पुं० [हिं० कसैली] (१) आम की गुठली। (२) एक पकवान जो आम की गुठली के आकार का होता है और जिसके भीतर मीठा पूर वा चूरा भरा रहता है। गोझा। पिराक।

कुसवा–संज्ञा पुं० [सं० कुश] जड़हन का एक रोग जिसमें उसके पत्ते पीले पड़ जाते हैं, और उनका रंग खैर के ऐसा लाल हो जाता है। खैरा।

कुसवारी–संज्ञा पुं० [सं० कोशकार] (१) रेशम का जंगली कीड़ा जो बेर और पियासाल आदि पेड़ों पर कोया बना कर उसके भीतर रहता है। इस कीड़े के जीवन में चार अवस्थायें होती हैं, जिन्हें युग कह सकते हैं। सबसे पहले यह अंडे के रूप में रहता है। अंडे से निकल कर यह कमला की तरह का कीड़ा हो जाता है। फिर उसमें पक्षावरण दिखाई पड़ते हैं और वह तागे निकालता है। अंत में वह कोए से निकल कर फतिंगा होकर उड़ने लगता है, जोड़े खाता है और मर जाता है। जिन कीड़ों की ये चार अवस्थाएँ वा एक पीढ़ी वर्ष भर में बीतती हैं वे एक-युगक कहलाते हैं। कहीं कहीं, जैसे चीन में, ऐसे कीड़े भी पाए जाते हैं जिनकी वर्ष भर में दो पीढ़ियाँ हो जाती हैं। ऐसे कीड़ों को द्वियुगक कहते हैं। बहुत से देशों में त्रियुगक और चतुर्युगक कीड़े तक मिलते हैं। किरिमपिल्ला।

विशेष–दे० "रेशम"।

(२) रेशम का कोया।

कुसांब–संज्ञा पुं० दे० "कुशांब"।

कुसाइत–संज्ञा स्त्री० [सं० कु + अ० सायत] (१) बुरी साइत। बुरा मुहूर्त। कुसमय। उ०—न जानिये आज किस कुसाइत में घर से निकले कि हाथ गरम होना कैसा, एक फूटी झंझी से भी भेंट न हुई।—सौ अजान और एक सुजान।

(२) बेमौका। अनुपयुक्त समय।

कुसाखी*–संज्ञा पुं० [सं० कु + शाखिन् = वृक्ष] बुरे पेड़। कुवृक्ष। उ०—सठ सुधरैं सत संग तें, गए बहुत बुध भाखि। जैसे मलय प्रसंग तें चंदन होहिँ कुसाखि।—दीनदयालु।

कुसारी–संज्ञा स्त्री० दे० "कुसवारी"।

कुसिया†–संज्ञा स्त्री० दे० "कुसी"।

कुसियार–संज्ञा पुं० [सं० कोशकार] एक प्रकार की ईख जो मोटी सफ़ेद और नरम होती है। इसमें रस अधिक होता है। इसे विशेष कर लोग चूसने के काम में लाते हैं, इससे गुड़ नहीं बनाते। थून।

कुसियारी–संज्ञा पुं० दे० "कुसवारी"।

कुसी–संज्ञा स्त्री० [सं० कुशी] हल का फाल।

कुसीद–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुसीदिक] (१) ब्याज पर रुपया देने की रीति। सूद। ब्याज। वृद्धि। (२) ब्याज पर दिया हुआ धन।

यौ०—कुसीदपथ। कुसीदवृद्धि।

(३) रक्त चंदन।

कुसीदपथ–संज्ञा पुं० [सं०] सूद पर रुपया देना।

कुसीदिक–वि० [सं०] [संज्ञा कुसीदिकी] सूद पर रुपया देने-वाला। महाजन।

कुसीनार–संज्ञा पुं० दे० "कुशीनार"।

कुसुंब–संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ या कुसुम्बक] एक बड़ा वृक्ष जो भारत, बरमा और चीन में होता है। इसकी लकड़ी कड़ी और मज़बूत होती है और कोल्हू की जाट और गाड़ियाँ बनाने के काम में आती है। इसकी लाख बहुत अच्छी होती है और अधिक दामों पर बिकती है। इसके फल खाये जाते हैं और बीजों से तेल निकलता है, जो जलाने, खाने और औषध के काम में आता है। इसकी पत्तियाँ ८—१० अंगुल लंबी होती हैं और सींके में दो दो आमने सामने लगती हैं। फूल चंपा के फूल के रंग के होते हैं। इसमें दो अंगुल लंबे नुकीले, चिकने फल लगते हैं जो क्वार कातिक में पकते हैं। जहाँ ये पेड़ अधिक होते हैं, जैसे अवध में, वहाँ इनकी पत्तियाँ गरमी में चौपायों को खिलाई जाती हैं।

कुसुंबिया–संज्ञा स्त्री० दे० "कुसुंब"।

कुसुंभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुसुम। बरैं। अग्निशिखा। (२) केसर। कुमकुम।

कुसुंभा–संज्ञा पुं० [सं० कुसुंभ] (१) कुसुम का रंग। (२) अफ़ीम और भाँग के योग से बना हुआ एक मादक द्रव्य।

संज्ञा स्त्री० [सं०] आषाढ़ शुक्ल पक्ष की छठ।

कुसुंभी–वि० [सं० कुसुंभ] कुसुम के रंग का। लाल। उ०—(क) मुख तँबोल सिर चीर कसुंभी। कानन कनक जड़ाऊ खुंभी।—जायसी। (ख) नँदनंदन तिय छबि तनु काछे। मनौं गोरि साँवरी नारि दोउ, जात सहज में आछे। श्याम अंग कुसुंभी नई सारी, फल गुंजा की भाँति। इत नागरि नीलांबर पहिरे जनु दामिनि घन काँति।—सूर।

कुसुम–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुसुमित] (१) फूल । पुष्प । (२) वह गद्य जिसमें छोटे छोटे वाक्य हों । जैसे—हे राम ! दास पर दया करो । (३) आँख का एक रोग । (४) जैनियों के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी के छठे अर्हत के गणधर । (५) एक राजा का नाम । (६) मासिकधर्म । रजोदर्शन । रज ।

मुहा०—कुसुम का रोग = रजस्राव का रोग ।

(७) छंद में ठगण का छठा भेद, जिसमें लघु गुरु लघु लघु (।ऽ।।) होते हैं, जैसे—"कृपा कर" ।

संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ, कुसुम्भक] (१) दे० "कुसुंब" । (२) हनुमत के मत से मेघ राग का एक पुत्र । यह षाड़व जाति का राग है और इसके गाने का समय दोपहर है । (३) लाल रंग । जैसे—कुसुम रंग ।

संज्ञा पुं० [सं० कुसुंभ] एक पौधा जो पाँच छः फुट ऊँचा होता है और जो रबी की फ़सल के साथ खेतों में बीजों या फूलों के लिये बोया जाता है । यह दो प्रकार का होता है, एक जंगली और काँटेदार, और दूसरा बिना काँटे का । जंगली कुसुम की पत्तियों की नोकों पर काँटे होते हैं और उसके बीजों से तेल निकलता है । इसके फूल पीले, लाल, गुलाबी और सफ़ेद होते हैं । दूसरी जाति में काँटे नहीं होते अथवा बहुत कम होते हैं । इसके बीजों से तेल और फूलों से बढ़िया लाल रंग निकलता है । इसके फूल प्रायः पीले या नारंगी रंग के होते हैं और कभी कभी बैंगनी या गुलाबी रंग के फूल भी पाये जाते हैं । पीले और लाल फूल वाले कुसुम खेतों में बीज और फूल के लिये और दूसरे रंग के फूल वाले बगीचों में शोभा के लिये लगाये जाते हैं । इसकी डालियों के सिरे पर छोटा गोल, नुकीला ढोंड़ निकलता है, जिस पर पतले पतले बहुत से फूल होते हैं । जो पेड़ फूल के लिये बोये जाते हैं उनके फूल नित्य प्रातः काल चुन लिये और छाया में सुखाये जाते हैं, पर जो बीज के लिये बोये जाते हैं उनके फूल वृक्षों में ही लगे लगे सूख जाते हैं । चुने फूल एक कपड़े में रख कर ऊपर से खार मिला हुआ जल गिराते हैं जो पहले तो पीला हो कर निकलता है, पर पीछे खार आदि मिलाने से वह लाल हो जाता है । इसका बीज डाल कर कोल्हू में पेरा जाता है और उससे जो तेल निकलता है वह खाने, जलाने और शरीर में लगाने के काम में आता है । वैद्यक में तेल को दस्तावर माना है । इसके सिवा यह कई तरह से ओषधियों में काम आता है और उससे मोमजामा बनता है । बरें ।

कुसुमकार्मुक–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

कुसुमपुर–संज्ञा पुं० [सं०] पटने का एक प्राचीन नाम ।

कुसुमरेणु–संज्ञा पुं० [सं०] पराग ।

कुसुमबाण–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

कुसुमविचित्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में नगण, यगण, नगण, यगण का क्रम होता है । उ०—नयन यही ते तुम बदनामा । हरि छवि देखो किन बसु जामा । अनुजसमेता जनकदुलारी । कुसुम विचित्रा कर फुलवारी ।

कुसुमस्तवक–संज्ञा पुं० [सं०] दंडक का एक भेद जिसके प्रत्येक पद में नौ वा नौ से अधिक सगण होते हैं । उ०—भजिये हर को हर को हर को हर को हर को हर को हर को हर को ।

कुसुमशर–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

कुसुमांजन–संज्ञा पुं० [सं०] जिस्ते का भस्म ।

कुसुमांजलि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फूल से भरी हुई अंजली । षोड़शोपचार पूजन में अंतिम उपचार जिसमें देवता पर हाथ की अँजुली में फूल भर कर चढ़ाते हैं । पुष्पांजलि । (२) न्याय का एक ग्रंथ जिसे उदयनाचार्य्य ने बनाया है ।

कुसुमाकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वसंत । (२) छप्पय का एक भेद जिसमें ६ गुरु, १४० लघु, १४६ वर्ण, १५२ मात्राएँ अथवा ६ गुरु, १३६ लघु, १४२ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं । (३) बाग । बगीचा । वाटिका ।

कुसुमागम–संज्ञा पुं० [सं०] वसंत ।

कुसुमायुध–संज्ञा० पुं० [सं०] कामदेव ।

कुसुमाल–संज्ञा पुं० [सं०] चोर ।

कुसुमावलि–संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलों का गुच्छा । फूलों का समूह ।

कुसुमासव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) फूल का रस । मकरंद । (२) मधु । पुष्पमधु ।

कुसुमित–वि० [सं०] फूला हुआ । पुष्पित ।

कुसुमितलता वेल्लिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] अठारह अक्षरों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, तगण, नगण, यगण, यगण, यगण का क्रम रहता है । उ०—माता नायो काल इन बरजोरी दही मूँ हमारे । झूठे लाईं तो पहँ उलहनो आज होतै सकारे । मैं ना जाऊँ अंत कतहुँ लखौं नित्य भानू सुता की । शोभा वारी है कुसुमितलता वेल्लिता वीचि जाकी ।

कुसुमेषु–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

कुसुली†–संज्ञा स्त्री० दे० "कुसली" ।

कुसूत–संज्ञा पुं० [सं० कु + सूत्र, प्रा० सुत्त] (१) बुरा सूत । उ०—कहहिं कबीर करम सों जोरी । सूत कुसूत बिनै भल कोरी ।—कबीर । (२) कुप्रबंध । कुब्योंत । उ०—जीबे की न लालसा दयाल महादेव मोहि, मालुम है तोहिं मरिबेई को रहतु हौं । कामरिपु, राम के गुलामन को कामतरु-अवलंब

जगदंब सहित चहतु हैं। रोग भर भूत से कुसूत भयो तुलसी को भूतनाथ पाहि पद पंकज गहतु हैं। ज्याइये तो जानकीजीवन जन जानि जिय मारिये तो माँगी मीचु सूधिये कहतु हैं।—तुलसी।

कुसूर—संज्ञा स्त्री० दे० "कसूर"।

कुसूल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवयोनि। (२) दे० "कुशूल"।

कुसृत—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रजाल। हथखंडा। (२) दुराचार। (३) शठता। दुष्टता।

कुसेसय*—संज्ञा पुं० [सं० कुशेशय] कमल। पद्म। उ०—देखरी हरि के चंचल नैन। खंजन मीन मृगज चपलाई, नहिँ पटतर एक सैन। राजिव दल इंदीवर सतदल, कमल कुसेसय जाति। निसि मुद्रित प्रातहि वे विगसत ए विगसत दिन रात।—सूर।

कुस्तंबरु—संज्ञा पुं० [सं०] धनियाँ का बीज।

कुस्ती—संज्ञा स्त्री० दे० "कुश्ती"।

कुस्तुंबरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनियाँ।

कुस्तुभ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

कुस्सा—संज्ञा पुं० [देश०] कुदाल।

कुह—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

कुहक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) माया। धोखा। जाल। फ़रेब।

यौ०—कुहकजीवी।

(२) धूर्त। मक्कार। वंचक। (३) मेंढक। (४) मुर्गे की कूक। (५) नागविशेष। इंद्रजाल जाननेवाला।

कुहकना—क्रि० अ० [सं० कुहक वा कुहू] पक्षी का मधुर स्वर में बोलना। पीकना। उ०—कुहकहिँ मोर सुहावन लागा। होय कुराहर बोलहिँ कागा।—जायसी।

विशेष—प्रायः मोर और कोयल के ही बोलने को कुहकना कहते हैं।

कुहकुह—संज्ञा पुं० [सं० कुमकुम] केसर। कुमकुम। जाफ़रान। उ०—कनक हाट सब कुहकुह लीपी। बैठि महाजन सिंहल दीपी।—जायसी।

कुहक्क—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के आठ भेदों में से एक। इसमें दो द्रुत और दो लघु होते हैं।

कुहन—वि० [सं०] (१) ईर्ष्या करनेवाला। (२) मक्कार। धोखेबाज़। संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूहा। मूसा। (२) मिट्टी का बर्तन। (३) शीशे का बर्तन। (४) साँप।

कुहना†—क्रि० स० [सं० कु + हनन = मारना] मारना। बुरी तरह से मारना। उ०—मंगल की राशि परमारथ की खानि जानी बिरचि बनाइ विधि केसव बसाई है। प्रलय हू काल राखी सूलपाणि सूल पर मीचु बसै नीच सोऊ चाहत खसाई है। छाड़ि छितिपाल तो परीछित भयो कृपालु भलो कियो खल को निकाई सो नसाई है। पाहि हनुमान करुणानिधान राम पाहि काशी कामधेनु कलि कुहत कसाई है।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [अनु० कुहू = कोकिल की बोली] गाना। अलापना। उ०—आपु व्याध को रूप धरि कुहौ कुरंगहि राग। तुलसी जौं मृग मन मरै परै प्रेम पर दाग।—तुलसी।

कुहनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कफोणि, प्रा० कहोणि] (१) हाथ और बाहु के जोड़ की हड्डी। उ०—किसी को चुटकी, किसी को कुहनी, किसी को ठोकर निपट लड़ाका।—नज़ीर। (२) ताँबे या पीतल की बनी हुई टेढ़ी नली, जो हुक्के की निगाली में लगाई जाती है।

कुहनीउड़ान—संज्ञा स्त्री० [सं० कुहनी + उड़ान] कुश्ती का एक पेंच जिसमें फुरती से कुहनी के झटके से प्रतिद्वंद्वी के हाथों को पकड़ कर रद्दा दिया जाता है। यह पेंच ऐसी अवस्था में काम में लाया जाता है जब प्रतिद्वंद्वी के दोनों हाथ अपनी गर्दन पर होते हैं।

यौ०—कुहनी उड़ान की टाँग = कुश्ती का एक पेंच। जब शत्रु अपने दोनों हाथ खेलाड़ी के कंधे पर रक्खे तो खेलाड़ी शत्रु का एक हाथ पकड़ कर और दूसरा हाथ केहुनी से उड़ा कर अपनी बगल में दबा उसी समय अपनी टाँग झोंके से उस के पैर में मारे कि वह गिर पड़े। उड़ाया हुआ हाथ खेलाड़ी की जाँघ में अड़ा देना और पैर से पीछे की टाँग मार कर गिराना इस दाँव का तोड़ कहलाता है। कुहनी उड़ान की डूब = कुश्ती का एक पेंच। जब शत्रु अपने कंधे पर हाथ रक्खे तब उसकी दोनों कुहनियों को उड़ा कर झट उसके पेट में घुसे और जांघ से पकड़ उसके दोनों पैरों को उड़ाता हुआ गिरावे।

कुहप—संज्ञा पुं० [सं० कुहू = अमावस्या + प] रजनीचर। राक्षस। उ०—मोहे मुनि मानव विलोकि मधु मधुवन आन बुधि होत देव, दानव, कुहप की।—देव।

कुहबर†—संज्ञा पुं० दे० "कोहबर"।

कुहर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गड्ढा। बिल। छेद। सूराख़।

यौ०—कर्णकुहर।

(२) गले का छेद।

संज्ञा स्त्री० [देश०] बहरी। एक प्रकार का शिकरा जो पक्षियों को पकड़ता है।

कुहरा—संज्ञा पुं० [सं० कुहेड़ी] वायु में जल के अत्यंत सूक्ष्म कणों का समूह जो ठंढ पाकर वायु में मिली भाप के जमने से उत्पन्न होता है। ये जलकण पत्तियों और घासों पर पड़ कर बड़ी बड़ी बूँदों के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

क्रि० प्र०—पड़ना।

कुहराम—संज्ञा पुं० [अ० कहर-आम] (१) विलाप। रोनापीटना। आर्त्तनाद। उ०—रनिवास में कुहराम पड़ गया।—लल्लू। (२) हलचल। वावैला।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—पड़ना।—मचना।—होना।

कुहाँर†–संज्ञा पुं० दे० "कुम्हार"।

कुहाना*†–क्रि० अ० [सं० क्रोधन, पा० कोहन] रिसाना। नाराज़ होना। रूठना। उ०—(क) राजै लोन सुनावा लाग दुहूँ जस लोन। आप कुहाय मँदिर कहुँ सिंह जान औ गोन।—जायसी। (ख) जानेउँ परम राउ हँसि कहई। तुम्हहिँ कुहाब परम प्रिय अहई।—तुलसी।

कुहारा*–संज्ञा पुं० [सं० कुठार] [स्त्री० कुहारी] कुल्हाड़ा। टाँगी। उ०—(क) बिरह कुहारी तन बहै घाव न बाँधै रोह। मरने का संशय नहीं छूटि गया भ्रम मोह।—कबीर। (ख) कबिरा यह तन बन भया कर्म जो भयो कुहारि। आप आप को काटि है कहै कबीर बिचारि।—कबीर। (ग) थोरो जीवन बहुत न भारो। कियो न साधु समागम कबहूँ, लियो न नाम तुम्हारो।...............इंद्रिय स्वाद बिवस निसि बासर, आपु अपनपो हारयो। जल उनमेद मीन ज्यों बपुरो, पाउँ कुहारो मारयो।—सूर।

कुहासा†–संज्ञा पुं० [सं० कुहेड़ी] कुहरा। कुहेसा।

कुहिर–संज्ञा पुं० दे० "कुहरा"।

कुहिरा–संज्ञा पुं० दे० "कुहरा"।

कुही–संज्ञा स्त्री० [सं० कुधि = एक पक्षी] एक प्रकार की शिकारी चिड़िया जो बाज से छोटी होती है। कुहर। उ०—नीची यै नीची निपट, दीठि कुही लौं दौरि। उठि ऊँचै नीचै दियो, मन कुलंग झकझोरि।—बिहारी।

[फ़ा० कोही = पहाड़ी] घोड़े की एक जाति। टाँगन। उ०—तुरकी ताजी कुही देस कंधारी बलकी। अरबी एराखी रु पर्वती कच्छी थलकी।—सूदन।

कुहुक–संज्ञा पुं० [अनु०] पक्षियों का मधुरस्वर। पीक।

कुहुकना–क्रि० अ० [हिं० कुहुक] पक्षियों का मधुर स्वर में बोलना। कुहुकना। उ०—कुहूँ कुहूँ कोकिलैं कुहुक रहे थे।—सदल मिश्र।

कुहुकबान–संज्ञा पुं० [हिं० कुहुकना + बाण] एक प्रकार का बाण जो बाँस की कई पट्टियों को जोड़ कर बनाया जाता है और जिसे चलाते समय कुछ शब्द निकलता है। उ०—चले चंदबान घनबान औ कुहूकबान चलत कमान धूम आसमान छ्वै रहो।—भूषण।

कुहू–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अमावस्या। वह अमावस्या जिसमें चंद्रमा बिलकुल दिखलाई न दे। (२) अमावस्या की अधिष्ठात्री देवी और अंगिरा ऋषि की कन्या जो उनकी श्रद्धा नाम की स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। (३) प्लक्ष द्वीप की एक नदी। (४) मोर या कोयल की कूक। मोर या कोयल की बोली। (इस अर्थ में "कुहू" के साथ कंठ, मुख, रव आदि शब्द लगाने से कोकिलवाची शब्द बनते हैं। जैसे—कुहूकंठ, कुहूमुख, कुहूरव आदि।

यौ०—कुहू कुहू। उ०—(क) डह डहे भए द्रुम रंचक हवा के गुन कुहू कुहू मोरवा पुकारि मोद भरिगे।—रसकुसुमाकर। (ख) कारी कुरूप कसाइनै ये सु कुहू कुहू क्वैलिया कूकन लागीं।—पद्माकर।

कुहूकबान–संज्ञा पुं० [कुहूक + बाण] दे० "कुहुकबान"।

कूँख†–संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्षि] कोख। पेट। गर्भ।

कूँखना–क्रि० अ० [सं० कुन्थन = क्लेश] दुःख वा पीड़ा से उहँ उहँ शब्द करना। काँखना।

कूँग–संज्ञा पुं० [हिं० कुनना] एक यंत्र जिस पर कसेरे पीतल ताँबे के बरतन खरादते और जिला करते हैं। खराद। चरख।

कूँगा–संज्ञा पुं० [देश०] बबूल की छाल का काढ़ा जिसमें डुबो कर चमड़ा सिझाया जाता है।

कूँच–संज्ञा स्त्री० [हिं० कूँचा] (१) खस वा नारियल के रेशे का बना हाथ डेढ़ हाथ लंबा एक बड़ा ब्रुश जिससे जोलाहे अपने ताने का सूत साफ़ करते हैं। (२) लोहारों की बड़ी सँड़सी।

संज्ञा स्त्री० [सं० कूचिका = नली] मोटी नस जो मनुष्यों की एँड़ी के ऊपर और पशुओं के टखने के नीचे होती है। पै। घोड़ा नस।

मुहा०—कूँचें काटना = घोड़े की नस काट कर बेकाम कर देना।

कूँचना†–क्रि० स० [हिं० कूटना। अनु० "कुच कुच"] कूटना। कुचलना। उ०—कह आसंग अहैं हम पाथर साँच बात बरनी। समर शत्रु मुख कूँचत छन में कठिन करैं करनी।—गोपाल।

मुहा०—मुँह कूँचना = (१) मारना। पीटना। (२) मान ध्वंस करना। ध्वस्त करना।

कूँचा–संज्ञा पुं० [सं० कूर्च वा कूच] [स्त्री० कूँची] (१) किसी रेशेदार लकड़ी वा मूँज आदि को कूट कर बनाया हुआ झाड़ू जिससे चीज़ों को झाड़ते वा साफ़ करते हैं। झाड़ू। बोहारी।

(२) टूटे हुए जहाज़ के टुकड़े।

संज्ञा पुं० [हिं० करछा] भड़भूजे का करछा। करछा।

कूँची–संज्ञा स्त्री० [हिं० कूँचा] (१) छोटा कूँचा। छोटा झाड़ू। (२) कूटी हुई मूँज या बालों का गुच्छा, जिससे चीज़ों की मैल साफ़ करते वा उन पर रंग फेरते हैं। जैसे—सफ़ेदी करने की कूँची, सोनार की कूँची। (३) चित्रकार की रंग भरने की कूँची। तूलिका।

मुहा०—कूँची देना = (१) कूँची से रंग चढ़ाना। (२) कूँची से साफ़ करना। निखारना। † (३) खेत को एक कोने से दूसरे कोने तक जोतना।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कूज़ा] (१) कुल्हिया जिसमें मिस्री जमाई

जाती है। उ०—कूँची की चीनी। (२) मिट्टी का वह बरतन जिसमें कोल्हू से निकल कर रस इकट्ठा होता है।

कूँज—संज्ञा पुं० [सं० क्रौंच, पा० कौंच] क्रौंच पक्षी। कराकुल।

कूँजड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुँजड़ा] कुँजड़े की स्त्री। वह स्त्री जो शाक तरकारी इत्यादि बेचती है। कबाड़िन।

कूँजना*†—क्रि० अ० दे० "कूजना"।

कूँजरी—संज्ञा स्त्री० दे० "कूँजड़ी"।

कूँड—संज्ञा स्त्री० [सं० कुंड] (१) सिर को बचाने के लिये लोहे की एक ऊँची टोपी जिसे लड़ाई के समय पहनते थे। खोद। उ०—अंगरी पहिरि कूँड सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं।—तुलसी। (२) चौगोशिया टोपी के आकार का, मिट्टी वा लोहे का गहरा बरतन, जिसे ढेंकुल में लगाकर सिँचाई के लिये कूएँ से पानी निकालते हैं। (३) वह गहरी लकीर जो खेत में हल जोतने से बन जाती है। कुंड।

कूँडा†—संज्ञा पुं० [सं० कुंड] [स्त्री० कूँडी] (१) पानी रखने का मिट्टी का गहरा बरतन। (२) गमला। छोटे पौधे लगाने का थाला। (३) रोशनी करने की एक प्रकार की बड़ी हाँडी जिसे डोल भी कहते हैं। (४) मिट्टी वा काठ का बड़ा बरतन जिसमें आटा माँड़ते हैं। कठौता। मठौता।

कूँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूँडा] (१) पत्थर का बना हुआ कटोरे के आकार का बरतन। पत्थर की प्याली। पथरी। (२) छोटी नाँद। (३) कोल्हू के बीच का वह गड्ढा जिसमें जाट रहती है।

† संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडली] एँडुरी जिसे सिर पर रख कर स्त्रियाँ घड़ा उठाती हैं।

कूँथना†*—संज्ञा पुं० [सं० कुंथन = दुःख उठाना] (१) दुःख से अस्पष्ट शब्द मुँह से निकालना। कराहना। (२) कबूतरों का गुटरगूँ करना। उ०—गूढ़ गृहचरी चिरी चुरी चहचर करैं कुंथत कपोत भट काम के कटक के।—देव।

कूईं—संज्ञा स्त्री० [सं० कुव + ई (प्रत्य०)] जल में होनेवाला कमल की तरह का एक पौधा, जिसके पत्ते कमल ही के पत्तों के समान, पर कुछ लंबे और कटावदार होते हैं। यह पौधा भारतवर्ष भर में ऐसे तालों, पोखरों वा गड्ढों में होता है, जिनमें बरसात का पानी इकट्ठा होता है। यह बरसात के प्रारंभ में बीजों वा पुरानी जड़ों से निकलता है। इसके पत्ते पानी के ऊपर रहते हैं और डंठल भीतर। शरद ऋतु अर्थात् क्वार कातिक में, इसमें सुंदर सुंदर सफ़ेद फूल लगते हैं, जो लंबी लंबी नालों वा डंठलों में लगे रहते हैं। इसकी नाल और कमल की नाल में इतना भेद होता है कि कमल की नाल के ऊपर गड़नेवाली रोइँ होती है, पर इसकी नाल चिकनी होती है। कूईं वा कुमुदुनी के फूल रात को खिलते हैं और चाँदनी रात में बहुत मनोहर लगते हैं। इसी से कवियों ने चंद्रमा का नाम "कुमुदबांधव" आदि रक्खा है। सफ़ेद फूल ही की कूईं अधिक देखने में आती है, पर कहीं कहीं लाल और पीले फूलों की कूईं भी होती है। कमल के फूल की तरह इसके फूल के भीतर छत्ता नहीं होता, बल्कि एक कर्णिकामंडल होता है, जिसके नीचे नाल की घुंडी होती है। यही घुंडी बढ़ कर लड्डू की तरह हो जाती है और बीजों से भर जाती है। ये बीज काली सरसों की तरह के होते हैं और बेरा कहलाते हैं। भूनने पर इनके सफ़ेद लावे वा खीलें हो जाती हैं। व्रत के दिन इन बीजों के लावे खाए जाते हैं। पटने में बेरे के लड्डू अच्छे बनते हैं। कूईं की जड़ भी खाई जाती है और दवा के काम में आती है। वैद्यक में कूईं का फूल शीतल, कफ़ और पित्त नाशक तथा दाह और श्रम को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—कैरव। कुमुदिनी। कुमुद। गर्दभ। सौगंधिक। कच्छ। कुव। सितोत्पल। कुवल। (लाल कूईं)—हल्लक। कोका। (सफ़ेद कूईं)—उत्पल। रात्रिपुष्प। हिमाब्ज। शीत जलज। निशाफुल्ल। कुवल। कुवलय। कुवेल।

कूक—संज्ञा स्त्री० [सं० कूजन] (१) लंबी सुरीली ध्वनि। मोर या कोयल की बोली। उ०—(क) तोरन मनहुँ इंद्रधनु सोहत मोर कूक सहनाई। बरसत आनँद आँसु अंबु सोइ अवध प्रजा समुदाई।—रघुराज। (ख) बेलिन सों लपटाय रही हैं तमालन की अवली अति कारी। कोकिल कूक कपोतन के कुल केलि करै अति आनँद बारी।—मतिराम।

क्रि० प्र०—मारना।

(२) महीन और सुरीले स्वर से रोने का शब्द। (जैसे स्त्रियों का)।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कुंजी] घड़ी वा बाजे आदि में कुंजी देने की क्रिया, जिससे गति उत्पन्न हो। जैसे,—यह आठ दिनों की कूक की घड़ी है।

कूकना—क्रि० अ० [सं० कूजन] लंबी सुरीली ध्वनि निकालना। कोयल या मोर का बोलना। उ०—(क) कौंधत दामिनि कूकत मोर रटैं मिलि भेकी भयानक ठोढ़े।—रघुनाथ। (ख) कारी कुरूप कसाइनैं ये सु कुहू कहू कै लिया कूकन लागीं।—पद्माकर।

क्रि० स० [हिं० कुंजी] कमानी कसने के लिये घड़ी वा बाजे के पेंच को कसना। घड़ी चलाने या बाजा बजाने के लिये कुंजी ऐंठना। कुंजी भरना।

कूकर†—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुर] [स्त्री० कूकरी] कुत्ता। श्वान।

यौ०—कूकरकौर। कूकरनींदिया।

कूकरकौर—संज्ञा पुं० [हिं० कूकर + कौर] (१) वह बचा खुचा जूठा भोजन जो कुत्ते के आगे डाला जाता है। टुकड़ा। (२) तुच्छ वस्तु। उ०—ताको कहाय कहै तुलसी तू लजात न माँगत

कूकरकौरहि । जानकी जीवन को जन ह्वै जरि जाउ सो जीभ जो जाँचत औरहि ।—तुलसी ।

कूकरचंदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कूकर + सं० चंड] एक जंगली जड़ी का नाम जिसकी पत्तियों को पीस कर कुत्ते के काटे हुए स्थान पर रखते हैं ।

कूकरनिंदिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० कूकर + नींद] वह हलकी नींद जो थोड़े ही खटके से टूट जाय ।

कूकर बसेरा–संज्ञा पुं० [हिं० कूकर + बसेरा] थोड़ा विश्राम ।
क्रि० प्र०—करना ।—लेना ।

कूकर भंगरा–संज्ञा पुं० [हिं० कूकुर + हिं० भंगरा] (१) काला भंगरा । (२) कुकरौंधा ।

कूकरमुत्ता†–संज्ञा पुं० दे० "कुकुरमुत्ता" ।

कूकरलेंड–संज्ञा पुं० [हिं० कूकर + लेंड] कुत्तों का मैथुन ।

कूका–संज्ञा पुं० [पं० कूकना = चिल्लाना] सिक्खों का एक पंथ जिसे सन् १८६७ में रामसिंह नामक एक बढ़ई ने चलाया था । वह अपना उपदेश बहुत चिल्ला चिल्ला कर देता था और श्रोता लोग भी खूब भक्ति में लीन होकर चिल्ला चिल्ला कर ग्रंथ साहब के पद गाते थे इसी से इस पंथ का नाम ही 'कूका' पड़ गया ।

कूकी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कीड़ा जो जाड़े की फ़सलों को हानि पहुँचाता है ।

कूख†–संज्ञा स्त्री० दे० "कोख" ।

कूच–संज्ञा पुं० [तु०] प्रस्थान । रवानगी ।
मुहा०—कूच कर जाना = मर जाना । (किसी के) देवता कूच कर जाना = होश हवास जाता रहना । भय या किसी और कारण से विवेक नष्ट हो जाना । कूच का डंका वा नक़ारा बजाना = (१) रवाना होना । (२) मर जाना । कूच बोलना = कूच करना ।

कूचा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) छोटा रास्ता । गली ।
यौ०—कूचागर्दी = इधर उधर फिरना । व्यर्थ घूमना ।
मुहा०—कूचा झाँकना = इधर उधर ठोकर खाना । गली गली मारा फिरना ।
(२) दे० "कूँचा (१), (२)" ।

कूचो–संज्ञा स्त्री० दे० "कूँची" ।

कूज–संज्ञा स्त्री० [हिं० कूजना] (१) ध्वनि । शब्द । आवाज़ । (२) शब्द करने की क्रिया ।

कूजन–संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कूजित] दे० "कूज" ।

कूजना–क्रि० अ० [सं० कूजन] (१) बोलना । मधुर शब्द करना । उ०—(क) विमल सलिल सरसिज बहु रंगा । जल खग कूजत गुंजत भृंगा ।—तुलसी । (ख) कंबु कंठ नाना मणि भूषण, उर मुक्ता की माल । कनक किंकिणी नूपुर कलरव, कूजत बाल मराल ।—सूर ।

कूजा–संज्ञा पुं० [फ़ा० कूज़ा] (१) प्याले या पुरवे के आकार का मट्टी का बरतन । कुल्हड़ । (२) मिट्टी के पुरवे में जमाई हुई अर्द्ध गोलाकार मिसरी ।
संज्ञा पुं० [सं० कुब्जक] मोतिया या बेले का फूल । उ०—(क) कोइ कूजा सतवर्ग चमेली । कोई कदम सुरस रस बेली ।—जायसी । (ख) कूजो, मरुओ, मोगरो मिलि झूमक हो ।—सूर ।

कूजित–वि० [सं०] (१) जो बोला वा कहा गया हो । ध्वनित । (२) गूँजा हुआ या ध्वनिपूर्ण (स्थान आदि) । उ०—कोकिल कूजित कुंज कुटीर ।—हरिश्चंद्र ।

कूट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहाड़ की ऊँची चोटी । जैसे—हेमकूट, चित्रकूट । (२) सींग । (३) (अनाज आदि की) ऊँची और बड़ी राशि या ढेरी । उ०—कोस भरे लों हेम मणि अन्नन के करि कूट । विप्रन दीनों नंद नृप भई अलौकिक लूट ।—गोपाल ।
यौ०—अन्नकूट ।
(४) हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है । खोंपी । परिहारी । (५) लोहे का मोंगरा । हथौड़ा । (६) हरिनों के फँसाने का फंदा या जाल । (७) लकड़ी के म्यान में छिपा हुआ हथियार, जैसे—तलवार, गुप्ती आदि । (८) छल । धोखा । फ़रेब, जैसे—कूटनीति । (९) मिथ्या । असत्य । झूठ । (१०) अगस्त्य मुनि का एक नाम । (११) घड़ा । (१२) गुप्त वैर । कीना । (१३) नगर का द्वार । (१४) गूढ़ भेद । गुप्त रहस्य । (१५) जिसके अर्थ में हेरफेर हो । जिसका समझना कठिन हो । जैसे, सूर का कूट । (१६) वह हास्य या व्यंग्य जिसका अर्थ गूढ़ हो । उ०—करहिँ कूट नारदहिँ सुनाई । नीक कीन्ह हरि सुंदरताई ।—तुलसी । (१७) निहाई । (१८) वह बैल जिसके सींग टूटे हों ।
वि० [सं०] (१) झूठा । मिथ्यावादी । (२) धोखा देनेवाला । छलिया । (३) कृत्रिम । बनावटी । नक़ली । (४) प्रधान । श्रेष्ठ । (५) निश्चल । (६) धर्म्मभ्रष्ट ।
संज्ञा स्त्री० [हिं० कुट] कुट नाम की औषध ।
संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना या कूटना] काटने, कूटने या पीटने की क्रिया, जैसे—मारकूट, काटकूट ।
संज्ञा स्त्री० [हिं० कुटी] कुटी । झोपड़ा ।

कूटकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] छल । कपट । धोखा ।

कूटकर्मा–वि० [सं०] छली । कपटी । धोखेबाज़ ।

कूटता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कठिनाई । (२) झुठाई । (३) छल । कपट ।

कूटतुला–संज्ञा पुं० [सं०] वह तराज़ू जिसमें पसंगा हो वा जिसकी डंडी में कुछ हेर फेर हो । डांडीचोर तराज़ू ।

कूटत्व–संज्ञा पुं० दे० "कूटता"।

कूटना–क्रि० स० [सं० कुट्टन] (१) (किसी चीज़ को नीचे रख कर) ऊपर से लगातार बलपूर्वक आघात पहुँचाना, जैसे—धान कूटना, सड़क कूटना, छाती कूटना।

मुहा०—कूट कूट कर भरना = ठूँस ठूँस कर भरना। कस कस कर भरना। ठसाठस भरना। उ०—उसमें कूट कूट कर चालाकी भरी है।

(२) मारना। पीटना। ठोंकना। (३) सिल चक्की आदि में टांकी से छोटे छोटे गड्ढे करना या दांत निकालना। (४) बैल या भैंस का अंडकोष कूट कर उसे बधिया करना।

कूटनीति–संज्ञा स्त्री० [सं०] दांव पेंच की नीति या चाल। वह चाल या नीति जिसका रहस्य कठिनता से खुले। पालिसी।

कूटपाठ–संज्ञा पुं० [सं०] (संगीत में) मृदंग के चार वर्णों में से एक वर्ण।

कूटपालक–संज्ञा पुं० [सं०] पित्तज्वर।

कूटपाश–संज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों को फँसाने का जाल।

कूटपूर्व–संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों का त्रिदोषज ज्वर।

कूटमान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पैमाना जो ठीक नाप से बड़ा वा छोटा हो। (२) वह बांट जो ठीक तौल से हलका वा भारी हो।

कूटयुद्ध–संज्ञा स्त्री० [सं०] धोखे की लड़ाई। वह लड़ाई जिसमें शत्रु को धोखा दिया जाय।

कूटलेख–संज्ञा पुं० [सं०] झूठी वा जाली दस्तावेज़।

कूटलेखक–संज्ञा पुं० [सं०] जाली दस्तावेज़ लिखनेवाला। जालसाज़।

कूटशाल्मलि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का शाल्मलि जो जंगलों में होता है। इसके पत्ते जिंगनी के समान और फूल गहरे लाल रंग के होते हैं। इसकी जड़ औषधि के काम में आती है और वैद्यक में इसे कड़ुवा, चरपरा, गरम और कफ, प्लीहा, उदररोग और रुधिरविकार को दूर करनेवाला माना है। (२) यमराज की गदा। (३) नरक में शाल्मलि के आकार का लोहे का एक कँटीला वृक्ष।

कूटसाक्षी–संज्ञा पुं० [सं०] झूठा गवाह।

संज्ञा स्त्री० [सं०] झूठी गवाही। झूठी शहादत।

कूटस्थ–वि० [सं०] (१) सर्वोपरि स्थित। आला दर्जे का। (२) अटल। अचल। जिसमें कुछ अदल बदल न हो सके। (३) अविनाशी। विनाशरहित। (४) गुप्त। छिपा हुआ। अंतर्व्याप्त। पोशीदा।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्याघ्रनख नाम का सुगंधिद्रव्य। (२) परमेश्वर। परमात्मा। (३) जीव।

विशेष—सांख्य में "कूटस्थ" ऐसे आत्मा-पुरुष को कहते हैं, जो परिणामरहित हो और जागृत्, स्वप्न और सुषुप्त तीनों अवस्थाओं में एक समान रहे। न्याय में परमेश्वर को "कूटस्थ" कहा है और उसे जन्म-गुणरहित अर्थात् किसी से न उत्पन्न होनेवाला माना है।

कूटस्वर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] खोटा सोना। बनावटी सोना।

कूटा†–संज्ञा पुं० [हिं० कूटना] [स्त्री० कूटी] कुटनपन करनेवाला। कुटना।

कूटाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] जाली पासा। बनावटी पासा।

कूटी†–संज्ञा पुं० [सं० कूट + ई (प्रत्य०)] (१) हँसी उड़ानेवाला। मसखरा। (२) जालसाज़। जालिया।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कुटना] कुटनी। दूती।

कूटू–संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जो हिमालय पर्वत पर ४००० फुट से १०००० फुट की ऊँचाई तक होता है। वहां इसे प्रायः तरकारी के लिये बोते हैं। बंगाल, आसाम, बरमा, दक्षिण भारत, मध्य प्रांत और संयुक्त प्रांत में भी इसकी खेती होती है। बीज जूलाई में बोया जाता है और अक्टूबर में इसकी फ़सल तैयार होती है। पौधा डेढ़ दो फुट ऊँचा होता है और उसके सिरे पर नीले फूलों का गुच्छा लगता है। फूल देखने में बहुत सुंदर होते हैं। फूल गिर जाने पर फल लगते हैं। पकने पर बीजों को डंठल से मल कर अलग कर लेते हैं। बीज काले रंग के तिकोने, लंबे और नुकीले होते हैं। भूसी निकल जाने पर उनके भीतर से दाने निकाल कर आटा पीसते हैं जो फलाहार के लिये व्रतों में काम आता है। फाफर। कुल्टू। काटू। तुंबा। काला तुंबा। कसपत। कोटू।

कूड़ा–संज्ञा पुं० [[सं० कूट, प्रा० कूड = ढेर] (१) ज़मीन पर पड़ी हुई गर्द, खर पत्ते आदि जिन्हें साफ़ करने के लिये झाड़ू दिया जाता है। कतवार।

यौ०—कूड़ा करकट। कूड़ाख़ाना।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—बटोरना।—झाड़ना।—उठाना।—फेंकना।—फैलाना।

(२) व्यर्थ और निकम्मी चीज़। बेकाम चीज़।

कूड़ाखाना–संज्ञा पुं० [हिं० कूड़ा + फ़ा० ख़ाना] वह स्थान जहाँ कूड़ा फेंका जाता हो। कतवारखाना।

कूढ़–संज्ञा पुं० [सं० कुष्टि, प्रा० कुड्ढि] (१) हल का वह भाग जिसके एक सिरे पर मुठिया और दूसरे पर खोंपी होती है। जांघा। हलपत। परिहत। (२) बोने की वह प्रथा जिसमें हल की गरारी में बीज डाला जाता है। जब खेत में तरी कम रह जाती है तब रबी की फसल कूढ़ बोई जाती है। गेहूँ, तीसी आदि की बोवाई इसी तरह होती है। छींटा का उलटा।

वि० [सं० कु + ऊह = कूह, पा० कूध] नासमझ। अज्ञानी। बेवकूफ़।

यौ०—कूढ़मग़ज़।

कूढ़मग़ज़-वि० [हिं० कूढ़+फ़ा० मग़ज़] जिसे कोई बात समझने में बहुत कठिनता हो। मंदबुद्धि। कुंदज़िहन।

कूणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वीणा, सितार, सारंगी वा चिकारा आदि तंत्री बाजों की वह खूँटी जिसमें तार बँधे रहते हैं और समय समय पर जिसे मरोड़ कर तार को ढीला या कड़ा करते हैं।

कूत-संज्ञा पुं० [सं० आकूत=आशय] (१) वस्तु को बिना गिने, नापे या तौले उसकी संख्या, मूल्य या परिमाण का अनुमान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) दे० "कनकूत"।

कूतना-क्रि० स० [हिं० कूत] (१) अनुमान करना। अंदाज़ लगाना। उ०—बैन सुनै न परैं श्रुति लौं मुसकैबो मिलै अधरान को कूते।—सेवक। (२) किसी वस्तु को बिना गिने, नापे या तौले उसकी संख्या, मूल्य या परिमाण आदि का अनुमान करना। (३) दे० "कनकूत"।

कूद-संज्ञा स्त्री० [सं०] कूदने की क्रिया।

यौ०—कूद फांद=कूदने या उछलने की क्रिया।

कूदना-क्रि० अ० [सं० स्कुंदन, प्रा० कुंदन] (१) दोनों पैरों को पृथिवी या किसी दूसरे आधार पर से बल पूर्वक उठा कर शरीर को किसी ओर फेंकना। उछलना। फाँदना। उ०—वह यहाँ से कूद कर वहाँ चला गया। (२) जान बूझ कर ऊपर से नीचे की ओर गिरना। उ०—वह स्त्री कुएँ में कूद पड़ी। (३) किसी काम या बात के बीच में सहसा आ मिलना या दख़ल देना। उ०—तुम यहाँ कहाँ से कूद पड़े? (४) क्रम भंग करके एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाना। उ०—तुम तो अभी चौथा पन्ना पढ़ते थे, बीसवें पन्ने में कैसे कूद गये? (५) अत्यंत प्रसन्न होना। दे० "उछलना (३)"। (६) बढ़ बढ़ कर बातें करना। शेख़ी बघारना।

मुहा०—किसी के बल पर कूदना=किसी का सहारा पाकर बहुत बढ़ बढ़ कर बोलना।

क्रि० स० लाँघ जाना। उल्लंघन कर जाना। फलाँग जाना। किसी वस्तु की एक ओर से दूसरी ओर चला जाना। उ०—जब महावीर जी समुद्र कूद गये तब सबको बड़ा आश्चर्य्य हुआ।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

कूदा-संज्ञा पुं० [हिं० कूदना] खेत आदि नापने का एक प्रकार के बीघे का परिमाण, जिसमें कुछ निश्चित कुदानें कूदनी पड़ती हैं।

कून-संज्ञा पुं० (१) दे० "कूण"। (२) दे० "कुंद"।

कूनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कूँड़ी] कोल्हू का वह गड्ढा जिसमें ऊख के टुकड़े डाल कर पेरते हैं। कूँड़ी।

कूप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुआँ। इनारा। (२) छिद्र। छेद। सूराख़, जैसे—रोमकूप। (३) गहरा गड्ढा। कुंड।

यौ०—कूपमंडूक।

कूपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटा कुआँ। (२) चमड़े का बना हुआ, तेल वा घी रखने का पात्र। कुप्पा। (३) नाव बाँधने का खूँटा। (४) नाव या जहाज़ का मस्तूल। (५) चिता।

कूपन-संज्ञा पुं० [अं०] मनीआर्डर-फ़ार्म का वह भाग जिस पर रुपया भेजनेवाला कुछ समाचार आदि लिख सकता है और जो रुपया पाने वाले के पास रह जाता है।

कूपमंडूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कूएँ का मेंढक। कूँए में रहने वाला मेंढक। (२) वह मनुष्य जो अपना स्थान छोड़ कर कहीं बाहर न गया हो, या बाह्य जगत् की जिसको कुछ ख़बर न हो।

कूबड़-संज्ञा पुं० [सं० कूबर] (१) पीठ का टेढ़ापन। (२) किसी चीज़ का टेढ़ापन।

क्रि० प्र०—निकलना।—उठना।

कूबरी-संज्ञा स्त्री० दे० "कुबरी"।

कूबा-संज्ञा पुं० [हिं० कुबड़ा] (१) कूबड़। (२) वह धनुपाकार लकड़ी जिस पर बँड़ेरा रक्खा जाता है। इसके दोनों सिरे दीवार पर रहते हैं, और इसके बीच के टेढ़े उभड़े हुए भाग पर बँड़ेरा रक्खा जाता है।

संज्ञा पुं० [देश०] बिटाई करनेवालों का सीसे का गोलाकार एक औज़ार जिसे टेकुरी को भारी करने के लिये उसके नीचे चिपका देते हैं। यह दुअन्नी वा एकन्नी के बराबर गोल गोल होता है।

कूम-संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है। गढ़वाल और चटगाँव में यह पेड़ बहुत होता है। इसकी लकड़ी इमारत के काम में आती है और कहीं कहीं, जहाँ यह अधिक होता है, जलाई भी जाती है।

कूमटा-संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो राजपूताने और सिंध देश में होता है।

संज्ञा स्त्री० [देश०] धारवार प्रांत में पैदा होनेवाली एक प्रकार की कपास।

कूर-वि० [सं० क्रूर] (१) दया रहित। निर्दय। (२) भयंकर। डरावना। (३) मनहूस। असगुनियाँ। (४) दुष्ट। बुरा। कुमार्गी। उ०—राम नाम ललित ललाम कियो लाखन को बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को।—तुलसी। (५) अकर्मण्य। जिसका किया कुछ न हो सके। सुस्त। निकम्मा। उ०—सुभट सरीर नीर चारी भारी भारी तहाँ सूरन उछाह कूर कादर डरत हैं।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [हिं० कूरा=अंश] लगान की वह कमी जो उच्च जातियों को मुजरा दी जाती है, जिससे वे लोग हलवाहा रख सकें।

संज्ञा पुं० [हिं० पूर = भरना] गुझिया समोसे आदि में भरने का मसाला।

कूरता—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूर] (१) निर्दयता। कठोरता। बेरहमी। (२) जड़ता। मूर्खता। (३) अरसिकता। उ०—कृष्ण चरित रस पूर, नमो सूर कलि सूर कबि। जासु भणित रस मूर, होत दूरि सुनि कूरता।—रघुराज। (४) कायरता। डरपोकपन।

कूरपन—संज्ञा पुं० दे० "कूरता"।

कूरम*—संज्ञा पुं० दे० "कूर्म"।

कूरा—संज्ञा पुं० [सं० कूट, प्रा० कूड = ढेर] [स्त्री० कूरी] (१) ढेर। राशि। उ०—सीस बसै बरदा बरदानि चढ्यो बरदा धरनिउँ बरदा है। धाम धतूरो विभूति को कूरो निवास तहाँ सब लै मरदा है।—तुलसी। (२) भाग। अंश। हिस्सा।

कूरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे चपरेला या मोतिया भी कहते हैं।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कूरा] छोटा ढेर।

कूर्च—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुट्ठी भर कुश। (२) दोनों भौं के बीच का स्थान। (३) अँगूठे और तर्जनी के बीच का स्थान। (४) झूठ। असत्य। (५) दंभ। (६) एक प्रकार का आसन। (७) एक बीजमंत्र। (८) कूँची। (९) मस्तक। सिर। (१०) गोदाम। भांडार।

कूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कूँची। (२) कली। (३) कुंजी। (४) सुई। (५) फटा हुआ दूध। छेना।

कूर्दनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र मास की पूर्णिमा। इस तिथि को कामदेव का उत्सव होता है।

कूर्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कच्छप। कछुआ। (२) पृथिवी। (३) प्रजापति का एक अवतार। (४) एक ऋषि जिन्होंने ऋगवेद के कई सूत्रों का विकास किया था। (५) एक वायु जिसका निवास आँखों में है और जिसके प्रभाव से पलकें खुलती और बंद होती हैं। यह दस प्राणों में से एक है (६) नाभिचक्र के पास की एक नाड़ी। कछुआ। पोतनहर। (७) विष्णु का दूसरा अवतार। (८) तंत्र के अनुसार एक मुद्रा या आसन जिसका व्यवहार देवता के ध्यान के समय किया जाता है। (९) दे० "कूर्मासन"।

कूर्मक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं का एक तीर्थ, जहाँ कूर्मावतार भगवान का दर्शन होता है।

कूर्मचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चक्र जो तांत्रिक लोग बनाते हैं और जिससे शुभाशुभ का शकुन और फल जाना जाता है।

कूर्मद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पौष शुक्ल १२। इसी तिथि को कूर्मावतार का होना माना जाता है।

कूर्मपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] अठारह मुख्य पुराणों में से एक।

कूर्मपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कछुए की पीठ। (२) वह स्थल जो कछुए की पीठ की तरह ऊँचा नीचा हो। (३) बाणपुष्प या अम्लान नामक वृक्ष।

कूर्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वीणा।

कूर्मासन—संज्ञा पुं० [सं०] योग में एक आसन का नाम। इसमें दोनों पैरों को तले ऊपर रख के एँड़ियों से गुदा को दबा कर घुटनों के बल खड़ा होना पड़ता है।

कूर्मिका, कूर्मी—संज्ञा स्त्री० [सं० कूर्मिका] एक प्रकार का बहुत प्राचीन बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे।

कूल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किनारा। तट। तीर।

यौ०—कूलवती = नदी।

(२) सेना के पीछे का भाग। (३) समीप। पास। (४) नहर। नाला। (५) तालाब।

कूलचर—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद के अनुसार नदी किनारे विचरनेवाले हाथी, भैंस, हिरन, सूअर आदि पशु।

कूला—संज्ञा पुं० [सं० कुल्या] [स्त्री० कुलिया] (१) वह छोटा नाला जो किसी नदी नाले आदि में से पानी लाने के लिये खोदा गया हो। छोटी नहर। (२) दे० "कूल्हा"।

कूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वीणा या सितार के नीचे का भाग।

कूलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

कूली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बहुत छोटी मछली जो दक्षिण भारत की नदियों में होती है।

कूलेचर—संज्ञा पुं० दे० "कूलचर"।

कूल्हना†—क्रि० अ० [सं० कुन्थ = क्लेश] पीड़ा सूचक शब्द करना। काँखना। कराहना।

कूल्हा—संज्ञा पुं० [सं० क्रोड = कोड, कोल] (१) कोख के नीचे कमर में पेड़ू के दोनों ओर निकली हुई हड्डियाँ।

मुहा०—कूल्हा सरकना = गिरने या किसी प्रकार का आघात लगने के कारण कूल्हे का अपने स्थान से हट जाना। कूल्हा मटकाना = चूतड़ मटकाना।

(२) कुश्ती का एक पेंच जिसमें पहलवान सामने खड़े हुए विपक्षी की पीठ पर दाहिनी तरफ़ से अपना दाहिना हाथ ले जा कर उसका दाहिना जांघिया पकड़ता है और अपने बाएँ हाथ से उसका दाहिना पहुँचा पकड़ कर खींचता हुआ अपने कूल्हे पर से लाद कर सामने चित गिराता है।

कूल्ही—संज्ञा स्त्री० [देश०] पीतल। (सोनारों की बोली)

कूवत—संज्ञा स्त्री० [अ०] शक्ति। बल। ज़ोर। ताकत।

कूवर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथ का वह भाग जिस पर जूआ बाँधा जाता है। युगंधर। हरसा। उ०—किए हेमदंडन पै मंडन विचित्र चित्र, बने कीर मोर चार ओर मनभावते। कूवर अनूप रूप छतरी छजत तैसी, छज्जन में मोती लटकत छवि छावते

(२) रथ में रथिक के बैठने का स्थान। (३) कुबड़ा। (४) कुब्जक। कूजा। कूल।
वि० मनोहर। सुंदर।
कूश्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के हवनीय देवता।
कूष्मांड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुम्हड़ा। (२) पेठा। (३) वैदिक काल के एक ऋषि। (४) एक प्रकार के पिशाच जो शिव के गण हैं। (५) बाणासुर का प्रधान मंत्री।
कूष्मांडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यजुर्वेद की एक ऋचा जिसके द्रष्टा कूष्मांड ऋषि थे।
कूसल—संज्ञा पुं० [सं० कुश] एक प्रकार की घास जिसके डंठलों का झाड़ू बनता है।
कूह—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूक] (१) चिग्घाड़। हाथी की चिक्कार। (२)*चीख। चिल्लाहट। उ०—संभु सतावत हैं जग को हैं कठोर महा सब को मद तूरत। कूह कै कै कर मारैं कहीं लखि कुंभन वारन छारन पूरत।—शंभुनाथ।
कूहा†—संज्ञा पुं० दे० "कुहरा"।
कूही—संज्ञा स्त्री० [देश०] बाज की जाति की एक प्रकार की शिकारी चिड़िया। कुही
कृकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मस्तक की वह वायु जिसके वेग से छींक आती है। (२) शिव। (३) चाब। चव्य। (४) एक पक्षी। (५) कनेर का पेड़।
कृकल—संज्ञा पुं० दे० "कृकर"।
कृकलास—संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट।
कृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कष्ट। दुःख। (२) पाप। (३) मूत्र-कृच्छ्र रोग। (४) कोई व्रत जिसमें पंचगव्य प्राशन कर दूसरे दिन उपवास किया जाय। उ०—कृच्छ्र सांतपन।
वि० (१) कष्टसाध्य। (२) कष्टयुक्त।
कृत—वि० [सं०] (१) किया हुआ। संपादित। (२) बनाया हुआ। रचित। उ०—तुलसीकृत रामायण। (३) संबंध रखनेवाला। तत्संबंधी। उ०—फूले काँस सकल महि छाई। जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई।—तुलसी।
विशेष—यहाँ 'कृत' संबंध विभक्ति 'का' के स्थान पर आया है।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार युगों में से पहला युग। सतयुग। (२) पंद्रह प्रकार के दासों में से एक। वह दास जिसने कुछ नियत काल तक सेवा करने की प्रतिज्ञा की हो। (३) एक प्रकार का पासा, जिसमें चार चिह्न बने होते हैं। (४) चार की संख्या।
कृतकर्मा—वि० [सं०] (१) जो अपना काम सिद्ध कर चुका हो। सफलता-प्राप्त। कामयाब। (२) चतुर। प्रवीण। कुशल।
संज्ञा पुं० (१) तीनों ऋणों (ऋषि, देव और पितृ) से मुक्त संन्यासी। (२) परमेश्वर।
कृतकाम—वि० [सं०] जिसकी कामना पूरी हो गई हो।
कृतकारज*—वि० दे० "कृतकार्य"।
कृतकार्य—वि० [सं०] जिसका प्रयोजन सिद्ध हो चुका हो। सफल-मनोरथ। कामयाब।
कृतकृत्य—वि० [सं०] जिसका काम पूरा हो चुका हो। कृतार्थ। सफल-मनोरथ। उ०—हम आपके दर्शन से कृतकृत्य हो गए।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग आदर, सम्मान, श्रद्धा आदि सूचित करने में बहुत अधिक होता है।
कृतघ्न—वि० [सं०] [संज्ञा कृतघ्नता] किए हुए उपकार को न माननेवाला। अकृतज्ञ। नमकहराम।
कृतघ्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] किए हुए उपकार को न मानने का भाव। अकृतज्ञता। नमकहरामी।
कृतघ्नताई*—संज्ञा स्त्री० दे० "कृतघ्नता"।
कृतघ्नी†*—वि० दे० "कृतघ्न"।
कृतज्ञ—वि० [सं०] [संज्ञा कृतज्ञता] किए हुए उपकार को माननेवाला। एहसान माननेवाला। उ०—इस कार्य्य को कर दीजिये तो हम आपके बड़े कृतज्ञ होंगे।
कृतज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] किए हुए उपकार को मानने का भाव। निहोरा मानना। एहसानमंदी।
कृतदंड—संज्ञा पुं० [सं०] यमराज। उ०—गोपन सखा भाव करि देखे दुष्ट नृपति कृतदंड। पुत्र भाव वसुदेव देवकी देखे नित्य अखंड।—सूर।
कृतनिंदक—वि० [सं०] कृतघ्न। नाशुकरा। हरामी।
कृतफल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शीतलचीनी। (२) कोलशिंबी। सुअरा सेम।
कृतमाल—संज्ञा पुं० [सं०] अमिलतास।
कृतमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण (द्रविड़) देश की एक छोटी नदी जिसके जलपान का माहात्म्य भागवत में लिखा है।
कृतमुख—संज्ञा पुं० [सं०] पंडित।
कृतयुग—संज्ञा पुं० [सं०] सतयुग।
कृतवर्मा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा कनक का पुत्र और कृतवीर्य्य का भाई। (२) हृदिक का पुत्र। (३) जैनमतानुसार वर्त्तमान अवसर्पिणी के तेरहवें अर्हत् के पिता।
कृतविद्य—वि० [सं०] जिसे विद्या का अभ्यास हो। जानकार।
कृतवीर्य्य—संज्ञा पुं० [सं०] राजा कनक का पुत्र और कृतवर्म्मा का भाई।
कृतवेदी—वि० [सं०] उपकार माननेवाला। कृतज्ञ।
कृतसापत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके पति ने उसके जीवनकाल में ही दूसरा विवाह कर लिया हो।
कृतहस्त—वि० [सं०] (१) चतुर। कुशल। किसी काम के करने में होशियार। (२) बाण चलाने में निपुण।
कृतांजलि—वि० [सं०] हाथ जोड़े हुए। हाथ बाँधे हुए।

संज्ञा स्त्री० लाजवंती। लजाधुर।

कृतांत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समाप्त करनेवाला। अंत करनेवाला। (२) यम। धर्मराज।

यौ०—कृतांतजनक = सूर्य्य। कृतांतपुर = यमलोक। कृतांत-भगिनी = यमुना।

(३) पूर्व जन्म में किए हुए शुभ और अशुभ कर्म्मों का फल। (४) सिद्धांत। (५) मृत्यु। (६) पाप। (७) शनिवार। (८) देवता मात्र। (९) भरणी नक्षत्र। (१०) दो की संख्या।

कृतांता–संज्ञा स्त्री० [सं०] रेणुका नाम का गंध द्रव्य।

कृताकृत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किया और बिना किया हुआ। (२) अधूरा काम। (३) कार्य्य और कारण। (४) सोना और चांदी। (५) वह हव्य द्रव्य जो कच्चा और अपक्क हो। जैसे—कच्चे चावल आदि।

कृतात्मा–संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जिसकी आत्मा शुद्ध हो। महात्मा।

कृतात्यय–संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य दर्शन के अनुसार भोग द्वारा कर्मों का नाश।

विशेष—सांख्य का मत है कि एक बार जो कर्म उत्पन्न होता है वह बिना भोग किए हुए नष्ट नहीं होता। यद्यपि ज्ञान उत्पन्न होने पर कर्म का अंत हो जाता है और नये कर्म की उत्पत्ति नहीं होती, पर इससे पहले का किया हुआ कर्म बिना भोग किये नष्ट नहीं हो सकता। इसीलिये मुक्त पुरुष की दो अवस्थाएँ होती हैं, जीवनमुक्ति और विदेहकैवल्य। ज्ञान उत्पन्न होने पर मनुष्य के कर्मों का अंत हो जाता है और उसे जीवनमुक्ति मिलती है। लेकिन पूर्वसंचित या प्रारब्ध कर्म का फल भोगने के लिये या तो मुक्त पुरुष का शरीर विद्यमान रहता है और या उसे पुनः शरीर धारण करना पड़ता है। इसी अवस्था में फल भोग कर कर्म की जो समाप्ति की जाती है उसे "कृतात्यय" कहते हैं। विदेहकैवल्य इसके बाद मिलता है।

कृतान्न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पकाया हुआ अन्न। (२) (भोजन के बाद) पचाया हुआ अन्न।

कृतार्घ–संज्ञा पुं० [सं०] गत अवसर्पिणी के १९ वें अर्हत् का नाम।

कृतार्थ–वि० [सं०] (१) जिसका अभिप्राय पूरा हो चुका हो। जो अपने सब काम कर चुका हो। कृतकृत्य। सफलमनोरथ। (२) संतुष्ट। (३) कुशल। निपुण। होशियार। (४) जो मुक्ति प्राप्त कर चुका हो।

कृतालक–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक अनुचर।

कृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) करतूत। करनी। (२) कार्य। काम। (३) आघात। क्षति। (४) इंद्रजाल। जादू। (५) वर्ग-संख्या। दो समान अंकों का घात। (गणित) (६) डाकिनी। (७) अनुष्टुप् जाति का एक छंद जिसमें बीस बीस अक्षरों के चार चरण होते हैं। उ०—रोज रोज राज गैल तें गुपाल ग्वाल तीन सात। वायु सेवनार्थ प्रात बाग जात आव लै सुफूल पात। लाय के धरें सबै सुफूल पात मोद युक्त मातु हात। धन्य मान मातु बाल वृत्त देखि हर्ष रोम रोम गात। (८) बीस की संख्या। (९) कटारी।

संज्ञा पुं० विष्णु।

कृतिकर–संज्ञा पुं० [सं०] (बीस हाथवाला) रावण।

कृतिका–संज्ञा स्त्री० दे० "कृत्तिका"।

कृतिवास*–संज्ञा पुं० दे० "कृत्तिवास"।

कृती–वि० [सं०] (१) कुशल। निपुण। दक्ष। (२) साधु। (३) पुण्यात्मा।

संज्ञा पुं० च्यवन ऋषि के पुत्र और उपरिचर वसु के पिता का नाम।

कृत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मृगचर्म। (२) चमड़ा। खाल। (३) भोजपत्र। (४) कृत्तिका नक्षत्र।

कृत्तिकांजि–संज्ञा पुं० [सं०] वह शकटाकार तिलक जो अश्वमेध यज्ञ में घोड़े को लगाया जाता था।

कृत्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) २७ नक्षत्रों में से तीसरा नक्षत्र। इस नक्षत्र में ६ तारे हैं जिनका संयुक्त आकार अग्निशिखा के समान होता है। यह चंद्रमा की पत्नी और कार्तिकेय का पालन करनेवाली मानी जाती है और इसकी अधिष्ठात्री "अग्नि" है। (२) छकड़ा। गाड़ी।

कृत्तिवास, कृत्तिवासा–संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव जी ने गजासुर को मार कर उसकी खाल ओढ़ ली थी, इसीसे उनका यह नाम पड़ा।

कृत्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कर्त्तव्य कर्म। वेदविहित आवश्यक कार्य।

विशेष—बौद्धों के मत से ज्ञानानुसार कृत्य १४ प्रकार के होते हैं। यथा—(१) प्रतिसंधि। (२) भवांग। (३) आवर्जन। (४) दर्शन। (५) श्रवण। (६) घ्राण। (७) शयन। (८) स्पर्श। (९) संप्रतिच्छन। (१०) संतीर्ण। (११) उत्थान। (१२) गमन। (१३) तदालंबन और (१४) च्युति। इसके अतिरिक्त कालानुसार उन्होंने इसके पाँच और भेद किये हैं। (१) पूर्व-भाक्त-कृत्य। (२) पश्चात्-भाक्त-कृत्य। (३) प्रथम-याम-कृत्य। (४) मध्यम-याम-कृत्य और (५) पश्चिम-याम-कृत्य। जैनियों के अनुसार कृत्य ६ प्रकार के होते हैं—(१) दिन-कृत्य। (२) रात्रिकृत्य। (३) पर्वकृत्य। (४) चातुर्मास्यकृत्य। (५) संवत्सरकृत्य और (६) जन्मकृत्य।

(२) भूत, प्रेत, यक्षादि जिनका पूजन अभिचार के लिये होता है।

कृत्यका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो हत्या आदि बड़े बड़े भयंकर कार्य कर सकती हो।

कृत्यविद्–वि० [सं०] कर्तव्य कर्म को जाननेवाला । कर्तव्य में चतुर । कुशल । निपुण ।

कृत्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तंत्र के अनुसार एक राक्षसी जिसे तांत्रिक लोग अपने अनुष्ठान से उत्पन्न करके किसी शत्रु को विनष्ट करने को भेजते हैं । यह बहुत भयंकर मानी जाती है। इसका वर्णन वेदों तक में आया है । (२) अभिचार । (३) दुष्टा वा कर्कशा स्त्री ।

यौ०—कृत्यादूषण ।

कृत्यादूषण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का कृत्य जो कृत्या के प्रतिकार के लिये किया जाता है । (२) एक प्रकार की ओषधि जिससे कृत्या का दोष निवारण होता है । (३) अंगिरस वंश के एक ऋषि जो कृत्या के दोष का निवारण किया करते थे ।

कृत्याकृत्य–वि० [सं०] करने और न करने योग्य काम । भला बुरा काम ।

कृत्रिम–वि० [सं०] (१) जो असली न हो । नक़ली । बनावटी । जाली । (२) बारह प्रकार के पुत्रों में से एक ।

विशेष—पुत्राभिलाषी पुरुष, यदि किसी माता-पिता-हीन बालक को धन संपत्ति का लोभ दिखा कर उससे अपना पुत्र बनना स्वीकार करा कर उसे पुत्रवत् अपने संग रक्खे तो वह बालक उस पुरुष का कृत्रिम पुत्र कहलावेगा ।

संज्ञा पुं० (१) काच लवण । कचिया नोन । (२) जवादि गंध द्रव्य । (३) रसौत । रसांजन ।

कृत्रिम धूप–संज्ञा पुं० [सं०] दशांगादि धूप जो अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्यों को मिला कर बनाया जाता है ।

कृत्रिम भूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह चबूतरा जो किसी मकान या इमारत के नीचे उसे सीड़ आदि से बचाने के लिये बनाया जाता है । कुर्सी ।

कृत्रिम मित्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र जिसके साथ किसी उपकार आदि के कारण मित्रता स्थापित हो । शास्त्रों में यह मित्र और प्रकार के मित्रों से श्रेष्ठ माना गया है ।

कृदंत–संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जो धातु में कृत् प्रत्यय के लगाने से बने । जैसे—पाचक, नंदन, भुक्त, भोक्तव्य, भोक्ता आदि ।

कृप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैदिक काल के एक राजर्षि का नाम । (२) दे० "कृपाचार्य्य" ।

कृपण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कृपणता] (१) कंजूस । सूम । अनुदार । कदर्य । (२) क्षुद्र । नीच ।

कृपणता–संज्ञा स्त्री० [सं०] कंजूसी ।

कृपनाई–संज्ञा स्त्री० [सं० कृपण + आई (प्रत्य०) कृपणता । कंजूसी ।

कृपया–क्रि० वि० [सं०] कृपापूर्वक । अनुग्रहपूर्वक । उ०—कृपया इस कार्य्य को कर दीजिये ।

कृपा–संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कृपालु] (१) बिना किसी प्रतिकार की आशा के दूसरे की भलाई करने की इच्छा वा वृत्ति । अनुग्रह । दया । मेहरबानी ।

यौ०— कृपापात्र । कृपाभाजन ।

(२) क्षमा । माफ़ी । उ०—जो कुछ हो गया सो हो गया, अब कृपा करो ।

कृपाचार्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] गौतम के पुत्र शरद्वत् के पुत्र । इनकी बहन कृपी से द्रोणाचार्य्य का विवाह हुआ था । ये धनुर्विद्या में बड़े प्रवीण थे । द्रोणाचार्य्य की भांति इन्होंने भी कौरवों और पांडवों को अस्त्रशिक्षा दी थी । कुरुक्षेत्र के युद्ध में ये कौरवों की ओर से लड़े थे, पर युद्ध समाप्त होने पर युधिष्ठिर के यहां रहने लगे थे । राजा परीक्षित् को भी इन्होंने अस्त्र-विद्या सिखाई थी ।

कृपाण–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्प० कृपाणी] (१) तलवार । (२) कटार । छुरा । (३) दंडक वृत्त का एक भेद । यह छंद ३२ वर्णों का होता है । आठ आठ वर्णों पर यति होती है । इसमें ३१ वां वर्ण गुरु और ३२ वां लघु होता है । यतियों पर अनुप्रासों का मिलान और अंत में "नकार" का होना इस छंद की जान है । उ०—चली ह्वै के विकराल, महा कालहू को काल, किये दोऊ दृग लाल, धाय रण समुहान । तहां लागे लहरान, निसिचरहू परान, वहां कालिका रिसान, झुकि झारी किरपान ।

कृपाणक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तलवार । (२) कटार ।

कृपाणिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी तलवार । (२) कटारी ।

कृपाणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी तलवार ।

कृपापात्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जिस पर कृपा हो । कृपा का अधिकारी । उ०—आप उनके बड़े कृपापात्र हैं ।

कृपायतन–संज्ञा पुं० [सं०] कृपा के भवन । कृपा के भांडार । अत्यंत कृपालु ।

कृपाल†*–वि० दे० "कृपालु" ।

कृपालता*†–संज्ञा स्त्री० दे० "कृपालुता" ।

कृपालु–वि० [सं०] कृपा करनेवाला । दयालु ।

कृपालुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] दया का भाव । मेहरबानी ।

कृपिण*†–वि० दे० "कृपण" ।

कृपिणता*–संज्ञा स्त्री० दे० "कृपणता" ।

कृपिन*†–वि० दे० "कृपण" ।

कृपिनता*†–दे० "कृपणता" ।

कृपिनाई*–संज्ञा स्त्री० दे० "कृपनाई" ।

कृपी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपाचार्य्य की बहन जो द्रोणाचार्य्य को ब्याही थी । अश्वत्थामा की माता ।

कृमि–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कृमिल] (१) क्षुद्र कीट। छोटा कीड़ा। (२) किरमिजी। हिरमिजी कीड़ा वा मिट्टी। (३) लाह।
यौ०—कृमिकोश = कुसवारी।

कृमिकोश–संज्ञा पुं० [सं०] रेशम के कीड़े का घर। कोया। ककून। कुसवारी।

कृमिज–वि० [सं०] कीड़ों से उत्पन्न।
संज्ञा पुं० [सं] [स्त्री० कृमिजा] (१) रेशम। (२) अगर। (३) किरमिजी। हिरमिजी।

कृमिभोजन–संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

कृमिरोग–संज्ञा पुं० [सं०] आमाशय और पक्काशय में केंचुए वा कीड़े उत्पन्न होने का रोग।

कृमिल–वि० [सं०] जिसमें कीड़े पड़ गए हों।

कृमिला–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके बहुत लड़के पैदा होते हों। बहुप्रसवा स्त्री।

कृमिलाश्व–संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार आजमीढ़ वंश का एक राजा।

कृमिशैल–संज्ञा पुं० [सं०] वल्मीक। बिमौट। बाँबी। बामी।

कृश–वि० [सं०] (१) दुबला पतला। क्षीण। (२) अल्प। छोटा। सूक्ष्म।
यौ०—कृशोदरी।

कृशता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुबलापन। दुर्बलता। क्षीणता। पतलापन। (२) अल्पता। सूक्ष्मता। कमी।

कृशताई*–संज्ञा स्त्री० दे० "कृशता"।

कृशत्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षीणता। दुबलापन। (२) अल्पता। सूक्ष्मता। कमी।

कृशर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कृशरा] (१) तिल और चावल की खिचड़ी। (२) खिचड़ी। (३) केसारी। लोबिया मटर। दुबिया।

कृशरान्न–संज्ञा पुं० [सं०] खिचड़ी।

कृशानु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) चित्रक। चीता।
यौ०—कृशानुरेता।

कृशानुरेता–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

कृशाश्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भागवत के अनुसार तृणविंदु-वंश का एक राजर्षि जो संयम का पुत्र और महादेव का बड़ा भाई था। (२) दक्ष के जामाता। भागवत के अनुसार इन्होंने दक्ष की अर्च्चि और धीषणा नाम की कन्याओं से विवाह किया था। अर्च्चि के गर्भ से धूम्रकेश और धीषणा के गर्भ से देवल नामक पुत्र हुए थे। रामायण के मत से कृशाश्व ने दक्ष की जया और सुप्रभा नाम की कन्याओं को ब्याहा था, जिनके पचास पचास शस्त्रस्वरूप पुत्र हुए थे। (३) हरिवंश के अनुसार धुंधुमार-वंशी एक राजा, जो नाट्य शास्त्र के एक आचार्य्य माने जाते हैं।

कृशाश्वी–संज्ञा पुं० [सं० कृशाश्विन्] (१) कृशाश्व-कृत नाट्यशास्त्र का पढ़ने वा पढ़ानेवाला। (२) नाट्यकलाकुशल व्यक्ति। नट। नर्त्तक।

कृशित–वि० [सं०] दुर्बल। क्षीणकाय। दुबला पतला।

कृशोदरी–वि० [स्त्री०] [सं०] पतली कमरवाली (स्त्री)।

कृषक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसान। खेतिहर। काश्तकार। (२) हल का फाल।

कृषाण–संज्ञा पुं० [सं०] किसान। खेतिहर। काश्तकार।

कृषि–संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कृष्य] खेती। काश्त। किसानी।

कृषिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेतिहर। किसान। (२) हल का फाल।

कृषिकार–संज्ञा पुं० [सं०] किसान। खेतिहर।

कृषी†*–संज्ञा स्त्री० दे० "कृषि"।

कृष्ण–वि० [सं०] (१) श्याम। काला। सियाह। (२) नीला या आसमानी।
संज्ञा पुं० [स्त्री० कृष्णा] (१) यदुवंशी वसुदेव के पुत्र जो भोजवंशी देवक की कन्या देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। उस समय देवक के भाई राजा उग्रसेन का पुत्र कंस अपने पिता को क़ैद कर मथुरा का राज्य करता था। देवकी के विवाह के समय कंस को किसी प्रकार यह बात मालूम हो गई थी कि देवकी के आठवें गर्भ से जो बालक उत्पन्न होगा वह मुझ को मार डालेगा। इसलिये कंस ने देवकी और वसुदेव को अपने यहाँ क़ैद कर लिया था। देवकी के सात बालकों को तो कंस ने जन्म लेते ही मार डाला था, पर आठवें बालक कृष्ण को, जिनका जन्म भादों की कृष्ण अष्टमी को आधी रात के समय हुआ था, वसुदेवजी गोकुल में जाकर नंद के घर रख आये थे। बड़े होने पर कृष्ण ने अनेक अद्भुत कार्य्य किये थे जिनके कारण शंकित हो कर कंस ने उन्हें मरवा डालने के अनेक उपाय किये, पर सब व्यर्थ हुए। अंत में कृष्ण ने कंस को मार डाला। इन्होंने विदर्भ के राजा की कन्या रुक्मिणी से विवाह किया था। पीछे ये द्वारका चले गये और वहाँ इन्होंने यादवों का राज्य स्थापित किया। महाभारत के युद्ध में इन्होंने पांडवों को बहुत सहायता दी थी। इनकी मृत्यु एक बहेलिये के तीर लगने से हुई थी। ये विष्णु के दस अवतारों में से आठवें अवतार माने जाते हैं। (२) एक असुर इसका ज़िक्र वेदों में आया है और जिसे इंद्र ने मारा था। (३) एक ऋषि जिन्होंने ऋग्वेद के कई मंत्रों का प्रकाश किया था। (४) अथर्ववेद के अंतर्गत एक उपनिषद्। (५) छप्पय छंद का एक भेद जिसमें २२ गुरु और १०८ लघु, कुल १३० वर्ण और १५२ मात्राएँ, अथवा २२ गुरु और १०४ लघु, कुल १२६ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं। (६) चार अक्षरों का एक वृत्त जिसके

प्रत्येक चरण में एक "तगण" और एक लघु होता है। उ०—तू ला मन। गोपीधन। तृष्णै तज। कृष्णै भज। (७) वेदव्यास। (८) अर्जुन। (९) कोयल। (१०) कौवा। (११) कदम का पेड़। (१२) मास का वह पक्ष जिसमें चंद्रमा का ह्रास हो। अँधेरा पक्ष। (१३) कलियुग। (१४) शाल्मलि-द्वीप-निवासी शूद्र। (१५) करौंदा। (१६) नील। (१७) पीपल। (१८) जैनियों के मतानुसार नौ काले वसुदेवों में से एक। (१९) बौद्धों के मतानुसार एक राक्षस जो बुद्ध का शत्रु माना जाता है। (२०) चंद्रमा का धब्बा। (२१) लोहा। (२२) सुरमा।

कृष्णकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंसा आदि पापपूर्ण कार्य्य। (२) वह कर्म जो बिना फल की कामना के किया जाय। (३) फोड़े की चिकित्सा की एक प्रक्रिया।

कृष्णकेलि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुलअब्बास। गुलाबास का फूल। (२) गुलाबास का पेड़।

कृष्णगंगा—संज्ञा स्त्री० दे० "कृष्णा (३)"।

कृष्णगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सैंजन। शोभांजन।

कृष्णगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] कायफल।

संज्ञा स्त्री० कृष्ण नामक असुर की भार्य्या।

कृष्णचंद्र—संज्ञा पुं० दे० "कृष्ण (१)"।

कृष्णचूड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुंजा। घुंघुची। (२) एक प्रकार का कँटीला वृक्ष जिसके फूल पीले या लाल होते हैं और जिनमें हलकी सुगंध होती है। यह साधारणतः सब ऋतुओं में और विशेषतः बरसात में फूलता और फलता है।

कृष्णचैतन्य—संज्ञा पुं० दे० "चैतन्य"।

कृष्णच्छवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काले हिरन का चमड़ा। (२) काला बादल।

कृष्णजटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

कृष्णजीरक—संज्ञा पुं० [सं०] काला जीरा।

कृष्णद्वैपायन—संज्ञा पुं० [सं०] पराशर के पुत्र वेदव्यास। पाराशर्य्य।

कृष्णपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] अँधियारा पक्ष। वह पक्ष जिसमें चंद्रमा का ह्रास हो।

कृष्णपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काले पत्ते की तुलसी। कृष्णा।

कृष्णपद्दी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की गानेवाली चिड़िया जो लंबाई में एक बित्ता होती है। यह कश्मीर से भूटान तक पाई जाती है और जाड़ों में नीचे उतर आती है। यह वृक्षों की जड़ में घोंसला बनाती है और एक बार में ४ अंडे देती है।

कृष्णपाक—संज्ञा पुं० [सं०] करौंदा।

कृष्णपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] रोहू मछली।

कृष्णपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] काला धतूरा।

कृष्णफल—संज्ञा पुं० [सं०] करौंदा।

कृष्णफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मिरिच की लता। (२) एक प्रकार का छोटा जामुन।

कृष्णबीज—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज।

कृष्णभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ की मट्टी काली हो।

कृष्णभेदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

कृष्णमंडल—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पुतली।

कृष्णमणि—संज्ञा पुं० [सं०] नीलम।

कृष्णमुख—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लंगूर। (२) एक दानव का नाम।

कृष्णयजुष्—संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद के दो भेदों में से एक। इसमें ८६ शाखाएँ हैं जिनमें तैत्तिरीय और आपस्तंब आदि शाखाएँ प्रधान हैं।

कृष्णराज—संज्ञा पुं० [सं०] भुजंगा पक्षी।

कृष्णला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घुँघची। (२) शीशम का वृक्ष। (३) रत्ती। (परिमाण)

कृष्णवेणी—संज्ञा स्त्री० दे० "कृष्णा (३)"।

कृष्णसखा—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन।

कृष्णसखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) द्रौपदी। (२) जीरा।

कृष्णसार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काला मृग। काला हिरन। करसायल। (२) सेँहुड़। (३) शीशम का वृक्ष। (४) खैर का वृक्ष।

कृष्णस्कंध—संज्ञा पुं० [सं०] सुरती का पेड़।

कृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) द्रौपदी। (२) पीपर। पिप्पली। (३) दक्षिण देश की एक नदी जो पश्चिमी घाट से निकल कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। कृष्ण गंगा। कृष्ण-वेणी। (४) नीलबरी। (५) काली दाख। (६) काला ज़ीरा। (७) अगर। (लकड़ी)। ऊद। (८) काली (देवी)। (९) एक प्रकार की ज़हरीली जोंक। (१०) पपरी नाम का गंधद्रव्य। (११) कुटकी। (१२) राई। (१३) अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक। (१४) एक योगिनी। (१५) काले पत्ते की तुलसी। (१६) आँख की पुतली।

कृष्णाचल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रैवतक पर्वत। प्राचीन द्वारका इसी पर्वत पर थी। (२) नीलगिरि पर्वत।

कृष्णाजिन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काले मृग का चमड़ा। मृगचर्म। (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

कृष्णाभिसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह अभिसारिका नायिका जो अँधेरी रात में अपने प्रेमी के पास संकेतस्थान में जाय।

कृष्णाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों के कृष्ण पक्ष की अष्टमी, जिस दिन श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था।

कृष्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राई। (२) श्यामा पक्षी।

कृष्णोदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

कृष्य—वि० [सं०] खेती करने योग्य (भूमि)।

केँकेँ-संज्ञा स्त्री०-[अनु०] (१) चिड़ियों का कष्टसूचक शब्द। (२) झगड़ा वा असंतोषसूचक शब्द।

क्रि० प्र०—करना।

केँचुआ-संज्ञा पुं० [सं० किंचिलिक, प्रा० केंचुश्रो] (१) एक बरसाती कीड़ा जो एक बालिश्त भर वा इससे अधिक लंबा होता है। इस कीड़े के शरीर में हड्डी नहीं होती। यह कीड़ा कभी अपने शरीर को सिकोड़ लेता है, कभी लंबा कर देता है। यह मिट्टी ही खाता है। इस कीड़े से एक पीले रंग की लसदार वस्तु निकलती है जो रात को चमकती है। (२) केँचुए के आकार का सफ़ेद कीड़ा जो पेट से मल द्वारा बाहर निकलता है।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

केँचुल-संज्ञा स्त्री० [सं० कंचुक] [वि० केंचुली] सर्प आदि के शरीर पर की खोल जो प्रति वर्ष आपसे आप पृथक् होकर गिर जाती है।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—झाड़ना।—बदलना।

मुहा०—केँचुल बदलना = पोशाक बदलना। कपड़ा बदलना। केँचुल में आना वा भरना = केँचुल छोड़ने पर होना।

केँचुली-वि० [हिं० केंचुल] केँचुल की तरह का।

यौ०—केँचुली लचका वा केँचुली का लचका = एक प्रकार का लचका जो खींचने पर साँप की तरह बढ़ता है।

संज्ञा स्त्री० दे० "केँचुल"।

केँचुवा-संज्ञा पुं० दे० "केँचुआ"।

केँत-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा बेँत जिसकी छड़ियाँ बनती हैं।

केँदु-संज्ञा पुं० [सं०] तेँदू का पेड़।

केँदुवाल-संज्ञा पुं० [सं०] नाव खेने का डाँड़। बल्ला। अरित्र। केनिपात।

केँदू-संज्ञा पुं० [सं० केन्दु] तेँदू।

केँद्र-संज्ञा पुं० [सं०। यू० केण्ट्रन] (१) किसी वृत्त के भीतर का वह बिंदु जिससे परिधि तक खींची हुई सब रेखाएँ परस्पर बराबर हों। नाभि। (२) किसी निश्चित अंश से ९०, १८०, २७० और ३६० अंश के अंतर का स्थान। (३) ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों के दो केँद्र होते हैं, शीघ्रकेँद्र और मंदकेँद्र। ग्रह के मध्य में से मंदोच्च घटाने से मंद केँद्र और शीघ्रोच्च घटाने से शीघ्र केँद्र का ज्ञान होता है। (४) फलित के अनुसार कुंडली में पहला, चौथा, सातवाँ और दसवाँ स्थान। (५) मुख्य वा प्रधान स्थान। सदा ठहरने का स्थान। (६) बीच का स्थान।

केँद्री-वि० [सं० केन्द्रिन्] केँद्र में स्थित। केँद्रस्थित। उ०—केँद्री है नवयेँ कर स्वामी योग चंद्र चूड़ामणि। गुरु द्विज भक्त सकल गुण सागर दाता शूर शिरोमणि।—रघुराज।

के-प्रत्य० [हिं० का] संबंधसूचक "का" विभक्ति का बहुवचन रूप, जैसे—राम के घोड़े।

विशेष—यदि संबंधवान् के आगे कोई विभक्ति होती है तो एक वचन में भी "का" के स्थान पर "के" आता है, जैसे, (क) वह राम के घोड़े से गिर पड़ा। (ख) हम उसके घर (पर) गए थे।

† सर्व० [सं० "कः" का बहु०] कौन ? (अवधी) । उ०—केइ तव नासा कान निपाता ?—तुलसी।

केउँआ-संज्ञा पुं० [सं० केमुक] (१) कच्चू। (२) चुकंदर। (३) शलगम।

केउ†-सर्व० [हिं० के + उ (प्रत्य०) = भी] कोई। उ०—अलख अलौकिक रूप तव, तरकि सकै नहिँ केउ। जानै सोइ करि कृपा तुम, जाहि जनावौ देउ।—विश्राम।

केउटा-संज्ञा पुं० [सं० कर्कोट] एक प्रकार का बहुत विषैला काला साँप। औषधों में इसी का विष काम में आता है। करैत।

केउटी-वि० दे० "केवटी"।

केकड़ा-संज्ञा पुं० [सं० कर्कट, पा० ककट] पानी का एक कीड़ा जिसे आठ टाँगें और दो पंजे होते हैं। यह साधारण गड़हियों से लेकर समुद्र तक में पाया जाता है और भिन्न भिन्न आकार का छोटा बड़ा और कई रंगों का होता है। यह अंडज है और इसके विषय में कहा जाता है कि इसकी माता अंडा देने से पहले मर जाती है। बरसात में केकड़े जोड़ा खाते हैं और जब मादा का पेट अंडों से भर जाता है तब वह मर जाती है और अंडे में से, पकने पर, छोटे छोटे बच्चे निकलते हैं। कहते हैं कि पाँच खोल बदलने पर यह पूरा केकड़े होता है। केकड़ा सूखी भूमि पर भी चल सकता है। गरमी में ये छिछले पानी या किनारे पर रहते हैं और जाड़े में गहरे जल में चले जाते हैं जहाँ झुंड बाँध कर किसी दरार या गड्ढे में रहते हैं। बड़ा केकड़ा अपने से छोटे और निर्बल केकड़ों को खा जाता है। भिन्न भिन्न प्रदेशों में लोग इसका मांस भी खाते हैं। वैद्यक में सफ़ेद केकड़े का मांस वायु और पित्त को नाश करनेवाला और संधिकारक तथा काले केकड़े का मांस बलकारक, गरम और वातनाशक माना गया है।

मुहा०—केकड़े की चाल = टेढ़ी तिरछी चाल।

केकय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम। रामायण के अनुसार यह देश व्यास और शाल्मली नदी की दूसरी ओर था और उस समय वहाँ की राजधानी गिरिव्रज वा राजगृह थी। अब यह देश कश्मीर राज्य के अंतर्गत है और कक्का कहलाता है। यहाँ के निवासी गक्कर वा कक्का कहलाते हैं। (२) [स्त्री० केकयी] केकय देश का राजा वा निवासी। (३) दशरथ के श्वसुर और केकयी के पिता का नाम।

केकयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] केकय देश की स्त्री । (२) राजा दशरथ की रानी जिससे भरत जी उत्पन्न हुए थे । दे० "कैकेयी" ।

केकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऐंचा । भेंगा । (२) तंत्र में चार अक्षरों का एक मंत्र ।

केकरा†—संज्ञा पुं० दे० "कैंकड़ा" ।

केकसी—संज्ञा स्त्री० दे० "कैकसी" ।

केका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोर की बोली । मोर की कूक ।

केकी—संज्ञा पुं० [सं० केकिन्] मोर । मयूर । उ०—(क) केकि कंठ दुति स्यामल अंगा । तड़ित विनिंदक बसन सुरंगा ।—तुलसी । (ख) कोकिल केकी कपोतन के कुल केलि करैं अति आनँद बारी ।—मतिराम ।

केचित्—सर्व० [सं०] कोई । कोई कोई ।

केजा—संज्ञा पुं० दे० "केना" ।

केडवारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० केन = साग भाजी + वारी] (१) वह बाग जिसमें साग, तरकारी, फलादि बोए और लगाए जायं । (२) नये पौधों का बाग । नौरंगा ।

केड़ा—संज्ञा पुं० [सं० करीर = बाँस का कल्ला] (१) नया पौधा वा अंकुर । कोंपल । कल्ला । (२) नवयुवक । उ०—वह सदा इसी ताक में रहा करता था कि किस घराने में कौन कौन नये केड़े हैं । — सौ अजान और एक सुजान । (३) खेत से काटी हुई फसल वा घास का गट्ठा ।

केणिक—संज्ञा पुं० [सं० केणिका] खीमा । तंबू । रावटी । [डिं०] ।

केत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर । भवन । (२) स्थान । जगह । बस्ती । उ०—फूल फूल फिर पूछौ जो पहुँचो वहि केत । तन नेउछावर कै मिलौं ज्यों मधुकर जिव देत ।—जायसी । (३) केतु । ध्वजा । (४) बुद्धि । प्रज्ञा । (५) संकल्प । (६) मंत्रणा । सलाह । (७) अन्न, जैसे—केतपू ।

केतक—संज्ञा पुं० [सं०] केवड़ा । उ०—लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्षण जानि तजे डरि कै ।—केशव ।

वि० [सं० कति + एक] (१) कितने । किस कदर । (२) बहुत । उ०—केतक दिवस राज्य तब कियऊ । एक दिना नारद मुनि गयऊ ।—सबल ।

केतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छोटा झाड़ या पौधा जिसकी पत्तियाँ लंबी, नुकीली, चिपटी, कोमल और चिकनी होती हैं और जिनके किनारे और पीठ पर छोटे छोटे काँटे होते हैं । केतकी दो प्रकार की होती है, एक सफेद और दूसरी पीली । सफेद केतकी को हिंदी में केवड़ा और पीली या सुवर्ण-केतकी को केतकी कहते हैं । इसकी पत्तियों से चटाइयाँ, छाते और टोपियाँ बनती हैं । इसका तना नरम होता है और बोतलों में डाट लगाने के काम में आता है । कहीं कहीं इसकी नरम पत्तियों का साग भी बनाया जाता है । बरसात में इसमें फूल लगते हैं जो लंबे, सफ़ेद रंग के और बहुत सुगंधित होते हैं । इसका फूल बाल की तरह होता है और ऊपर से लंबी लंबी पत्तियों से ढका हुआ होता है । फूल से अतर और सुगंधित जल बनाया जाता है और उससे कत्था भी बसाया जाता है । ऐसा प्रसिद्ध है कि इस फूल पर भौंरा नहीं बैठता । पुराणों के अनुसार यह फूल शिव जी को नहीं चढ़ाया जाता । वैद्यक में सफ़ेद केतकी बालों की दुर्गंधि दूर करनेवाली मानी गई है और इसका शाक वा मूल स्वाद में कड़ुआपन लिए हुए मीठा और गुण में कफ़-नाशक और लघुपाक कहा गया है ।

पर्या०—शूचीपत्र । हलीन । जंबूल । जंबूक । तीक्ष्णपुष्पा । विफला । धूलिपुष्पा । मेध्या । इंदुकलिका । शिवद्विष्टा । क्रकचा । दीर्घपत्रा । स्थिरगंधा । कंटदला । दलपुष्पा । केवड़ा ।

(२) एक रागनी का नाम । उ०—रामकली, गुन कली, केतकी, सुर सुघराई गायो । जैजैवंती, जगतमोहिनी, सुर सों बीन बजायो ।—सूर ।

केतन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) निमंत्रण । आह्वान । (२) ध्वज । निशान । (३) चिह्न । (४) घर । (५) स्थान । जगह ।

केतपू—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न साफ़ करनेवाला ।

केता*—वि० [सं० कियत्] [स्त्री० केती] कितना ।

केतिक*†—वि० [सं० कति + एक] कितना । किस कदर । उ०—कहौ बात अपने गोकुल की केतिक प्रीति ब्रजबालहिँ । —सूर ।

केती*—वि० दे० "केता" ।

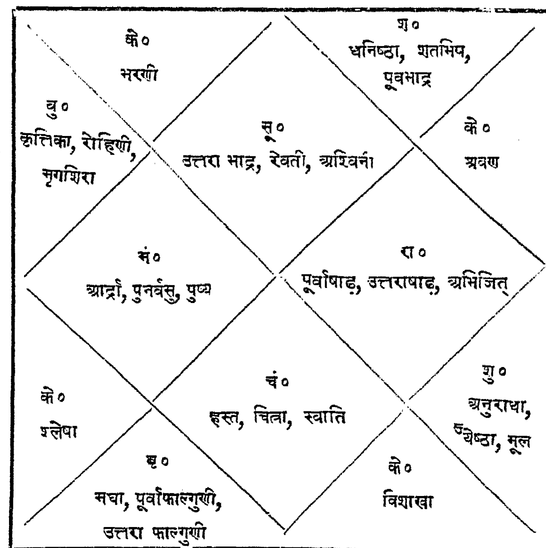
केतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्ञान । (२) दीप्ति । प्रकाश । (३) ध्वज । पताका । (४) निशान । चिह्न । (५) पुराणानुसार एक राक्षस का कबंध । यह राक्षस समुद्र मथन के समय देवताओं के साथ बैठ कर अमृत पान कर गया था इस लिये विष्णु भगवान् ने इसका सिर काट डाला, पर अमृत के प्रभाव से वह मरा नहीं और उसका शिर राहु और कबंध केतु हो गया । कहते हैं कि इसे सूर्य्य और चंद्रमा ही ने पहचाना था । इसी लिये यह अब तक ग्रहण के समय सूर्य्य और चंद्रमा को ग्रसता है । (६) एक प्रकार का तारा जिसके साथ एक प्रकाश की पूँछ दिखाई देती है । यह पुच्छल तारा कहलाता है । इस प्रकार के अनेक तारे हैं जो कभी कभी रात को झाड़ू की तरह भिन्न भिन्न आकार के दिखाई देते हैं । भारतीय ज्योतिषियों में इनकी संख्या के विषय में मतभेद है । कोई हजार, कोई १०१, कोई कुछ कोई कुछ मानता है । नारद जी का मत है कि केतु एक ही है और वही भिन्न भिन्न रूप का दिखाई पड़ता है । फलित में भिन्न भिन्न केतुओं के उदय का भिन्न भिन्न फल माना गया है । ज्योतिषियों का मत है कि केतु अपने उदयकाल ही में वा उदय से पंद्रह दिन पीछे शुभ वा अशुभ फल देते हैं । आज कल

के पाश्चात्य ज्योतिषियों ने दूरबीन द्वारा यह निश्चय किया है कि केतुओं की संख्या अनिश्चित है और वे भिन्न भिन्न पटल में भिन्न भिन्न दीर्घवृत्त वा परवलयवृत्त कक्षाओं में भिन्न भिन्न वेगों से घूमते हैं। इन कक्षाओं की दो नाभियों में सूर्य्य एक नाभि होता है। दीर्घवृत्तात्मक कक्षा होने से ये तारे जब रविनीच के, वा सूर्य्य के समीपवर्ती कक्षांश में होते हैं तभी दिखाई पड़ते हैं। रविनीच के कक्षांश में आते ही ये तारे कुछ दिखाई पड़ने लगते हैं और पहले पहल प्रकाश के धब्बे की तरह दूरबीनों से दिखाई पड़ते हैं। ज्यों ज्यों ये सूर्य्य के समीप आते जाते हैं इनकी केतुनाभि दिखाई पड़ने लगती है, फिर क्रमशः स्पष्ट होती जाती है। पर कितने ही केतुओं की केतुनाभि नहीं दिखाई पड़ती। उनमें केतुनाभि है वा नहीं, यह संदिग्ध है। इन तारों की केतुनाभि उनके आवरण में लिपटी हुई सूर्य्य से २ अंश से ६० अंश तक में दिखाई पड़ती है। इन तारों के साथ प्रकाश की एक धड़ी लगी होती है जिसे केतुपुच्छ कहते हैं। इस केतुपुच्छ में स्वयं प्रकाश नहीं होता। यह स्वयं स्वच्छ पारदर्शी और वायुमय होता है जिसमें सूर्य्य के सान्निध्य से प्रकाश आ जाता है। यही कारण है कि पुच्छ की दूसरी ओर का छोटे से छोटा तारा तक दिखाई देता है। सन् १६८२ ई० के पूर्व के ज्योतिषियों की यह धारणा थी कि पुच्छल तारे बिना ठीक ठिकाने के मनमाने घूमा करते हैं, न इनकी कोई नियत कक्षा है और न इनके घूमने का कोई नियम है। सन् १६८२ ई० में हेली साहब ने हिसाब लगा कर एक तारे के विषय में यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिया कि वह बहेलले की तरह नहीं घूमता बल्कि लगभग ७६ वर्ष के बाद दिखाई पड़ता है। इस तारे को हेली साहब का पुच्छल तारा वा हेलीकेतु कहते हैं। तब से ज्योतिषियों का ध्यान इन केतुओं की गति की ओर आकर्षित हुआ और अब तक कितने ही तारों की गति और कक्षा आदि का पूरा पता लग चुका है। ऐसे तारों को ज्योतिष में नियतकालिक केतु कहते हैं। सब से विलक्षण बात—जिसका पता सन् १८६२ में इटली के शेपरले नामक ज्योतिषी ने लगाया—यह है कि कितने ही पुच्छल तारों की कक्षा और कितने ही उल्कापुंजों की कक्षा एक ही है। इसने इस बात को सिद्ध कर दिया कि १८६२ के केतु और सिंहगत उल्का ये एक ही कक्षा में भ्रमण करते हैं। केतु को पुच्छलतारा, बढ़नी, झाड़ू आदि भी कहते हैं। उ०—कह प्रभु हँसि जनि हृदय डराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू।—तुलसी। (७) नवग्रहों में से एक ग्रह। यद्यपि फलित में इसे ग्रह माना है तथापि सिद्धांत-ग्रंथों में चंद्रकक्ष और क्रांतिरेखा के अधःपात के बिंदु को ही केतु माना है।

विशेष—दे० "पात"।

केतुकुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार बारह कोष्ठों का एक चक्र जिससे प्रत्येक वर्ष का स्वामी निकाला जाता है। इस चक्र के बनाने की रीति यह है कि कोष्ठों में पहले कोष्ठ से आरंभ करके ग्रहों के नाम इस क्रम से रखते हैं, सूर्य्य, केतु, बुध, मंगल, केतु, बृहस्पति, चंद्रमा, केतु, शुक्र, राहु, केतु और शनि। फिर उत्तराभाद्र से आरंभ करके नक्षत्रों को कोष्ठों में इस प्रकार भरते हैं कि सूर्य्य आदि ग्रहों के नीचे तीन तीन नक्षत्र और केतु के नीचे एक एक नक्षत्र यथाक्रम पड़े। इसके उपरांत चक्र में कुंडली वाले के जन्म नक्षत्र को देखते हैं। वह नक्षत्र जिस ग्रह के कोष्ठ में होता है वही प्रथम वर्ष का वर्षेश होता है। इसी प्रकार दूसरे, तीसरे आदि वर्षों का भी निकालते हैं। इसका प्रचार वंग देश में विशेष है।

चक्र



केतुपताका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार नौ कोष्ठों का एक चक्र जिससे वर्षेश निकाला जाता है। इस चक्र में नवों ग्रह, सूर्य्य, चंद्र, मंगल, बुध, शनि, बृहस्पति, राहु, शुक्र, केतु क्रम से रखे जाते हैं। फिर कृत्तिका से लेकर भरणी तक और सूर्य्य से लेकर शुक्र तक प्रत्येक ग्रह के कोष्ठ में तीन तीन अक्षर लिखे जाते हैं। इस प्रकार जन्मनक्षत्र से वर्षेश का निश्चय किया जाता है। वर्षेश के वर्ष में अन्य ग्रहों का अंतर्दिन होता है। इसका भी प्रचार बंगाल में अधिक है।

केतुमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वर्णार्द्ध समवृत्त का नाम जिसके विषम पादों में सगण, जगण, सगण और एक गुरु होता है और सम पादों में भगण, रगण, नगण और दो गुरु होते हैं। उ०—प्रभु जी हरी हमहिं तारो, मो मनतें सभी अघ निकारो। अपने हिये यह विचारो, राम अनाथ को लखि

उबारो। (२) रावण की नानी अर्थात् सुमाली राक्षस की पत्नी का नाम।

केतुमान्—वि० [सं०] (१) तेजवान्। तेजस्वी। (२) ध्वजावाला। जिसके पास पताका हो। (३) बुद्धिमान्।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरिवंश के अनुसार काशिराज दिवोदास के वंश का एक राजा जो धन्वंतरि का पुत्र था। (२) एक दानव का नाम।

केतुमाल—संज्ञा पुं० [सं०] जंबू द्वीप के नौ खंडों में से एक खंड। ब्रह्मांडपुराण के अनुसार इसमें सात पर्वत और कई नदियाँ हैं। सिद्ध और देवर्षि प्रायः इन्हीं नदियों में स्नान करना पसंद करते हैं। इस खंड में प्रायः जंगली जानवर भी रहते हैं।

केतुरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] लहसुनिया नामक रत्न।

केतुवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार मेरु के चारों ओर के पर्वतों पर के वृक्षों का नाम। विष्णुपुराण के अनुसार मेरु की पूर्व दिशा में मंदराचल है जिस पर कदंब का वृक्ष है, दक्षिण ओर गंधमादन पर जंबू, पश्चिम ओर विपुलगिरि पर पीपल और उत्तर ओर सुपार्श्व पर्वत पर वट वृक्ष है। इन्हीं चारों वृक्षों को केतुवृक्ष कहते हैं।

केता—संज्ञा पुं० [देश०] अमेरिका के गरम देशों में रहनेवाला एक जानवर जो लोमड़ी के आकार का होता है और ईख के खेतों को बड़ी हानि पहुँचाता है।

*वि० [सं० कति] कितना।

केदली†—संज्ञा पुं० [सं० कदली] केले का पेड़। कदली वृक्ष। उ०—विधिहिं बंदि तिन कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक केदली खंभा।—तुलसी।

केदार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह खेत जिसमें धान बोया वा रोपा जाता है। कियारी। (२) वृक्ष के नीचे ज़मीन पर बना हुआ थाला। थाँवला। (३) मेघराग का चौथा पुत्र। यह संपूर्ण जाति का राग है और रात के दूसरे पहर में गाया जाता है। (४) हिमालय पर्वत का एक शिखर और प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ केदारनाथ नाम का एक शिवलिंग है।

विशेष—दे० "केदारनाथ"।

(५) कामरूप देश का एक तीर्थ।

केदारक—संज्ञा पुं० [सं०] साठी धान।

केदारगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गढ़वाल प्रांत की एक प्रसिद्ध नदी जो गंगा में मिलती है।

केदारनट—संज्ञा पुं० [सं० केदार+नट] षाडव जाति का एक संकर राग जो नट और केदार को मिला कर बनता और रात के दूसरे पहर में गाया जाता है। इसमें ऋषभ वर्जित है। पर संगीतपारिजात में इसे ओड़व जाति का राग माना है और इसमें ऋषभ और धैवत वर्जित बतलाया है। किसी किसी के मत से यह नट-नारायण का छठा पुत्र भी है।

केदारनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय के अंतर्गत एक पर्वत का नाम जिसके शिखर पर केदारनाथ नामक शिवलिंग है। यह समुद्र से ७३३३ फुट ऊँचा है। इसका ऊपरी भाग महापथ कहलाता है और सदा बरफ़ से ढका रहता है। बहुत प्राचीन काल से यह स्थान एक पवित्र तीर्थ माना जाता है और इसके आस पास और भी अनेक छोटे छोटे तीर्थ हैं। वैसाख से कार्तिक तक भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों से अनेक यात्री दर्शनों के लिये यहाँ जाते हैं।

केदारा—संज्ञा पुं० दे० "केदारी"।

केदारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीपक राग की पाँचवीं रागिनी। यह रात के समय दूसरे पहर की पहली घड़ी में गाई जाती है। यह ओड़व जाति की रागिनी है और इसमें ऋषभ और धैवत स्वर वर्जित हैं। इसका सरगम यह है।—नि स ग म प नि नि। पर सोमेश्वर के मत से यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और संध्या के समय गाई जाती है। इसका व्यवहार प्रायः वीर और शृंगार रस के वर्णन में किया जाता है।

केन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध उपनिषद् जिसका पहला मंत्र "केनेषितं०" "केन" शब्द से आरंभ होता है। इसे तवलकार उपनिषद् भी कहते हैं। यह सामवेदी है और इसमें चार खंडों में ३४ मंत्र हैं।

संज्ञा स्त्री० [देश०] ज़िला बाँदा की एक नदी जो विंध्याचल से निकल कर यमुना में गिरती है।

केना†—संज्ञा पुं० [सं० क्रयि = मोल लेना] (१) वह थोड़ा सा अन्न जिसे देकर देहात में लोग तरकारी इत्यादि मोल लेते हैं। कनूका। केजा। (२) सागपात। तरकारी। भाजी।

केनिपात, केनिपातक—संज्ञा पुं० [सं०] डाँड़ वा बल्ली जिससे नाव चलाई जाती है। बहना। अरित्र।

केमद्रुम—संज्ञा पुं० [यू० केनोड्रोमस्] ज्योतिष में चंद्रमा का एक योग जो उस समय होता है जब कि चंद्रमावाली राशि के आगे या पीछेवाली राशि पर कोई और ग्रह न हो। फलित के अनुसार यदि इस योग में किसी राजकुमार का भी जन्म हो तो वह सदा दुःखी और दरिद्र रहता है।

केमुक—संज्ञा पुं० [सं०] केउआँ। बंडा।

केयूर—संज्ञा पुं० [सं०] बाँह में पहनने का आभूषण। बिजायठ। बजुल्ला। अंगद। बहुँटा। भुजबंद। भुजभूषण।

केयूरबल—संज्ञा पुं० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक बौद्ध देवता।

केयूरी—वि० [सं०] जो केयूर पहने हो। केयूरधारी।

केर†—अव्य० [सं० कृत] [स्त्री० केरी] संबंधसूचक अव्यय। अवधी भाषा में यह "का" "के" विभक्तियों के स्थान में आता

है। उ०—छमहु चूक अनजानत केरी। चहिय विप्र उर कृपा घनेरी।—तुलसी।

केरक–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन प्रदेश।

केरल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दक्षिण भारत का एक देश जो कन्या-कुमारी से गोकर्ण तक मलयवार पर समुद्र के किनारे किनारे फैला हुआ है। इस देश की सीमा भिन्न भिन्न समयों में बदलती रही है। तंत्रों के अनुसार केरल के तीन विभाग थे—सिद्ध केरल (सुब्रह्मण्य से जनार्दन तक), हंसकेरल (रामेश्वर से वैंकट गिरि तक) और केरल (अनंत शैल से अव्यय तक)। आज कल इस देश को कनारा कहते हैं और यहाँ कनारी भाषा बोली जाती है। (२) [स्त्री० केरली] केरल-देश-वासी पुरुष। (३) एक प्रकार का फलित ज्यौतिष जिसका आविष्कार केरल देश में हुआ था। इसमें स्वर और व्यंजन अक्षरों के लिये कुछ अंक नियत होते हैं और उन्हीं की सहायता से गणित करके प्रश्न का फल या उत्तर निकाला जाता है।

केरा†–संज्ञा पुं० दे० "केला"।
संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बत्तक जिसे "पतारी" भी कहते हैं।

केराना†–क्रि० स० [सं० किरण वा हिं० गिराना] सूप में अन्न रख कर उसे हिला हिला कर बड़े और छोटे दाने अलग करना।
संज्ञा पुं० [सं० क्रयण] नमक, मसाला, हलदी आदि चीज़ें जो नित्य के व्यवहार में आती और पंसारियों के यहाँ मिलती हैं।

केरानी–संज्ञा पुं० [अं० क्रिश्चियन] (१) वह मनुष्य जिसके माता पिता में से कोई एक युरोपियन और दूसरा हिंदुस्तानी हो। किरंटा। युरेशियन। (२) अंगरेज़ी दफ़्र में लिखने पढ़ने का काम करनेवाला मुंशी। क्लर्क।
यौ०—केरानीख़ाना = अँग्रेज़ी दफ़्र।

केराया†–संज्ञा पुं० दे० "किराया"।

केराव†–संज्ञा पुं० [सं० कलाय] मटर।

केरावल–संज्ञा पुं० दे० "किरावल"।

केरि†–प्रत्य० [सं० कृत] दे० "केरी"।
संज्ञा स्त्री० दे० "केलि"।

केरी†–प्रत्य० [सं० कृत] की।
विशेष–यह "केर" का स्त्रीलिंग रूप है।
संज्ञा स्त्री० [देश०] आम का कच्चा और छोटा नया फल। अँबिया।

केरोसिन–संज्ञा पुं० [अं०] मिट्टी का तेल।

केल–संज्ञा पुं० [सं० केलिक, प्रा० केलिय] एक वृक्ष जो हिमालय पर ६००० से ११००० फुट की ऊँचाई तक होता है। यह पेड़ सीधा और बहुत बड़ा होता है। इसकी लकड़ी प्रति घन फुट १६–१७ सेर भारी होती है। इसके दो भेद होते हैं—देशी और विलायती। दोनों की लकड़ी प्रायः इमारत के काम में आती है। देशी केल की लकड़ी में से चीड़ के तेल की तरह तेल निकलता है और उसका कोयला भी अच्छा होता है जिससे लोहा पिघल जाता है। विलायती केल की लकड़ी जलाने के काम में नहीं आती है। वह जलाने से चिड़-चिड़ाती और जल्दी बुझ जाती है। दोनों की छाल दृढ़ होती है और छत पाटने के काम में आती है। केल की पत्तियाँ और डालियाँ बिचाली के काम में लाई जाती हैं। विलायती केल के पेड़ देखने में सीधे और सुंदर होते हैं इस लिये सड़कों पर और मैदानों में लगाए जाते हैं।

केलक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के नाचनेवाले जो हाथ में तलवार, कटारी आदि ले कर नाचते हैं।

केला–संज्ञा पुं० [सं० कदल, प्रा० कयल] (१) एक पेड़ जो भारतवर्ष, बरमा, चीन, मलाया के टापुओं, अफ्रिका, अमेरिका, दक्षिणी यूरोप आदि गरम स्थानों में होता है। इसके पत्ते गज़ डेढ़ गज़ लंबे और हाथ भर चौड़े होते हैं। इस पेड़ में डालियाँ नहीं होतीं, अरुई बंडे आदि की तरह पेड़ी वा पूती ही से एक एक पत्ता निकलता है। पेड़ी चिकनी, पर्त्तदार, छिद्रमय और पानी से भरी होती है। केले के लिये पानी की आवश्यकता बहुत होती है, इसी से इसे नालियों में लगाते हैं। पेड़ साल भर में पूरी बाढ़ को पहुँचता है और तब उसके बीच से कमल के आकार का, कालापन लिए लाल रंग का बहुत बड़ा फूल निकलता है जो नीचे की ओर झुका होता है। यह फूल एकबारगी नहीं खिलता। प्रति दिन एक एक दल खुलता है जिसके भीतर आठ दस छोटी छोटी फलियों की पंक्तियां दिखाई पड़ती हैं। इन फलियों के सिरों पर पीले पीले फूल लगते हैं। इन फलियों की पंक्ति को पंजा कहते हैं। प्रत्येक दल के नीचे एक एक पंजा निकलता है। पीले फूलों के गिर जाने पर येही फलियाँ बढ़ कर बड़ी बड़ी होती हैं। पूरे डंठल को जिसमें फलियों के कई पंजे होते हैं घौद कहते हैं। केले की अनेक जातियाँ होती हैं, जिनमें मर्त्तबान, चंपा, चीनिया, मालभोग आदि प्रसिद्ध हैं। केले के फल साधारणतया पकने पर पीले होते हैं, पर कहीं कहीं लाल, गुलाबी और हरे रंग के केले भी मिलते हैं। केले की फलियाँ चार अँगुल से लेकर डेढ़ बित्ते तक की होती हैं। जावा में एक प्रकार का केला इतना बड़ा होता है जिससे चार आदमियों का पेट भर सकता है। इस केले का फूल पेड़ी के बाहर नहीं निकलता, भीतर ही भीतर फलता फूलता है। पेड़ में एक ही फल लगता है जिसके पकने पर पेड़ी फट जाती है। फ़िलिपाइन द्वीप में भी बहुत बड़े बड़े केले होते हैं। बहुत से केले बीजू होते हैं जिनकी

फलियों में काले काले गोल बीज भरे रहते हैं। इन्हें कठ-केला कहते हैं। कच्चे केले की लोग तरकारी बनाते हैं। कच्चे केले को सुखा कर आटा भी बनता है जो हलका होता है और दवा के काम में आता है। बंगाल में केले के कोमल डंठल की भी तरकारी बनती है। पत्तों के डंठल से जो रेशे निकलते हैं उनसे चटाई बुनी जाती है और काग़ज़ भी बनता है। आसाम और चटगाँव की ओर केलों के जंगल भी हैं। (२) केले का फल।

पर्या०—रंभा। मोचा। कदली। अंशुमत्फला। वारणवुषा। वारवुषा। सुफला। निःसारा। भानुफला। गुच्छफला। वारणवल्लभा। वनलक्ष्मी। रोचक। चर्मरावती।

(३) पुरुषेंद्रिय। (बाजारू)।

केलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खेल। क्रीड़ा। (२) रति। मैथुन। समागम। स्त्रीप्रसंग। उ०—अस कहि अमित बनाये अंगा। कीन्ही केलि सबन के संगा।—रघुनाथ।

यौ०—केलिमंदिर। केलिभवन।

(३) हँसी। ठट्ठा। मज़ाक़। दिल्लगी। (४) पृथ्वी।

केलिक—संज्ञा पुं० [सं०] अशोकवृक्ष।

केलिकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती की वीणा। (२) दे० "केलि (२)"।

केलिकिल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाटक का विदूषक। (२) शिव के कुष्मांडक नामक अनुचर का एक नाम।

संज्ञा स्त्री० कामदेव की स्त्री, रति।

केली—संज्ञा स्त्री० [सं० कदली, प्रा० कयली] केले की एक जाति जिसके फल छोटे होते हैं। दे० "केला"।

केलूराव—संज्ञा पुं० [देश०] दे० "केल"।

केलो—संज्ञा पुं० [देश०] दे० "केल"।

केवका—संज्ञा पुं० [सं० कवक = ग्रास] वह मसाला जो प्रसूता स्त्रियों को दिया जाता है।

केवकी—संज्ञा स्त्री० दे० "केवटी"।

केवट—संज्ञा पुं० [सं० कैवर्त्त, प्रा० केवट्ट] क्षत्रिय पिता और वैश्या माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति। इस जाति के लोग आज कल नाव चलाने तथा मिट्टी खोदने का काम करते हैं। उ०—तब केवट ऊँचे चढ़ि जाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई।—तुलसी।

केवटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बहुत छोटा कीड़ा।

केवटीदाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० केवट = एक संकर जाति + दाल] दो या अधिक प्रकार की, एक में मिली हुई दाल।

केवटीमोथा—संज्ञा पुं० [सं० कैवर्त्तमुस्ता] एक प्रकार का सुगंधित मोथा जो मालवा में होता है। इसकी जड़ बहुत सुगंधित होती है और ओषधि के काम में आती है। वैद्यक में इसे गरम और कफ़ तथा वात का नाश करनेवाला और दाह, शूल, व्रण और रक्तविकार को दूर करनेवाला माना है।

केवड़ई—वि० [हिं० केवड़ा + ई० (प्रत्य०)] एक प्रकार का रंग जो केवड़े की तरह हलका पीला और हरा मिला हुआ सफ़ेद होता है और जो शहाब, खटाई और तुन के फूलों के मिलाने से बनता है।

केवड़ा—संज्ञा पुं० [सं० केविका] (१) सफ़ेद केतकी का पौधा जो केतकी से कुछ बड़ा होता है। इसके फूल और पत्तियाँ केतकी से बड़ी होती हैं। केतकी की पत्तियों की भाँति इसकी पत्तियाँ चटाइयाँ आदि बनाने के काम आती हैं और इसके फूल से भी अतर और सुगंधित जल बनता और कत्था बसाया जाता है। इसमें भी केतकी के प्रायः सब गुण हैं। इसके सिवा वैद्यक में इसके केसर को गरम और कंडुनाशक माना है और इसके फल को वात, प्रमेह और कफ़ का नाशक कहा है।

विशेष—दे० "केतकी"।

(२) इस पौधे का फूल। (३) इसके फूल से उतारा हुआ सुगंधित जल या आसव। (४) एक पेड़ जो हरद्वार के जंगलों और बरमा में होता है। यह गरमी के दिनों में फूलता है। इसकी लकड़ी सागवन आदि की तरह मज़बूत होती है जिसके तख़्तों से मेज़ कुरसी संदूक़ आदि बनाए जाते हैं।

केवरा—संज्ञा पुं० दे० "केवड़ा"।

केवल—वि० [सं०] (१) एकमात्र। अकेला। (२) शुद्ध। पवित्र। (३) उत्कृष्ट। उत्तम। श्रेष्ठ।

क्रि० वि० मात्र। सिर्फ़।

संज्ञा पुं० [वि० केवली] (१) वह ज्ञान जो भ्रांतिशून्य और विशुद्ध हो। सांख्य के अनुसार इस प्रकार का ज्ञान तत्त्वाभ्यास से प्राप्त होता है। यह ज्ञान मोक्ष का साधक होता है। इससे ज्ञानी को यह साक्षात् हो जाता है कि न मैं कर्त्ता हूँ, न मेरा किसी से कुछ संबंध है और न मैं स्वयं पृथक् कुछ हूँ। इस प्रकार के ज्ञान से वह पुरुष को साक्षीमात्र के रूप में देखता है। (२) जैनशास्त्रानुसार सम्यक्ज्ञान। (३) वास्तुविद्या में स्तंभ के आधार अर्थात् कुंभी के ऊपर का ढाँचा।

केवलात्मा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाप और पुण्य से रहित—ईश्वर। (२) शुद्ध स्वभाववाला मनुष्य।

केवली—संज्ञा पुं० [सं० केवल + ई (प्रत्य०)] (१) मुक्ति का अधिकारी साधु। केवल-ज्ञानी। (२) मुक्तिप्राप्त साधु। तीर्थंकर। [जैन०]।

केवलव्यतिरेकी—संज्ञा पुं० [सं० केवलव्यतिरेकिन्] एक प्रकार का अनुमान जिसे "शेषवत्" कहते हैं। दे० "अनुमान"।

केवलान्वयी–संज्ञा पुं० [सं० केवलान्वयिन्] एक प्रकार का अनुमान जिसे "पूर्ववत्" कहते हैं। दे० "अनुमान"।

केवईँ–संज्ञा स्त्री० [हिं० केवा] कुईँ।

केवाँच–संज्ञा स्त्री० दे० "कौंच"।

केवा–संज्ञा पुं० [सं० कुव=कमल] कमल। कमल-कली। उ०—(क) तेहि अलि कीन्ह आप भा केवा। हौं पठवा गुरु बीच परेवा।—जायसी। (ख) स्वर्ग सूर भुइँ सरवर केवा। बनखँड भवँर होय रस-लेवा।—जायसी।
संज्ञा पुं० [सं० किंवा] बहाना। मिस। आनाकनी। संकोच। उ०—रघुराज कौनहू बिसंच नहिँ होन पैहै, खासे खासे खुशी खेल खूब खेलवैहौं मैं। केवा जनि कीजै मेरि सेवा सब भांति लीजै, मीठ मीठ मेवा लै कलेवा करवैहौं मैं।—रघुराज।

केवाड़†–संज्ञा पुं० दे० "किवाड़"।

केवाड़ा†–संज्ञा पुं० दे० "किवाड़ा"।

केविका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक फूल का नाम जो कोंकण प्रदेश में होता है। सद्गंधा।

केश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रश्मि। किरण। (२) ब्रह्म की शक्ति का एक भेद। (३) वरुण। (४) विश्व। (५) विष्णु। (६) सूर्य्य। (७) सिर का बाल।
यौ०—केशविन्यास=बाल सँवारना। केशाकेशी=वह लड़ाई जिसमें दो आदमी एक दूसरे का बाल पकड़ कर खींचें।
(८) शेर और घोड़े के गले पर का बाल। (९) केशी नामक दैत्य।

केशकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाल झाड़ने और गूँथने की कला। केशविन्यास। (२) केशांत-नामक संस्कार।

केशकीट–संज्ञा पुं० [सं०] जूँ।

केशट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खटमल। (२) विष्णु। (३) छाग। (४) कामदेव के पांच बाणों में से शोषण नामक बाण। (५) श्योनाक वृक्ष। टेंटू।

केशपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग।

केशपाश–संज्ञा पुं० [सं०] बालों की लट। काकुल।

केशबंध–संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य का एक हस्तक जिसमें हाथों को कंधे पर से घुमाते हुए कमर पर लाते हैं, और फिर ऊपर सिर की ओर ले जाते हैं।

केशमथनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी का पेड़, जिसके काँटों में बाल उलझ जाते हैं।

केशरंजन–संज्ञा पुं० [सं०] भृंगराज। भँगरैया।

केशर–संज्ञा पुं० दे० "केसर"।

केशराज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का भुजंगा पक्षी। (२) भँगरैया। भृंगराज।

केशराम्ल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनार। (२) बिजौरा नीबू।

केशरी–संज्ञा पुं० दे० "केसरी"।

केशरूपा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पेड़ पर का बांदा।

केशलुंच–संज्ञा पुं० [सं०] सिर के बाल नोचनेवाला जैन यति।

केशव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) कृष्णचंद्र का एक नाम। (३) ब्रह्म। परमेश्वर। उ०—अंशवो ये प्रकाशंते मम ते केशसंज्ञिताः। सर्वज्ञाः केशवं तस्मात् प्राहुर्मां द्विजसत्तमाः।—महाभारत (४) विष्णु के चौबीस मूर्त्ति-भेदों में से एक। (५) पुन्नाग वृक्ष।

केशवपनीय–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अतिरात्र यज्ञ जो दो पशुबंध यागों के अनंतर किया जाता है। इस यज्ञ के अंत में ज्येष्ठा पौर्णमासी सुत्या सोमयाग करना पड़ता है।

केशवर्द्धिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेवी नाम की बूटी। सहदेइया।

केशवायुध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का आयुध। (२) आम।

केशवालय–संज्ञा पुं० [सं०] पीपल। वासुदेव-वृक्ष।

केशविन्यास–संज्ञा पुं० [सं०] बालों की सजावट। बालों का सवाँरना।

केशहंत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी-वृक्ष।

केशांत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोलह संस्कारों में से एक जो ब्राह्मण को सोलहवें, क्षत्रिय को बाइसवें और वैश्य को चौबीसवें वर्ष करने का विधान है। यह संस्कार यज्ञोपवीत के बाद और समावर्तन के पहले होता था, इसमें ब्रह्मचारी के शिर के बाल मूड़े जाते थे। इसे गोदानकर्म भी कहते हैं। (२) मुंडन। (३) बाल का सिरा।

केशारुहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेवी नामक बूटी। सहदेइया।

केशि–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस जिसे कृष्ण ने मारा था।

केशिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सतावरी।

केशिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जटामांसी। (२) चोरे-पुष्प नाम की एक ओषधि। (३) वह स्त्री जिसके सिर के बाल सुंदर और बड़े हों। (४) एक अप्सरा का नाम। यह कश्यप की पत्नी प्रधा की कन्या थी। (५) पार्वती की एक सहचरी (६) राजा अजमीढ़ की रानी का नाम। (७) राजा सगर की एक रानी का नाम। (८) भागवत के अनुसार रावण की माता कैकसी का एक नाम। (९) एक प्राचीन नगरी का नाम। (१०) दमयंती की उस दूती का नाम जो नल के भेस बदल कर आने पर उसके पास दमयंती का सँदेसा लेकर गई थी।

केशी–संज्ञा पुं० [सं० केशिन्] [स्त्री० केशिनी] (१) प्राचीन काल के एक गृहपति का नाम। (२) एक असुर जिसे कृष्ण ने मारा। (३) घोड़ा। (४) सिंह। (५) एक यादव का नाम।
वि० (१) किरण वा प्रकाशवाला। (२) अच्छे बालोंवाला।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नील का पौधा। (२) भूतकेश। भूत केश नाम की ओषधि। (३) केवाँच। (४) एक वृक्ष जिसकी पत्तियाँ खजूर की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं।

केश्य–संज्ञा पुं० [सं०] काला अगर।

केस–संज्ञा पुं० [सं० केश] (१) दे० "केश"। (२) आंख का एक रोग जिसमें आंख के कोने में लाल मांस निकलता है जो क्रमशः बढ़ता जाता है और धीरे धीरे सारी आंख को ढक लेता है।

संज्ञा पुं० [अं०] (१) किसी चीज़ के रखने का खाना या घर। जैसे—चश्मे का केस। (२) मुक़दमा। (३) दुर्घटना। (४) लकड़ी का एक प्रकार का चौकोर घेरा जो प्रायः एक हाथ चौड़ा, दो हाथ लंबा और तीन चार अंगुल ऊँचा होता है और जिसमें टाइप रखने के लिये बहुत छोटे छोटे खाने बने होते हैं। (छापाखाना)।

केसई-संज्ञा स्त्री० दे० "कसई" वा "कसेई"।

केसर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह बाल की तरह पतले पतले सींके जो फूलों के बीच में रहते हैं। केसर दो प्रकार का होता है। एक वह जो घुंडी के किनारे किनारे होता है और जिसमें नोक पर छोटे चिपटे दाने होते हैं। इसमें पराग रहता है और यह पराग-केसर कहलाता है। दूसरा वह जो घुंडी के बीच में होता है। इसमें पराग नहीं होता और यह गर्भ-केसर कहलाता है। (२) एक प्रकार के फूल का केसर जिसका पौधा बहुत छोटा होता है और पत्तियाँ घास की तरह लंबी और पतली होती हैं। केसर का पौधा स्पेन, फारस, कशमीर और चीन में होता है। पर कशमीर का केसर सर्वोत्तम माना जाता है। इसका फूल बैंगनी रंग की झाईं लिए बहुत रंग का होता है और पौधे में फूल निकलने के बाद पत्तियाँ लगती हैं। प्रत्येक फूल में केवल तीन केसर होते हैं, इसी लिये आधी छटांक असली केसर के लिये प्रायः चार हज़ार फूलों की आवश्यकता होती है। केसर निकाल लेने के बाद फूल को धूप में सुखाकर हलके डंडों से कूटते हैं और तब उसे किसी जल-भरे बरतन में डाल देते हैं। उसमें से जो अंश नीचे बैठ जाता है वह "मोंगला" कहलाता है और मध्यम श्रेणी का केसर होता है। जो अंश जल में न डूब कर पानी के ऊपर रह जाता है वह फिर सुखा और कूट कर पानी में डाला जाता है। इस बार जो केसर जल में डूब जाता है वह निकृष्ट श्रेणी का होता है और "नीबल" या "निर्बल" कहलाता है। केसर का पौधा विशेष प्रकार की ढालुआँ ज़मीन में होता है जो इसी कार्य्य के लिये आठ वर्ष पहले से बिलकुल परती छोड़ दी जाती है। इस पौधे की गाँठें ज़मीन में गाड़ी जाती हैं और एक बार की लगाई हुई गाँठों से चौदह वर्ष तक फूल निकलते रहते हैं। इसके फूल कातिक में लगते और संग्रह किये जाते हैं। केसर बहुत ही सुगंधित और गरम होता है और खाने पीने की चीज़ों में सुगंधि के लिये डाला जाता है। केसर का रंग देखने में गहरा लाल होता है, पर पीसने पर पीला हो जाता है। वैद्यक में केसर को सुगंधित, तिक्त, उष्णवीर्य्य, रुचिकारक, क्रांतिवर्द्धक, कंडुनाशक, विरेचक और कास, वायु, कफ, कृमि और त्रिदोष का नाशक माना है। डाक्टरी मत से यह ज्वर और यकृत् नाशक और रजोनिःसारक है; पर आज कल के कुछ नये डाक्टर इसका कोई गुण स्वीकार नहीं करते।

पर्य्या०—काश्मीरजन्म। अग्निशिख। पीतन। रक्त। संकोच। पिंडन। लोहित चंदन। चारु। रुचिर। शठ। शोणित। अरुण। कांत। खल। रज। दीपक। सौरभ। चंदन।

(३) घोड़े, सिंह आदि जानवरों की गरदन पर के बाल। अयाल। (४) नागकेसर। (५) बकुल। मौलसरी। (६) पुन्नाग। (७) हींग का पेड़। (८) एक प्रकार का विष। (९) स्वर्ग। (१०) कसीस।

केसरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेई।

केसरिया–वि० [सं० केसर + इया (प्रत्य०)] (१) केसर के रंग का पीला। ज़र्द। जैसे—केसरिया बाना। (२) केसर के रंग में रँगा हुआ। (३) केसर-मिश्रित। जैसे—केसरिया चंदन। केसरिया बरफी।

केसरी–संज्ञा पुं० [सं० केसरिन्] (१) सिंह। (२) घोड़ा। (३) नागकेसर। (४) पुन्नाग। (५) बिजौरा नीबू। (६) हनुमान् जी के पिता का नाम। (७) उड़ीसा का एक प्राचीन राजवंश। (८) एक प्रकार का बगुला। (९) एक प्रकार का चारखाना। (कपड़ा)।

केसारी–संज्ञा स्त्री० [सं० कृसर, प्रा० किसर] मटर की जाति का एक अन्न जिसे दुबिया मटर भी कहते हैं। इसके दाने छोटे चिपटे, चौकोर और मटमैले होते हैं और पत्तियाँ लंबी और पतली होती हैं। इसकी फलियाँ छोटी और चपटी होती हैं, जिन पर कभी कभी छोटे दाग भी होते हैं। वैद्यक में यह कदन्न कहा गया है और डाक्टरी मत से इसे खाने से लकवा हो जाता है। इसे कसारी, खेसारी, और लतरी भी कहते हैं।

केसू†–संज्ञा पुं० [सं० किंशुक] ढाक। टेसू। पलास।

केहरी†–संज्ञा पुं० [सं० केसरी] (१) सिंह। शेर। उ०—केहरिकंधर बाहु बिसाला। उर अति रुचिर नाग मणि माला।—तुलसी। (२) घोड़ा।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कीसा = थैली] एक छोटा जुजदान जिसमें दर्ज़ी मोची आदि अपने सीने की चीज़ें वा स्त्रियाँ आवश्यक सामान रखती हैं। छोटी थैली।

केहा–संज्ञा पुं० [सं० केका, प्रा० केआ] (१) मोर। मयूर। (२) एक छोटा जंगली पक्षी जो बटेर के समान होता है। उ०—धरी परेवा पांडुक हेरी। केहा कदरो उतर बगेरी।—जायसी।

केहि*–वि० [सं० किं] किस। उ०—केहि कारण आगमन तुम्हारा। कहहु न करत न लावहु बारा।—तुलसी।

विशेष—यह अवधी 'के' का कर्म, संप्रदान और अधिकरण रूप है।

केहुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कफोणि] (१) कोहनी। कुहनी। (२) पीतल वा तांबे की वह टेढ़ी नली जो नैचे में नै और जलेबी को जोड़ती है।

केहूँ *—क्रि० वि० [सं० कथम्] किसी प्रकार। किसी भाँति। किसी तरह।

कैंकर्य—संज्ञा पुं० [सं०] किंकरता। सेवकाई। सेवा। ख़िदमत। उ०—मज्जहिँ मंदाकिनि नित जाई। निज कर करि कैंकर्य सदाई।—रघुराजसिंह।

कैंचा—वि० [हिं० काना + ऐंचा = कनैचा] ऐंचाताना। भेंगा।
संज्ञा पुं० [सं० कैंची] वह बैल जिसका एक सींग सीधा खड़ा हो और दूसरा सींग आँख के ऊपर होता हुआ नीचे को जाता हो।
संज्ञा पुं० [हिं० कैंची] बड़ी कैंची।

कैंची—संज्ञा स्त्री० [तु०] (१) बाल, कपड़े आदि काटने वा कतरने का एक औज़ार। कतरनी।
विशेष—इसमें दो समान आकृति के लंबे फाल होते हैं जो परस्पर एक दूसरे के ऊपर रख कर कील से जड़े होते हैं। कैंची कई प्रकार की होती है—जैसे बाल काटने की कैंची, बत्ती काटने की कैंची, दर्ज़ी की कैंची, लोहार की कैंची, बागबान की कैंची, डाक्टर की कैंची, इत्यादि।
मुहा०—कैंची करना = काटना। छाँटना। जैसे, बागबान पेड़ों को कैंची कर रहा है। कैंची काटना = (१) नज़र बचा कर निकल जाना। कतराना। रास्ता काट कर निकल जाना। (२) पहले कह कर फिर किसी बात से इनकार कर जाना। काट जाना। कैंची बाँधना = (१) दोनों रानों से दबाना (सवार)। (२) विपक्षी को अपने नीचे लाकर दोनों रानों से दबाना (कुश्ती)। कैंची लगाना = (१) काटना। छाँटना। क़लम करना। (२) सिर के बालों को कैंची से काटना। बाल छाँटना।
(२) दो सीधी तीलियाँ वा लकड़ियाँ जो कैंची की तरह एक दूसरे के ऊपर तिरछी रक्खीं, बाँधी वा जड़ी हों।
विशेष—छाजन में कभी कभी एक सीधी धरन के स्थान पर दो उठी हुई लकड़ियाँ लगाते हैं जो सिरों के पास एक दूसरे पर आड़ी बाँध दी जाती है।
यौ०—कैंची का जँगला = वह जँगला जिसमें पतली पतली तीलियाँ एक दूसरे पर तिरछी लगी हों।
मुहा०—कैंची लगाना = दो या अधिक लकड़ियों को कैंची की तरह एक दूसरे के ऊपर तिरछा रखना वा बाँधना।
(३) सहारे के लिये धरन के बहुए में लगी हुई दो तिरछी लकड़ियाँ। (४) कुश्ती का एक पेंच जिसमें प्रतिपक्षी की दोनों टाँगों में अपनी टाँगें फँसा कर उसे गिराते हैं।
क्रि० प्र०—बाँधना।
(५) मालखंभ की एक कसरत जिसमें खेलाड़ी दौड़ता हुआ वा उड़ कर सीधे बिना मालखंभ को हाथ लगाए, कमरपेटे की रीति से मालखंभ को बाँधता है।
क्रि० प्र०—बाँधना।

कैंडल—संज्ञा पुं० [हिं० कैंडा वा देश०] एक प्रकार का पक्षी। बनतीतर।

कैंड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कांड = एक प्रकार का वर्ग माप] (१) वह यंत्र जिससे किसी चीज़ का नक्शा ठीक किया जाता है। डौल डालने का औज़ार। (२) किसी वस्तु के विस्तार आदि नापने का अँहड़ा। पैमाना। मान।
मुहा०—कैंड़ा करना = (१) सरसरी तौर से नापना। अंदाजा करना। (२) डौल डालना। कैंड़ा लेना = चिट्ठा लेना। खाका बनाना।
(३) चाल। ढंग। तर्ज़। काटछाँट। उ०—वह न जाने किस कैंड़े का आदमी है। (४) चालबाज़ी। चतुराई।

कैंता—संज्ञा पुं० [हिं० कैंत = किनारा] पत्थर की वह पट्टी जो दीवार में फरकी के दोनों तरफ चौड़ाई के बल उसे रोकने के लिये आड़ी लगाई जाती है।

कैंप—संज्ञा पुं० [अं०] हाकिमों या सेना के ठहरने का स्थान। पड़ाव। लश्कर। छावनी। कंपू।

कैंवा†—संज्ञा पुं० दे० "कैमा"।

कै†—वि० [सं० कति, प्रा० कइ] कितना। किस क़दर। जैसे—कै आदमी आये हैं?
* अव्यय [सं० किं] या। वा। अथवा। या तो। उ०—जन्म सिरानो ऐसे ऐसे। कै घर घर भरमत यदुपति बिन कै सोवत कै वैसे। कै कहुँ खान पान रसनादिक कै कहुँ बाद अनैसे।—सूर।
विशेष—इस शब्द के साथ प्रश्न में "धौं" प्रायः आता है।
संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा जड़हन धान।
संज्ञा स्त्री० [अ० कै] वमन। छाँट। उलटी।
क्रि० प्र०—आना।—करना।—होना।

कैकस—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस।

कैकसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुमाली राक्षस की कन्या और रावण की माता।

कैकेय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कैकेयी] कैकय गोत्र का पुरुष।

कैकेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कैकय गोत्र में उत्पन्न स्त्री। (२) राजा दशरथ की रानी जो भरत की माता थी और जिसने मंथरा के बहकाने से रामचंद्र को बनवास दिलवाया था।

कैगर—संज्ञा पुं० [सं० कीकट = कीकर] एक प्रकार का ऊँचा और सुंदर पेड़।

कैटभ—संज्ञा पुं० [सं०] मधु नामक दैत्य का छोटा भाई जिसे विष्णु ने मारा था।

कैटभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

कैटभारि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

कैटर्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कायफल । (२) नीम । (३) महानिंब । (४) मदनवृक्ष । मयनी ।

कैडर्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कायफल । (२) करंज । (३) पूति-करंज ।

कैत†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कित] ओर । तरफ़ ।

कैतव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहाना । धोखा । छल । कपट । धूर्तता । (२) जुआ । द्यूतक्रीड़ा । (३) वैदूर्य्य मणि । लहसुनियाँ । (४) धतूरा ।

वि० (१) धोखेबाज । छली । (२) धूर्त । शठ । (३) जुआ खेलनेवाला । जुआरी ।

कैतवापह्नुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपह्नुति अलंकार का एक भेद जिसमें प्रकृत अर्थात् वास्तविक विषय का गोपन वा निषेध स्पष्ट शब्दों में न कर के व्याज से किया जाय । इसमें प्रायः व्याज मिस आदि शब्द आ जाते हैं। उ०—रसना मिस विधि ने धरी, साँपिनि खल मुख माहिँ । इस में जिह्वा का निषेध शब्दों द्वारा नहीं बल्कि अर्थ से होता है । इसे आर्थी भी कहते हैं ।

कैतून—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की बारीक लैस जो कपड़ों में किनारे किनारे लगाई जाती है । यह सुनहले तार और रेशम से बनती है, कभी कभी ख़ाली ऊन वा रेशम की भी बनाई जाती है ।

कैथ—संज्ञा पुं० [सं० कपित्थ, प्रा० कइत्थ] एक कँटीला पेड़ जो बेल के पेड़ के समान होता है और जिसमें बेल के आकार के फल लगते हैं । इसकी पत्तियाँ छोटी, जड़ की ओर लंबोतरी और आगे की ओर गोल होती हैं और एक सींके में लगी रहती हैं । फल खाने में कसैला और खटमिट्ठा होता है और उससे चटनी और अचार बनाते हैं । लोग कहते हैं कि हाथी पूरा कैथ बिना चबाये निगल जाता है और कुछ समय बाद उसकी लीद के साथ पूरा कैथ निकलता है जिसमें गूदे के स्थान में लीद भरी होती है । इसी लिये संस्कृत-वालों ने एक "गजकपित्थ" न्याय बना रखा है । इसकी लकड़ी ज़रदी लिए सफ़ेद और मज़बूत होती है और संगहे बनाने के काम में आती है ।

पर्या०—कपित्थ । दधित्थ । ग्राही । मन्मथ । दधिफल । पुष्पफल । दंतशठ । कपित्थ । मालूर । मंगल्य । नील-मल्लिका । ग्राहिफल । चिरपाकी । ग्रंथिफल । कुचफल । कपिष्ठ । गंधफल । दंतफल । करभवल्लभ । काठिन्यफल । करंजफलक ।

कैथा—संज्ञा पुं० दे० "कैथ" ।

कैथिन†—संज्ञा स्त्री० [हिं०कायथ] कायस्थ जाति की स्त्री ।

कैथी—संज्ञा स्त्री० [हिं०कैथ] एक प्रकार का कैथ जिसके फल छोटे छोटे होते हैं ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कायथ] एक पुरानी लिपि जो नागरी से मिलती जुलती है । यह शीघ्र लिखी जाती है, और इसमें टेक वा शीर्ष-रेखा नहीं होती । इसमें एक ही सकार होता है और ऋ ॠ ऌ ॡ स्वर तथा ङ, ञ, ण व्यंजन नहीं होते । संयुक्त प्रांत तथा बिहार में चिट्ठी पत्री और हिसाब किताब आदि इसी लिपि में लिखे जाते हैं ।

क़ैद—संज्ञा स्त्री० [अ०] [वि० क़ैदी] (१) बंधन । अवरोध । (२) एक प्रकार का दंड जो राजनियम के अनुसार या राजाज्ञा से दिया जाता है और जिसमें अभियुक्त को किसी बंद स्थान में रखते हैं । कारागारवास । कारावास ।

विशेष—आज कल अँगरेज़ी कानून में क़ैद तीन प्रकार की होती है—क़ैद महज या सादी क़ैद, क़ैद सख्त और क़ैद तनहाई ।

यौ०—क़ैदख़ाना ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।—भुगतना ।

मुहा०—क़ैद काटना या भरना = क़ैद में दिन बिताना । क़ैद में रहना ।

(३) किसी प्रकार की शर्त, अटक या प्रतिबंध । जैसे, (क) पहले मिडिल पास मुख़तारी की परीक्षा दे सकते थे, पर अब इस में एंट्रेंस की क़ैद लग गई है । (ख) सरकारी नौकरी में उम्र की क़ैद है ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।—होना ।

क़ैदक—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार का काग़ज़ का बंद या पट्टी जिसमें किसी एक विषय या व्यक्ति से संबंध रखनेवाले काग़ज़ आदि रखे जाते हैं ।

क़ैदख़ाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह स्थान जहाँ क़ैदी रखे जाते हों । कारागार । बंदीगृह । जेलख़ाना ।

क़ैद तनहाई—संज्ञा स्त्री० [अ० क़ैद + फ़ा० तनहाई] वह क़ैद जिस में क़ैदी को बहुत ही छोटी और तंग कोठरी में अकेला रखा जाय । कालकोठरी ।

क़ैद सहज—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह क़ैद जिसमें क़ैदी को किसी प्रकार का परिश्रम या काम न करना पड़े । सादी क़ैद ।

क़ैद सख़्त—संज्ञा स्त्री० [अ० क़ैद + फ़ा० सख़्त] वह क़ैद जिसमें क़ैदी को कठिन परिश्रम करना पड़े । कड़ी क़ैद ।

क़ैदसोवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० क़ैद + सोवारी] तबले की एक गत जिसका बोल यह है—

\+ ० । । ०
केटे ता दिनता त्रेकेटे, धकिटे दिनता
। । ० +
धाकेट धाकेट । दिनता । धा ।

कैदार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पद्माख नाम की लकड़ी । पद्मकाष्ठ । (२) शालिधान । (३) एक प्रकार का बढ़िया धान ।

कैदी—संज्ञा पुं० [अ०] वह जो कैद किया गया हो। वह जिसे कैद की सज़ा दी गई हो। बंदी। बँधुवा।

कैधौं—अव्य० [हिं० कै + धौं] या। वा। अथवा। उ०—प्यारी की ठोढ़ी को बिंदु दिनेश किधौं बिसराम गोविंद के जी को। चारु चुभ्यो कनिका मनि नील को कैधौं जमाव जम्यो रजनी को। कैधौं अनंग सिँगार को रंग लिख्यो वर मंत्र बसीकर पी को। फूले सरोज में भौंरी बसी किधौं फूल ससी में लग्यो अरसी को।—दिनेश।

कैन‡—संज्ञा स्त्री० [सं० कंचिका] (१) बाँस की टहनी। (२) किसी वृक्ष की पतली टहनी।

कैनित—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक खनिज पदार्थ जो खाद के काम में आता है। इसमें जवाखार वा पुटाश का अंश अधिक होता है।

कैफ—संज्ञा पुं० [अ०] (१) नशा। मद। उ०—हरो हरो रँग देखि कै भूलत है मन हैफ। नीम पतौवन में मिलै कहूँ भाँग को कैफ।—रसनिधि। (२) बुल बुल के खिलाने का वह चारा जिसमें भाँग या और कोई मादक द्रव्य मिला रहता है और जो उसे लड़ाने के पहले दिया जाता है।

कैफियत—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) समाचार। हाल। वर्णन। (२) विवरण। तफ़सील।

क्रि० प्र०—माँगना।—देना।—लिखना।—पूछना।

मुहा०—**कैफ़ियत तलब करना** = नियमानुसार विवरण मांगना। कारण पूछना।

(३) आश्चर्यजनक वा हर्षोत्पादक घटना। जैसे—आज बड़ी कैफ़ियत हुई।

क्रि० प्र०—दिखाना।—होना।

कैफी—वि० [अ०] (१) मतवाला। मदभरा। उ०—नेहिन उर आवत लखो जबही धीरज सैन। सैफी हेरन में पटे कैफी तेरे नैन।—रसनिधि। (२) नशेबाज़।

कैबर—संज्ञा स्त्री० [देश०] तीर का फल या गाँसी। उ०—(क) सीस झरोखे डारि कै, झाँकी घूँघट टारि। कैबर सी कसकै हिये बाँकी चितवन नारि।—शृं० सत०। (ख) रँगी नैन में औरो ललाई दौरि आई है। कि साँचौ काम कैबर विश्व शोनित में डुबाई है।—प्रताप। (ग) विष भरे कैबर नसै बर गरब एरे तेरे तुल्य बचन प्रपंचिन को गायो है।—दूलह।

कैबिनेट—संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) वह कमरा जिसमें राजा महाराजा आदि अपने विश्वासपात्र मंत्रियों के साथ प्रबंधसंबंधी सलाह करते हैं। (२) मुख्य मंत्रियों की वह विशेष सभा जो किसी एकांत स्थान में बैठ कर राज्य-प्रबंध पर विचार करे। मंत्रि-समाज। मंत्रिमंडल। (३) लकड़ी का बना हुआ सामान। जैसे, मेज़, आलमारी, दराज इत्यादि। (४) फ़ोटो का एक आकार जो कार्ड साइज़ से दूना होता है।

कैम—संज्ञा पुं० [सं० कदंब] एक प्रकार का कदंब जिसके पत्ते कचनार की तरह चौड़े सिरे के होते हैं। इसके फूल कदंब ही की तरह के पर उससे छोटे होते हैं और उनके ऊपर सफ़ेद सफ़ेद जीरे नहीं लगते। इसकी लकड़ी पीले रंग की और बहुत मजबूत होती है, तथा इमारतों में लगती है। करमा। उ०—अब तज नाम उपाय को, आयो सावन मास। खेल न रहिबो खेम सो, कैम कुसुम की बास।

कैमुतिक न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] एक न्याय वा उक्ति जिसका प्रयोग यह दिखलाने के लिये होता है कि जब इतना बड़ा काम हो गया, तब यह क्या है?

कैमेरा—संज्ञा पुं० दे० "कमरा"।

कैया—संज्ञा पुं० [देश०] (१) टीन का काम करनेवालों का एक औज़ार जिससे बरतन राँजे जाते हैं। यह करछी के आकार का और लोहे का होता है और इसमें एक ओर लकड़ी की मूठ लगी रहती है। (२) मध्यभारत का घी तेल आदि नापने का एक मान जो लगभग आध पाव का होता है।

कैर—संज्ञा स्त्री० दे० "करील"।

कैरव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कैरवी] (१) कुमुद। (२) सफ़ेद कमल। (३) शत्रु। (४) जुआरी।

कैरवि—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

कैरवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चाँदनी (रात)। (२) मेथी।

कैरा—संज्ञा पुं० [सं० कैरव = कुमुद] [स्त्री० कैरी] (१) भूरा (रंग)। (२) वह सफ़ेदी जिसमें ललाई की झलक या आभा हो। (३) रंग के भेद से एक प्रकार का बैल जिसके सफ़ेद रोयों के भीतर से चमड़े की ललाई झलकती है। ऐसे बैल बड़े तेज़ पर सुकुमार होते हैं। सोकना। सोकन।

वि० (१) कैरे रंग का। (२) जिसकी आँखें भूरी हों। कंजा।

कैराटक—संज्ञा पुं० [सं०] स्थावर विष का एक भेद जिसके अंतर्गत अफ़ीम, कनेर, संखिया आदि हैं।

कैरात—वि० [सं०] (१) किरात-जाति-संबंधी। (२) किरात-देश-संबंधी।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिरायता। (२) शंबर चंदन। (३) बलवान् मनुष्य। (४) करैत साँप। (५) एक प्रकार की चिड़िया। (६) शुद्ध राग का एक भेद (संगीत)।

कैराल—संज्ञा पुं० [सं०] बायविड़ंग।

कैरी—वि० स्त्री० [हिं० कैरा] (१) भूरे रंग की। जैसे—कैरी आँख। (२) ललाई मिले सफ़ेद रंग की। जैसे—कैरी गाय।

संज्ञा स्त्री० दे० "केरी"।

कैल†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कल्ला] किसी वृक्ष की नई निकली हुई लंबी पतली शाखा। कनखा।

कैलास—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिमालय की एक चोटी का नाम जो तिब्बत में राक्षसताल वा रावणह्रद से उत्तर और पचास

मील की दूरी पर है। पुराणानुसार यह शिव जी का निवास-स्थान माना जाता है।

यौ०—कैलासनाथ, कैलासपति = शिव। कैलासवास = मरण। मृत्यु।

(२) एक प्रकार का षटकोण देवमंदिर जिसमें आठ भूमि और अनेक शिखर होते हैं। इसका विस्तार अठारह हाथ होता है। (३) स्वर्ग। उ०—ऊँची पँवरी ऊँच उडासा। जनु कैलास इंद्र कर वासा।—जायसी।

कैलासी—संज्ञा पुं० [सं० कैलास + ई० (प्रत्य०)] (१) कैलास-निवासी। महादेव। (२) कुबेर।

कैलैया†—संज्ञा पुं० [सं० कोकिलाक्ष] तालमखाना।

कैवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार मार्गव पिता और अयोगवी माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कैवर्त की उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और वैश्य माता से लिखी है। यह जाति आज कल केवट कहलाती है।

कैवर्तमुस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] केवटीमोथा।

कैवर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम जो मालवा में होती है। यह औषध के काम आती है, हलकी, वृष्य और कसैली होती है तथा कफ, खाँसी और मंदाग्नि को दूर करनेवाली समझी जाती है।

पर्या०—सुरंगा। दृशारुहा। रंगिनी। वस्त्ररंगा। सुभगा।

कैवल—संज्ञा पुं० [सं०] वायविडंग। वाभिरंग।

कैवल्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुद्धता। बे-मेलपन। निर्लिप्तता। एकता। (२) दर्शनों का यह सिद्धांत है कि जीवात्मा या तो आवरण के कारण अथवा अविद्या से भ्रमवश संसार में सुख दुःख भोग रहा है। उसे शुद्ध वा भ्रमरहित करना ही शास्त्रों ने अपना परम कर्तव्य समझा है और उसके भिन्न भिन्न साधन बतलाए हैं। सांख्य शास्त्र में त्रिविध दुःख की अत्यंत निवृत्ति को कैवल्य माना है और विवेक को उसका एकमात्र साधन बतलाया है। योगशास्त्र में विशेषदर्शी आत्म-भाव की भावना अर्थात् अहंकार की निवृत्ति को कैवल्य बतलाया है और चित्त की वृत्तियों के निरोध को ही उसका साधन कहा है। वेदांत में अद्वितीय ब्रह्मभाव की प्राप्ति को कैवल्य माना है और अविद्या की निवृत्ति को इसका साधन ठहराया है। न्याय में दुःख की अत्यंत विमुक्ति को कैवल्य वा अपवर्ग कहा है और उसका साधन प्रमाणादि षोडश पदार्थों का तत्त्व ज्ञान बतलाया है। मुक्ति। अपवर्ग। निर्वाण। (३) एक उपनिषद् का नाम।

कैशिक—वि [सं०] केशवाला। बड़े बड़े बालोंवाला।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) केशसमूह। (२) शृंगार। (३) नृत्य का एक भाव जिसमें सुकुमारता से किसी की नक़ल की जाती है।

कैशिकनिषाद—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो तीव्र नामक स्वर से आरंभ होता है और जिसमें तीन श्रुतियाँ लगती हैं।

कैशिकपंचम—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो संदीपनी नाम की श्रुति से आरंभ होता है और जिसमें चार श्रुतियाँ लगती हैं।

कैशिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक की मुख्य चार वृत्तियों में से एक। यह वृत्ति शृंगाररसप्रधान नाटकों में होती है। इसमें नृत्य, गीत, वाद्य और भोग विलासों का अधिक वर्णन किया जाता है। ऐसे नाटकों में स्त्रीपात्र अधिक होते हैं।

कैसर—संज्ञा पुं० [लै० सीज़र] (१) सम्राट। बादशाह। जैसे, कैसरहिंद। (२) जर्मनी के सम्राट् की उपाधि।

कैसा—वि० [सं० कीदृश, प्रा० केरस] [स्त्री० कैसी। क्रि० वि० कैसे] (१) किस प्रकार का। किस ढंग का। उ०—यह कैसा आदमी है? (२) (निषेधार्थक प्रश्न के रूप में) किस प्रकार का? किसी प्रकार का नहीं। उ०—जब हम उस घर में रहते नहीं तब किराया कैसा?

कैसे—क्रि० वि० [हिं० कैसा] (१) किस प्रकार से? किस ढंग से? उ०—यह काम कैसे होगा? (२) किस हेतु? किस लिये? क्यों? उ०—तुम यहाँ कैसे आये?

कैसो*†-वि० दे० "कैसा"।

कोँई*—संज्ञा पुं० दे० "कुँई"।

कोंकण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दक्षिण भारत का एक प्रदेश जिसके अंतर्गत कनाड़ा, रत्नागिरी, कोलाबा, बंबई और थाना आदि हैं।

विशेष—प्राचीन काल में केरल, तुलव, सौराष्ट्र, कोंकण, करहाट, कर्णाट, और बर्ब्बर मिल कर सप्त कोंकण कहलाते थे।

(२) उक्त देश का निवासी।

कोंकणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] परशुराम की माता रेणुका। इन्हें कोंकणावती भी कहते हैं।

कोंकणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोंकण देश की भाषा जो आर्य्य और द्राविड़ भाषा के मेल से बनी है।

कोँचना—क्रि० स० [सं० कुच = लिखना, खरोंचना] चुभाना। गोदना। गड़ाना।

कोँचफली—संज्ञा स्त्री० दे० "कौंछ"।

कोँचा—संज्ञा पुं० [सं० क्रौंच] एक प्रकार का जलपक्षी।

संज्ञा पुं० [हिं० कोंचना] (१) बहेलियों की वह लंबी लग्घी जिसके पतले सिरे पर वे लोग लासा लगाए रहते हैं और जिससे वृक्ष पर बैठे हुए पक्षी को कोंच कर फँसा लेते हैं। (२) भड़भूँजे का वह कलछा जिससे बालू निकाला जाता है।

कोंछ–संज्ञा पुं० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] [क्रि० कोंछियाना] स्त्रियों के अंचल का एक कोना।

मुहा०—कोंछ भरना = अंचल के कोने में चावल, मिठाई, हलदी आदि मंगल द्रव्य डालना। (सौभाग्यवती स्त्री के प्रस्थान के समय तथा सीमंतोन्नयन संस्कार में यह रीति होती है)

कोंछना–क्रि० स० [हिं० काछा] कोंछियाना। उ०—केसर सों उबटी अन्हवाइ चुनी चुनरी चुटकीन सों कोंछी। बेनी गुु माँग भरे मुक्ता बड़ी बेनी सुगंध फुलेल तिलोंछी।—बेनी।

कोंछियाना–क्रि० स० [हिं० कोंछी] (स्त्रियों की) साड़ी का वह भाग चुनना जो पहनने में पेट के आगे खोंसा जाता है। फुबती चुनना।

क्रि० स० [हिं० कोंछ] (स्त्रियों के) कोंछ में कोई चीज भर कर उसके दोनों छोरों को आगे की ओर कमर में खोंस लेना।

कोंछी †–संज्ञा स्त्री० [हिं० काछा] साड़ी या धोती का वह भाग जिसे चुन कर स्त्रियाँ पेट के आगे खोंसती हैं। फुबती। तिन्नी। नीबी।

कोंड़ई–संज्ञा पुं० [देश०] एक कटीला झाड़ वा पेड़ जो देहरादून, कमाऊँ, बंगाल और दक्षिण भारत में होता है। पत्तियाँ इसकी ३–४ अंगुल लंबी होती हैं। इसमें बहुत छोटे फूल छोटे छोटे गुच्छों में लगते हैं। पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं, फल खाये जाते हैं, जड़ और छाल की दवा बनती है।

कोंडरा ‡–संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडल] लोहे का वह कड़ा जो मोट के मुँह पर लगा रहता है। गोंडरा।

कोंडरी–संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडली] हुडुक बाजे की वह लकड़ी जिस पर चमड़ा मढ़ा रहता है।

कोंड़हा–वि० दे० "कोंढ़ा"।

कोंढ़ा–संज्ञा पुं० [सं० कुंडल] धातु का वह छल्ला वा कड़ा जिसमें जंजीर या और कोई वस्तु अटकाई जाती है।

वि० [हिं० कोंढा + हा (प्रत्य०)] जिसमें कोंढा लगा हो। (रुपया) जिसमें कोंढ़ा लगे रहने का चिह्न हो।

विशेष—इस देश में रुपयों में छेद करके उनकी माला पिरो कर स्त्रियों और बच्चों को पहनाते हैं। ऐसे रुपयों को माला में से निकाल कर बाजार में चलाने से पहले उनके छेद चाँदी से बंद कर देते हैं। इस प्रकार के रुपयों को कोंढ़ा वा कोंड़हा कहते हैं।

कोंढ़ी–संज्ञा स्त्री० दे० "कोंढ़ा"।

संज्ञा स्त्री० [सं० कोष्ठ] मुँहबँधी कली। अनखिली कली।

कोंथ†—संज्ञा पुं० [देश०] कुम्हारों की परिभाषा में बर्तन आदि का वह पूर्व रूप जो मिट्टी को चाक पर रखने के बाद बनता है।

कोंथना–क्रि० अ० दे० "कूँखना" या "कूँथना"।

कोंपना†–क्रि० अ० [हिं० कोंपल] कोंपल निकलना या लगना।

कोंपर†–संज्ञा पुं० [हिं० कोंपल] छोटा अधपका या डाल का पका आम।

कोंपल†–संज्ञा स्त्री० [सं० कोमल वा कुपल्लव] वृक्ष आदि की छोटी, नई और मुलायम पत्ती। अंकुर। कल्ला। कनखा।

कोंवर*†–वि० [सं० कोमल] नरम। मुलायम। नाजुक। उ०—कोंवरे पानि रची मेंहदी डफ नीके बजाय हरै हियरा री।—सुंदरी सर्वस्व।

कोंस†–संज्ञा पुं० [सं० कोश] छीमी। लंबी फली।

कोंहड़ा†–संज्ञा पुं० दे० "कुम्हड़ा"।

कोंहड़ौरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० कोंहड़ा + बैरी] कुम्हड़े या पेठे की बनाई हुई बरी।

कोंहरा†–संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० कोंहरी] उबाले हुए खड़े चने या मटर, जिनको तेल में छौंक कर और नमक मिर्च लगा कर खाते हैं। घुँघनी।

कोंहार †–संज्ञा पुं० दे० "कुम्हार"।

को*–सर्व० [सं० कः] कौन।

कर्म और संप्रदान का विभक्ति प्रत्यय, जैसे-साँप को मारो। राम को दो।

कोआ–संज्ञा पुं० [सं० कोश वा हिं० कोसा] (१) रेशम के कीड़े का घर। कुसियारी। (२) टसर नामक रेशम का कीड़ा। (३) महुए का पका फल। कोलैंदा। गोलैंदा। (४) कटहल के पके हुए बीजकोश। (५) धुने हुए ऊन की पोनी जिसे कात कर ऊन का तागा निकालते हैं (गड़रिया)। (६) दे० "कोया"।

कोआर–संज्ञा पुं० [देश०] कोरा नाम का वृक्ष।

कोइँदा†–संज्ञा पुं० दे० "कोइना"।

कोइँदी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० कोइँदा] महुए का बीज।

कोइड़ार†–संज्ञा पुं० [हिं० कोइरी + आर (प्रत्य०)] वह खेत या स्थान जहाँ कोइरी लोग साग तरकारी आदि बोते हों।

कोइना‡–संज्ञा पुं० [हिं० कोआ + इना (प्रत्य०)] महुए का पका फल। गोलैंदा।

कोइरी–संज्ञा पुं० [हिं० कोयर = साग पात] एक छोटी जाति। इस जाति के लोग साग तरकारी बोते और बेचते हैं। काछी।

कोइल†–संज्ञा स्त्री० [कुंडली] (१) वह गोल छेददार लकड़ी जो मक्खन निकालने के समय दूध के मटके या मेहँड़े के मुँह पर रक्खी जाती है और जिसके छेद में मथानी इसलिये डाल दी जाती है कि जिसमें वह सीधी घूमे और उससे मटका न फूटे। (२) करघे में वह लकड़ी जो ढरकी के बगल में लगी रहती है (जुलाहा)।

संज्ञा स्त्री० (१) दे० "कोइलारी"। (२) दे० "कोयल"।

कोइलाँस†–संज्ञा पुं० दे० "कोइली (१)"।

कोइला—संज्ञा पुं० दे० "कोयला"।

कोइलारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोलना] (१) गराँव की मुद्धी। (२) लकड़ी का वह गोल कड़ा जिसे बदमाश चौपायों के गँराव में इसलिये फँसा देते हैं कि जिसमें झटका देने या खींचने से उनका गला दबे। इसके व्यवहार से बदमाश चौपाये सीधे हो जाते और चुपचाप खड़े रहते हैं।

कोइलिया*—संज्ञा स्त्री० दे० "कोयल"।

कोइली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोयल] (१) वह कच्चा आम जिसमें किसी प्रकार का आघात लगने से एक काला सा दाग पड़ जाता है। ऐसा आम कुछ सुगंधित और स्वादिष्ट होता है।

विशेष—साधारण लोगों का विश्वास है कि आम की यह दशा उस पर कोयल के पादने या बैठने से हो जाती है।

(२) आम की गुठली। (३) दे० "कोयल"।

कोई—सर्व० [सं० कोपि, प्रा० कोवि] (१) ऐसा एक (मनुष्य वा पदार्थ) जो अज्ञात हो। न जाने कौन एक। उ०—वहाँ कोई खड़ा था, इसीसे मैं नहीं गया।

मुहा०—कोई न कोई=एक नहीं तो दूसरा। यह न सही, वह। उ०—कोई न कोई तो हमारी बात सुनेगा।

(२) ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो। बहुतों में से चाहे जो एक। अविशेष वस्तु वा व्यक्ति। उ०—(क) वहाँ बहुत सी पुस्तकें पड़ी हैं उनमें से कोई ले लो। (ख) हमारा कोई क्या कर लेगा?

मुहा०—कोई एक वा कोई सा=जो चाहे सो एक।

(३) एक भी (मनुष्य)। उ०—वहाँ कोई नहीं है।

वि० (१) ऐसा एक (मनुष्य वा पदार्थ) जो अज्ञात हो। न जाने कौन एक। उ०—वहाँ कोई आदमी खड़ा है।

मुहा०—कोई दम का मेहमान=थोड़े ही काल तक और जीनेवाला। शीघ्र मरनेवाला।

(२) बहुतों में से चाहे जो एक। ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो। उ०—इनमें से कोई पुस्तक ले लो। (३) एक भी। कुछ भी। उ०—(क) कोई चिंता नहीं। (ख) यह कोई पढ़ना नहीं है।

मुहा०—यह भी कोई बात है?=यह कोई बात नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा नहीं होना चाहिए। उ०—(क) जब हम आते हैं तब तुम चल देते हो, यह भी कोई बात है। (ख) यह भी कोई बात है कि जो हम कहें वह न हो।

क्रि० वि० लगभग। क़रीब क़रीब। उ०—कोई दस आदमियों ने चंदा दिया होगा।

कोउ†*—सर्व०। वि० [हिं० को+हू=भी] कोई। उ०—कोउ नृप होय हमैं का हानी।

कोउक†*—सर्व० [हिं० कोऊ+एक] कोई एक। कतिपय। कुछ लोग।

कोऊ†*—सर्व० [हिं० को+हू=भी] कोई।

कोकंब—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसके सब अंग खट्टे होते हैं। दे० "विसांबिल"।

कोक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कोकी] (१) चकवा पक्षी। चक्रवाक। सुरख़ाब।

यौ०—कोकबंधु=सूर्य्य।

(२) एक पंडित का नाम जो रति शास्त्र का आचार्य्य माना जाता है। उसका पूरा नाम कोकदेव कहा जाता है।

यौ०—कोकशास्त्र।

(३) संगीत का छठाँ भेद, जिसमें नायिका, नायक, रस, रसाभास, अलंकार, उद्दीपन, आलंबन, समय और समाजादि का ज्ञान आवश्यक है। (४) विष्णु। (५) भेड़िया।

यौ०—कोकमुख। कोकाक्ष।

(६) मेंढक।

यौ०—कोकाद=लोमड़ी।

(७) जंगली खजूर।

कोकई—वि० [तु० कोक] ऐसा नीला जिसमें गुलाबी की झलक हो। कौड़ियाला।

संज्ञा पुं० [तु० कोक] कौड़ियाला रंग। ऐसा नीला रंग जिसमें गुलाबी की झलक हो।

विशेष—यह नील, शहाब और मजीठ के संयोग से बनता है।

कोककला—संज्ञा स्त्री० [सं०] रति विद्या। संभोग संबंधी विद्या।

कोकदेव—संज्ञा पुं० कोकशास्त्र वा रतिशास्त्र का रचयिता।

कोकन—संज्ञा पुं० [देश०] एक ऊँचा पेड़ जो आसाम और पूरबी बंगाल में होता है। इसकी पत्तियाँ शिशिर में झड़ जाती हैं। इसकी लकड़ी भीतर से सफ़ेद निकलती है जिस पर पीली पीली धारियाँ होती हैं। लकड़ी का वज़न प्रति घन फुट १० से १८ सेर तक होता है। यह देखने में तो मुलायम होती है, पर न फटती है और न झुकती है। यह चाय के संदूक और नाव बनाने के काम में आती है तथा मकानों में भी लगती है।

कोकनद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल कमल। (२) लाल कुमुद।

कोकना—क्रि० स० [फ़ा० कोक=कच्ची सिलाई] कच्ची सिलाई करना। कच्चा करना। लंगर डालना।

कोकनी—संज्ञा पुं० [सं० कोक=चकवा] एक प्रकार का तीतर।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का संतरा जो सहारनपुर और दिल्ली में होता है।

संज्ञा पुं० [तु० कोक=आसमानी] एक प्रकार का रंग जो शहाब, लाजवर्द और फिटकिरी से बनता है।

वि० [देश०] छोटा। नन्हा। जैसे, कोकनी बेर, कोकनी केला। (२) घटिया। निकृष्ट। जैसे, कोकनी कलाबत्तू।

कोकम—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा सदाबहार पेड़ जो केवल दक्षिण भारत में होता है।

विशेष—दे० "अमसूल"।

कोकव—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो पूरबी बिलावल, केदारा मारू और देवगिरी से मिला कर बनाया गया है।

कोकवा—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का बाँस जो बरमा और आसाम में बहुतायत से होता है। यह टोकरे बनाने के काम में आता है।

कोकशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] कोक कृत रतिशास्त्र।

कोका—संज्ञा पुं० [अ०] दक्षिणी अमेरिका का एक वृक्ष जिसकी सुखाई हुई पत्तियाँ चाय या कहवे की भाँति शक्ति-वर्द्धक समझी जाती हैं। इसके व्यवहार से थकावट और भूख नहीं मालूम होती, इसीलिये वहाँ के निवासी पहाड़ों पर चढ़ने से पहले थोड़ी सी सूखी पत्तियाँ चबा लेते हैं। इनमें एक प्रकार का नशा होता है, इसलिये एक बार इनका व्यवहार आरंभ करके फिर उसे छोड़ना कठिन हो जाता है। कोकेन इसी से निकलती है।

संज्ञा पुं० और स्त्री० [तु०] धाय की संतान। दूध पिलानेवाली की संतति। दूध भाई या दूध बहिन।

संज्ञा पुं० [हिं० कोक] एक प्रकार का कबूतर।

संज्ञा स्त्री० [?] नीली कुमुदिनी।

विशेष—दे० "कोका बेरी"।

कोकाबेरी, कोकाबेली—संज्ञा स्त्री० [सं० कोका + वेली] नीली कुमुदिनी जो पुरानी झीलों या तालावों में होती है। इसका फूल नीले रंग का, बड़ा और सुहावना होता है। इसमें भी कुईं की तरह बीज होते हैं जिनका आटा व्रत में फलाहार की तरह खाया जाता है। इसके बीज भूनने से लावा हो जाता है, जिसे चीनी में पाग कर लड्डू बनाते हैं। नीली कुईं। उ०—कोका बेली, पवन सियरी, वारि की चारुताई। को है ऐसो, करहिँ नहिँ ये जासु तल्लीनताई।—द्विवेदी।

कोकामुख—संज्ञा पुं० [सं०] भारत का एक प्राचीन तीर्थ जिसका उल्लेख महाभारत में आया है।

कोकाह—संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद रंग का घोड़ा। उ०—हरे कुरंग महुअ बहु भाँती। गरर कोकाह बलाह सुपाँती।—जायसी।

कोकिल—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कोयल।

पर्या०—पिक। परभृत। ताम्राक्ष। वनप्रिय। परपुष्ट। अन्यपुष्ट। वसंतदूत। रक्ताक्ष। मधुगायन। कलकंठ। कामांध। काकलीरव। कुहूरव।

(२) नीलम की एक छाया। (३) एक प्रकार का चूहा जिसके काटने से ज्वर हो आता और बहुत जलन होती है। (४) छप्पय का १६ वाँ भेद जिसमें ५२ गुरु, ४८ लघु, (१०० वर्ण) और १५२ मात्राएँ होती हैं। (५) जलता हुआ अंगारा।

कोकिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल। पिक।

कोकिलाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ताल मखाना।

कोकिलाप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक ताल जिसमें एक प्लुत, प्लुत की तीन मात्राएँ, एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक प्लुत और तब प्लुत की तीन मात्राएँ होती हैं। इसे लोग परमलु भी कहते हैं। इसके मृदंग के बोल ये हैं—धीकृत धीकृत धिधिकिट ऽ तक थौं। तकिडिगि डिधिगिन थौं थौं ऽ।

कोकिलारव—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक।

कोकिलासन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक आसन।

कोकिलेष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी जामुन। फरेंदा।

कोकीन—संज्ञा स्त्री० दे० "कोकेन"।

कोकुआ—संज्ञा पुं० [सं० कोकाम्र] समष्ठिल नाम का पौधा।

पर्य्या०—मद्याम्र। अम्रगेधक। कोकाम्र। कंटक फल। उपदेश।

कोकेन—संज्ञा स्त्री० [अं०] कोका नामक वृक्ष की पत्तियों से तैयार की हुई एक प्रकार की औषध जो गंधहीन और सफ़ेद रंग की होती है। यह दवा की भाँति खाने, मरहमों में मिलाने और आँख आदि कोमल अंगों पर अस्त्र चिकित्सा करने से पहले, उन स्थानों को सुन्न करने के काम में आती है। इधर कुछ दिनों से भारत में इसका प्रयोग मादक द्रव्यों की भाँति होने लगा था और लोग इसे पान के साथ खाते थे, पर अब सर्व साधारण में इसका प्रचार सरकार द्वारा रोक दिया गया है।

यौ०—कोकेनची = मादक द्रव्य की भाँति कोकेन का उपयोग करनेवाला। कोकेन का नशा खानेवाला।

कोको—संज्ञा स्त्री० [अनु०] कौआ। लड़कों को बहँकाने का शब्द। उ०—मैं तो सोय रही सुख नींद पिया को कोको ले गइ रे। (गीत)।

विशेष—जब किसी वस्तु को बच्चों के सामने से हटाना होता है तब उसे हाथ में लेकर कहीं छिपा देते हैं और उनके बहँकाने के लिये कहते हैं कि "कौआ ले गया" ? "कोको ले गई"।

कोख—संज्ञा पुं० [सं० कुक्षि, प्रा० कुक्खि] (१) उदर। जठर। पेट। (२) पसलियों के नीचे, पेट के दोनों बगल का स्थान।

मुहा०—कोखें लगना या सटना = पेट खाली रहने या बहुत अधिक भूख लगने के कारण पेट अंदर धँस जाना।

(३) गर्भाशय।

विशेष—इस अर्थ के सब मुहावरों और यौगिक शब्दों का प्रयोग केवल स्त्रियों के लिये होता है।

यौ०—कोखबंद। कोखजली।

मुहा०—कोख उजड़ना = (१) संतान मर जाना। बालक मर जाना। (२) गर्भ गिर जाना। कोख बंद होना = बंध्या होना। संतति उत्पन्न करने के अयोग्य होना। कोख, या, कोख माँग से,

ठंडी, या, भरी पूरी रहना = बालक, या, बालक और पति का सुख देखते रहना। (आसीस)। कोख मारी जाना = दे० "कोख बंद होना"। कोख की बीमारी या रोग = संतति न होने या होकर मर जाने का रोग। कोख की आँच = संतान का वियोग। संतान का कष्ट। उ०—सब दुःख सहा जाता है, पर कोख की आँच नहीं सही जाती। कोख खुलना = बाँझ-पन दूर होना।

कोखजली—वि० [हिं० कोख + जलना] जिसकी संतति होकर मर जाती हो। जिसके बालक मर जाते हों।

कोखबंद—वि० [हिं० कोख + बंद] बंध्या। बाँझ। जिसे संतति न होती हो।

कोगी—संज्ञा पुं० [देश०] लोमड़ी से मिलता जुलता एक प्रकार का जानवर जो झुंड में रहता और फसल को बहुत हानि पहुँचाता है। कहते हैं कि इनका झुंड मिल कर शेर पर टूट पड़ता और उसके शरीर का सारा मांस खा जाता है। जिस जंगल में कोगी का झुंड जाता है उसमें से शेर डर कर निकल जाते हैं।

कोच—संज्ञा पुं० [अं०] (१) एक प्रकार की चौपहिया बढ़िया घोड़ा-गाड़ी।

यौ०—कोचबकस। कोचवान।

(२) गद्देदार बढ़िया पलंग, बेंच या आराम कुरसी।

संज्ञा पुं० [हिं० कोचना] वह लंबी छड़ जिसकी सहायता से भट्ठे में से ढले हुए बरतन निकाले जाते हैं।

संज्ञा पुं० [?] टूटे हुए जहाज़ का टुकड़ा (लश०)।

कोचकी—संज्ञा पुं० [?] मकोइया से मिलता जुलता एक प्रकार का रंग जो ललाई लिए भूरा होता है, और कई प्रकार से बनाया जाता है।

√**कोचना**—क्रि० स० [सं० कुच = लकीर करना, लिखना] धँसाना। चुभाना। गड़ाना।

मुहा०—कोचा करेला = वह चेहरा जिस पर शीतला के बहुत से दाग हों।

कोचनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोंचना] (१) लोहे का एक छोटा औजार जो सुई के आकार का होता है और जिससे तलवार की म्यान के ऊपर का चमड़ा सीया जाता है। (२) बैल हाँकने की छड़ी। पैना। औगी।

कोचबकस—संज्ञा पुं० [अं० कोच + बाक्स] घोड़ा गाड़ी में वह ऊँचा स्थान जिस पर हाँकनेवाला बैठता है।

कोचरा—संज्ञा पुं० [देश०] बड़े पेड़ों पर चढ़नेवाली एक प्रकार की घनी लता जिसकी पत्तियाँ एक अंगुल लंबी, तथा दोनों ओर नुकीली होती हैं। जेठ असाढ़ में इसमें पीले रंग के फूल गुच्छों में लगते हैं, और दूसरे बैसाख तक फल पक जाते हैं। यह लता, गोंड़ा, बहराइच तथा खसिया और भूटान में होती है।

कोचरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

कोचवान—संज्ञा पुं० [अं० कोचमैन] घोड़ा-गाड़ी हाँकनेवाला।

कोचा—संज्ञा पुं० [हिं० कोंचना] (१) तलवार कटार आदि का हलका घाव जो पार न हुआ हो।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

(२) लगती हुई बात। चुटीली बात। ताना। व्यंग्य।

क्रि० प्र०—देना।

कोचिंडा—संज्ञा पुं० [देश०] जंगली प्याज जो दक्षिण हिमालय में होता और खाने और दवा के काम में आता है। कौड़ा।

कोची—संज्ञा पुं० [?] बबूल की किसिम का एक जंगली पेड़ जो पूरब और दक्षिण भारत के जंगलों में अधिकता से होता है। इसकी छाल और पत्तियाँ प्रायः औषध के काम में आती हैं। इसकी सूखी फलियों को लोग आँवले या इमली की भाँति रगड़ कर उससे सिर के बाल धोते हैं। बनरीठा। सीकाकाई।

कोचिला†—संज्ञा पुं० दे० "कुचला"।

कोचीन—संज्ञा पुं० [देश०] मदरास प्रांत की एक देशी रियासत जो ट्रावेनकोर राज्य के उत्तर में है।

कोजागर—संज्ञा पुं० [सं०] आश्विन मास की पूर्णिमा। शरद पूनो।

विशेष—ऐसा माना गया है कि इस रात को लक्ष्मी संसार का भ्रमण करती है और जिसे जागरण करते और उत्सव मनाते पाती हैं, उस पर प्रसन्न होती और उसे धन देती हैं मानो लक्ष्मी तलाश करती फिरती हैं कि "को जागर" अर्थात् कौन जागता है।

कोट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुर्ग। गढ़। किला।

यौ०—कोटपाल।

(२) शहर-पनाह। प्राचीर। (३) राजमंदिर। महल। राजप्रासाद।

संज्ञा पुं० [सं० कोटि] समूह। यूथ। जत्था। उ०—चले तुरंग अपार कोटि कोटि को कोट करि। सोहत सकल सवार रामागमन अनंद भरि।—रघुराज।

संज्ञा पुं० [अं०] एक अँगरेज़ी ढंग का पहनावा जो कमीज़ या कुरते के ऊपर पहना जाता है और जिसका सामना बटनदार होता है।

कोट-अरलू—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो समुद्र में होती है और जिसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है।

कोटगंधल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी कड़ी, चिकनी और मजबूत होती और इमारत के काम में आती है। बंगाल, मध्यप्रदेश और मदरास में यह पेड़ अधिकता से होता है।

कोटचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का चक्र जिसका प्रयोग युद्ध से पहले अपने दुर्ग का शुभाशुभ परि-

नाम जानने के लिये होता है। यह आठ प्रकार का होता है, जिनके नाम ये हैं—मृण्मय, जलकोटक, ग्रामकोट, गह्वर, गिरि, डामर, वक्रभूमि और विषम।

कोटपाल—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्ग की रक्षा करनेवाला। किलेदार।

कोटपीस—संज्ञा स्त्री० दे० "कोर्टपीस"।

कोटभरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० कोष्ठ + हिं० भरना] वह लकड़ी जो नाव के किनारे किनारे ऊपर की ओर जड़ी रहती है।

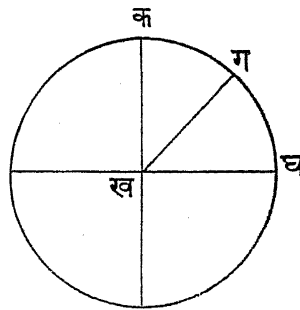
कोटमास्टर—संज्ञा पुं० दे० "क्वार्टर मास्टर"।

कोटर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेड़ का खोखला भाग। (२) दुर्ग के आस पास का वह कृत्रिम वन जो रक्षा के लिये लगाया जाता है।

कोटरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाणासुर की माता का नाम।

कोटरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। चंडिका।

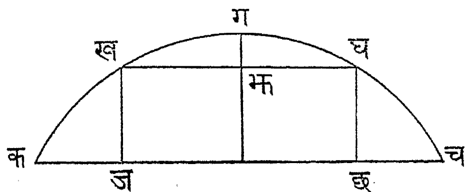
कोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धनुष का सिरा। कमान का गोशा। (२) किसी अस्त्र की नोक वा धार। (३) वर्ग। श्रेणी। दरजा। (४) किसी वादविवाद का पूर्वपक्ष। (५) उत्कृष्टता। उत्तमता। (६) अर्धचंद्र का सिरा। (७) समूह। जत्था। (८) किसी ९० अंश के चाप के दो भागों में से एक। (क से घ तक का चाप ९० अंश का है। उसका एक अंश क-ग उसके दूसरे अंश ग-घ की कोटि है और ग-घ उसके दूसरे अंश क-ग की कोटि है।)



(९) किसी त्रिभुज या चतुर्भुज की भूमि वा आधार और कर्ण से भिन्न रेखा। (१०) राशिचक्र का तृतीय अंश। (११) असवरग नामक सुगंधि द्रव्य जो औषध के काम में आता है। वि० [सं०] सौ लाख की संख्या। करोड़।

कोटिक—वि० [सं० कोटि + क] (१) करोड़। (२) अमित। असंख्य। अनगिनत। बहुत अधिक।

कोटिज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रहों की स्पष्टता के लिये बनाए हुए एक प्रकार के क्षेत्र का एक विशेष अंश।



इस क्षेत्र में ख—झ या घ—झ, और ख—ज या घ—छ अंश कोटिज्या हैं।

कोटितीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थ विशेष। इस नाम के तीर्थ अनेक स्थानों पर हैं, पर उज्जैन और चित्रकूट के तीर्थ अधिक प्रसिद्ध हैं।

कोटिफली—संज्ञा पुं० [सं०] गोदावरी नदी के सागर-संगम के निकट का एक प्रसिद्ध तीर्थ। जब सिंह राशि पर बृहस्पति आता है तब इस स्थान पर बड़ा मेला लगता है। उस समय इस तीर्थ में स्नान करने का बड़ा फल है। कहते हैं कि इंद्र का अहल्या-गमन-पाप इसी तीर्थ के स्नान से छूटा था।

कोटिशः—क्रि० वि० [सं०] अनेक प्रकार से। बहुत तरह से। वि० बहुत अधिक। बहुत बहुत। अनेकानेक। उ० —आपको कोटिशः धन्यवाद।

कोटू—संज्ञा पुं० दे० "कूटू"।

कोटेशन—संज्ञा पुं० [अं०] (१) लेख वा वाक्य का उद्धृत अंश। उद्धरण। (२) सीसे का ढला हुआ चौकोर पोला टुकड़ा जो कंपोज़ करने में, खाली स्थान भरने के काम में आता है। यह काड्रेट से बड़ा होता है। इसकी चौड़ाई ४ एम पाइका और लंबाई २, ४, ६ या ८ एम पाइका तक होती है।

कोट्टवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बाणासुर की माता। जब श्रीकृष्ण और बाणासुर में युद्ध हुआ था तब यह अपने पुत्र की रक्षा के लिये नंगी हो कर युद्ध क्षेत्र में उतरी थी। (२) नंगी स्त्री। (३) दुर्गा।

कोट्याधीश—संज्ञा पुं० [सं०] करोड़पति। करोड़ी। बहुत बड़ा धनी।

कोठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोढ़ जो मंडलाकार होता है।

† वि० [सं० कुंठ] कुंठित। जिससे कोई वस्तु कूँची वा चबाई न जा सके।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दाँतों के लिये उस समय होता है जब वे खट्टी वस्तु लगने के कारण कुछ देर के लिये बेकाम से हो जाते हैं।

कोठड़ी†—संज्ञा स्त्री० दे० "कोठरी"।

कोठर—संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल का पेड़।

कोठरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिधारा नामक वृक्ष।

कोठरिया†—संज्ञा स्त्री० दे० "कोठरी"।

कोठरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठा + डी (री) (अल्प० प्रत्य०)] (मकान आदि में) वह छोटा स्थान जो चारों ओर दीवारों या दरवाजों आदि से घिरा और ऊपर से छाया हुआ हो। छोटा कमरा। तंग कोठा।

मुहा०—अँधेरी कोठरी। अँधेरी कोठरी का यार—दे० "अँधेरी" के अंतिम महावरे। काल कोठरी—दे० "काल कोठरी"।

कोठा—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठक] (१) बड़ी कोठरी। चौड़ा कमरा। (२) स्थान जहां बहुत सी चीजें संग्रह करके रक्खी जांय। भंडार।

यौ०—कोठादार। कोठारी।

(३) मकान में छत वा पाटने के ऊपर का कमरा। अटारी।

यौ०—कोठेवाली = बाजारू स्त्री। वेश्या।

मुहा०—कोठे पर चढ़ना = किसी ऐसे स्थान पर पहुँचना जहां सब लोग देख सकें। अधिक ज्ञात वा प्रसिद्ध होना। उ०—(बात) "ओठों निकली, कोठों चढ़ी"। कोठे पर बैठना = वेश्या बनना। कसब कमाना।

(४) उदर। पेट। पक्वाशय।

मुहा०—कोठा बिगड़ना = अपच आदि रोग होना। कोठा साफ़ होना = साफ़ दस्त होने के बाद पेट का हलका हो जाना।

(५) गर्भाशय। धरन।

मुहा०—कोठा बिगड़ना = गर्भाशय में किसी प्रकार का रोग होना।

(६) खाना। घर। जैसे शतरंज या चौपड़ के कोठे।

मुहा०—कोठा खींचना = लकीरों से खाना बनाना। कोठा भरना = हिंदुओं में कार्त्तिक स्नान करनेवाली स्त्रियों का विशेष तिथियों को भूमि पर ३५ खाने खींच कर ब्राह्मण को दान देने के अभिप्राय से उनमें अन्न बस्त्र आदि पदार्थ भरना।

(७) किसी एक अंक का पहाड़ा जो एक खाने में लिखा जाता है। जैसे—आज उसने चार कोठे पहाड़े याद किए। (८) शरीर या मस्तिष्क का कोई भीतरी भाग जिसमें कोई विशेष शक्ति रहती हो।

मुहा०—कोठों में चित्त भरमना या जाना = अनेक प्रकार की आशंकाएं होना। उ०—तुम्हारे चले जाने पर मुझे बहुत चिंता हुई, न जाने कितने कोठों में चित्त भरमा। किसी कोठे में चित्त जाना = किसी प्रकार की प्रवृत्ति या वासना होना। अंधे कोठे का = मूर्ख। बेवकूफ़। विचारशून्य। कोठा न होना-कोठा साफ़ होना, = अंतःकरण शुद्ध होना। हृदय में कोई बुरा विचार न रहना।

कोठाकुचाल—संज्ञा पुं० [हिं० कोठा + कुचाल] हाथियों की वह बीमारी जिसमें उनकी भूख मारी जाती है।

कोठादार—संज्ञा पुं० [हिं० कोठा + फा० दार] भंडारी। कोठारी। भंडार का अधिकारी।

कोठार—संज्ञा पुं० [हिं० कोठा] अन्न धनादि रखने का स्थान। भंडार।

कोठारी—संज्ञा पुं० [हिं० कोठार + ई (प्रत्य०)] वह अधिकारी जो भंडार का प्रबंध करता और उसके लिये पदार्थ आदि संग्रह करता हो। भंडारी।

कोठिला—संज्ञा पुं० दे० "कुठला"।

कोठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठा] (१) बड़ा पक्का मकान। हवेली। (२) अँगरेज़ों के रहने का मकान। बँगला। (३) वह मकान जिसमें रुपए का लेन देन या कोई बड़ा कारबार हो। बड़ी दूकान जिसमें थोक की बिक्री होती है। जैसे—(क) महाजन की कोठी। (ख) नील की कोठी।

मुहा०—कोठी करना या खोलना = महाजनी का काम शुरू करना। लेन देन का व्यवहार करना। कोई बड़ा कारबार शुरू करना। बड़ी दूकान खोलना। कोठी चलना = महाजनी का कारबार होना। लेन देन का व्यवहार होना। जैसे—उनकी इस समय कई कोठियां चलती हैं। कोठी बैठना = दिवाला निकलना। कारबार में घाटा आना।

यौ०—कोठीवाल।

(४) अनाज रखने का कुठला। बखार। गंज। जैसे—कोठी में चावल भरा पड़ा है। (५) ईंट वा पत्थर की वह जोड़ाई जो कुएँ की दीवार या पुल के खंभे में पानी के भीतर की ज़मीन तक होती है। यह जोड़ाई जमवट वा गोले के ऊपर होती है। जमवट ज्यों ज्यों नीचे धँसता जाता है त्यों त्यों जोड़ाई नीचे तक पहुँचती जाती है और उसके ऊपर नई जोड़ाई होती जाती है।

क्रि० प्र०—बांधना।

मुहा०—कोठी उतारना, बैठाना या डालना = दे० "कोठी गलाना"। कोठी गलाना = कुएं या पुल के खंभे में जमवट या गोले के ऊपर की जोड़ाई को नीचे धँसाना। लाल कोठी = व्यभिचारिणी स्त्रियों का अड्डा। (पंजाब)

(६) बंदूक में वह स्थान जहां बारूद ठहरती है। (७) गर्भाशय। बच्चादान। (८) म्यान की साम।

संज्ञा स्त्री० [सं० कोटि = समूह] उन बांसों का समूह जो एक साथ मंडलाकार उगते हैं। जैसे,—चार कोठी बांस कट गए।

कोठीवाल—संज्ञा पुं० [हिं० कोठी + वाला (प्रत्य०)] (१) वह जिसके यहां कोठी चलती हो। वह जिसके यहां लेन देन या हुंडी पुरज़े का व्यवहार होता हो। महाजन। साहूकार। (२) कोई बड़ा कारबार करनेवाला। बड़ा व्यापारी। (३) महाजनी अक्षर जो कई प्रकार के होते हैं, और जिनमें शीर्ष रेखाएँ और मात्राएँ नहीं होतीं। मुड़िया।

कोठीवाली—संज्ञा स्त्री० (१) कोठी चलाने का काम। (२) कोठीवाल अक्षर।

कोड़ना—क्रि० स० [सं० कुंड् = खंडित एक] खेत गोड़ना। खेत की मिट्टी को कुछ गहराई तक खोद कर उलट देना।

कोड़वाना—क्रि० स० [हिं० कोड़ना का प्रे०] दूसरे के द्वारा कोड़ने का काम कराना।

कोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कवर = गुथे हुए बाल] (१) एक छोटा डंडा या दस्ता जिसमें चमड़ा या सूत आदि बटकर लगाया जाता

है और जो मनुष्यों या जानवरों को मारने के काम में आता है। चाबुक। साँटा। दुर्रा।

क्रि० प्र०—जड़ना।—फटकारना।—मारना।—लगाना।—बैठना।

(२) उत्तेजक बात। मर्म्मस्पर्शी बात। जैसे, मैं तो स्वयं ही यह काम करने को था, इस पर तुम्हारा कहना और भी एक कोड़ा हुआ।

क्रि० प्र०—होना।—लगना, आदि।

(३) चेतावनी।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का बाँस जो दक्षिण-भारत में होता है। (२) कुश्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी के दाहिने पैंतरे पर खड़े होने पर बाएँ हाथ की कोहनी से उसकी दाहिनी रान दबाते और दाहिने हाथ की कलाई से उसके दाहिने पैर का गट्टा उठा कर दोनों हाथों को मिला कर जोर करके उसे चित्त गिरा देते हैं।

कोड़ाई—संज्ञा—स्त्री० [हिं० कोड़ना] (१) खेत गोड़ने की मज़दूरी। (२) खेत गोड़ने का काम।

कोड़ाना—क्रि० स० [हिं० कोड़ना का प्रे०] दूसरे के द्वारा कोड़ने का काम कराना।

कोड़ार—संज्ञा पुं० [सं० कुंडल] लोहे का एक प्रकार का गोल बंद जो कोल्हू की लकड़ी के चारों ओर इसलिये जड़ा होता है कि जिसमें वह फट न जाय। पश्चिम में इसे चरस कहते हैं। कुंडरा। तौक।

कोड़िक—संज्ञा पुं० [सं० क्रोड = सुअर] सुअर पालनेवाली एक जाति।

कोड़ी—संज्ञा स्त्री० [अं० स्कोर या सं० कोटि] (१) बीस का समूह। बीसी (२) पक्का ओना। तालाब का पक्का निकास जिससे तालाब-भर जाने पर अधिक पानी निकल जाता है।

कोढ़—संज्ञा पुं० [सं० कुष्ठ] [वि० कोढ़ी] एक प्रकार का रक्त और त्वचा संबंधी रोग जो संक्रामक और पुरुषानुक्रमिक होता है। वैद्यक के अनुसार कोढ़ १८ प्रकार का होता है जिनमें से कापाल, उदुंबर, मंडल, सिध्म, काकणक, पुंडरीक और ऋक्षजिह्व नामक सात प्रकार के कोढ़ महाकुष्ठ कहे और असाध्य समझे जाते हैं और एककुष्ट, गजचर्म्म, चर्म्मदल, विचर्चिका, विपादिका, पामा, कच्छू, दद्रु, बिस्फोट, किटिम और अलसक नामक शेष ग्यारह प्रकार के कोढ़ क्षुद्र कुष्ठ कहे और साध्य समझे जाते हैं। कोढ़ होने से पहले चमड़ा लाल हो जाता है और उसमें बहुत जलन होती है। गलित कोढ़ से हाथ पैर की उँगलियाँ गल गल कर गिर जाती हैं। डाक्टरों के मत से यह सर्वांग व्यापी रोग है और श्लीपद आदि भी इसी के अंतर्गत हैं। इस रोग से पीड़ित मनुष्य घृणित और अस्पृश्य समझा जाता है।

मुहा०—कोढ़ चूना या टपकना = कोढ़ के कारण अंगों का गल गल कर गिरना। कोढ़ की खाज या कोढ़ में खाज = दुःख पर दुःख। विपत्ति पर विपत्ति। उ०—एक तो कराल कलिकाल सूल मूल तामें, कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।—तुलसी।

कोढ़ा—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठ, प्रा० कोड्ढ] खेत में वह बाड़ा या स्थान जहाँ खाद के लिये गोबर आदि संग्रह करने के अभिप्राय से पशुओं को रखते हैं।

कोढ़िया—संज्ञा पुं० [हिं० कोढ़] एक प्रकार का रोग जो तमाखू के पत्तों में होता है और जिसके कारण उसपर चकत्ते या दाग पड़ जाते हैं।

कोढ़ी—संज्ञा पुं० [हिं० कोढ़] [स्त्री० कोढ़िन] कोढ़ रोग से पीड़ित मनुष्य।

कोण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक बिंदु पर मिलती वा कटती हुई दो ऐसी रेखाओं के बीच का अंतर जो मिल कर एक न हो जाती हों। कोना। गोशा।

विशेष—जिन दो रेखाओं से कोण बनता है उनकी लंबाई के घटने बढ़ने से कोण के मान में कुछ अंतर नहीं पड़ता। कोण का मान निकालने का ढंग यह है कि जिस बिंदु पर दोनों रेखाएँ मिलती हैं उसे केंद्र मान कर दोनों रेखाओं को काटता हुआ एक वृत्त बनावे, फिर उसकी परिधि को ३६० अंशों में विभक्त करे। जितने अंश कोण बनानेवाली रेखाओं के बीच पड़ेंगे, उतने अंशों का वह कोण कहा जायगा। रेखागणित में कोण कई प्रकार के होते हैं जैसे, समकोण (९० अंश का), न्यून कोण (९० से कम का), इत्यादि।

(२) दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा। कोण चार हैं—अग्नि कोण (पूर्व और दक्षिण के बीच का कोण), नैर्ऋति (पश्चिम और दक्षिण का), ईशान (पूर्व और उत्तर का), वायव्य (उत्तर और पश्चिम का)। (३) सारंगी की कमानी। (४) हथियारों की बाढ़। तलवार आदि की धार। (५) सोंटा। डंडा। लाठी। (६) ढोल पीटने की चोब।

संज्ञा पुं० [यू० क्रोनस] (१) शनि ग्रह। (२) मंगल ग्रह।

कोणनर—संज्ञा पुं० दे० "कोणशंकु"।

कोणप—संज्ञा पुं० दे० "कौणप"।

कोणवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह देशांतर वृत्त जो उत्तर पूर्व से दक्षिण-पश्चिम या उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर गया हो।

कोणशंकु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की वह स्थिति जब कि वह न तो कोणवृत्त में हो और न उन्मंडल में हो।

कोणस्पृग्वृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जो किसी क्षेत्र के सब कोनों को छूता हुआ खींचा जाय।

कोणाकोणी—अव्य० [सं०] एक कोने से दूसरे कोने तक।

कोणाघात–संज्ञा पुं० [सं०] दस हज़ार ढोलों और एक लाख हुडुकों के एक साथ बजने का शब्द ।

कोणार्क–संज्ञा पुं० [सं०] जगन्नाथपुरी का एक प्रसिद्ध तीर्थ ।

कोत*–संज्ञा स्त्री० [अ० कुवत] बल । शक्ति । जोर । उ०—कौंहर, कौंल, जपादल, विद्रुम का इतनी जो बंदूक में कोत है ।—शंभु ।

† संज्ञा स्त्री० दे० "कोद" ।

कोतरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली ।

कोतल–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सजा सजाया घोड़ा जिस पर कोई सवार न हो । जलूसी घोड़ा । (२) स्वयं राजा की सवारी का घोड़ा । उ०—गवनहिँ भरत पयादेहि पाये । कोतल संग जाहिँ डोरिआये ।—तुलसी । (३) वह घोड़ा जो ज़रूरत के वक्त के लिये साथ रखा जाता है ।

वि० [फ़ा०] खाली । जिसे कोई काम न हो ।

कोतलगारद–संज्ञा पुं० [अं० क्वार्टर गार्ड] छावनी का वह प्रधान स्थान जहाँ हर समय गारद रहती है और जहाँ दलेलवालों की निगरानी होती है ।

कोतवाल–संज्ञा पुं० [सं० कोटपाल] (१) पुलिस का एक प्रधान कर्म्मचारी जो किसी ज़िले के प्रधान नगर में रहता है और जिसके अधीन कई थाने और थानेदार होते हैं । इसपर नगर की शांति-रक्षा का भार रहता है । पुलिस का इंसपेक्टर । (२) वह कार्य्यकर्त्ता जिसका काम पंडितों की सभा या पंचाइत वाली बिरादरी अथवा साधुओं के अखाड़े की बैठक, भोज आदि का निमंत्रण देना और उनका ऊपरी प्रबंध करना हो ।

कोतवाली–संज्ञा स्त्री० [हिं० कोतवाल + ई (प्रत्य०)] (१) वह स्थान वा मकान जहाँ पुलिस के कोतवाल का कार्य्यालय हो । (२) कोतवाल का पद । कोतवाल का ओहदा ।

कोतह–वि० [फ़ा०] छोटा । कम ।

कोतह गर्दन–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जिसकी गर्दन छोटी अर्थात् बहुत कम लंबी हो ।

कोता * †–वि० [फ़ा० कोतह] [स्त्री० कोती] छोटा । कम । अल्प । उ०—सुर गंधर्व सरिस नर नारी, नहिँ विद्या बुधि कोती ।—रघुराज ।

कोताह–वि० [फ़ा०] छोटा । कम । अल्प ।

कोताही–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] त्रुटि । कमी । कोर कसर ।

कोति*–संज्ञा स्त्री० [सं० कुत्र = किधर] दिशा । ओर । उ०—दामिनि ! निज दुति दरपि कै चमकु न अब इहि कोति ।—शृं० सत० ।

कोथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आँख की पलक के भीतर का एक रोग । कुथुआ । (२) भगंदर ।

कोथमीर–संज्ञा पुं० [?] हरा धनिया ।

कोथला–संज्ञा पुं० [हिं० गूथल अथवा कोठला] (१) बड़ा थैला । (२) पेट ।

मुहा०—कोथला भरना = भोजन करना । (व्यंग्य) ।

कोथली–संज्ञा स्त्री० [हिं० कोथला] रुपए आदि रखने की एक प्रकार की लंबी पतली थैली जिसे लोग कमर में बाँध कर रखते हैं । हिमयानी । उ०—राम रतन घट कोथली, ग्राहक आगे खोल । जब रे मिलेगा पारखी, तब लेगा महँगे मोल ।—कबीर ।

कोथी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (तलवार के) म्यान के सिरे पर लगा हुआ धातु का छल्ला या टुकड़ा । म्यान की साम ।

कोदंड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष । कमान ।

यौ०—कोदंडकला = धनुर्विद्या ।

(२) धन राशि । (३) भौंह । (४) एक प्राचीन देश ।

कोद*†–संज्ञा स्त्री० [सं० कोण अथवा कुत्र] (१) दिशा । ओर । तरफ़ । उ०—भाग के भाजन जात जहाँ चहुँ कोदनि मोद विनोद निपाये ।—गुमान । (२) कोना । उ०—साखी हैं बेनी प्रवीन जु पै अबहीं इतै भाजि दुरे कहुँ कोद में ।—बेनी ।

कोदइत†–संज्ञा पुं० [हिं० कोदो + ऐत (प्रत्य०)] कोदो दलनेवाला ।

कोदई†–संज्ञा स्त्री० [सं० कोद्रव] कोदो ।

कोदरा–संज्ञा पुं० दे० "कोदो" ।

कोदरैता†–संज्ञा पुं० [हिं० कोदो + दरना] कोदो दलने की चक्की जो प्रायः चिकनी मट्टी की बनती है ।

कोदव–संज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] कोदो ।

कोदवला–संज्ञा स्त्री० [हिं० कोदो] कोदो के पेड़ के आकार की एक एक प्रकार की घास, जिसके नरम पत्ते चौपाये शौक से खाते हैं ।

कोदों, कोदो–संज्ञा पुं० [सं० कोदव] एक प्रकार का कदन्न जो प्रायः सारे भारतवर्ष में होता है । इसका पौधा धान या बड़ी घास के आकार का होता है, इसकी फसल पहली वर्षा होते ही बो दी जाती है और भादों में तैयार हो जाती है । इसके लिये बढ़िया भूमि या अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती । कहीं कहीं यह रुई या अरहर के खेत में भी बो दिया जाता है । अधिक पकने पर इसके दाने झड़ कर खेत में गिर जाते हैं, इसलिये इसे पकने से कुछ पहले ही काट कर खलियान में डाल देते हैं । छिलका उतरने पर इसके अंदर से एक प्रकार के गोल चावल निकलते हैं जो खाए जाते हैं । कभी कभी इसके खेत में अगिया नाम की घास उत्पन्न हो जाती है जो इसके पौधों को जला देती है । यदि इसकी कटाई से कुछ पहले बदली हो जाय तो इसके चावलों में एक प्रकार का विष आ जाता है । वैद्यक के मत से यह मधुर, तिक्त, रूखा तथा कफ़ और पित्त नाशक है । नया

कोदो गुरुपाक होता है। फोड़े के रोगी को इसका पथ्य दिया जाता है। कोदरा। कोदई।

मुहा०—**कोदो देकर पढ़ना या सीखना**=अधूरी या बेढंगी शिक्षा पाना। **कोदो दलना**=निकृष्ट, पर अधिक परिश्रम का काम करना। **छाती पर कोदो दलना**=किसी को दिखला कर कोई ऐसा काम करना जिससे उसे ईर्ष्या और ताप हो। किसी को जलाने या कुढ़ाने के लिये उसे दिखला कर या उसकी जानकारी में कोई काम करना।

कोद्रव—संज्ञा पुं० [सं०] कोदो। कोदई।

कोध—संज्ञा स्त्री० दे० "कोद"। उ०—नर नारी सब देखि चकित भे दावा लग्यो चहुँ कोध।—सूर।

कोन—संज्ञा पुं० [सं० कोण] कोना।

मुहा०—**कोन देना**=कोने पर से हल को घुमाना। **कोन मारना**=जोतने में छूटे हुए कोनों को गोड़ना।

संज्ञा पुं० [देश०] नौ की संख्या (दलाली)।

यौ०—कोनलाय।

कोनलाय—संज्ञा पुं० [देश०] १९ की संख्या। (दलाली)।

कोनसिला—संज्ञा पुं० [हिं० कोना + सिरा] कोनिया की छाजन में वह मोटी लकड़ी जो बँडेर के सिरे से दीवार के कोने तक तिरछी गई हो। कोरो इसी के आधर पर रक्खे जाते हैं।

कोना—संज्ञा पुं० [सं० कोण] (१) एक विंदु पर मिलती हुई ऐसी दो रेखाओं के बीच का अंतर जो मिल कर एक रेखा नहीं हो जातीं। अंतराल। गोशा। (२) नुकीला किनारा वा छोर। नुकीला सिरा। जैसे—उसके हाथ में शीशे का कोना धँस गया।

मुहा०—**कोना निकालना**=किनारा बनाना। **कोना मारना या छाँटना**=दे० "कोर मारना"।

(३) छोर का वह स्थान जहाँ लंबाई चौड़ाई मिलती हो। खूँट। जैसे—दुपट्टे का कोना।

मुहा०—**कोना दबना**=दे० "कोर दबना"।

(४) कोठरी वा घर के भीतर की वह सँकरी जगह जहाँ लंबाई चौड़ाई की दीवारें मिलती हैं। गोशा।

मुहा०—**कोना अँतरा**=घर के भीतर का ऐसा स्थान जहाँ दृष्टि जल्दी न पड़ती हो। छिपा स्थान। जैसे,—(क) उसने सारा कोना अँतरा ढूँढ़ डाला। (ख) चीज़ कहीं कोने अँतरे में पड़ी होगी।

(५) एकांत और छिपा हुआ स्थान। जैसे—(क) कोने में बैठ कर गाली देना बीरता नहीं है। (ख) पर नारी का राँचना, ज्यौं लहसुन की खान। कोने बैठ के खाइए, परगट होय निदान।—कबीर।

मुहा०—**कोना झाँकना**=किसी बात के पड़ने पर भय वा लज्जा से जी चुराना। किसी बात से बचने का उपाय करना। जैसे—तुम करने को तो सब कुछ कहते हो पर पीछे कोना झाँकने लगते हो।

(६) चार भागों में से एक। चौथाई। चहारुम। (दलाली)।

मुहा०—**कोने से**=चार आने फी रुपए के हिसाब से।

कोनिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोना] (१) वह छाजन जिसमें बँड़ेर के दोनों सिरे पाखों पर नहीं रहते बल्कि दीवार के कोनों से कुछ दूर पर रक्खी हुई धरन के ऊपर रहते हैं जहां से दीवार के कोनों तक दो धरनें (कोनसिले) तिरछी रक्खी जाती हैं। ऐसी छाजन के लिये पाखे की आवश्यकता नहीं होती। (२) काठ की पटरी वा पत्थर की पटिया जो दीवार के कोने पर चीज़ें रखने के लिये बैठाई जाती है। पटनी।

कोनेदंड—संज्ञा पुं० [हिं० कोना + डंड] वह दंड वा कसरत जो घर के कोने में दोनों ओर की दीवारों पर हाथ रख कर की जाती है।

कोप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुपित] क्रोध। रिस। गुस्सा।

यौ०—कोपभवन। कोपभाजन।

कोपड़†—संज्ञा पुं० [देश०] पहटा। सरावँ। हेंगा।

विशेष—दे० "हेंगा"।

कोपनक—संज्ञा पुं० [सं०] चोवा नामक गंधद्रव्य।

कोपना*—क्रि० अ० [सं० कोप] क्रोध करना। क्रुद्ध होना। नाराज़ होना। उ०—कोप्यो समर श्री राम।—तुलसी।

कोपभवन—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ कोई मनुष्य क्रोध करके या अपने घर के प्राणियों से रूठ कर जा रहे। उ०—कोपभवन गवनी कैकेयी।—तुलसी।

कोपर†—संज्ञा पुं० [सं० कपाल] पीतल वा अन्य किसी धातु का बड़ा थाल जिसमें एक ओर उसे सरलता से उठाने के लिये कुंडा लगा रहता है। उ०—कनक कलश भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [हिं० कोपल] डाल का पका हुआ आम। टपका। सीकर। सौंय।

कोपल—संज्ञा पुं० [सं० कोमल वा कुपल्लव] वृक्ष आदि की नई मुलायम पत्ती। कल्ला। अंकुर।

कोपलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कनफोड़ा नाम की बेल।

कोपली—वि० [हिं० कोपल] कोपल के रंग का। आम के नए निकले हुए पत्ते के रंग का। बैंगनी।

संज्ञा पुं० एक रंग जो आम के तुरंत के निकले हुए पत्ते के रंग का अर्थात् कालापन लिए हुए लाल वा बैंगनी होता है और जो मजीठ और नील के मिलाने से बनता है।

कोपिलांस†—दे० "कोइली (१)"।

कोपी—वि० [सं० कोपिन्] (१) क्रोधी। कोप करनेवाला। (२) एक प्रकार का पक्षी जो जल के किनारे रहता है। (३) संकीर्ण राग का एक भेद।

वि० [सं० कोऽपि] कोई । कोई भी । उ०—विमुख राम त्राता नहि कोपी ।—तुलसी ।

कोपीन–संज्ञा पुं० दे० "कौपीन" ।

कोफ़्त–संज्ञा पुं० [फ़ा०] लोहे पर सोने या चाँदी की पच्चीकारी । जरनिशाँ ।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) रंज । दुःख । खेद । (२) तरद्दुद । परेशानी । हैरानी ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—गुजरना ।—होना ।

कोफ़्तगरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] लोहे के बरतनों या हथियारों पर चाँदी वा सोने की पच्चीकारी करने का काम ।

कोफ़्ता–संज्ञा पुं० [फ़ा०] कूटे हुए मांस का बना हुआ एक प्रकार का कबाब जो जामुन के आकार का होता है और जिसके अंदर अदरक, पुदीना, खसखस, भूने चने का आटा आदि भरा रहता है ।

कोबड़ी–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो बरमा और नेपाल में अधिकता से होता है ।

कोबा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) मोंगरी । (२) दुरमुट । (३) चमारों का वह औज़ार जिससे वे चमड़ा कूटते हैं ।

कोबिद–संज्ञा पुं० दे० "कोविद" ।

कोबिदार–संज्ञा पुं० दे० "कोविदार" ।

कोबी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गोभी] गोभी का फूल ।

कोमता–संज्ञा पुं० [देश०] कीकर की जाति का एक बड़ा, सुहावना और सदाबहार पेड़ जो सिंध और अजमेर के रेतीले इलाकों में अधिकता से होता है । इसमें काँटे बहुत अधिक होते हैं ।

कोमर‡–संज्ञा पुं० [देश०] खेत का वह कोना जो किसी ओर कुछ अधिक बढ़ गया हो ।

कोमल–वि० [सं०] [संज्ञा कोमलता] (१) मृदु । मुलायम । नरम । (२) सुकुमार । नाज़ुक । (३) अपरिपक्व । कच्चा । जैसे—कोमलमति बालक । (४) सुंदर । मनोहर ।

यौ०—कोमलचित्त = दयापूर्ण चित्त । वह चित्त जो शीघ्र द्रवित हो जाय ।

(५) स्वर का एक भेद । (संगीत)

विशेष—संगीत में स्वर तीन प्रकार के होते हैं—शुद्ध, तीव्र और कोमल । षड्ज और पंचम शुद्ध स्वर हैं, और इनमें किसी प्रकार का विकार नहीं होता । शेष पाँचों स्वर (ऋषभ, गंधर्व, मध्यम, धैवत और निषाद) कोमल और तीव्र दो प्रकार के होते हैं । जो स्वर धीमा और अपने स्थान से कुछ नीचा हो वह कोमल कहलाता है । धीमेपन के विचार से कोमल के भी तीन और भेद होते हैं—कोमल, कोमलतर और कोमलतम ।

कोमलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मृदुलता । मुलायमत । नरमी । (२) मधुरता । लालित्य ।

कोमला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह वृत्ति जिसके अनुप्रासों में व्यासपद हों पर उसकी मधुरता बनी रहे । इसके दूसरे नाम प्रसाद और लाटी या लाटानुप्रास हैं । (२) खिरनी का पेड़ ।

कोय*†–सर्व० दे० "कोई" ।

कोयता–संज्ञा पुं० [सं० कर्त्ता, प्रा० कत्ता = छुरा] ताड़ी टपकानेवालों का एक औजार जिससे वे छेव लगाते हैं ।

कोयर†–संज्ञा पुं० [सं० कोपल] (१) साग पात । सब्ज़ी तरकारी । (२) वह हरा चारा जो गौ बैल आदि को दिया जाता है ।

कोयल–संज्ञा स्त्री० [सं० कोकिल] काले रंग की एक प्रकार की चिड़िया जो आकार में कौवे से कुछ छोटी होती है और मैदानों में वसंत ऋतु के आरंभ से वर्षा के अंत तक रहती है । यह चिड़िया सारे संसार में पाई जाती है, और प्रायः सभी भाषाओं में इसके नाम भी इसके स्वर के अनुकरण पर बने हैं । भारत की कोयल अपने अंडे कौवे के घोंसले में रख देती और वहीं उसमें से बच्चा निकलता है । इसी लिये इसे संस्कृत में अन्यपुष्ट भी कहते हैं । इसकी आँखें लाल, चोंच कुछ झुकी हुई और दुम चौड़ी और गोल होती है । इसका स्वर बहुत ही मधुर और प्रिय होता है । वैद्यक के अनुसार इसका मांस पित्तनाशक और कफ़ बढ़ानेवाला है । कोकिला । कोइली ।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की लता जिसकी पत्तियाँ गुलाब की पत्तियों से मिलती जुलती पर कुछ छोटी होती हैं । इसमें नीले और सफ़ेद फूल होते हैं, और एक प्रकार की फलियाँ लगती हैं । इसका प्रयोग ओषधियों में बहुत होता है । वैद्यक के अनुसार यह ठंढी, विरेचक और वमनकारक होती है । इसकी पत्तियों का रस पीने से साँप का विष उतर जाता है । कभी कभी इसका प्रयोग अँगरेजी दवाओं में भी होता है । अपराजिता ।

कोयला–संज्ञा पुं० [सं० कोकिल = जलता हुआ अंगारा] (१) वह जला हुआ अंश वा पदार्थ जो जली हुई लकड़ी के अंगारों को बुझाने से बच रहता है । (२) एक प्रकार का खनिज पदार्थ जो कोयले के रूप का होता और जलाने के काम में आता है । यह कई रंग और प्रकार का होता है । जहाजों और रेलों के इंजिनों तथा भट्ठों आदि में यही झोंका जाता है । इसकी आँच बहुत तेज होती है और बहुत देर तक ठहरती है । इसकी खानें संसार के प्रायः सभी भागों में पाई जाती हैं । वनस्पति और वृक्ष आदि के मिट्टी के नीचे दब जाने और बहुत दिनों तक उसी दशा में पड़े रहने के कारण उनकी सड़ी लकड़ियाँ आदि जम कर पत्थर या चट्टान का

रूप धारण कर लेती हैं और अंदर की गरमी से जलकर इसे वह रूप प्राप्त होता है जिसमें वह खानों से निकलता है। इसी लिये इसे पत्थर का कोयला भी कहते हैं। इसमें मट्टी का भी कुछ अंश मिला रहता है जो इसके जल चुकने पर राख के साथ बाकी रह जाता है।

मुहा०—कोयलों पर मोहर होना = केवल छोटे और तुच्छ खरचों की अधिक जांच पड़ताल होना। छोटे और तुच्छ पदार्थ की अधिक और अनावश्यक रक्षा होना।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत बड़ा पेड़ जो आसाम में होता है। इसकी लकड़ी चिकनी, कड़ी और बहुत मजबूत होती है और इमारत के काम में आती है। इसकी पत्तियां रेशम के कीड़ों को खिलाई जाती हैं। इसे सोम भी कहते हैं।

कोया—संज्ञा पुं० [सं० कोण] (१) आँख का डेला। उ०—(क) कहत भरे जल लोचन कोये।—तुलसी। (ख) बाल काह लाली परी लोयन कोयन माँह। लाल तिहारे दृगन की परी दृगन में छाँहँ।—बिहारी। (२) आँख का कोना।

संज्ञा पुं० [सं० कोश] कटहल के फल के भीतर की वह गुठली जो चारों ओर गूदे से ढकी होती है और जिसके अंदर बीज होता है। कटहल का बीजकोश।

कोरंड—संज्ञा पुं० [सं०] अंडवृद्धि का रोग।

कोरंगा—संज्ञा पुं० [देश०] गोबर और मट्टी से पोती हुई एक प्रकार की दौरी जिसमें अनाज आदि रखते हैं।

कोरंगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी इलायची। (२) पिप्पली।

कोरंजा—संज्ञा पुं० [हिं० कौर + अनाज] वह अन्न जो मजदूरों को मजदूरी में दिया जाता है।

कोर—संज्ञा स्त्री० [सं० कोण] (१) किनारा। सिरा। हाशिया।

मुहा०—कोर निकालना = किनारा बनाना। कोर मारना या छाँटना = बढ़े हुए या धारदार किनारे को कम या बराबर करना। (बढ़ई और संगतराश)

(२) कोना। गोशा। अंतराल।

मुहा०—कोर दबना = किसी प्रकार के दबाव या वश में होना। कस में होना। उ०—(क) अब तो उनकी कोर दबती है, अब वे कहाँ जाँयगे? (ख) जब तक उनकी कोर न दबेगी, तब तक वे रुपया न देंगे।

(३) द्वेष। बैर। वैमनस्य। उ०—उतते सूत्र न टारत कतहूँ, मोसों मानत कोर।—सूर।

क्रि० प्र०—मानना।—रखना।

(४) दोष। ऐब। बुराई।

क्रि० प्र०—निकालना।

यौ०—कोर कसर।

(५) हथियार की धार। बाढ़। (६) पंक्ति। श्रेणी। कतार। उ०—कोर बाँधि पांचो भये ठाढ़े। आगे धरे जंजालन गाढ़े।—सूदन।

क्रि० प्र०—बाँधना।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) चैती फसल की पहली सिँचाई। (२) वह चबैना या और खाद्य पदार्थ जो मज़दूरों या कुलियों को जलपान के लिये दिया जाता है। पनपिआव। छाक।

क्रि० प्र०—देना।—बाँटना।—पाना।—लेना, आदि।

संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार शरीर की आठ प्रकार की संधियों में से एक प्रकार की संधि। इस संधि पर से अवयव मुड़ सकते हैं। उँगली, कलाई, कुहनी और घुटने की संधियाँ इसी के अंतर्गत हैं।

कोरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो हिमालय में काशमीर से बरमा तक ६००० फीट उँची पहाड़ियों और तराइयों में पैदा होती है। बंगाल और मदरास में अधिकता से इसकी चटाइयां बनती हैं। इसे कहीं कहीं मुदरकटी भी कहते हैं।

कोरक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कली। मुकुल। (२) फूल या कली का वह बाहरी भाग जो प्रायः हरा होता है और जिसके अंदर पुष्पदल रहते हैं। फूल की कटोरी। उ०—कोरक सहित अगस्तिया लख्यो राहु अवतार। कला कलाधर की गिली जनु उगिलत एहि बार।—गुमान। (३) कमल की नाल या डंडी। मृणाल। (४) चोरक नाम का गंधद्रव्य। (५) शीतल चीनी।

संज्ञा पुं० [सं० कोरक = मृणाल] एक प्रकार का मोटा और मजबूत बेत जो आसाम और बरमा में होता है और जिसकी छड़ियाँ बनती हैं।

कोर कसर—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोर + फा० कसर] (१) दोष और त्रुटि। ऐब और कमी। (२) अधिकता या न्यूनता। कमी बेशी। जैसे,—अगर इसके दाम में कुछ कोर कसर हो तो उसे ठीक कर दीजिये।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।

कोरट—संज्ञा पुं० [अं० कोर्ट आफ़ वार्ड्स] (१) कोर्ट आफ़ वार्ड्स। जैसे, कोरट का मुहर्रिर। (२) किसी जायदाद का कोर्ट आफ़ वार्ड्स के प्रबंध में आना या लिया जाना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—कोरट छूटना = किसी जायदाद का कोर्ट आफ़ वार्ड्स के प्रबंध से निकलना। किसी जायदाद पर से कोरट का प्रबंध उठना। कोरट बैठना = किसी जायदाद का कोरट के प्रबंध में आना।

कोरना—क्रि० स० दे० "कोड़ना"।

कोरनी—संज्ञा स्त्री [देश०] पत्थर पर खुदाई का काम। संगतराशी।

कोरमा—संज्ञा पुं० [तु०] अधिक घी में भुना हुआ एक प्रकार का

मांस जिसमें जल का अंश या शोरबा बिलकुल नहीं होता।

कोरवा†–संज्ञा पुं० [देश०] (१) पान की खेती का दूसरा वर्ष।

विशेष—जो पान पौधों में दूसरे वर्ष लगता है वह अधिक उत्तम समझा जाता है।

(२) दे० "कोरा"।

कोरसाकेन–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा और सुहावना पेड़ जो अवध, बंगाल, आसाम और मदरास में अधिकता से होता है। लगाते ही यह पेड़ बहुत जल्दी बढ़ जाता और घना और छायादार हो जाता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती, अधिक दामों पर बिकती और इमारत के काम में आती है।

कोरहा†–वि० [हिं० कोर + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० कोरही] कोरदार। नोकदार।

यौ०—**कोरही सबरी** = कसेरों की वह पतली और छोटी सबरी जो महीन काम करने के लिये होती है।

वि० [हिं० कोरा = गोद] गोद में बहुत रहनेवाला।

कोरा–वि० [सं० केवल] [स्त्री० कोरी] (१) जो बर्त्ता न गया हो। जिसका व्यवहार न हुआ हो। नया। अछूता।

मुहा०—**कोरा छुरा वा उस्तरा** = वह उस्तरा जिस पर ताजा सान रखा हो। वह सान रखा हुआ छुरा जो चलाया न गया हो। **कोरे छुरे वा उस्तरे से मूँड़ना** = (१) ताज़ी धार के छुरे से सिर मूँड़ना जिसमें बाल जड़ से मुड़ जाँय अथवा बड़ा कष्ट हो। (२) सूखा मूँड़ना। बिना पानी लगाए मूँड़ना। (३) खूब लूटना। खूब फँसना। **कोरी धार वा बाढ़** = हथियार की धार जिस पर सान रखा हो। तीक्ष्ण धार। **कोरा पिंडा** = अछूता शरीर। बिन ब्याहा पुरुष वा बिन ब्याही स्त्री।

(२) (कपड़ा वा मिट्टी का बरतन) जो धोया न गया हो। जिसमें जल का स्पर्श न हुआ हो। जैसे, कोरा घड़ा। कोरा कपड़ा। कोरा नैनसुख।

मुहा०—**कोरा बरतन** = (१) मिट्टी का वह बरतन जिसमें पानी न डाला गया हो। (२) नवोढ़ा स्त्री। अछूती कुमारी (बाजारू)। **कोरा सिर** = (१) वह सिर जिसमें छुरा न लगा हो। वह सिर जिसमें पेट के बाल हों। (२) वह मला हुआ सिर जिसमें तेल न लगा हो।

(३) जो रँगा न गया हो। जिस पर कुछ लिखा वा चित्रित न किया गया हो। जिस पर कोई दाग वा चिह्न न हो। सादा। साफ़। जैसे, कोरा कागज़।

मुहा०—**कोरा जवाब** = साफ़ इनकार। स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार।

(४) खाली। रहित। वंचित। विहीन। जैसे,—उन्हें कुछ नहीं मिला, कोरे लौट आए।

मुहा०—**कोरा रह जाना** = कुछ न पाना। सिद्धि लाभ न करना। वंचित रह जाना।

(५) जिस पर कोई आघात वा बुरा प्रभाव न पड़ने पाया हो। आपत्ति वा दोष से रक्षित। निरापद वा निष्कलंक। बेदाग़।

क्रि० प्र०—कोरा बचना = किसी आपत्ति वा दोष से साफ़ बचना।

(६) विद्या विहीन। मूर्ख। अपढ़। जड़। (७) धनहीन। अकिंचन। (८) केवल। सिर्फ़। खाली। जैसे,—कोरी बातों से काम न चलेगा।

संज्ञा पुं० [सं० करक] एक चिड़िया जो तालों के किनारे रहती है। इसकी चोंच पीली और पैर लाल होते हैं। यह जेठ असाढ़ में अंडे देती है और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है।

संज्ञा पुं० [?] बिना किनारे की रेशमी धोती।

†संज्ञा पुं० [सं० क्रोड़] गोद। उछंग।

क्रि० प्र०—लेना।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक पेड़ जो गढ़वाल, बरार, मध्य प्रदेश और आसाम में बहुतायत से होता है। यह पेड़ कद में छोटा होता है। इसके हीर की लकड़ी सफेद, चिकनी और नरम होती है। देहरादून और सहारनपुर में इसपर खोदाई का काम होता है। छाल, फल और पत्ते दवा के काम में आते हैं। (२) एक प्रकार का सलमा जो कारचोब के काम में आता है। (३) ऊख के खेत की पहली सिँचाई।

कोरान–संज्ञा पुं० दे० "कुरान"।

कोरापन–संज्ञा पुं० [हिं० कोरा + पन (प्रत्य०)] नवीनता। अछूतापन।

कोरि–वि० दे० "कोटि"।

कोरी–संज्ञा पुं० [सं० कोल = सुअर] [स्त्री० कोरिन] हिंदुओं की एक नीच जाति जो सादे और मोटे कपड़े बुनती है। हिंदू जुलाहा।

संज्ञा स्त्री० [सं० कोटि वा अं० स्कोर] बीस वस्तुओं का समूह।

वि० स्त्री० [हिं० कोरा] (१) अछूती। नवीन। जो काम में न लाई गई हो। (२) जिस पर रंग न चढ़ाया हो। जिस पर कुछ लिखा न गया हो। सादी। दे० "कोरा"।

कोरो–संज्ञा पुं० [हिं० कोर] (१) वह लकड़ी जिससे पनवारी का भीटा छाया जाता है। (२) काँड़ी जो खपरैल में लगती है। (३) रेंड़ का सूखा पेड़।

कोर्ट–संज्ञा पुं० [अं०] अदालत। कचहरी।

संज्ञा पुं० [अं०] कोर्टपीस नामक ताश के खेल में एक प्रकार की जीत जो सात बाजियाँ जीतने के बराबर समझी जाती है।

कोर्ट आफ वार्ड्स–संज्ञा पुं० [अं०] वह सरकारी विभाग जिसके

द्वारा किसी अनाथ, विधवा या अयोग्य मनुष्य की जायदाद का प्रबंध होता है। कोरट।

कोर्ट इंस्पेक्टर—संज्ञा पुं० [अं] पुलिस का वह कर्मचारी जो पुलिस की ओर से फौजदारी अदालतों में मुकद्दमों की पैरवी करता है।

कोर्टपीस—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार का ताश का खेल जो चार आदमियों में होता है।

कोर्टफीस—संज्ञा स्त्री० [अं० कोर्ट + फी] अदालती रसूम।

विशेष—दे० "रसूम"।

कोर्ट-मार्शल—संज्ञा पुं० [अं०] फौजी अदालत जिसमें सेना के नियमों का भंग करनेवाले, सेना छोड़ कर भागनेवाले, तथा बागी सिपाहियों का विचार होता है।

कोर्टशिप—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रथा जिसके अनुसार पुरुष किसी स्त्री को अपने साथ विवाह करने के लिये उद्यत और अनुकूल करता है। कन्या-संवरण।

विशेष—यह प्रथा युरोप अमेरिका आदि सभ्य देशों में प्रचलित है। प्राचीन काल में आर्य्यों में भी यह प्रथा थी पर अब भारत की केवल कुछ असभ्य जातियों में ही देखी जाती है। यह प्रथा स्मृतियों के आठ प्रकार के विवाहों में से गंधर्व-विवाह के अंतर्गत आती है।

कोलंबक—संज्ञा पुं० [सं०] वीणा का तूँबा और दंडा।

कोल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूअर। शूकर। (२) गोद। उत्संग। (३) आलिंगन करने में दोनों भुजाओं के बीच का स्थान। (४) चीता नाम की ओषधि। चित्रक। (५) शनैश्चर ग्रह। (६) बेर। बदरीफल। (७) एक तौल जो तोले भर की होती है। (८) मिर्च। काली मिर्च। (९) शीतलचीनी। चव्य नाम की ओषधि। (१०) पुरुवंशी आक्रीड़ नामक राजा का पुत्र। (११) एक प्रदेश वा राज्य का प्राचीन नाम।

विशेष—हरिवंश में कोल राज्य का नाम दक्षिण के पांड्य और केरल के साथ आया है। पर बौद्ध ग्रंथों में कोल राज्य कपिलवस्तु के पूर्व रोहणी नदी के उस पार बतलाया गया है। शुद्धोदन और सिद्धार्थ दोनों का विवाह इसी वंश में हुआ था। इस कोल वंश के विषय में बौद्धों में ऐसा प्रसिद्ध है कि इक्ष्वाकु वंश के चार पुरुष अपनी कोढ़िन बहन को हिमालय के अंचल में ले गए और उसे एक गुफा में बंद कर आये। कुछ दिनों के उपरांत काशी का एक कोढ़ी राजा भी उसी स्थान पर पहुँचा और काली मिर्च (कोल) खा कर अच्छा हो गया। राजा ने एक दिन देखा कि एक सिंह उस गुफा के द्वार पर दिए हुए पत्थर को हटाना चाहता है। राजा ने सिंह को मारा और गुहा से उस कन्या का उद्धार करके उसका कुष्ठ रोग छुड़ा दिया। उन्हीं दोनों के संयोग से कोल वंश की उत्पत्ति हुई। स्कंद पुराण के हिमवत् खंड में लिखा है कि कोल एक म्लेच्छ जाति थी जो हिमालय में शिकार करती घूमती थी।

(१२) एक जंगली जाति।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में कोल को लेट पुरुष और तीवर स्त्री से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति लिखा है। स्कंद पुराण में इसे म्लेच्छ जाति लिखा है। पद्म पुराण में लिखा है जब यवन, पह्लव, कोलि, सर्प आदि सगर के भय से वशिष्ट की शरण आए तब उन्होंने उनका सिर आदि मुँड़ा कर उन्हें केवल संस्कार भ्रष्ट कर दिया। आज कल जो कोल नाम की एक जंगली जाति है वह आर्य्यों से स्वतंत्र एक आदिम जाति जान पड़ती है और छोटा नागपुर से लेकर मिरज़ापुर के जंगलों तक फैली हुई है।

संज्ञा पुं० [सं० कवल] चबेना। दाना। चरबन।

कोलकंद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कंद जिसे काशमीर में पुटालू कहते हैं। यह गरम होता है और कृमिदोष दूर करता है। इस कंद के ऊपर सूअर के से रोएँ होते हैं, इसलिये इसे वाराही कंद भी कहते हैं।

कोलक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अखरोट का पेड़। (२) काली मिरिच। (३) शीतलचीनी।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा लंबा औजार जिसकी सतह पर दनदाने होते हैं। इससे रेती और आरी तेज की जाती है।

कोलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का कोलाचल नामक पर्वत। इसे आज कल कोलमलय कहते हैं।

कोलदल—संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक गंधद्रव्य।

कोलना—क्रि० स० [सं० क्रोडन] लकड़ी पत्थर आदि को बीच से खोद कर पोला या खाली करना।

कोलपार—संज्ञा पुं० [देश०] मझोले कद का एक प्रकार का वृक्ष जो बरार और दारजिलिंग की तराइयों में होता है। इसमें एक प्रकार की कलियाँ लगती हैं, जिनका मुरब्बा बनता है। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और खेती के औजार बनाने और इमारत के काम में आती है। चीरने के समय लकड़ी का रंग अंदर से गुलाबी निकलता है पर हवा लगने से वह काला हो जाता है। इसे सोना भी कहते हैं।

कोलपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद चील। कांक। कंक।

कोलशिंबी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम की फली।

कोलसा—संज्ञा पुं० दे० "इंगनी"।

कोला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी पीपर। पिप्पली (२) चव्य। (३) बैर का पेड़।

संज्ञा पुं० [देश०] गीदड़।

संज्ञा० पुं० [अं०] आफ्रिका के गर्म प्रदेशों में होनेवाला एक पेड़ जिसके फल अखरोट की तरह के होते हैं। इन

फलों के बीजों में थकावट दूर करने, और नशे का चस्का छुड़ाने का गुण होता है। ये बीज निर्मली के समान जल साफ़ करने के काम में भी आते हैं।

कोलाहट–संज्ञा पुं० [सं०] वह नृत्य में प्रवीण मनुष्य जिसके अंग खूब टूटे हों, जो अंगों को खूब मोड़ माड़ सकता हो, जो तलवार की धार पर नाच सकता हो और जो मुहँ से मोती पिरो सकता हो।

कोलाहल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत से लोगों की अस्पष्ट चिल्लाहट। शोर। हौरा। हल्ला। रौला।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

(२) संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो कल्याण, कान्हड़ा और बिहाग के मेल से बनता है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

कोलिआर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का झाड़ीदार पेड़ जो दक्षिण हिमालय, बरमा, और मध्य तथा दक्षिण भारत में होता है। इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है और इस की छाल रँगने और चमड़ा सिझाने के काम में आती है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। बंबई में इसकी पत्तियों में तमाकू या सुरती लपेट कर बीड़ी बनाते हैं।

कोलिया†–संज्ञा स्त्री० [सं० कोल = रास्ता] (१) तंग रास्ता। पतली गली। (२) वह छोटा खेत जिसका आकार पतला और लंबा हो।

कोलियाना†–क्रि० अ० [हिं० कोलिया] (१) तंग गली में चला जाना। तंग गली से निकल जाना। (२) दे० "कौरियाना"।

संज्ञा पुं० [हिं० कोली + आना (प्रत्य०)] किसी गांव का वह भाग या स्थान जहाँ कोली रहते हों। कोलियों के रहने का स्थान।

कोली–संज्ञा स्त्री० [सं० क्रोड, प्रा० कोल] गोद। अँकवार। आलिंगन के समय दोनो भुजाओं के बीच का स्थान।

क्रि० प्र०—में भरना वा लेना।—भरना।

संज्ञा पुं० [हिं० कोरी] हिंदू जुलाहे। कोरी।

†संज्ञा स्त्री० [?] वह कालापन जो हाथों और पैरों में मेंहदी लगाने के उपरांत आता है।

कोलैंदा–संज्ञा पुं० [सं० कोल = बैर + अंड] महुए का पका फल। गोलैंदा। कोइना।

कोल्हाड़–संज्ञा पुं० [हिं० कोल्हू + आर (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ ऊख पेर कर रस निकाला और गुड़ बनाया जाता हो।

कोल्हुआ–संज्ञा पुं० [हिं० कूल्हा] कुश्ती का एक पेंच। दे० "कूल्हा"।

†संज्ञा पुं० दे० "कोल्हू"।

कोल्हू–संज्ञा पुं० [हिं० कूल्हा ?] तेल या ऊख पेरने का यंत्र जो कुछ कुछ डमरू के आकार का और बहुत बड़ा होता है। यह प्रायः पत्थर का, और कभी कभी लकड़ी या लोहे का भी होता है। इसके बीच में थोड़ा सा खोखला स्थान होता है जिसे हांड़ी या कूँड़ी कहते हैं। इसके पेंदे में एक नाली होती है जिसमें से तेल या रस निकल कर बाहर की ओर रखे हुए बरतन में गिरता है। कूंड़ी के मध्य में लकड़ी का मोटा और ऊँचा लट्ठा लगा रहता है जिसे जाठ कहते हैं। यह जाठ नँधे हुए बैल या बैलों के चक्कर काटने से घूमती है जिसके कारण कूँड़ी में डाली हुई चीज़ पर उसका दाब पड़ता है।

क्रि० प्र०—पेरना।—चलाना।

मुहा०—कोल्हू काट कर मोंगरी बनाना = कोई छोटी चीज बनाने के लिये बड़ी चीज़ नष्ट करना। थोड़े से लाभ के लिये बहुत सी हानि करना। कोल्हू का बैल = बहुत कठिन परिश्रम करनेवाला। दिन रात काम करनेवाला। कोल्हू में डाल कर पेरना = बहुत अधिक कष्ट पहुंचा कर प्राण लेना। बहुत दुःख देकर जान से मारना।

कोल्हेना–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा चावल जो पंजाब में होता है।

कोवारी–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जल पक्षी।

कोविद–वि० [सं०] [स्त्री० कोविदा] पंडित। विद्वान। कृतविद्य।

कोविदार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कचनार का पेड़। (२) कचनार का फूल।

कोश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंड। अंडा। (२) संपुट। डिब्बा। गोलक। उ०—नेत्रकोश। (३) फूलों की बँधी कली। (४) मद्यपात्र। शराब का प्याला। (५) पंचपात्र नामक पूजा का बरतन। (६) तलवार, कटार आदि की म्यान। (७) आवरण। खोल। जैसे, बीजकोश।

विशेष—वेदांती लोग मनुष्य में पांच कोशों की कल्पना करते हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनंदमय। अन्न से उत्पन्न और अन्न ही के आधार पर रहने के कारण देह को अन्नमय कहते हैं। पंच कर्मेंद्रियों के सहित प्राण अपान आदि पंच प्राणों को प्राणमय कोश कहते हैं जिसके साथ मिलकर देह सब क्रियाएँ करती है। श्रोत्र, चक्षु, आदि पांच ज्ञानेंद्रियों के सहित मन को मनोमय कोश कहते हैं। यही मनोमय कोश अविद्या रूप है और इसीसे सांसारिक विषयों की प्रतीति होती है। पंच ज्ञानेंद्रियों के सहित बुद्धि को विज्ञानमय कोश कहते हैं। यही विज्ञानमय कोश कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख, दुःख आदि अहंकार विशिष्ट पुरुष के संसार का कारण है। सत्वगुण विशिष्ट परमात्मा के आवरक का नाम आनंदमय कोश है।

(८) थैली। (९) संचित धन। (१०) वह ग्रंथ जिसमें अर्थ वा पर्य्याय के सहित शब्द इकट्ठे किए गए हों। अभिधान। जैसे, अमरकोश, मेदिनीकोश। (११) समूह।

(१२) खान से ताजा निकला हुआ सोना या चाँदी। (१३) अंडकोश। (१४) योनि। (१५) सुश्रुत के अनुसार घाव पर बाँधने की एक प्रकार की पट्टी। (१६) एक प्रकार का पात्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में दो राजाओं के बीच संधि स्थिर करने में होता था। (१७) ज्योतिष में एक योग जो शनि और बृहस्पति के साथ किसी तीसरे ग्रह के आने से होता है। (१८) रेशम का कोया। कुसयारी। (१९) कटहल आदि फलों का कोया। (२०) दे० "कोशपान"।

कोशकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तलवार कटार आदि के लिये म्यान बनानेवाला। (२) शब्द-कोश बनानेवाला। अर्थ सहित शब्दों का क्रमानुसार संग्रह करनेवाला। (३) रेशम का कीड़ा। (४) एक प्रकार का ऊख। कुसियार।

कोशकीट–संज्ञा पुं० [सं०] रेशम का कीड़ा।

कोशचक्षु–संज्ञा पुं० [सं०] सारस।

कोशज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रेशम। (२) सीप, शंख, घोंघे आदि में रहनेवाले जीव। (३) मोती। मुक्ता।

कोशनायक–संज्ञा पुं० [सं०] ख़जानची। कोशाध्यक्ष। वह कर्मचारी जिसके ज़िम्मे ख़जाने का हिसाब किताब और उसकी रक्षा का भार हो।

कोशपति–संज्ञा पुं० [सं०] कोशाध्यक्ष। ख़जानची।

कोशपान–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की प्राचीन परीक्षाविधि जिसके अनुसार यह जाना जाता था कि अभियुक्त अपराधी है अथवा नहीं। इसमें अभियुक्त को एक दिन उपवास करने के बाद परीक्षा के समय कुछ प्रतिष्ठित लोगों के सामने तीन चुल्लू जल पीना पड़ता था।

कोशपाल–संज्ञा पुं० [सं०] ख़जाने की रक्षा करनेवाला।

कोशफल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंडकोश। (२) जायफल। (३) घिया, तरोई, कद्दू, कुम्हड़ा, ककड़ी, तरबूज इत्यादि फल।

कोशफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] घिया, तरोई, लौकी, ककड़ी, खीरा, कुम्हड़ा इत्यादि के पेड़।

कोशल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरयू वा घाघरा नदी के दोनों तटों पर का देश। उत्तर तटवाले को उत्तर कोशल और दक्षिण तटवाले को दक्षिण कोशल कहते हैं। किसी पुराण में इस देश के ५ खंड और किसी में ७ खंड बतलाए गए हैं। प्राचीन काल में इस देश की राजधानी अयोध्या थी। (२) उपर्युक्त देश में बसनेवाली क्षत्रिय जाति। (३) अयोध्या नगर। (४) एक राग जिसमें गांधार और धैवत तो कोमल और शेष सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

कोशला–संज्ञा स्त्री० [सं०] कोशल की राजधानी, अयोध्या।

कोशलिक–संज्ञा पुं० [सं०] उत्कोच। घूस। रिशवत।

कोशवृद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] अंडवृद्धि का रोग।

कोशस्थ–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार पाँच प्रकार के जीवों में से एक। शंख, घोंघा आदि इसी के अंतर्गत हैं। इस जाति के जीवों का मांस मधुर, शीतल, वायुनाशक और कफ बढ़ानेवाला होता है।

कोशांड–संज्ञा पुं० [सं०] अंडकोश।

कोशांबी–संज्ञा स्त्री० दे० "कौशांबी"।

कोशागार–संज्ञा पुं० [सं०] ख़जाना। भंडार।

कोशातक–संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद की कठ नाम की शाखा।

कोशातकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तोरई। तरोई।

कोशाम्र–संज्ञा पुं० [सं०] कोसम नामक वृक्ष या उसका फल।

कोशाधिप, कोशाधिपति–संज्ञा पुं० [सं०] कोशाध्यक्ष। ख़जानची।

कोशाधीश–संज्ञा पुं० [सं०] ख़जानची। भंडारी।

कोशिश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] प्रयत्न। चेष्टा। उद्योग।

कोष–संज्ञा पुं० [सं०] दे० "कोश"।

कोषफल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंकोल मिर्च। (२) दे० "कोशफल"।

कोषफला–संज्ञा स्त्री० दे० "कोशफला"।

कोषवृद्धि–संज्ञा स्त्री० दे० "कोशवृद्धि"।

कोषकार–संज्ञा पुं० दे० "कोशकार"।

कोष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उदर का मध्य भाग। पेट का भीतरी हिस्सा।

यौ०—कोष्ठबद्ध। कोष्ठशुद्धि।

(२) शरीर के अंदर का कोई वह भाग जो किसी आवरण से घिरा हो और जिसके अंदर कोई विशेष शक्ति रहती हो। जैसे, पक्वाशय, मूत्राशय, गर्भाशय आदि। (३) कोठा। घर का भीतरी भाग। (४) वह स्थान जहाँ अन्न संग्रह किया जाय। गोला। (५) कोश। भंडार। ख़जाना। (६) प्राकार। कोट। शहरपनाह। चहारदीवारी। (७) वह स्थान जो किसी प्रकार चारों ओर से घिरा हो। (८) शरीर के भीतरी छः चक्रों में से एक जो नाभि के पास है। इसे मणिपुर भी कहते हैं।

कोष्ठक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी प्रकार की दीवार, लकीर या और कोई चीज़ जो किसी स्थान या पद को घेरने के काम में आती हो। (२) किसी प्रकार का चक्र जिसमें बहुत से ख़ाने या घर हों। सारणी। (३) लिखने में एक प्रकार का चिह्नों का जोड़ा जिसके अंदर कुछ वाक्य या अंक आदि लिखे जाते हैं। यह कई प्रकार का होता है, जैसे—[ ], { }, ( ) आदि।

१				९
	२		८	
		३		
	७		४	
६				५

कोष्ठक [सारणी]

विशेष—(क) जब यह चिह्न किसी वाक्य के अंतर्गत आता है तो इसके भीतर आए हुए शब्दों का परस्पर तो व्याकरण संबंध होता है पर प्रधान वाक्य से व्याख्यान या निदर्शन रूप अर्थ-संबंध होते हुए भी प्रायः उसका व्याकरण-संबंध नहीं होता। (ख) गणित में इन चिह्नों के अंतर्गत आए हुए अंक कुल मिलाकर एक समझे जाते हैं, और उनमें से किसी एक अंक का कोष्ठक के बाहरवाले किसी अंक से कोई स्वतंत्र संबंध नहीं होता।

(४) कोष्ठ।

कोष्ठपाल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नगर या स्थान की रक्षा करनेवाला।

कोष्ठवद्धं—संज्ञा पुं० [सं०] पेट में मल का रुकना। कब्ज़ियत।

कोष्ठशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट का मलरहित और बिलकुल साफ़ हो जाना।

कोष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पत्र जिसमें किसी मनुष्य के जन्म-काल के ग्रह और नक्षत्र आदि दिए हों। जन्मपत्री।

कोष्ण—वि० [सं०] कुछ गरम और कुछ ठंढा। कदुष्ण।

कोस—संज्ञा पुं० [सं० क्रोश] दूरी की एक नाप जो प्राचीन काल में ४००० हाथ, या किसी किसी के मत से ८००० हाथ की होती थी। आज कल कोस प्रायः दो मील का माना जाता है।

मुहा०—कोसों या काले कोसों = बहुत दूर। कोसों दूर रहना = अलग रहना। बहुत बचना। कोसों भागना = दे० "कोसों दूर रहना"।

कोसना—क्रि० स० [सं० क्रोशन] शाप के रूप में गालियाँ देना। दुर्वचन कहकर बुरा मनाना।

मुहा०—पानी पी पीकर कोसना = बहुत अधिक कोसना। कोसना काटना = शाप और गाली देना।

कोसभ—संज्ञा पुं० दे० "कोसम"।

कोसम—संज्ञा पुं० [सं० कोशाम्र] एक प्रकार का बड़ा पेड़ जो पंजाब, मध्य भारत और मदरास में अधिकता से होता है और जिसका पतझड़ प्रति वर्ष होता है। इसकी हीर की लकड़ी ललाई लिए हुए भूरी, बहुत कड़ी और मज़बूत होती है और इमारत के काम में आती है। इससे हल और खेती के दूसरे औज़ार भी बनाए जाते हैं। इसमें लाख बहुत लगती और बहुत अच्छी होती है। इसका फल कुछ खट्टा-पन लिए हुए मीठा होता है। वैद्यक में इसका फल उष्ण, गुरु, पित्तवर्द्धक और दाहकारक माना है। इसके बीजों से एक प्रकार का तेल निकलता है जो वैद्यक के अनुसार सारक, पाचक और बलकारक होता है। सुश्रुत में लिखा है कि इस तेल के मलने से कोढ़ या फोड़ा अच्छा हो जाता है।

कोसल—संज्ञा पुं० दे० "कोशल"।

कोसली—संज्ञा स्त्री० [सं०] षाड़व जाति की एक रागिनी जिसमें ऋषभ वर्जित है।

कोसा—संज्ञा पुं० [हिं० कोश] एक प्रकार का रेशम जो मध्यभारत में अधिक होता है।

संज्ञा पुं० [सं० कोश = प्याला] [स्त्री० कोसिया] मिट्टी का बड़ा दीया जो घड़ा ढकने वा खाने पीने की वस्तु रखने के काम में आता है।

संज्ञा पुं० दे० "कोसाकाटी"।

कोसाकाटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोसना + काटना] शाप के रूप में गाली। बद-दुआ।

कोसिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोसा] (१) मट्टी का छोटा कसोरा। (२) चूना रखने की कूँड़ी। (तँबोली)

कोसिला†—संज्ञा स्त्री० दे० "कौशल्या"। उ०—बिहंग आय माता सों मिला। रामहिँ जनु भेंटी कोसिला।—जायसी।

कोसिली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] पिराक या गुझिया नाम का पक्वान।

कोसी—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशिकी] एक नदी जो नेपाल के पहाड़ों से निकल कर चंपारन के पास गंगा में मिलती है। इसका बहाव बहुत तेज है। रामायण में लिखा है कि विश्वामित्र की बहन सत्यवती (दूसरा नाम कौशिकी) जब अपने पति के साथ स्वर्ग चली गई तो इस नदी की उत्पत्ति हुई थी, और एक मास तक इसके किनारे पर रहने से एक अश्वमेध यज्ञ का फल होता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० कोशिका] अनाज के वे दाने जो दायने के बाद बाल या फली में लगे रह जाते हैं। गूड़ी। चँचरी।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः जुआर या मूँग के लिये ही आता है।

कोहँड़ौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुम्हड़ा + बरी] उर्द की पीठी और कुम्हड़े के गूदे से बनाई हुई बरी।

कोह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पर्व्वत। पहाड़।

यौ०—कोहिस्तान।

†संज्ञा पुं० [सं० क्रोध] क्रोध। गुस्सा। उ०—किंकर, कंचन, कोह काम के।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० ककुभ, प्रा० कउह] अर्जुन वृक्ष।

कोहकाफ—संज्ञा पुं० [फ़ा० कोह = पहाड़ + अ० काफ] एक पहाड़ जो युरोप और एशिया के बीच में है। इसके आस पास के स्थानों के निवासी बहुत सुंदर होते हैं। फारस आदि देशों के निवासियों का विश्वास है कि इस पहाड़ पर देव और परियाँ रहती हैं।

कोहनी—संज्ञा स्त्री० दे० "कुहनी"।

कोहनूर—संज्ञा पुं० [फ़ा० कोह + अ० नूर] एक बहुत बड़ा और प्रसिद्ध हीरा जिसके विषय में कहा जाता है कि यह राजा कर्ण के पास था और पीछे मालवे के राजा विक्रमादित्य के

हाथ लगा था। सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में यह हीरा ग्वालियर के एक राजा ने गोलकुंडा के बादशाह को दिया था। सन् १७३९ में करनाल के युद्ध के बाद यह नादिरशाह को मिला था। उसके वंशज शाहशुजा से यह हीरा राजा रणजीतसिंह ने ले लिया। अंत में सन् १८४९ में यह अँगरेज़ों के हाथ आया और दूसरे वर्ष इंगलैंड में महारानी विक्टोरिया की भेंट हुआ और अब तक वहाँ के राजकोश में वर्त्तमान है। पहले यह हीरा ३१९ रत्ती का था और संसार में सबसे बड़ा समझा जाता था। पर अब यह फिर से काटा गया है और तौल में केवल १०२½ रत्ती रह गया है।

कोहबर—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठवर] वह स्थान या घर जहाँ विवाह के समय कुलदेवता स्थापित किए जाते हैं और जहाँ कई प्रकार की लौकिक रीतियाँ की जाती हैं। उ०—कोहबरहिं आने कुँवर कुँवरि सुआसिनिन सुख पाइ कै। अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै।—तुलसी।

कोहरा—संज्ञा पुं० [हिं० कुहरा] कुहासा। कुहिर। कुहरा।

कोहरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] उबाले या तले हुए चने आदि। घुंघनी।

कोहल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक मुनि जिन्होंने सोमेश्वर से संगीत सीखा था और जो नाट्य शास्त्र के प्रणेता कहे जाते हैं। (२) जौ की शराब। (३) कुम्हड़े की शराब। (४) एक प्रकार का बाजा।

कोहाँर†—संज्ञा पुं० दे० "कुम्हार"।

कोहा†—संज्ञा पुं० [सं० कोश = पात्र] (१) मट्टी का बड़ा कूँड़ा जिसमें प्रायः ऊख का रस, या काँजी आदि रखते हैं। नांद। (२) कपाल की आकृति का मिट्टी का बर्तन।

कोहान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] ऊँट की पीठ पर का किल्ला वा कूबड़।

कोहाना†*—क्रि० अ० [हिं० कोह] (१) रूठना। नाराज़ होना। मान करना। उ०—तुमहिँ कोहाब परम प्रिय अहई।—तुलसी। (२) गुस्सा होना। क्रोध करना।

कोहिल—संज्ञा पुं० [देश०] नर शाहीं बाज़।

कोहिस्तान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पर्वतस्थली। पहाड़ी देश।

कोही—वि० [हिं० कोह] क्रोधी। गुस्सैल। क्रोध करनेवाला। उ०—बाल ब्रह्मचारी अति कोही। विश्व विदित क्षत्री कुल द्रोही।—तुलसी।

वि० [फ़ा० कोह] पहाड़ी।

यौ०—कोही भाँग = एक प्रकार की भाँग जो सिंध में होती है और जिससे गाँजा वा चरस नहीं निकलता। इसके बीजों का तेल निकाला जाता है और रेशे से रस्सी आदि बनती है।

संज्ञा स्त्री० [देश०] शाहीं नामक बाज़ पक्षी की माँदा।

कौंकिर†—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कर, हिं० कंकर] कनी। हीरे की कनी। काँच की किरिच। काँच का नुकीला टुकड़ा। काँच की रेत। उ०—होता दिन कजरा में देहौं। जा दिन नंदनँदन के नैनन अपने नैन मिलैहौं। सुनरी सखी इहै जिय मेरे भूलि न और चितैहौं। अब हठ सूर इहै व्रत मेरो कौंकिर खै मरि जैहौं।—सूर।

कौंकुम—संज्ञा पुं० [सं०] तीन पूँछ वा चोटीवाले लाल रंग के पुच्छल तारे जो बृहत्संहिता के अनुसार संख्या में ६० हैं और मंगल के पुत्र माने जाते हैं। ये उत्तर की ओर उदय होते हैं।

कौंच—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छु] (१) सेम की तरह की एक बेल जिसमें सेम ही की ऐसी पत्तियाँ, फूल और फलियाँ लगती हैं। सेम की फलियों से कौंच की फलियाँ अधिक गोल, बड़ी, गुदेदार और रोएँदार होती हैं। कौंच तीन प्रकार की होती है, भूरी, काली और सफ़ेद। भूरी और काली फलियाँ रोएँदार होती हैं, सफ़ेद विना रोएँ की होती है। काली और सफ़ेद तरकारी के काम में आती हैं, भूरी का अधिकतर व्यवहार औषध में होता है और इसके भूरे और चमकदार रोयों के शरीर में लगने से खुजली और सूजन होती है। वैद्यक में कौंच अत्यंत वीर्य्यवर्द्धक, पुष्ट, मधुर और वातघ्न मानी जाती है। इसके बीज वाजीकरण औषधों में पड़ते हैं। (२) इस बेल की फली।

पर्या०—कपिकच्छु। आत्मगुप्ता। शुकशिंबा। कंडूरा। सद्यः-शोथा। शूका। शूकवती। ऋषभ। जटा। गात्रभंगा। प्रावृषा। वानरी। लांगली। कुंडली। रोमवल्ली। वृष्या, इत्यादि।

कौंची†—संज्ञा स्त्री० [सं० कंचिका] बाँस की पतली टहनी।

कौंडिन्य—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कौंडिनी] (१) कुंडिन मुनि के गोत्र का। (२) कुंडिन मुनि का पुत्र।

कौंतल—वि० [सं०] कुंतल देश संबंधी। कुंतल देश का।

कौंतिक—संज्ञा पुं० [सं०] भालेवाला। बरछा चलानेवाला।

कौंती—संज्ञा स्त्री० [सं०] रेणुका नाम का गंधद्रव्य।

कौंतेय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) युधिष्ठिर आदि कुंती के पुत्र। (२) अर्जुन वृक्ष

कौंध—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौंधना] बिजली की चमक।

कौंधना—क्रि० अ० [सं० कनन = चमकना + अंध या सं० कबंध] बिजली का चमकना।

कौंधनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० किंकिणी] करधनी।

कौंधा—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौंधना] बिजली की चमक। कौंध। उ०—कारी घटा सधूम देखियति अति गति पवन चलायो। चारौ दिसा चितै किन देखौ दामिनि कौंधा लायो।—सूर।

कौंभ, कौंभसर्पि—संज्ञा पुं० [सं०] सौ बरस का पुराना घी, जो बहुत गुणकारी समझा जाता है। (वैद्यक)

कौंर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा पेड़ जो प्रायः पंजाब, नेपाल और उसकी तराइयों में होता है। इसकी लकड़ी अंदर

से हलकी गुलाबी होती है और इमारत के काम में आती है। इसके काठ से थालियां और रिकाबियाँ भी बनाई जाती हैं। इसके फलों को पहाड़ी लोग सुखा कर चक्की में पीसते और दूसरे अनाज के साथ मिला कर खाते हैं। बन खैर।

कौंरा–संज्ञा पुं० दे० "काँवरा"।

कौंरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] पान की चौथाई ढोली, जिसमें ५० पान होते हैं। कँवरी।

कौंल–संज्ञा पुं० दे० "कमल"।

कौंली हड्डी–संज्ञा स्त्री० [सं० कोमल + हिं० हड्डी] कुरकुरी हड्डी।

कौंसलर–संज्ञा पुं० [अं०] परामर्शदाता। सम्मति देनेवाला।

कौंसिल–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) किसी विषय पर विचार करने के लिये कुछ लोगों की बैठक। (२) कुछ विशेष मनुष्यों की वह सभा जो किसी राजा या शासक को शासन के संबंध में परामर्श देने के लिये बनाई जाती है। जैसे बड़े लाट की कौंसिल, प्रिवी कौंसिल, आदि।

कौंहर–संज्ञा पुं० [देश०] इंद्रायन की जाति का एक प्रकार का फल जो पकने पर बहुत सुंदर लाल रंग का हो जाता है। कहते हैं कि जिस स्थान पर यह फल रखा रहता है वहाँ साँप नहीं आता। कवि लोग प्रायः इससे एँड़ी की उपमा दिया करते हैं। उ०—(क) कौंहर सी एँड़ीन की लाली देखि सुभाइ। पाय महावर देन को आप भई बेपाइ।—बिहारी। (ख) कौंहर, कौंल, जपादल, विद्रुम का इतनी जो बँधूक में कोत है।—शंभु।

कौंहरी–संज्ञा स्त्री० दे० "कौंहर"।

कौआ–संज्ञा पुं० दे० "कौवा"।

कौआना†–क्रि० [हिं० कौआ] (१) भौचक्का होना। चकपकाना। आश्चर्य से इधर उधर ताकना। (२) सोते में स्वप्न देखकर या योंही अचानक कुछ बड़ बड़ा उठना।

संयो० क्रि०—उठना।

कौआरोर†–संज्ञा पुं० [हिं० कौआ + सं० रव = शब्द] कौओं का शब्द। कौंवारोर। काँव काँव की पुकार। शोर गुल।

कौआल–संज्ञा पुं० [अ० कौआली] कौवाली। गानेवाला।

क़ौआली–संज्ञा पुं० [अ०] दे० "कौवाली"।

कौकुच्यातिचार–संज्ञा पुं० [सं० काकूकृत्यातिचार] वह वाक्य जिसके कहने, बोलने, या पढ़ने से अपने वा औरों के मन में काम क्रोध आदि उत्पन्न हों। जैसे, शृंगार के कवित्त, बारहमासा आदि। (जैन)

कौच–संज्ञा स्त्री० [अं०] मोटे गद्दे का अँगरेज़ी पलंग वा बेंच।

कौचुमार–संज्ञा स्त्री० [सं०] ६४ कलाओं में से एक। कुरूप को सुंदर बनाने की विद्या।

कौटिल्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) टेढ़ापन। (२) कुटिलता। कपट। (३) चाणक्य का नाम।

कौटुंबिक–वि० [सं०] (१) कुटुंबी। कुटुंब संबंधी। (२) परिवारवाला।

कौड़ा–संज्ञा पुं० [सं० कपर्दक, प्रा० कवड्डअ, कवड्डुअ] बड़ी कौड़ी। उ०—कौड़ा आँसू बूँद, करि साँकर बरुनी सजल। कीने बदन निमूँद, दृग मलंग डारे रहैं।—बिहारी।
संज्ञा पुं० [सं० कुंड] जाड़े के दिनों में तापने के लिये किसी गड्ढे में खर पतवार फूँक कर जलाई हुई आग। अलाव।
संज्ञा पुं० [सं० कंदल] एक प्रकार का जंगली प्याज़। कोचिंडा। फर्फार।

कौड़िया–वि० [हिं० कौड़ी] कौड़ी की तरह का। कौड़ी के रंग का। कुछ स्याही लिए हुए सफ़ेद।

कौड़ियाला–वि० [हिं० कौड़ी] कौड़ी के रंग का। वह हलका नीला (रंग) जिसमें गुलाबी की कुछ झलक हो। कोकई।
संज्ञा पुं० (१) कोकई रंग। (२) एक प्रकार का विषैला साँप, जिसपर कौड़ी के रंग और आकार की चित्तियां पड़ी रहती हैं। (३) कृपण धनाढ्य। वह धनी जो साँप की तरह रुपए के ऊपर बैठा रहे, उसे खर्च न होने दे। कंजूस।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि कृपण जब मरते हैं तब दूसरे जन्म में साँप होकर अपने ख़ज़ाने पर आकर बैठते हैं।
(४) एक पौधा जो ऊसर भूमि में होता है। इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और कुछ मटमैले रंग की होती हैं। इसमें कीप वा लुच्छी के आकार के छोटे छोटे फूल लगते हैं। फूल के रंग के विचार से कौड़ियाला तीन प्रकार का होता है। सफ़ेद फूल का, लाल फूल का, और नीले फूल का। नीले फूल के कौड़ियाले को विष्णुक्रांता कहते हैं। वैद्यक में कौड़ियाला तीक्ष्ण, गरम, मेधाजनक तथा कृमिघ्न और विषघ्न समझा जाता है। इसे शंखपुष्पी वा शंखाहुली भी कहते हैं। उ०—कौड़ियाला मेरी तुरबत पै लगाना यारो। नागनी ज़ुल्फ़ के काटे की यह पहचान रहे।

पर्या०—मेध्या। चंडा। सुपुष्पी। किरीटी। कंबुमालिनी। भूलग्ना। वनमालिनी। मलविनाशिनी। सर्पाक्षी, इत्यादि।

कौड़ियाली–संज्ञा स्त्री० दे० "कौड़ियाला (४)"।

कौड़ियाही–संज्ञा स्त्री० [हिं० कौड़ी] मज़दूरी की एक रीति जिसमें मज़दूरों को मिट्टी ईंटें आदि उठाने की मज़दूरी प्रति ईंट वा प्रति खेप कुछ कौड़ियाँ दी जाती हैं। इस रीति से काम जल्दी होता है।
वि० स्त्री० बहुत थोड़े धन की लालच से कोई काम करनेवाली।

कौड़िल्ला–संज्ञा पुं० [हिं० कौड़ी] (१) मछली पकड़ कर खानेवाली एक चिड़िया। किलकिला। (२) कसी नाम का पौधा जिसे संस्कृत में कशुक और गवेधुक कहते हैं। दे० "कसी"।

कौड़िहाई†–संज्ञा स्त्री० दे० "कौड़ियाही"।

कौड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० कपर्दिका, प्रा० कवड्डिआ] (१) समुद्र का एक कीड़ा जो घोंघे की तरह एक अस्थिकोश के भीतर रहता है। यह अस्थिकोश उभड़ा हुआ और चमकीला होता है तथा इसके नीचे बड़ा लंबा पतला छेद होता है जिसके दोनों किनारों पर दाँत होते हैं। खुले मुँह को आवश्यकतानुसार बंद करने के लिये उसपर ढक्कन नहीं होता। छेद के बाहर इसका सिर रहता है जिसमें दो कोने निकले रहते हैं जो स्पर्शेंद्रिय का काम देते हैं। कौड़ियाँ भारत महासागर में लंका, मलाया, स्याम, सिंहल, मालदीप आदि के पास इकट्ठी की जाती हैं। राजनिघंट में पाँच प्रकार की कौड़ियाँ बतलाई गई हैं—(क) सिंही, जो सुनहले रंग की होती है, (ख) व्याघ्री जो धूमले रंग की होती है, (ग) मृगी, जिसकी पीठ पीली और पेट सफ़ेद होता है, (घ) हंसी जो बिलकुल सफ़ेद होती है और (च) विंदता, जो बहुत बड़ी नहीं होती। द्रव्य रूप से कौड़ी का व्यवहार भारत, चीन आदि देशों में बहुत प्राचीन काल से होता आया है। वाजसनेयी संहिता में इसका उल्लेख आया है। भास्कराचार्य्य ने लीलावती में इसके मूल्य का विवरण दिया है। आज कल पैसे के आधे को अधेला, चौथाई को दुकड़ा वा छदाम और अष्टमांश को दमड़ी कहते हैं। एक पैसे में प्रायः ८० कौड़ियाँ वा २५ दाम माने जाते हैं। ३ दाम की एक दमड़ी, ६ दाम का एक दुकड़ा और १२॥ दाम का एक अधेला माना जाता है।

पर्या०—कपर्दिका। वराटिका।

मुहा०—**कौड़ी का**=जिसका कुछ मूल्य नहीं। तुच्छ। **कौड़ी काम का नहीं**=किसी काम का नहीं। निकम्मा। निकृष्ट। **कौड़ी या दो कौड़ी का**=(१) जिसका कुछ मूल्य नहीं। तुच्छ। निकम्मा। (२) निकृष्ट। खराब। **कौड़ी के काम का नहीं**=दे० "कौड़ी काम का नहीं"। **कौड़ी के तीन तीन बिकना**=बहुत सस्ता बिकना। **कौड़ी के तीन तीन होना**=(१) बहुत सस्ता होना। (२) तुच्छ होना। बेक़दर होना। नाचीज़ होना। **कौड़ी के मोल बिकना**=बहुत सस्ता बिकना। **कौड़ी को न पूछना**=(१) मुफ़्त भी न लेना। बिलकुल निकम्मा समझना। (२) नितांत तुच्छ ठहराना। कुछ भी क़दर न करना। उ०—वहाँ तुम्हें कोई कौड़ी को भी न पूछेगा। **कौड़ी कौस दौड़ना**=एक कौड़ी के पीछे कोसों का धावा मारना। थोड़ी सी वस्तु के लिये बहुत परिश्रम करना। **कौड़ी कौड़ी**=एक एक कौड़ी। **कौड़ी कौड़ी को मुहताज**=रुपए पैसे से बिलकुल खाली। दरिद्र। **कौड़ी कौड़ी अदा करना,—चुकाना, भरना**=सब ऋण चुका देना। कुल बेबाक़ कर देना। **कौड़ी कौड़ी भर पाना**=सारा लहना वसूल कर लेना। **कौड़ी कौड़ी जोड़ना**=बहुत थोड़ा थोड़ा करके धन इकट्ठा करना। बड़े कष्ट से रुपया बटोरना। **कौड़ी फिरना**=(१) जुए में अपना दाँव पड़ने लगना। (२) फ़ौजी सिपाहियों का किसी विषय में एकमत होना। (पहले जब सिपाहियों को किसी बात में एका करना होता था तब वे कौड़ी घुमाते थे। जिन सिपाहियों को वह बात स्वीकार होती थी वे कौड़ी ले लेते थे।) **कौड़ी फेरा करना**=घड़ी घड़ी आना जाना। थोड़ी थोड़ी बात के लिये भी आना जाना। बहुत से फेरे लगाना। उ०—अब तो वह आपके मुहल्ले में आ गए हैं, कौड़ी फेरा करेंगे। **कौड़ी भर**=बहुत थोड़ा सा। ज़रा सा। तनिक सा। उ०—कौड़ी भर चूना ला दो। **कौड़ी लेना**=मस्तूल के चारों ओर रस्सी लपेटना। (लश०)। **कानी, झाँझी या फूटी कौड़ी**=(१) वह कौड़ी जो टूटी हो। (२) अत्यंत अल्प द्रव्य। कम से कम परिमाण का धन। उ०—हम तुम्हें एक कानी कौड़ी भी न देंगे। **चित्ती कौड़ी**=वह कौड़ी जिसकी पीठ पर उभड़ी हुई गाँठें हों। (इसका व्यवहार जुए में होता है।)
(२) धन द्रव्य। रुपया पैसा। उ०—ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, कहहिँ न दूसरि बात। कौड़ी लागि लोभ बस, करहिँ विप्र गुरु घात।—तुलसी। (३) वह कर जो सम्राट् अपने अधीन राजाओं से लेता है।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

(४) आँख का डेला। (५) छाती के नीचे बीचोबीच की वह छोटी हड्डी जिसपर सबसे नीचे की दोनों पसलियाँ मिलती हैं।

मुहा०—**कौड़ी जलना**=भूख क्रोध आदि से शरीर में ताप होना। उ०—उसकी कौड़ी तो योंही जल रही है, क्यों चिढ़ाते हो?

(६) जंघे, काँख, वा गले की गिलटी।

क्रि० प्र०—उभरना।—उकसना।—छटकना।—निकलना।

(७) कटार की नोक। उ०—कौड़ी के आर पार है कौड़ी कटार की।

कौड़ी गुड़गुड़–संज्ञा पुं० [हिं० कौड़ी+गुड़गुड़] लड़कों का एक खेल।

विशेष—बहुत से लड़के दो ओर दो पंक्तियों में आमने सामने बैठते हैं। इन दोनों पंक्तियों के दो सरदार होते हैं। पैसा वा जूता आदि उछाल कर चित पट से इस बात का निश्चय किया जाता है कि पहले कौन पंक्ति से खेल आरंभ होगा। जिस पंक्ति से खेल आरंभ होता है उसका सरदार अँजुली में धूल भर लेता है जिसके भीतर एक कौड़ी छिपी होती है। सरदार थोड़ी थोड़ी धूल अपनी पंक्ति के सब लड़कों के हाथ में डाल आता है। फिर दूसरी पंक्तिवाले लड़के बूझते हैं कि धूल के साथ कौड़ी किस लड़के के हाथ में गई है। यदि वे ठीक बूझ गए तो जिसके हाथ में कौड़ी रहती है उसे चपत लगाते हैं।

कौड़ी जगनमगन–संज्ञा पुं० दे० "कौड़ी गुड़गुड़"।

कौड़ीजूड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० कौड़ी + जूड़ा] एक प्रकार का गहना जिसे स्त्रियाँ सिर पर पहनती हैं।

कौड़ेना—संज्ञा पुं० [देश०] [अल्प० कौड़ेनी] कसेरों का लोहे का एक औज़ार जिससे बरतनों पर नक़ाशी की जाती है। यह डेढ़ बालिश्त लंबा और नोक पर से पतला और चिपटा होता है।

• संज्ञा पुं० [हिं० कौड़ियाला] कौड़ियाला नाम की जड़ी।

संज्ञा स्त्री० दे० "कौड़ियाही"।

कौणप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राक्षस। (२) वासुकी के वंश का एक सर्प।

कौणपदंड—संज्ञा पुं० [सं०] भीष्म।

कौतुक—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कौतुकी] (१) कूतूहल। (२) आश्चर्य्य। अचंभा। (३) विनोद। दिल्लगी। (४) आनंद। प्रसन्नता। (५) खेल तमाशा।

क्रि० प्र०—करना।—दिखलाना।—देखना।—होना।

(६) वह मांगलिक सूत्र जो विवाह से पहले हाथ में पहना जाता है।

कौतुकिया—संज्ञा पुं० [हिं० कौतुक + इया (प्रत्य०)] (१) कौतुक करनेवाला। (२) विवाह संबंध करानेवाले नाऊ, पुरोहित आदि। उ०—तौ कौतुकिअन्ह आलस नाहीं। बर कन्या अनेक जग माहीं।—तुलसी।

कौतुकी—वि० [सं०] (१) कौतुक करनेवाला। विनोदशील। उ०—मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। पुरवासिन सब पूछत भयऊ।—तुलसी। (२) विवाह संबंध करानेवाला। (३) खेल तमाशा करनेवाला।

कौतूहल—संज्ञा पुं० [सं०] कुतूहल। कौतुक।

कौतोमत—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जिनका वर्णन गोपथ ब्राह्मण में आया है।

कौत्स—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम जो कुत्स ऋषि के पुत्र, वरतंतु के शिष्य और जैमिनि के आचार्य्य थे। (२) कुत्स नामक ऋषि के बनाए हुए कुछ साम (गान) जो विकृत यज्ञ में गाए जाते थे।

कौथ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौन + तिथि] (१) कौन सी तिथि। कौन तारीख़। जैसे—आज कौथ है? (२) कौन संबंध। कौन वास्ता। उ०—राम नाम को छोड़ि कै राखै करवा चौथ। सो तो होयगी सूकरी, तिन्हे राम सों कौथ।—कबीर।

कौथा†—वि० [हिं० कौन + सं० स्था (स्थान)] किस संख्या का। गणना में किस स्थान का। जैसे—दरजे में तुम्हारा नंबर कौथा है?

कौथि†—संज्ञा स्त्री० दे० "कौथ"।

कौथुम—संज्ञा पुं० [सं०] कौथुमी शाखा का अध्ययन करनेवाला।

कौथुमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सामवेद की एक शाखा जिसका प्रचार कुथुम ऋषि ने किया था।

कौदन—वि० [फ़ा०] मंदबुद्धि। कम-समझ। ना-समझ।

कौदालीक—संज्ञा पुं० [सं०] धीवर पिता और धोबिन माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति।

कौद्रविक—संज्ञा पुं० [सं०] सोंचर नोन। काला नमक।

कौधनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० किंकिणी] करधनी। कोंधनी।

कौन—सर्व० [सं० कः, किम्। प्रा० कवण] एक प्रश्नवाचक सर्वनाम जो अभिप्रेत व्यक्ति वा वस्तु की जिज्ञासा करता है। उस मनुष्य वा वस्तु को सूचित करने का शब्द जिसको पूछना होता है। जैसे—(क) तुम्हारे साथ कौन गया था? (ख) इन आमों में से तुम कौन लोगे?

मुहा०—कौन सा = कौन। कौन किसका होता है? = कौन किसके काम आता है। कोई दूसरे की सहायता नहीं करता। कौन होना = (१) क्या अधिकार रखना। क्या मतलब रखना। जैसे—तुम हमारे बीच में बोलनेवाले कौन होते हो? (२) क्या संबंध होना। क्या रिश्ता या नाता होना। जैसे—वे तुम्हारे कौन होते हैं।

विशेष—विभक्ति लगने के पहले "कौन" का रूप "किस" हो जाता है, जैसे, किसने, किसको, किससे, किसमें इत्यादि। यद्यपि संस्कृत के अनुसार हिंदी व्याकरणों में इस शब्द को केवल सर्वनाम ही लिखा है पर जब इसके आगे संज्ञा शब्द भी आ जाता है—जैसे, "कौन मनुष्य"—तब यह विशेषण ही के समान जान पड़ता है।

वि० किस जाति का? किस प्रकार का? जैसे—यह कौन आम है, लँगड़ा या बंबई?

कौनप—संज्ञा पुं० दे० "कौणप"।

कौपीन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मचारियों और संन्यासियों आदि के पहनने की लँगोटी। चीर। कफनी। काँछा। (२) शरीर के वे भाग जो कौपीन से ढांके जाँय—गुदा और लिंग। (३) पाप। गुनाह। (४) अनुचित कार्य्य।

कौम—संज्ञा स्त्री० [अ०] वर्ण। जाति। नस्ल।

कौमकुम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक केतु तारा जिसकी तीन शिखाएँ हैं और जो मंगल का साठवाँ पुत्र माना जाता है। (२) रक्त। ख़ून। लहू।

कौमार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कौमारी] (१) कुमार अवस्था। जन्म से पाँच वर्ष तक की अवस्था।

विशेष—तंत्र के मत से सोलह वर्ष तक की अवस्था को कौमार कहते हैं।

(२) एक प्रकार की सृष्टि जिसकी रचना सनतकुमार ने की थी। (३) कुमार।

कौमारभृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] बालकों के लालन पालन और

चिकित्सा आदि की विद्या । यह आयुर्वेद का एक अंग है । धातृविद्या । दायागीरी ।

कौमारिक-संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं ।

कौमारिकेय-संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो किसी स्त्री को कुमारी अवस्था में उत्पन्न हुआ हो । कानीन ।

कौमारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पुरुष की पहली स्त्री । (२) सात मातृकाओं में से एक, कार्तिकेय की शक्ति । (३) पार्वती का एक नाम । (४) बाराहीकंद । कोलकंद ।

कौमुद-संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिक मास । कातिक ।

कौमुदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ज्योत्स्ना । चाँदनी । जुन्हैया ।

यौ०—कौमुदीपति = चंद्रमा ।

(२) कार्तिकोत्सव, जो कार्तिक की पूर्णिमा को होता है । (३) कार्तिकी पूर्णिमा । (४) आश्विनी पूर्णिमा । (५) दीपोत्सव तिथि । (६) कुमुदिनी । कोईं । (७) दक्षिण देश की एक नदी ।

कौमुदीचार-संज्ञा पुं० [सं०] कोजागर पूर्णिमा । शरत् पूर्णिमा ।

कौमोदकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु की गदा ।

कौमोदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु की गदा । कौमोदकी ।

कौर-संज्ञा पुं० [सं० कवल] (१) उतना भोजन जितना एक बार मुँह में डाला जाय । ग्रास । गस्सा । निवाला । उ०—राम नाम छाँड़ि जो भरोसो करै और को । तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौरे को ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—खाना ।

मुहा०—**मुँह का कौर छीनना** = देखते देखते किसी का अंश दबा बैठना ।

(२) उतना अन्न जितना एक बार चक्की में पीसने के लिये डाला जाय ।

क्रि० प्र०—डालना ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा, फैलनेवाला झाड़ जो उत्तर भारत की पहाड़ी और पथरीली भूमि में होता है ।

√**कौरना**†-क्रि० स० [हिं० कौडा] थोड़ा भूनना । सेंकना । उ० —कुँदुरू और ककोड़ा कौरे । कचरी चार चँचेडा सौरे ।—सूर ।

कौरव-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० और वि० कौरवी] कुरु राजा की संतान । कुरुवंशज ।

वि० [सं०] कुरु संबंधी । जैसे, कौरवी सेना ।

कौरवपति-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्योधन । सुयोधन ।

कौरव्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कौरव । कुरु संतान । (२) एक नगर जिसका वर्णन महाभारत में आया है ।

कौरा-संज्ञा पुं० [सं० कोल, क्रोड़] [स्त्री० कौरी] द्वार के इधर उधर का वह भाग जिससे खुलने पर किवाड़ भिड़े रहते हैं । द्वार का कोना । उ०—द्वार बुहार फिरत अष्ट सिधि । कौरेन सथिया चीतत नवनिधि ।—सूर ।

मुहा०—**कौरे लगना** = (१) किसी बात को चुपचाप सुनने के लिये द्वार के कोने में छिप कर खड़ा होना । किसी घात में छिपा रहना । उ०—मन जिनि सुनै बात यह माई । कौरे लग्यो होइगो कितहूँ कहि दैहै सो जाई ।—सूर । (२) रूठ कर द्वार के कोने में खड़ा होना । मुँह फुलाना ।

संज्ञा पुं० [सं० कवल] वह खाना जो कुत्ते अंत्यज आदि को दिया जाय ।

क्रि० प्र०—डालना ।—देना

संज्ञा पुं० दे० "कौड़ा" ।

कौरी-संज्ञा स्त्री० [सं० क्रोड़] (१) अँकवार । गोद । उ०—कौरी में न आवे जिन्हे बाहु न हिलावे बलवानन झुकावे एते मान डिठीअत है ।—भारतेंदु ।

मुहा०—**कौरी भर कर मिलना** = आलिंगन करके मिलना । उ०—छत्रसाल त्यों गये बिजौरी । भेंटे रतन साहु भर कौरी ।—लाल ।

(२) एक अँकवार भर कटे हुए अनाज के पौधे जो फसल के समय मजदूरों को मजदूरी में दिए जाते हैं ।

संज्ञा स्त्री० [सं० गोराणी] ग्वालिन की फली । गुवार ।

कौलंज-संज्ञा पुं० [यू० कूलंज] एक प्रकार का दर्द जो पसलियों के नीचे होता है । बायसूल ।

कौल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम कुल में उत्पन्न । अच्छे खान-दान का । (२) वाममार्गी ।

†-संज्ञा पुं० [सं० कमल] कमल । सरोज ।

संज्ञा पुं० [सं० कवल] कौर । ग्रास ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चलता गाना ।

क़ौल-संज्ञा पुं० [तु० करावल] सेना की छावनी का मध्य भाग ।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) कथन । उक्ति । वाक्य । (२) प्रतिज्ञा । प्रण । वादा । इकरार ।

यौ०—**क़ौल करार** = परस्पर दृढ़ प्रतिज्ञा । **क़ौल का पूरा या पक्का** = बात का सच्चा । जबान का धनी ।

मुहा०—**क़ौल तोड़ना** = किसी से की हुई प्रतिज्ञा छोड़ना । प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य्य न करना । **क़ौल देना** = किसी से प्रतिज्ञा करना । किसी को वचन देना । **क़ौल लेना** = प्रतिज्ञा कराना । वचन लेना । **क़ौल से फिरना** = दे० "क़ौल तोड़ना" । **क़ौल हारना** = दे० "क़ौल देना" ।

कौलई-वि० [हिं० कौला = संगतरा] ललाई लिए पीला । संगतरे के रंग का । नारंजी ।

कौलदुमा-वि० [हिं० कौल = कमल + दुमा = दुमदार] कबूतर की एक

जाति। इस जाति के कबूतर की दुम लंबी और कमल की पत्ती की तरह छिछली होती है।

कौलव-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में बव आदि ग्यारह करणों में से तीसरा। इसके देवता मित्र हैं। इस करण में जन्म लेने-वाला विद्वान् और गुणी पर कृतघ्न होता है।

कौला-संज्ञा पुं० [सं० कमला] एक प्रकार का संगतरा जो बहुत अच्छा और स्वादिष्ट होता है। कमला।

संज्ञा पुं० [सं० कोल = क्रोड, गोद] (१) द्वार के इधर उधर का वह भाग जिससे खुलने पर किवाड़े भिड़े रहते हैं। कोना। कौरा।

मुहा०—कौले लगना = (१) रूठ कर द्वार के कोने में खड़ा होना। (२) किसी बात को चुप चाप सुनने के लिये द्वार के कोने में छिप कर खड़ा होना। घात में रहना। कौले सींचना = पूजा यात्रा आदि के समय द्वार के इधर उधर पानी छिड़कना।

(२) पाखा।

कौलिया-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा बबूल जो बरार में होता है।

कौलीय-संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों की एक प्राचीन जाति जिस-का उल्लेख बौद्ध शास्त्रों में आया है।

कौलेज-संज्ञा पुं० दे० "कालिज"।

कौलै-संज्ञा पुं० दे० "कौलव"।

कौवा-संज्ञा पुं० [सं० काक, प्रा० काओ] [स्त्री० कौवी। क०] (१) एक प्रसिद्ध पक्षी जो संसार के प्रायः सभी भागों में पाया जाता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं, पर भारत में प्रायः दो ही प्रकार के कौवे पाये जाते हैं। साधारण कौवा आकार में डेढ़ बालिश्त होता है, इसकी चोंच लंबी और कड़ी होती है और पैर बहुत मज़बूत होते हैं। इसका धड़ या अगला भाग ख़ाकी और पीछे का भाग काला होता है। इसकी नाक ठीक मध्य में नहीं होती, कुछ किनारे हट कर होती है। यह प्रायः, वृक्षों की टहनियों पर घोसला बनाता है। यह बैसाख से भादों तक अंडे देता है जिनकी संख्या ४ से ६ तक होती है। कहते हैं यह अपने जीवन में केवल एक बार अंडा देता है। अंडे का रंग हरा होता है और उसपर काले दाग होते हैं। कोयल भी अपने अंडे इसी के घोंसले में रख जाती है, पर जब उसमें से बच्चा निकलता है तो यह उसे अपने घोंसले से निकाल देता है। दूसरे प्रकार का कौवा आकार में बड़ा और प्रायः एक हाथ लंबा होता है। इसका सर्वांग बिलकुल काला होता है। इस जाति के कौवे आपस में बहुत लड़ते और प्रायः एक दूसरे को मार डालते हैं। यह पूस से फागुन तक अंडे देता है। इसे डोम कौवा कहते हैं। शेष सब बातों में यह प्रायः साधारण कौवे से मिलता जुलता होता है। दोनों प्रकार के कौवे बहुत धूर्त होते हैं और किसी ऐसे स्थान पर जहाँ ज़रा भी भय की आशंका हो, नहीं जाते। पर शहरों और गांवों में रहनेवाले कौवे बहुत ढीठ होते हैं। साधारण कौवे जब तक अंडे देने की आवश्यकता न हो, घोंसला नहीं बनाते। कौवे दिन के समय भोजन आदि के लिये अपने रहने के स्थान से १०—१२ कोस दूर तक निकल जाते हैं। यह प्रायः सभी खाद्य और अखाद्य पदार्थ खा जाते हैं। लोग कहते हैं कि इसकी केवल एक ही पुतली होती है जो आवश्यकतानुसार दोनों आँखों में घूमा करती है। यह बहुत ज़ोर से कांव कांव शब्द करता है जो बड़ा अप्रिय होता है। इसका मांस बहुत निकृष्ट होता है और मनुष्य या पशु पक्षियों के खाने योग्य नहीं होता।

यौ०—कौवा गुहार या कौवा रोर = बहुत अधिक बकवक। बहुत ज़ोर ज़ोर से और व्यर्थ बोलना। कागारोल।

मुहा०—कौवा गुहार में पड़ना या फँसना = हुल्लड़ या शोर में पड़ना। बहुत बोलनेवालों के बीच में फँसना। कौवे उड़ाना = व्यर्थ या अनावश्यक कार्य्य करना।

(२) बहुत धूर्त्त मनुष्य। कांइयाँ। (३) वह लकड़ी जो बँडेरी के सहारे के लिये लगाई जाती है। कोहा। बहुँवां। (४) एक प्रकार का सरकंडे का खिलौना। (५) गले के अंदर, तालू की झालर के बीच का लटकता हुआ मांस का टुकड़ा। घांटी। घंटी। लंगर। ललरी।

मुहा०—कौवा उठाना = बढ़ी या अधिक लटकती हुई घंटी को दबा कर यथास्थान करना।

विशेष—कभी कभी कौवा अधिक लटक कर जीभ तक आ पहुँचता है जिससे कुछ दर्द और खाने पीने में बहुत कष्ट होता है। यह दशा बाल्यावस्था में अधिक और उसके बाद कम होती है।

कौवाठोंठी-संज्ञा स्त्री० [सं० काकतुण्डी] एक प्रकार की लता जिसके फूल सफ़ेद और नीले रंग के तथा आकार में कौवे की नाक के समान होते हैं। इसमें फलियाँ लगती हैं जिनमें लोबिये के समान बीज होते हैं। बवासीर दूर करने तथा बालों को पकने से रोकने के लिये इसका प्रयोग औषध की भाँति होता है।

पर्या०—काकनासा। वायसी। सुरंगी। काकाक्षी। शिरोबाला।

कौवापरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कौवा + परी] बहुत काली और कुरूपा स्त्री। (व्यंग्य)।

कौवारी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार की चिड़िया। (२) कचूर के आकार का एक वृक्ष जिसमें बहुत से लाल फूलों का एक गुच्छा लगता है। इसकी जड़ औषध के काम में आती है। (३) कौवाठोंठी।

क़ौवाल-संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों में गवैयों की एक जाति। इस जाति के लोग क़ौवाली गाते हैं।

क़ौवाली-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) एक प्रकार का गाना जो पीरों

की मजार या सूफ़ियों की मजलिसों में होता है। इसके गाने की एक विशेष धुन होती है। इसमें प्रायः धर्म संबंधी वा आध्यात्मिक गज़लें होती हैं जिनके कारण कभी कभी सुननेवाले तन्मय हो जाते हैं। (२) इस धुन में गाई जानेवाली कोई ग़ज़ल। (३) सांगीत में तिताला बजाने का एक भेद। यह मध्यमान से दूना जल्दी बजाया जाता है। कौवाली की ग़ज़लों के सिवा और रागिनियों में भी इसका प्रयोग होता है।

+ ३
इसका तबले का बोल यह है—धा दिन् दिन् धा, धा
१ +
दिन् दिन् धा, ना तिन् तिन् ता। ता दिन् दिन् धा। धा।
+ ३ ०
अथवा— धा धिन् धिन् धा, धिन् धागे धिन् धिन् धा, ना तिन् तिन्
३ +
ता, तागे धिन् धिन् धा। धा।

(४) कौवालों का पेशा।

कौश—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कौशेय। स्त्री० कौशी] (१) कुश-द्वीप। (२) एक गोत्र का नाम। (३) रेशमी कपड़ा।

कौशल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुशलता। चतुराई। निपुणता। (२) मंगल। (३) कोशल देश का निवासी।

कौशलेय—संज्ञा पुं० [सं०] कौशल्या के पुत्र, रामचंद्र।

कौशल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कोशल के राजा दशरथ की प्रधान स्त्री और रामचंद्र की माता। (२) पुरुराज की स्त्री और जन्मेजय की माता। (३) सत्वान् की स्त्री। (४) धृतराष्ट्र की माता। (५) पंचमुखी आरती। बत्ती की आरती।

कौशांबी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बहुत प्राचीन नगर जिसे कुश के पुत्र कौशांब ने बसाया था। इसका दूसरा नाम वत्सपट्टन है। प्राचीन काल में यह नगर जमुना के किनारे था, पर अब जमुना वह स्थान छोड़ कर दूर चली गई है। बुद्धदेव कुछ दिनों तक इस स्थान पर रहे थे, और यहाँ एक मंदिर में उनकी चंदन की बहुत बड़ी मूर्त्ति है। इसलिये यह स्थान बौद्धों का एक तीर्थ हो गया है। यह स्थान प्रयाग से पंद्रह कोस पश्चिम की ओर है और अब भी यहाँ कोसम नामक एक छोटा गाँव और बहुत से पुराने खँडहर हैं।

कौशिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) कुशिक राजा के पुत्र गाधि, जो इंद्र के अंश से उत्पन्न हुए थे। (३) विश्वामित्र। (कुशिक राजा के वंशज) (४) जरासंध के एक सेनापति का नाम। (५) कोशाध्यक्ष। (६) कोशकार। (७) उल्लू। (८) नेवला। (९) अश्वकर्ण। (एक प्रकार का शाल वृक्ष) (१०) रेशमी कपड़ा। (११) शृंगार रस। (१२) मज्जा। (१३) एक उपपुराण। (१४) हनुमत के मत से छः रागों में से एक। कुकुभा, खंभावती, गुणकिरी, गौरी और तोड़ी रागिनी इसकी पत्नियाँ हैं (संगीत)। (१५) अथर्ववेद का एक सूत्र। इसमें देव, पितृ तथा पाकयज्ञ, मंत्रों के गण, युद्ध तथा राजनीति, वज्र तथा वृष्टि निवारण के मंत्र, विवाह-विधि, वेदारंभ और वेदाध्ययन की विधि आदि विषयों का वर्णन है।

कौशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जल आदि पीने का बरतन। कटोरा। गिलास। (२) गुग्गुल।

कौशिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंडिका। (२) राजा कुशिक की पोती और ऋचीक मुनि की स्त्री जो अपने पति के साथ सदेह स्वर्ग गई थी। (३) कोसी नाम की नदी।

विशेष—दे० "कोसी"।

(४) एक रागिनी। हनुमत के मत से यह मालकोश राग की आठ भार्य्याओं में से एक है। कोई कोई इसे पूरिया और अजयपाल आदि के संयोग से उत्पन्न संकर रागिनी मानते हैं। (५) काव्य में चार प्रकार की वृत्तियों में से पहली वृत्ति। जहाँ करुणा, हास्य और शृंगार रस का वर्णन हो और सरल वर्ण आवे उसे कौशिकी वृत्ति कहते हैं।

कौशिकी कान्हड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० कौशिकी + कान्हड़ा] एक संकर राग जो कौशिकी और कान्हड़ा के योग से बनता है। इसमें सब स्वर कोमल लगते हैं।

कौशिल्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि।

कौशिल्या—संज्ञा स्त्री० दे० "कौशल्या"।

कौशीधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह अनाज जो कोश में उत्पन्न होते हैं। जैसे तिल आदि।

कौशील—संज्ञा पुं० [सं०] सूत्रधार। प्रधान नट।

कौश्मांडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदों की ३४ पवित्र करनेवाली ऋचाओं में से एक।

कौषारव—संज्ञा पुं० [सं०] कुषारु मुनि के पुत्र, मैत्रेय।

कौषिक—संज्ञा पुं० दे० "कौशिक"।

कौषिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक देवी जिनकी उत्पत्ति काली के शरीर से हुई थी। इनके दस हाथ हैं और इनका वाहन सिंह है। इनकी आठ सखियाँ हैं जो सदा इनके साथ रहती हैं। (२) दे० "कौशिकी"।

कौषीतक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुषीतक ऋषि के पुत्र और ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्त्तक। (२) ऋग्वेद के अंतर्गत एक ब्राह्मण।

कौषीतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अगस्त्य मुनि की स्त्री का नाम। (२) ऋग्वेद की एक शाखा। (३) ऋग्वेद के अंतर्गत एक ब्राह्मण या उपनिषद्।

कौसल—संज्ञा पुं० दे० "कौशल"।

कौसल्या—संज्ञा स्त्री० दे० "कौशल्या"।

कौसिक—संज्ञा पुं० दे० "कौशिक"।

कौसिया–संज्ञा पुं० [देश०] एक संकर राग (संगीत) ।

कौसिला*†–संज्ञा स्त्री० दे० "कौशल्या" ।

कौसुंभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंगली कुसुम । बनकुसुम । (२) एक प्रकार का साग जो बहुत कोमल होता है ।

कौसुरुविंद–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो दस रातों में होता है ।

कौस्तुभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक रत्न जो समुद्र मथने के समय निकला था और जिसे विष्णु अपने वक्षस्थल पर पहने रहते हैं । (२) तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा ।

कौह–संज्ञा पुं० [सं० ककुभ] अर्जुन वृक्ष ।

कौहर†–संज्ञा पुं० [देश०] इंद्रायन ।

कौहा–संज्ञा पुं० [देश० या हिं० कौवा] वह लकड़ी जो बँडेरी के सहारे के लिये लगाई जाती है । बहुँवाँ । कौवा ।

क्या–सर्व० [सं० किम्] एक प्रश्नवाचक शब्द जो उपस्थित वा अभिप्रेत वस्तु की जिज्ञासा करता है । उस वस्तु को सूचित करने का शब्द जिसे पूछना रहता है । कौन वस्तु ? कौन बात ? जैसे—(क) तुम्हारे हाथ में क्या है ? (ख) तुम क्या करने आए थे ?

मुहा०—क्या उखाड़ना = कुछ न कर सकना । कुछ हानि न पहुँचा सकना । (बाज़ारू) । क्या कहना है ! = (१) (प्रशंसा-सूचक वाक्य) धन्य । साधु साधु । शाबाश । वाह वा । बहुत अच्छा है । बहुत बढ़िया है । (२) प्रशंसा के योग्य नहीं है । बहुत बुरा है । बहुत अनुचित है । बिलकुल ठीक नहीं है । ऐसा नहीं है । (व्यंग्य) । जैसे—पहला व्यक्ति—वह बहुत अच्छा लिखता है । दूसरा व्यक्ति—क्या कहना है ! क्या खूब = दे० "क्या कहना है !" । क्या क्या = सब कुछ । बहुत कुछ । क्या कुछ, क्या क्या कुछ = सब कुछ । बहुत कुछ । बहुत सी वस्तु । बहुत सी बात । जैसे—(क) उसने क्या क्या कुछ नहीं दिया ? (ख) तुमने क्या क्या कुछ नहीं कह डाला ? क्या यह और क्या वह = (१) जैसा यह वैसा वह । दोनों बराबर हैं । जैसे—(क) उसके लिये क्या अँधेरा और क्या उजाला । (ख) उसका क्या रहना और क्या न रहना । (२) जब इसी को हम कुछ नहीं समझते तब उसको क्या समझते हैं । दोनों तुच्छ हैं । जैसे—क्या भेड़, क्या भेड़ की लात ? यह क्या करते हो ? = यह ठीक नहीं करते हो । यह बुरा करते हो । यह विलक्षण कार्य्य करते हो । (आश्चर्य और खेद सूचक) । यह क्या किया ? = दे० "यह क्या करते हो ?" (किसी की) क्या चलाते हो = क्या प्रसंग लाते हो ? क्या चर्चा करते हो ? बात ही कुछ और है । दशा ही भिन्न है । बराबरी नहीं कर सकते । जैसे—उनकी क्या चलाते हो ? वे अमीर हैं चाहे दस घोड़े रक्खें । क्या चीज़ है ? = ना चीज़ है । तुच्छ है । (किसी की) क्या चलाई = दे० "क्या चलाते हो" । क्या जाता है ? = क्या नुकसान होता है । कौन सा हर्ज होता है ? कुछ हानि नहीं । जैसे—ज़रा कह देना, तुम्हारा क्या जाता है ? क्या जाने ? = कुछ नहीं जानते । ज्ञात नहीं । मालूम नहीं । जैसे—हम क्या जानें, वह कहाँ गया है ? क्या जाती दुनिया देखी ? = क्या कारण हुआ (जो स्वभाव विरुद्ध कार्य्य किया) । क्या नाम ? = नाम स्मरण नहीं आता । (जब बात चीत करते समय कोई बात याद नहीं आती तब इस वाक्य को बीच में बोल कर कुछ रुक जाते हैं जैसे, तुम्हारे साथ उस दिन वही—क्या नाम ?—मथुराप्रसाद थे न ?) । क्या पड़ना ? = क्या आवश्यकता होना । कुछ ज़रूरत न होना । कुछ गरज़ न होना । जैसे—हमें क्या पड़ी है जो हम पूछने जांय ? क्या पूछना है ? = दे० "क्या कहना है" । क्या हुआ ? = क्या हर्ज है । कुछ हर्ज नहीं है । कुछ परवा नहीं है । क्या बात !, क्या बात है ! = दे० "क्या कहना है" । क्या से क्या हो गया = बिलकुल बदल गया । और ही दशा हो गई । क्या समझते वा गिनते हैं ? = कुछ नहीं समझते हैं । तुच्छ समझते हैं । तो फिर क्या है ? = तो और किसी बात की आवश्यकता नहीं । तो सब पूरा है । तो सब ठीक है । तो बड़ी अच्छी बात है । जैसे—वे आ जांय तो फिर क्या है ?

विशेष—यद्यपि यह शब्द सर्वनाम है पर इसमें विभक्ति नहीं लगती । इसी से वस्तु की जिज्ञासा के लिये दो सर्वनाम हैं "कौन" और "क्या" । "कौन" में विभक्ति लग सकती है "क्या" में नहीं । "क्या" के आगे संज्ञा आने से वह विशेषणवत् हो जाता है, जैसे, क्या वस्तु । इस शब्द के आगे अधिकतर वस्तु, पदार्थ, चीज आदि सामान्य शब्द विशेष्य रूप से आते हैं, विशेष जाति वा व्यक्ति बोधक शब्द नहीं ।

वि० (१) कितना ? किस क़दर ? जैसे—इस काम में तुम्हारा क्या खर्च पड़ा ? (२) बहुत अधिक । बहुताय से । इतना अधिक । ऐसा । जैसे—(क) क्या पानी बरसा कि सब तराबोर हो गए । (ख) क्या भीड़ थी कि तिल रखने को जगह न थी । (३) कैसा ? किस प्रकार का ? विलक्षण ढंग का । अपूर्व । विचित्र । जैसे—(क) वह भी क्या आदमी है ? (ख) क्या क्या लोग हैं । (४) बहुत अच्छा । बहुत उत्तम । कैसा उत्तम ? जैसे—बाबू साहब भी क्या आदमी हैं कि जो मिलता है प्रसन्न हो जाता है ।

क्रि० वि० (१) क्यों । किस लिये । किस कारण । जैसे—(क) तुम मुझसे क्या कहते हो, मैं कुछ नहीं कर सकता । (ख) अब हम वहाँ क्या जाँय ?

मुहा०—ऐसा क्या = ऐसा क्यों ? इसकी क्या आवश्यकता है ? क्या आए क्या चले ? = बहुत जल्दी जा रहे हो । अभी थोड़ा और बैठो । (जब कोई किसी के यहाँ आता है और जल्दी जाना चाहता है तब उसके प्रति यह कहा जाता है) ।

(२) नहीं। जैसे—जब उसमें दमड़ी नहीं तब क्या चलेगा? अव्य० केवल प्रश्नसूचक शब्द। जैसे—क्या वह चला गया?

मुहा०—क्या आग में डालूँ = इस वस्तु को लेकर क्या करूँ। यह मेरे किस काम का है? (स्त्रियाँ खिझला कर ऐसा बोल देती हैं)।

क्यार†-संज्ञा पुं० [सं० केदार] पेड़ का थाला। थाँवला।

क्यारी-संज्ञा स्त्री० दे० "कियारी"।

क्यों-क्रि० वि० [सं० किम्] (१) किसी व्यापार वा घटना के कारण की जिज्ञासा करने का शब्द। किस कारण? किस निमित्त? किस लिये? किस वास्ते? जैसे—तुम वहाँ क्यों जा रहे हो?

यौ०—क्योंकि = इसलिये कि। इस कारण कि। जैसे—अब यहाँ से जाओ, क्योंकि वह आता होगा।

मुहा०—क्यों कर = किस प्रकार? कैसे? जैसे—मैं यहाँ क्यों कर रह सकता हूँ? क्यों नहीं? = (१) ऐसा ही है। ठीक कहते हो। निःसंदेह। बेशक। (किसी बात के समर्थन में) (२) हाँ। जरूर। (स्वीकार में)। जैसे—प्रश्न—तुम वहाँ जाओगे। उत्तर—क्यों नहीं? (३) ऐसा नहीं है। ठीक नहीं करते हो। (व्यंग्य)। (४) कभी नहीं। मैं ऐसा नहीं कर सकता। (व्यंग्य)। क्यों न हो = (१) तुम ऐसे महानुभाव से ऐसा उत्तम कार्य्य क्यों न हो? वाह वा! क्या खूब! धन्य हो! (२) ऐसी विलक्षण बात क्यों न कहोगे? छिः (व्यंग्य)। *(२) किस भाँति? किस प्रकार? कैसे? उ०—क्यों बसिए क्यों निबहिए, नीति नेह पुर नाहिँ। लगालगी लोयन करैं, नाहक मन बँधि जाहिँ।—बिहारी।

क्योलारी†-संज्ञा स्त्री० दे० "कोइलारी"।

क्रंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोना। विलाप। (२) युद्ध के समय वीरों का आह्वान।

क्रकच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष में एक योग जो उस समय पड़ता है जब कि वार और तिथि की संख्या का जोड़ १३ होता है। इसकी गणना के लिये रविवार को पहला, सोमवार को दूसरा, मंगल को तीसरा और इसी प्रकार शनिवार को सातवाँ दिन मानते और उसी दिन की संख्या को तिथि की संख्या में जोड़ते हैं। जैसे, यदि शुक्रवार को सप्तमी, बृहस्पति को अष्टमी, बुध को नवमी या रवि को द्वादशी हो तो क्रकच योग होता है। इस योग में कोई शुभ कार्य्य करना वर्जित है। (२) करील का पेड़। (३) आरा। करवत। (४) एक प्रकार का बाजा। (५) एक नरक का नाम। (६) गणित में एक प्रकार की क्रिया जिसके अनुसार लकड़ी के तख्ते चीरने की मजदूरी स्थिर की जाती है।

क्रकचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी।

क्रकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) करील का पेड़। (२) किलकिला नाम की चिड़िया। (३) केकड़ा। (४) आरा। करवत। (५) दरिद्र।

क्रकुच्छंद-संज्ञा पुं० [सं०] भद्रकल्प के पाँच बुद्धों में से पहले बुद्ध।

क्रतक-संज्ञा पुं० [सं०] वसुदेव के पुत्र का नाम।

क्रतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) निश्चय। संकल्प। (२) इच्छा। अभिलाषा। (३) विवेक। प्रज्ञा। (४) इंद्रिय। (५) जीव। (६) विष्णु। (७) यज्ञ, विशेषतः अश्वमेध।

यौ०—क्रतुपति = विष्णु। क्रतुपशु = घोड़ा। क्रतुफल = यज्ञ का फल, स्वर्ग आदि।

(८) आषाढ़ (प्रायः यज्ञ इसी महीने में होते हैं)। (९) ब्रह्मा के एक मानस पुत्र जो सप्तऋषियों में से हैं। इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के हाथ से हुई थी। इनका विवाह कर्दम प्रजापति की कन्या क्रिया से हुआ था जिसके गर्भ से साठ हज़ार वालखिल्य ऋषि उत्पन्न हुए थे। (१०) विश्वेदेवा में से एक। (११) कृष्ण के एक पुत्र का नाम। (१२) प्लक्षद्वीप की एक नदी का नाम।

क्रतुध्वंसी-संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष प्रजापति का यज्ञ नष्ट करनेवाले, शिव।

क्रतुपशु-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा। अश्व।

क्रतुपुरुष-संज्ञा पुं० दे० "यज्ञपुरुष"।

क्रतुभुक्-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जो यज्ञ में देवताओं को अर्पण किया जाता है।

क्रतुभुज्-संज्ञा पुं० [सं०] देवता। सुर।

क्रतुराज-संज्ञा पुं० [सं०] राजसूययज्ञ।

क्रतुविक्रयी-संज्ञा पुं० [सं०] धन लेकर यज्ञ का फल बेचनेवाला।

क्रतुस्थला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा जिसका नाम यजुर्वेद में आया है। पुराणानुसार यह चैत में सूर्य्य के रथ पर रहती है।

क्रत्वर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञों का अर्थवाद और विधान जो पुरुषार्थ की भाँति कर्त्ता की इच्छा के अनुसार नहीं बल्कि शास्त्र के नियम के अनुकूल होता है। जैसे, पौर्णमास आदि यज्ञों में फल की लिप्सा या अपनी इच्छा से प्रवृत्ति होती है और इस यज्ञ या उसकी फलविधि को पुरुषार्थ कहते हैं। पर उसमें प्रवृत्त होने पर वत्स्यपाकरण, गोदोहन और उपवास आदि यज्ञ के अंग प्रत्यंग संबंधी कर्म्मों को शास्त्र की विधि और अर्थवाद के अनुकूल ही करना पड़ता है। इसी विधि और अर्थवाद को क्रत्वर्थ कहते हैं। संपूर्ण यज्ञ जिस निमित्त किया जाय वह फलविधि है, और यज्ञ का एक एक अंग जिस प्रयोजन से किया जाय वह अर्थवाद है।

क्रथ–संज्ञा पुं० (१) विदर्भ नामक यादव राजा का एक पुत्र और कैशिक का भाई। (२) कंद का एक गण। (३) एक असुर का नाम।

क्रथकैशिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रथ और कैशिक का वंश। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

क्रथन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवयोनि। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

क्रथनक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफ़ेद अगर। (२) ऊँट।

क्रप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दयालु। (२) कृपाचार्य्य।

क्रम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पैर रखने की क्रिया। डग भरने की क्रिया। (२) पूर्वापर संबंधी व्यवस्था। वस्तुओं वा कार्य्यों के परस्पर आगे पीछे आदि होने का नियम। शैली। प्रणाली। तरतीब। सिलसिला। जैसे,—(क) इन पौधों को किस क्रम से लगाओगे? (ख) इन पृष्ठों का क्रम ठीक नहीं है।

मुहा०—क्रम से = क्रमानुसार।

क्रि० प्र०—रखना।—लगाना।

(३) किसी कार्य्य के एक अंग को पूरा करने के उपरांत दूसरे अंग को पूरा करने का नियम। कार्य्य को उचित रूप से धीरे धीरे करने की प्रणाली।

क्रि० प्र०—बाँधना।

मुहा०—क्रम क्रम करके = धीरे धीरे। शनैः शनैः। उ०—जो कोउ दूरि चलन को करै। क्रम क्रम करि डग डग पग धरै। —सूर। क्रम से, क्रम क्रम से = धीरे धीरे।

(४) वेदपाठ की प्रणाली जो दो प्रकार की है। प्रकृति रूप और विकृति रूप। प्रकृति रूप के दो भेद हैं—रूढ़ और योग। जैसे—"अग्नि मीले पुरोहितम्" इस प्रकार का पाठ रूढ़ और "अग्निम् ईले पुरोहितम्" इस प्रकार का पाठ योग कहलावेगा। विकृति रूप के आठ भेद हैं—जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दंड, रथ, धन। उ०—पढ़न लग्यो भैंसा तब वेदा। पद क्रम जटा क्रमहु बिन खेदा।—रघुराज। (५) वैदिक विधान। किस कृत्य के पीछे कौन सा कृत्य करना चाहिए इसकी व्यवस्था। कल्प। (६) आक्रमण। (७) बामन का एक नाम जिन्होंने पृथ्वी को तीन डगों में नापा था। (८) वह काव्यालंकार जिसमें प्रथमोक्त वस्तुओं का वर्णन क्रम से किया जाय। इसे यथासंख्यालंकार भी कहते हैं। उ०—नूतन घन हिम कनक कांतिधर। खगपति वृष मराल वाहन वर। सरितपती गिरि सरसिज आलय। हरि हर विधि जसवँत प्रतिपालय।

क्रमण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पैर। पाँव। (२) पारे के अठारह संस्कारों में से एक।

क्रमदंडक–संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के पाठ का एक प्रकार। यह विकृति रूप के आठ भेदों में से एक है।

क्रमनासा*–संज्ञा पुं० दे० "कर्मनाशा"।

क्रमपद–संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के पाठ का एक प्रकार।

क्रमपाठ–संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के पाठ का एक प्रकार जिसमें संहिता और पाद दोनों को मिला कर पाठ करते हैं।

क्रमपूरक–संज्ञा पुं० [सं०] बकुल वृक्ष। मौलसिरी का पेड़।

क्रमशः–क्रि० वि० [सं०] (१) क्रम से। सिलसिलेवार। (२) धीरे धीरे। थोड़ा थोड़ा करके।

क्रमसंन्यास–संज्ञा पुं० [सं०] वह संन्यास जो क्रम से ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, और वानप्रस्थ आश्रम में रह चुकने के बाद लिया जाय।

क्रमागत–वि० [सं०] (१) क्रमशः किसी रूप को प्राप्त। जो धीरे धीरे होता आया हो। (२) परंपरागत। जो परंपरा से होता आया हो।

क्रमानुकूल–क्रि० वि० [सं०] श्रेणी के अनुसार। नियमानुसार। क्रम के अनुसार। क्रम से। सिलसिलेवार।

क्रमानुसार–क्रि०वि० [सं०] क्रमशः। क्रमानुकूल।

क्रमान्वय–क्रि०वि० [सं०] क्रम से। एक के बाद एक।

क्रमि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कीड़ा। कृमि। (२) पेट का एक रोग जिसमें आँतों में छोटे छोटे सफ़ेद कीड़े पैदा हो जाते हैं। इन कीड़ों को चुन्ना वा चुनूना कहते हैं।

क्रमिक–क्रि० वि० [सं०] (१) क्रमयुक्त। क्रमागत। (२) परंपरागत।

क्रमुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुपारी का पेड़। उ०—घर घर तोरण विमल पताकै कंचन कुंभ धराए। क्रमुक रंभ के खंभ विराजत पथ जल सुरभि सिँचाए।—रघुराज। (२) नागर मोथा। (३) कपास का फल। (४) शहतूत का पेड़। (५) पठानी लोध। (६) एक प्राचीन देश का नाम।

क्रमेल, क्रमेलक–संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट। शुतुर।

क्रय–संज्ञा पुं० [सं०] मोल लेने की क्रिया। खरीदने का काम।

यौ०—क्रय विक्रय = ख़रीदने और बेचने की क्रिया। व्यापार।

क्रयविक्रयानुशय–संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार अठारह प्रकार के विवादों में से एक।

विशेष—दे० "क्रीतानुशय"।

क्रयारोह–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ खरीदने बेचने का काम होता हो। हाट। बाज़ार। मंडी।

क्रयी–संज्ञा पुं० [सं०] मोल लेनेवाला। खरीदनेवाला।

क्रय्य–वि० [सं०] जो बिक्री के लिये रखा जाय। जो चीज़ बेचने के लिये हो।

क्रव्य–संज्ञा पुं० [सं०] मांस। गोश्त।

क्रव्याद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मांस खानेवाला। वह जो मांस खाता हो। जैसे, राक्षस, गिद्ध, सिंह आदि। (२) वह आग जिससे शव जलाया जाता है। चिता की आग।

क्रांत–वि० [सं०] (१) दबा या ढका हुआ। जिसे कोई वस्तु ऊपर से आकर छेंके हो। जिसे कोई वस्तु ऊपर से छोपे हो। ग्रस्त। जिस पर आक्रमण हुआ हो। उ०—महाबली विक्रम विक्रांत क्रांत मंदरगिरि कीन्हे।—रघुराज।

यौ०—भाराक्रांत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) आगे बढ़ा हुआ। अतीत।

यौ०—सीमाक्रांत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

संज्ञा पुं० (१) घोड़ा। (२) पैर।

क्रांतदर्शी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। परमेश्वर। (२) त्रिकाल-दर्शी। सर्वज्ञ।

क्रांति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डग भरने की क्रिया। क़दम रखना। गति। एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन। (२) खगोल में वह कल्पित वृत्त जिस पर सूर्य्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता जान पड़ता है।

पर्य्या०—अपमंडल। अपवृत्त। अपक्रम। अपम।

यौ०—क्रांतिक्षेत्र। क्रांतिज्या। क्रांतिपात। क्रांतिभाग। क्रांतिमंडल। क्रांतिमाला। क्रांतिवलय। क्रांतिवृत्त।

(३) खगोलीय नाड़ीमंडल से किसी नक्षत्र की दूरी। (४) एक दशा से दूसरी दशा में परिवर्त्तन। फेरफार। उलटफेर। जैसे, राज्यक्रांति।

क्रांतिक्षेत्र–संज्ञा पुं० [सं०] गणित में वह क्षेत्र जो क्रांति निकालने के लिये बनाया जाय।

क्रांतिज्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रांतिवृत्त क्षेत्र में अक्ष क्षेत्र का एक अंग। दे० "ज्या"।

क्रांतिपात–संज्ञा पुं० [सं०] वे विंदु जिन पर क्रांतिवलय और खगोलीय विषुवत् की रेखाएँ एक दूसरे को काटती हैं।

विशेष—इन विंदुओं पर जब पृथ्वी आती है तब रात और दिन बराबर होता है।

क्रांतिभाग–संज्ञा पुं० [सं०] खगोलीय नाड़ीमंडल से क्रांति-मंडल के किसी विंदु की दूरी।

क्रांतिमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिस पर सूर्य्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता जान पड़ता है।

क्रांतिवृत्त–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्य का मार्ग। क्रांति।

क्रांतिसाम्य–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में ग्रहों की तुल्यक्रांति।

विशेष—यद्यपि सब ग्रहों की तुल्यक्रांति होती है पर सूर्य्य चंद्र के क्रांतिसाम्य में मंगल कार्य्य वर्जित है।

क्राइस्ट–संज्ञा पुं० [अं०] ईसा मसीह।

क्राउन–संज्ञा पुं० [अं०] (१) राजमुकुट। ताज। (२) छापे के कागज़ की एक नाप जो १५ इंच चौड़ी और २० इंच लंबी होती है।

यौ०—डबल क्राउन = क्राउन से दूना, ३० इंच लंबा और २० इंच चौड़ा।

क्राथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंसा करना। (२) एक नाग का नाम। (३) एक बंदर का नाम जिसने राम रावण के युद्ध में सेनापति का काम किया था। (४) एक राजा का नाम जो बाहुग्रह के अवतार माने जाते हैं। उ०—चल्यो क्राथ नर-नाथ माथ पर मुकुट मनोहर।—गोपाल। (५) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

क्रिकेट–संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अँग्रेज़ी ढंग का गेंद का खेल जो ग्यारह ग्यारह आदमियों के दो पक्षों में खेला जाता है। गेंद बल्ला।

यौ०—क्रिकेट बैट = क्रिकेट खेलने का बल्ला।

क्रिचयन†–संज्ञा पुं० [सं० कृच्छ्रचांद्रायण] चांद्रायण व्रत।

क्रिमि–संज्ञा० पुं० [सं०] (१) कीड़ी। कीट। (२) पेट का एक रोग।

विशेष—दे० "कृमि"।

क्रिमिकोंड़–संज्ञा० पुं० [सं०] चोल देश के एक राजा का नाम। यह कट्टर शैव था और इसने अपने देश के सब पंडितों से लिखवा लिया था कि शिव सर्वोत्कृष्ट देवता हैं। इसने रामानुज स्वामी को क़ैद भी करना चाहा था, पर सफलता न हुई।

क्रिमिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाह। लाख।

क्रिमिभक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

क्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] मेष राशि।

क्रियमाण–वि० [सं०] (१) जो किया जा रहा हो। जो हो रहा हो। (२) कर्म के चार भेदों में से एक। दे० "कर्म"।

क्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी प्रकार का व्यापार। किसी काम का होना या किया जाना। कर्म। (२) प्रयत्न। चेष्टा। हिलना डोलना। (३) अनुष्ठान। आरंभ। (४) व्याकरण का वह अंग जिससे किसी व्यापार का होना या करना पाया जय जैसे, आना, जाना, मारना इत्यादि। (५) शौच आदि कर्म। नित्यकर्म। स्नान, संध्या, तर्पण आदि कृत्य। उ०—प्रात क्रिया करि गे गुरु पाहीं। महा प्रमोद प्रेम मन माहीं।—तुलसी। (६) श्राद्ध आदि प्रेत कर्म। उ०—अविरल भगति माँगि वर गीध गयउ हरिधाम। तेहि की क्रिया यथोचित निज कर कीन्हीं राम।—तुलसी।

यौ०—क्रिया कर्म = मृतक कर्म। अंत्येष्टि क्रिया।

(७) प्रायश्चित आदि कर्म। (८) उपाय। उपचार। चिकित्सा। (९) न्याय वा विचार का साधन। मुक़दमे की कार्रवाई।

क्रियाकांड—संज्ञा पुं० [सं०] कर्मकांड। वेदशास्त्र जिसमें यज्ञादि का विधान हो।

क्रियाचतुर—संज्ञा पुं० [सं०] शृंगार रस में नायक का एक भेद। वह नायक जो क्रिया या घात में चतुर हो और उसकी सहायता से प्रीति-कार्य्य साधे।

क्रियातिपत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें प्रकृत से भिन्न कल्पना करके किसी विषय का वर्णन किया जाय। जैसे, मन्मथ यदि सहस्र दृग धारिहैं। तुव सुंदरता निर्णय करिहैं।

विशेष—कुछ लोग इसे अतिशयोक्ति का एक भेद और कुछ लोग संभावना अलंकार के अंतर्गत मानते हैं।

क्रियाद्वेषी—संज्ञा पुं० [सं० क्रियाद्वेषिन्] धर्मशास्त्र में वह प्रतिवादी जो साक्षी और प्रमाण आदि को न माने।

विशेष—ऐसा प्रतिवादी पाँच प्रकार के हीन प्रतिवादियों में माना गया है।

क्रियानिष्ठ—वि० [सं०] स्नान, संध्या, तर्पण आदि नित्य कर्म करनेवाला।

क्रियापंथ—संज्ञा पुं० [सं०] कर्मकांड। उ०—क्रियापंथ श्रुति ने जो भाष्यो सो सब असुर मिटायो। वृहद्भानु ह्वै कै हरि-प्रगटे क्षण में फिरि प्रगटायो।—सूर।

क्रियापाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शैवदर्शन के अनुसार विद्यापाद आदि चार पादों में से दूसरा पाद, जिसमें दीक्षा विधि का अंग और उपांग सहित प्रदर्शन हो। (२) धर्मशास्त्र के अनुसार व्यवहार (मुक़दमे) के चार पादों वा विभागों में से एक जिसमें वादी के कथन और प्रतिवादी के उत्तर लिखाने के उपरांत वादी अपने कथन वा दावे का प्रमाण आदि उपस्थित करता है। दे० "व्यवहार"।

क्रियाफल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेदांत परिभाषा में कर्म के चार फल वा परिणाम, अर्थात् उत्पत्ति, आप्ति, विकृति और संस्कृति।

विशेष—मीमांसा में गुणकर्म वा उसके फल के भी ये ही चार भेद किए गए हैं।

(२) यज्ञादि कर्म से होनेवाला फल वा पुण्य।

क्रियाभ्युपगम—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार किसी दूसरे का खेत इस शर्त पर जोतने के लिये लेना कि उसमें जो अनाज उत्पन्न हो वह खेत का मालिक और जोतनेवाला दोनों आधा आधा बाँट लें। अधिया।

क्रियामातृकादोष—संज्ञा पुं० [सं०] बालकों का एक रोग जिसमें उन्हें जन्म से दसवें दिन, मास या वर्ष ज्वर, कंप और अधिक मल मूत्र होता है।

क्रियायोग—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणों के अनुसार देवताओं की पूजा करना और मंदिर आदि बनवाना।

क्रियार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वेद में यज्ञादि कर्म का प्रतिपादक विधि वाक्य।

विशेष—मीमांसा ने ऐसे ही वाक्य को प्रमाण माना है।

क्रियालक्षणयोग—संज्ञा पुं० [सं०] जप और ध्यानादि द्वारा आत्मा और ईश्वर का संबंध स्थापित करना।

क्रियावसन्न—संज्ञा पुं० [सं०] वह वादी जो साक्षी या प्रमाण न देने के कारण हार जाय।

क्रियावान्—वि० [सं०] कर्मप्रवृत्त। कर्मनिष्ठ। कर्मठ।

क्रियाविदग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो नायक पर किसी क्रिया द्वारा अपना भाव प्रगट करे।

क्रियाविशेषण—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण के अनुसार वह शब्द जिससे क्रिया के किसी विशेष काल, भाव या रीति आदि का बोध हो। जैसे, अब, तब, यहाँ, वहाँ, क्रमशः, अचानक, इत्यादि। जैसे—(क) वह धीरे धीरे चलता है। (ख) वह अब जायगा।

क्रियाशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वर से उत्पन्न वह शक्ति जिससे ब्रम्हांड की सृष्टि का होना माना जाता है। सांख्य में इसी को प्रकृति और वेदांत में माया कहा है।

क्रियाशून्य—वि० [सं०] कर्महीन।

क्रियास्नान—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र के अनुसार स्नान की एक विधि जिसके अनुसार स्नान करने से तीर्थस्नान का फल होता है।

क्रिस्टल—संज्ञा पुं० [अं०] (१) स्फटिक। बिल्लौर। (२) शोरे आदि का जमा हुआ रवादार टुकड़ा। कलम।

क्रिस्टान—संज्ञा पुं० दे० "क्रिस्तान"।

क्रिस्तान—संज्ञा पुं० [अं० क्रिश्चियन] ईसाई। ईसा के मत पर चलनेवाला।

क्रिस्तानी—वि० [हिं० क्रिस्तान + ई (प्रत्य०)] ईसाइयों का। ईसाई मत के अनुसार।

क्रीट*†—संज्ञा पुं० [सं० किरीट] किरीट नाम का शिरोभूषण। उ०—क्रीट मुकुट शोभा बनी शुभ अंग बनी बनमाल। सूरदास प्रभु गोकुल जनमे, मोहन मदन गोपाल।—सूर।

क्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कल्लोल। केलि। आमोद प्रमोद। खेल कूद। (२) ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक। जिस ताल में केवल एक प्लुत हो उसे क्रीड़ा ताल कहते हैं। (संगीत)। (३) एक वृत्त का नाम। इसके प्रत्येक चरण में एक यगण और एक गुरु होता है। (।ऽऽ + ऽ) उ०—युगै चारो। हरी तारो। करै क्रीड़ा। रखै व्रीड़ा।

क्रीड़ाचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] छः यगण का एक वृत्त। इसका दूसरा नाम महामोदकारी वृत्त है। उ०—यचौ यो यशोदा जु को लाडिला जो कलापूर्णधारी। जिन्हीं भक्त गावैं सदा चित्त लाये खरारी पुकारी। यही पूरवैगो सबै लालसा तो लला देवकी को। करै गाथ जाको महा मोदकारी सबै काव्य नीको।

क्रीड़ावन–संज्ञा पुं० [सं०] पाईं बाग । नज़र बाग ।

क्रीड़ारथ–संज्ञा पुं० [सं०] फूलों का रथ ।

क्रीड़ाशैल–संज्ञा पुं० [सं०] बनावटी पर्वत । नकली पहाड़ । उ०—क्रीड़ा गिरि ते अलिन की अवली चली प्रकाश ।—केशव ।

क्रीत–वि० [सं०] क्रय किया हुआ । खरीदा या मोल लिया हुआ ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनु के अनुसार बारह प्रकार के पुत्रों में से एक, जो मोल लिया गया हो । क्रीतक । (२) पंद्रह प्रकार के दासों में से एक जो मोल लिया गया हो ।

*† संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्त्ति] यश । कीर्त्ति । सुनाम । उ० सुनौ धौं दै कान अपनी लोक लोकनि क्रीति । सूर प्रभु अपनी खचाई रही बिगमनि जीति ।—सूर ।

क्रीतक–संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार बारह प्रकार के पुत्रों में से एक, जो माता पिता को धन देकर उनसे खरीदा गया हो । ऐसे पुत्र का केवल अपने मोल लेनेवाले की संपत्ति के अतिरिक्त पैतृक संपत्ति पर किसी प्रकार का अधिकार नहीं होता । आज कल इस प्रकार का पुत्र बनाने का विधान नहीं है ।

क्रीतानुशय–संज्ञा पुं० [सं०] धर्म्मशास्त्र के अनुसार अठारह प्रकार के विवादों में से एक । जब कोई मनुष्य किसी चीज़ को मोल लेने के बाद, नियमों के विरुद्ध, उसे फेरना चाहता है तो उस समय जो विवाद उपस्थित होता है उसे क्रीतानुशय कहते हैं ।

क्रुद्ध–वि० [सं०] कोपयुक्त । क्रोध में भरा हुआ ।

क्रुमुक–संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी ।

क्रुश्वा–संज्ञा पुं० [सं०] श्रृगाल । सियार । गीदड़ ।

क्रूर–वि० [सं०] [स्त्री० क्रूरा] (१) पर पीड़क । दूसरों को कष्ट पहुँचानेवाला । (२) निष्ठुर । निर्दयी । ज़ालिम । (३) कठिन । (४) तीक्ष्ण । तीखा । (५) उष्ण । गरम । (६) नीच । बुरा । खराब । (७) घोर । (डिं०)

संज्ञा पुं० [सं०] (१) पका हुआ चावल । भात । (२) लाल कनेर । (३) बाज पक्षी । (४) सफेद चील । कंक । (५) भूतांकुश । गावज़ुबाँ । (६) ज्योतिष में विषम (पहली, तीसरी पाँचवी, सातवीं, नवीं और ग्यारहवीं) राशियां । (७) रवि, मंगल, शनि, राहु और केतु ये पाँच ग्रह, जिन्हें पापग्रह भी कहते हैं । जिस राशि में कोई पापग्रह हो, उस में यदि कोई शुभग्रह आ जाय तो वह भी क्रूर कहलाता है । पाराशर के मत से लग्न से तीसरे, छठे या ग्यारहवें घर का स्वामी—चाहे जो ग्रह हो—क्रूर या पापग्रह कहलाता है । क्रूर ग्रह-युक्त तिथि या नक्षत्र में यात्रा या विवाह आदि शुभ कर्म्म वर्जित हैं ।

क्रूरकर्मा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रूर काम करनेवाला । (२) तितलौकी का पेड़ । (३) सूरजमुखी । अर्कपुष्पी ।

क्रूरकोष्ठ–वि० [सं०] जिसका कोठा बहुत कड़ा हो । जिसका पेट कड़ी दस्तावर दवाओं से भी साफ़ न हो ।

क्रूरगंध–संज्ञा पुं० [सं०] गंधक ।

क्रूरग्रह–संज्ञा पुं० दे० "क्रूर (६) और (७)" ।

क्रूरता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निष्ठुरता । निर्दयता । कठोरता । (२) दुष्टता ।

क्रूरदंती–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम ।

क्रूरदृक्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनिग्रह । (२) मंगल ग्रह । (३) दुष्ट । खल ।

क्रूरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लाल फूल की गदहपूर्ना । (२) कौड़ी ।

वि० स्त्री० क्रूर स्वभाववाली ।

क्रूरात्मा–वि० [सं०] दुष्ट प्रकृति । दुःस्वभाव ।

क्रूस–संज्ञा पुं० [अं० क्रास] ईसाइयों का एक प्रकार का धर्म्म-चिह्न जिसका आकार त्रिशूल से मिलता जुलता होता है और जिस में दो रेखाएँ एक दूसरे को काटती हुई होती हैं । यह कई प्रकार का होता है । जैसे—†, +, ×, T । सलीब ।

विशेष—इस चिह्न का अभिप्राय उस सूली से है जो ईसा के मारने के लिये खड़ी की गई थी और जिसका आकार † था । उन दिनों रोमन लोग इसी प्रकार की सूली पर अपराधियों को चढ़ाते थे ।

क्रेता–संज्ञा पुं० [सं०] खरीदनेवाला । मोल लेनेवाला । खरीददार ।

क्रैडिन–संज्ञा पुं० [सं०] साकमेध यज्ञ का एक हवि जो मरुत देवता के उद्देश्य से दिया जाता है ।

क्रैडिनीया–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ ।

क्रौंच–संज्ञा पुं० [सं०] क्रौंच पर्वत ।

क्रोड़–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आलिंगन में दोनों बाहों के बीच का भाग । भुजांतर । वक्षःस्थल । (२) गोद । अँकवार । कोल । (३) सुअर । (४) शनिग्रह । (५) वाराही कंद ।

क्रोड़चूड़ा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी गोरखमुंडी ।

क्रोड़पत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो किसी पुस्तक या समाचार-पत्र में उसकी पूर्त्ति के लिये ऊपर से लगाया जाय । अतिरिक्त पत्र । पूरक । ज़मीमा ।

क्रोड़पर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भटकटैया । कटेरी ।

क्रोड़ेष्टा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मोथा ।

क्रोध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्त का वह तीव्र उद्वेग जो किसी अनुचित और हानिकारक कार्य्य को होते हुए देख कर उत्पन्न होता है और जिसमें उस हानिकारक कार्य्य करनेवाले से बदला लेने की इच्छा होती है । कोप । रोष । गुस्सा ।

विशेष—वैशेषिक में क्रोध को द्वेष का एक भेद माना है और उसे द्रोह आदि की अपेक्षा शीघ्र नष्ट होजानेवाला कहा है। भगवद्गीता के अनुसार जो अभिलाषा पूरी नहीं होती है वही रजोगुण के कारण बदल कर "क्रोध" बन जाती है। पुराणानुसार यह शरीरस्थ दुष्ट शत्रुओं में से एक है। साहित्य में इसे रौद्र रस का स्थायी भाव माना है।

पर्य्या०—अमर्ष। प्रतिघ। भीम। क्रुधा। रुषा। क्रुत।

(२) साठ संवत्सरों में से उनसठवाँ संवत्सर। इस संवत्सर में आकुलता और क्रोध की वृद्धि होती है। (ज्योतिष)।

क्रोधज–संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध से उत्पन्न। मोह।

क्रोधन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोप करनेवाला। क्रोधी। (२) कौशिक के एक पुत्र का नाम जो गर्ग मुनि के शिष्य थे। (३) अयुत के पुत्र और देवातिथि के पिता का नाम। (४) क्रोध नामक संवत्सर।

क्रोध भवन–संज्ञा पुं० [सं०] कोप भवन।

क्रोधवंत–वि० [हिं० क्रोध + वंत = वाला] कुपित। गुस्से में भरा हुआ। उ०—मांडव्य धर्मराज पै आयो। क्रोधवंत यह बचन सुनायो।—सूर।

क्रोधवश–क्रि० वि० [सं०] क्रोधवशात्। क्रोध में। जैसे—उसने क्रोधवश ऐसा कहा।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राक्षस का नाम। (२) काद्रवेय नामक साँपों में से एक।

क्रोधवशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष प्रजापति की एक कन्या और कश्यप प्रजापति की आठ पत्नियों में से एक।

क्रोधित*–वि० [हिं० क्रोध] कुपित। क्रुद्ध। क्रोधयुक्त।

क्रोधी–वि० [सं०] [स्त्री० क्रोधिनी] क्रोध करनेवाला। गुस्सावर।

संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध नामक संवत्सर।

संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँधार की दो श्रुतियों में से अंतिम श्रुति। (संगीत)।

क्रोश–संज्ञा पुं० [सं०] कोस।

क्रोशताल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा आनद्ध बाजा जिसे ढक्का कहते हैं।

क्रोष्टशीर्षक,क्रोष्टुशीर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें बात के कारण घुटनों में पीड़ा और सूजन होती है।

क्रौंच–संज्ञा पुं० [सं०] (१) करांकुल नामक पक्षी। (२) हिमालय के अंतर्गत एक पर्वत का नाम, जो पुराणानुसार, मैनाक का पुत्र है। (३) पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक। विष्णु पुराण के अनुसार यह द्वीप दधि मंडोद समुद्र से घिरा हुआ है और द्युतिमान् नामक राजा यहाँ का अधिपति था, पर भागवत के अनुसार यह क्षीरसागर से घिरा हुआ है और प्रियव्रत का पुत्र घृतपृष्ठ इसका राजा था। इस द्वीप के सात खंड या वर्ष हैं और प्रत्येक वर्ष में एक नदी और एक पहाड़ है। (४) एक राक्षस का नाम जो मय दानव का पुत्र था और जिसे क्रौंच द्वीप में स्कंद भगवान ने मारा था।

यौ०—क्रौंचसूदन। क्रौंचदारण = कार्त्तिकेय।

(५) अर्हतों की एक ध्वजा। (६) एक प्रकार का अस्त्र। उ०—अग्नि अस्त्र अरु पर्वतास्त्र पुनि त्यों पवनास्त्र प्रमाथी। शिरअस्त्र क्रौंच अस्त्रहु पुनि लेहु लषण के साथी।—रघुराज।

(७) एक वर्ण वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में भगण, मगण, सगण, भगण, चार नगण और अंत में एक गुरु (ऽ।। ऽऽऽ ।।ऽ ऽ।। ।।। ।।। ।।। ।।। ऽ) होता है। जैसे—भूमि सुभौना चौगुन राजै बसति सुमतियुत जहँ नर श्रुती। शील सनेहा और नय विद्या लखि तिन कर मन हरषत धरुती। पूत जहाँ है मानत माता जनक सहित नित अरचन करि कै। नारि सुशीला क्रौंच समाना पति वचननि सुन तिउ तन धरि कै।

क्रौंचपदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तीर्थ का नाम।

क्रौंचरंध्र–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत की एक घाटी का नाम। पुराणानुसार परशुराम ने क्रौंच पर्वत को एक तीर से छेद कर यह घाटी बनाई थी। ऐसा प्रसिद्ध है कि हंस इसी मार्ग से मानसरोवर जाते और वहाँ से आते हैं।

क्रौंचारुण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की व्यूह रचना।

क्रौंची–संज्ञा स्त्री० [सं०] कश्यप ऋषि की ताम्रा नामक पत्नी से उत्पन्न पाँच कन्याओं में से एक। यह उलूक पक्षियों की आदि माता थी।

क्लब–संज्ञा पुं० [अं०] साहित्य, विज्ञान, राजनीति, आदि सार्वजनिक विषयों पर विचार करने अथवा आमोद प्रमोद के लिये संगठित की हुई कुछ लोगों की समिति।

क्लमथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आयास। परिश्रम। मिहनत। (२) अधिक परिश्रम या आलस्य के कारण शरीर की थकावट या शिथिलता।

क्लर्क–संज्ञा पुं० [अं०] किसी कार्य्यालय का वह कर्म्मचारी जो पत्र व्यवहार करने, नकल करने तथा हिसाब आदि रखने का काम करता हो। मुंशी। लेखिया। मुहर्रिर।

क्लांत–वि० [सं०] थका हुआ। श्रांत।

क्लांति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) परिश्रम। (२) थकावट।

क्लाउन–संज्ञा पुं० [अं०] सरकस आदि का मसखरा।

क्लाक–संज्ञा स्त्री० [अं०] बड़ी घड़ी जो लकड़ी आदि के चौखटों में जड़ी होती है। यह प्रायः लंगर के सहारे चलती और घंटे आदि बजाती है। धरमघड़ी।

क्लारनेट–संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अँगरेज़ी बाजा जो मुँह से बजाया जाता है। यह शहनाई के आकार और प्रकार का पर उससे कुछ अधिक लंबा होता है।

क्लारेट–संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की विलायती शराब।

क्लास–संज्ञा पुं० [अं०] कक्षा। श्रेणी। दरजा। जमाअत।

क्लिप–संज्ञा स्त्री० [अं०] वह कमानी जो चिट्ठियों, काग़ज़ों आदि को एकत्र करके उनमें इसलिये लगा दी जाती है कि जिसमें वे इधर उधर न हो जाँय। यह सादी, पंजे के आकार की तथा और कई तरह की होती है। पंजा। चुटकी।

क्लिन्नवर्त्म–संज्ञा पुं० [सं०] क्लिष्टवर्त्म नामक आँख का रोग।

क्लिशित–वि० [सं०] जिसे बहुत क्लेश हुआ हो।

क्लिष्ट–वि० [सं०] (१) क्लेशयुक्त। क्लिशित। दुखी। दुःख से पीड़ित। (२) (बेमेल) बात। पूर्वापर विरुद्ध (वाक्य)। (३) कठिन। मुशकिल। जैसे, क्लिष्ट भाषा। क्लिष्ट शब्द। (४) जो कठिनता से सिद्ध हो। खींच तान का। जैसे, क्लिष्ट कल्पना।

क्लिष्टवर्त्म–संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें पलक में लाली और पीड़ा होती है। इस रोग में प्रायः अस्त्रचिकित्सा कराने की आवश्यकता हुआ करती है।

क्लिष्टता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) क्लिष्ट का भाव। (२) दे० "क्लिष्टत्व"।

क्लिष्टत्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्लिष्ट का भाव। कठिनता। क्लिष्टता। (२) अलंकार शास्त्र के अनुसार काव्य का वह दोष जिसके कारण उसका भाव समझने में कठिनता हो। जैसे, ग्रहपति सुत-हित-अनुचर को सुत जारत रहत हमेस।—सूर। यहाँ कवि ने सीधे यह न कह कर कि "काम सदा जलाया करता है" कहा है—ग्रहपति सूर्य्य के पुत्र सुग्रीव, उनके हित (मित्र) रामचंद्र, उनके अनुचर हनुमान, और उनका पुत्र मकरध्वज (काम) सदा जलाया करता है।

विशेष—यदि काव्य में किसी एक पद का अर्थ लगाने के लिये पहले या पीछे के दो तीन पदों तक जाना पड़े, अथवा उनके साथ उसका अन्वय करना पड़े तो वह भी "क्लिष्टत्व" दोष माना जाता है।

क्लिष्टा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पतंजलि के अनुसार वे चित्तवृत्तियां जिनसे आत्मा को कष्ट पहुँचता हो।

क्लीत–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार कीड़ों की एक जाति जिसकी उत्पत्ति मल मूत्र और सड़ी लाश आदि से होती है और जिनके काटने से पित्त कुपित होता है।

क्लीतकिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पेड़।

क्लीव–वि० पुं० [सं०] (१) षंड। नपुंसक। नामर्द। (२) डरपोक। कायर। कमहिम्मत।

क्लीवता–संज्ञा स्त्री० [सं०] क्लीव का भाव। दे० "नपुंसकता"।

क्लीवत्व–संज्ञा पुं० [सं०] नपुंसकता। हिजड़ापन। नामर्दी।

क्लेद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ओदापन। गीलापन। आर्द्रता। (२) पसीना।

क्लेदक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पसीना लानेवाला। शरीर में एक प्रकार का कफ़ जिससे पसीना उत्पन्न होता है। क्लेदन। (२) शरीर में दस प्रकार की अग्नि में से एक।

क्लेदन–संज्ञा पुं० (१) शरीर में पाँच प्रकार की श्लेष्माओं में से एक। यह आमाशय में उत्पन्न होती, वहीं रहती और भोजन पचाती है। शेष चारों श्लेष्माएँ भी इसी की सहायता से काम करती हैं। (२) पसीना लाने का कार्य्य।

क्लेदु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्र। (२) सन्निपात।

क्लेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुःख। कष्ट। व्यथा। वेदना।

क्रि० प्र०—उठाना।—देना।—पाना।—सहना।—भोगना।

विशेष—योग शास्त्रानुसार क्लेश के पाँच भेद हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। बौद्ध शास्त्रानुसार क्लेश दस हैं—लोभ, द्वेष, मोह, मान, दृष्टि, विचिकित्सा, स्थिति, उद्धव्य, अह्रीक और अनुत्ताप।

† (२) झगड़ा। लड़ाई। टंटा। जैसे—दिन रात क्लेश करना अच्छा नहीं।

क्रि० प्र०—मचाना।—करना।—रखना।

क्लेशित–वि० [सं०] जिसे क्लेश हो। दुःखित। पीड़ित।

क्लैव्य–संज्ञा पुं० [सं०] क्लीवता। नपुंसकता। हिजड़ापन।
वि० दे० "नपुंसकता"।

क्लोम–संज्ञा पुं० [सं०] दाहिनी ओर का फेफड़ा। फुप्फुस।

क्लोरोफार्म–संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रसिद्ध तरल ओषधि जिसमें एक विचित्र मीठी गंध होती है। इसका मुख्य उपयोग ऐसे रोगियों को अचेत करने के लिये होता है, जिनके शरीर पर भारी अस्त्र-चिकित्सा या इसी प्रकार की शरीर को बहुत अधिक वेदना पहुँचानेवाली कोई और चिकित्सा की जाती है। इसे सूँघते ही पहले कुछ हलका सा नशा होता है और थोड़ी देर में मनुष्य बिलकुल अचेत हो जाता है और गाढ़ी निद्रा में सोया हुआ मालूम होता है। यदि मात्रा अधिक हो जाय तो मनुष्य मर भी सकता है। यह देखने में स्वच्छ जल की तरह और भारी होता है और यदि खुला छोड़ दिया जाय तो शीघ्र उड़ जाता है। इसका स्वाद बहुत मीठा और भला मालूम होता है। खुले स्थान या प्रकाश में रखने से इसमें विकार उत्पन्न हो जाता है।

मुहा०—क्लोरोफ़ार्म देना = क्लोरोफ़ाम सुँघाना।

क्वचित्–क्रि० वि० [सं०] कोई ही। शायद ही कोई। बहुत कम।

क्वण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वीणा का शब्द। (२) घुँघरू का शब्द।

क्वथिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैद्यक में एक प्रकार का रसा जो घी में भूनी हुई हलदी को दूध में पकाने से बनता है। यह बहुत पाचक होता है। (२) एक प्रकार का आसव जो शहद से बनता है।

क्वाँचर†–संज्ञा पुं० [सं० कुचर] गरियार बैल। वह बैल जो काम करते करते बैठ जाय।
वि० दुर्बल। कमज़ोर।

क्वारंटाइन–संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ प्लेग या दूसरी छूत-वाली बीमारी के दिनों में रेल या जहाज़ के यात्री कुछ दिनों के लिये सरकार की ओर से रोक कर रखे जाते हैं।

क्वार†–संज्ञा पुं० दे० "कुआर"।

क्वाँरा†–वि० दे० "क्वारा"।

क्वाँरापन–संज्ञा पुं० दे० "क्वारापन"।

क्वाड–संज्ञा पुं० दे० "क्वाड्रेट"।

क्वाड्रेट–संज्ञा पुं० [अं०] छापे में सीसे का ढला हुआ चौकोर टुकड़ा जो कंपोज़ करने में खाली लाइन आदि भरने के काम में आता है। यह स्पेस से बड़ा और कोटेशन से छोटा होता है। इसकी चौड़ाई टाइप के बराबर और लंबाई १ एन्, से ४ एम् तक होती है। क्वाड।

क्वाथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी में उबाल कर ओषधियों का निकाला हुआ गाढ़ा रस। काढ़ा। जोशाँदा।

विशेष—जिस ओषधि का क्वाथ बनाना हो, उसे एक पल लेकर सोलह पल पानी में भिगोकर मिट्टी के बरतन में आग पर चढ़ा देते हैं और जब उसका आठवाँ अंश बाकी रह जाता है तब उतार लेते हैं। यदि ओषधि अधिक और तौल में एक कुड़व तक हो तो उसमें आठगुना जल और यदि एक कुड़व से अधिक हो तो उसमें चौगुना जल देना चाहिए और क्रम से, आधा और तीन चौथाई बच रहने पर उतार लेना चाहिए।

(२) व्यसन। (३) बहुत अधिक दुःख।

क्वाथोद्भव–संज्ञा पुं० [सं०] रसौत।

क्वारछल–संज्ञा पुं० [सं० कुमार, हिं० क्वारा + छल] क्वारापन।

मुहा०—क्वारछल उतारना = प्रथम समागम करना।

क्वारपत–संज्ञा पुं० दे० "क्वारछल" या "क्वारपन"।

क्वारपन–संज्ञा पुं० [हिं० क्वारा + पन (प्रत्य०)] क्वारापन। कुमारपन। क्वारा का भाव।

मुहा०—क्वारपन उतरना = विवाह होना। क्वारपन उतारना = प्रथम समागम करना। ब्रह्मचर्य्य खोना।

क्वारा–संज्ञा पुं०, वि० [सं० कुमार] [स्त्री० क्वारी] जिसका विवाह न हुआ हो। कुआरा। बिन व्याहा।

क्वारापन–संज्ञा पुं० दे० "क्वारपन"।

क्वार्टरमास्टर–संज्ञा० पुं० [अं०] (१) एक फौज़ी अफसर जिसका पद लेफ्टनेंट के बराबर समझा जाता है और जिसका काम सैनिकों के लिये स्थान, भोजन और वस्त्र आदि आवश्यक सामग्रियों का प्रबंध करना है। (२) जहाज़ का एक अफसर जो रंगीन झंडी, लालटेन या अन्य संकेत दिखला कर मल्लाहों को जहाज़ चलाने में सहायता देता और उन्हें समुद्र की गहराई और दिशा आदि बतलाता है। कोटमास्टर।

क्वासि–वाक्य [सं०] तू कहाँ है ? तू किस स्थान पर है ? उ०—चलौ किन मानिनि कुंज कुटीर। तुव बिन कुँवर कोटि बनिता तज सहत मदन की पीर। गद्गद सुर पुलकित विरहा-नल श्रवत विलोचन नीर। क्वासि क्वासि वृषभानुनंदिनी विलपत विपिन अधीर।—सूर।

क्विनाइन–संज्ञा पुं० [अं०] कुनैन।

क्विल–संज्ञा पुं० [अं०] कुछ विशिष्ट पक्षियों के डैनों का पर जो लिखने के लिये कलम बनाने के काम आता है।

क्वीन–संज्ञा स्त्री० [अं०] महारानी। राजमहिषी। मलका।

क्वैलारी–संज्ञा स्त्री० दे० "कोइलारी"।

क्षंतव्य–वि० [सं०] क्षमा करने के योग्य। क्षम्य।

क्षंता–वि० [सं०] क्षमाशील। क्षमा करनेवाला।

क्षण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० क्षणिक] (१) काल या समय का एक बहुत छोटा भाग।

मुहा०—क्षण मात्र = थोड़ी देर।

विशेष—क्षण की मात्रा के विषय में बहुत मत भेद है। महा-भाष्यकार पतंजलि के मत से काल का वह छोटा भाग, जिसके टुकड़े या विभाग न हो सकें, क्षण है। उनके मतानुसार क्षण का काल के साथ वही संबंध है जो परमाणु का द्रव्य के साथ है। किसी के मत से पल या निमिष का चतुर्थांश, और किसी के मत से दो दंड या मुहूर्त्त एक क्षण के बराबर है। अमर के अनुसार तीस कला या मुहूर्त के बारहवें भाग का एक क्षण होता है। पर न्याय के मत से महाकाल नित्य द्रव्य है और उसके भाग या अंश नहीं हो सकते, इसलिये क्षण कोई अलग पदार्थ नहीं है।

(२) काल। (३) अवसर। मौका। (४) समय। वक्त। (५) उत्सव।

क्षणद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। (२) ज्योतिषी। (३) वह जिसे रात को दिखाई न पड़ता हो।

क्षणदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात्रि। रात। (२) हल्दी।

क्षणदाकर–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

क्षणद्युति–संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजली।

क्षणप्रभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली। विद्युत्।

क्षणभंग–संज्ञा पुं० [सं०] एक बौद्ध सिद्धांत जिसमें वस्तुओं की स्थिति एक क्षण की मानी गई है। इसे क्षणिकवाद भी कहते हैं।

विशेष—दे० "क्षणिकवाद"।

वि० [सं० क्षणभंगुर] क्षण भर में नाश होनेवाला। अनित्य। नाशवान्। उ०—समर मरण पुनि सुरसर तीरा। राम काज क्षणभंगु शरीरा।—तुलसी।

क्षणभंगुर–वि० [सं०] शीघ्र नष्ट होनेवाला। क्षण भर में नाश होनेवाला। अनित्य। उ०—सुख संपति दारा सुत हय गय

हठै सबै समुदाय। क्षणभंगुर ए सबै श्याम बिनु अंत नाहिँ सँग जाय।—सूर।

क्षणिक—वि० [सं०] एक क्षण रहनेवाला। क्षणभंगुर। अनित्य। संज्ञा पुं० [सं०] क्षणिकवाद।

क्षणिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षणिक का भाव। क्षणभंगुरता।

क्षणिकवाद—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों का एक सिद्धांत जिसमें प्रत्येक वस्तु को उसकी उत्पत्ति से दूसरे क्षण में नष्ट हो जानेवाला मानते हैं। इस मत के अनुसार प्रत्येक वस्तु में प्रति क्षण कुछ न कुछ परिवर्त्तन होता रहता है और उसकी अवस्था या स्थिति बदल जाती है। इस सिद्धांत में सब पदार्थों को अनित्य मातते हैं। इसे क्षणिक या क्षणभंग भी कहते हैं।

क्षणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली। विद्युत्।

क्षणिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात।

क्षत—वि० [सं०] जिसे क्षति या आघात पहुंचा हो। जो किसी प्रकार टूटा फूटा या चीरा फाड़ा हो।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) घाव। ज़ख्म। (२) व्रण। फ़ोड़ा। (३) एक प्रकार का फोड़ा जो गिरने, दौड़ने या किसी प्रकार का क्रूर कर्म्म करने से हृदय में हो जाता है। इसमें रोगी को ज्वर आता है और खाँसने से मुँह से रक्त निकलता है। (४) मारना। काटना। (५) क्षति या आघात पहुंचाना।

क्षतघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] कुकरौंधा।

क्षतघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाख। लाह।

क्षतज—वि० [सं०] (१) क्षत से उत्पन्न।—जैसे क्षतज शोथ, क्षतज विद्रधि। (२) लाल। सुर्ख। उ०—क्षतज नयन उर बाहु विशाला। हिमगिरि निभ तनु कछु इक लाला।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) रक्त। रुधिर। ख़ून। (२) मवाद। पीब। (३) एक प्रकार की खाँसी जो क्षत रोग में होती है। इसमें खखार के साथ रुधिर निकलता है और शरीर के जोड़ों में पीड़ा होती है। (४) सात प्रकार की प्यास में से एक जो शरीर में शस्त्रों का घाव लगने या बहुत अधिक रक्त निकल जाने के कारण लगती है। यह प्यास शरीर पर गीला कपड़ा लपेटने से बुझती है।

क्षतयोनि—वि० [सं०] जिस स्त्री का पुरुष के साथ समागम हो चुका हो।

क्षत विक्षत—वि० [सं०] (१) जिसे बहुत चोटें लगी हों। घायल। लहूलुहान। (२) जिसे बहुत आघात पहुँचा हो। जो बहुत नष्ट भ्रष्ट किया गया हो।

क्षतव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में छः प्रकार के फोड़ों में से एक। किसी स्थान के कटने या उसपर चोट लगने के बाद, उस स्थान के पक जाने को क्षतव्रण कहते हैं।

क्षतव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] अवकीर्ण व्रत।

क्षतहर—संज्ञा पुं० [सं०] अगर का पेड़।

क्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जिसका विवाह से पहले ही किसी पुरुष से दूषित संबंध हो चुका हो।

क्षताशौच—संज्ञा पुं० [सं०] वह अशौच जो किसी मनुष्य को घायल या ज़ख्मी होने के कारण लगता है। इस अशौच में मनुष्य किसी प्रकार का श्रौत या स्मार्त्त कार्य्य नहीं कर सकता।

क्षति—संज्ञा स्त्री० [सं०] हानि। नुकसान। क्षय। नाश।

क्रि० प्र०—करना।—पहुँचना।—पहुँचाना।—होना।

क्षतोदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उदर रोग जिसमें अन्न के साथ रेत, तिनका, लकड़ी, हड्डी या काँटा आदि पेट में उतर जाने, अधिक जँभाई आने या कम भोजन करने के कारण आँतें छिद जाती हैं और उनमें से जल रस कर गुदा के मार्ग से निकलता है। इसे परिस्राव्युदर भी कहते हैं।

क्षत्ता—संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वारपाल। दरबान। (२) मछली। (३) नियोग करनेवाला पुरुष। (४) दासीपुत्र। (५) वह वर्णसंकर जिसकी उत्पत्ति क्षत्रिया माता और शूद्र पिता से हो।

क्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बल। (२) राष्ट्र। (३) धन। (४) शरीर। (५) जल। (६) तगर का पेड़।

[स्त्री० क्षत्रानी] क्षत्रिय।

क्षत्रकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियोचित कर्म। वह कर्म जिसका करना क्षत्रियों के लिये आवश्यक हो। जैसे, युद्ध से कभी न हटना, यथाशक्ति दान देना, शत्रुओं को दमन करना, इत्यादि।

क्षत्रधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों का धर्म। यथा, अध्ययन, दान, यज्ञ, और प्रजापालन करना, विषय वासनाओं से दूर रहना, आदि।

क्षत्रधर्मा—वि० [सं०] (१) क्षत्रियों के धर्म को पालन करनेवाला। (२) वीर। योद्धा।

क्षत्रधृति—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो सावन की पूर्णिमा को किया जाता है।

क्षत्रप—संज्ञा पुं० [सं० या पु० फा०] ईरान के प्राचीन मांडलिक राजाओं की उपाधि।

विशेष—आगे चलकर भारत के शक तथा गुजरात के एक प्राचीन वंश के राजाओं ने भी यह उपाधि धारण कर ली थी।

क्षत्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

क्षत्रबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] पतित, नाम मात्र का या कर्त्तव्य रहित क्षत्रिय।

क्षत्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक प्रकार का योग।

विशेष—दे० "राजयोग"।

क्षत्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षत्रियों की विद्या। धनुर्विद्या।

क्षत्रवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] मुचकुंद का पेड़।

क्षत्रवृद्ध, क्षत्रवृद्धि—संज्ञा पुं० [सं०] तेरहवें मनु के पुत्र का नाम।

क्षत्रवेद—संज्ञा पुं० [सं०] धनुर्वेद ।

क्षत्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ आदि जो केवल क्षत्रिय ही कर सकते हों जैसे अश्वमेध ।

क्षत्रांतक—संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम ।

क्षत्रिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ ।

क्षत्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० क्षत्रिया, क्षत्रानी] (१) हिंदुओं के चार वर्णों में से दूसरा वर्ण । इस वर्ण के लोगों का काम देश का शासन और शत्रुओं से उसकी रक्षा करना है । मनु के अनुसार इस वर्ण के लोगों का कर्त्तव्य वेदाध्ययन, प्रजा पालन, दान और यज्ञादि करना तथा विषय वासना से दूर रहना है । वशिष्ट जी ने इस वर्ण के लोगों का मुख्य धर्म्म अध्ययन, शास्त्राभ्यास और प्रजा पालन बतलाया है । वेद में इस वर्ण के लोगों की सृष्टि प्रजापति की बाहु से कही गई है । वेद में जिन क्षत्रिय वंशों के नाम हैं वे पुराणों में दिए हुए अथवा वर्त्तमान नामों से बिलकुल भिन्न हैं । पुराणों में क्षत्रियों के चंद्र और सूर्य्य केवल दो ही वंशों के नाम आए हैं । पीछे से इस वर्ण में अग्नि तथा और कई वंशों की सृष्टि हुई और शक आदि विदेशी लोग आकर मिल गए । आज कल इस वर्ण के बहुत से अवांतर भेद हो गए हैं । इस वर्ण के लोग प्रायः ठाकुर कहलाते हैं । (२) इस वर्ण का पुरुष । (३) राजा । (४) बल । शक्ति ।

क्षत्री—संज्ञा पुं० दे० "क्षत्रिय" ।

क्षदन—संज्ञा पुं० [सं०] दांत ।

क्षपणक—वि० [सं०] निर्लज्ज ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) नंगा रहनेवाला जैन यती । दिगंबर यती । (२) बौद्ध संन्यासी या भिक्षु । (३) एक कवि जो विक्रमादित्य के नौ रत्नों में से एक माना जाता है । इसने अनेकार्थध्वनिमंजरी नामक एक कोश बनाया था और उणादि सूत्र पर एक वृत्ति लिखी थी ।

क्षपांत—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभात । भोर ।

क्षपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात ।

यौ०—क्षपाकर । क्षपाचर ।

विशेष—"क्षपा" शब्द के अंत में पति या नाथ वाची शब्द जोड़ने से चंद्रमा वाची शब्द बनता है । जैसे क्षपाधिप, क्षपेश, क्षपाकर, आदि ।

(२) हल्दी ।

क्षपाकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) कपूर ।

क्षपाचर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० क्षपाचरी] निश्चर । राक्षस ।

क्षपाट—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस ।

क्षपानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । उ०—महामीचु दासी सदा पाँइ धोवै । प्रतीहार ह्वै कै कृपा शूर सोवै । क्षपानाथ लीन्हे रहै छत्र जाको । करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको ।—केशव । (२) कपूर ।

क्षपापति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) कपूर ।

क्षम—वि० [सं०] शक्त । योग्य । समर्थ । उपयुक्त ।

विशेष—हिंदी में यह शब्द केवल समस्त पद या यौगिक शब्द के अंत में आता है, जैसे, अक्षम, सक्षम, कार्य्यक्षम, आदि ।

संज्ञा पुं० [सं०] शक्ति । बल ।

क्षमणीय—वि० [सं०] क्षमा करने योग्य । माफ़ करने लायक़ ।

क्षमता—संज्ञा पुं० [सं०] योग्यता । सामर्थ्य । शक्ति ।

क्षमना*—क्रि० स० [हिं० क्षमा] क्षमा करना । माफ़ करना । उ०—(क) क्षम अपराध देवकी मेरो लिख्यो न मेट्यो जाई । मैं अपराध किये शिशु मारे कर जोरे बिललाई ।—सूर । (ख) क्षमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई । सुनिहैं बाल बचन मन लाई ।—तुलसी ।

क्षमनीय*—वि० [सं० क्षमणीय] क्षमणीय । क्षमा करने योग्य ।

वि० [सं० क्षम] बलवान । शक्तिशाली । उ०—अंतरिच्छ गच्छनीनि यच्छन सुलच्छनीनि अच्छी अच्छी अच्छनीनि छबि छमनीय है ।—केशव ।

क्षमवाना*—क्रि० स० [हिं० क्षमना] क्षमना का प्रेरणार्थक रूप । क्षमा कराना । माफ़ कराना । उ०—बहुरि बिधि जाय क्षमवाय कै रुद्र को विष्णु बिधि रुद्र तहँ तुरत आये ।—सूर ।

क्षमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चित्त की एक प्रकार की वृत्ति जिससे मनुष्य दूसरे द्वारा पहुँचाए हुए कष्ट को चुपचाप सह लेता है और उसके प्रतिकार या दंड की इच्छा नहीं करता । यह वृत्ति तितिक्षा के अंतर्गत मानी गई है । शांति । (२) सहिष्णुता । सहनशीलता । (३) खैर का पेड़ । (४) पृथिवी । (५) एक की संख्या । (६) वेत्रवती या बेतवा नदी का एक नाम । (७) दक्ष की एक कन्या का नाम । (८) दुर्गा का एक नाम । (९) ब्रह्मवैवर्त्त के अनुसार राधिका की एक सखी का नाम । (१०) तेरह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति का नाम जिसमें क्रम से दो नगण, एक जगण, एक तगण और अंत में एक गुरु (न न ज त गु) होता है और सातवें और छठे वर्ण पर यति होती है । जैसे—न निज तिगम सुभाव छाँड़ै खला । यद्यपि नित उठ पाव ताको फला । तिमि न सुजन समाज धारै क्षमा । जग जिनकर सुसाज नीती छमा । (११) चंद्रशेखर के अनुसार आर्य्याछंद का एक भेद जिसमें २२ गुरु और १३ लघु होते हैं ।

क्षमाई*—संज्ञा स्त्री० [हिं० क्षमा + ई] क्षमा करने की क्रिया । उ०—केवल चरण गिरयो उत धाई । करहु नाथ अपराध छमाई ।—रघुराज ।

क्षमादंश—संज्ञा पुं० [सं०] सहजन का पेड़ ।

क्षमाना*—क्रि० स० [हिं० क्षमना] क्षमना का प्रेरणार्थक रूप । क्षमा कराना । माफ़ कराना । उ०—संत जाय सिगरे सिर नाये । निज अपराध अगाध क्षमाये ।—रघुराज ।

*क्रि० स० [हिं० क्षमा] क्षमा करना । माफ़ करना । उ०—तब हरि उनके दोष छमाये ।—सूर ।

क्षमापन*†–संज्ञा पुं० [हिं० क्षमा + पन] (१) क्षमा करने का काम । माफ़ी । (२) माफ़ कराने का काम । उ०—(क) इस नगर को परित्याग कर दूसरी ठौर इससे उत्तम रीति से कालयापन करें और परमेश्वर से स्वापराध क्षमापन के लिये प्रयत्न करें ।—हरिश्चंद्र । (ख) सकल जाय ताके पद परहू । निज अपराध क्षमापन करहू ।—रघुराज ।

क्षमालु–वि० [सं०] क्षमाशील । क्षमावान् ।

क्षमावना*–क्रि० स० [हिं० क्षमना का प्रे०] क्षमा कराना । माफ़ कराना । उ०—(क) परी पाँइ अपराध क्षमावत सुनत मिलैगी धाय । सुनत बचन दूतिका बदन ते श्याम चले अकुलाय ।—सूर । (ख) कह्यौ कौन कीन्ह्यौं अपराधा । काह क्षमावहु केहि की बाधा ।—रघुराज ।

क्षमावान्–वि० पुं० [सं० क्षमावत्] [स्त्री० क्षमावती] (१) क्षमा करनेवाला । माफ़ करनेवाला । (२) सहनशील । सहिष्णु । गमखोर ।

क्षमाशील–वि० [सं०] (१) माफ़ करनेवाला । क्षमावान् । (२) शांतप्रकृति ।

क्षमाष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्दश ताल का एक भेद । (संगीत) ।

क्षमितव्य–वि० [सं०] क्षमा करने योग्य । जो क्षमा किया जा सके ।

क्षमी–वि० [सं० क्षमा + ई० (प्रत्य०)] (१) क्षमाशील । क्षमावान् । माफ़ करनेवाला । उ०—सुर हरि भक्त असुर हरि द्रोही । सुर अति क्षमी असुर अति कोही ।—सूर । (२) शांतप्रकृति ।

वि० [क्षम = समर्थ] समर्थ । सशक्त । उ०—मदन बदन लेत लाज को सदन देखि, यदपि जगत जीव मोहिबे को है क्षमी ।—केशव ।

क्षम्य–वि० [सं०] माफ़ करने योग्य । जो क्षमा किया जाय ।

क्षयंकर–वि० [सं०] नाशक । नाश करनेवाला । क्षयकारी ।

क्षय–संज्ञा पुं० [सं०] [भाव० क्षयित्व] (१) धीरे धीरे घटना । ह्रास । अपचय । (२) प्रलय । कल्पांत । (३) नाश । (४) घर । मकान । (५) निवास-स्थान । रहने की जगह । (६) यक्ष्मा नामक रोग । क्षयी । (७) रोग । बीमारी । (८) अंत । समाप्ति । (९) नीति शास्त्र के अनुसार राजा के कृषि, बस्ती, दुर्ग, सेतु, हस्तिबंधन, खान, करग्रहण और सेना के समूह (अष्टवर्ग) का ह्रास या नाश । (१०) साठ संवत्सरों में से अंतिम संवत्सर का नाम । यह वर्ष बहुत भयानक और उपद्रवकारी होता है । (११) ज्योतिष में एक प्रकार का मास जो शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरंभ हो कर अमावस्या तक रहता है । इस मास में दो संक्रांति होती हैं और इससे तीन मास पहले और तीन मास पीछे एक एक अधिमास पड़ता है । कार्तिक, अगहन और पूस के अतिरिक्त और कोई महीना क्षयमास नहीं हो सकता । सिद्धांत शिरोमणि के अनुसार यह मास प्रायः १४१ वर्ष के अंतर पर पड़ता है । इस मास में किसी प्रकार का मंगल-कार्य्य करना निषिद्ध है । कोई कोई इसे अहंस्पति भी कहते हैं ।

क्षयकास–संज्ञा पुं० [सं०] क्षयी रोग में होनेवाली खाँसी ।

क्षयतरु–संज्ञा पुं० [सं०] स्थाली का वृक्ष । बेलिया । पीपल* ।

क्षयथु–संज्ञा पुं० [सं०] खाँसी । कास ।

क्षयनाशिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती या डोडी का वृक्ष ।

क्षयपक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण पक्ष । अँधेरा पक्ष ।

क्षयवान्–वि० [सं० क्षयवत्] [स्त्री० क्षयवती] नाशवान् । नष्ट होनेवाला ।

क्षयित्व–संज्ञा पुं० [सं०] क्षय का भाव ।

क्षयिष्णु–वि० [सं०] क्षय होनेवाला । नष्ट होनेवाला ।

क्षयी–वि० [सं०] (१) क्षय होनेवाला । नष्ट होनेवाला । (२) क्षय-रोग-ग्रस्त । जिसे क्षय या यक्ष्मा रोग हो ।

संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा । (पुराणानुसार दक्ष के शाप से चंद्रमा को क्षय रोग हो गया था, इसीसे उसे क्षयी कहते हैं ।)

संज्ञा स्त्री० [सं० क्षय] एक प्रसिद्ध रोग जिसमें रोगी का फेफड़ा सड़ जाता और सारा शरीर धीरे धीरे गल जाता है । इसमें रोगी का शरीर गरम रहता है, उसे खाँसी आती है और उसके मुँह से बहुत बदबूदार कफ़ निकलता है जिसमें रक्त का भी कुछ अंश रहता है । धीरे धीरे इस रक्त की मात्रा बढ़ने लगती है और रोगी कभी कभी रक्त-वमन भी करता है । ऋग्वेद के एक सूक्त का नाम यक्ष्माघ्न है जिससे जाना जाता है कि वैदिक काल में इसका रोगी मंत्रों से झाड़ा जाता था । चरक ने इस रोग का कारण वेगावरोध, धातुक्षय, दुःसाहस और विषमभक्षण आदि बतलाया है । और सुश्रुत के मत से इन कारणों के अतिरिक्त बहुत अधिक या बहुत कम भोजन करने से भी इस रोग की उत्पत्ति होती है । वैद्य लोग इसे महापातकों का फल समझते हैं और ऐसे रोगी की चिकित्सा करने के पहले उससे प्रायश्चित्त करा लेते हैं । मनु जी ने इसे पुरुषानुक्रमिक बतलाया है और ऐसे रोगी के विवाह आदि संबंध का निषेध किया है । डाक्टरी मत से इस रोग की तीन अवस्थाएँ होती हैं । आरंभिक अवस्था में रोगी को सूखी खाँसी आती है, थकावट मालूम होती है, नाड़ी तेज़ चलती है और कभी कभी मुँह से कफ के साथ रक्त भी निकलता है । मध्यम अवस्था में खाँसी बढ़ जाती है, रात को ज्वर रहता है, अधिक पसीना होता है, शरीर में बल नहीं रह जाता, छाती और पसलियों में पीड़ा होती है, मुँह से कफ़ की पीली गाँठें निकलती हैं और दस्त आने लगता है । इस अवस्था के आरंभ में यदि चिकित्सा का ठीक प्रबंध हो जाय तो रोगी

बच सकता है। अंतिम अवस्था में रोगी का शरीर बिलकुल क्षीण हो जाता है और मुँह से अधिक रक्त निकलने लगता है। उस समय यह रोग बिलकुल असाध्य हो जाता है। यदि अधिक प्रयत्न किया जाय तो रोगी कुछ काल तक जी सकता है। यक्ष्मा। राजयक्ष्मा। क्षय। तपेदिक।

क्षय्य-वि० [सं०] क्षय होने के योग्य। जिसका क्षय हो सके।

क्षर-वि० [सं०] नाशवान्। नाश होनेवाला। चल।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। (२) मेघ। (३) जीवात्मा। (४) शरीर। (५) अज्ञान। (६) कार्य्य कारण रूप, वस्तु वा द्रव्य जिनका क्षण क्षण अवस्थांतर हुआ करता है।

क्षरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रस रस के चूना। स्राव होना। रसना। (२) झड़ना। (३) विकार प्राप्त होना। नाश वा क्षय होना। (४) छूटना।

क्षरपत्रा-संज्ञा स्त्री० दे० "क्षवपत्रा"।

क्षरी-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाकाल। बरसात।

क्षवक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपामार्ग। लटजीरा। (२) राई। (३) लाही।

क्षवकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] नकछिँकनी नामक पौधा।

क्षवथु-संज्ञा पुं० [सं०] नाक के ३१ प्रकार के रोगों में से एक प्रकार का रोग जिसमें छींकें बहुत अधिक आती हैं। सुश्रुत के अनुसार अधिक तीक्ष्ण और चरपरे पदार्थ सूँघने, सूर्य्य की ओर देखने और नाक में अधिक बत्ती आदि ठूँसने से उसके भीतर का मर्म्मस्थान दूषित हो जाता है और अधिक छींकें आने लगती हैं। इसी को क्षवथु कहते हैं।

क्षवपत्रा, क्षवपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रोणपुष्पी। गूमा।

विशेष—द्रोणपुष्पी की पत्ती सूँघने से छींक आती है, इसीलिये उसे क्षवपत्रा कहते हैं। कोई कोई इसे "क्षरपत्रा" भी कहते हैं।

क्षविका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बनभंटा जो देखने में भटकटैया से मिलता जुलता होता है। इसके पत्ते बैंगन के पत्ते से मिलते हैं और फल भटकटैया के समान पर उससे कुछ ही बड़े और चितकबरे होते हैं। यह खाने में कड़ुआ, चरपरा और गरम होता है और भटकटैया के समान ओषधियों में काम आता है। कटाई। बरहंटा।

पर्य्या०—सर्पतनु। पीततंडुला। पुत्रप्रदा। बहुफला। गोधिनी।

क्षांत-वि० [सं०] [स्त्री० क्षांता] (१) क्षमाशील। क्षमा करनेवाला। (२) सहनशील। सहिष्णु।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) उन सात व्याधों में से एक जिन्हें अपने गुरू गर्ग मुनि की गौएँ मार डालने के कारण शाप मिला था।

क्षांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहिष्णुता। सहनशीलता। (२) क्षमा।

क्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

क्षात्र-वि० [सं०] क्षत्रिय संबंधी। क्षत्रियों का। जैसे—क्षात्र धर्म। क्षात्रगुण, आदि।

संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियत्व। क्षत्री-पन।

क्षाम-वि० [सं०] [स्त्री० क्षामा] (१) क्षीण। कृश। दुबला पतला।

यौ०—क्षामोदरी = पतली कमरवाली (स्त्री)।

(२) दुर्बल। बलहीन। कमज़ोर। (३) अल्प। थोड़ा।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) क्षय। नाश।

क्षाम्य-वि० [सं०] क्षमणीय। क्षमा किए जाने योग्य।

क्षार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाहक, जारक, विस्फोटक या इसी प्रकार की और वानस्पत्य ओषधियों को जलाकर या खनिज पदार्थों को पानी में घोल और रसायनिक क्रिया द्वारा साफ़ करके तैयार की हुई राख का नमक। यह सूखा, साफ़, चमकीला, मैल काटनेवाला और कलम या रवे के रूप में होता है। डाक्टरी मत से क्षार उस पदार्थ को कहते हैं जो पानी में अच्छी तरह घुल सकता हो, अम्ल या तेज़ाब की शक्ति नष्ट करके उसका नमक बना सकता हो और भिन्न भिन्न वानस्पत्य रंगों को बदल सकता हो। (२) चक्रदत्त के अनुसार एक प्रकार की ओषधि जो मोखा नामक वृक्ष की पत्तियों के क्षार से बनती है। (३) नमक। (४) सज्जी। खार। (५) शोरा। (६) सुहागा। (७) भस्म। राख। (८) काँच। शीशा। (९) गुड़।

वि० [सं०] (१) क्षरणशील। (२) खारा। (३) धूर्त्त।

क्षारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षार। (२) सज्जी। (३) चिड़िया फँसाने का जाल। (४) मछली पकड़ने की खाँची या दौरी।

क्षारकर्द्दम-संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

क्षारगुड़-संज्ञा पुं० [सं०] चक्रदत्त के अनुसार एक ओषधि का नाम। यह ओषधि पंचमूलादि के २१ बार फूँके भस्म को गुड़ के पानी में मिला कर पकाने से बनती है। इसकी गोलियाँ रुद्राक्ष के बराबर बनती और अजीर्ण, पांडु, प्लीहा, अर्शशोथ कफादि रोगो में उपकारी होती हैं।

क्षारण-संज्ञा पुं० [सं०] रसेश्वर दर्शन के अनुसार पारे का पंद्रहवाँ संस्कार।

क्षारत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] सज्जी, शोरा और सुहागा इन तीन क्षारों का समूह।

क्षारदशक-संज्ञा पुं० [सं०] दश क्षारों का समूह। सहिजन, मूली, पलास, चूका शाक वा तिनपतिया, चित्रक, अद्रक, नीम, ईख, अपामार्ग, और केले के क्षारों का समूह।

क्षारद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] मोखा नाम का वृक्ष।

क्षारपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ नामक साग।

क्षारपत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ नामक साग।
क्षारपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] चिल्ली नामक साग।
क्षारपाक–संज्ञा पुं० [सं०] मोखा के पौधे से निकले हुए क्षार को कोरैया, पलाश, बहेड़ा, लोध, केला, चीता, कनेर आदि ओषधियों के साथ जल में पकाने से बना हुआ पाक जो छेदन भेदन अर्थात् फोड़ा फुंसी बहाने के काम में आता है।
क्षारपाल–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।
क्षारमेह–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मेह रोग।
क्षारलवण–संज्ञा पुं० [सं०] खारी नमक।
विशेष—वैद्यक में यह नमक पेशाब और दस्त लानेवाला माना गया है।
क्षारवर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] सज्जीखार, सोहागा और शोरा इन तीनों का समूह।
क्षारश्रेष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्रक्षार। (२) पलाश। (३) मोखा। मुष्कक्षुप।
क्षारषटक–संज्ञा पुं० [सं०] छः प्रकार के क्षारों का समूह। धव, अपामार्ग, कोरैया, लांगली, तिल और मोखा जिनके भस्म से क्षार निकलता है।
क्षारागद–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक औषध जो पलाश, नीम, देवदार, धव, आँवला, भिलावाँ, आम आदि कई लकड़ियों के भस्म को क्षारपाक की रीति से गोमूत्र में मिला कर पकाने से बनती है। यह औषध अर्श, बातगुल्म, कास, अजीर्ण, संग्रहणी आदि रोगों में दी जाती है।
क्षाराष्टक–संज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रकार के क्षारों का समूह।
विशेष—पलाश, हड़जोड़, चिचड़ा, इमली, तिल, मदार, जौ तथा सज्जीखार इस वर्ग के अंतर्गत हैं।
क्षारित–वि० [सं०] (१) अपवाद-ग्रस्त। दूषित। (२) स्त्रावित। झरा हुआ।
क्षारोद–संज्ञा पुं० [सं०] खारा समुद्र। लवण समुद्र।
क्षिति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पृथिवी। (२) वासस्थान। जगह। (३) गोरोचन। (४) एक ऋषि का नाम। (५) पंचम स्वर की चार श्रुतियों में से पहली श्रुति। (६) क्षय। (७) प्रलयकाल।
क्षितिक्षम–संज्ञा पुं० [सं०] खैर का पेड़।
क्षितिज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंगल ग्रह। (२) नरकासुर। (३) केंचुआ। (४) वृक्ष। पेड़। (५) खगोल में वह तिर्य्यग वृत्त जिसकी दूरी आकाश के मध्य से ९० अंश हो। ऊँचे स्थान पर खड़े होकर देखने से चारों ओर दिखाई पड़ता हुआ वह वृत्ताकार स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी दोनों मिले जान पड़ते हैं।
क्षिद्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोग। (२) सूर्य्य। (३) सींग।
क्षिपा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फेंकना। (२) रात।
क्षिप्त–वि० [सं०] (१) त्यक्त। (२) विकीर्ण। (३) अवज्ञात। अपमानित। (४) पतित। (५) बात रोग ग्रस्त।
क्षिप्र–क्रि० वि० [सं०] (१) शीघ्र। जल्दी। (२) तत्क्षण। तुरंत।
वि० [सं०] (१) तेज। जल्द। जैसे क्षिप्रजव, क्षिप्रहोम। (२) चंचल।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुश्रुत के अनुसार शरीर के एक सौ सात मर्म्म स्थानों में से एक जो अँगूठे और दूसरी उँगली के बीच में है। (२) एक मुहूर्त्त का पंद्रहवाँ भाग।
क्षिप्रपाकी–संज्ञा पुं० [सं०] गर्दभांड नाम का वृक्ष। पारस-पीपल।
क्षिप्रमूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रेंद्रिय संबंधी एक प्रकार का रोग।
क्षिप्रश्येन–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की शिकारी चिड़िया।
क्षिप्रहस्त–वि० [सं०] शीघ्र वा तेज काम करनेवाला।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि का एक नाम। (२) एक राक्षस का नाम।
क्षिप्रहोम–संज्ञा पुं० [सं०] सयंकाल और प्रातःकाल का होम, जो संक्षिप्त और जल्दी होता है।
क्षीण–वि० [सं०] [भाव० संज्ञा क्षीणता और क्षैण्य।] (१) दुबला। पतला। (२) सूक्ष्म। (३) क्षयशील। (४) घटा हुआ। जो कम हो गया हो। जैसे—क्षीणकोष, क्षीणवृत्ति।
क्षीणचंद्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह चंद्रमा जिसमें सात या इससे कम कलाएँ हों। कृष्णपक्ष की अष्टमी से शुक्लपक्ष की अष्टमी तक का चंद्रमा "क्षीणचंद्र" कहलाता है।
क्षीणता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निर्बलता। कमजोरी। (२) दुबलापन। पतलापन। (३) सूक्ष्मता।
क्षीयमान–वि० [सं०] (१) नित्य घटने वा कम होनेवाला। (२) नाशवान्।
क्षीर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध। पय।
यौ०—क्षीरसार = मक्खन।
(२) द्रव या तरल पदार्थ। (३) जल। पानी। (४) पेड़ों का रस या दूध। निर्यास। (५) खीर। (६) सरल नामक वृक्ष का गोंद।
क्षीरकंद–संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरविदारी।
क्षीरकांडक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) थूहड़। (२) मंदार।
क्षीरकाकोली–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की काकोली जड़ी जो हलकी और वीर्य्यवर्द्धक होती है और जिसके खाने से स्त्रियों का दूध बढ़ता है। यह अष्टवर्ग के अंतर्गत है।
क्षीरखजूर–संज्ञा पुं० [सं०] पिंडखजूर।
क्षीरघृत–संज्ञा पुं० [सं०] वह मक्खन जो दूध को मथ के निकाला गया हो। सुश्रुत के अनुसार यह मलरोधक, मूर्च्छा दूर करनेवाला और नेत्रों को हितकारी होता है।

क्षीरज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) शंख। (३) कमल। (४) दही।
वि० [सं०] दूध से उत्पन्न वा बना हुआ।

क्षीरजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी।

क्षीरतैल–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का औषधसिद्ध तैल।

क्षीरदल–संज्ञा पुं० [सं०] मंदार। आक।

क्षीरद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थ।

क्षीरधि–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

क्षीरधेनु–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार की कल्पित गौ जो घड़े आदि को स्थापित कर के बनाई और दान की जाती है।

क्षीरनिधि–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

क्षीरनीर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आलिंगम। गले लगाना। (२) मिल जाना। मिलन।

क्षीरपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदार। आक।

क्षीरपलांडु–संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद प्याज।

क्षीरपाक–वि० [सं०] दूध में पकाया हुआ।
संज्ञा पुं० [सं०] वह ओषधि जो अठगुने दूध और चौगुने जल में औटा कर तैयार की जाय। (वैद्यक)

क्षीरभृत–संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार वह ग्वाला या चरवाहा जो अपने वेतन-स्वरूप केवल दूध ही ले।

क्षीरविदारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] विदारी कंद से मिलती जुलती एक प्रकार की जड़ी जिसमें से दूध निकलता है। यह शूल और प्रमेह रोगों में उपकारी होती है।
पर्य्या०—इक्षुगंधा। क्षीरवल्ली। पयःकंदा। पयोलता।

क्षीरवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उदुंबर। गूलर। (२) महुआ। (३) अश्वत्थ। (४) खिरनी।

क्षीरव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] केवल दूध पीकर रहने का व्रत।

क्षीरशाक–संज्ञा पुं० [सं०] कच्चा फटा हुआ दूध। वैद्यक में इसे बहुत बलकारक माना है।

क्षारषष्ठिक–संज्ञा पुं० [सं०] दूध में पकाया हुआ साठी चावल का भात जो ग्रहयज्ञ में बुध ग्रह को अर्पित किया जाता है।

क्षीरसंतानिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बिगड़ा हुआ दूध।

क्षीरस–संज्ञा पुं० [सं०] दूध या दही पर की मलाई।

क्षीर सागर–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से एक, जो दूध से भरा हुआ माना जाता है। नारायण इसी समुद्र में शेषशय्या पर सोते हैं।

क्षीरस्फटिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बढ़िया स्फटिक।

क्षीरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] काकोली नाम की जड़ी।

क्षीरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पिंड खजूर। (२) वंशलोचन।

क्षीरिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) क्षीर काकोली। (२) खिरनी। (३) दुद्धी नाम की लता। (४) वराहक्रांता।

क्षीरोद–संज्ञा पुं० [सं०] क्षीर समुद्र।
यौ०—क्षीरोद-तनया = लक्ष्मी।

क्षुत्–संज्ञा स्त्री० [सं०] भूख। क्षुधा। उ०—छूटे सबै सबनि के सुख क्षुत पिपासा। विद्वद्विनोद गुणगीत विधान बासा। —केशव।

क्षुत–संज्ञा पुं० [सं०] छींक।

क्षुद्र–वि० [सं०] (१) कृपण। कंजूस। (२) अधम। नीच। (३) अल्प। छोटा वा थोड़ा। (४) क्रूर। खोटा। (५) दरिद्र। निर्धन।
संज्ञा पुं० [सं०] चावल का कण।

क्षुद्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम जो वर्त्तमान पंजाब के अंतर्गत है। (२) क्षुद्र। (३) तोला (परिमाण)।

क्षुद्रघंटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का प्राचीन आभूषण जो कमर में पहना जाता था। इसमें घुँघुरू वा घंटियां लगी रहती थीं जो चलने में बजती थीं। घुँघुरूदार करधनी। (२) घुँघुरू।

क्षुद्रचंदन–संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन।

क्षुद्रजंतु–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत छोटा और बिना हड्डी का जंतु या कीड़ा मकोड़ा।

क्षुद्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीचता। कमीनापन। (२) ओछापन।

क्षुद्रतुलसी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की बबुई तुलसी।

क्षुद्रधान्य–संज्ञा पुं० [सं०] कंगनी, चेना, कोदों आदि कुधान्य। वैद्यक के अनुसार इस प्रकार के धान्य रूखे, कसैले, हलके और बातकारक होते हैं।

क्षुद्रपति–संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर। उ०—रुद्रपति, क्षुद्रपति, लोकपति, बोकपति, धरनिपति, गगनपति, अगमबानी। —सूर।

क्षुद्रपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अमलोनी। नोनिया साग।

क्षुद्रपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] बच।

क्षुद्रप्रकृति–वि० [सं०] ओछे या खोटे स्वभाववाला। नीच प्रकृति का।

क्षुद्रफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जामुन। (२) इंद्रायण।

क्षुद्रबुद्धि–वि० [सं०] (१) दुष्ट या नीच बुद्धिवाला। (२) नासमझ। मूर्ख।

क्षुद्रम–संज्ञा पुं० [सं०] धातु आदि तौलने के लिये छः माशे की एक तौल जिसे "छदाम" भी कहते हैं।

क्षुद्रमुस्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] कसेरू।

क्षुद्ररोग–संज्ञा पुं० [सं०] छोटे रोग, सुश्रुत के अनुसार जिनकी संख्या ४८ है और जिनमें फोड़ा फुंसी, मुहासा, झाँईं, कुनख आदि सम्मिलित हैं।

क्षुद्र श्वास–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का श्वास रोग जो सुश्रुत के अनुसार अधिक भोजन या कम परिश्रम करने और दिन को सोने से होता है।

क्षुद्रसुवर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] पीतल।

क्षुद्रहा–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

क्षुद्रांजन–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का अंजन जो शोधे हुए आँवले आदि से बनाया जाता है।

क्षुद्रांत्र–संज्ञा पुं० [सं०] हृदय के पास की एक छोटी नाड़ी।

क्षुद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेश्या। (२) चंगेरी। अमलोनी। लोनी। (३) जटामासी। बालछड़। (४) एक प्रकार की मधुमक्खी जिसे सरघा कहते हैं। (५) गवेधुक। कौड़ियाला। कौडिल्ला। (६) कंटकारी। (७) हिचकी।

क्षुद्रावली–संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्रघंटिका। किंकिणी। उ०—अंग अभूषण जननि उतारति। दुलरी ग्रीव माल मोतिन की केयुर लै भुज श्याम निहारति। क्षुद्रावली उतारति कटि ते सैंति धरति मनही मन वारति।—सूर।

क्षुद्राशय–वि० [सं०] नीच प्रकृति। कमीना। "महाशय" का उलटा।

क्षुद्रेंगुदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जवासा।

क्षुधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० क्षुधित, क्षुधालु] भूख। भोजन करने की इच्छा।

क्षुधातुर–वि० [सं०] भूखा।

क्षुधालु–वि० [सं०] जिसे सदैव भूख लगी रहती हो। भुक्खड़।

क्षुधावंत–वि० [हिं० क्षुधा + वंत (प्रत्य०) या सं० क्षुधावान् का बहु० क्षुधावंत !] भूखा। क्षुधा पीड़ित। उ०—क्षुधावंत रजनीचर मेरे।—तुलसी।

क्षुधावती–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक विशेष प्रकार की तैयार की हुई ओषधि जिसके सेवन से भूख बढ़ती है।

क्षुधित–वि० [सं०] भूखा। जिसे भूख लगी हो।

क्षुप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटी डालियोंवाला वृक्ष। पौधा। झाड़ी। (२) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम जिसका जन्म सत्यभामा के गर्भ से हुआ था। (३) महाभारत के अनुसार प्रसंधि के पुत्र और इक्ष्वाकु के पिता का नाम।

क्षुब्ध–वि० [सं०] (१) चंचल। अधीर। (२) व्याकुल। विह्वल। (३) भयभीत। डरा हुआ। (४) कुपित। क्रुद्ध।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) मथानी की डंडी। (२) एक प्रकार का रतिबंध वा कामशास्त्र की क्रिया।

क्षुभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्य के एक प्रकार के पारिषद् देवता।

क्षुभित–वि० [सं०] क्षुब्ध।

क्षुमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० क्षौम] (१) बाण। (२) एक प्रकार के पौधों की जाति जिनकी डाली पतली और सीधी तथा छाल रेशेदार और दृढ़ होती है। जैसे अलसी, पटसन, सन, इत्यादि। (३) अलसी। (४) सनई। (५) नील का पौधा।

क्षुर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छूरा। अस्तुरा।

यौ०—क्षुरक्रिया = हजामत।

(२) वह बाण जिसकी गाँसी की धार छूरे के सदृश होती है। (३) गोखरू। (४) पशुओं के पाँव का खुर।

क्षुरधान–संज्ञा पुं० [सं०] नाई की किसबत।

क्षुरधार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नरक का नाम। (२) एक प्रकार का बाण।

वि० [सं०] जिसकी धार छुरे की तरह तेज़ हो।

क्षुरपत्र–वि० [सं०] [स्त्री० क्षुरपत्रा, क्षुरपत्री] जिसके पत्ते छूरे की तरह धारदार हों।

संज्ञा पुं० (१) शर नामक गुच्छ। (२) क्षुरधार नामक बाण।

क्षुरभांड–संज्ञा पुं० [सं०] दे० "क्षुरधान"।

क्षुरपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पालकी नाम का साग। पालक।

क्षुरपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पालकी। पालक।

क्षुरपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] बचा। बच।

क्षुरप्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का बाण जिसकी गाँसी की धार तेज़ छुरे की धार के समान होती है। (२) खुरपा।

क्षुरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छुरी। चाकू। (२) पालकी नामक साग। (३) मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार एक यजुर्वेदीय उपनिषद् का नाम।

क्षुरी–संज्ञा पुं० [सं० क्षुरिन्] [स्त्री० क्षुरिनी] (१) नाई। हज्जाम। (२) वह पशु जिसके पाँव में खुर हों।

संज्ञा स्त्री० [सं०] छुरी। चाकू।

क्षुल्लक–संज्ञा पुं० [सं०] क्षुद्र।

क्षुव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छींक। (२) राई। (३) लाही।

क्षेत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ अन्न बोया जाता हो। खेत। (२) समतल भूमि। (३) उत्पत्ति स्थान। वह जगह जहाँ कोई चीज़ पैदा हो। (४) स्थान। प्रदेश। जैसे, हरिहरक्षेत्र। कुरुक्षेत्र। (५) पुण्य-स्थान। तीर्थ-स्थान। (६) राशि। (मेष आदि)। (७) स्त्री। जोरू। (८) शरीर। बदन। (९) गीता के अनुसार पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ, पाँचों कर्मेंद्रियाँ, मन, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संस्कार, चेतनता और धृति। (१०) अंतःकरण। (११) वह स्थान जो रेखाओं से घिरा हो।

यौ०—क्षेत्रव्यवहार = किसी क्षेत्र का वर्गफल आदि निकालना।

क्षेत्रगणित–संज्ञा पुं० [सं०] गणित विद्या की वह शाखा जिसमें क्षेत्रों के मापने और उनके क्षेत्रफल निकालने की विधि का वर्णन रहता है।

क्षेत्रज–वि० [सं०] जो क्षेत्र से उत्पन्न हो।

संज्ञा पुं० [सं०] धर्म्मशास्त्रानुसार बारह प्रकार के पुत्रों में से एक। वह पुत्र जो किसी अयोग्य या असमर्थ पुरुष की बिना संतानवाली स्त्री अथवा मृत पुरुष की बिना संतानवाली विधवा के गर्भ और नियुक्त देवर आदि के वीर्य्य से उत्पन्न हो। इस प्रकार का पुत्र अपनी माता के पति के स्वत्व का अधिकारी माना जाता है। कलियुग में इस प्रकार का पुत्र उत्पन्न करना वर्जित है।

क्षेत्रजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद कंटकारी। (२) एक प्रकार की ककड़ी। (३) गोमूत्र तृण। (४) शिल्पिका। शिल्पी घास।

क्षेत्रज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर का अधिष्ठाता, जीवात्मा। (२) परमात्मा। (३) किसान। खेतिहर। (४) साक्षी।

वि० [सं०] जानकार। ज्ञाता।

क्षेत्रपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेत का रखवाला। क्षेत्रपाल। (२) खेतिहर। काश्तकार। (३) जीवात्मा। (४) परमात्मा।

क्षेत्रपाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षेत्ररक्षक। खेत का रखवाला। (२) एक प्रकार के भैरव जो संख्या में ४९ हैं और पश्चिम के द्वारपाल माने जाते हैं। (३) द्वारपाल। (४) किसी स्थान का प्रधान प्रबंधकर्त्ता। स्वयंभू। भूमिया।

क्षेत्रफल–संज्ञा पुं० [सं०] किसी क्षेत्र का वर्गात्मक परिमाण जो प्रायः उसकी लंबाई और चौड़ाई के घात वा गुणन से जाना जाता है। वर्गपरिमाण। रक़बा।

क्षेत्रविद्–संज्ञा पुं० [सं०] जीवात्मा।

वि० [सं०] जिसे स्थानों और मार्गों का पूरा ज्ञान हो।

क्षेत्री–संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्रिन्] (१) खेत का मालिक। (२) नियुक्ता स्त्री का विवाहित पति। (३) स्वामी।

क्षेप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) फेंकना। (२) ठोकर। घात। (३) अक्षांश। शर। (४) निंदा। बदनामी। कलंक। (५) दूरी। (६) बिताना। गुजारना। जैसे, कालक्षेप।

क्षेपक–वि० [सं०] (१) फेंकनेवाला। (२) मिलाया हुआ। मिश्रित। (३) निंदनीय।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) केवट। मल्लाह। (२) ऊपर या पीछे से मिलाया हुआ अंश।

क्षेपण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) फेंकना। (२) गिराना। (३) बिताना। काटना। गुज़ारना। (४) अपवाद। निंदा।

क्षेपणिक–संज्ञा पुं० [सं०] नाव या जहाज़ चलानेवाला। मल्लाह। केवट।

क्षेपणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का अस्त्र जो शत्रु पर फेंका जाता है। (२) नाव का डाँड़। बल्ली।

क्षेपणीय–वि० [सं०] फेंकने योग्य।

क्षेमंकरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की चील जिसका गला सफ़ेद होता है। (२) एक देवी का नाम।

क्षेम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राप्त वस्तु की रक्षा। सुरक्षा।
यौ०—योगक्षेम।
(२) कल्याण। कुशल। मंगल। (३) अभ्युदय। (४) सुख। आनंद। (५) मुक्ति। (६) फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म के नक्षत्र से चौथा नक्षत्र। (७) चोवा। (८) धर्म का एक पुत्र जो शांति के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

क्षेमक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्लक्षद्वीप के एक वर्ष का नाम। (२) शिव के एक गण का नाम। (३) एक राक्षस का नाम। (४) एक नाग का नाम।

क्षेमकर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन के पौत्र का नाम जो जन्मेजय का सखा था। कहते हैं कि अवध का खेरी नामक नगर क्षेमकर्ण ने ही बसाया था।

क्षेमकल्याण–संज्ञा पुं० [सं० क्षेम + कल्याण] हम्मीर और कल्याण के संयोग से बना हुआ एक संकर राग। (संगीत)।

क्षेमधूर्ति–संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम जिसने महाभारत के युद्ध में दुर्योधन का पक्ष लिया था।

क्षेमफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] उदुंबर। गूलर।

क्षेमवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगरी का नाम जिसका वर्णन बौद्ध ग्रंथों में आया है और जो कदाचित् वर्त्तमान गोरखपुर ज़िले का क्षेमराजपुर है।

क्षेमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कात्यायिनी का एक नाम। (२) एक अप्सरा का नाम।

क्षेमासन–संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का आसन जिसमें दाहिने हाथ पर दाहिना पैर रख कर बैठते हैं। इस आसन से उपासना करने से स्वर्ग-प्राप्ति होती है।

क्षेमी–वि० [सं० क्षेमिन्] (१) क्षेम कुशल करनेवाला। मंगलकारक। शुभदायक। उ०—जस तस करि हरि पूजन प्रेमी। लियो अंक धरि हरि पद क्षेमी।—रघुराज। (२) कुशल चाहनेवाला। भलाई चाहनेवाला। उ०—ज्ञान विराग विवेक तप योग याग जप नेम। प्रेम अधिक सब ते अहै दायक क्षेमिन क्षेम।—रघुराज।

क्षेमेंद्र–संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर का एक प्रसिद्ध संस्कृत कवि, ग्रंथकार और इतिहासिकार। यह हिंदू होने पर भी बौद्धधर्म्म पर बहुत अनुराग रखता था। इसने कई शैव, वैष्णव और बौद्ध ग्रंथों की समालोचना की थी। इसका पूरा नाम क्षेमेंद्र व्यास दास था।

विशेष—भिन्न भिन्न समय और स्थानों में क्षेमेंद्र नाम के और भी कई कवि और ग्रंथकार हो गए हैं।

क्षेय–वि० [सं०] क्षय किये जाने के योग्य ।

क्षैण्य–संज्ञा पुं० [सं०] क्षीण का भाव । क्षीणता ।

क्षोड़–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी बांधने का खूँटा । आलान ।

क्षोण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जा सके । (२) एक प्रकार की वीणा ।

क्षोणि,–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी ।

यौ०—क्षोणिप ।

(२) एक की संख्या ।

क्षोणिप–संज्ञा पुं० [सं०] राजा । उ०—क्षोणी में छांड्यो छप्यो क्षोणिप को छौना छोटो क्षोणिप क्षपण बांको विरद बहतु हैं ।—तुलसी ।

क्षोणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी । ज़मीन ।

क्षोणीपति–संज्ञा पुं० [सं०] राजा । नरेश । उ०—क्षोणी में के क्षोणीपति छाजै जिन्हैं छत्र छाया, क्षोणी क्षोणी छाये क्षिति आये निमिराज के ।—तुलसी ।

क्षोद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूर्ण । बुकनी । सफूफ । (२) चूर्ण करने या पीसने का काम । (३) जल । पानी ।

क्षोभ–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० क्षुब्ध, क्षुभित] (१) विचलता । खलबली । (२) व्याकुलता । घबड़ाहट । (३) भय । डर । (४) रंज । शोक । (५) क्रोध ।

क्षोभक–संज्ञा पुं० [सं०] कामाख्या का एक पहाड़ ।

क्षोभकृत–संज्ञा पुं० [सं०] साठ संवत्सरों में से छत्तीसवां संवत्सर ।

क्षोभण–वि० [सं०] क्षोभित करनेवाला । क्षोभक ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) काम के पाँच बाणों में से एक । (२) विष्णु । (३) शिव ।

क्षोभिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में निषाद स्वर की दो श्रुतियों में से अंतिम श्रुति ।

क्षोभित*–वि० [सं० क्षोभ] (१) घबड़ाया हुआ । व्याकुल । (२) विचलित । चलायमान् । (३) भयभीत । डरा हुआ । (४) क्रुद्ध ।

क्षोभी–वि० [सं० क्षोभिन्] उद्वेगशील । व्याकुल । चंचल । उ०—हरि सुमिरन कीजै जिमि लोभी । निसि दिन रहै द्रव्य हित क्षोभी ।—रघुनाथ ।

क्षोम–संज्ञा पुं० दे० "क्षौम" ।

क्षौणि, क्षौणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथिवी । (२) एक की संख्या ।

यौ०—क्षौणीप्राचीर = समुद्र ।

क्षौत्र–संज्ञा पुं० [सं०] छुरे, चाकू आदि की धार तेज़ करने का यंत्र । सान ।

क्षौद्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षुद्र का भाव । क्षुद्रता । (२) छोटी मक्खी का मधु जो पतला, ठंढा, हलका और क्लेदनाशक होता है । क्षुद्रा नामक मक्खियों का इकट्ठा किया हुआ मधु । (३) जल । (४) चंपा का पेड़ । (५) धूल । (६) मागधी माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति ।

क्षौद्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शहद । मधु । (२) क्षुद्रक नामक प्राचीन देश जो वर्त्तमान पंजाब के अंतर्गत था ।

क्षौद्रज–संज्ञा पुं० [सं०] क्षुद्रा मक्खी का मोम ।

क्षौद्रधातु–संज्ञा पुं० [सं०] सोना मक्खी ।

क्षौद्रप्रमेह–संज्ञा पुं० [सं०] मधुमेह ।

क्षौम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अलसी, सन आदि के रेशों से बुना हुआ कपड़ा । (२) वस्त्र । कपड़ा । (३) घर या अटारी के ऊपर का कमरा ।

क्षौमका–संज्ञा पुं० [सं०] चोवा ।

क्षौमिक–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सन वा अलसी के रेशे के तागे से बनी हुई करधनी । (२) क्षौम वस्त्र की बनी हुई गुदड़ी या कथरी ।

क्षौर, क्षौरकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] हजामत ।

क्षौरिक–संज्ञा पुं० [सं०] नाई । हज्जाम ।

क्ष्मा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी । धरती ।

यौ०—क्ष्माधृति, क्ष्मापति, क्ष्मापाल = राजा ।

(२) एक की संख्या ।

क्ष्वेड़–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अव्यक्त शब्द या ध्वनि । (२) विष । ज़हर । उ०—गरल हलाहल क्ष्वेड़ गर कालकूट रस भास । रस में विरस न घोरि बलि चलिये बन करु बास ।—नंददास । (३) शब्द । ध्वनि । (४) कान का एक रोग जिसमें सनसनाहट सी सुनाई पड़ती है । (५) चिकनाई । चिकनाहट ।

वि० [सं०] (१) छिछोरा । नीच प्रकृति । (२) कुटिल । कपटी ।

—:o:—

ख

ख–हिंदी वर्णमाला में स्पर्श व्यंजन के अंतर्गत कवर्ग का दूसरा अक्षर । यह महाप्राण है और इसका उच्चारण कंठ से होता है । क, ग, घ और ङ इसके सवर्ण हैं ।

खं–संज्ञा पुं० [सं० खम्] (१) शून्य स्थान । खाली जगह । (२) बिल । छिद्र । (३) आकाश । (४) निकलने का मार्ग । (५) इंद्रिय । (६) बिंदु । शून्य । सिफ़र । (७) स्वर्ग । देवलोक । (८) सुख । (९) कर्म । (१०) कुंडली में जन्म लग्न से दसवां स्थान । (११) अभ्रक । (१२) ब्रह्मा । (१३) मोक्ष । निर्वाण ।

खंक†–वि० [सं० कंकाल] दुर्बल । बलहीन ।

खंख–वि० [सं० कंक] (१) छूछा । खाली । (२) उजाड़ । वीरान ।

खंखरा†–संज्ञा पुं० [देश०] (१) तांबे का बड़ा देग जिसमें चावल आदि पकाया जाता है । (२) दे० "खांखर" ।

खँखार—संज्ञा पुं० दे० "खखार"।

खँखारना—क्रि० अ० दे० "खखारना"।

खंग—संज्ञा पुं० [सं० खड्ग] (१) तलवार। उ०—भट चातक दादुर मोर न बोले। चपला चमकै न फिरै खँग खोले।—केशव। (२) गैंडा।

खंगड़—संज्ञा पुं० दे० "अंगड़ खंगड़"।

वि० † उद्दंड। उग्र। उजड्ड।

खँगना†—क्रि० स० [सं० क्षय या हिं० छीजना] कम होना। घट जाना। उ०—ऊखल में पुनि बाँधन लागी। खँगी युगांगुलि रजु पुनि मांगी।—विश्राम।

खंगर—संज्ञा पुं० [देश०] अधिक पकने के कारण परस्पर सटी हुई कई ईंटों का चक।

वि० बहुत सूखा। शुष्क।

मुहा०—खंगर लगना = सुखंडी रोग होना। दुर्बलता का रोग होना।

खँगहा—वि० [हिं० खाँग + हा (प्रत्य०)] खाँगवाला। जिसे खाँग वा निकले हुए दाँत हों।

संज्ञा पुं० गैंडा।

खँगारना†—क्रि० स० दे० "खँगालना"।

खँगालना—क्रि० स० [सं० क्षालन] (१) हलका धोना। थोड़ा धोना। जैसे लोटा खँगालना। गहना खँगालना। (२) सब कुछ उड़ा ले जाना। खाली कर देना। जैसे रात को उनके घर चोर आए थे, सब खँगाल ले गए।

खँगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खँगना] कमी। घटी। उ०—हिय हरषि शिशु मुख चूमि सुंदरि सकल दुलरावै लगीं। अनपार भै ज्यौनार निज रुचि सरस तहँ रहै का खँगी।—विश्राम।

खँगुवा—संज्ञा पुं० दे० "खाँग (३)"।

खँगैल—वि० [हिं० खाँग] (१) खाँग रोग से पीड़ित। जिसके खुर पके हों। (२) दँतैला। लंबे दाँतवाला (हाथी)।

खँगौरिया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] हँसुली नाम का गहना।

खँघारना†—क्रि० स० दे० "खँगालना"।

खँचना†—क्रि० अ० [हिं० खाँचना] चिह्नित होना। निशान पड़ना। उ०—लाजमयी सुर बाम भई पछितान्यो स्वयंभू महा मन लेखैं। दूसरी ओर बनाइबे को त्रिबली खँची तीन तलाक की रेखैं।—शंभु कवि।

खँचाना†—क्रि० स० [हिं० खाँचना] (१) अंकित करना। चिह्न बनाना। उ०—(क) राधिका की त्रिबली को बनाव विचारि विचारि चहै हम लेखैं। ऐसी न और न और न और हैं तीन खँचाय दई बिधि रेखैं।—कोई कवि। (ख) रामानुज लघु रेख खँचाई। सो नहिं लाँघेहु अस मनुसाई।—तुलसी। (२) जल्दी जल्दी लिखना। (३) दे० "खींचना"।

खँचिया—संज्ञा स्त्री० दे० "खाँची"।

खँचुला†—संज्ञा पुं० [स्त्री० खँचुली] दे० "खाँचा"।

खँचैया†—वि० [हिं० खाँचना] खींचनेवाला।

खंज†—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का रोग जिसमें मनुष्य का पैर जकड़ जाता है और वह चल फिर नहीं सकता। वैद्यक के अनुसार इस रोग में कमर की वायु जाँघ की नसों को पकड़ लेती है जिससे पैर स्तंभित हो जाता है। उ०—गूँगे कुबजे बावरे बहिरे बामन वृद्ध। यान लये जनि आइगे खोरे खंज प्रसिद्ध।—केशव। (२) लँगड़ा। पंगु।

संज्ञा पुं० [सं० खंजन] खंजन पक्षी। उ०—आलिंगन दै अधर पान करि खंजन खंज लरे।—सूर।

खंजक—वि० [सं०] लँगड़ा। पंगु।

संज्ञा पुं० [देश०] पिस्ते की जाति का एक पेड़ जो बिलूचिस्तान में होता है और जिसमें रूमी मस्तगी के समान ही एक प्रकार का गोंद निकलता है। यह गोंद उतने काम का नहीं समझा जाता। इसकी पत्तियों के किनारे घोड़े की नाल के आकार में लाही लगती है। पत्तियाँ रँगने और चमड़ा सिझाने के काम में आती हैं।

खंजकारि—संज्ञा पुं० [सं०] खेसारी।

खँजड़ी—संज्ञा स्त्री० दे० "खंजरी"।

खंजन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध पक्षी जिसकी अनेक जातियाँ, एशिया, यूरोप और अफ्रिका में अधिकता से पाई जाती हैं। इनमें से भारतवर्ष का खंजन मुख्य और असली माना जाता है। यह कई रंग और आकार का होता है। भारत में यह हिमालय की तराई, आसाम और बरमा में अधिकता से होता है। इसका रंग बीच बीच में कहीं सफ़ेद कहीं काला होता है। यह प्रायः एक बालिश्त लंबा होता है और इसकी चोंच लाल और दुम हलकी काली झाईं लिए सफ़ेद और बहुत सुंदर होती है। यह प्रायः निर्जन स्थानों में और अकेला ही रहता है और जाड़े के आरंभ में पहाड़ों से नीचे उतर आता है। लोगों का विश्वास है कि यह पाला नहीं जा सकता और जब इसके सिर पर चोटी निकलती है तब यह छिप जाता है और किसी को दिखाई नहीं देता। यह पक्षी बहुत चंचल होता है, इसी लिए कवि लोग नेत्रों की उपमा इससे देते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि यह बहुत कम और छिप कर रति करता है। कहीं कहीं लोग इसे "खंडिरिच" या "ममोला" भी कहते हैं।

पर्य्या०—खंजखेल। मुनिपुत्रक। भद्रनाभा। रत्ननिधि। चर। काकछड़। नीलकंठ। कणाटीर।

(२) खँडरिच के रंग का घोड़ा। (३) 'गंगाधर' या 'गंगोदक' नामक छंद का एक नाम।

खंजनरति—संज्ञा पुं० [सं०] (खंजन की तरह का) बहुत ही गुप्त विहार।

खंजनासन-संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का आसन । इस आसन से उपासना करने से विजय-लाभ होता है ।

खंजनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] खंजन के आकार की एक चिड़िया जो प्रायः दलदलों में रहती है । इसे 'सर्षपी' भी कहते हैं।

खंजर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] कटार । पेशकब्ज ।

खँजरी-संज्ञा स्त्री० [सं० खंजरीट = एक ताल] डफली की तरह का एक छोटा बाजा जिसका मेंडरा (गोलाकार काठ) चार पाँच अंगुल चौड़ा और एक ओर चमड़े से मढ़ा तथा दूसरी ओर खुला रहता है । यह एक हाथ से पकड़ कर दूसरे हाथ की थाप से बजाया जाता है । साधू लोग प्रायः अपनी खँजरी के मेंडरे में एक प्रकार की हलकी झाँझ भी बाँध लेते हैं जो खँजरी बजाते समय आपसे आप बोलती है ।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खंजर] (१) खंजर का स्त्रीलिंग और अल्पार्थक रूप । (२) एक प्रकार की लहरियेदार धारी जो प्रायः रंगीन कपड़ों में होती है । (३) वह कपड़ा, विशेषतः रेशमी कपड़ा, जिसमें इस प्रकार की धारी हो ।

खंजरीट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खँडरिच । ममोला । खंजन । (२) एक प्रकार का ताल । (संगीत)

खंजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्णार्द्ध सम वृत्तों में से एक वृत्त जिस के विषम पादों में ३० लघु और अंत में एक गुरु और सम पादों में २८ लघु और अंत में एक गुरु होता है । उ०—नरधन जग महँ नित उठ गनपति कर जस बरनत अतिहित सों । तन मन धन सन जपत रहत तेहिं भजन करत भल अति चित सों । किमि अरसत मन भजत न किमि तेहिं भज भज भज भज शिव धर चित हीं । हर हर हर हर हर हर हर हर हर हर हर हर कह नितहीं ।

खड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाग । टुकड़ा । हिस्सा ।

मुहा०—खंड खंड करना = चकनाचूर करना । टुकड़े टुकड़े करना । (२) देश । वर्ष । जैसे भरतखंड । पौराणिक भूगोल में एक एक द्वीप के अंतर्गत नौ नौ या सात सात खंड माने गए हैं । (३) नौ की संख्या । (४) समीकरण की एक क्रिया । (गणित) । (५) रत्नों का एक दोष जो प्रायः मानिक में होता है । (६) खाँड । चीनी । (७) काला नमक । (८) दिशा । दिक् । उ०—चारहु खंड भानु अस तपा । जेहि की दृष्टि रैन ससि छिपा ।—जायसी ।

वि० (१) खंडित । अपूर्ण । (२) छोटा । लघु ।

संज्ञा पुं० [सं० खड्ग] खाँड़ा । उ०—करै शंभु खंड वरिवंड चंड खंड दै कै जलधि घमंड को उमंड ब्रह्मंड मंड ।—गोपाल ।

खंडकथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कथा का एक भेद जिसमें मंत्री अथवा ब्राह्मण नायक होता है और चार प्रकार का विरह रहता है । इसमें करुण रस प्रधान होता है । कथा समाप्त होने के पहले ही इसका ग्रंथ समाप्त हो जाता है । (२) उपन्यास का एक भेद जिसके प्रत्येक खंड में एक एक पूरी कहानी होती है और जिसकी किसी एक कहानी का दूसरी कहानी के साथ कोई संबंध नहीं होता । इसके दो भेद हैं, सजात्य और वैजात्य । जिसमें सब कथाओं का आरंभ और अंत एक समान होता है, वह सजात्य कहलाता है और जिसकी कथाएँ कई ढंग की होती हैं उसे वैजात्य कहते हैं ।

खंडकाव्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्य जिसमें 'काव्य' के संपूर्ण अलंकार या लक्षण न हों, बल्कि कुछ ही हों । जैसे, मेघदूत आदि ।

खंडताल-संज्ञा पुं० [सं०] एकताला नामक ताल जिसमें केवल एक द्रुत होता है । (संगीत)

खंडन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० खंडनीय, खंडित, खंडी] (१) तोड़ने फोड़ने की क्रिया । भंजन । छेदन । (२) निराकरण । किसी बात को अयथार्थ प्रमाणित करने की क्रिया । किसी सिद्धांत को प्रमाणों द्वारा असंगत ठहराने का कार्य्य । मंडन का उलटा । उ०—उसने इस सिद्धांत का ख़ूब खंडन किया है । (३) नृत्य में मुँह या ओंठ इस प्रकार चलाना जिससे पढ़ने, बड़बड़ाने या खाने आदि का भाव झलके ।

खंडना*-क्रि० स० [सं० खंडन] (१) खंडन करना । तोड़ना टुकड़े टुकड़े करना । उ०—कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं ।—तुलसी । (२) निराकरण करना । किसी बात को अयुक्त ठहराना ।

खंडनी-संज्ञा स्त्री० [सं० खंडन] मालगुजारी की किस्त । कर । वि० दे० "खंडी" "खंडिनी" ।

खंडनीय-वि० [सं०] (१) तोड़ने फोड़ने लायक । (२) खंडन करने योग्य । निराकरण के योग्य । (३) जिसका खंडन हो सके । जो अयुक्त ठहराया जा सके ।

खंडपति-संज्ञा पुं० [सं०] राजा ।

खंडपरशु-संज्ञा० पुं० [सं०] (१) महादेव । शिव । उ०—खंडपरशु को शोभिजै सभा मध्य कोदंड । मानहु शेष अशेषधर धरनहार बरिवंड ।—केशव । (२) विष्णु । (३) परशुराम । (४) राहु । (५) वह हाथी जिसके दाँत टूटे हों ।

खंडपाल-संज्ञा० पुं० [सं०] हलवाई । मिठाई बनाने और बेचनेवाला ।

खँडपूरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० खाँड + पूरी] एक प्रकार की भरी हुई पूरी जिसके भीतर मेवे और मसाले के साथ चीनी भरी जाती है ।

खंडप्रलय-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रलय जो एक चतुयुंगी वा ब्रह्मा के एक दिन बीत जाने पर होता है । इसमें समस्त भूतों

का लय हो जाता है केवल ब्रह्म मात्र रह जाते हैं। पुराणानुसार इस प्रलय में सूर्य्य का तेज सहस्रगुना बढ़ जाता है और रुद्र समस्त प्राणियों का संहार कर डालते हैं।

खंडप्रस्तार–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताल। (संगीत)

खंडफण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

खंडमेरु–संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल की वह रीति जिसके द्वारा मेरु वा एकावली मेरु के बनाए बिना ही मेरु का काम निकल जाता है।

खंडर–संज्ञा पुं० [हिं० खँडहर] टूटे या गिरे हुए मकान का अवशेष भाग। खँडहर।

खँडरा–संज्ञा पुं० [सं० खंड + हिं० बरा] एक प्रकार का चौकोर बड़ा जो सूखा और गीला दोनों प्रकार का होता है। इसके बनाने के लिये पहले बेसन घोलकर उसे कड़ाही में पकाते हैं, जिसे पाक उठाना कहते हैं। पाक तैयार हो चुकने पर उसे थाली में डाल कर जमा देते हैं। ठंढा होकर जम जाने पर उसे चौकोर टुकड़ों में काट कर तेल में तल लेते हैं। इसी को सूखा खँडरा कहते हैं। पीछे इसे मसालों के साथ, किसी काँजी या रसे में भिगो देते हैं। उ०—खंडरा खाँड जो खंडे खंडे। बरी अकोतर से कहँ हंडे।—जायसी।

खंडरिच–संज्ञा पुं० दे० "खंजन (पक्षी)"।

खंडल–संज्ञा पुं० [सं०] खंड धारण करनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० खंड] खंड। (डिं०)

खंडलवण–संज्ञा पुं० [सं०] काला नमक।

खंडला–संज्ञा पुं० [सं० खंड] टुकड़ा। कतरा।

खँडवानी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खाँड + पानी] (१) वह पानी जिसमें खाँड या चीनी घोली हुई हो। शर्बत। उ०—कढ़ी सँवारी और फुलौरी। औ खँडवानी लाय बरौरी।—जायसी। (२) कन्या पक्षवालों की ओर से बरातियों को जलपान या शर्बत भेजने की क्रिया। उ०—(क) बोली सबहिँ बारि कुँभलानी। करहु सिंगार देहु खँडवानी।—जायसी। (ख) भइ ज्योनार फिरा खँडवानी। फिर अरगजा कुहूँ कुहँ आनी।—जायसी।

खंडव्यायाम–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य जिसमें केवल कमर और पैरों को गति देते हैं।

खंडशीला–संज्ञा स्त्री० [सं०] नष्ट चरित्रवाली स्त्री। वेश्या।

खंडसर–संज्ञा पुं० [सं०] सेवारी खाँड। चीनी।

खँड़सार, खँड़साल–संज्ञा स्त्री० [सं० खंड + शाला] खाँड वा शक्कर बनाने का कारखाना। वह स्थान जहाँ खाँड़ बनती हो।

खँडहर–संज्ञा पुं० [सं० खंड + हिं० घर] किसी टूटे फूटे या गिरे हुए मकान का बचा हुआ भाग। खंडर।

खंडाभ्र–संज्ञा पुं० [सं०] दाँतों का एक रोग।

खंडाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तेल नापने का एक परिमाण। (२) काम की इच्छा रखनेवाली स्त्री।

खंडा†–संज्ञा पुं० [सं० खंड] (१) चावल का टुकड़ा। खूद। (२) खाँड। छोटी तलवार।

खंडिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) काँख। कँखरी। (२) वह विद्यार्थी जो किसी ग्रंथ को खंड खंड करके पढ़े। (३) एक ऋषि का नाम।

खंडित–वि० [सं०] (१) टूटा हुआ। भग्न। (२) अपूर्ण। जो पूरा न हो।

खंडिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जिसका नायक रात को किसी अन्य नायिका के पास रह कर सबेरे उसके पास आवे और वह उसमें संभोग के चिह्न देखकर कुपित हो।

खंडिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

खँडिया–संज्ञा पुं० [सं० खंड + हिं० इया (प्रत्य०)] ईख को काट कर उसकी छोटी छोटी गँड़ेरियाँ या टुकड़े बनानेवाला।

संज्ञा स्त्री० [सं० खंड] टुकड़ा। खंड। जैसे, मछली की खँडिया।

खंडी†–संज्ञा स्त्री० [सं० खंड] (१) गांव के आस पास के वृक्षों का समूह। (२) लगान वा किराये की किस्त।

मुहा०—खंडी करना = किस्त बाँधना।

खँडुआ†–संज्ञा पुं० [हिं० खंड] (१) वह कुआँ जिसकी कोठी पत्थर के ढोकों से बनाई गई हो। (२) दे० "कँडुआ"।

खंडेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] एक खंड का राजा।

खँडौरा†–संज्ञा पुं० [हिं० खाँड + औरा (प्रत्य०)] मिसरी का लड्डू। ओला। उ०—पुहुप सुरँग रस अमिरित साँधे। कै अस सुरँग खँडौरा बाँधे।—जायसी।

खँडौरी†–संज्ञा स्त्री० [सं० खंड] चावल के वे बड़े बड़े टुकड़े जो कूटने में टूट जाते हैं।

खंतरा–संज्ञा पुं० [सं० कांतार या हिं० अंतरा] (१) दरार। खोंडरा। (२) कोना। अंतरा। उ०—............... गुप्तचरों ने एक एक कोना खंतरा छान डाला, पर किसी को अविलाइनो का चिह्न भी हस्तगत न हुआ।—भारतेंदु।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः "कोना" के साथ यौगिक शब्दों में अंत में आता है। जैसे—कोना खंतरा।

खंता†–संज्ञा पुं० [सं० खनित्र या हिं० खनना] [स्त्री० अल्प० खंती] (१) वह औज़ार जिससे ज़मीन आदि खोदी जाती हो। (२) वह गड्ढा जिसमें से कुम्हार मिट्टी लाते हैं।

खंदक–संज्ञा पुं० [अ०] (१) शहर वा क़िले के चारों ओर खोदी हुई खाईं। (२) बड़ा गड्ढा।

खंदा*†–संज्ञा पुं० [हिं० खनना] खोदनेवाला। उ०—दैत्य दलन गजदंत उपारन केस केशधरि फंदा। सूरदास बलि जाइ यशोमति सुख के सागर दुख के खंदा।—सूर।

खँधवाना–क्रि० स० [हिं० खाली] खँधियाना का प्रेरणार्थक रूप। खाली कराना। उ०—कंचन के थैला अतर भरैला सुमन सजैला खँधवाये।—विश्राम।

खंधा—संज्ञा पुं० [सं० स्कंधक] आर्य्यागीति नामक छंद का एक नाम।

खंधारी—संज्ञा स्त्री० दे० "कंधारी"।

खंधासाहिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खंधा] खंधा या आर्य्यागीति नामक छंद का एक नाम।

खँधियाना†—क्रि० स० [हिं० खाली] (पदार्थ को पात्र में से) बाहर निकालना। खाली करना।

खंबायची, खंबायती—संज्ञा स्त्री० दे० "खम्माच"।

खंभ—संज्ञा पुं० [सं० स्कंभ या स्तंभ प्रा० खंभ] (१) स्तंभ। खंभा। (२) सहारा। आसरा। उ०—बिन जोवन भइ आस पराई। कहाँ सो पूत खंभ होइ आई।—जायसी।

खंभा—संज्ञा पुं० [सं० स्कंभ या स्तंभ, प्रा० खंभ] [स्त्री० खँभिया] (१) पत्थर वा काठ का लंबा खड़ा टुकड़ा अथवा ईंट आदि की थोड़े घेरे की ऊँची खड़ी जोड़ाई जिसके आधार पर छत वा छाजन रहती है। स्तंभ।

विशेष—जहाँ छत वा छाजन के नीचे का स्थान कुछ खुला रखना होता है वहाँ खंभों का व्यवहार किया जाता है, जैसे, ओसारे, बरामदे, बारहदरी, पुल आदि में। खंभे का व्यवहार भारतीय स्थापत्य में बहुत प्राचीन काल से है, तथा उसके भिन्न भिन्न विभाग भी किए गए हैं, जैसे नीचे के आधार को कुंभो (कुँभिया) कहते हैं और ऊपर के सिरे को भरणी।

खंभात—संज्ञा पुं० [सं० स्कंभावती] (१) गुजरात के पश्चिम प्रांत का एक राज्य जो इसी नाम के उपसागर के किनारे है। (२) इस राज्य की राजधानी।

खंभायची कान्हड़ा—संज्ञा पुं० दे० "खम्माच कान्हड़ा"।

खँभार*†—संज्ञा पुं० [सं० क्षोभ, प्रा० खोभ] (१) अंदेशा। चिंता। (२) घबराहट। व्याकुलता। (३) डर। भय। (४) शोक। उ०—(क) कौतुक विलोकि लोकपाल हरि हर विधि, लोचननि चकाचौंधी चित्तन खँभारु सो।—तुलसी। (ख) हरबर हरत खँभारु, निज शरणागत जनन को। भाषत अहैं तुम्हार, करत अभय संसार ते।—रघुराज।

संज्ञा स्त्री० दे० "खंभारी"।

खंभारि, खंभारी—संज्ञा स्त्री० [सं० काश्मरी, प्रा० कम्हरी] गंभारी नामक वृक्ष विशेष। दे० "गंभारी"।

खंभावती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्कंभावती] षाड़व जाति की एक रागिनी जो मालकोस राग की दूसरी स्त्री मानी जाती है। इसके गाने का समय आधी रात है।

खँभिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० खंभा] खंभा का अल्पार्थक रूप। छोटा पतला (विशेषतः काठ का) खंभा।

खँवँ†—संज्ञा स्त्री० [सं० खं] वह गड्ढ़ा जिसमें अनाज भर कर रखते हैं। खत्ता।

खँवँड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० खँवँ] बड़ी खँवँ। बड़ा खत्ता।

ख*—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गड्ढा। गर्त। (२) खाली स्थान। (३) निर्गम। निकास। (४) छेद। बिल (५) इंद्रिय। (६) गले की वह नाली जिससे प्राणवायु आती जाती है। (७) कुआँ। (८) तीर का घाव। (९) गाड़ी के पहिये की नाभि का छेद जिसमें धुरा रहता है। आखा। (१०) आकाश। (११) स्वर्ग। (१२) सुख। (१३) कर्म। (१४) जन्मकुंडली में दसवाँ स्थान। (१५) शून्य। (१६) बिंदु। सिफ़र। (१७) ब्रह्म। (१८) शब्द।

खई*†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षयी] (१) क्षयकारिणी क्रिया। (२) लड़ाई। युद्ध। (३) तकरार। झगड़ा। उ०—अंश परायो देत न नीके माँगत ही सब करत खई।—सूर।

खक्खासाहु—संज्ञा पुं० [हिं० खक्खा + साहु] (१) वह मनुष्य जो व्यापार में बहुत चतुर हो। (२) खत्री जाति का व्यापारी।

खक्खा—संज्ञा पुं० [अ० क़हक़हा] ज़ोर की हँसी। अट्टहास। क़हक़हा। उ०—पाइ कै खबर खूबी खुशी मानि खक्खा मारि, खलक के खाली करिबे को खैर भैर सों।—रघुराज।

संज्ञा पुं० [देश०। अनु०] (१) पंजाबी सिपाही।

विशेष—पंजाब के खत्री प्रायः अपने आपको "खक्खा" कहा करते हैं, इसी से यह शब्द अनेक अर्थों में व्यवहृत होने लगा।

(२) अनुभवी पुरुष। तजुर्बेकार आदमी। (३) बड़ा और ऊँचा हाथी।

खखरा—संज्ञा पुं० [हिं० खंखड] (१) खँखरा। देग। (२) बाँस का बना हुआ बड़ा टोकरा।

खखरिया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] मैदे और बेसन की बनी हुई पापड़ की तरह की एक प्रकार की हलकी पतली पूरी जो अलोनी होती।

खखसा—संज्ञा पुं० दे० "खेखसा"।

खखार—संज्ञा पुं० [अनु०] गाढ़ा थूक वा कफ़ जो खखारने से निकले। कफ़।

खखारना—क्रि० अ० [सं० क्षारण] (१) पेट की वायु को फेफड़े से इस प्रकार निकालना जिससे कुछ खरखराहट का शब्द हो तथा कभी कभी कफ़ या थूक भी निकले। (२) दूसरे को सावधान करने के लिये गले से खरखराहट का शब्द निकालना।

खखेटना*—क्रि० स० [सं० खेट=शिकार] (१) दबाना (२) पीछा करना। भगाना। (३) घायल करना। छेदना। उ०—वेई पठनेटे सेल साँगन खखेटे भूरि, धूरि सो लपेटे लेटे भेटे महाकाल के।—सूदन।

खखोंडर†—संज्ञा पुं० [सं० ख + कोटर] (१) पेड़ के कोटर में बना हुआ किसी पक्षी का घोंसला। (२) उल्लू पक्षी का घोंसला।

खखोरना—क्रि० स० [देश०] अच्छी तरह ढूँढ़ना । सब जगह खोज डालना । छान बीन करना ।

खगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा । मंदाकिनी ।

खग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश में चलनेवाली वस्तु वा व्यक्ति । (२) पक्षी । चिड़िया । (३) गंधर्व । (४) बाण । तीर । (५) ग्रह । तारा । सितारा । (६) बादल । (७) देवता । (८) सूर्य्य । (९) चंद्रमा । (१०) वायु । हवा । उ०—खग रवि खग शशि खग पवन खग अंबुद खग देव । खग विहंग हरि सुतरु तजि खग उर सेंबल सेव ।—अने० ।

खगकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ । उ०—बरणि न जाय समर खगकेतू ।—तुलसी ।

खगना†*—क्रि० स० [हिं० खाँग = काँटा] (१) गड़ना । पैठना । चुभना । धँसना । उ०—कह ठाकुर नेह के नेजन की उर में अनी आनि खगी सो खगी ।—ठाकुर । (२) चित्त में बैठना । मन में धँसना । असर करना । उ०—जाही सों लगत नैन ताही के खगत बैन नख शिख लौं सब गात ग्रसति ।—सूर । (३) लग जाना । लिप्त होना । अनुरक्त होना । उ०—प्रफुलित वदन सरोज सुंदरी अति रस नैन रँगे । पुहुकर पुंडरीक पूरन मनो खंजन केलि खगे ।—सूर । (४) चिह्नित हो जाना । छप जाना । उपट आना । उभर आना । उ०—यह सुनि धावत धरनि चरन की प्रतिमा खगी पंथ में पाई । —सूर । (५) अटक रहना । अचल हो कर रह जाना । अड़ जाना । उ०—करि कै महाघमसान । खगि रहे खेत पठान ।—सूदन ।

खगपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़ ।

विशेष—पक्षीवाची शब्द के बाद स्वामीवाची वा ध्वजावाची शब्द लगा देने से वह समस्त शब्द "गरुड़" वाची हो जायगा । जैसे—खगपति, विहंगराज, खगकेतु, खगनाथ, खगनायक ।

(२) सूर्य ।

खगहा—संज्ञा पुं० [हिं० खाँग = निकला हुआ पैना दाँत] गैंडा उ०—खगहा करि हरि बाघ बराहा । देखि महिष वृष साजु सराहा ।—तुलसी ।

खगेश—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ ।

खगोल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश मंडल । यद्यपि आकाश की कोई आकृति नहीं है पर परिमित दृग्रश्मि के कारण वह गोलाकार देख पड़ता है । जिस प्रकार विद्वानों ने पृथ्वी की गोलाई में विषुवद्रेखा, अक्षांश और देशांतर रेखाओं तथा ध्रुव की कल्पना की है ठीक उसी प्रकार खगोल में भी रेखाओं और ध्रुव की कल्पना की गई है । ज्योतिषियों ने ताराओं के प्रधान तीन भेद किए हैं, नक्षत्र, ग्रह और उपग्रह । नक्षत्र वह है जो सदा अपने स्थान पर अटल रहे । ग्रह वह तारा है जो अपने सैार जगत् के नक्षत्र की परिक्रमा करे । और उपग्रह वह है जो अपने ग्रह की परिक्रमा करता हुआ उसके साथ गमन करे । जिस तरह हमारे सैार जगत् का नक्षत्र हमारा सूर्य्य है उसी तरह प्रत्येक अन्य सैार जगत् का नक्षत्र उसका सूर्य्य है । पृथिवी की दैनिक और वृत्ताकार गतियों के कारण इन नक्षत्रों के उदय में विभेद पड़ता रहता है । यद्यपि गगन मंडल सदा पूर्व से पश्चिम को घूमता हुआ दिखाई पड़ता है पर फिर भी वह धीरे धीरे पूर्व की ओर खसकता जाता है । इस लिये ग्रहों की स्थिति में भेद पड़ा करता है । प्राचीन आर्य्य ज्योतिषियों ने कुछ ऐसे तारों का पता लगाया था जो अन्यों की अपेक्षा अत्यंत दूर होने के कारण अपने स्थान पर अचल दिखाई पड़ते थे । उन लोगों ने ऐसे कई तारों के योग से अनेक आकृतियों की कल्पना की थी । इनमें वे आकृतियाँ जो सूर्य्य के मार्ग के आस पास पड़ती थीं अट्ठाइस थीं । इन्हें वे नक्षत्र कहते थे । इन तारों से जड़ा हुआ गगन मंडल अपने ध्रुवों पर घूमता हुआ माना गया है । समस्त खगोल को आधुनिक ज्योतिर्विदों ने बारह वीथियों में विभक्त किया है जिनमें प्रत्येक वीथी के अंतर्गत अनेक मंडल हैं । प्रथम वीथी में पशु, त्रिकोण, मेष, निमि, यज्ञकुंड और यमी ६ मंडल हैं । द्वितीय में चित्रक्रमेल, ब्रह्म, वृष, घटिका, सुवर्णाश्रम और आढ़क ६ मंडल हैं । तृतीय में मिथुन, कालपुरुष, शश, कपोत, मृगव्याध, अर्णवयान, चित्रपट्ट, अभ्र और चत्वाल नाम के ९ मंडल हैं । चतुर्थ में वन मार्ज्जार, कर्कट, शुनी, एकशृंगि, कृकलास, और पतत्रिमीन मंडल नाम के ६ मंडल हैं । पंचम वीथी में सिंहशावक, सिंह, हृदसर्प, पष्ठांश और वायुयंत्र नाम के ५ मंडल हैं । षष्ट में सप्तर्षि, सारमेय, करिशुंड, कन्या, करतल, कास्य, त्रिशंकु, और मक्षिका ८ मंडल हैं । सप्तम में शिशुमार, भूतेश, तुला, शार्दूल, महिषासुर, वृत्त और धूम्राट नामक ७ मंडल हैं । अष्टम में हरिकुल, किरीट, सर्प, वृश्चिक, और दक्षिण त्रिकोण ५ मंडल हैं । नवम वीथी में तक्षक, वीणा, सर्पधारि, धनुष, दक्षिण किरीट, दूरवीक्षण और वेदि ७ मंडल हैं । दशम में बक, शृगाल, बाण, गरुड़, श्रविष्ठा, मकर, अणुवीक्षण, सिंधु, मयूर, और अष्टांश नाम के १० मंडल हैं । एकादश में शेफालि, गोधा, पक्षिराज, अश्वतर, कुंभ, दक्षिण मीन, सारस और चंचुभृत ८ मंडल हैं । और द्वादश वीथी में काश्यपीय, ध्रुवमाता, मीन, भास्कर, संपाति, ह्रद, और ग्राव ७ मंडल हैं । इन सब को लेकर बारह वीथी और ८४ मंडल हैं । इनमें से प्राचीन भारतीय विद्वानों को शिशुमार (विष्णुपुराण), त्रिशंकु (वाल्मीकि), सप्तर्षि इत्यादि मंडलों का पता था । इन वीथियों को क्रमशः मेष, वृष, मिथुन आदि वीथियाँ भी कहते हैं । सूर्य के मार्ग में अट्ठाईस नक्षत्र पड़ते हैं, जिनका नाम अश्विनी आदि हैं । सूर्य्य मेष आदि बारह वीथियों में क्रमशः होकर जाता हुआ दिखाई पड़ता है जिसे राशि वा लग्न कहते हैं । (२) खगोल विद्या ।

खगोलविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिससे खगोल अर्थात् ग्रह आदि की गति का ज्ञान प्राप्त हो। ज्योतिष।

खग्ग*–संज्ञा स्त्री० [सं० खड्ग, प्रा० खग्ग] तलवार।

खग्रास–संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा ग्रहण जिसमें सूर्य्य या चंद्र का सारा मंडल ढँक जाय। पूरा ग्रहण।

खचन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० खचित] (१) बाँधने या जड़ने की क्रिया। उ०—सर्व साधारणों के मनोरंजनार्थ रत्न को जैसे कुंदन में खचित करना पड़ता है वैसे ही काव्य को उक्त गुणों से अलंकृत करना चाहिए। (२) अंकित करने या होने की क्रिया। चित्रित होने की क्रिया। उ०—ध्यान रूपी चित्रालय में कौन कौन चित्र खचित हो गए।

खचना*–क्रि० अ० [सं० खचन = बाँधना, जड़ना] (१) जड़ा जाना। उ०—मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी विद्रुम रची। मनिखंभ भीति विरंचि विरची कनकमणि मरकत खची। सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर अस्फटिकन रचे। प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन खचे।—तुलसी। (२) अंकित होना। चित्रित होना। उ०—देत भाँवरि कुंज मंडप पुलिन में बेदी रची। बैठे जो श्यामा श्याम बर त्रैलोक की शोभा खची।—सूर। (३) रम जाना। अड़ जाना। उ०—आजु हरि ऐसो रास रच्यो।..............गत गुण मद अभिमान अधिक रुचि लै लोचन मन तहँइ खच्यौ।—सूर। (४) अटक रहना। फँसना। उ०—नैना पंकज पंक खचे। मोहन मदन श्याम मुख निरखत भ्रुव विलास रचे।—सूर।

खचर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) मेघ। (३) ग्रह। (४) नक्षत्र। (५) वायु। (६) पक्षी। (७) बाण। तीर। (८) राक्षस। (९) संगीत दामोदर के अनुसार एक ताल का नाम जिसे रूपक भी कहते हैं। (१०) कसीस।

वि० आकाश में चलनेवाला।

खचरा–वि० [हिं० खच्चर] (१) वर्णसंकर। दोगला। (२) दुष्ट। नीच।

खचाखच–क्रि० वि० [अनु०] बहुत भरा हुआ। ठसाठस। जैसे, देखते ही देखते सारा कमरा खचाखच भर गया।

खचाना*–क्रि० स० [हिं० खँचाना] दे० "खँचाना"।

मुहा०—अपनी खँचाना = अपनी ही कही हुई बात को बारंबार पुष्ट करते जाना, दूसरे के तर्क को कुछ न सुनना। उ०—सुनौ धौं दै कान अपनी लोक लोकन कीति। सूर प्रभु अपनी खचाई रही निगमन जीति।—सूर।

खचावट–संज्ञा स्त्री० [हिं० खाँचना] खचन। गठन।

खचित–वि० [सं०] खींचा हुआ। चित्रित या लिखित।

खचिया†–संज्ञा स्त्री० दे० "खँचिया"।

खचीना†–संज्ञा पुं० [हिं० खँचाना] (१) रेखा। लकीर। (२) चिह्न।

खच्चर–संज्ञा पुं० [देश०] (१) गधे और घोड़ी के संयोग से उत्पन्न एक पशु जो घोड़े से बहुत मिलता जुलता होता है। इसके कान आदि अवयव गधे के समान होते हैं, पर शक्ति इसकी घोड़े से भी कुछ अधिक होती है। यह दीर्घ-जीवी होता, बहुत कम बीमार पड़ता और अधिक परिश्रम कर सकता है, इसी लिये कई अवसरों पर यह घोड़ों की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है। यह घोड़े की तरह समझदार होता है और ऊँची नीची भूमि पर इसका पैर बहुत मज़बूत बैठता है। फ़ौजों में और पहाड़ों पर इससे बहुत काम निकलता है। (२) दे० "खचरा"।

खज*–वि० [सं० खाद्य, प्रा० खज्ज] खाने योग्य। जो खाया जा सके। भक्ष्य। उ०—चाली हंसन की चलै चरन चोंच करि लाल। लखि परिहै बक तव कला, भख मारत ततकाल। भख मारत ततकाल ध्यान मुनिवर सों धारत। विहरत पंख फुलाय नहीं खज अखज विचारत। वरनै दीनदयाल बैठि हंसन की आली। मंद मंद पग देत अहो यह छल की चाली।—दीनदयालु।

खजला–संज्ञा पुं० [हिं० खाजा] एक प्रकार का पकवान जिसे खाजा भी कहते हैं। उ०—गुपचुप्प गुना गुल पापरियाँ। खजला सुखजूरि खड़ा परियाँ।—सूदन।

खजलिया–संज्ञा पुं० [देश०] अंगूर के पौधों का एक रोग जिसमें उसके पत्तों और डंठलों पर काली काली धूल सी जम जाती है और पौधा धीरे धीरे सूखता जाता है।

खजहजा–संज्ञा पुं० [सं० खाद्याद्य, प्रा० खज्जाज्ज] खाने योग्य उत्तम फल या मेवा। उ०—(क) नरियर फरे फरे खरहरी। फरे जानु इंद्रासन पुरी। पुनि महुवा चुव अधिक मिठासू। मधु जस मीठ पुहुप जस बासू। और खजहजा उनकर नाऊँ। देखा सब राजन अंबराऊँ।—जायसी। (ख) फरे खजहजा दाड़िम दाखा। जो वहि पंथ जाइ सो चाखा।—जायसी।

ख़ज़ानची–संज्ञा पुं० [फ़ा०] कोशाध्यक्ष। ख़ज़ाने का अफ़सर।

ख़ज़ाना–संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह स्थान जहाँ धन संग्रह करके रक्खा जाय। धनागार। (२) वह स्थान जहाँ कोई चीज़ संग्रह करके रक्खी जाय। कोश (३) राजस्व। कर।

क्रि० प्र०—देना।—माँगना।—जमा करना।—पहुँचाना आदि।

खजित–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शून्यवादी बौद्ध।

खजिल†–वि० [फ़ा०] लज्जित। शरमिंदा।

खजुआ, खजुवा–संज्ञा पुं० [हिं० खाजा] खाजा नाम की मिठाई। खजला। उ०—दोना मेलि धरे हैं खजुआ। हौंस होय तो ल्याऊँ पूवा।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं० खाद्य, पा० खज्ज] भटवाँस नामक अन्न। भटनास।

खजुरहट, खजुरहटी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० खजूर] नैपाल की तराइयों में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की खजूर जिसके पेड़ हाथ डेढ़ हाथ ऊँचे होते हैं। इसकी पत्तियाँ साधारण खजूर से कुछ छोटी होती हैं और चटाई आदि बनाने के काम में आती हैं। इसके फल में प्रायः बीज ही बीज होता है जिसके कारण यह खाने योग्य नहीं होता।

खजुरा†-संज्ञा पुं० [हिं० खजूर] दो या तीन लर का बटा हुआ एक प्रकार का डोरा जिसके एक सिरे पर फुँदना होता है और जिसके साथ स्त्रियाँ सिर की चोटी गूथती हैं।

खजुराही†-संज्ञा स्त्री० [हिं० खजूर] वह स्थान जहाँ खजूर के बहुत से पेड़ हों।

खजुरिया†-संज्ञा स्त्री० [सं० खर्जूरिका] (१) एक प्रकार की खजूर जिसके फल कुछ छोटे होते हैं। (२) खजूर नाम की मिठाई। (३) एक प्रकार की ईख जो सूरत के आस पास होती है।

खजुलाना-क्रि० स० दे० "खुजलाना"।

खजुली-संज्ञा स्त्री० [सं० खर्ज्जु] (१) दे० "खुजली"। (२) एक प्रकार की काई जिसके छू जाने से खुजली उत्पन्न हो जाती है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खाजा] खाजे की तरह की एक मिठाई जो चीनी में पगी होती है।

खजूर-संज्ञा स्त्री० [सं० खर्जूर] (१) एक जाति का पेड़ जो गरम देशों में समुद्र के किनारे वा रेतीले मैदानों में होता है। इस जाति के पेड़ सीधे खंभे की तरह ऊपर चले जाते हैं और उनके सिरे पर पत्तियाँ बहुत कड़ी, चार अंगुल से छः सात अंगुल तक लंबी, पतली और नुकीली होती हैं और एक सींके वा छड़ी के दोनों ओर लगती हैं। पत्ते की यह छड़ी दो तीन हाथ तक लंबी होती है। खजूर कई प्रकार के होते हैं, जिनमें मुख्य दो हैं—एक जंगली, दूसरा देशी। जंगली खजूर को सेंधी, खरक आदि कहते हैं। यह बहुत ऊँचा नहीं होता और हिंदुस्तान में बंगाल, बिहार, गुजरात, करमंडल आदि प्रदेशों में होता है। लगाए हुए खजूर में जड़ के पास अंकुर निकलते हैं, जंगली में नहीं। जंगली के फल भी किसी काम के नहीं होते। ताड़ की तरह इसमें से भी पाछ कर एक प्रकार का सफ़ेद रस वा दूध निकालते हैं और उसे भी ताड़ी कहते हैं। खजूर की ताजी ताड़ी मीठी होती है और उससे गुड़ और सिरका भी बनाया जाता है। लगाए जानेवाले खजूर को पिंड खजूर कहते हैं। इसका पेड़ साठ सत्तर हाथ ऊँचा होता है और जब छः वर्ष से ऊपर का हो जाता है तब उसके नीचे जड़ के पास बहुत से छोटे छोटे अंकुर निकलते हैं। इस प्रकार के खजूर सिंध, पंजाब, गुजरात और दक्षिण में अधिक होते हैं। वहाँ इनकी खेती की जाती है। पौधे बीज से और जड़ के पास के अंकुरों से उत्पन्न किए जाते हैं। पेड़ लगाने के लिये बलुई, दोमट और मटियार सब प्रकार की भूमि काम में लाई जा सकती है, पर पृथिवी में खार का अंश कुछ अवश्य होना चाहिए। तीन से छः वर्ष तक के अंकुर मुख्य पेड़ के पास से खोद लिए जाते हैं और उनकी बड़ी बड़ी पत्तियाँ काट कर फेंक दी जाती हैं। फिर इन पौधों को तीन फुट गहरे और चौड़े गड्ढों में दो ढाई सेर खली मिली हुई खाद के साथ बैठाते हैं। जब पौधा आठ वर्ष से अधिक पुराना होता है तब वह फलने लगता है। माघ फागुन में बालियाँ निकलती हैं। ये बालियाँ पत्ते के आवरण में लिपटी रहती हैं और पीछे बढ़ कर फूल की घौद हो जाती हैं। फल बड़े बड़े घौद में लगते हैं। जब तक फल पक नहीं जाते, बराबर अधिक पानी देने की आवश्यकता पड़ती है। फल पकने के समय पीले होते हैं, फिर फूल आते हैं और अंत में लाल हो जाते हैं। इन फलों को छुहारा कहते हैं। सिंध में पेड़ के पके फल को खुरमा और पकने के पहले तोड़े हुए फल को छुहारा कहते हैं। इनकी अनेक जातियाँ हैं पर नूर आदि अच्छी मानी जाती है। लकड़ी बड़ेर के काम आती है और इससे पुल भी बनाया जाता है। इसकी पत्तियों की डंठल से घर छाए जाते हैं और उनकी छड़ी भी बनाई जाती है। इसकी छाल से एक प्रकार की लाल बुकनी निकलती है जिससे चमड़ा रँगा जाता है। इसकी छाल चमड़ा सिझाने के भी काम आती है। इससे एक प्रकार की गोंद भी निकलती है जिसे हुकुमचिल कहते हैं और जो दवा के लिये काम आती है। इसकी नरम पत्तियाँ, जिन्हें गाछी कहते हैं, सुखा कर रक्खी जाती हैं और उनकी तरकारी बनाई जाती है। इसके छाल के रेशे से रस्सी बटी जाती है। अरब में इसके फूल की बाली के आवरण से जिसे तर कहते हैं एक प्रकार का गुलाब केवड़े की तरह का अर्क निकाला जाता है। वैद्यक में इसका फल पुष्टिकारक, वृष्य, वातपित्त नाशक, कफघ्न, रुचिकर और अग्निवर्धक माना गया है। (२) एक प्रकार की मिठाई जो आटे में घी और शक्कर मिलाकर गूँध कर बनाई जाती है। यह खाने में खसखसी और स्वादिष्ट होती है।

खजूर छड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० खजूर + छड़ी] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जिस पर खजूर की पत्तियों की तरह छड़ियाँ वा धारियाँ होती हैं।

खजूरा†-संज्ञा पुं० [हिं० खजूर] (१) फूस से छाई हुई छत की बँडेर जो प्रायः खजूर की होती है। मँगरा। (२) दे० "कनखजूरा"।

खजूरी-वि० [हिं० खजूर] (१) खजूर संबंधी। खजूर का। (२) खजूर के आकार का। खजूर की तरह का। (३) तीन लर का गूथा हुआ, जैसे, खजूरी चोटी; खजूरी डोरा।

खट–संज्ञा पुं० [स०] (१) कफ। बलग़म। (२) अंधा कूआँ। (३) घूँसा। मुक्का। (४) एक प्रकार की सुगंधित घास। (५) कुल्हाड़ी।

संज्ञा पुं० [सं० षट्] (१) षाड़व जाति का एक राग जो दीपक राग का पुत्र माना जाता है। इसके गाने का समय प्रातःकाल एक दंड से पाँच दंड तक है। इसमें मध्यम स्वर वादी होता है। कोई कोई इसे आसावरी, ललित, टोड़ी, भैरवी आदि रागिनियों से उत्पन्न संकर राग मानते हैं। (२) दे० "षट्"।

संज्ञा पुं० [अनु०] दो चीज़ों के परस्पर टकराने या किसी कड़ी चीज़ के टूटने से उत्पन्न शब्द।

यो०—खटखट। खटाखट। खटपट।

मुहा०—खट से = तुरंत। तत्काल। जैसे,—ज़रा याद दिलाते ही उसने खट से रूपए गिन दिए।

खटक–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) खटका। (२) "खटकना" का भाव।

खटकना–क्रि० अ० [अनु०] (१) 'खट' 'खट' शब्द होना। खटखटाहट होना। जैसे, किवाड़ खटकना। (२) शरीर में किसी काँटे आदि के गड़ने या कंकरी तिनका आदि बाहरी चीज़ों के आ पड़ने के कारण रह रह कर पीड़ा होना। जैसे, पैर में काँटा खटकना या आँखों में सुरमा खटकना। (३) बुरा मालूम होना। खलना। जैसे, तुम्हारा यहाँ रहना सब को खटकता है। दे० "आँख में खटकना"। (४) विरक्त होना। उचटना। हटना। जैसे, अब तो हमारा जी यहाँ से खटक गया। (५) डरना। भय करना। जैसे, वह यहाँ आते हुए खटकते हैं। (६) परस्पर झगड़ा होना। आपस में लड़ाई होना। जैसे, आज कल दोनों भाइयों में खटक गई है। (७) किसी प्रकार के अनिष्ट या अपकार का अनुमान होना। अनिष्ट की भावना या आशंका होना। जैसे, हमें यह बात उसी समय खटकी थी, पर कुछ सोच कर हम चुप रह गए। (८) अनुपयुक्त जान पड़ना। ठीक न जान पड़ना।

उ०—यह शब्द कुछ खटकता है, बदल दो।

संयो० क्रि०—जाना।

खटका–संज्ञा पुं० [हिं० खटकना] (१) 'खट खट' शब्द। जैसे, ज़रा सा खटका होते ही पक्षी उड़ गए। (२) डर। भय। आशंका उ०—अब कोई खटका नहीं है, बासमती कुछ कर नहीं सकती।—अयोध्या।

क्रि० प्र०—लगना।—मिटना।—पड़ना।—होना।

(३) चिंता। फ़िक्र। जैसे, तुम्हारे न आने के कारण रात भर सब को खटका लगा रहा।

क्रि० प्र०—लगना।—मिटना।—होना।—पड़ना।

(४) किसी प्रकार का पेंच, कील या कमानी जिसकी सहायता से किसी प्रकार का आवरण खुलता या बंद होता अथवा इसी प्रकार का और कोई कार्य्य होता है। जैसे, (क) खटका दबाते ही दरवाजा खुल गया। (ख) खटका दबाते ही सारे कमरे में बिजली का प्रकाश हो गया।

क्रि० प्र०—दबाना।

मुहा०—खटके पर होना = खटके के सहारे रहना। जैसे, कमरे के बीच में खटके पर एक चौकोर पत्थर था, जो पैर से दबाते ही नीचे की ओर झूलने लगा।

(५) किवाड़े की सिटकिनी। बिल्ली।

क्रि० प्र०—गिराना।—लगाना।

(६) बाँस का वह टुकड़ा जो फलदार वृक्षों में पक्षियों को डरा कर उड़ाने के लिये बाँधा जाता है। इसके नीचे ज़मीन तक लटकती हुई एक लंबी रस्सी बँधी रहती है जिसे हिलाने या झटका देने से वह टुकड़ा किसी डाली या तने से टकरा कर 'खट खट' शब्द करता है। खटखटा। खड़खड़ा।

क्रि० प्र०—लगाना।—बाँधना।

खटकाना–क्रि० स० [हिं० खटकना] (१) 'खट' 'खट' शब्द करना। किसी वस्तु पर इस प्रकार आघात करना जिसमें खटखट शब्द हो। जैसे, किवाड़ खटकाना। जंजीर खटकाना। (२) शंका उत्पन्न करना। भड़काना। (क्व०)

खटकामुख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा। (२) तीर चलाने का एक आसन।

खटकीरा, खटकीड़ा–संज्ञा पुं० दे० "खटमल"।

खटखट–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) 'खट' 'खट' शब्द। (२) झंझट। झमेला। जैसे, इस काम में बड़ी खटखट है, यह हम से न होगा। (३) लड़ाई। झगड़ा। जैसे, रात दिन की खटखट बुरी होती है।

खटखटा–संज्ञा पुं० [अनु०] दे० "खटका (६)"।

खटखटाना–क्रि० स० [अनु०] (१) खट खट शब्द करना। किसी वस्तु को ठोंकना वा पीटना। खड़खड़ाना। जैसे, दरवाजा या कुंडी खटखटाना (२) स्मरण कराना। याद दिलाना। जैसे, बीच बीच में उसे खटखटाए चलो, रुपया मिल ही जायगा।

खटपट–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) अनबन। लड़ाई। झगड़ा। उ०—(क) उन दोनों में न जाने क्यों खटपट हो गई है। (ख) रोज़ रोज़ की खटपट अच्छी नहीं। (२) दो कठोर वस्तुओं के टकराने का शब्द। "खट खट" का शब्द। उ०—अंग बचाय उछरि पग धरैं। झपटहिँ गदा गदा सों लरैं। खटपट चोट गदा फटकारी। लागत शब्द कोलाहल भारी।—लल्लू।

खटपटिया–वि० [हिं० खटपट] लड़ाई करनेवाला। झगड़ालू।

खटपद–संज्ञा पुं० दे० "षट्पद"।

खटपदी–संज्ञा स्त्री० दे० "षट्पदी"।

खटपाटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खाट + पाट] खाट की पाटी । उ०—लचि लाय रही खटपाटी करौट लै मानो महोदधि को तट ज्यों। कटु बोल सुनो पटुता मुख की पटु दै पलटी पलटी पट ज्यों ।—देव ।

मुहा०—खटपाटी लेना वा लगना = हठ वा क्रोध के कारण स्त्रियों का काम धंधा छोड़ देना ।

खटपापड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] करमई नाम का पेड़ जिसे अमली भी कहते हैं ।

खटपूरा–संज्ञा पुं० [हिं० खड्डु + पूरा] मिट्टी फोड़ कर बराबर करने की मुँगरी ।

खटबुना–संज्ञा पुं० [हिं० खाट + बुनना] खाट या चारपाई आदि बुननेवाला ।

खटभिलावाँ–संज्ञा पुं० [देश०] पियाल नामक वृक्ष जिसमें चिरौंजी होती है ।

खटभेमल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो हिमालय की तराई, आसाम, बंगाल तथा दक्षिण भारत में होता है । इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी होती हैं और चारे के काम में आती हैं । जेठ से कुँआर तक इस में एक प्रकार के पीले छोटे फूल और तदुपरांत मटर के समान छोटे फल लगते हैं जो पकने पर काले हो जाते हैं ।

खटमल–संज्ञा पुं० [हिं० खाट + मल = मैल] मटमैले उन्नाबी रंग का एक प्रसिद्ध कीड़ा जो गरमी में मैली खाटों, कुरसियों और बिस्तरों आदि में उत्पन्न होता है । यह अपने डंक द्वारा मनुष्यों के शरीर से रक्त चूसता है । यह आकार में प्रायः उरद के दाने के बराबर होता है और इसके अंडे बहुत छोटे छोटे और सफ़ेद होते हैं । अंडे से निकलने के प्रायः तीन मास बाद यह पूरे आकार का होता है । इसे छूने से बहुत बुरी दुर्गंध निकलती है । बहुत अधिक गरमी या सरदी में यह मर जाता है । खटकीड़ा । उडुस ।

खटमली–वि० [हिं० खटमल] खटमल के रंग का । गहरा उन्नाबी या खैरा (रंग) ।

खटमिट्ठा–वि० [हिं० खट्टा + मीठा] कुछ खट्टा और कुछ मीठा । जिसमें खट्टा और मीठा दोनों स्वाद हों ।

खटमीठा–वि० दे० "खटमिट्ठा" ।

खटमुख–संज्ञा पुं० दे० "षट्मुख" ।

खटरस–वि० दे० "षटरस" ।

खटराग–संज्ञा पुं० दे० "षट्राग" ।

संज्ञा पुं० [सं० षट्राग = कई चीजों का मेल] (१) झंझट । बखेड़ा ।

क्रि० प्र०—करना ।—फैलाना ।—मचाना ।

(२) अंगड़ खंगड़ । काठ कबाड़ । व्यर्थ और अनावश्यक चीजें ।

क्रि० प्र०—फैलाना ।

खटरिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कीड़ा ।

खटलर–संज्ञा पुं० [देश०] सान धरनेवालों का एक औजार जो लकड़ी का होता है ।

खटला–संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों के कानों का छेद जिसमें वे बालियाँ पहनती हैं ।

संज्ञा पुं० [सं० कलत्र] स्त्री और बाल बच्चे। परिवार । (दक्षिण) ।

खटवाट–संज्ञा स्त्री० दे० "खटपाटी (२)" । उ०—मैं तोंहि लागि लेति खटवाटू । खोजित पतिहि जहाँ लगि घाटू । —जायसी ।

खटाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० खट्टा] (१) खट्टापन । अम्लता । तुरशी । (२) वह वस्तु जिसका स्वाद खट्टा हो । जैसे, आम, इमली, आदि ।

मुहा०—खटाई देना या में देना = गहने आदि को साफ़ करने के लिये खटाई में रखना । खटाई में डालना = बहुत दिनों तक व्यर्थ किसी चीज वा काम को ले कर लटकाए रखना । झमेले में डालना । दुविधा में डालना । कुछ निर्णय न करना । खटाई में पड़ना = दुविधा में पड़ना । अनिश्चित दशा में होना । (सोनार को जो चीजें बनाने को दी जाती हैं, तक़ाज़ा करने पर वे कभी कभी कह देते हैं कि अभी खटाई में पड़ी है) ।

खटाका–संज्ञा पुं० [अनु०] 'खट' का शब्द ।

खटाखट–संज्ञा पुं० [अनु०] 'खट खट' का शब्द ।

क्रि० वि० (१) खटखट शब्द के साथ । (२) चटपट । जैसे, तक़ाज़ा नहीं करना पड़ा, सूरत देखते ही उसने खटाखट रुपए गिन दिए । (३) जल्दी ।

खटाना–क्रि० अ० [हिं० खट्टा] खट्टा होना । किसी वस्तु में खट्टापन आ जाना । जैसे, सिरके का खटाना ।

क्रि० अ० [सं० स्कभ्, स्कब्ध, प्रा० खड्ड = ठहरा हुआ] (१) निर्वाह होना । निभना । गुज़ारा होना । टिकना । उ०—(क) सहज एकाकिन के भवन, कबहुँ न नारि खटाहिँ ।—तुलसी । (ख) ज्यों जलमीन कमल मधुपन को छिन नहिं प्रीति खटाति ।—सूर । (२) परीक्षा में ठहरना । उ०—जो मन लागै राम चरन अस ।......द्वंदरहित गतमान ज्ञानरत विषयविरत खटाय नाना कस ।—तुलसी ।

खटापट, खटापटी–संज्ञा स्त्री० दे० 'खटपट' ।

खटाल†–संज्ञा पुं० [बं० कटाल] समुद्र की ऊँची लहर जो पूर्णिमा के दिन उठती है ।

खटाव–संज्ञा पुं० [हिं० खटाना] निर्वाह । गुजर । जैसे, तुम्हारी ऐसी बुरी आदत है कि किसी के साथ तुम्हारा खटाव नहीं हो सकता ।

संज्ञा पुं० [देश०] वह खूँटा जिसे गाड़ कर नाव बाँधते हैं ।

खटास–संज्ञा पुं० [सं० खटास] मुश्क बिलाव। गंध बिलाव।
संज्ञा स्त्री० [हिं० खट्टा] खट्टापन। खटाई। तुरशी।

खटिक–संज्ञा पुं० [सं० खट्टिक] [स्त्री० खटकिन] हिंदुओं के अंतर्गत एक छोटी जाति जिसका काम फल तरकारी आदि बोना और बेचना है। बुंदेलखंड में इस जाति के लोग भंग और बिहार में ताड़ी भी बेचते हैं।

खटिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० खाट] छोटी चारपाई या खाट। खटोली।

विशेष—इस शब्द के मुहावरों के लिये 'खाट' शब्द देखो।

खटीक–संज्ञा पुं० दे० "खटिक"।

खटेटी†–वि० [हिं० खाट + पीठ ?] जिसपर बिछोना न हो। जैसे, खटेटी खटिया।

खटोलना–संज्ञा पुं० दे० "खटोला"।

खटोला–संज्ञा पुं० [हिं० खाट + ओला (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्प० खटोली] छोटी खाट या चारपाई।

यौ०—उड़न खटोला।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्राचीन देश का नाम जो बुंदेलखंड के अंतर्गत था। यहाँ भीलों की बस्ती अधिक थी। वर्त्तमान सागर दमोह आदि प्रांत उसी के अंतर्गत हैं। उ०—पूछो जहाँ कुंड औ गोला। तजि बायें अँधियार खटोला।—जायसी।

खट्टा–वि० [सं० कटु] कच्चे आम इमली आदि के स्वाद का। तुर्श। अम्ल।

मुहा०—खट्टा होना = अप्रसन्न होना। नाराज होना। खट्टा खाना = अप्रसन्न रहना। मुँह फुलाना। जी खट्टा होना = चित्त अप्रसन्न होना। दिल फिर जाना।

यौ०—खटमिट्ठा। खट्टाचूक। खट्टा मीठा।

संज्ञा पुं० [हिं० खट्टा] नीबू की जाति का एक बहुत खट्टा फल जिसे गलगल भी कहते हैं।

†संज्ञा पुं० [सं० खट्वा] पलंग। चारपाई।

खट्टाचूक–वि० [हिं० खट्टा + चूक] बहुत अधिक खट्टा।

खट्टा मीठा–संज्ञा पुं० [हिं० खट्टा + मीठा] खटमिट्ठा। कुछ खट्टा और कुछ मीठा।

मुहा०—जी खट्टा मीठा होना = जी ललचना। जीभ में पानी भर आना।

खट्टीमिट्ठी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खट्टी + मीठी] एक प्रकार की लता।

खट्टू–संज्ञा पुं० [देश०] जैसलमेर में होनेवाला एक प्रकार का संगमरमर जिसका रंग पीला होता है।

संज्ञा पुं० [पंजा० खटना = रुपया पैदा करना] कमानेवाला।

खट्वांग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक सूर्य्यवंशी पौराणिक राजा का नाम जिसका वर्णन भागवत में आया है। (२) चारपाई का पाया या पाटी। (३) शिव के एक अस्त्र का नाम। (४) एक प्रकार का पात्र जिसमें प्रायश्चित्त करते समय भिक्षा माँगी जाती है। (५) तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा जिससे देवता बहुत प्रसन्न होते हैं।

खट्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खटिया। चारपाई। (२) सुश्रुत के अनुसार फोड़ा आदि बाँधने की १४ प्रकार की पट्टियों में से एक जिसका व्यवहार माथे या गले आदि को बाँधने के लिये होता है।

खड़ंजा–संज्ञा पुं० [हिं० खड़ा + अंग] ईंटों की खड़ी चुनाई। खड़ी ईंटों का जोड़ना। (यह जोड़ाई फ़र्श पर होता है)

क्रि० प्र०—जोड़ना।

खड़–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धान की पेड़ी। पयाल। (२) घास। (३) श्योनाक। (४) एक ऋषि का नाम। (५) चांदी सोने आदि की बुकनी जिसकी सहायता से गिलट की हुई चीज़ों पर जिला करते हैं।

खड़क–संज्ञा स्त्री० दे० "खटक"।

खड़कना–क्रि० अ० [अनु०] [संज्ञा खड़खड़ाहट] 'खड़ खड़' शब्द होना।

विशेष—दे० "खटकना"।

खड़का–संज्ञा पुं० दे० "खटका"।

खड़काना–क्रि० स० दे० "खटकाना"।

खड़खड़ा–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) दे० "खटखटा" या "खटका (६)"। (२) काठ का एक प्रकार का ढाँचा जिसमें जोत कर गाड़ी के लिये घोड़े सधाए या निकाले जाते हैं।

खड़खड़ाना–क्रि० अ० [हिं० खड़खड़] खड़खड़ शब्द करना। जैसे, बाग में सूखी पत्तियाँ खड़खड़ा रही हैं।

क्रि० स० [हिं० खड़खड़] किसी वस्तु में खड़खड़ शब्द उत्पन्न करना। जैसे, वह कुंडी खड़खड़ा रहा है।

खड़खड़ाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़खड़ाना] (१) "खड़ खड़" शब्द। (२) "खड़खड़ाना" का भाव।

खड़खड़िया–संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़खड़ाना] पालकी जिसे चार कहार उठाते हैं। पीनस।

खड़ग*–संज्ञा पुं० दे० "खड्ग"।

खड़गी*–वि० [सं० खड्गिन्] तलवार लिए हुए। तलवारधारी
संज्ञा पुं० [सं० खड्ग] गैंडा नामक जंतु।

खड़जी–संज्ञा पुं० दे० "खड़्गी"। उ०—खड़जी खजाने, खरगोस खिलवतखाने, खीसैं खोले खसखाने खाँसत खबीस हैं।—भूषण।

खड़बड़–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) खड़खड़। खटखट। (२) व्यतिक्रम। उलट फेर। (३) हलचल।

खड़बड़ाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) विचलित होना। घबराना। (२) क्रमहीन होना। बेतरतीब होना।

क्रि० स० (१) किसी वस्तु को उलट पुलट कर "खड़बड़"

शब्द उत्पन्न करना। (२) क्रम विहीन करना। उलट फेर करना। (३) विचलित करना। घबरा देना।

खड़बड़ाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़बड़ाना] "खड़बड़ाना" का भाव।

खड़बड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़बड़ाना] (१) व्यतिक्रम। उलट फेर। (२) हलचल। घबराहट।

खड़बिड़ा–वि० [हिं० खड्ड + सं० विघट, प्रा० विहड] ऊँचा नीचा। असमतल।

खड़बीहड़–वि० दे० "खड़बिड़ा"।

खड़मंडल–संज्ञा पुं० [सं० खंड + मंडल] गड़बड़। घोटाला।

खड़सान–संज्ञा पुं० दे० "खरसान"।

खड़ा–वि० [सं० खडक = खंभा, थूनी] [स्त्री० खड़ी] (१) धरातल से समकोण पर स्थित। सीधा ऊपर को गया हुआ। ऊपर को उठा हुआ। जैसे, खड़ी लकीर, खड़ा बाँस, झंडा खड़ा करना।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

(२) जो (प्राणी) पृथ्वी पर पैर रख टाँगों को सीधा करके अपने शरीर को ऊँचा किए हो। दंडायमान्। जैसे, इतना सुनते ही वह खड़ा हो गया और चलने लगा।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

मुहा०—खड़े खड़े = (१) खड़े रहने की दशा में। उ०—खड़े खड़े पानी मत पीओ = (२) तुरंत। झटपट। उ०—यों खड़े खड़े कोई काम नहीं होता है। खड़ा जवाब = तुरंत अस्वीकार। वह इनकार जो चटपट किया जाय। खड़ा दाँव = जूए का वह दावँ जो जुआरी उठते उठते समय लगाते हैं। खड़ा होना = सहायता देना। मदद करना। उ०—कोई किसी की विपत्ति में नहीं खड़ा होता। खड़ी पछाड़ें खाना = क्रोध या शोक से पृथ्वी पर गिर गिर पड़ना।

(३) स्थिर। ठहरा हुआ। टिका हुआ। रुका हुआ। उ०—(क) इस तरह यह दीवार कब तक खड़ी रहेगी। (ख) घोड़ा खड़ा करो। (४) उत्पन्न। प्रस्तुत। उपस्थित। तैयार। पैदा। जैसे, दाम खड़ा करना, झगड़ा खड़ा करना, मामला खड़ा करना। उ०—(क) उसने अपना दाम खड़ा कर लिया। (ख) उसने बीच में एक नई बात खड़ी कर दी। (५) सन्नद्ध। उद्यत। तैयार। उ०—(क) जिस काम के लिये आप खड़े होंगे वह क्यों न होगा? (ख) बात समझते नहीं, लड़ने को खड़े हो जाते हो।

मुहा०—खड़ा दोना = मिठाई आदि जो किसी पीर को चढ़ाई जाय।

(६) आरंभ। जारी। जैसे, काम खड़ा करना। (७) (घर, दीवार आदि ऊँची वस्तुओं के विषय में) स्थापित। निर्मित। उठा हुआ। जैसे, इमारत खड़ी करना, तंबू खड़ा करना।

मुहा०—खड़ा करना = ढांचा खड़ा करना। स्थूल रूप से आकार आदि बनाना। उ०—तुम्हारा कुरता खड़ा कर चुके हैं, सीना बाकी है।

(८) जो उखाड़ा न गया हो। जो काटा न गया हो। जैसे, खड़ी फ़सल। खड़ा खेत। (९) बिना पका। असिद्ध। कच्चा। जैसे, खड़ा चावल। (१०) समूचा। पूरा। उ०—खड़ा चना चबाना। (११) स्थिर। जिसमें गति न हो। ठहरा। जैसे, खड़ा पानी।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

खड़ाऊँ–संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ + पाँव या 'खटखट' से अनु०] पैर में पहनने के लिये तलुए के आकार की, काठ की पटरी। इसमें आगे की ओर एक खूँटी लगी होती है, जिसे पहनने के समय पैर के अँगूठे और उसके पास की उँगली में अटका लेते हैं। पादुका।

खड़ाका–संज्ञा पुं० [अनु०] खड़ खड़ शब्द। खटका।

खड़ा दस्तरंग–संज्ञा पुं० [देश०] कुश्ती का एक पेंच। इसमें प्रतिद्वंदी की जाँघ में अपना हाथ अड़ा कर उसी के बल से उसके उस हाथ को जो अपने पेट पर हो, दबा कर, उसकी पीठ पर जाना और उसे मरोड़ा देकर गिराना पड़ता है। इसे हनुमंतबंध भी कहते हैं।

खड़ा पठान–संज्ञा पुं० [देश०] जहाज़ के पिछले भाग का मस्तूल (लश०)।

खड़िया–संज्ञा स्त्री० [सं० खटिका] एक प्रकार की सफ़ेद मिट्टी या पत्थर की जाति का एक बहुत मुलायम सफ़ेद पदार्थ जो ज़मीन के अंदर संख घोंघे आदि जानवरों की हड्डियों के चूने से आप ही आप जमकर बनता है। खड़िया इंगलैंड में लंडन के आस पास और फ्रांस के उत्तरी भाग में बहुत होती है। इससे दीवारों पर चूने की भाँति सफ़ेदी की जाती है और अनेक प्रकार की धातुएँ साफ़ की जाती हैं। प्रायः काले तख़्तों पर इससे लिखा जाता है। यह कई प्रकार की होती है। एक प्रकार की खड़िया बहुत कड़ी होती और इमारत में पत्थर के स्थान पर काम आती है। एक और प्रकार की खड़िया काली होती है जो स्लेट के अंतर्गत है। खरिया। खड़ी। दुही।

मुहा०—खड़िया में कोयला = बेमेल बात। अच्छे के साथ बुरे का संयोग।

संज्ञा स्त्री० [सं० कांड या हिं० खड़ा] अरहर का वह पेड़ या बड़ा डंठल जिसमें पत्तियाँ या फलियाँ बिलकुल न हों। खाड़ी। रहठा।

खड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़िया] खड़िया मट्टी। दुही।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़ा = सीधा] (१) पहाड़। (२) दे० "बारह खड़ी"।

खड़ीडंकी–संज्ञा स्त्री० [देश०] मालखंभ की एक कसरत।

खड़ी मसकली–संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़ा + अ० मसकला = रेती]

रुखानी की तरह का कुंद धार का एक औज़ार जिससे सिकली करनेवाले बरतन को खुरच कर जिला करते हैं।

खड़ीसकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़ा + सकी (देश०)] कुश्ती का एक पेंच। इसमें बाएँ हाथ से प्रतिद्वंद्वी की दाहिनी कलाई पकड़ और दाहिने हाथ से उसकी कुहनी को पकड़ कर अपनी ओर खींचना और अपने दहने पैर को उसके पैरों में डाल कर उसकी पिंडली और एँडी को अपनी ओर खींचते हुए उसकी छाती पर धक्का देकर उसे चित्त गिरा देना पड़ता है।

खड़आ†—संज्ञा पुं० [हिं० कड़ा] हाथ या पाँव में पहनने का कड़ा। चूड़ा।

खड्ग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रसिद्ध अस्त्र जिसका व्यवहार आज कल केवल पशुओं को बलि देने के लिये होता है। तलवार इसी का एक भेद है। खाँडा। (२) गैंडा। (३) एक बुद्ध का नाम। (४) चोर। भटेउर (गंधद्रव्य)। (५) तंत्र के अनुसार शक्ति पूजा की एक मुद्रा।

खड्गपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की कटारी जो प्रायः एक हाथ लंबी और दो अंगुल चौड़ी होती थी और जिसका व्यवहार बहुत निकट आए हुए शत्रु पर प्रहार करने के लिये होता था।

खड्गपुत्रिका—संज्ञा स्त्री० दे० "खड्गपुत्र"।

खड्गारीट—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े की ढाल।

खड्गिक—संज्ञा पुं० (१) आखेट करनेवाला। शिकारी। (२) भैंस के दूध का फेन।

खड्गी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके पास खड्ग हो। खड्गधारी। (२) गैंडा।

खड्ड—संज्ञा पुं० [सं० खात] गड्ढा। गढ़ा।

खड्ढा—संज्ञा पुं० [सं० खात = खड्ड] (१) गड्ढा। गढ़ा। (२) बहुत अधिक रगड़ के कारण पड़ा हुआ चिह्न।

खणक—संज्ञा पुं० [सं० खनक] चूहा। मूसा। (डिं०)

खणनाड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षण + नाड़िका] धर्म घड़ी। (डिं०)

खतंग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कबूतर जिसका रंग कुछ मैलापन लिए होता है।

ख़त—संज्ञा पुं० [अ०] (१) पत्र। चिट्ठी।

यौ०—ख़त किताबत = पत्र व्यवहार।

(२) लिखावट। जैसे, मैं पहचानता हूँ, यह उन्हीं का ख़त है। (३) रेखा। लकीर। धारी। (४) दाढ़ी के बाल। (डिं०) (५) हजामत।

क्रि० प्र०—बनाना।—बनवाना।

(६) हजामत में माथे का ऊपरी भाग।

मुहा०—ख़त बनाना = माथे के ऊपरी भाग के बालों को उस्तरे से बराबर करना।

संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिति, प्रा० खिति] पृथिवी। ज़मीन। (डिं०)

खतखोट†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षत + हिं० खुड्ड] घाव के ऊपर की सूखती हुई पपड़ी। खुरंड। उ०—तिय निज हिय जो लगी चलत पिय नखरेख खरोंट। सूखन देति न सरसई खोंटि खोंटि खतखोट।—बिहारी।

ख़तना—संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों की एक रस्म, जिसमें उनके लिंग के अगले भाग का बढ़ा हुआ चमड़ा काट दिया जाता है। सुन्नत। मुसलमानी।

ख़तम—वि० [अ०] पूर्ण। समाप्त।

मुहा०—ख़तम करना = मार डालना। जैसे, एक को तो वहीं ख़तम कर डाला है, एक बचा है सो देखा जायगा। ख़तम होना = मर जाना। प्राण निकल जाना।

ख़तमी—संज्ञा स्त्री० [अ०] गुलखैरू की जाति का एक प्रकार का पौधा जो काश्मीर और पश्चिम हिमालय में होता है। इसमें नीले, लाल, बैंगनी आदि कई रंग के फूल होते हैं। पर सफेद फूल की ख़तमी सब से अच्छी समझी जाती है। इसकी पत्तियाँ पीस कर लोग फोड़े पर लगाते हैं और इसके बीज और जड़ का व्यवहार ओषधियों में होता है। इसके बीज को तुख्म ख़तमी और जड़ को रेशा ख़तमी कहते हैं।

खतरम्मा—संज्ञा पुं० [हिं० खत्री] (१) खत्रियों का समाज। (२) वह स्थान जहाँ अधिकतर खत्री रहते हों।

ख़तर, ख़तरा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) डर। भय। खौफ़। (२) आशंका।

खतरानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खत्री] खत्री जाति की स्त्री।

खतरेटा—संज्ञा पुं० [हिं० खत्री + एटा (प्रत्य०)] खत्री। उ०—केते मुगलाने से पठाने सैयद बाने बाँधि चढ़े। कायथ खतरेटे लोह लपेटे देत चपेटे चाइ बढ़े।—सूदन।

ख़ता—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० ख़तावार] (१) कसूर। अपराध। (२) धोखा। फ़रेब।

मुहा०—खता खाना = धोखे में पड़ना अथवा धोखे में पड़ कर हानि उठाना।

(३) भूल। चूक। ग़लती।

मुहा०—खता खाना = चूकना। गलती करना।

*†संज्ञा पुं० [सं० क्षत] क्षत। घाव। उ०—सोइ साधु को कह्यो बोलाई। कैसो चरणोदक दिय लाई। कह्यो साधु सब को मैं लायो। खता चरण लखि एक बचायो।—रघुराज।

ख़तावार—वि० [अ० खता + फ़ा० वार] दोषी। अपराधी।

खति*—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षति] क्षति। हानि। नुकसान। उ०—कहै पदमाकर त्यौं बदन विशाल होत लाल होत हेरी छल छिद्रन की खति की। गंगा जी तिहारे गुणगान करे अजगैबै आन होत बरषा सुआनँद की अति की।—पद्माकर।

खतिया†–संज्ञा पुं० दे० "खाती"।
संज्ञा स्त्री० [हिं० खत्ता] छोटा गड्ढा।

खतियाना–क्रि० स० [हिं० खाता] प्रति दिन के आय व्यय और क्रय विक्रय आदि को खाते में अलग अलग मद में लिखना।

खतियौनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खतियाना] (१) वह बही वा किताब जिसमें खतियाया जाय। खाता। (२) खतियाने का काम। (३) पटवारी का वह कागज़ जिसमें प्रत्येक असामी का रक़बा और लगान आदि दर्ज हों।

खत्ता–संज्ञा पुं० [सं० खात] [स्त्री० खत्ती] (१) गड्ढा। (२) अन्न रखने का स्थान। (३) नील वा शोरा बनाने का गड्ढा।

खत्म–वि० दे० "खतम"।

खत्रवट*, **खत्रवाट**–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षत्री + वट (प्रत्य०)] (१) क्षत्रीपन। (२) वीरता। (डिं०)।

खत्रिय–संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिय, प्रा० खत्तिय] क्षत्रिय। (डिं०)।

खत्री–संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिय, प्रा० खत्तिय] [स्त्री० खतरानी] (१) हिंदुओं में क्षत्रियों के अंतर्गत एक जाति जो अधिकतर पंजाब में बसती है। इस जाति के लोग प्रायः व्यापार करते हैं। (२) क्षत्रिय। (डिं०)।

खत्री परदेदार–संज्ञा स्त्री० लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का ठप्पा जिससे कपड़ों पर बेल बूटे छापे जाते हैं। यह ठप्पा ३ इंच से ६ इंच तक लंबा होता है।

खत्रीवाट*–संज्ञा स्त्री० दे० "खत्रवट"।

खद–संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्र वा निषिद्ध] मुसलमान। (डिं०)

†**खदखदाना**–क्रि० अ० दे० "खदबदाना"।

†**खदबदाना**–क्रि० अ० [अनु०] "खदबद" शब्द करना जो प्रायः किसी चीज़ के उबलने से उत्पन्न होता है।

खदरा†–संज्ञा पुं० [हिं० खत्ता] (१) गड्ढा। (२) बिना निकाला हुआ छोटा बैल। बछड़ा।
वि० [सं० क्षुद्र] निकम्मा। रद्दी। बेकाम का। जैसे, खदरा माल।

खदशा–संज्ञा पुं० [अ०] भय। डर। आशंका।

खदान–संज्ञा स्त्री० [हिं० खोदना या खान] वह गड्ढा जिसे खोद कर उसके भीतर से कोई पदार्थ निकाला जाय। खान।

खदिर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खैर का पेड़। (२) खैर। कत्था। (३) चंद्रमा। (४) इंद्र। (५) एक ऋषि का नाम।

खदिरपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] लाजवंती या लजाधुर नाम की लता।

खदिरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वराहक्रांता। (२) लाजवंती। लजाधुर।

खदी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो तालों में उत्पन्न होती है।

खदीव–संज्ञा पुं० [फ़ा०] मिस्र के बादशाह की उपाधि।

खदुका–संज्ञा पुं० [सं० खादक = अधमर्ण] (१) महाजन से कर्ज़ लेकर व्यापार करनेवाला आदमी। (२) ऋणी। कर्ज़दार।

खदुहा†–संज्ञा पुं० [हिं० खदुका] छोटी जाति का या छोटा व्यापार करनेवाला मनुष्य।

खदूरवासिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की एक शक्ति का नाम।

खदेरना–क्रि० स० [हिं० खेदना] हटाना। भगाना। दूर करना।

खद्योत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जुगनू। (२) सूर्य।

खद्योतक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) एक प्रकार का वृक्ष जिसका फल बहुत विषैला होता है।

खन*†–संज्ञा पुं० [सं० क्षण] (१) क्षण। लमहा। (२) समय। वक्त। (३) तुरंत। तत्काल। उ०—चेरी धाय सुनत खन धाईं। हीरामन लै आय बोलाईं।—जायसी।
संज्ञा पुं० [सं० खंड] (मकान का) खंड। मरातिब। तल्ला। मंज़िल। जैसे, चार खन का मकान। उ० —चार खन की अटारी के।—लक्ष्मण।
संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का वृक्ष जो "खैर" की तरह होता है। (२) एक प्रकार का कपड़ा जिससे महाराष्ट्र स्त्रियाँ चोली बनाती हैं।

खनक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूहा। मूसा। (२) सेंध लगानेवाला। सेंधिया चोर। (३) ज़मीन खोदनेवाला। (४) वह स्थान जहाँ सोना आदि उत्पन्न होता हो। (५) भूतत्त्व शास्त्र जाननेवाला।

†**खनकना**–क्रि० अ० [अनु०] 'खन खन' शब्द होना। खनखनाना। उ०—झाँझरियाँ झनकैंगी खरी, खनकैंगी चुरी तन कौ तन तोरे।—भिखारीदास।

†**खनकाना**–क्रि० स० [अनु०] "खन खन" शब्द उत्पन्न करना।

खनखजूरा–संज्ञा पुं० दे० "कनखजूरा"।

खनखना–संज्ञा पुं० [अनु०] वह जिससे 'खन खन' शब्द उत्पन्न हो।

†**खनखनाना**–क्रि० अ० [अनु०] 'खन खन' शब्द होना। खनकना।
क्रि० स० [अनु०] 'खन खन' शब्द उत्पन्न करना। जैसे, रुपया खनखनाना।

खनना*†–क्रि० स० [सं० खनन] (१) खोदना। उ०—(क) कीन्हेसि लोवा इंदुर चाटी। कीन्हेसि बहुत रहैं खनि माटी।—जायसी। (ख) कूप खनि कत जाय रे नर जरत भवन बुझाय। सूर हरि को भजन करि ले जन्म मरण नशाय।—सूर। (२) कोड़ना।

खनयित्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] खंती नामक औज़ार।

खनवाना–क्रि० स० [हिं० खनना] खनना का प्रेरणार्थक रूप।

खनहन†–वि० [सं० क्षीण + हीन] (१) दुबला पतला। कमज़ोर। (२) जिसमें भद्दापन न हो। सुंदर। खूबसूरत। जैसे, खनहन मुखड़ा।

खनिज–वि० [सं०] खान से खोदकर निकाला हुआ।

खनित्र, खनित्रक–संज्ञा पुं० [सं०] खंता नाम का खोदने का औज़ार। गैनी।

खनोना*†–क्रि० स० [हिं० खनना] खनना। खोदना। उ०—राधे-कत निकुंज ठाढ़ी रोवति। इंदु ज्योति मुखारविंद की चकित चहूँ दिशि जोवति। द्रुम शाखा अवलंब बेलि गहि नख सों भूमि खनोवति। मुकुलित कच तन घन की ओट ह्वै अँसुवन चीर निचोवति। सूरदास प्रभु तजी गर्व ते भये प्रेम गति गोवति।—सूर।

खन्ना–संज्ञा पुं० [सं० खनन = काटना] चारा काटने का स्थान।

खपची–संज्ञा स्त्री० [तु० कमची] (१) कमठी। बाँस की पतली तीली। (२) कबाब भूनने की सीख। (३) बाँस की पतली पटरी जिससे डाक्टर या जर्राह टूटा हुआ अंग बाँधते हैं।

खपटा†–संज्ञा पुं० दे० "खपड़ा"।

खपटी†–संज्ञा स्त्री० [सं० खपड़ा] (१) छोटा खपड़ा। (२) तख्ते के छोटे छोटे टुकड़े जो कड़ियों के बीच में आइनाबंदी के लिये जड़े जाते हैं।

खपड़झारा†–संज्ञा पुं० [हिं० खपड़ा + झारना] किसानों की एक रसम जो प्रति वर्ष पहले पहल ऊख पेरने के समय की जाती है। इसमें ब्राह्मणों और गरीबों को नया रस पिलाया जाता है और थोड़ा गुड़ बना कर देवता के निमित्त प्रसाद बाँटा जाता है।

खपड़ा–संज्ञा पुं० [सं० खर्पर, प्रा० खप्पट] (१) मिट्टी का पका हुआ टुकड़ा जो मकान की छाजन पर रखने के काम आता है। यह प्रायः दो प्रकार का होता है। एक प्रकार का खपड़ा चपटा और चौकोर होता है जिसे "थपुआ" या "पटरी" कहते हैं। और दूसरे प्रकार का खपड़ा नाली के आकार का और लंबा होता है, इसे "नरिया" कहते हैं। "थपुआ" खपड़ा छाजन पर बिछा कर उनकी संधियों पर "नरिया" खपड़ा औंधा कर रख देते हैं। भिन्न भिन्न स्थानों के खपड़ों के आकार प्रकार आदि में थोड़ा बहुत भेद होता है। नए ढंग के अँगरेज़ी खपड़े केवल "थपुआ" के आकार के होते हैं और उनमें "नरिया" की आवश्यकता नहीं होती।

क्रि० प्र०—छाना।

(२) मिट्टी के घड़े के नीचे का आधा भाग जो गोल होता है। (३) मिट्टी का वह बरतन जिसमें भिखमंगे भीख माँगते हैं। खप्पर। (४) मिट्टी के टूटे हुए बरतन का टुकड़ा। ठीकरा। (५) कछुए की पीठ पर का कड़ा ढकन।

संज्ञा पुं० [सं० क्षुरपत्र] वह तीर जिसका फल चौड़ा हो।

संज्ञा पुं० [देश०] गेहूँ में होनेवाला एक प्रकार का कीड़ा।

खपड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० खर्पर] (१) मिट्टी की वह हँड़िया जिसमें भड़भूँजे दाना भूनते हैं। (२) नांद की तरह का मिट्टी का छोटा बरतन। (३) दे० "खोपड़ी"।

खपड़ैल–संज्ञा स्त्री० दे० "खपरैल"।

खपत, खपती–संज्ञा स्त्री० [हिं० खपना] (१) समावेश। समाई। गुंजायश। (२) माल की कटती या बिक्री।

खपना–क्रि० अ० [सं० क्षेपण] [संज्ञा खपत] (१) किसी प्रकार व्यय होना। लगना। कटना। काम में आना जैसे, (क) बाजार में माल खपना। (ख) व्याह में रुपया खपना। (ग) पूरी में घी खपना। (२) निभना। चलजाना। गुजर होना। समाई होना। जैसे, बहुत से अच्छे रुपयों में दो चार बुरे रुपए भी खप जाते हैं। (३) नष्ट होना। उ०—(क) जो खेप भरे तू जाता है वह खेप मियाँ मत जान अपनी। अब कोई घड़ी पल साइत में यह खेप बदन की है खपनी।—नजीर। (ख) उस युद्ध में कई हजार आदमी खप गए।

संयो० क्रि०—जाना।

(४) तंग होना। दिक होना।

खपरा–संज्ञा पुं० दे० "खपड़ा"।

खपरिया–संज्ञा स्त्री० [सं० खर्परी] भूरे रंग का एक खनिज पदार्थ जो वैद्यक में जस्ते का उपधातु और क्षय, ज्वर, विष और कुष्ठ आदि का दूर करनेवाला माना गया है। यह आँख के अंजन और सुरमे आदि में भी पड़ता है। फ़ारस आदि स्थानों में नकली खपरिया भी बनती है।

पर्या०—चक्षुष्य। दर्विका। रसक।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खपड़ा का अल्प०] (१) छोटा खपड़ा। (२) एक प्रकार का कीड़ा जो चने की फसल में लगता है।

खपरैल–संज्ञा स्त्री० [हिं० खपड़ा + ऐल (प्रत्य०)] (१) खपड़े से छाई हुई छत।

मुहा०—खपरैल डालना = खपड़े की छत छाना।

(२) वह मकान जिसकी छत खपड़े से छाई हो।

खपली–संज्ञा पुं० [हिं० खपड़ा] एक प्रकार की गेहूँ जो बंबई, सिंध और मैसूर आदि प्रांतों में पैदा होती है। यह खरीफ की फसल में होती है और इसके दानों को भूसी से अलग करने में बड़ी कठिनता होती है। इसे कहीं कहीं गोधी या कफली भी कहते हैं।

खपाच–संज्ञा स्त्री० [हिं० खपची] (१) रेशमवालों का एक औजार जो बाँस की दो खपचियों को तले ऊपर बाँध कर बनाया जाता है। (२) दे० "खपची"।

खपाची–संज्ञा स्त्री० दे० "खपची"।

खपाट–संज्ञा पुं० [हिं० खपची या कपाट] धौंकनी के मुँह पर लगे हुए लकड़ी के छोटे डंडे जिनके सहारे वह उठाई और दबाई जाती है।

खपाना–क्रि० स० [सं० क्षेपण] (१) किसी प्रकार व्यय करना। लगाना। काम में लाना।

मुहा०—माथा या सिर खपाना = सिर पच्ची करना। मस्तिष्क से बहुत अधिक या व्यर्थ काम लेना। हैरान होना

(२) निर्वाह करना। निभाना। (३) नष्ट करना। समाप्त करना। उ०—मनों मेघनायक ऋतु पावस बाण वृष्टि करि सैन खपायो।—सूर। (ख) भूषण शिवाजी गाजी खग्ग सों खपाये खल खाने खाने खलन के खेरे भये खीस हैं।—भूषण। (४) तंग करना। दिक करना।

खपुआ†–वि० [हिं० खपना = नष्ट होना] डरपोक। भगोड़ा। कायर। उ०—तुलसी करि केहरि नाद भिरे भट खग्ग खगे खपुआ खरके। नख दंतन सों भुजदंड विहंडत, मुंड सों मुंड परे भरके।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [हिं० खपची] लकड़ी की वह खपची जो किसी दरवाजे के नीचे उसकी चूल को छेद में दृढ़ बैठाने के लिये लगाई या ठोंकी जाती है।

खपुर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधर्व मंडल जो कभी कभी आकाश में उदय होता है और जिसके उदय होने से अनेक शुभाशुभ फल माने जाते हैं। (२) पुराणानुसार एक नगर जो आकाश में है और जिसे पुलोमा और कालका नाम की दैत्य-कन्याओं के प्रार्थना करने पर ब्रह्मा ने बनाया था। (३) राजा हरिश्चंद्र की पुरी जो आकाश में स्थित मानी जाती है। (४) सुपारी का पेड़। (५) भद्रमोथा। (६) बाघनख। बघनखा।

खपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश कुसुम। (२) असंभव बात। अनहोनी घटना।

खप्पड़–संज्ञा पुं० दे० "खप्पर"।

खप्पर–संज्ञा पुं० [सं० खर्पर] (१) तसले के आकार का मिट्टी का पात्र। (२) काली देवी का वह पात्र जिसमें वह रुधिर पान करती हैं।

मुहा०—खप्पर भरना = खप्पर में मदिरा आदि भर कर देवी पर चढ़ाना।

(३) भिक्षापात्र। (४) खोपड़ी।

ख़फ़गी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) अप्रसन्नता। नाराजगी। (२) क्रोध। कोप।

ख़फ़ा–वि० [अ०] (१) अप्रसन्न। नाराज। नाखुश। (२) क्रुद्ध रुष्ट।

ख़फ़ीफ़–वि० [अ०] (१) अल्प। थोड़ा। कम। (२) हलका। (३) तुच्छ। क्षुद्र। (४) लज्जित। शरमिंदा।

ख़फ़ीफ़ा–वि० स्त्री० [अ०] दे० "ख़फ़ीफ़"।

खफ्फा–संज्ञा पुं० [देश०] कुश्ती का एक पेंच। इसमें विपक्षी की गरदन पर बाएं हाथ से थपकी देकर तुरंत अपने दाहिने हाथ में उसे इस प्रकार फांस लेते हैं, जिसमें अपनी कलाई उसके गले पर रहे और तब अपने बाएं हाथ से उसका दाहिना पहुँचा पकड़ कर थोड़ा ऊपर उठाते या झटका देते हैं, जिस से विपक्षी गिर पड़ता है।

ख़बर–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) समाचार। वृत्तांत। हाल। उ०—भूप द्वार तिन खबरि जनाई। दशरथ नृप सुनि लीन बोलाई।—तुलसी।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—पहुँचना।—पाना।—भेजना।—मिलना।—लाना।—सुनना।

मुहा०—ख़बर उड़ना = चर्चा फैलना। अफ़वाह होना। ख़बर फैलना = ख़बर उड़ना। ख़बर लेना = (१) समाचार जानना। वृत्तांत समझना। (२) दीन दशा पर ध्यान देना। सहायता करना, या सहानुभूति दिखलाना। जैसे, आप तो कभी हमारी ख़बर ही नहीं लेते। (३) दंडित करना। सजा देना। जैसे, आज उनकी खूब ख़बर ली गई।

(२) सूचना। ज्ञान। जानकारी। जैसे, (क) हमें क्या ख़बर कि आप आए हुए हैं। (ख) उन्हें इन बातों की क्या ख़बर है।

क्रि० प्र०—रखना।—होना।

(३) भेजा हुआ समाचार। सँदेसा।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—भेजना।—मिलना। आदि।

(४) चेत। सुधि। संज्ञा। जैसे, उन्हें अपने तन की भी खबर नहीं रहती।

क्रि० प्र०—रहना।—होना।

(५) पता। खोज।

क्रि० प्र०—मिलना।—लगना।

ख़बरगीरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) देखरेख। देखभाल। चौकसी (२) सहानुभूति और सहायता।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

ख़बरदार–वि० [फ़ा०] [संज्ञा ख़बरदारी] होशियार। सजग। चैतन्य। सावधान।

ख़बरदारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सावधानी। होशियारी।

खबरि*–संज्ञा स्त्री० दे० "खबर"।

खबरिया*†–संज्ञा स्त्री० दे० "खबर"। उ०—पूछत चली खबरिया, मितवा तीर। हर्षित अतिहिं तिरियवा, पहिरत चीर।—रहीम।

ख़बरी–संज्ञा पुं० [फ़ा०] दूत। (डिं०)

ख़बीस–संज्ञा पुं० [अ०] [भाव० ख़बासत, ख़बीसी] वह जो दुष्ट और भयंकर हो।

ख़ब्त–संज्ञा पुं० [अ०] [वि० ख़ब्ती] पागलपन। सनक। झक।

मुहा०—ख़ब्त सवार होना = सनक चढ़ना। पागलपन रहना।

ख़ब्ती–वि० [अ०] जिसे ख़ब्त हो। सनकी। सौदाई। पागल।

खब्बर, खब्बल–संज्ञा पुं० [देश०] दूब नाम की घास।

खब्बा–वि० [पं०] (१) बायाँ। दाहिने का उलटा। (२) बाएं हाथ से काम करनेवाला।

खब्भड़†–वि० [अ० खब्बीस वा हिं० खामड़] बुड्ढा और दुर्बल। दुबला पतला। उ०—यह गाय तो बिलकुल खब्भड़ हो गई है।

√**खभरना***†–क्रि० स० [हिं० भरना] (१) मिलाना। मिश्रित करना। जैसे, गेहूँ के आटे में जौ का आटा खभरना। (२) उथल पुथल मचाना। उ०—ओड़ि अदिन के ढाल ढकेला। भलो लरयो बल करत बुँदेला। खभरि खेत तहँ पर बिचलायो। सूबन के उर साल सलायो।—लाल।

खभरुआ–वि० [हिं० खभरना = मिलना] पुँश्चली स्त्री से उत्पन्न बालक। छिनाल का लड़का

खभार–संज्ञा पुं० दे० "खँभार"।

ख़म–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) टेढ़ापन। टेढ़ाई। कज। झुकाव।

मुहा०—ख़म खाना = (१) मुड़ना। झुकना। दबना। (२) हारना। पराजित होना। नीचा देखना। उ०—(क) पहर रात भर मार मचाई। मुरक्यो तुरक उहाँ खम खाई।—लाल। (ख) सूदन समर साहि सैन तून तून गनी हनी देह गोलिन न खाई खेत खम है।—सूदन। खम ठोंकना = (१) लड़ने के लिये ताल ठोंकना। उ०—आए तहँ जहाँ खल छलकारी। फेंट बाँधि खम ठोंकि खरारी।—लल्लू। (२) दृढ़ता दिखलाना। खम ठोंक कर = (१) ताल ठोंक कर। (२) दृढ़ता या निश्चय पूर्वक। जोर देकर। जैसे, मैं खम ठोक कर यह बात कह सकता हूँ। खम बजाना या मारना = दे० "खम ठोंकना"।

यौ०—खमदम। खमदार।

(२) गाने के बीच बीच में वह विश्राम जो लय में लोच या लचक लाने के लिये लिया जाता है।

क्रि० प्र०—लेना।

+**खमकना**–क्रि० अ० [अनु०] खम खम शब्द करना। उ०—खमकंत बीर करि करि सुचोख। लमकंत तुरंगम पाइ पोष।—सूदन।

खमदम–संज्ञा पुं० [फ़ा० खम + दम] पुरुषार्थ। साहस।

खमदार–वि० [फ़ा०] झुका हुआ। टेढ़ा।

√**खमसना**†–क्रि० स० दे० "खभरना"।

ख़मसा–संज्ञा पुं० [अ० खमसः = पाँच संबंधी] (१) एक प्रकार की गज़ल जिसके प्रत्येक बंद में पाँच चरण होते हैं। (२) संगीत में एक प्रकार का ताल जिसमें पाँच आघात और तीन खाली होते हैं। इसका बोल यह है। धा, धा, केट्टे, ताग् तेरे केटे, तागर, देत, धा। (ताल चिह्न: + ० १ २ ० ३ ४ ० +)

खमा–संज्ञा स्त्री० दे० "क्षमा"। (डिं०)

खमाल†–संज्ञा पुं० [देश०] (१) खजूर के हरे फल जो पच्छिम में भेड़, बकरी और गायों को खिलाए जाते हैं। (२) जहाज में असबाब की लदाई। लदनी।

ख़मीर–संज्ञा पुं० [अ०] (१) गूँधे हुए आटे का सड़ाव।

क्रि० प्र०—उठना।—उठाना।

मुहा०—ख़मीर बिगड़ना = गूँधे हुए आटे का अधिक उठने के कारण बहुत खट्टा हो जाना। ख़मीर खट्टा होना = दे० "ख़मीर बिगड़ना"।

(२) गूँध कर उठाया हुआ आटा। माया। (३) कटहल अनन्नास आदि को सड़ा कर तैयार किया एक पदार्थ जो तंबाकू में उसे सुगंधित करने के लिये डाला जाता है। (४) स्वभाव। प्रकृति।

मुहा०—ख़मीर बिगड़ना = स्वभाव या व्यवहार आदि में भेद पड़ना।

ख़मीरा–वि० पुं० [अ०] [स्त्री० खमीरी] (१) खमीर उठा कर बनाया या खमीर मिलाया हुआ। जैसे, खमीरी रोटी। ख़मीरा तंबाकू। (२) चीनी या शीरे में पका कर बनाई हुई ओषधि जैसे, खमीरा बनफ़शा।

खमो–संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा सदाबहार पेड़। यह भारतवर्ष, बर्म्मा और अंडमन टापू में समुद्र के मटियाले किनारों और दरारों में उत्पन्न होता है। इसके छिलके में सज्जी का अंश अधिक होता है और वह चमड़ा सिझाने के काम आता है। इससे एक प्रकार का रंग निकलता है जिसमें सूती कपड़े रँगे जाते हैं। इसके फल खाने में मीठे होते हैं और खाये जाते हैं। इसकी डालियों से सूत की तरह पतली जटा निकलती है जिससे एक प्रकार का नमक बनता है। इसकी लकड़ी भी अच्छी होती है पर बहुत कम काम में आती है। इसे भोर और राई भी कहते हैं।

खमोश–वि० दे० "खामोश"।

खमोशी–संज्ञा स्त्री० दे० "खामोशी"।

खम्माच–संज्ञा स्त्री० [हिं० खंबावती] मालकोस राग की दूसरी रागिनी। यह षाड़व जाति की रागिनी है और रात के दूसरे पहर की पिछली घड़ी में गाई जाती है।

खम्माच कान्हड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० खम्माच + कान्हड़ा] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो रात के दूसरे पहर में गाया जाता है।

खम्माच टोरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खंभावती + टोरी] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो खंभावती और टोरी से मिल कर बनती है।

खम्माची–संज्ञा स्त्री० दे० "खम्माच"।

खय*†–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षय] (१) विनाश। क्षय। (२) प्रलय।

ख़यानत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) धरोहर रखी हुई वस्तु न देना अथवा कम देना। गबन। (२) चोरी या बेईमानी।

ख़याल–संज्ञा पुं० दे० "ख्याल"।

खयाली–वि० दे० "ख्याली"।

खरंजा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) वह ईंट जो बहुत अधिक पकने के कारण जल गई हो। झाँवाँ। (२) खड़ंजा।

खर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गधा। (२) खच्चर। (३) बगला। (४) कौवा। (५) एक राक्षस जो रावण का भाई था और पंचवटी में रामचंद्र के हाथ से मारा गया था। (६) तृण। तिनका। घास।

यौ०—खरपतवार = कूड़ा करकट।

(७) ६० संवत्सरों में से २५ वाँ संवत्। इस वर्ष में बहुत उपद्रव होते हैं। (८) प्रलंबासुर का एक नाम। (९) छप्पय छंद का एक भेद। (१०) एक चौकोर वेदी जिस पर यज्ञों में यज्ञपात्र रक्खे जाते हैं। (११) कंक। (१२) कुरर पक्षी। (१३) सूर्य्य का पार्श्वचर।

वि [सं०] (१) कड़ा। सख़्त। (२) तेज़। तीक्ष्ण। (३) घना। मोटा। (४) हानिकर। अमांगलिक। जैसे, खर मास। (५) तेज़ धार का। (६) आड़ा। तिरछा।

संज्ञा पुं० दे० "खराई"।

†संज्ञा पुं० [सं० खर = तेज] करारा। कुरकुरा।

मुहा०—(घी) खर करना = (घी) गरम कर के तपाना।

खरक–संज्ञा पुं० [सं० खड्क = स्थाणु] (१) जंगलों आदि में लकड़ियों के खंभे गाड़ कर और उनमें आड़ी बल्लियाँ बाँध कर घेरा और छाया हुआ स्थान जिसमें गाएं रखी जाती हैं। इसे कहीं कहीं ठाढ़ा भी कहते हैं। उ०—बछरा सखी एक भग्यो खरका तें महूँ तेहिं दौरि पछेरो कियो।—सेवक। (२) पशुओं के चरने का स्थान। चीरे हुए पतले बाँसों को बाँध कर बनाया हुआ किवाड़ जिसे ग़रीब लोग अपने घरों में लगाते हैं। टट्टर।

संज्ञा स्त्री० दे० "खटक" या "खड़क"।

खरकत्ता–संज्ञा पुं० [देश०] लटोरे की जाति का एक पक्षी।

खरकना–क्रि० अ० [अनु०] खरखराना। खर खर शब्द होना।

क्रि० अ० [हिं० खर] (१) फाँस चुभने के कारण दर्द होना। (२) फाँस चुभने का सा दर्द होना। (३) खड़कना। सरकना। चलदेना। उ०—तुलसी करि केहरि नाद भिरे भट खग्ग खगे, खपुआ खरके।

खरकवट–संज्ञा स्त्री० [हिं० खर = तिनका वा आड़ा] दो अंगुल चौड़ी एक चिकनी पटरी जो करघे में दो खूँटियों पर अटका कर आड़ी रक्खी जाती है और जिस पर ताना फैला कर बिनाई होती है। इसका व्यवहार प्रायः गुलबदन आदि बिनने के समय होता है।

खरका–संज्ञा पुं० [हिं० खर] कड़ा तिनका।

मुहा०—खरका करना = भोजन के उपरांत दाँतों में फँसे हुए अन्न आदि को तिनके से खोद कर निकालना।

संज्ञा पुं० दे० "खरक"।

खरकोण–संज्ञा पुं० [सं०] तीतर पक्षी। (डिं०)

खरखरा–वि० दे० "खुरखुरा"।

ख़रख़शा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) झगड़ा। लड़ाई। (२) भय। आशंका। डर। (३) झंझट। बखेड़ा।

खरखौकी*–संज्ञा स्त्री० [हिं० खर + खाना] खर, तृण आदि खानेवाली अग्नि। उ०—लागि दवारि पहार ठही लहकी कपि लंक यथा खरखौकी।—तुलसी।

खरग–संज्ञा पुं० दे० "खड्ग"।

खरगोश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] खरहा। चौगड़ा।

विशेष—दे० "खरहा"।

खरच–संज्ञा पुं० दे० "खर्च"।

खरचना–क्रि० स० [फ़ा० खर्च] (१) व्यय करना। खर्च करना। उठाना। लगाना। (२) व्यवहार में लाना। बरतना।

खरचा–संज्ञा पुं० दे० "खर्चा"।

खरची–संज्ञा स्त्री० दे० "खर्ची"।

खरज–संज्ञा पुं० दे० "षड्ज"।

खरज़ूर–संज्ञा पुं० दे० "खजूर" या "खजूर"।

खरतरगच्छ–संज्ञा पुं० [सं०] जैन संप्रदाय की एक शाखा।

खरतल†–वि० [हिं० खरा] (१) खरा। स्पष्टवादी। (२) शुद्ध हृदयवाला। (३) मुरौव्वत न करनेवाला। शील संकोच न करनेवाला। (४) साफ़। स्पष्ट।

क्रि० प्र०—रहना।—कहना।

(५) प्रचंड। उग्र।

खरतुआ–संज्ञा पुं० [हिं० खर + बथुआ] बथुए की तरह की एक घास जो पंजाब और मध्य प्रदेश में अधिकता से होती है। इसे चमर बथुआ भी कहते हैं।

खरदंड–संज्ञा पुं० [सं०] पद्म।

खरदनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खरादना] खरादने का औज़ार। खराद। कुजनी।

खरदा–संज्ञा पुं० [देश०] अंगूर का एक रोग जिसमें उसकी डालियों पर लाल रंग की बुकनी बैठ जाती है और पौधे की बाढ़ नष्ट हो जाती है।

खरदूषण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खर और दूषण नामक राक्षस जो रावण के भाई थे। (२) धतूरा।

वि० [सं०] जिसमें बहुत से दोष हों।

खरधार–संज्ञा पुं० [सं०] तेज धारवाला अस्त्र।

खरध्वंसी–संज्ञा पुं० [सं० खरध्वंसिन्] (१) रामचंद्र। (२) कृष्णचंद्र।

खरनादिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] रेणुका नाम का गंधद्रव्य।

खरना–क्रि० स० [हिं० खरा] ऊन को पानी में उबाल कर साफ करना।

खरपत–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो, रुहेलखंड, अवध, बर्मा तथा नीलगिरि में अधिकता से होता है और

जो जेठ बैसाख में फूलता और कातिक अगहन में फलता है। इसका फल मकोय के आकार का होता और कच्चा खाया जाता है। इसकी पत्तियाँ को हाथी बहुत रुचि से खाते हैं। इसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है और इसमें से हरापन लिए हुए पीले रंग का एक प्रकार का गोंद निकलता है। इसे धोगर भी कहते हैं।

खरपा–संज्ञा पुं० [सं० खर्व] चौबगला।

खरब–संज्ञा पुं० [सं० खर्व] (१) सौ अरब। संख्या का बारहवाँ स्थान। (२) बारहवें स्थान की संख्या।

खरबूजा–संज्ञा पुं० [फ़ा० खर्बुज़ा] (१) ककड़ी की जाति की एक बेल जिसके फल गोल, बड़े मीठे और सुगंधित होते हैं। इसके बीज प्रायः नदियों के किनारे पूस माघ में गड्ढे खोद कर बो दिए जाते हैं और घास फूस से ढक दिए जाते हैं जिनसे शीघ्र ही बहुत बड़ी बड़ी बेलें निकल कर चारों ओर खूब फैलती हैं। चैत से आषाढ़ तक इसमें फल लगते हैं। इसकी सरदा, सफेदा, चितला आदि अनेक जातियाँ हैं। इसके बीज ठंढाई के साथ पीस कर पिए जाते हैं और कई तरह से चीनी आदि में पाग कर खाए जाते हैं। बीजों से एक प्रकार का तेल भी निकल सकता है जो खाने और साबुन बनाने के काम में आ सकता है। (२) इसका फल।

खरबोजना–संज्ञा पुं० [हिं० खार + बोझना] रँगरेजों का वह मटघड़ा जिस पर रंग का माट रख कर रंग टपकाते हैं।

खरब्बा†–वि० [हिं० खराब] चरित्रहीन। बदचलन।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः स्त्रियों के लिये ही होता है।

खरभर†–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) खरभर का शब्द। (२) हौरा। शोर। गुल गपाड़ा। रौला। (३) हलचल। गड़बड़। उ०—(क) खरभर देखि सकल पुर नारी। सब मिलि देहिँ महीपन गारी।—तुलसी। (ख) होनिहार का करतार को रखवार जग खरभर परा। दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहँ कोपि कर धनुसर धरा।—तुलसी।

खरभराना–क्रि० अ० [हिं० खरभर] (१) खरभर शब्द करना। (२) शोर करना। रौला करना। (३) गड़बड़ या हलचल मचाना। (४) चंचल होना। व्याकुल होना।

खरमंजरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा।

खरमस्ती–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दुष्टता। पाजीपन। शरारत।

क्रि० प्र०—करना।—सूझना।

खरमास–संज्ञा पुं० दे० "खरवाँस"।

खरमिटाव†–संज्ञा पुं० [हिं० खराई + मिटाना] जलपान। कलेवा।

खरमुख–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम जिसे केकय देश में भरतजी ने मारा था।

खरल–संज्ञा पुं० [सं० खल] पत्थर की गहरी, गोल या लंबोतरी कूँड़ी जिसमें दस्ते से ओषधियाँ कूटी जाती हैं। खल।

मुहा०—खरल करना = ओषधि आदि को खरल में डाल कर महीन पीसना। महीन कूटना।

खरली–संज्ञा स्त्री० दे० "खली"।

खरवट–संज्ञा स्त्री० [देश०] काठ के दो टुकड़ों से बना हुआ एक तिकोना औजार जिसमें रेती जानेवाली वस्तु को फँसा कर उसे रेतते हैं।

खरवाँस–संज्ञा पुं० [हिं० खर + मास] पूस और चैत का महीना जब कि सूर्य्य धन और मीन का होता है। इन महीनों में मांगलिक कार्य्य करना वर्जित है।

खरशिला–संज्ञा पुं० [सं०] मंदिर आदि की कुरसी का वह ऊपरी भाग जिस पर सारी इमारत खड़ी रहती है।

खरस–संज्ञा पुं० [फ़ा० खिर्स] रीछ। भालू। (कलंदरों की बोली)।

खरसा†–संज्ञा पुं० [सं० षड्स] एक प्रकार का भोज्य पदार्थ। उ० —भईं मिथौरी सिरका परा। सोंठ लाय कै खरसा धरा।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो आसाम और ब्रह्मा देश की नदियों में पाई जाती है।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) ग्रीष्म ऋतु। गरमी के दिन। (२) अकाल। कहत।

संज्ञा पुं० [फ़ा० ख़ारिश] खाज। खुजली। ख़ारिश।

खरसान–संज्ञा स्त्री० [हिं० खर + सान] एक प्रकार की सान जो अधिक तीक्ष्ण होती है। इस पर तलवार उतारी जाती है। उ०—(क) शिष्य खांडा गुरु मसकला चढ़ै शब्द खरसान। शब्द सहे सन्मुख रहै निपजै शिष्य सुजान।—कबीर। (ख) बाला तेरे नैन की विसाल साल सौतन के बलभद्र साने हैं सुहाग खरसान के।—बलभद्र।

खरसुमा–वि० [फ़ा० खर + सुम] जिस (घोड़े) के सुम गधे के सुमों की भांति बिलकुल खड़े हों।

खरसैला–वि० [हिं० खरसा = खाज] जिसे खुजली हुई हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः पशुओं के लिये होता है।

खरहर–संज्ञा पुं० [देश०] बलूत की जाति का एक पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है। इसकी पत्तियाँ बेर की पत्तियों से बड़ी होती हैं। फल बलूत ही के से होते हैं। इसकी कच्ची लकड़ी जो सफ़ेद होती है और पकने पर गहरी भूरी हो जाती है खेती के औजार बनाने के काम में आती है। छाल से चमड़ा सिझाया जाता है।

खरहरना†–क्रि० अ० [हिं० खर = तिनका + हरना] झाड़ देना।

खरहरा–संज्ञा पुं० [हिं० खरहरना] [स्त्री० अल्प० खरहरी] (१) रहठे वा अरहर की डंठलों से बना हुआ झाड़ू जिसे झंखरा भी कहते हैं। (२) एक चौकोर छोटी पटरी जिसमें धातु की बनी हुई, छोटे दाँतों की कंघियाँ जड़ी होती हैं। यह घोड़े का बदन खुजलाने और उसमें से गर्द और धूल निकालने के

काम में आती है। चमड़े के टुकड़े में एक विशेष प्रकार से लोहे के तार जड़ कर भी खरहरा बनाया जाता है।

खरहरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक मेवा (कदाचित खजूर)। उ०—(क) तहरी पाक बोने औ गरी। परी चिरौंजी और खरहरी।—जायसी। (ख) नरियर फरे फरी खरहरी। फरें जानु इंद्रासन पुरी।—जायसी।

खरहा-संज्ञा पुं० [हिं० खर = घास + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० खरहरी] चूहे की जाति का, पर उससे कुछ बड़े आकार का एक जंतु जिसके कान लंबे, मुँह और सिर गोल, चमड़ा नरम और रोएँदार पूँछ छोटी और पिछली टांगें अपेक्षाकृत बड़ी होती हैं। यह संसार के प्रायः सभी उत्तरी भागों में भिन्न भिन्न आकार और वर्ण का पाया जाता है। यह जंगलों और देहातों में ज़मीन के अंदर बिल खोद कर झुंड में रहता है और रात के समय आस पास के खेतों, विशेषतः ऊख के खेतों को बहुत हानि पहुँचाता है। यह बहुत अधिक डरपोक और अत्यंत कोमल होता है और जरा से आघात से मर जाता है। यह छलांगें मारता हुआ बहुत तेज दौड़ता है। इसके दाँत बड़े तेज होते हैं। खरही छः मास की होने पर गर्भवती हो जाती है और एक मास पीछे सात आठ बच्चे देती है। दस पंद्रह दिन पीछे वह फिर गर्भवती हो जाती है और इसी प्रकार बराबर बच्चे दिया करती है। किसी किसी देश के खरहे जाड़े के दिनों में सफ़ेद हो जाते हैं। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है। शास्त्रों के अनुसार यह भक्ष्य है और वैद्यक में इसका मांस ठंढा, लघु, शोथ, अतीसार, पित्त और रक्त का नाशक और मलबद्धकारक माना गया है। इसे चौगुड़ा, लमहा और खरगोश भी कहते हैं। इसका संस्कृत नाम 'शश' है।

खरही-संज्ञा स्त्री० [हिं० खर] (घास या अन्न आदि का) ढेर। समूह। राशि।

खरांडक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम।

खरांशु-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

खरा-वि० [सं० खर = तीक्ष्ण] [स्त्री० खरी] (१) तेज़। तीखा। चोखा। (२) अच्छा। बढ़िया। स्वच्छ। विशुद्ध। बिना मिलावट का। "खोटा" का उलटा। जैसे, खरा सोना। खरा रुपया। उ०—राजैं नवीन निकाई भरी रतिहू तें खरी वे दुहूँ परजंक में।—सुंदरीसर्वस्व।

मुहा०—खरा खोटा = भला बुरा। खरा खोटा परखना = अच्छे बुरे की पहचान करना। जी खरा खोटा होना = चित्त चलायमान होना। मन डिगना। बुरी नीयत होना। खरे आए = अच्छे मिले! अच्छे आए! (व्यंग्य)।

(३) करारा। सेंक कर कड़ा किया हुआ।

मुहा०—कान खरा करना = कान गरम करना। कान मलना।

(४) चीमड़। कड़ा। जो झुकाने या मोड़ने से टूट जाय। (५) साफ़। छल छिद्र शून्य। जिसमें किसी प्रकार की बेईमानी न हो। जिसमें किसी प्रकार का धोखा न हो। जो व्यवहार में सच्चा और ईमानदार हो। जैसे, खरा मामला। खरा आदमी।

मुहा०—खरा आदमी = लेन देन में सफ़ाई रखनेवाला आदमी। व्यवहार में सच्चा मनुष्य। ईमानदार। खरा खेल = साफ़ मामला। शुद्ध व्यवहार। खरा खेल फ़र्रुखाबादी = फ़र्रुखाबाद के रुपए की तरह शुद्ध और सच्चा व्यवहार। (फ़र्रुखाबाद की टकसाल का रुपया किसी समय में बहुत खरा और चोखा समझा जाता था)।

(६) नक़द (दाम)। उ०—खरी मजूरी चोखा काम।

मुहा०—रुपए खरे होना = रुपए मिलने का निश्चय होना। उ०—तुम्हारे रुपए तो खरे हो गए अब हमारा इनका मामला रह गया है।

(७) उचित बात कहने वा करने में शील संकोच न करनेवाला। लगी लिपटी न कहनेवाला। स्पष्टवक्ता। (८) (बात के लिये) यथातथ्य। सच्चा। अप्रिय सत्य। जैसे, खरी बात।

मुहा०—खरी सुनाना, खरी खरी सुनाना = सच्ची बात कहना, चाहे किसी को बुरा लगे चाहे भला।

(९) बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—(क) अरे परेखो को करै, तुही बिलोक विचार। केहि नर केहि सर राखियो, खरे बढ़े पर पार।—बिहारी। (ख) रस के उपजावत पुंज खरे पिय लेत परे रस के चसके।—बृंद।

खराई-संज्ञा स्त्री० [हिं० खरा + ई (प्रत्य०)] "खरा" का भाव। खरापन।

संज्ञा स्त्री० [देश०] सबेरे अधिक देर तक जलपान या भोजन आदि न मिलने के कारण जुकाम होना, गला बैठना, या प्रकृति में इसी प्रकार और कुछ गड़बड़ होना।

मुहा०—खराई मारना = जल पान करना। कलेवा करना।

खराऊँ-संज्ञा स्त्री० दे० "खड़ाऊँ"।

खराद-संज्ञा पुं० [अ० खर्रात से फ़ा० खर्राद] एक औज़ार जिस पर चढ़ा कर लकड़ी, धातु आदि की सतह चिकनी और सुडौल की जाती है। चारपाई के पावे, डिबिया, खिलौने आदि बढ़ई खराद ही पर चढ़ा कर सुडौल और चमकीले करते हैं। ठठेरे भी बरतनों को चिकना करने और चमकाने के लिये उन्हें खराद पर चढ़ाते हैं। उ०—मानों खराद चढ़े रवि की किरनैं गिरी आनि सुमेरु के ऊपर।—पजनेस।

मुहा०—खराद वा खराद पर चढ़ना वा उतरना = (१) ठीक होना। दुरुस्त होना। सुधरना। (२) लौकिक व्यवहार में कुशल होना। अनुभव प्राप्त होना। खराद वा खराद पर चढ़ाना वा उतारना = ठीक करना। सुधारना। दुरुस्त करना। सँवारना।

उ०—खैंचि खराद चढ़ाये नहीं न सुढार के ढारनि मध्य ढराये।—सरदार।

संज्ञा स्त्री० (१) खरादने का भाव। (२) खरादने की क्रिया। (३) ढंग। बनावट। गढ़न।

खरादना–क्रि० स० [हिं० खराद] (१) खराद पर चढ़ा कर किसी वस्तु को साफ़ और सुडौल करना। (२) काट छाँट कर सुडौल बनाना।

खरादी–संज्ञा पुं० [हिं० खराद] जो खरादने का काम करे। खरादनेवाला।

खरापन–संज्ञा पुं० [हिं० खरा + पन] (१) खरा का भाव। (२) सत्यता। सच्चाई।

मुहा०—खरापन बघारना = सच्चाई की डींग मारना। बहुत अधिक सच्चा बनना।

(३) उन्मत्तता।

खराब–वि० [अ०] (१) बुरा। निकृष्ट। हीन। अच्छा का उलटा। (२) दुर्दशाग्रस्त। जो बहुत दुरवस्था में हो। जैसे, मुक़दमा लड़ कर उन्होंने अपने आप को ख़राब कर दिया। (३) पतित। मर्य्यादा भ्रष्ट।

मुहा०—(किसी को) ख़राब करना = (किसी पर स्त्री के साथ) कुकर्म करना। ख़राब होना = दुश्चरित्रा होना। बद-चलन होना।

खराबी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) बुरापन। दोष। अवगुण। (२) दुर्दशा। दुरवस्था।

क्रि० प्र०—आना।—लाना।—होना।

मुहा०—ख़राबी में पड़ना = विपत्ति या दुर्दशा में फँसना।

(३) गंदगी। गलीज़। (कहारों की बोली)।

विशेष—जब अगला कहार कहीं विष्ठा आदि पड़ी हुई देखता है तब पिछले कहार को सचेत करने के लिये इस शब्द का प्रयोग करता है।

खराब्दांकुरक–संज्ञा पुं० [सं०] लहसुनियाँ नाम का रत्न। वैदूर्य मणि।

खरारि, खरारी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामचंद्र। (२) विष्णु-भगवान। (३) कृष्णचंद्र। (४) बलराम (धेनुक असुर को मारने के कारण)। (५) एक छंद का नाम जो ३२ मात्राओं का होता है।

खराश–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह हलका घाव जो छिलन आदि के कारण हो जाता है। खरोंच। छिलन।

खरिक–संज्ञा पुं० [देश०] वह ऊख जो खरीफ की फसल के बाद बोई जाय।

संज्ञा पुं० दे० "खरक", "खरका"।

खरिच†–संज्ञा पुं० दे० "ख़र्च"।

खरिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० खर + इया (प्रत्य०)] पतली रस्सी से बनी हुई जाली जो घास, भूसा आदि बाँधने के काम में आती है। पांसी। उ०—कुशगात ललात जो रोटिन को घर बात धरे खुरपा खरिया।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खार = राख] कंडे की राख।

संज्ञा स्त्री० [देश०] वह लकड़ी जिसकी सहायता से नाँद में नील कस कर भरते या दबाते हैं।

संज्ञा स्त्री० दे० "खड़िया"।

खरिहट†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खर] वह पतली लकड़ी या तिनका जिसमें एक डोरा बँधा रहता है और जिसकी सहायता से कुम्हार बने हुए बर्तन आदि को चाक की मिट्टी से काट कर अलग करता है।

खरिहान–संज्ञा पुं० दे० "खलियान"।

खरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईख।

संज्ञा स्त्री० दे० "खड़िया", "खली"।

खरीता–संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० अल्प० खरीती] (१) थैली। खीसा। (२) जेब। (३) वह बड़ा लिफ़ाफ़ा जिसमें किसी बड़े अधिकारी आदि की ओर से मातहत के नाम आज्ञापत्र आदि भेजे जांय।

खरीतिया–संज्ञा पुं० [अ० खरीता] मुसलमानी राजत्व काल का एक प्रकार का कर। इसे अकबर ने उठा दिया था।

ख़रीद–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) क्रय। मोल लेने की क्रिया।

यौ०—ख़रीद-फ़रोख्त = क्रय-विक्रय।

(२) मोल लिया हुआ पदार्थ। ख़रीदी हुई चीज़। जैसे, यह दुशाला पचास रुपए की ख़रीद है।

ख़रीदना–क्रि० स० [फ़ा० ख़रीदना] मोल लेना। क्रय करना।

ख़रीदार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) मोल लेनेवाला। ग्राहक। (२) चाहनेवाला। इच्छुक।

ख़रीदारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मोल लेने की क्रिया। क्रय।

ख़रीफ़–संज्ञा स्त्री० [अ०] वह फ़सल जो आषाढ़ से आधे अगहन के बीच में काटी जाय। इस फ़सल में धान, मकई, बाजरा, उर्द, मोठ, मूँग आदि अन्न होते हैं।

खरीम–संज्ञा स्त्री० [देश०] मुर्गी की जाति की एक चिड़िया जो प्रायः पानी के किनारे रहती है। इसके पर तीतर की तरह चितले होते हैं।

खरील–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का ज़ेवर जिसे स्त्रियाँ बंदी की भाँति सिर पर पहनती हैं।

खरे–संज्ञा पुं० [देश०] एक आने प्रति रुपए की दलाली। (दलालों की बोली)।

खरेठ–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

खरेंडुआ†–संज्ञा पुं० दे० "खरोरी"।

खरेरा–संज्ञा पुं० दे० "खरहरा"।

खरोंच–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुरण] (१) नख आदि लगने या और किसी प्रकार छिलने का हलका चिह्न। ख़राश। (२) पतौर नामक भोज्य पदार्थ जो अरुई आदि के पत्तों को पीठी या बेसन में लपेट कर तलने से बनता है।

खरोंचना–क्रि० स० [सं० क्षुरण] खुरचना। करोना। छीलना।

खरोट–संज्ञा पुं० दे० "खरोंच"।

खरोटना–क्रि० स० दे० "खरोंचना"।

खरोरा†–संज्ञा पुं० दे० "खँडौरा"।

खरोरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खड़ा] छकड़ा गाड़ी में दोनों ओर के वे खूँटे जिन पर रोक के लिये बाँस बँधे रहते हैं।

खरोष्ट्री, खरोष्ठी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लिपि जो अशोक के समय में भारत की पश्चिमोत्तर सीमा की ओर प्रचलित थी। यह लिपि फारसी की तरह दाहिने से बाएँ को लिखी जाती है। इसे गांधार लिपि भी कहते हैं।

खरौंट†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खरोंच] खरोंच। खराश। उ०—मैं बरजी कै बार तू उत कित लेत करौंट। पखुरी गड़ै गुलाब की परिहै गात खरौंट।—बिहारी।

खरौंटना†–क्रि० स० दे०, "खरोंचना"।

खरौंहाँ†–वि० [हिं० खारा + हौं] कुछ कुछ खारा। कुछ नमकीन। उ०—स्याम सुरति करि राधिका तकति तरनिजा तीर। अँसुवन करति तरौंस को छिनक खरौंहो नीर।—बिहारी।

खर्खोद–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का इंद्रजाल।

खर्च–संज्ञा पुं० [अ० खर्ज] (१) किसी काम में किसी वस्तु का लगना। व्यय। सरफा। खपत। जैसे, (क) दस रुपए खर्च हो गए। (ख) इस शहर में पानी का बहुत खर्च है।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—बाँटना।

मुहा०—खर्च उठाना = व्यय का भार सहना। खर्च करना। जैसे, इस महीने में उन्हें बहुत खर्च उठाना पड़ा। खर्च में डालना = (१) व्यय करने के लिये विवश करना। (२) किसी रक़म का खर्च के मद में लिखना। खर्च में पड़ना = व्यय करने के लिये विवश होना। (३) किसी रक़म का खर्च के मद में लिखा जाना। खर्च चलाना = व्यय का निर्वाह करना आवश्यक व्यय के लिये धन देते रहना।

यौ०—ऊपरी खर्च = नियमित से अतिरिक्त या अनिश्चित व्यय। फुटकर खर्च।

(२) वह धन जो किसी काम में लगाया जाय। जैसे, उनके पास कुछ भी खर्च नहीं है।

खर्चना–क्रि० स० दे० "खरचना"।

खर्चा–संज्ञा पुं० दे० "खर्च"।

खर्ची–संज्ञा स्त्री० [हिं० खर्च] वह धन जो वेश्या आदि को कुकर्म्म कराने के निमित्त मिले। कसब कराने का पुरस्कार।

क्रि० प्र०—कमाना।

मुहा०—खर्ची पर चलना या जाना = कुकर्म्म कराना। प्रसंग कराना।

खर्चीला–वि० [हिं० खर्च + ईला (प्रत्य०)] जो बहुत अधिक व्यय करे। खूब खर्च करनेवाला।

खर्ज्जरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी मिट्टी।

खर्जिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] उपदंश या गरमी नाम का रोग।

खर्जूर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खजूर। (२) चाँदी। (३) हरताल (४) बिच्छू।

खर्जूरवेध–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक प्रकार का योग जिसमें विवाह होना वर्जित है। इसे एकार्गल भी कहते हैं।

खर्पर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तसले के आकार का मिट्टी का बरतन। (२) काली देवी का वह पात्र जिसमें वह रुधिर पान करती हैं। (३) भिक्षापात्र। (४) खोपड़ा। (५) चोर। (६) धूर्त्त। (७) खपरिया नामक उपधातु।

खर्ब–वि० [सं०] (१) जिसका अंग भग्न या अपूर्ण हो। न्यूनांग। (२) छोटा। लघु। उ०—महामत्त गजराज को वश कर अंकुश खर्ब।—तुलसी। (३) वामन। बौना।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) संख्या का बारहवाँ स्थान। सौ अरब। खरब। (२) बारहवें स्थान की संख्या।

विशेष—वैदिक काल में संख्या का पैंतीसवाँ स्थान खर्ब कहलाता था।

(३) कुबेर की नौ निधियों में से एक। (४) कूजा नाम का वृक्ष।

खर्बट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहाड़ के ऊपर बसा हुआ गाँव। (२) वह गाँव जो चार सौ गाँवों के बीच में बसा हो।

खर्बिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह अमावास्या जिसमें चतुर्दशी भी मिली हुई हो। ऐसी अमावस्या बहुत कम होती है। (२) वह तिथि जिसका काल-मान पहले दिन की तिथि के काल-मान से कुछ कम हो।

खरांच†–वि० दे० "खर्चीला"।

खर्रांट–वि० दे० "खुर्रांट"।

खर्रा–संज्ञा पुं० [खर खर से अनु०] (१) वह लंबा या बड़ा काग़ज़ जिसमें कोई भारी हिसाब या विवरण लिखा हो। (२) एक प्रकार का रोग जिसमें पीठ पर छोटी छोटी फुंसियाँ निकल आती हैं और चमड़ा कड़ा और खुरदुरा हो जाता है।

खर्राटा–संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो सोते समय नाक से विशेषतः बलग़मी आदमी की नाक से निकलता है।

मुहा०—खर्राटा भरना, मारना या लेना = बेखबर सोना।

खल–वि० [सं०] [भाव० खलता] (१) क्रूर। (२) नीच। अधम। (३) दुर्जन। दुष्ट। (४) चुगुलखोर। (५) निर्लज्ज। बेहया। (६) धोखेबाज। फ़रेबी।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) तमाल का पेड़। (३) धतूरा। (४) खलियान। (५) कोठिला। (६) तलछट। (७) पृथ्वी। (८) स्थान। (९) खरल।

मुहा०—खल करना=खल में महीन पीसना। खल होना=पिसना। चूर चूर होना। उ०—खल भई लोक लाज कुल कानी।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं० खल=खरल] (१) पत्थर का बड़ा टुकड़ा। उ०—इतै मान यह सूर महा शठ हरि नग बदलि महा खल आनत।—सूर। (२) सोनारों का "किटकिना" नाम का ठप्पा।

खलई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खल+ई (प्रत्य०)] खलता। उ०—सीदत साधु साधुता सोचति खल बिलसत हुलसति खलई है।—तुलसी।

ख़लक़†–संज्ञा पुं० [अ०] (१) सृष्टि के प्राणी वा जीवधारी। (२) दुनिया। संसार। जगत।

ख़लक़त–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सृष्टि। (२) भीड़। झुंड।

✓**खलखलाना**–क्रि० अ० [अनु०] किसी द्रव पदार्थ का उबलना। खौलना।

खलड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खाल+ड़ी (प्रत्य०)] छाल। चमड़ा।

खलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता। नीचता। "खल" का भाव।

संज्ञा पुं० [हिं० खरीता] सिपाहियों का वह थैला जिसमें वे अपना जरूरी सामान रखते हैं। झोला थैला।

खलत्व–संज्ञा पुं० [सं०] खलता। दुष्टता।

✓**खलना**–क्रि० अ० [सं० खर=तीक्ष्ण] बुरा लगना। नागवार मालूम होना। अप्रिय होना।

क्रि० स० [हिं० खाली] पत्तर आदि को नली के रूप में बनाने के लिये मोड़ना या झुकाना। (सोनारों की परिभाषा)।

खलनी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खाली] सोनारों का एक औजार जिस पर रख कर घुंडी आदि बनाई जाती है।

खलबल–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) हलचल। (२) शोर। हल्ला। (३) कुलबुलाहट।

✓**खलबलाना**–क्रि० अ० [हिं० खलबल] (१) खलबल शब्द करना। (२) खौलना। (३) कुलबुलाना। हिलना डोलना (४) विचलित होना। खड़बड़ाना।

खलबली–संज्ञा स्त्री० [हिं० खलबल] (१) हलचल। (२) घबराहट। व्याकुलता।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचना।

खलमूर्ति–संज्ञा पुं० [सं०] पारा।

खलयज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] खलियान में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

ख़लल–संज्ञा पुं० [अ०] रोक। अवरोध। रुकावट। बाधा।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

यौ०—ख़लल दिमाग़=पागलपन। सनक।

खलसा–संज्ञा स्त्री० [सं० खालिश] एक प्रकार की बड़ी मछली जो समस्त उत्तर भारत, आसाम तथा चीन में होती है। इसमें काँटे अधिक होते हैं और जल से निकाल लेने पर भी यह कुछ समय तक जीती रहती है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस रूखा और वात बढ़ानेवाला होता है।

खलाइत†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खाल+इत (प्रत्य)०] धौंकनी। भाथी।

खलाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खल+ई (प्रत्य०)] खलता। दुष्टता। उ०—कान्ह कृपाल बड़े नतपाल गए खल खेचर खीस खलाई।—तुलसी।

✓**खलाना***†–क्रि० स० [हिं० खाली] (१) पात्र आदि में से भरी हुई चीज़ बाहर निकालना। खाली करना। (२) गड्ढा करना। गड्ढा बनाना। जैसे, कुआँ खलाना। (३) सोने के पत्तर को घुंडी आदि बनाने के लिये बीच में दबा कर कटोरी की तरह बनाना। (४) पचकाना। किसी फूली हुई सतह को नीचे की ओर धँसाना। जैसे, पेट खलाना। उ०—माँगत पेट खलाय।—तुलसी।

खलार†–वि० [हिं० खाली] नीचा। गहरा। जैसे, खलार भूमि।

खलास–वि० [अ०] (१) छूटा हुआ। मुक्त। (२) खतम। समाप्त।

खलासी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खलास] मुक्ति। छुटकारा। छुट्टी।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।

संज्ञा पुं० [उर्दू] (१) जहाज़ पर का वह नौकर जो पाल चढ़ाता, रस्से बाँधता तथा इसी प्रकार के और कार्य्य करता है। (२) खेमा आदि खड़ा करने और असबाब ढोनेवाला नौकर।

ख़लाल–संज्ञा पुं० [अ०] धातु आदि का बना हुआ लंबा, नुकीला, छोटा टुकड़ा जिससे दाँतों में फँसा हुआ अन्न आदि खोद कर निकालते हैं।

खलाल–संज्ञा स्त्री० [हिं० खेल] (ताश आदि के खेल में) पूरी बाजी की हार। पूरी मात।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।

मुहा०—खलाल देना=मात करना।

खलित*–वि० [सं० स्खलित] (१) चलायमान। चंचल। डिगा हुआ। उ०—दिग्गज चलित खलित मुनि आसन इंद्रादिक भय मान।—सूर। (२) गिरा हुआ। पतित।

मुहा०—खलित होना=वीर्य्य-पात होना। वीर्य्य निकल पड़ना। उ०—पारवती ऐसी पत्नी जाकी ताको मन क्यों डोला। खलित भये छवि देखि मोहिनी हा हा करि के बोला।—कबीर।

खलिन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़े की लगाम। (२) वह लोहा

जिसमें लगाम बँधी रहती है और जो घोड़े के मुँह में रहता है।

खलियान-संज्ञा पुं० [सं० खल+स्थान] (१) खेतों के पास वह स्थान जहाँ फ़सल काट कर रखी, माँड़ी और बरसाई जाती है। अनाज और भूसा दोनों यहीं अलग अलग किए जाते हैं।

मुहा०—खलियान करना=(१) काटी हुई फसल का ढेर लगाना। (२) तितर बितर करना। नष्ट करना।

(२) राशि। ढेर। उ०—तुमने तो यहाँ कपड़ों का खलियान लगा रखा है।

क्रि० प्र०—लगाना।

खलियाना-क्रि० स० [हिं० खाल] खाल उतारना। चमड़ा अलग करना।

†क्रि० स० [हिं० खाली] खाली करना।

खलिवर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] मसूड़ों का एक रोग जिसमें वायु के प्रकोप से मसूड़ों की जड़ का मांस बढ़ जाता है और बड़ी पीड़ा होती है।

खलिश-संज्ञा पुं० [सं०] खलसा नाम की मछली।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह कसक या पीड़ा जो किसी चीज के चुभने अथवा घाव आदि के भरने के उपरांत पीब आदि दूषित अंशों के बाकी रह जाने के कारण होती है।

खलिहान†-संज्ञा पुं० दे० "खलियान"।

खली-संज्ञा स्त्री० [सं० खलि] तेल निकाल लेने पर तेलहन की बची हुई सीठी।

वि० [हिं० खलना] जो बुरा मालूम हो। खलने या खटकनेवाला। उ०—करि रारि आगे खली दुष्ट होई।—विश्राम।

संज्ञा पुं० [सं० खलिन्] (१) महादेव। (२) एक प्रकार के दानव जिन्हें महाभारत के अनुसार वशिष्ट देव ने मारा था।

खलीज-संज्ञा स्त्री० [अ०] खाड़ी।

खलीता-संज्ञा पुं० दे० "खरीता"।

ख़लीफ़ा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) अध्यक्ष। अधिकारी। (२) कोई बूढ़ा व्यक्ति। (३) खुर्राट (दरजी)। (४) खानसामा। बावर्ची। (५) हज्जाम। नाई।

खलु-अव्य०, क्रि० वि० [सं०] (१) शब्दालंकार। (२) प्रश्न। (३) प्रार्थना। (४) नियम। (५) निषेध। (६) निश्चय। अवश्य। उ०—तव प्रभाव बड़वानलहिं जारि सकै खलु तूल।—तुलसी।

खलूरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ अस्त्र शस्त्र का अभ्यास या व्यायाम इत्यादि हो।

खलेल-संज्ञा पुं० [हिं० खली+तेल] खली आदि का वह अंश जो फुलेल में रह जाता है और निथारने या छानने पर निकलता है। फुलेल का गाज। उ०—सुख सनेह सब दियो दशरथहि खरि खलेल थिरथानी।—तुलसी।

खल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का कपड़ा। (२) चमड़े की मशक। (३) चमड़ा। (४) चातक। (५) ओषधि कूटने का खल। खरल।

खल्लड़-संज्ञा पुं० [सं० खल्ल] (१) चमड़े की मशक या थैला। (२) ओषधि कूटने का खल। (३) चमड़ा। उ०—मारते मारते खल्लड़ उधेड़ देंगे। (४) वह वृद्ध मनुष्य जिसका चमड़ा झूल गया हो।

खल्ला-संज्ञा पुं० [हिं० खाली] (१) नृत्य में एक प्रकार का भाव जिससे पेट का खाली होना झलकता है। (२) जूता।

संज्ञा पुं० [सं० खल] खलियान।

संज्ञा स्त्री० [सं० खल्ल=चमड़ा] जूता।

खल्लासर-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में दसवाँ योग।

खल्ली-संज्ञा पुं० [सं०] एक वायु रोग जिसमें हाथ पाँव मुड़ जाते हैं। यह वात के ८४ रोगों के अंतर्गत है।

संज्ञा स्त्री० दे० "खली"।

खल्लीट-संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जिससे सिर के बाल झड़ जाते हैं। गंज।

खल्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह रोग जिसके कारण सिर के बाल झड़ जाते हैं। (२) एक प्रकार का धान। (३) चना।

खल्वाट-संज्ञा पुं० [सं०] गंजरोग जिसमें सिरके बाल झड़ जाते हैं।

वि० [सं०] जिसके सिर के बाल झड़ गए हों। गंजा।

खवा-संज्ञा पुं० [सं० स्कंध] कंधा। भुजमूल। उ०—(क) कच समेटि कर भुज उलटि खए सीस पट टारि। काको मन बाँधै न यह जूरो बांधनिहारि।—बिहारी। (ख) माधव जी आवनहार भये। अंचल उड़त मन होत गहगहो फरकत नैन खए। देही देखि सोचि जिय अपने चितवत सगुन दए।—सूर। (ग) खए लगि बांह उसारि उसारि। भये इत उत्त जबै रिस धारि।—सूदन।

मुहा०—खवे से खवा छिलना=(बहुत अधिक भीड़ के कारण) कंधे से कंधा छिलना।

खवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० खाना] (१) खाने की क्रिया। (२) वह धन आदि जो भोजन करने के पुरस्कार में दिया जाय। जैसे, कलेवा खवाई।

विशेष—विवाह आदि के अवसर पर वर या वर-पक्ष के लोगों को जलपान के समय कहीं कहीं नेग देने का नियम है।

संज्ञा स्त्री० [देश०] नाव में वह गड्ढा जिसमें मस्तूल खड़ा किया जाता है।

खवाना*†-क्रि०स० [हिं० खाना] भोजन कराना। खिलाना।

ख़वास-संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० खवासिन] राजाओं और रईसों आदि का ख़िदमतगार जिसका काम कपड़े पहनाना, हुक्का भरना, पान लाना आदि है।

खवासी-संज्ञा स्त्री० [हिं० खवास+ई (प्रत्य०)] (१) खवास का काम। खिदमतगारी। (२) चाकरी। नौकरी। उ०—उग्रसेन की करत खवासी।—विश्राम। (३) हाथी के हौदे, या गाड़ी आदि में पीछे की ओर वह स्थान जहां खवास बैठता है।
संज्ञा स्त्री० [?] अंगिया में वह जोड़ जो बगल में रहता है।

खवी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खवीद=हरी घास वा फ़सल] एक प्रकार की घास जिसे पंजाब में घटियारी कहते हैं। यह अगिया घास की तरह होती है और इसमें से सुगंध आती है। इसकी पत्तियाँ लंबी होती हैं जिनसे एक प्रकार का सुगंधित तेल निकलता है और औषध के काम में आता है। यह कराची से पेशावर और लुधियाना तक रेगिस्तान में और बलुई भूमि में उपजती है। इसे संस्कृत में "भूस्तृण" कहते हैं।

खवैया-संज्ञा पुं० [हिं० खाना+ऐया (प्रत्य०)] खानेवाला।

खश—संज्ञा पुं० दे० "खस"।

खस—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वर्त्तमान गढ़वाल और उसके उत्तर वर्त्ती प्रांत का प्राचीन नाम। (२) इस प्रदेश में रहनेवाली ब्रात्य क्षत्रिय से उत्पन्न एक प्राचीन जाति जिसका वर्णन महाभारत और राजतरंगिणी में आया है। इस जाति के वंशज अब तक नेपाल और किस्तवाड़ (काश्मीर) में इसी नाम से विख्यात हैं और अपने आप को क्षत्रिय बतलाते हैं। ये लोग बड़े परिश्रमी और साहसी और प्रायः सैनिक होते हैं। इन्हीं को खासिया भी कहते हैं। उ०—स्वपच सवर खस जमन जड़ पाँवर कोल किरात। राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात।—तुलसी।
संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गाडर नामक घास की प्रसिद्ध सुगंधित जड़ जो भारत, बरमा और लंका के मैदानों और छोटी पहाड़ियों पर विशेषतः नदियों और तालों के किनारे उत्पन्न होती है। गरमी के दिनों में कमरे आदि ठंढे रखने के लिये दरवाज़े और खिड़कियों में इसकी टट्टियाँ लगाई जाती हैं। कहीं कहीं इसकी पंखियाँ और टोकरियाँ भी बनती हैं। इसका इत्र भी बहुत अच्छा बनता है और अधिक दामों में बिकता है। अनेक प्रकार की सुगंध बनाने के लिये विलायत में भी इसकी बहुत खपत होती है।

खसकंत†-संज्ञा स्त्री० [हिं० खसकना+अंत (प्रत्य०)] खसकने का काम।

खसकना-क्रि० अ० [अनु०] धीरे धीरे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। अपने स्थान से इधर उधर हट जाना। स्थानांतरित होना। सरकना। जैसे, (क) यह ईंट खसक गई है। (ख) उधर बहुत जगह है, थोड़ा खसक चलो। (ग) हमें देखते ही वे खसक गए।

संयो० क्रि०—आना।—चलना।—जाना।—देना।—पड़ना।
विशेष—इस शब्द में 'गुप्तरूप से' या 'अनजान में' का भी कुछ भाव मिला हुआ है।

खसकवाना-क्रि० स० [खसकाना का प्रे०] खसकाने का काम कराना।

खसकाना-क्रि० स० [हिं० खसकना] (१) खसकना का सकर्मक रूप। स्थानांतरित करना। हटाना। (२) गुप्तरूप से कोई चीज़ हटाना या देना। जैसे, (क) उन्होंने सौ रुपए खसकाए, तब पिंड छूटा। (ख) चार दिन पहले ही उन्होंने सब चीज़ें खसका दी थीं।
संयो० क्रि०—देना।

खसखस-संज्ञा स्त्री० [सं० खसखस] पोस्ते का दाना जो आकार में सरसों के बराबर और सफ़ेद रंग का होता है। वैद्यक में इसे कफ़नाशक और मादक माना है और इसके अधिक सेवन से पुरुषत्व की हानि बतलाई गई है।

खसखसा-वि० [अनु०] भुरभुरा। जिसके कण दबाने से बालू की तरह अलग अलग हो जाँय। उ०—बालू जैसी खसखसी, उज्ज्वल जैसी धूप। ऐसी मीठी कुछ नहीं, जैसी ठीमी चूप।
वि० [हिं० खसखस] बहुत छोटा। जैसी, खसखसी दाढ़ी।

खसख़ाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] खस की टट्टियों से घिरा हुआ स्थान। वह घर वा कोठी जिसके चारों ओर खस की टट्टियाँ लगी हों। उ०—धाय धँसी खसखानन हाय निकुंजन पुंज फिरी भरमी मैं।—दत्त।

खसखास-संज्ञा स्त्री० दे० "खसखस"।

खसना*-क्रि० अ० [हिं० खसकना] अपने स्थान से हटना। खसकना। गिरना। उ०—(क) सदा कहत करजोरि वचन मृदु मनहुँ खसत मुख फूला।—रघुराज। (ख) खसी माल मूरति मुसुकानी।—तुलसी।

खसनीब-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का गंधाबिरोजा जो शीराज़ से आता है।

खसम-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पति। ख़ाविंद। उ०—जियत खसम किन भसम रमायो।—सूर।
मुहा०—खसम करना=किसी पुरुष से पति-संबंध स्थापित करना।
यौ०—खसमपीटी=पति की मृत्यु देखनेवाली। विधवा। (गाली)।
(२) स्वामी। मालिक। उ०—खसम बिन तेली के बैल भयो।—कबीर।

ख़सरा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पटवारी का एक कागज़ जिसमें प्रत्येक खेत का नंबर, रक़बा आदि लिखा रहता है। (२) किसी हिसाब-किताब का कच्चा चिट्ठा।
संज्ञा पुं० [फ़ा० ख़ारिश] एक प्रकार की खुजली जिससे बहुत कष्ट होता है।

खसर्प-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

खसलत-संज्ञा स्त्री० [अ०] स्वभाव। आदत। प्रकृति।
क्रि० प्र०—पड़ना।—डालना।

खसाना-क्रि० स० [हिं० खसना] नीचे की ओर ढकेलना या फेंकना। गिराना।

खसिया-वि० [अ० खस्सी] (१) जिसके अंडकोश निकाल लिए गए हों। बधिया। (२) नपुंसक। हिजड़ा। (३) बकरा। उ०—कह कबीर वे दूनौं भूले रामहिं किनहुं न पाया। वे खसिया वे गाय कटावैं बादै जन्म गँवाया।—कबीर।

खसियाना†-क्रि० स० [हिं० खसी या खसिया] अंडकोश निकाल वा कूट कर पुंसत्व-हीन करना। बधिया करना।

खसी-संज्ञा पुं० दे० "खस्सी"।

ख़सीस-वि० [अ०] कंजूस। सूम।

खसोट-संज्ञा स्त्री० [हिं० खसोटना] (१) बुरी तरह उखाड़ने या नोचने की क्रिया। (२) बलपूर्वक लेने या छीनने की क्रिया।

खसोटना-क्रि० स० [सं० कृष्ट] (१) बुरी तरह उखाड़ना या उचाड़ना। नोचना। जैसे, (क) बाल खसोटना। (ख) पत्ते खसोटना। (२) बल पूर्वक लेना। छीनना।

खसोटा-संज्ञा पुं० [हिं० खसोटना] कुश्ती का एक पेंच।

खसोटी-संज्ञा स्त्री० दे० "खसोट"।

खस्तनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

खस्ता-वि० [फ़ा० खस्तः] बहुत थोड़ी दाब से टूट जानेवाला। भुरभुरा।
यौ०—खस्ता कचौड़ी = एक प्रकार की छोटी कचौड़ी जो मोयन डाल कर बनाई जाती और बहुत भुरभुरी होती है।

खस्वस्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह कल्पित बिंदु जो सिर के ऊपर आकाश में माना गया है। शीर्षबिंदु। यह पाद-बिंदु का उलटा है।

खस्सी-संज्ञा पुं० [अ०] बकरा।
मुहा०—खस्सी चढ़ाना = बकरे का बलिदान करना।
वि० [अ०] (१) बधिया। (२) हिजड़ा। नपुंसक।

खहर-संज्ञा पुं० [सं०] गणित में वह राशि जिसका हर शून्य हो। इस राशि में कोई राशि जोड़ने या घटाने से भी वह राशि ज्यों की त्यों बनी रहती है, घटती या बढ़ती नहीं। जैसे, $\frac{४}{०}$, इसमें यदि $\frac{२}{१}$ जोड़ दिया जाय तो भी योग $\frac{४}{०}$ ही रहेगा और यदि $\frac{२}{१}$ घटा दिया जाय तो भी $\frac{४}{०}$ ही शेष रहेगा। ($\frac{४}{०}+\frac{२}{१}=\frac{४}{०}+\frac{०}{०}=\frac{४}{०}$। $\frac{४}{०}-\frac{२}{१}=\frac{४}{०}-\frac{०}{०}=\frac{४}{०}$)।

खाँ-संज्ञा पुं० दे० "खान"।

खाँई†-संज्ञा स्त्री० दे० "खाई"।

खाँख†-संज्ञा स्त्री० [सं० खं] छेद। सूराख़।

खाँखर†-वि० [हिं० खाँख] (१) जिसमें बहुत छेद हों। सूराख़दार। जैसे, खाँखर बरतन। (२) जिसकी बिनावट दूर दूर पर हो। जैसे, (क) खाँखर कपड़ा। (ख) खाँखर खटिया। (३) खोखला। पोला।

खाँग†-संज्ञा पुं० [सं० खड्ग, प्रा० खग्ग] (१) काँटा। कंटक।
क्रि० प्र०—गड़ना।—लगना।
(२) वह काँटा जो तीतर मुर्ग आदि पक्षियों के पैरों में निकलता है। (३) गैंडे के मुँह पर का सींग। (४) जंगली सूअर का वह दाँत जो मुँह के बाहर काँटे की तरह निकला होता है।
क्रि० प्र०—चलाना।—मारना।
संज्ञा पुं० [सं० खंज] खुरवाले पशुओं का एक रोग जिसमें उनके खुरों में घाव हो जाता है। खुरपका।
† संज्ञा स्त्री० [हिं० खाँगना] त्रुटि। कमी।

खाँगना†-क्रि० अ० [सं० खंज = खोंड़ा] लँगड़ा या चलने में असमर्थ होना। उ०—हौं अब कुशल एक पै मांगउँ। प्रेम-पंथ सत बाँधि न खाँगउँ।—जायसी।
[सं० क्षीण, हिं० छीजना] कम होना। घटना।

खाँगड़, खाँगड़ा-वि० [हिं० खाँग + ड़ (प्रत्य०)] (१) जिसके खाँग हो। खाँगवाला। (२) हथियारबंद। शस्त्रधारी। (३) बलवान। (४) अक्खड़। उद्दंड।

खाँगी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० खँगना] कमी। घाटा। त्रुटि।

खाँच†-संज्ञा पुं० [हिं० खाँचना] (१) दो वस्तुओं के बीच की जगह। संधि। जोड़। (२) गठन। खचन।

खाँचना*†-क्रि० स० [सं० कर्षण वा कसन = खींचना। अथवा खचन = बैठाना] [वि० खँचैया] (१) अंकित करना। चिह्न बनाना। खींचना। उ०—चाप कीय रेख खाँचि देव साखि दै चले। नांघि हैं ते भस्म होंहिं जीव जे बुरे भले।—केशव। (२) खींच या कस कर बनाना। जैसे, (क) जाली खाँचना। (ख) डलिया खाँचना। (३) जल्दी जल्दी लिखना।

खाँचा-संज्ञा पुं० [हिं० खाँचना] [स्त्री० खाँची] (१) पतली टहनी आदि का बना बड़ा टोकरा। झाबा। (२) बड़ा पिंजड़ा।

खाँड़-संज्ञा स्त्री० [सं० खंड] बिना साफ़ की हुई चीनी। कच्ची शक्कर।

खाँडव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन वन जिसे अर्जुन ने जलाया था। महाभारत और तैत्तिरीय आरण्यक में इसका वर्णन पाया जाता है। इंद्रप्रस्थ नगर इसी वन में बसाया गया था। (२) खाँड़ की बनी हुई मिठाई।

खांडवप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक ग्राम जो पांडवों को धृतराष्ट्र की ओर से मिला था। पीछे पांडवों ने वहीं पर इंद्रप्रस्थ बसाया।

खांडविक-संज्ञा पुं० [सं०] मिठाई बनानेवाला। हलवाई।

खांड़ा–संज्ञा पुं० [सं० खड्ग] खड्ग (अस्त्र) । उ०—जाति सूर अरु खाँडे सूरा । अउ बुधिवंत सबई गुन पूरा ।—जायसी ।
संज्ञा पुं० [सं० खंड] भाग । टुकड़ा । विशेषतः चतुर्थांश ।

खांडिक–संज्ञा पुं० [सं०] खांडविक । हलवाई ।

खांड़ो–संज्ञा पुं० दे० "षाड़व" ।

✓**खाँपना**†–क्रि० स० [सं० क्षेपन, प्रा० खेपन] (१) खोंसना । (२) जड़ना । लगाना । (३) चारपाई की बुनावट में, एक नुकीली कील से उसकी बुनन को कस या दबा कर दृढ़ करना । गछना ।

खाँभ*†–संज्ञा पुं० [हिं० खंभा] खंभा । स्तंभ ।
संज्ञा पुं० [हिं० खाम] लिफ़ाफ़ा । उ०—ताहि पाणि ते लियो निकारी । बांचन लागी खांभ उघारी ।— रघुराज ।

✓**खाँभना**–क्रि० स० [हिं० खाम] लिफ़ाफ़े में बंद करना । उ०—अस पाती लिखि खांभि देवाना । चंद्रहास कर दियो अज्ञाना ।—रघुराज ।

खांवाँ–संज्ञा पुं० [सं० खं] अधिक चौड़ी खाई । उ०—कंचन के कोट पै कँगूरे अति रूरे बने, खांवाँ जल पूरे रच्छै शूरे शस्त्र धारे हैं ।—रघुराज ।
संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पौधा जिसके फूल सफ़ेद होते हैं ।

✓**खांसना**–क्रि० अ० [सं० कासन, प्रा० खाँसन] कफ या और कोई अटकी हुई चीज़ निकालने या केवल शब्द करने के लिये वायु को झटके के साथ कंठ से बाहर निकालना ।

खाँसी–संज्ञा स्त्री० [सं० काश, कास] (१) गले और श्वास की नलियों में फँसे या जमे हुए कफ अथवा अन्य पदार्थ को बाहर फेंकने के लिये झटके के साथ हवा निकालने की क्रिया जिसमें कुछ शब्द भी होता है । यह क्रिया कुछ तो स्वाभाविक और कुछ प्रयत्न करने पर होती है । डाक्टरी मत में यह कलेजे और फेफड़े से संबंध रखनेवाले अनेक साधारण रोगों का चिह्न मात्र है । काश । (२) वैद्यक के अनुसार एक स्वतंत्र रोग जो श्वास की नलियों में धूआँ और धूल लगने, रूखा अन्न खाने, भोज्य पदार्थ के श्वास की नलियों में चले जाने या स्निग्ध पदार्थ खा कर ऊपर से जल पीने से उत्पन्न होता है । इसमें उदान-वायु के अनुगत हो कर प्राण-वायु दूषित हो जाती है और वायु के जोर से खों खों शब्द के साथ कफ़ निकलता है । खाँसी होने पर गले में सुरसुराहट होती है, भोजन गले में कुछ कुछ रुकता है, आवाज बिगड़ जाती है और अग्नि-मंदता तथा अरुचि हो जाती है । इसके बढ़ जाने से राजयक्ष्मा और उरःक्षत आदि भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं । उत्पत्ति-भेद से यह पाँच प्रकार की मानी गई है । यथा—वातज, पित्तज, कफज, क्षयज और क्षतज । जिस खाँसी के साथ मुँह से कफ़ निकले उसे तर और जिसके साथ कुछ भी न निकले उसे सूखी खाँसी कहते हैं । (३) खाँसी की क्रिया ।
क्रि० प्र०—आना ।—उठना ।—होना ।
(४) खाँसने का शब्द ।

खाई–संज्ञा स्त्री० [सं० खानि, प्रा० खाइँ] वह नहर जो किसी गाँव, किले, बाग़ या महल आदि के चारों ओर रक्षा के लिये खोदी गई हो । खंदक । उ०—चहूँ ओर फिर आई । जिन देखी तिन खाई । (खाई की पहेली ।)—खुसरो ।

खाऊ–वि० [हिं० खाना (खा + ऊ (प्रत्य०)] बहुत खानेवाला पेटू ।

खाक–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) धूल । मिट्टी । गर्द । राख । भस्म ।
मुहा०—(कहीं पर) खाक उड़ना = बरबाद होना । तबाही होना । नाश होना । उजाड़ होना । जैसे, अब वहाँ पर ख़ाक उड़ रही है । ख़ाक उड़ाना = ख़ाक छानना । मारा मारा फिरना । उ०—वह इधर उधर ख़ाक उड़ाता फिरता है । किसी की ख़ाक उड़ाना = उपहास करना । मिट्टी पलीद करना । धूल उड़ाना । जीट उड़ाना । उ०—लोगों ने उसकी ख़ूब ख़ाक उड़ाई । ख़ाक करना = तबाह करना । बरबाद करना । नष्ट भ्रष्ट करना । ख़ाक चाटना = सिर नवाना । नम्रता करना । अनुनय विनय करना । ख़ाक छानना = (१) बहुत ढूँढना । अच्छी तरह तलाश करना । उ०—कहाँ कहाँ की ख़ाक छानी पर वह न मिला । (२) मारा मारा फिरना । आवारा फिरना । चारों ओर भटकते फिरना । उ०—वह नौकरी के लिये चारों ओर ख़ाक छानता फिरा । ख़ाक डालना = (१) छिपाना । दबाना । उ०—उसके ऐबों पर कहाँ तक ख़ाक डाली जाय । (२) भूल जाना । गई गुजरी करना । उ०—पुरानी बातों पर ख़ाक डाल कर अब मेल करलो । ख़ाक सिर पर उड़ाना वा डालना = शोक करना । रोना पीटना । ख़ाक बरसाना = अच्छी दशा न रहना । नष्ट भ्रष्ट हो जाना । ख़ाक में मिलना = बिगड़ना । बरबाद होना । चौपट होना । नष्ट भ्रष्ट होना । ख़ाक में मिलाना = बिगाड़ना । तबाह करना । नष्ट भ्रष्ट करना । सत्यानाश करना । उ०—उसने सारी आबरू ख़ाक में मिला दी ।
(२) तुच्छ । अकिंचन । (३) कुछ नहीं । उ०—वे ख़ाक पढ़ते लिखते हैं ।

खाकरोब–संज्ञा पुं० [फ़ा०] गलियों में झाड़ू देनेवाला ।

ख़ाकसीर–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खाकशी] एक औषध जिसे खूबकलां भी कहते हैं । यह एक घास का बीज है जो मैदानों, बाग़ों तथा जंगल, पहाड़ों में होता है । इसकी पत्तियाँ लंबी और टहनी के दोनों ओर आमने सामने लगती हैं । फूल झड़

जाने पर छोटी छोटी घुंडियाँ लगती हैं जिनमें छोटे छोटे दाने झिल्ली में लिपटे रहते हैं। खाकसीर दो प्रकार की होती है—एक छोटी, दूसरी बड़ी। छोटी का रंग कुछ सुर्खी लिए होता है और बड़ी का रंग कुछ स्याही लिए होता है। छोटी बड़ी से अधिक कडुई होती है। यह घास अरब, फ़ारस आदि पच्छिमी देशों में होती है।

खाका–संज्ञा पुं० [फ़ा० खाक] (१) डौल। ढांचा। नकशा। चित्र का डौल।

क्रि० प्र०—उतारना।—खींचना।—बनाना।

मुहा०—खाका उड़ाना=(१) नक़ल उतारना। एकही ढांचे पर बनाना। (२) उपहास करना। निंदा करना। (३) धूल उड़ाना। बदनामी करना।

(२) चिट्ठा। किसी काम का तकदमा। वह कागज़ जिसमें किसी काम के खर्च का अनुमान लिखा जाय। तख़मीना। (३) मसौदा। कच्चा चिट्ठा।

खाकी–वि० [फ़ा] (१) मिट्टी के रंग का। भूरा। (२) बिना सींची हुई भूमि।

संज्ञा पुं० [फ़ा० खाक] (१) एक प्रकार के वैष्णव साधु जो तमाम शरीर में राख लगाया करते हैं। (२) मुसलमान फ़कीरों का एक संप्रदाय जो ख़ाकीशाह का अनुयायी है।

मुहा०—खाकी अंडा=(१) वह अंडा जो भीतर से बिगड़ गया हो और जिसमें से बच्चा न निकले। बयंडा। गंदा अंडा। (२) हरामज़ादा।

खाख†–संज्ञा स्त्री० दे० "ख़ाक"।

खाखस†–संज्ञा पुं० [फ़ा० खशखाश] पोस्ते का दाना।

खाग–संज्ञा पुं० दे० "खांग"।

खागना–क्रि० अ० [हिं० खांग=कांटा] चुभना। गड़ना। उ०—(क) शर सो प्रति वासर वासर लागै। तन घाव नहीं मन प्राणन खागै।—केशव। (ख) नाशा तिलक प्रसून पद विपर चिबुक चारु चित खाग।—सूर।

क्रि० अ० दे० "खाँगना"।

खाज–संज्ञा स्त्री० [सं० खर्जु] एक रोग जिसमें शरीर बहुत खुजलाता है। खुजली।

मुहा०—कोढ़ की खाज=दुःख में दुःख बढ़ानेवाली वस्तु। विपत्ति पर विपत्ति लानेवाली वस्तु। उ०—एक तो कराल कलिकाल सूल मूल तामें, कोढ़ में की खाज सी सनीचरी है मीन की।—तुलसी।

खाजा–संज्ञा पुं० [सं० खाद्य, पा० खज्ज] (१) भक्ष्य वस्तु। खाद्य। जैसे, बिल्ली का खाजा।

मुहा०—खाजा होना=शिकार होना।

(२) एक प्रकार की मिठाई जो बारीक मैदे से बनाई जाती है। गुँधे हुए मैदे को घी लगा कर सीधा बेलते हैं फिर मोयन देकर उसे दोहर देते हैं और फिर बेलते हैं। इसी प्रकार बार बार बेल कर मोयन देते, दोहरते और फिर बेलते जाते हैं। अंत को उसे चौकोर बना कर घी में तलते हैं और चीनी की चाशनी में पागते हैं। खाजा प्रायः दूध में भिगो कर खाया जाता है। (३) एक जंगली पेड़ जो बहुत बड़ा नहीं होता।

खाट–संज्ञा स्त्री० [सं० खट्वा] चारपाई। पलंगड़ी। खटिया। माचा।

यौ०—खाट खटोला=बधना बोरिया। कपड़ा लत्ता। गृहस्थी का सामान। उ०—बस अपना खाट खटोला ले जाओ।

मुहा०—खाट पड़ना वा खाट पर पड़ना=बीमार पड़ना। बीमार हो कर चारपाई पर पड़ना। किसी की खाट कटना=किसी का इतना बीमार पड़ना कि उसके मलमूत्र त्याग के लिये चारपाई की बुनावट काटनी पड़े। बहुत बीमार पड़ना। खाट लगना वा खाट से लगना=बहुत बीमार पड़ना। इतना बीमार पड़ना कि उठ बैठ न सकना। खाट से उतारा जाना=आसन्न-मरण होना। मरने के समीप होना।

विशेष—हिंदू-धर्म के अनुसार चारपाई पर मरना बुरा समझा जाता है। इससे जब प्राणी मरने के निकट होता है तब वह चारपाई से उतार दिया जाता है।

खाटिन†–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

खाटा*–वि० दे० "खट्टा"।

खाड़*–संज्ञा पुं० [सं० खात] गड्ढा। गर्त। उ०—तुई अस बहुत खाड़ खनि मूंदी। बहुरन निकस वार होय खूंदी।—जायसी।

खाड़व–संज्ञा पुं० [सं० षाड़व] वह राग जिसमें केवल छः स्वर लगते हों। षाड़व।

खाड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खाड़] समुद्र का वह भाग जो तीन ओर स्थल से घिरा हो। आखात। खलीज।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खोंड़] अरहर का सूखा और बिना फल पत्ते का पेड़।

संज्ञा स्त्री० [हिं० काढ़ना] किसी चीज में से अंतिम बार निकाला हुआ रंग।

खाडू†–संज्ञा पुं० [हिं० खंड] वे लंबी पतली लकड़ियाँ जिनके ऊपर रख कर खपड़े छाए जाते हैं।

खादर†–संज्ञा पुं० दे० "खादर"।

खात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खोदना। खोदाई। (२) तालाब। पुष्करिणी। (३) कुआँ। (४) गड्ढा। (५) वह गड्ढा जिसमें खाद बनाने के लिये कूड़ा और मैला आदि जमा किया जाता है।

†संज्ञा स्त्री० (१) मद्य बनाने के लिये रखा हुआ महुए का ढेर। (२) वह स्थान जहाँ मद्य बनाने के लिये महुआ रखा जाता है। (३) दे० "खाद"।

वि० मैला। गंदा।

खातक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटा तालाब। तलैया। (२) खाईं। परिखा। (३) ऋणी। अधमर्ण। क़र्ज़दार।

खातभू–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) परिखा। खाईं। (२) कूएं का गड्ढा। खात।

खातव्यवहार–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गणित जिससे पोखरे तालाब आदि का क्षेत्रफल जाना जाता है।

ख़ातमा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) अंत। समाप्ति। (२) मृत्यु।

खाता–संज्ञा पुं० [सं० खात] अन्न रखने का गड्ढा। बखार।

संज्ञा पुं० [हिं० खत] (१) वह बही या किताब जिसमें प्रत्येक असामी या व्यापारी आदि का हिसाब मितीवार और ब्योरेवार लिखा हो।

मुहा०—खाता खोलना = (१) दे० "खाता डालना"। (२) नया संबंध स्थापित करना। नया व्यवहार करना। खाता डालना = हिसाब खोलना। लेन-देन आरंभ करना। खाता पड़ना = लेन-देन आरंभ होना। खाते बाकी = वह रक़म जो खाते में बाक़ी निकलती हो।

(२) मद। विभाग। जैसे,—धर्म खाता। खर्च खाता। माल खाता

ख़ातिर–संज्ञा स्त्री० [अ०] आदर। सम्मान।

† अव्य० [अ०] वास्ते। लिये। कारण।

ख़ातिरख़ाह–अव्य०, क्रि० वि० [फ़ा०] जैसा चाहिए वैसा। इच्छानुसार। यथेच्छ।

ख़ातिरजमा–संज्ञा स्त्री० [अ०] संतोष। इतमीनान। तसल्ली।

क्रि० प्र०—रखना।

ख़ातिरदारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सम्मान। आदर। आवभगत

ख़ातिरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख़ातिर] (१) सम्मान। आदर। आवभगत। उ०—प्रचुर पठै परिचारकदल महँ खबरि बरातिन लीन्हीं। आवन की पुनि अशन शयन की सबन खातिरी कीन्हीं।—रघुराज। (२) तसल्ली। इतमीनान। संतोष।

संज्ञा स्त्री० [देश०] वह फसल जो नदी के किनारे खाद के बल से वा हाथ से पानी सींच सींच कर पैदा की जाय।

खाती–संज्ञा स्त्री० [सं० खात] (१) खोदी हुई भूमि। खेती। (२) छोटा ताल। (३) ज़मीन खोदनेवाली एक जाति। खतिया। (४) बढ़ई।

खाद–संज्ञा स्त्री० [सं० खाद्य] वह पदार्थ जो खेत आदि में उनकी उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के लिये डाला जाता है। पाँस।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

विशेष—सब प्रकार की पत्तियाँ, डंठल कूड़ाकर्कट, कीचड़, पत्तियों और पशुओं का मल-मूत्र और मृत-शरीर आदि सभी चीज़ें सड़ गल कर बहुत अच्छी खाद का काम देती हैं। इसके अतिरिक्त चूना, खड़िया आदि खनिज पदार्थों और अनेक क्षारों से भी खाद बनती है।

खादक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऋण लेनेवाला। अधमर्ण। (२) किसी धातु का वह भस्म जो खाने के काम में आता हो।

वि० खानेवाला। भक्षक।

खादन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० खादित, खाद्य] (१) भक्षण। भोजन। खाना। (२) दाँत। (डिं०)

खादनीय–वि० [सं०] भक्षणीय। खाने योग्य। खाद्य।

खादर–संज्ञा पुं० [हिं० खाड़] (१) वह नीची ज़मीन जिसमें वर्षा का पानी बहुत दिनों तक रुका रहता है। ऐसी ज़मीन प्रायः नदी, झील आदि के किनारे होती है। बाँगर का उलटा। तराई। कछार। उ०—(क) मेघ परस्पर यहै कहत हैं धोय करहु गिरि खादर।—सूर। (ख) रूम रूंदि डारें खुरासान खूंदि मारें खाक खादर लौं झारें ऐसे साहु की बहार है।—भूषण। (२) पशुओं के चरने की जगह। चरागाह।

मुहा०—खादर लगना = पशुओं के चरने योग्य घास उगना।

खादि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भक्ष्य। खाद्य। (२) जिरहबकतर। कवच (३) हस्तत्राण। दस्ताना।

संज्ञा स्त्री० [सं० छिद्र] दोष। ऐब।

खादित–वि० [सं०] खाया हुआ। भक्षित।

ख़ादिम–संज्ञा पुं० [अ०] (१) नौकर। सेवक। (२) दरगाह आदि में रहनेवाला रक्षक।

खादिर, खादिरसार–संज्ञा पुं० [सं०] कत्था। खैर।

खादी–वि० [सं० खादिन्] (१) खानेवाला। भक्षक। (२) रक्षक। शत्रु को नाश करनेवाला। (३) कँटीला।

संज्ञा स्त्री० [देश०] गजी या इसी प्रकार का और कोई मोटा कपड़ा। उ०—सब इक से होत न कहूँ, होत सबन में फेर। कपरो खादी बाफतौ, लोह तवा शमशेर।—सभा० वि०।

†वि० [हिं० खादि = दोष] (१) दोष निकालनेवाला। छिद्रान्वेषी। (२) दूषित। जिसमें ऐब हो।

खादुक–वि० [सं०] जिसकी प्रवृत्ति सदा हिंसा की ओर रहे। हिंसालु।

खाद्य–वि० [सं०] खाने योग्य। भोज्य। भक्ष्य।

संज्ञा पुं० [सं०] वह जो खाया जाय। भोजन।

खाधु–*†–संज्ञा पुं० [सं० खाद्य] भोज्य पदार्थ। भोजन। खाद्य। उ०—(क) जोबन पंखी बिरह बियाधू। केहर भयो कुरंगिन खाधू।—जायसी। (ख) भई ब्याधि तृष्णा संग खाधू। सूझी मुक्ति न सूझै ब्याधू।—जायसी।

खाधुक–*†–संज्ञा पुं० दे० "खाधु"।

खान–संज्ञा पुं० [हिं० खाना] (१) खाने की क्रिया। भोजन। उ०—खान तजोंगी औ पान तजोंगी औ मान तजोंगी न काहू लजोंगी।—विश्राम। (२) भोजन की सामग्री। (३) भोजन करने का ढंग वा आचार। उ०—उनका खान पान ठीक नहीं है।

यौ०—खानपान।

संज्ञा स्त्री० [सं० खानि] (१) वह स्थान जहाँ से धातु, पत्थर आदि खोद कर निकाले जाँय। खानि। आकर। खदान।

क्रि० प्र०—खुलना = खान के खोदने का काम जारी होना।

(२) आधार-स्थान। उत्पत्ति-स्थान। जैसे, गुणों की खान। (३) ख़ज़ाना। जहाँ कोई वस्तु बहुत सी हो। उ०—यहाँ क्या रुपए की खान खुली है?

संज्ञा पुं० [तातार वा मंगोल काङ = सरदार] (१) सरदार। उमराव। उ०—मैन कै बैर तुहिँ मैंन कहा मत मान। मोहिँ देखत बहुतै छले इनने खान खुमान।—रसनिधि। (२) पठानों की उपाधि

† संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खाना] कोल्हू का वह छेद जिसमें ऊख की गड़ेरियाँ वा तेलहन भर कर पेरते हैं। खौं। घर।

खानक–संज्ञा पुं० [सं० खन] (१) खान खोदनेवाला। (२) बेलदार। (३) मेमार। राज। थवई। उ०—दारु-कर्मकारक अरु खानक अरु दैवज्ञ सोहाये।—रघुराज।

ख़ानक़ाह–संज्ञा स्त्री० [अ०] मुसलमान साधुओं वा धर्म-शिक्षकों के रहने का स्थान वा मठ।

खानखानाँ–संज्ञा पुं० [फ़ा० खानेखानान] (१) सरदारों का सरदार। बहुत ऊँचे दर्जे का सरदार। (२) एक उपाधि जो मुगल राज्यों में मुसलमान सरदारों को दी जाती थी।

खानखाह–क्रि० वि० दे० "खाहमखाह"।

खानगी–वि० [फ़ा] जिससे बाहरवालों का कुछ संबंध न हो। निज का। आपस का। घरेलू। घरू।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] केवल कसब करानेवाली और बहुत तुच्छ वेश्या। कसबी।

ख़ानज़ादा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) अमीर का पुत्र। अमीरजादा। (२) ऊँचे घराने का व्यक्ति। (३) अच्छी जाति के वे हिंदू जिनके पूर्वजों ने मुसलमानों के राजत्व-काल में मुसलमानी धर्म्म ग्रहण कर लिया था। इनमें अधिकांश चत्री ही हैं।

खानदान–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० खानदानी] वंश। कुल। घराना।

खानदानी–वि० [फ़ा०] (१) ऊँचे वंश का। अच्छे कुल का। (२) वंश-परंपरागत। पैत्रिक। पुश्तैनी।

खानदेश–संज्ञा पुं० [खाँद = जंगली जाति + देश] बंबई प्रांत का एक प्रदेश। यह प्रदेश सतपुरा की पर्वतमाला के दक्षिण में है।

खान पान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अन्न पानी। आबदाना। भोजन और जल। (२) भोजन करने और जल पीने की क्रिया। खाना पीना। (३) खाने पीने का ढंग वा भोजन करने की रीति। खाने पीने का आचार। (४) खाने पीने का संबंध। खुर्दनोश। उ०—उनसे हमारा खान पान नहीं है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—रहना।—चला आना।

खानबहादुर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक ख़िताब जो सरकार की ओर से मुसलमानों को दिया जाता है।

खानसामा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] अंगरेज़ों मुसलमानों आदि का भंडारी।

✓**खाना**–क्रि० स० [सं० खादन, पा० खाअन, खान] [प्रे० खिलाना] (१) आहार को मुँह में चबा कर निगलना। भोजन करना। भक्षण करना। पेट में डालना। (इसका प्रयोग घन पदार्थों के लिये होता है, द्रव के लिये नहीं, यद्यपि किसी किसी के मुँह से जल खाना आदि भी सुना जाता है।)

संयो० क्रि०—जाना।—डालना।—लेना।

यौ०—खाना कमाना। खाना पीना। खाना उड़ाना।

मुहा०—जिसका खाना उससे गुर्राना = जिसका अन्न खाना उसी को आँख दिखाना। उपकार न मानना। खाता कमाता आदमी = खाने पीने भर को कमानेवाला आदमी। वह मनुष्य जिसके पास धन संचित न हो। खाना कमाना = काम धंधा कर के जीविका निर्वाह करना। मिहनत मज़दूरी करके गुज़र करना। खाने के दाँत और दिखाने के और = बाहर कुछ भीतर कुछ। करना कुछ और प्रगट करना कुछ और। खा पका जाना, डालना = खर्च कर डालना। उड़ा डालना। खाना पीना = (१) भोजन पान करना। (२) सुख से दिन बिताना। उ०—लड़के बाले भूखों मरते हैं और आप खाता पीता है। खाना पीना लहू करना = क्रुद्ध वा खिन्न करके खाने पीने को निरानंद कर देना। क्रोध वा खेद उत्पन्न करना। खाने पीने से अच्छा, ख़ुश = सुख से जीवन निर्वाह करनेवाला। खाओ वहाँ तो पानी पिओ यहाँ = खाने के बाद पानी पीने के लिये भी वहाँ न ठहरो, तुरंत चले आओ। आने में क्षण भर की भी देर न करो। खाओ वहाँ तो हाथ धोओ यहाँ = तुरंत चले आओ। खाना न पचना = चैन न पड़ना। जी न मानना। उ०—जब तक वह इधर उधर गप नहीं मारता तब तक उसका खाना नहीं पचता।

विशेष—'खाना' क्रिया का प्रयोग कभी कभी अकर्मक के समान भी होता है, जैसे, वह खाने गया है।

(२) हिंसक जंतुओं का शिकार पकड़ना और भक्षण करना। जैसे, उसे शेर खा गया।

मुहा०—खा जाना = मार डालना। उ०—वह ऐसा ताकता है मानो खा जायगा। कच्चा खा जाना = मार डालना। प्राण ले लेना। उ०—जी चाहता है कि उसे कच्चा खा जाऊँ। खाने दौड़ना = चिड़चिड़ाना। क्रुद्ध होना। उ०—जब उसके पास रुपया माँगने जाते हैं तब वह खाने दौड़ता है।

विशेष—विषैले कीड़ों के काटने के अर्थ में केवल 'काला' (सांप) के साथ इस क्रिया का प्रयोग होता है। जैसे, तुझे काला खाय। उ०—(क) आजुहिँ मेरे घर खेलन आई। जात कहूँ कारे तेहि खाई।—सूर। (ख) ताकी माता खाई कारे। सो मरि गई शाप के मारे।—सूर। पर अलंकृत वा मुहाविरेदार भाषा में अत्युक्ति का भाव लेकर इस क्रिया से खटमल मच्छड़ आदि का बहुत काटना भी व्यक्त किया जाता है। जैसे, आज रात खटमलों ने खा डाला। यहाँ तो मच्छड़ खाए डालते हैं।

(३) किसी इंद्रिय वा अंग को उसके अरुचिकर विषय उप-स्थित करके पीड़ित करना। तंग करना। दिक़ करना। कष्ट देना।—(क) तुम तो हमारे कान खा गए (कड़े शब्द से)। (ख) क्यों सिर या जान खाते हो। (४) (कीड़ों का) किसी वस्तु को कुतरना वा काटना। जैसे, किताब को कीड़े खा गए। लकड़ी को दीमक खा गए। छुरी को मुर्चा खा गया। (५) चबाना। मुँह में रख कर रस आदि चूसना। जैसे, पान खाना, तंबाकू खाना। (६) नष्ट करना। बरबाद करना। सत्यानाश करना। उ०—(क) तुम्हारी चालाकी तुम्हें खा गई। (ख) क्रोध मनुष्य को खा जाता है। (ग) विदेशी माल देशी कारीगरी को खा गया। (७) उड़ा देना। दूर कर देना। न रहने देना। उ०—चूना दीवार के रंग को खा गया। (८) हज़म करना। मार लेना। हड़प जाना। उ०—वे कोठी का बहुत सा रुपया खा गए। (९) खर्च करना। उड़ाना। उ०—तनख़ाह में से कुछ बचाते भी हो कि सब खा डालते हो? (१०) बेईमानी से रुपया पैदा करना। रिशवत आदि लेना। उ०—अमले और नौकर-चाकर सब जगह खाते पीते हैं। (११) ख़र्च करवाना। रुपया लगवाना। उ०—यह मकान उनकी सारी कमाई खा गया। (१२) अमाना। समाना। अँटना। खपना। भरना। जैसे, छोटी सी कुप्पी ५ सेर घी खा गई। (१३) किसी काम को करते हुए उसके किसी अंग को छोड़ जाना। जैसे, लिखने पढ़ने में किसी अक्षर को छोड़ जाना। उ०—तुम लिखने में कई अक्षर खा गए हो। (१४) (आघात, प्रभाव आदि) सहना। बरदाश्त करना। प्रभाव पड़ने देना। जैसे, मार-खाना, लात खाना, छड़ी खाना, गाली खाना, चोट खाना, सरदी खाना, धूप खाना, हवा खाना, गम खाना, हार खाना।

मुहा०—मुँह की खाना=(१) बुराई का ठीक बदला पाना। खूब नीचा देखना। किए का पूरा फल पाना। (२) पराजित होना। हार जाना।

ख़ाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) आलय। घर। मकान। जैसे, डाक-ख़ाना, दवाख़ाना, कूड़ाख़ाना आदि। (२) किसी चीज़ के रखने का घर। केस। जैसे, चशमे का खाना, घड़ी का खाना, आदि। (३) अलमारी, मेज या संदूक़ आदि में चीज़ें रखने के लिये पटरियों या तख़्तों के द्वारा किया हुआ विभाग। (४) सारणी या चक्र का विभाग। कोष्ठक।

क्रि० प्र०—बनाना।—पूरना।—भरना।

(५) संदूक़। पेटी। (लश०)

ख़ानाख़राब—वि० [फ़ा०] [संज्ञा खानाखराबी] (१) चौपट करनेवाला। सत्यानाशी। (२) जिसके रहने का ठिकाना, या घर बार न हो। आवारा।

ख़ानाजंगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] आपस की लड़ाई। परस्पर का झगड़ा।

ख़ानाज़ाद—वि० [फ़ा०] घर में पैदा या पाला पोसा हुआ। घरजाया (गुलाम)।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] सेवक। ग़ुलाम। दास। उ०—मन विगरयौ ये नैन बिगारे।......................। ए सब कहौ कौन हैं मेरे ख़ानाज़ाद बिचारे।—सूर।

ख़ानातलाशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी खोई, छिपी या अन-जानी चीज़ के लिये मकान के भीतर छान बीन करना।

विशेष—यह क्रिया प्रायः राज्य या किसी बड़े अधिकारी की ओर से या आज्ञा से होती है।

ख़ानादारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गृहस्थी।

खाना पीना—संज्ञा पुं० [हिं० खाना + पीना] खाने पीने का व्यवहार या संबंध। खान पान।

क्रि० प्र०—छूटना।

ख़ानापुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाना + पूरना] किसी चक्र या सारणी के कोठों में यथास्थान संख्या या वाक्य आदि लिखना। नक़शा भरना।

ख़ानाबदोश—वि० [फ़ा०] जिसके रहने वा ठहरने का कोई निश्चित स्थान न हो। जिसका घर बार न हो।

ख़ानाशुमारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी गाँव या नगर आदि के मकानों की गिनती का काम।

खानि—संज्ञा स्त्री० [सं० खनि] (१) दे० "खान"। (२) उत्पत्ति-स्थान। उपजने की जगह। उ०—दारिद बिदारिबे की प्रभु को तलास, तो हमारे इहाँ अनगिन दारिद की खानि हैं।—दास। (३) वह जिसमें या जहाँ कोई वस्तु अधिकता से हो। खजाना। उ०—हा गुणखानि जानकी सीता।—तुलसी। (४) ओर। तरफ़। उ०—यम द्वारे में दूत सब करते ऐंचा तानि। उनते कभू न छूटता फिरता चारों खानि।—कबीर। (५) प्रकार। तरह। ढंग। उ०—चार खानि जग जीव जहाना।—तुलसी।

खानिक*†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खानि] खान। खदान। उ०—सूझहिं रामचरित मणि मानिक। गुपत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।—तुलसी।

खापट–संज्ञा स्त्री० [हिं० खपड़ा] एक प्रकार की भूमि जिसमें लोहे का अंश अधिक होता है। इसकी मिट्टी बहुत कड़ी और भारी होती है और पानी बरसने पर बहुत लसदार हो जाती है। ऐसी भूमि केवल बरसात में ही जोती जा सकती है और इसमें धान के अतिरिक्त और कोई चीज़ नहीं उपज सकती। इसकी मिट्टी से, जिसे कपसा और काविस भी कहते हैं, कुम्हार लोग मिट्टी के बरतन बनाते हैं।

खापर†–संज्ञा स्त्री० (१) दे० "खापट"। (२) ऊभड़ खाभड़ भूमि। ऊँची नीची ज़मीन।

खाब*†–संज्ञा पुं० [फ़ा० ख्वाब] स्वप्न। उ०—प्यारी के पायन की उपमा द्विज कों सब जानि परी जिमि खाब की। पंकज पात की बात कहाँ जिन कोमलता लई जीत गुलाब की।–द्विज।

खाबड़ खूबड़†–वि० [अनु०] जो सम न हो। ऊँचा नीचा। यह विशेषण प्रायः 'भूमि' के लिये ही आता है।

खाभा–संज्ञा पुं० [हिं० खामना] मिट्टी का एक बरतन जिससे तेली कोल्हू के नीचे के बरतन में से तेल निकालते हैं।

खाम–संज्ञा पुं० [हिं० खामना] (१) चिट्ठी का लिफ़ाफ़ा। उ०—बाँचत न कोऊ अब बैसई रहत खाम, युवती सकल जानि गईं गति याकी हैं।—द्विज देव। (२) संधि। जोड़। टाँका।

क्रि० प्र०—लगाना।

विशेष—कहीं कहीं यह शब्द स्त्रीलिंग भी बोला या लिखा जाता है।

†संज्ञा पुं० [हिं० खंभा] (१) खंभा। स्तंभ। (२) जहाज़ का मस्तूल। (लश०)।

*† वि० [सं० क्षाम] घटने या क्षीण होनेवाला। उ०—नाम रूप अरु लीला धामा। रहत नित्य ये पडत न खामा।—विश्राम।

ख़ाम–वि० [फ़ा०] (१) जो पका न हो। कच्चा। (२) जो दृढ़ या पुष्ट न हो। (३) जिसे तजुर्बा न हो। अनुभवहीन।

खामखाह, खामखाही–क्रि० वि० दे० "ख़ाहमख़ा"।

√**खामना**–क्रि० स० [सं० स्कंभन = मूँदना, रोकना, प्रा० खंभन] (१) गीली मिट्टी या आटे आदि से किसी पात्र का मुँह बंद करना। (२) चिट्ठी को लिफ़ाफ़े में बंद करना।

ख़ामी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) कचाई। कच्चापन। (२) नातजरुबेकारी। (३) कमी। अपूर्णता।

ख़ामोश–वि० [फ़ा] चुप। मौन।

ख़ामोशी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मौन। चुप्पी।

ख़ाया–संज्ञा पुं० [फ़ा०] अंडकोष।

यौ०—ख़ायाबरदारी = अनावश्यक चापलूसी। बहुत ख़ुशामद।

खार–संज्ञा पुं० [सं० क्षार, प्रा० खार] (१) दे० "क्षार"। (२) सज्जी। (३) लोना। लोनी। कल्लर। रेह।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—खार लगना = छरछराना।

(४) धूल। राख। (५) एक प्रकार की झाड़ी जिससे खार निकलता है। यह पंजाब में नमक के पहाड़ के आसपास तथा पच्छिमी प्रांतों में होती है।

ख़ार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कांटा। कंटक। फाँस। (२) मुर्ग़ा, तीतर आदि पक्षियों के पैर का कांटा। खाँग। (३) डाह। जलन। द्वेष।

मुहा०—ख़ार खाना = डाह करना। जलना। ख़ार गुजरना = बुरा लगना। खटकना।

खारक†–संज्ञा पुं० [सं० क्षारक, पा० खारक] छोहारा। उ०—खारक दास दबाय मरो किन ऊँटहिँ ऊँटकटारहि भावै।—केशव।

खारवा†–संज्ञा पुं० [देश०] खलासी। मल्लाह। जहाज़ी।

खारा–वि० पुं० [सं० क्षार] [स्त्री० खारी] (१) क्षार या नमक के सवाद का। (२) कड़ुआ। अरुचिकर उ०—कृपासिंधु में देख विचारी। यहि मरने ते जीवन खारी।—विश्राम।

संज्ञा पुं० [सं० क्षारक] (१) एक प्रकार का कपड़ा जो धारीदार होता है। (२) [स्त्री० अल्प० खारी] घास वा सूखे पत्ते बाँधने के लिये जालदार बँधना जिसे घसियारे और भड़भूँजे काम में लाते हैं। (३) वह जाली या थैला जिसमें भर कर तोड़े हुए आम पेड़ से नीचे लटकाए जाते हैं। (४) बाँस, सरकंडे, वा रहठे आदि का बड़ा और गहरा टोकरा। यह विशेषतः चौखूँटा होता है। झाबा। खाँचा। (५) बाँस का बड़ा पिंजड़ा। (६) उलटे टोकरे के आकार का सरकंडे आदि का बना हुआ एक प्रकार का चौकोर आसन जिसका व्यवहार प्रायः खत्रियों में विवाह के अवसर पर बर और कन्या के बैठने के लिये होता है।

खारिक*†–संज्ञा पुं० [सं० क्षारक] छोहारा। खारक। उ०—(क) खारिक दाख खोपरा खीरा। केरा आम ऊख रस सीरा।—सूर (ख) खारिक खात न दारिउँ दाख न माखन हू सह मेटि इठाई।—केशव।

ख़ारिज–वि० [अ०] (१) बाहर किया हुआ। निकाला हुआ। बहिष्कृत। (२) भिन्न। अलग। (३) जिस (अभियोग) की सुनाई न हो।

खारिश–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] खुजली। खाज।

खारिश्त–संज्ञा स्त्री० दे० "खारिश"।

खारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के मत से चार और किसी के मत से सोलह द्रोण की एक तौल।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खारा] (१) एक प्रकार का क्षार लवण जो दवा के काम में आता है। संडास में मल गलाने के लिये भी खारी डालते हैं। (२) खार-युक्त। जिसमें खार का मेल हो। जैसे, खारी माट।

खारीमाट–संज्ञा पुं० [हिं० खारी + मा = मटका] नील का रंग तैयार करने का एक ढंग। इसमें एक बड़े मटके में लगभग चार मन पानी छोड़ कर उसमें सेर सेर भर कच्चा नील, चूना और सज्जी डालते और थोड़ा सा गुड़ मिला कर उठने के लिये रख देते हैं। गरमियों में यह एक दिन में और जाड़े में तीन चार दिनों में तैयार हो जाता है। अधिक जाड़े में इसे कभी कभी आग पर भी चढ़ा देते हैं।

खारुआँ,खारुवा–संज्ञा पुं० [सं० क्षारक] (१) आल से बना हुआ एक प्रकार का रंग जिसमें मोटे कपड़े रँगे जाते हैं। (२) इस रंग से रँगा हुआ एक प्रकार का मोटा कपड़ा जो विशेषतः काल्पी में तैयार होता है।

खारेजा–संज्ञा पुं० [फ़ा० खारिजा] एक प्रकार का जंगली कुसुम या बर्रे जो पंजाब के मैदानों में बहुत उगता है और बर्रे की अपेक्षा अधिक कँटीला होता है। इसके दाने बहुत छोटे और निकम्मे होते हैं और इसमें अनेक रंग के सुहावने फूल लगते हैं। बनबर्रे। बनकुसुम। कँटियारी।

खारो*–वि० दे० "खारा"।

खाजूर–संज्ञा पुं० [सं०] खजूर के रस से बनी हुई मदिरा जो प्रायः महुए की मदिरा के समान होती है। वैद्यक में इसे रुचिकर, कफघ्न, कषाय और हृद्य माना है।

खाल–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षाल, प्रा० खाल] (१) मनुष्य, पशु आदि के शरीर का ऊपरी आवरण। चमड़ा। त्वचा।

मुहा०—खाल उड़ाना = बहुत मारना या पीटना। खाल उधेड़ना या खींचना = (१) शरीर पर से चमड़ा खींच कर अलग कर लेना। (२) बहुत मारना पीटना या कड़ा दंड देना। खाल बिगड़ना = दुर्दशा कराने या दंडित होने की इच्छा होना। शामत आना।

(२) किसी चीज का अंगीभूत आवरण। जैसे, बाल की खाल। (३) आधा चरसा। अधौड़ी। (४) धौंकनी। भाथी। (५) मृत शरीर। उ०—कहि तू अपने स्वारथ सुख को रोकि कहा करि है खलु खालहि।—सूर।

संज्ञा स्त्री [सं० खात या अ० खाली] (१) नीची भूमि। (२) खाड़ी। खलीज। (३) खाली जगह। अवकाश। (४) गहराई। निचाई।

खालफूंका–संज्ञा पुं० [हिं० खाल + फूकना] धौंकनी धौंकनेवाला। भाथी चलानेवाला।

खालसा–वि० [अ० खालिस = शुद्ध जिसमें किसी प्रकार का मेल न हो] (१) जिस पर केवल एक का अधिकार हो। जैसे, उनकी सारी जायदाद खालसा है। (२) राज्य का। सरकारी।

मुहा०—खालसा करना = (१) स्वायत्त करना। जब्त करना। (२) नष्ट करना। चौपट करना। खालसे लगाना = खालसा करना।

संज्ञा पुं० सिक्खों की एक विशेष मंडली।

खाला–वि० [हिं० खाल या खाली] [स्त्री० खाली] नीचा। निम्न।

मुहा०—खाला ऊँचा = (१) जो समतल न हो। (२) भला बुरा, या हानि लाभ।

ख़ाला–संज्ञा स्त्री० [अ०] माता की बहिन। मौसी।

मुहा०—ख़ाला जी का घर = वह काम जिसके करने में अधिक परिश्रम न करना पड़े। सहज काम।

ख़ालिक़–संज्ञा पुं० [अ०] बनानेवाला। सिरजनहार। स्रष्टा। सृष्टिकर्त्ता।

खालिस–वि० [अ०] जिसमें कोई दूसरी वस्तु न मिली हो। शुद्ध।

ख़ाली–वि० [अ०] (१) जिसके भीतर कुछ न हो। जिसके भीतर का स्थान शून्य हो। जो भरा न हो। रीता। रिक्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—ख़ाली करना = भीतर कुछ न रहने देना। भीतर की वस्तु या सार निकाल लेना। जैसे, घड़ा ख़ाली करना, संदूक़ ख़ाली करना।

(२) जिस पर कुछ न हो। जिस पर कोई वस्तु वा व्यक्ति न हो। जैसे, कुरसी खाली करना, मेज़ ख़ाली करना। (३) जिसमें कोई एक विशेष वस्तु न हो। किसी विशेष वस्तु से शून्य। उ०—(क) जंगल जानवरों से खाली हो गया। (ख) हमारा मकान खाली कर दो।

मुहा०—हाथ खाली होना = (१) हाथ वा मुट्ठी में रुपया पैसा न होना। अकिंचन वा निर्धन होना। खुक्ख होना। उ०—भाई! आज कल हमारा हाथ खाली है, हम कुछ नहीं दे सकते। (२) हाथ में कोई हथियार न होना। (३) हाथ में लिया हुआ काम समाप्त होना। फ़ुरसत मिलना। अवकाश मिलना। ख़ाली पेट = बिना कुछ अन्न खाए हुए। निरन्ने पेट। बासी मुँह। उ०—खाली पेट पानी मत पीओ। खाली हाथ = (१) बिना मुट्ठी में कुछ दाम लिए। बिना कुछ रुपए पैसे के। उ०—(क) ख़ाली हाथ मेले में जाना ठीक नहीं। (ख) ब्राह्मण को खाली हाथ मत लौटाओ। (२) बिना किसी हथियार के। उ०—रात को जंगल में खाली हाथ निकलना अच्छा नहीं।

(४) रहित। विहीन। उ०—(क) उनकी कोई बात मतलब से ख़ाली नहीं होती। (ख) शुभ आचार धर्म को ज्ञाना रह्यो तनय ते ख़ाली।—रघुराज। (५) जिसे कुछ काम न हो। जो किसी कार्य्य में न लगा हो। (व्यक्ति) उ०—अब हम ख़ाली हैं, लाओ तुम्हारा काम देख लें।

मुहा०—ख़ाली बैठना = (१) कोई काम धाम न करना। (२) बेरोजगार रहना। बिना जीविका के रहना।

(६) जो व्यवहार में न हो। जिसका काम न हो। (वस्तु) उ०—(क) चाकू ख़ाली हो गया हो तो इधर लाओ। (ख) इतने खेत ख़ाली पड़े हैं। (७) व्यर्थ। निष्फल। उ०—(क)

तुम्हारा प्रयत्न ख़ाली न जायगा । (ख) पुनि लक्ष्मी हित उद्यम करै । अरु जब उद्यम ख़ाली परै । तब वह रहै बहुत दुख पाई ।—सूर ।

क्रि० प्र०—जाना ।—पड़ना ।

मुहा०—निशाना या वार ख़ाली जाना = निशाना या वार ठीक न बैठना । अस्त्र का लक्ष्य पर न पहुँचना । आक्रमण व्यर्थ होना । बात ख़ाली जाना या पड़ना = वचन निष्फल होना । कहने के अनुसार कोई बात न होना । वादा झूठा होना । उ०—(क) हमारी बात खाली न जायगी, वह कल अवश्य आवेगा । (ख) अगर आज रुपया उनके यहाँ न पहुँचेगा तो हमारी बात ख़ाली जायगी । ख़ाली दिन = वह दिन जिस दिन कोई नया या शुभ कार्य्य न किया जाय । उ०—कल तो बुध है, ख़ाली दिन है, कल आरंभ करना ठीक नहीं है । ख़ाली देना = जिस पर वार या आघात किया जाय उसका वार को बचा जाना । साफ़ निकल जाना ।

क्रि० वि० केवल । सिर्फ़ । अकेले । उ०—ख़ाली रटने से काम न चलेगा, समझो ।

संज्ञा पुं० तबला, मृदंग आदि बजाने में वह ताल जो ख़ाली छोड़ दिया जाता है और बाएँ पर आघात नहीं लगाया जाता । इसका व्यवहार ताल की गिनती ठीक रखने के लिये किया जाता है ।

खालू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० खाला] माता की बहिन का पति । मौसा ।

खाले†—क्रि० वि० दे० "खाला" या "खाल" (नीचा) । उ०—गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले । चलत कुमग पग परहिं न खाले ।—तुलसी ।

खावा†—संज्ञा स्त्री० [सं० खं] अवकाश । खाली जगह ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] जहाज़ की वह कोठरी जिसमें माल रखा जाता है । (लश०)

खावाँ—संज्ञा पुं० दे० "खाँवाँ" ।

ख़ाविंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) पति । खसम ।

मुहा०—ख़ाविंद करना = नया पति करना ।

(२) मालिक । स्वामी ।

खावी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाना] वह अन्न या धन जो मालिक अपने नौकरों को वर्ष के आरंभ में पेशगी देता है ।

खास—वि० [अ०] (१) विशेष । मुख्य । प्रधान । 'आम' का उलटा । उ०—सुधि किये बलि जाउ दास आस पूजिहै खास खीन की ।—तुलसी ।

मुहा०—ख़ास कर = विशेषतः प्रधानतः । ख़ास ख़ास = चुने चुने । चुनिंदे । अच्छे और प्रतिष्ठित । उ०—ख़ास ख़ास लोगों को न्योता दिया गया है ।

(२) निज का । आत्मीय । चाहता । प्रिय । उ०—(क) यह ख़ास घर के आदमी हैं । (ख) खास दास रावरो निवास तेरो तासु उर तुलसी सो देव दुखी देखियत भारिये ।—तुलसी । (३) स्वयं । ख़ुद । जैसे, ख़ास राजा के हाथ से इनाम लूँगा । (४) ठीक । ठेठ । विशुद्ध । उ०—यह ख़ास दिल्ली की बोल चाल में लिखा गया है ।

संज्ञा स्त्री० [अ० कीसा] (१) एक गाढ़े कपड़े की थैली जिसमें शक्कर भर के बोरे में भरी जाती है । (२) कपड़े की वह थैली जिसमें बनिए नमक चीनी आदि रखते हैं ।

खासकलम—संज्ञा पुं० [अ०] वह लेखक या सहायक जो बड़े लोग अपने निज के कार्य्यों के लिये रखते हैं । निज का मुंशी । प्राइवेट सेक्रेटरी ।

खासगी—वि० [अ० खास + गी (प्रत्य०)] राजा या मालिक आदि का । निज का ।

खासतराश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह नाई जो राजा के बाल बनाया करता है ।

खासतहसील—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह तहसील जो उस स्थान में हो जहाँ राजा वा प्रांत का शासक स्वयं रहता हो । हुज़ूर तहसील । जिला तहसील ।

खासदान—संज्ञा पुं० [उर्दू] गिलौरी का सामान रखने का डिब्बा । पानदान ।

खासनवीस—संज्ञा पुं० दे० "ख़ासकलम" ।

खासबरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह सिपाही जो राजा की सवारी के साथ साथ सवारी के ठीक आगे आगे चलता है ।

खासबाज़ार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह बाज़ार जो राजा के महल के सामने वा निकट हो और जहाँ से राजा वस्तुएँ मोल लेता हो ।

खासा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) राजा का भोजन । राजभोग । (२) राजा की सवारी का घोड़ा वा हाथी । (३) एक प्रकार का पतला सफ़ेद सूती कपड़ा । । (४) एक मोयनदार पूरी ।

वि० पुं० [उर्दू] [स्त्री० खासी] (१) अच्छा । भला । उत्तम । (२) स्वस्थ । तंदुरुस्त । नीरोग । (३) मध्यम श्रेणी का । (४) सुडौल । सुंदर (२) भरपूर । पूरा ।

खासियत—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) स्वभाव । प्रकृति । आदत । (२) गुण । सिफ़त ।

खासिया—संज्ञा स्त्री० [सं० खस] (१) आसाम की एक पहाड़ी का नाम । (२) इस पहाड़ी में रहनेवाली एक जंगली जाति । खस ।

खासियाना—संज्ञा पुं० [हिं० खासिया] एक प्रकार की मँजीठ जिसका रंग बहुत अच्छा होता है । यह खासिया से आती है ।

खासी—वि० स्त्री० [अ०] "खासा" का स्त्रीलिंग ।

संज्ञा स्त्री० [अ०] ख़ास राजा के बाँधने की तलवार, ढाल वा बंदूक़ ।

खास्सा–संज्ञा पुं० [अ०] स्वभाव । आदत । बानि । प्रकृति ।

ख़ाह–अव्य० दे० "ख़्वाह" ।

ख़ाहनख़ाह, ख़ाहमख़ाह–क्रि० वि० दे० "ख़्वाहमख़्वाह" ।

ख़ाहाँ–वि० दे० "ख़्वाहाँ" ।

ख़ाहिश–संज्ञा स्त्री० दे० "ख़्वाहिश" ।

ख़ाहिशमंद–वि० दे० "ख़्वाहिशमंद" ।

ख़ाहीनख़ाही–क्रि० वि० दे० "ख़्वाहमख़्वाह" ।

खिंग–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह सफ़ेद रंग का घोड़ा जिसके मुँह पर का पट्टा और चारों सुम गुलाबीपन लिए सफ़ेद हों । कुकरा ।

खिंगरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] मैदे की बनी हुई बहुत पतली और छोटी खस्ता पूरी या मठरी ।

खिँचना–क्रि० अ० [सं० कर्षण] (१) किसी वस्तु का इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना कि वह गति के समय अपने आधार से लगी रहे । घसिटना । जैसे, यह लकड़ी कुछ इधर खिँच गई है । (२) किसी कोश थैले आदि में से किसी वस्तु का बाहर निकलना । जैसे, दोनों तरफ़ से तलवारें खिँच गईं । (३) किसी वस्तु के एक या दोनों छोरों का एक या दोनों ओर बढ़ना । तनना । (४) आकर्षित होना । प्रवृत्त होना । किसी ओर बढ़ना या जाना ।

मुहा०—चित्त खिँचना = मन मोहित होना ।

(५) सोखा जाना । खपना । चुसना । जैसे, सोख़्ता रखते ही उसमें सारी स्याही खिँच आई । (६) भभके आदि से अर्क या शराब आदि तैयार होना । (७) किसी वस्तु के गुण वा तत्त्व का निकल जाना । जैसे, उसकी सारी शक्ति खिँच गई ।

मुहा०—पीड़ा या दर्द खिंचना = (औषध आदि से) दर्द दूर होना । जैसे, उस लेप के लगाते ही सारा दर्द खिंच गया ।

(८) कलम आदि से बन कर तैयार होना । चित्रित होना । जैसे, तसवीर खिँचना । (९) रुक रहना । रुकना ।

मुहा०—हाथ खिँचना = देना आदि बंद होना । जैसे, अगर उधर से हाथ खिँचे तो तुम भी काम बंद कर देना ।

(१०) माल की चलान होना । माल खपना । जैसे, इस देश का सारा कच्चा माल विलायत को खिंचा जाता है । (११) अनुराग कम होना । उदासीन होना । (१२) भाव तेज होना । महँगा होना । जैसे, वर्षा न होने के कारण दिन पर दिन भाव खिँचता जाता है ।

संयो क्रि०—चुकना ।—जाना ।—पड़ना ।

खिँचवा–वि० [हिं० खींचना] खींचनेवाला ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः नाव की गून अथवा खराद की बद्धी खींचनेवालों के लिये होता है ।

खिँचवाना–क्रि० स० [हिं० खींचना] "खींचना" का प्रेरणार्थक रूप ।

खिँचाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० खींचना] (१) खींचने की क्रिया । (२) खींचने का भाव । (३) खींचने की मज़दूरी ।

खिँचाना–क्रि० स० दे० "खिँचवाना" ।

खिँचाव–संज्ञा पुं० [हिं० खिंचना] "खींचना" का भाव ।

खिँचावट, खिंचाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० खिंचना] (१) खींचने का भाव । (२) खींचने की क्रिया ।

खिँचिया–वि० दे० "खिँचवा" ।

खिँडाना–क्रि० स० [सं० क्षिप्त] बिखेरना । बिखराना । छितराना । इधर उधर फैलाना ।

खिखिंद–संज्ञा पुं० [सं० किष्किंध] (१) दक्षिण देश के एक पहाड़ का नाम जहाँ वनवास के समय में कुछ दिन रामचंद्र जी ने निवास किया था । यह पहाड़ मैसूर राज्य के उत्तरीय भाग में है । किष्किंध पर्वत । (२) बीहड़ भूमि ।

खिचड़वार–संज्ञा पुं० [हिं० खिचड़ी + वार] मकर संक्रांति । इस दिन खिचड़ी दान की जाती है ।

खिचड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० कृसर] (१) एक में मिलाया या मिला कर पकाया हुआ दाल और चावल ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—चढ़ाना ।—डालना ।—भूनना ।—पकाना ।

मुहा०—खिचड़ी पकाना = गुप्त भाव से कोई सलाह होना । ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकना = सब की सम्मति के विरुद्ध कोई कार्य्य होना । बहुमत के विपरीत कोई काम होना । ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकाना = सब की सम्मति के विरुद्ध कोई कार्य्य करना । बहुमत के विरुद्ध कोई काम करना । खिचड़ी खाते पहुँचा उतरना = अत्यंत कोमल होना । बहुत नाजुक होना । खिचड़ी छुवाना = नव वधू से पहले पहल भोजन बनवाना ।

(२) विवाह की एक रसम जिसे "भात" भी कहते हैं ।

मुहा०—खिचड़ी खिलाना = वर और बरातियों को (कन्या पक्षवालों का) कच्ची रसोई खिलाना ।

(३) एक ही में मिले हुए दो वा अधिक प्रकार के पदार्थ । जैसे, सफ़ेद और काले बाल, वा रुपए और अशरफ़ियाँ, अथवा जौहरियों की भाषा में एक ही में मिले हुए अनेक प्रकार के जवाहिरात । (४) मकर संक्रांति । इस दिन खिचड़ी दान की जाती है । (५) बेरी का फूल ।

क्रि० प्र०—आना ।

(६) वह पेशगी धन जो वेश्या आदि को, नाच ठीक करने के समय दिया जाता है । बयाना । साई ।

वि० [सं० कृसर] (१) मिलाजुला । गड्डमड्ड । (२) गड़बड़ ।

खिचना–क्रि० अ० दे० "खिँचना" ।

खिचवाना–क्रि० स० दे० "खिँचवाना"

खिचाव–संज्ञा पुं० दे० "खिँचाव" ।

खिजना–क्रि० अ० दे० "खीजना" ।

खिजमत, खिजमित–संज्ञा स्त्री० दे० "खिदमत"।

खिजलाना–क्रि० अ० [हिं० खीजना] झुँझलाना। चिढ़ना।

क्रि० स० [हिं० खीजना] "खीजना" का प्रेरणार्थक रूप। दुखी करना। चिढ़ाना।

ख़िज़ाँ–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) वह ऋतु जिसमें पेड़ों के पत्ते झड़ जाते हैं। पतझड़ की ऋतु। (२) अवनति का समय।

ख़िज़ाब–संज्ञा पुं० [अ०] सुफ़ेद बालों को काला करने की औषध। केश-कल्प।

मुहा०—खिजाब करना = बालों में खिज़ाब लगाना।

खिझना–क्रि० अ० [सं० खिद्यते, प्रा० खिज्जइ] खीजना। उ०—सुंदर वासों कितो खिझिये न तजै तऊ आपने शील सुभाइन।—सुंदर।

खिझाना–क्रि० स० [सं० खिद्यते, प्रा० खिज्जइ] चिढ़ाना। दिक़ करना। उ०— (क) मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।—सूर। (ख) निपट हमारे ख्याल परे हरि वन में नितहिं खिझावत।—सूर।

खिझावना*†–क्रि० स० "खिझाना"।

खिझुवर†–वि० [हिं० खीझना] चिढ़नेवाला। शीघ्र अप्रसन्न होनेवाला।

खिड़कना–क्रि० अ० [हिं० खिसकना] चल देना। चला जाना। खिसक जाना। उ०—क्षोभ भरी तिय को निरखि खिड़की सहचरि सोय।—नंददास।

खिड़काना–क्रि० स० [हिं० खिसकना] (१) हटाना। अलग करना। टालना। टरकाना। (२) बेंच डालना। औने पौने करना।

खिड़की–संज्ञा स्त्री० [सं० खटक्किका] (१) किसी मकान या इमारत की दीवार में प्रकाश और वायु आने के लिये बना हुआ छोटा दरवाजा। दरीचा। झरोखा।

मुहा०—खिड़की निकालना या फोड़ना = खिड़की बनाना।

(२) नगर या क़िले का चोर दरवाजा। (३) खिड़की के आकार का कोई खाली स्थान।

यौ०—खिड़कीदार अँगरखा = एक प्रकार का अँगरखा जो आगे ऊपर की ओर खुला रहता है। खिड़कीदार पगड़ी = एक प्रकार की पगड़ी जिसमें ऊपर की ओर कुछ भाग खुला रहता है।

खित*–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिति] पृथ्वी। धरती। (डिं०)

ख़िताब–संज्ञा० पुं० [अ०] पदवी। उपाधि।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

ख़िताबी–वि० [अ०] खिताब पाया हुआ। जिसे पदवी मिली हो।

खित्ता–संज्ञा पुं० [अ०] प्रांत। देश।

खिदमत–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सेवा। टहल। शुश्रूषा।

खिदमतगार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] खिदमत करनेवाला। सेवक। टहलुवा।

खिदमतगारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सेवा। टहल।

खिदमती–वि० [फ़ा० खिदमत] (१) खिदमत करनेवाला। जो खूब सेवा करे। (२) सेवा संबंधी अथवा जो सेवा के बदले में प्राप्त हुआ हो। जैसे, खिदमती माफी। खिदमती जागीर।

खिदिर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) तपस्वी। (३) दीन।

खिद्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोग। (२) दरिद्रता।

खिन*†–संज्ञा पुं० [सं० क्षण] क्षण। लमहा।

मुहा०—खिन खिन = प्रति क्षण। हर दम।

खिन्न–वि० [सं०] (१) उदासीन। चिंतित। (२) अप्रसन्न। नाराज। (३) दीन हीन। असहाय। उ०—गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न। बंदहुँ सीताराम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न।—तुलसी।

खिपना*–क्रि० अ० [सं० क्षिप्] (१) खपना। (२) मिलजुल जाना। तल्लीन होना। निमग्न होना। उ०—मदन महीपति के सदन समीप सदा दीपक ह्वै दूनी दिन दीपति से दिपि रहे। सरस सुजान के परस रस जानि जानु जघन नितंब तीन्यो खेलही में खिपि रहे।—देव।

खिपाना†–क्रि० स० दे० "खपाना"।

खियानत–संज्ञा स्त्री० दे० "खयानत"।

खियाना†–क्रि० अ० [सं० क्षय या हिं० खाना] रगड़ से या काम में आते आते कम हो जाना। घिस जाना।

†क्रि० स० [हिं० खाना] भोजन कराना। खिलाना।

खियाल–संज्ञा पुं० दे० "खयाल"।

खिर–संज्ञा स्त्री० [देश०] जोलाहों की ढरकी जिसमें बाने का सूत रहता है और जो बुनते समय एक ओर से दूसरी ओर चलाई जाती है। इसे नार भी कहते हैं।

खिरकी†*–संज्ञा स्त्री० दे० "खिड़की"।

खिरचा†–संज्ञा पुं० दे० "खरका"।

खिरडरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खैर + डली] सुगंधित मसाले मिला कर बनाई हुई खैर की गोली।

खिरनी–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीरिणी] (१) एक प्रकार का ऊँचा और छतनार सदा बहार पेड़ जिसके हीर की लकड़ी लाल रंग की, चिकनी, कड़ी और बहुत मजबूत होती है और कोल्हू बनाने तथा इमारत के काम में आती है। यह बड़ी सरलता से खरादी भी जा सकती है। (२) इस वृक्ष का फल जो निमकौड़ी के आकार का दूधिया और बहुत मीठा होता है और गरमी के दिनों में पकता है।

खिराज–संज्ञा पुं० [अ०] राजस्व। कर। मालगुजारी।

क्रि० प्र०—लगाना।—बढ़ाना।—चढ़ाना।—देना।—लेना।

खिरिरना†–क्रि० वि० [अनु०] (१) सींक के छाज में रख कर अनाज को छानना जिसमें खराब दाने नीचे गिर पड़ें। (२) खुरचना। खरोचना। उ०—सोई रघुनाथ कपि साथ पाथनाथ बाँधि आयो, नाथ! भागे ते खिरिरि खेह

खाहिगो । तुलसी गरब तजि मिलिबे को साज सजि, देहि सिय ना तो पिय पायमाल जाहिगो ।—तुलसी ।

खिरैंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० खरयष्टिका] बला । बरियारा । बीजबंद ।

ख़िलअत—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह वस्त्र आदि जो किसी बड़े राजा या बादशाह की ओर से सम्मान सूचनार्थ किसी को दिया जाता है ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—बख़्शना ।—मिलना ।—लेना ।

ख़िलक़त—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सृष्टि । संसार । (२) बहुत से लोगों का समूह । भीड़ ।

खिलकौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेल + कौरी (प्रत्य०)] खेल । खिलवाड़ । उ०—बालकहू लगि लेयँ संग करि प्रिय खिलकौरिन । —श्रीधर ।

खिलखिलाना—क्रि० अ० [अनु०] खिल खिल शब्द करके हँसना । जोर से हँसना । अट्टहास करना ।

ख़िलजी—संज्ञा पुं० [देश०] अफ़ग़ानिस्तान की सरहद पर रहनेवाली पठानों की एक जाति । अलाउद्दीन इस वंश का बड़ा प्रसिद्ध सम्राट हुआ है । इस वंश का राज्य भारत में सन् १२८८ ई० से सन् १३२१ ई० तक रहा ।

खिलत, खिलति*†—संज्ञा स्त्री० दे० "खिलअत" । उ०—खिलत मिलति तिनकों नरपति सों । जिमि वर देत अमर वर रति सों ।—गोपाल ।

खिलना—क्रि० स० [सं० स्खल] (१) कली के दल अलग अलग होना । कली से फूल होना । विकसित होना । (२) प्रसन्न होना । प्रमुदित होना । (३) शोभित होना । उपयुक्त होना । ठीक या उचित जँचना । जैसे यह गमला यहाँ पर खूब खिलता है । (४) बीच से फट जाना । जैसे, दीवार का खिल जाना । (५) अलग अलग हो जाना । जैसे, चावल खिलना ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।—पड़ना ।

खिलवत—संज्ञा पुं० [अ०] एकांत । शून्यस्थान । जहाँ कोई न हो ।

यौ०—खिलवतखाना ।

खिलवतखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह स्थान जहाँ कोई गुप्त मंत्रणा या रहस्य हो । एकांत स्थान । उ०—खड़जी खज़ाने खरगोस खिलवत खाने खीसें खोले खसखाने खाँसत खबीस हैं ।—भूषण ।

खिलवाड़—संज्ञा स्त्री० दे० "खेलवाड़" ।

खिलवाना—क्रि० स० [हिं० खाना] दूसरे से भोजन कराना ।

क्रि० स० [हिं० खिलना का प्रे०] प्रफुलित कराना ।

क्रि० स० [हिं० खील] खीलें बनवाना । जैसे, भड़भूँजे के यहाँ से धान अच्छी तरह खिलवा लेना ।

क्रि० स० [हिं० 'खीलना' का प्रे०] खीलें लगवाना । खील वा तिनके गोद कर दोने आदि का मुँह बंद करवाना ।

क्रि० स० दे० "खेलवाना"

खिलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खाना] (१) भोजन की क्रिया । खाने का काम । (२) खिलाने का काम ।

यौ०—खिलाई पिलाई = (१) खाना पीना । (२) खिलाना पिलाना ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खेलाना = खेल] वह दाई या मजदूरनी जो बच्चों को खेलाती हो ।

यौ०— दाई खिलाई ।

खिलौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खील = भुना हुआ दाना] धनिया और खरबूजे ककड़ी आदि के भुने हुए बीज जो भोजनोपरांत खाए जाते हैं ।

खिलाड़, खिलाड़ी—संज्ञा पुं० [हिं० खेल + आड़ी (प्रत्य०)] [स्त्री० खिलाड़िन] (१) खेल करनेवाला । खेलनेवाला । कुश्ती लड़ने, पटा बनेठी खेलने या इसी प्रकार के और काम करनेवाला । (३) जादूगर ।

संज्ञा पुं० [देश०] बैलों की एक जाति जो खानदेश, मैसूर और हैदराबाद के पहाड़ी भागों में होती है ।

खिलाना—क्रि० स० [हिं० खेलना] किसी को खेल में नियोजित करना । खेल करना ।

क्रि० स० [हिं० खाना] 'खाना' का प्रेरणार्थक रूप । भोजन कराना ।

यौ०—खिलाना पिलाना = भोजन कराना ।

क्रि० स० [हिं० खिलना] विकसित करना । फुलाना ।

खिलाफ़—वि० [अ०] जो अनुकूल न हो । विरुद्ध । उलटा । विपरीत ।

खिलाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेल] (ताश आदि के खेल में) पूरी बाज़ी की हार ।

विशेष—दे० "खलाल" ।

खिलौना—संज्ञा पुं० [हिं० खेल + औना (प्रत्य०)] काठ, मोम, मट्टी, कपड़े आदि की बनी कोई मूर्त्ति या इसी प्रकार की और कोई चीज़ जिससे बालक खेलते हैं ।

मुहा०—हाथ का खिलौना = आमोद, प्रमोद की वस्तु । वह व्यक्ति जिससे मन बहले । प्रिय व्यक्ति । उ०—अपने गुण की बदौलत वह अमीरों के हाथ का खिलौना बना रहता है ।

खिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हिं० खिलना] हँसी । हास्य । दिल्लगी । मज़ाक ।

क्रि० प्र०—उड़ाना ।—करना ।

यौ०—खिल्लीबाज़ = दिल्लगीबाज । खिल्लीबाजी = दिल्लगीबाजी । विनोद ।

†संज्ञा स्त्री० [हिं० गिलौरी] पान का बीड़ा । गिलौरी ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खील] कील । काँटा ।

खिल्लो—वि० स्त्री० [हिं० खिलना = प्रसन्न होना] बहुत अधिक हँसनेवाली ।

खिवाही–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईख।

खिसकना–क्रि० अ० दे० "खसकना"। उ०–भूलति नाहिँ भुलाए भटू सुधि सौं सुधि जात सबै खिसकी सी।—रघुनाथ।

खिसकाना–क्रि० स० दे० "खसकाना"।

खिसना†–क्रि० अ० दे० "खसना"।

खिसलना–क्रि० अ० दे० "फिसलना"।

खिसलाना–क्रि० स० खिसलना का प्रे० रूप।

खिसलाव†–संज्ञा पुं० [हिं० खिसलना या फिसलना] (१) फिसलने या खिसलने का भाव। (२) फिसलने या खिसलने की जगह।

खिसलाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० खिसलना या फिसलना] फिसलने या खिसलने का भाव।

खिसाना*†–क्रि० अ० दे० "खिसियाना"। उ०—(क) दुरि गए कीर कपोत मधुप पिक सारँग सुधि बिसरी। उड़पति विद्रुम बिंब खिसान्यो दामिनि अधिक डरी।—सूर। (ख) करेहु उपाय पात पला भूमि गाड़ै पाइ, रहे वे खिसाइ कह्यौ इतनोई लीजिए।—प्रिया०।

खिसारा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] घाटा। नुकसान। हानि।

क्रि० प्र०—उठाना।—पड़ना।—सहना।

खिसारी–संज्ञा स्त्री० दे० "खेसारी"

खिसिआनपन–संज्ञा पुं० [हिं० खिसिआना + पन] खिसियाना का भाव।

खिसिआना–क्रि० अ० [हिं० खीस = दाँत] (१) लजाना। लज्जित होना। शरमाना। उ०—लाज लए प्रभु आवत नाहीं ह्वै जो रहे खिसिआने।—सूर। †(२) ख़फ़ा होना। क्रुद्ध होना। रिसिआना।

वि० लज्जित। शरमिंदा। उ०—यह सुनकर वे तो खिसिआने से हो गए।

खिसिआहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० खिसिआना + हट (प्रत्य०)] खिसिआना का भाव। खिसिआनपन।

खिसी*†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खिसिआना] (१) लज्जा। शरम। उ०—(क) सब सिथिल तनु मुकुलित विलोचन पुलक मुख शशि में सिसी। इमि निखिल निधुबन की कला पिय को हँसी तिय को खिसी।—गुमान। (ख) खिसी दलेल खान उर छाई। याद अनूप अरथ की आई।—लाल। (ग) कहा चलत उपरावटे, अजहूँ खिसी न गात। कंस सौंह दै पूछिये, जिन पटके हैं सात।—सूर। (२) ढिठाई। धृष्टता। उ०—दुरै न निघर घटौ दिये, ए रावरी कुचाल। विख सी लागति है बुरी, हँसी खिसी की लाल।—बिहारी।

खींच–संज्ञा स्त्री० [हिं० खींचना] खींचना का भाव।

खींचतान–संज्ञा स्त्री० [हिं० खींच + तान] (१) किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये दो व्यक्तियों का एक दूसरे के विरुद्ध उद्योग। खींचा-खींची। (२) क्लिष्ट कल्पना द्वारा किसी शब्द या वाक्य आदि का अन्यथा अर्थ करना।

खींचना–क्रि० स० [सं० कर्षण] [प्रे० खिंचवाना] (१) किसी वस्तु को इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर करना कि वह गति के समय अपने आधार से लगी रहे। घसीटना। जैसे, (क) चारपाई इधर खींच लाओ। (ख) घड़े में हाथ डाल कर उस चीज़ को खींच लो। (२) किसी कोश, थैले आदि में से किसी वस्तु को बाहर निकालना। जैसे, म्यान से तलवार खींचना। (३) किसी ऐसी वस्तु को छोर या बीच से पकड़ कर अपनी ओर बढ़ाना जिसका दूसरा छोर दूसरी ओर अथवा नीचे वा ऊपर हो। ऐंचना। जैसे, पंखे या खिड़की की डोरी खींचना। कुएँ से पानी खींचना। उ०—रस्सी को बहुत मत खींचो, टूट जायगी। (४) आकर्षित करना। बलपूर्वक किसी ओर ले जाना। किसी ओर बढ़ाना। किसी ओर प्रवृत्त करना।

मुहा०—चित्त खींचना = मन को मोहित करना।

(५) सोखना। चूसना। जैसे, उ०—(क) मेदा बहुत घी खींचता है। (ख) अभी सोखता रख दो, सब स्याही खींच ले। (६) भभके से अर्क, शराब आदि टपकाना। अर्क चुआना। (७) किसी वस्तु के गुण वा तत्व को निकाल लेना। जैसे, इस कपड़े ने फूल की सारी सुगंधि खींच ली।

मुहा०—पीड़ा या दर्द खींचना = औषध आदि का दर्द दूर करना। जैसे, यह लेप सब दर्द खींच लेगा।

(८) क़लम फेर कर लकीर आदि डालना। लिखना। चित्रित करना। जैसे, तसवीर खींचना।

यौ०—खींच खाँच कर = झटपट टेढ़ा सीधा लिख कर। उ०—एक चिट्ठी में घंटा भर लगा दिया, खींच खाँच कर किनारे करो।

(९) रोक रखना। उ०—जितना वाजबी देना है उसमें से भी वह कुछ खींच रखना चाहता है।

मुहा०—हाथ खींचना = देना या और कोई काम बंद करना। उ०—(क) उसने एक दम अपना हाथ खींच लिया है, एक पैसा नहीं देता। (ख) हम अपना हाथ खींच लेते हैं तुम अकेले इस काम को करो।

(१०) माल की चलान लेना। व्यापार का माल मँगाना। उ०—आज कल कलकत्ता बहुत अनाज खींच रहा है।

संयो० क्रि०—डालना। रखना।—लेना।

खींचाखींची–संज्ञा स्त्री० [हिं० खींचना] दे० "खींचतान (१)"।

खींचातान–संज्ञा स्त्री० दे० "खींचतान"।

खींचातानी–संज्ञा स्त्री० दे० "खींचतान"।

खीखर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बन-बिलाव जिसे कटास भी कहते हैं।

खीज–संज्ञा स्त्री० [हिं० खीजना] (१) खीजना का भाव। झुँझलाहट। उ०—रीझ खीज मौज फौज दान औ कृपान ऊँचे जगत

बखाने दोऊ हाथ गोपीनाथ के।—मतिराम। (२) चिढ़ाने का शब्द या वाक्य। वह बात जिससे कोई चिढ़े।

मुहा०—खीज निकालना = किसी को चिढ़ाने के लिये कोई नई बात निकालना।

खीजना–क्रि० अ० [सं० खिद्यते, प्रा० खिज्जइ] दुःखी और क्रुद्ध होना। झुँझलाना। खिजलाना।

खीझ*†–संज्ञा स्त्री० दे० "खीज"। उ०—खीझहू में रीझिबे की बानि राम रीझत हैं रीझे ह्वैहैं राम की दोहाई रघुराय जू।—तुलसी।

खीझना*†–क्रि० अ० दे० "खीजना"। उ०—दीन के दयाल की अनूठी यह चाल आली खीझत है मान गहे रीझत नवनि पै।—दीनदयालु।

खीन*†–वि० [सं० क्षीण] क्षीण।

खीनता*†–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीणता] क्षीणता।

खीनताई*–संज्ञा स्त्री० दे० "खीनता"।

खीप–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का घना सीधा पेड़ जो सिंध, पंजाब, राजपूताना और अफ़ग़ानिस्तान की पथरीली और बलुई ज़मीन में होता है। इसकी पत्तियाँ छोटी और लंबोतरी होती हैं और इसमें जाड़े के दिनों में छोटे लंबे फूल निकलते हैं। इसकी पत्तियाँ और टहनियाँ शीतल होती हैं और राजपूताने में चारे के काम में आती हैं। पंजाब में इसके रेशे से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। उ०—खीप पिड़ारू कोमल भिंडी।—सूर। (२) लज्जालु। लजाधुर। (३) गंध-प्रसारिणी। गंध-पसारा।

खीमा–संज्ञा पुं० दे० "खेमा"।

खीर–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीर] दूध में पकाया हुआ चावल।

विशेष—लोग प्रायः तीखुर, घीया (लौआ) या इसी प्रकार के और पदार्थ भी दूध में पकाते हैं जिसे खीर कहते हैं।

मुहा०—खीर चटाना = बच्चे को पहले पहल अन्न खिलाना।

*संज्ञा पुं० [सं० क्षीर] दूध। उ०—(क) भरत विनय सुनि सबहि प्रसंसी। खीर-नीर बिबरन गति हंसी।—तुलसी। (ख) खीर खड़ानन को मद केशव सो पल में करि पान लियेई।—केशव।

खीर-चटाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० खीर + चटाई] बच्चे को पहले पहल अन्न खिलाने का संस्कार। अन्न-प्राशन।

खीरमोहन–संज्ञा पुं० [हिं० खीर + मोहन] छेने की बनी हुई एक प्रकार की बँगला मिठाई।

खीरा–संज्ञा पुं० [सं० क्षीरक] बरसात में होनेवाला ककड़ी की जाति का एक फल जो कुछ मोटा और एक बालिश्त तक लंबा होता है। इसकी तरकारी भी बनती है, परंतु अधिकतर लोग इसे नमक मिर्च के साथ कच्चा ही खाते हैं। इसके बीज दवा के काम में आते हैं। फल तथा बीजों की तासीर ठंढी है।

मुहा०—खीरा ककड़ी = अत्यंत तुच्छ वस्तु। गाजर मूली।

खीरी–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीर] चौपायों के थन के ऊपर का वह माँस जिसमें दूध बनता और रहता है। बाख।

खील–संज्ञा स्त्री० [हिं० खिलना] भूना हुआ धान। लावा।

†संज्ञा स्त्री० [हिं० कील] (१) कील। काँटा। मेख। (२) लौंग नाम का जेवर जिसे स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं। (३) मांस कील।

संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जो बहुत दिनों तक परती पड़ी रहने के उपरांत पहले पहल जोती गई हो। नौतोड़।

खीलना–क्रि० स० [हिं० खील] (१) खील लगाना। तिनके गोद कर पत्ते के दोने आदि का मुँह बंद करना।

खीला†–संज्ञा पुं० [हिं० कील] काँटा। मेख। कील। उ०—दादू खीला गाड़ि का निहचल थिर न रहाइ। दादू पग नहिं सांच के भरमइ दह दिसि जाइ।—दादू।

खीली–संज्ञा स्त्री० [हिं० खील] पान का बीड़ा। खिल्ली।

खीवन, खीवनि–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीवन] मतवालापन। मस्ती। उ०—मेरे माई स्याम मनोहर जीवनि। निरखि नयन भूले ते वदन छबि मधुर हँसनि पै खीवनि।—सूर।

खीवर*–संज्ञा पुं० [सं० क्षीब = मस्त] सूर। वीर। सुभट। बहादुर। (डिं०)

खीस–वि० [सं० किष्क = वध, नाश] नष्ट। बरबाद। उ०—सती मरन सुनि शंभुगण, लगे करन मख खीस।—तुलसी।

मुहा०—खीस जाना = नष्ट होना। उ०—कान्ह कृपाल बड़े मतपाल गये खल खेचर खीस खलाई।—तुलसी। खीस डालना = नष्ट करना। उ०—काहे को निर्गुण ज्ञान गनत हो जित तित डारत खीस।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खीज] (१) अप्रसन्नता। नाराज़गी। (२) क्रोध। रोष। गुस्सा।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खिसिआना] "खिसिआना" का भाव लज्जा। शरम।

क्रि० प्र०—मिटाना।

संज्ञा स्त्री० [सं० कीश = बंदर] ओंठ से बाहर निकले हुए दाँत।

मुहा०—खीस काढ़ना = (१) बेढंगे तौर से हँसना। (२) दीन होकर कुछ माँगना। (३) मर जाना।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खिसारा] घाटा। हानि।

क्रि० प्र०—उठाना।—पड़ना।

संज्ञा स्त्री० [देश०] गाय का वह दूध जो ब्याने के पीछे सात दिन तक निकलता है। पेउस।

खीसा–संज्ञा पुं० [फ़ा० कीसा] [स्त्री० अल्प० खीसी] (१) थैला। थैली। (२) जेब। पाकेट। खलीता। (३) एक प्रकार की कपड़े की थैली जिसे हाथ में पहन कर लोग बदन साफ़ करते हैं।

क्रि० प्र०—करना = खीसे से शरीर मलना।

†संज्ञा पुं० [हिं० खीस] श्रोंठ से बाहर निकले हुए दांत।

खुँटकढ़वा–संज्ञा पुं० [हिं० खूँट + काढ़ना] कान की मैल निकालनेवाला। कनमैलिया।

खुँटफारी†–वि० हिं० खूँटा + फाड़ना] बहुत दुष्ट या पाजी (बालक)।

खुंड–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार की मोटी घास जो काली मिट्टी की भूमि में अधिकता से होती है। यह एक गज़ तक ऊँची होती है श्रोर इसका डंठल बहुत मोटा होता है। सूखने पर तो कभी नहीं पर हरी रहने पर कभी कभी पशु इसे खा लेते हैं। इसे गुंड या गूनर भी कहते हैं। (२) एक प्रकार का पहाड़ी टट्टू जिसे गूँठ वा गुंठा भी कहते हैं।

खुँडला–संज्ञा पुं० [सं० खंडल] टूटा-फूटा घर। छोटा झोपड़ा।

खुँदाना–क्रि० स० [सं० क्षुण्ण = रौंदा हुआ] (घोड़ा) कुदाना।

खुँदी†–संज्ञा स्त्री० दे० "खूँद"।

खुंबी†–संज्ञा स्त्री० दे० "खुमी"।

खुंभी†–संज्ञा स्त्री० दे० "खुमी"।

खुआर*†–वि० [फ़ा० ख्वार] (१) दुर्दशा-ग्रस्त। खराब। उ०—नतरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहिँ सहित सब होत खुआरू।—तुलसी। (२) जिसकी कुछ प्रतिष्ठा न हो। बेइज़्ज़त।

खुआरी†–संज्ञा स्त्री० [फा० ख्वारी] (१) बरबादी। ख़राबी। नाश। (२) अनादर। अप्रतिष्ठा। बेइज़्ज़ती।

खुक्ख–वि० [सं० शुष्क या सं० तुच्छ, प्रा० छुच्छ] (१) जिसके पास कुछ न हो। छूछा। खाली। (२) जो खिलाल हो गया हो। (ताश का खेल)।

खुखंड–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की राई।

खुखड़ा†–संज्ञा पुं० [हिं० खुक्ख] वह पेड़ जो घुन गया हो या जिसका गूदा सड़ कर निकल गया हो।

खुखड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) तकुआ पर चढ़ा कर ऊपर लपेटा हुआ सूत या ऊन जो बुनने के काम आता है। कुकड़ी। (२) एक प्रकार की बड़ी छुरी जो प्रायः नेपाल में बनती है।

खुखला†–वि० दे० "खोखला"।

खुखुड़ी†–संज्ञा स्त्री० दे० "खुखड़ी"।

खुगीर–संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह ऊनी कपड़ा जो घोड़ों के चारजामा के नीचे लगवाया जाता है। नमदा। (२) चारजामा। ज़ीन।

मुहा०—खुगीर की भरती = बहुत ही अनावश्यक और व्यर्थ के लोगों या पदार्थों का संग्रह।

खुचर, खुचुर–संज्ञा स्त्री० [सं० कुचर = पराए दोष निकालनेवाला] व्यर्थ के दोष निकालने की क्रिया। झूठ मूठ अवगुण दिखलाने का कार्य्य।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।—लगाना।

खुजलाना–क्रि० स० [सं० खर्जु, खर्जन] [संज्ञा, खुजलाहट, खुजली] खटमल, मच्छड़, आदि के काटने के कारण वा रोगों से किसी अंग में सुरसुराहट मालूम होने पर नाखून आदि से उसे रगड़ना। खुजली मिटाने के लिये नख आदि को अंग पर फेरना। सहलाना। उ०—(क) वह सिर खुजला रहा है। (ख) हिरन सींगों से एक दूसरे को खुजला रहे हैं।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

क्रि० अ० किसी अंग में सुरसुरी वा खुजली मालूम होना। उ०—हमारे हाथ खुजला रहे हैं।

मुहा०—किसी काम के लिये कोई अंग खुजलाना = किसी काम के करने वा होने के लिये किसी अंग का चंचल होना या फड़कना। किसी काम के किए या हुए बिना न रहा जाना। उ०—(क) तुम्हें मारने के लिये हमारे हाथ खुजलाते हैं। (ख) मार खाने के लिये तुम्हारी पीठ खुजलाती है। (ग) बोले बिना तुम्हारा मुँह खुजलाता है।

खुजलाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुजलाना] अंग में खटमल, मच्छड़ आदि के काटने वा किसी कृमि के धीरे धीरे रेंगने का सा अनुभव। सुरसरी। खुजली।

खुजली–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुजलाना] (१) खुजलाहट। सुरसरी।

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

(२) एक रोग जिसमें शरीर बहुत खुजलाता है और उस पर छोटे छोटे दाने निकल आते हैं।

मुहा०—खुजली उठना = (१) दंड पाने की इच्छा होना। शामत आना। (विशेषतः बालकों के लिये) (२) प्रसंग कराने की इच्छा होना। (बाजारू)। खुजली मिटना = (१) दंड मिलना। पिटना। (२) प्रसंग होना।

खुजवाना–क्रि० स० दे० "खोजवाना"।

खुजाना–क्रि स०, क्रि० अ० दे० "खुजलाना"।

खुज्झा†–संज्ञा पुं० दे० "खूझा"।

खुझड़ा–संज्ञा पुं० दे० "खूझा"।

खुझर–संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० जड़] पेड़ की वह जड़ जो धरती के भीतर कम जाती है, ऊपर ही चारों ओर फैलती है।

खुटक*†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खटकना] खटका। आशंका। चिंता। उ०—मन में नेक खुटक जनि राखहु। दीन वचन मुख ते तुम भाखहु।—सूर।

खुटकना–क्रि० स० [सं० खुड् वा खुंड] किसी वस्तु का शिरोभाग तोड़ना। किसी वस्तु को ऊपर ऊपर से तोड़ या नोच लेना।

खुटका†–संज्ञा पुं० दे० "खटका"।

खुटचाल*–संज्ञा स्त्री० [हिं० खोटी + चाल] (१) दुष्टता। पाजीपन। उ०—करै क्यों न खुटचाल पति सों पड़ै न कटुक तिय।

चंद्रकला हरमाल, सदा एक परिवार है।—गुमान। (२) कुत्सित आचरण। खराब चाल चलन। (३) उपद्रव।

खुटचाली*–वि० [हिं० खुटचाल + ई (प्रत्य०)] (१) दुष्ट। पाजी। उपद्रवी। (२) दुराचारी। बदचलन।

खुटना†*–क्रि० अ० [सं० खुड्] खुलना। उ०—तौ लगि या मन-सदन में, हरि आवैं केहि बाट। निपट बिकट जौ लौं जुटे, खुटहिं न कपट कपाट।—बिहारी।

क्रि० अ०† [हिं० छुटना] अलग होना। पृथक् होना। संबंध छोड़ देना।

क्रि० अ०† [सं० खुड् या खोट] समाप्त होना। खतम होना।

खुटपन, खुटपना–संज्ञा पुं० [हिं० खोटा + पन, पना (प्रत्य०)] खोटापन। दोष। ऐब।

खुटाना† क्रि० अ० [सं० खुड् = खोंडा होना, या खोट] खुटना। समाप्त होना। खतम होना। उ०—जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी। सो जानै जनु आयु खुटानी।—तुलसी

खुटाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० खोटाई] खोटापन। दोष। उ०—अरी मधुर अधरान तें, कटुक बचन मत बोल। तनक खुटाई तें घटै, लखि सुबरन को मोल।—रसनिधि।

खुटिला–संज्ञा पुं० [देश०] करनफूल नामक कान का गहना। उ०—खुटिला सुभग जराइ के, मुकुतामनि छबि देत। प्रगट भयो घन मध्य ते, शशि मनु नखत समेत।—सूर।

खुटेरा†–संज्ञा पुं० [सं० खदिर] खैर का पेड़।

खुट्टी†–संज्ञा स्त्री० [खुट से अनु०] खेड़ी नाम की मिठाई जो तिल और चीनी या गुड़ से बनती है।

खुट्ठी–संज्ञा स्त्री० [?] घाव से निकला हुआ वह मवाद जो सूख कर घाव के ऊपर ही जम जाता है। घाव पर जमी हुई पपड़ी। खुरंड।

खुठमेरा‡–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा या निकृष्ट धान।

खुड़ला–संज्ञा पुं० [देश०] मुर्गियों का दर्बा। चिड़ियाखाना (लश०)

खुड़ुआ†–संज्ञा पुं० [देश०] वर्षा या जाड़े आदि से बचने के लिये एक विशेष प्रकार से सिर पर डाला हुआ कंबल या और कोई कपड़ा। घोघी।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।—देना।

खुड्डी, खुड्ढी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गड्ढा] (१) पाखाने में पैर रखने के पायदान। (२) पायखाना फिरने का गड्ढा।

खुतका–संज्ञा पुं० दे० "कुतका"।

खुतबा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) तारीफ। प्रशंसा। (२) सामयिक राजा की प्रशंसा जो इस हेतु से सर्व-साधारण को सुनाई जाय कि सब लोग उस राजा की सत्ता को मान लें।

मुहा०—किसी के नाम का खुतबा पढ़ा जाना = सर्व-साधारण को सूचना देने के लिये किसी के सिंहासनासीन होने की घोषणा होना।

खुत्थ–संज्ञा पुं० [हिं० खूँटा] पेड़ की जड़ के ऊपर का वह भाग जो पेड़ काट लेने पर रह जाता है।

खुत्थी, खुथी*†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खूँटी] अरहर, ज्वार इत्यादि के पेड़ों का वह भाग जो फसल काट लेने पर पृथ्वी पर गड़ा रह जाता है। खूँथी। खूँटी। (२) थाती। धरोहर। अमानत। (३) वह पतली लंबी थैली जिसमें रुपया भर कर कमर में बाँधते हैं। बसनी। हिमयानी। (४) धन। दौलत। संपत्ति। उ० —द्रौपदी की देह में खुथी ही कहा दुःशासन खरोई खिसानो खैंचि बसन न छूट्यो है।—केशव।

खुद–अव्य० [फ़ा०] स्वयं। आप।

मुहा०— खुद-ब-खुद = आप से आप। बिना किसी दूसरे के प्रयास, यत्न या सहायता के।

खुदका–संज्ञा पुं० दे० "कुतका"।

खुदकाश्त–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह ज़मीन जिसे उसका मालिक स्वयं जोते बोवे, पर वह सीर न हो।

खुदकुशी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अपने हाथों अपने को मार डालना। आत्महत्या।

खुदगरज–वि० [फ़ा०] [संज्ञा खुदगरजी] अपना मतलब साधनेवाला। स्वार्थी।

खुदगरजी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] स्वार्थपरता।

खुदना–क्रि० अ० [हिं० खोदना] खोदा जाना।

खुदमुख्तार–वि० [फ़ा०] जिस पर किसी का दबाव न हो। अनिरुद्ध। स्वतंत्र। स्वच्छंद।

खुदमुख्तारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] स्वतंत्रता। स्वच्छंदता।

खुदरा–संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्र] छोटी और साधारण वस्तु। फुटकर चीज़।

यौ०—खुदराफ़रोश = छोटी छोटी वस्तुएँ बेचनेवाला। फुटकर चीज़ें बेचनेवाला।

मुहा०—खुदरा कराना = नोट या रुपया आदि भुनाना।

खुदराई–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] स्वेच्छाचार। (क०)

खुदराय–वि० [फ़ा०] स्वेच्छाचारी। (क०)

खुदवाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुदवाना] खुदवाने का भाव। (२) खुदवाने की क्रिया। (३) खुदवाने का मज़दूरी।

खुदवाना–क्रि० स० [हिं० खोदना] 'खोदना' का प्रेरणार्थक रूप। खोदने का काम कराना।

खुदा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] स्वयंभू। ईश्वर।

यौ०—खुदा-न-ख्वास्ता = ईश्वर ऐसा न करे। ईश्वर न करे ऐसा हो।

मुहा०—खुदा खुदा करके = बहुत कठिनता से। बड़ी मुशकिल से। खुदा की मार = ईश्वरी प्रकोप। (शाप)

खुदाई–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) ईश्वरता। (२) सृष्टि।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खोदना] (१) खोदने का भाव। (२) खोदने का काम। (३) खोदने की मज़दूरी।

खुदावंद–संज्ञा पुं० [फा०] (१) ईश्वर। (२) मालिक। अन्नदाता। (३) हुजूर। साहेब। जनाब। श्रीमान्। (सम्मानसूचक शब्द)

खुदी–संज्ञा पुं० [फा०] (१) अहंभाव। अहंकार। (२) अभिमान। घमंड। शेखी।

खुद्दी–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद्र] (१) चावल, दाल आदि के बहुत छोटे छोटे टुकड़े। (२) तलछट। ऊख के रस की तलछट।

खुनकी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सरदी। ठंढक।

खुनखुना–संज्ञा पुं० [अनु०] लड़कों का एक खिलौना जो झुनझुन वा खुनखुन शब्द करता है। घुनघुना। झुनझुना।

खुनस–संज्ञा स्त्री० [सं० खिन्नमनस्] [वि० खुनसी] क्रोध। गुस्सा। रिस। उ०—(क) खेलत खुनस कबहुँ नहि देखी।—तुलसी। (ख) इश्क मुश्क खाँसी खुनस, खैर खून मद-पान। चतुर छिपावत हैं सही, आप परत हैं जान।—कोई कवि।

खुनसाना–क्रि० अ० [सं० खिन्नमनस्] क्रोध करना। गुस्सा होना। उ०—दुख सुख की बातैं सबै जानैं श्री रघुवीर। खुनसाने नहिं रह सके बोले कपि सब धीर।—हनुमान।

खुनसी–वि० [हिं० खुनसाना] गुस्सा करनेवाला। क्रोधी।

ख़ुफ़िया–वि० [फ़ा०] गुप्त। पोशीदा। छिपा हुआ।

यौ०—ख़ुफ़ियाखाना=वह स्थान जहां कुटनियाँ स्त्रियों को बहका कर व्यभिचार कराने के लिये ले जाती हैं।

ख़ुफ़िया पुलीस–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुफिया + अं० पुलीस] गुप्त पुलीस। भेदिया। जासूस।

खुभना–क्रि० स० [अनु०] चुभना। घुसना। धँसना। उ०—सालति है नटसाल सी, क्यौंहूँ निकसति नाहिं। मनमथ नेजा नोक सी, खुभी खुभी मन माहिं।—बिहारी।

खुभराना*†–क्रि० अ० [सं० क्षुब्ध] उपद्रव के लिये घूमना। उमड़ना। इतराए फिरना। उ०—ऐयां गैयां बैयां लै लुगैयां लैयां पैयां चलो, वारौ ना अथैयां कहूँ जाट खुभराने है।—सूदन।

खुभिया†–संज्ञा स्त्री० दे० "खुमी"।

खुभी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुभना] लौंग के आकार का, कान में पहनने का एक आभूषण जिसे लौंग भी कहते हैं। उ०—सालति है नटसाल सी क्यौंहू निकसति नाहिं। मनमथ नेजा नोक सी, खुभी खुभी मन माहिं।—बिहारी।

संज्ञा स्त्री० दे० "खुमी"।

खुमरा–संज्ञा पुं० [अ० क़ुन्बुर = अली (पैगंबर) का एक गुलाम] [भाव० खुमरी] एक प्रकार के भीखमाँगनेवाले मुसलमान फ़क़ीर जो प्रायः पश्चिम में होते हैं।

खुमा–संज्ञा पुं० दे० "खुमारी"।

खुमारी–संज्ञा स्त्री० [अ० खुमार] (१) मद। नशा। उ०—जब जान्यो ब्रजदेव मुरारी। उतर गई तब गर्व खुमारी।—सूर। (२) वह दशा जो नशा उतरने के समय होती है और जिसमें कुछ हल्की थकावट मालूम होती है। उ०—ध्रुव प्रह्लाद विभीषण माते, माती शिव की नारी। सगुण ब्रह्म माते वृंदावन, अजहुँ न छूटि खुमारी।—कबीर। (३) वह दशा जो रात भर जागने से होती है। इसमें भी शरीर शिथिल रहता है।

क्रि० प्र०—उतरना।—चढ़ना।

खुमी–संज्ञा स्त्री० [अ० कुमा] पत्र पुष्प रहित क्षुद्र उद्भिद की एक जाति जिसके अंतर्गत भूँफोड़, ढिंगरी, कुकुरमुत्ता, गगनधूल आदि हैं। इस जाति के पौधों में हरे कोशाणु नहीं होते जिनके द्वारा और पौधे मिट्टी आदि निरवयव द्रव्यों को अपने शरीर के धातु रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। इसी से खुमी जाति के पौधे सफ़ेद वा मटमैले होते हैं और अपना आहार दूसरे पौधों वा जंतुओं के जीवित वा मृत शरीर से प्राप्त करते हैं। बरसात में भींगी सड़ी लकड़ियों पर एक प्रकार की गोल और छोटी खुमी निकलती है जिसे कठफूल कहते हैं। यह प्रायः विषैली होती है। खुमी के शरीर-कोश की बनावट और पौधों की सी नहीं होती। इसके कोशाणु सूत की तरह लंबे लंबे होते हैं, पर किसी किसी खुमी के कोशाणु गोल भी होते हैं। खुमी के दो मुख्य भेद हैं एक वह जो दूसरे जीवित पौधों के रस से पलती है और दूसरी वह जो सड़े गले वा मृत शरीर से आहार संग्रह करती है। पहले प्रकार की खुमी गेरुई आदि के रूप में अनाज के पौधों में देखी जाती है। दूसरे प्रकार की खुमी भूफोड़, कठफूल, कुकुरमुत्ता आदि हैं। खुमी के पौधे अधिकांश अंगुल डेढ़ अंगुल से लेकर आठ आठ दस दस अंगुल तक के दिखाई पड़ते हैं। ये छूने में कोमल और छाते के आकार के होते हैं। छतरी की बनावट पर्त्तदार होती है। खुमी के कई भेद गूदेदार और खाने लायक़ होते हैं, जैसे, भूफोड़, ढिंगरी (पंजाब) आदि। कई दुर्गंधयुक्त और विषैले होते हैं, जैसे, कुकुरमुत्ता कठफूल आदि। वैद्यक में खुमी विषैली और धर्मशास्त्र में अभक्ष्य मानी गई है। खाने योग्य खुमी (भूफोड़) ख़ूब गूदेदार और सफ़ेद होती है। उसकी डंठल में गोल गोल छल्ले से पड़े रहते हैं, और उस में किसी प्रकार की गंध नहीं होती। खुमी बरसात में बहुत उपजती है। गगनधूल।

पर्य्या०—छत्राक। कवक। शिलींध्र। उच्छिलींध्र। कुकुरमुत्ता। गगनधूल। रामछाता।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खुभना] (१) वह सोने की कील जिसे लोग दाँतों में जड़वाते हैं। (२) धातु का बना हुआ वह पोला जो हाथी के दाँत पर चढ़ाया जाता है। उ०—गलित गयंद कुच कुंभ किंकणी मनहुँ घंट झहरावै। मोतिनहार जलाजल मानो खुमी दंत झलकावै।—सूर।

खुरंट–संज्ञा पुं० दे० "खुरंड"।

खुरंड–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुर = खरोचना + अंड] घाव के ऊपर

सूख कर जमा हुआ मवाद। सूखे घाव के ऊपर की पपड़ी।

खुर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सींगवाले चौपायों के पैर की कड़ी टाप जो बीच से फटी होती है। गाय, भैंस आदि सींगवाले चौपायों के पैर का निचला छोर जो खड़े होने पर पृथ्वी पर पड़ता है।

यौ०—खुरबंदी = घोड़े बैल आदि के खुरों में नाल जड़ना।

(२) चारपाई या चौकी के पाए का निचला छोर जो पृथ्वी से लगा रहता है। (३) नख नामक गंधद्रव्य।

खुरक†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुटक] सोच। खटका। अंदेशा। उ०—सुआ न रहै खुरक जी अबहुं काल सो आव। शत्रु अहै जेहि करिया कोह सो बूड़ी नाव।—जायसी।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिल का पेड़। (२) एक प्रकार का नृत्य।

खुरक रांगा–संज्ञा पुं० [सं० खुरक + हिं० राँगा] हिरनखुरी राँगा जो नर्म, सफ़ेद और जल्दी गल जानेवाला होता है। इस राँगे का बंग उत्तम होता है।

खुरका–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो अफीम के पौधे को हानि पहुँचाती है।

खुरखुर–संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो गले में कफ़ आदि रहने के कारण साँस लेते समय होता है। घरघर शब्द।

खुरखुरा–वि० [सं० क्षुर = खरोचना] जो चिकना न हो। जिसको छूने से हाथ में कण वा रवे गड़ें। असमतल। जिसकी सतह बराबर न हो। नाहमवार। खरदरा।

खुरखुराना–क्रि० अ० [हिं० खुरखुर अनु०] (१) खुरखुर शब्द करना। (२) गले में कफ़ के कारण घरघराहट होना।

क्रि० अ० [हिं० खुरखुरा] खुरखुरा मालूम होना। कण या रवे आदि गड़ना।

खुरखुराहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुरखुर] साँस लेते समय गले के शब्द में वह विकार जो कफ़ आदि के कारण होता है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खुरखुरा] खरदरापन।

खुरचन–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुरचना] (१) जो वस्तु खुरच कर निकाली जाय। (२) दूध पकाने के बरतन में से खुरच कर निकाला हुआ दूध का जमा हुआ अंश। (३) कड़ाह से खुरच कर निकाला हुआ गुड़।

खुरचना–क्रि० स० [सं० क्षुरण] किसी जमी हुई वस्तु को उसके आधार पर से कुरेद कर अलग कर लेना। करोचना। करोना।

खुरचनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुरचना] (१) छेनी की तरह का एक औज़ार जिससे कसेरे बरतन छील कर साफ़ करते हैं। (२) चमारों का एक औज़ार। (३) खुरचने का कोई औज़ार।

खुरचाल–संज्ञा स्त्री० [हिं० खोटी + चाल] पाजीपन। बदमाशी। शरारत।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।

खुरचाली–वि० [हिं० खुरचाल] खुरचाल करनेवाला। पाजी। दुष्ट।

खुरजी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह झोला जिसमें ज़रूरी सामान रख कर घोड़-सवार अपने घोड़े पर रखता है। बड़ा थैला।

खुरट–संज्ञा पुं० [हिं० खुर] चौपायों के खुर की एक बीमारी। खुरहा। खुरा। खुरपका।

विशेष—दे० "खुरपका"।

खुरतार†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर + ताड़न] टाप वा खुर की चोट। सुम का आघात। उ०—(क) धुरवा धूरि उड़त रथ पायक घोरन की खुरतार।—सूर। (ख) दलत मलत खुरतारनि पहार हय घुंघुरि सो भयो भानु नभ में नखत सों।—गुमान।

खुरथी†–संज्ञा स्त्री० दे० "कुलथी"।

खुरदाँय†–संज्ञा पुं० [हिं० खुर + दाना] कटी हुई फसल को, अन्न के दाने अलग करने के लिये बैलों से कुचलवाना।

खुरदादी–संज्ञा पुं० [फ़ा० ख़ुर + दाद] भालू का जुलाब। (कलंदरों की भाषा)।

खुरपका–संज्ञा पुं० [हिं० खुर + पकना] पशुओं का एक रोग जिस में उनके मुँह और खुरों में दाने निकल आते हैं और मुँह से बहुत लार बहती है, सारा बदन गरम हो जाता है, बहुत गरम साँस चलती है और पशु लँगड़ा कर चलने लगता है। यह रोग संसर्ग से बहुत जल्दी फैलता है।

खुरपा–संज्ञा पुं० [स० क्षुरप्र] [स्त्री० अल्प० खुरपी] (१) लोहे का बना हुआ एक छोटा औजार जिस के एक सिरे पर पकड़ने के लिये लकड़ी की मुठिया लगी रहती है। इससे घास छीली और भूमि गोड़ी जाती है। (२) चमारों का एक औजार जिससे चमड़े की सतह छील कर साफ़ करते हैं।

खुरफ–संज्ञा पुं० [फ़ा० खुरफ़ा] लोनिया की तरह का एक साग जिसे कुलफा भी कहते हैं।

खुरमा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) छोहारा। (२) एक प्रकार का पकवान। यह मीठा और नमकीन दोनो प्रकार का होता है। इसमें पहले मोटे आटे को मोयन देकर दूध में सान लेते हैं और सानते समय यथारुचि मीठा वा नमक मिला देते हैं। फिर मोटी रोटी सी बेल कर उसके छोटे, बड़े, लंबे, तिकोने या चौकोर खंड बना कर घी में छान लेते हैं। कोई कोई इसे सादे ही बना कर चीनी में पाग लेते हैं।

खुरसीटा†–संज्ञा पुं० [सं० खुर + सीदित = पीड़ित] पशुओं के खुरों का एक रोग जिसे खुरपका कहते हैं।

विशेष—दे० "खुरपका"।

खुरहर†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर + हर (प्रत्य०)] (१) खुर का चिह्न। (२) जंगल आदि में पगडंडी की भांति खुर आदि से बना हुआ पतला रास्ता जिस पर पशु चलते हैं।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

(३) तंग रास्ता। पगडंडी।

खुरहा–संज्ञा पुं० [हिं० खुर + हा (प्रत्य०)] पशुओं का "खुरपका" नाम का रोग।

खुरहुर†–संज्ञा पुं० दे० "खुरू"।

खुरा–संज्ञा पुं० [हिं० खुर] पशुओं के खुरों का "खुरपका" नाम का रोग।

संज्ञा पुं० [सं० क्षुर] लोहे का एक काँटा जो हल में फाल वा कुसी की दृढ़ता के लिये लगाया जाता है।

खुराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर] वह रस्सी जिससे पशुओं के दोनों पैर परस्पर बाँध दिए जाते हैं।

खुराक–संज्ञा पुं० [फ़ा०] भोजन। खाना।

खुराकी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह नगद दाम जो खुराक के लिये दिया जाय।

वि० अधिक खानेवाला।

खुराफात–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बेहूदा और रद्दी बात। (२) गाली गलौज।

क्रि० प्र०—बकना।

(३) झगड़ा। बखेड़ा। उपद्रव।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

खुरायल†–संज्ञा पुं० [हिं० खुर + आयल] वह खेत जो बोने के लिये तैयार हो।

खुरासान–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० खुरासानी] फ़ारस देश का एक बड़ा सूबा जो अफ़गानिस्तान के पश्चिम में बिलकुल सटा हुआ है। यहाँ की अजवाइन बहुत प्रसिद्ध और अच्छी होती है।

खुराही–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर + फ़ा० राह] रास्ते का ऊँचा-नीचापन सूचित करनेवाला एक शब्द। (कहारों की भाषा।)

खुरिया–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० (आब) खोरा] (१) कटोरी। छोटी प्याली। (२) घुटने के जोड़ पर की गोल हड्डी।

खुरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर] टाप का चिह्न। सुम का निशान।

मुहा०—खुरी करना = (१) घोड़े बैल आदि सुमवाले पशुओं का पैर से ज़मीन खोदना। (२) बहुत जल्दी करना।

संज्ञा स्त्री० [देश०] इतना तेज बहनेवाला पानी जिसके विरुद्ध नाव न चल या चढ़ सके। (मल्लाहों की भाषा)।

खुरुचनी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुरचना] (१) किसी चीज़ का वह जमा हुआ भाग जो खुरचने से अलग हो सके। (२) खुरचने का औज़ार।

खुरुहरा†–संज्ञा पुं० दे० "खरहरा"।

खुरू–संज्ञा पुं० [हिं० खुर] (१) खुर वा टापवाले पशुओं की खुर से भूमि खोदने की क्रिया जिसमें वे प्रायः डकारते वा रँभाते भी हैं। (क्रोध वा प्रसन्नता के समय चौपाए ऐसा करते हैं) (२) उपद्रव। नटखटी। बखेड़ा। टंटा। (२) सत्यानाश। ध्वंस।

खुरूरू–संज्ञा स्त्री० [देश०] नारियल की गरी। (बुं० खं०)

खुर्द–वि० [फ़ा०] छोटा। लघु। "कलाँ" का उलटा।

खुर्दबीन–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक विशेष प्रकार के शीशे का बना हुआ वह यंत्र जिससे छोटी वस्तु बहुत बड़ी देख पड़ती है। सूक्ष्मदर्शक यंत्र।

खुर्दबुर्द–क्रि वि० [फ़ा०] (१) नष्ट भ्रष्ट। (२) समाप्त।

खुर्दा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] छोटी मोटी चीज़।

खुर्दाफ़रोश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] छोटी मोटी फुटकर चीजें बेचनेवाला।

खुर्राट–वि० [देश०] (१) बुड्ढा। वृद्ध। (२) अनुभवी। तजरुबेकार। (३) चालाक। काइयाँ।

खुर्राटा–संज्ञा पुं० दे० "खर्राटा"।

खुलती–संज्ञा स्त्री० दे० "कुलथी"।

खुलना–क्रि० अ० [सं० खुड, खुल = भेदन] (१) किसी वस्तु के मिले वा जुड़े भागों का एक दूसरे से इस प्रकार अलग होना कि उसके भीतर वा उस पार तक आना, जाना, टटोलना, देखना आदि हो सके। छिपाने वा रोकनेवाली वस्तु का हटना। अवरोध वा आवरण का दूर होना। जैसे, किवाड़ खुलना, संदूक का ढक्कन खुलना। (आवरण और आवृत तथा अवरोधक और अवरुद्ध दोनों के लिये इस क्रिया का प्रयोग होता है, जैसे, मकान खुलना, संदूक खुलना, ढक्कन खुलना, मोरी खुलना)

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

मुहा०—खुल कर = बिना रुकावट के। खूब। अच्छी तरह। जैसे, खुल कर भूख लगना, खुल कर दस्त होना। खुला स्थान = अनावृत स्थान। ऐसा स्थान जो घिरा न हो।

(२) ऐसी वस्तु का हट जाना वा तितर बितर हो जाना जो छाए वा घेरे हो। जैसे, बादल खुलना। (३) दरार होना। शिगाफ़ होना। छेद होना। फटना। उ०—एक ही लाठी में सिर खुल गया। (४) बंधन का छूटना। बाँधनेवाली वा जोड़नेवाली वस्तु का हटना। जैसे, बेड़ी खुलना, गाँठ खुलना, सीवन खुलना, टाँका खुलना। (५) किसी बाँधी हुई वस्तु का छूट जाना, जैसे, धोती खुलना। उ०—घोड़ा खुल गया।

मुहा०—खुल जाना = गाँठ से जाता रहना। खो जाना। उ०—आज बैठते ही १००) उसके भी खुल गए।

(६) किसी क्रम का चलना या जारी होना। जैसे, तनखाह खुलना। (७) ऐसी वस्तुओं का तैयार होना जो बहुत दूर तक लकीर के रूप में चली गई हो और जिस पर किसी वस्तु का आना जाना हो। जैसे, सड़क खुलना, नहर खुलना। उ०—यहाँ से रेल की एक नई लाइन खुलने-

वाला है। (८) ऐसे नए कार्य्य का आरंभ होना जिसका लगाव सर्व-साधारण वा बहुत लोगों के साथ रहे। जैसे, कारखाना खुलना, स्कूल खुलना, दूकान खुलना। (९) किसी कारखाने, दूकान, दफ़तर या और किसी कार्य्यालय का नित्य का कार्य्य आरंभ होना। उ०—अब तो दूकान खुल गई होगी, जाओ कपड़ा ले आओ। (१०) किसी ऐसी सवारी का रवाना हो जाना जिस पर बहुत से आदमी एक साथ बैठें। जैसे, नाव खुलना, रेलगाड़ी खुलना। (११) किसी गुप्त वा गूढ़ बात का प्रकट हो जाना। उ०—(क) अब तो यह बात खुल गई, छिपाने से क्या लाभ? (ख) इसका अर्थ कुछ खुलता नहीं।

मुहा०—खुले आम, खुले खजाने, खुले बाज़ार = सब के सामने। सब की जान में। छिपा कर नहीं। प्रकट में।

(१२) अपने मन की बात साफ़ साफ़ कहना। भेद बताना। उ०—(क) तुम तो कुछ खुलते ही नहीं, हम तुम्हारा हाल कैसे जानें। (ख) मैं उससे ख़ूब मिल कर बात करने लगा तब वह खुल पड़ा।

संयो० क्रि०—पड़ना।

मुहा०—खुल कर = बेधड़क। साफ़ साफ़। उ०—जो कहना हो खुल कर कहो। खुल खेलना = लज्जा वा कलंक का भय छोड़ कर कोई काम सब के सामने करना।

(१३) सोहावना जान पड़ना। चटकीला लगना। देखने में अच्छा लगना। सुशोभित होना। खिलना। सजना। उ०—यह टोपी सफ़ेद कपड़े पर ख़ूब खुलती है।

मुहा०—खुलता रंग = हलका सोहावना रंग। वह रंग जो बहुत गहरा न हो।

खुलवा†—संज्ञा पुं० [देश०] गली हुई धातु को साँचे में भरने या ढारनेवाला।

खुलवाना—क्रि० स० [हिं० खोलना] "खोलना" क्रिया का प्रेरणार्थक रूप।

खुला—वि० पुं० [हिं० खुलना] [स्त्री० खुली] (१) बंधन रहित। जो बँधा न हो। (२) अवरोधहीन। जिसे कोई रुकावट न हो। (३) स्पष्ट। प्रगट। ज़ाहिर। जो छिपा न हो।

मुहा०—खुले खजाने = सब के सामने। किसी से छिपा कर नहीं। खुले दिल = उदारतापूर्वक। खुले बंद = बेधड़क। निःशंक। खुले मैदान = सब के सामने। खुले खजाने। खुला मैदान वा स्थान = वह स्थान जहाँ चारों ओर से हवा आ सकती हो और दृष्टि के लिये कोई अवरोध न हो। खुली हवा = वह हवा जिसकी गति का अवरोध न होता हो।

खुलापल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० खुला + पल्ला] दोनों हाथों से एक साथ या केवल बाएँ हाथ से तबले पर खुली थाप देकर बजाना आरंभ करना। (संगीत)

खुलासा—संज्ञा पुं० [अ०] सारांश। संक्षेप।

वि० [हिं० खुलना] (१) खुला हुआ। (२) अवरोधरहित। बिना रुकावट का। जैसे, खुलासा दस्त होना। (३) साफ़ साफ़। स्पष्ट। (४) संक्षिप्त। सारांशरूप। जैसे, खुलासा हाल।

खुल्लमखुल्ला—क्रि० वि० [हिं० खुलना] प्रकाश रूप से। खुले आम।

खुवार†—वि० दे० "ख्वार"।

खुवारी†—संज्ञा स्त्री० दे० "ख्वारी"।

खुश—वि० [फ़ा०] (१) प्रसन्न। मगन। मुदित। आनंदित। (२) अच्छा। (इस अर्थ में केवल यौगिक शब्दों के आरंभ में यह आता है।)

खुशकिस्मत—वि० [फ़ा०] भाग्यवान। अच्छी किस्मतवाला।

खुशकिस्मती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सौभाग्य।

खुशकी—संज्ञा स्त्री० दे० "खुश्की"।

खुशख़त—वि० [फ़ा०] (१) जिसकी लिखावट सुंदर हो। (२) सुंदर अक्षर लिखनेवाला।

खुशख़बरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] प्रसन्न करनेवाला समाचार। अच्छी ख़बर।

क्रि० प्र०—देना।—सुनना।—सुनाना।

खुशदिल—वि० [फ़ा०] (१) जो प्रत्येक दशा में आनंदित रहे। सदा प्रसन्न रहनेवाला। (२) हँसोड़। मसखरा।

खुशनवीस—संज्ञा पुं० [फ़ा०] सुंदर अक्षर लिखनेवाला व्यक्ति। वह जिसकी लिखावट बढ़िया हो।

खुशनवीसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सुंदर अक्षर लिखने की कला।

खुशनसीब—वि० [फ़ा०] भाग्यवान्।

खुशनसीबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सौभाग्य।

खुशनुमा—वि० [फ़ा०] जो देखने में भला मालूम हो। सुंदर मनोहर।

खुशबू—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सुगंधि। सौरभ।

खुशबूदार—वि० [फ़ा०] उत्तम गधवाला। सुगंधियुक्त। सुगंधित

खुशरंग—वि० [फ़ा०] चटकीले रंगवाला। जिसका रंग बढ़िया हो संज्ञा पुं० [फ़ा०] चटकीला रंग।

खुशहाल—वि० [फ़ा०] जिसकी स्थिति बहुत अच्छी हो। सुखी संपन्न।

खुशहाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] उत्तम दशा। अच्छी अवस्था।

खुशाब—संज्ञा पुं० [फ़ा०] धान की निरौनी का एक ढंग जिसका चलन कश्मीर देश में है।

खुशामद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह झूठी प्रशंसा जो केवल दूसरे को प्रसन्न करने के लिये की जाय। चाटुता। चापलूसी।

खुशामदी—वि० [फ़ा० खुशामद + ई० (प्रत्य०)] (१) खुशामद करनेवाला। चापलूस।

यौ०—खुशामदी टट्टू।

(२) सब प्रकार का काम करनेवाला। ऊँच नीच सब प्रकार की टहल वा सेवा करनेवाला। (बुं० खं०)

खुशामदी टट्टू-संज्ञा पुं० [हिं० खुशामदी + टट्टू] वह जिसकी जीविका केवल खुशामद से ही चलती हो। भारी खुशामदी।

खुशियाली†-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खुशहाली] (१) आनंद। खुशी। प्रसन्नता। (२) कुशल क्षेम। खैर-आफ़ियत।

खुशी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) आनंद। प्रसन्नता।

क्रि० प्र०—करना।—मनाना।

मुहा०—खुशी खुशी = प्रसन्नता से। आनंद सहित।

(२) ठगों की भाषा में, उनका निशान और कुल्हाड़ा जो उनके गरोह के आगे चलता है।

खुश्क-वि० [फ़ा० खुश्क। सं० शुष्क] (१) जो तर न हो। सूखा।

यौ०—खुश्क साली।

(२) जिसमें रसिकता न हो। रूखे स्वभाव का। (३) बिना किसी और प्रकार की आय वा सहायता के। केवल। मात्र। उ०—नौकर को खुश्क ४) मिलते हैं। (इस अर्थ में इसका प्रयोग केवल वेतन के लिये आता है)।

खुश्क साली-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अनावृष्टि।

खुश्का-संज्ञा पुं० [फ़ा०] केवल पानी में उबाल कर पकाया हुआ चावल। भात।

खुश्की-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) रूखापन। रुखाई। शुष्कता नीरसता।

क्रि० प्र०—आना।—लाना।

(२) स्थल वा भूमि। (जल का विरोधी)। उ०—खुश्की के रास्ते से जाने में १० दिन लगेंगे। (३) वह सूखा आटा जो गीले आटे की लोई वा पेड़े पर लगाया जाता है। पलेथन। (४) अकाल। अवर्षण। खुश्कसाली।

खुसाल, खुस्याल-वि० [फ़ा० खुशहाल] आनंदित। मुदित। खुश। उ०—छुटन न पैयत छिनक बसि नेह नगर यह चाल। मारयो फिरि फिरि मारिये खूनी फिरत खुस्याल।—बिहारी।

खुसुर फुसुर-संज्ञा स्त्री० [अनु०] बहुत धीमी आवाज से कही हुई बात। चुपके चुपके की बात चीत। कानाफूसी।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।

क्रि० वि० बहुत धीमी आवाज से। अस्फुट स्वर से। सायँ-सायँ। फुस फुस।

खुही-सं० स्त्री० [सं० खोलक] इस प्रकार लपेट कर बनाया हुआ कंबल या कपड़ा कि उसे सिर पर डाल लेने से शरीर का ऊपरी भाग शीत वा वर्षा से बचा रहे। खोही। घोघी। खुडुआ। (अहीर गड़ेरिये आदि इसका व्यवहार प्रायः करते हैं)। उ०—साँवरी कामरी की है खुही, बलि, साँवरे पै चली साँवरी ह्वै कै।—पद्माकर।

खूँखार-वि० [फ़ा०] (१) रक्तपान करनेवाला। खून पीनेवाला। (२) भयंकर। डरावना। (३) क्रूर। निर्दय।

खूँट-संज्ञा पुं० [सं० खंड] (१) छोर। कोना। उ०—पीतांबर को खूँट लै आए अवध बिसेखि।—विश्राम। (२) भारी, चौकोर या गोल पत्थर जो मकान की मजबूती के लिये कोनों पर लगाया जाता है। (३) ओर। प्रांत। तरफ़। उ०—दुइ ध्रुव दुहूँ खूँट बैसारे।—जायसी। (४) भाग। हिस्सा। जैसे, खुँटैत। (५) बहुत छोटी पूरी जो देवी देवता को चढ़ाने के लिये बनती है। (६) लकड़ी पर का महसूल।

संज्ञा स्त्री० [देश०] कान का एक बड़ा गहना जो गोल दिये के आकार का होता है। बिरिया। ढार। उ०—तेहि पर खूँट दीप दुइ बारे। दुइ ध्रुव दुहूँ खूँट बैसारे।—जायसी।

संज्ञा पुं० [देश०] आठ सेर की तौल जो घी तेल आदि के लिये प्रचलित थी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० खूँटना] रोक। पूछ ताछ। उ०—वहाँ किसी तरह की खूँट पूछ नहीं होती, तुम डरते क्यों हो।

संज्ञा पुं० [?] कान की मैल।

यौ०—खुँटकढ़वा।

खूँटना-क्रि० स० [सं० खंडन। खुड = तोड़ना] (१) टोकना। कुछ पूछ ताछ करना। (२) छेड़ छाड़ करना। उ०—गागरि मारै कांकरी सो लागै मेरे गात री। गैल मांझ ठाढ़ो रहै मोहिं खूँटै आवत जात री। (३) कम होना। घटना। चुकना। (४) दे० "खोंटना"।

खूँटा-संज्ञा पुं० [सं० क्षोड] [अल्प० स्त्री० खूँटी] (१) बड़ी मेख जिसको भूमि पर गाड़ कर उसमें किसी पशु को बाँधते हैं। (२) कोई लकड़ी जो भूमि पर खड़ी गड़ी हो और जिसमें कोई वस्तु बाँधी वा अटकाई जाय। (३) कोई खड़ी गड़ी हुई लकड़ी।

मुहा०—खूँटा गाड़ना = सीमा निर्द्धारित करना। हद बाँधना। केंद्र निर्द्धारित करना।

खूँटी-संज्ञा स्त्री [हिं० खूँटा] (१) छोटी मेख। (२) नील, अरहर वा ज्वार के पौधे की वह सूखी डंठल जो फसल काट लेने पर खेत में गड़ी रह जाती है। (३) गुल्ली। डाँटी। (४) बालों के कड़े अंकुर जो मूँड़ने के पीछे रह जाते हैं वा निकलते हैं।

मुहा०—खूँटी निकालना वा लेना = ऐसा मूँड़ना कि बाल की जड़ तक न रह जाय।

(५) नील की दूसरी फसल जो एक बार फसल काट लेने पर उसकी जड़ से पैदा होती है। इसे दोरेज़ा भी कहते हैं। (६) सीमा। हद। (७) मेख के आकार का लकड़ी आदि का वह छोटा टुकड़ा जो किसी चीज़ में किसी दूसरी चीज़ के अटकाने आदि के लिये लगा रहता है। जैसे, खड़ाऊँ की खूँटी। सितार की खूँटी।

खूँटीउखाड़-संज्ञा० पुं० [हिं० खूँटी + उखाड़ना] घोड़े की एक भौंरी जो पैरों में पुट्ठे के पास होती है और जिसका मुहँ ऊपर की ओर को होता है। जिस घोड़े को यह भौंरी होती है वह बड़ा ऐबी समझा जाता है।

खूँटीगाड़-संज्ञा पुं० [हिं० खूँटी + गाड़ना] घोड़े की एक भौंरी जो पैरों में पुट्ठे के ऊपर होती है और जिसका मुँह नीचे की ओर होता है। जिस घोड़े को यह भौंरी होती है वह कुछ ऐबी समझा जाता है।

खूँड़ा-संज्ञा पुं० [सं० चोड़ = खूँटा] लोहे की वह पतली छड़ जिसमें नरा लगा कर जुलाहे ताना तनते हैं।

खूँड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० खूँड़ा] एक पतली लकड़ी जिसके सिरे पर काँच का एक चुल्ला फोड़ कर बाँध देते हैं। इसी चुल्ले में रेशम के महीन तागे डाल कर जुलाहे ताना तनते हैं।

खूँथी†-संज्ञा स्त्री० दे० "खुत्थी"।

खूंद-संज्ञा स्त्री० [हिं० खूंदना] थोड़ी जगह में घोड़े का इधर उधर चलते रहना।

विशेष—किसी चंचल घोड़े को जब सवार एक स्थान पर कुछ देर तक खड़ा रखना चाहता है, तो वह घोड़ा सीधा और चुपचाप खड़ा न रह कर थोड़ी सी जगह में ही आगे पीछे हटता और घूमता रहता है। इसी हटने और घूमने को खूंद कहते हैं। उ०—करे चाह सों चुटकि कै खरे उड़ौहें मैन। लाज नवाये तरफरत करत खूँद सी नैन।—बिहारी।

खूंदना-क्रि० अ० [सं० क्षुण्ण = पिसा वा कुचला हुआ। अथवा खुंडन = तोड़ना] (१) उछल कूद करना। पैर उठा उठा कर जल्दी जल्दी भूमि पर पटकना। (२) पैरों से रौंदना। रौंद रौंद कर खराब कर देना। उ०—खभरी खोद खूँद छिमला सों। रौंद राठ भंज्यो भैरा सों।—लाल। †(३) कुचलना। कूटना।

खूखी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कीड़ा जो चैती फसल को जाड़े में नाश करता है। कूकी। कुकुही। गेरुई।

खूखू†-संज्ञा पुं० [फ़ा० खूक] शूकर। सूअर।

खूच-संज्ञा स्त्री० [देश०] जल-डमरू-मध्य। (लश०)

खूझा-संज्ञा पुं० [सं० गुह्य, प्रा० गुज्झ] (१) किसी फल आदि के भीतर का वह रेशेदार भाग जो निकम्मा समझ कर फेंक दिया जाता है। जैसे, नेनुए का खूझा। (२) बहुत उलझा हुआ रेशेदार लच्छा जो किसी अच्छे काम में न आ सके। जैसे, रेशम का खूझा।

खूटना*†-क्रि० अ० [सं० खुंडन] (१) अवरुद्ध होना। रुक जाना। बंद हो जाना। उ०—छोड़ दई सरिता सब काम मनोरथ के रथ की गति खूटी।—केशव। (२) कम हो जाना। चुक जाना। खतम हो जाना। उ०—कागज गरे मेघ मसि खूटी शर दौ लागि जरे। सेवक सूर लिखै ते आधो पलक कपाट अरे।—सूर।

क्रि० स० [सं० खुंड] छेड़ना। उ०—असनेहिन हित नगर में सकत न कोऊ खूट। चतुर जगाती लाल दृग लेत सनेहिन लूट।—रसनिधि।

खूद, खूदड़, खूदर†-संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्र] किसी वस्तु को छान लेने वा साफ़ कर लेने पर निकम्मा बचा हुआ भाग। तलछट। मैल।

ख़ून-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) रक्त। रुधिर। लहू।

क्रि० प्र०—गिरना। बहना।—निकलना।—निकालना।—चलना।

मुहा०—ख़ून उबलना या खौलना = क्रोध से शरीर लाल होना। ग़ुस्सा चढ़ना। आँखों में ख़ून उतरना = अत्यंत क्रोध के कारण आँखें लाल हो जाना। ख़ून का प्यासा = वध का इच्छुक। ख़ून ख़ुश्क होना या सूखना = अत्यंत भयभीत होना। ख़ून सफ़ेद हो जाना = सुजनता या स्नेह आदि का नष्ट हो जाना। ख़ून सिर पर चढ़ना या सवार होना = किसी को मार डालने या इसी प्रकार का और कोई अनिष्ट करने पर उद्यत होना। ख़ून बिगड़ना = (१) रक्त में किसी प्रकार का विकार होना। (२) कोढ़ी हो जाना। ख़ून का जोश = वंश या कुल का प्रेम। ख़ून बहाना = मार डालना। ख़ून निकलवाना = फसद खुलवाना। ख़ून पीना = (१) मार डालना। (२) बहुत तंग करना। सताना। (३) बहुत दुःख सहना।

(२) वध। हत्या। क़तल।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—ख़ून ख़राबा।

ख़ून ख़राबा-संज्ञा पुं० [हिं० ख़ून + ख़राबी] मार काट।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की वार्निश जो लकड़ी पर की जाती है।

ख़ूनी-वि० [फ़ा०] (१) मार डालनेवाला। हत्यारा। घातक। उ०—छुटन न पैयत छिनक बसि नेह नगर यह चाल। मारयो फिरि फिरि मारिये ख़ूनी फिरत ख़ुस्याल।—बिहारी। (२) अत्याचारी। ज़ालिम।

ख़ूब-वि० [फ़ा०] [संज्ञा ख़ूबी] अच्छा। भला। उमदा। उत्तम।

यौ०—ख़ूबसूरत।

क्रि० वि० [फ़ा०] पूर्ण रीति से। अच्छी तरह से।

ख़ूबकलाँ-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फारस देश के माजिंदराँ नामक प्रांत में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की घास के बीज जो पोस्ते के दानों के समान और गुलाबी रंग के होते हैं। खाकसीर।

विशेष—दे० "खाकसीर"।

खूबड़ खाबड़†-वि० [अनु०] जो बराबर वा समथल न हो। ऊँचा नीचा।

खूबसूरत-वि० [फ़ा०] सुंदर। रूपवान्।

खूबसूरती-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सौंदर्य्य। सुंदरता।

खूबानी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार का मेवा जिसे ज़रदालू भी कहते हैं। इसका पेड़ काबुल की पहाड़ियों पर होता है। वहीं से यह मेवा भारत में आता है। इसके फल सुखा लिए जाते हैं और ताजे भी खाए जाते हैं। इसके बीज से तेल निकाला जाता है जिसे "कडुए बादाम का तेल" कहते हैं। इसके पेड़ से एक प्रकार का कतीरे की भाँति का गोंद निकलता है जिसे "चेरीगम" कहते हैं। इसके फल मई से सितंबर तक पकते हैं। इसका पेड़ मझोले डील का होता है और हर साल इसके पत्ते झड़ते हैं। ज़रदालू। कुश्मालू।

ख़ूबी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) भलाई। अच्छाई। अच्छापन। उम्दगी। (२) गुण। विशेषता। विलक्षणता।

खूरन-संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुर] हाथियों के पैरों के नाखूनों की एक बीमारी जिससे नाखून फट जाता है। इसमें कुछ पीड़ा भी होती है जिससे हाथी लँगड़ाने लगता है।

खूसट-संज्ञा पुं० [सं० कौशिक] उल्लू। घुग्घू। उ०—होय उँजियार बैठ जस तपै। खूसट मुँह न दिखावै छपै।—जायसी।

वि० (१) मनहूस। शुष्कहृदय। अरसिक। जिसे आमोद प्रमोद न भावे। (२) बुड्ढा खब्बीस। डोकरा।

खूसर†-संज्ञा पुं० दे० "खूसट"। उ०—राजमराल को बालक पेलि कै पालत लालत खूसर को।—तुलसी।

वि० दे० "खूसट"।

खृष्टीय-वि० [हिं० खीष्ट + सं० ईय (प्रत्य०)] ईसा संबंधी। ईसा का। ईसाई।

खेई†-संज्ञा स्त्री० [देश०] झड़बेरी की सूखी झाड़ी। झाड़ झंखाड़।

खेऊ-संज्ञा पुं० [देश०] ब्रह्मा, स्याम और मनीपुर के जंगलों में होनेवाला एक बड़ा पेड़। इसकी लकड़ी बहुत अच्छी होती है, और इस पेड़ का रस बनी बनाई वारनिश का काम देता है। जुलाई से अक्तूबर तक इसके पेड़ों से जो रस निकाला जाता है वह उत्तम समझा जाता है।

खेकसा, खेखसा-संज्ञा पुं० [देश०] परवल के आकार का फल जो तरकारी के काम में आता है। जंगलों और झाड़ियों में इसकी बेल प्रायः आपसे आप उगती है। यह बेल कुँदरू की बेल के समान होती है और इसमें पीले फूल लगते हैं। इस का कच्चा फल हरा होता है और पकने पर लाल हो जाता है। इसका स्वाद करैले से मिलता जुलता होता है और इसके ऊपरी भाग में मोटे कड़े काँटे या रोएँ होते हैं। वैद्यक में इसे चरपरा, गरम, पित्त वात और विष-नाशक, दीपन और रुचिकारक कहा है और कुष्ट, अरुचि, श्वास, खाँसी और ज्वर को दूर करनेवाला माना है। इस के पत्ते वीर्य्य-वर्द्धक, त्रिदोषनाशक और रुचिकारक होते तथा कृमि, क्षय, हिचकी और बवासीर को दूर करते हैं। ककोड़ा।

खेचर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाशचारी। वह जो आसमान में चले। (२) सूर्य्य चंद्रादि ग्रह। (३) तारागण। (४) वायु। (५) देवता। (६) विमान। (७) पक्षी। (८) बादल। (९) भूत प्रेत। (१०) राक्षस। (११) विद्याधर। (१२) शिव। (१३) पारा। (१४) कसीस।

खेचरान्न-संज्ञा पुं० [सं०] खिचड़ी।

खेचरी गुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार योगसिद्ध एक प्रकार की गोली जिसको मुँह में रखने से आकाश में उड़ने की शक्ति आजाती है।

खेचरी मुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) योगसाधन की एक मुद्रा जिस में जबान को उलट कर तालू से लगाते हैं और दृष्टि को दोनों भौंहों के बीच मस्तक पर लगाते हैं। इस स्थिति में चित्त और जीभ दोनों ही आकाश में स्थित रहते हैं, इसी लिये इसे 'खेचरी' मुद्रा कहते हैं। इसके साधन से मनुष्य को किसी प्रकार का रोग नहीं होता। (२) तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा जिस में दोनों हाथों को एक दूसरे पर लपेट लेते हैं।

खेजड़ी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] शमी का वृक्ष।

खेट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेतिहरों का गाँव। खेड़ा। खेरा। (२) घास। (३) बारहो ग्रह। (४) घोड़ा। (५) मृगया। शिकार। आखेट। (६) कफ। (७) सिपर। ढाल। (८) लाठी। छड़ी। (९) चमड़ा। (१०) एक प्रकार का अस्त्र। (११) तृण। तिनका।

खेटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेड़ा। गाँव। (२) सितारा। तारा। (३) बलदेव जी की गदा। (४) ढाल। (५) लाठी।

*संज्ञा पुं० [सं० आखेट] शिकार। मृगया।

खेटकी-संज्ञा पुं० [सं०] भड्डरी। भडेरिया। भड्डर। उ०—कोई पूछै चेटकीन कोई पूछै खेटकीन कोई नैछिकिन पूछै कोई पूछै काग ते।—रघुराज।

संज्ञा पुं० [सं० आखेट] (१) शिकारी। अहेरी। (२) बधिक।

खेड़ा†-संज्ञा पुं० [सं० खेट] छोटा गाँव।

यौ०—खेड़ापति।

मुहा०—खेड़े की दूब = अत्यंत बलहीन, दुर्बल या तुच्छ। उ०—नंद नँदन लै गए हमारी सब ब्रज कुल की ऊब। सूर स्याम तजि औरै सूझै ज्यों खेरे की दूब।—सूर।

संज्ञा पुं० [देश०] कई प्रकार का मिला हुआ रद्दी और सस्ता अनाज जो प्रायः पालतू चिड़ियों विशेषतः कबूतरों को खिलाया जाता है।

खेड़ापति—संज्ञा पुं० [हिं० खेड़ा + सं० पति] (१) गाँव का मुखिया। (२) गाँव का पुरोहित।

खेड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार का देशी लोहा जिस के बने हुए हथियार बहुत तेज़ होते हैं। यह एक भाँति का फ़ौलाद है और नैपाल में बहुतायत से बनता है। इसे कहीं कहीं भुरकुटिया लोहा भी कहते हैं। (२) वह मांसखंड जो जरायुज जीवों के बच्चों की नाल के दूसरे छोर में लगा रहता है।

खेढ़ा†—संज्ञा पुं० [फ़ा० खैल या हिं० खेड़ा] समूह। जमात।

खेढ़ी—संज्ञा स्त्री० दे० "खेड़ी"।

खेत—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्र] (१) वह भूमि खंड जो जोतने, बोने और अनाज आदि की फसल उत्पन्न करने के योग्य हो। जोतने बोने की जमीन।

क्रि० प्र०—जोतना।—निराना।—बोना।

मुहा०—खेत कमाना = खाद आदि डाल कर खेत को उपजाऊ बनाना। खेत करना = (१) समथल करना। उ०—सोखि कै खेत कै बाँधि सेतु करि उतरिबो उदधि न बोहित चहिबो।—तुलसी। (२) उदय के समय चंद्रमा का पहले पहल प्रकाश फैलाना। खेत काटना = खेत में उपजी हुई फसल काटना। खेत रखना = खेत की रखवाली करना। उ०—राखति खेत खरी खरी खरे उरोजन बाल।—बिहारी।

(२) खेत में खड़ी हुई फसल।

क्रि० प्र०—काटना।—खाना।

(३) किसी चीज के विशेषतः पशुओं आदि के उत्पन्न होने का स्थान वा देश। जैसे, यह घोड़ा अच्छे खेत का है। (४) समरभूमि। रणक्षेत्र। उ०—हतिहैं खेत खिलाइ खिलाई। तोहिं अबहिं का करौं बड़ाई।—जायसी।

मुहा०—खेत आना = युद्ध में मारा जाना। उ०—खड़गी न खेत आयो, कोपित करिदै धायो, भरत बचायो गुहरायो रघुबीर को।—रघुराज। खेत करना = युद्ध करना। लड़ना। खेत छोड़ना = रणभूमि में परास्त होना या रणभूमि छोड़ कर भागना। खेत पड़ना = दे० "खेत आना"। खेत रखना = समर में विजय प्राप्त करना। खेत रहना = दे० "खेत आना"।

(५) तलवार का फल।

खेतिहर—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्रधर या हिं० खेती + हर] खेती करनेवाला। कृषक। किसान।

खेती—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेत + ई (प्रत्य०)] (१) खेत में अनाज बोने का कार्य्य। कृषि। किसानी। काश्तकारी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—खेती बारी।

(२) खेत में बोई हुई फसल। उ०—खेती सूख रही है।

मुहा०—खेती मारी जाना = फ़सल नष्ट होना।

खेती बारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेती + बारी = बाग बगीचा] किसानी। कृषि।

खेद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० खेदित, खिन्न] (१) अप्रसन्नता। दुःख। रंज। (२) ग्लानि। चित्त की शिथिलता। थकावट। जैसे, सुरति खेद।

खेदना†—क्रि० स० [सं० खेट] भगाना। खदेरना। मार कर हटाना। क्रि० स० [सं० खेट] शिकार के पीछे दौड़ना। शिकार का पीछा करना।

खेदा—संज्ञा पुं० [हिं० खेदना] (१) किसी बनैले पशु को मारने वा पकड़ने के लिये घेर कर एक उपयुक्त स्थान पर लाने का काम। (२) शिकार। अहेर। आखेट।

खेदाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेदना] (१) खेदने का भाव। (२) खेदने का काम। (३) खेदने की मजदूरी।

खेदित—वि० [सं०] (१) दुःखित। खिन्न। रंजीदा। (२) परिश्रम से थका हुआ। शिथिल।

खेना—क्रि० स० [सं० क्षेपण, प्रा० खेवण] (१) नाव चलाना। नाव के डांड़ों को चलाना जिसमें नाव चले। (२) बिताना। काटना। गुज़ारना। कालक्षेप करना। उ०—हमने अपने बुरे दिन खे डाले।

खेप—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षेप] (१) उतनी वस्तु जितनी एक बार में ले जाई जाय। एक बार का बोझा। लदान। लदा माल। उ०—आयो घोष बड़ो व्यापारी। लादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज में आनि उतारी।—सूर।

मुहा०—खेप हारना = माल में घाटा उठाना।

(२) गाड़ी नाव आदि की एक बार की यात्रा। उ०—दूसरी खेप में इसे भी लेते जाना।

†संज्ञा स्त्री० [सं० आक्षेप] दोष। ऐब।

क्रि० प्र०—देना।—धरना।—लगाना।

संज्ञा स्त्री० (१) खोटा सिक्का। (२) वह सिक्का जो कोंढ़ा लगने की वजह से बाजार में न चल सके।

खेपना—क्रि० स० [सं० क्षेपण] बिताना। काटना। गुजारना। उ०—कैसे दिन खेपब रे।—कबीर।

खेपड़ी*—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षेपणी] नौका खेने का दंड। डाँड। (डिं०)।

खेम—संज्ञा पुं० दे० "क्षेम"।

खेमकल्यानी—संज्ञा स्त्री० दे० "क्षेमकरी"।

खेमटा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) बारह मात्राओं का एक ताल जिसमें तीन आघात और एक खाली होता है। इसका बोल यह है।

\+ ३ ० १ +
धा के टे ना धि ना ते टे धि ना धि ना। धा। कोई कोई

इसे केवल आठ मात्राओं का ताल मानते हैं। उनके अनुसार इसका बोल इस प्रकार है।

+ ३ ० १ + +̐

धागेधि नातिन नागेधि नातिन। धा। अथवा, धाकेड़े

० ँ ३ँ ४ ँ +

धिन् धिन् ताकेड़े तिन् तिन्। धा। (२) इस ताल पर गाया जानेवाला गाना। (३) इस ताल पर होनेवाला नाच।

खेमा–संज्ञा पुं० [अ०] तंबू। डेरा।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।—गाड़ना।

खेरवा|–संज्ञा पुं० [हिं० खेना] समुद्र में जहाज आदि चलानेवाला मल्लाह।

खेरा|–संज्ञा पुं० दे० "खेड़ा"। उ०—बन प्रदेश मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाँउँ गन खेरे।।—तुलसी।

खेरापति|–संज्ञा पुं० दे० "खेड़ापति"।

खेरी–संज्ञा स्त्री० [देश० (१) बंगाल में अधिकता से होनेवाली एक प्रकार की गेहूँ जो लाल रंग की और बहुत कड़ी होती है। (२) एक प्रकार की घास जो आस्ट्रेलिया देश में बहुतायत से होती है। यह पशुओं के लिये बहुत अच्छा चारा है। (३) एक प्रकार का जलपक्षी जो प्रायः दलदलों में रहता है और ऋतुपरिवर्त्तन के साथ साथ अपना स्थान भी बदलता रहता है। यह उड़ता कम और दौड़ता अधिक है। इसका मांस स्वादिष्ट होता है इसलिये लोग इसका शिकार भी करते हैं। (४) दे० "खेड़ी"।

खेल–संज्ञा पुं० [सं० केलि] (१) केवल चित्त की उमंग से अथवा मन बहलाने वा व्यायाम के लिये इधर उधर उछल कूद और दौड़ धूप या और कोई साधारण मनोरंजक कृत्य, जिसमें कभी कभी हार जीत भी होती है। जैसे, आँखमिचौली, कबड्डी, ताश, गेंद, शतरंज आदि।

क्रि० प्र०—खेलना।

मुहा०—खेल खेलाना = बहुत तंग करना। खूब दिक करना।

(२) मामला। बात।

मुहा०—खेल बिगड़ना = (१) काम ख़राब होना। (२) रंग में भंग होना।

(३) बहुत हलका या तुच्छ काम।

क्रि० प्र०—जानना।—समझना।

मुहा०—खेल करना = किसी काम को अनावश्यक या तुच्छ समझ कर हँसी में उड़ाना। खेल समझना = साधारण या तुच्छ समझना।

(४) कामक्रीड़ा। विषय विहार। (५) किसी प्रकार का अभिनय, तमाशा, स्वाँग या करतब आदि। (६) कोई अद्भुत कार्य्य। विचित्र लीला। उ०—यह देखो कुदरत का खेल।—कहावत।

संज्ञा पुं० वह छोटा कुंड जिसमें चौपाए पानी पीते हैं।

खेलक–*संज्ञा पुं० [हिं० खेलना] खेलनेवाला व्यक्ति। वह जो खेले। खेलाड़ी। उ०—व्योम विमाननि विबुध विलोकत खेलक पेखक छाँह छये।—तुलसी।

खेलना–क्रि० अ० [सं० केल, खेलन] [प्रा० खेलना] (१) केवल चित्त की उमंग से अथवा मन बहलाने वा व्यायाम के लिये इधर उधर उछलना, कूदना, दौड़ना आदि। उ०—लड़के बाहर खेल रहे हैं।

मुहा०—खेलना खाना = आनंद से दिन बिताना। निश्चिंत हो कर चैन से दिन काटना। जैसे, अभी तुम्हारे खेलने खाने के दिन हैं, सोच करने के नहीं। उ०—(क) खेलत खात रहे ब्रज भीतर। नान्ही जाति तनिक धन ईतर।—सूर। (ख) खेलत खात लरिकपन गो जोबन जुबतिन लियो जीति।—तुलसी।

(२) विहार करना। काम क्रीड़ा करना।

मुहा०—खेली खाई = पुरुष समागम से जानकार। खुल खेलना = खुल्लमखुल्ला कोई ऐसा काम करना जिसके करने में लोगों को लज्जा आती हो। सब की आन में कोई बुरा काम करना।

(३) भूत प्रेत के प्रभाव से सिर और हाथ पैर आदि हिलाना। अभुआना। (४) विचरना। चलना। बढ़ना। उ०—भयो रजायसु आगे खेलहिं। गढ़ तर छाँड़ि अंत होय मेलहिं।—जायसी।

क्रि० स० (१) ऐसी क्रिया करना जो केवल मन बहलाव वा व्यायाम आदि के लिये की जाती है और जिसमें कभी कभी हार जीत का भी विचार किया जाता है। जैसे, गेंद खेलना, जूआ खेलना, ताश खेलना, इत्यादि।

मुहा०—जान या जी पर खेलना = अपने जान की बाज़ी लगाना। अपना प्राण भय में डालना। ऐसा काम करना जिसमें मृत्यु का भय हो। (जान या जी के समान सिर, धन, इज़्ज़त आदि कुछ और शब्दों के साथ भी यह मुहाविरा प्रायः बोला जाता है।

(२) किसी वस्तु को लेकर अपना जी बहलाना। किसी वस्तु को मनोरंजन के लिये हिलाना, डुलाना आदि। जैसे, खिलौना खेलना। उ०—कागज़ यहाँ न छोड़ो नहीं तो लड़के खेल डालेंगे। (३) अभिनय करना। नाटक वा स्वाँग रचना। उ०—यह नाटक कब खेला जायगा।

खेलवाड़–संज्ञा पुं० [हिं० खेल + वाड़] खेल। क्रीड़ा। तमाशा। मनबहलाव। दिल्लगी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

खेलवाड़ी–वि० [हिं० खेल + वार (प्रत्य०)] (१) खेलनेवाला।

उ०—वह बड़ा खेलवाड़ी लड़का है। (२) विनोदशील। कौतुकप्रिय।

खेलवाना—क्रि० स० [हिं० खेलना] दूसरे को खेलाने में प्रवृत्त करना।

खेलवार†—संज्ञा पुं० [हिं० खेल + वार] खेलाड़ी। खेल करनेवाला। उ०—संपति चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार। तेहि निसि आश्रम पींजरा राखे भा भिनसार।—तुलसी।
संज्ञा पुं० दे० "खेलवाड़"।

खेलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेल] (१) खेलने का काम। खेल। जैसे, आज कल वहाँ ख़ूब शतरंज की खेलाई हो रही है। (२) खेलाने की मज़दूरी।

खेलाड़ी—वि० [हिं० खेल + वार (प्रत्य०)] (१) खेलनेवाला। क्रीड़ाशील। (२) विनोदी।
संज्ञा पुं० [हिं० खेल] (१) वह जो खेले। खेल में सम्मिलित होनेवाला व्यक्ति। (२) तमाशा करनेवाला। (३) ईश्वर। उ०—उस खेलाड़ी के अजब खेल हैं।

खेलाना—क्रि० स० [हिं० 'खेलना' का प्रे०] (१) किसी दूसरे को खेल में लगाना। दे० 'खेलना'। (२) खेल में शामिल करना। उ०—जाव, हम अब तुम्हें नहीं खेलावेंगे। (३) बहलाना। उलझाए रखना।
मुहा०—खेला खेला कर मारना = दौड़ा दौड़ा कर धीरे धीरे मारना। साँसत से मारना। उ०—अबहिं बहुत का करौं बड़ाई। हतिहौं तोहि खेलाइ खेलाई।—तुलसी।

खेलार*†—संज्ञा पुं० [हिं० खेल + आर (प्रत्य०)] दे० "खेलाड़ी"। उ०—खेलत फागु खेलार खरे अनुराग भरे बड़ भाग कन्हाई।—सुंदरी सर्वस्व।

खेलुआ—संज्ञा पुं० [हिं० खिलना या खिलाना] रकाबी या थाली के आकार का चमड़ा रँगनेवालों का काठ का एक औज़ार जिस से चमड़े को रँगने के पहले मुलायम करने और खिलाने के लिये उस पर खारी नमक आदि रगड़ते हैं।

खेलौना—संज्ञा पुं० दे० "खिलौना"।

खेव—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो वर्षा ऋतु में पहला पानी पड़ते ही बहुत अधिकता से उगती है और जिसे घोड़े बहुत प्रसन्नता से खाते हैं। इसे पलंजी या ऊसर की घास भी कहते हैं।

खेवक*—संज्ञा पुं० [सं० क्षेपक] नाव खेनेवाला। मल्लाह। केवट। माँझी। उ०—राजा कर भा अगमन खेवा। खेवक आगे सुवा परेवा।—जायसी।

खेवट—संज्ञा पुं० [हिं० खेत + बाँट] पटवारी का एक काग़ज़ जिसमें हर एक पट्टीदार के हिस्से की तादाद और मालगुज़ारी का विवरण लिखा रहता है।
यौ०—खेवटदार = हिस्सेदार। पट्टीदार।
संज्ञा पुं० [हिं० खेना] नाव खेनेवाला। मल्लाह। माँझी।

खेवटिया†—संज्ञा पुं० [हिं० खेवट] खेवट। मल्लाह।

खेवणी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षेपणी] नाव का डाँड़। (डिं०)

खेवनहार—संज्ञा पुं० [हिं० खेना + हार (प्रत्य०)] (१) खेनेवाला। मल्लाह। केवट। (२) ठिकाने तक पहुँचानेवाला। पार लगानेवाला।

खेवना—क्रि० स० दे० "खेना"।

खेवनाव—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो उत्तर भारत में चिनाब नदी के पूर्व और बंगाल तथा उड़ीसा की नदियों के किनारे अधिकता से पाया जाता है। इसके गूदे से एक प्रकार के रेशे निकलते हैं जो रस्सी बटने के काम में आते हैं। इसमें एक प्रकार की लाह भी लगती है। कहीं कहीं इसे दुंबरखेव भी कहते हैं।

खेवरियाना†—क्रि० स० [देश०] एकत्र करना। संग्रह करना। बटोरना।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः चरवाहे अपनी गौओं के लिये करते हैं।

खेवा—संज्ञा पुं० [हिं० खेना] (१) वह धन जो केवट को नाव द्वारा पार उतारने के बदले में दिया जाय। नाव खेने का किराया। (२) नाव द्वारा नदी पार करने का काम। उ०—अभी यह पहला खेवा है। (३) बार। दफ़ा। अवसर। जैसे, (क) पिछले खेवे उन्होंने कई भूलें की थीं। (ख) इस खेवे सब झगड़ा निपट जायगा। (इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल कार्य्य आदि करने के संबंध में होता है।) (४) बोझ से लदी हुई नाव।—उ० राजा का भा अगमन खेवा। खेवक आगे सुवा परेवा।—जायसी।

खेवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेना] (१) नाव खेने का काम। नाव चलाने की क्रिया। (२) नाव खेने की मज़दूरी। (३) वह रस्सी जो डांड को नाव से बाँधने के काम में आती है।

खेस—संज्ञा पुं० [देश०] बहुत मोटे देशी सूत की बनी हुई एक प्रकार की बहुत लंबी चादर जो पश्चिम में अधिकता से बनती और प्रायः बिछाने के काम में आती है।

खेसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृसर या खंजकारि] एक प्रकार की मटर जिसकी फलियां चिपटी होती हैं। इसकी दाल बनती है। यह अन्न बहुत सस्ता होता है और प्रायः सारे भारत में, और विशेषतः मध्य भारत तथा सिंध में इसकी खेती होती है। यह अगहन में बोई जाती है और इसकी फसल तैयार होने में प्रायः साढ़े तीन मास लगते हैं। लोग कहते हैं कि इसे अधिक खाने से आदमी लँगड़ा हो जाता है। वैद्यक में इसे रूखा, कफ़-पित्त-नाशक, रुचिकारक, मलरोधक, शीतल, रक्तशोधक और पौष्टिक कहा गया है और यह शूल, सूजन, दाह,

बवासीर, हृदरोग और खंज उत्पन्न करनेवाला कहा गया है। इसके पत्तों का साग भी बनता है, जो वैद्यक के अनुसार बादी, रुचिकारी, और कफ-पित्त-नाशक होता है। लतरी। तेउरा। दुबिया मटर। चिपटैया मटर।

खेह—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षार, पं० खेह] धूल। राख। खाक। मट्टी। उ०—(क) कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा। कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा।—जायसी। (ख) दादू क्योंकर पाइये उन चरनन की खेह।—दादू।

मुहा०—खेह खाना = (१) धूल फाँकना। मट्टी छानना। झख मारना। व्यर्थ समय खोना। नष्ट जाना। उ०—सुनि! सीता-पति सील सुभाऊ। मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहहिं खाऊ।—तुलसी (२) दुर्दशा-ग्रस्त होना। उ०—सोई रघुनाथ कपि साथ पाथ नाथ बाँधि आयो नाथ भागे ते खिरिर खेह खाहिगो।—तुलसी।

खैंग—संज्ञा पुं० [फा० खिंग] घोड़ा। (डिं०)

खैंचना—क्रि० स० दे० "खींचना"।

खैंचनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खींचना] डेढ़ हाथ लंबी एक बित्ता चौड़ी देवदार की लकड़ी की एक तख्ती जिस पर तेल लगा कर सीकल किए हुए औज़ार साफ़ किए जाते हैं।

खैंचा खैंची—संज्ञा स्त्री० दे० "खींचा खींची"।

खैंचातान— संज्ञा स्त्री० दे० "खींचतान"।

खैंचातानी—संज्ञा स्त्री० दे० "खींचतान"।

खैबर—संज्ञा पुं० [देश०] भारत और अफ़ग़ानिस्तान के बीच की एक घाटी का नाम।

खैर—संज्ञा पुं० [सं० खदिर] (१) एक प्रकार का बबूल जिसका पेड़ बहुत बड़ा होता है और प्रायः समस्त भारत में अधिकता से होता है। इसके हीर की लकड़ी भूरे रंग की होती है, घुनती नहीं और घर तथा खेती के औजार बनाने के काम में आती है। बबूल की तरह इसमें भी एक प्रकार का गोंद निकलता है और बड़े काम का होता है। कथ-कीकर। सोन-कीकर। (२) इस वृक्ष की लकड़ी के टुकड़ों को उबाल कर निकाला और जमाया हुआ रस जो पान में चूने के साथ लगाकर खाया जाता है। कत्था।

संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारत का भूरे रंग का एक पक्षी जो लंबाई में एक बालिश्त से कुछ अधिक होता और झोपड़ियों या छोटे पेड़ों में घोंसला बना कर रहता है। इसका घोंसला प्रायः जमीन से सटा हुआ रहता है। इसकी गरदन और चोंच कुछ सफ़ेदी लिए होती है।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख़ैर] कुशल। क्षेम। भलाई।

यौ०—खैर-आफ़ियत।

अव्य० [फ़ा० ख़ैर] (१) कुछ चिंता नहीं। कुछ परवा नहीं। (२) अस्तु। अच्छा।

खैर-आफ़ियत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] कुशल मंगल। क्षेम कुशल।

क्रि० प्र०—कहना।—पूछना।

खैरख़ाह—वि० [फ़ा०] भलाई चाहनेवाला। शुभचिंतक।

खैरख़ाही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] शुभचिंतन। भलाई सोचना।

खैरवाल—संज्ञा पुं० [देश०] कोलियार नाम का वृक्ष।

खैरसार—संज्ञा पुं० [सं० खदिर + सार] कत्था। खैर।

खैरा—वि० [हिं० खैर] खैर के रंग का। कत्थई।

संज्ञा पुं० [हिं० खैर] (१) वह कबूतर वा घोड़ा जिसका रंग कत्थई हो। (२) एक प्रकार का बगुला जिसका रंग कत्थई होता है।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) धान की फसल का एक रोग, जिसमें उसकी बाल पीली पड़ जाती है। (२) तबला बजाने में एकताले (ताल) की धुन। (३) एक प्रकार की छोटी मछली जो बंगाल की नदियों में अधिकता से पाई जाती है।

खैरात—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० खैराती] दान। पुण्य।

क्रि० प्र०—करना।—चाहना।—बाँटना।—पाना।—माँगना।

खैरियत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) कुशल क्षेम। राजी खुशी। (२) भलाई। कल्याण।

खैलर—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ष्वेल] मथानी।

खैला†—संज्ञा पुं० [सं० क्ष्वेड] वह बैल जिससे अभी तक कुछ काम न लिया गया हो। नाटा। बछड़ा।

खोंइचा—संज्ञा पुं० [हिं० खूँट] (स्त्रियों के कपड़ों का) अंचल। किनारा।

मुहा०—खोंइचा भरना = शकुन के रूप में किसी (स्त्री) के आँचल में चावल, गुड़ आदि देना।

खोंखना‡—क्रि० अ० [खों खों से अनु०] खाँसना।

खोंखल—वि० दे० "खोखला"।

खोंखी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोंखना] खाँसी। कास।

खोंखों—संज्ञा पुं० [अनु०] खाँसने का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।

खोंगा‡—संज्ञा पुं० [देश०] अटकाव। रुकावट।

संज्ञा पुं० [सं० खोङ्गाह] वह बैल जो अभी किसी काम में न लगाया गया हो। नाटा। बछड़ा।

खोंगाह—संज्ञा पुं० [सं०] पीलापन लिए सफ़ेद रंग का घोड़ा।

खोंगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोंसना या देश०] लगे हुए पानों का चौघड़ा।

खोंच—संज्ञा स्त्री० [सं० कुच] (१) किसी नुकीली चीज से छिलने का आघात। (२) किसी मेख या काँटे आदि में फँस कर कपड़े आदि का फट जाना।

क्रि० प्र०—लगना।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) मुट्ठी। (२) उतना अन्न या और कोई पदार्थ जो एक मुट्ठी में आ जाय।
संज्ञा पुं० [सं० क्रौंच] एक प्रकार का बगुला।

खोँचा–संज्ञा पुं० [सं० कुच] (१) बहेलियों का वह लंबा बाँस जिसके सिरे पर लासा लगा कर वे पक्षियों को फँसाते हैं। उ०—पाँच बान कर खोंचा लासा भरे सो पांच। पांख भरा तन उरझा कित मारे बिन बांच।—जायसी।
क्रि० प्र०—मारना।
(२) दे० "खोँच।

खोँचिया†–संज्ञा पुं० [हिं० खोंची] (१) खोंची लेनेवाला। (२) भिक्षुक। भिखमँगा।

खोँची–संज्ञा स्त्री० [देश०] वह थोड़ा अन्न, फल, तरकारी आदि जो दूकानदार मंडी या बाजार में छोटी छोटी सेवाएँ करनेवाले या भिखमंगो को देते हैं। उ०—खाई खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे। तेरे बल बलि आजु लौं जग जागि जिया रे।—तुलसी।

खोँटना–क्रि० स० [सं० खुंड] किसी वस्तु का ऊपरी भाग तोड़ना। जैसे, साग खोंटना। कपटना। नोचना।

खोँटा–वि० दे० "खोटा"।

खोँड़र–संज्ञा पुं० [सं० कोटर] पेड़ का भीतरी पोला भाग।

खोँड़हा–वि० दे० "खोंड़ा"।

खोँड़ा–वि० [सं० खुड] जिसका कोई अंग भंग हो।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः उस मनुष्य के लिये होता है जिसके आगे के दो तीन दाँत टूटे हों।

खोँतल†–संज्ञा पुं० [हिं० खोता] खोता। घोंसला। उ०—यह सुधि नहिं किहि की जटान में खगकुल खोंतल लागे।—प्रताप।

खोँता–संज्ञा पुं० [देश०] घास, फूस बाल आदि का बना हुआ चिड़ियों का निवास-स्थान जो प्रायः वृक्षों आदि पर होता है। घोंसला।

खोँथा–संज्ञा पुं० दे० "खोंता"।

खोँप–संज्ञा स्त्री० [हिं० खोंपना] सिलाई में दूर दूर पर लगा हुआ टाँका। सलंगा।
क्रि० प्र०—भरना।—मारना।

खोँपना†–क्रि स० [अनु०] धँसाना। गड़ाना।

खोँपा–संज्ञा पुं० [हिं० खोंपना] [स्त्री० खोंपिया, खोंपी] (१) हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है। (२) छाजन का कोना। (३) भूसा रखने का घेरा जो छप्पर से छाया रहता है।

खोँपी–संज्ञा स्त्री० (१) दे० "खोंपा"। (२) हजामत में खत का कोना।

खोँसना–क्रि० स० [सं० कोश + ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु को कहीं स्थिर रखने के लिये उसका कुछ भाग किसी दूसरी वस्तु में घुसेड़ देना। अटकाना। उ०—सखी री मुरली लीजै चोर। ....कबहूँ कर कबहूँ अधरन पर कबहूँ कटि में खोंसत जोर।—सूर।

खोआ†–संज्ञा पुं० दे० "खोया"।

खोइया†–संज्ञा स्त्री० दे० "खोई"।

खोइड़ार–संज्ञा पुं० [हिं० खोई + आर (प्रत्य०)] कोल्हौर में वह स्थान जहाँ खोई जमा की जाती है।

खोइलर†–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ष्वेल] बांस की तीन चार हाथ लंबी छड़ा जिस से कोल्हू में पड़े हुए गंडों को उलटते पलटते हैं।

खोइहा–संज्ञा पुं० [हिं० खोई + हा (प्रत्य०)] कोल्हौर का वह मज़दूर जो खोई उठाता वा फेंकता है।

खोई–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद्र] (१) ऊख के गंडों के वे डंठल जो रस निकल जाने पर कोल्हू में शेष रह जाते हैं। छोई। (२) भुने हुए चावल या धान के खील। लाई। (३) कंबल की घोघी।

खोखर–संज्ञा पुं० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जो मालकोस राग का पुत्र माना जाता है। इसके गाने का समय दिन का पहला पहर है।

खोखरा–संज्ञा पुं० [हिं० खुक्ख या खोखला] टूटा हुआ जहाज़। (लश०)।

खोखला–वि० [हिं० खुक्ख + ला (प्रत्य०)] जिसके भीतरी भाग में कुछ न हो। सारहीन। पोला।
संज्ञा पुं० (१) खाली स्थान। पोली जगह। (२) रंध्र। बड़ा छेद।

खोखा–संज्ञा पुं० [हिं० खुक्ख] वह कागज जिस पर हुंडी लिखी गई हो, विशेषतः वह हुंडी जिसका रुपया चुका दिया गया हो।
संज्ञा पुं० [बं० खोका] [स्त्री० खोखी] बालक। लड़का।

खोगीर–संज्ञा पुं० दे० "खुगीर"।

खोचकिल†–संज्ञा पुं० [देश०] चिड़ियों का खोंता। घोंसला।

खोज–संज्ञा स्त्री० [हिं० खोजना] (१) अनुसंधान। तलाश। शोध।
क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।
(२) चिह्न। निशान। पता। उ०—(क) रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं।—तुलसी। (ख) राखौं नहिं काहू सब मारौं। ब्रज गोकुल को खोज निवारौं।—सूर।
क्रि० प्र०—पाना।—लगाना।
मुहा०—खोज मिटाना = नष्ट करना। ध्वस्त करना। बरबाद करना। चिह्न तक न रहने देना।
(३) गाड़ी के पहिये की लीक अथवा पैर आदि का चिह्न। उ०—चंदन माँझ कुरंगिन खोजू। ओहि को पाव को राजा भोजू।—जायसी।

मुहा०—खोज मारना=लीक या पैर आदि का चिह्न इस प्रकार बचाना या नष्ट करना जिसमें कोई पता न लगा सके। उ०—खोज मारि रथ हाँकहु ताता। आन उपाय बनहि नहिं बाता।—तुलसी।

खोजक*—वि० [हिं० खोज+क (प्रत्य०)] खोज करनेवाला। ढूँढनेवाला। तलाश करनेवाला। (क्व०)

खोजना—क्रि० स० [सं० खुज=चोराना] तलाश करना। पता लगाना। ढूँढना।

संयो० क्रि०—डालना।—मारना।—रखना।

खोजमिटा—वि० [हिं० खोज+मिटना] [स्त्री० खोजमिटी] जिसका चिह्न न रह जाय। जिसका नाम निशान न रह जाय। नष्ट। जो सत्यानाश जाय। (इस शब्द को स्त्रियाँ परस्पर अधिक बोलती हैं।

खोजवाना—क्रि० स० [हिं० खोजना] खोजना का प्रेरणार्थक रूप। ढुँढ़वाना। पता लगवाना।

खोजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख्वाजा] (१) वह नपुंसक व्यक्ति जो मुसलमानी हरमों में द्वार-रक्षक वा सेवक की भाँति रहता है। (२) सेवक। नौकर। (३) सरदार। माननीय व्यक्ति।

खोजाना†—क्रि० स० दे० "खोजवाना"।

खोजी*†—वि० [हिं० खोज+ई (प्रत्य०)] खोजनेवाला। ढूँढनेवाला। (क्व०)

खोट—संज्ञा स्त्री० [सं० खोट=खोड़ा (दूषित)] (१) दोष। ऐब बुराई। उ०—सूरदास पारस के परसे मिटत लोह की खोट।—सूर। (२) किसी उत्तम वस्तु में निकृष्ट वस्तु की मिलावट। (३) वह निकृष्ट वस्तु जो किसी उत्तम वस्तु में मिलाई जाय।

खोटता*—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोट] खोटाई। बुराई। खोटापन। (क्व०)। उ०—अमरापति चरणन पर लोटत। रही नहीं मन में कछु खोटत।—सूर।

खोटपन—संज्ञा पुं० दे० "खोटापन"।

खोटा—वि० [सं० क्षुद्र या खोट=खोड़ा (दूषित)] [स्त्री० खोटी] जिसमें कोई ऐब हो। दूषित। बुरा। "खरा" का उलटा। जैसे, खोटा रुपया, खोटा सोना, खोटा आदमी।

मुहा०—खोटा खरा=भला बुरा। उत्तम और निकृष्ट। खोटा खाना=बेईमानी से या बुरी तरह से कमा कर खाना। उ०—फाटक दै कै हाटक माँगत भोरो निपट सुधारी। धुर ही ते खोटो खायो है लिये फिरत सिर भारी।—सूर। खोटी करना=खोटापन या बुराई करना। खोटी बोलना=बुरी बात बोलना। खोटी खरी सुनाना=दुर्वचन कहना। डाँटना। फटकारना।

खोटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोटा+ई (प्रत्य०)] (१) बुराई। दुष्टता। क्षुद्रता। (२) छल। कपट। उ०—अहह बंधु तैं कीन्ह खोटाई। प्रथमहिं मोहिं न जगायसि आई।—तुलसी। (३) दोष। ऐब। नुक्स।

खोटाना—क्रि० अ० दे० "खुटना" या "खुटाना"।

खोटापन—संज्ञा पुं० [हिं० खोटा+पन (प्रत्य०)] खोटा होने का भाव। क्षुद्रता।

खोड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोट] देवता पितर भूत प्रेत आदि का कोप। देवकोप। ऊपरी फेर। उ०—उसे किसी देवता की खोड़ है।

खोड़रा—संज्ञा पुं० [सं० कोटर] पुराने पेड़ का खोखला भाग।

खोद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] टोप। कूँड़। शिरस्त्राण। लोहे का बना हुआ टोप जिसे योद्धा लड़ाई के समय पहनते थे।

†संज्ञा पुं० [हिं० खोदना] जाँच परताल। पूछ पाछ।

यौ०—खोद विनोद।

खोदई—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है। यह रँगने और दवा के काम में आता है।

विशेष—दे० "लोध"

खोदना—क्रि० स० [सं० क्षुद=भेदन करना] (१) किसी स्थान को गहरा करने के लिये वहाँ की मिट्टी आदि उखाड़ कर फेंकना। खनना। गड्ढा करना। जैसे, जमीन खोदना, कुआँ खोदना।

संयो० क्रि०—डालना।—फेंकना।

(२) खोद कर उखाड़ना वा गिराना। जैसे, कुआँ खोदना, घर खोद डालना। (३) किसी कड़ी वस्तु पर पैनी वा नुकीली वस्तु से कुछ चिह्न, अंक वा बेलबूटे आदि बनाना। नक्काशी करना। जैसे, मोहर खोदना। (४) उँगली, छड़ी आदि से छूना वा दबाना। उँगली वा छड़ी आदि से हिलाना, डुलाना, गड़ाना। उ०—(क) उसे खोद कर जगा दो। (ख) वह लड़का उसके गाल में खोद कर भागता है। (ग) लकड़ी थोड़ा खोद तो आग जलने लगेगी। (५) छेड़ना। छेड़ छाड़ करना।

मुहा०—खोद खोद कर पूछना=एक एक बात पर शंका करके पूछना। अच्छी तरह पूछना।

(६) उसकाना। उभाड़ना। उत्तेजित करना।

खोदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोदना] खोदने का छोटा औज़ार।

यौ०—दँत-खोदनी=दाँत से खोद कर मैल निकालने की सींक वा कील। कन-खोदनी=कान से खोद कर मैल निकालने की सींक वा कील।

खोदवाना—क्रि० स० [खोदना का प्रे० रूप] खोदने में लगाना। खोदने का काम करवाना।

खोद विनोद†—संज्ञा पुं० [हिं० खोद+विनोद] छान बीन। जाँच पड़ताल। पूछ पाछ। छेड़ छाड़।

खोदाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोदना] (१) खोदने का काम। (२) खोदने की मजदूरी। (३) कड़ी वस्तु पर किसी नोकदार वस्तु से अंक, चिह्न, बेल बूटे आदि बनाने का काम। उ०—शाहजहाँपुर में लकड़ी पर खोदाई अच्छी होती है।

खोना—क्रि० स० [सं० क्षेपण, प्रा० खेवण] (१) व्यर्थ फेंक देना। अपने पास की वस्तु को निकल जाने देना। गँवाना। उ०—उसने अपनी पुस्तक खो दी। (२) भूल से किसी वस्तु को कहीं छोड़ आना। (३) ख़राब करना। बिगाड़ना। नष्ट करना।

संयो० क्रि०—देना।—डालना।

क्रि० अ० पास की वस्तु का निकल जाना। किसी वस्तु का कहीं भूल से छूट जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—संयोज्य क्रिया के साथ ही यह क्रिया अकर्मक भाववाच्य रूप में आती है, अकेले नहीं।

मुहा०—खोया जाना = चकपका जाना। सिटपिटा जाना। घबराना। हक्का बक्का होना।

खोन्चा—संज्ञा पुं० [फ़ा० ख़्वान्चा] (१) एक बड़ी परात वा थाल जिसमें मिठाई या और खाने पीने की वस्तु भरी रहती है। (२) वह थाल जिसमें रख कर फेरीवाले मिठाई बेचते हैं।

मुहा०—खोन्चा लगाना = बेचने के लिये खोन्चे में मिठाई सजाना वा रखना।

खोपड़ा—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर] [स्त्री० खोपड़ी] (१) सिर की हड्डी। कपाल। (२) सिर। (३) गरी। गरी का गोला। (४) नारियल। (५) भिक्षुकों का खप्पर जिसमें वे भीख लेते हैं। बहुधा यह दरियाई नारियल का आधा टुकड़ा होता है। (६) गाड़ी में वह मोटी लकड़ी जो दोनों पहियों के बीच धुरों से मिली होती है।

खोपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोपड़ा] (१) सिर की हड्डी। कपाल। (२) सिर।

मुहा० = अंधी खोपड़ी का, औंधी खोपड़ी का = नासमझ। मूर्ख। खोपड़ी खा जाना = बहुत बात करके दिक़ करना। खोपड़ी चाट जाना = बकवाद करके तंग करना। खोपड़ी चटकना = अधिक धूप, प्यास या पीड़ा के कारण सिर में गर्मी और चक्कर मालूम होना। सिर ठनकना। खोपड़ी खुजलाना = (१) ऐसी कोई बात वा शरारत करना जिससे मार खाने की नौबत आवे। मार खाने को जी चाहना। उ०—तुम न मानोगे, तुम्हारी खोपड़ी खुजला रही है। (२) सिर पर जूता मारना। खोपड़ी गंजी होना = मार खाते खाते सिर के बाल झड़ जाना। सिर पर ख़ूब जूते पड़ना। खोपड़ी गंजी करना = मारते मारते सिर के बाल न रहने देना। सिर पर ख़ूब जूते लगाना।

खोपरा†—संज्ञा पुं० दे० "खोपड़ा"।

खोपा—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर, हिं० खोपड़ा] (१) छप्पर का कोना। (२) मकान का कोना जो किसी रास्ते की ओर पड़े। (३) केशविन्यास में वह तिकोनी बनावट जो ठीक ब्रह्मरंध्र पर पड़ती है। इसके सिरे का कोना माँग से मिला रहता है और ठीक इसी के आधार पर जूड़ा बाँधा जाता है। (४) जूड़ा बँधी हुई बेणी। उ०—सरवर तीर पदमिनी आई। खोपा छोरि केस बिखराई।—जायसी। † (५) गरी का गोला।

खोबा—संज्ञा पुं० [देश०] गच वा पलस्तर पीटने की थापी।

खोभरना—क्रि० अ० [?] आड़ा पड़ना। बीच में पड़ना।

खोभराना—क्रि० अ० दे० "खुभराना"।

खोभार—संज्ञा पुं० [?] गड्ढा जिसमें कूड़ा कर्कट फेंका जाय।

खोम*—संज्ञा पुं० [अ० क़ौम] समूह। झुंड। उ०—सिवाजी की धाक, मिले खल कुल खाक, बसे खलन के खेरन खबीसन के खोम हैं।—भूषण।

संज्ञा पुं० [सं० क्षोम] क़िले का बुर्ज। (डिं०)

खोय—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख़ू] आदत। बान। स्वभाव।

क्रि० प्र०—पड़ना।

खोया—संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्र] (१) आँच पर चढ़ा कर इतना गाढ़ा किया हुआ दूध कि उसकी पिंडी बाँध सकें। मावा। खोवा। (२) ईंट पाथने का गारा।

क्रि० स० 'खोना' का भूत काल।

खोर—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर] (१) सँकरी गली। कूचा। बस्तियों की तंग गली। (२) नांद जिसमें चौपायों को चारा दिया जाता है।

संज्ञा पुं० [देश०] बबूल की जाति का एक ऊँचा सुंदर पेड़ जो सिंध के रेगिस्तानों में होता है। इसकी लकड़ी पीलापन लिए सफ़ेद भारी और सख़्त होती है और साफ़ करने पर ख़ूब चिकनी हो जाती है। यह खेती के औज़ार बनाने के काम आती है। इसे खन, साही-काँटा और बनरीठा भी कहते हैं।

खोरना†—क्रि० अ० [सं० क्षालन] नहाना। स्नान करना। उ०—ब्रजवनिता रवि को कर जोरैं। शीत भीत नहिं करत छहौं ऋतु विविध काल यमुना जल खोरैं।—सूर।

खोरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खोदना] वह लकड़ी जिससे भड़भूँजे भाड़ झोंकते समय बाहर रह गए हुए ईंधन को भाड़ के भीतर करते हैं।

खोरा—संज्ञा पुं० [सं० खोलक। फ़ा० आबख़ोरा] [स्त्री० खोरिया] (१) कटोरा। बेला। (२) आबखोरा। गिलास। पानी पीने का बरतन।

†*वि० [सं० खोर वा खोट] लंगड़ा। लूला। अंगभंग। उ०—काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि। तिय विशेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसकानि।—तुलसी।

खोराक–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] [वि० ख़ोराकी] (१) भोजन सामग्री। (२) खाने की मात्रा। उ०—उसकी खोराक बहुत है। (३) औषध की मात्रा जो एक बार सेवन की जाय। उ०—इतने में चार खोराक होगी।

खोराकी–वि० [फ़ा० ख़ोराक + ई (प्रत्य०)] ख़ूब खानेवाला। अधिक भोजन करनेवाला।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ख़ोराक] वह धन जो खोराक के लिये दिया जाय।

खोरि†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर] तंग गली। उ०—खेलत अवध खोरि, गोला भौंरा चक डोरि, मूरति मधुर बसै तुलसी के हियरे।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [सं० खोट वा खोर] (१) ऐब। दोष। नुक्स। उ०—(क) कहौं पुकारि खोरि मोहिँ नाहीं।—तुलसी। (ख) साँकरी गैल वा खोरि हमैं किन खोरि लगाय खिजैबो करो कोउ।—देव।

क्रि० प्र०—लगाना।

(२) बुराई।

संज्ञा स्त्री० दे० "खौरवा" "खौरि"। उ०—तनु अनुहरत सुचंदन खोरी। श्यामल गौर मनोहर जोरी।—तुलसी।

खोरिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० खोरा] (१) छोटा कटोरा वा बेलिया। छोटा आबखोरा वा गिलास। पानी पीने का छोटा बर्तन। (२) छोटे चमकीले बुंदे जिन्हें स्त्रियाँ वा लीलावाले शोभा के लिये मुँह पर चिपकाते हैं। (३) कुएँ की पैढ़ी का वह सब से बिचला भाग जो तरसा खींचते खींचते बैलों के पहुँचने पर कुएँ के मुँह पर आ जाता है।

खोल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गिलाफ। ऊपर से चढ़ा हुआ ढकना। उछाड़। (२) कीड़ों का ऊपरी चमड़ा जिसे समय समय पर वे बदला करते हैं। (३) ओढ़ने का मोटा कपड़ा। मोटी चादर।

खोलना–क्रि० स० [सं० खुड, खुल = भेदन] (खुलना का स० रूप) (१) किसी वस्तु के मिले वा जुड़े भागों को एक दूसरे से इस प्रकार अलग करना कि उसके भीतर वा उसके पार तक आना, जाना, टटोलना, देखना आदि हो सके। छिपाने वा रोकनेवाली वस्तु का हटाना। अवरोध या आवरण का दूर करना। जैसे, किवाड़ खोलना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग आवरण और आवृत तथा अवरोध और अवरुद्ध दोनों के लिये होता है। जैसे, कोठरी खोलना, किवाड़ खोलना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

(२) ऐसी वस्तु को हटाना वा इधर उधर करना जो किसी दूसरी चीज़ को छाए वा घेरे हो। (३) दरार करना। छेद करना। शिगाफ़ करना। जैसे, फोड़े का मुँह खोलना। (४) बाँधने या जोड़नेवाली वस्तु को अलग करना। बंधन तोड़ना। जैसे, टाँका खोलना, गाँठ खोलना, बेड़ी खोलना। (५) किसी बँधी हुई वस्तु को मुक्त करना। जैसे, धोती खोलना, घोड़ा खोलना। (६) किसी क्रम को चलाना या जारी करना। जैसे, तनखाह खोलना। (७) ऐसी वस्तुओं का तैयार करना जो दूर तक रेखा के रूप में चली गई हों और जिन पर किसी वस्तु का आना जाना हो। जैसे, सड़क खोलना, नहर खोलना। (८) कोई ऐसा नया कार्य्य आरंभ करना जिसका लगाव सर्वसाधारण या बहुत से लोगों के साथ हो। जैसे, कारखाना खोलना, पाठशाला खोलना, दूकान खोलना। (९) किसी कारखाने, दूकान, दफ़्र आदि का दैनिक कार्य्य आरंभ करना। जैसे, वह नित्य बड़े तड़के दूकान खोलता है। (१०) किसी ऐसी सवारी को चला देना जिस पर बहुत आदमी एक साथ बैठ सकें। जैसे, नाव खोलना। (११) किसी गुप्त या गूढ़ बात को प्रकट या स्पष्ट कर देना। जैसे, आपके पूछते ही ये सब खोल देंगे।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

(१२) किसी को अपने मन की बात कहने के लिये उद्यत करना। जैसे, हमने उसे खोलना चाहा पर वह नहीं खुला।

खोलिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की पनालीदार रुखानी जिससे बढ़ई लकड़ी पर फूल पत्ती या बेलबूटे खोदते हैं।

खोवा–संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्र = पेपणे, पीसना ?] खोया। मावा।

खोह–संज्ञा स्त्री० [सं० गोह] (१) गुहा। गुफा। कंदरा। (२) पहाड़ के बीच का गहरा गड्ढा। (३) दो पहाड़ों के बीच में की तंग जगह।

खोही–संज्ञा स्त्री० [सं० खोलक] (१) पत्तों की छतरी। उ०—सिरनि जटा मुकुट मंजुल सुमन युत तैसिये लसति नव पल्लव खोही।—तुलसी। (२) घोघी। खुरुआ।

खौं–संज्ञा स्त्री० [सं० खन्] (१) खात। गड्ढा। (२) अन्न संचित करने का गहरा गड्ढा। इसका मुँह ऊपर कुएँ का सा होता है पर नीचे कुछ अधिक चौड़ा होता है।

खौंचा–संज्ञा पुं० [सं० षट् + च] साढ़े छः का पहाड़ा। जैसे, ढौंचा, पौंचा इत्यादि।

संज्ञा पुं० [फ़ा० ख्वान्चा] एक प्रकार का संदूक जिसमें मिठाई आदि खाने पीने की वस्तु रक्खी जाती है।

खौंड़ा†–संज्ञा पुं० [सं० खन वा खात] (१) खौं। अनाज रखने का गड्ढा। (२) गढ़हा।

खौफ़–संज्ञा पुं० [अ०] [वि० खौफनाक] डर। भय। भीति। दहशत।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—होना।

खौर–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षौर वा क्षुर] (१) मस्तक पर लगे हुए चंदन का आड़ा वा धनुषाकार तिलक। त्रिपुंड। चंदन का आड़ा टीका।

विशेष—चंदन का मस्तक पर लेप करके उस पर उँगली से खरोंच कर चिह्न बनाते हैं।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

(२) स्त्रियों का एक गहना जो मस्तक पर पहना जाता है।

(३) मछली फसाने का एक प्रकार का जाल।

खौरना–क्रि० स० [हिं० खौर] खौर लगाना। तिलक करना। चंदन का टीका लगाना।

खौरहा–वि० [हिं० खौरा + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० खौरही] (१) जिसके सिर के बाल झड़ गए हों। (२) जिसे खौरा हुआ हो। जिसके शरीर में खुजली का रोग हो।

खौरा–संज्ञा पुं० [सं० क्षौर। फा० बालख़ोरा] [वि० खौरहा] एक प्रकार की बुरी खुजली जिसमें चमड़ा बिलकुल रूखा हो जाता है और बाल प्रायः झड़ जाते हैं। यह रोग कुत्तों और बिल्लियों आदि को भी होता है।

वि० जिसे खौरा हुआ हो।

खौरि–संज्ञा स्त्री० दे० "खौर"। उ०—तनु अनुहरत सुचंदन खौरी। श्यामलगौर मनोहर जोरी।—तुलसी।

खौरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खोपड़ी] खोपड़ी।

[देश०] (सोनारों की बोली में) राख।

मुहा०—खौरी करना = राख में मिला देना। राख के रूप में कर देना। सोने वा चाँदी को राख कर देना।

खौरू–संज्ञा पुं० [देश०] बैल वा साँड़ की डकार वा बोली।

खौलना–क्रि० अ० [सं० क्ष्वेल] (किसी तरल पदार्थ का) उबलना। जोश खाना। अत्यंत गरम होना।

मुहा०—मिज़ाज या दिमाग़ खौलना = बहुत अधिक क्रोध या आवेश आना।

संयो० क्रि०—जाना।

खौलाना–क्रि० स० [हिं० खौलना] उबालना। गरम करना।

खौहड़†–वि० दे० "खौहा"।

खौहा–वि० [हिं० खाना] (१) बहुत अधिक खानेवाला। जिसकी खुराक बहुत ज्यादा हो। (२) जिसको खाने की लालच बहुत अधिक हो। (३) दूसरे की कमाई खानेवाला। जो दूसरे की कमाई पर अपना जीवन व्यतीत करे।

ख्यात–वि० [सं०] प्रसिद्ध। विदित। मशहूर।

ख्याति–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसिद्धि। शोहरत। नामवरी।

क्रि० प्र०—फैलना।—होना।

ख्याल–संज्ञा पुं० [अ०] [वि० ख्याली] (१) ध्यान।

मुहा०—ख्याल करना = सोचना। याद करना। ख्याल पड़ना = ध्यान में आना। याद आना। ख्याल पर चढ़ना = दे० "ख्याल पड़ना"। ख्याल में आना = समझ में आना। ख्याल रखना = ध्यान रखना। देखते भालते रहना। याद रखना। स्मरण रखना। ख्याल रहना = याद रहना। ख्याल से उतरना या उतर जाना = भूल जाना। विस्मृत हो जाना। किसी के ख्याल पड़ना = किसी के पीछे पड़ना। किसी को दिक करने पर उतारू होना। उ०—राधा मन में यहै विचारति। ये सब मेरे ख्याल परी हैं अबहीं बातन लै निरुआरति।—सूर।

(२) अनुमान। अंदाज़। अटकल। जैसे—हमारा ख्याल है कि वह यहाँ नहीं आयेगा।

मुहा०—ख्याल बाँधना = अनुमान लगाना। कल्पना करना।

(३) विचार। भाव। सम्मति। जैसे, उनके बारे में आपका क्या ख्याल है। (४) आदर। लिहाज़।

मुहा०—ख्याल करना = रिआयत करना। ख्याल में लाना = (१) रिआयत करना। (२) महत्त्वपूर्ण समझना। ख्याल रखना = (१) लिहाज़ रखना। (२) कृपादृष्टि रखना।

(५) एक विशेष प्रकार का गान जिसमें केवल एक स्थायी पद और एक अंतरा होता है तथा अधिकतर शृंगार रस का वर्णन रहता है। यह अनेक राग रागिनियों का होता है और तिलवाड़ा ताल पर गाया बजाया जाता है। जैसे, ख्याल केदारा, ख्याल देस, ख्याल जैतश्री, ख्याल सिंदूरिया, आदि।

(६) लावनी गाने का एक ढंग।

† संज्ञा पुं० [हिं० खेल] खेल। क्रीड़ा। हँसी। दिल्लगी। उ०—(क) यह सुनि रुकमिनि भई बेहाल। जानि परयो नहिँ हरि को ख्याल।—सूर। (ख) कंत बीसलोचन बिलोकिये कुमंत फल ख्याल लंका लाई कपि राँड की सी झोपड़ी।—तुलसी।

ख्याली–वि० [हिं० ख्याल] (१) कल्पित। फ़र्ज़ी। अनुमित।

मुहा०—ख्याली पुलाव पकाना = असंभव बातें सोचना। मनोराज्य करना।

(२) खब्ती। सनकी। वहमी।

वि० [हिं० खेल] किसी प्रकार का खेल या कौतुक करनेवाला। उ०—ख्याली कपाली है ख्याली चहूँ दिसि भाँग के टाटिन को परदा है।—तुलसी।

ख्रिष्टान–संज्ञा पुं० [हिं० ख्रीष्ट] ईसाई। क्रिस्तान।

ख्रिष्टीय–वि० [अ० क्राइष्ट] (१) ईसाई। (२) ईसासंबंधी। ईसाई धर्मसंबंधी।

ख्रीष्ट–संज्ञा पुं० [अ० क्राइष्ट] [वि० ख्रिष्टीय] हज़रत ईसामसीह।

यौ०—ख्रीष्टगीता = बाईबिल।

ख़्वाजा–संज्ञा पुं० [फा०] (१) मालिक। (२) सरदार (३) कोई प्रसिद्ध पुरुष। (४) बड़ा व्यापारी। (५) ऊँचे दर्जे का मुसलमान फ़कीर। (६) रनिवास का नपुंसक भृत्य। ख़्वाजासरा। ख़ोजा।

ख़्वान–संज्ञा पुं० [फा०] थाल। परात।

यौ०—ख़्वानपोश = वह कपड़ा जिससे पकवान, मिठाई आदि से भरे ख़्वान को ढक देते हैं।

ख़्वानचा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक बड़ी थाली जिसमें मिठाई पकवान आदि बेचने के लिये रखते हैं। दे० 'खोनचा'।

ख़्वाब-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सोने की अवस्था। नींद। (२) स्वप्न।

यौ०—ख़्वाबगाह = सोने का घर। शयनागार।

मुहा०—ख़्वाब होना या हो जाना = स्वप्नदोष होना। स्वप्न में वीर्यपात हो जाना।

ख़्वार-वि० [फ़ा] (१) ख़राब। बर्बाद। नष्ट। सत्यानाश। (२) अनादृत। तिरस्कृत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ख़्वारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) बर्बादी। ख़राबी। नष्टता। भ्रष्टता। (२) अनादर। तिरस्कार। बेइज़्ज़ती। अपमान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ख़्वास्तगार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] [भाव० ख़्वास्तगारी] चाहनेवाला। इच्छा करनेवाला।

ख़्वाह-अव्य० [फ़ा०] या। अथवा। या तो।

यौ०—ख़्वाह-म-ख़्वाह = (१) चाहे कोई चाहे या न चाहे अपनी टेक से। ज़बरदस्ती। (२) ज़रूर। अवश्य।

ख़्वाहाँ-वि० [फ़ा०] (१) इच्छा रखनेवाला। इच्छुक। (२) चाहनेवाला। अनुरागी। प्रेमी।

ख़्वाहिश-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] [वि० ख़्वाहिशमंद] इच्छा अभिलाषा। आकांक्षा।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

ख़्वाहिशमंद-वि० [फ़ा०] ख़्वाहिश रखनेवाला। इच्छुक। आकांक्षी।

ख्वेंतर-संज्ञा पुं० [देश०] गोफना। ढेलवाँस। (लश०)

—:०:—

ग

ग-व्यंजन के स्पर्श-त्रिक में कवर्ग का तीसरा वर्ण। इसका उच्चारण स्थान कंठ है और शिक्षा में यह "क" का गंभीर संस्पृष्ट रूप माना गया है। इसका प्रयत्न अघोष अल्पप्राण है।

गंग—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गा] (१) एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ९ मात्राएँ होती हैं। अंत में दो गुरु होना आवश्यक है। उ०—राम भजौ रे। काम तजौ रे। नित याहि कीजे। सब छाड़ि दीजै। (२) एक कवि का नाम जो अकबर के समय में था।

संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] गंगा नदी।

विशेष—समास में समस्त पद के आदि में गंगा का कभी कभी गंग हो जाता है। जैसे, गंगदत्त, गंगदास, गंगजल इत्यादि।

गंगई-संज्ञा स्त्री० [अनु० गें गें] मैना की जाति की एक चिड़िया। यह ग्यारह इंच लंबी और गहरे भूरे रंग की होती है। यह भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों में होती है और खेतों, मैदानों और जंगलों में छोटे छोटे झुंडों में फिरती है। इसके अंडा देने का कोई नियम समय नहीं है। यह झाड़ में घोसला बनाती है और चार अंडे देती है। यह बहुत बोलती है। गलगलिया।

गंगकुरिया-संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा + कूल] एक प्रकार हलदी जो कटक में होती है। इसकी गाँठें लंबी और बड़ी होती हैं।

गंगतिरिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० गंगा + तीर] एक पौधा जो सजल भूमि में होता है और जिसकी पत्तियाँ बड़ी नोनिया की पत्तियों के समान सिरे पर नुकीली होती हैं। इसमें पीपल के समान बाल निकलती है। वैद्यक में यह शीतल, रूखी, कड़ुई, नेत्र और हृदय को हितकारी, शुक्रजनक, मलरोधक तथा दाह और व्रण को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसे पनिसिंगा और जलपीपर भी कहते हैं।

गंगबरार-संज्ञा पुं० [हिं० गंगा + फ़ा० बरार = बाहर या ऊपर लाया हुआ)] वह जमीन जो गंगा या किसी और नदी की धारा या बाढ़ के हटने से निकल आती है और जिस पर उस नदी के द्वारा लाई हुई मिट्टी जमी रहती है।

गंगरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जिसे बनी भी कहते हैं। इसकी पत्तियाँ चौड़ी और बड़ी तथा रेशे पतले और नरम होते हैं। फूल के नीचे की कमरखी पत्तियाँ बड़ी और बैंगनी रंग की होती है। इसे बिहार में जेठी, बंगाल में भोगला, बरार में टिकड़ी, जूड़ी आदि कहते हैं।

गंगला-संज्ञा पुं० [हिं० गंगाल] एक प्रकार का शलगम जो गंगा के किनारे होता है। यह आकार में बड़ा और अच्छा होता है।

गंगवा-संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम जो दक्षिण में समुद्र के किनारे तथा बर्मा, अंडमन और लंका में होता है। यह सदाबहार होता है। इससे सफ़ेद रंग का दूध निकलता है जो हवा लगने से जम जाता है और काले रंग का होता है। ताजा दूध बहुत खट्टा होता है और लोगों का विश्वास है कि जहरीला होता है। इसकी लकड़ी दियासलाई आदि बनाने के काम में आती है। इसे कड़ुवा फल वा कड़ुवा पल भी कहते हैं।

गंगशिकस्त—संज्ञा पुं० [हिं० गंगा + फ़ा० शिकस्त = तोड़ा हुआ] वह ज़मीन जिसे कोई नदी काट ले गई हो।

गंगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारतवर्ष की एक प्रधान नदी जो हिमालय से निकल कर १५६० मील पूर्व को बह कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। इसका जल अत्यंत स्वच्छ और पवित्र होता है और इसमें कभी कीड़े नहीं पड़ते। हिंदू इस नदी को पवित्र मानते हैं और उसमें स्नान करना पुण्य समझते हैं। पुराणों में इसे हिमालय की पुत्री माना है और इसकी माता का नाम मनोरमा लिखा है जो सुमेरु की कन्या थी। कहते हैं कि गंगा पहले स्वर्ग में थी। जब सगर के साठ हजार पुत्रों को कपिल जी ने भस्म कर डाला तब उनके उद्धार के लिये भगीरथ गंगा जी को स्वर्ग से पृथिवी पर लाए। गंगा जब स्वर्ग से गिरी थीं तब उन्हें शिवजी ने अपनी जटा में धारण किया था। इसी से शिवजी की जटा में गंगा मानी जाती हैं। पृथिवी पर गिरने पर गंगा भगीरथ के साथ गंगा-सागर को जहाँ कपिलजी ने सगर के पुत्रों को भस्म किया था, जा रही थीं कि इसी बीच में जह्नु ऋषि ने उन्हें पी लिया और भगीरथ की बड़ी प्रार्थना पर उन्हें अपने जानु से निकाला। इसी से गंगा का नाम जह्नुसुता आदि पड़ा। पुराणानुसार गंगा की तीन धाराएं हैं एक स्वर्ग में जिसे 'आकाश गंगा' कहते हैं, दूसरी पृथिवी पर और तीसरी पाताल में। यह नदी गंगोत्तरी की पहाड़ी से, जो १३८०० फुट ऊँची है, बर्फ़ के पिघलने से निकलती है और मंदाकिनी और अलकनंदा से मिल कर हरिद्वार के पास पथरीले मैदान में उतरती है। यमुना, गोमती, घाघरा, बानगंगा, गंडक आदि नदियाँ इसमें गिरती हैं। हिंदुओं के प्रधान तीर्थ काशी, प्रयाग आदि इसी के किनारे हैं।

यौ०—गंगाधर। गंगाजल। गंगापुत्र।

मुहा०—गंगा उठाना = गंगा जल उठा कर शपथ खाना। गंगा की शपथ करना। गंगा पार करना = देश से निकालना। गंगा नहाना = कृतार्थ होना। छुट्टी पाना। उ०—तुम यहाँ से जाओ तो हम गंगा नहाएँ। गंगा दुहाई = गंगा की शपथ।

पर्य्या०—विष्णुपदी। जाह्नवी। भागीरथी। त्रिपथगा। सुर-निम्नगा। त्रिस्रोता। स्वरापगा। सुरापगा। अलकनंदा। मंदाकिनी। सुरनदी। अध्वगा।

गंगाचिल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जलपक्षी जिसका सिर काले रंग का होता है।

पर्य्या०—देवटी। विश्वका। जलकुक्कुटी।

गंगाजमुनी—वि० [हिं० गङ्गा + जमुना] (१) मिला जुला। संकर। दो-रंगा। (२) सोने चाँदी, पीतल ताँबे आदि दो धातुओं का बना हुआ। सुनहले रुपहले तारों का बना हुआ। जिस पर सोने चाँदी दोनों का काम हो। (३) काला उजला। स्याह सफ़ेद। अबलक।

संज्ञा स्त्री० (१) कान का एक गहना। (२) केवटी दाल। वह दाल जिसमें अरहर और उर्द की दाल मिली हो। (३) ज़रतारी का ऐसा काम जिसमें सुनहले और रुपहले दोनों रंग के तार हों।

गंगाजल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंगा का पानी। (२) एक कपड़े का नाम जो बारीक और सफ़ेद रंग का होता है। पश्चिम में लोग इसकी पगड़ी बाँधते हैं। उ०—गंगाजल की पाग सिर सोहत श्री रघुनाथ। शिव सिर गंगाजल किधौं चंद्र चंद्रिका साथ।—केशव।

गंगाजली—संज्ञा स्त्री० [सं० गंगाजल] (१) काँच वा धातु की बनी हुई सुराही या शीशी जिसमें यात्री गंगाजल भर कर ले जाते हैं।

मुहा०—गंगाजली उठाना = गंगाजली हाथ में लेकर शपथ खाना। गंगा की क़सम खाना।

(२) धातु की सुराही जिसमें पीने के लिये पानी रखा जाता है।

संज्ञा पुं० एक प्रकार की गेहूँ जो भूरे रंग की और कड़ी होती है।

गंगाजाल—संज्ञा पुं० [सं० गंगा + जाल] बंगाल के मछवाहों का जाल जो रीहा घास से बनता है।

गंगाद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] हरिद्वार।

गंगाधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) एक औषध का नाम जो नागरमोथा मोचरस आदि के योग से बनती है और संग्रहणी रोग में दी जाती है। इसे गंगाधर रस भी कहते हैं। (३) चौबीस अक्षर का एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ८ रगण होते हैं। इसे गंगोदक भी कहते हैं। दे० "गंगोदक"।

गंगापथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश। (डिं०)

गंगापाट—संज्ञा पुं० [हिं० गंगा + पाट] एक भौंरी जो घोड़े के तंग के नीचे होती है। यह भौंरी यदि तंग से बाहर हो तो शुभ मानी जाती है अन्यथा तंग के नीचे पड़ने से अशुभ होती है।

गंगापुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भीष्म। (२) एक प्रकार के ब्राह्मण जो गंगा आदि नदियों के किनारे के नगरों में रहते हैं और घाटों पर दान लेते हैं। (३) ब्रह्मवैवर्त के अनुसार एक वर्णसंकर जाति जो लेट पिता और तीवरी माता से पैदा हो। यथा लेटा तीवर कन्यायां गंगातीरे च शौनक। बभूव सद्यो यो बालो गंगा-पुत्रः प्रकीर्तितः।

गंगापूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विवाह के बाद की एक रीति जिसमें गाँव और कुटुंब की स्त्रियाँ बर को साथ लेकर गाती बजाती गाँव के बाहर नदी या तालाब पर जाती हैं और वहाँ गाँव के देवता आदि की पूजा करके घर लौट आती हैं। इसी दिन बर वा बधू के हाथ के कंगन खोले जाते हैं। इस दिन विवाह का

कृत्य समाप्त होता है। इस रीति को कंगन छोड़ना वा बरन वार भी कहते हैं।

गंगायात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मरणासन्न मनुष्य का गंगा के तट पर मरने के लिये गमन।

गंगाराम—संज्ञा पुं० [हिं० गंगा + राम] तोते का प्यार का नाम।

गंगाल—संज्ञा पुं० [सं० गंगा + आलय] पानी रखने का बड़ा बरतन। कंडाल।

गंगाला—संज्ञा पुं० [सं० गंगा + आलय] वह भूमि जहाँ तक गंगा का चढ़ाव पहुँचता है। कछार।

गंगालाभ—संज्ञा पुं० [सं०] गंगा की प्राप्ति। मृत्यु।

मुहा०—गंगालाभ होना = (१) गंगा के किनारे पर मरना। मुक्त होना। (२) डूब कर मरना। मरना।

गंगासागर—संज्ञा पुं० [हिं० गंगा + सागर] (१) एक तीर्थ जो उस स्थान पर है जहाँ गँगा समुद्र में गिरती हैं। कहते हैं कि यहाँ कपिल मुनि का आश्रम था और यहीं सगर के पुत्रों को उन्होंने भस्म किया था। यह स्थान कलकत्ते से दक्षिण-पूर्व सुंदरबन में है जहाँ मकर की संक्रांति के दिन बड़ा मेला लगता है। (२) मोटे कपड़े की छपी हुई ज़नानी धोती जो सत्रह अठारह हाथ लंबी होती है। (३) एक प्रकार की बड़ी टोंटीदार झारी जो हाथ धुलाने के काम आती है।

गंगासुत—संज्ञा पुं० [सं०] भीष्म।

गँगेटी—संज्ञा स्त्री० [सं० गंगाटी] एक बूटी जो दवा के काम में आती है। यह फोड़े को गलाती और मल मूत्र लाती है।

गँगेरन—संज्ञा स्त्री० [सं० गांगेरुकी] एक प्रकार का पौधा जो औषध-शास्त्र में चतुर्विधिवला के अंतर्गत माना जाता है और सहदेई के पौधे के समान होता है। सहदेई से इस में भेद यह है कि इसके पत्ते अधिक मोटे और दो अनीवाले होते हैं। फूल गुलाबी होते हैं और फल भी कुछ बड़े होते हैं। फल में विशेषता यह है कि पकने पर उसके पाँच भाग हो जाते हैं। गँगेरन के गुण भी वैद्यक में बरियारा वा खिरैंटी के से माने जाते हैं। यह मूत्रकृच्छ्र, क्षत और क्षीण रोग, खुजली, कुष्ट आदि में दी जाती है। गँगेरन दो प्रकार की होती है। एक छोटी, दूसरी बड़ी। बड़ी गँगेरन भी अम्ल, मधुर, त्रिदोष-नाशक तथा दाह और ज्वर को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसे गुलशकरी भी कहते हैं।

पर्य्या०—नागवला। गांगेरुकी। झषा। ह्रस्वगवेधुका। खरगंधिनी। गोरक्षतंडुला। भद्रौदनी। चतुःपला। खरवल्लिरिका। महोदया। महापत्रा। विश्वदेवी। अनिष्टा। देवदंडा।

गँगेरुवा—संज्ञा पुं० [गांगेरुक] एक पहाड़ी पेड़ जिसके फल आँवले की तरह छोटे छोटे होते हैं। पत्तियों की पंक्ति सीकों में लगी होती है। वैद्यक में इस पेड़ का फल कफ़-बात-नाशक, पित्तकारक, भारी, गरम और स्निग्ध माना जाता है। फल दो प्रकार के होते हैं, खट्टे और मीठे।

गँगेरू—संज्ञा स्त्री० दे० "गँगेरन"।

गंगेश—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

गंगोत्तरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गंगावतार] गढ़वाल में हिमालय पर्वत पर एक स्थान जहाँ गंगा ऊपर से गिरती है। यह हिंदुओं का एक प्रधान तीर्थ है और यहाँ गंगा देवी का एक मंदिर बना हुआ है।

गंगोदक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंगाजल। (२) चौबीस अक्षर का एक वर्ण वृत्त जिस में आठ रगण होते हैं। इसे गंगाधर, खंजन आदि भी कहते हैं। यह यथार्थ में स्रग्विणी छंद का दूना है। उ०—जन्म बीता सबै, चेत मीता अबै, कीजिए का तबै, काल ले आन कै। मुंडमाला गरै, सीस गंगा धरै, आठ यामै हरै, ध्याइ लै गान कै।

गंगोल—संज्ञा पुं० [सं०] गोमेदक नामक मणि। उ०—गंधक गुंजाफल गंगोला। गोपी चंदन लुटेउ अतोला।—सूदन।

गंगौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंगा + मिट्टी] गँगा के किनारे की बालू वा मिट्टी।

गंगौलिया—संज्ञा पुं० [हिं० गंगाल] एक प्रकार का खट्टा नीबू। इसका छिलका दानेदार होता है।

गंज—संज्ञा पुं० [सं० कञ्ज वा खञ्ज] (१) एक रोग का नाम जिसमें सिर के बाल उड़ जाते हैं और फिर नहीं जमते। चाईं। चंदलाई। खल्वाट। बुर्का। (२) सिर का एक रोग जिस में सिर में छोटी छोटी फुनसियाँ निकलती रहती हैं और जल्दी अच्छी नहीं होतीं। बालखोरा।

संज्ञा पुं० [फ़ा०। सं०] (१) खजाना। कोष। (२) ढेर। अंबार। राशि। अटाला।

क्रि० प्र०—लगाना।

(३) समूह। झुंड। उ०—कै निदरहु कै आदरहु सिंहहि स्वान सियार। हरष विषाद न केसरिहि कुंजर गंज निहार।—तुलसी। (४) वह स्थान जहाँ अन्न आदि रखा जाय। गल्लाखाना। अंबारखाना। कोठी। भंडार। (५) गल्ले की मंडी। गोला। हाट। बाज़ार।

मुहा०—गँज डालना = बाज़ार लगाना। मंडी आबाद करना।

(६) वह आबादी जिसमें बनिये बसाए जाते हैं और बाज़ार लगता है। जैसे, रायगंज, पहाड़गंज। (७) मद्यपात्र। (८) मदिरालय। कलवरिया। (९) वह चीज़ जिसमें बहुत सी काम की चीज़ें एक साथ एकत्र हों। जैसे, एक बरतन जो गगरे के आकार का होता है और जिसमें रसोई बनाने के बहुत से बर्तन होते हैं गंज कहलाता है। इसी प्रकार वह चाकू जिसमें चाकू, कैंची, मोचने आदि बहुत सी चीज़ें हो हैं गँज कहलाता है।

संज्ञा पुं० [सं०] अवज्ञा। तिरस्कार।
संज्ञा स्त्री० [देश०] एक मोटी लता जिसमें नीचे की ओर झुकी हुई टहनियाँ निकलती हैं। इसकी पत्तियाँ सींकों में लगती हैं और ४ से ८ इंच तक लंबी, सिरे की ओर चौड़ी, दलदार और चिकनी होती हैं। इसमें पाँच सात इंच लंबी, एक इंच मोटी फलियाँ लगती हैं जिन पर रोईं होती हैं। टहनियों से रेशा निकलता है और पत्तियाँ चौपायों को खिलाई जाती हैं। यह लता जंगल के पेड़ों को बहुत हानि पहुँचाती है और देहरादून से लेकर गोरखपुर और बुंदेलखंड तक पाई जाती है। इसे गोंज भी कहते हैं।

गंजगोला—संज्ञा पुं० [हिं० गंज + गोला] तोप का वह गोला जिसके भीतर बहुत सी छोटी छोटी गोलियाँ भरी रहती हैं। (लश०)

गंजन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अवज्ञा। तिरस्कार। उ०—(क) रस सिंगार मंजन किये, कंजन भंजन दैन। अंजन रंजनहू बिना खंजन गंजन नैन।—बिहारी। (ख) काली विप गंजन दह आये।—सूर। (ग) पुण्यात्मा सुख से, वो पापी सब नाना गंजन से जाते हैं।—सदलमिश्र। (२) संगीत में अष्ट ताल के आठ भेदों में से एक।

गंजना—क्रि० स० [सं० गञ्जन] (१) अवज्ञा करना। निरादर करना। (२) चूर चूर करना। नाश करना। उ०—(क) राम कामअरि कर धनु भंजा। भृगुपति सहित नृपन मद गंजा।—विश्राम। (ख) जुरे युद्ध कर तेग लै पंचम के असवार। गँजि गरेब गरबीन के करे अरिन पर वार।—लाल।

गंजनी—संज्ञा स्त्री० [?] एक घास जो सुगंध बनाने के काम में आती है। इसकी महक नीबू से मिलती जुलती होती है।

गंजा—संज्ञा पुं० [सं० खञ्ज वा कञ्ज] गंज रोग। दे० "गंज"।
वि० [स्त्री० गंजी] जिसको गंज रोग हो गया हो। जिसके सिर के बाल झड़ गए हों।

गंजिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गंजिका वा फा० गंज] (१) सूत की बुनी हुई रुपया रखने की जालीदार थैली। (२) वह जाल की थैली जिसमें घसियारे घास रखते हैं। खारी। बाँसुली। नौला। (३) मिट्टी का बना हुआ एक बरतन जिसका मुँह तंग होता है। यह दबकी की तरह चिपटा होता है। पहले इसमें शराब रखते थे।

गंजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गंज] (१) ढेर। समूह। गाँज। जैसे, घास की गंजी। अन्न की गंजी। † (२) कंदा। शकर कंद।
संज्ञा स्त्री० [अं० गुएरनेसी = एक टापू] बुनी हुई छोटी कुरती वा बंडी जो बदन में चिपकी रहती है। बनियायन।

गंजीफा—संज्ञा पुं० [फा०] एक खेल जो आठ रंग के ९६ पत्तों से खेला जाता है। पत्तों के आकार गोल होते हैं और रंग लाल। ये पत्ते कड़े होते हैं और फेंकने से मुड़ते नहीं है। रंगों के नाम चंग, बरात, किमास, शमसेर आदि हैं। प्रत्येक रंग के १२, १२ पत्ते होते हैं। इस खेल को तीन आदमी खेलते हैं।

गँजेड़ी—वि० [हिं० गाँजा + एड़ी (प्रत्य०)] गाँजा पीनेवाला।

गंटम—संज्ञा पुं० [?] लोहे की क़लम जिससे ताड़ पत्र पर लिखते थे।

गँठकटा—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ + काटना] गाँठ में बँधे हुए रुपए पैसे को काट लेनेवाला। गिरहकट। उचक्का

गँठजोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ + जोड़ना] गँठबंधन। उ०—जनक स्वयंवर बर धनु तोरा। सीय विवाहि करयो गँठजोरा।—गोपाल।

गँठबंधन—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ + बंधन] विवाह की एक रीति जिसमें बर और बंधू के वस्त्र को परस्पर बाँध देते हैं। इस अवस्था में दोनों कुछ पूजा आदि करते हैं। यह संस्कार विवाह के चौथे दिन या किसी और दूसरे दिन अच्छी साइत देख कर होता है।

गँठिवन—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रंथिपर्णी] ग्रंथिपर्णी। दे० "गठिवन"।

गँठुआ—संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ] ताने या बाने के टूटे हुए तागों को अथवा नई पाई के तागे को पुराने उतरे हुए कपड़े के तागे से जोड़ना। (जुलाहा)

गंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपोल। गाल। (२) कनपटी। (३) ज्योतिष के अनुसार ज्येष्ठा, श्लेषा और रेवती के अंत के पाँच दंड और मूल, मघा और अश्विनी के आदि के तीन दंड। इनमें उत्पन्न होनेवाले लड़के को दूषित मानते हैं। लोगों का विश्वास है कि गँड में उत्पन्न लड़के का मुहँ पिता को नहीं देखना चाहिए। दिन में ज्येष्ठा और मूल का गंड, रात में श्लेषा और मघा का गंड तथा सायंकाल, प्रातःकाल रेवती और अश्विनी का गंड अधिक दोषकारक माना जाता है और इनमें उत्पन्न बालक क्रम से पिता, माता और अपना घातक माना गया है। (४) गंडा जो गले में पहना जाता है। (५) फोड़ा। (६) चिह्न। लकीर। दाग। (७) गोल मंडलाकार चिह्न वा लकीर। गराड़ी। गंडा। (८) गाँठ। (९) गेंड़ा। (१०) बीथी नामक नाटक का एक अंग जिसमें सहसा प्रश्नोत्तर होते हैं।

गंडक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गले के पहनने का जंतर वा गंडा। (२) वह देश जहाँ गंडकी नदी बहती है तथा वहाँ के निवासी। (३) गाँठ। (४) एक रोग जिसमें बहुत से फोड़े निकलते हैं। (५) गैंड़ा। (६) चिह्न।
संज्ञा स्त्री० दे० "गंडकी"।

गंडका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बीस वर्णों का एक वृत्त जिसे वृत्त और दंडिका भी कहते हैं।

गंडकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो नैपाल में हिमालय से निकलती है और बहुत सी छोटी नदियों को लेती हुई पटने के पास गंगा में गिरती है। इसमें काले रंग के गोल

गोल पत्थर निकलते हैं जो शालिग्राम कहलाते हैं। इन्हें विष्णु का प्रतीक मान कर लोग पूजते हैं।

संज्ञा पुं० सत्रह मात्राओं का एक ताल जिसमें १३ आघात

+ २ ०
और ४ खाली होते हैं। देत देत खून खून धा कता दंता
३ ४ ५ ६ ७ ० ८
केटे ताग् देत देत खून खून धा कता दंता कडान् धा आ
६ १० ११ १२ १३ +
तेरे केटे तांधा खूंगा गदिघेने नागदेत् तेरे केटे। धा।

गंडगोपालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा। ग्वालिन।

गंडघिसनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँड + घिसना] (१) अत्यंत निकृष्ट परिश्रम। (२) बहुत खुशामद और विनती।

गँड़तरा†–संज्ञा पुं० [हिं० गाँड़ + तर = नीचे] वह कपड़ा जो बच्चों के चूतड़ के नीचे इसलिये बिछाया जाता है जिसमें उनका मलमूत्र बिछावन पर न लगे। इसे गँतरा भी कहते हैं।

गंडदूर्बा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाँड़र घास जिसकी जड़ खस कहलाती है। (२) वह दूब जो पृथ्वी पर फैलती और जड़ पकड़ती दूर तक चली जाती है।

गंडनी–संज्ञा स्त्री० [सं० गंडाली] सरपोका। सर्पाची। सरहटी।

गँड़पुत्र–संज्ञा पुं० [हिं० गाँड + पुत्र] मलमार्ग से उत्पन्न पुत्र। (असंभव बात)

गंडमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] कनपटी। उ०—ललित मंडल सुविसाल भाल तिलक झलक मंजु तर मयंक अंक रुचिर बंक भौंहैं।—तुलसी।

गंडमाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जिसमें गले में छोटी छोटी बहुत सी फोड़िया लगातार माला की तरह एक पंक्ति में निकलती है। यह रोग बड़ी कठिनता से अच्छा होता है। गलगंड। कंठमाला।

गंडमूर्ख–वि० [सं०] घोर मूर्ख। भारी बेवक़ूफ़।

गँड़रा–संज्ञा पुं० [सं० गंडालि] [स्त्री० गँडरी] (१) मूँज की तरह की एक घास जो तर ज़मीन में होती है। इसकी पत्तियाँ आध अंगुल चौड़ी और हाथ डेढ़ हाथ लंबी होती हैं। यह उँचाई में दो फुट से पाँच छः फुट तक होती है। इसकी डंठल के बीच से डेढ़ दो हाथ लंबी पतली सींक निकलती है जो सूखने पर सुनहले रंग की हो जाती है। सींक के सिरे पर जीरे लगते हैं। ये जीरे कुआर के महीने में फूटते हैं। पूस तक यह घास सूखने लगती है। किसान हरे सींकों को निकाल लेते हैं और उन्हें झाड़ू बनाने और डब्बे, पिटारियाँ आदि बुनने के काम में लाते हैं। इसे फागुन, चैत में लोग काटते हैं और इसकी डाँठ से छप्पर आदि छाते हैं। इसकी चटाइयाँ भी बनती हैं। इसकी जड़ में सोंधी महक होती है और वह खस कहलाती है। खस की टट्टियाँ बनती हैं तथा उससे अतर निकाला जाता है। (२) एक धान का नाम जो भादों कुआर में तैय्यार होता है।

गंडरी–संज्ञा स्त्री० [गंडाली] गँड़रा घास। गाँडर।

गंडली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी पहाड़ी। (२) शिव।

गंडसूचि–संज्ञा स्त्री० [सं०] नृत्य में एक प्रकार का भाव।

गंडस्थल–संज्ञा पुं० [सं० गण्डस्थल] कनपटी।

गंडांत–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ज्येष्ठा, श्लेषा, और रेवती के अंत के पाँच वा तीन दंड तथा मूल, मघा और अश्विनी के अंत के तीन दंड। इनमें उत्पन्न होनेवाले बालक दोषी माने जाते हैं और दोष की शांति के लिये पूजा की जाती है।

गंडा–संज्ञा पुं० [सं० गंडक = गाँठ] गाँठ जो किसी रस्सी या तागे में लगाई जाय। जैसे गेराँव का गंडा।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

संज्ञा पुं० [सं० गंडक = गले में पहनने का जेवर] (१) वह बटा हुआ तागा जिसमें मंत्र पढ़ कर गाँठ लगाई जाती है। इसे लोग रोग और भूत प्रेत की बाधा दूर होने के लिये गले में बाँधते हैं।

मुहा०—गंडा तावीज़ = मंत्र यंत्र। झाड़ फूँक। जादू टोना। टोटका। गँडा तावीज़ करना = गंडे तावीज़ से इलाज करना। मंत्र यंत्र से रोग को अच्छा करना। झाड़ फूँक करना।

(२) वह धागा जिसे मंत्र पढ़ कर रोगी के गले या हाथ में बाँधते हैं। (३) घोड़ों के गले में पहनाने का पट्टा जिसमें कभी कभी कौड़ियाँ और घुँघुरू के दाने गुथे जाते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० गंडक] पैसा कौड़ी आदि के गिनने में चार चार की संख्या का समूह। जैसे, पाँच गंडे कौड़ियाँ, चार गंडे पैसे।

संज्ञा पुं० [सं० गंड = चिह्न] आड़ी धारी। आड़ी लकीरों की पंक्ति जैसी कनखजूरे की पीठ पर या साँप के पेट में देखी जाती है। (२) तोते आदि चिड़ियों के गले की रंगीन धारी।—कंठा। हँसली।

मुहा०—गँडा पड़ना = धारी होना या निकलना।

गंडारि–संज्ञा स्त्री० [सं०] कचनार।

गंडाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडदूर्वा। गाँडर घास।

गँड़ासा–संज्ञा पुं० [हिं० गँडी + सं० असि = तलवार] [स्त्री० अल्प० गँडासी] चौपायों के खाने के लिये चारे वा घास के टुकड़े करने का हथियार जो एक हाथ के लगभग लंबा होता है। यह एक लकड़ी में जिसे जाली कहते हैं, जड़ा हुआ एक चौड़ा लोहे का धारदार टुकड़ा होता है। इससे कोल्हू में डालने के लिये गन्ने की गँड़ेरी भी काटते हैं और लाठी में लगा कर हथियार का काम भी लेते हैं।

गँड़ासी–संज्ञा स्त्री० दे० "गँड़ासा"।

गंडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

गँड़िया†—संज्ञा पुं० दे० "गाँडू"।

गंडीर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साग जिसे गिँड़नी भी कहते हैं। वैद्यक में यह कफ़नाशक माना जाता है। (२) पोई का साग। (३) सेहुँड़।

गंडीरी—संज्ञा स्त्री० दे० "गंडीर"।

गंडुपद—संज्ञा पुं० [सं०] फ़ीलपाव रोग।

गंडू—संज्ञा पुं० दे० "गाँडू"।

गंडूक—संज्ञा पुं० दे० "गंडूष"।

गंडूपद—संज्ञा पुं० [सं०] केँचुआ।
यौ०—गंडूपदभव।

गंडूपदभव—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु। (डिं०)
विशेष—संभव है कि प्राचीनों का यह विश्वास रहा हो कि केँचुए से 'सीसा' निकलता है जैसे अब तक बहुत से लोगों की धारणा है कि मोर के पंख से ताँबा निकलता है।

गंडूष—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गंडूषा] (१) चुल्लू। हथेली का गड्ढा। (२) कुल्ली। (३) हाथी की सूँड़ की नोक।

गँडेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड वा गण्ड] (१) ईख या गन्ने का छोटा टुकड़ा जो चूसने या कोल्हू में पेरने के लिये काटा जाता है। (२) छोटा लंबोतरा टुकड़ा।
यौ०—गँडेरी का लड्डू = एक मिठाई जो गुँधे हुए मैदे के छोटे छोटे टुकड़ों को घी में छान और चाशनी में मिला कर लड्डू की तरह बाँधने से बनती है।

गँडोरा—संज्ञा पुं० [सं० गंडोल = ईख वा गुड़] हरा कच्चा खजूर।

गंडोल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुड़। कच्ची शक्कर। (२) ईख। (३) ग्रास। कौर।

गंता—संज्ञा पुं० [सं० गन्त] [स्त्री० गंत्री] जानेवाला। उ०—अघट घटना सुघट विघट विघटन विकट भूमि पाताल जल गगन गंता।—तुलसी।
विशेष—इसका प्रयोग विशेष करके समस्त पद के अंत में होता है। जैसे, अग्रगंता।

गंदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) मैलापन। मलिनता। (२) अपवित्रता। अशुद्धता। नापाकी।
क्रि० प्र०—करना।—फैलना।—फैलाना।—होना।
(३) मैल। ग़लीज़। मल।
संज्ञा स्त्री० [सं० गंध] दुर्गंध। बदबू।

गंदना—संज्ञा पुं० [सं० गंधन, वा फ़ा०] (१) लहसुन प्याज़ की तरह का एक मसाला जो तरकारी आदि में डाला जाता है। (२) एक घास जो लहसुन की गाँठ में जौं डाल कर बोने से उत्पन्न होती है। यह चटनी आदि के लिये काम आती है। इसे दंदना भी कहते हैं।

गंदम—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० गंदमी] एक पक्षी जो सात साढ़े सात इंच लंबा होता है और ऋतु के अनुसार रंग बदलता है। जाड़े के महीनों में यह पंजाब और संयुक्त प्रांत में दिखाई पड़ता है। यह झुंड में रहता है, और छोटी झाड़ियों में घास फूस से प्याले के आकार का घोसला बनाता है।

गँदला—वि० [हिं० गंदा + ला (प्रत्य०)] गंदा। मैला कुचैला। मलिन। उ०—तालाब का पानी गँदला हो गया।

गंदा—वि० [फ़ा०] [स्त्री० गंदी] (१) मैला। मलिन। उ०—बरसात में नदियों का पानी गंदा हो जाता है। (२) नापाक। अशुद्ध। उ०—एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है। (३) घिनौना। घृणित। उ०—तुम्हारी गंदी आदत नहीं जाती।
यौ०—गंदादहन। गंदापानी।
मुहा०—गंदा करना = (१) खराब करना। भ्रष्ट करना। (२) दागी करना। दाग लगाना। कलंकित करना।

गंदादहन—वि० [फ़ा०] जिसके मुँह से दुर्गंध आती हो।

गंदापानी—संज्ञा पुं० [फ़ा० गंदा + पानी] (१) मद्य। शराब। (२) वीर्य्य। धातु। (बाजारी)
मुहा०—गंदा पानी निकालना = संभोग करना। अयोग्य स्त्री से मैथुन करना।

गंदाबग़ल—संज्ञा पुं० [हिं० गंदा + बग़ल] वह घोड़ा जिसके दोनों बग़ल दो भौंरियाँ हों।

गँदीला—संज्ञा पुं० [सं० गंध] एक घास जो काली मिट्टी में तथा ऊसर और तर भूमि में उपजती है।
विशेष—दे० गँधिया।

गंदुम—संज्ञा पुं० [फ़ा०। सं० गोधूम] [वि० गंदुमी] गेहूँ।

गंदुमी—वि० [फ़ा० गंदुम] गेहूँ के रंग का। गेहुआँ। ललाई लिए हुए भूरा। जैसे, गंदुमी रंग।

गँदोलना†—क्रि० स० [फ़ा० गंदा] गंदा करना। गँदला करना। तालाब आदि के पानी को मथ कर मटमैला करना।

गंध—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्ध] (१) बास। महक। न्याय वा वैशेषिक में गंध को पृथिवी का गुण और घ्राण वा नासिका का विषय कहा है। यद्यपि साधारण भेद दो हैं—सुगंध और दुर्गंध, पर शास्त्रकारों ने इसके प्रधान दस भेद किए हैं। (क) इष्ट, जैसी कस्तूरी आदि की। (ख) अनिष्ट जैसी मुर्दे आदि की। (ग) मधुर, जैसी मधु, फूल आदि की। (घ) अम्ल, जैसी आम, आँवले आदि की। (च) कटु, जैसी मिर्च आदि की। (छ) निर्हारी, जैसी हींग आदि में। (ज) संहत, जैसी चित्रगंध की। (झ) स्निग्ध, जैसी घी की। (ट) रूक्ष, जैसे सरसों, राई आदि की। (ठ) विशद, जैसे चावल आदि की (२) सुगंध। सुवास।

विशेष—इसे लोगों ने ५ प्रकार की माना है। (१) चूर्णीकृत। (२) घृष्ट। (३) दाहाकर्षित। (४) सम्मर्दज और (५) प्राण्यंगोद्भव।

(३) सुगंधित द्रव्य जो शरीर में लगाया जाय। जैसे, चंदन आदि का लेप। (४) लेश। अणुमात्र। संस्कार। संबंध। उ०—(क) उसमें भलमंसाहत की गंध भी नहीं है। (ख) जेहि धंध जाकर मन बसे सपने सूझ सो गंध। तेहि कारन तपसी तप साधहि करहिं प्रेम चित बंध।—जायसी। (५) गंधक। (६) शोभांजन। सहिजन।

गंधक–संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० गंधकी] एक खनिज पदार्थ। इसे वैद्यक में उपधातु माना है। यह खरी और बिना स्वाद की और ज्वालग्राहिणी होती है। इसकी कलमें चमकदार होती हैं। और इसे घिसने या गरम करने से इसमें से एक प्रकार की असह्य तीव्र गंध निकलती है। यह ज्वालामुखी पर्वतों से निकले पदार्थों में प्रायः मिलता है। धातुओं के साथ भी यह लगी मिलती है। गंधक पानी, अलकोहल और ईथर में नहीं घुलती पर द्विगंधित कार्बन, मिट्टी के तेल और बेंजीन में सुगमता से घुल जाती है। आग में जलाने से इसमें से नीले रंग की लौ निकलती है। यह २३८ दर्जे की आँच में पिघलती है और ८२४ दर्जे की आँच में उबलने लगती है। उबलने के समय इसमें से लाल रंग का घना भाप निकलता है। आइसलेंड के ज्वालामुखी पर्वतों के पास यह शुद्ध रूप में मिलती है पर सिसली में यह नीली मिट्टी के साथ मिली हुई पाई जाती है। साफ़ करने के लिये गंधक मिली हुई मिट्टी को एक गड्ढे में आग के ऊपर रख कर ऊपर से मिट्टी डाल देते हैं। इस से गंधक जलने लगती है और टिघल टिघल कर नीचे गड्ढे में जमा होती जाती है। इसे हिंदुस्तान में फिर साफ़ करके बत्तियों के रूप में बनाते हैं। ये बत्तियाँ बाज़ार में ब्रिमस्टोन या गंधक की बत्तियाँ कहलाती हैं। गंधक प्रायः लोहे, ताँबे आदि धातुओं और कभी कभी पशु, पक्षी और बनस्पतियों में भी मिलती है। इससे रबर भी कड़ा करते हैं। चर्मरोग में यह लगाई और खिलाई जाती है। वैद्यक के ग्रंथों के अनुसार गंधक चार प्रकार की होती है ; सफ़ेद, लाल, पीली और नीली। पर लाल और सफ़ेद गंधक देखने में नहीं आती, पीली और नीली मिलती है। नीली को तूतिया, नीला थोथा आदि कहते हैं। गंधक शब्द से आज कल केवल पीली गंधक समझी जाती है। कुछ लोग हरताल को भी एक प्रकार की गंधक मानते हैं। वैद्य लोग खाने के लिये गंधक को शोधते हैं। शोधने के लिये इसकी बुकनी को खौलते घी में डालते हैं फिर जब घी में मिली गंधक खूब गरम हो जाती है तब उसे एक बर्त्तन में दूध रख कर छानते हैं जिससे गंधक छन कर नीचे बैठ जाती है। यह क्रिया तीन बार की जाती है। डाक्टर लोग गंधक जला कर वायु शुद्ध करते हैं।

पर्य्या०—गंधाश्मा। गंधमोहन। पूतिगंध। अतिगंध। वर। सुगंध। दिव्यगंध। कीटघ्न। क्रूरगंध। गंधी। गंधिक। पामागंध। रसगंधक। सौगंधिक। सुगंधिक। कुष्ठारि। गौरीबीज।

गंधकवटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक औषध वा गोली जो शुद्ध गंधक, चित्रक, मिर्च, पीपल आदि के योग से बनाई जाती है। यह गोली अजीर्ण, शूल, आमदोष, गोल आदि रोगों में दी जाती है।

गंधकालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्यवती। योजनगंधा।

गंधकाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्यवती। योजनगंधा।

गंधकाष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] अगरु। अगर की लकड़ी।

गंधकी–वि० [गन्धक] गंधक के रंग का। हलका पीला।

संज्ञा पुं० एक रंग जो कुछ सफ़ेदी लिए पीला होता है। यह रंग असवर्ग से निकाला जाता है और छींट छापने तथा सूती और रेशमी कपड़े रँगने में काम आता है।

गंधकी तेज़ाब–संज्ञा पुं० [हिं० गंधकी + तेज़ाब] गंधक का तेज़ाब।

गंधकुटि–संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी देवालय के अंतर्गत वह कमरा या दालान जिसमें बहुत सी देवमूर्त्तियाँ रक्खी हों।

गंधकोकिल–संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगंधित वस्तु। सुगंध कोकिला।

गंधगात*–संज्ञा पुं० [सं० गंधगात्र] चंदन। (डिं०)

गंधजात–संज्ञा पुं० [सं०] तेजपात।

गंधत्राण–संज्ञा पुं० [सं० गंध + त्राण] नीली चाय। ज्वरांकुश नाम की घास जिसमें से नीबू की सी गंध आती है।

गंधद–संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।

गंधदला–संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

गंधन–संज्ञा पुं० दे० "गंदना"।

संज्ञा पुं० [?] सोना। (सुनारों की बोली)

गंधनाकुली–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नाकुली कंद जो साधारण नाकुली से अच्छा होता है। रास्ना। घोड़रासन।

गंधनाल–संज्ञा पुं० [हिं० गंध + नाल] नाक का छेद। नथुना। उ०—गंधनाल दुइ राह एक सम राखिये। चढ़ो सुखमना घाट अमीरस चाखिये।—कबीर।

गंधपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफ़ेद तुलसी। (२) मरुवा। (३) नारंगी। (४) बेल।

गंधपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूर कचरी।

गंधपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

गंधपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सप्तपर्णी।

गंधपलाशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूर कचरी।

गंधपसार, गंधपसारी–संज्ञा स्त्री० दे० "गंधप्रसारिणी"।

गंधप्रत्यय–संज्ञा पुं० [सं०] घ्राणेंद्रिय। नाक।

गंधप्रसारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता जिसकी पत्तियाँ डेढ़ इंच चौड़ी और दो इंच लंबी तथा नुकीली होती हैं।

पत्तियों के किनारे कटावदार होते हैं। इसकी गंध कड़ुई और असह्य होती है। वैद्यक में इसे गरम, भारी तथा बल और वीर्य्यवर्द्धक माना है। यह बात-पित्त-नाशक तथा टूटी हड्डियों को जोड़नेवाली है। खाने में कड़ुई चरपरी होती है। इसका प्रयोग वैद्यक में स्वरभंग और बवासीर में भी लिखा है। गंधपसारि। गंधपसार।

पर्य्या०—सारिवा। शारिवा। गोपी। उत्पलशारिवा। भद्रवल्ली। नागजिह्वा। कराला। भद्रवल्लिका। गोपवल्ली। सुगंधा। भद्रश्यामा। शारदा। आस्फोता। काष्ठशारिवा। धवलशारिवा।

गंधप्रियंगु—संज्ञा पुं० [सं०] प्रियंगु। फूलफेन।

गंधफल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कैथा। (२) बेल।

गंधफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रियंगु। (२) विदारी।

गंधफली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रियंगु। (२) चंपा।

गंधबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] आम।

गंधबबूल—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध + बबूल] बबूल की जाति का एक छोटा वृक्ष जिसके फूल विशेष सुगंधित होते हैं। यह अमेरिका से भारतवर्ष में लाया गया है और अब भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों में मिलता है। इसे लोग विलायती बबूल या कीकर कहते हैं। फ्रांस देश में इसके फूलों से इत्र निकाला जाता है और वहाँ इसकी खेती भी लोग बहुत करते हैं। हिंदुस्तान में भी इसके फूलों से तेल तैयार किया जाता है।

गंधबिलाव—संज्ञा पुं० [सं०] नेवले की तरह का एक जंतु जो अफ्रिका में होता है। यह दो फुट लंबा और पीलापन लिए हुए भूरे रंग का होता है। इसके सारे बदन में मटमैले रंग के दाग पंक्तियों में होते हैं। इसके चूतड़ के पास गिलटी होती है जिसमें पीले रंग का चेप होता है। हबश में लोग इस जंतु को इसी चेप के लिये पालते हैं। यह मांसभक्षी है। इसे कच्चा मांस दिया जाता है। सप्ताह में दो बार इसकी गिलटी से पीले चेप को निकालते हैं। एक गंधबिलाव से अधिक से अधिक एक बार में एक ड्राम चेप निकलता है जो सुगंधित होता है और पौष्टिक औषध में काम आता है। इसे मुश्कबिलाव भी कहते हैं।

गंधबेन—संज्ञा पुं० [सं० गंधवेणु] एक घास जो अत्यंत सुगंधित होती है। इसका तेल निकाला जाता है। रोहिष। रूसा। सूत्रिण। सुरोस।

गंधमृग—संज्ञा पुं० [सं०] कस्तूरीमृग।

गंधमाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भौंरा। (२) एक यादव का नाम।

गंधमार्जार—संज्ञा पुं० [सं०] गंधबिलाव।

गंधमादन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पर्वत का नाम। पुराणानुसार यह पर्वत इलावृत्त और भद्राश्व खंड के बीच में है। (२) रामायण के अनुसार एक पर्वत। (३) भौंरा। (४) एक सुगंधित द्रव्य।

गंधमादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मद्य। (२) लाख।

गंधमालती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंध द्रव्य।

गंधमासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

गंधमुंड—संज्ञा पुं० [सं०] एक लता का नाम।

पर्य्या०—नंदी। ताम्रपाकी। फलपाकी। पीतक। गर्दभांड। चिप्रपाकी।

गंधमूली—संज्ञा स्त्री० [सं० गंध + मूल] कपूर कचरी।

गंधमूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छछूंदर।

गंधरब*—संज्ञा पुं० दे० "गंधर्व"।

गंधरबिन—संज्ञा स्त्री० दे० "गंधर्विन"।

गंधरस—संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधसार।

गंधराज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोगरा बेला। (२) नख नामक सुगंध द्रव्य। (३) चंदन।

गंधराज गुग्गुल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की धूप वा गोंद। दे० "गुग्गुल"।

गंधराजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नख नामक सुगंधित द्रव्य।

गंधर्व—संज्ञा पुं० [सं०] [सं० स्त्री० गंधर्वी, हिं० स्त्री० गंधर्विन] (१) देवताओं का एक भेद। ये पुराण के अनुसार स्वर्ग में रहते हैं और वहाँ गाने का काम करते हैं। अग्निपुराण में गंधर्वों के ग्यारह गण माने गए हैं—। अभ्राज्य, अंधारि, वंभारि, शूर्य्यवर्चा, कृधु, हस्त, सुहस्त, स्वन्, मूर्धन्वा, विश्वावसु, कृशानु। इन गंधर्वों में हाहा हूहू, चित्ररथ, हंस, विश्वावसु, गोमायु, तुंबुरु, नंदि प्रधान माने गए हैं। वेदों में गंधर्व दो प्रकार के माने गए हैं—एक द्युस्थान के दूसरे अंतरिक्ष स्थान के। द्युस्थान के गंधर्वों को दिव्य गंधर्व भी कहते हैं। ये सोम के रक्षक, रोगों के चिकित्सक, सूर्य्य के अश्वों के वाहक, तथा स्वर्गीय ज्ञान के प्रकाशक माने गए हैं। यम यमी के उत्पादक भी गंधर्व ही कहे गए हैं। मध्यस्थान के गंधर्व नक्षत्र चक्र के प्रवर्त्तक और सोम के रक्षक माने गए हैं। इंद्र इन से लड़कर सोम को छीनता और मनुष्यों को देता है। इनका स्वामी वरुण है। द्युस्थान के गंधर्व से सूर्य्य, सूर्य्य की रश्मि तेज प्रकाश इत्यादि और मध्यस्थान के गंधर्व से मेघ, चंद्रमा, विद्युत् आदि निरुक्त शास्त्र के आधार पर लिए जाते हैं क्योंकि 'गा' वा 'गो' का धारण करनेवाला गंधर्व कहा जाता है, और 'गो' वा 'गा' से पृथिवी, वाणी, किरण इत्यादि का ग्रहण होता है। इसके अतिरिक्त उपनिषदों और ब्राह्मण ग्रंथों में भी गंधर्वों के दो भेद मिलते हैं, देव गंधर्व और मनुष्य गंधर्व। कहीं कहीं गंधर्व को राक्षस, पिशाचादि के समान एक प्रकार का भूत माना है।

पर्य्या०—विद्याधर।

(२) मृग। (३) घोड़ा। (४) वह आत्मा जिसने एक शरीर छोड़ कर दूसरा ग्रहण किया हो। प्रेत। (५) स्त्रियों की वह अवस्था जब उनके स्वर में माधुर्य्य उत्पन्न होता है। (६) वैद्यक में एक प्रकार का मानसिक रोग जिसे ग्रह कहते हैं। इस रोग से ग्रस्त मनुष्य बाग, बन, नदी, झरनों के किनारे घूमता है। गंध और माल्य उसे अच्छे लगते हैं। वह नाचता, गाता, हँसता और दूसरों से कम बोलता है। (७) एक जाति जिनकी कन्याएं नाचती गाती और वेश्यावृत्ति करती हैं। ये लोग कमाऊँ आदि पहाड़ों तथा काशी आदि नगरों में पाए जाते हैं। (८) संगीत में ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक, यथा—चत्वारो गुरवो विंदुश्चत्वारश्चद्रुता अपि, बिंदवो दश षट्लाश्च ताले गंधर्व संज्ञके।—संगीत दामोदर। (९) विधवा स्त्री का दूसरा पति।

गंधर्व तैल—संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़ी का तेल।

गंधर्व नगर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नगर ग्राम आदि का वह मिथ्या आभास जो आकाश में वा स्थल में दृष्टि दोष से दिखाई पड़ता है। गरमी के दिनों में मरुभूमि वा समुद्र में जब वायु की तहों का घनत्व उष्णता के कारण असमान होता है उस समय प्रकाश की गति के विच्छेद से दूर के शहर, गाँव, वृत्त, नौका आदि का प्रतिबिंब आकाश में पड़ता है और कभी कभी उस आकाश के प्रतिबिंब का प्रतिबिंब पलट कर पृथिवी पर पड़ता है जिस से कभी दूर के गाँव, नगर आदि या तो आकाश में उलटे टँगे या समीप दिखाई पड़ते हैं। यह दृष्टिदोष वायु की असमान तह के कारण उस समय होता है जब नीचे की तह की वायु इतनी जल्दी हलकी हो जाती है कि ऊपर की वायु और ऊपर नहीं जा सकती। गंधर्वनगर का फल वृहत्संहिता में लिखा है। (२) मिथ्या भ्रम। वेदांत में संसार की उपमा गंधर्वनगर से दी जाती है। (३) चंद्रमा के किनारे का मंडप जो उस रात को दिखाई पड़ता है जब आकाश हलके बादलों की तह से ढका रहता है। (४) वह दृश्य जो कोसों तक फैली हुई नमक की चद्दरों पर सूर्य्य की किरनों के पड़ने से दिखाई पड़ता है। (५) संध्या के समय पश्चिम दिशा में रंग बिरंगे बादलों के बीच फैली हुई लाली। (६) महाभारत के अनुसार मानसरोवर के निकट का एक नगर जिसकी रक्षा गंधर्व करते थे। अर्जुन ने इस नगर को जीत कर तित्तिर कुल्माष और मंडूक नामक घोड़े प्राप्त किए थे।

गंधर्व पुर—संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्व नगर।

गंधर्ववधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] चीड़ा नामक गंध द्रव्य।

गंधर्वहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] एरंड। रेंड।

गंधर्वविद्या—संज्ञा पुं० [सं०] गानविद्या। संगीत।

गंधर्वविवाह—संज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रकार के विवाहों में से एक। वह संबंध जो पिता माता की आज्ञा के बिना वर और वधू अपने मन से परस्पर कर लेते हैं।

गंधर्ववेद—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत शास्त्र। यह चार उपवेदों में है। इसमें स्वर ताल राग रागिनी आदि का वर्णन है।

गंधर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

गंधर्वास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र का नाम।

गंधर्विन—संज्ञा स्त्री० [सं० गंधर्व + हिं० इन, (प्रत्य०)] (१) गंधर्व की स्त्री। (२) गँधर्व जाति की स्त्री, जो बड़ी सुंदरी होती है। उ०—जो तुम मेरी इच्छा धरो। गंधर्विन के हित तप करो।—सूर।

गंधर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंधर्व की स्त्री। (२) सुरभी की पुत्री। यह पुराणानुसार घोड़ों की आदि माता है।
वि० [गंधर्व + ई (प्रत्य०)] गंधर्व का। गंधर्व संबंधी। उ०—पुनि शकुनी अतिसय रिसि छाया। करत भयो गंधर्वी माया।—गोपाल।

गंधर्वोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्वग्रह। गंधर्व रोग। दे० "गंधर्व"।

गंधवह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) नाक। (डिं०)

गंधवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

गंधसार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन। (२) मोगरा बेला। (३) कचूर।

गंधहर—संज्ञा० पुं० [सं०] नाक। (डिं०)

गंधहस्ती—संज्ञा पुं० [सं०] वह हाथी जिसके कुंभ से मद बहता हो। मदोन्मत्त हाथी।

गंधाना†—क्रि० स० [गंध] गंध देना। बसाना। दुर्गंध करना।
संज्ञा पुं० [गँधन] रोला छंद का एक नाम।

गंधानुवासन—संज्ञा पुं० [सं०] अर्क का एक संस्कार। अर्क को गंध की वासना देना जिससे वह तेज रहे।

गंधाबिरोज़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गंध + बिरोजा] चीर का गोंद। यह एक वृक्ष का गोंद है जो फारस से आता है। शीराज़ और किरमान इसके लिये प्रसिद्ध स्थान हैं। यह तीन प्रकार होता है—खसनिब जो लेवानेट से आता है, बिरोजा खुश्क और बिरोज़ा गावशीर वा जवाशीर। बिरोजा या गावशीर पीले रंग का गोंद है जो बहुत पतला होता है। यह कभी कभी हरापन लिये भी होता है। इसमें डंठल फूल और पत्तियाँ मिली रहती हैं। इस की गंध बुरी नहीं होती और इसका स्वाद कड़ुवा होता है। यहाँ इसे शुद्ध करते हैं और इससे खींच कर बिरोजे का तेल निकालते हैं। मिट्टी के तेल में से भी इस का तेल निकाला जाता है। यह औषध में बहुत काम आता है। इसका शोधा हुआ सत्त निकाल कर दवा में मिलाते हैं और मरहम बना कर फोड़े आदि पर भी लगाते हैं। खुश्क बिरोजे में तारपीन के ऐसी गंध आती है। इसे कुंदुरु भी

कहते हैं। यह हिमालय और शिवालक के पर्वतों के जंगल से भी आता है। गंधाबिरोजा। सरल का गोंद। चंद्रस।
पर्य्या०—श्रीवास। श्रीवेष्ट। वृत्तधूपक। श्रीपिष्ट। पद्मदर्शन। वृकधूप। यास। वायस। चितागंध। श्रीरस। धूपांग। तिलपर्णी।

गंधार—संज्ञा पुं० दे० "गांधार"।

गंधारी—संज्ञा स्त्री० दे० "गांधारी"।

गंधाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारिणी। गंधपसार।

गंधाशन—संज्ञा पुं० [सं०] पवन। वायु।

गंधाष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] आठ गंध द्रव्यों के मिलाने से बना हुआ एक संयुक्त गंध। अष्टगंध। यह पूजा में चढ़ाने और यंत्रादि लिखने के काम में आता है। तंत्र के अनुसार भिन्न भिन्न देवताओं के लिये भिन्न भिन्न गंधाष्टक का विधान पाया जाता है। तंत्र में पंचदेव प्रधान हैं। उन्हीं के अंतर्गत सब देवता माने गए हैं, अतः गंधाष्टक भी पांच ही हैं। शक्ति के लिये चंदन, अगर, कपूर, चोर, कुंकुम, रोचन, जटामासी, कपि; विष्णु के लिये चंदन, अगर, ह्रीवेर, कुट, कुंकुम, उशीर, जटामासी और मुर; शिव के लिये चंदन, अगर, कपूर, तमाल, जल, कुकुंम, कुशीद, कुष्ठ; गणेश के लिये चंदन, चोर, रोचन, अगर, मृग, और मृगी का मद, कस्तूरी और कपूर अथवा चंदन, अगर, कपूर, रोचन, कुकुंम मद, रक्तचंदन, ह्रीवेर ; सूर्य्य के लिये जल, केसर, कुष्ठ, रक्तचंदन, चंदन, उशीर, अगर, कपूर।

गंधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा। सुरा। शराब।

गंधिया—संज्ञा पुं० [हिं० गंध] (१) गोबड़ौरे की जाति का एक छोटा कीड़ा। यह बरसात के दिनों में रात को उड़ता है और बहुत दुर्गंध करता है। (२) एक हरे रंग का कीड़ा। यह भुनगे के आकार का होता है और धान मका आदि को हानि पहुँचाता है।
क्रि० प्र०—लगना।
संज्ञा स्त्री० एक बरसाती घास। इसकी पत्तियाँ पतली पतली होती हैं और इसके बीच में एक सीका निकलता है। यह उत्तरी भारत के मैदानों में नीची उपजाऊ भूमि में होती है। बुंदेलखंड में बहुत मिलती है। गाँधी।

गंधी—संज्ञा पुं० [सं० गन्धिन्] [स्त्री० गंधिनी, गंधिन] (१) सुगंधित तेल और इत्र आदि बेचनेवाला। अत्तार। उ०—(क) दूलह देखोंगी जाय उतरे संकेत बट केहि मिसि देखन पाऊँ। ......चंदन अरगजा सूर केसरि धरि लेऊँ। गंधिनि ह्वै जाउँ निरखि नैनन सुख देऊँ।—सूर। (ख) ए गंधी, मति अंध तू अतर दिखावत काहि। करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि।—बिहारी। (२) एक घास। गाँधी। गंधिया। (३) एक कीड़ा। गंधिया।

गंधीला*—वि० [हिं० गंदा] मैला। गँदला। उ०—बहता पानी निर्मला, बँधा गँधीला होय। साधू जन रमते भले, दाग न लागै कोय।—कबीर।

गंधेज—संज्ञा स्त्री० [सं० गंध] एक प्रकार की घास। अगिया घास।

गंधेल—संज्ञा पुं० [सं० गंध] एक छोटा पेड़ वा झाड़ जो हिमालय के किनारे किनारे पंजाब से सिक्किम तक होता है। यह बंगाल और दक्षिण में भी मिलता है। इसकी पत्तियों और टहनियों में रोईं होती हैं और उनमें से एक कड़ी सुगंधि निकलती है। पत्तियाँ आठ दस इंच लंबे सीकों में लगती हैं जो नुकीली और डेढ़ दो इंच लंबी होती हैं। इसमें सफेद रंग के फूल और लँबी लंबी बेर के समान फलियाँ लगती हैं। पत्तियाँ मसाले के काम में तथा छाल और जड़ दवा के काम में आती हैं।

गंधैला—संज्ञा पुं० [हिं० गंध] [स्त्री० गंधैली] एक चिड़िया का नाम।
† वि० दुर्गंध करनेवाला।

गंधौली†—संज्ञा स्त्री० [सं० गंध] कपूर कचरी।

गंध्य—संज्ञा पुं० [सं०] सुगँधि। वह वस्तु जिसमें अच्छी महक हो।

गंभारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बड़ा पेड़। इसके पत्ते पीपल के पत्तों से चौड़े होते हैं, छाल सफेद रंग की होती है और उस से दूध निकलता है। फूल और फल पीले होते हैं। इसकी छाल और फल दवा में काम आते हैं। छाल कुछ कसैलापन और मिठास लिए कड़ुई होती है। वैद्यक में यह भारी, दीपक, पाचक, वृष्य, मेधाजनक तथा रेचक मानी गई है। इसका प्रयोग आमशूल, बवासीर, शोष, क्षयी और ज्वरादि में होता है। फल पकने पर कसैला और खटमिट्ठा होता है।
पर्य्या०—काश्मरी। श्रीपर्णी। मधुपर्णी। भद्रपर्णी। भद्रा। गोपभद्रा। कृष्णफला। कटफला। कंभारी। कुमुदा। हीरा। कृष्णवृन्तिका। सर्वतोभद्रिका। महाभद्रा। स्निग्धपर्णी। कृष्णा। रोहिणी। गृष्टि। मधुमती। सुफला। मोहिनी। महाकुमुदा। काश्मीरा। मधुरसा।

गंभीर—वि० [सं०] (१) नीचा। गहरा। जिसकी थाह जल्दी न मिले। जैसे, गंभीर नद। (२) जिसमें जल्दी घुस न सकें। घना। गहन। (३) जिसके अर्थ तक पहुँचना कठिन हो। गूढ़। जटिल। जैसे, गंभीर विचार। (४) घोर। भारी। जैसे, गंभीर निनाद। (५) शांत। सौम्य। जैसे, वह बड़ा गंभीर आदमी है।
संज्ञा पुं० (१) जंभीरी नीबू। (२) कमल। (३) ऋग्वेद में एक प्रकार का मंत्र। (४) शिव। (५) एक राग जो श्रीराग का पुत्र माना जाता है। हनुमत् के मत से यह हिंडोल राग का पुत्र है।

गंभीरवेदी–संज्ञा पुं० [सं० गम्भीरवेदिन्] वह हाथी जो अंकुश की गहरी चोट को भी कुछ न माने। मत्त हाथी।

गंभीरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी ढोल।

गँवँ–संज्ञा स्त्री० [सं० गम्य] (१) घात। दाँव। (२) मतलब। प्रयोजन। उ०—(क) वह हमारे गँवँ का है। (ख) वह अपनी गँवँ का यार है।

क्रि० प्र०—गाँठना।—साधना।

(३) अवसर। मौका। उ०—गँवँ देख कर काम करना चाहिए।

क्रि० प्र०—तकना।—देखना।

(४) ढंग। उपाय। युक्ति। उ०—उससे किसी गँवँ से रुपया निकालना चाहिए।

क्रि० प्र०—लगना।—मिलना।

मुहा०—गँवँ से=ढंग से। युक्ति से। †* धीरे से। चुपके से। उ०—(क) बैठे हैं राम लखन अरु सीता। पंचबटी बर परनकुटी तर कहै कछु कथा पुनीता। कपट कुरंग कनक मनि मय लखि प्रिय सों कहति हँसि बाला। पाए पलिबे जोग मंजुमृग मंजुल छाला। प्रिया बचन सुनि बिहँसि प्रेमबस गँवँहिं चाप सर लीन्हे। चल्यो सो भाजि फिरि फिरि हेरत मुनि रखवारे चीन्हे।—तुलसी। (ख) रावन बान महाभट मारे। देखि सरासन गँवहिं सिधारे।—तुलसी।

गँवई–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँव] [वि० गँवइयाँ] गाँव। छोटा गाँव। उ०—कर लै सूँघि सराहि कै, सबै रहे गहि मौन। गंधी अंध गुलाब को, गँवई गाहक कौन।—बिहारी।

गँवरदल–वि० [हिं० गँवार+दल] (१) गँवारों का सा। गँवार के समान। गँवार। (२) भद्दा। बेहूदा।

गँवर मसला–संज्ञा पुं० [हिं० गँवार+अ० मसल] गँवारों की कहावत। ग्रामीणों की उक्ति।

गँवहियाँ†–संज्ञा पुं० [सं० गोव्र=अतिथि] अतिथि। मेहमान।

गँवाना–क्रि० स० [सं० गमन, पुं० हिं० गवन] (१) (समय) बिताना। (समय) काटना। उ०—दई दई कैसो रितु गँवाई। सिरी पंचमी पूजी आई।—जायसी। (२) खोना। पास की वस्तु को निकल जाने देना। उ०—लोभ से उसने अपने हाथ की पूंजी भी गँवा दी।

गँवार–वि० [हिं० गाँव+आर (प्रत्य०)] [स्त्री० गँवारी, गँवारिन। वि० गँवारू, गँवारी] (१) गाँव का रहनेवाला। ग्रामीण। देहाती। असभ्य। जैसे, वह गँवार आदमी सभ्यों की बात क्या जाने। उ०—(क) बरनै तुलसीदास किमि अति मति-मंद गँवार।—तुलसी। (ख) तुम तो हो अहीरी गँवारी औ मथुरा की हैं सुंदरी नारी।—लल्लू।

मुहा०—गँवार का लट्ठ=उजड्ड। उजबक।

(२) बेवकूफ। मूर्ख। (३) अनाड़ी। अनजान। नासमझ।

गँवारता*–संज्ञा स्त्री० [गँवार+ता (प्रत्य०)] गँवारपन। उ०—उत्तर कौन सो देहैं कहा मैं गँवारता कैसी रही ठहराइ री।—सेवक।

गँवारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गँवार] (१) गँवारपन। देहातीपन। (२) मूर्खता। बेवकूफी। अज्ञानता। (३) गँवार स्त्री।

वि० स्त्री० [हिं० गँवार+ई (प्रत्य०)] (१) गँवार का सा। जैसे, गँवारी बोल। (२) भद्दा। बदसूरत। बेढंगा। जैसे, गँवारी चूड़ी। गँवारी इजारबंद।

विशेष—इस विशेषण का प्रयोग स्त्रीलिंग ही में विशेष होता यद्यपि दिल्ली आदि में पुं० में भी होता है।

गँवारू–वि० [हिं० गँवार+ऊ (प्रत्य०)] गँवार का सा। गँवार की रुचि का। भद्दा। बेढंगा।

गंस*–संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थि] (१) गाँठ। द्वेष। वैर। उ०—(क) कहा हमहिं रिसि करत कन्हाई। इह रिसि जाइ करो मथुरा पर जहाँ है कंस बसाई।.........अपने घर के तुम राजा हौ सब के राजा कंस। सूर श्याम हम देखत ठाढ़े अब सीखे ए गंस।—सूर। (ख) मानी राम अधिक जननी ते जननिहुँ गँस न गही। सीय लखन रिपुदमन राम रुख लखि सब की निबही।—तुलसी। (२) लाग की बात। मन में चुभने-वाली बात। आक्षेप। ताना। चुटकी। उ०—चलत सो सोहति गति गजहंस। हँसति परस्पर गावत गंस।

संज्ञा स्त्री० [सं० कषा=चाबुक] तीर की नोक। गांसी।

गँसना*†–क्रि० स० [सं० ग्रथन] (१) जकड़ना। गाँठना। अच्छी तरह कसना। उ०—लाल उन सुनी मनोहर बंसी। नहिँ सँभार अजहूँ युवतिन वल मदन भुअंगम डसी।...... बृंदावन की माल कलेवर लता माधुरी गँसी। सूरदास प्रभु सब सुखदाता लै भुज बीच प्रसंसी।—सूर। (२) बुनावट में बाने को कसना। बुनावट में तागों वा सूतों को परस्पर खूब मिलाना जिसमें छेद न रह जाय।

क्रि० अ० (१) बुनावट में सूतों का खूब पास पास होना। गँठ जाना। कस जाना। (२) ठसाठस भरना। छा जाना। उ०—(क) भनै रघुराज ब्रह्मलोक ते अवध लगि गगन में गँसिगे विमान के कतार हैं।—रघुराज (ख) विधु कैसी कला बधू गैलनि में गँसी ठाढ़ी गोपाल जहाँ जुरिगो।—पजनेस।

गँसीला–वि० [हिं० गाँसी] [स्त्री० गँसीली] गाँसवाली। तीर के समान नोकदार। चुभनेवाली। उ०—लखनि गँसीली त्यों फँसीली नथ फाँसी औ हँसीली सों हिय में विषम विष वै गई।

वि० [हिं० गंसना] गँसा हुआ। ठस। दे० "गसीला"।

ग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गीत। (२) गंधर्व। (३) गुरुमात्रा। (४) गणेश।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) गानेवाला। जैसे, सामग। (२) जानेवाला। पहुँचनेवाला। जैसे, अध्वग, कठग।

विशेष—इस अर्थ में यह समस्त शब्दों के अंत में आता है।

गइंद*—संज्ञा पुं० दे० "गयंद"।

गई करना*—क्रि० अ० [सं० गति, प्रा० गइ + हिं० करना] तरह देना। जाने देना। छोड़ देना। ध्यान न देना। उ०—(क) केलि की रैनि परी है, घरीक गई करि जाहु दई के निहोरे।—दास। (ख) तुम्है लग लागी मुबारक आन सुनागर हो सुख सागर सार। नई दुलही की लड़ूरता देखि गई करि जैयत बारहिं बार।—मुबारक।

गईबहोर—वि० [हिं० गया + बहुरि] खोई हुई हुई वस्तु को पुनः देने अथवा बिगड़ी हुई वस्तु को बनानेवाला। उ०—गई बहोर गरीब निवाजू। सरल सबल साहब रघुराजू।—तुलसी।

गउंथ—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो अफ़गानिस्तान और बिलोचिस्तान में आप से आप होती है और भारत में अनेक स्थानों में चारे के लिये बोई जाती है। इसे तैयार करने के लिये पहले ज़मीन को अच्छी तरह जोतते और उसमें खाद डालते हैं। इसके बीज कुआर कातिक में खेत में बनाई हुई मेड़ों पर बो देते हैं और पानी से ख़ूब सींचते हैं। जाड़े में आठवें दिन और गरमी में पाँचवें छठे दिन इस में पानी की आवश्यकता होती है। पहली बार यह छः महीने में तैयार होती है और तदुपरांत साल भर में दस बार काटी जा सकती है। इसे विलायती होल या हूल भी कहते हैं।

गऊ—संज्ञा स्त्री० [सं० गो] गाय। गौ।

गक्कर—संज्ञा पुं० [सं० केकय] पंजाब के उत्तर-पश्चिम में रहनेवाली एक जाति।

गगन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश।

मुहा०—गगन खेलना = बहते हुए पानी या नदी आदि का उछलना। गगन होना = पक्षी या गुड्डी आदि का बहुत ऊपर आकाश में जाना।

यौ०—गगनध्वज। गगनध्वग। गगनेचर। गगनोल्मुक।

(२) शून्य स्थान। (३) छप्पय छंद का एक भेद जिसमें १२ गुरु, १२८ लघु, १४० वर्ण और १५२ मात्राएं वा १२ गुरु, १२४ लघु, १३६ वर्ण और १४८ मात्राएं होती हैं। (४) अबरक।

गगनकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] आकाशकुसुम।

गगनगति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो आकाश में चले। आकाशचारी। (२) सूर्य्य चंद्र आदि ग्रह। (३) देवता।

गगनचर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। (२) ग्रह। नक्षत्र।

संज्ञा पुं० [सं०] आकाश में चलनेवाला। आकाशगामी।

गगनधूल—संज्ञा पुं० [सं० गगन + हिं० धूल] (१) कुकुरमुत्ते का एक भेद। यह गोल गोल सफ़ेद रंग का होता है और बरसात के दिनों में साखू आदि के पेड़ों के नीचे या मैदानों में निकलता है। ताजे फूल की तरकारी बनाई जाती है। कई दिनों का हो जाने पर इसके बीच से सूखने पर हरे रंग की मैली धूल निकलती है जो कान बहने की बहुत अच्छी दवा है। (२) केवड़े या केतकी के फूल पर की धूल।

गगनध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) बादल।

गगनपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

गगनबाटिका—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश की बाटिका। (असंभव बात) दे० "गंधर्वनगर"। उ०—गगनवाटिका सींचहीं भरि भरि सिंधु तरंग। तुलसी मानहिं मोद मन ऐसे अधम अभंग।—तुलसी।

गगनभेड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० गगन + भेड़] करांकुल या कूँज नाम की चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है।

गगनभेदी—वि० [सं०] आकाशभेदी। बहुत ऊँचा।

गगनवटी*—संज्ञा पुं० [सं० गगनवर्ती] सूर्य्य। (डिं०)

गगनवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशवाणी।

गगनस्पर्शी—वि० [सं०] आकाश को छूनेवाला। बहुत ऊँचा।

गगनस्पृक्—वि० [सं०] आकाश को छूनेवाला। बहुत ऊँचा।

गगनांगना—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

गगनांबु—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश से गिरा हुआ जल। वृष्टि का जल, जो वैद्यक में त्रिदोषघ्न, बलकारक, रसायन, शीतल और विषनाशक माना जाता है।

गगनानंग—संज्ञा पुं० [सं०] पचीस मात्राओं का एक मात्रिकछंद जिसके प्रत्येक चरण में सोलहवीं मात्रा पर विश्राम होता है और आरंभ में रगण होता है। इस छंद में विशेषता यह है कि प्रत्येक चरण में पांच गुरु, और पंद्रह लघु होते हैं। किसी किसी के मत से बारह मात्राओं के बाद भी यति होती है। उ०—माधव परम वेद निधि देवक, असुर हरंत तू। पावन धरम सेतु कर पूरण, सजन गहंत तू। दानव हरण हरि सुजन संतन, काज करंत तू। देखहु कस न नीति कर मुहि कहँ, मान धरंत तू।

गगनापगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा।

गगनेचर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ग्रह। नक्षत्र। (२) पक्षी। (३) देवता।

वि० [सं०] आकाश में चलनेवाला।

गगनोल्मुक—संज्ञा पुं० [सं०] मंगलग्रह।

गगरा—संज्ञा पुं० [सं० गर्गर = दही मथने का वर्तन] [स्त्री० अल्प० गगरी] पीतल, तांबे, काँसे आदि का बना हुआ बड़ा घड़ा। कलसा।

गगरिया*†—संज्ञा स्त्री० दे० "गगरी"।

गगरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्गरी = दही मथने की हाँड़ी] तांबे, पीतल,

मिट्टी आदि का छोटा घड़ा। कलसी। उ०—नीके देहु न मेरी गगरी।..............जमुना दह गेंडुरी फटकारी फोरी सब सिर की अस गगरी।—सूर।

गगली–संज्ञा पुं० [देश०] अगर की एक जाति।

गगोरी–संज्ञा पुं० [सं० गर्ग] एक छोटा कीड़ा जो पृथ्वी के भीतर बिल बना कर रहता है।

गच–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) किसी नरम वस्तु में किसी कड़ी वा पैनी वस्तु के धँसने का शब्द। जैसे, गच से छुरी धँस गई।

यौ०—गचागच = बार बार धँसने का शब्द।

(२) चूना सुरखी आदि के मेल से बना हुआ मसाला, जिससे ज़मीन पक्की की जाती है। उ०—जातरूप मनि-रचित अटारी। नाना रंग रुचिर गच ढारी।—तुलसी। (३) चूना सुरखी आदि से पिटी हुई ज़मीन। लेट। पक्की फ़र्श। उ०—महि बहुरंग रुचिर गच काँचा। जो विलोकि मुनिवर रुचि राँचा।—तुलसी।

क्रि० प्र०—पीटना।

यौ०—गचकारी।

(४) पक्की छत। (५) संगजराहत वा सिलखड़ी फूँक कर बनाया हुआ चूना जिसे अंगरेज़ी में प्लास्टर आफ़ पैरिस कहते हैं। यह पत्थर राजपूताने और दक्षिण (चिंगलपट, नेलौर आदि) में बहुत होता है। राजपूताने में खिड़की की जालियाँ बनाने में इसका उपयोग बहुत होता है। इस मसाले से मूर्तियाँ खिलौने आदि भी बहुत अच्छे बनते हैं।

गचकारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गच + फ़ा० कारी] गच पीटने का काम। चूने सुरखी का काम।

गचगर–संज्ञा पुं० [हिं० गच + फ़ा० गर = बनानेवाला] कारीगर जो गच बनाता हो। गच पीटनेवाला। थवई।

गचगीरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गच + फ़ा० गीर] गचकारी। चूने सुरखी का पक्का काम। उ०—कायर का घर फूस का भभकी चहूँ पछीत। सूरा के कछु डर नहीं गचगीरी की भीत।—कबीर।

गचना–क्रि० स० [अनु० गच] (१) ठूस के भरना। बहुत अधिक या कस के भरना। उ०—तिनों लोक रचना रचत हैं विरंच यासों अचल खजानौ जानौ राख्यो गुण गचि के।—गोपाल। (२) दे० "गाँसना"।

गचपच–संज्ञा पुं० दे० "गिचपिच"।

गचाका–संज्ञा पुं० [हिं० गच से अनु०] गच से गिरने वा लगने का शब्द।

संज्ञा स्त्री० [हिं० गच से अनु०] जवान स्त्री। जवानी से भरी स्त्री। (बाजारी)

वि० भरपूर।

गच्छ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेड़। गाछ। (२) साधुओं का मठ (जैन)। (३) वे साधु जो एक ही गुरु के शिष्य हों। (जैन)।

गछना*†–क्रि० अ० [सं० गच्छ = जाना] चलना। जाना।

क्रि० स० (१) चलाना। निबाहना। उ०—अवधि अधार न होतो जीवन को गछतो।—व्यास। (२) अपने जिम्मे लेना। अपने ऊपर लेना।

गज–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गजी] (१) हाथी। (२) एक राक्षस का नाम, जो महिषासुर का पुत्र था। (३) एक बंदर का नाम जो रामचंद्र की सेना में था। (४) आठ की संख्या। (५) मकान की नीवँ या पुश्ता।

गज़–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) लंबाई नापने की एक माप जो सोलह गिरह वा तीन फुट की होती है।

विशेष—गज़ कई प्रकार का होता है किसी से कपड़ा, किसी से ज़मीन, किसी से लकड़ी, किसी से दीवार नापी जाती है। पुराने समय से भिन्न भिन्न प्रांतों तथा भिन्न भिन्न व्यवसायों में भिन्न भिन्न माप के गज़ प्रचलित थे और उनके नाम भी अलग अलग थे। उनका प्रचार अब भी है। सरकारी गज़ ३ फुट वा ३६ इंच का होता है। कपड़े नापने का गज़ प्रायः लोहे वा लकड़ी की छड़ का होता है जिसमें १६ गिरह होते हैं और चार चार गिरह पर चौपाटे का चिह्न होता है। कोई कोई २० गिरह का भी होता है। राजगीरों का गज़ लकड़ी का होता है और उसमें २४ तसू होते हैं। एक तसू एक इंच के बराबर होता है। यही गज़ बढ़ई भी काम में लाते हैं। अब विशेष कर विलायती दो फुटे से काम लिया जाता है। दर्ज़ियों का गज़ कपड़े के फ़ीते का होता है जिसमें गिरह के चिह्न होते हैं।

मुहा०—गज़भर = बनियों की बोल चाल में एक रुपए में सोलह सेर का भाव।

(२) वह पतली लकड़ी जो बैलगाड़ी के पहिये में मूँड़ी से पुट्ठी तक लगाई जाती है। यह आरे से पतली होती है और मूँड़ी के भीतर आरे को छेद कर लगाई जाती है। यह पुट्ठी और आरों को मूड़ी में जकड़े रहती है। गज चार होते हैं। (३) वह लोहे या लकड़ी की छड़ जिससे पुराने ढंग की बंदूक भरी जाती है अर्थात् जिससे बारूद गोली आदि बंदूक में ठूसी जाती है।

क्रि० प्र०—करना।

(४) कमानी जिससे सारंगी आदि बजाते हैं। (५) एक प्रकार का तीर जिसमें पर और पैकान नहीं होता। (६) लकड़ी की पटरी जो घोड़िया के ऊपर रक्खी जाती है।

गजअसन*–संज्ञा पुं० दे० "गजाशन"।

गज़इलाही–संज्ञा पुं० [फ़ा० गज़ + इलाही] अकबरी गज़ जो ४१ अंगुल का होता है।

गजकंद–संज्ञा पुं० [सं०] एक ओषधि। हस्तिकंद।

गज़क–संज्ञा पुं० [फ़ा० कज़क] (१) वह चीज़ जो शराब आदि पीने के

बाद मुँह का स्वाद बदलने के लिये खाई जाती है। जैसे, कबाब, पापड़, दालमोट, सेव, बादाम, पिस्ता आदि शराब के बाद और मिठाई, दूध, रबड़ी आदि अफ़ीम या भंग के बाद। चाट। (२) तिलपपड़ी। तिल शकरी। (३) नाश्ता। जलपान। चटपट खा जाने की चीज़।

गजकरन आलू—संज्ञा पुं० [सं० गजकर्णालु] अरुवा नाम की लता जिसमें लंबा कंद पड़ता है। दे० "अरुवा"।

गजकुंभ—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का उभरा हुआ मस्तक। हाथी के माथे पर दोनों ओर उठे हुए भाग।

गजकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर।

गजकेसर—संज्ञा पुं० [सं० गज + केसर] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

गजक्रीड़ित—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य में एक प्रकार का भाव।

गजगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथी की चाल। (२) हाथी की सी मंद चाल। (स्त्रियों का धीरे धीरे चलना भारतवर्ष में सुलक्षण समझा जाता है।) (३) रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा में शुक्र की स्थिति वा गति। (४) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में नगण, भगण, तथा एक लघु और एक गुरु होता है। उ०—न भज गोपिकन सों। हँसन लाल छल सों।

गजगमन—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी की सी मंद चाल।

गजगामी—वि० [सं० गजगामिन्] [स्त्री० गजगामिनी] हाथी के समान मंद गति से चलनेवाला। मंदगामी। (इस वि० का प्रयोग स्त्रियों के लिये अधिकतर होता है क्योंकि उनकी मंद चाल अच्छी समझी जाती है।)

गजगाह—संज्ञा पुं० [सं० गज + ग्राह] (१) हाथी की झूल। उ०—(क) साजि कै सनाह गजगाह सउछाह दल महाबली धाए वीर जातुधान धीर के।—तुलसी। (ख) गजगाह गंगप्रवाह सम निसिनाह द्युति मोतिन लसे। सिर चंद चंद दुचंद द्युति आनंद कर मनिमय नसे।—गोपाल। (२) झूल। पाखर उ०—तैसे चँवर बनाये औ घाले गल झंप। बाँध सेत गजगाह तहँ जो देखै सो कंप।—जायसी।

गजगौन*—संज्ञा पुं० दे० "गजगमन"।

गजगौनी*—वि० स्त्री० दे० "गजगामिनी"।

गजगौहर—संज्ञा पुं० [हिं० गज + फ़ा० गौहर] गजमोती। गजमुक्ता। उ०—ग्रीषम की क्यों गनै गरमी गजगौहर चाह गुलाब गँभीरे।—पद्माकर।

गजचर्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी का चमड़ा। (२) एक रोग, जिसमें शरीर का चमड़ा हाथी के चमड़े की तरह मोटा और कड़ा हो जाता है। यह रोग घोड़े को भी होता है। इसमें खाज भी होती है।

गजचिर्भटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रायन।

गजचिर्भिट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी।

गजचिर्भिटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रायन।

गजच्छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष का एक योग जो उस समय होता है जब कृष्णत्रयोदशी के दिन चंद्रमा मघा नक्षत्र में और सूर्य्य हस्त नक्षत्र में हो। यह योग श्राद्ध के लिये अच्छा माना जाता है।

गज़ट—संज्ञा पुं० [अं० गज़ेट] (१) समाचारपत्र। अख़बार। (२) वह विशेष सामयिक पत्र जो भारतीय सरकार अथवा प्रांतीय सरकारों द्वारा प्रकाशित होता है और जिसमें बड़े बड़े अफ़सरों की नियुक्ति, नए क़ानूनों के मसौदे और भिन्न भिन्न सरकारी विभागों के संबंध की विशेष और सर्वसाधारण के जानने योग्य बातें प्रकाशित की जाती हैं।

मुहा०—गज़ट कराना = किसी प्रकार की सूचना आदि को गज़ट में प्रकाशित कराना। **गज़ट होना** = (१) किसी बात का गज़ट आदि में प्रकाशित होना। (२) किसी बात का बहुत अधिक प्रसिद्ध होना।

गजता—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथियों का झुंड।

गजदंत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी का दाँत। (२) वह खूँटी जो दीवार में कपड़े आदि लटकाने के लिये गाड़ी जाती है। (३) एक प्रकार का घोड़ा जिसके दाँत हाथी के दाँतों की तरह मुँह के बाहर ऊपर की ओर निकले रहते हैं। (४) दाँत के ऊपर निकला हुआ दाँत। (५) नृत्य में एक प्रकार का भाव जिसमें दोनों हाथ सीधे करके कंधे के पास लाते हैं और हाथों की उँगलियों को साँप के फन की तरह बना कर आगे की ओर झुकाते हैं

विशेष—प्राचीन काल में नृत्य का यह भाव उस समय दिखलाया जाता था जब कि विवाह के उपरांत कन्या को वर ले आता था। इसके अतिरिक्त झूलने अथवा वृक्ष आदि उखाड़ने की मुद्रा दिखलाने के समय इस भाव का व्यवहार होता था।

गजदंतफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिचडा।

गजदंती—वि० [सं० गजदंत + ई (प्रत्य०)] हाथी के दाँत का। हाथी दाँत का बना हुआ। उ०—कर कंकण चूरो गजदंती। नख मणि माणिक मेटति देती।—सूर।

गजदान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी का दान। (२) हाथी का मद।

गजधर—संज्ञा पुं० [हिं० गज + धर] (१) मकान बनानेवाला मिस्त्री। राज। मेमार। थवई। (२) वह राज या मेमार जो घर बनाने के पहले उसका नक्शा आदि तैयार करता हो।

गजनवी—वि० [फ़ा०] गज़नी नगर का रहनेवाला। जैसे, महमूद गज़नवी।

गजनाल–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की बड़ी तोप जिसे हाथी खींचते थे। बड़ी भारी तोप।

गजनी–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की मिट्टी।

ग़ज़नी–संज्ञा पुं० [मि० सं० गज्जन] [वि० गजनवी] अफ़ग़ानिस्तान के एक नगर का नाम, जहाँ महमूद की राजधानी थी।

गजपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह राजा जिसके पास बहुत से हाथी हों। उ०—असुपतीक सिर मौर कहावै। गजपतीक आँकुस गजनावै।—जायसी। (२) कलिंग देश के राजाओं की उपाधि। महाराज विजयनगर वा विजयानगरम् के नाम के साथ अब भी यह उपाधि लगाई जाती है। उ०—रतनसेन भा जोगी जती। सुनि भेंटइ आवा गजपती।—जायसी। (३) बहुत बड़ा हाथी।

गजपाँव–संज्ञा पुं० [हिं० गज + पाँव] एक प्रकार का जलपक्षी जिसके पैर लाल, सिर, गरदन, पीठ और डैने काले तथा बाकी अंग सफ़ेद होते हैं। यह जाड़े के दिनों में ठंढे देशों से भारतीय मैदानों में चला आता और प्रायः तीन चार अंडे देता है।

गजपादप–संज्ञा पुं० [सं०] बेलियापीपल।

गजपाल–संज्ञा पुं० [सं०] महावत। हाथीवान।

गजपिप्पली–संज्ञा पुं० [सं०] मझोले कद के एक पौधे का नाम जिसके पत्ते चौड़े और गुदार होते हैं और जिसके किनारे पर लहरिया नोकदार कटाव होता है। इसमें दो तीन पत्तों के बाद बीच से एक पतला सींका निकलता है जिसके सिरे पर दस बारह अंगुल लंबी एक इंच के लगभग मोटी मंजरी निकलती है। मंजरी में छोटे छोटे फूल लगते हैं। यह मंजरी सुखाई जाती है और सूखने पर बाज़ारों में औषध के लिये बिकती है। बाज़ार में इसके एक अंगुल मोटे और चार पाँच अंगुल लंबे टुकड़े मिलते हैं। स्वाद में यह मंजरी कड़ुई और चरपरी होती है। वैद्यक में यह गरम, मलशोधक, कफ़-वात-नाशक, स्तन को बढ़ानेवाली, रुचिकारक और अग्निदीपक मानी गई है और कहा गया है कि पकने से पहले इसमें और भी कुछ गुण होते हैं।

पर्य्या०—करिपिप्पली। इभकणा। कपिवल्ली। कपिल्लिका। वशिर। कोलवल्ली। चव्यफल। दीर्घग्रंथी। तैजसी।

गजपीपर–संज्ञा स्त्री० दे० "गजपिप्पली"।

गजपीपल–संज्ञा स्त्री० दे० "गजपिप्पली"।

गजपुट–संज्ञा पुं० [सं०] धातुओं के फूँकने की एक रीति। इस में सवा हाथ लंबा, सवा हाथ चौड़ा और सवा हाथ गहरा एक गड्ढा खोदते हैं। उसमें पाँच सौ बिनुए कंडे बिछा कर बीच में जिस वस्तु को फूकना होता है उसे रख कर ऊपर से फिर ५०० कंडे बिछा कर गड्ढे के मुँह पर चारों ओर से मिट्टी डाल देते हैं। केवल थोड़ा सा स्थान बीच में खुला छोड़ देते हैं। इस प्रकार जब सब ठीक कर चुकते हैं तब ऊपर से उसमें आग लगा देते हैं। इस रीति को गजपुट कहते हैं।

गजपुर–संज्ञा० पुं० [सं०] हस्तिनापुर।

गजपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] नागपुष्पी। नागदौन।

गजपुष्पी–संज्ञा स्त्री० दे० "गजपुष्प"।

गजप्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] सलई। शल्लकी।

गजबंध–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चित्रकाव्य। इस में किसी कविता के अक्षरों को एक विशेष रूप से हाथी का चित्र बना कर उसके अंग प्रत्यंग में भर देते हैं।

ग़ज़ब–संज्ञा पुं० [अ० ग़ज़ब] (१) कोप। रोष। गुस्सा।

यौ०—ग़ज़ब इलाही = ईश्वर का कोप। दैवी कोप। उ०—का पै यों परैया भयो ग़ज़ब इलाही है।—पद्माकर।

क्रि० प्र०—आना।—टूटना।—पड़ना।

(२) आपत्ति। आफ़त। विपत्ति। अनर्थ। जैसे, उन पर ग़ज़ब टूट पड़ा।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—टूटना।—ढाना।—तोड़ना।—गिरना।—लाना।—पड़ना।

(३) अंधेर। अन्याय। ज़ुल्म। जैसे, क्या गजब है कि तुम दूसरे की बात भी नहीं सुनते। (४) विलक्षण बात। विचित्र बात।

मुहा०—ग़ज़ब का = विलक्षण। अपूर्व। बड़ा भारी। अत्यंत। अधिक। उ०—(क) वह ग़ज़ब का चोर है। (ख) वहाँ ग़ज़ब की भीड़ और गरमी थी। (ग) उस की ख़ूबसूरती ग़ज़ब की थी।

गजबदन–संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

गजबाँक, गजबाग–संज्ञा पुं० [सं० गज + बाँक या बाग] हाथी का अंकुश।

गजबीथी–संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्र की गति के विचार से रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा के समूह का नाम जिसके बीच से हो कर शुक्र गमन करे।

गजबेली–संज्ञा स्त्री० [सं० गज + बल्ली] एक प्रकार का लोहा। कांतिसार। उ०—भाला मारा गजबेली का सौंहैं निसरि गयो वहि पार।—आल्हा।

गजभक्षक–संज्ञा पुं० [सं०] पीपल।

गजमणि–संज्ञा स्त्री० पुं० [सं०] गजमुक्ता। उ०—बीथी सकल सुगंध बसाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराई।—तुलसी।

गजमनि–संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "गजमणि"।

गजमुक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीनों के अनुसार एक मोती जिस का हाथी के मस्तक से निकलना प्रसिद्ध है। आज तक ऐसा मोती कहीं पाया नहीं गया।

गजमुख—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश का नाम ।

गजमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक रूप जिसे धारण कर उन्होंने ग्राह से एक हाथी की रक्षा की थी । उ०—गजमोचन ज्यों भयो अवतार । कहौं सुनो सो अब चितधार ।—सूर ।

गजमोती—संज्ञा पुं० [सं० गजमैात्तिक, प्रा० गजमोत्तिश्र] गजमुक्ता ।

गजर—संज्ञा पुं० [सं० गर्ज, हिं० गरज] (१) पहर पहर पर घंटा बजने का शब्द । पारा । उ०—पहरहि पहर गजर नित होई । हिया निसोगा जाग न कोई ।—जायसी ।

क्रि० प्र०—बजना ।

(२) घंटे का वह शब्द जो प्रातः काल चार बजे होता है । सबेरे के समय का घंटा । उ०—फजर को गजर बजाऊँ तेरे पास मैं ।—सूदन ।

मुहा०—गजरदम या गजर बजे = तड़के । पौ फटते । सबेरे । भोरे । उ०—वह गजरदम उठ खड़ा हुआ । गजर का वक्त = सबेरा । उषा काल । उ०—उठो गजर का वक्त हुआ ईश्वर का नाम लो ।

(३) जगाने की घंटी । जगौनी । अलारम । (४) चार आठ और बारह बजने पर उतनी ही बार जल्दी जल्दी फिर घंटा बजने का शब्द ।

संज्ञा पुं० [हिं० गजर बजर = मिला जुला] लाल और सफ़ेद मिला हुआ गेहूँ ।

गजरथ—संज्ञा पुं० [सं०] वह बड़ा रथ जिसे हाथी खींचते हैं । पहले ऐसे रथ राजाओं के यहाँ होते थे और लोग उन पर चढ़ कर लड़ाइयों में जाते थे ।

गजरप्रबंध—संज्ञा पुं० [सं०] गायन और नृत्य आदि के आरंभ में श्रोताओं के सामने गाने और बजानेवालों का अपना स्वर और बाजा आदि मिलाना ।

गजर बजर—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) घाल मेल । बेमेल की मिलावट । अंडबंड ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

(२) खाद्याखाद्य । भक्ष्याभक्ष्य । पथ्यापथ्य । उ०—लड़के ने कुछ गजर बजर खा लिया होगा ।

गजरभात, गजरभत्ता,—संज्ञा पुं० [हिं० गाजर + भात] गाजर के टुकड़ों को मिला कर उबाला हुआ चावल ।

गजरा—संज्ञा पुं० [हिं० गाजर] गाजर के पत्ते जो चौपायों को खिलाए जाते हैं ।

संज्ञा पुं० [हिं० गंज = समूह] (१) फूल आदि की घनी गुँथी हुई माला । माला । हार । उ०—कर मंडित मोतिन को गजरा दृग मीड़त आनन ओपत से ।—बेनी । (२) एक गहना जो कलाई में पहना जाता है । उ०—छाप छला मुँदरी झमकै दमकै पहुँची गजरा मिलि मानो ।—गुमान । (३) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा । मशरू ।

गजराज—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा हाथी । उ०—महामत्त गजराज कहँ बस कर अंकुस खर्ब ।—तुलसी ।

गजरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गजरा] एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ कलाई में पहनती हैं ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० गाजर] छोटी गाजर । इसके कंद छोटे पर अधिक मीठे होते हैं ।

गजरौट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाजर + औट (प्रत्य०)] गाजर की पत्ती । गजरा ।

ग़ज़ल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फ़ारसी और उर्दू में शृंगार रस की एक कविता जिसमें कोई शृंखलाबद्ध कथा नहीं होती किंतु प्रेमियों के स्फुट कथन वा प्रेमी अथवा प्रेमिका के हृदय के उद्‌गार आदि होते हैं । इसका कोई नियत छंद नहीं होता ।

गजलील—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक जिसमें चार लघु मात्राएँ और अंत में विराम होता है ।

गजवदन—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश ।

गजवान—संज्ञा पुं० [हिं० गज + वान (प्रत्य०)] महावत । हाथीवान ।

गजशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिसाल । वह घर जिसमें हाथी बाँधे जाते हैं । फ़ीलख़ाना ।

गजही—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाज = फेन] (१) वह लकड़ी जिससे कच्चा दूध मथ कर मक्खन निकाला जाता है । यह चार पाँच हाथ लंबी एक बाँस की लकड़ी होती है जिसका एक सिरा चौफाल चिरा होता है । (२) वे पतली लकड़ियाँ जिन से दूध मथ कर फेन निकालते हैं ।

गजाधर—संज्ञा पुं० दे० "गदाधर" ।

गजानन—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश का एक नाम ।

गजारि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह । (२) एक प्रकार का शाल वृक्ष जो प्रायः आसाम में अधिकता से होता है । इसके पत्ते बड़े होते हैं और इसकी डालियों से खूँटियाँ बनाते हैं ।

गजाल—संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार की मछली । (२) खूँटी ।

गजाशन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीपल । (२) अश्वत्थ वृक्ष ।

गजास्य—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश का एक नाम ।

गजिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० गज] बिटाई करनेवालों का एक औज़ार जिस पर बिटा हुआ तार उतारा जाता है । यह लकड़ी की होती है और इसके दोनों कोने झुके होते हैं ।

गजी—संज्ञा पुं० [फ़ा० गज़] कुछ कम चौड़ा एक प्रकार का मोटा देशी कपड़ा जो सस्ता होता है । गाढ़ा । सल्लम ।

मुहा०—गजी गाढ़ा = मोटा साधारण और सस्ता कपड़ा ।

संज्ञा पुं० [सं० गज + ई (प्रत्य०) अथवा गाजिन्] हाथी का सवार । वह जो हाथी पर सवार हो ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी ।

गजेंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऐरावत । (२) बड़ा हाथी । गजराज ।

गजेंद्रगुरु–संज्ञा पुं० [सं०] रुद्रताल का एक भेद। (संगीत)

गज्जर†–संज्ञा पुं० [अनु०] वह भूमि जो कीचड़ से भरी हो और जिसमें पैर धँसे। दलदल।

गज्जल–संज्ञा पुं० [सं०] अंजीर।

गज्झा†–संज्ञा पुं० [सं० गज्ज = शब्द] (१) बहुत से छोटे छोटे बुलबुलों का समूह जो पानी, दूध या किसी और तरल पदार्थ में उत्पन्न हो। गाज।

मुहा०—गज्झा देना या छोड़ना = मछली का पानी के भीतर से बाहर बुलबुला फेंकना। सौरी या गिरदा मछली के पानी के भीतर साँस लेने से प्रायः ऊपर बुलबुले निकलते हैं। इसे शिकारी या मछुवे "गज्झा देना या छोड़ना" कहते हैं। इससे उनको मालूम हो जाता है कि यहाँ सौरी या गिरदा मछली है। गज्झा मारना = गज्झा छोड़ना।

† (२) गज।

† संज्ञा पुं० [सं० गंज, फ़ा० गंज] (१) ढेर। गाँज। अंबार। (२) खज़ाना। कोश। (३) धन। संपत्ति।

मुहा०—गज्झा मारना = माल मारना। रुपया हाथ में करना। गज्झा दबाना = माल दबाना वा हड़प करना। अनुचित रूप से बहुत सा धन एक बारगी ले लेना। मारना।

(४) लाभ। फ़ायदा। मुनाफ़ा।

गझिन†–वि० [हिं० गंजना] (१) सघन। घना। (२) गाढ़ा। मोटा। जैसे, गझिन कपड़ा।

गटई†–संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठ, पु० हिं० घंट,] (१) गला। उ०—जबै जमराज रजायसु ते तोहि लै चलिहैं भट बाँधि गटइया।—तुलसी। (२) दे० "गिट्टी"। (३) दे० "गोटी"।

गटकना–क्रि० स० [सं० कण्ठ, वा हिं० गटई, अथवा गट से अनु०] (१) खाना। निगलना। उ०—(क) मीठा सब कोई खात है विष होइ लागै धाय। नींब न कोई गटकई, सबै रोग मिटि जाय।—कबीर। (ख) लटकि निरखन लग्यो मटक सब भूलि गयो हटक ह्वै गयो गटकि शिल सो रह्यो मीचु जागी। सुष्टि को गर्द भरदि के चाणूर चुरकुट करयो कंस को ऽनुकंप भयो भई रंग भूमि अनुराग रागी।—सूर। (२) हड़पना। दबा लेना। जैसे, दूसरों का माल गटकना सहज नहीं है।

गटगट–संज्ञा पुं० [अनु०] किसी पदार्थ को कई बार करके निगलने या घूँट घूँट पीने में गले से उत्पन्न होनेवाला शब्द।

क्रि० वि० गट गट शब्द के सहित। धड़ाधड़। लगातार (कोई चीज़ खाना या पीना) जैसे, साहब बहादुर देखते देखते सारी बोतल गटगट कर के ख़ाली कर गए।

गटना†–क्रि० अ० [सं० ग्रन्थन, प्रा० गंठन] गँठना। बँधना। उ०—हृदय की कबहुँ न पीर घटी। बिनु गोपाल बिथा या तनु की कैसे जात कटी। अपनी रुचि जितही तित ऐंचति इंद्रिय ग्राम गटी। होति तहीं उठि चलति कपट लगि बाँधे नयन पटी।—सूर।

गटपट–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) दो या दो से अधिक मनुष्यों या पदार्थों का परस्पर बहुत अधिक मेल। मिलावट। (२) सहवास। संयोग। प्रसंग। उ०—जासों गटपट भए आस राखो वाही की।—व्यास।

गटा–संज्ञा पुं० दे० "गट्टा"।

गटागट–क्रि० वि०, संज्ञा दे० "गटगट"।

गटापारचा–संज्ञा पुं० [मला० गट = गोंद + परचा = वृक्ष अथवा सुमात्रा द्वीप का नाम] एक प्रकार का गोंद जो कई ऐसे वृक्षों से निकलता है जिनमें सफ़ेद दूध रहता है। यह प्रायः रबर की तरह काम में आता है पर उतना मुलायम और लचीला नहीं होता। बिलकुल खुले स्थानों में धूप और पानी आदि सहता हुआ भी यह दस दस बरस तक ज्यों का त्यों रहता है और यदि नालियों आदि से सुरक्षित स्थानों में रखा जाय तो बीस बीस वर्ष तक काम देता है। यह प्रायः बिजली के तारों के ऊपर रक्षार्थ लगाया जाता है।

गटी–संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि, पा० गंठि] गाँठ। उ०—(क) चेटक लाइ हरहिं मन, जब लगि हो गटि फेंट। साठ नाठ उठि भागहिं, ना पहिचान न भेट।—जायसी। (ख) रंग भरि आये हौ मेरे ललना बातैं कहत हौ अटपटी। अति अलसात जम्हात हौ प्यारे पिय प्रगट त्रिया प्रताप छूटत नाहिन अंतर की गटी।—सूर।

गट्ट–संज्ञा पुं० [अनु०] किसी वस्तु के निगलने में गले से उत्पन्न होनेवाला शब्द।

मुहा०—गट्ट करना = (१) निगल जाना। खाना। (२) हड़प जाना। दबा बैठना। अनुचित अधिकार कर लेना।

गट्टा–संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथ, प्रा० गंठ, हिं० गाँठ] (१) हथेली और पहुँचे के बीच का जोड़। कलाई।

मुहा०—गट्टा पकड़ना = तगादा या झगड़ा करने अथवा बलपूर्वक कुछ माँगने या पूछने आदि के लिये किसी की कलाई पकड़ना। गट्टा उखाड़ना = परास्त करना। दबाना। गट्टा उखड़ना = कलाई की हड्डी का टूट या सरक जाना।

(२) पैर की नली और तलुए के बीच की गाँठ। (३) गाँठ। उ०—कमल के हिरदय महँ जो गटा। हर हर हार कीन्ह का घटा।—जायसी। (४) नैचे की नीचे की वह गाँठ जहाँ दोनों नै मिलती हैं और जो फ़रसी या हुक्के के मुँह पर रहती है। (५) बीज। जैसे, कमलगट्टा, सिंघाड़े का गट्टा। (६) एक प्रकार की मिठाई जो चीनी या शकर का तार खींच कर उसे गोल या चौकोर टुकड़ों में काट कर बनाई जाती है।

गट्टी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) जहाज या नाव में उस खंभे के नीचे की चूल जिसमें पाल बँधी रहती है। (लश०)

मुहा०—गट्टी करना = किसी खंभे में बँधी हुई पाल को चूल के सहारे घुमाना।

(२) नदी का किनारा।

गट्टू†–संज्ञा पुं० [हिं० गट्टा] मुठिया। दस्ता।

गट्ठर–संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ] बड़ी गठरी। गट्ठा। बोझा।

मुहा०—गट्ठर साधना = घुटनों को छाती से लगा कर और ऊपर से हाथ बाँध कर पानी में कूदना।

गट्ठा–संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ] [स्त्री० अल्प० गट्ठी, गठिया] (१) घास लकड़ी आदि का बोझ। भार। गट्ठर। (२) बड़ी गठरी। बुकचा। (३) प्याज़ या लहसुन की गाँठ।

†(४) जरीब का बीसवाँ भाग जो तीन गज़ का होता है। कट्ठा।

गठजोरा–संज्ञा पुं० दे० "गँठजोड़ा"।

गठडंड–संज्ञा पुं० [हिं० गड्ढा + डंड = एक प्रकार की कसरत] एक प्रकार का डंड जो दोनों हाथों के बीच के स्थान में गड्ढा बना कर किया जाता है। इस प्रकार डंड करने में अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

गठबंधन–संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थबन्धन, पा० गण्ठबन्धन] विवाह में एक रीति जिसमें वर और वधू के वस्त्रों के छोर को परस्पर मिला कर गाँठ बाँधते हैं।

गठन–संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थन, पा० गण्ठन] बनावट।

गठकटा–वि० पुं० [हिं० गाँठ + काटना] (१) गाँठ काट कर रुपए ले लेनेवाला। गिरहकट। (२) धोखा देकर या बेईमानी से रुपया लेनेवाला।

गठना–क्रि० अ० [सं० ग्रंथन, प्रा० गंठन, हिं० गाँठना का अकर्मक रूप] (१) दो वस्तुओं का परस्पर मिल कर एक होना। जुड़ना। सटना। जैसे, ये दोनों पेड़ आपस में खूब गठ गए हैं। (२) मोटी सिलाई होना। बड़े बड़े टाँके लगना। जैसे, जूता गठना। (३) बुनावट का दृढ़ होना।

यौ०—गठी बखिया = एक प्रकार की बखिया जिसे पोस्तदाना भी कहते हैं। इसमें पहले जिस स्थान पर सूई गड़ा कर आगे की ओर निकालते हैं फिर उसी स्थान के पास ही उलट कर सूई गड़ाते और सूई निकलने के पहलेवाले स्थान से कुछ और आगे बढ़ा कर निकालते हैं और इसी प्रकार बराबर सीते हुए चले जाते हैं। इस में ऊपर की सिलाई एकहरी और नीचे की दोहरी होती जाती है। दौड़ की बखिया में और इसमें केवल यही भेद है कि दौड़ की बखिया में केवल आधी दूर तक लौट कर सुई डालते हैं और गठी बखिया में पूरी दूरी तक लौट कर सुई डाली जाती है। गठा बदन = ऐसा हृष्ट पुष्ट शरीर जो बहुत अधिक मोटा न हो।

(४) किसी षट्चक्र या गुप्त विचार में सहमत या सम्मिलित होना। जैसे, अगर वह किसी तरह गठ जाय तो सब काम बन जाय। (५) अच्छी तरह निर्मित होना। भली भाँति रचा जाना। ठीक ठीक बनना। उ०—अंग अंग बनी मानो लिखी चित्र घनी गठी, निज मन मनी आजु बरों भूप काम को।—हनुमान। (६) स्त्री-पुरुष या नर-मादा का संयोग होना। विषय होना। (७) अधिक मेल मिलाप होना। जैसे, आज कल उन लोगों में ख़ूब गठती है।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

गठरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गट्ठर का स्त्री० और अल्प०] (१) कपड़े में गाँठ देकर बाँधा हुआ सामान। बड़ी पोटली। बकची।

मुहा०—गठरी बाँधना = (१) (असबाब बाँध कर) यात्रा की तैयारी करना। (२) पैरों और घुटनों को छाती से लगा कर और उन्हें दोनों हाथों से जकड़ कर गठरी की आकृति बना लेना। गठरी साधना = दे० "गट्ठर साधना" गठरी कर देना = (१) हाथ पैर तोड़ या बाँध कर अथवा और किसी प्रकार बेकाम कर देना। ढेर करना। मार कर गिरा देना। (२) कुश्ती में विपक्षी को इस प्रकार दोहरा कर देना कि जिसमें उसकी आकृति गठरी के समान हो जाय। गठरी मारना = दे० "गठरी बाँधना (२)"।

(२) संचित धन। जमा की हुई दौलत।

मुहा०—गठरी मारना = अनुचित रूप से किसी का धन ले लेना। ठगना।

(३) एक प्रकार का तैरना जिसमें तैरनेवाला अपने पैरों और घुटनों को छाती से लगा कर और उन्हें दोनों हाथों से जकड़ कर गठरी की सी आकृति बना लेता है।

गठरेवाँ–संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ] चौपायों का एक रोग। चौपाये को पहले ज्वर आता है फिर उसकी जाँघ, पसली और जीभ के नीचे और विशेष कर गले के नीचे सूजन हो आती है। उसे सांस लेने में कष्ट होता है और वह चल फिर नहीं सकता। वह पैरों को जोड़ कर खड़ा रहता है। यह छूत का रोग है और अचानक होता है। पशु इस रोग में विशेष कर मर जाते हैं। पहले लोगों का अनुमान था कि यह रोग सर्दी लगने या बदहज़मी से होता है। पर अब डाक्टरों ने यह निश्चय किया है कि यह रोग रक्त के विकार से कीटाणुओं द्वारा फैलता है। इस रोग में रोगी को बंद और गर्म साफ़ सुथरे और सूखे में रखना चाहिए। खाने के लिये सूखे स्थान की घास, सूखा भूसा और जौ के आटे की लेई या गर्म माड़ उपयोगी है। इसे गलफुला और हाहा भी कहते हैं।

गठवाँसी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गट्ठा + अंश] गट्ठे वा बिस्वे का बीसवाँ अंश। बिस्वांसी।

गठवाना–क्रि० स० [हिं० गाठना] (१) गठाना। सिलवाना। जैसे, जूता गठवाना। (२) मोटी मोटी सिलाई कराना। टाँका

मरवाना। (३) जुड़वाना। जोड़ मिलवाना। (४) जोड़ा खिलाना। संयोग कराना।

गठाना–क्रि० स० [हिं० गाठना] (१) गठवाना। सिलवाना। मोटी सिलाई कराना। जैसे, जूते गठाना। (२) जोड़ मिलवाना।
संज्ञा पुं० [हिं० घुटना] वह जलस्थल जहाँ कम पानी हो। (माँझी)

गठानी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कर जो ज़मींदार असामियों से वसूल करता है।

गठाव–संज्ञा पुं० [हिं० गठना] गठन। बनावट।

गठित–वि० सं० ग्रंथित, पा० गंठित] गठा हुआ। बना हुआ।

गठिबंध–संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथिबंधन] गठबंधन। गंठजोड़ा। उ०—बड़ि प्रतीति गठिबंध ते बड़ो जोग ते छेम। बड़ो सुसेवक साइँ ते बड़ो नेम ते प्रेम।—तुलसी।

गठिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँठ] (१) वह बोरा वा दोहरा थैला जिस में व्यापारी अन्न आदि भर कर घोड़े या बैल की पीठ पर लादते हैं। खुरजी। (२) पोटली। छोटी गठरी। (३) कोरे कपड़े के थानों की बँधी हुई बड़ी गठरी। (४) एक रोग जिसमें जोड़ों में विशेष कर घुटनों में सूजन और पीड़ा होती है। जिस अंग में यह रोग होता है वह अंग फैल नहीं सकता और जकड़ जाता है। इसमें कभी कभी ज्वर और सन्निपात भी हो जाता है जिससे रोगी शीघ्र मर जाता है। वैद्यक में वायुविकार इसका कारण माना जाता है। उपदंश, सूज़ाक आदि के कारण भी एक प्रकार की गठिया हो जाती है। (५) पौधों वा वृक्षों का एक रोग जिसमें डालियों का बढ़ना बंद होजाता है, पत्तियाँ सिकुड़ कर ऐंठ जाती हैं। नई पत्तियाँ घनी और परस्पर लिपटी हुई निकलती हैं। यद्यपि यह रोग आम आदि बड़े पेड़ों में भी होता है पर फ़सली पौधों में बहुत देखा जाता है। उरद, मूँग तथा कुम्हड़ा, ककड़ी, करैला आदि तरकारियों में यह रोग प्रायः लग जाता है।

गठियाना†–क्रि० स० [हिं० गाँठ] (१) गाँठ देना। गाँठ लगाना। (२) गाँठ में बाँधना। गाँठ में रखना।

मुहा०—किसी बात को गठिया रखना = किसी बात को निश्चय समझना।

गठिवन–संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथिपर्ण] मध्यम आकार का एक पेड़ जिसकी डालियाँ पतली होती हैं। इसकी पत्तियों में स्थान स्थान पर गाँठें होती हैं। फूल नीले रंग के होते हैं। यह नैपाल की तराई में अधिक होता है। इसकी गोल गोल घुंडियाँ वा कलियाँ औषध के काम में आती हैं और बाज़ार में गठिवन के नाम से बिकती हैं। काले रंग का गठिवन उत्तम, पांडु रंग का मध्यम और स्थूल निकृष्ट समझा जाता है। वैद्यक में इसे तीक्ष्ण, चरपरा, गरम, अग्निदीपक, तथा कफ, वात, श्वास, और दुर्गंध को नाश करनेवाला माना है। शरीर पर इसका लेप करने से रुखाई आती है और खुजली दूर होती है।

गठीला–वि० [हिं० गाँठ + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० गठीली] गाँठवाला। जिसमें बहुत सी गाँठें हों। उ०—यह छड़ी गठीली है।
वि० [हिं० गठना] (१) गठा हुआ। चुस्त। सुडौल। जैसे, गठीला बदन। (२) मज़बूत। दृढ़। अच्छा।

गठुआ–संज्ञा पुं० दे० "गठुवा"।

गठुरा†–संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ] भूसे की गाँठ जो खलिहान में फेंक दी जाती है। इसे बुंदेलखंड में गेठुआ और अवध में खूँटी कहते हैं।

गठुवा–संज्ञा पुं० [हिं० गांठ] (१) कपड़े का वह टुकड़ा जिसे जुलाहे करघे में इस लिये रखते हैं कि उसके तागे से ताने के तागों को गठ कर बुनने के लिये चढ़ावें। (२) भूसे के छोटे छोटे गाँठदार टुकड़े जो खलिहान में फेंक दिए जाते हैं। गेठुरा। गंठुरा। खूँटी।

गठौंद–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँठ + बंध] (१) गांठ की बँधाई। गिरहबंदी। (२) वह माल जो अलग बांध कर अमानत की तरह रक्खा जाय। धरोहर। थाती।

गठौत–संज्ञा स्त्री० [हिं० गठना] (१) मेल। मिलाप। मित्रता। घनिष्ठता। (२) गठी गठाई बात। मिल कर पक्की की हुई बात। साँट साँट। अभिसंधि।
क्रि० प्र०—करना।—गाँठना।
(३) उपयुक्तता। मौज़ूनियत।

गठौती–संज्ञा स्त्री० [हिं० गठना] (१) मेल जोल। मैत्री। घनिष्टता। (२) गठी गठाई बात। साँट साँट। अभिसंधि। षड्चक्र।
क्रि० प्र०—करना।—गाँठना।

गडंक, गडंग–संज्ञा पुं० [हिं० गढ़ + अंग] वह स्थान जहाँ बारूद गोले और हथियार आदि रखे जाते हैं। मेगज़ीन।

गड़ंग†–संज्ञा पुं० [सं० गर्व, पु० हिं० गारो] [वि० गडंगिया] (१) घमंड। शेखी। डींग। (२) आत्मश्लाघा। बड़ाई।
मुहा०—गडंग मारना वा हाँकना = (१) डींग मारना। शेखी बघारना। बढ़ बढ़ के बातें करना। (२) अहंकार करना। शेखी करना।

गडंगिया†–वि० [हिं० गडंग] घमंडी। डींग मारनेवाला। शेखीबाज़। बढ़ बढ़ कर बात करनेवाला।

गड़ंत–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाड़ना] वह वस्तु जिसे लोग टोटके वा अभिचार के लिये गाड़ देते हैं। तांत्रिक या प्रेत-विद्या के जाननेवाले प्रायः मारन, मोहन और उच्चाटन आदि के लिये कुछ पदार्थों को मंत्र पढ़ कर किसी चौराहे में गाड़ देते हैं

और इस गाड़ने को गड़ंत कहते हैं। यह गड़ंत कभी कभी आगंतुक दुःखों के निवारण के लिये भी की जाती है।

गड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ओट। आड़। (२) घेरा। चारदीवारी। वह धुस्स वा टीला जो किसी स्थान के चारों ओर बनाया जाय। (३) गड्ढा। खाईं। (४) प्राकार। गढ़।

गडक—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली।

+**गड़कना**—क्रि० अ० [अनु०] गड़ गड़ शब्द करना।

गड़काना—क्रि० स० [अनु० गड+क] गड़ गड़ शब्द उत्पन्न करना। गड़गड़ाना।

क्रि० स० [अ० गर्क़] डुबोना। शराबोर करना।

गडक्का—संज्ञा पुं० [अ० गर्क़] (१) डुबाव। (२) डूबने का शब्द।

गड़गज—संज्ञा पुं० दे० "गरगज"।

गड़गड़ा—संज्ञा पुं० [अनु०] एक प्रकार का हुक्का।

+**गड़गड़ाना**—क्रि० अ० [हिं० गड़गड़] गरजना। गड़ गड़ गड़ गड़ करना। कड़कना। उ०—आज सवेरे से बादल गड़गड़ा रहा है।

क्रि० स० गड़ गड़ बोलना। गड़ गड़ शब्द निकालना। गुड़गुड़ाना। उ०—वे दिन भर बैठे बैठे हुक्का गड़गड़ाया करते हैं।

गड़गड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गड़गड़ाना] (१) गड़गड़ाने का शब्द। गराड़ी घूमने, गाड़ी चलने वा बादल गरजने आदि का शब्द। कड़क। (२) हुक्का पीने का शब्द।

गड़गड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गड़गड़] नगाड़ा। डुग्गी। उ०—ढोल दमामा गड़गड़ी शहनाई औ तूर। तीनो निकसि न बाहुरैं साधु सती औ सूर।—कबीर।

गड़गूदड़—संज्ञा पुं० [अनु० गूदड़] चिथड़ा लत्ता। उ०—लखनऊवालों का पहनावा जनाना है, पाजामे की मोहड़ियाँ इतनी चौड़ी रखते हैं कि उठावें तो सिर तक पहुँचे और पगड़ियों का घेरा इतना बड़ा कि छतरी का भी काम न पड़े, बोझ में तो छोटी मोटी गठड़ा से कम न होगी, वरन कहीं खुल जावे तो अंदर से गड़गूदड़ का ढेर इतना निकल पड़े कि एक टोकरी भरे।

गड़च्चा—संज्ञा पुं० [?] (१) धमकी। घुड़की। (२) दबोच। (३) चकमा।

गड़दार—संज्ञा पुं० [हिं० गढना+दार] वह नौकर जो मस्त हाथी के साथ साथ भाला लिए हुए चलता है और जब हाथी इधर उधर अपने मन से जाना चाहता है तब उसे भाले से मार कर राह पर ले चलता है। उ०—(क) अली चली नवला हिलै, पिय पै साजि सिंगार। ज्यों मतंग अड़दार को लिये जात गड़दार।—मतिराम। (ख) अरे ते गुसलखाने बीच ऐसे उमरा लै चले मनाय महराज सिवराज को। दाबदार निरखि रिसाने दीहदलराज जैसे गड़दार अड़दार गजराज को।—भूषण।

गड़ना—क्रि० अ० [सं० गर्त, प्रा० गड्ड=गड्ढा] (१) धँसना। घुसना। चुभना। जैसे, काँटा गड़ना। उ०—खरकै छबि आनि गड़ी उर में नृप रावर मैन रमै कलकै।—गुमान। (२) शरीर में चुभने की सी पीड़ा पहुँचाना। खुरखुरा लगना। उ०—पीठ के नीचे कंकड़ गड़ रहे हैं। (३) दर्द करना। पीड़ित होना।

विशेष—इस अर्थ में "गड़ना" केवल "आँख" और "पेट" के साथ आता है। जैसे, आँख गड़ रही है। पेट गड़ता है।

(४) मिट्टी आदि के नीचे दबना। दफ़न होना। नीचे पड़ जाना। उ०—जमीन में गड़े पत्थर निकाल लो।

मुहा०—गड़े मुर्दे उखाड़ना=दबी दबाई वा पुरानी बात उभाड़ना।

(५) समाना। पैठना। उ०—क्यों न गड़िजाहु गाड़ गहिरी गड़त जिन्है गोरी गुरुजन लाज निगड़ गड़ाइती।—देव।

मुहा०—गड़ जाना=झेंपना। लज्जित होना। लजाना। उ०—तुम तो बेहया हो दूसरा कोई होता तो गड़ जाता। लज्जा ग्लानि आदि से गड़ना=लज्जा आदि से दृष्टि नीची करना। उ०—देखि भरत गति सुनि मृदुवानी। सब सेवक गन गरहिँ गलानि।—तुलसी।

(६) खड़ा होना। भूमि पर ठहरना। ज़मीन पकड़ना। जैसे, झंडा गड़ना, खीमा गरना। उ०—भूलेहू जाहि विलोकत ही गड़ि गाढ़े रहे अति ही दृगदू पर। (७) जमना। स्थिर होना। डटना। ठहरना। स्तंभित होना। उ०—(क) उनकी आँख वहाँ गड़ी है। (ख) तुम तो जहाँ जाते हो वहाँ गड़ जाते हो। (ग) प्यारी कुच श्यामता की डीठ गड़ी श्यामता पै कहै हनुमान इन काहू को न चीन्ही है।

गड़पंख—संज्ञा पुं० [सं० गरुड़+हिं० पंख] (१) एक बड़ी चिड़िया। (२) लड़कों का एक खेल जिस में वे किसी लड़के से यह कह कर कि तुम्हें उड़ना सिखावेंगे उस के हाथ पैर डंडों में बांध देते हैं और धोती खोल देते हैं।

मुहा०—गड़पंख बनाना=मूर्ख बनाना। बेवकूफ़ बनाना।

गड़प—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पानी कीचड़ आदि में किसी वस्तु के सहसा समाने का शब्द। उ०—उसका पैर गड़प से पानी में चला गया।

मुहा०—गड़प से=गड़प शब्द करके (पानी आदि में एक बारगी पड़ जाना।

विशेष—खट, चट आदि अनुकरण शब्दों के समान प्रकार सूचित करने के लिये इस शब्द के साथ भी प्रायः "से" आता है।

गड़पना—क्रि० स० [अनु० गड़प] (१) निगलना। खा लेना।

(२) किसी की चीज़ हज़म करना। किसी की वस्तु पर अनुचित अधिकार करना।

गड़प्पा–संज्ञा पुं० [हिं० गाड़] (१) भारी गड्ढा जिसमें कोई वस्तु झट से चली जाय वा गिर पड़े। (२) धोखा खाने का स्थान।

गड़बड़–वि० [हिं० गड़ = गड्ढा + बड़ = बड़ा ऊँचा] [वि० गड़बड़िया] (१) ऊँचा नीचा। असमतल। उ०—गड़ बड़ रास्ते से मत चलो। (२) क्रमविहीन। अस्त व्यस्त। अंडबंड। ऊटपटाँग। अनियमित। बेठिकाने का। बेठीक। उ०—उसका सब काम गड़बड़ होता है।

संज्ञा पुं० (१) क्रमभंग। गोलमाल। ऊटपटांग कार्रवाई। नियम विरुद्ध कार्य्य। अव्यवस्था। कुप्रबंध। उ०—हम ने सब ठीक कर दिया है, अब इसमें गड़बड़ मत करना।

यौ०—गड़बड़झाला = गोलमाल। अव्यवस्था। ऊटपटांग काम। गड़बड़ाध्याय = दे० "गड़बड़झाला"।

(२) उपद्रव। दंगा। उ०—यहाँ गड़बड़ मत करो, चलो।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

(३) (रोग आदि का) उपद्रव। आपत्ति। उ०—शहर में आज कल बड़ा गड़बड़ है, मत जाओ।

विशेष—कोई कोई इस शब्द को स्त्रीलिंग भी बोलते हैं।

गड़बड़ा–संज्ञा पुं० [सं० गर्त्त, प्रा० गड्ड] खत्ता। गड्ढा।

गड़बड़ाना–क्रि० अ० [हिं० गड़बड़] (१) गड़बड़ी में पड़ना। चक्कर में आना। क्रम का ध्यान न होना। भूल में पड़ना। उ०—थोड़ी दूर तक तो उसने ठीक ठीक पढ़ा, पीछे गड़बड़ा गया। (२) क्रमभ्रष्ट होना। अव्यवस्थित होना। (३) अस्तव्यस्त होना। बिगड़ना। नष्ट होना। उ०—वहाँ का सब मामला गड़बड़ा गया।

क्रि० स० (१) गड़बड़ी में डालना। चक्कर में डालना। (२) भ्रम में डालना। भुलवाना। (३) क्रमभ्रष्ट करना। अस्त-व्यस्त करना। अंड बंड करना। बिगाड़ना। ख़राब करना।

गड़बड़िया–वि० [हिं० गड़बड़] गड़बड़ करनेवाला। क्रम बिगाड़ने-वाला। उपद्रव करनेवाला।

गड़बड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गड़बड़] (१) अव्यवस्था। गोलमाल। दे० "गड़बड़"।

गड़रा तवा–संज्ञा पुं० [देश० गड़रा = गाढ़ा + हिं० तवा] एक प्रकार का लोहा जो पहले मध्य भारत में निकलता था।

गड़रिया–संज्ञा पुं० [सं० गड्डुरिक, प्रा० गड्डुरिअ] [स्त्री० गड़ेरिन] एक जाति जो भेड़ें पालती और उनके ऊन से कंबल बुनती है। दे० "गड़ेरिया"।

यौ०—गड़रिया पुरान = अहीर गड़रियों की कहानी। गँवारों की बात।

गड़री–संज्ञा स्त्री० दे० "गेड़री"।

गड़रू–संज्ञा पुं० दे० "गुड़रू"।

गडलवण–संज्ञा पुं० [सं० गर्तलवण वा गडलवण] वह नमक जो झीलों से विशेष कर सांभर से निकलता है। सांभर लवण।

गड़वाँत–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाड़ी + वाट] गाड़ी के पहिए का चिह्न। लीक।

गड़वा–संज्ञा पुं० दे० "गाड़ा"।

गड़वाट–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाड़ना] (१) ज़मीन में गाड़ने की क्रिया। (२) गड्ढा खोदने का काम।

गड़वाना–क्रि० स० [हिं० गाड़ना का प्रे० रूप] गाड़ने का काम कराना। गाड़ने में लगाना।

गड़हा–संज्ञा पुं० [सं० गर्त, प्रा० गड्ड] [स्त्री० अल्प० गड़ही] वह ज़मीन जो अपने आस पास की चारों ओर की ज़मीन से एक बारगी गहरी या नीची हो। ज़मीन में वह ख़ाली स्थान जिसमें लंबाई, चौड़ाई और गहराई हो। खाता। गड्ढा। खड्ड।

क्रि० प्र०—करना।—खोदना।—भरना।—होना।

मुहा०—गड़हा पड़ना = गड़हा होना। उ०—वहाँ की मिट्टी बह जाने से जगह जगह गड़हे पड़ गए हैं। गड़हा खोदना = बुराई करना। हानि पहुँचाना। उ०—तुम ने जो हमारे लिये गड़हा खोदा है उसका फल तुम्हें मिल जायगा। गड़हा भरना या पाटना = (१) टोटा भरना। कमी या घाटा पूरा करना। उ०—वह तो खा पका कर चलते बने, गड़हा भरने को हम रह गए। (२) रूखी सूखी से पेट भरना। भली बुरी चीज़ से पेट भरना। उ०—क्या करें पेट नहीं मानता, किसी तरह गड़हा भरना ही पड़ता है। गड़हे में पड़ना = असमंजस में पड़ना। फेर में पड़ना। कठिनाई में पड़ना।

गड़ही–संज्ञा स्त्री० [हिं० गड़हा] छोटा गड़हा।

गड़ा–संज्ञा पुं० [सं० गण = समूह] ढेर। राशि। अटाला। अंबार।

यौ०—गड़ाबटाई।

गड़ाकू–संज्ञा स्त्री० [सं० गल] एक प्रकार की मछली।

गड़ाना–क्रि स० [हिं० गड़ना] चुभाना। धँसाना। भोंकना।

क्रि० स० [हिं० 'गाड़ना' का प्रे० रूप] गाड़ने में लगाना। गाड़ने का काम कराना।

गड़ाप–संज्ञा पुं० [अनु०] पानी आदि में डूबने का शब्द। उ०—पैर गड़ाप से पानी में चला गया।

गड़ापा–संज्ञा पुं० [हिं० गड़ाप] गड़ाप से डूबने लायक स्थान। गहरा स्थान।

गड़ाबटाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० गड़ा = ढेर + बँटाई] खेत की उपज की बँटाई जिस में बिना दाँई हुई फ़सल के भाग लगाए जाते हैं।

गड़ायत*–वि० [हिं० गड़ना] गड़नेवाला। चुभनेवाला। उ०—क्यों न गड़ि जाहु गाड़ गहिरी गड़ति जिन्है गोरी गुरुजन लाज निगड़ गड़ायती।—देव।

गड़ारी–संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडल] (१) मंडलाकार रेखा। गोल

लकीर। वृत्त। (२) घेरा। मंडल। जैसे, गड़ारीदार पायजामा।

संज्ञा स्त्री० [सं० गंड = चिह्न] आड़ी धारी। आड़ी लकीरों की पंक्ति। गंडा। जैसे, कनखजूरे की पीठ पर या रुपए की आँठ पर जो धारियाँ होती हैं वे गड़ारियाँ कहलाती हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडली] (१) गोल चरखी जिस पर रस्सी चढ़ा कर कुएँ से पानी खींचते हैं। घिरनी। (२) घिरनी के बीच का गहरा गड्ढा जिसमें रस्सी बैठाई जाती है। (३) एक घास जिसका साग बनाया जाता है।

गड़ारीदार–वि० [हिं० गड़ारी + फ़ा० दार] (१) जिस पर गंडे वा धारियाँ पड़ी हों। जैसे, गड़ारीदार रुपया, गड़ारीदार कसीदा। (२) जिसमें गड़ारी के ऐसा लंबा गड्ढा हो। (३) घेरदार।

यौ०—गड़ारीदार पायजामा = चौड़ी मोहरी का पायजामा।

गड़ावन–संज्ञा पुं० [सं० गडलवण] एक प्रकार का नमक।

गड़ासा–संज्ञा पुं० दे० "गँड़ासा"।

गड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० गंड] कटी हुई फ़सल के डंठलों का ढेर जो दाएं जाने के लिये खलियान में रक्खा हो। गांज। खरही।

गड़ाबटाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० गड़ा = गाँज + बटाई] वह बँटाई जिसमें फ़सल दाएँ जाने के पहले डंठल सहित बाँटी जाय।

गड़ि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बच्चा। बछड़ा। (२) मट्टर बैल।

गड़ियार–वि० दे० "गरियार"।

गडु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बतौरी। कूबड़। (२) गलगंड।

गडुआ–संज्ञा पुं० दे० "गडुवा"।

गडुई–संज्ञा स्त्री० [हिं० गडुवा] पानी पीने का एक छोटा बरतन जिसमें टोटी लगी रहती है। यह गडुवे से छोटी होती है। झारी।

गडुर*†–संज्ञा पुं० दे० "गडुल"।

गडुल–संज्ञा पुं० [सं०] कुबड़ा आदमी।

वि० कुबड़ा। कुब्ज।

गडुलना–संज्ञा पुं० दे० "गड़ोलना"।

गडुवा–संज्ञा पुं० [हिं० गेरना = गिराना + उवा (प्रत्य०)–गेरुवा] वह लोटा जिसमें पानी गिराने के लिये बत्तख़ की गर्दन के आकार की एक पतली टोंटी लगी रहती है। तमहा। उ०—गडुवन हीर पदारथ लागे। देखि विमोहे पुरुष सभागे।—जायसी।

संज्ञा पुं० सरसों के फूलों का गुच्छा वा गुलदस्ता जिसे गडुवे में रख कर बसंत के दिन लोग मंदिरों में चढ़ाने वा बड़े आदमियों को भेँट करने के लिये जाते हैं।

गड़ेरिया–संज्ञा पुं० [सं० गड्डरिक, पा० गड्डारिअ] [स्त्री० गड़ेरिन] एक जाति जो भेँड़ें पालती और उनके ऊन से कंबल बुनती है।

गडेरुआ–संज्ञा पुं० [सं० गण्डोल = ग्रास] एक रोग जिसमें चौपाये के गले में एक गोला सा बन जाता है जिसके कारण वह खाँसता रहता है। यह गोला जब तक चौपाए के गले से बाहर नहीं निकल जाता वा टूट कर भीतर नहीं सरक जाता तब तक वह ढाँसा करता है। चौपाए एक दूसरे को चाटते हैं, इससे चाटने में उनके गले के भीतर कुछ रोएँ चले जाते हैं जो एक दूसरे से चिपटते जाते हैं और उन पर घास भूसे की तह भी जमती जाती है। अंत में होते होते गेंद सा एक गोला बन जाता है।

गड़ोना–क्रि० स० [हिं० गड़ना] चुभाना। धँसाना। घुसेड़ना।

गडोल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ग्रास। कौर। (२) गुड़।

गड़ोलना–संज्ञा पुं० [हिं० गाड़ी + ओला, ओलना (प्रत्य०)] छोटी गाड़ी जिसमें बच्चों को चढ़ा कर फिराते हैं।

गड़ौना–संज्ञा पुं० [हिं० गाड़ना] पान की एक जाति।

*संज्ञा पुं० [हिं० गड़ना] काँटा। उ०—सुनि तुम्हार संसार बड़ौना। योग लीन्ह तन कीन्ह गड़ौना।—जायसी।

गड्ड–संज्ञा पुं० [सं० गण] [स्त्री० गड्डी] एक ही आकार की ऐसी वस्तुओं का समूह जो एक के ऊपर एक जमा कर रक्खी हों। गंज। जैसे, ताश का गड्ड। कागज का गड्ड।

मुहा०—गड्ड का गड्ड = ढेर का ढेर। बहुत सा।

†*संज्ञा पुं० [सं० गर्त्त = गड्डा] गड्ढा। खत्ता।

गड्डबड्ड, गड्डमड्ड–संज्ञा पुं० [हिं० गड्ड] घाल मेल। घपला। बेमेल की मिलावट। क्रमशून्य मिश्रण। उ०—मैं ने अभी सब पत्रे छाँट कर अलग किए थे उसने आकर सब गड्डबड्ड कर दिया।

वि० बिना किसी क्रम के मिला जुला। अंडबंड।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गड्डर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गड्डरी। वि० गड्डरिक] भेड़ा। मेष।

गड्डरिक–संज्ञा पुं० [सं०] गड़ेँरिया।

वि० भेड़ का। भेड़ संबंधी। भेड़ के ऐसा।

यौ०—गड्डरिक प्रवाह = भेड़ियाधसान। एक के पीछे दूसरे का गमन।

गड्डलिक–संज्ञा पुं० दे० "गड्डरिक"।

गड्डाम–वि० [अं० गॉड + ड्याम] नीच। लुच्चा। बदमाश। पाजी।

गड्डामी–वि० [अं० गॉड + ड्याम + यी] नीच। लुच्चा। बदमास। पाजी।

गड्डी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गड्ड] (१) एक ही आकार की ऐसी वस्तुओं का ढेर जो तले ऊपर रखी हों। गंज। जैसे, काग़ज़ की गड्डी, ताश की गड्डी, पान की गड्डी। (२) ढेर। समूह। गांज। जैसे, आमों की गड्डी।

गड्ढा–संज्ञा पुं० दे० "गड़हा"।

गढंत–वि० [हिं० गढ़ना] कल्पित। बनावटी (बात)। उ०—तुम्हारी गढंत बातों पर कौन विश्वास करे।

संज्ञा स्त्री० (१) बनावटी बात। कल्पित प्रसंग। मन की उपज। उ०—ये आख्यायिकाएँ मन की गढंत नहीं हैं, सर्वथा सत्य हैं।—सरस्वती। (२) कुश्ती के तीन भेदों में से एक। यह कुश्ती भैंसे, हाथी और भेंड़े आदि की लड़ाई का अनुकरण है। पंजाबी और मथुरा के चौबे प्रायः गढ़ंत कुश्ती लड़ते है।

गढ़–संज्ञा पुं० [सं० गड़ = खाँई] [स्त्री० अल्प० गढ़ी] (१) खाँई। (२) किला। कोट। उ०—गढ़ पर बसहिँ चार गढ़पती। —जायसी।

मुहा०—गढ़ जीतना या गढ़ तोड़ना = (१) किला जीतना। किले पर अधिकार करना। (२) कठिन काम करना। उ०—कौन सा गढ़ तोड़ना था जो इतनी देर लगी = (३) प्रथम समागम में कृतकार्य्य होना। (बाज़ारी)

(३) युद्ध की सामग्री में एक लकड़ी की बड़ी संदूक वा कोठरी। इसमें कुछ आदमियों को बैठा कर किले में डाल देते हैं। वे लोग उसमें बैठे हुए सुरंग खोदते हैं। दबाबा।

गढ़कप्तान–संज्ञा पुं० [हिं० गढ़ + अं० कैप्टेन] किलेदार। किले की फ़ौज का अफ़सर।

गढ़त–संज्ञा स्त्री० [हिं० गढ़ना] बनावट। ढाँचा। रचना। आकृति।

गढ़न–संज्ञा स्त्री० [हिं० गढ़ना] बनावट। गठन। उ०—उसके मुँह की गढ़न बड़ी लुभावनी है।

गढ़ना–क्रि० स० [सं० घटन, प्रा० घडन] (१) किसी सामग्री को काट छाँट वा ठोंक ठाँक कर कोई काम की वस्तु बनाना। रचना। सुघटित करना। उ०—(क) सोनार दूकान पर गहने गढ़ता है। (ख) गढ़े कुम्हार भरे संसार। (ग) तुलसी रही है ठाढ़ी, पाहन गढ़ी सी काढ़ी, न जानै कहाँ ते आई कौन की कोही।—तुलसी। (२) ठोंक ठाँक कर सुडौल करना। तोड़ कर या छील छाल कर दुरुस्त करना। उ०—इसमें गढ़ गढ़ कर ईंटें लगाई जाँयगी। (३) (बात) बनाना। कपोल कल्पना करना। झूठ मूठ की बात खड़ी करना। जैसे, गढ़ी हुई बात, बहाना गढ़ना, कथा गढ़ना, इत्यादि।

मुहा०—गढ़ गढ़ कर बातें करना वा बनाना = झूठ मूठ की कल्पना करके बात कहना। नमक मिर्च लगा कर बातें करना। उ०—तू मोही को मारन जानति। उनके चरित कहा कोउ जानै, उनहि कही तू मानति। कदम तीर ते मोहिं बुलायो गढ़ि गढ़ि बातैं बानति। मटकति गिरी गागरी सिर ते अब ऐसी बुधि ठानति।—सूर।

(४) मारना। पीटना। ठोंकना। उ०—तुम खूब गढ़े जाओगे तब मानोगे।

गढ़पति–संज्ञा पुं० [हिं० गढ़ + पति] (१) किलादार। उ०—गढ़ पर बसैं चार गढ़पती। असुपति गजपति भू-नरपती।—जायसी (२) राजा। सरदार।

गढ़वार*†–संज्ञा पुं० दे० "गढ़वाल"।

गढ़वाल–संज्ञा पुं० [हिं० गढ़ + वाला] गढ़वाला। वह जिसके अधिकार में गढ़ हो।

संज्ञा पुं० एक प्रदेश का नाम जो हिमालय वा उत्तराखंड में हरद्वार के उत्तर पड़ता है। बदरीनाथ और केदारनाथ नामक तीर्थ इसी प्रदेश में हैं।

गढ़ा–संज्ञा पुं० दे० "गड्हा"।

गढ़ाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० गढ़ना] (१) गढ़ने की क्रिया। गढ़ने का काम। (२) गढ़ने की मज़दूरी। वह मजदूरी जो सोनारों बढ़इयों आदि को कोई चीज़ बनाने के बदले में दी जाती है।

गढ़ाना–क्रि० स० [हिं० गढ़ना का प्रे० रूप] गढ़वाना। बनवाना। गढ़ने का काम कराना।

क्रि० अ० [हिं० गाढ़ = कठिन] खलना। कष्टकर प्रतीत होना। मुश्किल गुज़रना। बुरा लगना। उ०—बिना काम के किसी के घर जाना बड़ा गढ़ाता है।

गढ़िया–संज्ञा पुं० [हिं० गढ़ना] गढ़नेवाला।

गढ़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गढ़] छोटा किला। किले वा कोट के ढंग का मज़बूत मकान। जैसे, हनुमानगढ़ी।

गढ़ीस*–वि० [हिं० गढ़ + सं० ईश] गढ़ का मालिक। किलादार। गढ़पति। उ०—सोभा सुमेरु की संधितटी किधौं मैन मवास गढ़ीस की घाटी।—आनंदघन।

गढ़ैया–वि० [हिं० गढ़ना] गढ़नेवाला। बनानेवाला। रचनेवाला। उ०—(क) पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहूँ कैहूँ खोजिये खवास खासो कूबरी से बाल को। ज्ञान को गढ़ैया बिनु गिरा को पढ़ैया बार खाल को कढ़ैया सो बढ़ैया उर साल को।—तुलसी। (ख) आनि धर्यो नंद द्वार अति ही सुंदर सुढार ब्रजबधू देखैं बार बार सोभा नहिं वार पार धनि धनि धन्य है गढ़ैया।—सूर।

गढ़ोई*†–संज्ञा पुं० [हिं० गढ़] किलादार। गढ़पति।

गण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। झुंड। जत्था। (२) श्रेणी। जाति। कोटि। (३) ऐसे मनुष्यों का समुदाय जिनमें किसी विषय में समानता हो। (४) जैनशास्त्रानुसार एक स्थविर वा आचार्य्य के शिष्य। महावीर स्वामी के शिष्य। (५) वह स्थान जहाँ कोई स्थविर अपने शिष्यों को शिक्षा देता हुआ रहता हो। (६) सेना का वह भाग जिसमें तीन गुल्म अर्थात् २७ हाथी, २७ रथ, ८१ घोड़े और १३५ पैदल हों। (७) नक्षत्रों की तीन कोटियों में से एक। फलित ज्योतिष के अनुसार नक्षत्रों के तीन गण हैं, देव, मनुष्य और राक्षस। अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरः और श्रवण देव गण हैं। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ पूर्वभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तरभाद्रपद, भरणी, आर्द्रा और रोहिणी मनुष्य गण हैं। और शेष चित्रा, मघा,

विशाखा, ज्येष्ठा, शतभिषा, मूल, धनिष्ठा, अश्लेषा और कृत्तिका राक्षस गण हैं। (८) छंदःशास्त्र में तीन वर्णों का समूह। लघु, गुरु के क्रम के अनुसार गण ८ माने गए हैं।

यथा—मगण—SSS (गुरु गुरु गुरु) जैसे, माधो जू।
यगण—ISS (लघु गुरु गुरु) ,, सुनो रे।
रगण—SIS (गुरु लघु गुरु) ,, राम को।
सगण—IIS (लघु लघु गुरु) ,, सुमिरौ।
तगण—SSI (गुरु गुरु लघु) ,, आवास।
जगण—ISI (लघु गुरु लघु) ,, विमान।
भगण—SII (गुरु लघु लघु) ,, कारन।
नगण—III (लघु लघु लघु) ,, सुजन।

इनके अतिरिक्त ५ मात्रिक गण भी होते हैं, यथा—
टगण—६ मात्राओं का
ठगण—५ ,, ,, ,,
डगण—४ ,, ,, ,,
ढगण—३ ,, ,, ,,
णगण—२ ,, ,, ,,

पर इनका प्रयोग प्राचीन ग्रंथों में ही मिलता है।

(९) व्याकरण में धातुओं और शब्दों के वे समूह जिनमें समान लोप, आगम, वर्णविकारादि हों। ये दो प्रकार के हैं—एक धातु के गण दूसरे शब्दों के। शब्दों के गण गणपाठ में है और धातुओं के गण धातुपाठ में। धातुओं के प्रधान दस गण हैं। भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि वा ह्वादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि, चुरादि। (१०) शिव के पारिषद। प्रमथ। (११) दूत। सेवक। पारिषद। उ०—(क) जम-गन-मुँह-मसि-जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी।—तुलसी। (ख) गगन समेत सती तहँ गई। तासों दक्ष बात नहि कही।—सूर। (१२) परिचारक वर्ग। अनुचरों का दल। (१३) पक्षपाती। अनुयायी। उ०—ये सब उन्हीं के गण हैं, इनसे सावधान रहना। (१४) चोवा। एक सुगंध द्रव्य। उ०—स्वेद भरे तनसिज खरे, करज लगे गन ठाम। सुथरे कच बिथुरे अरी लरी ललन ते बाम।—श्रृं० सत०।

गणक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गणकी] ज्योतिषी।

गणककेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धूमकेतु जो तारापुंज के ऐसा दिखाई पड़ता है। बृहत्संहिता के अनुसार यह ब्रह्मा का पुत्र है और इस प्रकार के आठ धूमकेतु हैं।

गणकर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवारुणी।

गणदीक्षी—संज्ञा पुं० [सं०] वह याज्ञिक जो बहुतों को यज्ञ कराता हो।

वि० (१) बहुयाजक। बहुतों को यज्ञ करानेवाला। (२) गणेशदीक्षित। जो शिव वा गणेश की दीक्षा ग्रहण करे।

गणदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] समूह-चारी देवता। ये एक प्रकार के देवता हैं जो समूह में रहते हैं। गणदेवता ९ हैं आदित्य १२, विश्वेदेवा १०, वसु ८, तुषित ३६, अभास्वर ६४, अनिल ४९, महाराजिक २२०, साध्य १२, रुद्र ११।

गणद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जिस पर मनुष्यों के गण वा समुदाय का समान अधिकार हो। सर्वसाधारण की संपत्ति।

गणधर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के जैनाचार्य्य जो तीर्थंकरों के शिष्य होते हैं। ये लोग तीर्थंकरों के उपदेशों का संग्रह कर उन्हें आचारांग आदि बारह अंगों में विभाजित करते हैं और शिष्यों में उनका प्रचार करते हैं।

गणन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गणनीय, गणित, गण्य] (१) गिनना। (२) गिनती।

गणना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गिनती। शुमार। (२) हिसाब। (३) संख्या। (४) केशव के मत से एक अलंकार जिसमें एक ही संख्या बार बार आई हो। उ०—(क) एक आत्मा चक्र रवि, एक शुक्र की दिष्टि। एकै दशन गणेश को, जानति सगरी सृष्टि। (ख) गंगामग गंगेश दृग ग्रीव रेख गुण लेखि। पावक काल त्रिशूल बलि, संध्या तीनि विसेखि।

गणनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणों का मालिक। (२) गणेश। (३) शिव।

गणनायक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गणनायिका] (१) गणेश। (२) शिव।

गणनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

गणनीय—वि० [सं०] (१) गिनने योग्य। गिनती के योग्य। (२) नामी। प्रसिद्ध।

गणप—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

गणपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणों का मालिक वा स्वामी। (२) गणेश। (३) शिव।

गणपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] वह पर्वत जहाँ प्रमथ वा शिव के गण रहते हों। कैलास।

गणपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक ग्रंथ का नाम जिसमें अष्टाध्यायी में आए हुए गणों के अंतर्गत शब्दों को प्रत्येक गण में दिखलाया है।

गणराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह राज्य जो किसी एक राजा के अधीन न हो बल्कि प्रजा में से चुने हुए मुखियों वा गणों के द्वारा चलाया जाता है। (२) एक देश जो बृहत्संहिता के अनुसार उत्तराफाल्गुनी, हस्त और चित्रा के अधिकार में है।

गणवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन्वंतरि दिवोदास की माता का नाम।

गणाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणों का मालिक वा अधिपति। (२) गणेश। (३) जैनों के अनुसार साधुओं के समुदाय में जो सब से श्रेष्ठ वा वृद्ध हो। साधुओं का अधिपति वा महंत।

गणाध्यक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणों का स्वामी। (२) गणेश। (३) शिव।

गणिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेश्या। (२) गनियार वृक्ष। (३) एक फूल जो चमेली की तरह का होता है। (४) नायिका के तीन भेदों में से एक। वह नायिका वा स्त्री जो द्रव्य के लोभ से नायक से प्रीति रक्खे।

गणिकारिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियार का पेड़।

गणिकारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियार का पेड़।

गणित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शास्त्र जिसमें मात्रा संख्या और परिमाण का विचार हो। इसमें निर्धारित नियमों और क्रियाओं द्वारा ज्ञात मात्राओं, संख्याओं वा परिमाणों के संबंध के आधार पर अज्ञात मात्रा, संख्या और परिमाण का निश्चय किया जाता है। अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति, कोणमिति, आदि इसकी शाखाएँ हैं।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) हिसाब।

गणितज्ञ–वि० [सं०] (१) गणित शास्त्र जाननेवाला। हिसाबी। (२) ज्योतिषी।

गणेश–संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के एक देवता जिन का सारा शरीर मनुष्य का है पर सिर हाथी का सा है। इनके चार हाथ और एक दाँत है। तोंद निकली हुई है। सिर में तीन आँखें और ललाट पर अर्धचंद्र हैं। ये महादेव के पुत्र माने जाते हैं। इनकी सवारी चूहा है। पुराणों में लिखा है कि पहले इनका सिर मनुष्य का सा था पर शनैश्चर की दृष्टि पड़ने से इनका सिर कट गया। इस पर विष्णु ने एक हाथी का सिर काट कर धड़ पर जोड़ दिया। इसके पीछे ये एक बार परशुराम जी से भिड़े जिस पर परशुराम जी ने एक दाँत परशु से तोड़ डाला। किसी किसी पुराण में लिखा है कि दाँत रावण ने उखाड़ा था। किसी के मत से वीरभद्र या कार्त्तिकेय ने दाँत तोड़ा था। इसी प्रकार सिर कटने के विषय में भी मतभेद है। गणेश महादेव के गणों के अधिपति हैं। पुराणों का कथन है कि जो शुभकार्यों के आरंभ में इनकी पूजा नहीं करता उसके काम में ये विघ्न कर देते हैं। इसी लिये समस्त मंगल कामों में इनकी पूजा होती है। यह लेखक भी बड़े हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि व्यास के महाभारत को पहले पहल इन्हीं ने लिखा था। इनके हाथों में पाश, अंकुश, पद्म और परशु है। ये हिंदुओं के पंचदेवों अर्थात् पाँच प्रधान देवताओं में हैं।

पर्य्या०—विनायक। विघ्नराज। द्वैमातुर। गणाधिप। एकदंत। हेरंब। लंबोदर। गजानन। विघ्नेश। परशुपाणि। गजास्य। आखुग। शूर्पकर्ण। गजानन।

वि० गणों का मालिक। गण का स्वामी। गण में जो प्रधान हो।

गणेशकुसुम–संज्ञा पुं० [सं०] लालकनेर।

गणेशक्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] योग की एक क्रिया जिसमें उँगली आदि की सहायता से गुदा का मल साफ़ करते हैं।

गणेशचतुर्थी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों और माघ की शुक्ला चतुर्थी। इस दिन गणेश का व्रत और पूजन किया जाता है।

गणेशपुराण–संज्ञा पुं० [सं०] एक उप पुराण का नाम।

गणेशभूषण–संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर।

गण्य–वि० [सं०] (१) गिनने के योग्य। गिनती के लायक़। (२) जिसकी पूछ हो। जिसे लोग कुछ समझें। प्रतिष्ठित।

यौ०—गण्यमान्य = प्रतिष्ठित।

गतंडा†–संज्ञा पुं० [सं० गताण्ड] [स्त्री० गतंडी] हिजड़ा। नपुंसक। (मारवाड़ी)।

गत–वि० [सं०] (१) गया हुआ। बीता हुआ। जैसे, गत मास, गत दिन, गत वर्ष।

विशेष—समस्त पद के आदि में यह शब्द 'गया हुआ,' 'रहित,' 'शून्य' का अर्थ देता है और अंत में 'प्राप्त', 'आया हुआ', 'पहुँचा हुआ' का अर्थ देता है। जैसे, गतप्राण, गतायु तथा कंठगत, कुक्षिगत। उ०—अंजलि-गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ।—तुलसी।

मुहा०—गत होना = मरना। मर जाना।

(२) रहित। हीन। खाली। उ०—सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [सं० गति] (१) अवस्था। दशा। हालत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—गत का = काम का। अच्छा। भला। उ०—गत का कपड़ा भी तो उसके पास नहीं। गत बनाना = (१) दुर्दशा करना। दुर्गति करना। (२) अपमान करना। डाँटना डपटना। मारना पीटना। दंड देना। ख़बर लेना। उ०—घर पर जाओ, देखो तुम्हारी कैसी गत बनाई जाती है। (३) हँसी ठट्ठे में लज्जित करना। उपहास करना। झिपाना। उल्लू बनाना। उ०—वे अपने को बड़ा बोलनेवाला लगाते थे, कल उनकी भी खूब गत बनाई गई।

(२) रूप। रंग। वेष। आकृति।

मुहा०—गत बनाना = (१) रूप रंग बनाना। वेष धारण करना। उ०—तुमने अपनी क्या गत बना रक्खी है। (२) अद्भुत रूप रंग बनाना। आकृति बिगाड़ना। उ०—होली में उनकी खूब गत बनाई जायगी।

(३) सुगति। उपयोग। काम में लाना। उ०—ये आम रखे हुए हैं, इनकी गत कर डालो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(४) दुर्गति। दुर्दशा। नाश। उ०—तुमने तो इस किताब की गत कर डाली।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(५) मृतक का क्रिया-कर्म। (६) संगीत में बाजों के कुछ बोलों का क्रमबद्ध मिलान।

क्रि० प्र०—निकालना।—बजाना।

(७) नृत्य में शरीर का विशेष संचालन और मुद्रा। नाचने का ठाट। जैसे, मोर की गत, थाली की गत, झुरमुट की गत।

क्रि० प्र०—भरना।

गतका–संज्ञा पुं० [सं० गदा वा गदक] (१) लकड़ी का एक डंडा जिसके ऊपर चमड़े की खोल चढ़ी रहती है। यह डंडा ढाई तीन हाथ लंबा होता है जिसमें प्रायः दस्ता भी लगा रहता है। लोग इसे लेकर खेलते हैं। खेलते समय दो खेलाड़ी परस्पर खेलते हैं। खेलनेवाले दाहने हाथ में गतका और बायें हाथ में फरी रखते हैं। गतके की वार को विपक्षी फरी से रोकता है और रोक न सकने की अवस्था में चोट वा मार खाता है। कभी कभी खेलाड़ी केवल गतके ही से खेलते हैं उस समय में खेल को एकंगी कहते हैं। (२) वह खेल जो फरी गतके से खेला जाता है।

गतकुल–संज्ञा पुं० [सं०] वह संपत्ति जिसका कोई अधिकारी न बचा हो। लावारसी माल वा जायदाद।

गतप्रत्यागत–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल के साठ भेदों में एक।

गतप्रत्यागता–संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मशास्त्र में वह स्त्री जो अपने पति के घर से उसकी आज्ञा के बिना निकल कर चली गई हो और फिर कुछ दिन बाद यथेच्छ बाहर रह कर अपने पति के घर लौट आई हो। ऐसी स्त्री के साथ उसके पूर्व पति का शास्त्रानुसार पुनर्विवाह संस्कार होना लिखा है।

गतांक–वि० [सं०] जिसमें सत्पुरुष के चिह्न अब न रह गए हों। गया बीता। निकम्मा। उ०—जाति का रग्घू ब्राह्मण था पर कदर्यता में अत्यंत पामर महाशूद्र से भी गतांक केवल नामधारी ब्राह्मण था।—सौ अजान और एक सुजान।

गतागत–वि० [सं०] आया गया।

संज्ञा पुं० [सं०] आवागमन। जन्म मरण।

गतार†–संज्ञा स्त्री० [सं० गंत्री] (१) बैल के जुए में वे दोनों लकड़ियाँ जो उपरौंछी और तरौंछी के बीच समानांतर लगी रहती हैं। इन लकड़ियों के इधर उधर बैल नाधे जाते हैं। (२) वह रस्सी जो जूए में बैल नाधने पर बैलों के गले के नीचे से ले जाकर लगा दी जाती है जिससे बैल जूए को सहसा छोड़ नहीं सकते। (३) वह रस्सी जिससे बोझ बाँधा जाता है। जून।

गतारि†–संज्ञा स्त्री० दे० "गतार"।

गतार्तवा–वि० स्त्री० [सं०] (१) जिसे ऋतु वा रजो दर्शन न होता हो। (२) वंध्या। (३) वृद्धा।

गति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक स्थान से दूसरे स्थान पर क्रमशः जाने की क्रिया। निरंतर स्थान-त्याग की परंपरा। चाल। गमन। उ०—वह बड़ी मंद गति से जा रहा है। (२) हिलने डोलने की क्रिया। हरकत। उ०—उसकी नाड़ी की गति मंद है। (३) अवस्था। दशा। हालत। उ०—भइ गति साँप छछूंदर केरी।—तुलसी। (४) रूप रंग। वेष। उ०—तन खीन, कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे।—तुलसी। (५) पहुँच। प्रवेश। पैठ। दखल। उ०—(क) मनुष्य की क्या बात वहाँ तक वायु की गति भी नहीं है। (ख) राजा के यहाँ तक उनकी गति कहाँ। (ग) इस शास्त्र में उनकी गति नहीं है। (६) प्रयत्न की सीमा। अंतिम उपाय। दौड़। तदबीर। उ०—उसकी गति बस यहीं तक थी, आगे वह क्या कर सकेगा? (७) सहारा। अवलंब। शरण। उ०—तुमहिं छाँड़ि दूसरि गति नाहीं। बसहु राम तिनके उर माहीं।—तुलसी। (८) चाल। चेष्टा। करनी। क्रिया कलाप। प्रयत्न। उ०—उसकी गति सदा हमारे प्रतिकूल रहती है। (९) लीला। विधान। माया। उ०—दयानिधि तेरी गति लखि न परे।—सूर। (१०) ढंग। रीति। चाल। दस्तूर। उ०—वहाँ की तो गति ही निराली है। (११) जीवात्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन।

विशेष—हिंदू शास्त्रों के अनुसार जीव की तीन गतियाँ हैं। ऊर्ध्वगति (देवयोनि), मध्यगति (मनुष्य योनि) और अधोगति (तिर्य्यकयोनि)। जैन शास्त्रों में गति पाँच प्रकार की है—नरकगति, तिर्य्यग्गति, मनुष्यगति, देवगति, और सिद्धगति।

(१२) मृत्यु के उपरांत जीवात्मा की दशा। उ०—(क) गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्हीं जो जाँचत जोगी।—तुलसी। (ख) साधुन की गति पावत पापी।—केशव। (१३) मृत्यु के उपरांत जीवात्मा की उत्तम दशा। मोक्ष। मुक्ति। उ०—(क) पापियों की गति नहीं होती। (ख) हे हरि कौन दोष तोहि दीजै। जेहि उपाय सपने दुर्लभ गति सोइ निसि बासर कीजै।—तुलसी। (१४) कुश्ती आदि के समय लड़नेवालों के पैर की चाल। पैतरा। उ०—जे मल्ल युद्धहि पेंच बत्तिस गतिहु प्रत्यगतादि। ते करत लंकानाथ बानरनाथ ह्वै न प्रमादि।—रघुराज। (१५) ग्रहों की चाल जो तीन प्रकार की होती है, शीघ्र, मंद और उच्च। (१६) ताल और स्वर के अनुसार अंग-चालन। उ०—(क) सब अँग करि राखी सुघर नायक नेह सिखाय। रस जुत लेति अनंत गति पुतरी पातुर राय।—बिहारी। (ख) कबहिँ अरथ आखर बल साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा।—तुलसी। (१७) सितार आदि बजाने में कुछ बोलों का क्रमबद्ध मिलान। दे० "गत (६)"।

गतिमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य में एक प्रकार का अंगहार।

गतिया†–संज्ञा स्त्री० [हिं० गत + इया (प्रत्य०)] तबलची।

गतिविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित और विज्ञान का वह विभाग जिस में द्रव्य की क्षमता वा गति संबंधी सिद्धांत निर्धारित किए जाते हैं।

गत्ता–संज्ञा पुं० [देश०] कागज़ के कई परतों को साट कर बनाई हुई दफ़्ती जो प्रायः जिल्द आदि बाँधने के काम आती है। कुट।

गत्तालखाता–संज्ञा पुं० [सं० गर्त्त, प्रा० गत्त + हिं० खाता] बट्टा-खाता। गई बीती रक़म का लेखा।

मुहा०—गत्तालखाते में जाना = हज़म हो जाना। हड़प हो जाना। उ०—हमने जो १०) पेशगी दिए वह सब गत्तालखाते में गए। गत्तालखाते लिखना = हज़म हुआ समझना। गया डूबा समझना।

गत्थ*–संज्ञा स्त्री० दे० "गथ"।

गत्वर–वि० [सं०] [स्त्री० गत्वरी] (१) जानेवाला। गमनशील। (२) क्षणिक। नाशवान्।

गत्वरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो ८० हाथ लंबी, १० हाथ चौड़ी और ८ हाथ ऊँची होती थी और समुद्रों में चलती थी।

गथ*–संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ, प्रा० गत्थ] (१) पूँजी। जमा। गाँठ का धन। उ०—(क) चिंता न करु अचिंत रहु देनहार समरत्थ। पसू पखेरू जंतु जिव, तिनकी गाँठि न गत्थ।—कबीर। (ख) अति मलीन वृषभानु कुमारी। हरि श्रम जल अंतर तनु भींजे ता लालच न धुवावति सारी। अधोमुख रहति उरध नहिँ चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।—सूर। (ग) बाजार चारु न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइये।—तुलसी। (२) माल। उ०—मेरे इन नयनन इते करे। मोहन बदन चकोर चंद्र ज्यों इकटक तें न टरे।.........रही तडी खिजि लाज लकुट लै एकहु डर न डरे। सूरदास गथ खोटो काहे पारखि दोष धरे?—सूर। (३) झुंड। गरोह। उ०—फटकारि सेलहिँ हत्थ मैं। हय हांकियौ अरि गत्थ मैं।—सूदन।

गथना*–क्रि० स० [सं० ग्रन्थन] एक को दूसरे से मिलाना। एक में एक जोड़ना। आपस में गूथना। उ०—रथ ते रथ गथि मार मचावहिँ। भट ते भँट फिर तनहिँ नचावहिँ।—गोपाल।

गद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष। (२) रोग। (३) श्रीकृष्णचंद्र का छोटा भाई। यह भगवान् का भक्त था। उ०—(क) चल्यो द्रुपद नृप विसद घोर मदमत्त बीर बर। सँग पदचर हय दुरद हिये गदबंधु बैर धर।—गोपाल। (ख) सात्यकि दानपती कृतवर्मा। गद उल्मुक निसठहु धृतवर्मा।—रघुराज।

यौ०—गदाग्रज = कृष्ण। गदबंधु = कृष्ण।

(४) रामचंद्रजी की सेना का सेनापति एक वानर। उ०—संग नील नल कुमुद गद जामवंत जुवराजु। चले रामपद नाइ सिर सगुन सुमंगल साजु।—तुलसी। (५) एक असुर का नाम।

संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो किसी गुलगुली वस्तु पर वा गुलगुली वस्तु के आघात लगने से होता है। जैसे, पीठ पर गेंद गद से गिरा।

यौ०—गदागद = एक के ऊपर एक। लगातार (आघात)।

गदका†–संज्ञा पुं० दे० "गतका"।

गदकारा–वि० पुं० [अनु० गद + कार (प्रत्य०)] [स्त्री० गदकारी] गुलगुला। गुदगुदा। मुलायम और दबाने से दब जानेवाला। उ०—गोरी गदकारी परै, हँसत कपोल न गाड। कैसी लसति गँवारि यह, सुनकिरवा की आड।—बिहारी।

गदगद*–वि० दे० "गद्गद"।

गदगदा†–संज्ञा पुं० [देश०] रत्ती का पौधा।

गदचाम–संज्ञा पुं० [सं० गदचर्म] हाथी का एक रोग जिसमें उसकी पीठ पर घाव हो जाता है।

गदना*–क्रि० स० [सं० गदन] कहना। उ०—गदेउ गिरा गीर्वाणन सों गुणि बहुरि बतावहु बाता। कौन उपाय पाय सुर ऋषि गुणि करहिँ लंकपति घाता।—रघुराज।

गदम–संज्ञा पुं० [अ० क़दम या देश०] वह लकड़ी या कड़ी जो नाव बनाने या मरम्मत करने के समय उसके पेंदे में दोनों ओर इस लिये लगा देते हैं कि जिसमें वह इधर उधर गिर न पड़े। थाम। आड़। पुश्ता।

क्रि० प्र०—लगाना।

ग़दर–संज्ञा पुं० [अ०] (१) हलचल। खलबली। उपद्रव। (२) बलवा। बग़ावत। विद्रोह।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

गदर–संज्ञा पुं० [हिं० गद्दा] पुष्टिमार्ग के अनुसार एक प्रकार की रूईदार बगलबंदी जो जाड़े में ठाकुर जी को पहनाते हैं।

गदरा–वि० दे० "गद्दर"।

गदराना–क्रि० अ० [अनु० गद] (१) (फल आदि का) पकने पर होना। परिपक्व होने के निकट होना। उ०—इस पेड़ के फल ख़ूब गदराए हैं। (२) जवानी में अंगों का भरना। युवावस्था के आरंभ में शरीर का पुष्ट और सुडौल होना। जैसे, गदराया बदन। (३) आँख में कीचड़ आदि आना। आँख आने पर होना। जैसे, आँख गदराना।

गदला–वि० [फ़ा० गंदा] मटमैला। गंदा। मिट्टी या कीचड़ मिला हुआ। (पानी के लिये)

गदलाना–क्रि० स० [हिं० गदला] गदला करना। मटमैला करना। (पानी के लिये)

क्रि० अ० गदला होना। मटमैला होना।

गदहपचीसी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गदहा + पचीसी] प्रायः १६ से २५ वर्ष तक की अवस्था जिसमें लोगों का विश्वास है कि मनुष्य अननुभवी रहता है और उसकी बुद्धि अपरिपक्व होती है। उ०—सच पूछो तो विचार के अवकाश उमर के धँसने ही पर मिलता है, गदह पचीसी प्रसिद्ध है।—हिंदी प्रदीप।

गदहपन–संज्ञा स्त्री० [हिं० गदहा + पन (प्रत्य०)] मूर्खता। बेवकूफ़ी।

गदहपूरना–संज्ञा स्त्री० [सं० गदह = रोग हरनेवाला + पुनर्नवा] पुनर्नवा नाम का पौधा जो दवा के काम में आता है। दे० "पुनर्नवा"।

गदहरा*†–संज्ञा पुं० (१) दे० "गदहा"। (२) दे० "गदेला"।

गदहला–संज्ञा पुं० दे० "गदहिला"।

गदहलोट–संज्ञा स्त्री० [हिं० गदहा = गधा + लोटना] कुश्ती का एक पेंच।

गदहलोटन–संज्ञा पुं० [हिं० गदहा + लोटना] (१) थकावट मिटाने या प्रसन्नता आदि के लिये गदहे का ज़मीन पर लोटना। (२) वह स्थान जहाँ पर गदहा लोटता है।

विशेष—साधारणतः लोगों का विश्वास है कि ऐसे स्थान पर पैर रखते ही मनुष्य थक जाता है और उस के पैरों में दर्द होने लगता है।

गदहहेंचू–संज्ञा पुं० [हिं० गदहा + हेंचू (गदहे की बोली)] लड़कों का एक खेल जिसमें एक लड़का एक दूसरे लड़के की आँखें बंद करके बैठ जाता और उस लड़के से शेष इधर उधर छिपे हुए लड़कों का पता पूछता है। जिन लड़कों का पता वह ठीक बतला दे उन्हें "गदही" और जिन्हें ठीक न बतला सके उन्हें "गदहा" कहते हैं। पीछे "गदहे" एक एक करके "गदहियों" पर चढ़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं। इस खेल को "गदहा गदही" भी कहते हैं।

गदहा–संज्ञा पुं० [सं०] रोग हरनेवाला। वैद्य। चिकित्सक।

संज्ञा पुं० [सं० गर्दभ, प्रा० गद्दह] [स्त्री० गदही] (१) घोड़े के आकार का पर उससे कुछ छोटा एक प्रसिद्ध चौपाया जो प्रायः मटमैले रंग का और दो हाथ ऊँचा होता है। इसका कान और सिर अपेक्षाकृत बड़ा होता है और पैर छोटे और बहुत मज़बूत होते हैं, जिनके कारण यह ऊँची या ढालुआँ ज़मीन पर बड़ी सरलता से चल सकता है। यह बहुत मज़बूत होता है और बहुत अधिक बोझ उठा सकता है। इस देश में इन से प्रायः धोबी, कुम्हार आदि अधिक काम लेते हैं। जंगली गदहे, जो कि प्रायः मध्य एशिया और फ़ारस आदि में झुंड बाँध कर रहते हैं अधिक चपल होते हैं, पर पालतू गदहे बोदे होते हैं। किसी किसी देश के गदहे सफ़ेद रंग के या घोड़े से बड़े भी होते हैं। फ़ारस में गदहे का शिकार किया जाता है और लोग उसका मांस बड़ी रुचि से खाते हैं। इसकी अवस्था प्रायः २० से २५ वर्ष तक की होती है। यूरोप आदि देशों में इनके चमड़े के जूते और थैले आदि बनते हैं। घोड़ी के साथ गदहे का अथवा गदही के साथ घोड़े का संयोग होने से खच्चर की उत्पत्ति होती है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस कुछ भारी और बलप्रद होता है और इसका मूत्र कड़ुआ, गरम और कफ़, महावात, विष तथा उन्माद का नाशक और दीपक माना गया है। गधा। गर्दभ। खर।

पर्य्या०—चक्रीवान। बालेय। रासभ। खर। शंककर्ण। धूसर। भारग। वेशव। शीतलावाहन। वैशाखनंदन।

यौ०—गदहलोटन। गदहहेंचू।

मु०—गदहे पर चढ़ाना = बहुत बेइज़्ज़त या बदनाम करना। गदहे का हल चलना = बिलकुल उजड़ जाना। बरबाद हो जाना। उ०—वहाँ कुछ दिनों में गदहों के हल चलेंगे।

(२) मूर्ख। बेवकूफ़। नासमझ।

यौ०—गदहपचीसी।

गदहागदही–संज्ञा स्त्री० दे० "गदहहेंचू"।

गदहिया†–संज्ञा स्त्री० [हिं० गदहा] गदही।

गदहिला–संज्ञा पुं० [सं० गर्दभी, पा० गद्रभी, प्रां० गद्दही] [स्त्री० गदहिली] (१) वह गदहा जिस पर ईंट सुरखी आदि लादते हैं। (२) गोबड़ौरे की तरह का एक विषैला कीड़ा जो चने आदि की फ़सल में लग कर उसे नष्ट करता है।

गदांबर–संज्ञा पुं० [सं०] मेघ।

गदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्राचीन अस्त्र का नाम जो लोहे का होता है। इसमें लोहे का एक डंडा होता है जिसके एक सिरे पर भारी लट्टू लगा रहता है। इसका डंडा पकड़ कर लट्टू की ओर से शत्रु पर प्रहार करते हैं। (२) कसरत के सामानों में से एक, जिसमें बाँस के एक मज़बूत डंडे के सिरे पर पत्थर का गोला छेद कर लगाते और उसे मुद्गर की भाँति भाँजते हैं। लोढ़

गदाई–वि० [फ़ा० गदा = फ़कीर + ई० (प्रत्य०)] (१) तुच्छ। नीच। क्षुद्र। (२) वाहियात। रद्दी।

गदाका†–वि० [हिं० गद] गुदार और सुडौल शरीरवाला।

संज्ञा पुं० किसी को उठाकर ज़मीन पर पटकने की क्रिया।

मुहा०—गदाका सुनाना = झिड़की सुनाना। फटकारना।

गदाधर–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु। नारायण।

विशेष—विष्णु ने गदासुर नामक राक्षस की हड्डियों से एक गदा बना कर धारण की, इसी से उनका नाम गदाधर पड़ा।

वि० गदा धारण करनेवाला। जिसके पास गदा हो।

गदाला–संज्ञा पुं० [हिं० गद्दा] हाथी पर कसने का गद्दा।

गदावारण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रचीन बाजा, जिसमें तार लगा रहता था।

गदित–वि० [सं०] कहा हुआ। कथित।

गदी–वि० [सं० गदिन्] [स्त्री० गदिनी] (१) रोगी। (२) जो गदा लिए हो। जिसके पास गदा हो।

गदेला–संज्ञा पुं० [हिं० गद्दा] (१) रूई या पर आदि से भरा हुआ बहुत मोटा ओढ़ना या बिछौना। (२) टाट का बना हुआ वह मोटा और भारी गद्दा जो हाथी की पीठ पर कसा जाता है।

†[देश०] छोटा लड़का। बालक।

गदोरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० गद्दी] हथेली।

गद्गद–वि० [सं०] (१) अत्यधिक हर्ष, प्रेम, श्रद्धा आदि के आवेग से इतना पूर्ण कि अपने आपको भूल जाय और स्पष्ट शब्द उच्चारण न कर सके। (२) अधिक हर्ष, प्रेम आदि के कारण रुका हुआ, अस्पष्ट या असंबद्ध। जैसे, गद्गद वाणी। गद्गद कंठ। (३) प्रसन्न। आनंदित। पुलकित।

संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जिसमें रोगी शब्दों का स्पष्ट उच्चारण न कर सके अथवा उसके दोषवश एक एक अक्षर का कई कई बार उच्चारण करे। यह रोग या तो जन्म से होता है या बीच में लकवे आदि के कारण हो जाता है। हकलाना।

गद्द–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) मुलायम जगह पर किसी चीज़ के गिरने का शब्द। (२) किसी गरिष्ट या जल्दी न पकनेवाली चीज़ के कारण पेट का भारीपन।

मुहा०—(किसी चीज का) गद्द करना = (किसी चीज का) पेट में जाकर न पचना और जम जाना। गद्द धरना = गद्द का रोग होना।

(३) एक कल्पित लकड़ी जिसके विषय में गँवारों का विश्वास है कि वह जिसे स्पर्श करा दी जाय उसे मूर्ख बना देती अथवा स्पर्श करानेवाले के वश में कर देती है।

मुहा०—गद्द मारना = अपने वश में करना। गद्द मारा जाना = जड़ हो जाना। बेवकूफ़ बन जाना।

वि० जड़। मूर्ख। बेवकूफ़।

गद्दम–संज्ञा पुं० [देश०] पीले रंग की एक छोटी चिड़िया जिसका पैर सफ़ेद और पेट लाल होता है।

गद्दर–वि० [देश०] (१) जो अच्छी तरह पका न हो। अधकचरा। अधपका। (२) मोटा गद्दा।

गद्दा–संज्ञा पुं० [हिं० गद्द से अनु०] (१) रूई पयाल आदि भरा हुआ बहुत मोटा और गुदगुदा बिछौना। भारी तोशक आदि। गदेला। (२) टाट का बना हुआ फुट भर मोटा एक चौकोर बिछावन जिसके बीच में प्रायः गज भर लंबा एक छेद होता है और जो हाथी की पीठ पर हौदा कसने से पहले रख कर बाँधा जाता है।

क्रि० प्र०—कसना।—खींचना।

(३) घास, पयाल, रूई आदि मुलायम चीजों का बोझ। (४) किसी मुलायम चीज की मार या ठोकर।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना

संज्ञा पुं० दे० "गदहिला"।

गद्दी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गद्दा का स्त्री० और अल्प०] (१) छोटा गद्दा। (२) वह कपड़ा जो घोड़े, ऊँट आदि की पीठ पर काठी या जीन आदि रखने के लिये डाला जाता है। (३) व्यवसायी आदि के बैठने का स्थान। जैसे, सराफ़ की गद्दी, कलवार की गद्दी। (४) किसी बड़े अधिकारी का पद। जैसे, राजा की गद्दी, महंत की गद्दी। उ०—इंद्र ने.........देवताओं के देखते मुझे अपनी गद्दी पर बिठाया।—लक्ष्मणसिंह।

यौ०—राजगद्दी। गद्दीनशीन।

मुहा०—गद्दी पर बैठना = (१) सिंहासनारूढ़ होना। (२) उत्तराधिकारी होना। गद्दी लगा कर बैठना = अधिकार जताते हुए आराम के साथ बैठना।

(५) किसी राजवंश की पीढ़ी वा आचार्य्य की शिष्य परंपरा। जैसे, (क) चार गद्दी के बाद इस वंश में कोई न रहेगा। (ख) यह......गुरु की चौथी गद्दी है।

मुहा०—गद्दी चलाना = वंशपरंपरा वा शिष्यपरंपरा का जारी होना। उत्तराधिकारियों का क्रम चलना।

(६) कपड़े आदि की बनी हुई वह मुलायम तह जो किसी चीज़ के नीचे रखी जाय। (७) हाथ या पैर की हथेली।

मुहा०—गद्दी लगाना = घोड़े को हथेली या कुहनी से मलना।

(८) एक प्रकार का मिट्टी का गोल बरतन जिसमें छीपी रंग रख कर छपाई का काम करते हैं।

गद्दीनशीन–वि० [हिं० गद्दी + फ़ा० नशीन] (१) सिंहासनारूढ़। जिसे राज्याधिकार मिला हो। (२) उत्तराधिकारी।

गद्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह लेख जिसमें मात्रा और वर्ण की संख्या और स्थान आदि का कोई नियम न हो। वार्तिक। वचनिका। पद्य का उलटा। (२) काव्य के दो भेदों में से एक जिस में छंद और वृत्त का प्रतिबंध नहीं होता और बाकी रस अलंकार आदि सब गुण होते हैं। अग्निपुराण में गद्य तीन प्रकार का माना गया है—चूर्णक, उत्कलिका और वृत्तगंधि। चूर्णक वह है जिस में छोटे छोटे समास हों। उत्कलिका वह है जिस में बड़े बड़े समस्त पद हों और वृत्तगंधि वह है जिस में कहीं कहीं पद्य का सा आभास हो। जैसे, हे बनवारी, कुंजविहारी, कृष्णमुरारी, यशोदानंदन हमारी विनती सुनो। वामन ने भी अपने वामन-सूत्र में ये ही तीन भेद माने हैं। विश्वनाथ महापात्र ने साहित्यदर्पण में एक और भेद मुक्तक माना है जिसमें कोई समास नहीं होता। ये भेद तो पद योजना वा शैली के अनुसार हुए। साहित्यदर्पण के अनुसार गद्य काव्य दो प्रकार का होता है—कथा और आख्यायिका। कथा वह है जिसमें सरस प्रसंग हो, सज्जनों और

खलों के व्यवहार आदि का वर्णन हो, आरंभ में पद्यबद्ध नमस्कार हो। आख्यायिका में केवल इतनी विशेषता होती है कि उसमें कवि के वंश आदि का भी वर्णन होता है। गद्य के विषय में प्राचीनों के ये सब विवेचन आज कल उतने काम के नहीं हैं। (३) संगीत में शुद्ध राग का एक भेद।

गद्याणक–संज्ञा पुं० [सं०] कलिंग देश का एक प्राचीन मान जो ४८ रत्ती वा ६४ घुँघचियों का होता था।

गद्यात्मक–वि० [सं०] [स्त्री० गद्यात्मिका] गद्य का। गद्य में लिखा वा रचा हुआ।

गधा–संज्ञा पुं० [हिं० गदहा] [स्त्री० गधी] गदहा।

गधीला–संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० गधीली] एक जंगली जाति। संज्ञा पुं० दे० "गदहिला"।

गधूल–संज्ञा पुं० [?] एक फूल का नाम।

गन*–संज्ञा पुं० दे० "गण"।

गनक*–संज्ञा पुं० दे० "गणक"।

गनकेरुआ–संज्ञा पुं० [सं० गणककर्णिका] एक घास जो गाय भैंस के चारे के काम में आती है।

गनगौर–संज्ञा स्त्री० [सं० गण + गौरी] चैत्र शुक्ला तृतीया। इस दिन गणेश और गौरी की पूजा होती है।

गनती|*–संज्ञा स्त्री० दे० "गिनती"।

गनना|–क्रि० स० दे० "गिनना"।
संज्ञा स्त्री० दे० "गणना"।

गनगनाना|–क्रि० अ० [अनु० गन, गन] (१) गूँजना। शब्द से भर जाना। उ०–छुटे बान कुह कुह कुह बोला। नभ गननाइ उठे गुरु गोला।–लाल। (२) घूमना। फिरना। चक्कर में आना।

गननायक*–संज्ञा पुं० दे० "गणनायक"।

गनप*–संज्ञा पुं० दे० "गणप"।

गनपति–संज्ञा पुं० दे० "गणपति"।

गनराय*–संज्ञा पुं० [सं० गणराज] गणेश।

गनवर|संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँठ + वारी (प्रत्य०)] एक घास। नरकट।

गनिका*–संज्ञा स्त्री० दे० "गणिका"।

गनियारी–संज्ञा स्त्री० [सं० गणिकारी] सभी की तरह का एक पौधा वा झाड़ जिसे अरेंथ वा छोटी अरनी (अरणी) भी कहते हैं। इसकी पत्तियां बबूल की पत्तियों से चौड़ी और गोलाई लिए होती हैं। इसमें सफ़ेद फूल और करौंदे के समान छोटे छोटे फल लगते हैं। इसकी लकड़ी रगड़ने से आग जल्दी निकलती है इसीसे इसे क्षुद्राग्निमंथ कहते हैं। वैद्यक में गनियारी कटु, उष्ण, अग्निदीपक, और वातनाशक मानी जाती है।

गनी–वि० [अ०] धनी। धनवान्। उ०–(क) गनी, गरीब, ग्राम नर नागर।–तुलसी। (ख) सब भाँति विभीषन की बनी। कियो कृपाल अभय कालहु ते गइ संसृति साँसति घनी।........रंक निवाज रंक राजा किये गये गरब गरि गरि गनी।–तुलसी।

ग़नीम–संज्ञा पुं० [अ०] (१) लुटेरा। डाकू। (२) बैरी। शत्रु। उ०–अक बक बोलै यों गनीम औ गुनाही है।–पद्माकर।

ग़नीमत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लूट का माल। वह माल जो बिना परिश्रम मिले। मुफ़्त का माल। उ०–उससे जो कुछ मिल जाय वही ग़नीमत है।

क्रि० प्र०–जानना।–समझना।

(२) संतोष की बात। धन्य मानने की बात। बड़ी बात। उ०–किसी तरह पेट पाल लें यही ग़नीमत है।

मुहा०–किसी का दम ग़नीमत होना = किसी का बना रहना। किसी के लिये अच्छा होना। किसी के जीवन से किसी प्रकार की भलाई होना।

गनेल–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो छप्पर छाने के काम में आती है।

गनोरिया–संज्ञा स्त्री० [लै०] सूजाक।

गनौरी–संज्ञा स्त्री० [सं० गुन्द्रा] नागरमोथा।

गन्ना–संज्ञा पुं० [सं० काण्ड] ईख। ऊख।

गन्नी–संज्ञा पुं० [हिं० गोन या गून = रस्सी] (१) पाट का टाट जिसके बोरे आदि बनते हैं। (२) भँगरा की तरह का एक कपड़ा जो सिकिम में बनता है। यह रीहा घास वा उसी तरह के और पौधों की छाल से बनता है।

गप–संज्ञा स्त्री० [सं० कल्प, प्रा० कप्प] [वि० गप्पी] (१) इधर उधर की बात जिसकी सत्यता का निश्चय न हो। वह बात जो केवल जी बहलाने के लिये की जाय। वह बात जो किसी प्रयोजन से न की जाय। बकवाद।

क्रि० प्र०–मारना।

यौ०–गप शप = इधर उधर की बातें। वार्तालाप।

(२) झूठी बात। मिथ्या प्रसंग। कपोल-कल्पना। उ०–यह सब गप है, एक बात भी ठीक नहीं है। (३) झूठी ख़बर। मिथ्या संवाद। अफ़वाह।

मुहा०–गप उड़ना = झूठी ख़बर फैलाना।

(४) वह झूठी बात जो बड़ाई प्रकट करने के लिये की जाय। डींग।

क्रि० प्र०–मारना।–हाँकना।

संज्ञा पुं० [अनु०] (१) वह शब्द जो झट से निगलने, किसी नरम अथवा गीली वस्तु में घुसने वा पड़ने आदि से होता है। उ०–(क) वह मिठाई गप से खा गया। (ख) घाव में इतनी सलाई गप से घुस गई।

यौ०–गपागप = जल्दी जल्दी। झटपट।

विशेष–इस प्रकार के और अनुकरण शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी प्रकार सूचित करने के लिये प्रायः "से" के साथ होता है।

(२) निगलने वा खाने की क्रिया। भक्षण। उ०—(क) सब मत गप कर जावो, हमारे खाने के लिये भी रहने दो। (ख) मीठा मीठा गप, कड़ुआ कड़ुआ थू।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गपकना–क्रि० स० [अनु० गप + हिं० करना] चटपट निगलना। झट से खा लेना। उ०—वह थाली में का सब भात गपक जायगा।

गपछैया–संज्ञा स्त्री० [?] रेगमाही।

गपड़चौथ–संज्ञा पुं० [हिं० गपोड़ = बात चीत + चौथ] व्यर्थ की गोष्ठी। वह व्यर्थ की बात चीत जो चार आदमी मिल कर करें।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

वि० लीप पोत। अंड बंड। ऊटपटाँग।

गपना*–क्रि० स० [हिं० गप] गप मारना। बकना। व्यर्थ बात करना। बकवाद करना। उ०—राम राम राम राम राम राम जपत। मंगल मुद उदित होत कलिमल छल छपत। कहु के लह फल रसाल बबुर बीज बपत। हरहि जनि जन्म जाय गालगूल गपत।—तुलसी।

गपिया–वि० [हिं० गप] गप्पी। गप मारनेवाला। झूठ मूठ की बात कहनेवाला। बकवादी।

गपिहा*–वि० [हिं० गप + हा (प्रत्य०)] गप्पी। गप हाँकनेवाला। बकवादी। उ०—कूकैं कलापी न चूकैं कहूँ झुकि झूकैं समीर की आन झकोरत। त्यों पपिहा पपिहा गपिहा भयो पीव को नाव लै हीय हलोरत।—सुंदरीसर्वस्व।

गपोड़–वि०, संज्ञा दे० "गपोड़ा"।

गपोड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० गप] गप। मिथ्या बात। कपोल-कल्पना। उ०—आज कल वे खूब गपोड़े उड़ाते हैं।

क्रि० प्र०—उड़ना।—उड़ाना।—मारना।

यौ०—गपड़चौथ। गपोड़ेबाजी।

गपोड़ेबाजी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गपोड़ा + फ़ा० बाजी] झूठ मूठ की बकवाद।

गप्प–संज्ञा स्त्री० दे० "गप"।

गप्पी–वि० [हिं० गप] (१) गप मारनेवाला। जल्पक। छोटी बात को बढ़ा कर कहनेवाला। (२) झूठा। मिथ्याभाषी।

गप्फा–संज्ञा पुं० [अनु० गप] (१) बड़ा बड़ा ग्रास जो खाने के लिये उठाया जाय। बड़ा कौर। उ०—दो गप्फे खा लें तब चलें।

मुहा०—गप्फा मारना = बड़ा कौर खाना।

(२) लाभ। फ़ायदा। उ०—जिधर गप्फा अच्छा मिले वहीं चले जाँय।—सत्यार्थप्रकाश।

गफ–वि० [सं० ग्रप्स = गुच्छा] घना। ठस। गाढ़ा। गफ्फिन। 'झीना' का उलटा।

विशेष—यह शब्द ऐसी बुनावट के लिये प्रयुक्त होता है जिसके तागे घने अर्थात् परस्पर खूब मिले हों, जैसे, यह कपड़ा गफ है, यह खाट गफ बुनी है।

गफलत–सं० स्त्री० [अ०] (१) असावधानी। बेपरवाई। (२) बेख़बरी। चेत वा सुध का अभाव। (३) प्रमाद। भूल। चूक। भ्रम।

गफिलाई*–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) असावधानी। बेपरवाई। (२) भ्रम। मोह। उ०—ऐसा योग न देखा भाई। भूला फिरै लिये गफ़िलाई।—कबीर।

गबड्डी†–संज्ञा स्त्री० दे० "कबड्डी"।

गबदी–संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मुलायम होती है और डालियाँ घनी और छतनार होती हैं। इसकी पत्तियाँ तीन चार इंच लंबी होती हैं और उनके पीछे की ओर रोंई होती हैं। माघ फागुन में इसमें सुनहले पीले रंग के फूल लगते हैं। यह पेड़ सिवालिक की पहाड़ियों तथा उत्तरीय अवध, बुंदेलखंड और दक्षिण में होता है। इस की छाल से कतीरे की तरह की एक सफ़ेद गोंद निकलती है।

गबद्द–वि० [हिं० गावदी] जड़। मूर्ख। पशु की सी बुद्धिवाला।

गबन–संज्ञा पुं० [अ०] व्यवहार में मालिक के या किसी दूसरे के सौंपे हुए माल को खा लेना। ख़यानत।

क्रि० प्र०—करना।

गबर–संज्ञा पुं० [अं० स्केपर] वह पाल जो सब पालों के ऊपर होता है।

गबरगंड–वि० [हिं० गोबर + सं० गंड = मूर्ख] मूर्ख। अज्ञानी। जड़। उ०—क्या क्षमा के योग्य पर क्षमा न करना, अयोग्य पर क्षमा करना गबरगंड राजा के तुल्य यह कर्म नहीं है?—सत्यार्थप्रकाश।

गबरहा–वि० [हिं० गोबरहा] गोबर मिला। गोबर लगा।

मुहा०—गबरहा करना = बरतन के सांचे पर गोबर और मिट्टी चढ़ाना।

गबरू–वि० [फ़ा० ख़ूबरू] (१) उभड़ती जवानी का। जिसे रेख उठती हो। पट्ठा। उ०—काहे को भये उदास सैंया गबरू। तुमरी खुशी से खुशी मोरे लबरू।—दुर्गाप्रसाद मिश्र। (२) भोला भाला। सीधा।

†संज्ञा पुं० दूल्हा। पति।

गबरून–संज्ञा पुं० [फ़ा० गम्बरून] चारख़ाने की तरह का एक मोटा कपड़ा जो लुधियाने में बुना जाता है।

विशेष—कहते हैं कि यह गंबरून नामक स्थान से पहले आता था। गंबरून को कोई कोई फ़ारस के बंदर अब्बास का पुराना नाम बतलाते हैं और कोई शाम देश (सीरिया) का गंबरूनिया नामक नगर बतलाते हैं।

गबीना–संज्ञा पुं० [देश०] कतीला । कतीरा ।

गब्बर–वि० [सं० गर्व, पा० गब्ब] (१) घमंडी । गर्बीला । अहंकारी। उ०—सजि चतुरंग बीर रंग में तुरंग चढ़ि सरजा सिवा जी जंग जीतन चलत है । भूषन भनत नाद विहद नगारन के नदी नद मद गब्बरन के रलत हैं ।—भूषण । (२) कहने पर किसी काम को जल्दी न करनेवाला । पूछने पर किसी बात का उत्तर जल्दी न देनेवाला । मट्ठर । हठी । (३) बहुमूल्य । कीमती । जैसे, गब्बर माल । (४) मालदार । धनी । जैसे, गब्बर असामी ।

गब्भा–संज्ञा पुं० [सं० गर्भ, पा० गब्भ] (१) वह बिछावन जिसमें रुई भरी हुई हो । गद्दा । तोशक । (२) चारे का गट्ठा ।

गब्र–संज्ञा पुं० [फ़ा०] पारसी । जरदुश्त का अनुयायी । पारस देश का अग्निपूजक ।

गभ–संज्ञा पुं० [सं०] भग ।

गभस्ति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किरन । (२) सूर्य्य । (३) बाँह । हाथ ।

संज्ञा स्त्री० अग्नि की स्त्री स्वाहा ।

गभस्तिपाणि–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य ।

गभस्तिमान्–संज्ञा पुं० [सं० गभस्तिमत्] (१) सूर्य्य । (२) एक द्वीप का नाम । (३) एक पाताल का नाम ।

गभस्तिहस्त–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य ।

गभीर–वि० दे० "गंभीर" ।

गभुआर–वि० [सं० गर्भ, पा० गब्भ + आर (प्रत्य०)] [स्त्री० गभुआरी] (१) गर्भ का (बाल) । जन्म के समय का रखा हुआ (बाल) । उ०—(क) कनक रतन मय पालनो रच्यो मार सुत हार ।......गभुआरी अलकावली लसैं लटकन ललित ललाट । जनु उड़गन बिधु मिलिन कों चले तम विदारि करि बाट ।—तुलसी । (ख) आँगन स्याम नचावहिँ यशोमति नँदरानी । तारी दै दै गावहिँ मधुर मृदुवानी ।... गभुआरे सिरकेश हैं ते बधू सँवारे । लटकन लटकैं भाल पर विधु मधि गत तारे ।—सूर । (२) जिसके सिर के जन्म के बाल न कटे हों । जिसका मुंडन न हुआ हो । नादान । बहुत छोटा । अनजान । उ०—अमर सरिस सुन्दर सुछबि ता पर अति गभुआर । नहिँ जानत रणविधि कछू नहिँ देहैं निज वार ।—रघुराज ।

गभुवार–वि० दे० "गभुआर" ।

गम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राह । मार्ग । रास्ता । (२) गमन । मैथुन । सहवास ।

संज्ञा स्त्री० [सं० गम्य] (किसी वस्तु वा विषय में) प्रवेश । पहुँच । गुजर । पैठ । उ०—(क) चाँटी जहाँ न चढ़ि सकै राई नहिँ ठहराइ । आवागमन कि गम नहीं तहँ सकलो जग जाइ ।—कबीर । (ख) असुरपति अति ही गर्व धरयो । सभा माझ बैठो गर्जत है बोलत रोष भरयो ।......तिहूँ भुवन भरि गम है मेरो मो सन्मुख को आड़ ?—सूर । (ग) जिस विषय में तुम्हारी गम नहीं है उसमें न बोलो ।

*मुहा०—गम करना = चट कर जाना । पेट में डाल लेना । खा लेना । उ०—चारि वृच्छ छ शाखा वाके पत्र अठारह भाई । एतिक लै गैया गम कीन्हों गैया अति हरहाई ।—कबीर ।

ग़म–संज्ञा पुं० [अ०] (१) दुःख । शोक । रंज ।

मुहा०—ग़म खाना = क्षमा करना । ध्यान न देना । जाने देना उ०—तस्कर के कुत धर्म, दुष्ट के कुत गम खाना ।—रघुनाथ । ग़म ग़लत करना = दुःख भुलाना । शोक दूर करने का प्रयत्न करना ।

(२) चिंता । फ़िक्र । ध्यान । उ०—सरस सर जिन बेधिया सर बिनु गम कछु नाहिँ । लागी चोट जो शब्द की करक करेजे माहिँ ।—कबीर ।

गमक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जानेवाला । (२) बोधक । सूचक । बतलानेवाला । (३) संगीत में एक श्रुति या स्वर पर से दूसरी श्रुति या स्वर पर जाने का एक प्रकार । इसके सात भेद हैं । कंपित, स्फुरित, लीन, भिन्न, स्थविर, आहत और आंदोलित । पर साधारणतः लोग गाने में स्वर के कँपाने को ही गमक कहते हैं । (४) तबले की गंभीर आवाज ।

संज्ञा स्त्री० [सं० गमक = जाने वा फैलनेवाला] महक । सुगंध । उ० —इस फूल की गमक चारों ओर फैल रही है ।

गमकीला†–वि० [हिं० गमक] गमकने वा महँकनेवाला । सुगंधित ।

ग़मखोर–वि० [फ़ा० गमख्वार] [संज्ञा गमखोरी] सहिष्णु । सहनशील ।

ग़मखोरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गमख्वारी] सहिष्णुता । सहनशीलता ।

ग़मगीन–वि० [फ़ा०] दुखी । खिन्न । उदास ।

गमत–संज्ञा पुं० [सं० गमन वा गमय = पथिक] (१) रास्ता । मार्ग । (२) पेशा । व्यवसाय ।

गमतखाना–संज्ञा पुं० [?] नाँव में वह स्थान जहाँ पानी रस कर वा छेदों से आकर इकट्ठा होता है और उलीच कर बाहर फेंक दिया जाता है । बंधाल । गमतरी । (लश०)

गमतरी–संज्ञा स्त्री० [?] गमतखाना । बंधाल । (लश०)

गमता–वि० [?] [स्त्री० गमती] चूनेवाला । (लश०)

गमथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार्ग । राह । (२) व्यापार । पेशा । (३) आमोद-प्रमोद । (४) पथिक । राह चलनेवाला ।

गमन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गम्य] (१) जाना । चलना । यात्रा करना । (२) वैशेषिक दर्शन के अनुसार पाँच प्रकार के कर्म्मों में से एक । किसी वस्तु के क्रमशः एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राप्त होने का कर्म । (३) संभोग । मैथुन । जैसे,

वेश्यागमन। (४) राह। रास्ता। (५) सवारी आदि जिनकी सहायता से यात्रा की जाय।

गमनना*-क्रि० अ० [सं० गमन] जाना। उ०—साहसुता गमनी तहाँ विशद कनात लिवाइ।—रघुराज।

गमनपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसके द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने का अधिकार मिले। चालान। रवन्ना।

गमना*-क्रि० अ० [सं० गमन] जाना। चलना। उ०—अगम सबहि बरनत बर बरनी। जिमि जल हीन मीन गमु धरनी।—तुलसी।

ग़मनाक-वि० [फ़ा०] शोकपूर्ण। दुःखभरा।

गमला-संज्ञा पुं० [?] (१) नाँद के आकार का मिट्टी या धातु आदि का बना हुआ एक प्रकार का पात्र जिसमें फूलों के पेड़ और पौधे लगाए जाते हैं। (२) लोहे, चीनी-मिट्टी आदि का बना हुआ एक प्रकार का बरतन जिसमें पाखाना फिरते हैं। कमोड।

गमागम-संज्ञा पुं० [सं०] आना जाना।

गमाना*†-क्रि० स० [हिं०] खोना। गुम करना। गँवाना। उ०—ललना तुम ऐसे लाड़ लड़ाए। ले कर चीर कदम पर बैठे केहि ऐसे ढंग लाए। हा हा करति कंचुकी माँगति अंबर दिए मन भाए। कीनी प्रीति प्रगट मिलिबे की अँखियन शर्म गमाए।—सूर।

गमार†-वि० [हिं० गँवार] गांव का रहनेवाला। गँवार। देहाती। उ०—लौं रन ठाठ बुँदेला ठाटे। खेत गमार चार सै काटे।—लाल।

ग़मी-संज्ञा स्त्री० [अ० ग़म] (१) शोक की अवस्था या काल। (२) वह शोक जो किसी मनुष्य के मरने पर उसके संबंधी करते हैं। सोग। (३) मृत्यु। मरनी। जैसे, उनके यहाँ ग़मी हो गई है। उ०—रुपया इस मुल्क के आदमियों का शादी ग़मी में बहुत ख़र्च होता है।—शिवप्रसाद।

गम्मत†-संज्ञा स्त्री० [मराठी] (१) हँसी दिल्लगी। विनोद। (२) मौज। बहार।

गम्य-वि० [सं०] (१) जाने योग्य। गमन योग्य। (२) प्राप्य। लभ्य। (३) गमन करने योग्य। संभोग करने योग्य। भोग्य। (४) साध्य।

गयंद-संज्ञा पुं० [सं० गजेन्द्र, प्रा० गयिंद, गइंद] (१) बड़ा हाथी। (२) दोहे का दसवाँ भेद जिसमें १३ गुरु और २२ लघु होते हैं। उ०—राम नाम मणि धीप धरु, जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहिरहु जो चाहसि उँजियार।—तुलसी।

गय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर। मकान। (२) अंतरिक्ष। आकाश। (३) धन। (४) प्राण। (५) रामायण के अनुसार एक बानर का नाम जो रामचंद्र की सेना का एक सेनापति था। (६) महाभारत के अनुसार एक राजर्षि का नाम जिनकी कथा द्रोण पर्व में है। (७) पुत्र। अपत्य। (८) एक असुर का नाम। (९) गया नामक तीर्थ।

संज्ञा पुं० [सं० गज, प्रा० गय] हाथी। उ०—सुर गण सहित इंद्र ब्रज आवत। धवल बरन ऐरापति देख्यो उतरि गगन ते धरणि धँसावत। अमरा शिव रवि शशि चतुरानन हय गय बसह हंस मृग जावत।—सूर।

गयनाल-संज्ञा स्त्री० [हिं० गय + नाल = नली] एक प्रकार की तोप जिसे हाथी खींचते हैं। गजनाल।

गयल*†-संज्ञा स्त्री० दे० "गैल"।

गयवली-संज्ञा पुं० [देश०] मझोले कद के एक पेड़ का नाम जो अवध, अजमेर, गोरखपुर और मध्यदेश में होता है। इसका फल लोग खाते हैं और छाल चमड़ा सिझाने के काम में लाते हैं। इसकी लकड़ी मज़बूत होती है और खेती के सँगहे और गाड़ी बनाने के काम में आती है।

गयवा-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जिसे मोहेली भी कहते हैं।

गयशिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंतरिक्ष। आकाश। (२) गया के पास का एक पर्वत जिसके विषय में पुराणों का कथन है कि यह गय नामक असुर के सिर पर है। (३) गया तीर्थ।

गया-संज्ञा पुं० [सं०] बिहार वा मगध देश का एक विशेष पुण्य-स्थान जिसका उल्लेख महाभारत और वाल्मीकी रामायण से लेकर पुराणों तक में मिलता है। यह एक प्राचीन तीर्थस्थान और यज्ञस्थल था। पुराणों में इसे राजर्षि गय की राजधानी लिखा है जहाँ गयशिर पर्वत पर उन्होंने एक बृहत् यज्ञ किया था और ब्रह्मसर नामक तालाब बनवाया था। महात्मा बुद्धदेव के समय में भी गयशिर प्रधान यज्ञस्थल था। राजगृह से आकर वे पहले यहीं पर ठहरे थे और किसी यज्ञ के यजमान के अतिथि हुए थे। फिर वे यहाँ से थोड़ी दूर निरंजना नदी के किनारे उरुवेला गाँव में तप करने चले गए थे। इस स्थान को आजकल बोधगया कहते हैं। यहाँ बहुत सी छोटी छोटी पहाड़ियाँ हैं। यह तीर्थ श्राद्ध और पिंडदान आदि करने के लिये बहुत प्रसिद्ध है और हिंदुओं का विश्वास है कि बिना वहाँ जाकर पिंडदान आदि किए पितरों का मोक्ष नहीं होता।

क्रि० अ० [सं० गम] 'जाना' क्रिया का भूतकालिक रूप। प्रस्थानित हुआ।

मुहा०—गया गुज़रा वा गया बीता = बुरी दशा को पहुँचा हुआ। नष्ट। निकृष्ट।

गयापुर-संज्ञा पुं० दे० "गया"।

गयारी-संज्ञा स्त्री० [देश०] किसी काश्तकार की वह जोत जिसे वह लावारिस छोड़ कर मर गया हो।

गयाल‡-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह जायदाद जिसका कोई उत्तराधिकारी वा दावेदार न हो। गलंश।

गयावाल-संज्ञा पुं० [हिं० गया + वाल] गया तीर्थ का पंडा ।

गरंड-संज्ञा पुं० [सं० गंड = मंडलाकार रेखा] चक्की के चारों ओर बना हुआ मिट्टी का घेरा जिसमें आटा गिरता है ।

गर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का बहुत कड़ुआ और मादक रस जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था । (२) एक रोग जिसमें घिग्घी बँध जाती और मूर्च्छा आती है । (३) रोग । बीमारी । (४) विष । जहर । (५) वत्सनाभ । बछनाग । (६) ग्यारह करणों में से पाँचवाँ करण । (ज्योतिष)

†संज्ञा पुं० [हिं० गला] गला । गरदन । उ०—होती जौ अजान तौ न जानती इतीक विथा मेरे जिय जान तेरो जानिबो गरे परयो ।—देव ।

प्रत्य० [फा०] (किसी काम को) बनाने या करनेवाला । इसका प्रयोग केवल समस्त पदों के अंत में होता है । जैसे, सौदागर, कारीगर, बाजीगर, कलईगर, कुंदीगर, आदि ।

गरक-वि० [अ० गर्क़] (१) डूबा हुआ । निमग्न । (२) विलुप्त । नष्ट । बरबाद । तबाह । (३) (किसी कार्य्य आदि में) लीन । मग्न

ग़रक़ाब-संज्ञा पुं० [फा०] डूबने का भाव । डुबाव ।

वि० (१) निमग्न । डूबा हुआ । (२) बहुत अधिक लीन ।

ग़रक़ी-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) डूबने की क्रिया वा भाव । डूबना ।

मुहा०—ग़रक़ी देना = कष्ट देना । दुःख देना ।

(२) पानी का इतना अधिक बरसना वा बाढ़ आना कि जिससे फसल आदि डूब कर नष्ट हो जाय । बूड़ा । अतिवृष्टि ।

क्रि० प्र०—लगना ।

(३) वह भूमि जो पानी के नीचे हो । (४) नीची भूमि जहाँ पानी रुकता हो । खलार । (५) लँगोटी । कौपीन ।

संज्ञा स्त्री० चरखी । घिरनी । गराड़ी ।

गरगज-संज्ञा पुं० [हिं० गढ़ + गज] (१) किले की दीवारों पर बना हुआ बुर्ज जिस पर तोपें रहती हैं । उ०—गरगज बाँधि कमानैं धरी । वज्र अगिन मुख दारू भरी ।—जायसी । (२) वह ऊँचा कृत्रिम ढूह वा टीला जिस पर युद्ध की सामग्री रखी जाती है और जहाँ से शत्रु की सेना का पता चलाया जाता है ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

(३) तख्तों से बनी हुई नाव के ऊपर की छत । (४) वह तख्ता जिस पर फाँसी देने के समय अपराधी को खड़ा करके उसके गले में फंदा लगाते हैं । टिकटी ।

† वि० बहुत बड़ा । विशाल । जैसे, गरगज घोड़ा, गरगज जवान ।

गरगरा-संज्ञा पुं० [अनु०] गराड़ी । घिरनी । चरखी । (लश०)

गरगवा‡-संज्ञा पुं० [देश०] (१) नर गौरैया । चिड़ा । (२) एक प्रकार की घास जो धान की फसल को बढ़ने नहीं देती । इसे केवल भैंसें खाती हैं ।

गरगाब*-वि० दे० "गरकाब" ।

गरज-संज्ञा स्त्री० [सं० गर्जन] बहुत गंभीर और तुमुल शब्द । जैसे, बादल की गरज, सिंह की गरज, वीरों की गरज, आदि ।

ग़रज़-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) आशय । प्रयोजन । मतलब । उ०—अपनी गरज न बोलियत कहा निहोरो तोहि । तू प्यारी मो जीव को मो जिय प्यारो मोहिं ।—बिहारी ।

मुहा०—ग़रज़ गाँठना = मतलब सीधा करना । प्रयोजन निकालना । काम सिद्ध करना ।

(२) आवश्यकता । जरूरत ।

क्रि० प्र०—रखना ।—रहना ।—निकालना ।

(३) चाह । इच्छा ।

यौ०—ग़रज़मंद ।

क्रि० प्र०—रखना ।—रहना ।—होना ।

मुहा०—ग़रज़ का बावला = अपनी ग़रज़ के लिये सब कुछ करने वाला । जो अपनी लालसा पूरी करने के लिये भला बुरा सब कुछ करने को तैयार हो जाय । जो अपना मतलब पूरा करने के लिये हानि भी सह ले ।

क्रि० वि० (१) निदान । आखिरकार । अंततोगत्वा । (२) अस्तु । भला । अच्छा । खैर ।

विशेष—यह संयोजक अव्यय का भाव लिये रहता है ।

मुहा०—ग़रज़ कि = मतलब यह कि । तात्पर्य्य यह कि । अर्थात् । यानी ।

गरजन*-संज्ञा पुं० [सं० गर्जन] गंभीर शब्द । गरज । कड़क । (१) गरजने का भाव । (२) गरजने की क्रिया ।

गरजना-क्रि० अ० [सं० गर्जन] (१) बहुत गंभीर और तुमुल शब्द करना । जैसे, बादल का गरजना, शेर का गरजना, वीरों का गरजना । उ०—(क) घन घमंड नभ गरजत घोरा । प्रिया हीन डरपत मन मोरा ।—तुलसी । (ख) दस दस सर सब मारेसि, परे भूमि कपि बीर । सिंहनाद करि गरजा, मेघनाद बलबीर ।—तुलसी । (२) चटकना । तड़कना । जैसे, मोती का गरजना या गरजा हुआ मोती ।

ग़रज़मंद-वि० [फा०] [स्त्री० ग़रज़मंदी] (१) जिसे आवश्यकता हो । जरूरतवाला । (२) इच्छुक । चाहनेवाला ।

ग़रज़ी-वि० [अ० ग़रज़ + ई (प्रत्य०)] (१) ग़रज़मंद । ग़रज़वाला । मतलब रखनेवाला । (२) चाहनेवाला । इच्छा करनेवाला । गाँहक उ०—ब्रजराज कुमार बिना सुनु भृंग अनंग भयो जिय को गरजी ।—तुलसी ।

गरजुआ-संज्ञा पुं० [हिं० गरजना] एक प्रकार की खुमी । यह गोल और सफ़ेद रंग की होती है और बरसात में पहला पानी पड़ने पर प्रायः साखू आदि के पेड़ों के आस पास वा मैदानों में भूमि से निकल आती है । इसके भीतर डंठी और ऊपर

छत्ता नहीं होता, केवल गूदा ही गूदा होता है। इसकी तरकारी खाने में स्वादिष्ट होती है। लोगों का विश्वास है कि यह बादल के गरजने से पृथ्वी से निकलती है। सफरा, गगनधूल आदि इसी के भेद हैं।

गरजू†–वि० दे "गरजी"।

गरट्ट–संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ, पा० गंठ, हिं० गट्ट] समूह। झुंड। उ०—(क) गजन गरट्ट दै कै बाजिन के ठट्ट दै कै ग्राम धाम दै कै प्रियवृंद सतकारे हैं।—रघुराज। (ख) हैबर हरट्ट साजि गैबर गरट्ट सम पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की।—भूषण।

गरद–वि० [सं०] विष देनेवाला। विषप्रद।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष। (२) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।
संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० "गर्द"।

गरदन–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) धड़ और सिर को जोड़नेवाला अंग। ग्रीवा।
मुहा०—**गरदन उठाना**=विरोध करना। सिर उठाना। **गर्दन उड़ाना**=सिर काटना। मार डालना। **गरदन ऐंठना**=दे० गरदन मरोड़ना। **गर्दन ऐंठी रहना**=घमंड में या नाराज रहना। **गरदन काटना**=(१) धड़ से सिर अलग करना। मार डालना। (२) बुराई करना। हानि पहुँचाना। **गरदन का डोरा**=गले की वे नसें जो सिर के हिलाने या बात करने के समय हिलती हुई दिखाइ पड़ती हैं। **गरदन का बोझ**=कर्तव्य या उत्तरदायित्व संबंधी भार। **गरदन झुकना**=(१) नम्र, आज्ञाकारी या अधीन होना। (२) लज्जित होना। शरमाना। (३) बेहोश होना (४) मरना। **गरदन झुकाना**=(१) नम्रता, आज्ञाकारिता या अधीनता प्रकाशित करना। (२) लज्जित होना। झेंपना। **गरदन ढलना या ढलकना**=मरना। आसन्न मरण होना। **गरदन न उठाना**=(१) सब बातों को चुप चाप सुन या सह लेना। (२) लज्जित होना। शरमिंदा होना। (३) बीमारी के कारण पड़े रहना। उ०—जब से यह लड़का बुखार में पड़ा है तब से इसने गरदन नहीं उठाई। **गरदन नापना**=(१) कहीं से निकाल बाहर करने के लिये किसी की गरदन पकड़ना। गरदनियाँ देना। (२) अपमान करना। बेइज्जती करना। **गरदन पकड़ कर निकालना**=अपमान करना। बेइज्जती करना। **गरदन पर**=ऊपर। जिम्मे। जैसे, इसका पाप तुम्हारी गरदन पर है। **गरदन पर खून लेना**=अपने ऊपर हत्या लेना। हत्या का का अपराधी होना। **(अपनी) गरदन पर जुवा रखना**=किसी भारी काम का बोझ लेना। किसी भारी काम में तत्पर होना। **(दूसरे की) गरदयन पर जुवा रखना**=भारी काम सुपुर्द करना। **गरदन पर बोझ होना**=(१) खलना। बुरा लगना। कष्टकर प्रतीत होना। (२) भार होना। सिर पड़ना। **गरदन पर सवार होना**=दे० "सिर पर सवार होना"। **गरदन फँसना**=(१) अधिकार में आना। वश में होना। काबू में होना। (२) जोखों में पड़ना। **गरदन मरोड़ना**=(१) गला दबाना। मार डालना। (२) पीड़ित करना। कष्ट पहुँचाना। **गरदन मारना**=सिर काटना। मार डालना। **गरदन में हाथ देना या डालना**=(१) अपमान करना। बेइज्जती करना। (२) कहीं से निकाल बाहर करने के लिये गरदन पकड़ना। गरदनियाँ देना। **गरदन हिलने लगना**=बहुत वृद्ध होना।
(२) वह आड़ी लंबी लकड़ी जो जुलाहों की लपेट के दोनों सिरों पर आड़ी साली जाती है। साल। (३) बरतन आदि का ऊपरी पतला भाग।

गरदन-घुमाव–संज्ञा पुं० [हिं० गरदन+घुमाना] कुश्ती का एक पेंच जिसमें खेलाड़ी अपने जोड़ का दाहिना वा बायां हाथ पकड़ कर अपनी गरदन पर चढ़ाता और उसे सामने की ओर पटक देता है।

गरदन-तोड़–संज्ञा पुं० [हिं० गरदन+तोड़ना] कुश्ती का एक दाँव। इसमें जोड़ की गरदन पर दोनों हाथों की उँगलियों को गाँठ कर ऐसा झटका देते हैं कि वह झुक जाता है और कुछ अधिक जोर करने पर बेकाम हो कर गिर जाता है।

गरदन-बाँध–संज्ञा पुं० [हिं० गरदन+बाँधना] कुश्ती का एक पेंच। इसमें जोड़ की गरदन पर से दोनों हाथ उसकी बगल में से ले जा कर भीतर उसकी छाती पर बाँधते और उसके सिर को बगल में दबा कर पैर के झटके से गिरा देते हैं।

गरदना–संज्ञा पुं० [हिं० गरदन] (१) मोटी गरदन। गरदन। (२) वह धौल या झटका जो गरदन पर लगे।
क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—लगाना।
मुहा०—**गरदना सही या रसीद करना**=गरदन पर धौल लगाना।
(३) गरदन पर का मांस। (कसाई)।

गरदनियाँ–संज्ञा स्त्री० [हिं० गरदन+इया (प्रत्य०)] (किसी को किसी स्थान से) गरदन पकड़ कर या गरदन में हाथ डाल कर निकालने की क्रिया। अर्द्धचंद्र।
क्रि० प्र०—देना।— खाना।— मिलना।

गरदनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गरदन] (१) अंगे वा कुरते आदि का गला। गरेबान। (२) एक आभूषण जो गले में पहना जाता है। हँसुली। (३) अर्द्धचंद्र। गरदनियाँ। (४) घस्सा जो पहलवान दूसरे की गरदन पर लगाते हैं। रद्दा। कुंदा। (५) वह कपड़ा जो घोड़े की गरदन से बाँधा और पीठ पर डाला जाता है। (६) कारनिस। कँगनी।
क्रि० प्र०—लगाना।

(७) कुश्ती का एक पेंच।

गरदर्प–संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप। भुजंग। (अने०)

गरदा–संज्ञा पुं० [फ़ा० गर्द] धूल। गुबार। मिट्टी। खाक। गर्द।

क्रि० प्र०—उड़ना।—उड़ाना।—फेंकना।—डालना।

गरदान–वि० [फ़ा०] घूम फिर कर एक ही स्थान पर आनेवाला। संज्ञा पुं० (१) शब्दों का रूप साधन। (२) वह कबूतर जो घूम फिर कर सदा अपने स्थान पर आता हो।

गरदानना–क्रि० स० [फ़ा० गरदान] (१) शब्दों का रूप साधना। (२) बार बार कहना। उद्धरणी करना। (३) गिनना। समझना। मानना। उ०—वे अपने आगे किसी को कुछ नहीं गरदानते।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

गरदिश–संज्ञा स्त्री० दे० "गर्दिश"।

गरदुआ–संज्ञा पुं० [हिं० गरदन] एक प्रकार का ज्वर जो वर्षा के आरंभ में बहुत अधिक भीगने के कारण पशुओं को हो जाता है। इसमें उसके सब अंग जकड़ जाते हैं और उसके गले में घरघराहट होने लगती है। इसे कहीं कहीं गरदुहा, घेरवा या धुरका भी कहते हैं।

गरनाल–संज्ञा स्त्री० [हिं० गर + नली] एक बहुत चौड़े मुँह की तोप जिसमें आदमी चला जा सकता है। घननाल। घननाद।

गरधरन–संज्ञा पुं० [सं०] विष को धारण करनेवाला। शिव। महादेव।

गरध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] अभ्रक।

गरना*†–क्रि० अ० (१) दे० "गलना"। (२) दे० "गड़ना", उ०—उहाँ ज्वाल जरि जात, दया ग्लानि गरे गात सूखे सकुचात सब कहत पुकार हैं।—तुलसी।

गरप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

गरब*†–संज्ञा पुं० दे० "गर्व"।

गरबई*†–संज्ञा स्त्री० [सं० गर्व] गर्व या अभिमान का भाव। उ०—अली गई अब गरबई झकताई मुकुताइ। भली भई ही अमलई जौं पी दई दिखाइ।—शृं० सत०।

गरबाना*†–क्रि० अ० [सं० गर्व] घमंड में आना। अभिमान करना। शेखी करना।

गरबा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गीत जो प्रायः गुजराती स्त्रियाँ गाती हैं।

गरबित*–वि० दे० "गर्वित"।

गरबीला–वि० [सं० गर्व] जिसे गर्व हो। घमंडी। अभिमानी। उ०—गरबीलन के गरबनि ढाहै। गरबप्रहारी विरद निबाहै।—लाल।

गरभ–संज्ञा पुं० (१) दे० "गर्भ"। (२) दे० "गर्व"।

गरभदान*–संज्ञा पुं० [सं० गर्भाधान] ऋतुप्रदान। पेट रखाना।

गरभाना–क्रि० अ० [हिं० गर्भ] * (१) गर्भिणी होना। गर्भ से होना। (२) धान गेहूँ आदि के पौधों में बाल लगना।

गरभी*†–वि० [सं० गर्वी] अभिमानी। घमंडी।

गरम–वि० [फ़ा० गर्म, मिलाओ सं० घर्म] [क्रि० गरमाना, संज्ञा गरमी] (१) जिसके छूने से जलन मालूम हो। तप्त। तत्ता। उष्ण। जलता हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—गरमागरम = (१) तत्ता। उष्ण। ताजा पका हुआ। (इसका प्रयोग साधारणतः खाने पीने की वस्तुओं के लिये होता है। जैसे, गरमागरम पूरी, हलुवा आदि, पर अलंकार से गरमागरम ख़बर (= ताज़ी ख़बर) आदि भी बोलते हैं)

मुहा०—गरम चोट = तुरंत की लगी चोट। ताजा घाव। उ०—गरम चोट मालूम नहीं होती। गरम मामला = हाल की बात। ऐसी घटना जिसका प्रभाव लोगों पर बना हो। उ० = अभी मामला गरम है जो करना हो सो कर डालो। गरम पानी = वीर्य्य। शुक्र। (बाज़ारी)। गरम सर्द उठाना, देखना, सहना = संसार का ऊँचा नीचा देखना। भले बुरे दिन काटना। (२) तीक्ष्ण। उग्र। खरा।

मुहा०–मिज़ाज गरम होना = क्रोध आना। गरम होना = आवेश आना। क्रुद्ध होना। जैसे, तुम तो थोड़ी सी बात में गरम हो जाते हो।

(३) तेज़। प्रबल। प्रचंड। ज़ोर शोर का। जैसे, गरम ख़बर।

मुहा०—किसी चीज़ (प्रायः भाव) का बाज़ार गरम होना = किसी बात की अधिकता होना। उ०—आज कल लूट का बाज़ार गरम है।

(४) जिसका गुण उष्ण हो। जिसके व्यवहार वा सेवन से गरमी बढ़े। उ०—लहसुन बहुत गरम होता है।

यौ०—गरम कपड़ा = शरीर गरम रखनेवाला कपड़ा। जाड़े का कपड़ा। ऊनी कपड़ा। गरम मसाला = सुगंध की वस्तु जो भोजन को चरपरा, पाचक और सुस्वाद करने के लिये उसमें पड़ती है। जैसे, धनियाँ लौंग, बड़ी इलायची, जीरा मिर्च इत्यादि।

(५) उत्साहपूर्ण। जोश से भरा। आवेशपूर्ण। उ०—परम धरमधर धरम-करम-कर सुरस गरम नर।—गोपाल।

गरमाई†–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गरम] गरमी। (पंजाब)।

गरमागरमी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गरमा + गरम] मुस्तैदी। जोश। सन्नद्धता। उत्साह। उ०—पहले तो बड़ी गरमागरमी थी अब क्यों ठंढे पड़ गए?

गरमाना–क्रि० अ० [हिं० गरम] (१) गरम पड़ना। उष्ण होना। उ०—अभी तो काँपते थे ओढ़ने से ज़रा गरमाए हैं।

मुहा०—टेंट वा हाथ गरमाना = टेंट वा हाथ में रुपया आना। पास में रुपया पैसा आना।

(२) उमंग पर आना। मस्ताना। मद में भरना। जैसे, घोड़ी गरमाई है। (३) आवेश में आना। क्रोध करना। नाराज़

होना। आग बबूला होना। झल्लाना। उ०—तुम तो ज़रा सी बात में गरमा जाते हो। (४) कुछ देर लगातार दौड़ने वा परिश्रम करने पर घोड़े आदि पशुओं का तेज़ी पर आना।

विशेष—कभी कभी जब घोड़े अधिक गरमा जाते हैं तब वश में नहीं रहते।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

†क्रि० स० गरम करना। तपाना। औटना। जैसे, दूध गरमाना चूल्हा गरमाना, पानी गरमाना, इत्यादि।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—टेंट वा हाथ गरमाना = हाथ में रुपया देना। कुछ इनाम वा रिशवत देना।

गरमाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गरम] गरमी। उष्णता।

गरमी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) उष्णता। ताप। जलन। जैसे, आग की गरमी।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

मुहा०—गरमी करना = प्रकृति में उष्णता लाना। पेट वा कलेजे में ताप उत्पन्न करना। उ०—कुनैन बहुत गरमी करता है। गरमी निकालना = (१) उष्णता दूर करना। (२) प्रसंग करना।

(२) तेज़ी। उग्रता। प्रचण्डता।

मुहा०—गरमी निकालना = गर्व दूर करना। उ०—अभी हम तुम्हारी सारी गरमी निकाल देते हैं।

(३) आवेश। क्रोध। गुस्सा। उ०—पहले तो बड़ी गरमी दिखाते थे, अब सामने क्यों नहीं आते? (४) उमंग। जोश। (५) ग्रीष्म ऋतु। धूप के दिन। (साधारणतः फागुन से जेठ तक गरमी के महीने समझे जाते हैं।)

क्रि० प्र०—आना।—जाना।

मुहा०—गरमियों में = गरमी के दिनों में। ग्रीष्मकाल में।

(६) हाथी घोड़ों का एक रोग जिसमें उन्हें पेशाब के साथ ख़ून गिरता है। (७) एक रोग। यह प्रायः दुष्ट मैथुन से उत्पन्न होता है और छूत का रोग माना जाता है। इस रोग में गुप्त इंद्रिय से एक प्रकार का चेप निकलता है जिसके लग जाने से यह रोग एक से दूसरे को हो जाता है। पहले छोटी छोटी फुनसियाँ होती हैं, फिर धीरे धीरे चमड़े पर चट्टे पड़ने लगते हैं, यहाँ तक कि सारे शरीर में घाव हो जाते हैं, फफोले पड़ जाते हैं, रग पट्ठे और हड्डियाँ तक ख़राब हो जाती हैं। कभी तालू चटक जाता है। आतशक। उपदंश।

क्रि० प्र०—निकलना।—फूटना।—होना।

गरमीदाना—संज्ञा पुं० [हिं० गरमी + दाना] अँधौरी। अँभौरी। छोटे छोटे लाल दाने जो गरमी में पसीने के कारण शरीर पर निकलते हैं।

गररा*—संज्ञा पुं० [देश० गर्रा] एक प्रकार का घोड़ा। गर्रा। उ०—हरे कुरंग महुअ बहु भाँती। गरर कोकाह बलाह सुभाँती।—जायसी।

गरराना*—क्रि० अ० [अनु०] भीषण ध्वनि करना। गरजना। गंभीर ध्वनि करना। गड़गड़ाना। उ०—सुनत मेघवर्त्तक साजि सैन लै आए।.........घहरात तरतरात गररात हहरात पररात झहरात माथ नाए।—सूर।

गररी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया। किलँहटी। गलगलिया। सिरोही। उ०—फटकत श्रवन श्वान द्वारे पर गररी करत लराई। माथे पर दै काक उड़ानो कुशगुन बहुतक पाई।—सूर।

गरल—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विष। गर। ज़हर। (२) सर्पविष। साँप का ज़हर। (३) घास का मुट्ठा। घास की अँटिया। पूला।

गरलधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष धारण करनेवाला। महादेव। (२) साँप।

गरलारि—संज्ञा पुं० [सं०] मरकत मणि। पन्ना।

गरव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

गरवा*—वि० [सं० गुरु] [स्त्री० गरवी] गरुई। भारी। महान्। उ०—गद मारयो गरवी गदा मस्तक अरि के जाइ। फूटो सिर निसरत भई रुधिर धार अधिकाइ।—गोपाल।

गरह†—संज्ञा पुं० [सं० ग्रह] (१) ग्रह। (२) अरिष्ट। बाधा। दे० "ग्रह"। उ०—ममता दादु कंडु इरषाई। हरष विषाद गरह बहुताई।—तुलसी।

मुहा०—गरह कटना = अरिष्ट दूर होना। दुःख नष्ट होना। आपत्ति टलना।

गरहन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काली तुलसी। (२) बबई। ममरी।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली।

*†संज्ञा पुं० [सं० ग्रहण] (१) चंद्र वा सूर्य्य ग्रहण। (२) पकड़ने की क्रिया। धारण। दे० "ग्रहण"।

गरहर—संज्ञा पुं० [हिं० गर = गल + हर] वह काठ जो नटखट चौपायों के गले में लटकाया जाता है। कुंदा। ठेंगा। ठेकुर।

गरहेंडुवा—संज्ञा पुं० [सं० गवेडुका] गवेधुक। कसेई। कौडिल्ला।

गराँव—संज्ञा स्त्री० [हिं० गर = गला] एक दोहरी रस्सी जिसके एक सिरे पर मुद्धी और दूसरे सिरे पर गाँठ होती है। यह पगहे के एक छोर पर बीचोबीच से लगाई जाती है और बैल घोड़े आदि के गले में डाली जाती है।

गरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली लता। बंदाल। गरागरी।

†संज्ञा पुं० दे० "गर" वा "गला"।

गराऊ†—संज्ञा पुं० [सं० गरुत्र] पुराना भेड़ा। (गँडेरियों की बोली)।

गरागरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली। बंदाल। घघर बेल। बंदाली। सोनैया बेल। कर्कोटी। देवताड़ी।

गराज*–संज्ञा स्त्री० [सं० गर्जन] गर्ज्जना। गंभीर शब्द। गरज। उ०—जसवंत जसांवत साजबाज। चढ्ढे किक्यान करि करि गराज।

गराड़ी–संज्ञा स्त्री० [अनु० गड गड़ वा सं० कुंडली] काठ या लोहे का गोल चक्कर जिसके घेरे में रस्सी बैठने के लिये गड्ढा बना रहता है और जिसमें रस्सी डाल कर कुएँ से घड़ा निकालते हैं, पंखा खींचते हैं तथा और बहुत से काम करते हैं। घिरनी। चरखी।

संज्ञा स्त्री० [सं० गंड = चिह्न] रगड़ आदि से पड़ी हुई गहरी लकीर। गड्ढे के रूप में दूर तक पड़ा हुआ लंबा चिह्न। साँट।

मुहा०—गराड़ी पड़ना = गहरा चिह्न होना।

गराना*–क्रि० स० [हिं० गलाना] गलाना।

क्रि० स० [हिं० गारना] निचोड़ना। निचोड़ कर दूर करना। बहाना। उ०—तब मघवा मनमारि हारि कै बढ़े सोंच सों छायो। भयो कृष्ण अवतार भूमि पै मेरो गर्ब गरायो।

गराब–संज्ञा पुं० [देश०] (१) तीन मस्तूलोंवाला एक प्रकार का बड़ा जहाज जिसका व्यवहार १४ वीं और १५ वीं शताब्दी में बंगाल और उसके आस पास की खाड़ियों में होता था। (२) साधारण नाव।

गरारा–वि० [सं० गर्व, प्रा०, पुं० हिं० गारो + आर (प्रत्य०)] गर्व-युक्त। प्रबल। प्रचंड। बलवान्। उद्धत। उ०—(क) कुंडल क्रीट कवच धनुधारे। चले सैन महँ सुभट गरारे।—गोपाल। (ख) सुंडन उठाए फिरैं धाये धने सम बैठे असवार मिलैं मुदित पतंग संग। गरजैं गरारे कजरारे अति दीह देह जिनहिं निहारे फिरैं बीर करि धीर भंग।—गोपाल।

संज्ञा पुं० [अ० गरगरा] (१) कंठ में पानी डाल कर गर गर शब्द करके कुल्ली करना।

क्रि० प्र०—करना।

(२) गरगरा करने की दवाई।

संज्ञा पुं० [हिं० घेरा] (१) पायजामे की ढीली मोहड़ी। जैसे, गरारेदार पाजामा। (२) ढीली मोहड़ी का पायजामा। (३) वह थैला जिसमें खीमा भर कर रखा जाता है।

संज्ञा पुं० [अनु०] चौपायों का एक रोग जिसमें उनके कंठ से घुरघुर का शब्द निकलता है। घुरकवा।

गरारी†–संज्ञा स्त्री० दे० "गराड़ी"।

गरावन†–संज्ञा पुं० दे० "गड़ावन"।

गरावा†–संज्ञा पुं० [देश०] हलकी ज़मीन। कम उपजाऊ भूमि।

गरास*–संज्ञा पुं० दे० "ग्रास"।

गरास मोअर–संज्ञा पुं० [अं० ग्रास + मोअर] मैदान की घास बराबर करने की कल।

गरिमा–संज्ञा स्त्री० [सं० गरिमन्] (१) गुरुत्व। भारीपन। बोझ। (२) महिमा। महत्त्व। गौरव। (३) गर्व। अहंकार। घमंड। (४) आत्मश्लाघा। शेखी। (५) आठ सिद्धियों में से एक सिद्धि जिससे साधक अपना बोझ चाहे जितना भारी कर सकता है।

गरिया–संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो मध्य प्रदेश, मध्य भारत, बरार और मद्रास में होता है। इसका पेड़ साधारण ऊँचाई का होता है और शिशिर ऋतु में इसकी पत्तियां झड़ जाती हैं। इसकी लकड़ी दृढ़, कठिन, सुंदर चमकीली और साफ़ होती है और प्रति घन फुट पचीस तीस सेर तक भारी होती है। इससे गाड़ी, तस्वीरों के चौखटे, खेती के सामान तथा मेज़ कुरसी आदि बहुत सी चीज़ें बनाई जाती हैं। यह पानी में बहुत दिनों तक बनी रहती है और इस पर नक्काशी भी अच्छी होती है। हिंदुस्तान से यह लकड़ी विलायत को बहुत जाती है और वहाँ आलमारी, कुरसी, मेज़, ब्रुश का दस्ता आदि बनाने के काम में आती है। इसे बहुरूपी भी कहते हैं।

गरियाना‡–क्रि० अ० [हिं० गारी + आना (प्रत्य०)] दुर्वचन कहना। गाली देना।

गरियार–वि० [हिं० गड़ना = एक जगह रुक जाना] जगह से जल्दी न उठनेवाला। सुस्त। बोदा। मट्ठर। (चौपायों के लिये इस शब्द का प्रयोग अधिक होता है)। उ०—(क) कोई भल जस धाव तुखारू। कोइ जस चलै बैल गरियारू।—जायसी। (ख) पैंडे पग चालइ नहीं, होइ रहा गरियार। राम अरथ निबहै नहीं, खइबे को हुसियार।—दादू।

गरियालू–संज्ञा पुं० [हिं० करिया से करियालू] एक प्रकार का रंग जो काला-नीला होता है। इसमें ऊन रँगा जाता है। इसके बनाने की विधि यह है कि दो सेर नील की बुकनी गंधक के तेज़ाब में मिला कर एक मज़बूत मटके में रख देते हैं। यह उस में एक दिन रात रखी रहती है। ऊन को रँगने के पहले उसे चूने के पानी में डुबा कर कई बार साफ़ पानी से धोकर धूप में सुखलाते हैं फिर उबलते हुए पानी में थोड़ा सा रंग मटके में से लेकर मिला लेते हैं और ऊन को उसमें डाल देते हैं। यह ऊन उसमें तब तक पड़ा रहता है जब तक उस पर रंग नहीं चढ़ जाता। फिर उसे निकाल कर फिटकिरी मिले पानी में पछार डालते हैं।

वि० काले नीले रंग का। गरियाले रंग का।

गरिष्ठ–वि० [सं०] (१) अति गुरु। अत्यंत भारी। (२) जो पचने में हलका न हो। जो जल्दी न पचे। जिससे कोष्ट बद्ध हो। कब्ज़ करनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राजा का नाम। (२) एक दानव का नाम। (३) एक तीर्थ स्थान।

गरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताड़।

संज्ञा स्त्री० [सं० गुलिका, प्रा० गुडिया] (१) नारियल के फल के भीतर का वह गोला जो छिलके के तोड़ने से निकलता है और मुलायम तथा खाने लायक होता है। गोला। (२) मेंगनी। बीज के भीतर की गूदी। गिरी।

गरीब-वि० [अ० ग़रीब] [स्त्री० गरीबिन। गरीबिनी (क्व०)। संज्ञा गरीबी] (१) नम्र। दीन। हीन। उ०—(क) कोटि इंद्र रचि कोटि विनासा। मोहि गरीब की केतिक आसा।—सूर। (ख) देखियत भूप भोर कैसे उड़गन गरत गरीब गलानि है। तेज प्रताप बढत कुँअरनि को जदपि सकोची बानि है।—तुलसी।

यौ०—गरीबनेवाज। गरीबपरवर।

(२) दरिद्र। निर्धन। अकिंचन। कंगाल। उ०—दे दो गरीब आदमी का भला हो जायगा।

यौ०—गरीब गुरबा = निर्धन कंगाल लोग।

संज्ञा पुं० संगीत में एक आधुनिक राग जो मुकाम राग का पुत्र माना जाता है।

गरीबनिवाज-वि० [फ़ा० गरीब + नेवाज] दीनों पर दया करनेवाला। दुःखियों का दुःख दूर करनेवाला। दयालु। उ०—गई बहोर गरीबनिवाजू। सरल सबल साहेब रघुराजू।—तुलसी।

गरीबनेवाज-वि० दे० "गरीबनिवाज"।

गरीबपरवर-वि० [फ़ा०] गरीबों को पालनेवाला। दीन प्रतिपालक।

गरीबाना-वि० [फ़ा०] गरीबों की तरह का। गरीबामऊ।

गरीबामऊ-वि० [हिं० गरीब + मय (प्रत्य०)] गरीबों के योग्य। कंगाल के वित्त के अनुकूल। छोटा मोटा। भला बुरा।

गरीबी-संज्ञा स्त्री० [अ० ग़रीब] (१) दीनता। अधीनता। नम्रता। उ०—(क) नाथ गरीब नेवाज हैं मैं गही न गरीबी। तुलसी प्रभु निज ओर तें बनि परै सो कीबी।—तुलसी। (ख) पुर पाँव धारिहैं उधारि हैं तुलसी से जन जिन जानि कै गरीबी गाढ़ी गही है।—तुलसी। (ग) कबिरा केवल राम कहु शुद्ध गरीबी लाज। कूर बड़ाई बूड़सी भारी परसी काज।—कबीर। (२) दरिद्रता। निर्धनता। कंगाली। मुहताजी। जैसे, कपड़ा फटा गरीबी आई।

मुहा०—गरीबी आना = दरिद्रता होना। मुहताजी होना।

गरीयस्-वि० [सं०] [स्त्री० गरीयसी] (१) बड़ा भारी। गुरु। (२) महान्। प्रबल। जैसे, हरीच्छा गरीयसी। (३) गौरवान्वित। महत्वपूर्ण।

गरुआ-*† वि० [सं० गुरु] [स्त्री० गरुई] भारी। वज़नी।

गरुआई-संज्ञा स्त्री० [हिं० गरुआ] गुरुता। भारीपन। उ०—हरि हित हरहु चाप गरुआई।—तुलसी।

गरुड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु के वाहन जो पक्षियों के राजा माने जाते हैं। ये विनता के गर्भ से उत्पन्न कश्यप के पुत्र हैं। इनकी उत्पत्ति के विषय में यह कथा है कि एक बार कश्यपजी ने पुत्र की इच्छा से यज्ञ का अनुष्ठान किया। उनके यज्ञ के लिये इंद्र, बालखिल्य तथा और और देवता लकड़ी आदि सामग्री एकट्ठी करने लगे। इंद्र ने थोड़ी ही देर में लकड़ी का ढेर लगा दिया और अंगुष्ठ भर के बालखिल्यों को एक पलाश की टहनी घसीटते देख कर वह उनकी हँसी करने लगा। इस पर बालखिल्यगण कुपित होकर कश्यप का पुत्र दूसरा इंद्र उत्पन्न करने के प्रयत्न में लगे। अंत में कश्यप ने उन्हें समझा कर शांत किया और कहा कि तुम जिसे उत्पन्न करना चाहते हो वह पक्षियों का इंद्र होगा। अंत में विनता के गर्भ से कश्यप ने अग्नि और सूर्य्य के ऐसे गरुड़ और अरुण दो पुत्र उत्पन्न किए। गरुड़ विष्णु के वाहन हुए और अरुण सूर्य्य के सारथी। गरुड़ सर्पों के शत्रु समझे जाते हैं।

पर्य्या०—गुरुत्मान्। तार्क्ष्य। वैनतेय। सुपर्ण। नागांतक। पन्नगाशन। पन्नगारि। पक्षिराज। विष्णुरथ। तरस्वी। अमृताहरण। शाल्मलिस्थ।

यौ०—गरुड़गामी। गरुड़ासन। गरुड़केतु। गरुड़ध्वज।

(२) बहुतों के मत से उकाब पक्षी जो गिद्ध की तरह का और बहुत बलवान होता है। उसकी चोंच की नोक कुछ मुड़ी होती है और इसके पैर पंजों तक छोटे छोटे परों से ढके रहते हैं। यह अपने चंगुल में भेड़ बकरी के बच्चों तक को उठा ले जाता और खाता है। अपने बल के कारण यह पक्षिराज कहा जाता है। पश्चिम की प्राचीन जातियों में रोमक (रोमन) लोग उकाब को जोव (प्रधान देवता, इंद्र) का पक्षी मानते थे और उसे मंगल और विजय का चिह्न समझते थे। अब भी रूस, आस्ट्रिया और जर्मनी आदि देश उकाब का चिह्न ध्वजा आदि पर धारण करते हैं। इन सब बातों से संभव जान पड़ता है कि गरुड़ उकाब ही का नाम हो। † (३) एक सफ़ेद रंग का बड़ा पक्षी जो पानी के किनारे रहता है। यह तीन साढ़े तीन फुट ऊँचा होता है और इसकी गरदन सारस की तरह लंबी होती है जिसके नीचे एक थैली सी लटकती रहती है। यह मछलियाँ, केकड़े आदि पकड़ कर खाता है। इसे पँड़वा ढेक भी कहते हैं। (४) सेना की एक प्रकार की व्यूह रचना जिसमें अगला भाग नोकदार, मध्य का भाग विस्तृत और पिछला भाग पतला होता है। (५) बीस प्रकार के प्रासादों में से एक जिसमें बीच का भाग चौड़ा तथा अगला और पिछला भाग नुकीला होता है। (६) चौदहवें कल्प का नाम। (७) जैन मत के अनुसार वर्त्तमान् अवसर्पिणी के सोलहवें अर्हत् का गणधर। (८) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (९) छप्पय छंद का एक

भेद। (१०) नृत्य में एक प्रकार का स्थानक जिसमें बाएँ पैर को सिकोड़ कर दाहिने पैर का घुटना ज़मीन पर टेकते हैं।

गरुड़गामी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। उ०—इहां औ कासों कैहों गरुड़गामी।—सूर।

गरुड़घंटा—संज्ञा पुं० [सं०] ठाकुरजी की पूजा में बजाया जानेवाला वह घंटा जिसके ऊपर गरुड़ की मूर्त्ति बनी रहती है।

गरुड़ध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) एक प्रकार का स्तंभ जिस पर गरुड़ की आकृति बनी रहती है।

गरुड़पक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य में कुहनी टेढ़ी कर के दोनों हाथ कमर पर रखने का भाव।

गरुड़पाश—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का फंदा या फाँसी। इसे प्राचीन काल में शत्रु को फँसाने और बाँधने के लिये उस पर फेंकते थे।

गरुड़पुराण—संज्ञा पुं० [सं०] १८ पुराणों में से एक। इसमें विशेष कर यमपुर तथा अनेक प्रकार के नरकों का वर्णन है। प्रेतकर्म्म का विधान भी इसमें है।

गरुड़प्लुत—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य में एक प्रकार का भाव जिसमें हाथों को लता की तरह और पैरों को विच्छू की तरह फैला कर छाती ऊपर की ओर उभारते हैं।

गरुड़भक्त—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ की उपासना करनेवाला एक संप्रदाय जो ईसा के जन्म के पूर्व भारतवर्ष में प्रचलित था।

गरुड़यान—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु। श्रीकृष्ण।

गरुड़रुत—संज्ञा पुं० [सं०] सोलह अक्षर का एक वर्ण वृत्त। इसके प्रत्येक चरण में नगण, जगण, भगण, जगण और तगण तथा अंत में एक गुरु होता है। (न ज भ ज त ग)। उ०—नजु भज तै गुपाल निशि वासर रे मना। लहसि न सौख्य भूलि कहुँ यत्न कीन्हें घना। हरि हरि के कहे भजत पाप को जूह यों। गरुड़रुतै सुनै भजत सर्प को व्यूह ज्यों।

गरुड़व्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] रणस्थल में सेना के जमाव या स्थापन का एक प्रकार। इसमें सेना का मध्य भाग अधिक विस्तृत तथा आगे और पीछे का भाग पतला होता है।

गरुत—संज्ञा पुं० [सं०] पक्ष। पंख। पर।

गरुता*†—संज्ञा स्त्री० [सं० गुरुत्व] (१) गुरुता। भारीपन। (२) गंभीरता। बड़ाई। बड़प्पन। उ०—कानन की छवि दीह लसै गिरिधरदास, गरुता अपार जाकी बरनत वेद है।—गोपाल।

गरुल‡—संज्ञा पुं० दे० "गरुड़"।

गरुवाई*†—संज्ञा स्त्री० दे० "गरुआई"। उ०—धरिहौं मैं नरतन अब आई। हरिहौं सकल भूमि गरुवाई।—विश्राम।

गरुहर‡—संज्ञा पुं० [हिं० गरू + हर (प्रत्य०)] भारी (बोझ)।

गरूर—संज्ञा पुं० [अ०] घमंड। अभिमान।

गरूरत*†—संज्ञा पुं० [अ० ग़ुरूर] घमंड। अभिमान। गर्व। अहंकार। उ०—थूरत पर बल भूरि हृदय महँ पूरि गरूरत।—गोपाल।

गरूरी†—वि० [अ० ग़ुरूरी] घमंडी। अभिमानी।

संज्ञा स्त्री० अभिमान। घमंड।

गरेड़िया†—संज्ञा पुं० दे० "गड़रिया"।

गरेबान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) अंगे, कुरते आदि कपड़ों की काट और सिलाई में वह भाग जो गले पर पड़ता है। गला। (२) कोट आदि में वह पट्टी जो गले पर रहती है। कालर।

गरेरना—क्रि० स० [हिं० घेरना] (१) घेरना। उ०—भा धावा गढ़ लीन्ह गरेरी। कोपा कटक लाग चहुँ फेरी।—जायसी। (२) छेंकना। रोकना।

गरेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घेरा या गराड़ी] (१) गराड़ी। घिरनी। (२) दे० "गँडेरी"।

वि० चक्करदार। घुमावदार। उ०—खँड खँड सीढ़ी भई गरेरी। उतरहिं चढ़हिं लोग चहुँ फेरी।—जायसी।

गरेली—संज्ञा स्त्री० दे० "गरेरी"।

गरैयाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गला] गरांव। पगहा। उ०—बछरै खरी प्यावै गऊ तिहि कों पदमाकर को मन ल्यावत हैं। तिय जानि गरैयाँ गही बनमाल सु ऐंचे लला इँचे आवत हैं।—पद्माकर।

गरोह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] झुंड। जत्था। समूह। गोल।

गर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वैदिक ऋषि। ये आंगिरस भरद्वाज के वंशज थे और ऋग्वेद के छठे मंडल का ४७ वाँ सूक्त इनका रचा हुआ है। (२) अथर्व वेद के परिशिष्ट के अनुसार एक प्राचीन ज्यौतिषी। (३) धर्मशास्त्र के प्रवर्त्तक एक ऋषि। (४) वितथ्य राजा का एक पुत्र। (५) नंद के एक पुरोहित का नाम। (६) बैल। साँड़। (७) एक कीड़ा जो पृथिवी में घुसा रहता है। गगोरी। (८) विच्छू। (९) केंचुआ। (१०) एक पर्वत का नाम। (११) ब्रह्मा के एक मानस पुत्र का नाम जिसकी सृष्टि गया में यज्ञ के लिये हुई थी। (१२) संगीत में एक ताल जिसमें चार द्रुत और अंत में एक खाली या विराम होता है।

गर्ग-त्रिरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] कात्यायन श्रौत सूत्र के अनुसार एक प्रकार का योग जो तीन दिनों में होता है।

गर्गर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भँवर। (२) एक प्रकार का प्राचीन बाजा जो वैदिक काल में बजाया जाता था। (३) गागर। (४) एक प्रकार की मछली।

गर्गरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह बर्त्तन जिसमें दही मथा जाता है। माठ। दहेड़ी। (२) गगरी। कलसी। (३) मथनी।

गर्ज—संज्ञा स्त्री० दे० "गरज"।

ग़र्ज़—संज्ञा स्त्री० दे० "ग़रज़"।

गर्जन–संज्ञा पुं० [सं०] गरजना । गरज । भीषण ध्वनि । गंभीर नाद ।

यौ०—गर्जन तर्जन = (१) तड़प । (२) डांट डपट ।

संज्ञा पुं० [देश०] शाल की जाति का एक पेड़ जिसके जंगल के जंगल हिंदुस्तान में ट्रावंकोर, मलाबार, कनारा, कोंकन, चटगांव, वर्मा, अंडमान आदि में पाये जाते हैं । इसके पेड़ पीले रंग के सीधे और सौ सवा सौ हाथ ऊँचे होते हैं और इनकी डालियाँ बहुत दूर तक नहीं फैलतीं । इनके कई भेद हैं जिन में से कई एक सदाबहार भी होते हैं । इस पेड़ से एक प्रकार का निर्य्यास निकलता है जो कभी कभी इतना पतला होता है कि वह अलसी के तेल की तरह रँगाई के काम में लाया जाता है । वर्मा में दो प्रकार के गर्जन होते हैं । एक तेलिया गर्जन जिसका निर्य्यास लाल रंग का होता है और दूसरा सफ़ेद गर्जन जिसका निर्य्यास सफ़ेद रंग का होता है । इन दोनों के निर्य्यास पतले और अच्छे होते हैं । तेल निकालने की विधि यह है कि नवंबर से मई तक इसके पेड़ की जड़ में दो तीन गहरे चौकोर गड्ढे खोद दिए जाते हैं, फिर उनके किनारे आग जलाई जाती है जिससे तेल सिमट सिमट कर गड्ढे में इकट्ठा हो जाता है और तीसरे चौथे दिन गड्ढा भर जाता है । जो तेल मट्टी पर बह कर जम जाता है उसे खुरच कर पत्तियों में लपेट लेते और मोमबत्ती की तरह जंगलों में जलाते हैं । आसाम और बरमा का होलंग नामक सदाबहार वृक्ष भी इसी जाति का है जिसका निर्य्यास बिरोजे की तरह का और सफ़ेद होता है । इस जाति के कुछ वृक्षों का निर्य्यास अधिक गाढ़ा होता है और राल की तरह जलाने के काम में आता है । यह वृक्ष बीजों से उगता है और इसके फल और बीज शाल के फलों और बीजों की तरह होते हैं । इसकी लकड़ी बहुत मज़बूत और प्रति घन फुट २५-३० सेर भारी होती है और नाव तथा घर बनाने के काम में आती है ।

गर्जना–संज्ञा पुं० [सं० गर्जन] दे० "गरजना" ।

गर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गड्ढा । गड़हा । (२) दरार । (३) घर । (४) रथ । (५) जलाशय । (६) एक नरक का नाम ।

गर्द–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] धूल । राख । खाक ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—उड़ाना ।

मुहा०—गर्द उठना वा उड़ना = हवा के साथ धूल का फैलना । गर्द उठाना = दरी की बुनावट में नीचेवाले डंडे के तागों को बैठा चुकने के बाद, रस्सी के दोनों छोरों को खड़ी लकड़ों में बाँध कर ऊपर के डंडे के तागों को बैठाना या जमाना । गर्द उड़ाना = नष्ट या चौपट करना । धूल में मिलाना । बरबाद करना । जैसे, सेना ने नगर की गर्द उड़ा दी । गर्द झड़ना = ऐसी मार खाना जिसकी परवाह न हो । गर्द फाँकना = व्यर्थ घूमना । आवारा फिरना । गर्द को न पहुँचना या न लगना = समता न कर सकना । गर्द होना = (१) तुच्छ होना । समता के योग्य न होना । हेच होना । जैसे, इसके सामने सब गर्द है । (२) नष्ट होना । चौपट होना ।

यौ०—गर्द गुबार = धूलि मट्टी । गरदा ।

क्रि० प्र०—उठना ।—उड़ना ।—निकलना ।—बैठना । —जमना ।

गर्दखोर, गर्दखोरा–वि० [फ़ा० गर्दखोर] जो गर्द या मिट्टी आदि पड़ने से मैला या ख़राब न हो । जैसे, ख़ाकी रंग ।

संज्ञा पुं० नारियल की जटा या इसी प्रकार की और चीजों का बना हुआ गोल या चौकोर टुकड़ा जो पाँव पोंछने के काम आता है ।

गर्दन–संज्ञा पुं० दे० "गरदन" ।

गर्दना–संज्ञा पुं० दे० "गरदना" ।

गर्दभंग–संज्ञा पुं० [हिं० गर्द + भंग] एक प्रकार का गाँजा जो कश्मीर के दक्षिणी भागों में उत्पन्न होता है । इसे चूरू चरस भी कहते हैं ।

गर्दभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गधा । गदहा । (२) श्वेत कुमुद । सफ़ेद कोंई । (३) बिड़ंग । (४) गदहिला नामक कीड़ा ।

गर्दभयाग–संज्ञा पुं० [सं०] अवकीर्ण याग ।

गर्दभशाक–संज्ञा पुं० [सं०] भारंगी । ब्रह्म यष्टि ।

गर्दभांड–संज्ञा पुं० [सं०] पलखा । पाकर । प्लक्ष ।

गर्दभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफ़ेद कंटकारी ।

गर्दभि–संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र का एक पुत्र ।

गर्दभिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग का नाम जिसमें वात पित्त के विकार से गोल ऊँची फुंसियाँ निकलती हैं । इन फुंनसियों का रंग लाल होता है और इनमें बहुत पीड़ा होती है । गदहिला । गदहिली ।

गर्दभी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक कीड़ा । (सुश्रुत) (२) अपराजिता नाम की लता । (३) सफ़ेद कंटकारि । (४) गर्दभिका नामक रोग । (५) गदही ।

गर्दाबाद–वि० [फ़ा०] (१) गर्द से भरा । (२) उजाड़ । ध्वस्त । गिरा पड़ा । † (३) बेसुध । बेहोश ।

गर्दालू–संज्ञा पुं० [फ़ा० गर्द = गोला + आलू] आलू बुख़ारा ।

गर्दिश–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) घुमाव । चक्कर ।

क्रि० प्र०—करना ।

(२) विपत्ति । आपत्ति ।

क्रि० प्र०—आना ।—होना ।

गर्दुआ–संज्ञा पुं० दे० "गरदुआ" ।

गर्द्ध–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गर्द्धी, गर्द्धित] (१) स्पृहा । लोभ । लिप्सा । (२) गर्दभांड वृक्ष । पलखा । पाकर ।

गर्द्धत, गर्द्धित–वि० [सं०] लुब्ध ।

गर्द्धी-वि० [सं० गर्द्धिन्] [स्त्री० गर्द्धिनी] (१) लोभी। लालची। (२) लुब्ध।

गर्नाल-संज्ञा स्त्री० दे० "गरनाल"।

गर्व-संज्ञा पुं० दे० "गर्ब"।

गर्भंड-संज्ञा पुं० [सं०] वह नाभि जो अंडे की तरह उभरी हो।

गर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेट के भीतर का बच्चा। हमल। जैसे, उसे तीन महीने का गर्भ है। उ०—चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिँ सुर-रवनी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—रहना।—होना।

यौ०—गर्भपात। गर्भस्राव।

मुहा०—गर्भ गिरना = पेट के बच्चे का पूरी बाढ़ के पहले निकल जाना। गर्भपात होना। गर्भ गिराना = पेट के बच्चे को औषध आघात आदि द्वारा पूरी बाढ़ या पूरे समय के पहले निकाल देना। गर्भपात करना।

(२) स्त्री के पेट के भीतर का वह स्थान जिसमें बच्चा रहता है। गर्भाशय। उ०—जाके गर्भ माहिँ रिपु मेरा। ताको बध करिहौं यहि ठैरा।—रघुराज। (३) फलित ज्योतिष में नए मेघों की उत्पत्ति जिससे वृष्टि का आगम होता है।

विशेष—स्त्री के रज और पुरुष के वीर्य्य के संयोग से गर्भ की स्थिति होती है। हारीत के मत से प्रथम दिन शुक्र शोणित के संयोग से जिस सूक्ष्म पिंड की सृष्टि होती है उसे कलल कहते हैं। दस दिन में यह कलल बबूलों के रूप में होता है। एक महीने में सूक्ष्म रूप में पाँचों इंद्रियों की उत्पत्ति और पँचभूतों की प्राप्ति होती है। तीसरे महीने हाथ पैर निकलते हैं और साढ़े तीन महीने पर सिर वा मस्तक उत्पन्न होता है और उसकी भीतरी बनावट पूरी होती है। चौथे महीने में रोएँ निकलते हैं। पाँचवें महीने जीव का संचार होता है। छठें महीने में बच्चा हिलने डुलने लगता है। दसवें या अधिक से अधिक ग्यारहवें महीने में बच्चे का जन्म होता है। इसी प्रकार सुश्रुत ने पहले मस्तक, फिर ग्रीवा, फिर दोनों पार्श्व और फिर पीठ का होना लिखा है। सुश्रुत ने वक्षस्थल के भीतर कमल के आकार का हृदय माना है और उसे जीवात्मा वा चेतना शक्ति का स्थान कहा है। कन्या और पुत्र के भेद के विषय में भावप्रकाश आदि में लिखा है कि जब गर्भ में शुक्र की प्रबलता होती है तब पुत्र और जब रज की प्रबलता होती है तब कन्या होती है। आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों के भी मत से रज और शुक्र के संयोग से गर्भ की स्थिति और बच्चे का जन्म होता है। पर उनके मत से अंडकोश के दहिने भाग में ऐसे पदार्थ की स्थिति रहती है जिसमें पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति होती है और बाएँ भाग में कन्या उत्पन्न करने की शक्तिवाला पदार्थ रहता है। गर्भाधान के समय जिस पदार्थ की अधिकता गर्भाशय में हो जाती है उसी के अनुसार कन्या या पुत्र की सृष्टि होती है। इसी सिद्धांत के बल पर वे कहते हैं कि मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार पुत्र या कन्या उत्पन्न करने में समर्थ हो सकता है। पाश्चात्य खोज इस विषय में बहुत आगे बढ़ी हुई है। पुरुष-वीर्य्य के एक बूँद में सूत के से लंबे लंबे सूक्ष्म वीर्य्याणु रहते हैं जो सूक्ष्म रोयों के सहारे तैरते रहते हैं। स्त्री के रजाणु वीर्य्याणु से कुछ बड़े और कौड़ी के आकार के होते हैं। पुष्ट होने पर ये ही गर्भाणु या गर्भांड कहलाते हैं। इनका व्यास $\frac{1}{१२०}$ इंच होता है और इनके भीतर प्राण रस रहता है। जब रज और वीर्य्य का संयोग होता है तब सूक्ष्म गर्भाणु और शुक्राणु एक दूसरे को आकर्षित करके मिल जाते हैं। इस आकर्षण का कारण प्राण वा रसानुभव से मिलती जुलती एक प्रकार की चेतना बतलाई जाती है, जो इन सूक्ष्म प्राणाणुओं वा प्राणकोशों में होती है। बहुत से शुक्राणु गर्भाणु की ओर झुकते हैं और उसमें घुसना चाहते हैं, पर घुसने पाता है कोई एक ही। जब कोई शुक्राणु सिर के बल उसमें घुस जाता है तब गर्भांड के ऊपर की एक झिल्ली छूट कर अलग हो जाती है और रक्षक कोश की तरह बन जाती है जिससे और शेष शुक्राणु गर्भांड के भीतर नहीं घुसने पाते। इस प्रकार इन दोनों प्राणाणुकोशों के संयोग से एक स्वतंत्र कोश की सृष्टि होती है जिसे मूलकोश कहते हैं। इसके उपरांत प्राणरस का विभाग होता है। इस विभागक्रम के द्वारा धीरे धीरे बहुत से प्राण-कोशों का समूह बबूलों (वा शहतूत) की तरह बन जाता है जिसे आयुर्वेदिक आचार्य्यों ने कलल कहा है।

गर्भक-संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रजीव वृक्ष। पतजिव।

गर्भकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिससे गर्भ रहे। गर्भ धारण करनेवाला। जैसे, पति, जार आदि। (२) सामगान का एक भेद जिसमें वैराज के आदि और अंत में रथंतर का गान किया जाय।

गर्भकाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भधान के उपयुक्त काल। ऋतु काल। (२) वह समय जिसमें स्त्री के पेट में बच्चा रहता है।

गर्भकेसर-संज्ञा पुं० [सं०] फूलों में वे बाल ऐसे पतले सूत जो गर्भनाल के भीतर होते हैं और जिनके साथ पराग-केसर के पराग का मेल होने से फलों और बीजों की पुष्टि होती है।

गर्भकोष-संज्ञा पुं० [सं०] गर्भाशय।

गर्भगृह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकान के बीच की कोठरी। मध्य का घर। (२) घर का मध्य भाग। आँगन। (३) मंदिर में बीच की वह प्रधान कोठरी जिसमें मुख्य प्रतिमा रखी जाती है।

गर्भघातिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] लांगलिका वृक्ष।

गर्भघाती–वि० [सं० गर्भघातिन्] [स्त्री० गर्भघातिनी] गर्भपात करनेवाला ।

गर्भज–वि० [सं०] (१) गर्भ से उत्पन्न । संतान । (२) जो जन्म से हो । जिसे साथ लेकर कोई उत्पन्न हो । जैसे, गर्भज रोग । गर्भज गुण ।

गर्भद–वि० [सं०] गर्भ देनेवाला । जिससे गर्भ रहे ।
संज्ञा पुं० पुत्रजीव वृत्त ।

गर्भदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफ़ेद भटकटैया ।

गर्भदात्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वेत कंटकारि । सफ़ेद भटकटैया ।

गर्भदास–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो जन्म से दास हो । दासीपुत्र ।

गर्भदिवस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भ का समय । गर्भकाल । (२) बृहत्संहिता के अनुसार १६५ दिन का काल जिसमें मेघ का गर्भ होता है । यह समय प्रायः कार्तिकी पूर्णिमा के बाद आता है ।

गर्भद्रुत–संज्ञा पुं० [सं०] पारे का तेरहवां संस्कार जो शुद्धि के लिये किया जाता है ।

गर्भद्रुह–वि० [सं०] जो गर्भ रहने का विरोधी हो । जो गर्भाधान न चाहे ।

गर्भद्रुहा–वि० [सं०] (स्त्री) जो गर्भधारण की विरोधिनी हो । जो गर्भधारण करना न चाहती हो । जो गर्भ गिरावे ।

गर्भध–वि० [सं०] गर्भधारण करानेवाला । गर्भधारक ।

गर्भनाडी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के अनुसार गर्भाशय की एक नाड़ी जिससे गर्भधारण होता है ।

गर्भनाल–संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलों के भीतर की वह पतली नाल जिसके सिरे पर गर्भकेसर होता है । इसी गर्भकेसर और परागकेसर के संमिश्रण से फलों और बीजों की पुष्टि और वृद्धि होती है ।

गर्भनिस्रव–संज्ञा पुं० [सं०] वह झिल्ली आदि जो बच्चे के उत्पन्न होने पर पीछे से निकलती है । जैसे, आँवर खेड़ी ।

गर्भपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाभा । कोमल पत्ता । कोंपल । (२) फूल के अंदर के पत्ते जिनमें गर्भकेसर रहता है । गर्भनाल ।

गर्भपाकी–संज्ञा पुं० [सं०] साठीधान ।

गर्भपात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भ का पाँचवें वा छठें महीने में गिर जाना । (२) गर्भ का गिरना । पेट के बच्चे का पूरी बाढ़ के पहले निकल जाना ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गर्भपातक–संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहिँजन । रक्तशोभांजन ।

गर्भपातन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेट गिराना । गर्भ हत्या । (२) रीठा ।

गर्भपातिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कलिहारी । (२) विशल्या नामक ओषधि ।

गर्भभवन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह घर जो बीच में हो । मध्य की कोठरी । (२) प्रसूतिका गृह । सौरी ।

गर्भमास–संज्ञा पुं० [सं०] वह महीना जिसमें गर्भाधान हो ।

गर्भरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाँव जो ११२ हाथ लंबी, ५६ हाथ चौड़ी और ५६ हाथ ऊँची होती थी और नदियों में चलती थी ।

गर्भवती–वि० स्त्री० [सं०] गर्भिणी । जिसके पेट में बच्चा हो । गुर्विणी ।

गर्भवास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भ के भीतर की स्थिति । (२) गर्भाशय ।

गर्भव्याकरण–संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा शास्त्र का वह अंग जिसमें गर्भ की उत्पत्ति तथा वृद्धि आदि का वर्णन होता है ।

गर्भव्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध में सेना की एक प्रकार की रचना जिसमें सेना कमल के पत्तों की तरह अपने सेनापति वा रक्ष्य-वस्तु को चारों ओर से घेर कर खड़ी होती और लड़ती है ।

गर्भशंकु–संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा शास्त्रानुसार एक प्रकार की सँड़सी जिससे मरे हुए बच्चे को पेट के भीतर से निकालते हैं । इसके मुँह का घेरा आठ अंगुल का होता है ।

गर्भशय्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भ की उत्पत्ति का स्थान ।

गर्भस्थ–वि० [सं०] जो गर्भ में हो । जिसका जन्म होनेवाला हो ।

गर्भस्थली–संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भाशय ।

गर्भस्राव–संज्ञा पुं० [सं०] चार महीने के भीतर का गर्भपात जिसमें रुधिरादि गिरता है । इस अवस्था में शास्त्रानुसार जितने महीने का गर्भ होता है उतने दिन तक का सूतक लगता है, जिसे गर्भस्राव शौच कहते हैं ।

गर्भस्रावी–संज्ञा पुं० [सं० गर्भस्राविन्] हिंताल नामक वृक्ष, जो एक प्रकार का ताड़ है ।

गर्भहत्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रूण हत्या । गर्भपात ।

गर्भांक–संज्ञा पुं० [सं०] नाटक के अंक का एक अंश जिसमें केवल एक दृश्य होता है । इसकी समाप्ति पर पहिली जवनिका उठाई अथवा दूसरी गिराई जाती है और तब दूसरा दृश्य आरंभ होता है ।

गर्भागार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह कोठरी जो घर के मध्य में हो । घर के बीच का कमरा । गर्भगृह । (२) आँगन । (३) गर्भस्थान । गर्भाशय ।

गर्भाधान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गृह्यसूत्र के अनुसार मनुष्य के सोलह संस्कारों में से पहला संस्कार । यह संस्कार उस समय होता है जब स्त्री ऋतुमती हो चुकती है । (२) गर्भ की स्थिति । गर्भ-धारण ।

गर्भाशय–संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों के पेट में वह स्थान जिसमें बच्चा रहता है । बच्चादान ।

विशेष—स्त्रियों का गर्भाशय वा गर्भकोश वास्तव में वही अवयव है जो पुरुषों का अंडकोश है। स्त्रियों में यह भीतर होता है पुरुषों में बाहर। इसी की भिन्नता से स्त्री और पुरुषों के और और लक्षणों की भिन्नता उत्पन्न होती है। इसी गर्भाशय में रजाणु वा गर्भाणु रहते हैं। जो जीव जितने ही अधिक अंडे देते हैं उतने ही उनके गर्भाशय बड़े होते हैं। स्त्री का गर्भाशय १½ इंच लंबा, ¾ इंच चौड़ा और ½ इंच मोटा होता है और उसमें एक गर्भनाड़ी रहती है जिससे बच्चा निकलता है।

गर्भिणी—वि० [सं०] (१) जिसे गर्भ हो। गर्भवती। पेटवाली। (२) खिरनी का पेड़।
संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो ८० हाथ लंबी, ४० हाथ चौड़ी और ४० हाथ ऊँची होती थी और समुद्र में चलती थी। इस पर यात्रा करना अशुभ और अनिष्टकारक समझा जाता था।

गर्भित—वि० [सं०] (१) गर्भयुक्त। (२) पूर्ण। पूरित। भरा हुआ।
संज्ञा पुं० [सं०] काव्य का एक दोष जिसमें कोई अतिरिक्त वाक्य किसी वाक्य के अंतर्गत आ जाता है।

गर्भोपघात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भ का नष्ट होना। (२) बादल में जल उत्पन्न करने की शक्ति का नष्ट हो जाना।

गर्भोपनिषद्—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्व वेद संबंधी एक उपनिषद जिसमें गर्भ की उत्पत्ति और उसके बढ़ने आदि का वर्णन किया गया है।

गर्याल्लू—वि० दे० "गरियालू"।

गर्रा—वि० [सं० गरग्राधिक = लाख] लाख के रंग का। लाही।
संज्ञा पुं० (१) लाखी रंग। (२) घोड़े का एक रंग जिस में लाही बालों के साथ कुछ सफ़ेद बाल मिले होते हैं। (३) इस रंग का घोड़ा। (४) लाही रंग का कबूतर।
संज्ञा पुं० [अनु०] (१) बहते हुए पानी का थपेड़ा। उ०—भेढ़ा भँवर उछालन चकरा समेट माला। बैडा गंभीर तख्ता कट्टे पछार गर्रा।—नजीर। (२) सतलज नदी का एक नाम। (भावलपुर)
संज्ञा पुं० [हिं० गराड़ी] गराड़ी।

गर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० गरेरना] (१) खलिहान में लगाई हुई डंठल की गाँज। (२) तागा वा तार लपेटने का एक औज़ार।

गर्व—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गर्वित, गर्ववान] (१) अहंकार। घमंड। (२) एक प्रकार का संचारी भाव। अपने को सब से बड़ा और दूसरों को अपने से छोटा समझने का भाव।

गर्वप्रहारी—वि० [सं०] गर्व का नाश करनेवाला। घमंड चूर्ण करनेवाला।

गर्ववंत—वि० [सं० गर्ववान् का बहु० गर्ववंतः] घमंडी। अभिमानी। अहंकारी। उ०—गर्ववंत सुरपति चढ़ि आयो। वाम करज गिरि टेकि दिखायो।—सूर।

गर्वाना—† क्रि० अ० [सं० गर्व] गर्व करना। अभिमान करना। घमंड करना। अहंकार करना। उ०—कहा तुम इतनेहि को गर्वानी। जोबन रूप दिवस दसही को ज्यों अँगुरी को पानी।—सूर।

गर्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जिसे अपने रूप और गुण आदि का घमंड हो। यह दो प्रकार की होती है, रूपगर्विता और प्रेमगर्विता।

गर्विष्ठ—वि० [सं०] गर्व-युक्त। घमंडी। अहंकार करनेवाला।

गर्वी—वि० [सं० गर्विन्] घमंडी। अहंकारी। मग़रूर।

गर्वीला—वि० [सं० गर्व + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० गर्वीली] घमंड से भरा हुआ। अभिमान युक्त। घमंडी। उ०—नैन परे रस स्याम सुधा में........जिनि वह सुधा पान मुख कीन्हो दे कैसे कटु देखत। त्यों ए नैन भए गर्वीले अब काहे हम लेखत।—सूर।

गर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गर्हणीय, गर्हित] निंदा। शिकायत।

गर्हणीय—वि० [सं०] निंदा करने के योग्य। बुरा। निंदनीय।

गर्हा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निंदा।

गर्हित—वि० [सं०] जिसकी निंदा की जाय। निंदित। दूषित। बुरा।

गर्ह्य—वि० [सं०] निंदा करने योग्य। निंदनीय।

गलंश—संज्ञा स्त्री० [सं० गलितांश] वह जायदाद जिसका मालिक मर गया हो और उसका कोई उत्तराधिकारी न हो।

गल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गला। कंठ। गरदन। (२) राल। (३) गड़ाकू नाम की मछली। (४) एक प्राचीन बाजे का नाम।

गलई—संज्ञा स्त्री० दे० "गलही"।

गलकंबल—संज्ञा पुं० [सं०] गाय के गले के नीचे का वह भाग जो लटकता रहता है। झालर। लहर। उ०—सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।.........अंतर अयन अयनु भल थनु फल बच्छवेद विश्वासी। गलकंबल बरना विभाति जनु लूम लसति सरिता सी।—तुलसी।

गलका—संज्ञा पुं० [हिं० गलना] एक प्रकार का फोड़ा जो हाथ की उँगलियों के अगले भाग में होता और बहुत कष्ट देता है।

गलकोड़ा, गलखोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गला + कोड़ा] (१) मालखंभ की एक कसरत जिस में पीठ की तरफ़ गरदन पर से बेंत को ले जाकर एक हाथ में उसे लपेट लेते और दूसरी ओर के पाँव में अंटी देकर गले के जोर पर लटक जाते हैं। (२) कुश्ती का एक पेंच जिसमें एक बगल में शत्रु की गरदन दबा कर दूसरा हाथ उसकी बगल से पीठ पर ले जाते हैं और उसे उलट कर टाँग के सहारे गिरा देते हैं। (३) एक प्रकार का कोड़ा वा चाबुक।

गलगंड–संज्ञा पुं० [सं०] गले का एक रोग जिसमें गले में सूजन हो आती है और क्रमशः बढ़ते बढ़ते सामने एक गाँठ सी निकल पड़ती है। यह गाँठ भिन्न भिन्न आकार की होती है और कभी कभी इतनी बढ़ जाती है कि थैले की तरह गले में लटकने लगती है। वैद्यक के अनुसार यह रोग तीन प्रकार का माना गया है, वातज, कफज और मेदज। डाक्टरों का कथन है कि पहाड़ी तराइयों में लोगों को विशेष कर स्त्रियों को गलगंड रोग हो जाता है। उनके मत से इसमें गले के एक या दोनों ओर की झिल्ली फूल आती है। घेघा।
† संज्ञा पुं० [देश०] हरगीला नाम की चिड़िया।

गलगल–संज्ञा पुं० [देश०] (१) मैना की जाति की एक चिड़िया जो कुछ सुर्खी लिए काले रंग की होती है। इसके गले पर दोनों ओर पीली या लाल धारियाँ होती हैं और इसकी दुम के नीचे का भाग सफ़ेद होता है। सिरगोटी। गलगलिया। (२) एक प्रकार का बहुत बड़ा नीबू जो चकोतरे के बराबर होता और पकने पर गहरे बसंती रंग का हो जाता है। यह बहुत अधिक खट्टा होता है और अचार डालने तथा ओषधियों के काम आता है। (३) चर्बी की बत्ती का एक टुकड़ा जो जहाज़ में समुद्र की गहराई नापनेवाले यंत्र में सीसे की एक नली से लगा रहता है। यह नली बार बार समुद्र में फेंकी और निकाली जाती है और इसमें बालू आदि समुद्र की तह की चीज़ें लग कर बाहर निकलती हैं। (जहाजी) (४) अलसी और चूने के तेल को मिला कर बनाया हुआ एक प्रकार का मसाला जो लकड़ी आदि की चीज़ों को जोड़ने या छोटा छेद वा दरार आदि बंद करने के काम में आता है।

गलगला–वि० [हिं० गीला या अनु०] भीगा हुआ। आर्द्र। तर। उ०—ललन चलन सुनि चुप रही बोली आयन ईठि। राख्यो गहि गाढ़े गरौ मनो गलगली दीठ।—बिहारी।

गलगलाना†–क्रि० अ० [हिं० गीला या अनु०] गीला होना। तर होना। भीगना।

गलगलिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] किलहँटी या सिरोही नाम की चिड़िया।

गलगाजना–क्रि० अ० [हिं० गाल + गाजना] खुशी से गरजना। गाल बजाना। बढ़ बढ़ के बातें करना। उ०—राम सुभाउ सुने तुलसी हुलसे अलसी हमसे गलगाजे।—तुलसी।

गलगुच्छा–संज्ञा पुं० दे० "गलसुच्छा"।

गलगुथना–वि० [हिं० गाल] मोटा ताज़ा। जिसका बदन ख़ूब भरा और गाल फूले हों।

गलग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष के अनुसार कृष्णपक्ष की चतुर्थी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, अमावस्या और प्रतिपदा। गर्गादि के मत से जब स्वाध्याय के आरंभ करते ही स्मृति के अनुसार अनध्याय पड़ जावे तो उसे भी गलग्रह कहते हैं। (२) मछली का काँटा। (३) वह आपत्ति जो कठिनता से टले। (४) गले का एक रोग जिसमें कफ़ बढ़ जाने से गला बंद हो जाता है। (५) एक प्रकार की पकी हुई मछली।

गलछट–संज्ञा स्त्री० [हिं० गला + छाँटना] मछली के गलफड़े के दोनों ओर कुर्री हड्डियों का बना हुआ, कमानी के आकार का वह भाग जिसके ऊपर लाल सूइयों की झालर लगी रहती है और जिसकी सहायता से वह पानी में मिली हुई वायु को अंदर खींच कर साँस लेती और पानी को बाहर ही छोड़ देती है।

गलजंदड़ा–संज्ञा पुं० [सं० गल + यन्त्र, पं० जंदरा] (१) वह जो सदा साथ रहे। गले का हार। वह जो कभी पिंड न छोड़े। (२) वह रूमाल या कपड़े की पट्टी जो गले में उस समय हाथ के सहारे या उसे लटकाने के लिये बाँधी जाती है जब कि हाथ में किसी प्रकार की चोट लगी हो या कोई घाव हो।

गलजोड़–संज्ञा स्त्री० दे० "गलजोत"।

गलजोत–०संज्ञा स्त्री० [हिं० गला + जोत] (१) वह रस्सी वा पगही आदि जिससे एक बैल के गले को दूसरे बैल के गले से लगा कर बाँधते हैं। गलजोड़। (२) गले का हार। गलजंदड़ा।
‡ वि० असह्य।

गलतंग†–वि० [हिं० गला + तंग] बे-सुध। बे-ख़बर।

गलतंस–संज्ञा पुं० [सं० गलित + वंश] (१) ऐसा मनुष्य जो कोई संतति न छोड़ कर मरा हो। (२) ऐसे मनुष्य की संपत्ति जिसे कोई संतति न हो।

गलत–वि० [अ०] [संज्ञा स्त्री० गलती] (१) अशुद्ध। भ्रममूलक। (२) असत्य। मिथ्या। झूठ।
क्रि० प्र०—करना।—ठहरना।—ठहराना।—होना।

गलतकिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाल + तकिया] छोटा, गोल और मुलायम तकिया जो गालों के नीचे रखा जाता है।

गलतनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गला + तनना] वह रस्सी जो बैलों के गेरावँ में बाँधी जाती है। पगहा।

गलताँ–वि० दे० "गलतान"।

गलता–संज्ञा पुं० [अ० गलत] (१) एक प्रकार का बहुत चमकीला और गफ कपड़ा जिसका ताना रेशम का और बाना सूत का होता है। यह सादा, धारीदार और कई प्रकार का होता है। (२) मकान की कारनिस।

गलताड़–संज्ञा पुं० [सं०] जूए वा जुआठे की वह सैल वा खूँटी जो भीतर की ओर होती है।

गलतान–वि० [फ़ा०] लुढ़कता हुआ। चक्कर मारता हुआ। घूमता हुआ। उ०—गगन दुआरे मन गया करै अमृत

रस पान । रूप सदा झलकत रहै, गगन मँडल गलतान ।—कबीर ।

गलती–संज्ञा स्त्री० [अ० गलत + ई । फा०] (१) भूल । चूक । धोखा ।

मुहा०—गलती में पड़ना = धोखा खाना । भूल करना । (२) अशुद्धि । भूल ।

क्रि० प्र०—करना ।—खाना ।—निकालना ।—पड़ना ।—होना ।

गलथना–संज्ञा पुं० [सं० गलस्तन, पा० गलत्थन, गलथन] वे थैलियाँ जो एक विशेष प्रकार की बकरियों की गरदन में दोनों ओर लटकती रहती हैं । उ०—नाम जपत कन्या भली साकट भला न पूत । छेरी के गल गलथना जामे दूध न मूत ।—कबीर ।

गलथैली–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाल + थैली] बंदरों के गाल के नीचे की थैली जिस में वे खाने की वस्तु भर लेते हैं ।

गलनहाँ–संज्ञा पुं० [हिं० गलना + नहँ = नाखून] हाथियों का एक रोग जिसमें उनके नाखून गल गल के निकला करते हैं । वि० वह हाथी जिसे गलनहाँ रोग हो ।

गलना–क्रि० अ० [सं० गरण = तर होना] (१) किसी पदार्थ के घनत्व का कम या नष्ट होना । किसी द्रव्य के संयोजक अंशों वा अणुओं का एक दूसरे से इस प्रकार पृथक हो जाना कि जिस से वह द्रव्य विकृत, कोमल वा द्रव हो जाय । यह विश्लेषण किसी द्रव्य के बहुत दिनों तक यों ही अथवा जल, तेजाब आदि में पड़े रहने, गरमी या आंच लगने अथवा किसी और प्रकार के संयोग के कारण हो जाता है । जैसे, आंच के द्वारा सोने, चाँदी आदि का गलना ; जल में बतासे मिट्टी आदि का गलना ; गरम जल की आँच में दाल, चावल आदि का गलना ; तेजाब में दवा या खनिज पदार्थों का गलना, कीटाणुओं के संयोग से (कोढ़ आदि व्याधियों में) शरीर के अंगों और बहुत अधिक पकने या अधिक समय तक पड़े रहने के कारण फल पत्ती आदि का सड़ कर गलना । (२) बहुत जीर्ण होना । जैसे, कपड़ा या कागज गलना । (३) शरीर का दुर्बल होना । बदन सूखना । जैसे, आठ दिन की बीमारी में वे बिलकुल गल गए । (४) बहुत अधिक सरदी के कारण हाथ पैर का ठिठुरना । जैसे, आज तो सरदी के मारे हाथ गल रहे हैं । (५) वृथा या निष्फल होना । बेकाम होना । नष्ट होना । जैसे, दाँव गलना, मोहरा गलना ।

मुहा०—कोठी गलना = कुएं या पुल के खंभे में जमवट या गोले के ऊपर की जोड़ाई का नीचे धँसना । चीनी गलना = मिठाई आदि बनाने के लिये चीनी का कड़ाही में डाला जाना । रुपया गलना = व्यर्थ व्यय होना । फ़ज़ूल ख़र्च होना । जैसे, कल उनके पचास रुपए तमाशे में गल गए ।

संयो० क्रि०—जाना ।

गलफड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० गाल + फटना] (१) जलजंतुओं का वह अवयव जिससे वे पानी में साँस लेते हैं । ऐसे जंतुओं में फेफड़ा नहीं होता । यह सिर के नीचे दोनों ओर होता है और भिन्न भिन्न जलजंतुओं में भिन्न भिन्न आकार का होता है । मछलियों के गले में सिर के दोनों ओर दो अर्धचंद्राकार छेद वा कटाव होते हैं । इन्हीं छेदों के भीतर चार चार अर्धचंद्राकार कमानियाँ होती हैं जिनके ऊपर लाल लाल नुकीली सूइयों की झालर होती है जिसे गलछट कहते हैं । इन्हीं गलछटों से होकर मछलियाँ पानी में साँस लेती हैं जिस से पानी में मिली हुई वायु मात्र भीतर जाती है और पानी छँट कर बाहर रह जाता है । (२) गालों के दोनों ओर का वह मांस जो दोनों जबड़ों के बीच में होता है । गाल का चमड़ा ।

गलफरा–संज्ञा पुं० दे० "गलफड़ा" ।

गलफाँस–संज्ञा स्त्री० [सं० गलपाश] मालखंभ की एक कसरत जिसमें बेत को गले में लपेट कर उसके एक छोर को छाती पर से ले जाकर पैर के अँगूठे के नीचे दबा कर केवल गले के जोर से अपने माथे को पेट तक झुकाते हैं । इस कसरत में इस बात पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है कि गला अधिक न कसने पावे अन्यथा गले में फाँसी लग जाने की संभावना होती है ।

गलफाँसी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गला + फाँसी] (१) गले की फाँसी । (२) जंजाल । कष्टदायक वस्तु वा कार्य्य ।

गलफूट–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाल + फूटना] बड़बड़ाने की लत । बेधड़क अंड बंड बकने की लत । कल्ले-दराज़ी ।

गलफूला–वि० [हिं० गाल + फूलना] जिसकी गाल फूली हो । संज्ञा पुं० एक रोग जिस में गले में सूजन होती है ।

गलफेड़–संज्ञा पुं० [सं० गल + पिंड] गले की गिलटी ।

गलबंदनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गला + बँधना या गुलूबंद] गुलूबंद नामक आभूषण जो गले में पहना जाता है ।

गलबदरी‡–संज्ञा स्त्री० [हिं० गलना + बदली] ऐसा बादल जिसके साथ हाथ पाँव गलानेवाला जाड़ा पड़े । यह अवस्था प्रायः जाड़े के दिनों में होती है ।

गलबल†–संज्ञा पुं० [अनु०] कोलाहल । खलभली । गड़बड़ी । उ०—(क) गलबल सब नगर परयो प्रगटे यदुवंशी । द्वारपाल इहै कही जोधा कोउ बच्यो नहीं काँध गजदंत धरे सूर ब्रह्मअंशी ।—सूर । (ख) गोपद पयोधि करि होलिका ज्यों लाई लंक निपट निसंक पर पुर गलबल भो ।—तुलसी ।

गलबाँही–संज्ञा स्त्री० [हिं० गला + बाँह] गले में बाँह डालना ।

कंठालिंगन । उ०—सुमन कुंज विहरत सदाँ दै गलबाँही माल । बंदौं चरन सरोज तिन जुगुल लाडिली लाल ।

गलमँदरी–संज्ञा स्त्री० [सं० गाल + सं० मुद्रा] (१) शिव जी के पूजन शयन आदि के समय उन्हें प्रसन्न करने के लिये गाल बजाने की मुद्रा । गलमुद्रा । (२) गाल बजाना । व्यर्थ बकवाद या गप्प करना । उ०—इत नृप मूढ़न की गलमंदरी । मिटन न पाई जब तक सगरी ।—विश्राम ।

गलमुच्छा–संज्ञा पुं० [सं० गाल + हिं० मूछ] दोनों गालों पर के बढ़ाए हुए बाल जो कुछ लोग शौक से रख लेते हैं । ऐसे लोग ठोढ़ी के बाल तो मुड़वा डालते हैं पर गालों के बाल बढ़ने देते हैं । गलगुच्छा ।

गलमुद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० गल + मुद्रा] शिव जी के पूजन शयन आदि के समय उनको प्रसन्न करने के लिये गाल बजाने की मुद्रा । गलमँदरी ।

गलवाना–क्रि० स० [हिं० 'गलाना' का प्रे० रूप] गलाने का काम कराना । गलाने में लगाना ।

गलशुंडी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जीभ के आकार का मांस का एक छोटा टुकड़ा जो प्राणियों के गले के अंदर जीभ की जड़ के पास होता है । शब्द उच्चारण करने में यह प्रधान सहायक है और इस से स्वास की नलियों की रक्षा होती है और उन में खाने पीने की चीज़ें नहीं जाने पातीं । पुरुषों में यह अंश आध इंच से कुछ बड़ा और स्त्रियों में कुछ छोटा होता है । बाल्यावस्था में यह बहुत छोटा रहता है पर युवावस्था में दो तीन वर्षों के अंदर ही इसका आकार दूना या तिगुना हो जाता है । युवावस्था में जो आवाज़ कड़ी हो जाती है और जिसे कंठ फूटना कहते हैं उसका प्रधान कारण इसी के रूप और आकार का परिवर्त्तन है । कुछ पशुओं में यह बहुत नीचे की ओर फेफड़े की नलियों के पास होता है । साधारणतः पक्षियों में दो और कभी कभी तीन तक गलशुंडियां होती हैं । छोटी ज़बान या जीभ । जीभी । (२) एक रोग जिसमें कफ और रक्त के विकार के कारण तालू की जड़ में सूजन हो जाती है और खांसी और सांस की अधिकता हो जाती है ।

गलसिरी–संज्ञा स्त्री० [सं० गल + श्री] कंठश्री नाम का गहना जो गले में पहना जाता है ।

गलसुआ–संज्ञा पुं० [हिं० गाल + सूजना] एक रोग जिसमें गाल के नीचे का भाग सूज आता है ।

संज्ञा पुं० [हिं० गला + सूजना] पशुओं का एक रोग जिसमें उसके गले में सूजन हो आती है और उसे खांसी होने लगती है ।

गलसुई–संज्ञा स्त्री० [सं० गाल + सुई] गालों के नीचे रखने की एक छोटा, गोल और कोमल तकिया । गलतकिया । उ० —कुसुम गुलाबन की गलसुई । बरणीं जाय न नयनन छुई ।—केशव ।

गलस्तन–संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा गलस्तनी] स्तन के आकार की वे पतली थैलियां जो एक प्रकार की बकरियों के गले के दोनों ओर लटकती रहती हैं । गलथन ।

गलस्तनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बकरियों की एक जाति जिनके गले के पास स्तन के आकार की दो छोटी पतली थैलियां लटकती रहती हैं ।

गलस्वर–संज्ञा पुं० [सं० गल + स्वर] एक प्राचीन काल का बाजा जो मुँह से फूँक कर बजाया जाता था ।

गलहँड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० गला + हंडा = एक बरतन] गले का एक रोग जिसमें गले में थैली सी लटक आती है । घेघा ।

गलही–संज्ञा स्त्री० [सं० गला + ही (प्रत्य०)] नाव का वह अगला और ऊपर का भाग जहाँ उसके दोनों पार्श्व आकर समाप्त होते हैं ।

गला–संज्ञा पुं० [सं० गल] (१) शरीर का वह अवयव जो सिर को धड़ से जोड़ता है । इसके भीतर एक पतली नाली रहती है जिससे होकर भोजन किया हुआ पदार्थ तथा श्वास द्वारा खींची हुई वायु पेट में जाती है । नाभिमूल से नाद के साथ उठी हुई वायु इसी में से होकर मुख के भिन्न भिन्न स्थानों में टकराती हुई भिन्न भिन्न प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करती है । गरदन । कंठ ।

यौ०—गलाफाड़ । गलेबाज । गलबाँही ।

मुहा०—गला आना = गले के भीतर छाला पड़ना । सूजन होना । गला उठाना वा करना = बच्चों के गले में उँगली डाल कर वा रूमाल बाँध कर उनके बढ़े हुए कौवे को ऊपर को दबाना जिसमें वह अपने ठिकाने पर आ जावे । घंटी बैठाना । गला कटना = (१) दे० "गरदन कटना" । धड़ से सिर जुदा होना । (२) अनुचित हानि पहुँचना । किसी को विरुद्ध कार्रवाई से नुक़सान पहुँचना । गला काटना = (१) गरदन काटना । धड़ से सिर जुदा करना । (२) अत्यंत कष्ट पहुँचाना । बहुत दुःख देना । अन्याय करना । उ०—वह लोगों का गला काट काट कर रुपया इकट्ठा कर रहा है । (३) सूरन, बंडा, आदि का गले के भीतर एक प्रकार की जलन और चुनचुनाहट उत्पन्न करना । गले के भीतर कनकनाना । उ०—यह सूरन बहुत गला काटता है । (४) विरुद्ध कारवाई करके हानि पहुँचाना । बुराई करना । अहित करना । उ—जो पहले मित्र बनते हैं वे ही पीछे गला काटते हैं । गला घुँटना = दम रुकना । अच्छी तरह सांस न लिया जाना । गला घोंटना = (१) गले को ऐसा दबाना कि सांस रुक जाय । टेंटुआ दबाना । (२) ज़बरदस्ती करना । जब्र करना । उ०—गला घोंट कर कोई किसी से कब तक काम ले सकता है ? (३) मार डालना । गला दबा कर

मार डालना । **गला चलना** = कंठ से सुरीला स्वर निकलना । आवाज़ का सुरीला होना । **जैसे, उसका गला खूब चलता है ।** **गला छूटना** = पीछा छूटना । पल्ला छूटना । छुटकारा मिलना । निस्तार होना । किसी अरुचिकर वा इच्छा विरुद्ध बात का दूर होना । बचाव होना । उ०—**उसको ५) दिए तब जाकर गला छूटा ।** **गला छुटाना वा गला छुड़ाना** = पीछा छुड़ाना । पल्ला छुड़ाना । पिंड छुड़ाना । बचाव करना । किसी ऐसी बात को दूर करना जिससे चित्त झंझट, हैरानी, दबाव वा दुःख में पड़ा हो । उ०—**(क) उसे कुछ दे लेकर गला छुड़ाओ । (ख) कल वह रास्ते में मुझसे ऐसा उलझ पड़ा कि गला छुड़ाना कठिन हो गया ।** **गला जोड़ना** = (१) प्रीति वा मैत्री प्रकट करने के लिये एक दूसरे के गले में हाथ डालना । मिलना । मैत्री करना । (२) साथ देना । **गला टीपना** = दे० "गला दबाना" । **गला दबाना** = (१) गले को इतने ज़ोर से पकड़ना कि साँस रुकने लगे । (२) गला दबा कर मार डालना । (३) जबरदस्ती करना । अनुचित दबाव डालना । उ०—**(क) उसने लोगों का गला दबा कर रुपया वसूल किया । (ख) जब वह नहीं जाना चाहता तब क्यों उसका गला दबाते हो ।** **गला पकड़ना** = (१) गले में बैठना । किसी खाई हुई वस्तु का गले में चिपकना वा रुकना तथा नीचे जल्दी न उतरना । **जैसे, सूखा सत्तू गला पकड़ता है ।** (२) कंठावरोध करना । कंठ से स्पष्ट शब्द न निकलने देना । **गला पड़ना वा बैठना** = (१) गले के भीतर सूजन होने वा कफ़ आदि रहने के कारण शब्द मुँह से स्पष्ट न निकलना वा घरघराहट के साथ निकलना । उ०—**रात भर गाते गाते इसका गला बैठ गया ।** (२) गले के भीतर सरदी के कारण छोटी छोटी गिलटियाँ निकलना जिससे खाने पीने में बहुत कष्ट होता है । **गला फटना** = गला दुखना । गले के भीतर दर्द होना । उ०—**चिल्लाते चिल्लाते उसका गला फट गया ।** **गला फँसना** = बंधन में पड़ना । लाचार होना । मजबूर होना । कोर दबना । विवश होना । उ०—**जब आदमी का गला फँसता है तब सब कुछ करने को तैयार हो जाता है ।** **गला फँसाना** = (१) दांव में कसना । बंधन में डालना । वशीभूत करना । (२) आपत्ति में फँसाना । संकट में डालना । मुश्किल में डालना । जवाबदेही में डालना । ऋण आदि का बोझ ऊपर डालना । उ०—**हमारा गला फँसा कर आप चलते बने ।** **गला फांसना** = दे० "गला फँसाना" । **गला फाड़ना** = इतना चिल्लाना कि गला दुखने लगे । जोर भर आवाज लगाना । उ०—**(क) वह इतना गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाता रहा पर तुमने न सुना । (ख) क्यों व्यर्थ गला फाड़ते हो, वह नहीं बोलेगा ।** **गला फिरना** = गले का तान और लय पर चलना । गले से स्वर का तान स्वर और गिटकरी के अनुसार निकलना । **गला फूलना** = उकता जाना । दम फूलना । **गला बँधना** = (१) मजबूर होना । बँध जाना । विवश होना । **गला बँधाना** = दे० "गला फँसाना" । **गला बाँधना** = (१) बंधन में डालना । मजबूर करना । (२) दे० "गला फँसाना । **गला बाँध कर धन जोड़ना** = खाने पीने का कष्ट उठा कर धन इकट्ठा करना । **गला रेतना** = (१) अत्यंत कष्ट पहुँचाना । अधिक और असह्य दुःख देना । (२) अहित करना । बुराई करना । विरुद्ध कार्रवाई करके हानि पहुँचाना । **गले का ढोलना** = गले का बोझ । **गले का बोझ** = व्यर्थ का भार । ऐसी वस्तु जिसका रहना बुरा लगता हो । **गले का हार** = (१) इतना प्यारा (व्यक्ति वा वस्तु) कि पास से कभी जुदा न किया जाय । अत्यंत प्रिय । चिर सहचर । उ०—**इस समय वह राजा साहब के गले का हार हो रहा है ।**

क्रि० प्र०—करना ।—बनाना ।—होना ।

(२) पीछा न छोड़नेवाला । लाख न चाहने पर भी सदा पास में बना रहनेवाला । वह जो बोझ मालूम हो । उ०—**पहले तो उसे परचाते अच्छा लगा, अब वही गले का हार हो रहा है ।**

क्रि० प्र०—होना ।

(बात) गले के नीचे उतरना वा गले उतरना = (बात) मन में बैठना । जी में जँचना । ध्यान में आना । समझ में आना । स्वीकृत होना । उ०—**उसे इतना समझाया जाता है पर उसके गले के नीचे उतरता ही नहीं ।** **गले उतारना** = स्वीकार कराना । **गले पड़ना** = (१) इच्छा के विरुद्ध प्राप्त होना । न चाहने पर भी मिलना । मत्थे पड़ना । उ०—**(क) गले पड़ी ढोल बजाए सिद्ध । (ख) गए निमाज़ छुड़ाने, रोज़ा गले पड़ा ।** (२) सिर पड़ना । आगे आना । भोगने वा सहने के लिये सामने उपस्थित होना । उ०—**होती अनजान तौ न जानती इतीक बिथा मेरे जिय जान मेरो जानिबो गरे परयो ।—देव ।** **(अपने) गले बाँधना** = (१) संग लगाना । सिर पर से लेना । (२) व्यर्थ पास में रखना । निष्प्रयोजन लिए रहना । उ०—**इस टूटे गिलास को लेकर क्या हम गले बाँधेंगे ।** (३) इच्छा विरुद्ध किसी से विवाह करना । **(दूसरे के) गले बाँधना** = दूसरे की इच्छा के विरुद्ध उसे देना । ज़बरदस्ती देना । दूसरे के न चाहने पर भी उसे लेने के लिये विवश करना । उ०—**जब वह इसे नहीं लेना चाहता तो क्यों उसके गले बाँधते हो ।** **गले मँढ़ना** = (१) किसी की इच्छा के विरुद्ध उसे देना । जबरदस्ती देना । उ०—**वह दूकानदार टूटी फूटी चीज़ें लोगों के गले मढ़ता है ।** (२) किसी की इच्छा के विरुद्ध उस पर किसी कार्य्य का भार देना । दूसरे के न चाहने पर भी उसे कोई काम सौंपना । (३) किसी की इच्छा के विरुद्ध उसके साथ किसी को ब्याहना । उ०—**वह कानी स्त्री उसके गले मढ़ी गई ।** **गले मिलना** = गले पर हाथ रख कर आलिंगन करना । **गले लगना** = (१) गले मिलना । मिलना । गले में हाथ डालना । (२) गले पड़ना । इच्छा के विरुद्ध प्राप्त होना ।

गले लगाना = गले मढ़ना। दूसरे की इच्छा के विरुद्ध उसे देना। दूसरे के न चाहने पर भी उसे लेने के लिये विवश करना। उ०—यदि आप इसे नहीं लेना चाहते तो कोई आप के गले नहीं लगाता है।

(२) गले का स्वर। कंठ स्वर। जैसे, उसे भगवान ने अच्छा गला दिया है। (३) अंगरखे, कुरते आदि की काट में कपड़े का वह भाग जो गले पर पड़ता है। गरेबान।

क्रि० प्र०—काटना।—कुता करना।

(४) बरतनों का वह तंग वा पतला भाग जो उसके मुँहड़े के नीचे होता है। जैसे, घड़े का गला, लोटे का गला। (५) चिमनी का कल्ला। बर्नर।

गलाऊ—वि० [हिं० गलना] जो गल जाय। जो गल सके। गलनेवाला। जैसे, गलाऊ दाल।

गलाना—क्रि० स० [हिं० गलना का सकर्मक रूप] (१) किसी वस्तु के संयोजक अणुओं को पृथक् पृथक् करके उसे नरम, गीला वा द्रव करना। जैसे, पानी में बताशा गलना, आँच पर सोना चाँदी राँगा आदि गलाना, खौलते पानी में दाल चावल गलाना, इत्यादि।

संयो० क्रि—डालना।—देना।

(२) नरम वा मुलायम करना। पुलपुला करना। उ०—यह दवा फोड़े को गला देगी। (३) अणुओं को पृथक् पृथक् करके किसी वस्तु को धीरे धीरे लुप्त करना। बहुत थोड़ा थोड़ा करके क्षय करना। उ०—यह दवा तिल्ली को गलाती है। (४) (रुपया) खर्च कराना। उ०—तुम ने हमारा बहुत रुपया गलाया।

गलानि—† * संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लानि] (१) दुःख वा पछतावे के कारण खिन्नता। अपने किए का पछतावा वा खेद। अपनी करनी पर लज्जा। उ०—(क) गरइ गलानि कुटिलि कैकेई। काहि कहइ केहि दूषण देई।—तुलसी। (ख) तुम गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति। तात कैकइहि दोष नहिं, गई गिरा मति धूति।—तुलसी। (२) खेद। दुःख। परिताप। उ०—(क) राम सुप्रेमहि पोषत बानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी।—तुलसी। (ख) अमर नाग मुनि मनुज सपरिजन विगत विषाद गलानि।—तुलसी।

गलार—संज्ञा पुं० [?] एक पेड़ का नाम।

† वि० [हिं० गाल] झगड़ालू। थोड़ी सी बात के लिये बहुत अंडबंड बकनेवाला।

† संज्ञा पुं० मैना पक्षी।

गलारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गल्प, प्रा० गल्ल] गिलगिलिया नाम की चिड़िया।

गलावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गलना] (१) गलने का भाव वा क्रिया। (२) वह वस्तु जो दूसरी वस्तु को गलावे। जैसे, सोहागा, नौसादर आदि।

गलित—वि० [सं०] (१) गला हुआ। (२) अधिक दिन का होने के कारण नरम पड़ा हुआ। जिस में नएपन की चुस्ती और कड़ाई न हो।

यौ०—गलित यौवना।

(३) पुराना पड़ा हुआ। जीर्ण शीर्ण। खंडित। (४) चुआ हुआ। च्युत। (५) नष्ट भ्रष्ट। (६) परिपक्व। परिपुष्ट। उ०—दान लैहौं सब अंगनि को। अति मद गलित तालफल ते गुरु युगल उरोज उतंगनि को।—सूर।

गलित कुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रकार के कुष्ठों में से एक। इसमें शरीर के अवयव जैसे, हाथ, पैर की उँगलियाँ आदि सड़ने और कट कट कर गिरने लगते हैं। उनमें कीड़े पड़ जाते हैं। यह कुष्ठ सब से असाध्य माना गया है।

गलित यौवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका यौवन ढल गया हो। ढलती जवानी की स्त्री। उ०—आज से हमारा काम वही गलित यौवना और चपटी नाकवाली करेगी।—हरिश्चंद्र।

गलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० गली] चक्की वा जाँते के ऊपर के पाट में वह छेद जिस में से दलने वा पीसने के लिये दाना डाला जाता है।

वि० [हिं० गड़ना, गड़ियार] मट्ठर। सुस्त। (बैल आदि चौपायों के लिये)।

गलियारा—संज्ञा पुं० [हिं० गली + आरा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्प० गलियारी] पतली वा तंग छोटी गली।

गलियारी—संज्ञा पुं० [हिं० गलियारा] गली। पतला मार्ग।

गली—संज्ञा स्त्री० [सं० गल] घरों की पंक्तियों के बीच से हो कर गया हुआ तंग रास्ता जो सड़क से पतला हो। खोरी। कूचा। उ०—बलवान है श्वान गली तेहि लाजे न गाल बजावत सो हैं।—तुलसी।

मुहा०—गली गली मारे मारे फिरना = (१) इधर उधर व्यर्थ घूमना। (२) जीविका के लिये इधर से उधर भटकना (३) चारों ओर अधिकता से मिलना। सब जगह दिखाई पड़ना। साधारण वस्तु होना। उ०—ऐसे वैद्य गली गली मारे मारे फिरते हैं। गली झँकाना = इधर उधर हैरान करना। खोज में फिराना। उ०—तुमने हमें कितनी गलियां झँकाईं। गली कमाना = (१) गली में झाड़ू देना। मेहतर का काम करना। (२) पाखाना साफ़ करना।

(२) महल्ला। महाल। जैसे, कचौड़ी गली।

गलीचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गालीचा (क़ालीनचा = तु० काली वा कालीन से)] (१) एक प्रकार का खूब मोटा बुना हुआ बिछौना जिस पर रंग बिरंग के बेल बूटे बने रहते हैं और घने बालों की तरह सूत निकले रहते हैं। अब तक फ़ारस, दमश्क आदि से ऊन के गलीचे आते हैं। अब यह सूती भी बनाया जाता

है। दे० "क़ालीन"। (२) कहारों की बोली में कँकड़ीली भूमि।

ग़लीज़—वि० [अ०] (१) गँदला। मैला। (२) नापाक। अशुद्ध। अपवित्र।

क्रि० प्र०—करना।

संज्ञा पुं० (१) मैला। गंदगी। कूड़ा करकट। गंदी वस्तु।

यौ०—ग़लीज़ख़ाना = कूड़ाख़ाना।

(२) पाख़ाना। मल।

गलीत*—वि० [अ० गलीज़] मैला कुचैला। मलिन। गंदा। दुर्दशाग्रस्त। उ०—मीत न नीति गलीत ह्वै जो धरिये धन जोरि। खाए खरचे जो जुरै तौ जोरियै करोरि।—बिहारी।

गलू—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पत्थर वा नग जिसके प्राचीन काल में मद्यपात्र आदि बनते थे।

गलेफ—संज्ञा पुं० (१) दे० "गिलाफ़"। (२) दे० "गिलेफ"।

गलेबाज—वि० [हिं० गला + बाज] जिसका गला अच्छा चलता हो। अच्छा गानेवाला।

गलैचा†—संज्ञा पुं० दे० "ग़लीचा"।

गलोना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का सुरमा जो कंधार और काबुल से आता है।

गलौ*—संज्ञा पुं० [सं० ग्लौ] चंद्रमा। उ०—गंग गाइ गोमती गलौ ग्रहपति अरु सुरगिर।—सूदन।

गलोआ—संज्ञा पुं० [हिं० गाल] बंदरों के गालों के भीतर की थैली जिसमें वे अपने खाने की वस्तु को भर लेते हैं।

गलौघ—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें रोगी के गालों के भीतर एक प्रकार की सूजन हो जाती है, जलन होती है और उसे साँस लेने में कठिनता होती है। वैद्यक में यह रोग कफ़ और रक्त के प्रकोप से माना गया है। इसमें ज्वर भी आता है।

गल्प—संज्ञा स्त्री० [सं० जल्प वा कल्प] (१) मिथ्या प्रलाप। गप्प। (२) डींग। शेखी। (३) मृदंग के बारह प्रबंधों में से एक। (४) छोटी छोटी कहानियाँ।

गल्यारा*—संज्ञा पुं० दे० "गलियारा"।

गल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] गाल। कपोल।

संज्ञा स्त्री० [हिं० गाल वा गल्प। मिलाओ फ़ा० गिला] बात। (पंजाबी) उ०—इसी गल्ल धरि कन्न में बकसी मुसकाना। हमनू बूझत तुसी क्यों किया पयाना।—सूदन।

गल्लई—वि० [हिं० गल्ला] गल्ले के रूप में।

संज्ञा पुं० (१) वह खेत जिसका लगान जिंस में लिया जाता हो। बटाई। (२) खेत का वह लगान जो उसकी उपज के रूप में काश्तकारों से लिया जाता हो।

गल्ला—संज्ञा पुं० [अ० गुल, हिं० गुल्ला] शोर। हौरा। उ०—हल्ला परयो अवध महल्ला ते महल्ला मध्य गल्ला मच्यो बाहर हू जनम कुमार को।—रघुराज।

संज्ञा पुं० [फ़ा० गल्ला] झुंड। दल।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः चरनेवाले पशुओं के लिये होता है। जैसे, गाय भैंस का गल्ला, भेड़ बकरियों का गल्ला।

संज्ञा पुं० [हिं० गोल] एक प्रकार का बेत जिसे गोला भी कहते हैं।

संज्ञा पुं० [हिं० गाल] उतना अन्न जितना एक बार चक्की में पीसने के लिये डाला जाय। कौरी।

संज्ञा पुं० दे० "ग़ल्ला"।

ग़ल्ला—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० ग़ल्लई] (१) जोतने बोने से उत्पन्न होनेवाले पौधों के फल, फूल आदि की उपज। फ़सल। पैदावार। उपज। (२) अन्न। अनाज।

यौ०—ग़ल्लाफ़रोश।

(३) वह धन जो दूकान पर नित्य की बिक्री से मिलता है। धनराशि। गोलक। (४) मद। फंड। खाता।

ग़ल्लाफ़रोश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] अनाज का व्यापारी। वह दूकानदार जो ग़ल्ला वा अन्न बेचता हो।

गल्ली†—संज्ञा स्त्री० दे० "गली"।

गल्वर्क—संज्ञा पुं० [सं०] मद्य पीने का प्याला। प्राचीन काल में यह पात्र गलू नामक पत्थर का बनाया जाता था।

गवँ—संज्ञा स्त्री० [सं० गम, प्रा० गवँ] (१) घात। प्रयोजन सिद्ध होने का अवसर। (२) मतलब। प्रयोजन।

विशेष—दे० "गौं"।

मुहा०—गवँ से = (१) घात देख कर। मौका तजवीज कर। (२) धीरे से। चुप चाप। उ०—रावन, बान, महाभट भारे। देखि सरासन गवँहिं सिधारे।—तुलसी।

गव—संज्ञा पुं० [सं० गवय] एक बंदर का नाम जो रामचंद्रजी की सेना में था।

गवन*†—संज्ञा पुं० [सं० गमन] (१) प्रस्थान। प्रयाण। चलना। जाना। उ०—सुनि वन गवन कीन्ह रघुनाथा।—तुलसी। (२) वधू का पहले पहल पति के घर जाना। गवना। गौना।

गवनना*—क्रि० अ० [सं० गमन] जाना। उ०—(क) पुनि रानी हँसि कूसल पूँछा। कित गवनेहु पीँजर करि छूछा।—जायसी। (ख) गवने तुरत तहाँ रिषिराई। जहाँ स्वयंबर भूमि बनाई।—तुलसी।

गवना—संज्ञा पुं० दे० "गौना"।

गवय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गवयी] (१) नील गाय। (२) एक बानर जो रामचंद्र जी की सेना में था। (३) एक छंद का नाम जिस के प्रथम चरण में १६ मात्राएँ होती हैं और ११ मात्राओं पर विराम होता है। दूसरे चरण में दोहा होता है। उ०—सुरभी केसर बसै नील नद माहँ। मनौ नगर सुग्रीव को सोहत सुंदर छाँह।

गवर्नमेंट—संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) राज्य। शासनपद्धति। (२) शासकमंडल।

गवर्नर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) शासक । हाकिम । (२) किसी प्रांत का वह प्रधान हाकिम जिसे उस पद पर राजा वा प्रजा ने चुना हो । (३) वह प्रधान शासक जिसे राजा वा मंत्रि-मंडल किसी देश में शासन करने के लिये नियुक्त करे । (४) भारतवर्ष में किसी प्रेसिडेंसी का वह प्रधान हाकिम जो इंगलैंड के बादशाह वा मंत्रिमंडल द्वारा गवर्नर जनरल के अधीन रह कर शासन करने के लिये नियत किया गया हो । भारतवर्ष में बंबई, मद्रास और बंगाल में गवर्नर रहते हैं । लाट ।

यौ०—गवर्नर-जनरल ।

गवर्नर-जनरल–संज्ञा पुं० [अं०] किसी देश का वह सब से बड़ा हाकिम जिसे राजा या मंत्रिमंडल ने नियत किया हो और जिसके नीचे कई एक गवर्नर और लफ़टेंट-गवर्नर हों । जैसे भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल, जो संपूर्ण भारतवर्ष का शासन करते हैं और जिन के मातहत बंबई, मद्रास और बंगाल के गवर्नर-तथा संयुक्त प्रांत, पंजाब आदि के लफ़टेंट-गवर्नर रहते हैं । गवर्नरों की नियुक्ति इंगलेंडेश्वर स्वयं करते हैं पर लफ़टेंट-गवर्नर गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त होते हैं । गवर्नर जनरल एक कौंसिल वा मंत्रिमंडल द्वारा शासन करते हैं । वाइसराय । बड़े लाट ।

गवर्नरी–संज्ञा स्त्री० [अं० गवर्नर + ई (प्रत्य०)] (१) जहाँ पर गवर्नर शासन करता हो । प्रेसिडेंसी । (२) शासन । अधिकार ।

गवल–संज्ञा पुं० [सं०] जंगली भैंसा । अरना ।

गवहियाँ†–संज्ञा पुं० [सं० गोघ्न = अतिथि] अतिथि । मेहमान ।

गवाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौखा । झरोखा । छोटी खिड़की । (२) एक बंदर का नाम जो रामचंद्र की सेना का सेना-पति था ।

गवाख*–संज्ञा पुं० दे० "गवाक्ष" ।

गवाछ*–संज्ञा पुं० दे० "गवाक्ष" ।

गवाँना–क्रि० स० [सं० गमन, हिं० 'गवन' का प्रे०] खोना ।

गवारा–वि० [फ़ा०] (१) मनभाता । अनुकूल । पसंद । (२) सह्य । अंगीकार ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गवालीक–संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह मिथ्याभाषण जो गो आदि चौपायों के लिये किया जाय ।

गवास–संज्ञा पुं० [सं० गवाशन] गोनाशक । क़साई । हत्यारा । उ०—कासी मगु सुरसरि क्रमनासा । मरु मारव महिदेव गवासा ।—तुलसी ।

गवाह–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [संज्ञा गवाही] वह मनुष्य जिसने किसी घटना को साक्षात् देखा हो । वह जिसके सामने कोई बात हुई हो । वह जो किसी मामले के विषय में जानकारी रखता हो । साक्षी । साखी ।

यौ०—गवाह-साक्षी ।

मुहा०—गवाह देना = अपने दावे को सिद्ध करने के लिये प्रमाण के लिये साक्षी उपस्थित करना । गवाह बनाना = (१) साक्षी बनाना । मुक़दमे में किसी को गवाही देने के लिये नियत करना । (२) झूठा गवाह बनाना । गवाह ऐनी या रूयत = वह गवाह जिसने घटना अपनी आँखों देखी हो । चश्मदीद गवाह । गवाह समाई = वह गवाह जिसने घटना आँख से न देखी हो और जो सुनी सुनाई बात कहे । चश्मदीद गवाह = वह गवाह जिसने कोई घटना आँखों देखी हो ।

गवाही–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी घटना के विषय में किसी ऐसे मनुष्य का कथन जिसने वह घटना देखी हो वा जो उसके विषय में जानता हो । साक्ष्य । साक्षी का प्रमाण ।

मुहा०—गवाही करना या लिखना = किसी दस्तावेज़ पर साक्षी के रूप में हस्ताक्षर करना । गवाही देना = किसी साक्षी का किसी घटना के विषय में अपना इज़हार लिखाना ।

गवीधुक–संज्ञा पुं० दे० "गवेधुक" ।

गवीश*–संज्ञा पुं० [सं० गवेश] (१) गोस्वामी । (२) विष्णु । (३) साँड़ ।

गवेधु, गवेधुक–संज्ञा पुं० [सं०] कसेई । कौड़िला ।

विशेष—ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार रुद्र देवता के लिये गवेधुक के चरु की आहुति दी जाती थी । मीमांसा के अनुसार शूद्र को गवेधुक के चरु से यज्ञ करने का अधिकार है ।

गवेरुक–संज्ञा पुं० [सं०] गेरू ।

गवेला†–वि० [हिं० गाँव] [स्त्री० गवेली] गँवार । देहाती । उ० —नागरि बिबिध बिलास तजि बसी गवेलिन माहिँ । मूढ़ौं में गनिवी कितू हूठ्यौ दै इठलाहिँ ।—बिहारी ।

गवेषणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खोज । अन्वेषण । तलाश । छानबीन ।

विशेष—प्राचीन काल में आर्य्यों का सर्वस्व गो थी । जब गो हरी जाती थी वा कोई उसे चुरा ले जाता था तब वे लोग उसे बड़े परिश्रम से ढूँढ़ते थे । वेदों में पणि असुर के गो चुराने और इंद्र का अपनी कुतिया सरमा को उसे ढूँढ़ने को भेजने की गाथा इसका उदाहरण है । इसी लिये यह शब्द जिसका वास्तविक अर्थ गो की इच्छा है खोज, तलाश के अर्थ में लिया गया ।

गवैया–वि० [पू० हिं० गावब = गाना] गानेवाला । गायक ।

विशेष—"ऐया" प्रत्यय पूर्वीय है । इससे वह क्रिया अथवा धातु के पूर्वीय रूप "गावना" में ही लगता है ।

गवैंहाँ–वि० [हिं० गाँव + ऐंहा (प्रत्य०)] गाँव का रहनेवाला । ग्रामीण । देहाती ।

गव्य–वि० [सं०] गो से उत्पन्न । जो गाय से प्राप्त हो । जैसे, दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र आदि ।

यौ०—पंचगव्य ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाय का झुंड। गो-समूह। (२) पंचगव्य। उ०—पंचाक्षरी प्रान मुद माधव गव्य सु पंचनदा सी।—तुलसी।

गव्यूति–संज्ञा स्त्री० [सं०] दो कोस का एक मान। दो हजार धनुष की दूरी।

ग़श–संज्ञा पुं० [अ० ग़शी से फ़ा०] मूर्छा। बेहोशी। असंज्ञा। तांवर। उ०—अमीचंद ग़श खा के ज़मीन पर गिर पड़ा।—शिवप्रसाद।

क्रि० प्र०—आना।

मुहा०—ग़श खाना = मूर्च्छित होना। बेहोश होना।

ग़शी–संज्ञा स्त्री० [अ०] बेहोशी।

क्रि० प्र०—आना।

गश्त–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० गश्ती] (१) टहलना। घूमना फिरना। भ्रमण। दौरा। चक्कर।

यौ०—गश्त गिरदावरी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—गश्त मारना या लगाना = चक्कर देना। चारों ओर फिरना।

(२) पुलिस आदि के कर्मचारियों का पहरे के लिये किसी स्थान के चारों ओर गली कूचों आदि में घूमना। रौंड। गिरदावरी। दौरा।

क्रि० प्र०—घूमना।—फिरना।

(३) एक प्रकार का नाच जिसमें नाचनेवाली वेश्याएँ बरात के आगे नाचती हुई चलती हैं।

गश्त सलामी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गश्ती + अ० सलाम] वह भेंट वा नज़र जो पहले दौरे पर गए हुए हाकिमों को मिला करती थी। यह प्रथा अब तक देशी रियासतों में जारी है।

गश्ती–वि० [फ़ा०] घूमनेवाला। फिरनेवाला। फिरता। चलता। जैसे, गश्ती चिट्ठी, गश्ती हुकुम, गश्ती परवाना, गश्ती सर्क्युलर, गश्ती इंस्पेक्टर इत्यादि।

संज्ञा स्त्री० व्यभिचारिणी। कुलटा।

गसना–क्रि० स० [सं० ग्रथन] (१) जकड़ना। गाँठना। (२) बुनावट में बाने को कसना। बुनावट में तागों वा सूतों को परस्पर ख़ूब मिलाना जिसमें छेद न रह जाय।

विशेष—दे० "गँसना"।

गसीला–वि० [हिं० गसना] [स्त्री० गसीली] (१) जकड़ा हुआ। गठा हुआ। एक दूसरे से ख़ूब मिला हुआ। गुथा हुआ। (२) (कपड़ा आदि) जिसके सूत परस्पर ख़ूब मिले हों। जिसकी बुनावट घनी हो। गफ़।

गस्सा–संज्ञा पुं० [सं० ग्रास, प्रा० गास, गस्स] ग्रास। कौर।

मुहा०—गस्सा मारना = कौर मुँह में डालना।

गहँडिल†–वि० [हिं० गड्ढा] [वि० गड़हैल] गँदला। मटमैला (पानी)।

गहकना–क्रि० अ० [सं० गद्गद] (१) चाह से भरना। लालसा से पूर्ण होना। ललकना। लहकना। लपकना। (२) उमंग से भरना। उ०—माखन के लोंदा गहकि गोपन दिये उछारि। टूक टूक ह्वै कंद जनु गयो कृष्ण पै वारि।—सुकवि।

गहकोड़ा†–संज्ञा पुं० [हिं० गाहक + ओड़ा (प्रत्य०)] गाहक। ख़रीदार। (दिल्ली)

गहगड्ड–वि० [सं० गह = गहरा + गड्ड = गड्ढा] गहरा। भारी। घोर। जैसे, गहगड्ड नशा, गहगड्ड छनना। (इसका प्रयोग नशे वा नशे की चीज़ ही के संबंध में होता है।)

गहगह–वि० [सं० गद्गद] प्रफुल्लित। प्रसन्नतापूर्ण। उमंग से भरा।

क्रि० वि० धमाधम। धूम के साथ। उ०—गहगह गगन दुंदुभी बाजी।—तुलसी। (इस अर्थ में यह बाजों ही के संबंध में आता है।)

गहगहा–वि० [सं० गद्गद] (१) प्रफुल्लित। उमंग और आनंद से भरा। उ०—माधव जू आवनहार भए। अंचल उड़त मन होत गहगहो फरकत नैन खए।—सूर। (२) धमाधम। धूमधाम के सहित। उ०—अति गहगहे बाजने बाजे।—तुलसी।

गहगहाना–क्रि० अ० [हिं० गहगहा] (१) आनंद में मग्न होना। बहुत प्रसन्न होना। प्रफुल्लित होना। आनंद और उमंग से फूलना। उ०—वायस गहगहात शुभवाणी विमल पूर्वदिशि बोले। आजु मिलाओं श्याम मनोहर तू सुनु सखी राधिके भोले।—सूर। (२) फसल आदि का बहुत अच्छी तरह तैयार होना। लहलहाना।

गहगहे–क्रि० वि० [हिं० गहगहा] बड़ी प्रफुल्लता के साथ। बहुत अच्छी तरह से। उ०—(क) गहगहे गावत गीत मंगल किये मंडल मंजु। कोउ बाल बिरुद बखानती गति ठान गजगति मंजु।—रघुराज। (ख) राजरुख लखि गुरु भूसुर सुआसिनिन्हि समय समाज की ठवनि भलि ठई है। चली गान करत निसान बाजे गहगहे लहलहे लोयन सनेह सरसई है।—तुलसी।

गहन–वि० [सं०] (१) गंभीर। गहरा। अथाह। जैसे, गहन जलाशय। (२) दुर्गम। घना। दुर्भेद्य। जैसे, गहन बन, गहन पर्वत। (३) कठिन। दुरूह। जैसे, गहन विषय। (४) निविड़।

संज्ञा पुं० (१) गहराई। थाह। (२) दुर्गम स्थान। जैसे, झाड़ी, गड्ढा, जंगल, अंधकारपूर्ण स्थान। (३) बन वा कानन में गुप्त स्थान। कुंज। निकुंज। उ०—गहन उजारि सुत मारि तव, कुशल गये कीस वर बैरिखा को।—तुलसी। (४) दुःख। (५) जल।

†संज्ञा पुं० [सं० ग्रहण, प्रा० गहण] (१) ग्रहण। (२) कलंक। दोष। (३) दुःख। कष्ट। विपत्ति। (४) बंधन। रेहन।

संज्ञा स्त्री० [हिं० गहना = पकड़ना] (१) पकड़। पकड़ने का

भाव। (२) हठ। ज़िद। अड़। टेक। उ०—एकै गहन धरी उन हठ करि मेटि वेद विधि नीति। गोपवेश निज सूरश्याम ले रही विश्वधर जीति।—सूर। (३) जोते हुए खेत से घास निकालने का एक औज़ार। इसमें दो ढाई हाथ लंबी लकड़ी के नीचे की ओर पतली नुकीली खूँटियाँ गड़ी रहती हैं और ऊपर एक सीधी लकड़ी जड़ी रहती है जिसमें मुठिया लगी रहती है। खेत जोते जाने पर इसे बैलों के जुआठे में बाँध कर खेत में फिराते हैं और ऊपर से मुठिया से दबाए रहते हैं। पाँची। पाजी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० गाहना] वह हलकी जुताई जो पानी बरसने पर धान के बोए हुए खेतों में की जाती है। बिदहनी।

गहना—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहण = धारण करना] (१) आभूषण। ज़ेवर। (२) रेहन। बंधक। (३) छोटी लोटिया के आकार का मिट्टी का कुम्हारों का एक औज़ार जिसका व्यवहार घड़े आदि के बनाने में होता है। (४) गहन नामक औज़ार जिसका व्यवहार जोते हुए खेत में घास निकालने के लिये होता है।

क्रि० स० [सं० ग्रहण, प्रा० गहण] पकड़ना। धरना। थामना। उ०—(क) गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद गहे न तोर उबारा।—तुलसी। (ख) तब एक सखी प्रीतम! कहति प्रेम ऐसो प्रगट कीन्हों धीर काहे न गहति।—सूर।

क्रि० स० † दे० "गाहना"।

गहनि*—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रहण] टेक। अड़। ज़िद। हठ। उ०—(क) हरि पिय तुम जिनि चलन कहो। यह जिनि मोहिँ सुनावहु बलि जाउँ जिनि जिय गहनि गहो।—सूर। (ख) छबि तरंग सरितागण लोचन ए सागर जनु प्रेम धार लोभ गहनि नीके अवगाही।—सूर।

गहनी—संज्ञा स्त्री० [?] (१) पलास की जड़ आदि कूट कर उससे नाव के छेदों को बंद करने की क्रिया। (२) पशुओं का एक रोग जिसमें उनके दाँत हिलने लगते हैं। (३) गहन नामक औज़ार जिससे जोते हुए खेत में से घास निकाली जाती है।

गहनु*—संज्ञा पुं०, स्त्री० दे० "गहन"।

गहने†—क्रि० वि० [हिं० गहन = बंधक] रेहन में। रेहन के रूप में। बंधक। उ०—जो इन दृग पतिआय नहिँ प्रीतम साहु सुजान। दरस रूप धन दै इन्हें धर गहने मम प्रान।—रसनिधि।

गहबर*†—वि० [सं० गह्वर] [क्रि० घबराना] (१) दुर्गम। विषम। उ०—नगरु सकल बनु गहबर भारी। खग मृग विपुल सकल नरनारी।—तुलसी। (२) व्याकुल। उद्विग्न। उ०—(क) औरै सो सब समाज कुसल न देखौं आजु गहबरि हिय कहैं कोसल पाल।—तुलसी। (ख) मुख मलीन हिय गहबर आवै।—मान। (३) किसी ध्यान में मग्न या बेसुध। उ०—सजल नयन गदगद गिरा गहबर मन पुलक शरीर।—तुलसी।

गहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ी, घरी वा सं० ग्रह। वा फा० गाह = समय ?] देर। बिलंब। उ०—(क) गहर जनि लावहु गोकुल जाइ। तुमहिँ बिना व्याकुल हम होइहैं यदुपति करी चतुराइ।—सूर। (ख) नेग चारु कहँ नागरि गहरु लगावहिँ। निरखि निरखि आनंद सुलोचनि पावहिँ।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० गह्वर] दुर्गम। गूढ़। उ०—मन कुंजर मयमंत था फिरता गहर गँभीर। दोहरी तेहरी चौहरी परि गइ प्रेम जँजीर।—कबीर।

गहरना—क्रि० अ० [हिं० गहर = देर] देर लगाना। विलंब करना। उ०—ठहरत आवै मनमोहन महरनंद ठहरत आवै पुंज परिमल पुर को। सेवक त्यों गहरत आवै ज्यों ज्यों बाँसुरी सों कहरत आवै मन मेरो मानि दूर को।—सेवक।

क्रि० अ० [अ० क़हर] (१) झगड़ना। उलझना। उ०—तुम सों कहत सकुचत महरि। श्याम के गुण नहीं जानत जात हम सों गहरि।—सूर। (२) कुढ़ना। नाराज़ होना। उ०—सुनत श्याम चकित भए बानी।.................. ......अधर कंप रिसि भौंह मरोरयो मन ही मन गहरानी।—सूर।

गहरवार—संज्ञा पुं० [गहिरदेव = एक राजा] एक क्षत्रिय वंश। इस वंश के लोग गोरखपुर और गाजीपुर से लेकर कन्नौज तक पाए जाते हैं। ये लोग अपना आदि स्थान प्रायः काशी बतलाते हैं। जयचंद से चार पाँच पीढ़ी पहले के चंद्रदेव और महीपाल आदि कन्नौज के राजा गहरवार थे, ऐसा शिलालेखों से पाया जाता है। बुंदेलखंड के बुंदेले क्षत्रिय भी अपने को काशी के गहरवार वंश से उत्पन्न बतलाते हैं।

गहरा—वि० [सं० गभीर, प्रा० गहीर] [स्त्री० गहरी] (१) (पानी) जिसमें ज़मीन बहुत भीतर जाकर मिले। जिसकी थाह बहुत नीचे हो। गंभीर। निम्न। अतलस्पर्श। जैसे, गहरी नदी। उ०—जिन ढूँढा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ। हौं बौरी ढूँढन गई, रही किनारे बैठ।—कबीर।

मुहा०—गहरा पेट = ऐसा पेट जिसमें बहुत सी बातें पच जाँय। ऐसा हृदय जिसका भेद न मिले। उ०—उसकी बातें कोई नहीं जान सकता, उसका बड़ा गहरा पेट है।

(२) जो सतह से नीचे दूर तक चला गया हो। जिसका विस्तार नीचे की ओर अधिक हो। जैसे, गहरा गड्ढा, गहरा बरतन। (३) बहुत अधिक। ज़्यादा। घोर। प्रचंड। भारी। जैसे, गहरा नशा, गहरी नींद, गहरी भूख, गहरी मार, गहरी चोट, गहरी मित्रता, इत्यादि।

मुहा०—गहरा असामी = (१) भारी आदमी। बड़ा आदमी।

ज़्यादा देनेवाला। गहरे लोग = चतुर लोग। भारी उस्ताद। घोर धूर्त्त। ऐसे लोग जिनका भेद कोई न पावे। उ०—लड़के घड़ी कैसे उड़ा ले जायँगे, यह गहरे लोगों का काम है। (२) विद्वान् लोग। ऐसे लोग जिनकी विद्या गंभीर हो। गहरा हाथ = हथियार का भरपूर वार जिससे ख़ूब चोट लगे। शस्त्र का पूर्ण आघात। गहरा हाथ मारना = (१) हथियार का भरपूर वार करना। (२) भारी माल उड़ाना। ख़ूब धन चुराना। (३) बहुत माल पैदा करना। किसी बड़ी भारी वा अनूठी वस्तु को प्राप्त करना। उ०—इस बार तो तुमने गहरा हाथ मारा। (४) दृढ़। मज़बूत। भारी। कठिन। उ०—तौल तराजू छमा सुलच्छण तब वाके घर जैयो। कहैं कबीर भाव बिन सौदा गहरी गांठ लगैयो। (५) गाढ़ा। जो हलका या पतला न हो। जैसे, गहरा रंग, गहरी भंग।

मुहा०—गहरी घुँटना = (१) ख़ूब गाढ़ी भंग घुँटना वा पिसना। (२) गाढ़ी मित्रता होना। बहुत अधिक हेल मेल होना। अत्यंत घनिष्ठता होना। (३) साथ में ख़ूब आमोद प्रमोद होना। उ०—उन लोगों की आज कल ख़ूब गहरी घुटती है। गहरी छनना = (१) ख़ूब गाढ़ी वा अधिक भंग का पिया जाना। (२) गाढ़ी मित्रता होना। अत्यंत घनिष्ठता होना। बहुत हेल मेल होना। (३) साथ में ख़ूब आमोद प्रमोद होना। ख़ूब घुल घुल कर बात चीत होना।

गहराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गहरा + ई (प्रत्य०)] गहरा का भाव। गहरापन।

गहराना†—क्रि० अ० [हिं० गहरा] गहरा होना।

क्रि० स० [हिं० गहरा] गहरा करना।

क्रि० अ० [हिं० गहर] रूठना। नाराज होना। दे० "गहरना"।

गहराव†—संज्ञा पुं० [हिं० गहरा] गहराई।

गहरु*—संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ी, घरी वा फ़ा० गाह = समय ?] देर। विलंब। उ०—(क) तू रिसि छाड़ि राधे राधे। ज्यौं ज्यौं तो कौं गहरु त्यौं त्यौं मो कौं बिथा री साधे साधे।—हरिदास। (ख) नेग चारु कहँ नागरि गहरु लगावहिँ। निरखि निरखि आनंद सुलोचनि पावहिँ।—तुलसी।

गहरे†—क्रि० वि० [हिं० गहरा] अच्छी तरह। ख़ूब। यथेच्छ।

मुहा०—गहरे करना = माल मारना। ख़ूब लाभ उठाना। गहरे चलना = (१) घात में लगना। (२) जाते हुए पथिक का प्राण लेना। (ठग)। (३) एक्के के घोड़े का ख़ूब ज़ोर से क़दम चलना।

गहरेबाज़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गहरा + बाज़ी] एक्के के घोड़े की ख़ूब ज़ोर की क़दम चाल।

गहलौत—संज्ञा पुं० [?] राजपूताने के क्षत्रियों का एक वंश। सिसोदिया और अहेरी इसी वंश की शाखाएँ हैं। गहलौत नाम के विषय में भिन्न भिन्न प्रकार के प्रवाद प्रचलित हैं। कोई इसे गोहिल, गोभिल से निकला बतलाते हैं। कोई कोई कहते हैं कि गुजरात से भगाए जाने पर जब मेवाड़ के महाराणा के पूर्व पुरुष भागे तब राजमहिषी को एक ब्राह्मण ने शरण दी और उन्हें वहीं एक गुहा में एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिस का नाम गुहलौत रखा गया।

गहवा†—संज्ञा पुं० [हिं० गहना = पकड़ना] सँड़सी।

गहवाना—क्रि० स० [हिं० गहना का प्रे०] पकड़ाना। पकड़ने का काम कराना।

गहवारा—संज्ञा पुं० [हिं० गहना] पालना। झूला। हिँडोला। रस्सी में लटकाया हुआ खटोला जिस पर बच्चों को सुला कर झुलाते हैं।

गहाई*†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गहना] गहने का भाव। पकड़।

गहागड्ड—वि० दे० "गहगड्ड"।

गहागह क्रि० वि० दे० "गहगह"।

गहाना—क्रि० स० [हिं० गहना = पकड़ना] "गहना" का प्रेरणार्थक-रूप। पकड़ाना। धराना।

गहिरा†—वि० दे० "गहरा"।

गहिराई†—संज्ञा स्त्री० दे० "गहराई"।

गहिरदेव—संज्ञा पुं० [हिं० गहिर + देव] काशी के एक राजा का पुत्र जिसे गहरवार लोग अपना आदि पुरुष मानते हैं।

गहिराव—संज्ञा पुं० दे० "गहराव"।

गहिरो*—वि० दे० "गहरा"।

गहिला†—वि० [हिं० गहेला] बावला। पागल। उन्मत्त। उ०—तन मन मेरा पीव सौं, एक सेज सुख सोइ। गहिला लोग न जाणहीं, पचि पचि आपा खोइ।—दादू। दे० "गहेल"।

गहीला—वि० [हिं० गहेला] [स्त्री० गहेली] (१) गर्वयुक्त। घमंडी। उ०—(क) राधा हरि के गर्व गहीली।—सूर। (ख) कहति नागरी श्याम सौं तजौ मनु हठीली। हम तें चूक कहा परी त्रिय गर्व गहीली।—सूर। (२) पागल। मदोन्मत्त।

गहु†—संज्ञा स्त्री० [सं० गह्वर वा गँव] छोटा रास्ता। गली।

गहुआ—संज्ञा पुं० [हिं० गहना = पकड़ना] एक प्रकार की सँड़सी जिसका मुँह बहुत छोटा होता है। इससे लोहार आग में से गरम लोहा पकड़ कर निकालते और निहाई पर रख कर उसे पीटते हैं। इसी प्रकार की छोटी सँड़सी सोनारों के पास भी होती है जिससे पकड़ कर वे तार आदि खींचते हैं। इसे भी गहुआ कहते हैं।

गहूरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गहना = धारण करना] किसी दूसरे के माल को अपने यहाँ हिफ़ाज़त के साथ रखने की मज़दूरी।

गहेजुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] छछूँदर। उ०—मछरी मुख जस केचुआ, मुसवन मुँह गिरदान। सर्पन माह गहेजुवा, जाति सबन की जान।—कबीर।

गहेलरा†-वि० [हिं० गहेला] [स्त्री० गहेली] (१) पागल । (२) मूर्ख । अज्ञानी । गँवार । उ०—विरहिन थी तो क्यों रही, जरी न पावक साथ । रह रह मूढ़ गहेलरी, अब क्यों मीजे हाथ ।—कबीर ।

गहेला-वि० [हिं० गहना = पकड़ना + एला (प्रत्य०)] [स्त्री० गहेली] (१) हठी । ज़िद्दी । (२) अहंकारी । मानी । घमंडी । उ०—नारद को मुख माँड़ि के लीन्हें बदन छिनाइ । गर्व गहेली गर्व ते, उलटि चली मुसुकाइ ।—कबीर । (३) पागल । ख़ब्ती । उ०—मूवा पीछे मुकुति बतावे, मूवा पीछे मेला । मूवा पीछे अमर अभय पद, दादू भूल गहेला ।—दादू । (४) गँवार । अनजान । मूर्ख ।

गहैया-वि० [हिं० गहना + ऐया (प्रत्य०)] (१) पकड़नेवाला । ग्रहण करनेवाला । (२) अंगीकार करनेवाला । स्वीकार करनेवाला ।

यौ०—हाथ गहैया = सहायक । मददगार ।

गह्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंधकारमय और गूढ़ स्थान । (२) बिल । ज़मीन में छोटा सूराख । (३) विषम स्थान । दुर्भेद्य स्थान । (४) गुफा । कंदरा । गुहा । (५) निकुंज । लतागृह । (६) झाड़ी । (७) जंगल । बन । (८) गुप्त स्थान । वह स्थान जिसमें छिपने से छिपनेवाले का पता न चले । (९) दंभ । पाखंड । (१०) रोना । (११) गंभीर विषय । वह वाक्य जिसके अनेक अर्थ हो सकते हों । कठिन विषय । गूढ़ विषय । (१२) जल ।

वि० (१) दुर्गम । विषम । (२) गुप्त । छिपा हुआ ।

गाँकर-संज्ञा स्त्री० [सं० अंगार + कर] (१) अंगाकड़ी । बाटी । लिट्टी । (२) अरहर की लिट्टी ।

गांग-वि० [सं०] गंगा संबंधी । गंगा का ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) भीष्म । (२) कार्तिकेय । (३) सोना । (४) धतूरा । (५) मेघनिःसृत जल । वर्षा का पानी । (६) गंगा वा नदी का किनारा । (७) हेलसा मछली । (८) सागर । लंबा तालाब ।

गांगट-संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा ।

गांगन-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की फोड़िया ।

गांगायनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भीष्म । (२) कार्तिकेय । (३) एक प्रवरकार ऋषि ।

गांगिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० गांग] गंगा की एक धारा जो बंगाल में गौड़ नगर के पास गंगा से मिली है ।

गांगेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भीष्म । (२) कार्तिकेय । (३) हेलसा मछली । (४) कसेरू । भद्रमोथा । (५) सोना । (६) धतूरा । (७) दक्षिण का एक राजवंश जो पहले कोलहापुर के पास गंगवाड़ी नामक स्थान में राज्य करता था । प्रगल्भ के पुत्र कोलाहल ने कोलाहलपुर या कोल्हापुर बसाया । पीछे बहुत पीढ़ियों के बाद कामार्णव नामक राजा ने चालुक्य राजा बालादित्य से कलिंग राज्य जीता । इस वंश का राज्य ११ वीं शताब्दी तक विद्यमान था । इसी वंश के राजा अनंगभीमदेव ने जगन्नाथ का प्रसिद्ध मंदिर बनाया ।

गांगेरुक-संज्ञा पुं० [सं०] गोरख इमली का बीज ।

गांग्य-वि० [सं० गंगा] गंगा संबंधी ।

√**गाँछना**-क्रि० स० [सं० गुत्सन] गूँधना । गाँथना । जैसे, माला गाँछना, नारा गाँछना ।

गाँज-संज्ञा पुं० [फ़ा० गंज] (१) राशि । ढेर । अंबार । (२) डंठल, खर, लकड़ी आदि का वह ढेर जो तले ऊपर रख कर लगाया गया हो । जैसे, लकड़ी का गाँज, खर का गाँज, पयाल का गाँज, इत्यादि ।

√**गाँजना**-क्रि० स० [हिं० गांज, फ़ा० गंज] (१) राशि लगाना । ढेर करना । (२) घास, लकड़ी, डंठल आदि को तले ऊपर रख कर ढेर लगाना ।

गाँजा-संज्ञा पुं० [सं० गंजा] भाँग की जाति का एक पौधा । यह देखने में भाँग से भिन्न नहीं होता पर भाँग की तरह इस में फूल नहीं लगते । नैपाल की तराई, बंगाल आदि में यह भाँग के साथ आप से आप उगता है पर कहीं कहीं इसकी खेती भी होती है । इसमें बाहर फूल नहीं लगते पर बीज पड़ते हैं । बनस्पति-शास्त्र-विदों का मत है कि भाँग के पौधे के तीन भेद होते हैं, स्त्री, पुरुष और उभयलिंगी । इसकी खेती करनेवालों का यह भी अनुभव है कि यदि गाँजे के पौधे के पास वा खेत में भाँग के पौधे हों तो गाँजा अच्छा नहीं होता है । इसीलिये गाँजे के खेत से किसान प्रायः भाँग के पौधे उखाड़ कर फेंक देते हैं । गाँजे के पौधे से एक प्रकार का लासा भी निकलता है । यद्यपि नीचे के देशों में यह लासा उतना नहीं निकलता पर हिमालय पर यह बहुतायत से निकलता है और इसी से चरस बनती है । हिंदुस्तान में गाँजा खाया नहीं जाता, लोग इसमें तमाकू मिला कर इसे चिलम पर पीते हैं पर अंग्रेज़ी दवाओं में इसका सत्त काम में लाया जाता है । गाँजे की कई जातियाँ हैं, बालूचर, पहाड़ी, चपटा, गोली, भँगेरा इत्यादि । बालूचर के तैयार होने पर उसे काट कर और कूला बना कर पैरों से रौंदते हैं । इस प्रकार तले ऊपर रख कर रौंदने से कलियाँ आपस में दब कर चिपटी हो जाती हैं । वैद्यक में गाँजे को कड़ुवा, कसैला, तीता और उष्ण लिखा है और उसे कफ़नाशक, ग्राही, पाचक और अग्निवर्धक माना है । यह नशीला और पित्तोत्पादक होता है । इसके रेशे मज़बूत होते हैं और सन की तरह सुतली बनाने के काम में आते हैं । नैपाल आदि पहाड़ी देशों में इन रेशों से एक प्रकार का मोटा कपड़ा भी बुनते हैं जिसे भँगरा कहते हैं ।

पर्य्या०—गंजा । गंजिका । वज्रदारु । भंगा । मारिता । गजा-

शन। मत्कुणारि। मातुली। गंजाकिनी। मादिनी। शक्राशन। जया। विजया। तुरंत-आनंदा। हर्षिणी।

गाँठ-संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि, पा० गंठि] [वि० गंठीला] (१) **रस्सी डोरी तागे आदि में पड़ी हुई मुद्धी की उलझन जो खिंच कर कड़ी और दृढ़ हो जाती है। वह कड़ा उभाड़ जो तागे, रस्सी डोरी आदि में उनके छोरों को कई फेरे लपेट कर वा नीचे ऊपर निकाल कर खींचने से बन जाता है। गिरह। ग्रंथि। उ०—रस्सी में गाँठ पड़ गई है।**

क्रि० प्र०—खोलना।—डालना।—पड़ना।—बाँधना।—देना।—लगाना।

यौ०—गाँठगँठीला = गाँठों से भरा। गाँठवाला। जिसमें उलझन और गाँठ हो।

मुहा०—**गाँठ खुलना** = उलझन मिटना। किसी भारी समस्या का समाधान होना। कोई भारी प्रश्न हल होना। **गाँठ खोलना वा छोरना** = उलझन मिटाना। अड़चन दूर करना। कठिनाई मिटाना। उ०—**कहनि रहनि एक विरति विवेक नीति वेद बुधसंमत पथन निरवान को। बिनु गुन की कठिन गाँठि जड़ चेतन की छोरी अनायास साधु सोधक अपान की।—तुलसी। मन वा हृदय की गाँठ खोलना** = (१) जी खोल कर कोई बात कहना। मन में कोई बात गुप्त न रखना। मन में रखी हुई बात कहना। (२) अपनी भीतरी इच्छा प्रकट करना। (३) अपना हौसला निकालना। लालसा पूरी करना। **(मन में) गाँठ पकड़ना वा करना** = भेद मानना। अंतर रखना। बुरा मानना। खिंचा रहना। वैर मानना। कीना रखना। **गाँठ पर गाँठ पड़ना** = (१) उलझन बढ़ती जाना। किसी बात का उत्तरोत्तर कठिन होता जाना। मामला पेचीला होता जाना। (२) मनमोटाव बढ़ता जाना। द्वेष बढ़ता जाना। **मन में गाँठ** = चित्त में बुरा भाव। द्वेष भाव। वैर। **मन में गाँठ रखना** = जी में बुरा मानना। वैर मानना। **मन वा हृदय में गाँठ पड़ना** = आपस के संबंध में भेद पड़ना। मनमोटाव होना। वैर होना। द्वेष होना। उ०—**(क) मन को मारों पटकि के टूक टूक उड़ि जाय। टूटे पाछे फिर जुरै, बीच गाँठि पड़ि जाय।—कबीर। (ख) दग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर सँग प्रीति। परति गाँठ दुर्जन हिये दई नई यह रीति।—बिहारी।**

(२) अंचल चद्दर वा किसी कपड़े के खूँट में कोई वस्तु (जैसे, रुपया) लपेट कर लगाई हुई गाँठ। उ०—**राम गाइ औरन समुझावै हरि जाने बिन विकल फिरै। एकादशी ब्रतौ नहिं जानै भूत प्रेत हठि हृदय धरै। तजि कपूर गाँठि विष बाँधै ज्ञान गमाये मुगुध फिरै।—कबीर।**

मुहा०—**किसी की गाँठ कटना** = (१) गाँठ में बँधी वस्तु का चोरी जाना। जेब कतर जाना। (२) सौदे में जट जाना। अधिक दाम दे देना। ठगा जाना। **गाँठ कतरना वा काटना** = (१) गाँठ काट कर रुपया निकाल लेना। जेब कतरना। (२) लूटना। ठगना। मूल्य से अधिक लेना। **गाँठ करना** = (१) संग्रह करना। इकट्ठा करना। अपने पास रख लेना। उ०—**रहा द्रव्य तब कीन न गाँठी। पुनि कत मिलै लच्छ जो नाठी।** (२) याद रखना। **गाँठ का** = पास का। पल्ले का। उ०—**तुम्हारी गाँठ का रुपया लगे तो मालूम हो। गाँठ का पूरा** = धनी। मालदार। उ०—**गाँठ का पूरा मति का हीन। गाँठ खोलना** = थैली वा जेब से रुपया निकालना। पास का खर्च करना। **गाँठ जोड़ना** = विवाह आदि के समय स्त्री पुरुष के कपड़ों के पल्ले को एक में बाँधना। गँठजोड़ा करना। ग्रंथिबंधन करना। **किसी के साथ गाँठ जोड़ना** = किसी के साथ व्याह करना। **गाँठ में** = पल्ले में। पास में। उ०—**(क) गाँठ में कुछ है कि यों ही बाज़ार चले। (ख) राजा पदुमावति सों कहा। साँठ नाठ कछु गाँठ न रहा।—जायसी। (कोई बात) गाँठ में बाँधना** = अच्छी तरह याद रखना। स्मरण रखना। सदा ध्यान में रखना। उ०—**कहल हमारा गाँठी बाँधो, निसि बासरहि होहु हुसियारा। ये कलि के गुरु बड़ परपंची, डारि ठगौरी सब जग मारा।—कबीर। गाँठ से** = पास से। पल्ले से। उ०—**गाँठ से लगाना पड़े तो मालूम हो।**

(३) गठरी। बोरा। गट्ठा। जैसे, गेहूँ की गाँठ, चावल की गाँठ।

मुहा०—**गाँठ करना** = (१) गाँठ में बाँध लेना। (२) बटोरना। जमा करना।

(४) अंग का जोड़। बंद। जैसे, पैर की गाँठ, हाथ की गाँठ, उँगली की गाँठ।

मुहा०—**गाँठ उखड़ना** = जोड़ उखड़ना। किसी अंग का अपने जोड़ पर से हट जाना।

(५) ईख, बाँस आदि में थोड़े थोड़े अंतर पर कुछ उभड़ा हुआ कड़ा स्थान जिसमें गंडा वा चिह्न पड़ा रहता है और जिसमें से कनखे निकलते हैं। पोर। पर्व। जोड़। (६) गाँठ के आकार की जड़। अंठी। गुत्थी। जैसे, हल्दी की गाँठ, प्याज की गाँठ। (७) घास का वह बोझ जिसे एक आदमी उठा सके। गट्ठा। (८) एक गहना जो कटोरी के आकार का होता है और जिसकी बारी में छोटे छोटे घुँघुरू लगे रहते हैं। इसे रेशम में गूँथ कर स्त्रियाँ हाथों की कुहनी में लटकाती हैं।

गाँठकट-संज्ञा पुं० [हिं० गाँठ + काटना] [स्त्री० गाँठकटी] (१) वह चोर जो पल्ले में बँधे हुए रुपये को उड़ा लेता है। गिरहकट। (२) **उचित से अधिक मूल्य पर सौदा बेचनेवाला। ठग।**

गाँठगोभी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँठ + गोभी] **गोभी का एक**

भेद। इसके पौधे की पेड़ी में जड़ से चार पांच अंगुल पर एक गाँठ पड़ती है जो धीरे धीरे बढ़ कर खरबूजे के आकार की हो जाती है। यह गाँठ गूदेदार होती है और इस की तरकारी बनाई जाती है।

गाँठदार-वि० [हिं० गांठ + दार (प्रत्य०)] जिसमें बहुत गाँठें हों। गँठीला।

गाँठना-क्रि० स० [सं० ग्रंथन, पा० गण्ठन] (१) गाँठ लगाना। सी कर मुर्री लगा कर वा बाँध कर मिलाना। साटना। (२) फटी हुई चीज़ों को टाँकना वा उनमें चकती लगाना। गूथना। मरम्मत करना। जैसे, जूता गाँठना, गुदड़ी गाँठना। (३) मिलाना। जोड़ना। तरतीब देना। क्रमबद्ध करना। जैसे, मनसूबा गाँठना, मज़मून गाँठना।

मुहा०—मतलब गाँठना = काम निकालना। प्रयोजन सिद्ध करना। (४) अपनी ओर मिलाना। अनुकूल करना। पक्ष में करना। उ०—मैं ने सिपाही को खूब गाँठ लिया है वह मेरे विरुद्ध कभी न कहेगा। (५) किसी स्त्री को संभोग के लिये मिलाना वा राज़ी करना। (६) निश्चय करना। निर्धारित करना। नियत करना। मुकर्रर करना। उ०—तुम ने हमें तंग करना अपने मन में गाँठ लिया है। (७) दबाना। दबोचना। गहरी पकड़ पकड़ना। जैसे, पंजा गाँठना, सवारी गाँठना। (८) वश में करना। वशीभूत करना। दाँव पेच पर चढ़ाना। (९) वार को रोकना। आघात को किसी वस्तु पर लेना।

गाँठी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गांठ] (१) एक आभूषण जिसे स्त्रियां हाथों की कुहनी में पहनती हैं। दे० "गाँठ"। (२) भूसे वा डंठल का वह छोटा छोटा टुकड़ा जिसमें गाँठ ही गाँठ होती है। यह किसी काम का नहीं होता, बैल भी इसे नहीं खाते। खलिहान में इसे लोग फेंक देते हैं।

गाँड़-संज्ञा स्त्री० [सं० गर्त, प्रा० गड्ड] (१) गुदा। पाखाने का मुक़ाम। शरीर की वह इंद्रिय जिससे मल बाहर निकलता है।

पर्य्या०—गुद। अपान। पायु। गुह्य।

मुहा०—गाँड़ की ख़बर न होना = सुध वा चेत न होना। सावधानी न होना। ग़फ़लत होना। किसी बात की जानकारी न होना। गाँड़ की ख़बर न रखना = बेसुध रहना। अचेत रहना। होश में न रहना। असावधान रहना। ग़ाफ़िल रहना। किसी बात से अजानकार रहना। गाँड़ की ख़बर न रहना = होश हवाश न रहना। जानकारी न रहना। गाँड़ की राह वा रास्ते निकलना = (१) किसी वस्तु का न पच कर ज्यों का त्यों पाखाने से निकल जाना। (२) निकल जाना। जाता रहना। खो जाना। गाँड़ के नीचे वा तले गंगा बहना = अधिक ऐश्वर्य्य होना। अत्यंत धन होना। गाँड़ खोल देना = (१) दब कर बात मान लेना। डर से किसी की बात मान लेना। अधीन हो जाना। (२) चापलूसी करना। ठकुरसुहाती कहना। गाँड़ खोले फिरना = (१) नंगा फिरना। (२) बच्चों की तरह अनजान बना रहना। बचपन की अवस्था में रहना। उ०—कल वह मेरे सामने गाँड़ खोले फिरता था आज बड़ा पंडित बना है। गाँड़ गंजीफ़ा खेलना = (१) चित्त संकट में पड़ना। डर और घबराहट होना। (२) तंग होना। हैरान होना। गाँड़ गरदन की सुध वा ख़बर न रखना = बेहोश रहना। अचेत रहना। असावधान रहना। ग़ाफ़िल रहना। गाँड़ गरदन एक हो जाना = (१) थक कर लथपथ हो जाना। थक कर होश हवाश खो देना। (२) बेहोश हो जाना। बेसुध हो जाना। आपा खोना। (३) संड मुसंड हो जाना। बहुत मोटा हो जाना। गाँड़ गले में आना = (१) संकट में पड़ना। आफ़त में फँसना। (२) तंग आना। ऊब जाना। आजिज़ आना। हैरान होना। गाँड़ घिसना वा रगड़ना = (१) बड़ा उद्योग करना। बहुत प्रयत्न करना। बड़ी दौड़ धूप करना। कड़ी मिहनत करना। कठिन परिश्रम करना। उ०—१०) महीने पर कौन गाँड़ घिसने जायगा। (२) चापलूसी करना। ठकुरसुहाती कहना। ख़ुशामद करना। गाँड़ घिसवाना = (१) बड़ी ख़ुशामद कराना। बड़ी चापलूसी कराना। (२) नाकों चने चबवाना। बहुत तंग करना। गाँड़ चलना = दस्त आना। पेट चलना। गाँड़ चाटना = चापलूसी करना। ख़ुशामद करना। (बाजारू) गाँड़ चिरना = दे० "गाँड़ फटना"। गाँड़ जलना = (१) बुरा लगना। न सुहाना। (२) डाह उत्पन्न होना। ईर्षा होना। गाँड़ धोना = आबदस्त लेना। किसी की गाँड़ धोना = चापलूसी करना। ख़ुशामद करना। गाँड़ धोने न आना = कुछ ढंग न आना। कुछ भी शऊर न होना। गाँड़ फटना = (१) डर लगना। भय होना। (२) डर के मारे घबराहट होना। गाँड़ फट कर हौद वा हौज़ होना = भयभीत होना। आतंक से घबड़ा जाना। सहम जाना। गाँड़फाड़ वा गाँड़फार = (१) भयानक। डरावना। (२) कठिन। विकट। दुष्कर। गाँड़ फाड़ना = (१) डराना। धमकाना। भय दिलाना। (२) दिक करना। सताना। नाक में दम करना। (३) कठिन काम लेना। अत्यंत अधिक श्रम कराना। गाँड़ में गू होना = माल पैसा होना। पास में धन होना। (किसी की) गाँड में घुसा रहना = चापलूसी करना। साथ साथ लगा फिरना। ख़ुशामद करना। गाँड में घुस जाना = दूर हो जाना। निकल जाना। उ०—चार लात देंगे, सब बदमाशी गाँड़ में घुस जायगी। गाँड़ में चटखनी वा पतिंगी लगना = (१) बुरा लगना। न सुहाना। नागवार गुज़रना। (२) डाह होना। जलन होना। गाँड़ में थूकना वा थूक लगाना = (१) नीचा दिखाना। कलंकित करना। धब्बा लगाना। अपमानित करना। इज्ज़त उतारना। (२) झिंपाना। लज्जित करना। गाँड़ मराना = (१) गुदा-मैथुन कराना। प्रकृति-विरुद्ध मैथुन कराना। (२) हानि सहना। नुकसान उठाना। (३) चापलूसी करना।

ख़ुशामद करना । दुर्व्यवहार और दुर्वचन सहना । **गाँड़ मारना** =(१) लौंडेबाज़ी करना । (२) सताना । तंग करना । दुःख देना । (३) अत्यंत अधिक काम लेना । कठिन परिश्रम लेना । **गाँड़ में उँगली करना** =(१) छेड़ना । छकाना । (२) तंग करना । सताना । दिक़ करना । हैरान करना । **गाँड़ में मिरचें लगना** =बुरा लगना । न सुहाना । खलना । **गाँड़ में लँगोटी न होना** =कपड़े बिना नंगे फिरना । अत्यंत दरिद्र होना ।

(२) किसी वस्तु के नीचे का वह भाग जिसके बल वह खड़ी रह सके वा रखी जा सके । पेंदी । तला । तली ।

गाँडर–संज्ञा स्त्री० [सं० गंडाली] (१) मूँज की तरह की एक घास जिसकी पत्तियाँ बहुत पतली और हाथ सवा हाथ लंबी होती हैं । जड़ से इसके अँकुर गुच्छों में निकलते हैं । यह घास तराई में तथा ऐसे स्थानों पर होती है जहाँ पानी इकट्ठा होता है । नैपाल की तराई में तालों और झीलों के किनारे यह बहुत उपजती है । इसकी सूखी जड़ जेठ असाढ़ में पनपती है और उसमें से बहुत से अँकुर निकलते हैं जो बढ़ते जाते हैं । कुआर के महीने में बीच से पतली पतली सींकें निकलती हैं जिनके सिरे पर छोटे छोटे ज़ीरे लगते हैं । किसान सींकों को निकाल कर उनसे झाड़ू, पंखे, टोकरियाँ इत्यादि बनाते हैं और पौधों को काट कर उनसे छप्पर छाते हैं । इस घास की जड़ सुगंधित होती है और उसे संस्कृत में उशीर तथा फ़ारसी में खस कहते हैं । यह पतली सीधी और लंबी होती और बाजारों में खस के नाम से बिकती है । खस का अतर निकाला जाता है और उसकी टट्टियाँ भी बनती हैं । खस से नेचे भी बाँधे जाते हैं । बीरन । खस । उ०—सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती । बाजु सुराग कि गाँडर ताँती ।—तुलसी । (२) एक प्रकार की दूब जिसमें बहुत सी गाँठें होती हैं और जो ज़मीन पर दूर तक फैलती और जगह जगह जड़ पकड़ती जाती है । पशु इसे बड़े चाव से खाते हैं । यह कडुई, कसैली और मीठी होती है, दाह, तृषा और कफ़पित्त को दूर करती और रुधिर के विकार को हरती है । भावप्रकाश में इसे लोह-द्राविणी अर्थात् लोहे को गलानेवाली लिखा है । गंडदूर्वा ।

गाँडा–संज्ञा पुं० [सं० कांड वा खंड] [स्त्री० गँडी] (१) किसी पेड़, पौधे वा डंठल का वह खंड जो उस से काट लिया गया हो । जैसे, लकड़ी का गाँडा, ईख का गाँडा । (२) ईख का वह छोटा टुकड़ा जिसे पत्थर वा लकड़ी के कोल्हू में डाल कर पेरते हैं । गँडेरी । (३) ईख । उ० निगम के भाँडे कत बोलत हैं बचन बाँडे काहे को पाँडे गाँडे हाथिन सों खात है ।—हनुमान ।

संज्ञा पुं० [सं० गंड = गंडा । चिह्न] वह मेंड़ वा चबूतरा जो आटा पीसने की चक्की के चारों ओर इस लिये बनाया जाता है कि आटा गिर कर इधर उधर न फैले । मेंडरी ।

गांडी–संज्ञा स्त्री० [सं० गंड] एक प्रकार की घास जो चौपायों के चरने के काम आती है । यह घास हिसार और भीर में होती है । भैंसें इसे बड़े चाव से खाती हैं । यह सुखा कर रखी जाती है और दस महीने तक बनी रहती है । इसकी जड़ में एक प्रकार की सुगंध होती है । यह अच्छी धरती में जहाँ गेहूँ होता है, उपजती है । इसे घोड़े भी खाते हैं ।

गांडीव–संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन के धनुष का नाम ।

यौ०—गांडीवधन्वा, गांडीवधर, गांडीवी = अर्जुन ।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि पहले इसे ब्रह्मा ने बना कर सोम को दिया था । सोम ने वरुण को दिया, और अग्नि की प्रार्थना पर वरुण ने अर्जुन को दिया ।

गांडीवी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अर्जुन । (२) अर्जुन वृक्ष ।

गाँडू–वि० [हिं० गांड़] (१) जिसे गांड़ मराने की लत हो । (२) निकम्मा । (३) डरपोक । बुज़दिल । असाहसी । जिसमें हिम्मत न हो ।

गाँती–संज्ञा स्त्री० दे० "गाती" ।

गाँथना–क्रि० स० [सं० ग्रन्थन] (१) गूथना । गूँधना । उ०—(क) गुरु के बचन फूल हिय गाँथे । देखउँ नयन चढ़ाउँ माथे ।—जायसी । (ख) सोहत मउर मनोहर माथे । मंगलमय मुकुतामणि गाँथे । (२) गाँठना । मोटी सिलाई करना । जोड़ना ।

गांदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अक्रूर की माता जो काशिराज की कन्या और श्फल्क की भार्य्या थी । (२) गंगा ।

गांदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गांदिनी ।

गांधर्व–वि० [सं०] (१) गंधर्व संबंधी । (२) गंधर्व देशोत्पन्न । गंधर्व जाति का ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) सामवेद का उपवेद जिसमें सामगान के स्वर तालादि का वर्णन है । गंधर्व विद्या । गंधर्व वेद । (२) गान विद्या । संगीत शास्त्र । (३) वह मंत्र जिसका देवता गंधर्व हो । (४) भारतवर्ष का एक भाग वा उपद्वीप जिसे गंधर्व द्वीप भी कहते थे । यहाँ के लोग गाने बजाने में बड़े चतुर होते थे । इसमें कन्या वर परस्पर मिल कर विवाह करते थे । स्त्रियाँ रूपवती होती थीं । इस देश के घोड़े अच्छे होते थे । यह देश हिमालय के प्रांत-भाग में माना जाता था । (५) आठ प्रकार के विवाहों में एक जिसमें वर और कन्या परस्पर अपनी इच्छा से अनुरागपूर्वक मिल कर पति पत्नीवत् रहते हैं । मनु के अनुसार क्षत्रियों के लिये गांधर्व विवाह विहित है । (६) घोड़ा । (७) गंधर्व ।

गांधर्ववेद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सामवेद का उपवेद । दे० "गांधर्व" । (२) संगीत-शास्त्र ।

गांधर्विक–वि० [सं०] संगीत-शास्त्र-कुशल । गांधर्ववेद जाननेवाला।

गांधर्वी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

गांधार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंधु नद के पश्चिम का देश जो पेशावर से लेकर कंधार तक माना जाता था। इस देश की सीमा भिन्न भिन्न समयों में बदलती रही है। हुयनच्वांग के समय में इस देश के अंतर्गत सिंधु नद से लेकर जलालाबाद तक और स्वात से कालाबाग तक का प्रदेश था। ऋग्वेद में यहाँ अच्छी भेड़ों का होना लिखा है। गांधारी इसी देश की कन्या थी। (२) [स्त्री० गांधारी] गांधार देश का रहनेवाला। (३) गांधार देश का राजा वा राजकुमार। (४) संगीत में सात स्वरों में तीसरा स्वर। इसकी दो श्रुतियाँ हैं, रौद्री और क्रोधा। इसकी जाति वैश्य, वर्ण सुनलहा, देवता सरस्वती, ऋषि चंद्रमा, छंद त्रिष्टुभ, वार मंगल, ऋतु वसंत और स्थान दोनों हाथ हैं। इसकी आकृति अग्नि की संतान, हिंडोल राग है। इसका अधिकार शाल्मली द्वीप में है। इसका प्रयोग करुणरस में होता है। नाभि से उठकर कंठ और शीर्ष में लग कर अनेक गंधों को लेजानेवाली वायु से इसकी उत्पत्ति होती है। यह स्वर बकरे की बोली से लिया गया है। इसके दो भेद होते हैं। शुद्ध और कोमल। इस स्वर का ग्रह स्वर बनाने से निम्न लिखित प्रकार से स्वर ग्राम होता है।—(क) गांधार-स्वर। तीव्र मध्यम, ऋषभ। कोमल धैवत-गांधार। धैवत-मध्यम। निषाद–पंचम। कोमल ऋषभ–धैवत। कोमल गांधार-निषाद। कोमल गांधार को ग्रह स्वर बनाने से स्वर ग्राम इस प्रकार होता है।—(ख) गांधारकोमल–स्वर। मध्यम ऋषभ। पंचम–गांधार। कोकल धैवत–मध्यम। कोमल निषाद–पंचम। स्वर धैवत। ऋषभ–निषाद। (५) संपूर्ण जाति का एक राग जो प्रातः काल १ दंड से ५ दंड तक गाया जाता है। हनुमत के मत से यह भैरव राग का पुत्र और किसी किसी के मत से दीपक राग का पुत्र है। (६) एक संकर राग जो कई राग और रागिनियों को मिला कर बनाया जाता है। (७) संगीत के तीन स्वर ग्रामों में से एक जिसमें नंदा, विविशाखा, सुमुखी, विचित्रा, रोहिणी, सुखा और आलापनी ये सात मूर्च्छनाएँ हैं और जिसका व्यवहार स्वर्गलोक में नारद द्वारा होता है। इसके अधिष्ठाता देवता शिव कहे गए हैं। (८) गंध रस नामक सुगंधद्रव्य।

गांधारपंचम–संज्ञा पुं० [सं०] एक षाडव राग। यह मंगलीक राग है और अद्भुत हास्य और करुणरस में इस का प्रयोग होता है। इसमें ऋषभ नहीं लगता। म, प, ध, नि, स, ग, म, इसका सरगम है। इसमें प्रसन्न मध्यम अलंकार और काकली का संचार होना आवश्यक है। इसे केवल गांधार भी कहते हैं।

गांधारभैरव–संज्ञा पुं० [सं०] एक राग का नाम जो देवगांधार के मिलने से बनता है। इसमें सातों स्वर लगते हैं और यह प्रातः काल गाया जाता है। इसका सरगम यह है— ध, नि, स, रि, ग, म, प, ध।

गांधारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गांधार देश की स्त्री वा राजकन्या। (२) धृतराष्ट्र की स्त्री वा दुर्योधन की माता का नाम। ये गांधार देश के राजा सुबल की कन्या थीं। शिव ने इन्हें सौ पुत्र होने का वर दिया था। धृतराष्ट्र की पत्नी होने पर इन्होंने पति को अंधा देख अपनी आँखों पर भी पट्टी बाँध ली थी। (३) मेघराज की पाँचवीं रागिनी। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और दिन के पहले पहर में गाई जाती है। 'रि, ध, नि, प, म, ग, रि, स' इसका सरगम है। कोई कोई इसे हिंडोल राग की रागिनी मानते हैं। उनका मत है कि यह धनाश्री और स्वराष्टक को मिला कर बनाई गई है। कोई इसे सारस्वत और धनश्री से मिल कर बनी हुई बतलाते हैं। (४) तंत्र के अनुसार एक नाड़ी। (५) जैनों के एक शासन देवता। (६) पार्वती की एक सखी का नाम। (७) जवासा। (८) गाँजा।

गांधिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधी। (२) एक कीड़ा। गाँधी। (३) गंधद्रव्य।

गाँधी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक हरे रंग का छोटा कीड़ा जो वर्षाकाल में धान के खेतों में अधिक होता है। इससे धान के पौधों को बड़ी हानि पहुँचती है। इसमें एक तीव्र दुर्गंध होती है। रात को यह चिराग के सामने भी उड़ कर पहुँचता है और इसके आते ही खटमल की तरह की एक असह्य दुर्गंधि उठती है। (२) एक घास। †(३) हींग।

गांभीर्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गहराई। गंभीरता। (२) स्थिरता। अचंचलता। (३) हर्ष, क्रोध, भय आदि मनोवेगों से चंचल न होने का गुण। धीरता। शांति का भाव। (४) किसी विषय की गूढ़ता। गहनता। जटिलता।

गाँवँ, गाँव–संज्ञा पुं० [सं० ग्राम, पा० गाम, प्रा० गावँ] [वि० गँवार] वह स्थान जहाँ पर बहुत से किसानों के घर हों। छोटी बस्ती। खेड़ा।

मुहा०—गाँव गिरावँ = (१) देहात। (२) ज़मीदारी। गाँव गवई = देहात। गाँव मारना = डाका मारना। डाका डालना। उ०—जिमीदारसुता ताके उभै भाई रहे आपस में वैर, गाँव मारयो सब छीजिये।—प्रिया।

गाँस–संज्ञा स्त्री० [हिं० गांसना] (१) बंधन। रोक टोक। प्रतिरोध। उ०—सब गाँस फास मिटाय दास हुलास ज्ञान अखंड के। नहिँ नाश तेहि इतिहास सुनि सो आदि अंत प्रचंड के। **क्रि० प्र०**—करना।—रखना।—देना।

(२) वैर। द्वेष। ईर्षा। मनोमालिन्य। उ०—विथुरयो जावक

सैाति पग, निरखि हँसी गहि गाँस। सलज हँसैांहीं लखि लियो आधी हँसी उसास।—बिहारी।

क्रि० प्र०—रखना।—धरना।—पकड़ना।—गहना।

मुहा०—गाँस निकालना = बैर निकालना।

(३) हृदय की गुप्त बात। भेद की बात। रहस्य। उ०—(क) जबहिँ कान्ह यह बात सुनाई। ब्रज युवती अति गई मुरझाई।..............जोबन दान लेहिँगे तुम सों। चतुराई मिलवति है हम सों। इनकी गाँस कहा री जानो। इतनी कही एक जिय मानो।—सूर। (ख) बहू बात साँची याकी गाँस एक और सुनो साधु को न हँसे कोऊ यह मैं विचारी है।—प्रिया। (४) गाँठ। फंदा। गठन। बनावट। जमावट। उ०—इतने सबै तुम्हारे पास। निरखि न देखहु अंग अंग अब चतुराई की गाँस।—सूर। (५) तीर वा बर्छी का फल। हथियार की नोक। उ०—कोटिन मनोज की वनोज जाके आगे पुनि दवति कलानिधि की खोज को न काढ़ी है। रघुनाथ हेरि सोई हरखि हरिननैनी गहै गाँस पैनी रीझ बतरस बाढ़ी है।—रघुनाथ। †(६) वश। अधिकार। शासन।

मुहा०—गाँस में करना वा रखना = अधिकार में रखना। देख रेख में रखना। शासन में रखना। उ०—निर्गुण कौन देस को बासी। मधुकर कहि समुझाइ सैांह दै बूझत साँच, न हाँसी।..............पावैगो पुनि कियो आपनो जोर करेगो गाँसी। सुनत मैान ह्वै रह्यो बावरो सूर सबै मति नासी।—सूर।

(७) देख रेख। निगरानी।

गाँसना—क्रि० स० [हिं० ग्रंथन] (१) गँसने का सकर्मक रूप। एक दूसरे से लगा कर कसना। गूथना। (२) सालना। छेदना। चुभोना। आर पार करना। (३) रस्सी वा सूत के बाने बुनते समय उसे ठोंक ठोंक कर ताने में कसना जिससे बुनावट घनी हो। गठना। कसना। ठस करना।

मुहा०—बात को गाँस कर रखना = मन में बैठा कर रखना। हृदय में जमाना। स्मरण रखना। मन में लिए रहना। उ०—दाउँ घाउ तुमही सब जानत। सदा मानि तुम को हम आई अबहूँ तैसइ मानत। तुम वह बात गाँस करि राखी हम को गई भुलाइ। ता दिन कह्यो नहीं मैं जानैां मानि लई सति भाइ।

† (४) रोकना। इधर उधर न जाने देना। देख रेख में रखना। वश में रखना। अपने मन का न होने देना। शासन में रखना। (५) पकड़ में करना। वश में करना। दबोचना। (६) ठूसना। भरना। (७) जहाज़ का छेद बंद करना।

गाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाँस] (१) तीर वा बरछी आदि का फल। हथियार की नोक। उ०—पीतम के उर बीच भये दुलही को विलास मनोज की गाँसी।—मतिराम।

मुहा०—गाँसी लगना = तीर लगना। उ०—फाँसी से फुलेल लागे गाँसी सी गुलाल लागे गाज अरगजा लागे चोवा लागे चहकन।

(२) गाँठ। गिरह। (३) कपट। छलछंद। (४) मनोमालिन्य।

गाँहक†—संज्ञा पुं० दे० "गाहक"।

गाइड—संज्ञा पुं० [अं०] (१) पथ-प्रदर्शक। रहनुमा। आगे आगे रास्ता बतलानेवाला। (२) वह पुरुष जो किसी स्थान में विदेशियों के साथ रह कर उन्हें वहाँ के प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थलों और वस्तुओं को दिखलाता है। (३) वह पुस्तक जिसमें किसी विशेष संस्था वा कार्य्यविभाग के नियम आदि लिखे हों।

गाउन—संज्ञा पुं० [अं०] (१) एक प्रकार का लंबा ढीला पहनावा जो प्रायः योरप, अमेरिका आदि देशों की स्त्रियाँ पहनती हैं। (२) एक प्रकार का चोगा जो कई आकार और प्रकार का होता है और जिसके पहनने के अधिकारी ईसाई धर्म के आचार्य्य, ग्रैजुएट, बड़े न्यायाधीश अथवा कुछ अन्य विशिष्ट लोग ही समझे जाते हैं।

गाऊघप्प—वि० [हिं० खाऊ + गप्प] (१) दूसरों के माल को हड़प लेनेवाला। जमामार। (२) बहुत खर्च करनेवाला। बहुत उड़ानेवाला।

गागर†—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्गर] गगरी। घड़ा।

गागरा†—संज्ञा पुं० (१) दे० "गगरा"। (२) भंगियों की एक जाति।

गागरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्गर, पा० गग्गर] घड़ा। गगरी। उ०—तू मोहीं को मारन जानति। उन को चरित कहा कोउ जानै उनहि कहा तू मानति। कदम तीर ते मोहिं बुलायो गढि गढि बातैं बानति। मटकति गिरी गागरी सिर तें अब ऐसी बुधि ठानति।—सूर।

गाच—संज्ञा पुं० [अं० गाज़] बहुत महीन जालीदार सूती कपड़ा जिस पर रेशमी बेल बूटे बने रहते हैं। फुलवर।

गाछ—संज्ञा पुं० [सं० गच्छ] (१) छोटा पेड़। पैाधा। (२) पेड़। वृक्ष। (३) एक प्रकार का पान जो उत्तरी बंगाल में होता है।

गाछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गाछ + ई (प्रत्य०)] (१) पेड़ों का कुंज। बाग़। (२) खजूर की नरम कोंपल जिसे लोग पेड़ कट जाने पर सुखला कर रख छोड़ते हैं और तरकारी के काम में लाते हैं। (३) बोरा जो बैल आदि पशुओं की पीठ पर बोझ लादने के लिये रक्खा जाता है। खुरजी।

गाज—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्ज, प्रा० गज्ज] (१) गर्जन। गरज। शोर। उ०—(क) कबिरा सूता क्यों करै सूतें होय अकाज। ब्रह्मा को आसन डग्यो सुनी काल की गाज।—कबीर। (ख) नंदराय के चैाक में खड़े करत सब गाज। जय जय करि चिचियाइए तबै मिलत बृजराज।—सुकवि।

यौ०—गाजा बाजा = धूम धड़का।

(२) बिजली गिरने का शब्द। वज्रपातध्वनि। उ०—गाज्यो कपिगाज ज्यों विराज्यो ज्वाल जालयुत भाजे धीर बीर अकुलाइ उठ्यो रावनो।—तुलसी। (३) बिजली। वज्र। उ०—गाज्यो कविराज रघुराज की सपथ करि मूँदे कान जातुधान मानो गाजे गाज के।—तुलसी।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—गाज पड़ना = वज्रपात होना। बिजली गिरना। उ०—मानहुँ परी स्वर्ग हुत गाजा। फाटी धरति आइ जो बाजा।—जायसी। किसी पर गाज पड़ना = आफ़त आना। ध्वंस होना। नाश होना। उ०—जो सत पूछसि गंध्रब राजा। सत पर कबहुँ परै नहिँ गाजा।—जायसी। (किसी बात पर) गाज पड़े = नष्ट हो। दूर हो। न रह जाय। उ०—(क) गाज परै ऐसी लाज पै जो भरि लोचन देति न मोहिँ निहारन। (ख) गाज परै ब्रज को बसिबो तुमहूँ, सखि, देखति हौ बरजोरी।—दूलह। (किसी को कोसने वा किसी बात से अनिच्छा प्रकट करने के लिये इस मुहावरे का प्रयोग स्त्रियाँ बहुत अधिक करती हैं।) गाज मारना = (१) बिजली गिरना। वज्राघात होना। (२) आफ़त आना। उ०—दैव कहा सुनु बउरे राजा। दैवहि अगुमन मारा गाजा।—जायसी।

संज्ञा पुं० [अनु० गजगज] पानी आदि का फेन। फेन। झाग।

क्रि० प्र०—उठना।—छूटना।—छोड़ना।—निकलना।—फेंकना।

संज्ञा स्त्री० [?] काँच की चूड़ी।

गाजना—क्रि० अ० [सं० गर्जन, पा० गज्जन] (१) गरजना। शब्द करना। हुंकार करना। चिल्लाना। उ०—(क) सैन मेघ अस दुहुँ दिसि गाजा। स्वर्ग के बीच बीजु अस बाजा।—जायसी। (ख) उनई आय दुहूँ दल गाजे। हिंदू तुरुक दोऊ सम बाजे।—जायसी। (२) हर्षित होना। प्रसन्न होना।

मुहा०—गल गाजना = हर्षित होना।

गाजर—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधे का नाम जिस की पत्तियाँ धनिया की पत्ती से मिलती जुलती पर उस से बहुत बड़ी होती हैं। इसकी जड़ मूली की तरह पर अधिक मोटी और लाल रंग की होती है। यह खाने में बहुत मीठी होती है। यह गरम होती है और घोड़े को बहुत खिलाई जाती है। छोटी और नरम जड़ों को ग़रीब लोग और बच्चे बड़े चाव से खाते हैं। इसकी जड़ को सुखला कर उसके आटे का हलुवा बनाया जाता है जो पुष्ट माना जाता है। काछी लोग इसे अपने खेतों में कातिक अगहन में बोते हैं। इसकी तरकारी, अचार और मुरब्बे भी बनाए जाते हैं।

मुहा०—गाजर मूली समझना = तुच्छ समझना।

ग़ाज़ा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मुँह पर मलने का एक रोगन। पाउडर।

क्रि० प्र०—मलना।

ग़ाज़ी—संज्ञा पुं० [अ०] (१) मुसलमानों में वह वीर पुरुष जो धर्म के लिये विधर्मियों से युद्ध करे। (२) बहादुर। वीर। उ०—साहिके सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा मदगल अफजलै पंजाब पटक्यो।—भूषण।

ग़ाज़ी मियाँ—संज्ञा पुं० [अ०] सालार मसऊद ग़ाज़ी जो महमूद ग़ज़नवी का भानजा था। यह हिंदुओं को काफ़िर समझ उनसे लड़ने के लिये अवध तक बढ़ आया था पर आरंभ ही में श्रावस्ती (सहेत महेत) के जैन राजा सुहृद्‍देव के हाथ से बहराइच में मारा गया। बालेमियाँ।

गाटर—संज्ञा स्त्री० [पु० हिं० गटई = गला] जुआठे की वह लकड़ी जिसके इधर उधर बैल जोते जाते हैं।

संज्ञा पुं० [?] (१) दे० "कट्ठा"। (२) छोटा खेत। गाटा।

संज्ञा पुं० [अं० गर्टर] लोहे की लंबी और मोटी धरन जिसे दीवारों पर डाल कर छत पाटी जाती है।

गाटा—संज्ञा पुं० [हिं० कट्ठा] (१) खेत का छोटा टुकड़ा। छोटा खेत। गाटर। (२) पयाल दाने को बैलों की नधाई।

गाड़—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्त, प्रा० गड्ड। मिलाओ अ० गार] (१) गड़हा। गड्ढा। उ०—(क) रुधिर गाड़ भरि भरि जमेउ ऊपर धूरि उड़ाइ। जिमि अँगार रासीन पर मृतक धूम रह छाइ।—तुलसी। (ख) वेई गड़ि गाड़ैं परी उपट्यो हार हिये न। आन्यो मोरि मतंग मनु मारि गरेरनि मैन।—बिहारी। (ग) चित चंचल जग कहत है मो मति सो ठहरै न। या ठोढ़ी की गाड़ परि थिर होइ सो निकरै न।—शृं० सत०। (२) पृथ्वी के भीतर खोदा हुआ गड्ढा जिसमें अन्न रखा जाता है। (३) कोल्हाड़ में वह गड्ढा जिसमें बचा खुचा रस निचोड़ने के लिये ईख की खोई डालते हैं और ऊपर से पानी छिड़क देते हैं। इसके चारों ओर हाथ डेढ़ हाथ ऊँची दीवार होती है और भीतर से यह खूब लिपा पुता रहता है। इसके एक ओर छोटा सा छेद होता है जिसमें से हो कर खोई से रस निचुड़ता है। (४) नील आदि के कारख़ाने में वह गड्ढा जिसमें पानी भरा रहता है। (५) कुएँ की ढाल। भगाड़। (६) वह छिछला गड्ढा जिसमें से पानी शीघ्र बह जाता है। खत्ता। (७) खेत का मेड़। बाढ़।

गाड़ना—संज्ञा पुं० [हिं० गाड़ = गड्ढा] (१) पृथ्वी में गड्ढा खोद-कर किसी चीज़ को उसमें डाल ऊपर से मिट्टी डाल देना। ज़मीन के भीतर दफ़नाना। तोपना। जैसे, रुपया गाड़ना, मुरदा गाड़ना। (२) पृथ्वी में गड्ढा खोद कर उसमें किसी लंबी चीज़ के एक सिरे का कुछ भाग डाल कर उसे खड़ा

करना। जमाना। जैसे, बाँस गाड़ना, लट्ठा गाड़ना, पेड़ गाड़ना। (३) किसी नुकीली चीज़ को नोक के बल किसी चीज़ पर ठोंक कर जमाना। धँसाना। जैसे, खूँटी गाड़ना, कील गाड़ना। (४) छिपाना। गुप्त रखना। जैसे, वह जिस चीज़ को पाता है, गाड़ रखता है।

गाडर†–संज्ञा स्त्री० [सं० गड्डरी वा गड्डरिका] (१) भेड़। उ०—(क) स्वामी होनो सहज है दुर्लभ होनो दास। गाडर लाये ऊन को लागी चरन कपास।—तुलसी। (ख) मतिराम कहै कारबार के कसैया केते गाडर से मूँड़े जग हाँसी को प्रसंग भो।—मतिराम। (२) दे० "गाँडर"।

गाड़रू†–संज्ञा पुं० दे० "गारुड़ी"।

गाड़ा*†–संज्ञा पुं० [सं० शकट, प्रा० सगड़] गाड़ी। छकड़ा। बैल-गाड़ी। उ०—कुंडल कान कंठ माला दै ध्रुव नँद अति सुख पायो। सीधो बहुत सुरासुर नँदै गाड़ा भरि पहुँचायो।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं० गर्त, प्रा० गड्ड] (१) वह गड्ढा जिसमें आगे लोग छिप कर बैठ रहते थे और शत्रु, चोर, डाकू आदि का पता लेते थे। घात का स्थान। (पहले गावों में ऐसे गड्ढे रहा करते थे।

मुहा०—गाड़े बैठना=(१) घात में बैठना। (२) चौकी वा पहरे पर बैठना। गाड़ा बैठाना=चौकी बैठाना। पहरा बैठाना।

(२) वह खत्ता वा गड्ढा जो कोल्हू के नीचे रहता है और जिसमें तेल वा रस जमा करने के लिये बरतन रखा रहता है।

गाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० शकट, प्रा० सगड़] (१) घूमनेवाले पहियों के ऊपर ठहरा हुआ लकड़ी लोहे आदि का ढाँचा जिसे घोड़े बैल आदि खींचते हैं और जिस पर आदमियों के बैठने वा माल असबाब रखने के लिये स्थान बना रहता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल असबाब वा आदमियों को पहुँचाने के लियें एक यंत्र। यान। शकट। आदमियों के चढ़ानेवाली गाड़ी को सवारी गाड़ी और माल असबाब लादने की गाड़ी को छकड़ा, सग्गड़ आदि कहते हैं। सवारी गाड़ी कई प्रकार की होती है जैसे, रथ, बहल, एक्का, टाँगा, बग्घी, जोड़ी, फ़िटन, टमटम आदि। उ०—(क) गाड़ी के स्वान की नाईं माया मोह की बड़ाई छिनहिँ तजि छिन भजत बहोरि हौं।—तुलसी। (ख) लीक लीक गाड़ी चलै, लीकहिं चलै सपूत।

क्रि० प्र०—चलाना=हाँकना।

मुहा०—गाड़ी भर=बहुत सा। ढेर का ढेर। गाड़ी जोतना=गाड़ी में घोड़े जोतना। चलने के लिये गाड़ी तैयार करना। गाड़ी छूटना=गाड़ी का रवाना हो जाना। (ऐसा प्रायः ऐसी गाड़ियों के ही संबंध में बोलते हैं जिनका संबंध सर्वसाधारण से होता है और जिनके आने जाने का समय नियत होता है)।

(२) रेलगाड़ी।

मुहा०—गाड़ी कटना=(१) किसी डिब्बे का ट्रेन से अलग होना (२) चलती गाड़ी में से माल चोरी जाना।

गाड़ीखाना–संज्ञा पुं० [हिं० गाड़ी+खाना] वह स्थान जहाँ गाड़ियाँ रखी जाती हों।

गाड़ीवान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी हाँकनेवाला। (२) कोचवान।

गाढ़–वि० [सं०] (१) अधिक। बहुत। अतिशय। (२) दृढ़। मज़बूत। (३) घना। गाढ़ा। (४) गहरा। अथाह। (५) विकट। कठिन। दुरूह। दुर्गम। उ०—खेत्र अगम गढ़ गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन पावा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० गाढ] (१) कठिनाई। आपत्ति। संकट। उ०—(क) जहँ जहँ गाढ़ परै संतन पर सकल काम तजि होहु सहाई।—तुलसी। (ख) डसी री माई श्याम भुअंगम कारे। मोहन मुख मुसुकानि मनहुँ विष जाते मरे सो मारे। ....निर्विष होत नहीं कैसेहु करि बहुत गुणी पचि हारे। सूरश्याम गारुड़ी बिना को सो सिर गाढ़ उतारै।—सूर।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—गाढ़े में पड़ना=संकट में पड़ना। आपत्तिग्रस्त होना। उ०—एक परे गाढ़े, एक डाढ़त ही काढ़े, एक देखत हैं ठाढ़े, कहैं पावक भयावनो।—तुलसी।

(२) जुलाहों का करघा।

गाढ़ा–वि० [सं० गाढ] [स्त्री० गाढ़ी] (१) जो पानी की तरह पतला न हो। जिसमें जल के समान बहनेवाले अंश के अतिरिक्त ठोस अंश भी मिला हो। जिसकी तरलता घनत्व लिए हो। जैसे, गाढ़ा दूध, गाढ़ा रस, गाढ़ी स्याही, गाढ़ा शीरा।

मुहा०—गाढ़ी छनना=(१) ख़ूब भाँग का पिया जाना। (२) गहगड्ड नशा होना।

(२) जिसके सूत परस्पर ख़ूब मिले हों। ठस। मोटा। (कपड़े आदि के लिये) जैसे, गाढ़ी बुनावट, गाढ़ा कपड़ा।

(३) घनिष्ट। गहरा। गूढ़। जैसे, गाढ़ी मित्रता।

मुहा०—गाढ़ी छनना=(१) गहरी मित्रता होना। अत्यंत हेलमेल होना। गूढ़ प्रेम होना। उ०—आज कल उन दोनों की ख़ूब गाढ़ी छनती है। (२) घुल घुल कर बातें होना। गुप्त सलाह होना। (३) लाग डाट होना। विरोध होना।

(४) बढा चढ़ा। घोर। कठिन। विकट। प्रचंड। कट्टर। दुरूह। जैसे, गाढ़ी मिहनत। उ०—द्विज देवता घरहि के बाढ़े। मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े।—तुलसी।

मुहा०—गाढ़े की कमाई=बहुत मिहनत से कमाया हुआ

धन। अर्थात परिश्रम से उपार्जित धन। **गाढ़े का साथी वा संगी** = संकट के समय का मित्र। विपत्ति के समय सहारा देनेवाला। उ०—दस्तगीर गाढ़े कर साथी। बहु अवगाह दीन तेहि हाथी।—जायसी। **गाढ़े दिन** = संकट के दिन। विपत्ति काल। मुसीबत का वक्त। **गाढ़े में** = विपत्ति के दिनों में। संकट के समय में। उ०—मित्र वही जो गाढ़े में काम आवे।

संज्ञा पुं० [सं० गाढ] (१) एक प्रकार का मोटा और भद्दा सूती कपड़ा जिसे जुलाहे बुनते हैं और गरीब आदमी पहनते हैं। (२) मस्त हाथी।

गाढ़े†* क्रि० वि० [हिं० गाढ़ा] (१) दृढ़ता से। ज़ोर से। उ०—मैं गोरस लै जात अकेली काल्हि कान्ह बहियाँ गही मेरी। हार सहित अँचरा गह्यो गाढ़े एक कर गह्यो मटुकिया मेरी। तब मैं कह्यों खीजि हरि छाड़हु टूटैगी मोतिन लर मेरी।—सूर। (२) अच्छी तरह। भली भाँति। खूब। उ०—लाडिली के कर की मेंहदी छवि जात कही नहिं शंभुहु जू पर। भूलिहू जाहि विलोकत ही गडि गाढ़े रहे अति ही दृग वू पर।—शंभु।

गाणपत—वि० [सं] गणपति संबंधी।

संज्ञा पुं० एक संप्रदाय जो गणेश की उपासना करता है।

गाणपत्य—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश का उपासक।

गात—संज्ञा पुं० [सं० गात्र, पा० गत्त] (१) शरीर। अंग। उ०—बैठे देख कुशासन जटा मुकुट कृश गात।—तुलसी। (२) गुप्तांग। लज्जा का अंग। जैसे, गात दिखाना। (३) स्तन। कुच।

मुहा०—गात उमगना = छाती उठना। कुच निकलना।

(४) गर्भ।

मुहा०—गात से होना = गर्भवती होना।

गातलीन—संज्ञा स्त्री० [अं० गाटलिन] जहाज़ में एक डोरी जो मस्तूल के ऊपर एक चरखी में लगी रहती है और रीगिन उठाने में काम आती है।

गाता—संज्ञा पुं० [सं० गातृ (गाता)] गानेवाला। गवैया। उ०—जयति रन अजिर गंधर्व गन गर्वहर फेरि किय राम गुन गाथ गाता।—तुलसी।

संज्ञा पुं० दे० "गत्ता"।

गाती—संज्ञा स्त्री० [सं० गात्री वा गात्रिका] (१) वह चद्दर जिसे प्राचीन काल में लोग अपने शरीर पर लपेटते थे और अब भी साधू अपने गले में बाँधे रहते हैं। स्त्रियाँ बच्चों के गले में अब भी गाती बाँधती हैं। उ०—सारी सुभग कांछ सब दिये। पाटंबर गाती सब दिये। एकन जाइ दूर हरि पाये। सैन देइ राधिका बुलाये।—सूर।

क्रि० प्र०—कसना।—बाँधना।—लगाना।

मुहा०—गाती मारना = गाती बाँधना।

(२) चद्दर वा अँगोछा लपेटने का एक ढंग जिसमें उसे शरीर के चारों ओर लपेट कर गले में बाँधते हैं।

गातु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोयल। (२) भौंरा। (३) गंधर्व। (४) गानेवाला। (५) गान। (६) चलनेवाला। पथिक। (७) पृथ्वी।

गात्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंग। देह। शरीर। (२) हाथी के अगले पैरों का ऊपरी भाग।

गात्रगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र जो लक्षणा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

गात्रभंगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केवाँच। कौंच।

गात्रवत्—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम जो लक्षणा के गर्भ से हुए थे।

गात्रवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर साधन की वह प्रणाली जिसमें सातों स्वरों में से प्रत्येक का उच्चारण तीन तीन बार करते हैं। जैसे, सा सा सा, रे रे रे, ग, ग, ग, आदि।

गात्रविंद—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र जो लक्षणा के गर्भ से हुए थे।

गात्रसम्मित—वि० [सं०] तीन महीने के ऊपर का (गर्भ)। (गर्भ) जिसका शरीर बन गया हो।

गाथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गान। (२) स्तोत्र।

गाथक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गाथिका] गानेवाला। गायक।

गाथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्तुति। (२) वह श्लोक जिसमें स्वर का नियम न हो। (३) प्राचीन काल की एक प्रकार की ऐतिहासिक रचना जिसमें लोगों के दान यज्ञादि का वर्णन होता था। (४) आर्य्या नाम की वृत्ति। (५) एक प्रकार की प्राचीन भाषा जिसमें संस्कृत के साथ कहीं कहीं पाली भाषा के विकृत शब्द मिले रहते हैं। ललितविस्तर आदि बौद्ध ग्रंथ इसी भाषा में लिखे हुए हैं। (६) श्लोक। (७) गीत। (८) कथा। वृत्तांत। हाल। उ०—गुरु शिष के संवाद की कहों अब गाथ नवीन। पेखि जाहि जिज्ञासु जन, होत विचार प्रवीन।—निश्चल। (९) बारह प्रकार के बौद्ध शास्त्रों में चौथा। (१०) पारसियों के धर्म ग्रंथ का एक भेद। जैसे, गाथा अहूवैति, गाथा उष्टवैति इत्यादि।

गाथी—संज्ञा पुं० [सं० गाथिन्] सामवेद गानेवाला।

गाद†—संज्ञा स्त्री० [सं० गाध = जल के नीचे का तल] (१) तरल पदार्थ के नीचे बैठी हुई गाढ़ी चीज। तलछट।

मुहा०—गाद बैठना = तलछट बैठना। (२) कीट जमना।

(२) तेल का चीकट। कीट। (३) गाढ़ी चीज। जैसे, गोंद, राब।

गादड़†—वि० [सं० कातर वा कदर्य, प्रा० कादर] कायर। डरपोक। भीरु।

संज्ञा पुं० (१) वह बैल जो मारने पर भी न चले। (२) [स्त्री० गदड़ी] गीदड़। सियार। उ०—तहाँ भूप देखेउ अस

सपना। पकरेउ पैर गादरी अपना। भूप छुड़ायो चाहत निज पग। तजत न गादरि पकरि जो पग रग।—निश्चल।

संज्ञा पुं० [सं० गड्डुर] भेंड़ा। मेढ़ा। मेष।

गादर†–वि० [सं० कातर वा कदर्य, प्रा० कादर] (१) डरपोक। भीरु। कायर। (२) सुस्त। मट्ठर।

वि० † [हिं० गदराना] गदराया हुआ।

संज्ञा पुं० (१) वह बैल जो जोतने पर मारने से भी आगे न बढ़े। (२) गीदड़।

गादा–संज्ञा पुं० [सं० गाधा = दलदल] (१) खेत का वह अन्न जो अच्छी तरह न पका हो। गद्दर। अधपका अन्न। जैसे, मटर का गादा, बाजरे का गादा। (२) बेपकी फसल। कच्ची फसल। (३) महुए का फूल जो पेड़ से टपका हो। हरा महुआ।

गादी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गद्दी] (१) एक पकवान का नाम। यह एक छोटी टिकिया होती है जिसमें इलायची चिरौंजी और गरी मिला कर पूर भरा रहता है। (२) दे० "गद्दी"।

गादुर–संज्ञा पुं० [सं० कातर, प्रा० कादर = डरपोक] चमगीदड़।

गाध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थान। जगह (२) थाह। जल के नीचे का स्थल। (३) नदी का बहाव। कूल। (४) लोभ। लिप्सा।

वि० [स्त्री० गाधा] (१) जिसे हल कर पार कर सकें। छिछला। पायाब जो बहुत गहरा न हो। (२) थोड़ा। स्वल्प। उ०—तो गति अगाध सिंधु, गाध मति मेरी वह असाधुता को राधे अपराध क्षमा कीजिये।—देव।

गाधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री स्वरूपा महादेवी।

गाधि–संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के पिता का नाम। ये कुशिक राजा के पुत्र थे। हरिवंश में लिखा है कि कुशिक ने इंद्र के समान पुत्र प्राप्त करने के लिये तपस्या की तब इंद्र के अंश से विश्वामित्र उत्पन्न हुए।

यौ०—गाधिपुत्र। गाधिनगर। गाधिपुर।

गाधिपुर–संज्ञा पुं० [सं०] कान्यकुब्ज।

गाधेय–संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र।

गाधेया–संज्ञा स्त्री० [सं०] गाधि की कन्या सत्यवती जो भार्गव पुत्र ऋचीक की पत्नी थी।

गान–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गेय, गेतव्य] (१) गाना। गाने की क्रिया। संगीत।

यौ०—गानविद्या = संगीतकला।

(२) गीत। गाने की चीज़।

गाना–क्रि० स० [सं० गान] (१) ताल स्वर के नियम के अनुसार शब्द उच्चारण करना। आलाप के साथ ध्वनि निकालना। जैसे, गीत गाना, मल्लार गाना। (२) मधुर ध्वनि करना। जैसे, तूती का गाना, कोइल का गाना। (३) कहना। वर्णन करना। विस्तार के साथ कहना। उ०—द्विजदेव जू देखि अनोखी प्रभा अलि चारन कीरति गायो करैं। चिरजीवो वसंत सदा द्विजदेव प्रसूनन की झरि लायो करै।—द्विजदेव।

मुहा०—अपनी अपनी गाना = अपनी अपनी बात सुनाना। अपना दुखड़ा रोना। अपनी ही गाना = अपनी ही बात कहते जाना। अपना ही हाल कहना। अपना ही विचार प्रकट करना। अपने ही मतलब की बात करना। उ०—तुम तो अपनी ही गाते हो, दूसरे की सुनते नहीं।

(४) स्तुति करना। प्रशंसा करना। बखान करना। जैसे, (क) सब लोग उसका गुन गाते हैं। (ख) वह जिससे पाता है, उसकी गाता है। उ०—(क) गाइये गणपति जगबंदन।—तुलसी। (ख) द्विज देव जू देखि अनोखी प्रभा अलि चारन कीरति गायो करैं। चिरजीवो वसंत सदा द्विजदेव प्रसूनन की झरि लायो करैं।—द्विजदेव।

मुहा०—गाना बजाना = आमोद प्रमोद करना। उत्सव मनाना। उ०—सब लोग गाते बजाते अपने घर गये।

संज्ञा पुं० (१) गान। गाने की क्रिया। (२) गीत। गाने की चीज। उ०—कोई अच्छा गाना सुनाओ।

गानिली–संज्ञा स्त्री० [सं०] वच।

गाफ़िल–वि० [अ०] [संज्ञा ग़फ़लत] (१) बेसुध। बेख़बर। (२) असावधान। बेपरवाह।

गाब–संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़। इस के फल से एक प्रकार का चिपचिपा रस निकलता है जो नाव के पेंदे में लगाया जाता और जाल में माँझा देने के काम में आता है।

गाबलीन–संज्ञा स्त्री० [अं० केबुल-लेड] एक औज़ार जिससे जहाज़ पर पाल चढ़ाया जाता है। सिंजालपारी। (इसमें चरख पर चढ़ी हुई एक मोटी रस्सी होती है जो झटके से ऊपर चढ़ती है।)

गाभ–संज्ञा पुं० [सं० गर्भ, पा० गब्भ] (१) पशुओं का गर्भ।

मुहा०—गाभ डालना = (१) गर्भ गिराना। गर्भ फेंकना। बच्चा डालना (२) अत्यंत भयभीत होना।

(२) दे० "गाभा"। (३) बरतन का साँचा जिस पर गोबरी की तह न चढ़ाई गई हो।

गाभा–संज्ञा पुं० [सं० गर्भ, प्रा० गब्भ] [वि० गाभिन] (१) नया निकलता हुआ मुँह बँधा पत्ता जो नरम और हलके रंग का होता है। नया कल्ला। कोंपल। उ०—ऐपन की ओप इंदु कुंदन की आभा चंपा केतकी को गाभा जीत जोतिन सों जटियत।—देव। (२) केले आदि के डंठल के भीतर का भाग। पेड़ के बीच का हीर। उ०—(क) चंदन गाभ की भुजा सँवारी। जनों सो बेल कमल पौनारी।—जायसी।—(ख) आय जुरी भौंरन की पाँती। चंदन गाभ बास की मांती।—जायसी। (३) लिहाफ़ रजाई आदि के भीतर की निकाली हुई पुरानी रुई। गुदड़। (४) भरतवालों

के सांचे के भीतर का भाग। (५) कच्चा अनाज। खड़ी खेती।

गाभिन-वि० स्त्री० दे० "गाभिनी"।

गाभिनी-वि० स्त्री० [सं० गर्भिणी, पा० गब्भिणी] जिसके पेट में बच्चा हो। गर्भिणी। (इस शब्द का प्रयोग चौपायों के लिये अधिक होता है, मनुष्य के लिये कम।)

गाम-संज्ञा पुं० [सं० ग्राम, पा० गाम] गाँव।

गामचा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] घोड़े के पैर का वह भाग जो सुम और टखने के बीच में होता है। यह चार अंगुल के लगभग होता है।

गामत-संज्ञा स्त्री० [सं० गमन] निकास। (जहाज़)

मुहा०—गामत होना = पानी का टपकना।

गामिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो ९६ हाथ लंबी, १२ हाथ चौड़ी और ९ हाथ ऊँची होती और समुद्रों में चलती थी। ऐसी नाव पर यात्रा करना अशुभ और दुखःदायी समझा जाता था।

गामी-वि० [सं० गामिन्] [स्त्री० गामिनी] (१) चलनेवाला। चालवाला। जैसे, गजगामिनी, हंसगामी, रथगामी। उ०—कठिन भूमि कोमल पदगामी। कौन हेतु वन विचरहु स्वामी।—तुलसी। (२) गमन करनेवाला। संभोग करनेवाला। रमण करनेवाला। जैसे, पर-स्त्री-गामी, वेश्या-गामी, इत्यादि।

गामुक-वि० [सं०] जानेवाला।

गायंतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमालय पर कोई स्थान जिस का उल्लेख महाभारत के उद्योग पर्व में है।

गाय-संज्ञा स्त्री० [सं० गो] (१) सींगवाला एक, मादा चौपाया जिसके नर को साँड़ वा बैल कहते हैं। गाय बहुत प्राचीन-काल से दूध के लिये पाली जाती है। भारतवासियों को यह अत्यंत प्रिय और उपयोगी है। इसके दूध और घी से अनेक प्रकार की खाने की चीज़ें बनाई जाती हैं। गाय बहुत सीधी होती है, बच्चा भी उसके पास जाय तो नहीं बोलती।

मुहा०—गाय की तरह काँपना = (१) बहुत डरना। थर थर काँपना। थर्राना। गाय का बछिया तले और बछिया का गाय तले करना = हेरी फेरी करना। इधर उधर करना। (२) काम निकालने के लिये कुछ का कुछ प्रकट करना।

(२) बहुत सीधा सादा मनुष्य। दीन मनुष्य। उ०—वह बेचारा तो गाय है किसी से नहीं बोलता।

गायक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गायकी] गानेवाला। गवैया।

गायकवाड़-संज्ञा पुं० [मराठी] बरौदा के महाराजाओं की उपाधि।

गायगोठ-संज्ञा स्त्री० [हिं० गाय + गोठ] गायों के रहने का बाड़ा। गोशाला।

ग़ायत-वि० [अ०] बहुत अधिक। हद से ज़्यादा। अत्यंत। उ०—वह ग़ायत दरजे का पाजी है।

गायताल-संज्ञा पुं० [हिं० गाय + तल] (१) बैलों में निकृष्ट। निकम्मा चौपाया। (२) निकम्मी और रद्दी चीज़। गई गुज़री चीज़।

वि० निकम्मा। रद्दी।

यौ०—गायताल खाता वा गैतल खाता = बट्टा खाता। गई बीती रकम का लेखा।

मुहा०—गायताल लिखना = बट्टे खाते डालना। गया गुज़रा समझना। उ०—टूटे मणि मालै निर्गुण गायताल लिखै पोथिन ही अंक मन कलह विचारही।—गुमान। गायताल खाते लिखना वा डालना = बट्टे खाते में डालना। गया गुज़रा समझना। गायताल खाते में जाना = बट्टे खाते में जाना। हज़म होना। हड़प होना। गया गुज़रा होना। उ०—इतना रुपया जो हमने तुम्हें दिया सब गायताल खाते में गया।

गायत्र-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गायत्री] गायत्री छंद।

गायत्री-संज्ञा पुं० [सं० गायत्रिन्] (१) खैर का पेड़। (२) उद्गारता।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वैदिक छंद का नाम। यह छंद तीन चरणों का होता है और प्रत्येक चरण में आठ आठ अक्षर होते हैं। आर्षी, दैवी, आसुरी, प्राजापत्या, याजुषी, साम्नी, आर्ची और ब्राह्मी, इसके आठ भेद हैं जिनमें क्रमशः २४, १, १५, ८, ६, १२, १८ और ३६ वर्ण होते हैं। प्रत्येक भेद के पिपीलिका, मध्या, यवमध्या, निचृत्, भूरिक्, विराट और स्वराट आदि अनेक भेद होते हैं। (२) एक पवित्र मंत्र का नाम जिसे सावित्री भी कहते हैं। हिंदू धर्म में यह मंत्र बड़े महत्त्व का माना जाता है। द्विजों में यज्ञोपवीत के समय वेदारंभ संस्कार करते हुए आचार्य्य इस मंत्र का उपदेश ब्रह्मचारी को करता है। इस मंत्र का देवता सविता और ऋषि विश्वामित्र हैं। मनु का कथन है कि प्रजापति ने अकार, उकार और मकार वर्णों, भूः, भुवः और स्वः तीन व्याहृतियों तथा सावित्री मंत्र के तीनों पादों को ऋक्, यजुः और सामवेद से यथाक्रम निकाला है। इस सावित्री मंत्र के भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न अर्थ किए हैं और ब्राह्मणों, उपनिषदों से लेकर पुराणों और तंत्रों तक में इसके महत्त्व का वर्णन है। सावित्री मंत्र यह है—तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। (३) खैर। (४) दुर्गा। (५) गंगा। (६) छ अक्षरों की एक वर्णवृत्ति। तनुमध्या, शशिवदना आदि इसके अनेक भेद हैं।

गायन-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गायिनी] (१) गानेवाला। गवैया। गायक। (२) गाने का व्यवसाय करनेवाला। (मनु ने गायन के अन्न भक्षण का निषेध किया है।)

(३) गान। गाना। (४) कार्त्तिकेय।

गायब–वि० [अ०] लुप्त। अंतर्धान। लापता।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—गायब गुल्ला = ऐसा लुप्त कि फिर पता न लगे।

मुहा०—गायब करना = चुरा लेना। उड़ा लेना। उ०—वह देखते ही देखते चीज़ गायब कर लेता है। गायब होना = चोरी जाना।

संज्ञा पुं० [अ०] शतरंज खेलने का एक प्रकार जिसमें खेलनेवाले शतरंज के बिसात से परोक्ष में बैठ कर खेलते हैं। इस खेल में बिसात या तो किसी कोठरी में अथवा अन्यत्र आड़ में बिछा रहता है अथवा खेलाड़ी बिसात की ओर पीठ करके बैठते हैं और दूसरे आदमी उनके आज्ञानुसार मुहरों को चलते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।

गायबाना–क्रि० अ० [अ०] (१) गुप्त रीति से। (२) पीठ पीछे। अनुपस्थिति में।

गायबगला–संज्ञा पुं० [हिं० गाय + बगला] एक प्रकार का बगला जो धान के खेतों में होता है। यह पशुओं के झुंड के साथ रहता है और उनके कीड़ों को खाता है। इसे सुरखिया बगला भी कहते हैं।

गायरोन–संज्ञा पुं० [सं० गोरोचन] गोरोचन।

गायिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गानेवाली स्त्री। (२) एक मात्रिक छंद जिसके पादों में क्रमशः १२ + १८ और १२ + २० मात्राएँ होती हैं और प्रत्येक चरण के अंत में गुरु तथा बीस बीस मात्राओं के पीछे एक जगण होता है। बीस मात्राओं के पीछे यदि चार लघु आ जांय तो भी दोष नहीं माना जाता है। उ०—आदौ बारा मत्ता दूजै द्वै नौ सजाय मोद लहो। तीजै भानू कीजै चौथे बीसे जु गायिनी सुकवि कहो।

गार†–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाली] गाली। उ०—बिन औसर न सुहाय तन चंदन लीपै गार। औसर की नीकी लगै मीता सौ सौ गार।—रसनिधि।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) गहरा गड्ढा। (२) गुफा। कंदरा।

ग़ारत–वि० [अ०] नष्ट। बरबाद। मटियामेट। ध्वस्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गारद–संज्ञा स्त्री० [अं० गार्ड] (१) सिपाहियों का झुंड जो एक अफ़सर के मातहत हो। (२) सिपाहियों का झुंड जो किसी व्यक्ति वा वस्तु की रक्षा के लिये अथवा किसी असामी को भागने से रोकने के लिये नियत हो। पहरा। चौकी। उ०—जब अँधेरा हुआ तब हम लोगों की निगरानी के लिये जो गारद थी वह डबल कर दी गई।—द्विवेदी।

मुहा०—गारद बैठना = पहरा बैठना। हिफ़ाज़त वा निगरानी के लिये सिपाही नियत होना। गारद बैठाना = पहरा बैठाना। चौकी बैठाना। हिफ़ाज़त वा निगरानी के लिये सिपाही नियत करना। गारद में करना = पहरे में करना। हवालात में बंद करना। हाजत् में करना। गारद में डालना वा छोड़ना = हवालात देना। हाजत में करना। पहरे में करना। गारद में देना = हवालात में बंद करना। गारद में रखना = पहरे में रखना। हवालात में रखना। नज़रबंद रखना।

गारना–क्रि० स० [सं० गालन = निचोड़ना] (१) निचोड़ना। दबा कर पानी वा रस निकालना। उ०—गीले कपड़े उसने देह से उतारे, उनको भली भांति गारा, देह को पोंछा, पीछे उन्हीं कपड़ों को पहन लिया।—अयोध्या। (२) पानी के साथ घिसना जिसमें उसका अंश पानी में मिले। जैसे, चंदन गारना। उ०—बिन औसर न सुहाय तन, चंदन लीपै गार। औसर की नीकी लगै मीता सौ सौ गार।—रसनिधि। *(३) निकालना। त्यागना। दूर करना। उ०—मार दई अरविंदन की तऊ मानत नाहिं न औगुन गारे। गारी दई पछितानि भरी अब लाज गहो कछु नंददुलारे।

*†–क्रि० स० [सं० गल] (१) गलाना। घुलाना।

मुहा०—तन वा शरीर गारना = शरीर गलाना। शरीर को कष्ट देना। तप करना। उ०—व्रज युवतिन मन हरयो कन्हाई। रास रंग रस मन रुचि आन्यो निसि बन नारि बुलाई। तब तन गारि बहुत श्रम कीन्हों सो फल पूरन दैन। बेनुनाद रस बिवस कराई सुनि धुनि कीनो गौन।—सूर।

(२) नष्ट करना। खोना। बरबाद करना। उ०—आछो गात अकारथ गारयो। करी न भक्ति श्यामसुंदर सों जन्म जुआ ज्यों हारयो।—सूर।

गारभेली–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का जंगली फालसा जो उत्तर और पूर्व भारत तथा हिमालय की तराई में चार हज़ार फ़ीट की ऊँचाई तक होता है। इसका पेड़ बहुत छोटा होता है और इसकी छाल भूरे हरे रंग की होती है। इसकी डालियों के रेशे से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। यह कातिक अगहन में फूलता और पूस से बैसाख तक फलता है। फल देहातियों के खाने के काम आता है।

गारा–संज्ञा पुं० [हिं० गारना] मिट्टी अथवा चूना सुर्खी आदि को पानी में सान कर बनाया हुआ लसदार लेप जिस से ईंटों की जोड़ाई होती है।

यौ०—चूने गारे का काम = पलस्तर का काम। गच का काम।

संज्ञा पुं० [?] एक संकीर्ण जाति का राग जो दोपहर को गाया जाता है।

संज्ञा पुं० [देश०] वह नीची भूमि जिसमें पानी बहुत दिन न टिके।

गारा कान्हड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] एक संपूर्ण जाति का राग जो संध्या के उपरांत गाया जाता है।

गारी*–संज्ञा स्त्री० [सं० गालि] (१) गाली। दुर्वचन। उ०—नारी गारी बिनु नहिं बोले पूत करै कलकानी। घर में आदर कादर कोसों खीझत रैन बिहानी।—सूर (२) कलंक-जनक आरोप।

मुहा०—गारी आना, पड़ना, लगना = कलंक लगना। लांछन लगना। दाग लगना। बदनामी होना। उ०—लोचन लालच भारी। इनके लए लाज या तन की सबै श्याम सों हारी। बरजत मात पिता पति बांधव अरु आवै कुल गारी। तदपि रहत न नंदनँदन बिनु कठिन प्रकृति हठ धारी।—सूर। गारी लाना = कलंकित करना। दाग लगाना।

(३) एक गीत जो विवाह आदि में स्त्रियां भोजन के समय गाती हैं। उ०—(क) नारीवृंद सुजेवँत जानी। लागी देन गारि मृदुबानी।—तुलसी। (ख) जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—देना।—गाना।

विशेष—दे० "गाली"।

गारुड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिस मंत्र का देवता गरुड़ हो। साँप के विष उतारने का मंत्र। उ०—आवति लहरि मदन विरहा की को हरि वेगि हँकारै। सूरदास गिरिधर जो आवहिं हम सिर गारुड डारै।—सूर। (२) सेना की एक ब्यूह रचना जिस में सेना गरुड़ के आकार की बनाते हैं। (३) मरकत मणि। पन्ना। (४) सुवर्ण। सोना। (५) एक अस्त्र का नाम। (६) एक पुराण। गरुड़ पुराण।

वि० (१) गरुड़ संबंधी। गरुड़ का।

गारुडि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आठ प्रकार के तालों में से एक। (संगीत)। (२) गारुड़ी।

गारुडिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप का विष झाड़नेवाला। गारुडी। (२) मंत्र से साँप पकड़नेवाला। सँपेरा।

गारुड़ी–संज्ञा पुं० [सं० गारुडिन्] मंत्र से साँप के विष को उतारनेवाला। साँप झाड़नेवाला। उ०—(क) चले सब गारुड़ी पछिताइ। नेकहू नहिं मंत्र लागत समुझि काहु न जाइ।—सूर। (ख) डसी री माई श्याम भुअंगम कारे। चितवनि फिरि मुसुकानि महा विष लागत ज्यों शर डारे। तंत्र न फुरै मंत्र नहिं लागै चलैं गुणी-गण हारे। प्रेम प्रीति की व्यथा तप्त तनु सो मोहिं डारत मारे। आनहु वेगि गारुड़ी गोविंद जो यहि विषहि उतारै।—सूर। (ग) तव स्वरूप गारुडि रघुनायक। मोहिं जिआयेहु जन-सुखदायक।—तुलसी।

गारुत्मत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मरकत। पन्ना। (२) गरुड़ जी का अस्त्र।

गारो–संज्ञा पुं० [सं० गर्व] (१) गर्व। घमंड। अहंकार। अभिमान। उ०—(क) जेहि घर कंता ते सुखी, तेहि गारो तेहि गर्व।—जायसी। (ख) सीतापति सेवक तोहि देखन को आयो। काके बल बैर तैं जो राम तें बढ़ायो।—............देखत कपि बाहु दंड तन प्रस्वेद छूटे। जै जै रघुनाथ नाथ कह बंध टूटे। देखत बल दूरि करयो मेघनाद गारो। आपुनि भयो सकुचि सूर बंधन ते न्यारो।—सूर। (ग) सुनि खग कहत अंब औंगी रहि समुझि प्रेम पथ न्यारो। गए ते प्रभु पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम गुन गारो।—तुलसी। (२) मान। प्रतिष्ठा। उ०—कान्ह बलि जाउँ ऐसी आरि न कीजै। जोइ जोइ भावै सोइ सोइ लीजै। ....जो मेरे लाल खिझावै। सो अपनो कियो फल पावै। तेहि दैहौं देश निकारो। ताको ब्रज नाहिन गारो।—सूर।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक पहाड़ी का नाम जो आसाम के दक्षिण पश्चिम में है। (२) एक जंगली जाति जो गारो पहाड़ में रहती है।

गार्गी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गर्ग गोत्र में उत्पन्न एक प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी स्त्री। इसकी कथा वृहदारण्यक उपनिषद में है। (२) दुर्गा। (३) याज्ञवल्क्य ऋषि की एक स्त्री का नाम।

गार्ग्य–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गार्गी] (१) गर्ग गोत्र में उत्पन्न पुरुष। (२) एक प्राचीन वैयाकरण जिसके मत का उल्लेख यास्क और पाणिनि ने किया है। निरुक्त टीकाकार दुर्गासिंह के अनुसार सामवेद के पदपाठ की रचना इन्हीं ने की थी। इनकी बनाई एक स्मृति भी है।

गार्ड–संज्ञा पुं० [अं०] (१) रक्षक। पहरा देनेवाला मनुष्य।

यौ०—बाडी-गार्ड।

(२) रेल का वह प्रधान उत्तरदाता कर्मचारी जो ट्रेन की रक्षा के लिये पीछे ब्रेक में रहा करता है। इसके आज्ञानुसार इंजन का ड्राइवर गाड़ी रोकता और चलाता है। (३) निरीक्षक। निगरानी रखनेवाला मनुष्य। जैसे, इमतिहान का गार्ड।

गार्डेन–संज्ञा पुं० [अं०] बाग। बगीचा।

यौ०—कंपनी-गार्डेन। गार्डेन-पार्टी।

गार्डेन-पार्टी–संज्ञा स्त्री० [अं०] वह भोज जो नगर के बाहर किसी बाग बगीचे में दिया जाय।

गार्हपत्याग्नि–संज्ञा स्त्री० [सं०] छः प्रकार की अग्नियों में पहली और प्रधान अग्नि। यज्ञों में पात्रतपन आदि कर्म इसी अग्नि में किए जाते थे। श्रौतसूत्र के अनुसार अग्निहोत्र ग्रहण करनेवाले के लिये इस अग्नि का रखना अत्यंतावश्यक है। साधारण भोजन पकाने से लेकर संस्कार तक सभी कृत्य इसी अग्नि में किए जाते हैं। प्रत्येक गृहस्थ को शास्त्रानुसार इस अग्नि की रक्षा करनी चाहिए।

गार्हमेध–संज्ञा पुं० [सं०] पंचयज्ञ आदि गृहस्थों के कर्तव्य कर्म।

गार्हस्थ्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गृहस्थाश्रम। (२) गृहस्थ के मुख्य कृत्य। पंचमहायज्ञ।

गाल–संज्ञा पुं० [सं० गंड, गल्ल] (१) मुँह के दोनों ओर ठुड्डी और कनपटी के बीच का कोमल भाग जो आँखों के नीचे होता है। गंड। कपोल। उ०—लाल गुलाल सो लीनी मुठी भरि बाल के गाल की ओर चलाई।—देव।

मुहा०—गाल फुलाना = (१) गर्वसूचक आकृति बनाना। अभिमान प्रकट करना। उ०—सो भलु मनु न खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई।—तुलसी। (२) रूठ कर न बोलना। रूठना। रिसाना। उ०—दोउ एक सँग न होइ भुआलू। हँसब ठठाइ फुलाउब गालू।—तुलसी। गाल बजाना = (१) डींग मारना। बढ़ बढ़ कर बात करना। उ०—(क) वृथा मरहु जनि गाल बजाई। मनमोदकन कि भूख बुझाई?—तुलसी। (ख) बलवान है स्वान गली अपनी तोहि लाज न गाल बजावत सोहे।—तुलसी। (२) व्यर्थ बकवाद करना। मिथ्या प्रलाप करना। उ०—कबीर वर्णहिँ फेरि के श्रवरण भई छिनार। बैठी आपु अतीत ह्वै कियो अनंत भर्तार। कबीर बैठी शेष ह्वै बिना रूप की राँड। गाल बजावै नेति कहि कियो भतारहि भाँड।—कबीर। गाल में जाना = मुँह में पड़ना। काल के गाल में जाना = मृत्यु के मुख में पड़ना। मरना। गाल में भरना = खाने के लिये मुँह में रखना। गाल मारना = (१) डींग हाँकना। बढ़ बढ़ कर बात करना। सीटना। उ०—मूढ़ मृषा जनि मारसि गाला। राम बैर होइहै अस हाला।—तुलसी। (२) व्यर्थ बकवाद करना। बड़बड़ाना। मिथ्या जल्पना। उ०—क्यों न मारै गाल बैठो काल डाढ़न बीच।—तुलसी।

(२) मुँहजोरी। बड़बड़ाने का स्वभाव। बकवाद करने की लत। उ०—हँस कह रानि गाल बड़ तोरे। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे।—तुलसी।

मुहा०—गाल करना = (१) बोलने में शंका संकोच न करना। मुँहज़ोरी करना। मुँह से अंडबंड निकालना। उ०—कत सिख देइ हमहिं कोउ भाई। गालु करब केहि कर बल पाई।—तुलसी। (२) बढ़ बढ़ कर बात करना। डींग मारना। उ०—गोकुल को कुल देवता श्रीगिरिधर लाल।........ ...वेगि करो मेरो कह्यो पकवान रसाल। वह मघवा बलि लेतु है नित करि करि गाल। गिरि गोवर्द्धन पूजिये जीवन गोपाल। जाके दीन्हे बाढ़ही गैया गण जाल।—सूर।

(३) मध्य। बीच। उ०—वे पर्वत के गाल में उड़ते दीखते हैं।—वायुसागर। (४) वह अन्न जो एक बार मुहँ में डाला जाय। फंका। ग्रास। उ०—एक गाल मार लें तो चलें।

मुहा०—गाल मारना = ग्रास मुख में रखना। कौर मुहँ में डालना।

(५) वह मुट्ठी भर अन्न जो चक्की में पीसने के लिये एक बार डाला जाता है। झोंक। (६) मुँह। जैसे, काल के गाल में जाना।

संज्ञा पुं० [देश०] जाना। तमाकू की एक जाति।

गालगूल*†–संज्ञा पुं० [हिं० गाल + अनु०] व्यर्थ बात। गपशप। अनाप शनाप। अंडबंड बात। उ०—हरहि जनि जन्म जाय गालगूल गपत। कर्मकाल गुन सुभाव सबके सीस तपत।—तुलसी।

गालबंद–संज्ञा पुं० [हिं० गाल + बंद] एक प्रकार का बंधन जिसमें चमड़े के तस्मे को किसी कांटी में फँसा कर अँटकाते हैं। (जहाज़ी)।

क्रि० प्र०—बाँधना।

गालमसूरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पकवान वा मिठाई। उ०—अरु तैसहि गालमसूरी। जेहि खातहि मुख दुख दूरी।—सूर।

गालव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। महाभारत के अनुसार ये विश्वामित्रजी के अंतेवासी थे। विद्या समाप्त कर समावर्तन के समय इन्होंने अपने गुरु विश्वामित्रजी से यथेच्छ दक्षिणा माँगने के लिये अनुरोध किया। विश्वामित्रजी ने इनके हठ से चिढ़ कर आठ सैा श्यामकर्ण घोड़े माँगे। गालवजी ने राजा ययाति के पास जाकर उनसे आठ सैा श्यामकर्ण घोड़ों के लिये याचना की पर ययाति के यहाँ भी आठ सैा श्यामकर्ण घोड़े नहीं थे अतः ययाति ने इन्हें अपनी कन्या जिसका नाम माधवी था देकर कहा "गालवजी आप इस कन्या को ले जाइये और जो दो सैा श्यामकर्ण घोड़े दे उसे इससे एक पुत्र उत्पन्न कर लेने दीजिये। इस प्रकार आप आठ सैा घोड़े लेकर अपने गुरु को गुरु दक्षिणा दे दीजिये।" गालवजी माधवी को लेकर हर्य्यश्व रजा के पास गए और हर्य्यश्व ने दो सैा श्यामकर्ण घोड़े देकर उससे एक संतान उत्पन्न किया। इसी तरह वे उसे दिवोदास और उशीनर के पास ले गए और उन लोगों ने भी दो दो सैा घोड़े देकर एक एक पुत्र उत्पन्न किया। अब गालवजी को कोई राजा ऐसा न मिला जो उन्हें शेष दो सैा घोड़े देकर माधवी से एक और पुत्र उत्पन्न करे। अंत को गालवजी छ सैा घोड़े और माधवी को लेकर विश्वामित्र जी के आश्रम पर लैाट आये और उन्होंने उनसे सब हाल कहा। विश्वामित्रजी ने उन छ सैा घोड़ों को ले लिया और उस कन्या से एक पुत्र उत्पन्न कर गालवजी को गुरु दक्षिणा के ऋण से मुक्त किया। हरिवंश में इन्हें विश्वामित्रजी का पुत्र लिखा है। (२) एक प्रसिद्ध वैयाकरण जिन का मत पाणिनिजी ने अष्टाध्यायी में उद्धृत किया है। (३) लोध का पेड़। (४) तेंदू का पेड़। (५) एक स्मृतिकार।

गालवि–संज्ञा पुं० [सं०] गालव के पुत्र प्राशंगवत्। इन्होंने कुणि-गर्ग की एक वृद्धा कन्या से विवाह किया था।

गाला–संज्ञा पुं० [हिं० गाल = ग्रास] (१) धुनी हुई रुई का गोला जो चरखे में कातने के लिये बनाया जाता है। पूनी। (२) वह रूई जो कपास के डोडे के फटने पर उसमें से निकलती है। (पंजाब)।

मुहा०—रूई का गाला = बहुत उज्ज्वल। सफ़ेद। धौला। गाला सा = बहुत उजला। सफ़ेद। धौला।

संज्ञा पुं० † [हिं० गाल] (१) बड़बड़ाने की लत। अंड बंड बकने का स्वभाव। मुहज़ोरी। कल्ले दराज़ी। † (२) ग्रास। कौर।

गालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा।

ग़ालिब–वि० [अ०] विजयी। जीतनेवाला। बढ़ जानेवाला। श्रेष्ठ। उ०—गुल पर गालिब कमल है कमलन पै गुलाब।—पद्माकर।

मुहा०—किसी पर ग़ालिब आना = जीतना। बढ़ जाना।

गालिम*–वि० [अ० ग़ालिब] प्रबल। दृढ़। प्रचंड। बलवान। विजयी। उ०—गेरि कै ग्रस्यो है गजराज गोड़ गोथ्यो ग्राह गालिम गंभीर नीर चाह्यो सो गिरायो है।—रघुराज।

गाली–संज्ञा स्त्री० [सं० गालि] (१) दुर्वचन। निंदा वा कलंकसूचक वाक्य। फूहड़ बात।

यौ०—गाली गलौज। गाली गुफ़्ता।

क्रि० प्र०—देना।—बकना।—सुनना।

मुहा०—गाली खाना = दुर्वचन सुनना। गाली सहना। गाली देना = दुर्वचन कहना। गालियों पर उतरना = गालियाँ देने लगना। गालियाँ बकने पर उतारू होना। गालियों पर मुँह खोलना = गाली बकना आरंभ करना।

(२) कलंकसूचक आरोप। उ०—ऐसा मत कहो, तुम्हीं को गाली पड़ती है।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

गाली गलौज–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाली + अनु० गलौज] परस्पर गालि-प्रदान। तू तू मैं मैं। दुर्वचन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गाली गुफ़्ता–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाली + फ़ा० गुफ़्तार = कहना] (१) परस्पर गाली प्रदान। तू तू मैं मैं। गालियों की लड़ाई। (२) गाली। दुर्वचन।

क्रि० प्र०—करना।—बकना।—होना।—देना।

गालना, गाल्हना,*†–क्रि० अ० [सं० गल्प = बात] बात करना। बोलना। उ०—अठपहरे अरस मैं, ऊभोई आहे। दादू पसे तिनके आला गाल्हाये।—दादू।

गालोड्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमलगट्टा। (२) एक प्रकार का अनाज।

गाव–संज्ञा पुं० [सं० गो। फ़ा० गाव] गाय। बैल।

यौ०—गावकुशी। गावज़बान। गावदुम। गावतकिया। गावखाना। गावपछाड़। नीलगाव।

गावकुशी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गोघात। गोबध।

गावकुस–संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा = गला + कुश = फाल] लगाम। (डिं०)

गावकोहान–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह घोड़ा जिसकी पीठ पर बैल की तरह कूबड़ निकला हो। (ऐसा घोड़ा दोषी माना जाता है)।

गावखाना–संज्ञा पुं० [फ़ा०] गोशाला। खरक। घारी।

गावखुर्द–वि० [फ़ा०] (१) गुम। हड़प। ग़ायब। लापता। (२) नष्ट भ्रष्ट। बरबाद।

मुहा०—गावखुर्द होना = (१) बरबाद जाना। नष्ट भ्रष्ट हो जाना। चौपट होना। (२) ग़ायब होना। लापता होना। उड़ जाना। उ०—देखते देखते किताब यहाँ से गावखुर्द हो गई।

गावज़बान–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक बूटी जो फ़ारस देश के गीलान प्रदेश में होती है। इसकी पत्तियाँ मोटी, खुर्दरी और हरे रंग की होती हैं जिन पर बैल की जीभ की तरह छोटे छोटे सफ़ेद रंग के उभड़े हुए दाने होते हैं। इसके फूल लाल रंग के छोटे छोटे होते हैं। यह पत्ती हकीमों की दवा में काम आती है। प्रकृति इसकी मातदिल होती है और यह ज्वर, खाँसी आदि में दी जाती है। मख़ज़नुलअदविया में लिखा है कि इस देश में इसे संखाहुली कहते हैं और यह पटने के पास होती है। पर संखाहुली की पत्ती गावज़बान की पत्ती से नहीं मिलती।

गावज़ोरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) बलप्रदर्शन। सब से लड़ने की इच्छा। (२) हाथापाई। भिड़ंत।

गावड–संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रीवा] गला। गर्दन। [डिं०]

क्रि० प्र०—करना।

गावतकिया—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बड़ा तकिया जिससे कमर लगा कर लोग फ़र्श पर बैठते हैं। मसनद।

गावदी–वि० [हिं० गाय + सं० धी] अबोध। नासमझ। बेवकूफ़। कूढ़मग्ज़। कुंठित बुद्धि का। जड़।

गावदुम–वि० [फ़ा०] (१) जो ऊपर से बैल की पूँछ की तरह पतला होता आया हो। जिसका घेरा एक ओर मोटा और दूसरी ओर बराबर पतला होता गया हो। (२) चढ़ाव-उतार। ढालुवाँ।

गावदुमा–वि० दे० "गावदुम"।

गावपछाड़–संज्ञा स्त्री० [हिं० गाव = गरदन + पछाड़] कुश्ती का एक दाँव जिसमें प्रतिद्वंद्वी की गर्दन को पकड़ कर पटकते हैं।

गावल–संज्ञा पुं० [हिं० गौं = घात] दल्लाल।

गावल्गणि–संज्ञा पुं० [सं०] संजय का नाम जो धृतराष्ट्र का मंत्री और सारथी था।

गावली–संज्ञा स्त्री० [हिं० गौं = घात] दल्लाली। (दल्लाल)।

गावसुम्मा–संज्ञा पुं० [हिं० गाव + सुम = खुर] वह घोड़ा जिसका

सुम या खुर फटा हो। (इस प्रकार के घोड़े को रखना लोग अच्छा नहीं समझते।)

गावी-संज्ञा स्त्री० [?] ऊपर का पाल। (जहाज़ी)। इसके कई भेद हैं। अगले को तिर्कट, बिचले को बड़ा और पिछले को किलमी कहते हैं। इसके ऊपर का पाल साबर, उससे ऊपर का ताबार और ताबार के ऊपर का सवाई कहलाता है।

गास-संज्ञा पुं० [सं० ग्रास] संकट। दुःख। आपत्ति। उ०—बन बन फिरत चरावत धेनु। श्याम हलधर संग है बहु गोप बालक सेनु।············निदरि चले गोपाल आगे बकासुर के पास। सखा सब मिलि कहन लागे तुमहिं जय की आस। अजहुँ नाहिं डरात मोहन बचे कितने गास। तब कह्यो हरि चलहु सब मिलि मारि करहु विनास।—सूर।

गासिया-संज्ञा पुं० [अ० गाशिया] ज़ीनपोश। उ०—पग में पुरट पैजन परे हैकल सुहीरन के जड़े। चामर सड़ाके अति प्रभा के गासिया मखमल मड़े।—रघुराज।

गाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गहन। दुर्गम। (२) अवगाहन करनेवाला मनुष्य।

*संज्ञा पुं० [सं० ग्राह] (१) ग्राहक। गाहक। उ०—खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा।—तुलसी। (२) पकड़। घात। गौं। उ०—पाय सों पाय को नेउर टारि विचारि रची लखि वे किधो गाहैं।—बेनी। (३) ग्राह। मगर।

गाहक-संज्ञा पुं० [सं०] अवगाह करनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० ग्राहक, प्रा० गाहक] (१) लेनेवाला। ख़रीदनेवाला। ख़रीदार। मोल लेनेवाला। उ०—(क) धन्य नर नारि जे निहारि बिनु गाहक हूँ आपने आपने मन मोल बिनु बीके हैं।—तुलसी। (ख) कर लै सूँघि सराहि कै सबै रहे गहि मौन। गंधी अंध ! गुलाब को गवँई गाहक कौन ?।—बिहारी।

मुहा०—जी वा प्राण का गाहक = प्राण लेनेवाला। मार डालने की ताक में रहनेवाला।

(२) क़दर करनेवाला। चाहनेवाला। ढूँढ़नेवाला। इच्छुक। अभिलाषी। प्रेमी। उ०—(क) उद्धव चलो विदुर के जाइए। दुर्योधन के कौन काज जहँ आदर भाव न पाइए।·········तुम तो तीन लोक के ठाकुर तुम से कहा दुराइए। हम तो प्रेम प्रीति के गाहक भाजी साग चखाइए।—सूर। (ख) हो मन राम नाम को गाहक। चौरासी लख जिया जोनि में भटकत फिरत अनाहक।—तुलसी। (ग) गुन ना हेरानो गुन गाहक हेरानो है।

गाहकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गाहक] (१) बिक्री। (२) गाहक।

मुहा०—गाहकी पटना = सौदा पटना।

गाहकताई*-संज्ञा स्त्री० [सं० ग्राहकता] क़दरदानी। चाह। उ०—कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवन सुत मोहिं सुनाई।—तुलसी।

गाहन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गाहित] गोता लगाने की क्रिया। विलोड़न। स्नान।

गाहना-क्रि० स० [सं० अवगाहन] (१) डूब कर थाह लेना। अवगाहन करना। (२) मथना। विलोड़ना। हलचल डालना। क्षुब्ध करना। उ०—ब्रजराज तिनके और तौ ब्रजराज के परताप। जिन साह के दल गाहि के निज साहिबी करि थाप।—सूदन। (३) धान आदि के डंठल को दांते समय एक डंडे से उठा उठा कर गिराना जिसमें दाना नीचे झड़ जाय। ओहना। उ०—कहो तुम्हारो लागत काहे। कोटिक यतन कहौ जो ऊधो नाहिँ बहकिहैं वाहे। वाहे को अपने जी मेरी तू सत ले मन चाहे। यह भ्रम तो अबही मिटि जैहैं ज्यों पयार के गाहे। काशी के लोगन लै सिखयो जो समुझे या माहे। सूर श्याम बिहरत ब्रज भीतर जीजतु है मुख चाहे।—सूर। (४) जहाज़ के दरारों में सन आदि ठूस कर भरना। कालपट्टी करना। (जहाज़)। (५) खेत में दूर दूर जोताई करना।

गाहा-संज्ञा स्त्री० [सं० गाथा, प्रा० गाहा] (१) कथा। वर्णन। चरित्र। वृत्तांत। उ०—(क) करन चहौं रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोर, चरित अवगाहा।—तुलसी। (ख) मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहैं परस्पर हरि गुन गाहा।—तुलसी। (२) आर्य्या छंद का एक नाम। इसके चारों पदों में क्रमशः १२, १८, १२, और १५ मात्राएँ होती हैं। दे० "आर्य्या"। उ०—रामचंद्र पद पद्मं, वृंदारक वृंदाभिवंदनीयं। केशव मति भूतनया, लोचनं चंचरीकायते।

गाही-संज्ञा स्त्री० [हिं० गाहना] फल आदि गिनने का एक मान जो पाँच पाँच का होता है। पाँच वस्तुओं का समूह।

मुहा०—गाही के गाही = बहुत अधिक।

गाहू-संज्ञा स्त्री० [हिं० गाना] उपगीति छंद का नाम। दे० "उपगीति"।

गिँजना-क्रि० अ० [हिं० गींजना का अ० रूप] गींजा जाना। किसी चीज़ (विशेषतः कपड़े) का हाथ लगने या अधिक उलटे पुलटे जाने के कारण सिकुड़ जाना अथवा मैला या ख़राब हो जाना।

गिँजाई-संज्ञा स्त्री० [सं० गृंजन = विषाक्त मांस] एक प्रकार का कीड़ा जो बरसात में पैदा होता है। यह लगभग दो अंगुल से चार अंगुल तक लंबा होता है। कनखजूरे की भाँति इसके भी बहुत से पैर होते हैं। एक ही स्थान पर इसके ढेर के ढेर पड़े मिलते हैं। कभी कभी कोई कीड़ा एक दूसरे की पीठ पर सवार भी देखा जाता है, इससे इसे घोड़सवार भी कहते हैं। यदि कोई पशु धोखे से इसे खा जाय तो वह तुरंत मर जाता

है। ये कीड़े वर्षा के आरंभ में पैदा होते हैं और ऐसा कहा जाता है कि हथिया नक्षत्र के बरसने पर मर जाते हैं। ग्वालिन। घिनौरी। उ०—चित्रकेतु सुत गज वै जनमा। रानी सकल गिँजाई बन मा। पग तर पीसि गईं मरि जोईं। विष दै बदला लीन्हेनि सोई।—विश्राम।

संज्ञा स्त्री० [हिं० गींजना] गीँजने का भाव वा क्रिया।

गिँड़नी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का साग जिसकी पत्तियाँ दो दो अंगुल लंबी और जौ भर चौड़ी होती हैं। डंठल हरा होता है और उसकी गाठों पर सफ़ेद सफ़ेद फूलों के गुच्छे लगते हैं। फूल झड़ जाने पर छोटे छोटे बीज पड़ते हैं।

गिँडुरी—संज्ञा स्त्री० दे० "इँडुरी"।

गिंदर—संज्ञा पुं० [देश०] एक कीड़ा जो फ़सल को बहुत हानि पहुँचाता है।

गिँदौड़ा, गिँदौरा—संज्ञा पुं० [हिं० गेंद] बहुत मोटी रोटी के आकार में गला कर ढाली हुई चीनी। इसका व्यवहार प्रायः विवाह आदि शुभ कार्यों में बिरादरी में बाँटने के लिये होता है। उ०—पेठापाक जलेबी पेरा। गोंदपाग तिनगरी गिँदौरा।—सूर।

गिआन*†—संज्ञा पुं० दे० "ज्ञान"।

गिउ*—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] गला। गरदन। उ०—अब जो फाँद परा गिउ, तब रोए का होय?—जायसी।

गिचपिच—वि० [अनु०] जो साफ़ या क्रम से न हो। अस्पष्ट। एक में मिला जुला।

गिचपिचिया—संज्ञा स्त्री० दे० "कचपचिया"।

गिचिर पिचिर—वि० दे० "गिचपिच"।

गिजई—संज्ञा पुं० [देश०] सलमे के काम का एक प्रकार का तार।

गिजगिजा—वि० [अनु०] (१) ऐसा गीला और मुलायम जो अच्छा न मालूम हो, जैसे, कच्ची मोटी रोटी दाँत के नीचे गिजगिजी लगती है। (२) जो छूने में मांसल मालूम हो। उ०—पैर के नीचे कुछ गिजगिजा सा मालूम हुआ, देखा तो मरा साँप था।

गिज़ा—संज्ञा स्त्री० [अ०] भोजन। खाद्य वस्तु। ख़ोराक। वह जो खाया जाय।

गिटकिरी—संज्ञा स्त्री० दे० "गिट्टी"।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] तान लेने में विशेष प्रकार से स्वर का काँपना जो बहुत अच्छा समझा जाता है। (संगीत)।

क्रि० प्र०—निकालना।—लेना।

गिटकौरी [हिं० गिट्टी] कंकड़ी। पत्थर वा गेरू का गोल छोटा टुकड़ा।

गिटपिट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] निरर्थक शब्द।

मुहा०—गिटपिट करना = टूटी फूटी या साधारण अँगरेज़ी भाषा बोलना।

गिट्टक—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिट्टा] (१) चिलम के नीचे रखने का कंकर। गुगल।

संज्ञा पुं० [अनु०] गिटकिरी लेने में स्वर या तान का वह सब से छोटा भाग जो केवल एक कंप में निकलता है। दाना। (संगीत)।

गिट्टा—संज्ञा पुं० [सं० गिरिज, हिं० गेरू + टा (प्रत्य०)] चिलम का कंकड़। कंकड़।

गिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिट्टा] (१) गेरू वा पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े जो प्रायः सड़क नींव छत्त आदि पर बिछा कर कूटे जाते हैं। (२) मिट्टी के बरतन का टूटा हुआ छोटा टुकड़ा। (३) चिलम की गिट्टक। (४) बादले वा तागे की लपेटी हुई रील। फिरकी।

गिठुआ—संज्ञा पुं० [देश०] जुलाहे का करवा। अड्डा।

गिठुरा†—संज्ञा पुं० दे० "गेठुरा"।

गिड़गिड़ाना—क्रि० अ० [अनु०] आवश्यकता से अधिक विनीत और नम्र हो कर कोई बात या प्रार्थना करना।

गिड़गिड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गिड़गिड़ाना] (१) विनती। चिरौरी। (२) गिड़गिड़ाने का भाव।

गिड़राज—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहराज] सूर्य। [डिं०]

गिड्डा†—वि० [देश०] नाटा। ठेंगना।

गिद—पुं० संज्ञा [सं०] रथपालक देवता।

गिद्दा—संज्ञा पुं० [हिं० गीत] एक प्रकार का चलता गीत जिसे स्त्रियाँ गाती हैं। नकटा।

गिद्ध—संज्ञा पुं० [सं० गृध्र] (१) एक प्रकार का बड़ा मांसाहारी पक्षी जिसकी छोटी बड़ी कई जातियाँ होती हैं। सब से बड़ा गिद्ध प्रायः तीन फुट लंबा होता और प्रायः बकरियों, मुरगियों तथा दूसरी पालतू चिड़ियों को उठा ले जाता है। यह पक्षी प्रायः मरे हुए जीवों का मांस खाता है इसी से कवियों ने रणस्थल में गिद्धों का दृश्य प्रायः दिखाया है। इसकी आँखें बहुत तेज़ होती हैं और यह आकाश में बहुत ऊँचा उड़ सकता है। इसके शरीर का रंग मटमैला होता है और पैरों में उँगलियों तक पर होते हैं। इसका किसी मनुष्य के शरीर पर मँडराना या मकान पर बैठना बहुत अशुभ समझा जाता है। (२) एक प्रकार का बड़ा कनकौवा या पतंग। (३) छप्पय छंद का ५२ वाँ भेद।

गिद्धराज—संज्ञा पुं० [हिं० गिद्ध + राज] जटायु।

गिनगिनाना†—क्रि० अ० [अनु० गन गन = काँपना] (१) अधिक बल लगाते समय शरीर का काँपना। उ०—वह पत्थर पकड़ कर घंटों गिनगिनाता रहा पर पत्थर न हटा। (२) रोमांच होना। रोंगटे खड़े होना।

क्रि० स० [हिं० गिन्नी, घिरनी = चक्कर] पकड़ कर घुमाना

या चक्कर देना। झकझोरना। उ०—बिल्ली ने चूहे को गिनगिना डाला।

गिनती–संज्ञा स्त्री० [हिं० गिनना + ती (प्रत्य०)] (१) वस्तुओं के समूह से तथा एक दूसरे से अलग अलग करके उनकी संख्या निश्चित करने की क्रिया। गणना। शुमार। उ०—गिनती गनिबे तें रहे छत हू अछत समान।—बिहारी।

क्रि० प्र०—करना।—गिनना।

मुहा०—गिनती में आना या होना = किसी कोटि में समझा जाना। कुछ समझा जाना। कुछ महत्त्व का समझा जाना। उ०—जिन भूपन जग जीति बाँधि यम अपनी बाँह बसायो। तेऊ काल कलेऊ कीन्हें तू गिनती कब आयो।–तुलसी। गिनती कराना = किसी कोटि के अंतर्गत समझा जाना। उ०—वह विद्वानों में अपनी गिनती कराने के लिये मरा जाता है। गिनती गिनाने वा कराने के लिये = नाम मात्र के लिये। कहने सुनने भर को। उ०—गिनती गिनाने के लिये वे भी थोड़ी देर आकर बैठ गए थे। गिनती होना = किसी महत्त्व का समझा जाना। कुछ समझा जाना। उ०—वहाँ बड़े बड़ों का गुज़र नहीं तुम्हारी क्या गिनती है?

(२) संख्या। तादाद। उ०—ये आम गिनती में कितने होंगे?

मुहा०—गिनती के = बहुत थोड़े। संख्या में बहुत कम। उ०—वहाँ गिनती के आदमी आए थे।

(३) हाज़िरी। उपस्थिति की जांच जो प्रायः नाम बोल बोल कर की जाती है। (सिपाही)

मुहा०—गिनती पर जाना = हाज़िरी देने या लिखाने जाना।

(४) एक से सौ तक की अंकमाला। उ०—स्लेट पर गिनती लिख कर दिखाओ।

गिनना–क्रि० स० [सं० गणन] (१) वस्तुओं को समूह से तथा एक दूसरे से अलग अलग करके उनकी संख्या निश्चित करना। गणना करना। शुमार करना।

संयो० क्रि०—जाना।—डालना।—देना।—रखना।—लेना।

मुहा०—गिन गिन कर सुनाना या गालियां देना = बुरी से बुरी गालियां देना। बहुत अधिक गालियां देना। गिन गिन कर लगाना या मारना = ख़ूब मारना। ख़ूब पीटना। गिन गिन कर दिन काटना = बहुत कष्ट से समय बिताना। गिन गिन कर पैर रखना = बहुत धीरे धीरे और सावधानता से चलना। दिन गिनना = (१) आशा में समय बिताना। सुख की प्राप्ति वा दुःख की निवृत्ति के अवसर की ऊब ऊब कर प्रतीक्षा करना। उ०—दिन औधि के कौ लौं गिनौं सजनी अँगुरीन के पोरन छाले परे।—ठाकुर। (२) किसी प्रकार कालक्षेप करना।

(२) गणित करना। हिसाब लगाना। उ०—ज्योतिषी ने कुछ गिन गिना कर कह दिया है कि मुहूर्त्त अच्छा है। (३) कुछ महत्त्व का समझना। मान करना। प्रतिष्ठा करना। कुछ समझना। ख़ातिर में लाना। उ०—वहाँ तुम्हारे ऐसे को गिनता कौन है?

गिनवाना–क्रि० स० दे० "गिनाना"।

गिनाना–क्रि० स० [हिं० गिनना का प्रे०] गिनने का काम कराना।

गिनी–संज्ञा स्त्री० [अं०] सोने का सिक्का जिसका व्यवहार इंगलैंड में सन् १६६३ में आरंभ हुआ था और सन् १८१३ से जिसका बनना बंद हो गया। यह २१ शिलिंग (लगभग १२॥) रु० मूल्य का) की होती थी।

विशेष–(क) यह सिक्का पहले पहल अफ्रीका महाद्वीप के गिनी नामक देश से आए हुए सोने से बनाया गया था, इसी से इसका यह नाम पड़ा। (ख) भारत में प्रायः लोग आज कल के प्रचलित पाउंड या सावरेन को ही भूल से गिनी कहा करते हैं।

गिनी-गवट, गिनी ग्रास–संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की लंबी घास जो अफ्रीका के गिनी नामक देश में होती है। यह अब भारत में भी लगाई गई है और ख़ूब होती है।

गिन्नी–संज्ञा स्त्री० [हिं० घिरनी] चक्कर। घुमाने या चक्कर खिलाने की क्रिया।

मुहा०—गिन्नी खाना = चक्कर मारना। (पतंग के लिये प्रायः बोलते हैं)। गिन्नी खिलाना = चक्कर देना।

संज्ञा स्त्री० † दे० "गिनी"।

गिब्बन–संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का बंदर जो सुमात्रा, जावा आदि द्वीपों में होता है। इसके पूँछ और गालों की थैलियाँ नहीं होतीं। इसकी बाहें बहुत लंबी होती हैं और खड़े होने पर प्रायः ज़मीन तक पहुँचती हैं। इसकी आकृति मनुष्य से बहुत मिलती जुलती होती है। किसी किसी जाति के गिब्बन थोड़ा बहुत गाते भी सुने गए हैं।

गिमटी–संज्ञा स्त्री० [अं० डिमिटी] एक प्रकार का मज़बूत सूती कपड़ा जिसकी बुनावट में बेल बूटे बने होते हैं और जो प्रायः बिछाने के काम में आता है।

गिय*–संज्ञा पुं० दे० "गिउ"

गियाह–संज्ञा पुं० [सं० हय] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—हाँसल भौंर, गियाह बखाने।—जायसी।

गिरंट–संज्ञा पुं० [अं०] (१) एक रेशमी कपड़ा जो प्रायः गोट लगाने के काम में आता है। ग्वारनट। (२) एक प्रकार की साधारण सूती मलमल जो बस्ती ज़िले में बनती है।

गिर–संज्ञा पुं० [सं० गिरि] (१) पहाड़। पर्वत। (२) संन्यासियों के १० भेदों में से एक। (३) काठियावाड़ देश का भैंसा।

गिरई–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो सौरी मछली से छोटी होती है।

गिरगिट–संज्ञा पुं० [सं० कृकलास या गलगति] छिपकली की जाति का प्रायः एक बालिश्त लंबा एक जंतु जो सूर्य्य की किरणों की सहायता से अपने शरीर के अनेक रंग बदल सकता है। इस का चमड़ा सदा बहुत ठंढा रहता है और यह कीड़े मकोड़े खाता है। गिरगिटान। गिरदौना। उ०—गिरगिट छंद धरइ दुख तेता। खन खन रात पीत खन सेता।—जायसी।

मुहा०—गिरगिट की तरह रंग बदलना = बहुत जल्दी सम्मति या सिद्धांत बदल देना। कभी कुछ कभी कुछ कहना और करना।

गिरगिटान–संज्ञा पुं० दे० "गिरगिट"।

गिरगिट्टी–संज्ञा स्त्री० [?] समस्त उत्तर भारत, चीन और आस्ट्रेलिया तक पाया जानेवाला एक प्रकार का छोटा पेड़ जिस की छाल खाकी रंग की होती है। इसकी पत्तियाँ छोटी, पतली और गहरे हरे रंग की होती हैं जिनका ऊपरी भाग बहुत चमकीला होता है। गरमी और बरसात में इसमें सफ़ेद रंग के बहुत सुगंधित फूल लगते हैं और जाड़े में एक प्रकार के छोटे फूल लगते हैं जिनका रंग पकने पर लाल या गहरा नारंगी होता है। इसकी लकड़ी मुलायम होती है और चीड़ के स्थान में काम आती है। यह वृक्ष बागों में शोभा के लिये अधिकता से लगाया जाता है और लोग इसकी टहनियों से दतुअन का काम लेते हैं। बरमावाले कभी कभी चंदन के स्थान में इसकी सुगंधित छाल का भी व्यवहार करते हैं।

गिरगिरी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] लड़कों का एक खिलौना जो चिकारे या सारंगी के ढंग का होता है। उ०—फूले बजावत गिरगिरी-गार मदन भेरि घहराइ अपार संतन हित ही धूल डोल।—सूर।

गिरजा–संज्ञा पुं० [देश०] कीड़े मकोड़े खानेवाला एक प्रकार का पक्षी जो पंजाब और राजपूताने के अतिरिक्त सारे भारत में पाया जाता है। यह प्रायः सिंघाड़े के तालाबों के आस पास रहता है और ऋतु परिवर्त्तन के अनुसार अपना स्थान भी बदला करता है। यह बहुत तेज उड़ता है और इसका शब्द बहुत धीमा और विचित्र होता है। यह वृक्षों पर घोंसला बनाता है। इसके स्वादिष्ट मांस के लिये लोग इसका शिकार करते हैं।

संज्ञा पुं० [पुर्त० इग्रिजिया] ईसाइयों का प्रार्थना-मंदिर।

संज्ञा स्त्री० दे० "गिरिजा"।

गिरद*–अव्य० दे० "गिर्द"। उ०—लई सौरई अरु साडौरो। लूटे गांव गिरद के औरो।—लाल।

गिरदा†–संज्ञा पुं० [फ़ा० गिर्द] (१) घेरा। चक्कर। (२) तकिया। गेडुआ। बालिश। उ०—भनै रघुराज कोई गादी गिरदा पै चढ़ैं, कोई गोद गेरे हरे हरे लपटाइ कै।—रघुराज। (३) काठ की थाली जिसमें हलवाई लोग मिठाई रखते हैं। (४) वह गोल कपड़ा जो दरबार के समय राजाओं के हुक्के के नीचे बिछाया जाता है। (५) ढाल। फरी। (६) ढोल वा खँजड़ी का मेड़रा।

गिरदागिरद–क्रि० वि० दे० "गिर्दागिर्द"।

गिरदान†–संज्ञा पुं० [हिं० गिरगिट] गिरगिट। उ०—मछरी मुख जस केँचुआ मुसवन मुँह गिरदान। सर्पन मुहेँ गहेजुवा जाति सबन की जान।—कबीर।

गिरदानक–संज्ञा पुं० [फ़ा० गिर्द] करगह की लकड़ी जो लपेटन में उसे घुमाने के लिये लगी रहती है। (जोलाहे)

गिरदाना–संज्ञा पुं० [फ़ा० गिर्द] लगभग एक हाथ की लंबी चौपहल लकड़ी जो तूर के छेद में पड़ी रहती है। (जोलाहे)

गिरदाला–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिर्द] वह लंबी अँकुसी जिससे गला हुआ कच्चा लोहा समेट समेट कर एकत्र किया जाता है। (लोहार)

गिरदावर–संज्ञा पुं० दे० "गिर्दावर"।

गिरदावरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) गिरदावर का काम। (२) गिरदावर का पद।

गिरधर–संज्ञा पुं० [सं० गिरि + धर] (१) वह जो पहाड़ को धारण करे। पहाड़ उठानेवाला व्यक्ति। (२) कृष्ण। वासुदेव।

गिरधारन*–संज्ञा पुं० दे० "गिरधर"।

गिरधारी–संज्ञा पुं० दे० "गिरधर"।

गिरना–क्रि० अ० [सं० गलन = गिरना] (१) आधार या अवरोध के अभाव के कारण किसी चीज़ का एक दम ऊपर से नीचे आ जाना। रोक या सहारा न रहने के कारण किसी चीज़ का अपने स्थान से नीचे आ रहना। जैसे, छत पर से गिरना, हाथ में से गिरना, कुएँ में गिरना, आंख से आंसू गिरना, ओस पानी या ओले गिरना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

(२) किसी चीज़ का खड़ा न रह सकना या ज़मीन पर पड़ जाना। जैसे, मकान का गिरना, घोड़े का गिरना, पेड़ का गिरना।

यौ०—गिरना पड़ना। उ०—वह गिरते पड़ते किसी प्रकार घर पहुँचा।

(३) अवनति या घटाव पर होना। ह्रासोन्मुख होना। जैसे, किसी जाति या देश का गिरना। (४) किसी जलधारा का किसी बड़े जलाशय में जा मिलना। जैसे, नदी का समुद्र में गिरना, मोरी का कुंड में गिरना। (५) शक्ति, स्थिति, प्रतिष्ठा या मूल्य आदि का कम या मंदा होना। जैसे, किसी मनुष्य का (किसी की दृष्टि या समाज में) गिर जाना, बीमारी के कारण शरीर का गिर जाना, भाव या बाजार गिरना।

यौ०—गिरे दिन = दरिद्रता या दुर्दशा का समय।

(६) किसी पदार्थ को लेने के लिये बहुत चाव या तेजी से आगे बढ़ना। टूटना। जैसे, कबूतर पर बाज का गिरना, माल पर खरीदनेवालों का गिरना, यात्रियों पर डाकुओं का गिरना। (७) जीर्ण या दुर्बल होने अथवा इसी प्रकार के अन्य कारणों से किसी चीज़ का अपने स्थान से हट, निकल, या झड़ जाना, जैसे, दांत गिरना, सींग गिरना। बाल गिरना, (चोट खाया हुआ) नाखून गिरना, गर्भ गिरना। (८) किसी ऐसे रोग का होना जिसके विषय में लोगों का विश्वास हो कि उसका वेग ऊपर की ओर से नीचे को आता या होता है। जैसे, नज़ला गिरना, फालिज गिरना। (९) सहसा उपस्थित होना। प्राप्त होना। जैसे, तुम यहां कहां से आ गिरे ?, आज बहुत सा काम आ गिरा।

विशेष—इस अर्थ में इसमें पहले "आना" क्रिया लगती है।

(१०) युद्ध में काम आना। लड़ाई में मारा जाना। खेत रहना। जैसे, उस लड़ाई में दो सौ आदमी गिरे। (११) कबूतर का किसी दूसरे की छतरी पर चला जाना। (कबूतर)

गिरनार—संज्ञा पुं० [सं० गिरि + नार = नगर] [वि० गिरनारी] जैनियों का एक पवित्र तीर्थ जो गुजरात में जूनागढ़ के निकट एक पर्वत पर है। इसे पुराणों में रैवतक पर्वत कहते हैं।

गिरनारी, गिरनाली—वि० [हिं० गिरनार] गिरनार पर्वत का निवासी।

गिरफ़्—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) पकड़। पकड़ने का भाव। (२) पकड़ने की क्रिया।

मुहा०—गिरफ़् करना = कोई दोष निकालना या आपत्ति करना।

गिरफ़्तार—वि० [फ़ा०] (१) जो पकड़ा, क़ैद किया या बांधा गया हो। (२) ग्रसा हुआ। ग्रस्त।

गिरफ़्तारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) गिरफ़्तार होने का भाव। (२) गिफ़्तार होने की क्रिया।

मुहा०—गिरफ़्तारी निकलना = किसी के गिरफ़्तार होने का परवाना या वारंट निकलना।

गिरबूटी—संज्ञा पुं० [सं० गिरि + हिं० बूटी] अंगूर-शेफा।

गिरमिट—संज्ञा पुं० [अं० गिमलेट = बड़ा बरमा] (लकड़ी में छेद करने का) बड़ा बरमा। (बढ़ई)

‡ संज्ञा पुं० [अं० एग्रीमेंट = इकरारनामा] (१) वह पत्र जिस में किसी प्रकार की शर्तें लिखी हो, विशेषतः वह पत्र जिस पर कुलियों से उन्हें उपनिवेशों में काम करने के लिये भेजने के समय हस्ताक्षर कराया जाता है। इकरारनामा। शर्तनामा।

क्रि० प्र०—करना।—लिखना।—होना।

(२) कोई काम करने की स्वीकृति या प्रतिज्ञा। इक़रार।

गिरवर*—संज्ञा पुं० [सं० गिरि + वर] पहाड़। बड़ा पहाड़।

यौ०—गिरवरधारी = गिरधर।

गिरवान*†—संज्ञा पुं० [सं० गीर्वाण] देवता। देव। सुर। उ०—तेरे गुन गान सुनि गिरवान पुलकित सजल विलोचन विरंचि हरि हर के।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [फ़ा० गरेबान] (१) अंगे या कुरते का वह गोल भाग जो गर्दन के चारों ओर रहता है। कालर। (२) गर्दन। गला। उ०—नेही सनमुख जुरत ही तेहि मन की गिरवान। बाहत हैं रनबावरे तेरे दृग किरवान।—रसनिधि।

गिरवाना—क्रि० स० [हिं० गिराना] गिराने की प्रेरणा करना। गिराने का काम दूसरे से कराना।

गिरवी—वि० [फ़ा०] गिरों रखा हुआ। बंधक। रेहन।

यौ०—गिरवीदार। गिरवीनामा। गिरवी-जब्ती। गिरवीगांठा = रेहन। बंधक।

क्रि० प्र०—करना।—मारना।—रखना।

गिरवीदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह व्यक्ति जिसके यहां कोई वस्तु बंधक रखी हो।

गिरवीनामा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह पत्र जिसमें गिरों की शर्तें लिखी हों। रेहननामा।

गिरवीपत्र—संज्ञा पुं० दे० "गिरवीनामा"।

गिरह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) गांठ। ग्रंथि।

क्रि० प्र०—देना।—बांधना।—मारना।—लगाना।

(२) जेब। कीसा। खरीता।

यौ०—गिरहकट।

(३) दो पोरों के जुड़ने का स्थान। (४) एक गज़ का सोलहवां भाग जो सवा दो इंच के बराबर होता है। (५) कुश्ती का एक पेंच। (६) कलैया। उलटी। उ०—ऊँचो चितै सराहियत गिरह कबूतर लेत। दृग झलकित मुलकित बदन तन पुलकित केहि हेत।—बिहारी।

क्रि० प्र०—खाना।—मारना।—लगाना।—लेना।

यौ०—गिरहबाज़।

गिरहकट—वि० [फ़ा० गिरह = जेब या गांठ + हिं० काटना] जेब या गांठ में बँधा हुआ माल काट लेनेवाला।

गिरहदार—वि० [फ़ा०] गांठवाला। गँठीला। जिसमें गांठ हो।

गिरहबाज़—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक जाति का कबूतर जो उड़ते उड़ते उलट कर कलैया खाजाता है और फिर उड़ने लगता है।

गिरहबाज़-उड़ी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिरहबाज़ + उड़ी = कलैया] वह उलटी कलैया जो कसरत करनेवाले कबूतर की तरह उलट कर लगाते हैं।

गिरहर†—वि० [हिं० गिरना + हर (प्रत्य०)] जो गिरनेवाला हो। जो गिरने के लिये तैयार हो। पतोन्मुख।

गिरही*†—संज्ञा पुं० [सं० गृहिन्] जो घर बार वाला हो। गृहस्थ। उ०—बाटे बाटे सब कोइ दुखिया क्या गिरही बैरागी। शुकाचार्य दुख ही के कारण गरभै माया त्यागी।—कबीर।

गिराँ–वि० [फ़ा० गराँ] (१) जिसका दाम अधिक हो। महँगा। (२) भारी। हलका का उलटा। (३) अप्रिय। जो भला न मालूम हो।

क्रि० प्र०—गुजरना।

गिरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह शक्ति जिसकी सहायता से मनुष्य बातें करता है। बोलने की ताक़त। (२) जिह्वा। जीभ। ज़बान। (३) बोल। बचन। वाणी। कलाम। (४) सरस्वती देवी।

यौ०—गिरापति। गिरापितु।

(५) सरस्वती नदी। (६) भाषा। बोली। (७) कविता। शायरी।

गिराना–क्रि० स० [हिं० गिरना का स० रूप] (१) किसी चीज का आधार या अवरोध आदि हटा कर उसे अपने स्थान से नीचे डाल देना। पतन करना। जैसे, छत पर से पत्थर गिराना, हाथ से छड़ी गिराना, आँख से आँसू गिराना। (२) किसी चीज़ को खड़ा न रहने देकर ज़मीन पर डाल देना। जैसे, खंभा गिराना, मकान गिराना। (३) अवनत करना। घटाना। ह्रास करना। जैसे, विलास-प्रियता ने ही उस जाति को गिरा दिया। (४) किसी जलधारा या प्रवाह को किसी ढाल की ओर ले जाना। जैसे, नाली गिराना, मोरी गिराना। (५) शक्ति, प्रतिष्ठा, मूल्य या स्थिति आदि में कम कर देना। जैसे, (क) बीमारी ने उसे ऐसा गिराया कि वह छः महीने तक किसी काम का नहीं रहा। (ख) व्यापारियों ने माल ख़रीदना बंद करके बाजार गिरा दिया। (६) जीर्ण या दुर्बल करके अथवा इसी प्रकार के किसी और उपाय से किसी चीज को उसके स्थान से हटा या निकाल देना। जैसे, (क) दो महीने बाद उसने गर्भ गिरा दिया। (ख) यह दवा तुम्हारे सब दांत या बाल गिरा देगी। (७) कोई ऐसा रोग उत्पन्न करना जिसके विषय में लोगों का यह विश्वास हो कि उसका वेग ऊपर से नीचे की ओर जाता या होता है। जैसे, तुम्हारी यह लापरवाही ज़रूर नजला गिरावेगी। (८) सहसा उपस्थित करना। अचानक सामने ला रखना। जैसे, यह झमेला तुमने हमारे सिर ला गिराया।

विशेष—इस अर्थ में इसमें पहले "लाना" क्रिया लगती है।

(९) युद्ध में प्राण लेना। लड़ाई में मार डालना। जैसे, अकेले उसने पाँच आदमियों को गिराया।

गिरानी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) महँगापन। महँगी। मूल्य का अधिक होना। (२) अकाल। क़हत। (३) कमी। अभाव। टोटा। (४) किसी चीज़ का विशेषतः पेट का भारीपन। उ०—रसनिधि प्रेम तबीब यह दियो इलाज बताय। छबि अजवाइन चख दगन विरह गिरानी जाय।—रसनिधि।

गिरापति–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा। उ०—ईश न गनेश न दिनेश न धनेश न सुरेश सुर गौरि गिरापति नहिं जपने।—तुलसी।

गिरापितु*–संज्ञा पुं० [सं० गिरा + पितृ] सरस्वती के पिता। ब्रह्मा।

गिराब–संज्ञा पुं० [अं० ग्रेप] तोप का वह गोला जिसमें छोटी छोटी गोलियाँ और छर्रे भी रहते हैं।

गिरावना†–क्रि० स० दे० "गिराना"।

गिरास*–संज्ञा पुं० दे० "ग्रास"।

गिरासना†*–क्रि० स० दे० "ग्रसना"। उ०—परी रेणु होइ रबिहिं गिरासा। मानुष पंखि लेहिं फिरि बासा।—जायसी।

गिरासी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्राचीन जाति जो गुजरात देश में रहती थी। इस जाति के लोग बड़े फ़सादी और डाकू होते थे।

गिराह*†–संज्ञा पुं० [सं० ग्राह] ग्राह या मगर नामक जलजंतु।

गिरि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पर्वत। पहाड़। (२) दशनामी संप्रदाय के अंतर्गत एक प्रकार के संन्यासी जो अपने नामों के पीछे उपाधि की भाँति "गिरि" शब्द लगाते हैं। (जैसे, नारायणगिरि, महेशगिरि आदि) उनमें कुछ लोग मठधारी महंत होते हैं और कुछ ज़मीदारी तथा अनेक प्रकार के व्यापार करते हैं। इनमें से कुछ लोग वैष्णव हो गए हैं जो गिरि वैष्णव कहलाते हैं। ये विवाह नहीं करते। (३) परिव्राजकों की एक उपाधि। (४) तांत्रिक संन्यासियों का एक भेद। (५) पारे का एक दोष जिसका शोधन यदि न किया जाय तो खानेवाले का शरीर जड़ हो जाता है। (६) आँख का एक रोग जिसमें ढेंढर वा टेंटर निकल आता है और आँख कानी हो जाती है।

गिरिकंटक–संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

गिरिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) वह जो पर्वत से उत्पन्न हो।

गिरिकणिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अपराजिता लता। (२) चिचिंडा। अपामार्ग।

गिरिकर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अपराजिता या कोयल नाम की लता। (२) जवासा।

गिरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चुहिया। मुसटी (२) पुरुवंशी वसु राजा की स्त्री जिसकी कथा महाभारत में है।

गिरिक्षिप–संज्ञा पुं० [सं०] अक्रूर के एक भाई का नाम।

गिरिज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिलाजीत। (२) लोहा। (३) अबरक। अभ्रक। (४) गेरू। (५) एक प्रकार का पहाड़ी महुआ।

गिरिजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिमालय पर्वत की कन्या, पार्वती। गौरी।

यौ०—गिरिजापति = महादेव। शंकर। गिरजाकुमार = कार्तिकेय। (२) गंगा। (३) चकोतरा। (४) मल्लिका। (५) पहाड़ी केला। चमेली।

गिरिजामल–संज्ञा पुं० [सं०] अभ्रक।

गिरिजाबीज–संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।

गिरिज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

गिरित्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव। शिव। (२) समुद्र। (जब इंद्र ने पर्वतों के पर काटे थे तब मैनाक पर्वत समुद्र में जा छिपा था। इससे समुद्र का यह नाम पड़ा।)

गिरिदुर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ पर बना हुआ क़िला। (मनु ने इस प्रकार का दुर्ग बड़ा उपयोगी बतलाया है।)

गिरिधर–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

गिरिधरन*–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

गिरिधातु–संज्ञा पुं० [सं०] गेरू।

गिरिधारन*–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

गिरिधारी–संज्ञा पुं० [सं० गिरिधारिन्] श्रीकृष्ण।

गिरिध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

गिरिनंदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पार्वती। (२) गंगा। (३) नदी।

गिरिनगर–संज्ञा पुं० [सं०] गिरनार पर्वत पर बसा हुआ नगर जो जैनियों का एक पवित्र तीर्थ है।

गिरिनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव। उ०—कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा।—तुलसी।

गिरिनिंब–संज्ञा पुं० [सं०] बकायन।

गिरिपीलु–संज्ञा पुं० [सं०] फ़ालसा।

गिरिपुष्पक–संज्ञा पुं० [सं०] पथरफोड़ नाम का पौधा।

गिरिप्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरागाय।

गिरिभिद्–संज्ञा पुं० [सं०] पखानभेद।

गिरिमल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटज। कोरैया।

गिरिमृत्–संज्ञा स्त्री० [सं०] गेरू।

गिरिराज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा पर्वत। (२) हिमालय। (३) गोवर्द्धन पर्वत। (४) मेरु।

गिरिव्रज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) केकयदेश की राजधानी। (२) जरासंध की राजधानी जिसे पीछे राजगृह कहते थे।

गिरिशाल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाज पक्षी।

गिरिशालिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजिता लता।

गिरिशृंग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहाड़ की चोटी। (२) गणेश।

गिरिसार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोहा। (२) शिलाजीत। (३) राँगा। (४) मलयपर्वत।

गिरिसुत–संज्ञा पुं० [सं०] मैनाक पर्वत।

गिरिसुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।

गिरींद्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा पर्वत। (२) हिमालय। (३) शिव।

गिरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गरी] (१) वह गूदा जो बीज को तोड़ने पर उसके अंदर से निकलता है। जैसे, बादाम, अखरोट या खरबूजे आदि की गिरी। (२) दे० "गिरि"। (३) दे० "गरी"।

गिरीश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव। शिव। (२) हिमालय पर्वत। (३) सुमेरु पर्वत। (४) कैलाश पर्वत। (५) गोवर्द्धन पर्वत। (६) कोई बड़ा पहाड़।

गिरेबान–संज्ञा पुं० [फ़ा० गरेबान] गले में पहनने के कपड़े का वह भाग जो गरदन के चारों ओर रहता है।

गिरेवा–संज्ञा पुं० [सं० गिरि] (१) छोटी पहाड़ी। टीला। (२) चढ़ाई का रास्ता।

गिरेश–संज्ञा पुं० [सं० गिरा + ईश] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु।

गिरैयाँ†–संज्ञा स्त्री० [हिं० गेराँव का अल्प०] छोटा वा पतला गेराँव। उ०—तिय जानि गिरैयाँ गहो बनमाल सो एँच लला इँच्यो आवत है।—पद्माकर।

‡ वि० [हिं० गिरना] गिरनेवाला। पतनोन्मुख। जो गिरने को हो।

गिरो–वि० [फ़ा०] रेहन। बंधक। गिरवी।

क्रि० प्र०—करना।—धरना।—रखना।

यौ०—गिरो गाठा = रेहन।

गिर्गिट–संज्ञा पुं० दे० "गिरगिट"।

गिर्जा, गिर्जाघर–संज्ञा पुं० दे० "गिरजा"।

गिर्द–अव्य० [फ़ा०] आसपास। चारों ओर।

यौ०—इर्द गिर्द।

गिर्दावर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) घूमनेवाला। दौरा करनेवाला। (२) घूम घूम कर काम की जाँच करनेवाला।

यौ० गिर्दावर कानूनगो = कलक्टरी मुहकमे का वह छोटा अफ़सर जो गावों में घूम घूम कर पटवारियों के काग़ज की जाँच करता है।

गिल–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) मिट्टी। (२) गारा।

यौ०—कहगिल। गिलकारी।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) मगर। (२) जंबीरी नीबू। (३) भक्षण करनेवाला। निगलनेवाला।

गिलकार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] गारा वा पलस्तर करनेवाला व्यक्ति।

गिलकारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गारा लगाने या पलस्तर करने का काम।

गिलकिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] नेनुवाँ या घियातोरी नाम की तरकारी।

गिलगिल–संज्ञा पुं० [सं०] नक्र । नाक नामक जलजंतु ।

गिलगिलिया–संज्ञा स्त्री० [अनु०] सिरोही नाम की चिड़िया जो आपस में बहुत लड़ती है । इसे कहीं कहीं किलहँटी और मैना भी कहते हैं ।

गिलगिली–संज्ञा पुं० [देश०] घोड़े की एक जाति ।

गिलज़ई–संज्ञा स्त्री० [देश०] अफ़गानिस्तान में रहनेवाली एक जाति । इस जाति के लोग अच्छे शूर वीर होते हैं ।

गिलट–संज्ञा स्त्री० [अं० गिल्ड = सोना चढ़ाना] (१) सोना चढ़ाने का काम । (२) एक प्रकार की बहुत हलकी और कम मूल्य की धातु जिसका रंग सफ़ेद और चमकीला होता है और जिससे ज़ेवर और बरतन बनते हैं ।

गिलटी–संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रंथि] (१) चेर की गोल छोटी गांठ जो शरीर के अंदर संधि स्थान में रहती है । कुहनी, बगल, गरदन और घुँटने में तथा पेड़ू और रान के बीच में एक से अधिक ऐसी गांठें होती हैं । (२) एक प्रकार का रोग जिसमें या तो संधि स्थान की इन्हीं गांठों में से कोई एक गांठ सूज या फूल जाती है अथवा शरीर के किसी अन्य भाग में ऐसी कोई गांठ उत्पन्न हो जाती है । भावप्रकाश के अनुसार इनकी उत्पत्ति का कारण मांस, रक्त या मेद आदि का दूषित हो जाना है । गिलटी में प्रायः बहुत पीड़ा होती है, और कभी कभी उसके चीरने तक की नौबत आ जाती है । यदि निकलने के साथ ही गिलटी को सेंक दिया जाय तो वह दब भी जाती है ।

क्रि० प्र०—उभरना ।—निकलना ।—बैठना ।

गिलन–संज्ञा पुं० [अं० गैलन] (१) एक अँगरेजी नाप जो १० पाउंड (प्रायः ५ सेर) का होता है और जिससे प्रायः तरल पदार्थ नापे जाते हैं । (२) टीन आदि का वह बरतन जिससे उतना पदार्थ नापा जाता हो ।

संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गिलित] निगलना । लीलना ।

गिलना–क्रि स० [सं० गिरण] (१) किसी चीज़ को बिना दांतों से तोड़े गले में उतार जाना । निगलना । उ०—(क) बेणु के राज्य में औषधी गिलिगई होइहैं सकल किरपा तुम्हारी । —सूर । (ख) तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई । गगन मगन मकु मेघहिं मिलई ।—तुलसी । (ग) कोरक सहित अगस्तिया लख्यौ राहु अवतार । कला कलाधर की गिली जनु उगिलत यहि बार ।—गुमान । (२) मन ही में रखना । प्रकट न होने देना । उ०—कीधौं हमहि देखि उठि जैहै की उठि हमको मिलिहै । कीधौं बात उघारि कहैगी की मनही मन गिलिहै ।—सूर ।

गिलबिला–वि० [अनु०] बहुत कोमल । पिलपिला । जैसे, गिलबिला फोड़ा ।

गिलबिलाना–क्रि० अ० [अनु०] अस्पष्ट वचन बोलना । अस्पष्ट उच्चारण से कुछ कहना ।

गिलम–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिलीम = कंबल] (१) ऊन का बना हुआ नरम और चिकना कालीन । (२) बहुत मोटा मुलायम गद्दा या बिछौना । उ०—(क) झालरनदार झुकि झूमत बितान बिछे गहब गलीचा अरु गुलगुली गिलमैं ।—पद्माकर । (ख) चीन के चीर नबीनन सों गिलमैं गुलजार हजार बिछाई । —गुमान ।

वि० कोमल । नरम । मुलायम ।

गिलमिल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कपड़ा जो पुराने ज़माने में बनता था । उ०—बादला दरिआई नौरंग साई जरकस काई झिलमिल है । ताफता कलंदर बाफता बंदर मुसजर सुंदर गिलमिल है ।—सूदन ।

गिलसुर्ख–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गेरू ।

गिलहरा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का कपड़ा । यह कपड़ा सूत का बनता है और इसमें मोटी मोटी धारियां होती हैं । (२) [स्त्री० गिलहरी] बांस की फट्टियों आदि का बना हुआ एक पात्र जिसमें पान रक्खा जाता है । बेलहरा ।

गिलहरी–संज्ञा स्त्री० [सं० गिरि = चुहिया] एक प्रकार का छोटा जानवर जो एशिया, युरोप और उत्तरी अमेरिका में बहुत अधिकता से होता है । गिलहरी की कई जातियां होती हैं और यह चूहे से लेकर बिल्ली तक के आकार की होती है । यह प्रायः छोटे फल और दाने खाती है और पेड़ों पर रहती है । इसके कान लंबे और नुकीले होते हैं और दुम घने और मुलायम रोयों से ढकी होती है । इसकी पीठ पर कई रंग की धारियां भी होती है । इसकी दुम के रोएँ से रंग भरने की कूँची बहुत अच्छी बनती हैं । यह बहुत चंचल होती है और बड़ी सरलता से पाली जा सकती है । यह अपने पिछले पैरों के सहारे बैठ कर अगले पैरों से हाथों की तरह काम ले सकती है । इसकी चंचलता बहुत भली मालूम होती है । एक बार में यह तीन से चार तक बच्चे दे सकती है । इसे कहीं कहीं चिखुरी या गिलाई भी कहते हैं ।

गिला–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) उलाहना । उ०—खरिकहू नहिं मिले कहै कह अनमिले करन दे गिले तू दिन न थोरी । —सूर । (२) शिकायत । निंदा ।

गिलाई–संज्ञा स्त्री० दे० "गिलहरी" ।

गिलान†–संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लानि] ग्लानि । घृणा । नफरत ।

गिलाफ–संज्ञा पुं० [अ०] (१) कपड़े की बनी हुई बड़ी थैली जो तकिए लिहाफ आदि के ऊपर चढ़ा दी जाती है । खोल । (२) लिहाफ़ । बड़ी रज़ाई । (३) म्यान ।

गिलाय–संज्ञा स्त्री० [सं० गिरि = चुहिया] गिलहरी ।

गिलायु–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें गले के अंदर आंवले की गुठली के आकार की एक गांठ हो जाती है । इसमें बहुत पीड़ा होती है और रोगी को गले में कोई चीज़ अटकी हुई मालूम होती है । इस रोग में शस्त्र-चिकित्सा कराने की आवश्यकता होती है ।

गिलावा†–संज्ञा पुं० [फ़ा० गिल + आब] वह गीली मट्टी जिससे राज लोग ईंट जोड़ते हैं। गारा। उ०—हीरा ईंटैं कपूर गिलावा। औ नग लाय स्वर्ग लय लावा।—जायसी।

गिलास–संज्ञा पुं० [अं० ग्लास] (१) एक गोल लंबा बरतन जो पेंदी की ओर कम और मुँह की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है और जिसमें पानी दूध आदि तरल पदार्थ पीते हैं। (२) आलू-बालू या ओलची नाम का पेड़ जिसका फल बहुत मुलायम और स्वादिष्ट होता है। यह सावन में केवल १५–२० दिन तक फलता है।

विशेष—दे० "आलू-बालू"।

गिलिम–संज्ञा स्त्री० दे० "गिलम"। उ०—गिलिम गलीचे दूध-फेन को लजाये हैं।—रघुराज।

गिली–संज्ञा स्त्री० दे० "गुल्ली"। उ०—खेलत हौ लाल संग गयो उठि दाँव लै कै भारी खैंच गिली देखि मंदिर में श्याम हैं।—प्रिया०।

गिलेफ†–संज्ञा पुं० दे० "गिलाफ"।

गिलोय–संज्ञा स्त्री० [फा०] गुरुच। गुडूची।

गिलोला–संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलेला] मिट्टी का बना हुआ छोटा गोला जो गुलेल से फेंका जाता है। उ०—तेरी कंठसिरी के नवल मुकुता फल न तिनके गिलोला काम करतु बनाय कै।—गुमान।

गिलौंदा†–संज्ञा पुं० दे० "गुलौंदा"।

गिलौरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक या कई पानों का बीड़ा जो साधारण बीड़े से कुछ भिन्न और तिकोना, चौकोना तथा कई आकार का होता है।

क्रि० प्र०—बनाना।

यौ०—गिलौरीदान।

गिलौरीदान–संज्ञा पुं० [हिं० गिलौरी + दान] पान रखने का डिब्बा। पानदान।

गिल्टी–संज्ञा स्त्री० दे० 'गिलटी'।

गिल्यान*–संज्ञा स्त्री० दे० "ग्लानि"। उ०—ताके मन उपजी गिल्यान। मैं कीन्ही बहु जिय की हान।—सूर।

गिल्ला–संज्ञा पुं० दे० "गिला"।

गिल्ली–संज्ञा स्त्री० [हिं० गुल्ली] गुल्ली।

मुहा०—गिल्लियाँ गढ़ना = वितंडावाद करना। व्यर्थ बकवाद करना।

गिष्ण, गिष्णु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सामवेद का गानेवाला। यज्ञों में सामवेद के मंत्रों को सविधि गानेवाला मनुष्य। (२) गवैया। गायक।

√**गींजना**–क्रि० स० [हिं० मींजना] किसी कोमल पदार्थ विशेषतः कपड़े फूल आदि को हाथ से इस प्रकार दबाना या मलना कि जिसमें वह ख़राब हो जाय। उ०—गींजी फूल माल सी लसत सेज परी हाय ऐसी सुकुमारी ऐसे मींजि मारियतु है।—रघुनाथ।

गीँव†–संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रीव] गर्दन। गला।

गी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वाणी। बोलने की शक्ति। (२) सरस्वती देवी।

गीठम–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घटिया सादा कालीन वा गलीचा।

गीड़†–संज्ञा पुं० [हिं० कीट = मैल] आँख का कीचड़ या मल।

गीत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वाक्य, पद वा छंद जो गाया जाता हो। गाने की चीज़। गाना।

विशेष—संगीत-शास्त्र के अनुसार जो वाक्य धातु और मात्रा-युक्त हो वही गीत कहलाता है। गीत दो प्रकार का होता है—वैदिक और लौकिक। वैदिक गीत को साम कहते हैं। (दे० "साम") सारा सामवेद ऐसे ही गीतों से भरा हुआ है। लौकिक गीत भी दो भागों में विभक्त है—मार्ग और देशी। शुद्ध राग और रागिनियाँ मार्ग के अंतर्गत हैं और आज कल के चलते गाने (दादरा, टप्पा, ग़ज़ल, ठुमरी आदि) देशी कहलाते हैं। गीत के दो भेद और हैं—यंत्र और गात्र। स्वर निकालनेवाले (बीन, सितार, हारमोनियम आदि) बाजों से उत्पन्न ध्वनिसमूह या गीत को यंत्र और मनुष्य के गले से निकले हुए को गात्र कहते हैं। पर साधारण बोल-चाल में यंत्र को कोई गीत नहीं कहता, केवल गात्र को गीत कहते हैं।

क्रि० प्र०—गाना।

मुहा०—गीत गाना = बड़ाई करना। प्रशंसा करना। उ०—जिससे चार पैसा पाते हैं उसके गीत गाते हैं। अपना ही गीत गाना = अपना ही वृत्तांत कहना। अपनी ही बात कहना, दूसरे की न सुनना।

(२) बड़ाई। यश। उ०—गीध मानो गुरु कपि भालु माने मीत कै पुनीत भीत साके सब साहब समत्थ के।—तुलसी।

(३) वह जिसका यश गाया जाय।

गीतक्रम–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार की तान।

गीतप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

गीतप्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

गीता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह ज्ञानमय उपदेश जो किसी बड़े से माँगने पर मिले। जैसे, रामगीता, शिवगीता, अनुगीता, उत्तरगीता आदि। (२) भगवद्गीता। (३) संकीर्ण राग का एक भेद। (४) २६ मात्रा का एक छंद जिसमें १४ और १२ मात्राओं पर विराम होता है। उ०—मन बावरे अजहूँ समझ, संसार भ्रम दरियाउ। इहि तरन को यहिं छोड़ि कै कछु नाहिं और उपाउ। (५) वृत्तांत। कथा। हाल।

उ०—सीता गीता पुत्र की सुनि सुनि भई अचेत। मनो चित्र की पुत्रिका मन क्रम बचन समेत।—केशव।

गीति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गान। गीत। (२) आर्या छंद के भेदों में से एक जिसके विषम चरणों में १२ और सम चरणों में १८ मात्राएँ होती हैं। इसे उद्गाहा वा उद्गाथा भी कहते हैं।

गीतिका–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ होती हैं, १४ तथा १२ पर यति होती है और अंत में लघु गुरु होते हैं। उ०—धन्य श्री बसुदेव देवकि, पुत्र करि जिन पाइया। धन्य यशुमति नंद जिन पय प्याय गोद खिलाइया। (२) एक वर्णिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सगण, जगण, जगण, भगण, रगण, सगण और लघु गुरु होते हैं। (३) गीत। गाना।

गीतिरूपक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रूपक जिसमें गद्य कम और पद्य या गान अधिक होता है।

गीत्यार्या–संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ५ नगण और एक लघु होता है। इसे अचल धृति भी कहते हैं।

गीदड़–संज्ञा पुं० [सं० गृध्र=लुब्ध वा फ़ा० गीदी] सियार। शृगाल। भेड़िए वा कुत्ते की जाति का एक जानवर जो लोमड़ी से मिलता जुलता होता है। यह झुंडों में रहता है और एशिया तथा अफ्रीका में सर्वत्र पाया जाता है। दिन में यह मांद में पड़ा रहता है और रात को झुंड के साथ निकलता है और छोटे छोटे जंतु जैसे भेड़ बकरी, मुर्गी आदि पकड़ कर खाता है। कभी कभी यह मुर्दे तथा मरे हुए जीवों की लाश आदि खा कर ही रह जाता है। यह कुत्ते के साथ जोड़ा खा जाता है। गीदड़ बहुत डरपोक समझा जाता है।

यौ०—गीदड़ भबकी=मन में डरते हुए ऊपर से दिखाऊ साहस वा क्रोध प्रकट करने की क्रिया।

मुहा०—गीदड़ बोलना=बुरा शकुन होना। किसी स्थान पर गीदड़ बोलना=उजाड़ होना। निर्जन होना।

वि० डरपोक। असाहसी। बुज़दिल।

गीदड़रूख–संज्ञा पुं० [हिं० गीदड़+रूख=वृक्ष] मझोले क़द का एक प्रकार का पेड़ जो समस्त उत्तर, मध्य और पूर्व भारत में अधिकता से होता है। इसकी पत्तियाँ छोटी, बड़ी और कई आकार प्रकार की होती हैं और अधिकता से पशुओं के चारे के काम में आती हैं। गरमी के आरंभ में इसका पतझड़ हो जाता है। चैत से जेठ तक इसमें बहुत छोटे छोटे लंबोतरे और लाल रंग के फूल होते हैं। इसमें बेर से कुछ छोटे गोल फल भी लगते हैं जो देहात में खाने के काम में आते हैं।

गीदर–संज्ञा पुं० दे० "गीदड़"।

गीदी–वि० [फ़ा०] जिसे साहस न हो। डरपोक। कायर।

गीध–संज्ञा पुं० दे० "गृद्ध"।

गीधना*†–क्रि० अ० [सं० गृध्र=लुब्ध] एक बार कोई अनुकूल बात होते देख सदा उसके प्रयत्न में रहना। एक बार कोई लाभ उठा कर सदा उसका इच्छुक रहना। परचना। उ०—(क) कौन भाँति रहिहै बिरद अब देखिबी मुरारि। बीधे मो सों आय के गीधे गीधहि तारि।—बिहारी। (ख) गीध्यो ढीठ हैमतस्कर ज्यों अति आतुर मतिमंद।—सूर।

गीबत†–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) अनुपस्थिति। गैर-हाज़िरी। (२) पिशुनता। चुगलखोरी। चुगली।

गीर–संज्ञा स्त्री० [सं० गिर। गीः] वाणी। उ०—कुंज तजि गुंजत गहीर गीर तीर तीर रह्यो रंगभौन भरि भौंरन की भीर सों।—देव।

गीरथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति का एक नाम। (२) जीवात्मा।

गीरवाण, गीरवान*–संज्ञा पुं० [सं० गीर्वाण] देवता। सुर। उ०—चहूँ ओर सब नगर के लसत दिवालय चारु। आसमान तजि जनु रह्यौ गीरवान परिवारु।—गुमान।

गीर्ण–वि० [सं०] (१) वर्णित। कहा हुआ। (२) निगला हुआ।

गीर्णि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वर्णन। स्तुति। (२) निगलने की क्रिया।

गीर्देवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती। शारदा।

गीर्पति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति। (२) विद्वान्।

गीर्वाण–संज्ञा पुं० [सं०] देवता। सुर। उ०—गयो गिरा गीर्वाणन सों गुनि बहुरि बतावहु बाता।—विश्राम।

गीर्वाणकुसुम–संज्ञा पुं० [सं०] लवँग। लौंग।

गीर्लता–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकँगनी।

गीला–वि० [हिं० गलना] [स्त्री० गीली] भीगा हुआ। तर। नम। उ०—पग द्वै चलत ठठकि रहै ठाढ़ी मौन धरे हरि के रस गीली।—सूर।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जंगली लता।

गीलापन–संज्ञा पुं० [हिं० गीला+पन (प्रत्य०)] गीला होने का भाव। नमी। तरी।

गीली–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ जिसके हीर की लकड़ी चिकनी, भारी, मज़बूत और सुर्खी लिए पीले रंग की होती और मेज, कुरसियाँ आदि बनाने के काम में आती है। इसका पेड़ हिमालय की तराई में अधिकता से होता है। बरमी।

गीव*–संज्ञा पुं० दे० "गिउ", "ग्रीवा"।

गीष्पति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति। (२) विद्वान्। पंडित।

गुंगा†–वि० दे० "गूँगा"।

गुँगबहरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गूँगा+बहरा] एक प्रकार की लंबी

मछली जो देखने में साँप की तरह मालूम होती है। बाम। बाँबी।

गुंगा†–वि० दे० "गूँगा"।

गुंगी–संज्ञा स्त्री [हिं० गूँगा] दोमुहाँ साँप। चुकरैंड़।
वि० स्त्री० दे० "गूँगा", "गूँगी"।

गुँगुआना–क्रि० अ० [अनु०] (१) धुँआ देना। अच्छी तरह न जलना। उ०—विरह की ओदी लाकरी, सपचै औ गुँगुआय। दुख ते तबहीं बाँचि है, जब सगरो जरि जाय।—कबीर। (२) गूँ गूँ शब्द करना। अस्पष्ट शब्द निकालना। गूँगे की तरह बोलना।

गुंचा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) कली। कोरक। (२) नाच रंग। विहार। जश्न।
मुहा०—गुंचा खिलना = ख़ूब नाच रंग होना। जश्न होना। आनंद उड़ना।

गुंची–संज्ञा स्त्री० दे० "घुँघची"।

गुंज–संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्ज] (१) भौंरों के भनभनाने का शब्द। गुंजार। (२) आनंदध्वनि। कलरव। (३) दे० "गुंजा"।
यौ०—गुंजमाल। गुंजहार।
(४) सोने के तारों को गूँथ कर बनाया हुआ कई लड़ का गहना जो गले में पहना जाता है। गोप।
संज्ञा पुं० सलई का पेड़।

गुंजन–संज्ञा स्त्री० [सं०] भौंरों के गूँजने की क्रिया। भनभनाहट। कोमल मधुर ध्वनि निकालने की क्रिया।

गुंजना–क्रि० अ० [सं० गुंज] भौंरों का भनभनाना। मधुरध्वनि निकालना। गुनगुनाना। उ०—सुंदर बन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप-निकर मधु लोभा।—तुलसी।

गुंजनिकेतन–संज्ञा पुं० [सं० गुंज + निकेतन] भौंरा। मधुकर। उ०—अति मंजुल बंजुल कुंज बिराजैं। बहु गुंज निकेतन पुंजनि साजैं।—केशव।

गुंजरना–क्रि० अ० [हिं० गुंजार] (१) गुंजार करना। भौंरों का गूँजना। भनभनाना। मधुर ध्वनि निकालना। उ०—और भाँति कुंजन में गुंजरत भौंर भीर और डौर भौरन में बौरन के ह्वै गए।—पद्माकर। (२) शब्द करना। गरजना। उ०—बाघ सिंह गुंजरत, पुंज कुंजर तरु तोरत।—केशव।

गुंजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] घुँघची नाम की लता जो जंगल में झाड़ों पर चढ़ती है और जिसकी फलियों में से अरहर के बराबर ख़ूब लाल दाने निकलते हैं।
विशेष—दे० "घुँघची"।

गुंजाइश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) स्थान। जगह। अँटने की जगह। समाने भर को स्थान। अवकाश। उ०—इस कोठरी में दस आदमियों से अधिक की गुंजाइश नहीं है। (२) समाई। सुबीता। उ०—इस समय इतने की गुंजाइश तो हमारे यहाँ नहीं है।

गुंजान–वि० [फ़ा०] घना। अविरल। सघन।

गुंजायमान–वि० [सं०] मधुर ध्वनि करता हुआ। गुंजारता हुआ। गूँजता हुआ।

गुंजार–संज्ञा पुं० [सं० गुंज + आर] भौंरों की गूँज। भनभनाहट उ०—जहँ वृंदावन आदि अजर जहँ कुंजलता विस्तार। तहँ विहरत प्रिय प्रीतम दोउ निगम भृंग गुंजार।—सूर।

गुँजिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० गूँज = लपेटा हुआ पतला तार] एक प्रकार का जेवर जिसे औरतें कान में पहनती हैं।

गुंटा–संज्ञा पुं० [देश०] ताल। छोटा जलाशय।

गुंठा–संज्ञा पुं० [हिं० गठना] एक प्रकार का घोड़ा जो नाटे कद का होता है। टाँगन। उ०—कोई किसमी अुठार फुलवाई। गरी गुंठ जुम्मिल दरियाई।—विश्राम।
† वि० [देश०] नाटे कद का। नाटा। बौना।

गुंड–संज्ञा पुं० [?] मलार राग का एक भेद। उ०—पिकबैनी मृगलोचनी सारद ससि सम तुंड। राम सुयश सब गावहीं सस्वर सारँग गुंड।—तुलसी।
संज्ञा पुं० [सं०] कसेरू का पौधा।
वि० पिसा हुआ। चूर्ण किया हुआ।

गुँडई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० गुंडा] गुंडापन। शोहदापन। बदमाशी।

गुँडली–संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडली] (१) फेटा। कुंडली। (२) गेंडुरी। इडुरी।

गुंडा–वि० [सं० गुंडक = मलिन] [स्त्री० गुंडी] (१) दुर्वृत्ति। पापी। बदचलन। कुमार्गी। बदमाश। (२) छैला। चिकनिया।
संज्ञा पुं० बदमाश आदमी।

गुंडापन–संज्ञा पुं० [हिं० गुंडा + पन (प्रत्य०)] बदमाशी।

गुंडी–संज्ञा स्त्री० दे० "गेंडुरी"।

गुँदला–संज्ञा पुं० [सं० गुंडाला] नागरमोथा नाम की घास जो प्रायः दलदल के पास होती है।

गुँदीला†–वि० दे० "गोंदीला"।

गुँधना–क्रि० अ० [सं० गुध = क्रीड़ा] पानी में सान कर मसला जाना। माँड़ा जाना। साना जाना। उ०—आटा गुँध रहा है।
क्रि० अ० [सं० गुत्स वा गुत्य = गुच्छ] तागों, बाल की लटों, या इसी प्रकार की और वस्तुओं का गुच्छेदार लड़ी के रूप में बनना। गुँथना। जैसे चोटी गुँधना।

गुँधवाना–क्रि० स० [हिं० गूँधना का प्रे०] गूँधने का काम दूसरे से कराना।

गुँधाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० गूँधना] (१) गूँधने वा माड़ने की क्रिया वा भाव। (२) गूँधने वा माड़ने की मज़दूरी। (३) गूँधने की क्रिया वा भाव। (४) गूँधने वा गूँथने की मज़दूरी। जैसे, चोटी गुँधाई।

गुँधावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूँधना] (१) गूँधने वा गूँथने की क्रिया। (२) गूँथने वा गूँधने का ढंग।

गुंफ—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गुंफित] (१) उलझन। फँसाव। दो वा कई वस्तुओं का परस्पर गुत्थमगुत्था। (२) गुच्छा। (३) दाढ़ी। गलमुच्छा। (४) कारणमाला अलंकार।

गुंफन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गुंफित] उलझाव। फँसाव। गुत्थमगुत्था। गूँधना। गाँधना।

गुंबज—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुंबद] देवालयों की गोल छत।

यौ०—गुंबजदार।

गुंबजदार—वि० [फ़ा० गुंबद+दार] जिस पर गुंबज हो।

गुंबद—संज्ञा पुं० दे० "गुंबज"।

गुंबा—संज्ञा पुं० [हिं० गोल+अंब=आम] वह कड़ी गोल सूजन जो सिर या मत्थे पर चोट लगने से होती है। गुलमा।

गुंभी*—संज्ञा स्त्री० [सं० गुंफ=गुच्छा] अंकुर। गाभ। उ०—टरति न टारे यह छबि मन में चुभी।............सूरदास मोहन मुख निरखे उपजी सकल तन काम गुँभी।—सूर।

गुंमी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गून=रस्सी] पाल खींचने की रस्सी।

मुहा०—गुंमी बांधना=पाल को खींच खांच कर ठीक करना। (लश०)।

गुआ—संज्ञा पुं० [सं० गुवाक] (१) एक प्रकार की सुपारी। चिकनी सुपारी। उ०—गुआ सुपारी जायफर सब फर फरे अपूर। आस पास घन इँबिली अउ घन तार खजूर।—जायसी। (२) सुपारी। उ०—चींटा कुकर्म गुआ पुनि पूग सुपारी जाहि।—नंददास।

गुआर—संज्ञा स्त्री० [सं० गोराणी] ग्वार।

गुआरपाठा—संज्ञा पुं० दे० "ग्वारपाठा"।

गुआरी—संज्ञा स्त्री० दे० "ग्वार"।

गुआलिन—संज्ञा स्त्री० दे० "ग्वार"।

गुइयाँ—संज्ञा स्त्री० पुं० [हिं० गोहन=साथ] साथी। सखा। सखी। सहचरी। उ०—तुम्हारे धन्य भाग जो तुम्हारे पास सब से छुपके मैं जो इनकी लड़कपन की गुइयाँ हूँ मुझे अपने साथ ले के आई हैं।—अयोध्या। दे० "गोइयाँ"।

गुखरू—संज्ञा पुं० दे० "गोखरू"।

गुगरल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बत्तख।

गुगानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पानी के ऊपर की हलकी हिलोर जो थोड़ी हवा के कारण उठती है। खलमली। (लश०)

गुगुलिया—संज्ञा पुं० [अनु०] बंदर नचानेवाला। मदारी।

गुग्गुर—संज्ञा पुं० दे० "गुग्गुल"।

गुग्गुल—संज्ञा पुं० [सं०] एक काँटेदार पेड़ जो सिंध, काठियावाड़, राजपूताना, खानदेश आदि में होता है। इस पेड़ के छिलके को जाड़े के दिनों में स्थान स्थान पर छील देते हैं जिससे उन स्थानों से कुछ हरापन लिए भूरे रंग का गोंद निकलता है। यही गोंद बाज़ार में गुग्गुल के नाम से बिकता है। यह पेड़ वास्तव में मरुभूमि का है इससे अरब और अफ्रीका में इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं। बलसाँ और बोल (मुर) नाम के गोंद जो मक्का और अफ्रीका से आते हैं पश्चिमी गुग्गुल ही से निकलते हैं। इनमें से करम या बंदर-करम उत्तम और मीठिया या चिनाई-बोल मध्यम होता है। भारतवर्ष में गुग्गुल की चलान विशेष कर अमरावती से होती है। बंबई में इसे गारे में भी मिलाते हैं जो दर्जबंदी के काम में आता है। गुग्गुल को चंदन इत्यादि के साथ मिलाकर सुगंध के लिये जलाते हैं। वैद्यक में गुग्गुल वीर्य्य-जनक, बलकारक, टूटी हड्डी जोड़नेवाला, स्वरशोधक तथा वातव्याधि और कोढ़ को दूर करनेवाला माना जाता है। राजनिघंटु में गुग्गुल के रस के अनुसार पाँच भेद किए हैं। प्रयोगामृत में गुग्गुल की परीक्षा विधि इस प्रकार लिखी है—जो आग में गिरने से जल जाय, गरमी पाकर पिघल जाय, गरम और जल में डालने से घुल जाय, वह गुग्गुल उत्तम होता है। औषध में नया गुग्गुल काम में लाना चाहिए, पुराना नहीं। खाने के लिये गुग्गुल प्रायः शोध कर काम में लाया जाता है। इसे कई प्रकार से शोधते हैं। कोई गिलोय या त्रिफला के काढ़े में अथवा दूध में पकाते हैं, कोई दशमूल के गरम काढ़े में डाल कर उसे छान लेते हैं और फिर धूप में सुखा देते हैं।

पर्य्या०—कालनिर्यास। महिषाक्ष। पलंकष। जटायु। कौशिक। धूर्त्त। देवधूप। शिव। पुर। कुंभ। उलूखलक। सर्वसह। उष। कुंती। पवनद्विष्ट पुट। वायुघ्न। रूक्षगंधक।

(२) एक बड़ा पेड़ जो दक्षिण में कोंकण आदि प्रदेशों में होता है। इसके पत्ते जब तक नए रहते हैं प्याजी रंग के दिखाई पड़ते हैं। पच्छिमी घाट के पहाड़ों पर इन पेड़ों की बड़ी शोभा दिखाई पड़ती है। इनमें से एक प्रकार की राल या गोंद निकलता है जो दक्षिण का काला डामर कहलाता है। यह राल वारनिश बनाने के काम में विशेष आती है। पेड़ को राल-धूप और मंद-धूप भी कहते हैं। (३) सलई का पेड़ जिससे राल या धूप निकलती है।

गुच—संज्ञा पुं० [हिं० गोंछ] डाढ़ीदार भेड़। यह भेड़ पंजाब में पाई जाती है।

गुची—संज्ञा स्त्री० [सं० गुच्छ] सौ पानों की गड्डी। आधी ढोली।

गुच्ची—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) भूमि में बना हुआ बहुत छोटा गड्ढा। (२) वह छोटा गड्ढा जो लड़के गोली या गुल्ली डंडा खेलते समय बनाते हैं।

वि० बहुत छोटी। नन्ही। जैसे, गुच्ची आँख।

गुच्चीपारा, गुच्चीपाला—संज्ञा पुं० [हिं० गुच्ची=गड्ढा+पारना

=ढलाना] एक खेल जिसमें लड़के एक छोटा सा गड्ढा बना कर उसमें कौड़ियां फेंकते हैं।

गुच्छ, गुच्छक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुच्छा। एक में बँधे वा लगे हुए फूलों, फलों या पत्तियों का समूह। (२) घास की जूरी।

यौ०—गुच्छदंतिका। गुच्छपत्र। गुच्छपुष्प। गुच्छफल। गुच्छमूलिका। गुच्छार्द्ध।

(३) वह पौधा जिसमें दृढ़ कांड वा पेड़ी न हो, केवल पत्तियां वा पतली लचीली टहनियां फैलें। झाड़। जैसे, धान्य मल्लिका आदि। (४) बत्तीस लड़ी का हार। (५) मोती का हार। (६) मोर की पूँछ।

गुच्छदंतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कदली। केला।

गुच्छपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

गुच्छपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अशोक वृक्ष। (२) सतिवन वा छतिवन का पेड़। (३) रीठा। (४) धवई वा धाय का पेड़। धातकी।

गुच्छफल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रीठा। (२) निर्म्मली। (३) दौना। (४) मकोय। काकामाची। (५) अंगूर। (६) कदली।

गुच्छमूलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोंदला घास।

गुच्छा–संज्ञा पुं० [सं० गुच्छ] (१) एक में लगे वा बँधे कई पत्तों, फूलों वा फलों का समूह। जैसे, अंगूर का गुच्छा, फूलों का गुच्छा। (२) एक में लगी, गुँथी वा बँधी छोटी छोटी वस्तुओं का समूह। जैसे, घुँघुरुओं का गुच्छा, कुंजियों का गुच्छा। (३) फुलरा। फुँदना। झब्बा।

गुच्छातारा–संज्ञा पुं० [हिं० गुच्छा+तारा] कचपचिया नाम का तारा।

गुच्छार्द्ध–संज्ञा पुं० [सं०] चौबीस लड़ी का हार, किसी किसी के मत से सोलह लड़ी का हार।

गुच्छी–संज्ञा स्त्री० [सं० गुच्छ] (१) करंज। कंजा। (२) रीठा। (३) एक प्रकार का पौधा जो पंजाब के ठंढे स्थानों में होता है। इसके फूलों वा बीजकोश के गुच्छों की तरकारी बनती है और वे सुखा कर बाहर भेजे जाते हैं।

गुच्छेदार–वि० [हिं० गुच्छा+फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसमें गुच्छा हो।

गुज–संज्ञा पुं० [देश०] बाँस की एक कील जो तीखी और परे के गोड़ के छेदों में लगाई जाती है। (रेशम खोलनेवाले)

गुज़र–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) निकास। गति। उ०—उस रास्ते से गुज़र मुशकिल है। (२) पैठ। पहुँच। प्रवेश। उ०—वहाँ फ़रिश्तों तक का तो गुज़र नहीं, आदमी की कौन चलावे। (३) निर्वाह। कालक्षेप। उ०—इतने वेतन में कैसे गुज़र हो सकता है।

यौ०—गुज़र बसर। गुज़रबान। गुज़रगाह।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गुज़रगाह–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) रास्ता। बाट। (२) घाट जहाँ से कोई नदी पार की जाय।

गुज़रना–क्रि० अ० [फ़ा० गुज़र+ना (प्रत्य०)] (१) समय व्यतीत करना। होना। कटना। बीतना। उ०—रात तो जैसे तैसे गुज़री पर दिन कैसे कटेगा।

मुहा०—किसी पर गुज़रना=किसी पर (संकट वा विपत्ति) पड़ना। उ०—हम पर जो गुज़री, हमीं जानते हैं।

(२) किसी स्थान से हो कर आना वा जाना। उ०—बड़े लाट साहेब शिमला से कलकत्ता जाते समय बनारस से गुज़रेंगे।

मुहा०—गुज़र जाना=मर जाना। उ०—कई दिन हुए वे गुज़र गए।

†(३) नदी पार करना। (४) निर्वाह होना। पटना। निपटना। बनना। निभना। उ०—तुम चिंता न करो, उन दोनों की खूब गुज़रेगी।

गुज़र बसर–संज्ञा० पुं० [फ़ा०] निर्वाह। गुज़ारा। कालक्षेप।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गुज़रबान–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) मल्लाह। पार उतारनेवाला। (२) वह व्यक्ति जो घाट की उतराई वसूल करता हो।

गुजरात–संज्ञा पुं० [सं० गुर्जर+राष्ट्र] [वि० गुजराती] भारतवर्ष के पश्चिम प्रांत का एक देश जो राजपूताने के आगे पड़ता है।

गुजराती–वि० [हिं० गुजरात] (१) गुजरात देश का। गुजरात का निवासी। गुजरात देश संबंधी। गुजरात देश में उत्पन्न। जैसे, गुजराती इलायची। (२) गुजरात का बना हुआ। जैसे, गुजराती सेंदुर।

संज्ञा स्त्री० (१) गुजरात देश की भाषा। (२) छोटी इलायची।

गुज़रान–संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० "गुज़र (३)"।

गुजरिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० गूजर] गूजर जाति की स्त्री ग्वालिन। गोपी।

गुजरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गूजर] (१) कलाई में पहनने की एक प्रकार की पहुँची जिसके गोल दानों की कोर पर छोटी छोटी बिंदियाँ रहती हैं। मारवाड़िनें इसे बहुत पहनती हैं। (२) दीपकराग की एक रागिनी। (कोई कोई इसे मेघ राग की रागिनी मानते हैं)।

गुजरेटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गूजर] (१) गूजर जाति की कन्या। गूजर की बेटी। (२) गूजरी। ग्वालिन।

गुज़श्ता–वि० [फ़ा०] बीता हुआ। गत। व्यतीत। भूत (काल)।

✓**गुज़ारना**–क्रि० स० [फ़ा०] बिताना। काटना।

मुहा०—नमाज़ गुज़ारना=ईश्वर की प्रार्थना करना। अरज़ी गुज़ारना=किसी बड़े हाकिम के दरबार में प्रार्थनापत्र पेश करना।

गुज़ारा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) गुजर। गुजरान। निर्वाह। (२) वृत्ति जो किसी को जीवन-निर्वाह के लिये दी जाय। (३) नाव या घाट की उतराई। (४) महसूल लेने का स्थान जो सड़क पर हो।

गुज़ारिश–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] निवेदन।

गुजी†–[सं० गुह्य] नाक का मल जो सूख कर नथनों के भीतर ही जम जाता है। नकटी।

गुजुवा–संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० गूजी, गुजुई] एक प्रकार का काला कीड़ा वा गुबरैला जो बरसात में पैदा होता है। यह गोबर के नीचे बिल बना कर रहता है।

गुज्जरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गूजरी। (२) एक रागिनी जो भैरव राग की स्त्री है। (किसी किसी का मत है कि यह मेघ राग की स्त्री है।)

गुज्झा–संज्ञा पुं० [सं० गुह्यक] (१) गोझा नाम की बाँस की कील। दे० "गोझा"। (२) एक प्रकार की कँटीली घास। गोझा। (३) गूदा। रेशेदार गूदा।

† वि० छिपा हुआ। अप्रकट। गुप्त। भीतरी।

गुझरोट†*–संज्ञा पुं० [सं० गुह्य, प्रा० गुज्झ + सं० आवर्त्त] (१) कपड़े की सिकुड़न। शिकन। सिलवट। उ०—कर उठाय घूँघट करति, उसरन पट गुझरोट। सुख मोटैं लूटी ललन, लखि ललना की लोट।—बिहारी। (२) स्त्रियों की नाभि के आस पास का भाग जहाँ त्रिवली वा पेटी रहती है।

गुझरौट–संज्ञा पुं० दे० "गुझरोट"।

गुझिया–संज्ञा स्त्री० [सं० गुह्यक, प्रा० गुज्झअ, गुज्झा] (१) एक प्रकार की पकवान। कुसली। पिराक। (मैदे की छोटी लोई में मीठा मसाला आदि पूर भर कर उसे दोहर देते और फिर उसकी धनुषाकार औंठ वा किनारे को मोड़ मोड़ कर बंद कर देते हैं। अंत में इसी बंद लोई को घी में छान लेते हैं)। (२) खोए की एक मिठाई जो ऊपर लिखी पकवान के आकार की होती है और जिसके भीतर थोड़ी मिश्री अथवा इलायची और मिर्च रहती है।

गुझौट†*–संज्ञा पुं० दे० "गुझरौट"।

गुटकना–क्रि० अ० [अनु०] कबूतर की तरह गुटरगूँ करना।

†क्रि० स० [हिं० गटकना] (१) निगलना। (२) खा जाना।

गुटका–संज्ञा पुं० [सं० गुटिका] (१) दे० "गुटिका"। (२) छोटे आकार की पुस्तक। (३) लट्टू। (४) गुपचुप मिठाई। (५) एक प्रकार का मसाला जो जावित्री, पिस्ता, कत्था, लौंग, इलायची, सुपारी इत्यादि मिला कर बनाया जाता है और कहीं कहीं पान के स्थान पर खाया जाता है।

गुटबैंगन–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का कँटीला पौधा।

गुटरगूँ–संज्ञा स्त्री० [अनु०] कबूतरों की बोली।

गुटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बटिका। बटी। गोली। (२) एक सिद्धि जिसके अनुसार एक गोली वा गुटिका मुँह में रख लेने से कहते हैं कि जहाँ चाहे वहाँ चले जांय कोई नहीं देख सकता। उ०—अंजन, गुटिका, पादुका, धातुभेद, वैताल। वज्र रसायन जोगिनी, मोहिं सिद्ध यहि काल।—हरिश्चंद्र।

गुट्ट–संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ = समूह] समूह। झुंड। दल। यूथ। उ०—उन लोगों का गुट्ट ही अलग है।

मुहा०—गुट्ट बाँधना = झुंड इकट्ठा करना। उ०—डाकू गुट्ट बाँध कर चलते हैं। गुट्ट करना = मिल जुल कर सलाह करना।

गुट्टा–संज्ञा पुं० [हिं० गोटी] लाख की बनी हुई चौकोर गोटी जिनसे लड़कियाँ खेला करती हैं।

वि० [देश०] नाटा। ठेंगना।

गुट्ठल–वि० [हिं० गुठली] (१) (फल) जिसमें बड़ी गुठली हो। (२) जड़। मूर्ख। कूढ़ मग़ज़। (३) गुठली के आकार का।

संज्ञा पुं० (१) किसी वस्तु के इकट्ठा होकर जमने से बनी हुई गाँठ। गुलथी। उ०—न जाने यह रजाई कैसे भरी गई है कि जगह जगह गुट्ठल पड़ गए हैं।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(२) गिलटी।

गुठली–संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] किसी फल का बड़ा और कड़ा बीज। ऐसे फल का बीज जिसमें एक ही बड़ा बीज होता हो। जैसे आम की गुठली, बेर की गुठली।

गुड़ंबा–संज्ञा पुं० [हिं० गुड़ + आँब, आम] कच्चा आम जो उबाल कर शीरे में डाला गया हो।

गुड़–संज्ञा पुं० [सं०] कड़ाह में गाढ़ा पका कर जमाया हुआ ऊख का रस जो कतरे, बट्टी वा भेली के रूप में होता है।

विशेष—खजूर के फलों के रस का भी गुड़ बनता है।

मुहा०—कुल्हिया में गुड़ फूटना = (१) गुप्त रीति से कोई कार्य्य होना। छिपे छिपे कोई सलाह होना। (२) गुप्त रीति से कोई पाप होना। गुड़ भरा हँसिया = असमंजस का काम जिसे न तो करते ही बने और न छोड़ते ही। ऐसा काम जिसे करने से भी जी हिचकता है और छोड़ने को भी जी नहीं चाहता। जो गुड़ खायगा सो कान छेदावेगा = जो कुछ धन लेगा उसे कष्ट भी उठाना होगा। (लड़कों का कान छेदते समय प्रायः रीति है कि लड़कों के हाथ में कुछ मिठाई दे देते हैं जिसमें वे उसी में भूले रहें और झट से कान छेद दिए जाँय। गुड़ खायगी अँधेरे में आएगी = जो कुछ लाभ उठावेगा उसे समय पर काम देना ही पड़ेगा। गुड़ दिखा कर ढेला मारना = कुछ लालच देकर फिर ऐसा बरताव करना जिससे कुछ प्राप्त न हो, उलटा कष्ट उठाना पड़े। गुड़ दिए मरे तो ज़हर क्यों दे = जब कोमल व्यवहार से काम

निकले तब कड़ाई करने की क्या आवश्यकता। जब सीधे से काम चले तब कोई उग्र उपाय क्यों करे। **गुड़ खाना गुलगुलों से घिनाना** = कोई बड़ी बुराई करना और छोटी बुराई से बचना। किसी कार्य्य का बड़ा अंश करना और छोटे से दूर रहना। **गूँगे का गुड़** = दे० "गूँगा"। **गुड़ होगा तो मक्खियाँ बहुत आ जायँगी** = पास में धन होगा तो खानेवाले बहुत आजायँगे।

गुड़गुड़-संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो जल में नली आदि के द्वारा वेगपूर्वक वायु के घुसने और बुलबुला छूटने से होता है, जैसा हुक्के में।

गुड़गुड़ाना-क्रि० अ० [अनु०] गुड़गुड़ शब्द होना। (जल के भीतर वेग से नली आदि द्वारा वायु के घुसने से ऐसा शब्द होता है) उ०—आज तो पेट गुड़गुड़ा रहा है।

क्रि० स० [अनु०] हुक्का पीना। हुक्का वा फ़रशी को मुँह से लगा कर इस प्रकार खींचना कि उसमें से गुड़गुड़ शब्द निकले। उ०—तुम तो जब देखो तब हुक्का गुड़गुड़ाया करते हो।

गुड़गुड़ाना-क्रि० स० [देश०] गुड़ना का सकर्मक रूप।

गुड़गुड़ाहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड़गुड़ाना + हट (प्रत्य०)] गुड़गुड़ शब्द होने का भाव।

गुड़गुड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड़गुड़ाना] फ़रशी। एक प्रकार का हुक्का। पेचवान।

गुड़च-संज्ञा स्त्री० दे० "गुरुच"।

गुड़धनिया, गुड़धानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड़ + धान] लड्डू जो भुने हुए गेहूँ को गुड़ में पाग कर बाँधे जाते हैं। (ऐसे लड्डू प्रायः महाबीर वा गणेश को चढ़ाए जाते हैं)

गुड़ना-क्रि० स० [देश०] डंडे को इस तरह फेंकना कि वह अपने सिरों के बल पलटा खाता हुआ दूर तक चला जाय।

विशेष—लड़के एक प्रकार का खेल खेलते हैं जिसमें इस प्रकार डंडा फेंकते हैं।

गुड़हर-संज्ञा पुं० [हिं० गुड़ + हर] अड़हुल का पेड़ या फूल। जपा। उ०—भले पधारे पाहुने ह्वै गुड़हर को फूल।

विशेष—पुराना विश्वास है कि गुड़हर का फूल यदि घर में रक्खा जाता है तो लड़ाई होती है।

(२) एक छोटा वृक्ष। इसकी पत्तियाँ और इसके फूल अरहर के से होते हैं। इसकी दो तीन पत्तियाँ चबा कर यदि गुड़ खाया जाय तो गुड़ का स्वाद ही नहीं जान पड़ता।

गुड़हल-संज्ञा पुं० दे० "गुड़हर"।

गुड़ाकू-संज्ञा पुं० [हिं० गुड़] गुड़ मिला हुआ पीने का तमाकू।

गुड़ाकेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) अर्जुन।

गुड़िया-संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड़ वा गुड्डा] (१) कपड़ों की बनी हुई पुतली जिसे लड़कियाँ खेलती हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।

मुहा०—**गुड़िया सी** = छोटी और सुंदर। रूपवती। **गुड़िया सँवारना** = वित्त के अनुसार लड़की का व्याह करना। **गुड़ियों का खेल** = सहज काम। **गुड़ियों का व्याह** = (१) लड़कियों का खेल जिसमें वे गुड्डे और गुड़िया की शादी करती हैं। (२) गरीब आदमी का व्याह जिसमें बहुत धूम धाम नहीं होती।

गुड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गुड्डी] पतंग। चंग। कनकौवा। गुड्डी। उ०—गुड़ी उड़ी लखि लाल की अँगना अँगना माहिं। बैरी लौं दौरी फिरै छुवत छबीली छाहिं।—बिहारी।

संज्ञा स्त्री० † [सं० गुडिका] (१) गांठ। गोली। (२) कपट की गाँस। मन मोटाव। कीना। द्वेष।

गुड़ुच-संज्ञा स्त्री० दे० "गुरुच"।

गुड़ुरू-संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडल] (१) द्वार में वह लकड़ी का टुकड़ा जो नीचे दीवार में धँसा रहता है और जिस पर किवाड़ के घूमने के लिये गड्ढा बना रहता है। ठेहरी। चूर। (२) मंडलाकार रेखा। (३) छोटा गड्ढा या बिल।

गुड़ुवा-संज्ञा पुं० [सं० गुड़ = खेलने की गोली] कपड़े का बना हुआ पुतला।

गुडूची-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरुच। गिलोय।

गुड्डा-संज्ञा पुं० [सं० गुड़ = खेलने की गोली] गुड़ुवा। कपड़े का बना हुआ पुतला जिसे लड़कियाँ खेलती हैं।

मुहा०—गुड्डा बाँधना = अपकीर्ति करते फिरना। निंदा करना।

विशेष—भाट लोग जब अपने किसी जजमान से इच्छानुसार धन नहीं पाते तब एक लंबे बाँस में एक पुतला बाँध कर लटकाते हैं और उस पुतले को वही सूम जजमान मानकर उसकी निंदा करते फिरते हैं। इसी को गुड्डा बाँधना कहते हैं। अवध में "पुतला बाँधना" बोलते हैं जैसे कि गो० तुलसीदास ने लिखा है। उ०—अब तुलसी पूतरा बाँधि है सहि न जात मोसों परिहास एते।

संज्ञा पुं० † [हिं० गुड्डी] बड़ी पतंग।

गुड्डी-संज्ञा स्त्री० [सं० गुरु + उड्डीन] पतंग। कनकौवा। चंग। उ०—हम दासी बिन मोल की ऊधो ज्यौं गुड्डी बस डोर।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] (१) घुटने की हड्डी।

यौ०—हड्डी गुड्डी। उ०—ऐसी मार मारूँगा कि तेरी हड्डी गुड्डी न बचेगी।

(२) एक प्रकार का छोटा हुक्का। (३) चिड़ियों के डैनों वा परों की वह स्थिति जो उड़ने के कुछ पहले होती है। कुंदा।

गुड्डू-संज्ञा स्त्री० दे० "गुड़ुरू"।

संज्ञा पुं० [हिं० गुड़ुरू] एक छोटा कीड़ा जो धूल में घर बना कर रहता है। इसका घर भँवर के आकार का होता है।

बहुधा लड़के चींटी पकड़ कर उसमें डालते हैं जिसे वह कीड़ा खा जाता है।

गुण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गुणी] (१) किसी वस्तु में पाई जानेवाली वह बात जिसके द्वारा वह वस्तु दूसरी वस्तु से पहचानी जाय। वह भाव जो किसी वस्तु के साथ लगा हुआ हो। धर्म। सिफ़त।

विशेष—सांख्यकार तीन गुण मानते हैं। सत्व, रज और तम, और इन्हीं की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं जिससे सृष्टि का विकाश होता है। सतोगुण हलका और प्रकाश करनेवाला, रजोगुण चंचल और प्रवृत्त करनेवाला और तमोगुण भारी और रोकनेवाला माना गया है। तीनों गुणों का स्वभाव है कि वे एक दूसरे को दबा कर अपना प्रभाव दिखाते, एक दूसरे के आश्रय से रहते तथा एक दूसरे को उत्पन्न करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सांख्य में गुण भी एक प्रकार का द्रव्य ही है जिसके अनेक धर्म हैं और जिससे सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं। विज्ञानभिक्षु का मत है कि जिससे आत्मा के बंधन के लिये महत्तत्त्व आदि रज्जु तैयार होती है उसी को सांख्यकार ने गुण कहा है। वैशेषिक गुण को द्रव्य का आश्रित मानता है और उसने उसकी परिभाषा इस प्रकार की है—जो द्रव्य में रहनेवाला हो, जिसमें कोई गुण न हो, जो संयोग विभाग का कारण न हो वह गुण है। रूप, रस, गंध, स्पर्श, परत्त्व, अपरत्त्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह और वेग ये मूर्त्त द्रव्यों के गुण हैं। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये अमूर्त्त द्रव्यों के गुण हैं। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग ये मूर्त्त और अमूर्त्त दोनों के गुण हैं। गुण दो प्रकार के माने गए हैं, विशेष और सामान्य। रूप, रस, गंध, स्पर्श, स्नेह, सांसिद्धिक द्रवत्त्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये विशेष गुण हैं अर्थात् इनसे द्रव्यों में भेद जाना जाता है। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्त्व, अपरत्त्व, गुरुत्त्व, नैमित्तिक द्रवत्त्व, और वेग ये सामान्य गुण हैं। द्रव्य स्वयं आश्रय हो सकता है पर गुण स्वयं आश्रय नहीं हो सकता। कर्म संयोग विभाग का कारण होता है, गुण नहीं।

(२) निपुणता। प्रवीणता। (३) कोई कला या विद्या। हुनर।

यौ०—गुणग्राहक। गुणग्राही।

क्रि० प्र०—आना।—जानना।—सिखाना।—सीखना।

(४) असर। तासीर। प्रभाव। फल। उ०—यह दवा अवश्य अपना गुण दिखावेगी।

क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।

(५) तारीफ़ की बात। अच्छा स्वभाव। शील। सद्वृत्ति। उ०—यही तो उनमें बड़ा भारी गुण है कि वे क्रोध नहीं करते।

यौ०—गुणगाथा। उ०—प्रान पियारे की गुनगाथा साधु कहाँ तक मैं गाऊँ।—श्रीधर।

मुहा०—गुण गाना = प्रशंसा करना। तारीफ़ करना। गुण मानना = एहसान मानना। निहोरा मानना। कृतज्ञ होना।

(६) विशेषता। स्वभाव। लक्षण। खासियत। प्रवृत्ति। उ०—अपने इन्हीं गुणों से तो तुम मार खाते हो। (७) तीन की संख्या। (८) राजनीति में परराष्ट्र के साथ व्यवहार करने के ६ ढंग—संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय। (९) प्रकृति। (छांदोग्य) (१०) व्याकरण में 'अ', 'ए' और 'ओ' को गुण कहते हैं। (११) रस्सी या तागा। डोरा। सूत। (१२) धनुष की प्रत्यंचा। (१३) वह रस्सी जिससे मल्लाह नाव खींचते हैं।

प्रत्य० एक प्रत्यय जो संख्यावाचक शब्दों के आगे लगता है। यह जिस संख्या के आगे लगता है उतनी ही बार किसी विशेष संख्या, मात्रा वा परिमाण को सूचित करता है। जैसे, द्विगुण, चतुर्गुण।

गुणक–संज्ञा पुं० [सं०] वह अंक जिससे किसी अंक को गुणा करें।

गुणकर–वि० [सं०] फायदेमंद। लाभदायक।

गुणकरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो किसी के मत से भैरव राग की और किसी के मत से हिंडोल राग की भार्य्या मानी जाती है। हनुमत के मत से इसका स्वरग्राम इस प्रकार है।—प नि सा रा म प नि। अथवा—सा ग म प नि सा। इसके गाने का समय सबेरे १ दंड से ५ दंड तक है।

गुणकर्म–संज्ञा पुं० दे० "कर्म"

गुणकली–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी। दे० "गुणकरी"। उ०—सखि गावती अहलादिनी अहलादिनी वर रागिनी। गुणकली रामकली भली सुरकली, सरस सुहागिनी।—रघुराज।

गुणकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संगीत विद्या का पूर्ण ज्ञाता। (२) पाककर्त्ता। रसोइया। बावर्ची। पाचक। (३) पाकशास्त्र का ज्ञाता। (४) भीमसेन। (पांडव)

गुणकारक–वि० [सं०] फायदा करनेवाला। लाभदायक।

गुणकारी–वि० [सं० गुणकारिन] [स्त्री० गुणकारिणी] लाभदायक। फ़ायदेमंद। (औषध के लिये अधिक आता है।)

गुणगौरि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गौरी के समान गुणवाली कोई सौभाग्यवती स्त्री। पतिव्रता स्त्री। सोहागिन स्त्री। उ०—धनि धनि धनि तुव बहियाँ ए गुनगौरि। कंकन की जहँ कीमति लाख करोरि।—सेवक। (२) स्त्रियों का एक व्रत जो चैत में चौथ के दिन किया जाता है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ इस दिन व्रत करती है। उ०—चौस गुण गौरि के सु गिरिजा

गोसाइन को आवत यहाँ ही अति आनँद इतै रहै ।—पद्माकर ।

गुणग्राहक–संज्ञा पुं० [सं०] गुण की खोज करनेवाला मनुष्य । गुणियों का आदर करनेवाला मनुष्य । कदरदान ।
वि० गुण की खोज करनेवाला । गुणियों का आदर करनेवाला ।

गुणग्राही–वि० [सं० गुणग्राहिन्] [स्त्री० गुणग्राहिणी] गुण की खोज करनेवाला । गुणियों का आदर करनेवाला ।

गुणज्ञ–वि० [सं०] (१) गुण का जाननेवाला । गुण को पहचाननेवाला । गुण का पारखी । (२) गुणी ।

गुणज्ञता–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुण की जानकारी । गुण की परख । गुण की पहचान ।

गुणन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गुण्य, गुणनीय, गुणित] गुणा । ज़रब ।

गुणनफल–संज्ञा पुं० [सं०] वह अंक वा संख्या जो एक अंक को दूसरे अंक के साथ गुणा करने से आवे ।

गुणना–क्रि० स० [सं० गुणन] ज़रब देना । गुणन करना ।

गुणनीय–वि० [सं०] गुणा करने योग्य ।

गुणवंत–वि० [सं०] [स्त्री० गुणवती] जिसमें गुण हो । गुणी ।

गुणवती–वि० स्त्री [सं०] गुणवाली । जिसमें कुछ गुण हो ।

गुणवाचक–वि० [सं०] जो गुण को प्रकट करे ।
यौ०—गुणवाचक संज्ञा = व्याकरण में वह संज्ञा जिससे द्रव्य का गुण सूचित हो । विशेषण ।

गुणवाद–संज्ञा पुं० [सं०] मीमांसा में अर्थवाद का एक भेद । कुमारिल के अनुसार अर्थवाद तीन प्रकार का है, गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद । जहाँ विशेषण और विशेष्य का एक में अन्वय करने से ठीक अर्थ नहीं सिद्ध होता वहाँ विशेषण पद का कुछ दूसरा अर्थ कर लेते हैं और उसे अंगकथन वा गुणवाद कहते हैं । जैसे यजमानः प्रस्तरः । प्रस्तर शब्द का अर्थ है कुशमुष्टि । यहाँ विशेषण और विशेष्य के द्वारा कोई अर्थ नहीं निकलता इससे प्रस्तर का कुशमुष्टिधारी अर्थ कर लिया गया ।

गुणवान्–वि० [सं०] [स्त्री० गुणवती] गुणवाला । गुणी ।

गुणविधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] मीमांसा में वह विधि जिसमें गुण कर्म का विधान हो । जैसे 'दध्ना जुहोति' दही से अग्निहोत्र करे । अग्निहोत्र करने का विधि-वाक्य दूसरा है । अतः उसी अग्निहोत्र के अंतर्गत जो आहुति का विधान है उसकी विधि इस वाक्य में है।
विशेष—दे० "कर्म" ।

गुणव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों में मूलव्रतों की रक्षा करनेवाले तीन व्रत—दिग्व्रत, भोगोपभोगनियम और अनर्थ-दंड-निषेध ।

गुणसागर–वि० [सं०] गुणों का समुद्र । गुणों से भरा ।
संज्ञा पुं० [सं०] हिंडोल राग का एक पुत्र ।

गुणांक–संज्ञा पुं० [सं०] वह अंक जिस को गुणा करना हो ।

गुणा–संज्ञा पुं० [सं० गुणन] [वि० गुण्य, गुणित] गणित की एक क्रिया । एक अंक पर दूसरे अंक का ऐसा प्रयोग जिसके द्वारा वही फल निकलता है जो पहले अंक को उतनी बार अलग अलग रख कर जोड़ने से निकलता है जितना दूसरा अंक है । ज़रब ।
क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।—सीखना ।

गुणाढ्य–वि० [सं०] गुणपूर्ण । बहुत गुणोंवाला । उ०—सनाढ्य जाति गुनाढ्य है जग सिद्ध शुद्ध स्वभाव ।—केशव ।
संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध कवि जिसने पैशाची भाषा में वह बड़ा ग्रंथ लिखा था जिसके आधार पर पीछे से क्षेमेंद्र ने बृहत्कथा और सोमदेव ने कथासरित्सागर नाम की पुस्तकें लिखीं । कथासरित्सागर में गुणाढ्य की कथा इस प्रकार लिखी है । प्रतिष्ठानपुर में सोमशर्म्मा नाम का एक ब्राह्मण रहता था जिसे श्रुतार्थ नाम की एक परम सुंदरी कन्या थी । इस कन्या के साथ नागराज वासुकि के छोटे भाई कीर्तिसेन ने गांधर्व-विवाह किया । इसी कन्या के गर्भ से गुणाढ्य का जन्म हुआ । गुणाढ्य के बचपन ही में उसका पिता मर गया। गुणाढ्य ने दक्षिणापथ में जाकर खूब विद्याध्ययन किया और वह बड़ा प्रसिद्ध विद्वान् हो कर प्रतिष्ठान प्रदेश के राजा सातवाहन की सभा में रहने लगा । राजा संस्कृत नहीं जानता था, मूर्ख था । एक दिन वह अपनी रानी के व्यवहार से अपनी मूर्खता पर बड़ा लज्जित हुआ और उसने संस्कृत सीखने का विचार किया । गुणाढ्य ने उसे ६ वर्षों में व्याकरण सिखा देने का वादा किया । शर्ववर्म्मा नामक एक पंडित ने छः महीने में ही राजा को व्याकरण सिखा देने को कहा । इस पर गुणाढ्य ने चिढ़ कर कहा "यदि तुम राजा को छः महीने में सिखा दोगे तो मैं संस्कृत, प्राकृत आदि समस्त देशी भाषाओं का व्यवहार छोड़ दूँगा ।" शर्वशर्म्मा ने कलाप व्याकरण की रचना करके छः महीने में राजा को व्याकरण सिखा दिया । इस पर गुणाढ्य ने बस्ती का रहना छोड़ दिया और वह जंगल में जाकर पिशाचों के बीच रहने और उन्हीं की भाषा का व्यवहार करने लगा । वहाँ पर उससे काणभूति से साक्षात्कार हुआ जो कुबेर के शाप से पिशाच हो गया था । काणभूति के मुख से गुणाढ्य ने पुष्पदंत का कहा हुआ सप्तकथामय उपाख्यान सुना और उसे लेकर सात लाख श्लोकों का पिशाच भाषा का एक ग्रंथ लिखा ।

गुणातीत–वि० [सं०] गुणों से परे । जो गुणों के प्रभाव से अलग हो । त्रिगुणात्मिका से निर्लिप्त ।
संज्ञा पुं० परमेश्वर ।

गुणानुवाद–संज्ञा पुं० [सं०] गुणकथन । प्रशंसा । तारीफ़ । बड़ाई ।

गुणित–वि० [सं०] गुणा किया हुआ ।

गुणी–वि० [सं० गुणिन्] गुणवाला । जिसमें कोई गुण हो । जो किसी कला वा विद्या में निपुण हो ।

संज्ञा पुं० (१) निपुण मनुष्य । कलाकुशल पुरुष । हुनरमंद आदमी । उ०—जोरिय कोउ बड़ गुनी बुलाई ।—तुलसी । (२) झाड़ फूँक करनेवाला । नावत । ओझा । यंत्र मंत्र करनेवाला । उ०—श्याम भुजंग डस्यो हम देखत ल्यावहु गुणी बोलाई । रोवत जननि कंठ लपटानी सूर श्याम गुनराई ।—सूर ।

गुणीभूत व्यंग्य–संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में वह व्यंग्य जो प्रधान न हो वरन् वाच्यार्थ के साथ गौण रूप से आया हो ।

गुणेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीनों गुणों पर प्रभुत्व रखनेवाला । परमेश्वर । ईश्वर । (२) चित्रकूट पर्वत ।

गुणोपेत–वि० [सं०] (१) गुणी । गुणयुक्त । जिसमें गुण हो । (२) किसी कला में निपुण ।

गुण्य–संज्ञा पुं० [सं०] वह अंक जिसको गुणा करना हो ।

गुण्यांक–संज्ञा पुं० [सं०] वह अंक जो गुणा किया जाय ।

गुतेला–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की मछली जिसे बंगू भी कहते हैं ।

गुत्ता†–संज्ञा पुं० [देश०] (१) लगान पर खेत देने का व्यवहार । (२) लगान ।

गुत्थ–संज्ञा पुं० [हिं० गुथना] (१) हुक्के के नैचों की वह बुनावट जो चटाई की बुनावट के ढंग की होती है । (२) इसी बुनावट का नैचा ।

गुत्थमगुत्था–संज्ञा पुं० [हिं० गुथना] (१) उलझाव । फँसाव । दो वा कई वस्तुओं का ऐसा मिलना वा जुटना कि दोनों के कई अंग कई ओर से आकर लिपट गए हों । (२) हाथा-पाई । भिड़ंत । लड़ाई ।

गुत्थी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गुथना] वह गाँठ जो कई वस्तुओं के एक में गुथने से बने । गिरह । उलझन ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

गुत्स–संज्ञा पुं० [सं०] दे० **"गुच्छ"** ।

गुथना–क्रि० अ० [सं० गुत्सन, प्रा० गुत्थन] (१) कई वस्तुओं का तागे आदि के द्वारा एक में बँधना वा फँसना । कई वस्तुओं का एक लड़ी वा गुच्छे में नाथा जाना । (२) किसी वस्तु का दूसरी वस्तु में सुई तागे आदि के सहारे टँकना । गाँथा जाना । उ०—फूल में मोती गुथे हुए थे । (३) भद्दी सिलाई होना । टाँका लगना । टाँके वा सिलाई द्वारा दो वस्तुओं का जुड़ना । (४) एक का दूसरे के साथ लड़ने के लिये खूब लिपट जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

गुथुवाँ–वि० [हिं० गुथना] जो गुथ कर बनाया गया हो ।

गुथवाना–क्रि० स० [हिं० गूथना का प्रे०] गूथने का काम करवाना ।

गुद–संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँड़ ।

गुदकार, गुदकारा–वि० [हिं० गूदा वा गुदार] (१) गूदेदार । जिस में गूदा हो । (२) गुदगुदा । मोटा । उ०—चारु कपोल गोल गुदकारे अरु सुंदर सी ठोड़ी । परति धाइ कै होड़ा होड़ी सब की डीठि निगोड़ी ।—सूदन ।

गुदकील—संज्ञा पुं० [सं०] अर्श रोग । बवासीर ।

गुदगुदा–वि० [हिं० गूदा] (१) गूदेदार । मांसल । मांस से भरा हुआ । (२) गुदगुदा । जिसकी सतह दबाने से दब जाय । मुलायम ।

गुदगुदाना–क्रि० अ० [हिं० गुदगुदा] (१) काँख, तलवे, पेट आदि मांसल स्थानों पर उँगली आदि फेरना जिससे सुरसुराहट वा मीठी खुजली मालूम हो और आदमी हँसने और उछलने कूदने लगे । किसी को हँसाने वा छेड़ने के लिये उसके तलवे काँख आदि को सुहराना । (२) मनबहलाव वा विनोद के लिये छेड़ना ।

मुहा०—गुदगुदाना वहीं तक जहाँ तक हँसी आवे = उतनी हँसी दिल्लगी करना जितनी अच्छी लगे ।

(३) चित्त को चलायमान करना । उमगाना । उत्कंठा उत्पन्न करना ।

गुदगुदाहट–संज्ञा स्त्री० दे० "गुदगुदी" ।

गुदगुदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गुदगुदाना] (१) वह सुरसुराहट वा मीठी खुजली जो काँख, पेट आदि मांसल स्थानों पर उँगली आदि छू जाने से होती है ।

क्रि० प्र०—लगना ।—होना ।

मुहा०—गुदगुदी करना = गुदगुदाना ।

(२) उत्कंठा । शौक़ । (३) आह्लाद । उल्लास । उमंग । (४) प्रसंगेच्छा । काम का वेग । चुल ।

गुदग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] कोष्टबद्ध का रोग । उदावर्त्त रोग ।

गुदड़िया–संज्ञा पुं० [हिं० गूदड़] (१) गुदड़ी पहनने वा ओढ़नेवाला ।

यौ०—गुदड़िया फ़क़ीर = गुदड़ी पहननेवाला फ़क़ीर । गुदड़िया पीर = गाँव के पास का वह पेड़ जिस पर गवाँर चिथड़े इत्यादि बाँधते और मनौती मानते हैं ।

(२) फटे पुराने कपड़े आदि बेचनेवाला । (३) खेमा, फ़र्श, दरी आदि भाड़े पर देनेवाला ।

गुदड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गूथना = मोटी सिलाई करना] फटे पुराने कपड़ों की कई तहों को एक में गाँथ वा सी कर बनाया हुआ ओढ़ना या बिछावन । फटे पुराने टुकड़ों को जोड़ कर बनाया हुआ कपड़ा । कंथा । (साधुओं की गुदड़ी में कभी कभी रंग बिरंगे कपड़ों के जोड़ भी लगते हैं ।

मुहा०—गुदड़ी में लाल = तुच्छ स्थान में उत्तम वस्तु । छोटे

स्थान में बहुमूल्य वस्तु वा गुणी व्यक्ति । गुदड़ी का लाल = कोई ऐसा धनी वा गुणी जिसके रूप रंग वेश आदि से उसका धन या गुण न प्रगट होता हो । क्या गुदड़ी है ? = क्या वित्त है ? क्या मजाल है ? क्या हकीकत है ?

गुदड़ी बाज़ार–संज्ञा पुं० [हिं० गुदड़ी + फ़ा० बाज़ार । वा गुजरी बाज़ार] वह बाज़ार जहाँ फटे पुराने कपड़े वा टूटी फूटी चीजें बिकती हों । यह बाज़ार प्रायः संध्या के समय लगता है ।

गुदनहारी–संज्ञा स्त्री० दे० "गोदनहारी" ।

गुदना–संज्ञा पुं० दे० "गोदना" ।

क्रि० अ० [हिं० गोदना] चुभना । धँसना । गड़ना । खुभना ।

गुदनी–संज्ञा स्त्री० दे० "गोदनी" ।

गुदपाक–संज्ञा पुं० [सं०] गुदा के पक जाने का रोग ।

विशेष—छोटे बच्चों को यह रोग बहुधा हुआ करता है ।

गुदभ्रंश–संज्ञा पुं० [सं०] काँच निकलने का रोग ।

गुदमा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा और मुलायम कंबल जो ठंढे पहाड़ी देशों में बुना जाता है ।

गुदरना*‡–क्रि० अ० [फ़ा० गुजर + हिं० ना (प्रत्य०)] (१) त्याग करना । अलग रहना । दरगुज़र करना । उ०—मिलि न जाय नहिं गुदरत बनई । सुकवि लखन मन की गति भनई ।—तुलसी । (२) निवेदन करना । हाल कहना । उ०—तब द्वापर ही नृप सों गुदरे । शुकदेव अबैं दरबार खरे ।—केशव ।

गुदरानना*‡–क्रि० स० [फ़ा० गुजरान + हिं० ना (प्रत्य०)] (१) पेश करना । सामने रखना । उपस्थित करना । नज़र करना । भेंट देना । उ०—गुदरानी तेहि दूरि ते पारिजात की माल । —गुमान । (२) निवेदन करना । हाल कहना । उ०—देखि तिन्हैं तब दूरि ते गुदरान्यो प्रतिहार । आये विश्वामित्र जू जनु दूजो करतार ।—केशव ।

गुदरिया‡–संज्ञा स्त्री० दे० "गुदड़ी" ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नीबू ।

गुदरी†–संज्ञा स्त्री० दे० "गुदड़ी" ।

गुदरैन*†–संज्ञा स्त्री० [हिं० गुदरना] (१) पढ़ा हुआ पाठ शुद्धतापूर्वक सुनाना, जिससे ज्ञात हो जाय कि पाठ भली भाँति याद किया गया है । जायज़ा । (२) परीक्षा । इम्तहान । परताल । उ०—सारों शुक शुभ मराल, केकी कोकिल रसाल बोलत कल पारावत भूरि भेद गुनिये । मनहु मदन पंडित ऋषि शिष्य गुणन मंडित करि अपनी गुदरैन देन पठये प्रभु सुनिये । —केशव ।

गुदांकुर–संज्ञा पुं० [सं०] बवासीर । अर्श ।

गुदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मलद्वार । गाँड़ ।

गुदाज़–वि० [फ़ा०] गूदेदार । गदराया हुआ । गुदकारा । मांस से भरा हुआ ।

गुदाना–क्रि० स० [हिं० गोदना का प्रे०] गोदने की क्रिया कराना ।

गुदाम–संज्ञा पुं० दे० "गोदाम" ।

‡ संज्ञा पुं० [अं० बटन, हिं० बुताम] बटन । घुंडी ।

गुदार†–वि० [हिं० गूदा] गूदेदार । जिसमें अधिक गूदा हो । मँसीला । गुदाज़ । गुदकारा ।

गुदारा*†–संज्ञा पुं० [फ़ा० गुज़ारा] (१) नाव पर नदी पार करने की क्रिया । उतारा । उ०—यहि विधि राति लोग सब जागा । भा भिनसार गुदारा लागा ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—लगना ।

(२) दे० "गुज़ारा" ।

वि० दे० "गुदार" ।

गुदियारा†–वि० दे० "गुदकारा" ।

गुदी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] नदियों के किनारे का वह स्थान जहाँ नावें बनती हैं या मरम्मत के लिये रक्खी जाती हैं ।

गुदुरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० गदराना] (१) मटर की फली । (२) एक प्रकार का कीड़ा जो मटर और चने की फ़सल को हानि पहुँचाता है ।

गुद्दा†–संज्ञा पुं० दे० "गूदा" ।

संज्ञा पुं० [देश०] पेड़ की मोटी डाल ।

गुद्दी†–संज्ञा पुं० [हिं० गूदा] (१) मींगी । गिरी । किसी फल के बीज के भीतर का गूदा । मग्ज़ । (२) सिर का पिछला भाग । त्योंड़ी ।

मुहा०—आँखें गुद्दी में होना वा चली जाना = सुझाई न देना । देख न पड़ना । समझ में न आना । किसी वस्तु के प्रत्यक्ष होते हुए भी उसे न देखना वा न समझना वा न मानना । गुद्दी नापना = गुद्दी पर धौल लगाना । गुद्दी की नागिन = गरदन के पीछे बालों की भौंरी जिसे लोग अशुभ समझते हैं । गुद्दी से जीभ खींचना = ज़बान खींच लेना । बहुत कड़ा दंड देना । (गाली)

(३) हथेली का मांस ।

गुन*†–संज्ञा पुं० दे० "गुण" ।

गुनगुना–वि० [अनु०] नाक में बोलनेवाला ।

वि० दे० "कुनकुना" ।

गुनगुनाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) गुनगुन शब्द करना । (२) नाक में बोलना । (३) अस्पष्ट स्वर में गाना ।

गुनवंत†–वि० [हिं० गुन + वंत (प्रत्य०)] [स्त्री० गुनवंती] जिस में कोई गुण हो । गुणी ।

गुनहगार–वि० [फ़ा०] (१) पापी । (२) दोषी । अपराधी ।

गुनहगारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) पाप । (२) दोष । अपराध ।

गुनही†–संज्ञा पुं० [फ़ा० गुनाह] गुनहगार । अपराधी । उ०—जौ गुनही तौ मारिए आँखिन माँहि अगोटि ।—बिहारी ।

गुना–संज्ञा पुं० [सं० गुणन] (१) एक प्रत्यय जो केवल संख्यावा-

चक शब्दों के अंत में लगता है। यह जिस संख्या के अंत में लगता है उतनी ही बार कोई मात्रा, संख्या या परिमाण सूचित करता है। जैसे, दुगुना, चौगुना, दसगुना, बीसगुना। (२) गुणा। (गणित)

गुनाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) पाप। (२) दोष। क़सूर। अपराध।

गुनाही—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) पाप करनेवाला। पापी। (२) अपराध करनेवाला। दोषी। क़ुसूरवार।

गुनिया†—संज्ञा पुं० [हिं० गुणी] वह व्यक्ति जिसमें गुण हो। गुणवान्।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कोन] राजों बढ़इयों और संगतराशों का एक औज़ार जिससे वे कोने की सीध नापते हैं। साधन। दे० "गोनिया"।

संज्ञा पुं० [सं० गुण] वह मल्लाह जो नाव की गून खींचता है। गुनरखा।

गुनी—वि०, संज्ञा पुं० दे० "गुणी"।

गुनोबर—संज्ञा पुं० [फ़ा० सनोबर] एक प्रकार का देवदार या सनोबर जो उत्तर-पश्चिमी हिमालय में ६००० से १०००० फुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी लकड़ी बहुत मज़बूत और कड़ी होती है। पर उसका कोई विशेष उपयोग नहीं होता। चिलगोजा नामक मेवा इसी का फल है। इस वृक्ष को चीरी भी कहते हैं।

गुन्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुण, हिं० गून = रस्सी] एक प्रकार का कोड़ा जिससे ब्रजमंडल में होली के अवसर पर स्त्री पुरुष एक दूसरे को मारते हैं।

गुपचुप—क्रि० वि० [हिं० गुप्त + चुप] बहुत गुप्त रीति से। छिपाकर। चुपचाप। चुपके से। जैसे, तुम अपना काम कर के वहाँ से गुपचुप चले आना।

संज्ञा स्त्री० (१) एक प्रकार की मिठाई जो बहुत हलकी होती है और मुँह में रखते ही घुल जाती है। यह खोवे और मैदे या सिंघाड़े के आटे को घी में पकाकर और शीरे में डाल कर बनाई जाती है। (२) लड़कों का एक खेल जिसमें एक गाल फुलाता है और दूसरा उस पर घूँसा मारता है। (३) एक प्रकार का खिलौना।

गुपाल—संज्ञा पुं० दे० "गोपाल"।

गुप्त—वि० [सं०] (१) छिपा हुआ। पोशीदा।

यौ०—गुप्त चर। गुप्त गोष्ठी। गुप्त दान।

(२) गूढ़। जिसके जानने में कठिनता हो। (३) रक्षित।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) पदवी जिसका व्यवहार वैश्य अपने नाम के साथ करते हैं। (२) एक प्राचीन राजवंश जिसने पहले मगध देश में राज्य स्थापित करके सारे उत्तरीय भारत में अपना साम्राज्य फैलाया। इस वंश में समुद्र गुप्त बड़ा प्रतापी सम्राट हुआ। इस वंश का राज्य ईसा की ५वीं और ६वीं शताब्दी में वर्त्तमान था। चंद्रगुप्त, समुद्रगुप्त और स्कंदगुप्त आदि इसी वंश में हुए थे। गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त का दूसरा नाम विक्रमादित्य भी था। बहुत लोगों का मत है प्रसिद्ध विक्रमादित्य चंद्रगुप्त ही हैं।

गुप्त काशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तीर्थ जो हरिद्वार और बदरीनाथ के बीच में है।

गुप्त चर—संज्ञा पुं० [सं०] वह दूत जो किसी बात का चुपचाप भेद लेता हो। भेदिया। जासूस।

गुप्त दान—संज्ञा पुं० [सं०] वह दान जिसे देते समय दाता ही जाने और कोई न जाने। (ऐसा दान लोग प्रायः बिना अपना नाम प्रकट किए अथवा वस्तु को छिपा कर देते हैं। ऐसा दान बहुत श्रेष्ठ समझा जाता है।)

गुप्त मार—संज्ञा स्त्री० [सं० गुप्त + हिं० मार] (१) ऐसा आघात जिसका शरीर पर कुछ चिह्न न रहे। ऐसी मार जिससे शरीर से रक्त आदि न निकले, जैसे घूँसे, थप्पड़ आदि की। भीतरी मार। (२) छिपा हुआ दाँव पेँच। ऐसा अनिष्ट जो बहुत छिपा कर किया जाय।

गुप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह नायिका जो सुरति छिपाने का उद्योग करती है। यह छ प्रकार की परकीया नायिकाओं में से एक मानी गई है। काल के अनुसार इसके तीन भेद हैं—(क) भूत सुरति गुप्ता। (ख) वर्त्तमान सुरति गुप्ता और (ग) भविष्य सुरति गुप्ता। (२) रखी हुई स्त्री। सुरेतिन।

गुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छिपाने की क्रिया। (२) रक्षा करने की क्रिया। (३) तंत्र के अनुसार ग्रहण किए जानेवाले मंत्र का एक संस्कार। (४) कारागार। कैदखाना। (५) गुफा। (६) गड्ढा। अहिंसा आदि योग के अंग। यम।

गुप्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० गुप्त] वह छड़ी जिसके अंदर गुप्त रूप से किरच या पतली तलवार इस प्रकार रखी हो कि आवश्यकता पड़ने पर तुरंत बाहर निकाली जा सके।

क्रि० प्र०—चलाना।

गुप्तोत्प्रेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उत्प्रेक्षा जिसमें "मानो", "जानो" आदि सादृश्य वाचक शब्द न हों। प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा।

गुप्फा—संज्ञा पुं० [सं० गुम्फ] (१) फुँदना। झब्बा। (२) फूलों का गुच्छा।

गुफा—संज्ञा स्त्री० [सं० गुहा] वह गहरा अँधेरा गड्ढा जो ज़मीन या पहाड़ के नीचे बहुत दूर तक चला गया हो। कंदरा। गुहा।

गुफ़्गू—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बातचीत। वार्त्तालाप।

गुबरैला—संज्ञा पुं० [हिं० गोबर + ऐला (प्रत्य०)] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो गोबर और मल आदि खाता और इकट्ठा

करता है। यह गोबर की गोलियाँ लुढ़काता हुआ प्रायः खेतों आदि में पाया जाता है।

गुबार—संज्ञा पुं० [अ०] (१) गर्द। धूल।

यौ०—गर्द गुबार।

क्रि० प्र०—उठना।—उड़ना।—आना।

(२) मन में दबाया हुआ क्रोध, दुःख या द्वेष आदि।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।—रखना।

गुबारा—संज्ञा पुं० दे० "गुब्बारा"।

गुबिंद*—संज्ञा पुं० दे० "गोबिंद"।

गुब्बा—संज्ञा पुं० [देश०] रस्सी के बीच में डाला हुआ फंदा। (लश०)

गुब्बाड़ा—संज्ञा पुं० दे० "गुब्बारा"।

गुब्बारा—संज्ञा पुं० [हिं० कुप्पा] (१) वह थैली या उसके आकार की और कोई चीज़ जिसके अंदर गरम हवा या हवा से हलकी किसी प्रकार की भाप आदि भर कर आकाश में उड़ाते हैं। इसके बनाने में पहले रेशम या इसी प्रकार की और किसी चीज़ के थैले पर रबर की या और वार्निश चढ़ा कर उसमें से हवा या भाप निकलने का मार्ग बंद कर देते हैं और तब उसमें गरम हवा या हवा से हलकी और कोई भाप भर देते हैं। इस थैले को एक जाल में भर कर उस जाल के नीचे कोई बड़ा संदूक या खटोला बाँध देते है। जिसमें आदमी बैठते हैं। गुब्बारा हवा से हलका होने के कारण आकाश में उड़ने लगता है। उसे नीचे लाने के लिये इसमें की गरम हवा या भाप निकाल देते हैं। (२) गुब्बारे के आकार का कागज़ का बना हुआ बड़ा गोला जिसके नीचे तेल से भीगा हुआ कपड़ा जला कर रख देते हैं। इस के धूएँ से गोला भर जाता और आकाश में उड़ने लगता है। इसका व्यवहार आतिशबाज़ी में या विवाह आदि शुभ अवसरों पर होता है। (३) एक प्रकार का बड़ा गोला जो आकाश की ओर फेंकने पर फट जाता है और जिसमें से आतिशबाज़ी छूटती है।

क्रि० प्र०—उड़ना।—उड़ाना।—छूटना।—छोड़ना।

गुभ—संज्ञा पुं० [देश०] समुद्र की खाड़ी। (लश०)

गुभीला—संज्ञा पुं० [देश०] गोटा जो मल रुकने के कारण पेट में पड़ जाता है।

गुम—वि० [फ़ा०] (१) गुप्त। छिपा हुआ। अप्रकट। (२) अप्रसिद्ध। (३) खोया हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—जाना।—होना।

यौ०—गुमनाम। गुमराह।

गुमक—संज्ञा स्त्री० दे० "गमक"।

√**गुमकना**—क्रि० स० [सं० गम] शब्द का भीतर ही भीतर गूँजना।

गुमका†—संज्ञा पुं० [देश०] भूसी से दाना अलग करने का काम।

गुमची†—संज्ञा स्त्री० [सं० गुंजा] गुंजा। घुमची।

गुमटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कीड़ा जो कपास के फूल को नष्ट कर देता है जिससे फसल मारी जाती है।

संज्ञा पुं० [सं० गुंबा + टा (प्रत्य०)] वह गोल सूजन जो मत्थे या सिर पर चोट लगने से होती है। गुलमी।

गुमटी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुंबद] मकान के ऊपरी भाग में सीढ़ी या कमरों आदि की छत जो शेष भाग से अधिक ऊपर उठी हुई होती है।

संज्ञा पुं० [?] नाव या जहाज़ में का पानी बाहर फेंकनेवाला मल्लाह या खलासी।

गुमना†—क्रि० अ० [फ़ा० गुम] गुम होना। खो जाना।

गुमनाम—वि० [फ़ा०] अप्रसिद्ध। अज्ञात। जिसे कोई न जानता हो।

गुमर—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुमान] (१) अभिमान। घमंड। शेखी। (२) मन में छिपाया हुआ क्रोध या द्वेष आदि। गुबार (३) धीरे धीरे की बातचीत। कानाफूसी। उ०—मेरे नैन अंजन तिहारे अधरन पर शोभा देखि गुमर बढ़ायो सब सखियाँ।—रसकुसुमाकर।

गुमराह—वि० [फ़ा०] (१) कुपथगामी। बुरे मार्ग में चलनेवाला। (२) भूला हुआ। भटका हुआ।

गुमराही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) भूल। भ्रम। (२) कुपंथ। बुरा मार्ग।

गुमान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) अनुमान। कयास। (२) घमंड। अहंकार। गर्व।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गुमाना†—क्रि० स० [फ़ा० गुम = खोया हुआ] खोना। गँवाना।

गुमानी—वि० [हिं० गुमान] घमंडी। अहंकारी। गरूर करनेवाला।

गुमाश्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह मनुष्य जो किसी बड़े व्यापारी या कोठीवाल की ओर से बही आदि लिखने या माल ख़रीदने और बेचने पर नियुक्त हो।

गुमाश्तागीरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) गुमाश्ते का पद। (२) गुमाश्ते का काम।

√**गुमिटना**†—क्रि० अ० [सं० गुम्फित] लिपटना। लपेटा जाना।

√**गुमेटना**†—क्रि० स० [सं० गुम्फित] लपेटना।

गुम्मट—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुंबद] गुंबद। गुंबज।

गुम्मा—संज्ञा पुं० [देश०] बड़ी मोटी ईंट जो अंगरेजी ढंग की इमारतों में लगती है।

गुरंबा†—संज्ञा पुं० दे० "गुड़ंबा"।

गुर—संज्ञा पुं० [सं० गुरु मंत्र] वह साधन या क्रिया जिसके करते ही कोई काम तुरंत हो जाय। मूलमंत्र। सार।

संज्ञा पुं० [सं० गुण] तीन की संख्या। (डिं०)

†संज्ञा पुं० दे० "गुड़"।

†संज्ञा पुं० दे० " गुरु "।

गुरखई†–संज्ञा स्त्री० [सं० गो + हिं० रखना] एक प्रकार की रेहन वा बंधक।

गुरखाई†–संज्ञा स्त्री [देश०] वह रेहन जिसमें रेहन रखनेवाला रेहन रक्खी हुई ज़मीन की मालगुज़ारी देता है।

गुरगा–संज्ञा पुं० [सं० गुरुग] [स्त्री० गुरगी] (१) गुरु का अनुगामी। चेला। शिष्य। (२) टहलुआ। नौकर। छोकरा। अनुचर। (३) चर। दूत। गुप्त चर। जासूस।

मुहा०—गुर्गे छूटना = दूतों वा गुप्त चरों का किसी कार्य्य के लिये प्रस्थान करना।

गुरगाबी–संज्ञा पुं० [फ़ा०] मुंडा जूता।

गुरच–संज्ञा पुं० दे० " गुरुच "।

गुरचियाना†–क्रि० अ० [हिं० गुरुच] सिकुड़ कर टेढ़ा मेढ़ा हो जाना।

गुरचो†–संज्ञा स्त्री० [हिं० गुरुच] सिकुड़न। बट। बल।

गुरचों†–संज्ञा स्त्री० [अनु०] परस्पर धीरे धीरे बातें करना। कानाफूसी।

गुरज–संज्ञा पुं० दे० "गुर्ज"।

गुरजा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसे लोवा भी कहते हैं।

गुरदा–संज्ञा पुं० [फ़ा० । सं० गोर्द] (१) रीढ़दार जीवों के अंदर का एक अंग जो कलेजे के निकट होता है। इसका रंग लाली लिए भूरा और आकार आलू का सा होता है। इसके चारों ओर चरबी मढ़ी होती है। साधारणतः जीवों में दो गुरदे होते हैं जो रीढ़ के दोनों ओर स्थित रहते हैं। शरीर में इनका काम पेशाब को बाहर निकालना और खून को साफ़ रखना है। यदि इनमें किसी प्रकार का दोष आ जाय तो रक्त बिगड़ जाता और जीव निर्बल हो जाता है। मनुष्य में बायाँ गुरदा कुछ ऊपर की ओर और दाहिना कुछ नीचे की ओर हट कर होता है। मनुष्य के गुरदे प्रायः ८–९ अंगुल लंबे ५ अंगुल चौड़े और २ अंगुल से अधिक मोटे होते हैं। (२) साहस। हिम्मत। जैसे, (क) वह बड़े गुरदे का आदमी है। (ख) यह बड़े गुरदे का काम है। (३) एक प्रकार की छोटी तोप। (४) लोहे का एक बड़ा करछा या चमचा जिससे गुड़ बनाते समय उबलता हुआ पाग चलाते हैं।

गुरनियआलू–संज्ञा पुं० [देश०] रतालू जमीकंद आदि की जाति का एक कंद जो बंगाल और मध्य, पश्चिम तथा दक्षिण भारत में होता है। इसका रंग ऊपर से लाल होता है और इसकी बहुत बड़ी लता होती है।

गुरमुख–वि० [हिं० गुरु + मुख] जिसने गुरु से मंत्र लिया हो। दीक्षित।

गुरम्भर†–संज्ञा पुं० [हिं० गुड़ + अंब] मीठे आम का वृक्ष। आम का वह वृक्ष जिसका फल मीठा होता हो। उ०—वृक्ष गुरम्भर बैठि अमृत फल खाइये। जन्म जन्म की भूख सो तुर्त बुझाइये।—कबीर।

गुरवार–संज्ञा पुं० दे " गुरुवार "।

गुरवी†–वि० [सं० गर्व्व] घमंडी। अहँकारी। उ०—देहै कृष्ण दूसरी उरवी। गुरु के सरिस बुझावत गुरवी।

गुरसल–संज्ञा पुं० [देश०] गिलगिलिया। सिरोही। किलहँटी।

गुरसी†–संज्ञा स्त्री० दे० " गोरसी " वा " बोरसी "।

गुरसुम–संज्ञा पुं० [देश०] सोनारों की एक प्रकार की छेनी।

गुरहा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) वह तख्ता जो छोटी नावों में अंदर की ओर दोनो सिरों पर जड़ा रहता है। इन्हीं तख्तों में से एक पर खेनेवाला मल्लाह बैठता है। (२) एक प्रकार की छोटी मछली जो प्रायः एक बालिश्त लंबी होती है। यह युक्तप्रांत, बंगाल और आसाम की नदियों में पाई जाती है।

गुराई†–संज्ञा स्त्री० दे० "गोराई"।

गुराब–संज्ञा पुं० [देश०] (१) तोप लादने की गाड़ी। उ०—तिमि घर नाल और करनालैं सुतरवाल जंजालैं। गुर गुराब रहँकले भले तहँ लागे विपुल बयालैं।—रघुराज। (२) वह बड़ी नाव जिसमें केवल एक मस्तूल हो। (लश०)।

गुराव–†संज्ञा पुं० [हिं० गुरिया] (१) चौपायों को खिलाने के लिये चारा टुकड़े टुकड़े करने की क्रिया। (२) वह हथियार जिससे चारा काटा जाता है। गड़ासा।

गुरिद†*–संज्ञा पुं० [फ़ा० गुर्ज़] गदा। (क्व०)। उ०—बाँधै आयुधि गुरिद सदाई। महि पर पटकत अरि मरि जाई।—रघुराज।

गुरिदल–संज्ञा पुं० [देश०] (१) किलकिला की जाति का एक पक्षी जो जलाशयों के निकट रहता और मछली खाता है। इसे बदामी भी कहते हैं। (२) कचनार का पेड़।

गुरिया–संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] (१) वह दाना, मनका या गाँठ जो किसी प्रकार की माला या लड़ी का एक अंश हो। जैसे, माला की गुरिया, रीढ़ की गुरिया, साँप की गुरिया, आदि। (२) चौकोर या गोल छोटा टुकड़ा जो काट कर अलग किया गया हो। कटा हुआ छोटा खंड।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) दरी बुनने के करघे की वह बड़ी लकड़ी या शहतीर जिसमें बै का बाँस लगा रहता है। इसे झिलन भी कहते हैं। (२) हेंगे वा पाटे की वह रस्सी जिसका सिरा हेंगे में और दूसरा बैलों की गरदन के पास जूए के बीच में बँधा रहता है।

गुरिल्ला–संज्ञा पुं० दे० "गोरिल्ला"।

गुरु–वि० [सं०] [संज्ञा गुरुत्व, गुरुता] (१) लंबे चौड़े आकारवाला। बड़ा। (२) भारी। वज़नी। जो तौल में अधिक हो। (३) कठिनता से पकने या पचनेवाला (खाद्य पदार्थ)। (४) चौड़ा। (डिं०)।

संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गुरुआनी] (१) देवताओं के आचार्य्य, बृहस्पति। (२) बृहस्पति नामक ग्रह।

यौ०—गुरुवार ।

(३) पुष्य नक्षत्र, जिसके अधिष्ठाता बृहस्पति हैं । (४) अपने अपने गृह्य के अनुसार यज्ञोपवीत आदि संस्कार करानेवाला, जो कि गायत्री मंत्र का उपदेष्टा होता है । आचार्य्य । (५) किसी मंत्र का उपदेष्टा । (६) किसी विद्या वा कला का शिक्षक । सिखाने, पढ़ाने या बतलानेवाला । उस्ताद ।

यौ०—गुरुकुल ।

(७) दो मात्राओंवाला अक्षर । दीर्घ अक्षर जिस की दो मात्राएँ वा कलाएँ गिनी जाती हैं । जैसे, 'राम' में 'रा' । (पिंगल)।

विशेष—संयुक्त अक्षर के पहलेवाला अक्षर (लघु होने पर भी) गुरु ही माना जाता है । पिंगल में गुरु वर्ण का संकेत ऽ है । अनुस्वार और विसर्गयुक्त अक्षर भी गुरु ही माने जाते हैं ।

(८) वह ताल जिसमें एक दीर्घ या दो साधारण मात्राएँ हों । पिंगल के गुरु की भाँति ताल के गुरु का चिह्न भी ऽ ही है । (संगीत) । (९) वह व्यक्ति जो विद्या, बुद्धि, बल, वय वा पद में अपने से बड़ा हो ।

यौ०—गुरु जन ।

(१०) ब्रह्मा । (११) विष्णु । (१२) शिव । (१३) कौंछ ।

गुरुआइन†–संज्ञा स्त्री० [सं० गुरु + आइन (प्रत्य०)] (१) गुरु की स्त्री । (२) वह स्त्री जो शिक्षा देती हो ।

गुरुआई–संज्ञा स्त्री० [सं० गुरु + आई (प्रत्य०)] (१) गुरु का धर्म । (२) गुरु का कृत्य । गुरु का काम । (३) चालाकी । धूर्तता ।

गुरुकुंडली–संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष में एक चक्र जिसके द्वारा जन्म नक्षत्र के अनुसार एक एक वर्ष के अधिपति ग्रह का निश्चय किया जाता है । इस चक्र के मध्य में गुरु अर्थात् बृहस्पति रखे जाते हैं और उनके आठ और आठ ग्रह रखे जाते हैं । इसी से इस चक्र को गुरुकुंडली कहते हैं ।

गुरुकुल–संज्ञा पुं० [सं०] गुरु, आचार्य्य या शिक्षक के रहने का वह स्थान जहाँ वह विद्यार्थियों को अपने साथ रख कर शिक्षा देता हो ।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवर्ष में यह प्रथा थी कि गुरु और आचार्य्य लोग साधारण मनुष्यों के निवास-स्थान से बहुत दूर एकांत में रहते थे और लोग अपने बालकों को शिक्षा के लिये वहीं भेज देते थे । वे बालक जब तक उनकी शिक्षा समाप्त न होती वहीं रहते थे । ऐसे ही स्थानों को गुरुकुल कहते थे ।

गुरुगंधर्व–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रताल के छः भेदों में से एक भेद । (संगीत) ।

गुरुघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] वह पापी जिसने अपने किसी गुरु जन को मार डाला हो । गुरु को मार डालनेवाला व्यक्ति ।

गुरुच–संज्ञा स्त्री० [सं० गुडूची] एक प्रकार की मोटी बेल जो रस्सी के रूप में बहुत दूर तक चली जाती है, पेड़ों पर चढ़ी मिलती है और बहुत दिनों तक रहती है । इसकी पत्तियाँ पान के आकार की गोल गोल होती हैं । इसकी गाँठों में से जटाएँ निकलती हैं जो बढ़ कर जड़ पकड़ लेती हैं । गुरुच दो प्रकार की देखने में आती है । एक में फल नहीं लगते । दूसरी में गुच्छों में मकोय की तरह के फूल, फल लगते हैं और उसके पत्ते कुछ छोटे होते हैं । गुरुच की डंठल का प्रयोग आयुर्वेदीय औषधों में बहुत होता है । वैद्यक में गुरुच तिक्त, उष्ण, मलरोधक, अग्निदीपक तथा ज्वर, दाह, वमन, कोढ़ आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है । नीम पर की गुरुच दवा के लिये अच्छी मानी जाती है । इसे कूट कर इसका सत भी बनाते हैं । ज्वर में इसका काढ़ा बहुत दिया जाता है ।

पर्य्या०—गुडूची । अमृतवल्ली । कुंडली । मधुपर्णी । सोमवल्ली । विशल्या । तंत्री । निर्जरा । वत्सादनी । छिन्नरुहा । अमृता । जीवंतिका । उद्धारा । वरा । ज्वरारि । श्यामा । चक्रांगी । मधुपर्णिका । रसायनी । छिन्ना । भिषक्प्रिया । चंद्रहासा । नागकुमारिका । छन्ना ।

गुरुच खाप–संज्ञा पुं० [देश०] बढ़इयों का रंदे की तरह का एक औज़ार जिससे लकड़ी गोल की जाती है ।

गुरुचांद्री–वि० [सं० गुरुचान्द्रीय] गुरु और चंद्रमाकृत । जो गुरु और चंद्रमा के योग से होता हो । (ज्योतिष)

विशेष—ज्योतिष में बृहस्पति और चंद्रमा का कर्कराशि में होना गुरुचांद्री योग कहलाता है । जिसकी जन्मकुंडली में यह योग लग्न वा दशम स्थान में पड़ता है वह दीर्घजीवी और भाग्यवान् होता है ।

गुरुजन–संज्ञा पुं० [सं०] बड़े लोग । माता पिता आचार्य आदि ।

गुरुतल्प–संज्ञा पुं० [सं०] विमाता से गमन करनेवाला पुरुष । (मनु ने ऐसे पुरुष को महापातकी लिखा है और उसके लिये यही प्रायश्चित्त वा दंड लिखा है कि वह या तो जलते हुए लोहे के बरतन में सोकर वा लोहे की जलती हुई स्त्री को आलिंगन करके मर जाय ।)

गुरुतल्पग–संज्ञा पुं० दे० "गुरुतल्प" ।

गुरुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुरुत्व । भारीपन । (२) महत्त्व । बड़प्पन । (३) गुरुपन । गुरू का कर्त्तव्य । गुरुआई ।

गुरुताई*–संज्ञा स्त्री० [सं० गुरुता + ई० (प्रत्य०) दे० "गुरुता" ।

गुरुतोमर–संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जो तोमर छंद के अंत में दो मात्राएँ और रख देने से बन जाता है । जैसे, सल औ प्रसेन पुकारि कै । लरते भये धनु धारि कै ।

गुरुत्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भारीपन । वज़न । बोझ ।

विशेष—पदार्थ विज्ञान के अनुसार पदार्थों का गुरुत्व वास्तव में

उस वेग वा शक्ति की मात्रा है जिससे वह पृथ्वी की आकर्षण शक्ति द्वारा नीचे की ओर जाता है। वेग की इस मात्रा में उस अंतर का विचार भी कर लिया जाता है जो अक्ष पर घूमती हुई पृथ्वी के उस वेग के कारण पड़ता है जिससे वह पदार्थों को (केंद्र से) बाहर हटाती है। अतः आकर्षण वेग की मात्रा समुद्रतल और क्रांति वृत्त पर ३८९·१ और ध्रुव पर ३८७·१ इंच प्रति सेकंड होती है। यह गुरुत्व वेग समुद्रतल पर की अपेक्षा पहाड़ों पर कुछ कम होता है, अर्थात् उसमें प्रति दो मील की ऊँचाई पर सहस्रांश की कमी होती जाती है। किसी पदार्थ का वज़न जितना क्रांतिवृत्त पर तौलने से होगा उससे ध्रुव पर ले जाकर उसे तौलने से $\frac{1}{289}$ वाँ भाग अधिक रहेगा। वैशेषिक सूत्र में रूप, रस आदि केवल १७ गुण बतलाए हैं पर प्रशस्तपाद भाष्य में गुरुत्व, द्रवत्व आदि ६ गुण और बतलाए हैं। गुरुत्व को मूर्त और सामान्य गुण माना है, अर्थात् ऐसा गुण जो पृथ्वी, जल, वायु आदि स्थूल वा मूर्त द्रव्यों में पाया जाता है तथा जो अनेक ऐसे द्रव्यों में रहता है। प्राचीन नैयायिक केवल जल और मिट्टी में ही गुरुत्व मानते थे। उनके मत से तेज, वायु आदि में गुरुत्व नहीं। सांख्य मतवाले गुरुत्व को तमोगुण का धर्म मानते हैं, सत्त्व वा रजोगुण में गुरुत्व नहीं मानते। आज कल की परीक्षाओं द्वारा वायु आदि का गुरुत्व अच्छी तरह सिद्ध हो गया है।

(२) महत्त्व। बड़प्पन। (३) गुरु का काम।

गुरुत्व-केंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] पदार्थ विज्ञान में पदार्थों के बीच वह विंदु जिस पर यदि उस पदार्थ का सारा विस्तार सिमट कर आजाय तो भी गुरुत्वाकर्षण में कुछ अंतर न पड़े। किसी पदार्थ में वह विंदु जिस पर समस्त वस्तु का भार एकत्रित हुआ और कार्य्य करता हुआ मान सकते हैं।

विशेष—इस गुरुत्वकेंद्र का पता कई रीतियों से लग सकता है। वृत्ताकार वा गोल वस्तुओं का केंद्र ही गुरुत्वकेंद्र होता है। पर बेडौल विस्तार की वस्तुओं में गुरुत्वकेंद्र वह होता है जिसे किसी नोक पर टिकाने से वह पदार्थ ठीक ठीक तुल जाय, इधर उधर झुका न रहे। प्रत्येक तराज़ू वा तुला में इस प्रकार का गुरुत्वकेंद्र होता है।

गुरुत्व-लंब—संज्ञा पुं० [सं०] वह रेखा जो किसी पदार्थ के गुरुत्वकेंद्र से सीधे नीचे की ओर खींची जाय।

गुरुत्वाकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] वह आकर्षण जिसके द्वारा भारी वस्तुएँ पृथ्वी पर गिरती हैं।

विशेष—इस आकर्षण शक्ति का थोड़ा बहुत पता भास्कराचार्य्य को १२०० संवत् में लगा था। उन्होंने अपने सिद्धांत-शिरोमणि में स्पष्ट लिखा है—"आकृष्टिशक्तिश्च महीतयात, स्वस्थ गुरु स्वाभिमुखं सशक्तया। आकृष्यते तत्पततीव भाति, समे समन्तात्क्व पतत्वियं खे।" अर्थात् पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है इसी से वह आकाशस्थ (निराधार) भारी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है। जो पदार्थ गिरते हैं वे पृथ्वी के आकर्षण से ही गिरते हैं। योरप में गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का पता सन् १६८७ ई० में न्यूटन को लगा। उसने अपने बगीचे में पेड़ से फल नीचे गिरते देखा। उसने सोचा कि यह फल जो ऊपर या अगल बगल की ओर न जाकर नीचे पृथ्वी की ओर गिरा उसका कारण पृथ्वी की आकर्षण शक्ति है। इस आकर्षण की विशेषता यह है कि यह उत्पन्न और नष्ट नहीं किया जा सकता और न किसी व्यवधान के बीच में पड़ने से उसमें कुछ रुकावट या अंतर डालता है।

गुरुदक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्या पढ़ने पर जो दक्षिणा गुरु को दी जाय। आचार्य्य की भेंट।

विशेष—जब लोग गुरु के पास विद्या पढ़ने जाते थे तब घर आने के समय गुरु को वही दक्षिणा देते थे जो गुरु मांगे और गुरु का भरपूर संतोष कर स्नातक की पदवी पाकर गृहस्थ होते थे।

गुरुदैवत—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्य नक्षत्र।

गुरुद्वारा—संज्ञा पुं० [सं० गुरु + द्वार] गुरु का स्थान। आचार्य्य वा गुरु के रहने की जगह।

गुरुपुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति के दिन पुष्य नक्षत्र के पड़ने का योग। ज्योतिष में यह एक अच्छा योग माना जाता है।

गुरुभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुष्य नक्षत्र। (२) मीन राशि। (३) धनुराशि।

गुरुभाई—संज्ञा पुं० [सं० गुरु + हिं० भाई] दो या दो से अधिक ऐसे पुरुष जिनमें से प्रत्येक का गुरु वही हो जो दूसरे का। एक ही गुरु के शिष्य।

गुरुमुख—वि० [सं० गुरु + मुख] दीक्षित। जिसने गुरु से मंत्र लिया हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गुरुमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुरु + मुखी] गुरु नानक की चलाई हुई एक प्रकार की लिपि जो पंजाब में प्रचलित है। यह देव नागर का परिवर्तित रूप मात्र है।

गुरुबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] संकीर्ण राग का एक भेद।

गुरुवार—संज्ञा पुं० [सं० गुरुवार] बृहस्पति का दिन। बृहस्पति। बीफै। सप्ताह का पाँचवा दिन

विशेष—बृहस्पतिजी देवताओं के गुरु थे इसी से गुरु शब्द से बृहस्पति का ग्रहण होता है।

गुरुबिनी*—संज्ञा स्त्री० दे० "गुर्विणी"।

गुरुरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पोखराज नाम का रत्न। (२) गोमेद नामका रत्न।।

गुरुसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्व जो उस समय लगता है जब बृहस्पति सिंह राशि पर आता है। इस पर्व में नासिक क्षेत्र

की यात्रा और गोदावरी नदी का स्नान करना पुण्य समझा जाता है। उ०—सुनौ प्रभास महातम राजा। अघ कहँ हरत पुन्य कर ताजा। गोदावरि गुरुसिंह नहाई। कुंभ माहिँ हरि क्षेत्र सुहाई।—गि० दा०

गुरू-संज्ञा पुं० [सं० गुरु] गुरु। अध्यापक। आचार्य्य।

यौ०—गुरुघंटाल=(१) बड़ा भारी चालाक। अत्यंत चतुर। (२) धूर्त्त। चालबाज़।

गुरेट-संज्ञा पुं० [हिं० गुर, गुड़+बेंट] चार पाँच हाथ के डंडे में लगा हुआ एक प्रकार का बेलन जिससे कड़ाह में पकता हुआ ईख का रस चलाया जाता है।

गुरेरना†-क्रि० स० [सं० गुरु=बड़ा+हेरना=ताकना] आँखें फाड़ कर देखना। घूरना।

गुरेरा*-संज्ञा पुं० दे० "गुलेला"। उ०—वेई गड़ि गाड़ैं परीं उपट्यौ हार हिये न। आन्यो मोरि मतंग मनु मारि गुरेरनि मैन।—बिहारी।

गुर्ज-संज्ञा पुं० [फ़ा०] गदा। सोंटा। उ०—कोइ कूकर शूकर पर कोई। कर में गुर्ज भयानक सोई।—रघुनाथ।

यौ०—गुर्जबदार=गदाधारी सैनिक।

संज्ञा पुं० [फ़ा० बुर्ज] कोट वा शहरपनाह की दीवार का वह स्थान जो कुछ गोलाकार बना दिया जाता है। यहाँ पर योद्धाओं के लिये विशेष ओट होती है जिसमें छिपे छिपे वे आक्रमणकारी शत्रु पर वार कर सकते हैं। गुर्जा। बुरज। उ०—कंचन कोट कँगूरे कलशा गोपुर गुर्ज दुआरा।—रघुराज।

गुर्जमार-संज्ञा पुं० [फ़ा० गुर्ज+हिं० मार] एक प्रकार के मुसलमान फ़क़ीर जो लोहे का गुर्ज लिए रहते हैं। ये दूकानों पर माँगते फिरते हैं। यदि ये कहीं कुछ नहीं पाते हैं तो उसी गुर्ज से वे अपनी आँख पर या और किसी अंग पर आघात करते हैं। इन्हें मुँडचिरे भी कहते हैं।

गुर्जर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुजरात देश। (२) गुजरात देश का निवासी। (३) एक जाति। गूजर।

गुर्जराट-संज्ञा पुं० [सं० गुर्जर+राष्ट्र] गुजरात देश।

गुर्जरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुजरात देश की स्त्री। (२) भैरव राग की स्त्री। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है। इसमें तीव्र, मध्यम और शेष सब स्वर कोमल लगते हैं। यह रामकली और ललित को मिला कर बनती है। इसके गाने का समय दिन को १० दंड से १६ दंड तक है।

यौ०—गुर्जरी टोड़ी=संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

गुर्द-संज्ञा पुं० [फ़ा०] गुर्दिस्तान का निवासी।

गुर्दिस्तान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] फ़ारस के उत्तर का एक प्रदेश जिसका कुछ भाग आज कल रूम राज्य के अंतर्गत पड़ता है। इसे कुर्दिस्तान भी कहते हैं।

गुर्रा-संज्ञा पुं० [?] वह रस्सी जिससे धुनिया धनुही का फरहा कसते हैं।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) मुहर्रम महीने की द्वितीया का चाँद। द्वितीया तिथि। (२) तातील। नागा।

मुहा०—गुर्रा करना=(१) तातील करना। छुट्टी करना। (२) लंघन करना। फाका करना। गुर्रा देना=(१) नागा करना। (२) लंघन करना। फाका करना। गुर्रा बताना=(१) तातील का वादा करना। (२) नागा करना। (३) लंघन करना। (४) टालटूल करना।

गुर्राना-क्रि० अ० [अनु०] (१) क्रोधवश गले से भारी आवाज़ निकालना। डराने के लिये घुर घुर की तरह गंभीर शब्द करना। (जैसा, कुत्ते बिल्ली आदि करते हैं।) उ०—कुत्ता गुर्रा कर चढ़ बैठा। (२) क्रोध वा अभिमान के कारण भारी और कर्कश स्वर से बोलना। उ०—तुम काम भी बिगाड़ते हो और कहने से गुर्राते हो।

गुर्री-संज्ञा स्त्री० [देश०] भुने हुए जौ।

गुर्वादित्य-संज्ञा पुं० [सं०] गुर्वस्त। सूर्य्य और वृहस्पति का एक राशि पर गमन। विवाह आदि शुभ कार्य्य इस योग में वर्जित हैं।

गुर्विणी-वि० स्त्री० [सं०] सगर्भा। गर्भवती। उ०—प्रियतमा पतिदेवता जेहिँ उमा रमा सिहाहिँ। गुर्विणी सुकुमारि सिय तियमणि समुझि सकुचाहिँ।—तुलसी।

गुर्वी-वि० स्त्री० [सं०] गर्भवती। गर्भिणी।

संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी वा श्रेष्ठ स्त्री। उ०—निगम आगम अगम गुर्वि तव गुण कथन उर्विधर करत जेहि सहस जीहा।—तुलसी।

गुलंचा†-संज्ञा पुं० दे० "गुडुच"।

गुल-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) गुलाब का फूल।

यौ०—गुलकंद। गुलरौग़न।

(२) फूल। पुष्प।

यौ०—गुलदान। गुलदस्ता। गुलकारी, आदि।

मुहा०—गुल खिलना=(१) विचित्र घटना होना। अद्भुत बात होना। ऐसी बात होना जिसका अनुमान पहले से लोगों को न हो। मज़ेदार बात होना। कोई ऐसी घटना होना जिस से लोगों को कुतूहल हो। (२) बखेड़ा खड़ा होना। उपद्रव मचना। उ०—हमने उसकी सारी करतूत उसके घर कह दी है, देखो कैसा गुल खिलता है। गुल खिलाना=(१) विचित्र घटना उपस्थित करना। ऐसी बात उपस्थित करना जिसका अनुमान पहले से लोगों को न हो। (२) बखेड़ा खड़ा करना। उपद्रव मचाना। गुल कतरना=(१) कागज़ या कपड़े आदि के बेल बूटे बनाना। (२) कोई विलक्षण या अनोखा काम करना। गुल खिलाना।

(३) पशुओं के शरीर में फूल के आकार का भिन्न रंग का गोल दाग।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(४) फूल के आकार का वह गड्ढा जो फूले हुए गालों में हँसने आदि के समय पड़ता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(५) वह चिह्न जो मनुष्य या पशु के शरीर पर गरम की हुई धातु आदि के दागने से पड़ता है। दाग। छाप।

मुहा०—गुल खाना = अपने शरीर पर गरम धातु से दगवाना।

क्रि० प्र०—दागना।—देना।

(६) दीपक आदि में बत्ती का वह अंश जो बिलकुल जल जाता है।

क्रि० प्र०—काटना।—पड़ना।

यौ०—गुलगीर = चिराग़ की बत्ती काटने की कैंची।

मुहा०—(चिराग़) गुल करना = (चिराग) बुझाना या ठंढा करना।

(७) तमाकू का वह जला हुआ अंश जो चिलम पीने के बाद बच रहता है। जट्टा। (८) जूते के तले का वह चमड़ा जो एड़ी के नीचे रहता है और जिसमें नाल आदि लगाई जाती है। जूते का पान।

क्रि० प्र०—लगाना।—जड़ना।

(९) कारचोबी की बनी हुई फूल के आकार की बड़ी टिकुली जिसे कहीं कहीं स्त्रियाँ सुंदरता के लिये अपनी कनपटी पर लगाती हैं। (१०) चूने की वह गोल बिंदी जो आँखें दुखने के समय उनकी लाली दूर करने के लिये कनपटियों पर लगाते हैं।

क्रि० प्र०—लगाना।

(११) किसी चीज़ पर बना हुआ भिन्न रंग का कोई गोल निशान।

क्रि० प्र०—पड़ना।—बनना।

(१२) आँख का डेला। (१३) एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना। (१४) जलता हुआ कोयला। अंगारा।

मुहा०—गुल बँधना = (१) आग का अच्छी तरह सुलग जाना। (२) पास में कुछ धन हो जाना। कुछ पूँजी हो जाना।

(१५) कोयले या गोबर का बना हुआ छोटा गोला जिसे आग को अधिक देर तक रखने के लिये अँगीठी आदि में राख के नीचे गाड़ देते हैं। (१६) सुंदरी स्त्री। नायिका।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) हलवाई का भट्ठा। (२) खेतों में बहुत दूर तक पानी ले जाने के लिये बना हुआ वह बरहा जो ज़मीन से कुछ ऊँचा होता है। (३) आँख और कान के बीच का स्थान। कनपटी। उ०—गुल तासु गोली सों फुटी। कर की न बाग तऊ छुटी।—सूदन।

गुल—संज्ञा पुं० [फ़ा०] शोर। हल्ला।

यौ०—गुल-गपाड़ा।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

गुल-अजायब—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल + अ० अजायब = अजीब का बहु०] (१) एक प्रकार का फूल। (२) इस फूल का पौधा।

गुल-अब्बास—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल + अ० अब्बास] अब्बास नाम का पौधा जिसमें बरसात के दिनों में लाल या पीले रंग के फूल लगते हैं।

गुल-अब्बासी—वि० [फ़ा० गुल + अ० अब्बास + ई (प्रत्य०)] हलकी स्याही लिए हुए एक प्रकार का खुलता लाल रंग जो ४ छटाँक शहाब के फूल, ½ छटाँक आम की खटाई और ८–९ माशे नील के मिलाने से बनता है। इसमें यदि नील की मात्रा बढ़ाते जायँ तो क्रमशः करौंदिया, किरमिज़ो, अबीरी और सौसनी रंग बनता जाता है।

गुल-अशर्फी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का पीले रंग का फूल।

गुलउर†—संज्ञा पुं० दे० "गुलौर"।

गुल-औरंग—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का गेंदा।

गुलकंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मिस्री या चीनी में मिली हुई अमलतास या गुलाब के फूलों की पखरियाँ जो धूप की गरमी से पकाई जाती हैं। इनका व्यवहार प्रायः दस्त साफ़ लाने के लिये होता है।

विशेष—सेवती के फूलों का जो गुलकंद बनता है उसकी तासीर ठंढी होती है। इसमें विशेषता यह है कि इसे चंद्रमा की चाँदनी में सिद्ध करते हैं।

गुलकट—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल + हिं० काटना] शीशम की लकड़ी का बना हुआ छीपियों का एक प्रकार का ठप्पा जिससे कपड़े पर बेल बूटे छापे जाते हैं।

गुलकार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] किसी प्रकार के बेल बूटे बनानेवाला कारीगर।

गुलकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) किसी प्रकार के बेलबूटे वा फूल पत्ती इत्यादि बनाने, तराशने या काढ़ने का काम। (२) कोई ऐसा काम जिस में बेल बूटे आदि बने हों।

गुलकेश—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल + केश] (१) मुर्ग़केश का पौधा। कलगा। (२) मुर्ग़केश या कलगे का फूल। उ०—जो गुलकेश के फूल सराहैं। मैन तुरीन के जीन झवाहैं।—गुमान।

गुलखैरू—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल + खैरू] (१) एक पौधा जिस में नीले रंग के फूल लगते हैं। (२) इस पौधे का फूल।

गुलगचिया—संज्ञा स्त्री० दे० "गिलगिलिया"।

गुल-गपाड़ा—संज्ञा पुं० [अ० गुल + गप्प] बहुत अधिक चिल्लाहट। शोर। गुल। हल्ला।

गुलगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चिराग़ का गुल कतरने की कैंची। बत्ती काटने की कैंची।

गुलगुल–वि० [हिं० गुलगुला] नरम। मुलायम। कोमल।

गुलगुला–वि० पुं० [हिं० गुदगुदा] कोमल। नरम। मुलायम।
संज्ञा पुं० [हिं० गोल + गोला] (१) एक प्रकार का पकवान जो ख़मीरी आटे या मैदे के लड्डू के आकार के गोल टुकड़े बना कर घी या तेल में पकाने से बनता है। यह प्रायः मीठा और कभी कभी नमकीन भी होता है। (२) कनपटी। आँख और कान के बीच का वह स्थान जहाँ आँख के कुछ रोगों को रोकने के लिये गुल लगवाए जाते हैं।
संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो प्रायः ऊसर ज़मीन में उगती है।

गुलगुलाना†–क्रि० स० [हिं० गुलगुल] किसी गूदेदार या उसी प्रकार की और किसी चीज़ को दबा या मल कर मुलायम करना। जैसे, रस चूसने के लिये आम गुलगुलाना।

गुलगुलिया†–संज्ञा पुं० [?] बंदर नचानेवाला। मदारी।

गुलगुली–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो हिमालय के झरनों में बहुत पाई जाती है। यह लगभग २ हाथ तक लंबी होती है और इसका मांस बहुत काँटेदार होता है।

गुलगोथना–संज्ञा पुं० [हिं० गुलगुल + तन] ऐसा नाटा मोटा आदमी जिसके गाल आदि अंग खूब फूले हों। वह जिसका शरीर खूब भरा और फूला हो।
मुहा०—गुलगोथना सा = मोटा ताजा। फूले हुए गालवाला।

गुलचना†*–क्रि० स० [हिं० गुलचा] गुलचा मारना।

गुलचला–संज्ञा पुं० [हिं० गोला + चलाना] गोला चलानेवाला। तोप दागनेवाला। तोपची।

गुलचाँदनी–संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल + हिं० चाँदनी] (१) एक प्रकार का पौधा जिसमें फूल लगते हैं। (२) इस पौधे का फूल जो रंगत में सफ़ेद होता और प्रायः रात को खिलता है।

गुलचा–संज्ञा पुं० [हिं० गाल] हाथ की उँगलियों से या मुट्ठी बाँध कर धीरे से और प्रेमपूर्वक गालों पर किया हुआ आघात।
क्रि० प्र०—खाना।—देना।—पड़ना।—मारना।—लगाना।

गुलचाना†*, **गुलचियाना**–क्रि० स० [हिं० गुलचा + ना] गुलचा मारना वा लगाना।

गुलची–संज्ञा स्त्री० [?] रंदे की तरह का बढ़इयों का एक औज़ार जिससे लकड़ी में गलता बनाया जाता है।

गुलचीन–संज्ञा पुं० [?] (१) एक प्रकार का वृक्ष जो कलम से लगाया जाता है और बारहों महीने फूलता है। इसका पेड़ बड़ा होता है और पत्ते बहुत कड़े और लंबे होते हैं। (२) इस वृक्ष का फूल जो ऊपर से सफ़ेद और भीतर की ओर कुछ पीले रंग का होता है और जिसमें चार पाँच पखुरियाँ होती हैं। कहते हैं कि इस फूल को अधिक सूँघने से पीनस रोग हो जाता है।

गुलछर्रा–संज्ञा पुं० [हिं० गोली + छर्रा] वह भोग विलास वा चैन जो बहुत स्वच्छंदता पूर्वक और अनुचित रीति से किया जाय।
मुहा०—गुलछर्रे उड़ाना = निर्द्वंद्व रूप से अनुचित और बहुत अधिक भोग विलास करना।

गुलजलील–संज्ञा पुं० [फ़ा०] असबर्ग का फूल जिससे रेशम रँगा जाता है और जो खुरासान से आता है।

गुलज़ार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] बाग। वाटिका।
वि० हरा भरा। आनंद और शोभा-युक्त। जो देखने में बहुत भला मालूम हो। चहल पहल से भरा। जैसे, उसके रहने से सारा मुहल्ला गुलज़ार रहता था।

गुलझटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गोल + सं० झट = जमाव] (१) तागे आदि की वह उलझन जो बैठ कर गोली के आकार की हो जाती है। उलझन की गाँठ।
मुहा०—गुलझटी पड़ना = जी में गाँठ पड़ना। मनोमालिन्य होना। गुलझटी निकालना = मनोमालिन्य दूर करना।
(२) सिकुड़न। शिकन।
क्रि० प्र०—पड़ना।—निकलना।

गुलझड़ी–संज्ञा स्त्री० दे० "गुलझटी"।

गुलतराश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह कैंची जिससे चिराग का गुल काटते हैं। (२) वह नौकर जो चिराग का गुल काटता है। (३) वह कैंची जिससे माली लोग बाग के पौधों को कतरते वा छाँटते हैं। (४) बाग के पौधों को काटने छाँटनेवाला माली। (५) संगतराशों का वह औज़ार जिससे वे पत्थरों पर फूल पत्तियाँ बनाते हैं। इसका आकार नहरनी का सा होता है और इसमें लकड़ी का दस्ता लगा रहता है।

गुलता–संज्ञा पुं० [हिं० गोल] मिट्टी की बनी हुई वह गोली जो गुलेले से छोड़ी जाती है।

गुलतुर्रा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] कलगा नाम के पौधे का फूल जो गहरे लाल रंग का होता है। मुर्गकेश। जटाधारी।

गुलथी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गुलथी] उबाला हुआ चावल जो भात से अधिक गीला और गला हो। यह प्रायः बच्चों और पेट के रोगियों को दिया जाता है।

गुलथी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गोल + सं० अस्थि] पानी ऐसी पतली वस्तुओं के गाढ़े होकर स्थान स्थान पर जमने से बनी हुई गुठली वा गोली।

गुलदस्ता–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक विशेष प्रकार से बाँधा हुआ कई प्रकार के सुंदर फूलों और पत्तियों का समूह जो सजावट या किसी उपहार देने के काम में आता है। फूलों का गुच्छा। (२) वह घोड़ा जिसका अगला बायाँ पैर गाँठ तक सफ़ेद हो और दाहिने पैर का रंग पिछले दोनों पैरों के रंग के समान हो। ऐसा घोड़ा ऐबी नहीं समझा जाता।

गुलदान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] गुलदस्ता रखने का पात्र ।

विशेष—गुलदान प्रायः लंबोतरा और चीनी मट्टी, कांच या इसी प्रकार के किसी और पदार्थ का बनाया जाता है । इसके ऊपर शोभा के लिये अच्छा पालिश करके रंग बिरंगे बेल बूटे बना देते हैं ।

गुलदाउदी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुल+दाऊदी] (१) एक प्रकार का छोटा पौधा जिसकी लंबी कटावदार पत्तियों में भी उसके फूल की भाँति हलकी भीनी ख़ुशबू होती है । कार्तिक-अगहन में इसमें कई रंगों के छोटे और बड़े फूल लगते हैं जो देखने में बहुत सुंदर होते हैं । वर्षा के पानी में यह पेड़ नष्ट हो जाता है इसलिये लोग इसे गमलों में लगा कर छाया में रखते हैं । (२) इस पौधे का फूल ।

गुलदाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] बुँदिया नाम की मिठाई जिससे लड्डू भी बनते हैं ।

गुलदार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रकार का सफ़ेद रंग का कबूतर जिस पर लाल या काले रंग के छोटे छोटे कई चिह्न होते हैं । (२) एक प्रकार का कशीदा ।

वि० जिस पर गोल फूल के आकार के कुछ चिह्न बने हों । फूलदार ।

गुलदावदी-संज्ञा स्त्री० दे० "गुलदाउदी" ।

* **गुलदुपहरिया**-संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल + हिं० दुपहरिया] (१) एक प्रकार का पौधा जो दो ढाई हाथ ऊँचा होता है । इसकी एक सीधी डाल होती है और इसमें चारों ओर टहनियाँ नहीं निकलतीं । इसकी पत्तियाँ लंबी और कटावदार होती हैं और उनका रंग कालापन लिए हुए गहरा हरा होता है । (२) इस पौधे का फूल जो कटोरे के आकार का गहरे लाल रंग का होता है । इसका घेरा एकहरे दल का होता है । यह फूल अधिक धूप चढ़ने पर फूलता है । कुछ लोग भूल से सूरजमुखी को भी गुलदुपहरिया कहते हैं ।

गुलदुम-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बुलबुल ।

गुलनरगिस-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की लता ।

गुलनार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) अनार का फूल । (२) एक प्रकार का रंग जो अनार के फूल के रंग का सा गहरा लाल होता है । यह रंग रँगने के लिये कपड़े को पहले हलदी में और तब शहाब में रँगते हैं । (३) एक प्रकार का अनार जिसमें फल नहीं लगते, केवल बड़े बड़े सुंदर फूल ही लगते हैं ।

गुलपपड़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुल + हिं० पपड़ी] सोहनहलुवे की तरह की एक मिठाई जिसे पपड़ी भी कहते हैं ।

गुलप्यादा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] सदागुलाब । वह गुलाब जिसमें महक कम होती है ।

गुलफ़ानूस-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो शोभा के लिये लगाया जाता है ।

गुलफिरकी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुल + हिं० फिरकी] एक प्रकार का बड़ा पौधा जिसमें गुलाबी रंग के फूल लगते हैं ।

गुलफुँदना-संज्ञा पुं० [हिं० गोल + फुँदना] एक प्रकार की घास जो खेतों में उगती है ।

गुलबकावली-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुल + सं० बकावली] (१) एक प्रकार का पेड़ जो नर्मदा नदी के उद्गम के पास अमरकंटक के बन में होता है । यह हल्दी के पेड़ से मिलता जुलता होता है । (२) इस पौधे का फूल जो रंगत में सफ़ेद और बहुत सुगंधित होता है । जिस प्रांत में यह होता है उस प्रांत के लोग इसे पीस कर आई हुई आँखों पर लगाते हैं । कहते हैं कि यह आँख के कई रोगों की बहुत अच्छी दवा है ।

विशेष—गुलबकावली के संबंध में लोगों में कई तरह की दंतकथाएँ प्रसिद्ध हैं ।

गुलबक्सर-संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल + देश० बक्सर] नकस के खेल में एक प्रकार की जीत की बाजी जो एक खिलाड़ी के हाथ में दो बादशाह और एक एक्का या दो बेगमें और एक एक्का आ जाने से बनती है । (जुआरी)

मुहा०—गुल फँसना = (किसी खिलाड़ी को) दो बादशाहों या बेगमों के बीच में एक एक्का मिलना ।

गुलबदन-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का बहुमूल्य रेशमी कपड़ा जो प्रायः लहरियेदार या धारीदार होता है । यह पहले केवल लाल या गुलाबी रंग का होता और काशी में बनता था, पर अब यह सब रंगों का और पंजाब के कुछ नगरों में भी बनने लगा है ।

गुलबादला-संज्ञा पुं० [फ़ा०] ऊदल नाम का पेड़ जिसके रेशों से मोटे रस्से बनते हैं । बूटी ।

गुलबूटा-संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल + हिं० बूटा] (किसी चीज पर बनाया हुआ) बेलबूटा । नक्काशी ।

गुलबेल-संज्ञा स्त्री [फ़ा० गुल + हिं० बेल] एक प्रकार की लता ।

गुलमा-संज्ञा पुं० [?] मसालेदार कीमा भरी हुई बकरी की अँतड़ी । दुलमा । लँगूचा ।

संज्ञा पुं० [सं० गुल्म] [स्त्री० गुलमी] वह गोल कड़ी सूजन जो चोट लगने से मत्थे वा सिर पर होती है ।

गुलमेंहदी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुल + हिं० मेंहदी] (१) एक प्रकार का पौधा जो कुआर में फूलता है । (२) इस पौधे का फूल जो कई रंगों का होता है ।

गुलमेख-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह कील जिसका सिरा फूल के आकार का गोल होता है । फुलिया ।

गुलरेज-संज्ञा पुं० [फ़ा०] आतिशबाजी की एक प्रकार की फुलझड़ी जिसमें से कई तरह के बड़े बड़े फूल झड़ते हैं । यह शोरा, गंधक, कोयला, लोहचून और बारूद मिला कर बनती है ।

गुललाला—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रकार का पौधा जो पोस्ते के पौधे के समान होता है। (२) इस पौधे का फूल जो लाल रंग का, बहुत सुहावना और कोमल होता है। दे० "गुल्लाला"।

गुलशकरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) चीनी और गुलाब के फूल से बनी हुई एक मिठाई। (२) गँगेरन।

गुलशन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वाटिका। बाग। फुलवारी।

गुलशब्बो—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) लहसुन से मिलता जुलता एक प्रकार का छोटा पौधा जिसको रजनीगंधा, सुगंधरा वा सुगंधिराज भी कहते हैं। (२) इस पौधे का फूल, जो सफ़ेद रंग का और बहुत सुगंधित होता है। यह रात के समय फूलता है। (३) एक खेल जो चिराग़ बुझा कर खेला जाता है। इसमें लोग एक दूसरे को चपत लगाते हैं।

गुलसुम—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल + हिं० सुमन] सोनारों का नक्काशी करने का एक औज़ार जिससे फूल आदि बनाते हैं।

गुलसौसन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का फूल जो हलके आसमानी रंग का होता है। यह फ़ारस में बहुत होता है।

गुलहज़ारा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का गुललाला।

गुलहथी—संज्ञा स्त्री० दे० "गुलत्थी"।

गुलाब—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक झाड़ वा कटीला पौधा जिसमें बहुत सुंदर सुगंधित फूल लगते हैं।

विशेष—गुलाब के सैकड़ों भेद होते हैं पर मुख्य ३० जातियाँ मानी गई हैं। गुलाब संसार में प्रायः सर्वत्र ११ से लेकर ७० अक्षांश तक भूगोल के उत्तरार्द्ध में होता है। भारतवर्ष में यह पौधा बहुत दिनों से लगाया जाता है और कई स्थानों में जंगली भी पाया जाता है। कश्मीर और भूतान में पीले फूल के जंगली गुलाब बहुत मिलते हैं। वन्य अवस्था में गुलाब में चार पाँच छितराई हुई पखड़ियों की एक हरी पंक्ति होती है पर बगीचों में सेवा और यत्न पूर्वक लगाए जाने से पखड़ियों की संख्या में वृद्धि होती है पर केसरों की संख्या घट जाती है। क़लम पैवंद आदि के द्वारा सैकड़ों प्रकार के फूलवाले गुलाब भिन्न भिन्न जातियों के मेल से उत्पन्न किए जाते हैं। गुलाब के क़लम ही लगाए जाते हैं। इसके फूल कई रंगों के होते हैं—लाल (कई मेल के हलके गहरे), पीले, सफ़ेद इत्यादि। सफ़ेद फूल के गुलाब को सेवती कहते हैं। कहीं कहीं हरे रंग के फूल भी होते हैं। लता की तरह चढ़नेवाले गुलाब के झाड़ भी होते हैं जो बगीचों में टट्टियों पर चढ़ाए जाते हैं। ऋतु के अनुसार गुलाब के दो भेद भारतवर्ष में माने जाते हैं। सदागुलाब और चैती। सदागुलाब प्रत्येक ऋतु में फूलता है और चैती गुलाब केवल वसंत ऋतु में। चैती गुलाब में विशेष सुगंध होती है और वही इत्र और दवा के काम का समझा जाता है। भारतवर्ष में जो चैती गुलाब होते हैं वे प्रायः बसरा वा दमिश्क जाति के हैं। ऐसे गुलाब की खेती गाज़ीपूर में इत्र और गुलाबजल के लिये बहुत होती है। एक बीघे में प्रायः हज़ार पौधे आते हैं जो चैत में फूलते हैं। बड़े तड़के उनके फूल तोड़ लिए जाते हैं और अत्तारों के पास भेज दिए जाते हैं। वे देग और भभके से उनका जल खींचते हैं। देग से एक पतली बाँस की नली दूसरे बरतन में गई होती है जिसे भभका कहते हैं जो एक पानी से भरी नाँद में रक्खा रहता है। अत्तार पानी के साथ फूलों को देग में रख देते हैं जिस में से सुगंधित भाप उठ कर भभके के बरतन में सरदी से द्रव होकर टपकती है। यही टपकी हुई भाप गुलाबजल है। गुलाब का इत्र बनाने की सीधी युक्ति यह है कि गुलाबजल को एक छिछले बरतन में रखकर बरतन को गीली ज़मीन में कुछ गाड़ कर रात भर खुले मैदान में पड़ा रहने दे। सबेरे सरदी से गुलाबजल के ऊपर इत्र की बहुत पतली मलाई सी पड़ी मिलेगी जिसे हाथ से काँछ ले। ऐसा कहा जाता है कि गुलाब का इत्र नूरजहाँ बेगम ने १६१२ ईसवी में अपने विवाह के अवसर पर निकाला था। भारतवर्ष में गुलाब जंगली रूप में उगता है पर बगीचों में वह कितने दिनों से लगाया जाता है इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता। कुछ लोग संस्कृत के "शतपत्री" "पाटलि" आदि शब्दों को गुलाब का पर्य्याय मानते हैं। रशीउद्दीन नामक एक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि चौदहवीं शताब्दी में गुजरात में सत्तर प्रकार के गुलाब लगाए जाते थे। बाबर ने भी गुलाब लगाने की बात लिखी है। जहाँगीर ने तो लिखा है कि हिंदुस्तान में सब प्रकार के गुलाब होते हैं। गुलाब का फूल कोमलता और सुंदरता के लिये प्रसिद्ध है, इसी से लोग छोटे बच्चों की उपमा गुलाब के फूल से देते हैं। (२) गुलाबजल।

मुहा०—गुलाब छिड़कना = गुलाबजल छिड़कना। गुलाब छिड़काई की रसम करना।

गुलाबचश्म—संज्ञा पुं० [फ़ा०] खैरे रंग की एक प्रकार की चिड़िया जिसकी चोंच काली और पैर लाल होते हैं। यह मधुर स्वर में और बहुत अधिक बोलती है।

गुलाब-छिड़काई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुलाब + हिं० छिड़कना] (१) विवाह में एक रीति जिसमें वर पक्ष और कन्या पक्ष के लोग एक दूसरे पर गुलाबजल छिड़कते हैं और कन्या पक्ष के लोग वर पक्ष को कुछ भेंट देते है। (२) वह द्रव्य जो ऊपर लिखी रसम में दिया जाय।

गुलाबजम—संज्ञा पुं० [?] आसाम की पहाड़ियों में होनेवाली एक प्रकार की झाड़ी जिसकी पत्तियों से एक प्रकार का भूरा रंग निकलता है और जिसकी छाल के रेशे से रस्सियाँ बनती हैं। इसे सोनाफूल भी कहते हैं।

गुलाबजामुन—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलाब + हिं० जामुन] (१) एक प्रकार की मिठाई जिसे बनाने के लिये पहले खोवे में मैदा

या सिंघाड़े का आटा मिलाते हैं और तब उसके गोल या लंबोतरे टुकड़े करके घी में छानते और पीछे चाशनी में डुबो देते हैं। (२) एक प्रकार का वृक्ष जो बंगाल और आसाम में अधिकता से होता है। यह देखने में बहुत सुंदर होता है और प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है। गरमी के अंत और बरसात के आरंभ में इसमें फल लगते हैं। (३) इस वृक्ष का फल जो रंगत में नासपाती का सा और आकार में नीबू के बराबर पर कुछ चपटा होता है। इसके अंदर खाकी रंग का गोल बीज होता है और ऊपर की ओर मोटे दल का गूदेदार मीठा छिलका सा होता है जिसमें से गुलाब की सी सुगंध आती है और जो खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है।

गुलाबतालू-संज्ञा पुं० [फा० गुलाब + तालू] वह हाथी जिसका तालू गुलाबी रंग का हो। ऐसा हाथी बहुत अच्छा समझा जाता है।

गुलाबपाश-संज्ञा पुं० [फा०] झारी के आकार का एक प्रकार का लंबा पात्र जिसके मुँह पर हजारा लगा रहता है और जिसमें गुलाबजल आदि भर कर शुभ अवसरों पर लोगों पर छिड़कते हैं।

गुलाबपाशी-संज्ञा स्त्री० [फा०] गुलाब जल छिड़कने की क्रिया।

गुलाबाँस-संज्ञा पुं० दे० "गुल-अब्बास" या "अब्बास"।

गुलाब-बाड़ी-संज्ञा स्त्री० [फा० गुलाब + हिं० बाड़ी] वह आमोद या उत्सव जिसमें कोई स्थान गुलाब के फूलों से सजाया जाता है, गाना बजाना होता है और लोग गुलाबी कपड़े पहनते हैं। चैत के महीने में यह उत्सव होता है।

गुलाबा-संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का बरतन। उ०—चमचा, चमची, जाम, तवा, तंदूर, गुलाबा।—सूदन।

गुलाबी-वि० [फा०] (१) गुलाब के रंग का। जैसे, गुलाबी गाल, गुलाबी कागज। (२) गुलाब संबंधी। (३) गुलाबजल से बसाया हुआ। जैसे, गुलाबी रेवड़ी। (४) थोड़ा या कम। हलका।

विशेष—इस अर्थ में "गुलाबी" शब्द का प्रयोग केवल "जाड़ा" और "नशा" अथवा इनके पर्य्यायवाची शब्दों के साथ पाया जाता है।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का रंग जो गुलाब की पत्तियों के रंग से मिलता जुलता होता है और शहाब और खटाई के मेल से बनाया जाता है।

संज्ञा स्त्री० (१) शराब पीने की प्याली। (२) गुलाब की पखड़ियों से बनी हुई एक प्रकार की मिठाई। (३) एक प्रकार की मैना जो ऋतु-भेद के अनुसार अपना रंग बदलती है। गरमी के दिनों में यह पहाड़ों में चली जाती है। यह मध्य एशिया और युरोप में भी पाई जाती है और प्रायः बड़े बड़े झुंडों में रहती है। यह घोंसला नहीं बनाती बल्कि थोड़ी सी घास बिछा कर उसी पर रहती है और पत्थरों या कंकड़ों के नीचे ४-५ अंडे देती है।

गुलाम-संज्ञा पुं० [अ०] (१) मोल लिया हुआ दास। ख़रीदा हुआ नौकर।

मुहा०—(मनुष्य आदि को) गुलाम करना या बनाना = अपने वश में करना। पूरी तरह से अधिकार में करना। गुलाम का तिलाम = बहुत ही तुच्छ सेवक। सेवक का सेवक।

यौ०—गुलाम-गर्दिश। गुलाम-माल।

विशेष—कभी कभी बोलनेवाला (उत्तम पुरुष) भी नम्रता प्रकट करने के वास्ते अपने लिये इस शब्द का प्रयोग करता है। जैसे, गुलाम (मैं) हाज़िर है, क्या आज्ञा है ?

(२) साधारण सेवक। नौकर। (३) गंजीफ़े का एक रंग। (४) ताश का एक पत्ता जो दहले से बड़ा और बेगम से छोटा समझा जाता है। इस पर दासरूप में एक आदमी का चित्र बना रहता है।

गुलाम-गर्दिश-संज्ञा स्त्री० [अ० गुलाम + फा० गर्दिश] (१) वह छोटी दीवार जो जनानखाने में अंदर की ओर सदर दरवाजे के ठीक सामने अथवा जनानखाने और दीवानखाने के बीच में परदे के लिये बनी हो। इस दीवार के रहने से स्त्रियाँ आँगन में घूम फिर सकती हैं और बाहर के लोगों की दृष्टि उन पर नहीं पड़ सकती। (२) कोठी या महल आदि के चारों ओर बना हुआ वह बरामदा जहाँ अरदली, चपरासी, दर्बान और दूसरे नौकर चाकर रहते हों।

गुलाम-माल-संज्ञा पुं० [अ०] थोड़े दामों की पर बहुत दिनों तक चलनेवाली और सब तरह का काम देनेवाली चीज़। जैसे, कंबल, लोई, आदि।

गुलामी-संज्ञा स्त्री० [अ० गुलाम + ई (प्रत्य०)] (१) गुलाम का भाव। दासत्व। (२) सेवा। नौकरी। (३) पराधीनता। परतंत्रता।

गुलाल-संज्ञा पुं० [फा० गुल्लाला] एक प्रकार की लाल बुकनी या चूर्ण जिसे हिंदू लोग होली के दिनों में एक दूसरे के चेहरों पर मलते हैं अथवा कुमकुमे आदि में भर कर फेंकते और उड़ाते हैं। उ०—जिन नैनन बसत है रसनिधि मोहन लाल। तिन में क्यों घालत अरी तैं भर मूठ गुलाल।—रसनिधि।

क्रि० प्र०—उड़ाना।—मलना।

विशेष—पहले गुलाब या टेसू की पखड़ियों में चंदन का बुरादा और केसर मिला कर गुलाल बनाया जाता था, पर आज कल शिंगरफ या शहाब में रँगा हुआ सिंघाड़े का आटा ही गुलाल कहलाता है।

गुलाला-संज्ञा पुं० दे० "गुललाला"।

गुलिया-वि० [हिं० गुल्ली] महुए के बीज की मिंगी का। गुली से निकाला हुआ। जैसे, गुलिया तेल।

✓**गुलियाना**†-क्रि० स० [सं० गिल=निगलना] औषध या और कोई तरल पदार्थ बाँस के चोंगे में भर कर पशु को पिलाना। इसे "ढरका देना" भी कहते हैं।
क्रि० स० दे० "गोलियाना"।

गुली-संज्ञा स्त्री० दे० "गुल्ली"।

गुलुफ†-संज्ञा पुं० दे० "गुल्फ"।

गुलू-संज्ञा पुं० [देश०] (१) नैपाल की तराई, बुंदेलखंड और बंगाल की ख़ुश्क चट्टानों और छोटी पहाड़ियों पर और दक्षिण भारत तथा बरमा के जंगलों में होनेवाला एक प्रकार का बड़ा पेड़ जो २५ से ४० हाथ तक ऊँचा होता है। इसमें टहनियों के सिरों पर गुच्छों में लंबी पत्तियाँ लगती हैं। जाड़े में इसका पतझड़ होता है और माघ फागुन में इसमें गंदकी रंग के छोटे छोटे फूल लगते हैं। इस वृक्ष की टहनियों, पत्तियों और कतीरा नाम की गोंद का उपयोग औषध में बहुत होता है और गरीब लोग इसके बीज भून कर खाते हैं। कहीं कहीं लोग इसकी जड़ भी खाते हैं। इस वृक्ष की ऊपरी छाल मुलायम होती है और उसमें पत्तं निकलते हैं। जब यह वृक्ष दस बरस का पुराना हो जाता है तब इसके तने के चार चार हाथ लंबे टुकड़े काट लेते हैं और उनके ऊपर की छाल निकाल लेते हैं। इसके हीर में से बहुत बढ़िया रेशा निकलता है जिससे रस्से बनते हैं और एक प्रकार का कपड़ा भी बुना जाता है। इसकी लकड़ी से कई तरह के खिलौने आदि बनते हैं। प्रायः अकाल में इसकी छोटी छोटी टहनियाँ पशुओं के चारे का काम देती हैं। कतीरा नाम का गोंद इसी वृक्ष से निकलता है। (२) एक प्रकार की मछली जो हाथ सवा हाथ लंबी होती है। (३) एक प्रकार की बटेर।

गुलूबंद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सलाई से या करघे पर बुनी हुई वह सूती, ऊनी या रेशमी लंबी और प्रायः एक बालिश्त चौड़ी पट्टी जो सरदी से बचने के लिये सिर, गले या कानों पर लपेटी जाती है (२) स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का ज़ेवर जो गले से सटा रहता है।

गुलेंदा-संज्ञा पुं० [हिं० गोल] महुए का पका फल। कोलेंदा।

गुले-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो उत्तर भारत में अधिकता से होता है। इसकी लकड़ी बहुत मज़बूत और चमकदार होती है जिस पर ख़ुदाई का काम बहुत अच्छा होता है। कहीं कहीं इसके बीजों की माला बनाई जाती है। इसे रंग चोल भी कहते हैं।

गुलेटन-संज्ञा पुं० [हिं० गोल] कुरंड पत्थर का वह छोटा गोला जिससे सिकलीगर अपना मसाला रगड़ते हैं।

गुलेनार-संज्ञा पुं० दे० "गुलनार"।

गुलेराना-संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल+अ० राना] (१) सुंदर फूल। (२) एक फूल जो भीतर की ओर लाल और बाहर की ओर पीला होता है।

गुलेल-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिलूल] वह कमान वा धनुष जिससे चिड़ियों और बंदरों आदि को मारने के लिये मिट्टी की गोलियाँ चलाई जाती हैं। उ०—(क) गुस गुलेल सोलये धारे। रिपु चिरई दिन लाखक मारे।—हनुमान। (ख) तिलकबिंदु को मानि निशाना। गूरा हनत गुलेल महाना।—रघुराज।
†संज्ञा पुं० दे० "गुडुच"।

गुलेलची-संज्ञा पुं० [हिं० गुलेल+ची (प्रत्य०)] गुलेल चलानेवाला। वह मनुष्य जो गुलेल चलाने में चतुर हो।

गुलेला-संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलूला] (१) मिट्टी की बनाई हुई गोली जिसको गुलेल से फेंक कर चिड़ियों का शिकार किया जाता है। (२) गुलेल।

गुलैंदा-संज्ञा पुं० दे० "गुलेंदा"।

गुलोह-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गिलोय] गुडुच।

गुलौर, गुलौरा-संज्ञा पुं० [सं० गुल=गुड+औरा (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ रस पकाने का भट्ठा हो और जहाँ गड़ बनाया जाता हो।

गुल्गा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का ताड़ जो सुंदर बन में पानी के किनारे लता की तरह फैलता है तथा चटगाँव, बरमा आदि में भी पाया जाता है। इसके पुराने फल जिन्हें गोलफल कहते हैं बहुत बड़े बड़े होते हैं और समुद्र में बहते बहते बहुत दूर तक चले जाते हैं। पत्तों के डंठलों को एक में बाँध कर उन पर सुंदरबन के लट्ठे बहाए जाते हैं। पत्ते छप्पर बनाने के काम में आते हैं और 'गोलपत्ता' कहलाते हैं।

गुल्फ-संज्ञा पुं० [सं०] एँड़ी के ऊपर की गाँठ।

गुल्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऐसा पौधा जो एक जड़ से कई होकर निकले और जिसमें कड़ी लकड़ी वा डंठल न हो। जैसे, ईख, शर, आदि। अर्कप्रकाश में गुल्म गण के अंतर्गत बरियारा, पाठा, तुलसी, काकजंघा, चिरचिरा आदि पौधे लिए गए हैं। (२) सेना का एक समुदाय जिसमें ९ हाथी, ९ रथ, २७ घोड़े, और ४५ पैदल होते हैं। (३) पेट का एक रोग जिसमें उसके भीतर एक गोला सा बँध जाता है। हृदय के नीचे से लेकर पेडू तक के बीच कहीं पर यह गोला उत्पन्न हो सकता है। भावप्रकाश के अनुसार यह रोग अनियमित आहार विहार तथा वायु और पित्त के दूषित होने से होता है। स्त्रियों को एक प्रकार का गुल्म आर्त्तव के दूषित होने से होता है। (४) नसों की सूजन जो गाँठ के आकार की हो।

गुल्क-संज्ञा पुं० [हिं० गोलक] वह संदूक वा थैली जिसमें बिक्री द्वारा या और किसी प्रकार आई हुई रोज़ाना आमदनी रखी जाती है।

गुल्लर†-संज्ञा पुं० दे० "गूलर"।

गुल्ला-संज्ञा पुं० [हिं० गोला] (१) मिट्टी की बनी हुई गोली जो गुलेल से फेंकी जाती है। (२) एक बँगला मिठाई जो फटे दूध के छेने की गोल गोल पिंडियों को शीरे में डुबोने से बनती है। इसे रसगुल्ला भी कहते हैं।

संज्ञा पुं० [अ० गुल] शोर। हल्ला। ऊँचा शब्द। उ०—आये निशाचर साहनी साजि मरीच सुबाहु सुने मख गुल्ला।—रघुराज।

यौ०—हल्ला गुल्ला = शोर गुल।

संज्ञा पुं० [हिं० गुल्ली] ऊँख का कटा हुआ छोटा टुकड़ा। गँडेरी। गाँड़ा।

संज्ञा पुं० [हिं० गुलेल] वह धनुष जिससे मिट्टी की गोली फेंकी जाती है। गुलेल। उ०—चूक उनहुँ से होय जे बाँधे बरछी गुल्ला।—गिरधर।

संज्ञा पुं० [देश०] दरी कालीन बुनने के करघे में वह बाँस जिसमें बज के दोनों सिरे बँधे रहते हैं।

संज्ञा पुं० [देश०] वह ताना जो रेशमी धोतियों के किनारे बुनने में अलग तन कर माँज में लगाया जाता है।

संज्ञा पुं० [हिं० गुल्ली] रस्सी में बँधी हुई वह छोटी लकड़ी जो पानी सींचने की लोटी (लुटिया) में पड़ी रहती है और जिसके अँटकाव के कारण भरी हुई लोटी रस्सी के साथ खिंच आती है।

संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी पेड़ जो बहुत ऊँचा होता है। इसके हीर की लकड़ी सुगंधित, हलकी और भूरे रंग की होती है तथा मजबूत होने के कारण इमारत के काम में आती है। नैनीताल में यह पेड़ बहुत होता है। इसे "सराय" भी कहते हैं।

संज्ञा पुं० [देश०] गोटा पट्टा बुननेवालों का एक डोरा जो मज़बूत होता है और जिसके दोनों सिरों पर सरकंडे की लकड़ियाँ लगी होती हैं। यह डोरा ताना के बदले में पड़ा रहता है। इसका एक सिरा ढेंकली में लगा रहता है और दूसरा सिरा पाँवड़ी में बँधा होता है।

संज्ञा पुं० [हिं० गुल्ली] रुई ओटने की चरखी में लोहे का वह छड़ जो लगभग डेढ़ बालिश्त लंबा होता है और पिढ़ई और खूँटों के बीच में ठोका रहता है। इससे पिढ़ई वा खूँटे सरकने वा हिलने नहीं पाते।

गुल्लाला-संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का लाल फूल। इसका पौधा पोस्ते के पौधे के समान होता है। फूल भी पोस्ते ही के समान पर लाल होता है। उ०—(क) कत लपटैयत मोगरे सोनजुही निस सैन। जेहि चंपक बरणी करे गुल्लाला रँग नैन।—बिहारी। (ख) गुल्लाला से लोचन करे माला दुख मोचन गरे। रिस ज्वाला अरि सोचन भरे भाला रन रोचन धरे।—गोपाल।

गुल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० गुलिका = गुठली] (१) किसी फल की गुठली। किसी फल का बड़ा और लंबोतरा बीज। (२) महुवे की गुठली। गुलैंदे का बीज। गुल्लू। कोयँदा। (३) किसी वस्तु का कोई लंबोतरा छोटा टुकड़ा जिसका पेटा गोल हो। जैसे, काठ की गुल्ली, सोने की गुल्ली, रुपयों की गुल्ल, इत्यादि। उ०—हल के पीछे जो लोहे की तीखी गुल्ली रहती है उससे धरती खुदती है।—शिवप्रसाद।

मुहा०—गुल्ली बँधना = वीर्य्य का पुष्ट होना। युवावस्था आना।

(४) काठ का चार छः अंगुल लंबा टुकड़ा जिसके दोनों छोर जौ की तरह नुकीले होते हैं तथा पेटा मोटा और गोल होता है। इसे डंडे से मार मार कर लड़के एक प्रकार का खेल खेलते हैं। अंटी। अँटई। उ०—यह लड़का दिन भर गुल्ली डंडा खेला करता है। (५) छत्ते में वह जगह जहाँ मधु होता है। (६) केवड़े का फूल। (७) मकई की बाल जिसके दाने निकाल लिए गए हों। खुखड़ी। (८) एक प्रकार की मैना। गंगा मैना। (९) ऊख की गँड़ेरी। गाँड़ा। (१०) छोटा गोल पासा। कोई पासा।

यौ०—गुल्लीवाला = पासा बनानेवाला।

(११) सिकलीगरों का एक औज़ार जिससे वे तलवार या किसी हथियार का ज़ंग (मोरचा) खुरचते हैं। (१२) जिल्द-साजों का एक औजार जिससे रगड़ कर वे जिल्द की सीवन बराबर करते हैं। (१३) पगड़ी बुननेवालों का एक औज़ार जिसे बुनते समय पाग के दोनों ओर इसलिये लगाते हैं जिसमें पाग तनी रहे।

विशेष—कई और पेशेवालों के गुल्ली के आकार के औज़ार इसी नाम से प्रसिद्ध हैं।

गुवाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुपारी। (२) चिकनी सुपारी।

गुवार†*-संज्ञा पुं० दे० "ग्वाल"।

गुवारपाठा-संज्ञा पुं० दे० "ग्वारपाठा"।

गुवाल*†-संज्ञा पुं० दे० "ग्वाल"।

गुविंद†*-संज्ञा पुं० दे० "गोविंद"।

गुसल-संज्ञा पुं० दे० "गुस्ल"।

गुसाँई-संज्ञा पुं० दे० "गोसाँई वा गोस्वामी"।

गुसा†*-संज्ञा पुं० दे० "गुस्सा"। उ०—सूरदास चरणनि के बलि बलि कौन गुसा ते कृपा बिसारी।—सूर।

गुस्ताख़-वि० [फ़ा०] धृष्ट। ढीठ। अशालीन। अशिष्ट। बेअदब। बड़ों का संकोच न रखनेवाला।

गुस्ताख़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] धृष्टता। ढिठाई। अशिष्टता। बेअदबी।

गुस्ल-संज्ञा पुं० [अ०] स्नान।

यौ०—गुस्लखाना।

गुस्लखाना–संज्ञा पुं० [अ० गुस्ल + फ़ा० खाना] स्नानागार। नहाने का घर। उ०—अरे ते गुसलखाने बीच ऐसे उमराव, लै चले मनाय महाराज शिवराज को।—भूषण।

गुस्सा–संज्ञा पुं० [अ०] [वि० गुस्सावर, गुस्सैल] क्रोध। कोप। रिस।
क्रि० प्र०—आना।—करना।—होना।—में आना।
मुहा०—गुस्सा उतरना = क्रोध शांत होना। (किसी पर) गुस्सा उतारना = (१) क्रोध में जो इच्छा हो उसे पूर्ण करना। कोप प्रकट करना। अपने कोप का फल चखाना। (२) एक के ऊपर जो क्रोध हो उसे दूसरे पर प्रकट करना। उ०—उससे तो जीतते नहीं, हमारे ऊपर गुस्सा उतारते हो। गुस्सा चढ़ना = क्रोध का आवेश होना। रिस का लगना। गुस्सा थूक देना = क्रोध को दूर कर देना। क्षमा करना। गई गुज़री करना। (स्त्रियाँ)। गुस्सा निकालना = "दे० "गुस्सा उतारना"। नाक पर गुस्सा होना = बहुत जल्दी क्रोध में आना। बात बात पर क्रोध करना। क्रोध करने के लिये सदा तैयार रहना। गुस्सा पीना = क्रोध रोकना। भीतर ही भीतर क्रोध करके रह जाना, प्रकट न करना। गुस्सा मारना = क्रोध रोकना। गुस्से से लाल होना = क्रोध से तमतमाना। क्रोध के आवेश में आना।

गुस्सैल–वि० [अ० गुस्सा + हिं० ऐल (प्रत्य०)] जिसे जल्दी क्रोध आवे। गुस्सावर। थोड़ी थोड़ी बात पर बिगड़नेवाला। उ०—वह बड़ा गुस्सैल आदमी है, उससे मत बोलो।

गुह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्त्तिकेय। (२) अश्व। घोड़ा। (३) विष्णु का एक नाम। (४) निषाद जाति का एक नायक जो शृंगवेरपुर में रहता था और राम का मित्र था। (५) सिंहपुच्छी लता। पिठवन। (६) शालपर्णी। सरिवन। (७) गुफा। (८) हृदय। (९) माया। (१०) मेढ़ा। (११) बुद्ध। (१२) बंगाली कायस्थों की एक जाति।
†संज्ञा पुं० [सं० गुह्य] गूह। मैला।
विशेष—मुहावरों आदि के लिये दे० "गूह"।

गुहड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों का एक रोग जिसे खुरपका भी कहते हैं। इसमें उनके मुँह से लार बहती है, खुर में दाने पड़ जाते हैं और उनका शरीर गरम रहता है। चलने में भी वे लँगड़ाते हैं।

गुहना†–क्रि० स० [सं० गुम्फन] (१) गूँथना। एक में पिरोना। गूँधना। गाँथना। उ०—(क) शंभु जू मंजु गहे गुन सो उर डारत औरै बढ़ी दुति नारि की।—शंभु। (ख) पर कीजै कहा यहि गाँव के लोग गुहैं चरचान को चौसर है।—सुँदरी सर्वस्व। (२) सुई तागे से दृढ़ करके सी देना।

गुहराज–संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रासाद वा महल जो गुह (कार्तिकेय) के आकार का बनता है। इसका विस्तार सोलह हाथ का होता है। (बृहत्संहिता)

गुहराना†–क्रि० स० [हिं० गुहार] पुकारना। चिल्लाकर बुलाना। उ०—कहै रघुराज सो करिंद तजि फंद सब कर अरविंद लै गोविंद गुहरायो है।—रघुराज।

गुहवाना–क्रि० स० [हिं० गुहना का प्रे०] गुहने का काम कराना। गुँधवाना।

गुहषष्ठी–संज्ञा स्त्री० [सं०] अगहन सुदी छठ जो कार्तिकेय की जन्मतिथि मानी जाती है।

गुहांजनी–संज्ञा स्त्री० [सं० गुह्य + अंजन] आँख की पलक पर होनेवाली फुड़िया। बिलनी। घुरघुरी। अंजनहारी।

गुहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुफा। कंदरा। उ०—कोल विलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरिगुहा गँभीरा।—तुलसी।

गुहाना–क्रि० स० दे० "गुहवाना"।

गुहार–संज्ञा स्त्री० [सं० गो + हार] रक्षा के लिये पुकार। दोहाई। उ०—(क) बात कहत भई देश गुहारी।—जायसी। (ख) नीकी दई अनाकनी फीकी परी गुहारि।—बिहारी।
क्रि० प्र०—पड़ना।—मारना।—लगना।—लगाना।
विशेष—दे० "गोहार"।

गुहारि†–संज्ञा स्त्री० दे० "गुहार"।

गुहाचर–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म।

गुहाल†–संज्ञा पुं० [सं० गोशाला] गोशाला। गायों के रहने का स्थान।

गुहेरा–संज्ञा पुं० [सं० गोध, हिं० गोह] गोह नाम का कीड़ा। गोध।

गुह्य–वि० [सं०] (१) गुप्त। छिपा हुआ। पोशीदा। (२) गोपनीय। छिपाने योग्य। (३) गूढ़। जिसका तात्पर्य्य सहज में न समझा जा सके।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) छल। कपट। दंभ। (२) कछुवा। कच्छप। (३) गुदा, भग, लिंग आदि गोपनीय अंग। (४) विष्णु। (५) शिव।

गुह्यक–संज्ञा पुं० [सं०] वे यक्ष जो कुबेर के खज़ानों की रक्षा करते हैं। निधि-रक्षक यक्ष।
यौ०—गुह्यकेश्वर।

गुह्यकेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

गुह्यपति–संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

गूँगा–वि० [फ़ा० गुंग = जो बोल न सके] [स्त्री० गूँगी] जो बोल न सके। जिसके मुँह से स्पष्ट शब्द न निकले। जिसे वाणी न हो। मूक।
संज्ञा पुं० वह मनुष्य वा प्राणी जो बोल न सके।
मुहा०—गूँगे का गुड़ = ऐसी बात जिसका अनुभव हो पर वर्णन न हो सके। ऐसी बात जो कहते न बने। (गूँगा मनुष्य गुड़ का स्वाद अनुभव तो करता है पर उसे प्रकट नहीं कर सकता।) उ०—अमृत कहा अमित गुन प्रगटै सो हम कहा

बतावैं। सूरदास गूँगे के गुर ज्यों बूझति कहा बुझावै।—सूर। गूँगे का गुड़ खाना=गूँगे के द्वारा गुड़ का खाया जाना। (क) नैनहिँ ढुरहिँ मोति औ मूँगा। जस गुर खाय रहा है गूँगा।—जायसी। उ०—(ख) ज्यों गूँगा गुर खाइ कै स्वाद न सकै बखानि।—तुलसी। (बहुत लोगों ने विशेष कर उर्दूवालों ने 'गूँगे का गुड़' का मतलब 'गूँगे का दिया हुआ गुड़' समझा है और इसी अर्थ में इसका प्रयोग भी किया है। ऐसा प्रयोग अशुद्ध है जैसा कि हिंदी कवियों के उदाहरणों से स्पष्ट है।) गूँगे का सपना=दे० "गूँगे का गुड़"। गूँगी पहेली=वह पहेली जो मुँह से न कही जाय, इशारों में कही जाय।

गूँगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूँगा] स्त्रियों की उँगली में पहनने की एक प्रकार की बिछिया जो आकार में गोल होती है।

वि० 'गूँगा' का स्त्री०।

गूँच—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्ज] गुंजा। घुँघची।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

गूँछ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी मछली जो ६ फुट तक लंबी होती है और भारत की सब नदियों में पाई जाती है। इसका मुँह नीचे की ओर होता है। आकार भी इसका बहुत भद्दा होता है। यह प्रायः बहुत गहरे पानी में रहती है। इससे जल्दी नहीं फँसती। बूँछ।

गूँज—संज्ञा स्त्री० [सं० गुंज] (१) भौंरों के गूँजने का शब्द। कलध्वनि। गुंजार। भिनभिनाहट। उ०—अपनी मीठी गूँज से (भौंरा) उसके रस को उभाड़ता है और तब उस पर रस लेने के लिये बैठता है।—अयोध्या। (२) प्रतिध्वनि। व्याप्तध्वनि। देर तक बना रहनेवाला शब्द। (३) लट्टू में नीचे की ओर जड़ी हुई वह लोहे की कील जिस पर लट्टू घूमता है। (४) कान में पहनने की बालियों आदि में शोभा के लिये थोड़ी दूर तक लपेटा छोटा पतला तार।

गूँजना—क्रि० अ० [सं० गुंजन] (१) भौंरों या मक्खियों का भिनभिनाना। भौंरों का मधुर ध्वनि करना। गुंजारना। उ०—फूले बर बसंत बन बन में कहुँ मालती नवेली। तापै मदमाते से मधुकर गूँजत मधुरस रेली।—हरिश्चंद्र। (२) (किसी स्थान का) प्रतिध्वनित होना। शब्द से व्याप्त होना। उ०—बाजे के स्वर से सारा घर गूँज उठा।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

(३) शब्द का खूब फैलना और देर तक बना रहना। ध्वनि व्याप्त होना। प्रतिध्वनि होना। उ०—यहाँ आवाज़ खूब गूँजती है।

गूँठ—संज्ञा पुं० [हिं० गोंठा=छोटा, नाटा] पहाड़ी टट्टू। टाँगन।

गूँथना—क्रि० स० दे० "गूथना"।

गूँदा—संज्ञा पुं० दे० "गोंदा"।

गूँदी—संज्ञा स्त्री० [?] गँभेला नाम का पेड़ जो गिरगिट्टी की जाति का होता है और जिसकी जड़, छाल और पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं।

गूँधना—क्रि० स० [सं० गुध=क्रीड़ा] पानी में सान कर हाथों से दबाना या मलना। माड़ना। मसलना। जैसे, आटा गूँधना।

क्रि० स० [सं० गुंफन] (१) गूँथना। पिरोना। जैसे, माला गूँधना। (२) कई तागों या बालों की लटों को घुमा घुमा कर इस प्रकार एक दूसरे पर चढ़ाते हुए फँसाना कि एक लड़ी सी बन जाय। बालों या तागों को लेकर इस प्रकार बटना कि बराबर गुच्छे से बनते जाँय। जैसे, चोटी गूँधना।

गूगल, गूगुल—संज्ञा पुं० दे० "गुग्गुल"।

गूजर—संज्ञा पुं० [सं० गुर्जर] [स्त्री० गूजरी, गुजरिया] (१) अहीरों की एक जाति। ग्वाला। (२) क्षत्रियों का एक भेद।

गूजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुर्जरी] (१) गूजर जाति की स्त्री। ग्वालिन। (२) पैर में पहनने का एक जेवर। उ०—सौतिन को करि डारिहै कूजरी ऊजरी गूजरी गूजरी तेरी।—सुंदरी सर्वस्व। (३) एक रागिनी।

गूजी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गुजुवा का स्त्री०] एक प्रकार का छोटा काला कीड़ा।

गूझा—संज्ञा पुं० [सं० गुह्यक, प्रा० गुज्झा] [स्त्री० गुझिया] (१) बड़ी पिराक। आटे वा मैदे का एक पकवान जो आकार में अर्द्धचंद्र होता है। इसके भीतर मीठा तथा गरी, चिरौंजी, किसमिस आदि मेवे भरे रहते हैं। †(२) गूदा। (३) फलों के भीतर का रेशा।

गूटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] लीची का पेड़ लगाने की एक युक्ति।

संज्ञा स्त्री० [देश०] चौपायों का एक रोग।

गूड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुहा वा गुह्य] ज्वार या बाजरे की बाल में वह गड्ढा वा प्याली जिसमें दाना गड़ा रहता है।

गूढ़—वि० [सं०] (१) गुप्त। छिपा हुआ।

यौ०—गूढ़जत्रु, गूढ़पाद=सर्प।

(२) जिसमें बहुत सा अभिप्राय छिपा हो। अभिप्राय-गर्भित। गंभीर। उ०—उसकी बातें बहुत गूढ़ होती हैं। उ०—कह मुनि बिहँसि गूढ़ मृदुबानी। सुता तुम्हारि सकल गुणखानी।—तुलसी। (३) जिसका आशय जल्दी समझ में न आवे। अबोधगम्य। कठिन। जटिल। जैसे, गूढ़ विषय।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्मृति में पाँच प्रकार के साक्षियों में से एक साक्षी जिसे अर्थी ने प्रत्यर्थी का वचन सुना दिया हो। (२) एक अलंकार जिसे सूक्ष्म भी कहते हैं। (दे० "सूक्ष्मालंकार") गूढ़ोत्तर, गूढ़ोक्ति। सूक्ष्म, पर्यायोक्ति और विवृतोक्ति नामक अलंकार सब इसी के अंतर्गत आ सकते हैं।

गूढ़ज, गूढ़जात–संज्ञा पुं० [सं०] बारह प्रकार के पुत्रों में से एक । वह पुत्र जिसे पति के घर रहते हुए भी पत्नी ने अपने किसी गुप्त जार से पैदा किया हो और वह जार उसके पति का सवर्ण ही हो ।

गूढ़ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुप्तता । छिपाव । पोशीदगी । (२) अबोधगम्यता । गंभीरता । कठिनता ।

गूढ़त्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गूढ़ता । गुप्तता । (२) गंभीरता । अबोधगम्यता । कठिनता ।

गूढ़नीड़–संज्ञा पुं० [सं०] खंजन पक्षी ।

गूढ़पत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) करील वृक्ष । (२) अंकोट का पेड़ ।

गूढ़पद, गूढ़पाद–संज्ञा पुं० [सं०] सर्प । साँप ।

गूढ़पुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीपल, बड़, गूलर, पाकर, इत्यादि वृक्ष । (२) मौलसिरी । बकुलवृक्ष ।

गूढ़फल–संज्ञा पुं० [सं०] बेर का पेड़ ।

गूढ़मंडप–संज्ञा पुं० [सं०] किसी देव मंदिर के भीतर का बरामदा या दालान ।

गूढ़मैथुन–संज्ञा पुं० [सं०] काक । कौवा ।

गूढ़व्यंग्य–संज्ञा स्त्री० [सं०] काव्य में एक प्रकार की लक्षणा जिस में व्यंग्य का अभिप्राय सर्वसाधारण को जल्दी समझ में नहीं आ सकता ।

गूढ़ांग–संज्ञा पुं० [सं०] कछुवा ।

गूढ़ांघ्रि–संज्ञा पुं० [सं०] सर्प । साँप ।

गूढ़ा–संज्ञा पुं० [सं० गूढ़] मोटी और लंबी लकड़ी जो नाव में कोटभरिया के ऊपर लगाई जाती है । यह किश्ती की लंबाई के हिसाब से डेढ़ डेढ़ या दो दो हाथ की दूरी पर नाव की मज़बूती के लिये लगाई जाती है ।

गूढ़ोक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें कोई गुप्त बात किसी दूसरे के ऊपर छोड़ किसी तीसरे के प्रति कही जाती है । उ०—वृष भागहु पर खेत से, आयो रक्षक खेत । यहाँ समीप चरते हुए बैल के बहाने परकीया के नायक के प्रति बात कही गई है ।

गूढ़ोत्तर–संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें प्रश्न का उत्तर कोई गूढ़ अभिप्राय या मतलब लिए हुए दिया जाता है । जैसे, ग्वालिन देहु बताइ हौं मोहिँ कछू तुम देहु । बंसीबट की छाँह में लाल जाय तुम लेहु ।—मतिराम । यहाँ उत्तर में लाल शब्द के द्वारा नायक से मिलने का संकेत है ।

गूथना–संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथन] (१) कई वस्तुओं को तागे आदि के द्वारा एक में बाँधना वा फँसाना । कई चीज़ों को एक गुच्छे वा लड़ी में नाथना । पिरोना । जैसे, माला गूथना । (२) किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में सूई तागे से अटकाना । टाँकना । उ०—फूलों पर स्थान स्थान पर मोती गूथे गए थे । (३) टाँके आदि के द्वारा दो वस्तुओं को एक में जोड़ना । टाँके से जोड़ मिलाना । (४) भद्दी सिलाई करना । टाँका मारना । सीना । गाँथना ।

गूद†–संज्ञा पुं० [सं० गुप्त, प्रा० गुत्त] गूदा । मग्ज़ ।

संज्ञा स्त्री० [सं० गर्त्त] (१) गड्ढा । गर्त । (२) गहरा चिह्न । निशान । दाग । उ०—उसके चेहरे पर शीतला की गूदें थीं ।

गूदड़–संज्ञा पुं० [हिं० गूथना] [स्त्री० गुदड़ी] चिथड़ा । फटा पुराना कपड़ा । उ०—हय गयंद उतरि कहा गर्दभ चढ़ि धाऊँ । कंचनमणि खोलि डारि काँच गर बँधाऊँ । कुंकुम को तिलक मेटि काजर मुख लाऊँ । पाटंबर अंबर तजि गूदर पहिराऊँ । —सूर ।

यौ०—गूदड़शाह वा गूदड़साँई = गुदड़ी पहननेवाला साधू या फकीर ।

गूदर *†–संज्ञा पुं० दे० "गूदड़" ।

गूदा–संज्ञा पुं० [सं० गुप्त, प्रा० गुत्त] [स्त्री० गूदी] (१) किसी फल का सार भाग जो छिलके के नीचे होता है । फल के भीतर का वह अंश जिसमें रस आदि रहता है । (२) भेजा । मग्ज़ । खोपड़ी का सार भाग । उ०—सोनित सो सानि गूदा खात सतुवा से एक, एक प्रेत पियत बहोरि घोरि घोरि कै । —तुलसी ।

मुहा०—मारते मारते गूदा निकालना = गहरी मार मारना ।

(३) किसी बीज के भीतर का सार भाग । मींगी । गिरी । (४) किसी वस्तु का सार भाग ।

मुहा०—बातों का गूदा निकालना = बाल की खाल निकालना । बहुत खोद विनोद करना ।

गून–संज्ञा स्त्री० [सं० गुण = रस्सी] (१) रस्सी जिससे नाव खींचते हैं (२) रीहां घास ।

गूना–संज्ञा पुं० [फा० गूनः = रंग] एक प्रकार का सुनहला रंग जो पीतल या सोने से बनाया जाता है और संदूकों, शीशों तथा धातु की और और वस्तुओं पर चढ़ाया जाता है ।

गूमड़ा–संज्ञा पुं० [सं० गुल्म] वह गोल और कड़ी सूजन जो सिर वा माथे पर चोट लगने से होती है ।

गूमना†–क्रि० स० [?] (१) गूँधना । माँड़ना । आटे की तरह माँड़ना । (२) कुचलना । रौंदना ।

गूमा–संज्ञा पुं० [सं० कुंभा, गुंभा] एक छोटा पौधा जिसकी गाँठ गाँठ पर गुच्छा सा होता है । इसी गुच्छे पर दो पत्ते निकलते हैं और सफ़ेद फूल भी लगते हैं । यह औषध के काम में आता है ।

पर्य्या०—द्रोणा । द्रोणपुष्पी । कुंभा । कुंभयोनि ।

गूरा†–संज्ञा पुं० [हिं० गुल्ला] गुल्ला । ढेला ।

गूलर–संज्ञा पुं० [सं० उदुंबर ?] वटवर्ग अर्थात् पीपल और बरगद की जाति का एक बड़ा पेड़ जिसकी पेड़ी, डाल आदि से एक

प्रकार का दूध निकलता है। इसके पत्ते महुवे के पत्ते के आकार के पर उससे छोटे होते हैं। पेड़ी और डाल की छाल का रंग ऊपर कुछ सफ़ेदी लिए और भीतर ललाई लिए होता है। अश्वत्थवर्ग के और पेड़ों के समान इसके सूक्ष्म फूल भी अंतर्मुख अर्थात् एक कोश के भीतर बंद रहते हैं। पुं० पुष्प और स्त्री० पुष्प के अलग अलग कोश होते हैं। गर्भाधान कीड़ों की सहायता से होता है। पुं० केसर की वृद्धि के साथ साथ एक प्रकार के कीड़ों की उत्पत्ति होती है जो पुं० पराग को गर्भकेसर में ले जाते हैं। यह नहीं जाना जाता कि ये कीड़े किस प्रकार पराग ले जाते हैं पर यह निश्चय है कि ले अवश्य जाते हैं और उसी से गर्भाधान होता है तथा कोश बढ़ कर फल के रूप में होते हैं। यह बिलकुल मांसल और मुलायम होता है। उसके ऊपर कड़ा छिलका नहीं होता, बहुत महीन झिल्ली होती है। फल को तोड़ने से उसके भीतर परिपक्व गर्भकेसर और महीन महीन बीज दिखाई पड़ते हैं तथा भुनगे वा कीड़े भी मिलते हैं। गूलर की छाया बहुत शीतल मानी जाती है। वैद्यक में गूलर शीतल, घाव को भरनेवाला, कफ़, पित्त और अतीसार को दूर करनेवाला माना है। इसकी छाल भी गर्भ को हितकारी, दुग्धवर्द्धक और व्रणनाशक मानी जाती है। अंजीर आदि वट जाति के और फलों के समान इसका फल भी रेचक होता है।

पर्य्या०—उदुंबर। असुमा। क्षीरी। खस्पत्रिका। कुष्ठघ्नी। राजिका। फल्गुवाटिका। अजाजी। फल्गुनी। मलयु।

मुहा०—गूलर का कीड़ा = एक ही स्थान पर पड़ा रहनेवाला। अनुभव प्राप्त करने के लिये घर वा देश से बाहर न निकलनेवाला। इधर उधर की कुछ भी खबर न रखनेवाला। कूपमंडूक। **गूलर का फूल** = वह जो कभी देखने में न आवे। दुर्लभ व्यक्ति वा वस्तु। **गूलर का फूल होना** = कभी देखने में न आना। दुर्लभ होना। **गूलर का पेट फड़वाना** = गुप्त वा दबी दबाई बात प्रकट कराना। भंडा फोड़वाना। भेद खुलवाना। **गूलर फोड़ कर जीव उड़ाना** = गुप्त भेद प्रकट करना।

† संज्ञा पुं० [देश०] मेढक। दादुर।

गूलर-कबाब—संज्ञा पुं० [हिं० गूलर + फ़ा० कबाब] एक प्रकार का कबाब जो उबले और पिसे हुए मांस के भीतर अदरक, पुदीना आदि भर कर भूनने से बनता है।

गूलू—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक वृक्ष का नाम जिसे पुंड्रक भी कहते हैं। इससे एक प्रकार का सफ़ेद गोंद निकलता है जिसे कतीला वा कतीरा कहते हैं और जो पानी में नहीं घुलता। इस वृक्ष की छाल की रस्सियाँ बटी जाती हैं। जब यह वृक्ष दस वर्ष का हो जाता है तब इसे काट डालते हैं और डालियों को छाँट कर तने के छ छ फुट के टुकड़े कर डालते हैं। फिर छाल को उतार कर रस्सियाँ बटते हैं। पत्तियाँ और डालियाँ चारे और दवा के काम आती हैं। लकड़ी के खिलौने तथा सितार सारंगी आदि बाजे बनते हैं। कोई कोई जड़ों की तरकारी बनाते हैं या उन्हें गुड़ के साथ मिला कर खाते हैं। यह उत्तरीय भारत, मध्य भारत, दक्षिण तथा वर्मा के सूखे जंगलों में होता है। पश्चिमी घाट के पहाड़ों पर यह बहुत मिलता है।

गूषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोर की पूँछ पर बना हुआ अर्द्धचंद्र चिह्न।

गूह—संज्ञा पुं० [सं० गुह] गलीज। मल। मैला। बिष्ठा। बीट।

मुहा०—(१) **गूह उठाना** = पाखाना साफ़ करना। (२) तुच्छ से तुच्छ सेवा करना। बड़ी सेवा करना। **गूह की तरह बचाना** = घृणा पूर्वक दूर रहना। उ०—हम ऐसे आदमियों को गूह की तरह बचाते हैं। **गूह का चोंथ** = भद्दा और घिनौना (वस्तु वा व्यक्ति)। **गूह की तरह छिपाना** = निंदा और लज्जा के भय से गुप्त रखना। **गूह उछलना** = कलंक फैलना। निंदा होना। **गूह उछालना** = बदनामी कराना। **गूह करना** = गंदा और मैला करना। **गूह का टोकरा** = बदनामी का टोकरा। कलंक का भार। **गूह खाना** = बहुत अनुचित और भ्रष्ट कार्य्य करना। **गूह गोड़ते फिरना** = अगम्या स्त्रियों से गमन करते फिरना। **गूह थापना** = होश में न रहना। पागलपन के काम करना। **गूह में ढेला फेंकना** = बुरे आदमी से छेड़ छाड़ करना। (बच्चों और रोगियों का) **गूह मूत करना** = मलमूत्र साफ़ करना। **मुँह में गूह देना** = बहुत धिक्कारना। किसी को छी छी कहना।

गूहांजनी—संज्ञा स्त्री० दे० "गुहांजनी"।

गूहाछीछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गूह + छी छी] बुरे रूप का झगड़ा। गंदी कहा सुनी। बदनामी। अपवाद। कलंक।

गृंजन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाजर। (२) शलगम।

गृध्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गिद्ध। गीध। पक्षी। (२) जटायु, संपाति आदि पौराणिक पक्षी।

यौ०—गृध्रकूट। गृध्रव्यूह।

गृध्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] राजगृह के निकट एक पर्वत का नाम।

गृध्रव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] सेना की एक प्रकार की रचना वा स्थिति जो गीध के आकार की होती थी। उ०—तब प्रद्युम्न तुरत प्रभु टेरा। गृध्रव्यूह विरचहु दल केरा।—रघुराज।

गृध्रसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बात रोग जो पहले कूल्हे से उठता है और धीरे धीरे नीचे को उतरता हुआ दोनों पैरों को जकड़ लेता है। इसमें सुई चुभने की सी पीड़ा होती है, पैर काँपने लगते हैं, रोगी बहुत धीरे चलता है, तेज़ नहीं चल सकता।

गृह—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गृही] (१) घर। मकान। निवास-स्थान। आश्रम। (२) कुटुंब। खानदान। वंश।

गृहकन्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] घीकुवार । घृतकुमारिका । ग्वारपाठा ।

गृहकुमारी–संज्ञा स्त्री० दे० "गृहकन्या" ।

गृहगोधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली । बिसतुइया ।

गृहगोधिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली । बिसतुइया ।

गृहणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] काँजी ।

गृहनाशन–संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर ।

गृहनीड़–संज्ञा पुं० [सं०] गौरा पक्षी । गौरैया ।

गृहप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर का मालिक । (२) घर का रक्षक । चौकीदार । (३) कुत्ता । उ०—(क) गृहप गोध गोमाक कलोलैं छांटत मूँड़ कपाली डोलैं ।—विश्राम । (ख) यथा गृहप शवकास्थि लै चपि चाबत सह प्रीति । निज तालूगत तनुज भखि मानत तोष अभीति ।—विश्राम । (४) अग्नि । आग ।

गृहपति–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गृहपत्नी] (१) घर का मालिक । (२) कुत्ता । (३) अग्नि ।

गृहपशु–संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता ।

गृहपाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर का रक्षक । चौकीदार । पहरू । (२) कुत्ता । उ०— गृहपालहू ते अति निरादर खान पान न पावई ।—तुलसी ।

गृहमणि–संज्ञा पुं० [सं०] दीपक । चिराग ।

गृहमृग–संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता ।

गृहस्त†–संज्ञा पुं० दे० "गृहस्थ" ।

गृहस्थ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मचर्य्य के उपरांत विवाह कर के दूसरे आश्रम में रहनेवाला व्यक्ति । ज्येष्ठाश्रमी । (२) घर-बार-वाला । बाल-बच्चों-वाला आदमी । † (३) खाने पीने से खुश आदमी । वह मनुष्य जिसके यहाँ खेती आदि होती हो ।

गृहस्थाश्रम–संज्ञा पुं० [सं०] चार आश्रमों में से दूसरा आश्रम जिसमें ब्रह्मचर्य्य अर्थात् विद्याध्ययन आदि के उपरांत लोग विवाह करके प्रवेश करते थे और घर का काम काज देखते थे । जीवन की वह अवस्था जिसमें लोग स्त्री पुत्र आदि के साथ रहते और उनका पालन करते हैं ।

गृहस्थी–संज्ञा स्त्री० [सं० गृहस्थ + ई (प्रत्य०)] (१) गृहस्थाश्रम । गृहस्थ का कर्त्तव्य । (२) घरबार । गृह व्यवस्था । (३) कुटुंब । लड़के बाले । उ०—वे अपनी गृहस्थी लेने गए हैं ।
मुहा०—गृहस्थी सँभालना = घर का काम काज देखना । कुटुंब का पालन पोषण करना ।
(४) घर का सामान । माल असबाब । उ०—इतनी गृहस्थी कौन ढो कर ले जाय ।
† (५) खेती बारी । काम काज ।

गृहिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घर की मालिकिन । (२) भार्य्या । स्त्री ।

गृही–संज्ञा पुं० [सं० गृहिन्] [स्त्री० गृहिणी] गृहस्थ । गृहस्थाश्रमी ।

गृह्य–वि० [सं०] (१) गृह संबंधी । गृहस्थी से संबंध रखनेवाला ।

गृह्यसूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह वैदिक पद्धति पुस्तक जिसमें लिखे हुए नियमों के अनुसार गृहस्थ लोग मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि सब संस्कार और कार्य्य करते हैं । पाँच गृह्यसूत्र बहुत प्रसिद्ध हैं—(१) आश्वलायन, (२) कात्यायन, (३) सांख्यायन, (४) मानव और (५) गोभिल ।

गैँगटा–संज्ञा पुं० [सं० कर्कट] केकड़ा ।

गैँठी–संज्ञा स्त्री० [सं० गृष्टि, प्रा० गिट्ठि, गेट्ठि] बाराही कंद ।

गैँड़†–संज्ञा पुं० [सं० कांड] ऊख के ऊपर का पत्ता । अगौरा ।
संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] (१) ऊख की पत्तियों, सरसों की डंठलों, और अरहर की काँड़ियों से बना हुआ घेरा जिसमें नीचे ऊपर भूसा देकर किसान अन्न रखते हैं ।
क्रि० प्र०—डालना ।—देना ।
(२) किसी प्रकार का घेरा ।

गैँड़ना–क्रि० स० [हिं० गेंड] (१) किसी खेत को पतली छोटी दीवार से घेरना । खेतों को मेड़ से घेर कर हद बाँधना । (२) अन्न रखने के लिये गेंड़ बनाना । (३) घेरना । गोंठना । (४) लकड़ी के बड़े छोटे टुकड़े काटने के लिये उसके चारों ओर कुल्हाड़ी से छेव लगाना ।

गैँड़ली–संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडली] कुंडल । फेंटा । रस्सी के ऐसी वस्तु की वह स्थिति जिसमें एक दूसरे के भीतर कई मंडलाकार घेरे हों । उ०—साँप गेंडली मार कर बैठा है ।
क्रि० प्र०—बाँधना ।—मारना ।

गैँड़िया†–संज्ञा स्त्री० [देश०] सब रंग के मिले हुए रोएँ वा ऊन । (गड़रियों की बोली)

गैँड़ा–संज्ञा पुं० [सं० कांड] (१) ईख के ऊपर के पत्ते । अगोरी । (२) ईख । गन्ना । (३) ईख की बड़ी गड़ेरी । (४) ईख के कटे हुए टुकड़े जो खेत में बोए जाते हैं । (५) पत्थर की निहाई जिस पर पीतल और ताँबा लाल करके पीटते हैं । इसका व्यवहार प्रायः मिर्ज़ापुर में है । † (६) दे० "गैंड़ा" ।

गेंडु, गेंडुक–संज्ञा पुं० [सं०] गेंद । कंदुक ।

गैँडुआ†–संज्ञा० पुं० [सं० गेंडुक = गेंद] (१) तकिया । सिरहाना । उसीसा । उ०—(क) लोगनि भलो मनाइबो भलो होन की आस । करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीदास ।—तुलसी । (ख) अंग को कि अंगराग गेंडुआ की गलसुई किधौं कटि जेब ही उर को कि हारु है ।—केशव । (ग) चंपक दल द्युति गेंडु ये । मनहुँ रूप के रूपक उये ।—केशव । (२) बड़ा गेंद ।

गैँडुरी–संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडली] (१) रस्सी का बना हुआ मेंडरा जिस पर घड़ा रखते हैं । इँडुरी । बिड़वा । उ०—अतिहि करत तुम श्याम अचगरी । काहू की छीनत हो गेंडुरी काहू

की फेरत हौ गगरी।—सूर। (२) फेंटा। कुंडली। (३) तबले वा बाएँ के नीचे की इंडुरी जिस में बद्धी लगा कर कसते हैं। (४) साँपों का कुंडलाकार हो कर गोल बैठना।

क्रि० प्र०—मारना।—मार कर बैठना।

गैँडुली—संज्ञा स्त्री० दे० "गेंडुरी"।

गैँती—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो अवध में छोटी छोटी नदियों और सोतों के किनारे और नैपाल की तराई में अधिकता से पाया जाता है। इस की पत्तियाँ ४-५ अंगुल लंबी और प्रायः इतनी ही चौड़ी होती हैं। गरमी के आरंभ में इस में हरापन लिए हुए पीले रंग के छोटे छोटे फूलों के गुच्छे भी लगते हैं।

गैँद—संज्ञा पुं० [सं० गेंडुक, कंदुक] (१) कपड़े, रबर वा चमड़े का गोला जिससे लड़के खेलते हैं। कंदुक। उ०—लागे खेलन गेंद कन्हाई। चढ़े विटप शिशु मारिसि धाई।—विश्राम।

क्रि० प्र०—उछालना।—खेलना।—फेंकना।—मारना।

यौ०—गेंदघर। गेंदतड़ी। गेंदबल्ला।

(२) कालिब जिस पर रख कर टोपी बनाते हैं। कलबूत। (३) रोशनी करने की एक वस्तु जिसमें तार की जालियों से बने हुए एक गोले के भीतर रोशनी जलती है।

गैँदई—वि० [हिं० गेंदा] गेंदे के फूल के रंग का। पीले रंग का। संज्ञा पुं० गेंदे के फूल के समान पीला रंग।

गैँदघर—संज्ञा पुं० [हिं० गेंद + घर] (१) वह स्थान जहाँ लोग क्रिकेट, टेनिस आदि खेल खेलते और आमोद प्रमोद करते हैं। क्लबघर। (२) वह मकान जिस में अँगरेज़ बिलियर्ड नामक खेल खेलते हैं। बिलियर्ड रूम।

गैँदतड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गेंद + तड़ातड़] लड़कों का एक खेल जिस में वे एक दूसरे को गेंद मारते हैं, जिसे गेंद लगता है वह चोर होता है।

गैँदबल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० गेंद + बल्ला] (१) गेंद और उसे मारने की लकड़ी। (२) वह खेल जिसमें लकड़ी की एक पटरी से गेंद मारते हैं।

गैँदरा मारना—क्रि० अ० [हिं० गेंद] लंगर डाले हुए जहाज का हवा वा लहर के कारण इधर उधर हो जाना। (लश०)

गैँदवा†—संज्ञा पुं० [सं० गेण्डुक] तकिया। उसीसा। सिरहाना। उ०—प्रेम क पलंगा दियौ है बिछाय। सुरति के गेंदवा दिए ढरकाय।—कबीर।

गैँदा—संज्ञा पुं० [हिं० गेंद] (१) दो ढाई हाथ ऊँचा एक पौधा जिस में पीले रंग के फूल लगते हैं। इसमें लंबी पतली पत्तियाँ सींके के दोनों ओर पंक्तियों में लगती हैं। यह दो प्रकार का देखने में आता है एक जंगली वा टिर्री जिस के फूल चार ही पांच दल के होते और बीच का केसर-गुच्छ दिखाई पड़ता है और दूसरा हजारा जिसमें बहुत दल होते हैं। फूलों के रंगों में भी भिन्नता होती है, कोई हलके पीले रंग के होते हैं, कोई नारंगी रंग के होते हैं। एक लाल रंग का गेंदा भी होता है जिस की डंठलें कालापन लिए लाल होती हैं और फूल भी उसी मखमली रंग के लगते हैं। गेंदे की सुखाई हुई पखड़ियों को फिटकिरी के साथ पानी में उबालने से गंधकी रंग बनता है। (२) एक प्रकार की आतिशबाजी जिस में गेंदे के फूल की आकृति के गुल निकलते हैं। (३) सोने वा चाँदी का सुपारी के आकार का एक घुँघुरूदार गहना जो जोशन या बाजू में घुंडी के स्थान पर होता है और नीचे लटकता रहता है।

गैँदुक*—संज्ञा पुं० [सं० गेण्डुक] गेंद। कंदुक। उ०—सारी कंचुकि केसरि टीको। करि सिंगार सब फूलनि ही को। कर राजत गेंदुकि नौलासी। छुटि दामिनि सी ईषद हाँसी।—सूर।

गैँदुवा—संज्ञा पुं० [सं० गेंडुक] गेडुआ। उसीसा। तकिया। गोल तकिया। उ०—गुलगुली गोल मखतूल कौ सौ गेंदुवा गड़ै न गुड़ी जी में जऊ करत ढिठाई सी।—देव।

गैँदोड़िया—संज्ञा स्त्री० [?] वैश्यों की एक जाति।

गैँदौरा†—संज्ञा पुं० [हिं० गेंद] एक मिठाई। चीनी की रोटी। खाँड की रोटी। दे० "गिँदौड़ा"।

विशेष—चीनी की चाशनी को गाढ़ा करते करते गुँधे हुए आटे की तरह कर डालते हैं और तब उसकी पाव पाव या आध आध सेर की लोइयाँ (पेड़े) बना कर कपड़े पर फैला देते हैं और उन लोइयों पर दबा कर उँगलियों के चिह्न बना देते हैं। ये लोइयाँ विवाह आदि उत्सवों पर बिरादरी में बैने के रूप में बाँटी जाती हैं।

गेगम—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक धारीदार वा चारखाना कपड़ा। मूँगिया। सींकिया।

गेगला—संज्ञा पुं० [?] मसूर की जाति का एक प्रकार का जंगली पौधा जो पंजाब से बंगाल तक ६००० फुट की ऊँचाई तक होता है। यह प्रायः आप ही आप होता है पर कभी कभी चारे के लिये बोया भी जाता है। इस के दाने काले रंग के होते हैं और प्रायः गेहूँ में मिले हुए देखे जाते हैं। गेहूँ के खेत में उत्पन्न हो कर यह फसल को कुछ हानि भी पहुँचाता है।

वि० [देश०] मूर्ख। जड़। बेवकूफ। भोंदू।

गेगलापन—संज्ञा पुं० [हिं० गेगला] मूर्खता। जड़ता। भोंदूपन।

गेजुनिया†—संज्ञा पुं० [देश०] गुलदुपहरिया।

गेटिस—संज्ञा पुं० [अं० गेटर] (१) कपड़े वा चमड़े का बना हुआ एक आवरण जिससे घुटने से ले कर एँड़ी तक पैर ढँका रहता है। इसे सवार लोग अधिक काम में लाते हैं। (२) मोजा आदि बाँधने के लिये रबर, कपड़े या चमड़े का फीता।

गेड़ना—क्रि० स० [सं० गंड = चिह्न । हिं० गंडा] (१) लकीर से घेरना । मंडलाकार रेखा खींचना । (२) परिक्रमा करना । चारों ओर घूमना ।

गेड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० गंड = चिह्न । हिं० गडा] (१) लड़कों का एक खेल जिस में पृथ्वी पर एक लकीर खींच कर कुछ दूर पर एक लकड़ी रख देते हैं । जो लड़का उस लकड़ी पर चोट लगा कर उसे लकीर के पार कर देता है वह जीतता है । (२) वह लकड़ी जो इस खेल में रक्खी जाती है ।

गेदा—संज्ञा पुं० [सं० गृध्र = पत्ती विशेष, प्रा० गिद्ध] चिड़िया का वह बच्चा जिसे पर न निकले हों ।

गेनुर—संज्ञा पुं० [देश०] एक बारामासी घास जो पशुओं के चारे के काम आती है और सूखने पर छाजन के काम आती है । इसे गोनर या गूनर भी करते हैं ।

गेबा—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताने की कंघी की तीलियाँ । इन तीलियों के बीच बीच में ताने के सूत पिरोए रहते हैं जिस में वे एक दूसरे से सट कर उलझने न पावें । इन की संख्या ताने के सूत की संख्या के हिसाब से होती है । ये तीलियाँ लकड़ी की चिरी हुई पतली फट्टियों की होती हैं । (जुलाहे)

गेय—वि० [सं०] गाने के योग्य । गाने के लायक । कीर्तन करने योग्य ।

गेरना‡—क्रि० स० [सं० गलन वा गिरण] (१) गिराना । नीचे डालना । (२) ढालना । उँडेलना । उ०—(क) बारंबार जगावति माता लोचन खोलि पलक पुनि गेरत ।—सूर । (ख) भाल पै लाल गुलाल गुलाल सो गेरि गेरे गजरा अलबेलो ।—पद्माकर । (३) डालना । आरोप करना । जैसे, सुरमा गेरना (आँख में), आचार गेरना ।

क्रि० अ० [हिं० घेरना] परिक्रमा करना । चारों ओर फिरना ।

गेरवाँ‡—संज्ञा पुं० [फ़ा० गरेवाँ] गेराँव । पशु के बंधन का वह अंश जो गले में लपेटा रहता है ।

गेराँई†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गेरवाँ] गेराँव ।

गेराँव†—संज्ञा पुं० [फ़ा० गेरवाँ वा हिं० गर + बाँध] चौपायों के बंधन का वह अंश जो गले में लपेटा रहता है ।

गेरुआ—वि० [हिं० गेरू + आ (प्रत्य०)] (१) गेरू के रंग का । मटमैलापन लिए लाल रंग का । (२) गेरू में रँगा हुआ । गैरिक । जोगिया । भगवा । उ०—चला कटक जोगिन कर कै गेरुआ सब भेस । कोस बीस चारहुँ दिस जनाहुँ फूला टेस ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० (१) गेरू के रंग का एक कीड़ा जो माघ के महीने में अधिक वर्षा होने से उत्पन्न होता है और अन्न के खेतों में लग जाता है जिस से अनाज के पेड़ पीले पड़ जाते हैं । (२) गेहूँ के पौधों का एक रोग जिसके कारण वे कमजोर हो जाते हैं और अन्न नहीं पैदा कर सकते । इसे गेरुई और कुकुही भी कहते हैं ।

गेरुई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गेरू] चैत की फ़सल का एक रोग जो अनाज के पौधों की जड़ के पास लाल रंग के महीन महीन कीड़े उत्पन्न हो जाने के कारण होता है । ये कीड़े फैल जाते हैं और पत्तों पर लाली छा जाती है । इस से दाने मारे जाते हैं । सब से अधिक इसका असर गेहूँ की फ़सल पर होता है । जिस साल कुआर के पीछे जाड़े में वर्षा अधिक होती है उस साल यह रोग होता है ।

गेरू—संज्ञा स्त्री० [सं० गवेरुक] एक प्रकार की लाल कड़ी मिट्टी जो खानों से निकलती है । यह दो रूपों में मिलती है—एक तो भुरभुरी होती है और कच्ची गेरू कहलाती है, दूसरी कड़ी होती है और पक्की गेरू कहलाती है । गेरू कई कामों में आती है । इससे सोने के गहनों पर रंग दिया जाता है । रँगरेज भी इस के मेल से कई प्रकार के रंग बनाते हैं । छीपी इसे छींट छापने के काम में लाते हैं । औषध में भी इसका व्यवहार होता है ।

पर्य्या०—लालमिट्टी । गिरमाटी । गिरिमृत । सुरंगधातु । गवेरुक । गैरिक । ताम्रवर्णक । कठिन ।

गेला—संज्ञा पुं० [अं० गेली] छापेखाने में बड़ी गेली ।

गेली—संज्ञा स्त्री० [अं०] छापेखाने में धातु या लकड़ी की एक छिछली किश्ती जिस पर टाइप रख कर पहले पहल वह कागज छापा जाता है जिस पर संशोधन होना रहता है । इसके ऊपर पहले टाइप जमाकर रखे और रस्सी से कस दिए जाते हैं, फिर कागज छाप लिया जाता है ।

गेल्हा संज्ञा पुं० [देश०] चमड़े का कुप्पा जिसमें तेली तेल रखते हैं ।

गेवर—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ । दे० "गँगवा" ।

गेह—संज्ञा पुं० [सं० गृह] घर । मकान । निवासस्थान । उ०—करि दंडवत चली ललिता जो गई राधिका गेह ।—सूर ।

गेहनी*—संज्ञा [हिं० गेह] घरवाली । गृहणी । भार्य्या । पत्नी । उ०—तुम रानी वसुदेव गेहनी हौं गवाँरि व्रजबासी । पठै देहु मेरो लाड़ लड़ैतो वारौं ऐसी हाँसी ।—सूर ।

गेहपति—संज्ञा पुं० [हिं० गेह + सं० पति] गृहस्वामी । घर का मालिक ।

गेही*—संज्ञा पुं० [हिं० गेह] गृहस्थ । घर-बार-वाला ।

गेहुँअन—संज्ञा पुं० [हिं० गेहूँ] एक प्रकार का अत्यंत विषधर फनदार साँप जिस का रंग मटमैला होता है ।

गेहुँआ—वि० [हिं० गेहूँ] गेहूँ के रंग का । बादामी ।

गेहूँ—संज्ञा पुं० [सं० गोधूम] एक अनाज जिस की फ़सल अगहन में बोई जाती और चैत में काटी जाती है । इस का पौधा डेढ़ या पौने दो हाथ ऊँचा होता है और इस में कुश की तरह लंबी पतली पत्तियाँ पेड़ी से लगी हुई निकलती हैं । पेड़ी

के बीच से सीधे ऊपर की ओर एक सींक निकलती है जिस में बाल लगती है। इसी बाल में दाने गुछे रहते हैं। गेहूँ की खेती अत्यंत प्राचीन काल से होती आई है। चीन में ईसा से २७०० वर्ष पूर्व गेहूँ बोया जाता था। मिश्र के एक ऐसे स्तूप में भी एक प्रकार का गेहूँ गड़ा पाया गया जो ईसा से ३३५९ वर्ष पूर्व का माना जाता है। जंगली गेहूँ अब तक कहीं नहीं पाया गया है। कुछ लोगों की राय है कि गेहूँ जवगोधी वा खपली नामक गेहूँ से उन्नत कर के उत्पन्न किया गया है। गेहूँ प्रधानतः दो जाति के होते हैं एक टूँडवाले दूसरे बिना टूँड के। इन्हीं के अंतर्गत अनेक प्रकार के गेहूँ पाए जाते हैं, कोई कड़े, कोई नरम, कोई सफेद, कोई लाल। नरम वा अच्छे गेहूँ उत्तरीय भारत में ही पाये जाते हैं। नर्मदा के दक्षिण केवल कठिया गेहूँ मिलता है। संयुक्त प्रदेश और बिहार में सफेद रंग का नरम गेहूँ बहुत होता है और पंजाब में लाल रंग का। गेहूँ के मुख्य मुख्य भेदों के नाम ये हैं—दुधिया (नरम और सफेद), जमाली (कड़ा भूरा), गंगाजली, खेरी (लाल कड़ा), दाऊदी (उत्तम, नरम और श्वेत), मुँगेरी, मुँड़िया (बिना टूँड का, नरम, सफेद), पिसी (बहुत नरम और सफ़ेद), जलालिया (कड़ा, सफेद, लसदार), सहरिया (नरम और सफेद), कठिया (कड़ा और लसदार), बंसी (कड़ा और लाल)। भारतवर्ष में जितने गेहूँ बोए जाते हैं वे अधिकांश टूँडदार हैं क्योंकि किसान कहते हैं कि बिना टूँड के गेहुओं को चिड़िया खा जाती हैं। दाऊदी गेहूँ सबसे उत्तम समझा जाता है। जलालिया की सूजी अच्छी होती है। बंबई प्रांत में एक प्रकार का बख़शी गेहूँ भी होता है। खपली वा जवगोधी नाम का बहुत मोटा गेहूँ सिंध से लेकर मैसूर तक होता है। इसमें विशेषता यह है कि यह ख़रीफ़ की फ़सल है और सब गेहूँ रबी की फ़सल के अंतर्गत हैं। यह ख़राब ज़मीन में भी हो सकता है और इसे उत्पन्न करने में उतना परिश्रम नहीं पड़ता। भारतवर्ष में गेहूँ के तीन प्रकार के चूर्ण बनाए जाते हैं, मैदा, आटा और सूजी। मैदा बहुत महीन पीसा जाता है और सूजी के बड़े बड़े रवे वा कण होते हैं। नित्य के व्यवहार में रोटी बनाने के काम में आटा आता है। मैदा अधिकतर पूरी मिठाई आदि बनाने के काम में आता है, सूजी का हलुवा अच्छा होता है।

पर्य्या०—गोधूम। बहुदुग्ध। अरूप। म्लेच्छभोजन। यवन। निस्तुष। क्षीरी। रसाल। शुमन।

गैँटा—संज्ञा पुं० [देश०] कुल्हाड़ी।

गैँड़ा—संज्ञा पुं० [सं० गंडक] भैँसे के आकर का एक बड़ा पशु जो नदी किनारे के ऐसे दलदलों और कछारों में रहता है जहाँ जंगल होता है। यह जंगली झाड़ियों की जड़ें और नरम कोपलों को खाता है और प्रायः कीचड़ में पड़ा रहता है। यह जिस प्रकार डील डौल में बड़ा उसी प्रकार बलवान भी होता है पर बिना छेड़े किसी से नहीं बोलता। इसे काटनेवाले कुकुरदंत नहीं होते केवल दाढें होती हैं। इसके पैरों में तीन तीन उँगलियाँ होती हैं। इस का चमड़ा बिना बाल का तथा अत्यंत मोटा और ठोस होता है। इस की नाक की हड्डी बड़ी मज़बूत होती है और उस पर एक पैना सींग होता है जो चमड़े और बालों से दूर तक ढका रहता है। क्रुद्ध होने पर यह इसी से चोट करता है। इसके चमड़े की ढालें बनती हैं। इसके थूथन पर के सींग का भारतवर्ष में अर्घा बनता है जो पितृतर्पण के लिये उत्तम माना जाता है। गंगासागर के पास सुंदर बन में गैंड़े बहुत मिलते हैं।

गैँती—संज्ञा स्त्री० [देश०] जमीन खोदने का एक औज़ार। कुदाल।

गैती—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जो हिमालय के किनारे होता है। इसकी लकड़ी बहुत मज़बूत और अंदर से सुर्ख होती है। यह नक्काशी के लिये बहुत अच्छी होती है और इससे अनेक प्रकार के सामान बनते हैं। कमाऊँ और नैपाल में इससे ढोल और कटोरे भी बनाए जाते हैं।

गैन*—संज्ञा पुं० [सं० गमन] (१) गैल। मार्ग। रास्ता। उ०—(क) प्रीत चलावै जित इन्हैं तितै धरैं ये गैन। नेह मनोरथ रथ रहै वे अबलख हय नैन।—रसनिधि। (ख) तारायन शशि रैन प्रति सूर होहिं शशि गैन। तदपि अँधेरो है सखी पीउ न देखे नैन।—रहीम।

गैना—संज्ञा पुं० [हिं० गाय] [स्त्री० गैनी] छोटी जाति का बैल। नाटा बैल। उ०—गैना नैना लाल के हित मै जानत नाह। नहे नेह की बहल में घुरला जानत नाह।—रसनिधि।

गैफल—संज्ञा पुं० [?] जहाज के आगे की तरफ का एक छोटा सा पाल। (लश०)।

गैफलकंजा—संज्ञा पुं० [?] पाल को चढ़ाने उतारने की एक रस्सी। (लश०)।

ग़ैब—संज्ञा पुं० [अ०] परोक्ष। वह जो सामने न हो।

यौ०—गैबदाँ। गैबदानी।

ग़ैबदाँ—वि० [अ०] परोक्ष का जाननेवाला। सर्वदेश और सर्वकालज्ञ। ऐसी बातों का जाननेवाला जो प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा न जानी जा सकें।

गैबर—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया जिसके डैने, छाती और पीठ सुफ़ेद, दुम काली तथा चोंच और पैर लाल होते हैं।

गैबी—वि० [अ० गैब] (१) गुप्त। छिपा हुआ। (२) अजनबी। अज्ञात। अबोधगम्य। उ०—(क) हिंदू कहूँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिँ। पाँच तत्त्व का पूतला, गैबी खेले माहिँ। गैबी आया गैब ते, इहाँ लगाया ऐब। उलटि समाना गैब में, तब कहाँ रहैगा ऐब। गैबी तो गलियाँ फिरै, अजगैबी कोइ एक। अजगैबी कोसों लखे, जाके हृदय विवेक।—

कबीर। (ख) गैबी जामें आय समाना नरियर में जस दूध झँके। जञ्ञ भूमि सरजू उत्तर दिसि ए तीनौ जहँ आइ नके।—देवस्वामी।

गैयर*–संज्ञा पुं० [सं० गजवर] हाथी। गज। उ०—(क) बिबिध भाँति के बाजन बाजे। हैवर गैयर गण बहु गाजे।—रघुराज। (ख) बहु नागन पर नौबत बाजैं। तिन के गुरु गैयर गण गाजैं।—रघुराज। (ग) पापी ग्राह गेरि चढ़ि गैयर में मारो जाइ थापि तेरी बीरता प्रवीरन अपारे हैं।—रघुराज।

गैया–संज्ञा स्त्री० [सं० गो] गाय। गऊ। उ०—धनि वह वृंदावन की रेनु। नंदकुमार चराई गैयाँ, मुखै बजाई बेनु।—सूर।

ग़ैर–वि० [अ०] (१) अन्य। दूसरा। (२) अजनबी। अपने कुटुंब वा अपने समाज से बाहर का (व्यक्ति)। पराया। उ०—(क) चीनी लोग ग़ैर आदमी को अपने देश में नहीं आने देते थे। (ख) आप कोई ग़ैर तो हैं नहीं, फिर आप से क्यों बात छिपावें।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विरुद्ध अर्थवाची उपसर्ग के समान भी होता है। जिस विशेषण शब्द के पहले यह लगाया जाता है उसका अर्थ उलटा हो जाता है, जैसे ग़ैर-मुमकिन, ग़ैरमुनासिब, ग़ैरहाज़िर।

गैर–संज्ञा स्त्री० [अ०] अत्याचार। अनुचित बर्ताव। अंधेर। उ०—(क) मेरे कहे मेर करु, सिवा जी सों बैर करि गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं।—भूषण। (ख) आवत हैं हम कछु दिन माहीं। चलै गैर तिनकी तब नाहीं।—विश्राम।

क्रि० प्र०—करना।

संज्ञा पुं० दे० "गैयर"।

संज्ञा स्त्री० दे० "गैल"।

संज्ञा स्त्री० दे० "घैर"।

गैरखी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गर + रखीं] (सुनारों की बोली) हँसुली।

ग़ैरत–संज्ञा स्त्री० [अ०] लज्जा। शर्म। हया।

यौ०—ग़ैरतदार।

ग़ैरमनक़ूला–वि० [अ०] जिसे एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर न ले जा सकें। स्थिर। अचल। (इस शब्द का प्रयोग जायदाद शब्द के साथ क़ानूनी कार्रवाइयों में विशेष कर होता है। जायदाद ग़ैरमनकूला ऐसी संपत्ति को कहते हैं जो या तो भूमि हो या भूमि में बिलकुल गड़ी हुई हो, जैसे, घर, खेत, पेड़, इत्यादि।)

ग़ैरमामूली–वि० [अ०] (१) असाधारण। (२) नित्य नियम के विरुद्ध।

ग़ैरमुनासिब–वि० [अ०] अनुचित। अयोग्य।

ग़ैरमुमकिन–वि० [अ०] असंभव। न होने योग्य।

ग़ैरवसली–संज्ञा स्त्री० [अ०] कच्चे मकानों की छत छाने की वह क्रिया जिसमें बाँस की पतली कमाचियों को दृढ़तापूर्वक केवल बुन देते हैं और उन्हें रस्सियों से नहीं बाँधते।

ग़ैरवाजिब–वि० [अ०] अयोग्य। अनुचित। बेजा।

ग़ैरहाज़िर–वि० [अ०] अनुपस्थित। जो मौजूद न हो।

ग़ैरहाज़िरी–संज्ञा स्त्री० [अ०] अनुपस्थिति। नामौजूदगी।

गैरिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गेरू।

यौ०—गैरिकाक्ष।

(२) सोना।

गैरिकाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] जल महुआ।

गैरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] खरही। डाँठ का ढेर। खेत से कटे हुए डंठलों का ढेर।

संज्ञा स्त्री० [सं०] लांगलिकी वृक्ष। विषलांगला।

संज्ञा स्त्री० [सं० गर्त वा अ० ग़ार] गड्ढा। वह गड्ढा जिसमें किसान खाद इकट्ठी करते हैं। कूड़ा, करकट, गोबर आदि फेंकने का गड्ढा।

गैरेय–संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजतु। शिलाजीत।

गैल–संज्ञा स्त्री० [हिं० गली] मार्ग। राह। रास्ता। गली। कूचा। उ०—(क) हौ तुम प्रान हितू सिगरी कवि सेखर देहु सिखावन यामै। गैल में गोपद नीर भरयो सखि चौथ को चंद परयो लखि तामैं।—सेखर। (ख) मूसा कहैं बिलार सों, सुन रे ढीठ ढिठैल। हम निकसत हैं सैर को, तुम बैठत हौ गैल।—गिरधर।

मुहा०—किसी की गैल जाना = (१) किसी के साथ जाना। (२) किसी का अनुसरण करना। किसी को गैल करना = किसी को साथ कर देना। गैल लेना = साथ में लेना।

गैलड़–संज्ञा पुं० [अ० ग़ैर + हिं० लड़का] किसी स्त्री के पहले पति का लड़का जिसे लेकर वह दूसरे पति के यहाँ जाय।

गैलन–संज्ञा स्त्री० [अं०] पानी दूध आदि द्रव पदार्थ मापने का एक अँगरेजी मान जो तीन सेर का होता है।

गैलरी–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) नीचे ऊपर बैठने का सीढ़ीनुमा स्थान जैसा कि थिएटरों और व्याख्यानालयों आदि में रहता है। (२) सौदागरों की सीढ़ीनुमा दूकान जिसमें बिक्री की वस्तुएँ पंक्तियों में सजा कर नीचे ऊपर रक्खी जाती हैं।

गैला, गैलारा–संज्ञा पुं० [हिं० गैल] (१) गाड़ी के पहिये की लीक। पहिये की लकीर। (२) गाड़ी का मार्ग। वह चौड़ा रास्ता जिससे गाड़ी जा सके।

गैस–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) प्रकृति में वायु के समान एक अत्यंत अगोचर और सूक्ष्म द्रव्य जिसके भिन्न भिन्न रूपों के संयोग से जल वायु आदि पदार्थ बनते हैं। वह द्रव्य जिसके अणु अत्यंत तरल वा चंचल हों और जो अत्यंत प्रसरणशील हो।

विशेष—गैसों के अणु निरंतर गति में रहते हैं और वे एक सीध में चल कर एक दूसरे से टकराते हैं तथा जिस बरतन में गैस रहती है उसकी दीवारों पर दबाव डालते हैं। अधिक दबाव और सरदी से गैस द्रवीभूत हो सकती

है, पर भिन्न भिन्न गैसों के लिये भिन्न भिन्न मात्रा के दबाव और सरदी की आवश्यकता होती है। गैस की बड़ी भारी विशेषता यह है कि वह जितना खाली स्थान पाती है उतने भर में फैल कर भरना चाहती है, अर्थात उसका कोई परिमित तल वा विस्तार नहीं होता। बोतल में यदि हम बोतल भर पानी न डालेंगे तो पानी बोतल में कुछ दूर ही तक रहेगा। पर यदि उसी बोतल में गैस भरेंगे तो वह सारी बोतल में भर जायगी।

(२) एक प्रकार की तीव्र और गंधयुक्त वायु जो कोयले की खानों आदि से निकलती है। (३) बहुत सी भिन्न भिन्न गैसों का ऐसा मिश्रण जिससे गरमी पहुँचाने वा रोशनी करने का काम लिया जाता है।

गोँइँठा†–संज्ञा पुं० [सं० गो + विष्ठा] गोबर का सूखा हुआ चिप्पड़। कंडा। उपला। गोहरा।

गोँइँड़†–संज्ञा पुं० [हिं० गाँव + मेंड़] गाँव का किनारा। गाँव का सिवान। गाँव के आस पास की भूमि।

गोँइँड़ा–संज्ञा पुं० दे० "गोँइँड़"।

गोँइँयाँ†–संज्ञा पुं० स्त्री० दे० "गोइयाँ।

गोँई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० गोहन] बैलों की जोड़ी।

गोँगवाल–संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

गोँच†–संज्ञा पुं० [सं० गोचंदना] जोंक।

गोँछ–संज्ञा स्त्री० [हिं० गलमोछ] गलमोछा। गलगोंछा।

गोँजा–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बड़ी लता जो देहरादून, अवध, गोरखपुर, बुंदेलखंड, बंगाल और मध्यभारत के जंगलों में विशेषतः जहाँ साल के वृक्ष हों अधिकता से होती है। यह बहुत अधिक फैलती है और यदि समय समय पर काटी छाँटी न जाय तो जंगलों को बहुत हानि पहुँचाती है। इसकी पत्तियाँ बड़ी और चौड़ी होती हैं और चारे के काम आती हैं। इसकी डालियों से एक प्रकार का रेशा भी निकाला जाता है। इसकी टहनी के सिरे पर गुच्छों के फूल भी लगते हैं जो गरमी के दिनों में फूलते हैं।

गोँटा–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो उत्तर भारत में पेशावर से भूटान तक, दक्षिण भारत तथा जावा में होता है। बरसात में इसमें बहुत छोटे छोटे फूल और जाड़े में काले रंग के छोटे मीठे फल लगते हैं जो खाने में बहुत स्वादिष्ट होते हैं। इसकी लकड़ी कड़ी होती है।

गोँठ–संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठ] धोती की लपेट जो कमर पर रहती है। मुर्री।

गोँठना–क्रि० स० [सं० कुंठन] (१) किसी वस्तु की नोक वा कोर गुठली कर देना। (२) पकवान बनाने में गोझे वा पुवे की कोर को मोड़ मोड़ कर उभड़ी हुई लड़ी के रूप में करना।

क्रि० स० [सं० गोष्ठ, प्रा० गोट्ठ + ना (प्रत्य०)] चारों ओर लकीर से घेरना। जैसे, चौका गोँठना, घर गोँठना (असाढ़ी पूर्णिमा को)।

गोँठनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गोँठना] लोहे वा पीतल का एक औज़ार जिससे गोझिया गोँठते हैं।

गोँड़–संज्ञा पुं० [सं० गोण्ड] (१) एक असभ्य जंगली जाति जो मध्य-प्रदेश में पाई जाती है। गोँड़वाना प्रदेश का नाम इसी जाति के निवासस्थान होने के कारण पड़ा। (२) बंग और भुवनेश्वर के बीच का देश। (३) एक राग जो वर्षाकाल में गाया जाता है। कोई इसे मेघ राग का पुत्र और कोई धनाश्री मल्लार और बिलावल के मेल से बना एक संकर राग मानते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] गायों के रहने का स्थान।

संज्ञा पुं० [सं० गोरण्ड] नाभि का लटका हुआ मांस।

संज्ञा पुं० [सं० कुंठ] लंगर के ऊपर का भाग जो गोल होता है।

संज्ञा पुं० [सं० (नाभि) कुंड] वह मनुष्य जिसकी नाभि निकली हो।

गोँडकिरी–संज्ञा स्त्री० [सं० गोँड = राग + किरी] एक रागिनी जो गोँड राग का एक भेद मानी जाती है।

गोँडरा†–संज्ञा पुं० [सं० कुंडल] [स्त्री० गोँडरी] (१) वह कुंडलाकार गोल लकड़ी वा लोहे की छड़ जो मोट के मुँह पर बँधी रहती है। लोहे का मँड़रा जिस पर मोट का चरसा लटकता है। (२) कोई गोल वस्तु जो कुंडल के आकार की हो। मँड़रा। (३) लकीर का गोल घेरा।

क्रि० प्र०—खींचना।—डालना।

गोँडरी–संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडली] (१) कुंडल के आकार की कोई वस्तु। मँड़रा। (२) इँडुरी।

गोँडला–संज्ञा पुं० [सं० कुंडल] लकीर का गोल घेरा।

क्रि० प्र०—खींचना।—डालना।

विशेष—प्रायः भोजन आदि के समय इस प्रकार का घेरा, छूत छात बचाने के लिये बनाया जाता है।

गोँड़ा–संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] (१) बाड़ा। घेरा हुआ स्थान। (विशेष कर चौपायों के लिये) (२) मोहल्ला। पुरा। गाँव। खेड़ा। बस्ती। (३) खेतों का उतना घेरा जितना एक किसान का हो और एक ही जगह पर हो। (४) बड़ी चौड़ी सड़क। (५) सहन। चौक। आँगन। (६) वह न्योछावर जो लड़कीवाले के घर पर बरात के पहुँचने पर की जाती है। परछन।

मुहा०—गोँड़ा सींजना = बरात के पहुँचने पर कन्या के घरवालों का न्योछावर के रूप में कुछ द्रव्य बाँटना वा लुटाना।

गोँद–संज्ञा पुं० [सं० कुंदुरु वा हिं० गूदा] पेड़ों के तने से निकला हुआ चिपचिपा वा लसदार पसेव जो सूखने पर कड़ा और

चमकीला हो जाता है। वृक्षों का निर्यास। उ०—एक अंश वृच्छन कों दीनो। गोंद होइ प्रकाश तिन कीनो।—सूर।

यौ०—गोंददानी = वह बरतन जिसमें गोंद भिगो कर रखा रहे।

संज्ञा स्त्री० [सं० गुन्द्रा] एक प्रकार की घास जिससे गोंदरी बनाई जाती है।

संज्ञा स्त्री० दे० "गोंदी"। उ०—गोंदकली सम बिकसी ऋतु बसंत औ फाग।—जायसी।

गोंदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोंद] गोंदी का पेड़। दे० "गोंदी"।

गोंदपँजीरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोंद + पँजीरी] गोंद मिली हुई पँजीरी जिसे प्रसूता स्त्रियों को खिलाते हैं।

गोंदपाग—संज्ञा पुं० [हिं० गोंद + पाग] गोंद और चीनी के मेल से बनी हुई एक प्रकार की मिठाई। पपड़ी। उ०—पेठापाग, जलेबी, पेरा। गोंदपाग, तिनगरी, गिँदोरा।—सूर।

गोंदमखाना—संज्ञा पुं० [हिं० गोंद + मखाना] भूना हुआ मखाना जिसमें और मसालों के साथ गोंद मिला होता है और जो प्रसूता स्त्रियों को दिया जाता है।

गोंदरा†—संज्ञा पुं० [सं० गुंद्रा = एक घास] (१) नरम घास या पयाल का बना हुआ एक प्रकार का आसन जिस पर किसान लोग साधारणतः या चौपायों के लिये चारा काटने के समय बैठते हैं। (२) गोनरा घास।

गोंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुंद्रा] (१) एक प्रकार की घास जो पानी में उत्पन्न होती है और बहुत लंबी कोमल और गरम होती है। (२) इसी घास की बनी हुई चटाई। (३) पयाल की बनी हुई चटाई।

गोंदला—संज्ञा पुं० [सं० गुन्द्रा] (१) बड़ा नागरमोथा जो जलाशयों के किनारे उगता और प्रायः एक गज तक ऊँचा होता है। (२) एक प्रकार की घास जिससे गोंदरी बनाई जाती हैं।

गोंदा—संज्ञा पुं० [हिं० गूँधना] (१) भुने चनों का बेसन जो पानी में गूँध कर बुलबुलों को खिलाया जाता है।

मुहा०—गोंदा दिखाना = (१) बुलबुलों को लड़ाने के लिये उन्हें दिखा कर उनके बीच में चारा फेंकना। (२) कोई ऐसी बात उपस्थित करना जिससे दो पक्ष परस्पर लड़ जाँय। लड़ाई लगाना।

(२) गारा। मिट्टी का कपसा।

गोंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोवंदनी = प्रियंगु] (१) मौलसिरी की तरह का एक पेड़ जिसके पत्ते मौसली के पत्तों से कुछ लंबे होते हैं। फागुन चैत में इसमें लाल रंग के छोटे छोटे फूल लगते हैं। यह जंगलों और मैदानों में होता है। बहुत से स्थानों में वैद्य लोग प्रियंगु शब्द से इसी वृक्ष का ग्रहण करते हैं और इसके फूल, फल, छाल आदि का औषध में प्रयोग करते हैं। (२) इंगुदी। हिंगोट।

मुहा०—गोंदी सा लदना = (१) बहुत अधिक फलना। फलों से गुछ जाना। (२) शरीर में शीतला के या और किसी प्रकार के बहुत से दाने निकलना।

गोंदीला—वि० [हिं० गोंद + ईला (प्रत्य०)] जिस (वृक्ष) में से गोंद निकलता हो। जैसे, बबूल, ढाक आदि।

गो—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाय। गऊ। (२) प्रकाशरश्मि। किरण। (३) वृष राशि। (४) ऋषभ नाम की ओषधि। (५) इंद्रिय। (६) बोलने की शक्ति। बाणी। (७) सरस्वती। (८) आँख। दृष्टि। देखने की शक्ति। (९) बिजली। (१०) पृथ्वी। जमीन। (११) दिशा। (१२) माता। जननी। (१३) किसी धातु की बनी गोमूर्त्ति। (१४) बकरी, भैंस, भेड़ी इत्यादि दूध देनेवाले पशु। (१५) जीभ। ज़बान। जिह्वा।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल। (२) नंदी नामक शिवगण। (३) घोड़ा। (४) सूर्य। (५) चंद्रमा। (६) बाण। तीर। (७) गवैया। गानेवाला। (८) प्रशंसक। (९) आकाश। (१०) स्वर्ग। (११) जल। (१२) बज्र। (१३) शब्द। (१४) नौ का अंक। (१५) शरीर के रोम।

अव्य० [फ़ा०] यद्यपि। जैसे, गो ऐसी बात है, पर मैं कह तो नहीं सकता।

यौ०—गोकि = यद्यपि। गो।

प्रत्य० [फ़ा०] कहनेवाला। जैसे, कानूनगो, दरोग़गो।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द यौगिक के अंत में आता है।

गोइँजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जिसका मुँह और पूँछ दोनों एक ही तरह के होते हैं। इस पर छिलका नहीं होता।

गोइँठा—संज्ञा पुं० [सं० गो + विष्ठा] ईंधन के लिये सुखाया हुआ गोबर। उपला। कंडा। गोहरा।

गोइँठौरा—संज्ञा पुं० [हिं० गोइँठा + औरा (प्रत्य०)] उपले जमा करने वा रखने का स्थान। कंडौरा।

गोइँड़—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ = ग्राम] (१) गाँव की सीमा। गाँव का घेरा। (२) गाँव के पास की ज़मीन। (३) आस पास का स्थान।

गोइंदा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह मनुष्य जो छिपे छिपे किसी बात का भेद लेने के लिये किसी के द्वारा नियत हो। गुप्त भेदिया। गुप्तचर। गुप्त रूप से समाचार पहुँचानेवाला।

गोइनका—संज्ञा पुं० [देश०] मारवाड़ी वैश्यों की एक जाति।

गोइयाँ—संज्ञा पुं० स्त्री० [हिं० गोहानियाँ] साथ में रहनेवाला। साथी। सहचर। उ०—राम लखन एक ओर भरत रिपुदवन लाल एक ओर भए। सरजुतीर सम सुखद भूमि थल गनि गनि गोइयाँ बाँटि लए।—तुलसी।

गोइयार—संज्ञा पुं० [देश०] खाकी रंग का एक छोटा पक्षी।

गोइलवाला—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

गोऊ*†—वि० [हिं० गोना + ऊ (प्रत्य०)] चुरानेवाला। छिपाने-

वाला। हरण करनेवाला। उ०—श्याम बनी अब जोरी नीकी सुनहु सखी मान तौऊ हैं। सूर श्याम जितने रंग काछत युवती जन मन के गोऊ हैं।—सूर।

गोकंटक—संज्ञा पुं० [सं०] गोत्तुर। गोखरू।

गोकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु। उ०—सुनि वशिष्ट हिय हर्षित भयऊ। दोउ मिलि गोकन्या ढिग गयऊ।—विश्राम।

गोकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य। भानु। रवि। उ०—प्रणत गिरा गिरि ईश गवरि गौरी गिरिधारन। गोकर गायत्री सुगोधरन तिय गोहारन।—सूदन।

गोकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंदुओं का एक शैव क्षेत्र जो मालाबार में है। रावण कुंभकरण आदि ने यहीं तप किया था। (२) इस स्थान में स्थापित शिवमूर्त्ति का नाम। (३) नीलग्राम। (४) खच्चर। (५) (स्त्री० गोकर्णा) एक प्रकार का साँप जिसके कान होते हैं। (६) बालिश्त। बित्ता। (७) काश्मीर देश के एक प्राचीन राजा का नाम। (८) शिव के एक गण का नाम। (९) धुंधकारी के भाई का नाम जिससे भागवत सुन कर धुंधकारी तर गया था। (१०) एक मुनि का नाम। (११) गाय का कान। (१२) नृत्य में एक प्रकार का हस्तक।

वि० [सं०] जिसके गऊ के से लंबे कान हों।

गोकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसकी पत्तियाँ घीकुआर की तरह चिकनी और मोटी होती हैं और जिसमें छोटे मीठे फल लगते हैं। मुरहरी। चुरनहार।

गोकील—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हल। (२) मूसल।

गोकुंजर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खूब मोटा ताजा और बलिष्ट बैल। साँड़। (२) शिवजी का नंदी गण।

गोकुंद—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो दक्षिण की नदियों में पाई जाती है।

गोकुल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौओं का झुंड। गो-समूह। (२) गौओं के रहने की जगह, गोशाला, खरिका आदि। (३) एक प्राचीन गाँव जो वर्त्तमान मथुरा से पूर्व-दक्षिण की ओर प्रायः तीन कोस दूर जमुना के दूसरे पार था और जिसे आज कल महाबन कहते हैं। श्रीकृष्णचंद्र ने अपनी बाल्यावस्था यहीं बिताई थी। आजकल जिस स्थान को गोकुल कहते हैं वह नवीन और इससे भिन्न है।

गोकुलस्थ—वि० [सं०] गोकुल-निवासी। जो गोकुल ग्राम में रहता हो।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) वल्लभी गोस्वामियों का एक भेद। (२) तैलंग ब्राह्मणों का एक भेद। पद्माकर कवि इसी वंश के थे।

गोकोस—संज्ञा पुं० [सं० गो + क्रोश] (१) उतनी दूरी जहाँ तक गाय के बोलने का शब्द सुन पड़े। (२) छोटा कोस। हलका कोस।

गोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] जोंक नामक कीड़ा। उ०—कच्छप मकर कूरम उरग ग्राह गोह शिशुमार। बिछलत पछिलत उच्छलत धावत सुर धुनि धार।—विश्राम।

गोक्षुर—संज्ञा पुं० [सं०] गोखरू नामक क्षुप या उसका फल।

गोखग—संज्ञा पुं० [सं० गो + खग] थलचर। पशु। जानवर। उ०—गो-खग, खेखग, वारिखग, तीनो माह विसेक। तुलसी पीवै फिरि चलै, रहै फिरै सँग एक।—तुलसी।

गोखरू—संज्ञा पुं० [सं० गोक्षुर] (१) एक प्रकार का क्षुप जिसमें चने के आकार के कड़े और कँटीले फल लगते हैं। ये फल औषध में काम आते हैं और वैद्यक में इन्हें शीतल, मधुर, पुष्ट, रसायन, दीपन और काश, वायु, अर्श और व्रणनाशक कहा है। यह फल बड़ा और छोटा दो प्रकार का होता है। कहीं कहीं गरीब लोग इसके बीजों का आटा बना कर खाते हैं।

पर्य्या०—त्रिकंटक। गोकंटक। त्रिपुट। कंटक फल। स्वादुकंटक। क्षुरक। बनशृंगाटक। श्वदंष्ट्रका। भक्ष्यकंटक। क्षुरंग।

(२) गोखरू के फल के आकार के धातु के बने हुए गोल कँटीले टुकड़े जो प्रायः मस्त हाथियों को पकड़ने के लिये उनके रास्ते में फैला दिए जाते हैं और जिनके पैरों में गड़ने के कारण हाथी चल नहीं सकते। (शत्रु सेना की गति रोकने के लिये भी मार्ग में पहले ऐसे ही काँटे बिछाए जाते थे)। (३) गोटे और बादले के तारों से गूथ कर बनाया हुआ एक प्रकार का साज जो प्रायः स्त्रियों और बालकों के कपड़ों में टाँका जाता है। (४) कड़े के आकार का एक प्रकार का आभूषण जो हाथों और पैरों में पहना जाता है। (५) तलवे, हथेली आदि में पड़ा हुआ वह घट्ठा जो काँटा गड़ने के कारण होता है।

गोखा—संज्ञा पुं० [सं० गवाक्ष] दीवार में बना हुआ वह छोटा छेद जिसमें से बाहर की चीजें देखी जांय। मोखा। झरोखा। गौखा। उ०—झाँकि फिरी झँझँरीन झरोखन गोखनहूँ खिनहूँ सुख सैनन।—देव।

संज्ञा पुं० [हिं० गो + खाल] गाय वा बैल का कच्चा चमड़ा।

गोखुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ का पैर। (२) गौ के खुर का वह चिह्न जो उसके चलने से ज़मीन पर पड़ जाता है।

गोखुरा—संज्ञा पुं० [हिं० गो + खुर] करैत साँप।

विशेष—इसका फन गौ के खुर के समान होता है, इसी से इसका यह नाम पड़ा।

गोगा†—संज्ञा पुं० [देश०] छोटा काँटा। मेख।

गोगापीर—संज्ञा पुं० एक पीर वा देवता जिसकी पूजा अधिकतर नीच जाति के हिंदू और मुसलमान राजपूताने पंजाब आदि में करते हैं।

विशेष—गोगा के विषय में भिन्न भिन्न प्रकार की कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कोई कोई कहते हैं कि वह जाति का चौहान राजपूत था और बीकानेर की राजगढ़ तहसील के अंतर्गत ओड़ेरा में

उत्पन्न हुआ था। माँ बाप से रूठ कर वह जोगी हुआ और फिर मुसलमान हो गया। कहते हैं कि मुसलमान होते ही वह घोड़े और हथियारों समेत तौहर नामक स्थान में पृथ्वी में समा गया जहाँ उसकी समाधि अब तक बनी हुई है और भादों सुदी ८-९ को बड़ा मेला लगता है। दूर दूर से लोग आ कर मनौती चढ़ाते हैं। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि गोगा जब मुसलमान होकर अपनी स्त्री को भी मुसलमान करना चाहता था तब प्रतापसिंह नामक किसी राजा ने उसे पृथ्वी में चुनवा दिया। साँपों को दूर रखने के लिये गोगा की पूजा दूर दूर तक होती है।

गोग्रास–संज्ञा पुं० [सं०] पके हुए अन्न का वह थोड़ा सा भाग जो भोजन या श्राद्धादिक के आरंभ में गौ के लिये अलग निकाल कर रख दिया जाता है।

गोघरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जो भड़ौंच और बरौदा में होती है।

गोघात–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोहत्या।

गोघातक, गोघाती–संज्ञा पुं० [सं०] गोहिंसक। बूचर। क़साई।

गोघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ को मारनेवाला। गौ का बध करनेवाला। (२) अतिथि। मेहमान। पाहुना।

विशेष—प्राचीन काल में किसी अतिथि के आने पर मधुपर्क के लिये गोहत्या करने की प्रथा थी, इसी से 'अतिथि' को 'गोघ्न' कहने लगे।

गोचंदन–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चंदन।

गोचंदना–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जहरीली जोंक जिसकी दुम कुछ मोटी और प्रायः दो भागों में बँटी सी मालूम होती है। सुश्रुत के अनुसार इसके काटने से काटा हुआ स्थान सूज आता है शरीर सुन्न हो जाता है और मनुष्य को कै और मूर्च्छा होती है।

गोचना†–क्रि० स० [पू० हिं० अगोछना] रोकना। छेंकना। किसी वस्तु की गति रोकना।

संज्ञा पुं० [हिं० गोहूँ + चना] चना मिला हुआ गेहूँ।

गोचनी–संज्ञा स्त्री० दे० "गोचना"।

गोचर–वि० [सं०] जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो सके।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह विषय जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो सके। वह बात जो इंद्रियों की सहायता से जानी जा सके। जैसे, रूप, रस गंध आदि। (२) गौओं के चरने का स्थान। चरागाह। चरी। (३) देश। प्रांत। (४) ज्योतिष में किसी मनुष्य के प्रसिद्ध नाम की राशि के अनुसार गणित करके निकाले हुए ग्रह जो जन्मराशि के ग्रहों से कुछ भिन्न होते और स्थूल माने जाते हैं।

गोचरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० गो + चरा] भिक्षावृत्ति।

गोचर्म–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ का चमड़ा (जिस पर कुछ विशेष कर्म आदि करने के समय बैठते हैं)। (२) ज़मीन, खेत आदि की प्राचीन काल की एक नाप, जो २१०० हाथ लंबी और इतनी ही चौड़ी होती है। इसे चरस या चरसा भी कहते हैं।

गोची–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की मछली। (२) हिमालय की स्त्री का नाम।

गोज़–संज्ञा पुं० [फ़ा०] अपानवायु। पाद।

क्रि० प्र०—करना।

गोजई–संज्ञा स्त्री० [हिं० गेहूँ + जौ] गोहूँ और जौ मिला हुआ अन्न।

गोजर–संज्ञा पुं० [सं०] बूढ़ा बैल।

संज्ञा पुं० [सं० खर्जू वा हिं० गुजगुजा] कनखजूरा नाम का कीड़ा।

गोजरा–संज्ञा पुं० [हिं० गोहूँ + जव] जौ मिला हुआ गेहूँ।

गोजा†–संज्ञा पुं० [सं० गवाजन] छोटे पौधों का नया कल्ला जो सीधा निकलता है।

†संज्ञा पुं० [स्त्री० गोजी] वह लकड़ी जो चरवाहे अपने साथ पशुओं को हाँकने के लिये रखते हैं।

गोजिया–संज्ञा स्त्री० [सं० गोजिह्वा] गोभी या बनगोभी नाम की घास।

विशेष—दे० "गोभी"।

गोजिह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोभी या बनगोभी नाम की घास जो औषध के काम आती है। दे० "गोभी"।

विशेष—कुछ लोग भूल से गावज़बाँ को भी गोजिह्वा कहते हैं।

गोजी†–संज्ञा स्त्री० [सं० गवाजन] (१) गौ हाँकने की लकड़ी। (२) बड़ी लाठी। लट्ठ।

मुहा०—गोजी चलना = लाठियों से मार पीट होना।

(३) एक प्रकार का खेल जिसमें पटे बनेठी आदि की तरह लकड़ी भांजते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।

गोजीत–वि० [सं०] जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो। जितेंद्रिय।

गोझनवट†–संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों की साड़ी का वह भाग जो पीठ और सिर पर रहता है। अंचल। पल्ला।

गोझा–संज्ञा पुं० [सं० गुह्यक] [स्त्री० अल्प० गोझिया, गुझिया] (१) गुझिया नामक पकान्न जो मैदे में चूरमा या मेवा आदि भर कर बनता है। उ०—(क) गोझा बहुपूरग पूरे। भरि भरि कपूर रस चूरे।—सूर। (ख) भए जीव बिन नाउत ओझा। विष भइ पूरि काल भए गोझा।—जायसी। (२) लकड़ी की कील जो काठ के सामान में सरेस लगा कर ठोंकी या धँसाई जाती है और जिसका बाहर निकला हुआ भाग आरी से काट कर लकड़ी की सतह के बराबर कर दिया जाता है। गुज्झा। बंसकील। (३) एक प्रकार की कँटीली घास। गुज्झा। (४) जेब। खींसा। खलीता।

गोट–संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ट] (१) वह पट्टी वा फ़ीता जिसे किसी

कपड़े के किनारे किनारे ख़ूबसूरती के लिये लगाते हैं। मगजी। (२) किसी प्रकार का किनारा।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—टाँकना।—लगाना।

संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] गाँव। खेड़ा। टोली।

संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठी] (१) मंडली। गोष्ठी। (२) वह सैर जो नगर के बाहर किसी बाग या उपवन आदि में हो और जिस में खाने पीने विशेषतः कच्ची रसोई आदि का प्रबंध हो।

संज्ञा स्त्री० दे० "गोटी"।

संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] चौपड़ का मोहरा। नरद। गोटी।

गोटबस्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोट + बस्ती] वह भूमि जिस पर गाँव बसा हो।

गोटा—संज्ञा पुं० [हिं० गोट] (१) सुनहले या रुपहले बादले का बुना हुआ पतला फीता जो प्रायः सुंदरता के लिये कपड़ों के किनारे पर लगाया जाता है।

यौ०—गोटा पट्ठा।

(२) धनिया की सादी या भूनी हुई गिरी। (३) छोटे छोटे टुकड़ों में कतरी और एक में मिली हुई इलायची, सुपारी, और खरबूजे तथा बादाम की गिरी। (४) सूखा हुआ मल। कंडी। सुद्दा।

गोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] (१) कंकड़, गेरू, पत्थर इत्यादि का छोटा गोल टुकड़ा जिस से लड़के अनेक प्रकार के खेल खेलते हैं। (२) हाथीदाँत, हड्डी, लकड़ी इत्यादि का बना हुआ चौपड़ खेलने का मोहरा। नरद। (ये गोलियां गिनती में कुल १६ होती हैं जिनमें से ४ लाल, ४ हरे, ४ पीले और ४ काले रंग की रहती हैं।)

मुहा०—गोटी जमना या बैठना = खेल के आरंभ में पौ आदि दाँव पड़ने पर नई गोटी का चलने योग्य बनना। गोटी मरना = खेल के मध्य में पीछे से दूसरे खिलाड़ी की किसी नई गोटी के उस स्थान पर आ जाने के कारण पहले वाली गोटी का अपने स्थान से हटा कर खेल से अलग कर दिया जाना। गोटी बैठना = एक ही घर में एक खिलाड़ी की दो गोटियों का एक साथ रखा जाना। इस दशा में पीछे से आनेवाली गोटियों का मार्ग रुक जाता है और वह उस समय तक आगे नहीं बढ़ सकती जब तक कि दोनों गोटियाँ अलग अलग घरों में न चली जाँय। इस प्रकार बैठी हुई गोटियाँ मारी भी नहीं जा सकतीं। गोटी मारना = खेल में किसी गोटी का चलने योग्य न रहना। किसी गोटी के खाने में विपक्षी की गोटी का आ जाना जिस से पहली गोटी खाने से हटा दी जाती है। गोटी मारना = चाल द्वारा किसी खाने से कोई गोटी हटा कर अपनी गोटी बैठाना। विपक्षी की गोटी को बेकाम करना। गोटी लाल होना = लाभ होना। प्राप्ति होना।

(३) एक खेल जो ६, १२, १८ या इस से अधिक गोटियों से भूमि पर एक दूसरी को काटती हुई कई आड़ी और सीधी रेखाएँ बना कर खेला जाता है।

यौ०—गोटिया चाल = दाँव पेच की चाल। कुटिल नीति।

(४) उपाय। युक्ति। तदबीर। लाभ का आयोजन। प्राप्ति का डौल। आमदनी की सूरत। उ०—वहाँ २००) की गोटी है वे क्यों न जायँगे ?

मुहा०—गोटी जमना वा बैठना = युक्ति चलना। उपाय वा युक्ति सफल होना। प्राप्ति का डौल होना। आमदनी की सूरत होना। गोटी बैठाना या जमाना = युक्ति लगाना। तदबीर लड़ाना। जैसे, उन्होंने अपनी गोटी बैठा ली है, अब वहाँ किसी की दाल न गलेगी।

गोठ—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठ] (१) गोशाला। गोस्थान। उ०—जे अघ मातु पिता सुत मारे। गाइ गोठ महिसुर पुर जारे।—तुलसी। (२) गोष्ठी श्राद्ध। (३) सैर सपाटा।

विशेष—दे० "गोट"।

गोठिल†—वि० [सं० कुंठित] जिसकी धार ख़राब हो गई हो। कुंठित। कुंद।

गोड़†—संज्ञा पुं० [सं० गम, गो] (१) पैर। पाँव। उ०—(क) गोड़ न मूड़ न प्राण अधारा। तामे भरमि रहा संसारा।—कबीर। (ख) मकर महीधव सो माखि कै मतंगज को ग्रस्यो गाँसि गाढ़े गोड़े गैयर चिकारयो है।—रघुराज।

मुहा०—गोड़ भरना = (१) पैर में महावर लगाना। (२) ब्याह की एक रसम जिसमें वर की माता या चाची उसे गोद में ले कर मंडप में बैठती है और नाइन उसके पैर में महावर लगाती है।

(२) भूँजों की एक जाति। (३) जहाज के लंगर की फाल। (लश०)

गोड़इत—संज्ञा पुं० [हिं० गोइँड़ + ऐत (प्रत्य०)] (१) गाँव में पहरा देनेवाला चौकीदार। (२) वह हरकारा या कर्म्मचारी जो पुराने जमाने में एक गांव की चिट्ठियाँ दूसरे गाँव में पहुँचाया करता था।

गोड़ई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़ + पाई] करघे की वे लकड़ियाँ जो पाई करने में पाई के दोनों ओर खड़ी की जाती है। (जोलाहे)

गोड़गाव—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़ + गाव] वह छोटी रस्सी जिसे गिरावँ की तरह बना कर और पिछाड़ीवाली रस्सी के सिरों पर बाँध कर घोड़े के पिछले पैर में फँसा देते हैं।

गोड़न—संज्ञा पुं० [देश०] वह क्रिया जिसके अनुसार ऐसी मिट्टी से भी नमक बना लिया जा सकता है जो नोनी न हो।

गोड़ना—क्रि० स० [हिं० कोड़ना] मिट्टी को किसी भूमि को कुछ गहराई तक खोद कर उलट पुलट देना जिसमें वह पोली और भुरभुरी हो जाय। कोड़ना। जैसे, खेत गोड़ना, अखाड़ा गोड़ना।

विशेष—जब पेड़ गोड़ना कहेंगे तब उससे तात्पर्य्य होगा—पेड़ की जड़ की मिट्टी को जल देने के लिये खोद कर पोली और

भुरभुरी करना। उ०—नाम जाको कामतरु देत फल चारि, ताहि तुलसी विहाइ कै बबूर रेंड़ गोड़िये।—तुलसी।

गोड़ली—संज्ञा स्त्री० पुं० [कर्णाटी] वह पुरुष वा स्त्री जो संगीत विशेषतः नृत्य में बहुत प्रवीण हो।

गोड़वाँस—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़ = पैर + पाश = रस्सी] वह रस्सा जो पशुओं के पैर में फँसा कर खूँटे से बाँध दिया जाता है।

गोड़वाना—क्रि० स० [हिं० गोड़ना का प्रे०] गोड़ने का काम कराना।

गोड़सँकर†—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़ + साँकर] पैरों के पहनने का स्त्रियों का एक गहना।

गोड़सिहा†—वि० [हिं० गोड़ + सिहाना] डाह करनेवाला। कुढ़नेवाला। जलनेवाला।

गोड़हरा†—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़ + हरा (प्रत्य०)] पैर में पहनने का कोई ज़ेवर विशेषतः कड़ा।

गोड़ाँगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़ + अँगिया] पायजामा।

गोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़] पैर और जाँघ के बीच का जोड़। घुटना।

गोड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० गोड़ = पैर] (१) पलंग आदि का पाया। (२) घोड़िया। उ०—चाँद सूर्य दोउ गोड़ा कीन्हो माझ दीप किय ताना।—कबीर। (३) वह रस्सी जो खेतों में पानी चलाने की दौरी से बँधी रहती है और जिसे पकड़ कर पानी उलीचते हैं।

संज्ञा पुं० [हिं० गोड़ना] थाला। आलबाल।

गोड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़ना] (१) गोड़ने की क्रिया। (२) गोड़ने का भाव। (३) गोड़ने की मजदूरी।

गोड़ाना—क्रि० स० [हिं० गोड़ना का प्रे०] गोड़ने का काम दूसरे से कराना।

गोड़ारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़ाई] हरी घास जो अभी खोद कर लाई गई हो।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़ = पैर + आरी (प्रत्य०)] (१) पलंग आदि का वह भाग जिधर पैर रहता है। पैताना। (२) जूता।

गोड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़ = पैर का अल्प०] छोटा पैर। उ०—छोटी छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीली छोटी नख जोती मोती मानो कमल दलन पर।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [हिं० गोटी = युक्ति] युक्ति लगानेवाला। तरकीब लड़ानेवाला।

संज्ञा पुं० [देश०] मल्लाह।

गोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोटी] लाभ। फ़ायदा। लाभ का आयोजन। प्राप्ति का डौल।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—**गोड़ी जमना या लगना** = उद्योग में सफलता होना। फ़ायदे के लिये जो चाल चली गई हो उसका सफल होना। लाभ होना। **गोड़ी हाथ से जाना** = कुछ हाथ न लगना। कुछ लाभ न होना।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० गोड़ = पैर] पैर। चरण।

मुहा०—**गोड़ी आना या पड़ना** = चरण पड़ना। किसी का किसी स्थान पर प्राप्त होना।

गोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) टाट का दोहरा बोरा जिसमें अनाज आदि भरा जाता है। गोन। (२) एक पुरानी माप वा तौल जो सुश्रुत के अनुसार दो सूप के बराबर होती थी। (३) झीना कपड़ा। छनना।

गोत—संज्ञा पुं० [सं० गोत्र] (१) कुल। वंश। खांदान। उ०—राम भक्त वत्सल निज बानो। जाति गोत कुल नाम गनत नहिँ रंक होइ कै रानो।—सूर। (२) समूह। जत्था। गरोह। उ०—(क) सुनि यह स्याम विरह भरे।……… ……सखिन तब भुज गहि उठाए कहा बावरे होत। सूर प्रभु तुम चतुर मोहन मिलो अपने गोत।—सूर। (ख) दिन रैनि मैं भावन के रचै गोत उदोत मई नित जान्यो परै।—हरिसेवक।

गोतम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि। (२) एक मंत्रकार ऋषि।

गोतमस्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

गोतमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या का एक नाम।

गोता—संज्ञा पुं० [सं०] जल आदि तरल पदार्थों में डूबने की क्रिया। डुब्बी।

मुहा०—**गोता खाना** = (१) जल आदि तरल पदार्थों में डूबना। डुबकी लगाना। (२) धोखे में आना। फ़रेब में आना। **गोता देना** = (१) डुबाना। (२) धोखा देना। **गोता मारना** = (१) डुबकी लगाना। डूबना। (२) स्त्री प्रसंग करना। (अशिष्ट) (३) बीच में अनुपस्थित रहना। नागा करना। **गोता लगाना** = दे० "गोता मारना"।

यौ०—गोताखोर। गोतामार।

गोताख़ोर—संज्ञा पुं० [अ०] डुबकी लगानेवाला। डुबकी मारनेवाला।

विशेष—गोताख़ोर प्रायः कूएँ या तालाब आदि में ग़ोता लगा कर उनमें से कोई गिरी हुई चीज़ लाते अथवा समुद्र आदि में गोता लगा कर सीप मोती आदि निकालते हैं।

गोतामार—संज्ञा पुं० दे० "गोताख़ोर"।

गोतिया—वि० [सं० गोत्र + इया (प्रत्य०)] [स्त्री० गोतिनी] अपने गोत्र का। गोती।

गोती—वि० [सं० गोत्रीय] अपने गोत्र का। जिसके साथ शौचाशौच का संबंध हो। गोत्रीय। भाई बंधु। उ०—विधु आनन पर दीरघ लोचन नासा लटकत मोती री। मानो सोम संग करि लीनो जानि आपनो गोती री।—सूर।

गोतीत—वि० [सं०] जो ज्ञानेंद्रियों द्वारा न जाना जा सके। ज्ञानेंद्रियों द्वारा न जानने योग्य। अगोचर। उ०—(क)

भक्तहेतु नर विग्रह सुर वर गुन गोतीत ।—तुलसी । (ख) देव ब्रह्म व्यापक अमल सकल पर पर्महित ज्ञान गोतीत गुन वृत्ति हर्त्ता ।—तुलसी । (ग) अतुलित बल वीर्य विरक्त वरं । गुण ज्ञान गिरा गोतीत परं ।—विश्राम ।

गोतीर्थक-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार फोड़े आदि चीरने का एक प्रकार जिसके अनुसार कई छेदोंवाले फोड़े चीरे जाते हैं ।

गोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संतति । संतान । (२) नाम । (३) क्षेत्र । वर्त्म । (४) राजा का छत्र । (५) समूह । जत्था । गरोह । (६) वृद्धि । बढ़ती । (७) संपत्ति । धन । दौलत । (८) पहाड़ । (९) बंधु । भाई । (१०) एक प्रकार का जाति विभाग । (११) वंश । कुल । खानदान । (१२) कुल या वंश की संज्ञा जो उसके किसी मूल पुरुष के अनुसार होती है ।

विशेष—क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य द्विजातियों में उनके भिन्न भिन्न गोत्रों की संज्ञा उनके मूल पुरुष या गुरु ऋषियों के नामों के अनुसार है ।

गोत्रज-वि० [सं०] एक ही गोत्र में उत्पन्न । एक ही पूर्वज की संतान । एक ही वंश परंपरा का ।

विशेष—धर्म्मशास्त्रों के अनुसार गोत्रज दो प्रकार के होते हैं—गोत्रज सपिंड और गोत्रज समानोदक । सात पीढ़ी के अंदर जिसके एक ही पूर्वज हों वे गोत्रज सपिंड और सात से ऊपर चौदह पीढ़ियों तक जिनके पूर्वज एक ही हों वे गोत्रज समानोदक कहलाते हैं ।

गोत्रसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्वत की पुत्री । पार्वती । उ०—बंदत देव अदेव सबै मुनि गोत्रसुता अरधंग धरी है ।—केशव ।

गोत्री-वि० [सं०] समान गोत्रवाला । गोत्रज । गोतिया ।

गोदंती-वि० [सं० गोदंत] कच्चा । सफ़ेद । (इस अर्थ में यह विशेषण केवल हरताल के लिये आता है ।)

गोद-संज्ञा स्त्री० [सं० क्रोड़] (१) वह स्थान जो वक्षस्थल के पास एक या दोनों हाथों का घेरा बनाने से बनता है और जिस में प्रायः बालकों को लेते हैं । उत्संग । कोरा । ओली । उ०—(क) व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत बिनोद । सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या की गोद ।—तुलसी । (ख) तिय मुख लखि हीरा जरी बेंदी बढ़े विनोद । सुत सनेह मानौ लियो बिधु पूरन बुध गोद ।—बिहारी ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—लेना ।

मुहा०—गोद का = (१) छोटा बालक । बच्चा । (२) बहुत समीप का । पास का । जैसे, गोद की चीज़ छोड़ कर इतनी दूर जाना ठीक नहीं । **गोद बैठना** = दत्तक बनना । **गोद लेना** = दत्तक बनाना । **गोद देना** = अपने लड़के को दूसरे को दत्तक बनाने के लिये देना ।

यौ०—गोदभरी = बाल बच्चोंवाली स्त्री ।

(२) स्त्रियों की साड़ी का वह भाग जो वक्षस्थल के पास रहता है । अंचल । उ०—शवरी कटुक बेर तजि मीठे भावि गोद भर लाई । जूठे की कछु शंक न मानी भक्ष किये सत भाई ।—सूर ।

क्रि० प्र०—पसारना ।—भरना ।

मुहा०—गोद पसार कर बिनती करना वा माँगना = अत्यंत अधीरता से माँगना वा प्रार्थना करना । **गोद भरना** = (१) विवाह आदि शुभ अवसरों पर अथवा किसी के आने जाने के समय सौभाग्यवती स्त्री के अंचल में नारियल आदि पदार्थ देना जो शुभ समझा जाता है । (२) संतान होना । औलाद होना ।

गोदगुदालो-संज्ञा पुं० [देश०] गूलू नाम का पेड़ ।

गोदनहर-संज्ञा स्त्री० दे० "गोदनहारी" ।

गोदनहरा-संज्ञा पुं० [हिं० गोदना + हारा (प्रत्य०)] टीका लगानेवाला । माता छापनेवाला ।

गोदनहारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गोदना + हारी (प्रत्य०)] कंजड़ या नट जाति की स्त्री जो गोदना गोदने का काम करती हैं ।

गोदना-क्रि० स० [हिं० खोदना = गड़ाना] (१) किसी नुकीली चीज को भीतर चुभाना । गड़ाना । (२) किसी कार्य्य के लिये बार बार ज़ोर देना । कोई काम कराने के लिये पीछे पड़ना । (३) छेड़ छाड़ करना । चुभती या लगती हुई बात कहना । ताना देना । (४) हाथी को अंकुश देना । † (५) गोड़ना ।

संज्ञा पुं० (१) तिल के आकार का एक विशेष प्रकार का काला चिह्न जो कंजड़ या नट जाति की स्त्रियां लोगों के शरीर में नील या कोयले के पानी में डूबी हुई सूइयों से पाछ कर बनाती हैं । इसमें पहले दो एक रोज तक कुछ पीड़ा होती है पर पीछे यह चिह्न स्थायी हो जाता है ।

विशेष—भारत में अनेक जाति की स्त्रियाँ गाल, ठोढ़ी, कलाई तथा अन्य अंगों पर सुंदरता के लिये इस प्रकार के चिह्न बनवाती हैं । बिहार आदि प्रांतों की स्त्रियां तो अपने शरीर पर इस क्रिया से बेल बूटों तक के चिह्न बनवाती हैं ।

क्रि० प्र०—गोदना ।—गोदाना ।

(२) वह सूई जिसकी सहायता से शीतला रोग से रक्षित रहने के लिये बालकों को टीका लगाते हैं ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

(३) वह औज़ार जिससे खेत गोड़ते हैं ।

गोदनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गोदना] (१) वह सूई जिससे गोदना गोदा जाता है । (२) चुभाने, गड़ाने या गोदने की कोई चीज ।

गोदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोदावरी नदी । उ०—पंचवटी गोदाहि प्रनाम करि कुटी दाहिनी लाई ।—तुलसी । (२) गायत्री स्वरूपा महादेवी ।

संज्ञा पुं० [देश०] कटवाँसी बाँस ।

संज्ञा पुं० [हिं० गोजा] पेड़ों की नई शाखा। ताजी डाल।

संज्ञा पुं० [हिं० गौद] बड़, पीपल वा पाकर के पके फल, गूलर, पिपरी इत्यादि।

गोदान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ को बिधिवत संकल्प करके ब्राह्मण को दान करने की क्रिया। (इसका विधान साधारण दान, पुण्य, रोग, विवाह आदि संस्कार अथवा किसी प्रकार के प्रायश्चित्त के अवसर के लिये है।)

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लेना।

(२) एक संस्कार जो विवाह से पहले ब्राह्मण को १६ वें वर्ष, क्षत्रिय को २२ वें वर्ष और वैश्य को २४ वें वर्ष करना आवश्यक है। इसे केशांत या गोदान मंगल भी कहते हैं। उ०—पुनि करवाय मुनिन गोदाना। मंगल मंडित वेद विधाना।—रघुराज।

गोदाम-संज्ञा पुं० [अं० गोडाउन] वह बड़ा सुरक्षित स्थान जहाँ बहुत सा माल असबाब रखा जाता हो।

विशेष—साधारणतः बहुत बड़े बड़े व्यापारी अपना सारा माल दूकानों में न रख सकने के कारण एक और ऐसा बड़ा स्थान भी ले रखते हैं जिसमें उनका अधिकांश थोक माल पड़ा रहता है।

गोदारण-संज्ञा पुं० [सं०] ज़मीन खोदने की कुदाल।

गोदावरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दक्षिण भारत की एक नदी जो नासिक के पास से निकल कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। (२) मदरास का एक जिला।

गोदी-संज्ञा स्त्री० [देश०] बड़ी नदी वा समुद्र में वह घेरा हुआ स्थान जहाँ जहाज मरम्मत के लिये वा तूफ़ान आदि के उपद्रव से रक्षित रहने के लिये रखे जाते हैं। डाक। (लश०)

संज्ञा स्त्री० दे० "गोद"।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बबूल जो बरार, पंजाब और अवध में होता है। यह नहरों के किनारे के बाँधों पर प्रायः लगाया जाता है।

गोदूनिका-संज्ञा स्त्री० [बँग०] बेंत की जाति का एक वृक्ष जो पूर्वीय बंगाल और आसाम आदि प्रदेशों में बहुत होता है। इसकी चिकनी और चमकीली टहनियों से शीतलपाटी बनाई जाती है जो दूर दूर भेजी जाती है।

गोध-संज्ञा स्त्री० [सं० गोधा] गोह नामक जंगली जानवर।

गोधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौओं का समूह। गौओं का झुंड। उ०—कमलनयन घनस्याम मनोहर सब गोधन को भूप।—सूर। (२) गौ रूपी संपत्ति। उ०—गोधन, गजधन, वाजिधन, और रतनधन खान। जब आवे संतोषधन, सब धन धूरि समान।—तुलसी। (३) एक प्रकार का तीर जिसका फल चौड़ा होता है।

†*संज्ञा पुं० [सं० गोवर्द्धन] गोवर्द्धन पर्वत। उ०—अलि गोधन पूजन को उमह्यो व्रज मोहिँ चढ़ी तप सोगन तें।—बेनी।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जो सारे एशिया, युरोप और अफ्रीका में पाया जाता है। इसकी चोंच लाल, सिर भूरा और पैर हरे होते हैं। यह प्रायः जलाशयों के निकट रहता और ५ से ६ तक अंडे देता है।

गोधर-संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।

गोधर्म्म-संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं की भाँति समागम करना। समागम में अपने पराए का कुछ विचार न रखना।

गोधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोह नामक जंतु।

गोधापदी, गोधावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूसली नाम की ओषधि। (२) हंसपदी नाम की लता।

गोधिकात्मज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का जानवर जो नर साँप और मादा गोह के संयोग से उत्पन्न होता है। (२) गोह के आकार का एक प्रकार का छोटा जानवर जो पेड़ के खोंड़रे में रहता और जिसका शब्द बहुत कठोर होता है।

गोधी-संज्ञा स्त्री० [सं० गोधूम] एक प्रकार का गेहूँ जो दक्षिण में अधिकता से होता है और जिसकी भूसी जल्दी नहीं छूटती। इसमें विशेषता यह है कि यह खरीफ़ की फ़सल है और कहीं कहीं यह साल में दो बार भी बोया जाता है। यह बहुत ही साधारण भूमि में भी, जहाँ और गेहूँ नहीं हो सकता, उत्पन्न होता है। ऊपरी छिलका बहुत कड़ा होने के कारण इसकी फ़सल को पक्षी भी हानि नहीं पहुँचा सकते।

गोधूम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गेहूँ। (२) नारंगी।

गोधूमक-संज्ञा पुं० [सं०] गेहुअन वा गोहुअन नाम का साँप।

गोधूलि, गोधूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह समय जब कि जंगल से चर कर लौटती हुई गौओं के खुरों से धूल उड़ने के कारण धुँधली छा जाय। संध्या का समय।

विशेष—(क) ऋतु के अनुसार गोधूली के समय में कुछ अंतर भी माना जाता है। हेमंत और शिशिर ऋतु में सूर्य्य का तेज बहुत मंद हो जाने और क्षितिज में लालिमा फैल जाने पर, वसंत और ग्रीष्म ऋतु में जब सूर्य्य आधा अस्त हो जाय और वर्षा तथा शरत् काल में सूर्य्य के बिलकुल अस्त हो जाने पर गोधूली होती है। (ख) फलित ज्योतिष के अनुसार गोधूली का समय सब कार्य्यों के लिये बहुत शुभ होता है और उस पर नक्षत्र, तिथि, करण, लग्न, वार, योग और जामित्र आदि के दोष का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त इस संबंध में अनेक विद्वानों के और भी कई मत हैं।

गोध्र-संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़। पर्वत।

गोनंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्तिकेय के एक गण का नाम। (२) अनेक पुराणों के अनुसार एक देश।

गोन-संज्ञा स्त्री० [सं० गोणी] (१) टाट, कंबल या चमड़े आदि

की बनी हुई वह खुरजी जिसमें दो ओर अनाज आदि भरने का स्थान होता है और जो भर कर बैलों की पीठ पर रक्खी जाती है। लदने पर इसका एक भाग बैल की एक तरफ़ और दूसरा दूसरी तरफ़ रहता है। (२) साधारण बोरा। खास। (३) टाट का कोई थैला। (लश०)। (४) अनाज की एक तौल जो १६ मानी (२५६ सेर) की होती है।

संज्ञा स्त्री० [सं० गुण] मूँज आदि की बनी हुई रस्सी जिसे नाव खींचने के लिये मस्तूल में बाँधते हैं।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो थूथी की तरह की होती है और जिसका साग बनता है।

गोनरखा–संज्ञा पुं० [हिं० गोन = रस्सी + रखना] नाव का वह मस्तूल जिसमें गोन बाँध कर उसे खींचते हैं।

गोनरा–संज्ञा पुं० [सं० गुंद्रा] (१) उत्तरी भारत में होनेवाली एक प्रकार की लंबी घास जो पशुओं के चारे के काम में आती है। इससे चटाई भी बनती है जो बहुत मुलायम और गरम होती है। दे० "गोंदरा"।

गोनर्द–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नागरमोथा। (२) सारस पक्षी। (३) एक प्राचीन देश जहाँ महर्षि पतंजलि का जन्म हुआ था। (४) महादेव।

गोनस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का साँप। (२) वैक्रांत मणि।

गोना*–क्रि० स० [सं० गोपन] छिपाना। लुकाना। पोशीदा करना। उ०—(क) मुकुलित कच तन घनिक ओट ह्वै अँसुवन चीर निचोवति। सूरदास प्रभु तजी गर्व ते भए प्रेम गति गोवति।—सूर। (ख) ऐसिउ पीर विहँसि तेई गोई। चोर नारि जिमि प्रगट न रोई।—तुलसी। (ग) सो गोवत द्विज काँख दबाई। मनहिँ विचारत अतिहिँ लजाई।

गोनिया–संज्ञा स्त्री० [सं० कोण, हिं० कोना + इया (प्रत्य०)] बढ़ई, लोहार और राज आदि का एक औजार जिससे वे किसी दीवार या कोने आदि की सिधाई जाँचते हैं। यह समकोण होता है और बिलकुल लकड़ी या लोहे का अथवा आधा लकड़ी का और आधा लोहे का बनता है। साधन।

संज्ञा पुं० [हिं० गोन = बोरा + इया (प्रत्य०)] स्वयं अपनी पीठ पर या बैलों पर लाद कर बोरे ढोनेवाला।

संज्ञा पुं० [हिं० गोन = रस्सी + इया (प्रत्य०)] रस्सी बाँध कर नाव खींचनेवाला।

गोनी–संज्ञा स्त्री० [सं० गोणी] (१) टाट का थैला। बोरा। (२) पटुआ। सन। पाट।

संज्ञा स्त्री० [देश०] पकाए हुए कत्थे का वह गोला जो राख की सहायता से उस का जल सुखा लेने के बाद बनाया जाता है। (तंबोली)

गोप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ की रक्षा करनेवाला। (२) ग्वाला। आभीर। अहीर। (३) गोशाला का अध्यक्ष या प्रबंध करनेवाला। (४) भूपति। राजा। (५) रक्षा या उपकार करनेवाला। (६) एक गंधर्व का नाम। (७) मुर या बोल नाम की ओषधि।

संज्ञा पुं० [सं० गुंफ] सिकरी या जंजीर के आकार का गले में पहनने का एक प्रकार का आभूषण जो पतले तारों को गूथ कर फुलावदार बनाया जाता है।

गोपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) श्रीकृष्ण। (४) सूर्य। (५) राजा। पृथ्वीपति। (६) वृष। साँड़। बैल। (७) ऋषभ नाम की ओषधि। (८) नौ उपनंदो में से एक। (९) ग्वाल। गोपाल। आभीर। (१०) बाचाल। मुखर।

गोपथ–संज्ञा पुं० [सं०] अथर्व वेद का एक ब्राह्मण।

गोपद–संज्ञा पुं० [सं० गोष्पद] (१) गौओं के रहने का स्थान। (२) पृथ्वी पर पड़ा हुआ गाय के खुर का चिह्न। उ०—(क) सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव वारिध गोपद इव तरहीं।—तुलसी। (ख) रघुवर की लीला ललित, मैं बंदौं सिर नाय। जे गावत गोपद सरिस जन भवनिधि लँघि जाय।—रघुराज।

गोपदल–संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का पेड़।

गोपदी–वि० [सं० गो + पद + ई (प्रत्य०)] गाय के खुर के समान अत्यंत छोटा। उ०—खैंचत दुशासन बसन बाढ्यो बे प्रमाण कीन्हो निज दासी को समुद्र दुख गोपदीं।—रघुराज।

गोपन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छिपाव। दुराव। (२) छिपाना। लुकाना। (३) रक्षा। (४) व्याकुलता। (५) दीप्ति। (६) तेजपत्ता नाम का मसाला।

गोपना*†–क्रि० स० [सं० गोपन] छिपाना। लुकाना।

संयो० क्रि०—देना।—रखना।

गोपनीय–वि० [सं०] छिपाने योग्य। छिपाने के लायक। गोप्य।

गोपराष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] ग्वालियर प्रांत का प्राचीन नाम।

गोपांगना–स० स्त्री० [सं०] (१) गोप जाति की स्त्री। (२) अनंत मूल नाम की ओषधि।

गोपा–वि० [सं०] लुप्त करनेवाला। छिपानेवाला। नाशक।

*†–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाय पालनेवाली, अहीरिन। ग्वालिन। (२) श्यामा नाम की लता। (३) महात्मा बुद्ध की स्त्री का नाम। इस का दूसरा नाम यशोधारा भी है।

गोपाचल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ग्वालियर का प्राचीन नाम। (२) ग्वालियर के निकट का एक पहाड़।

गोपाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ का पालन पोषण करनेवाला। (२) अहीर। ग्वाला।

विशेष–पराशर के मत से 'गोपाल' एक संकर जाति है जिस की उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और शूद्रा माता से है। ब्राह्मणों के लिये इस का अन्न भोज्य कहा गया है।

(३) श्री कृष्ण। (४) राजा। (५) इंद्रियों का पालनेवाला, मन। (६) एक छंद विशेष जिस का प्रत्येक चरण १५ मात्राओं का होता है, ८ और ७ पर यति होती है। उ०—दयाबेलि की ललित निकुंज। गुंजत सुख पच्छिन के पुंज। गुरु की हानि मिठाई माँह। पापरचित भोजन की चाह। इस को 'भुजंगिनी' भी कहते हैं।

गोपालक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ग्वाला। गोपाल। अहीर। (२) शिव। (३) राजा।

गोपालकक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार पश्चिम भारत का एक प्राचीन प्रदेश।

गोपालतापन, गोपालतापनीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद जिस की टीका शंकराचार्य्य तथा और कई विद्वानों ने की है।

गोपालदारक—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के एक आचार्य का नाम।

गोपालि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रवर। (२) शंकर।

गोपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ग्वालिन। अहीरिन। (२) सारिवा नामक ओषधि। (३) ग्वालिन नाम का कीड़ा। गिँजाई। घिनौरी।

गोपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गौ पालनेवाली। (२) कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

गोपाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक शुक्ला अष्टमी। इसी दिन श्री कृष्ण ने गोचारण आरंभ किया था। इस दिन गोपूजन, गोग्रास, गोप्रदक्षिणा, गौओं के पीछे चलना इत्यादि कर्म करने का बड़ा माहात्म्य कहा गया है। इस दिन गायों को खिलाने और सजाने की भी रीति है।

गोपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोपी। गोप की स्त्री। (२) अहीरिन। ग्वालिन। (३) छिपानेवाली।

गोपित—वि० [सं०] छिपा हुआ। गुप्त।

गोपिनी—वि० स्त्री० [सं०] छिपानेवाली। उ०—गोपिनि भक्ति विलोपिनि ज्ञान की तैसि बिराग पै कोपिनि गाई।—रघुराज।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्यामलता। (२) तांत्रिकों की एक नायिका।

गोपिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोफन] गोफना। ढेलवाँस।

गोपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ग्वालिनी। गोपपत्नी। (२) ब्रज की गोप जातीय वे स्त्रियाँ या कन्याएँ जो श्री कृष्ण के साथ प्रेम रखती थीं, और जिन्हों ने उन के साथ बालक्रीड़ा तथा अन्य लीलाएं की थीं। (३) शारिवा नाम की लता। (४) छिपानेवाली।

गोपीकामोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो कामोद और केदारी के योग से बनती है।

गोपीचंद—संज्ञा पुं० [सं० गोपी + हिं० चंद] रंगपुर (बँगाल) के एक प्राचीन राजा जो भर्त्तृहरि की बहिन मैनावती के पुत्र कहे जाते हैं। इन्होंने अपनी माता से उपदेश पा कर अपना राज्य छोड़ा और वैराग्य लिया था। कहा जाता है कि ये जलंधरनाथ के शिष्य हुए थे और त्यागी होने पर इन्होंने अपनी पत्नी पाटमदेवी से, महल में जा कर भिक्षा माँगी थी। इन के जीवन की घटनाओं के गीत बना कर आज कल के जोगी सारंगी पर गाया करते हैं।

गोपीचंदन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की पीली मिट्टी जिसका वैष्णव लोग तिलक लगाते हैं और जो द्वारका के एक सरोवर से निकलती है।

विशेष—(क) कहते हैं कि श्रीकृष्ण के स्वर्गवासी होने पर उनके विरह में अनेक गोपियों ने उसी सरोवर के किनारे अपने प्राण तजे थे। इसीलिये उसकी मिट्टी का बहुत माहात्म्य कहा गया है। (ख) आज कल बाज़ारों में गोपीचंदन के नाम से एक प्रकार की बनाई हुई पीली मिट्टी मिलती है जिसका व्यवहार प्रायः वैरागी करते हैं।

गोपीत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खंजन पक्षी जिसका देखना अशुभ समझा जाता है।

गोपीथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह सरोवर जहाँ गौएँ जल पीती हों। (२) एक प्राचीन तीर्थ। (३) रक्षण। रक्षा। (४) राजा।

गोपीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] गोपियों के स्वामी, श्रीकृष्ण। उ०—इहि न होइ गिरि को धरिबो हो सुनहु कुँवर गोपीनाथ। आपुन को तुम बड़े कहावत काँपन लागे हैं दोउ हाथ।—सूर।

गोपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ की पोंछ। गौ की दुम। (२) एक प्रकार के बंदर जिन की दुम गाय की दुम की तरह होती है। (३) एक प्रकार का गावदुमा हार। (४) एक प्रकार का बाजा जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था।

गोपुटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची।

गोपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य के पुत्र, कर्ण।

गोपुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नगर का द्वार। शहर का फाटक। उ०—(क) ऐसे कहत गए अपने पुर सबहि विलक्षण देख्यो। मणिमय महल फटिक गोपुर लखि कनक भूमि अवरेख्यो।—सूर। (ख) तोरि फोरि घर घरनि कँगूरे। गोपुर चूर करहिँ गह रूरे।—गोपाल। (ग) किला कोटि दिग पुनि द्विज गयऊ। गोपुर ऊँच लखत तहँ भयऊ।—रघुराज। (२) किले का फाटक। (३) फाटक दरवाजा। (४) स्वर्ग। गोलोक। (५) सुश्रुत के अनुसार वैद्यकशास्त्र के प्रणेता एक प्राचीन ऋषि।

गोपेंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण। (२) गोपों में श्रेष्ठ नंद।

गोप्ता—वि० [सं०] रक्षक। रक्षा करनेवाला।
संज्ञा पुं० विष्णु।
संज्ञा स्त्री० गंगा।

गोप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं०] गौओं के चर कर लौटने का समय। संध्या। गोधूली।

गोफ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दास। सेवक। (२) दासीपुत्र। (३)

गोपियों का समूह। (४) रेहन या गिरवी का वह प्रकार जिसमें रेहन रक्खी हुई चीज़ के आय-व्यय पर उसके स्वामी का ही अधिकार रहे और जिसके पास चीज़ रेहन रक्खी जाय वह केवल सूद लेने का अधिकारी हो। दृष्टबंधक।
वि० (१) गुप्त रखने योग्य। छिपाने लायक। (२) रक्षा करने योग्य। (३) छिपाया हुआ। गुप्त।

गोफण—संज्ञा पुं० दे० "गोफन"।

गोफणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के अनुसार फोड़े और ज़ख्म आदि बाँधने का एक प्रकार का बंधन जिसका व्यवहार ठोड़ी, नाक, ओंठ और कंधे आदि को बाँधने के लिये होता है।

गोफन, गोफना—संज्ञा पुं० [सं० गोफण] खेत के आस पास के पक्षियों आदि को उड़ाने या मारने के लिये रस्सी के एक सिरे पर बुना हुआ छींके के आकार का एक जाल जिसमें ढेले, पत्थर, कंकड़ आदि भर कर रस्सी की सहायता से सिर के ऊपर चारों ओर घुमाते हैं और जिसमें से बड़े वेग से निकले हुए ढेले, कंकड़ आदि की बहुत तेज़ चोट लगती है। पहले कभी कभी छोटी मोटी लड़ाइयों में भी इसका व्यवहार शत्रुओं पर मिट्टी आदि के गोले चलाने के लिये होता था। ढेलवाँस। फन्नी।

गोफा—संज्ञा पुं० [सं० गुम्फ] (१) नया निकला हुआ मुँहबँधा पत्ता, जैसे केले, अरुई, सूरन आदि का गाभा। † (२) एक हाथ की उँगलियों का दूसरे हाथ की उँगलियों के अंतर में जा कर गठना।
क्रि० प्र०—जोड़ना।

गोबर—संज्ञा पुं० [सं० गोमय] गाय की विष्ठा। गौ का मल।
मुहा०—गोबर करना=(१) गौ बैल आदि का विष्ठा त्याग करना। (२) गौ बैल आदि के नीचे का गोबर हटाना। (३) गोबर आदि से कंडे पाथना अथवा इसी प्रकार का और कोई मैला काम करना। **गोबर खाना**=प्रायश्चित्त करना। **गोबर का चोंथ**=(१) भद्दा और बेडौल। (२) जड़ और मूर्ख। **गोबर पाथना**=हाथ से गोबर के कंडे बनाना, अथवा इसी प्रकार का और कोई मैला काम करना। **गोबर बीनना**=ईंधन के लिये सूखा हुआ गोबर इकट्ठा करना।

गोबरगणेश, गोबरगनेश—वि० [हिं० गोबर+गणेश] (१) भद्दा। बदसूरत। जो देखने में भला न मालूम हो। (२) मूर्ख। बेवकूफ़। जो कुछ न कर सके।

गोबरहारा—संज्ञा पुं० [हिं० गोबर+हारा (प्रत्य०)] गोबर उठाने या पाथनेवाला नौकर।

गोबराना†—क्रि० स० [हिं० गोबर+ना (प्रत्य०)] गोबरी करना।

गोबरिया—संज्ञा पुं० [हिं० गोबर] बछनाग की जाति का एक पौधा जो हिमालय पर गढ़वाल से लेकर नैपाल तक होता है। इसकी जड़ विष है।

गोबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोबर+ई (प्रत्य०)] (१) कंडा। उपला। गोहरा। गोहरी। (२) गोबर का लेपन। गोबर की लिपाई।
क्रि० प्र०—करना।—फेरना।
मुहा०—गोबरी फेरना=अन्न की राशि के चारों ओर गोबर का चिह्न डालना।
संज्ञा स्त्री० [देश०] जहाज़ के पेंदे का छेद। (लश०)
मुहा०—गोबरी निकालना=जहाज़ के पेंदे में छेद करना।

गोबरैला—संज्ञा पुं० [हिं० गोबर+ऐला या औला (प्रत्य०)] एक प्रकार का छोटा काला कीड़ा जो गोबर या इसी प्रकार की किसी दूसरी गंदी चीज़ में उत्पन्न होता और रहता है।

गोबरौरा, गोबरौला†—संज्ञा पुं० दे० "गोबरैला"।

गोबिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा बाँस जो आसाम की पहाड़ियों में अधिकता से होता है। यह देखने में सुंदर होता है और इसकी छाया सघन होती है। इसकी पत्तियाँ पशुओं के चारे के काम आती हैं और लकड़ी से जंगली लोग तीर, कमान और टोकरे बनाते हैं। अकाल के समय ग़रीब लोग इसके बीजों का भात भी बना कर खाते हैं।

गोबी—संज्ञा स्त्री० दे० "गोभी"।

गोभ—संज्ञा पुं० [सं० गुंफ वा हिं० गोफा] पौधों का एक रोग जिसमें उनकी जड़ों में नए कल्ले निकल आते हैं और जिससे पौधे दुर्बल हो जाते हैं। कोई कोई इसे गोभी भी कहते हैं।

गोभिल—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेदीय गृह्यसूत्र के रचयिता एक प्रसिद्ध ऋषि।

गोभी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोजिह्वा=बनगोभी वा गुंफ=गुच्छा।] (१) एक प्रकार की घास जिसके पत्ते, लंबे, खरखरे, कटावदार और फूलगोभी के पत्तों के रंग के होते हैं। इसमें पीले रंग के चक्राकार फूल लगते हैं और पत्तों के बीच में एक बाल निकलती है। इसे पशु बड़े चाव से खाते हैं। वैद्यक में यह शीतल, कड़ुई, हलकी, वातकारक और कफ, पित्त, खाँसी, रुधिर विकार, अरुचि, फोड़ा, ज्वर और सब प्रकार के विष का दोष दूर करनेवाली मानी गई है। गोजिया। बनगोभी। (२) एक प्रकार का शाक जिसकी खेती इधर कुछ दिनों से भारत में अधिकता से होने लगी है। वनस्पति-शास्त्र के ज्ञाता इसके क्षुप को राई या सरसों की जाति का मानते हैं। यह तीन प्रकार की होती है—फूलगोभी, गाँठगोभी (दे० "गाँठगोभी") और पातगोभी या करमकल्ला (दे० "करमकल्ला")। फूलगोभी को साधारणतः खाली गोभी भी कहते हैं। इसका डंठल, जो ज़मीन में गड़ा होता है, साधारण गन्ने के बराबर मोटा और एक बालिश्त या इससे कुछ अधिक लंबा होता है। इसके ऊपर चारों ओर चौड़े, मोटे और बड़े पत्ते होते हैं जिनके बीच में बहुत से छोटे छोटे मुँहबँधे फूलों का गुथा हुआ समूह होता है। खिले हुए फूलोंवाली गोभी ख़राब

समझी जाती है। यह कार्तिक के अंत तक तैयार हो जाती और जाड़े भर रहती है। इसके फूल की तरकारी बनती है और मुलायम पत्तों का साग बनाया जाता है। गोभी सुखा कर भी रक्खी जाती है और दूसरी ऋतुओं में काम आती है। (३) पौधों का गोभ नामक रोग।

गोभुज—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

गोभृत—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।

गोमंत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सह्याद्रि के अंतर्गत एक पहाड़ी जहाँ गोमती देवी का स्थान है। यह सिद्धपीठ माना जाता है। (२) कुत्ते पालने या बेचनेवाला।

गोम—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) घोड़ों की एक भँवरी जो नाभी से ऊपर छाती की ओर होती है। इसे सब लोग बहुत बुरा समझते हैं। (२) पृथिवी। (डिं०)

गोमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी जो शाहजहानपुर की एक झील से निकल कर सैदपुर के पास गंगा में मिली है। वाशिष्ठी (२) टिपरा (बंगाल) की एक छोटी नदी। (३) एक देवी जिनका प्रधान स्थान गोमंत पर्वत पर है। (४) एक वैदिक मंत्र। (५) ग्यारह मात्राओं का एक छंद। उ०—पुत्रबंधु-पुत्र जे। राम ब्याहि कै तिते। फेरि धाम आइये। चित्तमोद ढाइये।

गोमतीशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमालय की वह चट्टान जिस पर पहुँच कर अर्जुन का शरीर गल गया था।

गोमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की मछली।

गोमय—संज्ञा पुं० [सं०] गौ का गू। गोबर।

गोमर—संज्ञा पुं० [हिं० गौ + मर (प्रत्य०) = मारनेवाला] बूचर। कसाई। गोहिंसक। उ०—हा बल सिंधु लषन सुखदाई। परी तात गोमर कर गाई।—विश्राम।

गोमल—संज्ञा पुं० [सं०] गोबर।

गोमा—संज्ञा स्त्री० [देश०] गोमती नदी।

गोमाय—संज्ञा पुं० दे० "गोमायु"।

गोमायु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सियार। गीदड़। श्रृगाल। उ०—(क) चल्यो भाजि गोमायु जंतु ज्यों लै केहरि कौ भाग। इतने रामचंद्र तहँ आये परम पुरुष बड़ भाग।—सूर। (ख) कोप तेहि कलिकाल कायर मुएहि घालत घाय। लेत केहरि को बयरु जनु भेक हति गोमाय।—तुलसी। (२) एक गंधर्व का नाम।

गोमी—संज्ञा पुं० [सं० गोमिन] (१) श्रृगाल। सियार। गीदड़। (२) पृथ्वी। (डिं०)

गोमुख—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ का मुहँ।

मुहा०—गोमुख नाहर या व्याघ्र = वह मनुष्य जो देखने में बहुत ही सीधा पर वास्तव में बड़ा क्रूर और अत्याचारी हो। उ०—देखिहैं हनुमान गोमुख नाहरनि के न्याय।—तुलसी।

(२) बजाने का एक शंख जिसका आकार गौ के मुँह के समान होता है। (३) नरसिंहा नाम का बाजा। उ०—एक पटह एक गोमुख एक आवझ एक झालरी। एक अमृत कुंडली रबाब भाँति सों दुरावे।—सूर। (४) गौ के मुख के आकार की वह थैली जिसमें माला रख कर जप करते हैं। गौमुखी। (५) नाक नामक जल-जंतु। (६) योग का एक आसन। (७) एक प्रकार की सेंध जो गौ के मुहँ के आकार की होती है। (८) टेढ़ा मेढ़ा घर। (९) ऐपन। (१०) एक यक्ष का नाम। (११) इंद्र के पुत्र जयंत के सारथी का नाम।

गोमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ऊन आदि की बनी हुई एक प्रकार की थैली जिसमें हाथ डाल कर जप करते समय माला फेरते हैं। इसका आकार गाय के मुँह का सा होता है। इसे जप-माली या जप-गुथली भी कहते हैं।

विशेष—जप करते समय माला को सब की दृष्टि की ओट में रखने का विधान है, इसीलिये गोमुखी का व्यवहार होता है।

(२) गौ के मुँह के आकार का गंगोत्तरी का वह स्थान जहाँ से गंगा निकलती हैं। (३) राढ़ देश की एक नदी जिसे आज कल गोमुड़ कहते हैं। (४) घोड़ों की एक भँवरी जो उनके ऊपरी ओठों पर होती है और जो अच्छी समझी जाती है।

गोमुद्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा रहता था।

गोमूत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसके अक्षरों को पढ़ने में इस क्रम से चलते हैं जिस क्रम से बैलों के मूतने से बनी हुई रेखा ज़मीन पर गई रहती है। वह चित्रकाव्य जिसके पढ़ने का यह क्रम है कि पहली पंक्ति का एक अक्षर पढ़ कर फिर दूसरी पंक्ति का दूसरा, फिर पहली का तीसरा, फिर दूसरी का चौथा, फिर पहली का पाँचवाँ और दूसरी का छठा और फिर आगे बराबर इसी प्रकार का पढ़ते चलते हैं। ऐसी कविता के पद बनाने में यह आवश्यक होता है कि उसके पहले और दूसरे (और आवश्यकता पड़ने पर तीसरे, चौथे और पाँचवे छठे आदि) चरणों के दूसरे, चौथे, छठे, आठवें, दसवें, बारहवें, चौदहवें, और सोलहवें (और यदि चरण अधिक लंबा हो तो सम संख्या पर पड़नेवाले सभी) अक्षर एक हों। इसे बर्धमूत्तन भी कहते हैं। (२) एक प्रकार की घास जिसके बीज सुगंधित होते हैं और जो औषध के काम में आती है। वैद्यक में इसे मधुर, वीर्य्यवर्द्धक और गौओं का दूध बढ़ानेवाली कहा है।

पर्य्या०—रक्ततृणा। क्षेत्रजा। कृष्णभूमिजा।

गोमेद—संज्ञा पुं० [सं०] गोमेदक मणि। शीतलचीनी। कबाब चीनी।

गोमेदक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध मणि जिसकी गणना

नौ रत्नों में होती है। इसका रंग सुर्खी लिए हुए पीला होता है और यह हिमालय पर्वत तथा सिंधु नदी में पाई जाती है। जो दोष हीरे में होते हैं वेही इसमें भी होते हैं। सुश्रुत के मत से इस मणि से गंदा जल बहुत साफ़ हो जाता है। यह राहु ग्रह की मणि मानी जाती है, इसीलिए इसे राहुग्रह या राहुरत्न भी कहते हैं।

पर्य्या०—राहुमणि। तमोमणि। स्वर्भानव। लिंगस्फटिक।

(२) काकोल नामक विष जो काला होता है (३) पत्रक नाम का साग।

गोमेध—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध के ढंग का एक यज्ञ जिसमें गौ से हवन किया जाता था और जिसका अनुष्ठान कलियुग में वर्जित है। मनु के अनुसार ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त के लिये और गोभिल गृह्यसूत्र के अनुसार पुष्टि कामना से इस यज्ञ का अनुष्ठान होता है। इसे गोसव यज्ञ भी कहते हैं।

गोयँड़—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठ वा हिं० गाँव + मेंड़] गाँव के आस पास की भूमि। दे० "गोइँड़"।

गोय—संज्ञा पुं० [फ़ा० या हिं० गोल] गेंद। उ०—चहुँ दिस आय अलोपत भानू। अब यह गोय यही मैदानू।—जायसी।

गोया—क्रि० वि० [फ़ा०] मानो। जैसे। जैसे, आप तो ऐसी बातें करते हैं गोया आप वहाँ थे ही नहीं।

विशेष—फ़ारसी में यह "शब्द बोलनेवाले" या "कहनेवाले" के अर्थ में भी आता है, पर हिंदी में इस अर्थ में इसका प्रयोग शायद ही कहीं होता हो।

गोर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह गड्ढा जिसमें मृतशरीर गाड़ा जाय। क़ब्र।

संज्ञा पुं० [अ० गोर] [वि० गोरी] फ़ारस देश के एक प्रांत का नाम।

† वि० [सं० गौर] (१) गोरा। (२) उज्ज्वल वर्ण का। सफ़ेद।

गोरका—संज्ञा पुं० [देश०] अरयल नाम का वृक्ष जो दक्षिणी भारत में होता है।

गोरखअमली, गोरखइमली—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोरख + इमली] एक प्रकार का बहुत बड़ा पेड़ जो मध्य तथा दक्षिण भारत में अधिकता से होता है। इसका तना बहुत मोटा होता है और इसकी डालियाँ दूर दूर तक फैलती हैं। यह वृक्ष बहुत दिनों तक जीवित भी रहता है। इसकी लकड़ी कमज़ोर होती है और उसमें जल्दी कीड़े लग जाते हैं। इसकी छाल बहुत मुलायम होती है और उसके रेशे से चटाइयाँ, रस्से और कहीं कहीं कपड़े भी बनाए जाते हैं। सावन भादों में यह पेड़ फूलता है और इसमें कमल के आकार के बड़े फूल लगते हैं। इसके फूलों में से पके हुए संतरे की सी सुगंध आती है। उसके एक सींके में सेमल की तरह के पाँच पाँच पत्ते होते हैं। अफ्रीका के निवासी इसके पत्तों का चूर्ण बना कर भोजन के साथ खाते हैं। उनके कथनानुसार इसके खाने से पसीना नहीं होता और गरमी कम मालूम होती है। इसमें छोटी लौकी के आकार के फल लगते हैं जिनके बीज दवा के काम आते हैं। ये बीज कई प्रकार के ज्वरों के लिये बहुत उपयोगी होते हैं और इनका बहुत बड़ा व्यापार होता है। वैद्यक के अनुसार यह मधुर, शीतल, और दाह, वमन, पित्त, अतिसार और ज्वर को दूर करनेवाली है। इसे कल्पवृक्ष भी कहते हैं। दे० "कल्पवृक्ष (२)"।

गोरख-ककड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोरख + ककड़ी] वह ककड़ी जिसमें फूट होता है। गोरखी।

गोरख-डिब्बी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोरख + डिब्बी] गरम या खनिज जल का कुंड या स्रोत।

गोरखधंधा—संज्ञा पुं० [हिं० गोरख + धंधा] (१) कई तारों, कड़ियों या लकड़ी के टुकड़ों इत्यादि का समूह जिनको विशेष युक्ति से परस्पर जोड़ वा अलग कर लेते हैं। इनके जोड़ने या अलग करने की क्रिया पेचीली होती है। गोरखधंधे कई प्रकार के होते हैं। एक प्रकार का गोरखधंधा गोरखपंथी साधु लिए रहते हैं जिसमें एक डंडे में बहुत सी कड़ियाँ जड़ी होती हैं। (२) कोई ऐसी चीज या काम जिसमें बहुत झगड़ा या उलझन हो। (३) झगड़ा। उलझन। पेच।

गोरखनाथ—संज्ञा पुं० [गोरक्षनाथ] एक प्रसिद्ध अवधूत जो पंद्रहवीं शताब्दी में हुए थे। ये बहुत सिद्ध माने जाते हैं और इनका चलाया हुआ संप्रदाय अब तक जारी है। गोरखपुर इनका प्रधान निवासस्थान था और वहीं इन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी।

गोरखपंथी—वि० [हिं० गोरखनाथ + पंथी] गोरखनाथ का अनुगामी। गोरखनाथ के चलाये हुए संप्रदायवाला।

गोरखमुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० मुण्डी] प्रसर जाति की एक प्रकार की घास जिसमें उँगली के समान लंबे लंबे पत्ते होते हैं और घुंडी के समान गोल और गुलाबी रंग के फूल लगते हैं जो रक्तशोधन के लिये बहुत ही गुणकारी होते हैं। वैद्यक के अनुसार यह चरपरी, कसैली, हलकी, बलकारक तथा रक्त-विकार के रोगों के लिये बहुत ही लाभदायक है। इसे खाली मुंडी भी कहते हैं।

गोरखर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] गधे की जाति का एक जंगली पशु जो गधे से बड़ा और घोड़े से छोटा होता है। यह पश्चिमी भारत तथा मध्य और पश्चिमी एशिया में पाया जाता है। इसकी ऊँचाई प्रायः तीन हाथ और लंबाई पाँच छः हाथ तक होती है। इसका पेट सफ़ेद और बाकी शरीर हिरन के रंग का होता है। इसके कान बड़े और दुम पर रोएँ होते हैं। ये सदा चौकन्ने रहते और बहुत तेज़ दौड़ते हैं। ये मैदानों में

२५-३० का झुंड बना कर रहते हैं और इनके झुंड का एक सरदार भी होता है। ये प्रायः हरी घास और पत्तियाँ खाते हैं।

गोरखा-संज्ञा पुं० [हिं० गोरख] (१) नैपाल के अंतर्गत एक प्रदेश। (२) इस देश का निवासी।

गोरखाली-संज्ञा पुं० [हिं० गोरख] नैपाल के अंतर्गत गोरखा नामक प्रदेश।

गोरखी-संज्ञा स्त्री० दे० "गोरख ककड़ी"।

गोरचकरा-संज्ञा पुं० [देश०] सन की जाति का एक जंगली पौधा जिसके पत्ते घीकुआर की तरह चिकने और लंबे होते हैं। अब यह पौधा बगीचों में शोभा के लिये भी लगाया जाने लगा है। इसका रेशा बहुत अच्छा होता है और प्राचीन काल में उससे धनुष की डोरी बनाई जाती थी। इसमें छोटे मीठे फल लगते हैं। इसका व्यवहार दवा में भी होता है। वैद्यक के अनुसार यह कड़ुआ, गरम, भारी, दस्तावर और प्रमेह, कोढ़, त्रिदोष, रुधिरविकार तथा विषमज्वर को दूर करनेवाला है। इसे मुर्वा, मौर्वा या धनुर्गुण भी कहते हैं।

गोरज-संज्ञा पुं० [सं०] गौ के खुरों से उड़ी हुई गर्द वा धूल।

गोरटा-वि० पुं० [हिं० गोरा] [स्त्री० गोरटी] गोरे रंगवाला। गोरा। उ०—डग कुडगति सी ठठकि चितई चली निहारि। लिये जाति चित चोरटी वहै गोरटी नारि।—बिहारी।

गोरन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी लाल रंग की और बहुत मज़बूत होती है। इसकी लकड़ी किश्तियाँ बनाने और इमारत के काम में आती हैं और छाल से चमड़ा सिझाया जाता है। यह वृक्ष सिंध तथा बंगाल में नदियों और समुद्र के किनारे की नम जमीन में अधिकता से होता है।

गोरया-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रख सकते हैं।

गोरल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली बकरा।

गोरवा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जिसकी छोटी छोटी टहनियों से हुक्के के नैचे बनाये जाते हैं।

गोरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध। दुग्ध। (२) दधि। दही। (३) तक्र। मठा। छाछ। (४) इंद्रियों का सुख। उ०—गोरस चाहत फिरत हो गोरस चाहत नाहिं।—बिहारी।

गोरसर-संज्ञा पुं० [देश०] वह पतली कमाची जिसे बाँस के पंखों की डंडी के आस पास देकर बंधन से जकड़ देते हैं।

गोरसा-संज्ञा पुं० [सं० गोरस] वह बच्चा जो गाय के दूध से पला हो।

गोरसी-संज्ञा स्त्री० [सं० गोरस + ई (प्रत्य०)] दूध गरम करने की अँगीठी।

गोरा-वि० [सं० गौर] सफ़ेद और स्वच्छ वर्णवाला (मनुष्य)। जिसके शरीर का चमड़ा सफ़ेद और साफ हो।

यौ०—गोरा भभूका = ललाई लिए गोरा। गोरा चिट्टा।

संज्ञा पुं० गौर वर्णवाला व्यक्ति विशेषतः युरोप, अमेरिका आदि देशों का निवासी। फिरंगी।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार की कल जो नील के कारखानों में बट्टी काटने के लिये रहा करती है। (२) एक प्रकार का नीबू जो लंबोतरा होता है।

गोराई*†-संज्ञा स्त्री० [सं० गौर + आई] (१) गोरापन। (२) सुंदरता। सौंदर्य्य।

गोराडू-संज्ञा पुं० [देश०] वह बालू मिली मिट्टी जिसमें कोदो बहुत उत्पन्न होता है। यह गुजरात में बहुत होती है।

गोरामूंग-संज्ञा पुं० [हिं० गोरा + मूँग] एक प्रकार की जंगली मूँग जिसे दक्षिण में लोग अकाल के समय खाते हैं।

गोरिल्ला-संज्ञा पुं० [अफ्रिका] चिंपैंजी की जाति का बहुत बड़े आकार का एक प्रकार का बनमानुस जिसके झुंड अफ्रीका में पाये जाते हैं। इसके शरीर का चमड़ा काला, कान छोटे और हाथ बहुत लंबे होते हैं। इसकी ऊँचाई प्रायः साढ़े पाँच फुट होती है और इसके शरीर में बहुत बल होता है। यह फल आदि खाता और पेड़ों पर बड़े बड़े झोपड़े बना कर रहता है। इसकी आवाज साधारण भूँकने की सी होती है, पर इसे छेड़ा या दिक किया जाय तो यह बहुत जोर से चिल्लाने लगता है। इसके शरीर की बनावट मनुष्य से बहुत कुछ मिलती जुलती होती है।

गोरी-संज्ञा स्त्री० [सं० गौरी] सुंदर और गौर वर्ण की स्त्री। रूपवती स्त्री।

गोरीसर-संज्ञा पुं० [सं०] सालसा। उशबा।

गोरू-संज्ञा पुं० [सं० गो] (१) सींगवाला पशु, गाय, बैल, भैंस इत्यादि। चौपाया। मवेशी। (२) दो कोस का मान। (डिं०)

गोरूप-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

गोरोच-संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

गोरोचन-संज्ञा पुं० [सं०] पीले रंग का एक प्रकार का सुगंधि द्रव्य जो गौ के हृदय के पास पित्त में से निकलता है। यह अष्टगंध के अंतर्गत है और बहुत पवित्र माना जाता है। कभी कभी यह लड़कों की चोंटी में भी पड़ता है और इसका तिलक लगाया जाता है। तांत्रिक इसे मंगलजनक, कांतिदायक, दरिद्रतानाशक और वशीकरण करनेवाला मानते हैं। वैद्यक में इसे शीतल, कड़ुआ और विष, उन्माद, गर्भस्राव, नेत्ररोग, कृमि, कुष्ट और रक्तविकार को दूर करनेवाला, वीर्य्य वर्द्धक तथा पथ्य माना है। कुछ लोगों का विश्वास है कि

यह गौ के मस्तक का पित्त है अथवा गौ में इसे उत्पन्न करने के लिये उसको बहुत दिनों तक केवल आम की पत्तियाँ खिला कर रखते हैं जिससे उसको बहुत कष्ट होता है, पर ये बातें ठीक नहीं हैं। उ०—(क) तिलक भाल पर परम मनोहर गोरोचन को दीनो।—सूर। (ख) चुपरि उबटि अह्नवाइ के नयन आँजे रचि रचि तिलक गोरोचन को कियो है।—तुलसी।

गोरोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरोचन नामक सुगंधि द्रव्य।

गोर्खा—संज्ञा पुं० दे० "गोरखा"।

गोर्खाली—वि० दे० "गोरखाली"।

गोलंदाज—संज्ञा पुं० [फ़ा०] तोप में गोला रख कर चलानेवाला। तोप में बत्ती देनेवाला।

गोलंदाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गोला चलाने का काम या विद्या।

गोलंबर—संज्ञा पुं० [हिं० गोल + अंबर] (१) गुंबद। (२) गुंबद के आकार का कोई गोल ऊँचा उठा हुआ पदार्थ। (३) गोलाई। (४) कलबूत जिस पर रख कर टोपी सीते हैं। क़ालिब। (५) बगीचे में बना हुआ गोल चबूतरा या रविश।

गोल—वि० [सं०] (१) जिसका घेरा वा परिधि वृत्ताकार हो। चक्र के आकार का। वृत्ताकार। जैसे, पहिया, अँगूठी, सिक्का इत्यादि। (२) ऐसे घनात्मक आकार का जिसके पृष्ठ का प्रत्येक विंदु उसके भीतर के मध्य-विंदु के समान अंतर पर हो। सर्ववर्त्तुल। अंडाकार। गेंद, नीबू, बेल आदि के आकार का।

मुहा०—गोल गोल = (१) स्थूल रूप से। मोटे हिसाब से। (२) अस्पष्ट रूप से। साफ़ साफ़ नहीं। उ०—यों ही गोल गोल समझा कर वह चला गया, साफ़ खुला नहीं। गोल बात = अस्पष्ट बात। ऐसी बात जिससे अर्थ का कुछ आभास मिले पर वह स्पष्ट न हो। गोल मटोल = (१) दे० "गोल गोल"। (२) मोटा और ठेंगना। नाटा और मोटा। गुलगुथना। (३) ऊँचाई के हिसाब से जिसकी चौड़ाई या मोटाई बहुत अधिक हो। गोल होना = चुप हो रहना। मौन हो जाना।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृत्त। मंडलाकार क्षेत्र। (२) गोलाकार पिंड। गोला। सर्ववर्त्तुल पिंड। वटक। (३) गोलयंत्र। (४) विधवा का जारज पुत्र। (५) मुर नाम की ओषधि। (६) मदन वृक्ष। मैनफल का पेड़। (७) एक देश का नाम जिसके अंतर्गत योरप का बहुत सा भाग विशेषतः उत्तरीय इटली और फ्रांस, बेलजियम आदि थे। यह शब्द रोमन भाषा वा लैटिन से हेमचंद्र परिशिष्ट पर्वण में आया है। (८) मिट्टी का गोल घड़ा।

संज्ञा पुं० [फ़ा० गोल। सं० गोल = मंडल] मंडली। झुंड। समूह।

मुहा०—गोल बाँधना = मंडली वा झुंड बनाना।

संज्ञा पुं० [सं० गोल (योग)] गड़बड़। गोलमाल। उपद्रव। खलबली। हलचल।

यौ०—गोलमाल।

मुहा०—गोल पारना या डालना = गड़बड़ मचाना। हलचल मचाना। उ०—ऊधो सुनत तिहारो बोल। ल्यायो हरि कुशलात धन्य तुम घर घर पारयो गोल।—सूर।

गोलक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोलोक। (२) गोलपिंड। (३) विधवा का जारज पुत्र। (४) मिट्टी का बड़ा कुंडा। (५) फूलों का निकाला हुआ सार। इत्र। (६) आँख का डेला। उ०—(क) अति उनींद अलसात कर्मगति गोलक चपल सिथिल कछु थोरे।—सूर। (ख) जोगवहिँ प्रभु सिय लखनहिँ कैसे। पलक विलोचन गोलक जैसे।—तुलसी। (७) आँख की पुतली। उ०—उनके हित उनहीं बने कोऊ करौ अनेक। फिरत काक गोलक भयौ दुहूँ देह ज्यौं एक।—बिहारी। (८) गुंबद। उ०—बिसुकरमा मनु मनि खंभ पै उड़गण को गोलक धर्यो।—गोपाल। (९) वह संदूक या थैली आदि जिसमें किसी विशेष कार्य्य के लिये थोड़ा थोड़ा धन संग्रह किया जा। (१०) वह धन जो किसी विशेष कार्य्य के लिये संग्रह करके रखा जाय। फंड। (११) वह संदूक वा थैली जिसमें बिक्री द्वारा या और किसी प्रकार आई हुई रोजाना आमदनी रखी जाती है। गल्ला। गुल्लक।

गोलकलम—संज्ञा पुं० [हिं० गोल + कलम] एक प्रकार की छेनी जो चाँदी के पत्तर पर की नकाशी ठीक करने या पीतल के बरतनों की नकाशी में पत्ती उभारने के काम में आती है।

गोलकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोल + कली] एक प्रकार का अंगूर जो दक्षिण और मध्यभारत में होता है।

गोलगप्पा—संज्ञा पुं० [हिं० गोल + अनु० गप] एक प्रकार की महीन और करारी घी में तली फुलकी जिसे खटाई के रस में डुबो कर खाते हैं।

गोलपंजा—संज्ञा पुं० [हिं० गोल + पंजा] बिना मुड़ी नोक का जूता। मुंडा जूता।

गोलपत्ता—संज्ञा पुं० [हिं० गोल + पत्ता] गुल्गा नामक ताड़ का पत्ता जो सुंदर बन में होता है। दे० "गुल्गा"।

गोलफल—संज्ञा पुं० [हिं० गोल + फल] गुल्गा नामक ताड़ का फल जो सुंदरबन में होता है। दे० "गुल्गा"।

गोलमाल—संज्ञा पुं० [सं० गोल (योग)] गड़बड़। अव्यवस्था।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—मचाना।

गोलमिर्च—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोल + सं० मरिच] काली मिर्च।

गोलमुँहाँ—संज्ञा पुं० [हिं० गोल + मुँह] कसेरों की एक प्रकार की हथौड़ी जिसका अगला भाग बिलकुल गोल होता है और जिससे बर्तन गहरा किया जाता है।

गोलमेथी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोल + मोथा] मोथे की जाति का एक

पेड़ जो उत्तरी भारत में कमाऊँ से बरमा तक तथा अफ्रीका और अमेरिका में होता है। इसके डंठलों से चटाइयाँ बनती हैं। इसे बेंदुआ भी कहते हैं।

गोलयंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह यंत्र जिससे सूर्य्य, चंद्र, पृथिवी आदि की स्थिति, नक्षत्रों की गति और अयन परिवर्त्तन आदि जाने जाते हों। प्राचीन काल में यह यंत्र प्रायः बाँस की तीलियों आदि से बनाया जाता था।

गोलयोग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष में एक योग जो एक राशि में किसी के मत से छः और किसी के मत से सात ग्रहों के एकत्र हो जाने से होता है। फलित ज्योतिष के अनुसार इसका फल दुर्भिक्ष और राष्ट्र तथा राजाओं का नाश है। (२) गड़बड़। गोलमाल।

गोलर–संज्ञा पुं० [देश०] कसेरू।

गोलरा–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बहुत लंबा और सुंदर पेड़ जो हिमालय पर्वत पर तीन हज़ार फ़ुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी छाल चिकनी और सफ़ेद और हीर की लकड़ी चमकीली और बहुत कड़ी होती है। इसके पत्तों से चमड़ा सिझाया जाता है और लकड़ी से नावें जहाज़ और खेती के औज़ार बनाए जाते हैं।

गोललट्टू–संज्ञा पुं० [हिं० गोल + लट्टू] जहाज़ के मस्तूल के सिरे पर की एक गोल लकड़ी जिस पर से पाल की रस्सियाँ खींची जाती हैं। (लश०)

गोलविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष विद्या का वह अंग जिससे पृथ्वी की गोलाई, आकार, विस्तार, चाल, ऋतु-परिवर्त्तन आदि बातें जानी जाँय। आकाश के गोलपिंडों का हाल चाल जानना भी इसी के अंतर्गत है।

गोलांगूल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बंदर जिसकी पूँछ गौ की पूँछ के समान होती है।

गोला–संज्ञा पुं० [सं०। हिं० गोल] (१) किसी पदार्थ का कुछ बड़ा गोल पिंड। जैसे, लोहे का गोला, रस्सी का गोला, भाँग का गोला।

मुहा०—गोला उठाना = एक प्राचीन प्रथा जिसमें लोग अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिये जलता हुआ लोहे का गोला हाथ में उठा लिया करते थे और यदि उनका हाथ न जलता तो वे निर्दोष समझे जाते थे।

(२) लोहे का वह गोल पिंड जिसमें बहुत सी छोटी छोटी गोलियाँ, मेखें आदि भर कर युद्ध में तोपों की सहायता से शत्रुओं पर फेंकते हैं। उ०—ठाढ़े महीधर शिखर कोटिन्ह विविध विधि गोला चले।—तुलसी।

क्रि० प्र०—चलाना।—छोड़ना।—फेंकना।—बरसाना।

विशेष—तोपों के आधुनिक गोले केवल गोल ही नहीं बल्कि लंबे भी बनते हैं।

(३) एक प्रकार का रोग जिसमें थोड़ी थोड़ी देर पर पेट के अंदर नाभि से गले तक वायु का एक गोला आता जाता जान पड़ता है और जिसमें रोगी को बहुत अधिक कष्ट होता है। वायगोला। (४) खंभे के सिरों पर का कुछ चौड़ा गढ़ा हुआ भाग। (५) दीवार के ऊपर की लकीर जो शोभा के लिये बनाई जाती है। (६) भीतर से खोखला किया हुआ बेल का फल या उसी आकार का काठ आदि का बना हुआ और कोई पदार्थ जो सुँघनी, भभूत या इसी प्रकार की और कोई बुकनी रखने के काम में आता है। (७) मिट्टी काठ आदि का बना हुआ वह गोलाकार पिंड जिसके ऊपर रख कर पगड़ी बाँधते हैं। (८) जंगली कबूतर। (९) नारियल का वह भाग जो उसके ऊपर की जटा छीलने के बाद बच रहता है। गरी का गोला। (१०) वह बाजार या मंडी जहाँ अनाज वा किराने की बहुत बड़ी बड़ी दूकानें हों। (११) घास का गट्ठर। (१२) लकड़ी का गोल पेटे का सीधा लंबा लट्ठा जो छाजन में लगाने तथा दूसरे कामों में आता है। काँड़ी। बल्ला। (१३) रस्सी, सूत आदि की गोल लपेटी हुई पिंडी। (१४) एक प्रकार का जंगली बाँस जो पोला नहीं होता और छड़ी या लाठी बनाने के काम में आता है।

मुहा०—गोला लाठी करना = लड़कों का हाथ पैर बाँध कर दोनों घुटनों के बीच में डंडा डालना। (यह दंड मौलवी मकतबों में लड़कों को दिया करते हैं।)

(१५) एक प्रकार का बेंत जो बंगाल और आसाम में होता है। यह बहुत लंबा और मुलायम होता है तथा टोकरे आदि बनाने के काम में आता है।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोदावरी नदी। (२) सहेली। सखी। (३) मंडल। (४) किसी चीज़ की छोटी गोली। (५) दुर्गा।

गोलाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० गोल + आई (प्रत्य०)] गोल का भाव। गोलापन।

गोलाकार, गोलाकृति–वि० [सं०] जिसका आकार गोल हो। गोल शक्लवाला।

गोलाधार–वि० [हिं० गोला + धार] मूसलाधार।

गोलाध्याय–संज्ञा पुं० [सं०] भास्कराचार्य्य का एक ग्रंथ जिसमें भूगोल और खगोल का वर्णन है।

गोलार्द्ध–संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी का आधा भाग जो एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक उसे बीचोबीच काटने से बनता है।

गोलियाना†–क्रि० स० [हिं० गोल] (१) किसी चीज को गोल आकार का करना या बनाना। (२) गोल बाँधना। समपक्ष के लोगों का एकत्रित होना।

गोली–संज्ञा स्त्री० [हिं० गोला का स्त्री० और अल्प०] (१) किसी

चीज़ का छोटा गोलाकर पिंड। वटिका। बटिया। जैसे, सूत की गोली, अफ़ीम की गोली, खेलने की गोली। (२) औषधि की वटिका। बटी।

क्रि० प्र०—खाना।—खिलाना।—देना।

(३) मिट्टी काँच आदि का बना हुआ वह छोटा गोल पिंड जिससे बालक खेलते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।—मारना।—लगाना।

(४) गोली का खेल। (५) पशुओं का एक रोग। (६) पीले या बदामी रंग की गाय। (७) मदक की गोली जो अफीम से तैयार होती है और जिसे तंबाकू की तरह पीते हैं। (८) सीसे आदि का ढला हुआ वह छोटा गोल पिंड जो बंदूक में भर कर घायल करने या मारने के लिये चलाया जाता है।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—छोड़ना।—मारना।—लगना।

मुहा०—गोली खाना = बंदूक की गोली का आघात सहना। गोली बचाना = किसी संकट वा आपत्ति से धूर्त्तता पूर्वक अपना बचाव कर लेना। विपत्ति के स्थान से वा अवसर पर टल जाना। गोली मारते हैं = उपेक्षापूर्वक छोड़ देते हैं। तुच्छ समझ कर ध्यान छोड़ देते हैं। मिलने न मिलने वा होने न होने की परवा नहीं करते हैं। उ०—ऐसी नौकरी को हम गोली मारते हैं। गोली मारो = उपेक्षापूर्वक छोड़ दो। तुच्छ समझ कर ध्यान छोड़ दो। मिलने न मिलने वा होने न होने की परवा न करो। जाने दो। दूर हटाओ। उ०—अजी गोली मारो, ऐसे रोज़गार में क्या रक्खा है?

(९) मिट्टी की गोल ठिलिया। छोटा घड़ा।

गोलँदा—संज्ञा पुं० [देश०] महुवे का फल। कोइंदा।

गोलोक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु या कृष्ण का निवास-स्थान जो पुराणानुसार ब्रह्मांड में सब लोकों से ऊपर माना जाता है। अनेक पुराणों में यह लोक बहुत ही मनोहर और रम्य बतलाया गया है। तंत्र के अनुसार बैकुंठ के दक्षिण ओर गोलोक है। (२) स्वर्ग। (३) व्रजभूमि।

गोलोकेश—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्णचंद्र।

गोलोचन—संज्ञा पुं० दे० "गोरोचन"।

गोलौवा—संज्ञा पुं० [हिं० गोल] बड़ा दौरा। टोकरा। खाँचा।

गोल्ड—संज्ञा पुं० [अं०] सोना। स्वर्ण।

गोल्डन—वि० [अं०] (१) सोने का। (२) सुनहरा। सोने के रंग का।

गोवध—संज्ञा पुं० [सं०] गौ को मारना। गौ की हत्या। गोहिंसा।

गोवना*—क्रि० स० दे० "गोना"।

गोवर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्री वृंदाबन का एक पर्वत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उसे एक बार बहुत अधिक वर्षा होने पर श्रीकृष्ण ने अपनी उँगली पर उठाया था।

यौ०—गोवर्द्धनधर, गोवर्द्धनधारी = श्रीकृष्ण।

(२) मथुरा ज़िले के अंतर्गत एक प्राचीन नगर और तीर्थ।

गोविंद—संज्ञा पुं० [सं० गोपेंद्र, पा० गोविंद] (१) श्रीकृष्ण। (२) वेदांतवेत्ता। तत्त्वज्ञ। (३) बृहस्पति। (४) शंकराचार्य्य के गुरु का नाम। (५) सिखों के १० गुरुवों में से एक। (६) परब्रह्म। (७) गोशाला या गौओं का अध्यक्ष।

गोविंद-द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] फाल्गुन शुक्ल १२। फागुन महीने के उजाले पक्ष का बारहवाँ दिन।

गोविंदपद—संज्ञा पुं० [सं०] मोक्ष। निर्वाण।

गोवि—संज्ञा पुं० [सं०] संकीर्ण राग का एक भेद।

गोवीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा के मार्ग का वह अंश जिसमें भाद्रपद, रेवती और अश्विनी तथा किसी किसी के मत से हस्त, चित्रा और स्वाती नक्षत्रों का समूह है।

गोव्याधि—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

गोव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो गोहत्या के प्रायश्चित्त के लिये किया जाता है और जिसमें बराबर एक मास तक किसी गौ के पीछे पीछे घूमना और केवल गौ का दूध पी कर रहना पड़ता है।

गोश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] सुनने की इंद्रिय। कान।

गोशपेंच—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कान में पहनने का ज़ेवर।

गोशम—संज्ञा पुं० दे० "कोसम"।

गोशमायल—संज्ञा० पुं० [फ़ा०] पगड़ी में एक ओर लगा हुआ मोतियों की लड़ी का वह गुच्छा जो कान के पास लटकता रहता है।

गोशमाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) कान उमेठना। (२) ताड़ना। कड़ी चेतावनी।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

गोशवारा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) खंजक नामक पेड़ का गोंद जो मस्तगी का सा होता है और मस्तगी ही की जगह काम में भी लाया जाता है। (२) कान का बाला। कुंडल। (३) बड़ा मोती जो सीप में अकेला हो। (४) कलाबत्तू से बुना हुआ पगड़ी का आँचल। (५) तुर्रा। कलगी। सिरपेच। (६) जोड़। मीज़ान। (७) वह संक्षिप्त लेखा जिसमें हर एक मद का आय-व्यय अलग अलग दिखलाया गया हो। (८) रजिस्टर आदि में खानों के ऊपर का वह भाग जिसमें उन खानों का नाम लिखा रहता है।

गोशा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कोना। अंतराल। कोण। (२) एकांत स्थान। जहाँ कोई न हो। तनहाई। (३) तरफ़। दिशा। ओर। (४) कमान की दोनों नोकें। धनुषकोटि। कमान का सिरा। उ०—यह अचरज सुबड़ो मेरे जिय वह छाँड़नि वह पोसनि। निपट निकाम जानि हम छांड़ी ज्यों कमान बिन गोसनि।—सूर।

गोशाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] गौओं के रहने का स्थान। गोष्ठ।

गाशीर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पर्वत का नाम। (२) उक्त पर्वत पर होनेवाला चंदन। (३) एक प्रकार का अस्त्र।

गोशृंग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पर्वत जिसका वर्णन रामायण और महाभारत में आया है। (२) एक ऋषि का नाम। (३) बबूल का पेड़।

गोश्त–संज्ञा पुं० [फ़ा०] मांस। आमिष।

गोष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौओं के रहने का स्थान। गोशाला। (२) किसी जाति के पशुओं के रहने का स्थान। जैसे, महिषगोष्ठ, अश्वगोष्ठ। (३) मनु के अनुसार एक प्रकार का श्राद्ध जो कई आदमी मिल कर करते हैं। (४) परामर्श। सलाह। (५) दल। मंडली।

गोष्ठशाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ कोई सभा हो। सभाभवन।

गोष्ठी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुत से लोगों का समूह। सभा। मंडली। (२) वार्त्तालाप। बातचीत। (३) परामर्श। सलाह। (४) एक ही अंक का वह रूपक या नाटक जिसमें ५ या ७ स्त्रियाँ और ९ या १० पुरुष हों।

गोष्पद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौओं के रहने का स्थान। गोष्ठ। (२) गौ के खुर के इतना बड़ा गड्ढा। (३) प्रभास क्षेत्र के अंतर्गत एक तीर्थ।

गोस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का झाड़ जिसमें से गोंद निकलता है। (२) प्रातःकाल से दो घड़ी पहले का समय। प्रभात। तड़का।

संज्ञा पुं० [फ़ा० गोश ?] हवा लगने के लिये चलते हुए जहाज का रुख कुछ तिरछा करना। माँच। (लश०)

गोसई–संज्ञा स्त्री० [देश०] कपास के पौधों का एक रोग जिसमें उनका फूलना बंद हो जाता है।

गोसमावल–संज्ञा पुं० दे० "गोशमायल"। उ०—पाग ऊपर गोसमावल रंग रंग रचि बनाय।—सूर।

गोसव–संज्ञा पुं० [सं०] गोमेध यज्ञ।

गोसा–संज्ञा पुं० [सं० गो] गोईंठा। उपला। कंडा।

गोसाईं–संज्ञा पुं० [सं० गोस्वामी] (१) गौओं का स्वामी या अधिकारी। (२) स्वर्ग का मालिक, ईश्वर। (३) संन्यासियों का एक संप्रदाय जिसमें दश भेद होते हैं और जिसे दशनाम भी कहते हैं। गिरि, पुरी, भारती, सरस्वती आदि इसी के अंतर्गत हैं। (४) विरक्त साधु। अतीत। (५) वह जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो। जितेंद्रिय। (६) मालिक। प्रभु। स्वामी। उ०—कछु न परीछा लीन्ह गुसाईं। कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाईं।—तुलसी।

वि० श्रेष्ठ। बड़ा।

गोसाती–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गोशा] वह हवा जो पाल उतार लेने पर भी जहाज के चलने में बाधा डाले। (लश०)

गोसी–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की समुद्र में चलनेवाली नाव जिसमें २ से लेकर ७ तक मस्तूल होते हैं।

गोसी परवान–संज्ञा पुं० [देश०] धातु की एक लंबी छड़ जो जहाज़ के मस्तूल में पाल के ऊपरी छोर को हटाने बढ़ाने के लिये लगी होती है।

गोसुत–संज्ञा पुं० [सं०] बछड़ा। गौ का बच्चा उ०—(क) गो गोसुतनि सों मृगी मृगसुतनि सों और तन नेकु न जोहती।—हरिदास। (ख) गोकुल पहुँचे जाइ गए बालक अपने घर। गोसुत अरु नर नारि मिली अति हेत लाइ गर।—सूर।

गोसूक्त–संज्ञा पुं० [सं०] अथर्व वेद का वह अंश जिसमें ब्रह्मांड की रचना का गौ के रूप में वर्णन किया गया है। गोदान के समय इसका पाठ किया जाता है।

गोसैयाँ†–संज्ञा पुं० [सं० गोस्वामी, हिं० गोसाईं] प्रभु। नाथ। मालिक।

गोस्तना, गोस्तनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] द्राक्षा। दाख। मुनक्का।

गोस्वामी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिस ने इंद्रियों को अपने वश में कर लिया हो। जितेंद्रिय। (२) वैष्णव संप्रदाय में आचार्यों के वंशधर या उनकी गद्दी के अधिकारी।

गोह–संज्ञा स्त्री० [सं० गोधा] छिपकली की जाति का एक जंगली जंतु जो आकार में नेवले से कुछ बड़ा होता है। इसकी फुफकार में बहुत विष होता है। इसके काटने पर पहले मांस गलने लगता है और तब सारे शरीर में विष फैलने के कारण मनुष्य मर जाता है। इसका चमड़ा बहुत मोटा और मज़बूत होता है जिससे प्राचीन काल में लड़ाई के समय उँगलियों की रक्षा करने के लिये दस्ताने बनते थे। कभी कभी इसके चमड़े से खँजरी भी मढ़ी जाती है। इसका मांस बहुत पुष्ट होता है और प्राचीन काल में खाया जाता था। अब भी जंगली जातियाँ गोह का मांस खाती हैं। यह दीवार में चिपक जाती और उसे बहुत कठिनता से छोड़ती है। ऐसा प्रसिद्ध है कि पहले चोर इसकी कमर से रस्सी बाँध कर इसे मकान के ऊपर फेंक देते थे और जब यह वहाँ पहुँच कर चिपक जाती तो वे उस रस्सी की सहायता से ऊपर चढ़ जाते थे। गोह दो प्रकार की होती है, एक चंदन गोह जो छोटी होती है और दूसरी पटरा गोह जो बड़ी और चिपटी होती है।

संज्ञा पुं० उदयपुर राजवंश के एक पूर्व पुरुष का नाम जो बाप्पा रावल से पहले हुआ था।

गोहन*–संज्ञा पुं० [सं० गोधन = गौओं का समूह] (१) संग रहनेवाला। साथी। उ०—सूरदास प्रभु मोहन गोहन की छबि बाढ़ी मेटति दुख निरखि नैन मैन के दरद को।—सूर। (२) संग। साथ। उ०—(क) औराता सोने रथ साजा। भई बरात गोहन सब राजा।—जायसी। (ख) भाजे कहाँ

चलोगे मोहन। पाछे आइ गई तुव गोहन।—सूर। (ग) देव जू गोहन लागे फिरैं गहि के गहिरे रँग में गहिराऊ।—देव।

गोहनियाँ†—संज्ञा पुं० [हिं० गोहन + इया (प्रत्य०)] संगी। साथी।

गोहर—संज्ञा स्त्री० [सं० गोधा] बिसखोपरा नामक जंतु।

गोहरा—संज्ञा पुं० [सं० गो + ईल या गोहल] [स्त्री० अल्प० गोहरी] सुखाया हुआ गोबर जो जलाने के काम आता है। कंडा। उपला।

गोहराना†—क्रि० अ० [हिं० गोहरा] पुकारना। बुलाना। आवाज़ देना।

गोहरौर—संज्ञा पुं० [हिं० गोहरी + और (प्रत्य०)] पथे हुए कंडों का ढेर।

गोहलोत—संज्ञा पुं० [गोह (नाम)] क्षत्रियों की एक जाति विशेष। दे० "गहलौत"। उ०—तोमर बैस पनवार सवाई। औ गोहलोत आय सिर नाई।—जायसी।

गोहसम—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष।

गोहानी†—संज्ञा पुं० दे० "गोंइड़"।

गोहार—संज्ञा स्त्री० [सं० गो + हार (हरण)] (१) पुकार। दुहाई। रक्षा वा सहायता के लिये चिल्लाना। उ०—धाई धारि फिरि कै गोहार हितकारी होत आई मीच मिटत जयत राम नाम को।—तुलसी।

विशेष—प्राचीन काल में जब किसी की गाय कोई छीने लिए जाता था तब वह उसकी रक्षा के लिये पुकार मचाता था।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—**गोहार मारना** = सहायता के लिये पुकार मचाना। **गोहार लड़ना** = (१) सब को ललकार कर लड़ना। (२) गँवारों का लाठियों से लड़ना। (३) एक आदमी का कई आदमियों से लड़ना।

(२) हल्ला गुल्ला। शोर चिल्लाहट।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।—लगना।—लगाना।

(३) वह भीड़ जो रक्षा के लिये किसी की पुकार सुन कर इकट्ठी हो गई हो।

गोहारि†—संज्ञा स्त्री० दे० "गोहार"।

गोहारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोहार] (१) गोहार। (२) वह धन जो कोई हानि पूरी करने के लिये हो। (लश०) (३) वह धन जो बंदरगाह में जहाज़ के आवश्यकता से अधिक रहने के कारण हरजाने के तौर पर दिया या लिया जाय। (लश०)

गोही*†—संज्ञा स्त्री० [सं० गोपन] (१) दुराव। छिपाव। (२) छिपी हुई बात। गुप्त वार्त्ता। उ०—अपनो बनिज दुरावत हो कत नाउँ लियो इतनोही। कहा दुरावति हौ मो आगे सब जानत तुव गोही।—सूर। (३) महुवे का बीज। (४) फलों का बीज। गुठली।

गोहुवन—संज्ञा पुं० [हिं० गेहूँ] एक प्रकार का विषधर साँप।

गोहूँ†—संज्ञा स्त्री० [सं० गोधूम] गेहूँ।

गोहेरा—संज्ञा पुं० [सं० गोधा] बिसखोपरा नामक विषैला जंतु।

गौं—संज्ञा स्त्री० [सं० गम, प्रा० गँव] (१) प्रयोजन सिद्ध होने का स्थान वा अवसर। सुयोग। मौक़ा। घात। दाँव। उ०—मनहुँ इंदु बिंब मध्य, कंज मीन खंजन लखि, मधुप, मकर, कीर आए तकि तकि निज गौं हैं।—तुलसी।

क्रि० प्र०—ताकना।—देखना।

यौ०—**गौं घात** = उपयुक्त अवसर वा स्थिति। मौक़ा।

(२) प्रयोजन। मतलब। ग़रज़। अर्थ। उ०—यह सखि मैं पहिले कहि राखी असित न अपने होंहीं। सूर काटि जो माथो दीजै चलत आपनी गौं ही।—सूर।

मुहा०—**गौं का** = (१) मतलब का। काम का। प्रयोजनीय (वस्तु)। उ०—बाज़ार जाते हो, कोई गौं की चीज़ मिले तो लेते आना। (२) स्वार्थी। मतलबी। ख़ुदग़रज़ (व्यक्ति)। **गौं का यार** = केवल अपना मतलब गाँठने के लिये साथ में रहनेवाला। मतलबी। स्वार्थी। **गौं गाठना** = अपना मतलब निकालना। स्वार्थ साधन करना। काम निकालना। **गौं निकालना** = काम निकालना। प्रयोजन सिद्ध होना। स्वार्थसाधन होना। उ०—अब तो गौं निकल गई, वे हमसे क्यों बोलेंगे? **गौं निकालना** = काम निकालना। प्रयोजन सिद्ध करना। स्वार्थ साधन करना। मतलब पूरा करना। **गौं पड़ना** = काम पड़ना। ग़रज़ होना। दरकार होना। आवश्यकता होना। उ०—हमें ऐसी क्या गौं पड़ी है जो हम उनके यहाँ जाँय।

विशेष—दे० "गवँ"।

गौंच—संज्ञा पुं० दे० "कौंच"।

गौंट—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो उत्तर और पश्चिम भारत में अधिकता से होता है और जिसकी लकड़ी पीलापन लिए बहुत कड़ी होती है।

गौंटा†—संज्ञा पुं० [हिं० गाँव + टा (प्रत्य०)] (१) वह खर्च जो किसी गाँव में प्रजा के विशेष लाभ के लिये या परोपकार धर्म्म आदि के विचार से जमींदार की ओर से किया जाया।

विशेष—प्रायः गुमाश्तों को जमींदारों की ओर से इस प्रकार के खर्च करने का अधिकार होता है और कभी कभी ख़र्च होने के बाद उसका कुछ अंश प्रजा से भी वसूल किया जाता है।

(२) छोटा गाँव।

गौंहाँ†—वि० [हिं० गाँव + हा (प्रत्य०)] गाँव संबंधी। गाँव का। देहाती।

गौ—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय। गैया।

विशेष—दे० "गो"।

गौख†—संज्ञा स्त्री० [सं० गवाक्ष] (१) वह छोटी खिड़की जो दीवार या छत में हवा और रोशनी आने के लिये बनाई जाती है। झरोखा। (२) वह दालान या बरामदा जो प्रायः देहाती मकानों के दरवाजे पर बैठने आदि के लिये बना रहता है। चौपाल। उ०—बनी गौख बेजौख की मौख सोहैं। पताकानु केकी पिकी ही अरौहैं।—सूदन।

गौखा†—संज्ञा पुं० [सं० गवाक्ष] झरोखा। गौख।
संज्ञा पुं० [हिं० गौ = गाय + खाल] गाय का चमड़ा।

गौखी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० गौखा] जूता।

गौगा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) शोर। गुल गपाड़ा। हल्ला। (२) अफ़वाह। जनश्रुति।

गौचरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गौ + चरना] गाय चराने का कर जो जिमींदार अपनी प्रजा से लेता है और जिसके बदले में वह गायों के चरने के लिये कुछ भूमि छोड़ देता है।

गौड़—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वंग देश का एक प्राचीन विभाग जो किसी के मत से मध्य बंगाल से उड़ीसा की उत्तरी सीमा तक और किसी के मत से वर्त्तमान बर्दवान के आस पास था।

विशेष—कूर्मपुराण और लिंगपुराण से जाना जाता है कि वर्त्तमान गोंडा के आस पास का प्रदेश जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी गौड़ देश कहलाता था। हितोपदेश में कौशांबी को भी इसी गौड़ प्रदेश के अंतर्गत लिखा है। दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी के चेदि राजाओं के ताम्रपत्रों और शिलालेखों से पता लगता है कि वर्त्तमान गोंड़वाना के पास का देश भी गौड़ ही कहलाता था। राजतरंगिणी में "पंचगौड़" शब्द आया है जिससे जान पड़ता है कि किसी समय पाँच गौड़ देश थे। स्कंदपुराण के सह्याद्रि खंड में जिन जिन स्थानों के ब्राह्मणों को पंचगौड़ के अंतर्गत लिया है वे ऊपर बतलाये हुए स्थानों से भिन्न हैं।

(२) स्कंदपुराण के सह्याद्रि खंड के अनुसार ब्राह्मणों की एक कोटि जिसमें सारस्वत, कान्यकुब्ज, उत्कल, मैथिल और गौड़ सम्मिलित हैं। (३) ब्राह्मणों की एक जाति जो दिल्ली के आस पास तथा राजपूताने में पाई जाती है। (४) गौड़ देश का निवासी। (५) ३६ प्रकार के राजपूतों में से एक जो उत्तर-पश्चिम भारत में अधिकता से पाये जाते हैं।

विशेष—टाड साहब का मत है कि बंगालौड़ के गराजा इसी कोटि के राजपूत थे।

(६) कायस्थों का एक भेद। (७) संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह श्रीराग का पुत्र माना जाता है और इसके गाने का समय तीसरा पहर और संध्या है। इसके कान्हड़ा गौड़, केदार गौड़, नारायण गौड़, रीति गौड़ आदि अनेक भेद हैं।

गौड़नट—संज्ञा पुं० गौड़ और नट के योग से बना हुआ एक संकर राग। (संगीत)

गौड़पाद—संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी शंकराचार्य्य के गुरु के गुरु जिन्होंने मांडूक्योपनिषद् पर कारिका लिखी थी और सायण-कारिका का भाष्य किया था।

गौड़मल्लार—संज्ञा पुं० गौड़ और मल्लार के योग से बना हुआ एक संकर राग जो प्रायः वर्षा ऋतु में रात के दूसरे पहर में गाया जाता है। कुछ लोग इसे मल्लार राग की रागिनी मानते हैं।

गौडसारंग—संज्ञा पुं० गौड़ और सारंग के योग से बना हुआ एक संकर राग जो ग्रीष्म ऋतु में दोपहर से पहले गाया जाता है। इसमें ऋषभ वादी और मध्यम संवादी होता है और यह वीर और शांतरस के वर्णन के लिये अधिक उपयुक्त समझा जाता है।

गौड़िया†—वि० [सं० गौड़ + इया (प्रत्य०)] गौड़ देश का। गौड़-देशसंबंधी।

यौ०—गौड़िया संप्रदाय = चैतन्य महाप्रभु का चलाया हुआ वैष्णव संप्रदाय।

गौड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की मदिरा जो गुड़ से बनती है। वैद्यक में इसे वात और पित्तनाशक, बल और कांति-वर्द्धक, दीपन, पथ्य और रुचिकर कहा है। (२) काव्य में एक प्रकार की रीति या वृत्ति जिसे परुषा भी कहते हैं। यह ओज-गुण-प्रकाशक मानी जाती है और इसमें टवर्ग, संयुक्त अक्षर अथवा समास अधिक आते हैं। जैसे, (क) कटकटहिं मर्कट विकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं। (ख) वक्र वक्र करि पुच्छ करि, रुष्ट ऋच्छ कपि गुच्छ। सुभट ठट्ट घन घट्ट सम, मर्द्दहिं रच्छ न तुच्छ। (ग) वंदौं रघुकुल कमल-दिवाकर। (३) संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो रात के पहले पहर में गाई जाती है। कुछ लोग इसे कल्याण राग का एक भेद मानते हैं। यह वीर और श्रृंगार रस के वर्णन के लिये बहुत उपयुक्त होती है।

गौड़ेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णचैतन्य स्वामी जिन्हें गौरांग महाप्रभु भी कहते है।

गौण—वि० [सं०] (१) जो प्रधान या मुख्य न हो। (२) सहायक। संचारी।

गौणचांद्र—संज्ञा पुं० [सं०] दो प्रकार के चांद्र मासों में से एक जो किसी मास की कृष्ण प्रतिपदा से उस मास की पूर्णिमा तक होता है। इसका मान प्रायः उत्तर भारत में ही अधिक है।

गौणिक—वि० [सं०] (१) गुणद्योतक। जिससे वाच्य का गुण प्रकाशित हो। (२) सत, रज, तम आदि गुणों से संबंध रखनेवाला। (३) गुणी।

गौणी-वि० स्त्री० [सं०] अप्रधान। साधारण। जो मुख्य न मानी जाय।
संज्ञा स्त्री० अस्सी प्रकार की लक्षणाओं में से एक जिसमें केवल किसी एक वस्तु का गुण लेकर दूसरे में आरोपित किया जाता है। जैसे, कल्पवृक्ष हैं अवधपति जगजाहर यशवंत। इस पद में कल्पवृक्ष के मुख्य गुण उदारता को अवधपति में आरोपित करके उसी के द्वारा उनका जगत में यशस्वी होना प्रकट किया गया है। यहाँ "कल्पवृक्ष" शब्द में गौणी लक्षण है।

गौतम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोतम ऋषि के वंशज। (२) न्याय शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य्य और प्रणेता एक ऋषि जो ईसा से प्रायः ६०० वर्ष पहले हुए थे। (३) रामायण, महाभारत और पुराणों आदि के अनुसार एक ऋषि जिन्होंने अपनी स्त्री अहल्या को इंद्र के साथ अनुचित संबंध करने के कारण शाप देकर पत्थर की बना दिया था और जिसका उद्धार भगवान रामचंद्र ने किया था। (४) बुद्ध देव का एक नाम। (५) सप्तर्षि मंडल के तारात्रों में से एक। (६) एक पर्वत का नाम जो नासिक के पास है और जहाँ से गोदावरी नदी निकलती है। (७) क्षत्रियों का एक भेद। (८) भूमिहारों का एक भेद। (९) एक ऋषि जिन्होंने एक स्मृति बनाई है।

गौतमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गौतम ऋषि की स्त्री, अहल्या। (२) कृपाचार्य्य की स्त्री जो प्रसिद्ध तपस्विनी थी। (३) गोदावरी नदी जो गौतम नामक पर्वत से निकलती है। (४) गौतम ऋषि की बनाई हुई स्मृति। (५) दुर्गा का एक नाम।

गौद, गौदा-संज्ञा पुं० दे० "घौद"।

गौदान-संज्ञा पुं० दे० "गोदान"।

गौदुमा-वि० [हिं० गौ + दुम + आ (प्रत्य०)] गाय की पूँछ के आकार का। जो एक ओर अधिक मोटा हो और दूसरी ओर क्रमशः कम होता जाय। उतार चढ़ाव। गावदुम।

गौन†-संज्ञा पुं० (१) दे० "गमन"। (२) दे० "गाउन"।

गौनई†-संज्ञा स्त्री० [सं० गायन] गान। संगीत।

गौनहाई†-वि० [हिं० गौना + हाई (प्रत्य०)] जिसका गौना हाल में हुआ हो। जो गौना होने के बाद ससुराल में पहले पहल आई हो। उ०—एती चतुराई धौं कहाँ ते पाई रघुनाथ हैं तो देखि रीझि रही गौनहाई तिय को।—रघुनाथ।

गौनहार-संज्ञा स्त्री० [हिं० गौना + हार (प्रत्य०)] वह स्त्री जो दुलहिन के साथ उसके ससुराल जाय।

गौना-संज्ञा पुं० [सं० गमन] विवाह के बाद की एक रसम जिसमें वर अपने ससुराल में जाता और कुछ रीति रस्म पूरी कर के वधू को अपने साथ घर ले आता है। द्विरागमन। मुकलावा। उ०—तुलसी जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी गौतम सिधारे गृह गौनो सिवाइ कै।—तुलसी।
मुहा०—गौना देना = वधू को वर के साथ पहले पहल ससुराल भेजना। गौना लाना = वर का अपनी ससुराल जाकर वधू को अपने साथ ले आना।
क्रि० प्र०—लेना।—माँगना।
विशेष—पूरब में "गौने जाना" और "गौने आना" आदि भी बोलते हैं।

गौमुख-संज्ञा पुं० दे० "गोमुख"।

गौमुखी-संज्ञा स्त्री० [हिं० गो + मुख + ई० (प्रत्य०)] गौ के मुँह के आकार की बनी हुई थैली जिसमें माला रख कर जप करते हैं।
विशेष-दे० "गोमुखी"।

गौमेद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रत्न जो गोमूत्र के रंग का होता है।

गौर-वि० [सं०] (१) गोरे चमड़ेवाला। गोरा। (२) श्वेत। उज्ज्वल। सफ़ेद।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल रंग। (२) पीला रंग। (३) चंद्रमा। (४) धव नाम का पेड़। (५) सोना। (६) याज्ञवल्क्य के अनुसार एक प्रकार का बहुत छोटा मान जो तौलने के काम आता और प्रायः तीन सरसों के बराबर होता है। (७) केसर। (८) एक प्रकार का मृग जिसके खुर बीच से फटे नहीं होते। (९) सफ़ेद सरसों। (१०) चैतन्य महाप्रभु का एक नाम। (११) एक पर्वत जो ब्रह्मांडपुराण के अनुसार कैलास के उत्तर में है।
संज्ञा पुं० दे० "गौड़"।

ग़ौर-संज्ञा पुं० [अ०] (१) सोच विचार। चिंतन। (२) ख़याल। ध्यान। उ०—सो दीसै सब ठौर व्याप रहो मन माहिं जो। सज्जन करि कै ग़ौर वाही को निज जानिये।—रसनिधि।

गौरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोराई। गोरापन। (२) सफेदी।

गौरग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक देश जो कूर्म्म विभाग के मध्य में है।

गौरव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़प्पन। महत्त्व। (२) गुरुता। भारीपन। (३) सम्मान। आदर। इज़्ज़त। (४) उत्कर्ष। (५) अभ्युत्थान।

गौरवा-संज्ञा पुं० [?] चटक पक्षी। चिड़ा।

गौरशाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महुआ।

गौरशालि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शालिधान्य।

गौरसुवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साग जो चित्रकूट के तर स्थानों में अधिकता से होता है। इसके पत्ते छोटे और सुनहले होते हैं और हाथ में लेकर मलने से उसके बहुत से छोटे छोटे टुकड़े हो जाते हैं जिनमें से बहुत अच्छी गंध निकलती है। वैद्यक में यह शीतल और त्रिदोष, ज्वर तथा थकावट दूर करनेवाला माना गया है।

गौरांग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) चैतन्य महाप्रभु।

गौरा—संज्ञा स्त्री० [सं० गौर] (१) गोरे रंग की स्त्री। (२) पार्वती। गिरिजा। (३) हल्दी। (४) एक रागिनी जिसे कुछ लोग श्रीराग की स्त्री मानते हैं।

गौरार्द्रक—संज्ञा पुं० [सं०] अफीम, संखिया, कनेर आदि स्थावर विष।

गौरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आंगिरस ऋषि।
संज्ञा स्त्री० दे० "गौरी"।

गौरिया—संज्ञा स्त्री० [?] (१) काले रंग का एक प्रकार का जलपक्षी जिसका सिर भूरा और गर्दन सफ़ेद होती है। ऋतुभेदानुसार इसकी चोंच का रंग बदला करता है। (२) मिट्टी का बना हुआ छोटा हुक्का। (३) एक प्रकार का मोटा कपड़ा।

गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोरे रंग की स्त्री। (२) पार्वती। गिरिजा।
विशेष—इस अर्थ में गौरी शब्द के बाद पतिवाची शब्द लगाने से "शिव" और पुत्रवाची शब्द लगाने से "गणेश" या कार्त्तिकेय अर्थ होता है।
(३) आठ वर्ष की कन्या। (४) हल्दी। (५) दारुहल्दी। (६) तुलसी। (७) गोरोचन। (८) सफ़ेद रंग की गाय। (९) मजीठ। (१०) सफ़ेद दूब। (११) गंगा नदी। (१२) चमेली। (१३) सोन कदली। (१४) प्रियंगु नाम का वृक्ष। (१५) पृथिवी। (१६) बुद्ध की एक शक्ति का नाम। (१७) शरीर की एक नाड़ी। (१८) एक बहुत प्राचीन नदी जो पूर्व काल में भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर थी और जिसका वर्णन वेदों और महाभारत में आया है। (१९) गुड़ से बनी हुई शराब। गौड़ी।

गौरीचंदन—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन।

गौरीज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अभ्रक। (२) कार्त्तिकेय। (३) गणेश।

गौरीपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] प्रियंगु नाम का वृक्ष।

गौरीबेंत—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का बेंत जिसे पक्का बेंत भी कहते हैं।

गौरीललित—संज्ञा पुं० [?] हड़ताल।

गौरीशंकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव। शिव। (२) हिमालय पर्वत की सब से ऊँची चोटी का नाम।

गौरीसर—संज्ञा पुं० [?] हंसराज नाम की बूटी। समलपत्ती।

गौरैया†—संज्ञा स्त्री० दे० "गौरिया"।

गौला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौरी। पार्वती। गिरिजा।

गौशाला—संज्ञा पुं० दे० "गोशाला"।

गौशृंग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सामगान।

गौसम—संज्ञा पुं० [हिं० कोसम] कोसम नाम का पेड़।

गौहर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मोती। मुक्ता।

ग्यांबिर—संज्ञा पुं० [देश०] कीकर की जाति का एक पेड़ जिसके पत्तों और लकड़ियों से पपड़िया खैर बनाया जाता है।

ग्यान†—संज्ञा पुं० दे० "ज्ञान"।

ग्यारस—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्यारह] एकादशी तिथि।

ग्यारह—वि० [सं० एकादश, प्रा० एगारस] दस और एक।
संज्ञा पुं० दस और एक की सूचक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—११।

ग्रंथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुस्तक। किताब।
यौ०—ग्रंथकार। ग्रंथकर्त्ता। ग्रंथसाहब। ग्रंथसंधि आदि।
(२) ग्रंथन। गाँठ देना या लगाना। (३) धन।

ग्रंथकर्त्ता, ग्रंथकार—संज्ञा पुं० [सं०] पुस्तक बनाने या लिखनेवाला। ग्रंथ की रचना करनेवाला।

ग्रंथचुंबक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथ + चुंबक = चूमनेवाला] जो किसी विषय का पूर्ण विद्वान न हो। जो ग्रंथों का केवल पाठ मात्र कर गया हो, उसके विषय को समझा न हो। अल्पज्ञ। उ०—साधारण योग्यतावाले ग्रंथचुंबकों की उसके सामने मुँह खोलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी।—सौ अजान एक सुजान।

ग्रंथचुंबन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथ + चुंबन] पुस्तक का पाठ मात्र। किताब को सरसरी तौर पर पढ़ना।

ग्रंथन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो चीज़ों को इस प्रकार जोड़ना कि उनके बीच में गाँठ पड़ जाय। (२) जोड़ना। (३) गूँथना।

ग्रंथसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रंथ का विभाग। जैसे, सर्ग, परिच्छेद, अध्याय, अंक, पर्व्व आदि।

ग्रंथसाहब—संज्ञा पुं० [हिं० ग्रंथ + साहब] सिक्खों की धर्म्म-पुस्तक जिसमें सब गुरुओं के उपदेश एकत्रित किए हुए हैं।

ग्रंथालय—संज्ञा पुं० [सं०] पुस्तकालय।

ग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाँठ। (२) बंधन (३) मायाजाल। (४) ग्रंथिपर्ण नाम का वृक्ष। (५) एक प्रकार का रोग जो खून बिगड़ जाने के कारण होता है और जिसमें गोल गाँठें की तरह सूजन हो जाती है। ये गाँठें प्रायः पक जाती हैं और चिरवानी पड़ती हैं। (६) आलू। (७) भद्रमोथा। (८) कुटिलता।

ग्रंथिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पिपरामूल। (२) गठिवन या ग्रंथिपर्ण नामक वृक्ष। (३) गुग्गुल। (४) करीर।

ग्रंथित—वि० [सं० ग्रंथन] (१) गूँथा हुआ। (२) गाँठ दिया हुआ। जिसमें गाँठ लगी हो। उ०—(क) जैसो कियो तुम्हारे प्रभु अलि तैसो भयो तत्काल। ग्रंथित सूत धरत तेहि ग्रीवा जहाँ धरत बनमाल।—सूर। (ख) मंगलमय दोउ अंग मनोहर ग्रंथित चूनरी पीत पिछौरी।—तुलसी।

ग्रंथिदूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाडर दूब।

ग्रंथिपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] चोरक नाम का गंधद्रव्य।

ग्रंथिपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] गठिवन का पेड़।

ग्रंथिपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गाडर दूब।

ग्रंथिफल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कैथ का पेड़। (२) मैनफल का पेड़।

ग्रंथिबंधन–संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के समय वर और कन्या के कपड़ों के कोनों को परस्पर गाँठ देकर बाँधने की क्रिया। गाँठबंधन।

ग्रंथिभेद–संज्ञा पुं० [सं०] गिरहकट। गँठकटा।

ग्रंथिमूल–संज्ञा पुं० [सं०] सलगम, गाजर, मूली आदि मूल जो गाँठों के रूप में ज़मीन में अंदर होते हैं।

ग्रंथिमूला– संज्ञा स्त्री० [सं०] माला दूब।

ग्रंथिल–वि० [सं०] गाँठदार। गँठीला।

संज्ञा पुं० (१) करील वृक्ष। (२) पिपरामूल। (३) अदरक। आदी। (४) कँटाय नाम का कँटीला वृक्ष जिसकी लकड़ी के प्राचीन काल में यज्ञपात्र बनते थे। इसकी पत्तियाँ छोटी और फल बैर के बराबर गोल होते हैं जो दवा के काम आते हैं। (५) चौराई का साग। (६) आलू। (७) चोरक नाम का ग्रंध-द्रव्य।

ग्रंथिला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाडर दूब। (२) माला दूब। (३) भद्रमोथा।

ग्रंथीक–संज्ञा पुं० [सं० [पिपरामूल।

ग्रंस†–संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथि = कुटिलता] कुटिलता। छल कपट। उ०—सखी री मथुरा में द्वै ग्रंस। वै अक्रूर ए ऊधौ सजनी जानत नीके ग्रंस।—सूर

ग्रसन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भक्षण। निगलना। (२) पकड़। ग्रहण। (३) खाने के लिये पकड़ना। बुरी तरह पकड़ना। इस प्रकार चंगुल में फाँसना कि जिसमें छूटने न पावे। (४) ग्रास। (५) एक असुर का नाम। (६) ग्रहण। (७) दस प्रकार के ग्रहणों में से एक जिसमें चंद्र या सूर्य मंडल एक पाद, अर्द्ध या त्रिपाद ग्रस्त हो। फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण का फल घमंडी राजाओं का धननाश और घमंडी देशों का पीड़ित होना है।

ग्रसना–क्रि० स० [सं० ग्रसन] (१) बुरी तरह पकड़ना। इस प्रकार पकड़ना कि छूटने न पावे। उ०—टेढ़ जानि शंका सब काहू। वक्र चंद्रमा ग्रसै न राहू।—तुलसी। (२) सताना।

ग्रसपति–संज्ञा पुं० [सं०] एक सीधी पंक्ति में पत्थरों पर खोदी हुई मनुष्य-मुख की आकृतियाँ। इस का व्यवहार प्राचीन काल में देवमंदिरों में शोभा के लिये होता था।

ग्रसित–वि० दे० "ग्रस्त"।

ग्रस्त–वि० [सं०] (१) पकड़ा हुआ। (२) पीड़ित। (३) खाया हुआ।

ग्रस्तास्त–संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण लगने पर चंद्रमा या सूर्य्य का बिना मोक्ष हुए अस्त होना।

ग्रस्तोदय–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा या सूर्य्य का उस अवस्था में उदय होना जब कि उन पर ग्रहण लगा हो।

ग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वे तारे जिनकी गति, उदय और अस्त-काल आदि का पता प्राचीन ज्योतिषियों ने लगा लिया था।

विशेष—(क) प्राचीन काल के ज्योतियों में इन ग्रहों की संख्या के संबंध में कुछ मतभेद था। बाराहमिहिर ने केवल सात ग्रह माने हैं, यथा—सूर्य्य, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि। फलित ज्योतिष में इन सात ग्रहों के अतिरिक्त राहु और केतु नामक दो और ग्रह माने जाते हैं और अनेक मांगलिक अवसरों पर इन नौ ग्रहों का विधिवत् पूजन होता है। एक विद्वान् के मत से ग्रहों की संख्या दस है पर यह कहीं मान्य नहीं है। अधिकांश लोग फलित ज्योतिष के अनुसार ग्रहों की संख्या नौ ही मानते हैं और इसीलिये "ग्रह" शब्द ९ की संख्या का बोधक भी है। फलित ज्योतिष में प्रत्येक ग्रह को कुछ विशिष्ट देशों, जातियों, जीवों और पदार्थों का स्वामी माना है और उनका वर्ण-विभाग किया गया है। उनमें गुरु और शुक्र को ब्राह्मण, मंगल और रवि को क्षत्रिय, बुध और चंद्रमा को वैश्य और शनि, राहु तथा केतु को शूद्र कहा गया है। मंगल और सूर्य्य का रंग लाल, चंद्रमा और शुक्र का रंग सफ़ेद, गुरु और बुध का रंग पीला और शनि, राहु तथा केतु का रंग काला बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त फलित ज्योतिष में जो कुंडली बनाई जाती है उसमें प्रत्येक ग्रह की दूसरे ग्रहों पर एक विशेष रूप से "दृष्टि" भी होती है। शुभ ग्रह की दृष्टि का फल शुभ और अशुभ ग्रह की दृष्टि का फल अशुभ होता है। यह दृष्टि चार प्रकार की होती है—पूर्ण, त्रिपाद, अर्द्ध और एक पाद। पूर्ण दृष्टि का फल पूर्ण, त्रिपाद का तीन चतुर्थांश, अर्द्ध का आधा और एक पाद का एक चतुर्थांश होता है। इस दृष्टि के संबंध में फलित ज्योतिष के ग्रंथों में कहा गया है कि प्रत्येक ग्रह अपने स्थान से तीसरे और दसवें घरों के ग्रहों को एक पाद, पाँचवें और नवें घरों के ग्रहों को अर्द्ध, चौथे और आठवें घरों के ग्रहों को त्रिपाद और सातवें घर के ग्रहों को पूर्ण दृष्टि से देखता है। (ख) "ग्रह" शब्द में पति या पतिवाची कोई दूसरा शब्द जोड़ देने से उसका अर्थ "सूर्य्य" हो जाता है।

(२) आकाशमंडल में वह तारा जो अपने सौर जगत् में सूर्य्य की परिक्रमा करे। एक निश्चित कक्षा पर किसी सूर्य्य की परिक्रमा करनेवाला तारा।

विशेष—हमारे सौर जगत् में सूर्य्य से क्रमानुसार अंतर पर बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, युरेनस और नेपच्यून ये आठ बड़े या प्रधान ग्रह हैं। इनके अतिरिक्त, मंगल

और बृहस्पति के मध्य में बहुत से छोटे छोटे ग्रह हैं जिनमें से अब तक ४६० से अधिक ग्रहों का होना प्रमाणित हो चुका है। ये सब ग्रह प्रायः एक ही समतल पर हैं और युरेनस और नेपच्यून के अतिरिक्त शेष सब ग्रह अपनी अपनी कक्षा पर सूर्य्य की परिक्रमा करते हैं। नेपच्यून और युरेनस का मार्ग कुछ भिन्न है। इन ग्रहों की गति भी अलग अलग है। किसी किसी बड़े ग्रह के साथ उपग्रह भी हैं जो उसी समतल पर अपनी कक्षा में अपने ग्रह की परिक्रमा करते हैं जैसे, हमारी इस पृथिवी के साथ चंद्रमा। इसी प्रकार नेपच्यून के साथ एक, मंगल के साथ दो, युरेनस और बृहस्पति के साथ चार चार और शनि के साथ आठ उपग्रह या चंद्रमा हैं। इनमें से कुछ उपग्रहों का मार्ग और उनकी गति भी साधारण से भिन्न है। प्रत्येक ग्रह सूर्य्य से कुछ निश्चित अंतर पर है। साधारणतः स्थूल रूप से, सूर्य्य से ग्रहों का आपेक्षिक अंतर जानने का एक बहुत सरल उपाय यह है—० ३ ६ १२ २४ ४८ ९६ १९२ इनमें से प्रत्येक संख्या में ४ जोड़ दो तो वही संख्या आपेक्षिक अंतर सूचित करनेवाली होगी—

४	७	१०	१६	२८	५२	१००	१९६
बुध	शुक्र	पृथ्वी	मंगल	०	बृहस्पति	शनि	युरेनस

अर्थात् यदि सूर्य्य और बुध का अंतर ४ मान लिया जाय तो सूर्य्य से शुक्र का अंतर लगभग ७, पृथिवी का १०, मंगल का १६ और शेष ग्रहों का भी इसी प्रकार होगा। प्रत्येक ग्रह का सूर्य्य से ठीक अंतर, व्यास और परिक्रमा-काल नीचे लिखे कोष्टक से विदित होगा।

ग्रह	सूर्य्य-परिक्रमा-काल (दिन)	सूर्य्य से अंतर (मील)	व्यास (मील)
बुध	८८	३६००००००	३०००
शुक्र	२२५	६७००००००	७०००
पृथिवी	३६५	९३००००००	८०००
मंगल	६८७	१४१००००००	४०००
बृहस्पति	४३३३	४८२००००००	८८०००
शनि	१०७५९	८८३००००००	७५०००
युरेनस	३०६८७	१७७८००००००	३००००
नेपच्यून	६०१२७	२७८५००००००	३७०००

(३) नौ की संख्या। (४) ग्रहण करना। लेना। (५) अनुग्रह। कृपा। (६) चंद्रमा या सूर्य्य का ग्रहण। (७) वह पात्र जिससे यज्ञ में देवताओं को सोम रस का हविष्य दिया जाता है। (८) राहु। (९) स्कंद, शकुनी आदि रोग जो बहुत ही छोटे बालकों को हो जाते हैं और जिन्हें लोग भूत प्रेत आदि का उपद्रव समझते हैं। बाल-ग्रह।

†वि० बुरी तरह पकड़ने या तंग करनेवाला। दिक् करनेवाला।

ग्रहक—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राहक। ग्रहण करनेवाला।

ग्रहकल्लोल—संज्ञा पुं० [सं०] राहु नामक ग्रह।

ग्रहकुष्मांड—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार की देवयोनि।

ग्रहगोचर—संज्ञा पुं० दे० "गोचर"।

ग्रहचिंतक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी।

ग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य, चंद्र या किसी दूसरे आकाशचारी पिंड की ज्योति का आवरण जो दृष्टि और उस पिंड के मध्य में किसी दूसरे आकाशचारी पिंड के आ जाने के कारण उसकी छाया पड़ने से अथवा उस पिंड और उसे ज्योति पहुँचानेवाले पिंड के मध्य में आ पड़नेवाले किसी अन्य पिंड की छाया पड़ने से होता है। जैसे, चंद्र और (उसे ज्योति पहुँचानेवाले) सूर्य्य के मध्य में पृथिवी के आ जाने के कारण चंद्रग्रहण और सूर्य्य तथा पृथिवी के मध्य में चंद्रमा के आ जाने के कारण सूर्य्यग्रहण का होना।

विशेष—पुराणानुसार सूर्य्य या चंद्र ग्रहण का मुख्य कारण राहु नामक राक्षस का उक्त पिंडों को ग्रसने या खाने के लिये दौड़ना है। (देखो "राहु") इसी लिये इस देश में ग्रहण लगने के समय, सूर्य्य या चंद्रमा को इस विपत्ति से मुक्त कराने के अभिप्राय से लोग दान, पुण्य, ईश्वर-प्रार्थना तथा अन्य अनेक प्रकार के उपाय करते हैं। ग्रहण लगने और छूटने के समय स्नान करने की प्रथा भी यहाँ है। पर प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों ने ग्रहण का मुख्य कारण उक्त छाया को ही माना है और किसी न किसी रूप में आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों के सिद्धांत के समान ही उसके कारण का निरूपण किया है। सूर्य्यग्रहण केवल अमावस्या के दिन और चंद्रग्रहण केवल पूर्णिमा की रात को लगता है। सूर्य्य और चंद्र ग्रहण एक वर्ष में कम से कम दो बार और अधिक से अधिक सात बार लगते हैं। पर साधारणतः एक वर्ष में तीन या चार ही ग्रहण लगते हैं और सात ग्रहण बहुत ही कम होते हैं। प्रायः एक समय में ग्रहण पृथिवी के किसी विशिष्ट भाग में ही दिखाई पड़ता है, समस्त भूमंडल पर नहीं। ग्रहण में कभी तो सूर्य्य या चंद्र आदि का कुछ अंश ही आवृत होता है और कभी पूरा मंडल। जिस ग्रहण में पूरा मंडल आवृत हो जाय उसे सर्वग्रास या खग्रास कहते हैं। फलित ज्योतिष में भिन्न भिन्न अवस्थाओं में ग्रहण लगने के भिन्न भिन्न फल आदि भी माने जाते हैं। अवस्था या स्थिति-भेद से ग्रहण दस प्रकार के माने गए हैं—सव्य, अपसव्य, लेह, ग्रसन, निरोध, अवमर्द, आरोह, आघ्रात,

मध्यतम और तमोन्त्य । इसी प्रकार ग्रहण का मोक्ष भी दस प्रकार का माना गया है—हनुभेद (दक्षिण और वाम दो प्रकार के), कुक्षिभेद (दक्षिण और वाम दो प्रकार के), पायुभेद (दक्षिण और वाम दो प्रकार के), संच्छर्दन, जरण, मध्यविदारण और अंतविदारण । हिंदू ग्रहण लगने से कुछ पहर पूर्व और कुछ पहर उपरांत उसकी छाया मानते हैं और छाया-काल में अन्न जल ग्रहण नहीं करते । सूर्य्य और चंद्रमा के अतिरिक्त दूसरे ग्रहों को भी ग्रहण लगता है पर उसका इस पृथिवी के निवासियों से कोई संबंध नहीं है ।

क्रि० प्र०—लगना ।—छूटना ।

(२) पकड़ने, लेने या हस्तगत करने की क्रिया । (३) स्वीकार । मंजूरी । (४) अर्थ । तात्पर्य्य । मतलब ।

ग्रहणि, ग्रहणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुश्रुत के अनुसार उदर में पक्वाशय और आमाशय के बीच की एक नाड़ी जो अग्नि या पित्त का प्रधान आधार है । (२) इस नाड़ी के दूषित होने से उत्पन्न एक प्रकार का रोग जिसमें खाया हुआ पदार्थ पचता नहीं और ज्यों का त्यों दस्त की राह से निकल जाता है ।

विशेष—दे० "संग्रहणी" ।

यौ०—ग्रहणीहर = लौंग ।

ग्रहणीय—वि० [सं०] ग्रहण करने योग्य । जो ग्रहण किया जा सके ।

ग्रहदशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोचर ग्रहों की स्थिति । (२) ग्रहों की स्थिति के अनुसार किसी मनुष्य की भली वा बुरी अवस्था । (३) अभाग्य । कमबख्ती ।

क्रि० प्र०—आना ।—छाना ।—बीतना ।

ग्रहदाय—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म समय के ग्रहों की स्थिति के अनुसार किसी जातक की आयु । उम्र ।

ग्रहदृष्टि—संज्ञा स्त्री० दे० "ग्रह" (१) का विशेष (क)" ।

ग्रहद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] काकड़ा सींगी ।

ग्रहनाश—संज्ञा पुं० [सं०] सतिवन नाम का पेड़ ।

ग्रहनेम—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहनेमि] आकाश । (डिं०)

ग्रहनेमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा के मार्ग का वह भाग जो मूल और मृगशिरा नक्षत्रों के बीच में पड़ता है । (२) चंद्रमा । (३) आकाश । (डिं०)

ग्रहपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य । (२) शनि । (३) आक का पेड़ ।

ग्रहपुष—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य ।

ग्रहभीतिजित्—संज्ञा पुं० [सं०] चीड़ नाम का गंधद्रव्य ।

ग्रहमैत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वर और कन्या के ग्रहों के स्वामियों की मित्रता या अनुकूलता जिसका विचार विवाह के समय होता है ।

ग्रहमैत्री—संज्ञा स्त्री० दे० "ग्रहमैत्र" ।

ग्रहयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष और पुराणों के अनुसार ग्रहों की उग्रता या कोप संबंधी दोषों को दूर करने के लिये एक प्रकार का पूजन या यज्ञ ।

ग्रहयुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राशि के एकही अंश पर दो ग्रहों का एकत्र होना ।

ग्रहयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्यसिद्धांत के अनुसार बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि या मंगल में से किसी एक ग्रह का चंद्रमा के साथ, अथवा उक्त ग्रहों में से किसी दो ग्रहों का एक साथ एक राशि के एक अंश पर इस प्रकार एकत्र होना कि उस ग्रह पर ग्रहण लगा हुआ जान पड़े । फलित ज्योतिष के अनुसार इसका फल भयंकर होता है ।

ग्रहयुद्धभ—संज्ञा पुं० [सं०] वह नक्षत्र जिस पर कोई दो ग्रह एक साथ एकत्र हों ।

ग्रहयोग—संज्ञा पुं० दे० "ग्रहयुति" ।

ग्रहराज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य । (२) चंद्रमा । (३) बृहस्पति ।

ग्रहविप्र—संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल और दक्षिण में होनेवाले एक प्रकार के ब्राह्मण जो कुछ विशिष्ट क्रियाओं से ग्रहों के शुभाशुभ फल बतलाते हैं ।

ग्रहवेध—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रह की स्थिति आदि का जानना ।

ग्रहशृंगाटक—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार ग्रहों का एक प्रकार का योग जिसके अवस्थानुसार शुभ और अशुभ फल होते हैं ।

ग्रहसमागम—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के साथ मंगल, बुध आदि ग्रहों का योग ।

ग्रहस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] किसी राग में वह स्वर जिससे वह राग आरंभ होता है । (संगीत)

ग्रहाचार्य्य—संज्ञा पुं० दे० "ग्रहविप्र" ।

ग्रहाधार—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुव नक्षत्र । ध्रुवा ।

ग्रहावर्म्मन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राहु । (२) ग्रहयुद्ध ।

ग्रहाश्रय—संज्ञा पुं० दे० "ग्रहाधार" ।

ग्रहाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] भूतांकुश नामक वृक्ष ।

ग्रहीत—वि० दे० "गृहीत" ।

ग्रहीता—वि० पुं० [सं० गृहीतृ] लेनेवाला । ग्रहण करनेवाला । उ०—दाता और ग्रहीता दोऊ । दोहुन सम दिगतं नहिं कोऊ । —रघुराज ।

ग्रहीतव्य—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण करने के योग्य । ग्राह्य ।

ग्रहोपराग—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों का ग्रहण ।

ग्रह्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञपात्र ।

ग्रांडील—वि० [अं० गैंडियर] ऊँचे कद का । बहुत बड़ा या ऊँचा । जैसे, ग्रांडील हाथी, ग्रांडील जवान ।

ग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटी बस्ती । गाँव । (२) मनुष्यों के

रहने का स्थान। बस्ती। आबादी। जनपद। (३) समूह। ढेर। उ०—सिगरे राजसमाज के कहे गोत्र गुणग्राम। देश सुभाव प्रभाव अरु कुल बल बिक्रम नाम।—केशव।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द केवल यौगिक शब्दों के अंत में आता है। जैसे, गुणग्राम।

(४) शिव। (५) क्रम से सात स्वरों का समूह। सप्तक। (संगीत)

विशेष—संगीत में सुभीते के लिये षड्ज, मध्यम, और पंचम और किसी किसी के मत से षड्ज, मध्यम और गांधार नामक तीन ग्राम निश्चित कर लिए गए हैं जिन्हें क्रमशः नंद्यावर्त्त, सुभद्र और जीमूत भी कहते हैं और जिनके देवता क्रम से ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। प्रत्येक ग्राम में सात सात मूर्च्छनाएँ होती हैं। सा (षड्ज) से आरंभ करके (सा रे ग म प ध नि) जो सात स्वर हों उनके समूह को षड्ज ग्राम, म (मध्यम) से आरंभ करके (म प ध नि सा रे ग) जो सात स्वर हों उनके समूह को मध्यम ग्राम और इसी प्रकार गा (गांधार) वा प (पंचम) से आरंभ करके जो स्वर हों उनके समूह को गांधार अथवा पंचम (जैसी अवस्था हो) ग्राम मानते हैं। इनमें से पहले दो ग्रामों का व्यवहार तो इसी लोक में मनुष्यों द्वारा होता है पर तीसरे ग्राम का व्यवहार स्वर्ग लोक में नारद करते हैं। वास्तव में तीसरा ग्राम होता भी बहुत ऊँचा है और उसके स्वर केवल सितार, सारंगी, हारमोनियम आदि बाजों में ही निकल सकते हैं, मनुष्यों के गले से नहीं।

ग्रामकुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] पालतू मुरगा।

ग्रामकूट—संज्ञा पुं० [सं०] शूद्र।

ग्रामगेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

ग्रामणी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाँव का मालिक। (२) प्रधान। अगुआ। (३) विष्णु। (४) यक्ष। (५) नाऊ। हज्जाम।

संज्ञा स्त्री० (१) वेश्या। (२) नील का पेड़।

ग्रामणीसव—संज्ञा पुं [सं०] एक प्रकार का याग जो एक दिन में होता है।

ग्रामदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी एक गाँव में पूजा जानेवाला देवता। (२) गांव की रक्षा करनेवाला देवता।

विशेष—भारत के प्रायः प्रत्येक गाँव में एक न एक ग्रामदेवता होता है।

ग्रामपाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाँव का मालिक या स्वामी। (२) गाँव की रक्षा करनेवाला सैनिक या सेना।

ग्रामप्रेष्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो गाँव के सब लोगों की सेवा करता हो। मनु के अनुसार ऐसे मनुष्य को यज्ञ और श्राद्ध आदि कार्यों में सम्मिलित न करना चाहिए।

ग्रामभृत—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत से लोगों की सेवा करनेवाला मनुष्य। ऐसा मनुष्य यदि ब्राह्मण भी हो तो अब्राह्मण हो जाता है।

ग्राममुख—संज्ञा पुं० [सं०] बाजार। हाट।

ग्राममृग—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

ग्रामयाचक—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो ऊँच नीच सभी जाति के लोगों का पुरोहित हो। शातातपर के अनुसार ऐसा ब्राह्मण अपने धर्म्म और वर्ण से पतित होता है और महाभारत के अनुसार ऐसे ब्राह्मण को दान देने का कोई फल नहीं होता।

ग्रामवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेश्या। कसबी। रंडी। (२) पालकी का साग।

ग्रामसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता। उ०—चित्रमृग अमर गवै गण बिलोकि बन, ढील चटकीले ग्रामसिंह चले धाय कै।—रघुराज।

ग्रामाधान—संज्ञा पुं० [सं०] आखेट। मृगया। शिकार।

ग्रामिक—वि० [सं०] गाँव संबंधी। गांव का।

संज्ञा पुं० वह मनुष्य जिसे गाँववाले अपनी रक्षा के लिये अपना मुखिया चुनें।

ग्रामीण—वि० [सं०] देहाती। गँवार।

संज्ञा पुं० (१) मुरगा। (२) कौवा। (३) सूअर। (४) कुत्ता।

ग्रामीणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नील का पेड़। (२) पालकी का साग।

ग्रामोफोन—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का बाजा जिसमें गीत आदि भरे और इच्छानुसार समय समय पर सुने जा सकते हैं।

विशेष—इस बाजे में कुछ विशिष्ट द्रव्यों से बने एक प्रकार के गोल तवे पर, जिसे चूड़ी कहते हैं, सूई लगे हुए एक यंत्र की सहायता से सब प्रकार के बोले हुए वाक्य या गाए हुए गीत आदि एक विशेष रूप से अंकित हो जाते हैं और उन अंकित वाक्यों या गीतों को जब इच्छा हो, विद्युत् उत्पन्न करनेवाले एक दूसरे यंत्र की सहायता से सुन सकते हैं।

ग्राम्य—वि० [सं०] (१) गाँव से संबंध रखनेवाला। ग्रामीण। (२) बेवकूफ़। मूढ़। (३) प्राकृत। असली।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का रतिबंध। (२) काव्य का एक दोष। वह काव्य जिसमें गँवारू शब्दों की अधिकता हो अथवा जिसमें गँवारू विषयों का वर्णन हो, इस दोष से दूषित समझा जाता है। (३) अश्लील शब्द या वाक्य। (४) मैथुन। स्त्री-प्रसंग। (५) मिथुन राशि। (६) गधा, घोड़ा, खच्चर, बैल आदि पशु जो पाले जाते और गाँवों में रहते हैं।

ग्राम्यकुंकुम—संज्ञा पुं० [सं०] कुसुंब।

ग्राम्यदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] दे० "ग्रामदेवता"।

ग्राम्यधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन। स्त्रीप्रसंग।

ग्राम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नील का पेड़। (२) तुलसी।

ग्राव—संज्ञा पुं० [सं० ग्रावन] (१) पत्थर। (२) ओला। बिनौरी। (३) पर्वत। पहाड़।

ग्रावस्तुत्—संज्ञा पुं० [सं०] सोलह ऋत्विजों में से तेरहवां ऋत्विज जिसे अच्छावाक भी कहते हैं।

ग्रावहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में एक ऋत्विक् जिसके हाथ में अभिषव का पत्थर रहता है।

ग्रावायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रवर का नाम।

ग्रास—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उतना भोजन जितना एक बार मुँह में डाला जाय। गस्सा। कौर। निवाला। (२) पकड़ने की क्रिया। पकड़। गिरफ्। (३) सूर्य्य या चंद्रमा में ग्रहण लगना। जैसे, खग्रास, सर्वग्रास।

ग्रासक—वि० [सं०] (१) पकड़नेवाला। (२) निगलनेवाला। (३) छिपाने वा दबानेवाला।

ग्रासकट—संज्ञा पुं० [अं०] घास काटनेवाला। घसियारा।

ग्रासना—क्रि० स० [सं० ग्रास] (१) पकड़ना। धरना। निगलना। उ०—ग्रासत चित्त गयंद को बिरह ग्राह जब आय। हरि प्यारे मन कमल लै नेही देत छुड़ाय।—रसनिधि। (२) कष्ट देना। सताना।

ग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मगर। घड़ियाल। (२) ग्रहण। उपराग। (३) पकड़ना। लेना। ग्रहण करना। (४) ज्ञान। (५) ग्रहण करनेवाला। ग्राहक।

ग्राहक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ग्रहण करनेवाला। (२) मोल लेनेवाला। खरीदनेवाला। खरीददार। (३) लेने या पाने की इच्छा रखनेवाला। चाहनेवाला। (४) वह ओषधि जिसके सेवन से पतला दस्त आना बंद हो जाय और बँधा पैखाना होने लगे। (५) बाज पक्षी। (६) एक प्रकार का साग जिसे चौपतिया कहते हैं। (७) शरीर में प्रविष्ट विष को चिकित्सा द्वारा दूर करनेवाला वैद्य। विष वैद्य।

ग्राहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिवली का तीसरा बल।

ग्राही—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो ग्रहण करे। स्वीकार करनेवाला। जैसे, दानग्राही। (२) मल को रोकनेवाला पदार्थ। कब्ज़ करनेवाली चीज़। (३) कैथ। कपित्थ।

ग्राह्य—वि० [सं०] (१) लेने योग्य। (२) स्वीकार करने योग्य। मानने लायक। (३) जानने योग्य।

ग्रीक—वि० [अं०] यूनान देश का। यूनान देश संबंधी।

संज्ञा स्त्री० ग्रीस या यूनान देश की भाषा।

संज्ञा पुं० ग्रीस का यूनान देश का निवासी।

ग्रीखम*†—संज्ञा स्त्री० दे० "ग्रीष्म"।

ग्रीवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिर और धड़ को जोड़नेवाला अंग। गर्दन।

विशेष—समस्त होने पर इस शब्द का रूप "ग्रीव" हो जाता है। जैसे, हयग्रीव, सुग्रीव।

ग्रीवी—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीविन्] (१) वह जिसकी गर्दन लंबी हो। (२) ऊँट।

ग्रीषम*†—संज्ञा स्त्री० दे० "ग्रीष्म"।

ग्रीष्म—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गरमी की ऋतु।

विशेष—कुछ लोग बैसाख और जेठ और कुछ लोग जेठ और आषाढ़ मास को ग्रीष्म ऋतु मानते हैं। संक्रांति के हिसाब से वृष और मिथुन की संक्रांति भर ग्रीष्म ऋतु मानी जाती है।

पर्य्या०—उष्णक। निदाघ। तप। धर्म्म। तापन आदि।

(२) ऊष्ण। गरम।

ग्रीष्मभवा, ग्रीष्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नेवारी का फूल।

ग्रीस—संज्ञा पुं० [अं०] यूनान नामक देश जो योरप के दक्षिण में है।

ग्रूप—संज्ञा पुं० [अं०] झुंड। समूह। गरोह।

ग्रेट प्राइमर—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छापे का अक्षर जिसका आकार और प्रकार ऐसा होता है—"ग्रेटप्राइमर"।

ग्रेट ब्रिटन—संज्ञा पुं० [अं०] इँगलैंड और स्काटलैंड देश।

ग्रेन—संज्ञा पुं० [अं०] एक अंगरेज़ी तौल जो प्रायः एक जव के बराबर होती है।

ग्रेनाइट—संज्ञा पुं० [अं०] एक तरह का आग्नेय पत्थर जो बहुत कड़ा होता है। यह हलके भूरे अथवा पीले रंग का और कई प्रकार का होता है। कोई कोई ग्रेनाइट संगमरमर की भाँति सफ़ेद भी होता है। इसे काटने में बहुत अधिक खर्च पड़ता है और साधारण इमारतों में बहुत कम इसका व्यवहार होता है। पुल की कोठियाँ बनाने अथवा ऐसे स्थानों में जहाँ बहुत अधिक मज़बूती की आवश्यकता हो इसका उपयोग किया जाता है। गरमी पाकर यह और पत्थरों की अपेक्षा जल्दी चटक जाता है। इस पर पालिश बहुत अच्छी होती है, पर अधिक कड़े और खुरदरे होने के कारण न तो इस की मूर्त्तियाँ बन सकती हैं और न इस पर खुदाई का महीन काम हो सकता है। इसमें अबरक का भी बहुत कुछ अंश मिला रहता है। इसे संगखारा कहते हैं।

ग्रेह†*—संज्ञा पुं० दे० "गेह" वा "गृह"।

ग्रैवेयक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गले में पहनने का गहना। जैसे, हार, माला, हैकल, हमेल आदि। (२) हाथी की हैकल। (३) जैनियों के एक प्रकार के देवता जो लोकपुरुष की गर्दन पर स्थित माने गए हैं। इन की संख्या नौ है।

ग्रैजुएट—संज्ञा पुं० [अं०] कोई उपाधि परीक्षा पास किया हुआ विद्वान्।

ग्रैम—संज्ञा पुं० [अं०] एक अंगरेजी तौल जो १५ ग्रेन से कुछ अधिक होती है।

ग्लान—वि० [सं०] (१) ज्वर आदि रोगों से पीड़ित। बीमार। रोगी। (२) थका हुआ। (३) कमजोर।

संज्ञा स्त्री० दीनता।

ग्लानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० ग्लेय] (१) शारीरिक वा मानसिक शिथिलता। अनुत्साह। खेद। अक्षमता। (२) मन की एक वृत्ति जिसमें किसी अपने कार्य्य की बुराई या दोष आदि को देख कर अनुत्साह, अरुचि और खिन्नता उत्पन्न होती है। (३) साहित्य में बीभत्स रस का एक स्थायी भाव। साहित्यदर्पण के अनुसार यह व्यभिचारी भाव के अंतर्गत है। रति, परिश्रम, मनस्ताप और भूख प्यास आदि से उत्पन्न दुर्बलता ही ग्लानि है। इसमें शरीर काँपने लगता है, शक्ति घट जाती है और किसी कार्य्य के करने का उत्साह नहीं होता।

ग्वांड़ा †—संज्ञा पुं० [सं० गुण्ड] (१) घेरा। वृत्त। (२) किसी मकान के चारों ओर का बाड़ा। (३) चहार दीवारी के अंदर घिरा हुआ स्थान।

ग्वार—संज्ञा स्त्री० [सं० गोराणी] एक वार्षिक पौधा जिसकी फलियों की तरकारी और बीजों की दाल होती है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। इसकी पत्तियों की खाद बहुत अच्छी होती है और उन्हें चौपाए भी बहुत चाव से खाते हैं। कहीं कहीं इसे अदरक के पौधों पर छाया करने के लिये भी लगाते हैं। यह वर्षा के आरंभ में बोई जाती है और जाड़े के मध्य में तैयार हो जाती है। इसमें पीले रंग के एक प्रकार के लंबे फूल भी लगते हैं। वैद्यक में इसकी फली को बादी, मधुर, भारी, दस्तावर, पित्तनाशक, दीपक और कफकारक माना है और पत्तों को रतौंधी दूर करनेवाला और पित्तनाशक कहा है। कौरी। खुरथी।

ग्वारनट, ग्वारनेट—संज्ञा स्त्री० [अं० गारनेट] एक प्रकार का बढ़िया रंगीन रेशमी कपड़ा।

ग्वारपाठा—संज्ञा पुं० [सं० कुमारी + पाठा] घीकुआँर।

ग्वारि, ग्वारिन † *—संज्ञा स्त्री० दे० "ग्वार"।

ग्वारी—संज्ञा स्त्री० दे० "ग्वार"। उ०—फेनी फूल निमोना डिँड़सा रूप रतालू ग्वारीजी।—रघुनाथ।

इसके प्रत्येक चरण में २ अक्षर होते हैं, जिनमें से पहला गुरु और दूसरा लघु होता है। उ०—ग्वाल। धार। कृष्ण। सार।

ग्वाल ककड़ी, ग्वाल ककरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वाल + ककड़ी] जंगली चिचड़ा जिसके बीज, जड़ और पत्तियाँ आदि ओषधि के काम में आती हैं। इसमें छोटे छोटे फल भी लगते हैं जो पकने पर गहरे लाल रंग के हो जाते हैं।

ग्वाल दाड़िम—संज्ञा पुं० [हिं० ग्वाल + दाड़िम] मालकंगनी की जाति का एक छोटा पेड़ या क्षुप, जो अफ़गानिस्तान, पंजाब और उत्तर भारत में चार हजार फुट की ऊँचाई तक होता है।

ग्वाल, ग्वाला—संज्ञा पुं० [सं० गो + पाल, प्रा० गोवाल] (१) अहीर। (२) एक छंद का नाम जिसे सार और शानु भी कहते हैं। इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी और लाल या भूरे रंग की होती हैं। इसकी लकड़ी मुलायम होती है और उस पर (छापेखाने में) छापने के लिये चित्र आदि खोदे जाते हैं।

ग्वालिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० ग्वाल] (१) ग्वाला की स्त्री। ग्वाल जाति की स्त्री। (२) ग्वार। खुरथी। कौरी।

संज्ञा स्त्री० [सं० गोपालिका] तीन चार अंगुल लंबा एक बरसाती कीड़ा जिसे गिंजाई वा घिनौरी भी कहते हैं।

ग्वैंठना † *—क्रि स० [सं० गुंठन, हिं० गुमेठना] मरोड़ना। ऐंठना। घुमाना या टेढ़ा करना। उ०—सौंहैं हू चाह्यौ न तैं केती घाईं सौंहैं। एहो क्यों बैठी किये ऐंठी ग्वैंठी भौंह।—बिहारी।

ग्वैंठा †—संज्ञा पुं० दे० "गोंइठा"।

ग्वैंड़ा † *—संज्ञा पुं० [हिं० गाँव + इड़ा] गाँव के आस पास की भूमि। उ०—(क) घर घर ते पकवान चलाये। निकसि गाँव के ग्वैंड़े आये।—सूर। (ख) यदपि तेज रौहाल बर लगी न पलकौ बार। तउ ग्वैंड़ों घर को भयो पैंड़ो कोस हजार।—बिहारी।

ग्वैंड़े †—क्रि० वि० [हिं० ग्वैंड़ा] निकट। पास। करीब।

ग्वैंयां †—संज्ञा स्त्री० दे० "गोइँयाँ"।

—:०:—

घ

घ—हिंदी वर्णमाला के व्यंजनों में से कवर्ग का चौथा व्यंजन जिसका उच्चारण जिह्वामूल या कंठ से होता है। यह स्पर्श वर्ण है। इसमें घोष, नाद, संवार और महाप्राण प्रयत्न होते हैं।

घँगोल †—संज्ञा पुं० [देश०] कुमुद।

घँघरा—संज्ञा पुं० दे० "घघरा"।

घँघराघोर †—संज्ञा पुं० [हिं० घँघरा + घोर] भ्रष्टाचार। छुआछूत के विचार का अभाव।

घँघरी—संज्ञा स्त्री० दे० "घघरी"।

घँघोरना †—क्रि० स० दे० "घँघोलना"।

घँघोलना—क्रि० स० [हिं० घन + घोलना] (१) हिला कर घोलना। पानी को हिला कर उसमें कुछ मिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) पानी को हिला कर मैला करना।

संयो० क्रि०—डालना।

घंट—संज्ञा पुं० [सं० घट] (१) घड़ा। (२) मृतक की क्रिया में वह जलपात्र जो पीपल में बाँधा जाता है।

संज्ञा पुं० दे० "घंटा"।

घंटा-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्प० घंटी] (१) धातु का एक बाजा जो केवल ध्वनि उत्पन्न करने के लिये होता है, राग बजाने के लिये नहीं। यह दो प्रकार का होता है—एक तो औंधे बरतन के आकार का होता है जिसमें एक लंगर लटकता रहता है और जो लंगर के हिलने से बजता है; दूसरा जिसे घड़ियाल कहते हैं। यह थाली की तरह गोल गोल होता है और मुँगरी से ठोंक कर बजाया जाता है।

क्रि० प्र०—बजाना।

मुहा०—घंटे मोरछल से उठाना = अत्यंत वृद्ध के शव को बाजे गाजे के साथ श्मशान पर ले जाना।

(२) वह घड़ियाल जो समय की सूचना देने के लिये बजाया जाता है। (३) घंटा बजने का शब्द। घंटे की ध्वनि। उ०—घंटा सुनते ही सब लोग चल पड़े।

क्रि० प्र०—होना।

(४) दिन रात का चौबीसवाँ भाग। साठ मिनट या ढाई घड़ी का समय। (५) लिंगेंद्रिय। (बाज़ारू) (६) ठेंगा। कुछ नहीं। जैसे—अब तुम्हें घंटा मिलेगा।

मुहा०—घंटा दिखाना = किसी माँगने वा चाहनेवाले को कोई वस्तु न देना। किसी माँगी वा चाही हुई वस्तु का अभाव बताना। उ०—रुपया माँगने जाओगे तो वह घंटा दिखा देगा। घंटा हिलाना = व्यर्थ का काम करना। झख मारना। सिर पटकना। हाथ मलना। उ०—तुम समय पर तो यहाँ पहुँचे नहीं अब घंटा हिलाओ।

घंटाकरन-संज्ञा पुं० [सं० घंटाकर्ण] एक घास वा पौधा जिसके पत्ते घीए वा अरुई की तरह के होते हैं।

घंटाकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक उपासक का नाम जो कान में इसलिये घंटा बाँधे रहता था कि जब कहीं राम या विष्णु का नाम लिया जाय तब वह अपना सिर हिला दे और घंटे के शब्द के कारण नाम न सुने।

घंटाघर-संज्ञा पुं० [हिं० घंटा + घर] वह ऊँचा धौरहर जिस पर एक ऐसी बड़ी धर्मघड़ी लगी हो जो चारों ओर से दूर तक दिखाई देती हो और जिसका घंटा दूर तक सुनाई देता हो।

घंटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुत छोटा घंटा। (२) घुँघुरू।

यौ०—क्षुद्रघंटिका।

संज्ञा स्त्री [सं० घटिका] घरिया। छोटे छोटे लंबे घड़े जो रहँट में लगे रहते हैं। उ०—श्रवण कूप की रहँट घंटिका राजत सुभग समाज।—सूर।

घँटियारा-संज्ञा पुं० [हिं० घांटी] पशुओं के गले का एक रोग जिसमें उनके गले में काँटे से पड़ जाते हैं और वे चारा नहीं निगल सकते।

घंटी-संज्ञा स्त्री० [सं० घंटिका] पीतल वा फूल की छोटी सी लोटिया।

संज्ञा स्त्री० [सं० घंटा] (१) बहुत छोटा घंटा जो औंधे बरतन के आकार का होता है और जिसके भीतर लंगर बँधा रहता है। घंटी कई कामों के लिये बजाई जाती है। लोग पूजा के समय घंटी बजाते हैं। अब नौकरों को बुलाने तथा लोगों को सावधान करने के लिये भी घंटी बजाई जाती है। (२) घंटी बजने का शब्द।

क्रि० प्र०—होना।

(३) घुँघुरू। चौरासी। (४) गले की नाल का वह भाग जो अधिक उभड़ा रहता है। गले की हड्डी की वह गुरिया जो अधिक निकली रहती है। (५) गले के भीतर मांस की वह छोटी पिंडी जो जीभ की जड़ के पास लटकती रहती है। कौआ।

मुहा०—घंटी उठाना या बैठाना = गले की घंटी की सूजन को दबा कर मिटाना।

घंटील-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक घास जो चारे के काम में आती है और ज़मीन पर दूर तक फैलती है। गधे इसे बहुत खाते हैं। यह पंजाब के मुज़फ़्फ़रगढ़, झंग आदि स्थानों में बहुत होती है।

घई*-संज्ञा स्त्री० [सं० गंभीर] (१) गंभीर भँवर। पानी का चक्कर। उ०—आये सदा सुधारि गोसाईं जन ते बिगरि गई है। थके बचन पैरत सनेह सरि परे मानो घोर घई है।—तुलसी। (२) थूनी। टेक। (३) वह दरार जो जोलाहों के तूर में १½ अंगुल गहरी और इतनी ही चौड़ी और गज भर लंबी खुदी होती है।

वि० [सं० गंभीर] बहुत गहरा। अथाह। जिसकी थाह न लग सके। अत्यंत गंभीर। उ०—प्रीति प्रतीत रीति शोभा सरि थाहत जहँ तहँ घई।—तुलसी।

घउरी-संज्ञा स्त्री० दे० "घवरि"।

घघरबेल-संज्ञा स्त्री० [हिं० घुघराला + बेल] बंदाल।

घघरा-संज्ञा पुं० [हिं० घन + घेरा] [स्त्री० घघरी] स्त्रियों का एक चुननदार पहनावा जो कटि से लेकर पैर तक का शरीर ढाँकने के लिये होता है। लहँगा।

घघरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० घघरा] छोटा लहँगा।

घचाघच-संज्ञा पुं० [अनु०] नरम चीज़ में किसी धारदार वा नुकीली वस्तु के घुभने वा धँसने का शब्द।

घट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घड़ा। जलपात्र। कलसा। (२) पिंड। शरीर। उ०—वा घट के सौ टूक कै दीजै नदी बहाय। नेह भरेहू पै जिन्हैं दौरि रुखाई जाय।—रसनिधि। (३) मन। हृदय। उ०—अंतरयामी घटघट बासी।

मुहा०—घट में बसना वा बैठना = (१) हृदय में स्थापित होना। मन में बसना। ध्यान पर चढ़ा रहना। उ०—जिसके घट में राम बसते हैं वही कुछ देता है। (२) (किसी बात का) मन में बैठना। हृदयंगम होना।

(४) कुंभराशि ।

वि० [हिं० घटना] घटा हुआ । कम । थोड़ा । छोटा । मध्यम । उ०—'घट बढ़ रकम बनाइ कै सिसुता करी तगीर ।'—रसनिधि ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'बढ़' के साथ ही अधिकतर होता है । अकेले इसका क्रियावत् प्रयोग 'घटकर' ही होता है, जैसे, वह कपड़ा इससे कुछ घटकर है ।

घटकंचुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक रीति । इसमें भैरवीचक्र में सम्मिलित स्त्रियों की कंचुकियाँ लेकर एक घड़े में भर दी जाती हैं । फिर एक एक पुरुष बारी बारी से एक एक कंचुकी निकालता है । जिस पुरुष के हाथ में जिस की कंचुकी (चोली) आती है उसी के साथ वह संभोग कर सकता है ।

घटक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मध्यस्थ । बीच में पड़नेवाला । (२) बरेखिया । विवाह संबंध तय करानेवाला । (३) दलाल । (४) काम पूर्ण करनेवाला । चतुर व्यक्ति । (५) वंशपरंपरा बतलानेवाला । चारण । (६) घड़ा । (७) दो पक्षों में बातचीत करानेवाला । मध्यस्थ ।

घटकर्कट—संज्ञा पुं० [सं०] (संगीत में) एक प्रकार का ताल ।

घटकर्पर—संज्ञा पुं० [सं०] एक कवि जिनका नाम कालिदास के साथ विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में आता है । इनका बनाया नीतिसार नामक एक ग्रंथ मिलता है ।

घटका—संज्ञा पुं० [सं० घटक = शरीर । अथवा अनु० घर्र घर्र शब्द] मरने के पहले की वह अवस्था जिसमें साँस रुक रुक कर घराहट के साथ निकलता है । कफ छेंकने की अवस्था । घर्रा ।

मुहा०—घटका लगना = मरते समय कफ छेंकना ।

घटकार—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हार ।

घटज—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि ।

घटती—संज्ञा स्त्री० [हिं० घटना] (१) कमी । कसर । न्यूनता । अवनति । 'बढ़ती' का उलटा ।

मुहा०—घटती का पहरा = अवनति के दिन । बुरा ज़माना ।

(२) हीनता । अप्रतिष्ठा । उ०—घटती होइ जाहि ते अपनी ताको कीजै त्याग ।—सूर ।

घटदासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नायक नायका का सम्मिलन करा देनेवाली दासी । (२) कुटनी ।

घटन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० घटनीय, घटित] (१) गढ़ा जाना । (२) होना । उपस्थित होना ।

घटना—क्रि० अ० [सं० घटन] (१) होना । उपस्थित होना । वाक़ै होना । उ०—वहाँ ऐसी घटना घटी कि सब लोग आश्चर्य में आ गये । (२) लगना । सटीक बैठना । आरोप होना । मेल में होना । मेल मिल जाना । उ०—(क) अब जो तात दुरावौं तोहीं । दारुण दोष घटइ अति मोहीं ।—तुलसी । (ख) यह कहावत उन पर ठीक घटती है ।

क्रि० अ० [हिं० कटना] कम होना । छोटा होना । क्षीण होना । उ०—(क) श्रवण घटहु पुनि दृग घटहु, घटौ सकल बल देह । इते घटे घटिहै कहा, जो न घटै हरि नेह ।—तुलसी । (ख) कुएँ का पानी घट रहा है ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] कोई बात जो हो जाय । वाक़ेआ । हादसा । वारदात । उ०—(क) अघट घटना सुघट, सुघट विघटन विकट भूमि पाताल जल गगन गंता ।—तुलसी । (ख) यहाँ ऐसी बड़ी घटना कभी नहीं हुई थी ।

घटपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तु विद्या (इमारत) में वह खंभा जिसका सिरा घड़े और पल्लव के आकार का बना हो ।

घटबढ़—संज्ञा स्त्री० [हिं० घटना + बढ़ना] (१) कमी बेशी । न्यूनाधिकता । (२) नृत्य की एक क्रिया ।

वि० कमबेश । अपेक्षित से अधिक ।

घटयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि ।

घटराशि—संज्ञा पुं० [सं०] एक द्रोण जो लगभग सोलह सेर का होता है ।

घटवाना—क्रि० स० [हिं० घटाना का प्रे०] घटाने का काम कराना । कम कराना ।

घटवाई—संज्ञा पुं० [हिं० घाट + वाई] (१) घाटवाला । घाट का कर लेनेवाला । (२) रोकनेवाला । बिना कर लिए वा तलाशी लिए न जाने देनेवाला । उ०—आवन जान न पावत कोऊ तुम मग में घटवाई । सूरश्याम हमको बिरमावत खीझत बहिनी माई ।—सूर ।

[हिं० घटना] कम करवाई ।

घटवार—संज्ञा पुं० [हिं० घाट + पाल या वाला] (१) घाट का महसूल लेनेवाला । (२) मल्लाह । केवट । (३) घाट पर बैठ कर दान लेनेवाला ब्राह्मण । घाटिया । (४) घाट का देवता ।

घटवारिया—संज्ञा पुं० दे० "घटवालिया" ।

घटवालिया—संज्ञा पुं० [हिं० घाट + वाला] तीर्थ स्थानों में नदी वा सरोवर के घाट पर बैठ कर दान लेनेवाला पंडा । तीर्थपंडा । घाटिया ।

घटसंभव—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि ।

घटहा†—संज्ञा पुं० [हिं० घाट + हा (प्रत्य०)] (१) घाट का ठेकेदार । (२) वह नाव जो इस पार से उस पार आती हो ।

घटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेघों का घना समूह । उमड़े हुए बादलों का ढेर । मेघमाला । कादंबिनी ।

क्रि० प्र०—उठना ।—*उनवना ।—उमड़ना ।—घिरना ।—छाना ।—झूमना ।

(२) समूह । झुंड । उ०—रजनीचर मत्त गयंद घटा विघटै मृगराज के साज लरै । झपटै भट कोटि मही पटकै गरजै रघुवीर की सौंह करै ।—तुलसी ।

घटाई*—संज्ञा स्त्री० [हिं० घटना + ई (प्रत्य०)] हीनता । अप्रतिष्ठा । बेइज़्ज़ती । उ०—भूप मन आई यह निपट घटाई होति भक्ति सरसाई नहीं जानैं घटी प्रीति हैं ।—प्रिया ।

घटाकाश—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश का उतना भाग जितना एक घड़े के भीतर आ जाय । घड़े के भीतर की खाली जगह ।

घटाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुस्तंभ का अष्टम भाग । वास्तु विद्या में खंभे के नौ विभागों में से आठवाँ भाग ।

घटाटोप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादलों की घटा जो चारों ओर से घेरे हो । (२) गाड़ी वा बहली को ढक लेनेवाला ओहार । पालकी वा पीनस का ओहार । किसी वस्तु को पूर्णतः ढक लेनेवाला कपड़ा । (३) बादलों की भाँति चारों ओर से घेर लेनेवाला दल वा समूह । उ०—(क) घटाटोप गजयूथ तहँ चलत भयो मुनिराइ । (ख) घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी । मुखहिँ निसान बजावहिँ भेरी ।—तुलसी ।

घटाना—क्रि० स० [हिं० घटना] (१) कम करना । क्षीण करना । (२) बाकी निकालना । काटना । उ०—सौ रुपये में से पचास घटा दो । (३) अप्रतिष्ठा करना । कम क़दरी करना । उ०—तुम ने आप अपने को घटाया है ।

घटाव—संज्ञा पुं० [हिं० घटना] (१) कम होने का भाव । न्यूनता । कमी । (२) अवनति । तनज्जुली ।

यौ०—घटाव बढ़ाव = कमी बेशी । न्यूनता और वृद्धि ।

(३) नदी की बाढ़ की कमी । 'चढ़ाव' का उलटा ।

मुहा०—घटाव पर होना = बाढ़ का कम होना ।

घटावना‡*—क्रि० अ० दे० "घटाना" ।

घटि—वि० दे० "घट" ।

घटिक—संज्ञा पुं० [सं०] घंटा पूरा होने पर घड़ियाल बजानेवाला व्यक्ति । घड़ियाली । घंटा बजानेवाला सिपाही ।

घटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घड़ी । घटी यंत्र । टाइमपीस । (२) एक घड़ी का समय । २४ मिनट का समय ।

यौ०—घटिकावधान = (१) एक घड़ी में कई काम करनेवाला । घटिकाशतक = एक घड़ी के भीतर सौ काम एक साथ करनेवाला । (बहुत से लोग ऐसी साधना करते हैं कि वे एक साथ शतरंज खेलते जाते, पद्य बनाते जाते तथा गणित करते जाते हैं और इस प्रकार एक घंटे के भीतर सब काम पूरा उतरा देते हैं ।) (२) एक घड़ी में सौ श्लोक बनानेवाला कवि ।

(३) छोटा घड़ा । गगरी ।

घटित—वि० [सं०] बना हुआ । रचा हुआ । रचित । निर्मित ।

घटिया—वि० [हिं० घट + इया (प्रत्य०)] (१) जो अच्छे मोल का न हो । खराब । कम मोल का । सस्ता । 'बढ़िया' का उलटा । (२) अधम । तुच्छ । नीच । उ०—वह बड़ा घटिया आदमी है ।

घटियारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे खवी भी कहते हैं । यह पंजाब में होती है और इसमें अदरक की सी महक होती है ।

घटिहा—वि० [हिं० घात + हा (प्रत्य०)] (१) घात लगानेवाला । घात पाकर अपना स्वार्थ साधनेवाला । (२) चालाक । मक्कार । (३) धोखेबाज़ । बेईमान । (४) व्यभिचारी । लंपट । (५) दुष्ट । दुःखदायी । खल । उ०—कह गिरधर कविराय सुनो हो निर्दय पपिहा । नेक रहन दे मोहिं चोंच मूँदे रहु घटिहा ।—गिरधर ।

घटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घड़ी । मुहूर्त्त । २४ मिनट का समय । (२) समयसूचक यंत्र । टाइमपीस । क्लाक । (३) गगरी । छोटा घड़ा । कलसी । (४) रहँट की घरिया ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० घटना] (१) कमी । न्यूनता । (२) हानि । क्षति । नुकसान । घाटा ।

मुहा०—घटी आना या पड़ना = व्यवसाय में हानि होना ।

घटीयंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घड़ी । समयसूचक यंत्र । (२) संग्रहणी रोग का एक भेद जो असाध्य माना जाता है । (३) रहँट जिससे कुओं से पानी निकाला जाता है ।

घटूका*—संज्ञा पुं० [सं० घटोत्कच] भीमसेन का घटोत्कच नामक पुत्र जो हिड़िंबा राक्षसी से पैदा हुआ था । उ०—कहत नाइ सिर बचन घटूका । सुनिये नाथ क्षमा करि चूका ।—सबल ।

घटोत्कच—संज्ञा पुं० [सं०] हिड़िंबा से उत्पन्न भीमसेन का पुत्र । महाभारत युद्ध में इसे कर्ण ने मारा था ।

घटोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि ।

घटोर*—संज्ञा पुं० [सं० घटोदर] मेंढ़ा । भेड़ा । मेष । (डिं०)

घट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० घटना] (१) घाटा । घटी । कमी । टोटा । (२) दरार । छेद । उ०—सिर पर ऐसी लाठी पड़ी कि घट्टा खुल गया । (३) दे० "घट्ठा" ।

मुहा०—घट्टा खुलना = दरार हो जाना । फट जाना ।

घट्टित—संज्ञा० पुं० [सं०] नृत्य में पैर चलाने का एक प्रकार जिसमें एड़ी को ज़मीन पर दबा कर पंजा नीचे ऊपर हिलाते हैं ।

घट्ठा—संज्ञा पुं० [सं० घट्ट] शरीर पर वह उभड़ा हुआ चिह्न जो किसी वस्तु की रगड़ लगते लगते पड़ जाता है । उ०—तलवार की मूठ पकड़ते पकड़ते उसकी उँगलियों में घट्ठे पड़ गए हैं ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

मुहा०—घट्ठा पड़ना = अभ्यास होना । मश्क होना ।

घड़घड़—संज्ञा पुं० [अनु०] बादल गरजने, गाड़ी चलने आदि का शब्द ।

घड़घड़ाना—क्रि० अ० [अनु०] गड़गड़ वा घड़घड़ शब्द करना । गड़गड़ाना । बादल गरजने वा गाड़ी आदि चलने का शब्द होना । उ०—बादल घड़घड़ा रहे हैं ।

क्रि० स० [अनु०] किसी वस्तु को चलाना वा खींचना जिससे घड़घड़ शब्द हो । उ०—वह गाड़ी घड़घड़ाता आ पहुँचा ।

घड़घड़ाहट–संज्ञा स्त्री० [अनु० घड़घड़] (१) घड़घड़ शब्द होने का भाव। (२) बादल गरजने वा गाड़ी चलने का शब्द।

घड़त–संज्ञा स्त्री० दे० "गढ़त"।

√**घड़ना**–क्रि० स० दे० "गढ़ना"।

घड़नैल–संज्ञा पुं० [हिं० घड़ा + नैया (नाव)] बांस में घड़े बांध कर बनाया हुआ ढांचा जिससे छोटी छोटी नदियां पार करते हैं।

घड़ा–संज्ञा पुं० [सं० घट] मिट्टी का बना हुआ गगरा। जलपात्र। बड़ी गगरी। कलसा। घैला। कुंभ। ठिल्ला।

मुहा०—घड़ों पानी पड़ जाना = अत्यंत लज्जित होना। लज्जा के मारे गड़ जाना। उ०—जब मैंने मुँह पर यह बात कही तो उस पर घड़ों पानी पड़ गया।

घड़ाई–संज्ञा स्त्री० दे० "गढ़ाई"।

√**घड़ाना**–क्रि० स० दे० "गढ़ाना"।

घड़ामोड़*–वि० [हिं० गढ़ + मोड़ना] शूर वीर। (डिं०)

घड़िया–संज्ञा स्त्री० [सं० घटिका] (१) मिट्टी का बरतन जिसमें रख कर सोनार लोग सोना चाँदी गलाते हैं। (२) मिट्टी का छोटा प्याला। (३) शहद का छत्ता। (४) बच्चा-दान। गर्भाशय। (५) मिट्टी की नांद जिसमें लोहार लोहा गलाते हैं। (६) रहँट में लगी हुई छोटी छोटी ठिलियाँ जिनमें पानी भर कर आता है।

घड़ियाल–संज्ञा पुं० [सं० घटिकालि, प्रा० घड़िआलि = घंटों का समूह] वह घंटा जो पूजा में वा समय की सूचना के लिये बजाया जाता है।

विशेष—दिल्ली में इस शब्द को स्त्रीलिंग बोलते हैं।

संज्ञा पुं० [हिं० घड़ा + आल = वाला] एक बड़ा और हिंसक जल-जंतु। ग्राह।

विशेष—घड़ियाल आठ दस हाथ लंबा और गोह वा छिपकली के आकार का होता है। इसकी पीठ पर का चमड़ा काला और कड़ा होता है। इसकी ठोर का ऊपरी भाग लोटे के आकार का होता है जिसे तूँबी वा मटुक कहते हैं।

घड़ियाली–संज्ञा पुं० [हिं० घड़ियाल] समय की सूचना के लिये घंटा बजानेवाला। घंटा बजानेवाला।

संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ियाल] एक प्रकार का घंटा जो पूजन के समय देवालय आदि में बजाया जाता है। विजयघंटा।

घड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० घटी] (१) काल का एक मान। दिन रात का ३२ वाँ भाग। २४ मिनट का समय।

मुहा०—घड़ी घड़ी = बार बार। थोड़ी थोड़ी देर पर। उ०—सींचि गुलाब घरी घरी अरी बरीहिं न बार।—बिहारी। घड़ी तोला, घड़ी माशा = कभी कुछ, कभी कुछ। एक क्षण में एक बात दूसरे क्षण में दूसरी बात। अस्थिर बात वा व्यवहार। उ०—उनकी बात का क्या ठिकाना, घड़ी तोला, घड़ी माशा। घड़ी गिनना = (१) किसी बात का बड़ी उत्सुकता के साथ आसरा देखना। अत्यंत उत्कंठित हो कर प्रतीक्षा करना। (२) मृत्यु का आसरा देखना। मरने के निकट होना। उ०—मानहु मीचु घरी गनि लेई।—तुलसी। घड़ी में घड़ियाल है = (१) ज़िंदगी का कोई ठिकाना नहीं। न जाने कब काल आवे। (२) क्षण भर में न जाने क्या से क्या हो जाता है। दशा पलटते देर नहीं लगती। (बहुत बुड्ढे आदमी के मरने पर उसे लोग घंटा बजाते श्मशान पर ले जाते हैं इसी से यह मुहावरा बना है।) घड़ी देना = मुहूर्त बतलाना। सायत बतलाना। उ०—भरे गो चलै गंग गति लेई। तेहि दिन कहाँ घड़ी को देई।—जायसी। घड़ी भर = थोड़ी देर। थोड़ा समय। उ०—घड़ी भर ठहरो, हम आए। घड़ी सायत पर होना = मरने के निकट होना।

(२) समय। काल। उ०—जिस घड़ी जो होना होता है, वह हो ही जाता है। (३) अवसर। उपयुक्त समय। उ०—जब घड़ी आवेगी तब काम होते देर न लगेगी। (४) समय-सूचक यंत्र। जैसे, क्लाक, टाइमपीस, वाच आदि।

यौ०—घड़ीसाज। धर्म्मघड़ी। धूपघड़ी।

मुहा०—घड़ी कूकना = घड़ी की ताली ऐंठना जिससे कमानी कस जाय और झटके से पुरज़े चलने लगें। घड़ी में चाभी देना।

विशेष—प्राचीन काल में समय के विभाग जानने के लिये भिन्न भिन्न युक्तियाँ काम में लाते थे। कहीं किसी पटल पर बने वृत्त की परिधि के विभाग करके और उसके केंद्र पर एक शंकु वा सूई खड़ी करके उसकी (धूप में पड़ी हुई) छाया के द्वारा समय का पता लगाते थे। कहीं नांद में पानी भर कर उस पर एक तैरता हुआ कटोरा रखते थे। कटोरे की पेंदी में महीन छेद होता था जिससे क्रम क्रम से पानी आकर कटोरा भरता था। जब नियत चिह्न पर पानी आ जाता था तब कटोरा डूब जाता था। इस नांद को धर्मघड़ी कहते थे। घटी वा घड़ी नाम इसी नाँद का सूचक है। भारतवर्ष में इसका व्यवहार अधिक होता था।

घड़ीदिआ–संज्ञा पुं० [हिं० घड़ी + दीआ = दीपक] वह घड़ा जो किसी घर के प्राणी के मरने पर घर में रक्खा जाता है और १०—१२ दिनों तक रहता है। घड़े के पेंदे में बहुत छोटा छेद कर दिया जाता है जिसमें से होकर बूँद बूँद पानी टपकता है और मुँह पर एक दीपक जला कर रख दिया जाता है।

क्रि० प्र०—बाँधना।

घड़ीसाज़–संज्ञा पुं० [हिं० घड़ी + फ़ा० साज़] घड़ी की मरम्मत करनेवाला।

घड़ीसाज़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ी + फ़ा० साज़ी] घड़ी की मरम्मत का कार्य्य वा व्यवसाय।

घड़ौला–संज्ञा पुं० [हिं० घड़ा + औला (प्रत्य०)] छोटा घड़ा। झंझर।

घड़ौंची-संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ा + औंची (प्रत्य०)] पानी से भरा घड़ा रखने की तिपाई वा ऊँची जगह । लटकन । पलहँड़ा ।

घण*-संज्ञा पुं० दे० "घन" ।

घतर†-संज्ञा पुं० [देश०] प्रभात काल । तड़का ।

घतिया-संज्ञा पुं० [हिं० घात + इया (प्रत्य०)] घात करनेवाला । धोखा देनेवाला ।

घतियाना-क्रि० स० [हिं० घात] (१) अपनी घात वा दाँव में लाना । मतलब पर चढ़ाना । (२) चुराना । छिपाना ।

घन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ । बादल । (२) लोहारों का बड़ा हथौड़ा जिससे वे गरम लोहा पीटते हैं ।

क्रि० प्र०—चलाना ।

यौ०—घन की चोट = बड़ा भारी आघात।

(३) लोहा । (डिं०) (४) मुख । (डिं०) (५) समूह । झुंड । (६) कपूर । उ०—न जक धरत हरि हिय धरे नाजुक कमला बाल । भजत भार भयभीत ह्वै घन चंदन बन माल । —बिहारी । (७) घंटा । घड़ियाल । (८) वह गुणनफल जो किसी अंक को उसी अंक से दो बार गुणा करने से लब्ध हो । जैसे—३ × ३ × ३ = २७ अर्थात् २७ तीन का घन है । (गणित) (९) लंबाई, चौड़ाई और मोटाई (ऊँचाई या गहराई) तीनों का विस्तार । उ०—घन दृढ़ घन विस्तार पुनि घन जेहिं गढ़त लोहार । घड़ अंबुद घन सघन घन घन-रुचि नंदकुमार ।—नँददास । (१०) एक सुगंधित घास । (११) अभ्रक । अबरक । (१२) कफ़ । खँखार । (१३) नृत्य का एक भेद । (१४) धातु का, ढाल कर बनाया हुआ बाजा जो प्रायः ताल देने के काम आता है । जैसे, झाँझ, मँजीरा, करताल इत्यादि ।

वि० (१) घना । गझिन ।

मुहा०—घन का = बहुत घना । जैसे, घन के बाल, घन का जंगल ।

(२) जिसके अणु परस्पर ख़ूब मिले हों । गठा हुआ । ठोस । (३) दृढ़ । मज़बूत । भारी । (४) बहुत अधिक । प्रचुर । ज्यादा ।

घनकोदंड-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष । मदाइन । उ०—कुटिल कच भ्रुव तिलक रेखा शीश शिखी शिखंड । मदन धनु मनो शर संधाने देखि घनकोदंड ।—सूर ।

विशेष—मेघ और धनुष वाची शब्दों के संयोग से जो शब्द बनेंगे उनका यही अर्थ होगा ।

घनगरज-संज्ञा स्त्री० [हिं० घन + गर्जन] (१) बादल के गरजने की ध्वनि । (२) एक प्रकार की खुमी जो असाढ़ या वर्षारंभ में उत्पन्न होती है । लोग ऐसा मानते हैं कि जब बादल गर-जते हैं तब इसके बीज (जो भूमि के भीतर रहते हैं) भूमि फोड़ कर गाँठ के रूप में निकल पड़ते हैं । इसकी तर-कारी बनाई जाती है । अवध में इसे भुइँफोड़ और पंजाब में ढिँगरी कहते हैं । (३) एक प्रकार की तोप ।

घनघनाना-क्रि० अ० [अनु०] घन घन शब्द होना । घंटे की ऐसी ध्वनि निकलना । उ०—घनघनात घंटा चहुँ ओरा ।—जायसी ।

क्रि० स० [अनु०] घन घन शब्द करना ।

घनघनाहट-संज्ञा स्त्री० [अनु०] घन घन शब्द निकलने का भाव या ध्वनि ।

घनघोर-संज्ञा पुं० [सं० घन + घोर] (१) घनघनाहट । भीषण ध्वनि । उ०—संख शब्द घोर, घनघोर घने घंटन को, झालर की झुरमुट, झाँझन की झनकार ।—गोपाल । (२) बादल की गरज ।

वि० (१) बहुत घना । गहरा । (२) जिसे देख और सुन कर जी दहल जाय । जिसका दर्शन और श्रवण भयानक हो । भीषण । भयावना । जैसे, घनघोर शब्द, घनघोर युद्ध ।

यौ०—घनघोर घटा = बड़ी गहरी काली घटा । बादलों का घना समूह ।

घनचक्कर-संज्ञा पुं० [सं० घन + चक्र] (१) वह व्यक्ति जिसकी बुद्धि सदैव चंचल रहे । चंचल बुद्धि का आदमी । (२) मूर्ख । बेवकूफ़ । मूढ़ । (३) वह जो व्यर्थ इधर उधर फिरा करे । निठल्ला । आवारागर्द । (४) एक प्रकार की आतशबाजी । चकरी । चरखी । (५) सूर्यमुखी का फूल । (६) गर्दिश । चक्कर । (७) फेरफार । जंजाल ।

मुहा०—घनचक्कर में आना वा पड़ना = फेर में फँसना । संकट में पड़ना ।

घनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] घना होने का भाव । घनापन । ठोसपन ।

घनताल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चातक पक्षी । पपीहा । (२) करताल ।

घनतोल-संज्ञा पुं० [सं०] चातक । पपीहा ।

घनत्व- संज्ञा पुं० [सं०] (१) घनापन । घना होने का भाव । सघनता । (२) लंबाई, चौड़ाई और मोटाई तीनों का भाव । (३) अणुओं का परस्पर मिलान । गठाव । ठोसपन ।

घननाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादलों की गरज । (२) रावण का पुत्र, मेघनाद ।

घनपति-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र, जो मेघों के अधिपति कहे जाते हैं ।

घनप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०](१) मोर । मयूर । (२) एक घास जिसकी पत्तियाँ डंठल की ओर पतली और ऊपर की ओर चौड़ी होती हैं । यह पहाड़ों पर मिलती है और औषध के काम में आती है । मोरशिखा ।

घनफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लंबाई, चौड़ाई और मोटाई (गहराई या ऊँचाई) तीनों का गुणन फल । (२) वह गुणन

फल जो किसी संख्या को उसी संख्या से दो बार गुण करने से प्राप्त हो। दे० "घन"।

घनबहेड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० घन + बहेड़ा] अमलतास।

घनबान–संज्ञा पुं० [हिं० घन + बाण] एक प्रकार का बाण। उ०—चले चंदबान, घनबान औ कुहुकबान चलत कमान धूम आसमान छ्वै रहो।—भूषण।

घनबेल–वि० [हिं० घन + बेल] बेलबूटेदार। जिसमें बेलबूटे बने हों। उ०—कहुँ कहुँ कुचन पर दरकी अँगिया घन-बेलि।—सूर।

घनमूल–संज्ञा पुं० [सं०] गणित में किसी घन (राशि) का मूल अंक। जैसे—२७ का घनमूल ३ होगा, क्योंकि ३ का घन २७ है।

घनरस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। पानी। (२) कपूर। (३) हाथियों का एक रोग, जिससे हाथी का ख़ून बिगड़ जाता है, पैर के नाखून गलने लगते हैं और हाथी लँगड़ाने लगता है। इस रोग को हाथियों का कोढ़ समझना चाहिए।

घनवाह–संज्ञा पुं० [सं०] वायु।

घनवाहन–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र, जिसका वाहन मेघ है।

घनवाही–संज्ञा स्त्री० [हिं० घन + वाही (प्रत्य०)] (१) लोहे को घन से कूटने का काम। (२) वह गड्ढा वा स्थान जहाँ घन चलानेवाला खड़ा होता है।

घनश्याम–वि० [सं०] बादलों के समान काला।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) काला बादल। (२) श्रीकृष्ण।

घनसागर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। पानी। (२) कपूर।

घनहर†–संज्ञा पुं० [हिं० घान + हारा (प्रत्य०)] घानवाला। एक घान अन्न भुनानेवाला। दाना भुनाने के लिये भड़भूँजे के पास जानेवाला।

घनहस्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक हाथ लंबा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा या मोटा पिंड वा क्षेत्र। (२) अन्न आदि नापने का एक मान जो एक हाथ लंबा, एक हाथ चौड़ा, और एक हाथ गहरा होता है। खारी। खारिका।

घना–वि० [सं० घन] [स्त्री० घनी] (१) सघन। जिसके अवयव वा अंश पास पास सटे हों। पास पास स्थित। गझिन। गुंजान। जैसे घना जंगल, घने बाल, घनी बुनावट। (२) घनिष्ट। नज़दीकी। निकट का। जैसे, हमारा उनका बहुत घना संबंध है। (३) बहुत अधिक। ज़्यादा। उ०—उतै रुखाई है घनी, थोरो सुख पै नेह।—रसनिधि।

विशेष—संख्या की अधिकता सूचित करने के लिये इस शब्द के बहुवचन रूप 'घने' का प्रयोग होता है। दे० "घने"।

घनाक्षरी–संज्ञा पुं० [सं०] दंडक या मनहर छंद जिसे साधारण लोग कवित्त कहते हैं। यह छंद ध्रुपद राग में गाया जा सकता है। १६—१५ के विश्राम से प्रत्येक चरण में ३१ अक्षर होते हैं। अंत में प्रायः गुरु वर्ण होता है। शेष के लिये लघु गुरु का कोई नियम नहीं।

घनाघन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) मस्त हाथी। (३) बरसनेवाला बादल।

घनात्मक–वि० [सं०] (१) जिसकी लंबाई, चौड़ाई, और मोटाई (ऊँचाई वा गहराई) बराबर हो। (२) जो लंबाई, चौड़ाई और मोटाई को गुणा करने से निकला हो (क्षेत्र-फल के लिये)।

घनानंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गद्य काव्य का एक भेद। (२) हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि का नाम जिसको आनंदघन भी कहते हैं।

घनिष्ट–वि० [सं०] (१) गाढ़ा। घना। बहुत अधिक। (२) पास का। निकटस्थ। नज़दीकी। जैसे, घनिष्ट संबंध।

घने–वि० [सं० घन] बहुत। अनेक (संख्या में)। उ०—बापुरो विभीषण पुकारि बार बार कह्यौ बानर बड़ी बलाइ घने घर घालिहै।—तुलसी।

घनेरा*†–वि० [हिं० घना + एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० घनेरी] बहुत अधिक। अतिशय। उ०—कोपि कपिन दुरघट गढ़ घेरा। नगर कोलाहल भयो घनेरा।—तुलसी।

विशेष—संख्या की अधिकता सूचित करने के लिये इस शब्द के बहुवचन रूप "घनेरे" का प्रयोग होता है। दे० "घनेरे"।

घनेरे–वि० [हिं० घने] बहुत। अधिक। अगणित (संख्या में)। उ०—(क) बन प्रदेश मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाँउँ गन खेरे।—तुलसी। (ख) निपट बसेरे अघ औगुण घनेरे नर नारिऊ अनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं।—तुलसी।

घनो†*–वि० दे० "घना"। उ०—हाट बाट हाटक पिघलि चल्यौ घी सो घनो, कनक कराही लंक तलफत ताय सो।—तुलसी।

घनोपल–संज्ञा पुं० [सं०] ओला। करका। पत्थर। बिनौरी।

घन्नई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० घड़ा + नाव] मिट्टी के घड़ों और लकड़ी के लट्ठों को जोड़ कर बनाया हुआ बेड़ा जिससे छोटी छोटी नदियाँ पार करते हैं।

घपचिआना–क्रि० अ० [हिं० घपची] घबड़ाना। चक्कर में आना।

घपची–संज्ञा स्त्री० [हिं० घन + पंच] किसी वस्तु को पकड़ कर घेर रखने के लिये दोनों हाथों के पंजों की गठान। दोनों हाथों की मज़बूत पकड़। उ०—कितना ही उसने मुझ को छुड़ाया झिड़क झिड़क। पर मैं तो घपची बाँध के उसको चिमट गया।—नज़ीर।

क्रि० प्र०—बाँधना।

मुहा०—घपची बाँध कर पानी में कूदना = दोनों घुटनों को छाती से सटा कर और उन्हें दोनों हाथों के घेरे में कस कर पानी में कूदना।

घपला–संज्ञा पुं० [अनु०] दो परस्पर भिन्न वस्तुओं की ऐसी मिलावट जिसमें एक से दूसरे को अलग करना कठिन हो। गड़बड़। गोलमाल।
क्रि० प्र०—करना।—डालना।—पड़ना।

घपुआ†–वि० [हिं० भकुआ] मूर्ख। जड़। नासमझ। उल्लू। भकुआ।

घपूचंद–संज्ञा पुं० [हिं० घपुआ] मूर्ख। जड़। नासमझ।

घपोकानंदन–संज्ञा पुं० [हिं० घपुआ] मूर्ख। जड़। नासमझ।

घप्पू–वि० दे० "घपुआ"।

घबड़ाना–क्रि० अ० दे० "घबराना"।

घबड़ाहट–संज्ञा स्त्री० दे० "घबराहट"।

घबराना–क्रि० अ० [सं० गह्वर वा हिं० गड़बड़ाना] (१) व्याकुल होना। अधीर वा अशांत होना। चंचल होना। भय वा आशंका से आतुर होना। उद्विग्न होना। उ०—(क) उसकी बीमारी का हाल सुन सब घबरा गए। (ख) सेना को आते देख नगरवाले घबरा कर भागने लगे। (२) सकपकाना। भौचक्का होना। किंकर्त्तव्य विमूढ़ होना। ऐसी अवस्था में होना जिसमें यह न सूझ पड़े कि क्या कहें वा क्या करें। सिटपिटाना। हक्का बक्का होना। उ०—वकील की जिरह से गवाह घबरा गया। (३) हड़बड़ाना। उतावली में होना। जल्दी मचाना। आतुर होना। उ०—घबराओ मत, थोड़ी देर में चलते हैं। (४) ऊबना। जी न लगना। उचाट होना। उ०—यहाँ अकेले बैठे बैठे जी घबराता है।
संयो० क्रि०—उठना।—जाना।
क्रि० स० (१) व्याकुल करना। अधीर करना। शांति-भंग करना। उ०—तुमने तो आकार मुझे घबरा दिया। (२) भौचक्का करना। ऐसी अवस्था में डालना जिसमें कर्त्तव्य न सूझ पड़े। (३) जल्दी में डालना। हड़बड़ी डालना। उ०—उसको घबराओ मत, धीरे धीरे काम करने दो। (४) हैरान करना। नाकों दम करना। उचाट करना।

घबराहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० घबराना] (१) व्याकुलता। अधीरता। उद्विग्नता। अशांति। (२) किंकर्त्तव्यविमूढ़ता। ऐसी अवस्था जिसमें क्या कहना या करना चाहिए यह न सूझ पड़े। (३) हड़बड़ी। उतावली।

घमंका*†–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) घूँसा। मुष्टिकाप्रहार।
क्रि० प्र०—देना।—पड़ना।—जड़ना।
(२) वह प्रहार या चोट जिसके पड़ने से "घम" शब्द हो।

घमंड–संज्ञा पुं० [सं० गर्व ?] (१) अभिमान। गरूर। शेखी। अहंकार। गर्व। उ०—घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया-हीन डरपत मन मोरा।—तुलसी।
क्रि० प्र०—करना।—होना।—रखना।
मुहा०—घमंड पर आना या होना = अभिमान करना। इतराना। घमंड निकलना = घमंड दूर होना। गर्व चूर्ण होना। घमंड टूटना = मान ध्वस्त होना। गर्व चूर्ण होना।
(२) बल। बीरता। ज़ोर। भरोसा। सहारा। आसरा। जैसे, तुम किसके घमंड पर इतना कूदते हो? उ०—जासु घमंड बदति नहिं काहुहि कहा दुरावति मोसों।—सूर।

घमंडिन–वि० स्त्री० दे० "घमंडी"।

घमंडी–वि० [हिं० घमंड] [स्त्री० घमंडिन] अहंकारी। अभिमानी। मगरूर। शेखीबाज।

घम–संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो कोमल तल पर कड़ा आघात लगने से होता है। जैसे, पीठ पर मूका घम से लगा।

घमकना–क्रि० अ० [अनु० घम] 'घम घम' वा और किसी प्रकार का गंभीर शब्द करना। घहराना। गरजना। उ०—सुकवि घुमड़ि घनघटा बाँधि घमकत पावस घन।—व्यास।
† क्रि० स० घम से घूँसा मारना। मुष्टिक प्रहार करना।

घमका–संज्ञा पुं० [अनु०] प्रहार का शब्द। चोट की आवाज। गदा वा घूँसा पड़ने का शब्द। आघात की ध्वनि। उ०—(क) घाइन के घमके उठैं, दियो डमरू हर डार। नचे जटा फटकारि कै, भुज पसारि ततकार।—लाल। (ख) घाइन घमके मचे घनेरे। बखतरपोस गिरे बहुतेरे।—सूदन।
संज्ञा पुं० [हिं० घाम] ऊमस। घमसा।

घमखोर†–वि० [हिं० घाम + फ़ा० खोर (खानेवाला)] घाम खानेवाला। जो धूप में रह सके।

घमघमाना–क्रि० अ० [अनु०] घम घम शब्द करना। गंभीर शब्द करना।
क्रि० स० (१) प्रहार करना। भारी आघात लगाना। (२) घूँसा मारना।

घमर–संज्ञा पुं० [अनु०] नगाड़े, ढोल आदि का भारी शब्द। गंभीर ध्वनि। उ०—माखन खात पराए घर को। नित प्रति सहस मथानी मथिए मेघ शब्द दधि माट घमर को।—सूर।

घमरा–संज्ञा पुं० [सं० भृंगराज] भँगरा। भँगरैया। भृंगराज नाम की बूटी।

घमरौल–संज्ञा स्त्री० [अनु० घम घम] (१) हल्ला गुल्ला। ऊधम। (२) गड़बड़। घोटाला।

घमसा–संज्ञा पुं० [हिं० घाम] (१)। धूप की गरमी। ऊमस। वह गरमी जो अधिक धूप पड़ने और हवा रुकने के कारण होती है। (२) घनापन। सघनता। आधिक्य।

घमसान–संज्ञा पुं० [अनु० घम + सान (प्रत्य०)] भयंकर युद्ध। घोर रण। गहरी लड़ाई। उ०—(क) हरि को आयुध अवशि धरैहैं ठानि घोर घमसान।—रघुराज। (ख) सान धरें फरसान लिये घमसान करैं।—सूदन।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
यौ०—घमसान का = घोर भयंकर। जैसे, घमसान की लड़ाई।

घमाका–संज्ञा पुं० [अनु० घम] 'घम' का शब्द। भारी आघात का शब्द।

घमाघम–संज्ञा स्त्री० [अनु० घम] (१) घम घम की ध्वनि। (२) धूम-धाम। चहल पहल। (३) भारी आघात का शब्द।

क्रि० वि० घमघम शब्द के साथ। भारी आघात के शब्द के साथ। उ०—उसने घमाघम चार घूँसे जमा दिए।

घमाघमी–संज्ञा स्त्री० (१) दे० "घमाघम"। (२) मारपीट।

घमाना†–क्रि० अ० [हिं० घाम] (१) घाम लेना। सरदी हटाने के लिये धूप में बैठना। (२) धूप खाना। धूप ऊपर पड़ने देना।

घमायल–वि० [हिं० घमाना] घाम की गरमी से पका हुआ। घाम के प्रभाव से युक्त (प्रायः फल के लिये)।

घमासान–संज्ञा पुं० दे० "घमसान"।

घमाहा†–संज्ञा पुं० [घाम] वह बैल जो धूप में काम करने से जल्दी हाँपने लगे। वह बैल जो धूप न सह सके।

घमूह–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो प्रायः करील आदि की झाड़ियों के नीचे बहुत होती है। इस का स्वाद कुछ कड़ुआपन लिए नमकीन होता है। इस के नरम कल्लों ही को चौपाए खाते हैं। यह घास मथुरा, आगरा, फीरोज़पुर, झंग आदि स्थानों में होती है।

घमोई–संज्ञा स्त्री० [देश०] कटंगी बाँस का एक प्रकार का रोग जिस के पैदा होने से उस बाँस में नये कल्ले नहीं निकलने पाते। इस बाँस की जड़ों में बहुत से पतले और घने अंकुर निकलते हैं जो बाँस की बाढ़ और नए कल्लों की उत्पत्ति रोक देते हैं। उ०—अब ही ते मन संयस होई। बेनु बंस तैं भयेसि घमोई।—तुलसी।

घमोय–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पौधा जो गोभी की तरह का होता है। इसके पत्ते कटावदार तथा काँटों से भरे होते हैं। पत्तों के पीछे तथा कटाव की नोकों पर काँटे होते हैं। इस में केवल एक डंठल ऊपर की ओर जाता है, इधर उधर टहनियाँ नहीं फैलतीं। फूल पीले और प्याले के आकार के होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर कँटीले बीजकोश रह जाते हैं। इस के डंठल और पत्तों से एक प्रकार का पीला रस निकलता है जो आँख के रोगों में उपकारी माना जाता है। यह पौधा उजाड़ स्थानों में आप से आप बहुत सा उगता है।

पर्य्या०—स्वर्णक्षीरी। सत्यानाशी। भँडभाँड।

घर–संज्ञा पुं० [सं० गृह] [वि० घराऊ, घरू, घरेलू] (१) मनुष्यों के रहने का स्थान जो दीवार आदि से घेर कर बनाया जाता है। निवासस्थान। आवास। मकान।

यौ०—घरकत्ती। घरघालन। घरघुसना। घरजमाई। घरजोत। घरदासी। घरद्वार। घरफोरी। घरबसा। घरबसी। घरबार। घरबैसी।

मुहा०—**अपना घर समझना**=आराम की जगह समझना। संकोच का स्थान न समझना। ऐसा स्थान समझना जहाँ घर के ऐसा व्यवहार हो। उ०—इसे आप अपना घर समझिए, जो ज़रूरत हो माँग लीजिए। **घर उठना**=घर बनना। **घर उजड़ना**=(१) परिवार की दशा बिगड़ना। कुल की समृद्धि नष्ट होना। घर पर तबाही आना। घर की संपत्ति नष्ट होना। (२) परिवार पर विपत्ति आना। घर के प्राणियों का तितर बितर होना वा मर जाना। **घर करना**=(१) बसना। रहना। निवास करना। घर बनाना। उ०—उन्हों ने अब जंगल में अपना घर किया है। (२) किसी वस्तु का जमने वा ठहरने के लिये जगह बनाना। समाने वा अँटने के लिये स्थान निकालना। उ०—पैर ने जूते में अभी घर नहीं किया है इसी से जूता कसा मालूम होता है। (३) किसी वस्तु का जमने वा ठहरने के लिये गड्ढा करना। धुसना। धँसना। बिल बनाना। छेद करना। उ०—(क) फोड़े पर जो पट्टी रक्खी है वह चार दिन में घर करके सब मवाद निकाल देगी। (ख) कीड़े काठ में घर करते हैं। (४) घर का प्रबंध करना। घर सँभालना। किफ़ायत से चलना। उ०—अब तुम बड़े हुए, घर करना सीखो। **(स्त्री का) घर करना**=पत्नी भाव से किसी के घर में रहना। ख़सम करना। **आँख में घर करना**=(१) इतना पसंद आना कि उसका ध्यान सदा बना रहे। जँचना। (२) प्रिय होना। प्रेमपात्र होना। **चित्त, मन वा हृदय में घर करना**=इतना पसंद आना कि उसका ध्यान सदा बना रहे। जँचना। अत्यंत प्रिय होना। प्रेमपात्र होना। **दीआ घर करना**=दीपक बुझाना। **घर का**=(१) निज का। अपना। जैसे, घर का मकान, घर का पैसा, घर का बगीचा। (२) आपस का। पराए का नहीं। संबंधियों वा आत्मीय जनों के बीच का। जैसे घर का मामला, घर की बात, घर का वास्ता। उ०—उनका हमारा तो घर का मामला है। (३) अपने परिवार वा कुटुंब का प्राणी। संबंधी। भाई बंधु। सुहृद। उ०—तीन बुलाए तेरह आए नए गाँव की रीत। बाहरवाले खा गए घर के गावें गीत। (४) पति। स्वामी। भर्त्तार। उ०—घर के हमारे परदेस को सिधारे याते दया करि बूझी हम रीति राहवारे की।—कविंद। **घर का अच्छा**=समृद्ध कुल का। अच्छे ख़ानदान का। खाने पीने से ख़ुश। **घर का आदमी**=अपने कुटुंब का प्राणी। भाई बंधु। इष्ट मित्र। उ०—आप तो घर के आदमी हैं, आप से छिपाना क्या? **घर का आँगन हो जाना**=(१) घर खँडहर हो जाना। घर उजड़ जाना। घर पर तबाही आना। (२) स्त्री को बच्चा होना। घर में संतान उत्पन्न होना। **घर का उजाला**=(१) कुलदीपक। कुल की समृद्धि करनेवाला। कुल की कीर्त्ति बढ़ानेवाला। भाग्यवान। (२) वह जिसे देख कर घर के सब प्राणी प्रफुल्लित हों। अत्यंत प्रिय। लाड़ला। बहुत प्यारा। (३) बहुत सुंदर। रूपवान्। **अँधेरे घर का उजाला**=(१) भाग्यवान्। तेजस्वी। कुलदीपक। (२) अत्यंत सुंदर। अत्यंत रूपवान्। **घर का**

घरवा वा घरौना करना = घर उजाड़ना। घर सत्यानाश करना। **घर का बोझ** = गृहस्थी का कारबार। **घर का बोझ उठाना या सँभालना** = गृहस्थी का काम काज देखना। घर का प्रबंध करना। **घर का भेदी** = घर का सब भेद जाननेवाला। ऐसा निकटस्थ मनुष्य जो सब रहस्य जानता हो। उ०—**घर का भेदिया लंका दाह।** **घर का भोला** = अपने परिवार में सब से मूर्ख। बिलकुल सीधा सादा। उ०—**वह ऐसा ही तो घर का भोला है जो इतने में ही तुम्हें देदेगा।** **घर का काट खाना वा काटने दौड़ना** = घर में रहना अच्छा न लगना। घर में जी न लगना। घर उजाड़ और भयानक लगना। घर में उदासी छाना। (**जब घर का कोई प्राणी कहीं चला जाता है या मर जाता है तब ऐसा बोलते हैं।**) **घर का न घाट का** = (१) जिसके रहने का कोई निश्चित स्थान न हो। (२) निकम्मा। बेकाम। **घर का हिसाब** = (१) अपने लेन देन का लेखा। निज का लेखा। (२) अपने इच्छानुसार किया हुआ हिसाब। मनमाना लेखा। **घर का रास्ता** = सीधा वा सहल काम। उ०—**इस काम को घर का रास्ता न समझना।** **घर का मर्द, शेर, वीर वा बहादुर** = अपने ही घर में बल दिखाने वा बढ़ बढ़ कर बोलनेवाला। परोक्ष में शेखी बघारनेवाला और मुकाबिले के लिये सामने न आनेवाला। **घर के बाढ़े** = घर ही में बढ़ बढ़ कर बात करनेवाला। बाहर कुछ पुरुषार्थ न दिखानेवाला। पीठ पीछे शेखी बघारनेवाला। सामने न आनेवाला। उ०—(क) **मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहिँ के बाढ़े।—तुलसी।** (ख) **ग्वालिन घर ही की बाढ़ी। निस दिन देखत अपनेही आँगन ठाढ़ी।—सूर।** **घर का नाम उछालना वा डुबोना** = कुल को कलंकित करना। अपने भ्रष्ट और निकृष्ट आचरण से अपने परिवार की प्रतिष्ठा खोना। **घर की** = घरवाली। गृहिणी। स्त्री। **घर की बात** = (१) कुल से संबंध रखनेवाली बात। (२) आपस की बात। आत्मीय जनों के बीच की बात। **घर की पूँजी** = अपने पास की संपत्ति। निज का धन। **घर की तरह बैठना** = आराम से बैठना। खूब फैल कर बैठना। बैठने में किसी प्रकार का संकोच न करना। **घर की तरह बैठो** = सिमट कर बैठो। ऐसा बैठो कि औरों के लिये भी बैठने की जगह रहे। **घर की तरह रहना** = आराम से रहना। अपना घर समझ कर रहना। **घर की खेती** = अपनी ही वस्तु। अपने यहाँ होने वा मिलनेवाली चीज़। उ०—**इसके लिये क्या बात है यह तो घर की खेती है, जितनी कहिए उतनी भेज दें।** **घर के घर** = (१) भीतर ही भीतर। गुप्त रीति से। बिना और लोगों को सूचना दिए। उ०—**तुमने तो घर के घर सौदा कर लिया, हमें बतलाया तक नहीं।** (२) बहुत से घर। उ०—**हैज़े में घर के घर साफ़ होगए।** **घर के घर रहना** = किसी व्यवसाय में न हानि उठाना न लाभ, बराबर रहना। उ०—**इस सौदे में हम घर के घर रहे।** **घर के घर बंद होना** = बहुत से घरों का उजड़ जाना। बहुत से घरों के रहनेवालों का मर जाना वा कहीं चला जाना। **घर खोज मिटा** = जिसके घर का चिह्न तक न रह जाय। जिसका कुल क्षय हो जाय। नष्ट। निगोड़ा। (स्त्री०)। **घर खोज मिटे** = घर बरबाद हो। सत्यानाश हो। (**स्त्रियों का अभिशाप वा गाली**)। **घर खोना** = घर सत्यानाश करना। घर उजाड़ना। घर की संपत्ति नष्ट करना। **घर गई** = घर उजड़ो। निगोड़ी। (**स्त्रियों का अभिशाप वा गाली**)। **घर घर** = हर एक घर में। सब के यहाँ। उ०—**घर घर यही हाल है।** **घर घर के हो जाना** = तितर बितर हो जाना। इधर उधर हो जाना। मारे मारे फिरना। बेठिकाने हो जाना। उ०—**तेरे मारे यातुधान भये घर घर के।—तुलसी।** **घर घलना** = (१) घर बिगड़ना। घर उजड़ना। परिवार की बुरी दशा होना। (२) कुल में कलंक लगना। उ०—**कहे ही बिना घर केते घले जू।—देव।** **घर घाट** = (१) रंग ढंग। चाल ढाल। गति और अवस्था। उ०—**पहले उनका घर घाट देख लो तब कुछ करो।** (२) ढंग। ढब। प्रकृति। उ०—**वह और ही घर घाट का आदमी है।** (३) ठौर। ठिकाना। घर द्वार। स्थिति। उ०—**घर घाट देख कर संबंध किया जाता है।** **घर घाट मालूम होना** = रंग ढंग मालूम होना। सारी अवस्था विदित होना। दशा का पूर्ण परिचय होना। सब भेद मालूम होना। कोई बात छिपी न रहना। **घर घालना** = (१) घर बिगाड़ना। परिवार में अशांति वा दुःख फैलाना। परिवार को हानि पहुँचाना। उ०—**इस जूए ने न जाने कितने घर घाले हैं।** (२) कुल को दूषित करना। कुल की मर्य्यादा भ्रष्ट करना। कुल में कलंक लगाना। उ०—**इस कुटनी ने न जाने कितने घर घाले हैं।** (३) लोगों को मोहित करके वश में करना। प्रेम से व्यथित करना। उ०—**अभी इसे सयानी तो होने दो, न जाने कितने घर घालेगी।** **(बाजारू)।** **घर-घुसना** = घर में घुसा रहनेवाला। हर घड़ी अंतःपुर में पड़ा रहनेवाला। सदा स्त्रियों के बीच में बैठा रहनेवाला। बाहर निकल कर काम काज न करनेवाला। **घर चढ़ कर लड़ने आना** = लड़ाई करने के लिये किसी के घर पर जाना। **घर चलना** = गृहस्थी का निर्वाह होना। घर का खर्च बर्च चलना। **घर चलाना** = गृहस्थी का निर्वाह करना। **घर डुबोना** = (१) घर की संपत्ति नष्ट करना। घर तबाह करना। (२) कुल में कलंक लगाना। **घर डूबना** = (१) घर तबाह होना। (२) कुल में कलंक लगना। **घर जमना** = गृहस्थी ठीक होना। घर का सामान इकट्ठा होना। **घर जाना** = घर का बिगड़ना। कुल का नाश होना। **घर जुगुत** = गृहस्थी का प्रबंध। **घर-झँकनी** = एक घर से दूसरे घर घूमनेवाली। अपने घर न बैठनेवाली। **घर तक पहुँचना** = माँ बहिन की गाली देना। बाप दादों तक चढ़ जाना। बाप दादे

बखानना। **घर तक पहुँचाना**=(१) समाप्ति तक पहुँचाना। संपूर्ण करना। ठिकाने तक ले जाना। पूरा उतारना। उ०—**जिस काम को उठाओ उसे घर तक पहुँचाओ।** (२) बुद्धि ठिकाने ले आना। बात को ठीक ठीक समझा देना। क़ायल करना। उ०—**झूठे को घर तक पहुँचा दिया। घर दामाद लेना**=दामाद को अपने घर रखना। **घर देखना**=किसी के घर कुछ माँगने जाना। उ०—**यहाँ कुछ न मिलेगा, दूसरा घर देखो। घर देखना, देख लेना या पाना**=रास्ता देख लेना। परच जाना। ढर्रा निकाल लेना। उ०—(क) **तुम और किसी से तो कुछ माँगते नहीं, सीधा हमारा घर देख पाया है।** (ख) **बुढ़िया के मरने का सोच नहीं, यम के घर देख लेने का सोच है। किसी के घर पड़ना**=किसी के घर में पत्नी भाव से जाना। (**किसी वस्तु का**) **घर पड़ना**=घर में आना। प्राप्त होना। मिलना। मोल मिलना। उ०—**यह चीज़ क्या भाव घर पड़ी? घर पीछे**=एक एक घर में। एक एक घर से। उ०—**घर पीछे एक रुपया वसूल करो। घर फटना**=(१) मकान की दीवार आदि में दरार पड़ना। (२) घर में बच्चा उत्पन्न होना। (३) छाती फटना। बुरा लगना। असह्य होना। न भाना। उ०—**लेने को तो रुपया लिया अब देते हुए क्यों घर फटता है?** (४) घर में बिगाड़ होना। **घर फूँक तमाशा वा मामला**=घर का सत्यानाश करनेवाली बात। ऐसी बात जिससे घर की संपत्ति नष्ट हो। घर पर तबाही लानेवाली चाल ढाल। **घर फूँक तमाशा देखना**=घर की संपत्ति नष्ट करके अपना मनोरंजन करना। अपनी हानि करके मौज उड़ाना। **घर फोड़ना**=घर में विग्रह उत्पन्न करना। परिवार में झगड़ा लगाना। परिवार में उपद्रव खड़ा करना। **घर बंद होना**=(१) घर में ताला लगना। (२) घर में प्राणी न रह जाना। घर का कोई मालिक न रहना। घर के प्राणियों का तितर बितर होना। (३) किसी घर से कोई संबंध न रह जाना। **घर बिगाड़ना**=(१) घर उजाड़ना। घर की समृद्धि नष्ट करना। घर तबाह करना। परिवार की हानि करना। (२) घर में फूट फैलाना। घर में झगड़ा खड़ा करना। घर के प्राणियों में परस्पर लड़ाई कराना। (३) कुलवती को बहकाना। घर की बहू बेटी को बुरे मार्ग पर ले जाना। **घर बनना**=(१) मकान तैयार होना। (२) घर की आर्थिक स्थिति अच्छी होना। घर संपन्न होना। घर भरा पूरा होना। **घर बनाना**=(१) मकान तैयार करना। (२) निवासस्थान ठहराना। बसना। जम कर रहना। (३) घर भरना। घर को धन धान्य से पूर्ण करना। घर की आर्थिक दशा सुधारना। अपना लाभ करना। उ०—**नौकरों पर कोई आँख रखनेवाला नहीं है, वे अपना घर बना रहे हैं। घर बरबाद होना**=घर बिगड़ना। घर की समृद्धि नष्ट होना। परिवार की दशा बिगड़ना। **घर बसना**=(१) घर आबाद होना। घर में प्राणियों का होना। (२) घर की दशा सुधरना। घर में धन धान्य होना। (३) घर में स्त्री वा बहू आना। ब्याह होना। (४) दुलहा दुलहिन का समागम होना। **घर बसाना**=(१) घर आबाद करना। घर में नए प्राणी लाना। (२) घर की दशा सुधारना। घर को धन धान्य से पूरित करना। (३) घर में स्त्री वा बहू लाना। विवाह करना। **घर बैठना**=(१) घर में बैठना। एकांत सेवन करना। (२) काम पर न जाना। काम छोड़ना। नौकरी छोड़ना। उ०—(क) **वह चार दिन कोई काम करता है, फिर घर बैठ रहता है।** (ख) **तुमसे काम नहीं होता, तुम घर बैठो।** (३) कोई काम न मिलना। बेकार रहना। बेरोज़गार रहना। जीविका न रहना। उ०—**आज कल वह घर बैठा है, उसे कोई काम दिलाओ। घर बैठी रोटी**=बिना मिहनत की रोटी। बिना परिश्रम की जीविका। **घर बैठे**=(१) बिना कुछ काम किए। बिना हाथ पैर डुलाए। बिना परिश्रम। उ०—**घर बैठे १००) महीना मिलता है, कम है?** (२) बिना कहीं गए आए। बिना कुछ देखे भाले। बिना बाहर जाकर सब बातों का पता लगाए। बिना देश काल की अवस्था जाने। उ०—**घर बैठे बातें करते हो, बाहर जाकर देखो तो जान पड़े।** (३) बिना कहीं गए आए। एक ही स्थान पर रहते हुए। बिना यात्रा आदि का कष्ट उठाए। उ०—**इस पुस्तक को पढ़ो और घर बैठे देश देशांतरों का वृत्तांत जानो। घर बैठे की नौकरी**=बिना परिश्रम की नौकरी। **घर बैठे बेर दौड़ाना**=मंत्र के बल से अपने पास किसी वस्तु वा व्यक्ति को बुला लेना। मोहन करना। मूठ चलाना। **घर बैठना**=अधिक वर्षा से मकान का गिरना। उ०—**लगातार बारह घंटे पानी बरसने से कई घर बैठ गए।** (**किसी स्त्री का किसी पुरुष के**) **घर बैठना**=किसी के घर पत्नी भाव से जाना। किसी को खसम बनाना। **घर भर**=घर के सब प्राणी। सारा परिवार। उ०—**घर भर यहाँ आया है। घर भरना**=(१) घर को धन धान्य से पूर्ण करना। घर में धन इकट्ठा करना। अपना लाभ करना। माल अपने घर में रखना। (२) (अकर्मक) घाटा पूरा होना। हानि की पूर्ति होना। (३) घर का प्राणियों से भरना। घर में मेहमानों और कुटुंबवालों का इकट्ठा होना। **घर में**=स्त्री। जोरू। घरवाली। उ०—**उनके घर में बीमार हैं।** (**बोलचाल**)। **कुछ घर में आना**=अपना लाभ होना। प्राप्ति होना। उ०—**उनकी नौकरी जाने से घर में क्या आ जायगा।** (**किसी स्त्री को**) **घर में डालना**=रख लेना। रखेली बनाना। जोरू बनाना। (**किसी स्त्री का**) **घर में पड़ना**=किसी के घर पत्नी भाव से जाना। किसी की घरवाली होना। **घर से**=(१) पास से। पल्ले से। उ०—**तुम्हारे घर से क्या गया।** (२) पति। स्वामी। (३) स्त्री। पत्नी। (**बोलचाल**)। **घर से पाँव निकालना**=इधर उधर बहुत घूमना। शासन में न रहना। स्वेच्छाचार करना। मर्य्यादा के बाहर

चलना। उ०—तुम ने बहुत घर से पांव निकाले हैं मैं अभी जाकर कहता हूँ। घर से बाहर पांव निकालना = वित्त से बाहर काम करना। समाई से अधिक खर्च करना। घर से देना = (१) अपने पास से देना। अपनी गांठ से देना। उ०—जब वह तुम्हारा रुपया देता ही नहीं है तब क्या मैं तुम्हें अपने घर से दूँगा? (२) अपना रुपया खोना। स्वयं हानि उठाना। उ०—तुम इनकी ज़मानत न करो, नहीं तो घर से देना होगा। घर सेना = (१) घर में पड़े रहना। बाहर न निकलना। (२) बेकार बैठे रहना। इधर उधर काम धंधे के लिये न जाना। घर होना = (१) गृहस्थी चलना। निर्वाह होना। घर का काम चलना। उ०—ऐसे करतबों से कहीं घर होता है? (२) घर के प्राणियों में मेल जोल होना। घर में सुख शांति होना। स्त्री पुरुष में बनना।

(२) जन्मस्थान। जन्मभूमि। स्वदेश। (३) घराना। कुल। वंश। खानदान। जैसे, किसी अच्छे वा बड़े घर लड़की ब्याहेंगे, वह अच्छे घर का लड़का है। उ०—जो घर बर कुल होय अनूपा। करिय विवाह सुता अनुरूपा।—तुलसी। (४) कार्यालय। कारखाना। आफ़िस। दफ़्तर। जैसे, डाकघर, तारघर, पुतलीघर, रेलघर, बंकघर इत्यादि। (५) कोठरी। कमरा। उ०—ऊपर के खंड में केवल चार घर हैं। (६) आड़ी खड़ी खिँची हुई रेखाओं से घिरा स्थान। कोठा। खाना। जैसे, कुंडली वा यंत्र का घर। (७) शतरंज आदि का चौकोर खाना। कोठा।

मुहा०—घर बंद होना = गोटी चलने का रास्ता न रहना।

(८) कोई वस्तु रखने का डिब्बा वा चोंगा। कोश। खाना। केस। जैसे, चशमे का घर, तलवार का घर (९) पटरी आदि से घिरा हुआ स्थान। खाना। कोठा। जैसे, अलमारी के घर, संदूक के घर। (१०) ग्रहों की राशि। (११) छोटा गड्ढा। किसी वस्तु के अँटने वा समाने का स्थान। जैसे, पानी ने स्थान स्थान पर घर कर लिया है।

क्रि० प्र०—करना।

(१२) किसी वस्तु (नगीना आदि) को जमाने वा बैठाने का स्थान। जैसे, नगीने का घर। (१३) छेद। बिल। सूराख। जैसे, छलनी के घर, बटन के घर।

मुहा०—घर भरना = छेद मूँदना।

(१४) राग का स्थान। मुकाम। स्वर। जैसे, यह चिड़िया कई घर बोलती है।

मुहा०—घर में कहना = ठीक ठीक स्वर ग्राम के साथ गाना। घर कहना = (१) ठीक स्वर के साथ गाना। (२) चिड़ियों का अच्छी बोली बोलना। कोकिल आदि का मधुर स्वर से बोलना। (१५) उत्पत्ति स्थान। मूल कारण। उत्पन्न करनेवाला। जैसे, रोग का घर खाँसी, खीरा रोग का घर है। (१६) गृहस्थी। घरबार। उ०—घर देख कर चलो। (१७) घर का असबाब। गृहस्थी का सामान। उ०—वह अपना इधर उधर घूमता है, मैं घर लिए बैठी रहती हूँ। (स्त्रियों०)। (१८) भग वा गुदेंद्रिय। (बाज़ारू)।

क्रि० प्र०—चिरना।—फटना।

(१९) चोट मारने का स्थान। वार करने का स्थान वा अवसर।

मुहा०—घर खाली छोड़ना वा देना = वार न करना। वार चूक जाना।

(२०) आँख का गोलक वा गड्ढा। (२१) चौखटा। फ्रेम। जैसे, तसवीर का घर। (२२) वह स्थान जहाँ कोई वस्तु बहुतायत से हो। भांडार। खज़ाना। जैसे, काश्मीर मेवों का घर है। (२३) दावँ। पेंच। युक्ति। उ०—वह कुश्ती के सब घर जानता है। (२४) केला, मूँज और बाँस का जो एकत्र घने होकर उगते हैं।

यौ०—घर घाट = दाँव पेंच।

घरऊ†-वि० दे० "घराऊ" या "घरू"।

×**घरघराना**-क्रि० अ० [अनु०] घर्र घर्र शब्द करना। कफ़ के कारण गले से सांस लेते समय शब्द निकलना।

संज्ञा पुं० [हिं० घर + घराना] कुल। परिवार। वंश। उ०—अंधा बाँटे शीरनी घर घराने खाँय।

घरघराहट-संज्ञा पुं० [अनु० घर्र घर्र] (१) घर्र घर्र शब्द निकलने का भाव। (२) कफ़ के कारण गले से सांस लेते समय निकला हुआ शब्द।

घरघाल-वि [हिं० घर + घालना] घर बिगाड़नेवाला। कुल की समृद्धि नष्ट करनेवाला। परिवार की बुरी दशा करनेवाला। कुल में कलंक लगानेवाला। उ०—घरघाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी।—तुलसी।

घरघालन-वि० [हिं० घर + घालन] [स्त्री० घरघालनी] घर बिगाड़नेवाला। परिवार में दुःख वा अशांति फैलानेवाला। परिवार की दशा बिगाड़नेवाला। कुल में कलंक लगानेवाला। उ०—ये बड़े नैनें दिखाय दे नेक तू ए घरघालनी घूँघटवाली।

घरचित्ता-संज्ञा पुं० [हिं० घर + चीतर] एक प्रकार का साँप जो प्रायः मनुष्यों के घर में ही रहा करता है।

घरणी-संज्ञा स्त्री० दे० "घरनी"।

घरदासी-संज्ञा स्त्री० [हिं० घर + सं० दासी] गृहिणी। भार्या। पत्नी।

घरद्वार-संज्ञा पुं० [हिं० घर + सं० द्वार] (१) रहने का स्थान। ठौर। ठिकाना। उ०—बिना इनका घर द्वार जाने हम इनके विषय में क्या कह सकते हैं। (२) गृहस्थी। घर का आयोजन। उ०—जब वह बाहर जाता है तब उसे घर द्वार की कुछ भी सुध नहीं रहती। (३) निज की सारी

संपत्ति। उ०—हम अपना घर द्वार बेंच कर तुम्हारा रुपया चुका देंगे।

घरद्वारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० घरद्वार] एक प्रकार का कर जो पहले घर पीछे लिया जाता था।

घरन–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की पहाड़ी भेंड़ जिसे जुँबली भी कहते हैं।

घरनई†–संज्ञा स्त्री० दे० "घन्नई"।

घरनाल–संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + नाली] एक प्रकार की पुरानी तोप। रहकला।

घरनी–संज्ञा स्त्री० [सं० गृहिणी, प्रा० घरणी] घरवाली। भार्य्या। गृहिणी। उ०—(क) गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी प्रभु सो निषाद ह्वै कै बाद न बढ़ाइहौं।—तुलसी। (ख) तरनिहु मुनि घरनी होइ जाई।—तुलसी। (ग) बिन घरनी घर भूत का डेरा। (कहा०)।

घरपत्ती–संज्ञा स्त्री० [हिं० घर + पत्ती = भाग] चंदा जो घर पीछे लगाया जाय। बेहरी।

घरपरना–संज्ञा पुं० [सं० घर + परना = बनाना] कच्ची मिट्टी का गोल पिंडा जिस पर ठठेरे घरिया बनाते हैं।

घरफोड़नी–वि० [हिं० घर + फोड़ना] घर में झगड़ा लगानेवाली। घर के प्राणियों में बिगाड़ करानेवाली।

घरफोरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० घर + फोड़ना] परिवार में कलह फैलानेवाली। घर के प्राणियों में बिगाड़ करानेवाली। उ०—धरयो मोर घरफोरी नाऊँ।—तुलसी।

घरबसा–संज्ञा पुं० [हिं० घर + बसना] उपपति। यार। उ०—ए हो घरबसे ! आजु कौन घर बसे है।—घनानंद।

घरबसी–संज्ञा स्त्री० [हिं० घर + बसना] रखेली स्त्री। उपपत्नी। सुरैतिन।

वि० स्त्री० (१) घर बसानेवाली। घर की समृद्धि करनेवाली। भाग्यवती। (२) घर उजाड़नेवाली। सत्यानाश करनेवाली। (व्यंग्य) उ०—ललित लाल निहारि महरि मन विचारि डारि दे घरबसी लकुट बेगि कर ते।—तुलसी।

घरबार–संज्ञा पुं० [हिं० घर + बार = द्वार] [वि० घरबारी] (१) रहने का स्थान। ठौर ठिकाना। (२) गृहस्थी। घर का जंजाल। उ०—वह घर बार छोड़ कर साधु हो गया। (३) निज की सारी संपत्ति। उ०—घर बार बेंच कर हमारा रुपया दो।

घरबारी–संज्ञा पुं० [हिं० घर + बार] गृहस्थ। बाल बच्चोंवाला। कुटुंबी। उ०—अब तो श्याम भये घरबारी।—सूर।

घरबैसी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० घर + बैठना] घरबसी।

घरमकर*–संज्ञा पुं० [सं० घर्म्मकर] सूर्य्य।

घरर घरर–संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो किसी कड़ी वस्तु को दूसरी कड़ी वस्तु पर रगड़ने से होता है। घिसने का शब्द।

घररना–क्रि० अ० [अनु० घरर घरर] रगड़ना। घिसना।

घरवा, घरवाहा–संज्ञा पुं० [हिं० घर + वा या वाहा (प्रत्य०)] (१) छोटा मोटा घर। कुटी। (२) घरौंदा।

घरवात*†–संज्ञा स्त्री० [हिं० घर + वात (प्रत्य०)] घर की सम्पत्ति। घर का सामान। गृहस्थी। उ०—कृशगात ललात जो रोटिन को घरवात घरै खुरपी खरिया।—तुलसी।

घरवाला–संज्ञा पुं० [हिं० घर + वाला (प्रत्य०)] [स्त्री० घरवाली] (१) घर का मालिक। (२) पति। स्वामी।

घरवाली–संज्ञा स्त्री० [हिं० घर + वाली (प्रत्य०)] गृहणी। भार्य्या। पत्नी।

घरसा†*–संज्ञा पुं० [सं० घर्ष] रगड़ा। उ०—जोग न लोग लुगाइन के सँग, भोग न रोगन के घरसा में।—मतिराम।

घरहाँई†*–संज्ञा स्त्री० [हिं० घर + सं० घाती, हिं० घाई] घर घालनेवाली। घर में विरोध करानेवाली स्त्री। इधर का उधर लगानेवाली। चुगुलखोर स्त्री। (२) वह स्त्री जो किसी के घर की बुराई सबसे कहती फिरे। अपकीर्ति फैलानेवाली। निंदा फैलानेवाली। लांछन लगानेवाली। चबाव करनेवाली। उ०—(क) घरहाईं चबाव न जो करती तो भलो औ बुरो पहिचानती मैं।—हनुमान कवि। (ख) घरहाइन की घैरु हू लाज न सकी बचाय। अरी हरी चित लै गयो लोचन चारु नचाय।—शृं० सत०। (ग) घरहाइन चरचैं चलैं चातुर चाइन सैन। तदपि सनेह सने लगैं ललकि दुहूँ के नैन।—शृं० सत०।

वि० बदनामी फैलानेवाली। कलंक की बात चारों ओर कहनेवाली। चबाइन। चुगुलखोर। उ०—ये घरहाँईं लोगाई सबै निस द्यौस 'नेवाज' हमैं दहती हैं। प्राण पियारे तिहारे लिये सिगरे ब्रज को हँसिबो सहती हैं।—नेवाज।

घराऊ–वि० [हिं० घर + आऊ (प्रत्य०)] (१) घर का। घर से संबंध रखनेवाला। गृहस्थी संबंधी। जैसे, घराऊ झगड़ा। (२) आपस का। निज का। घर के प्राणियों वा इष्ट मित्रों के बीच का।

घराती–संज्ञा पुं० [हिं० घर + आती (प्रत्य०)] विवाह में कन्या की ओर के लोग। कन्यापक्ष के लोग। उ०—एक ओर सब बैठ बराती। एक ओर सब लगैं घराती।—रघुराज।

घराना–संज्ञा पुं० [हिं० घर + आना (प्रत्य०)] खानदान। वंश। कुल। उ०—वह अच्छे घराने का आदमी है।

घरिआर†*–संज्ञा पुं० दे० "घड़ियाल"।

घरिया–संज्ञा स्त्री० दे० "घड़िया"।

घरियाना†–क्रि० स० [हिं० घरी] घरी लगाना। कपड़े को तह लगा कर लपेटना।

घरियार†–संज्ञा पुं० दे० "घड़ियाल"।

घरियारी†–संज्ञा पुं० दे० घड़ियाली"।

घरी–संज्ञा स्त्री० (१) दे० "घड़ी"।
संज्ञा स्त्री० [हिं० घर = कोठा, खाना] तह। परत। लपेट। उ०—राखौं घरी बनाय, ह्वै आवौं नृपद्वार लौं। तब लीजो पट आय, जो चाहो सो दीजिये।

घरीक†*–क्रि० वि० [हिं० घरी + एक] एक घड़ी भर। थोड़ी देर। उ०—विरह दहन लागी दहन घर न घरीक थिराति। रहत घरी सी ती भई बूड़ति औ उतराति।—शृं० सत०।

घरुआ†–संज्ञा पुं० [हिं० घर + वा (प्रत्य०)] घर का अच्छा प्रबंध। गृहस्थी का ठीक ठीक निर्वाह। गृहस्थी का बँधा ख़र्च बर्च।

घरुआदार†–संज्ञा पुं० [हिं० घर + फ़ा० दार] [स्त्री० घरुआदारिन] घर वा गृहस्थी का उत्तम प्रबंध करनेवाला। वह मनुष्य जो समझ बूझ कर गृहस्थी का खर्च चलावे।

घरुआदारी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० घर + दारी] घर का उत्तम प्रबंध करने का भाव। गृहस्थी का निर्वाह।

घरुवा–संज्ञा पुं० दे० "घरुआ"।

घरू–वि० [हिं० घर + ऊ (प्रत्य०)] घर का। जिसका संबंध घर गृहस्थी से हो। घराऊ।

घरेला–वि० दे० "घरेलू"।

घरेलू–वि० [हिं० घर + एलू (प्रत्य०)] (१) पालतू। पालू। जो घर में आदमियों के पास रहे। (पशुओं के लिये) जैसे—घरेलू कुत्ता। (२) घर का। निज का। घरू। ख़ानगी। (३) घर का बना हुआ।

घरैया†–वि० [हिं० घर + ऐया (प्रत्य०)] घर का। अपने कुटुंब का। अत्यंत घनिष्ट संबंधी।
संज्ञा पुं० घर का आदमी। घर का प्राणी। निकटस्थ संबंधी। उ०—द्रोपदी विचारै रघुराज आज जाति लाज, सब हैं घरैया पै न टेर के सुनैया हैं।—रघुराज।

घरो†*–संज्ञा पुं० दे० "घड़ा"। उ०—विगरत मन सन्यास लेत जल नावत आम घरो सो।—तुलसी।

घरौंदा, घरौंधा–संज्ञा पुं० [हिं० घर + औंदा (प्रत्य०)] (१) कागज, मिट्टी, धूल आदि का बना हुआ छोटा घर जिसे छोटे बच्चे खेलने के लिये बनाते हैं। उ०—(क) पबि को पहार कियो ख्याल ही कृपाल राम बापुरो विभीषण घरौंधा हुतो बाल को।—तुलसी। (ख) अब हम दोनों ज़रा ज़रा से बच्चे नहीं हैं कि कागज का घरौंधा बनावैं।—शिवप्रसाद। (२) छोटा मोटा घर।

घरौना–संज्ञा पुं० [हिं० घर + औना (प्रत्य०)] (१) घर। मकान। निवास स्थान। उ०—तजि के घरौना काहू रूखन की छाया तरे, सोये हुहैं छौना द्वै बिछौना करि पात के।—हनुमान। (२) मिट्टी, धूल आदि का बना हुआ छोटा घर जिसे बच्चे खेलने के लिये बनाते हैं। घरौंदा।

घर्घर–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जिससे ताल दिया जाता था।
संज्ञा पुं० [अनु०] (१) गाड़ी आदि के चलने का गंभीर शब्द। घड़घड़ाहट। (२) घर घर शब्द।

घर्म–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घाम। धूप। सूर्यातप।
यौ०—घर्म-बिंदु। घर्मांशु।
(२) एक प्रकार का यज्ञपात्र।

घर्मबिंदु–संज्ञा पुं० [सं०] पसीना।

घर्मांशु–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। उ०—जयति घर्मांशु-संदग्ध संपाति नव पक्ष लोचन, दिव्य देह दाता।—तुलसी।

घर्रा–संज्ञा पुं० [अनु० घरर घरर = घिसने वा रगड़ने का शब्द] (१) एक प्रकार का अंजन जो अफीम, फिटकिरी, घी, कपूर, हड़, जली बत्ती, इलायची, नीम की पत्ती इत्यादि को एक में घिस कर बनाया जाता है। यह अंजन आंख आने पर लगाया जाता है। (२) गले की घरघराहट जो कफ़ के कारण होती है।
मुहा०—घर्रा चलना = मरते समय कफ़ छेंकने के कारण सांस का घरघराहट के साथ रुक रुक कर निकलना। घुँघुरू बोलना। घटका लगना। घर्रा लगना = दे० "घर्रा चलना"।

घर्राटा–संज्ञा पुं० [अनु० घर्र + आटा (प्रत्य०)] घर्र घर्र का शब्द। वह शब्द जो गहरी नींद में सांस लेते समय नाक से निकलता है।
मुहा०—घर्राटा मारना = (१) गहरी नींद में नाक से घर्र घर्र शब्द निकलना। उ०—वह घर्राटा मार कर सो रहा है। (२) गहरी नींद में सोना। घर्राटा लेना = दे० "घर्राटा मारना"।

घरामी–संज्ञा पुं० [हिं० घर + आमी (प्रत्य०)] छप्पर छाने का काम करनेवाला। छपरबंद।

घर्षण–संज्ञा पुं० [सं०] रगड़। घिस्सा।

घर्षणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिद्रा। हलदी।

घलना–क्रि० अ० [हिं० घालना] (१) छूट कर गिर पड़ना। फेंका जाना। (२) हथियार का चल जाना। चढ़े हुए तीर वा भरी हुई गोली का छूट पड़ना। उ०—तीर घल गया। (३) मारपीट हो जाना। जैसे—आज बाज़ार में उन दोनों से घल गई।
संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

घलाघल, घलाघली–संज्ञा स्त्री० [हिं० घलना] मारपीट। आघात प्रतिघात। उ०—नैनन ही की घलाघली के घने घायन को कछु तेल नहीं फिर।—पद्माकर।

घलुआ†–संज्ञा पुं० [हिं० घाल] वह अधिक वस्तु जो ख़रीदार को उचित तौल के अतिरिक्त दी जाय। घेलौना। घाल।

घवद*–संज्ञा स्त्री० दे० "गौद", "घौद"।

घवरि†*–संज्ञा स्त्री० [सं० गहर] फलों वा पत्तियों का गुच्छा।

घौंरा। उ०—(क) विरचे कनकमय रंभ खंभ अचंभ अरु मणिपात जू। तिमि घवरि घनि फणि पोहि लोहित सुमन मंजु लखात जू।—विश्राम। (ख) हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि।—तुलसी।

घसकना†–क्रि० अ० दे० "खिसकना"।

घसखुदा–संज्ञा पुं० [हिं० घास + खोदना] (१) घास खोदनेवाला। (२) अनाड़ी। मूर्ख।

घसत–संज्ञा पुं० [?] बकरा। (डिं०)

घसना†*–क्रि० अ० [सं० घर्षण] रगड़ना। घिसना। उ०—मुँह धोवति एँड़ी घसति हँसति अनँगवति तीर। धसति न इंदीबर-नयनि कालिंदी के नीर।—बिहारी।

क्रि० स० [सं० घसन] खाना। भक्षण करना। (डिं०)

घसिटना–क्रि० अ० [सं० घर्षित + ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु का इस प्रकार खिंचना कि वह भूमि से रगड़ खाती हुई एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाय।

घसियारा–संज्ञा पुं० [हिं० घास + आरा (प्रत्य०)] [स्त्री० घसियारी वा घसियारिन] घास बेचनेवाला। घास छील कर लानेवाला।

घसियारिन–संज्ञा स्त्री० [हिं० घसियारा] घास बेचनेवाली स्त्री।

घसियारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० घसियारा] घास बेचनेवाली स्त्री।

घसीट–संज्ञा स्त्री० [हिं० घसीटना] (१) जल्दी जल्दी लिखने का भाव। (२) जल्दी का लिखा हुआ लेख। (३) घसीटने का भाव। (४) वह मोटा फ़ीता या इसी प्रकार की और कोई पट्टी जिसकी सहायता से हवा में उड़ते हुए पालों को मस्तूल आदि से बाँधते हैं। (लश०)

घसीटना–क्रि० स० [सं० घृष्ट, प्रा० घिस्ट + ना (प्रत्य०)] (१) किसी वस्तु को इस प्रकार खींचना कि वह भूमि से रगड़ खाती हुई एक स्थान से दूसरे स्थान को जाय। कढ़ोरना। उ०—सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोटी।—तुलसी।

यौ०—घसीटा घसीटी = खींचा खांची। खींच तान।

(२) जल्दी जल्दी लिखना। जल्दी जल्दी लिख कर चलता करना। उ०—चार अक्षर घसीट दो। (३) किसी मामले में डालना। किसी काम में ज़बरदस्ती शामिल करना। उ०—तुम्हारे जो जी में आवे करो, अपने साथ औरों को क्यों घसीटते हो।

घस्सा–संज्ञा पुं० दे० "घिस्सा"।

घहनाना*†–क्रि० अ० [अनु०] धातुखंड पर आघात लगने से शब्द होना। घंटे आदि की ध्वनि निकलना। घहराना। उ०—झेलन की झनकार मची तहँ घन घंटा घहनाने। नदत नाग माते मग जाते दिग्गदंती सकुचाने।—रघुराज।

घहरना–क्रि० अ० [अनु०] गरजने के ऐसा शब्द करना। गंभीर ध्वनि निकालना। घोर शब्द करना। उ०—जहँ के तहँ समाय रहे अस बेद नगारा घहरत है।—देवस्वामी।

घहराना–क्रि० अ० [अनु०] गरजने के ऐसा शब्द करना। गंभीर शब्द करना। गरजना। चिग्घाड़ना। उ०—(क) धौंसा लगे घहरान शंख लगे हहरान, छत्र लगे थहरान, केतु लगे फहरान।—गोपाल। (ख) चारिहू ओर ते पौन झकोर झकोरन घोर घटा घहरानी।—पद्माकर। (ग) हय हिनहिनात भागे जात घहरात गज भारी भारी ढीलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।—तुलसी।

घहरानि†–संज्ञा स्त्री० [हिं० घहराना] गरज। गंभीर ध्वनि। तुमुल शब्द।

घहरारा*†–संज्ञा पुं० [हिं० घहराना] घोर शब्द। गंभीर ध्वनि। गरज। उ०—एक ओर जलद के माचे घहरारे मंजु एक ओर नाकन के नदत नगारे हैं।—रघुराज।

वि० गरजनेवाला। घोर शब्द करनेवाला।

घहरारी*†–संज्ञा स्त्री० [हिं० घहराना] गंभीर ध्वनि। घोर शब्द। गरज। उ०—पुर ते छवि भारी कढ़ी सवारी भै घहरारी चाकन की।—रघुराज।

घां*†–संज्ञा स्त्री० [सं० ख। या घाट = ओर।] (१) दिशा। दिक्। (२) ओर। तरफ़। उ०—सूर तबहिँ हम सों जो कहती तेरी घां है लरती।—सूर।

घांघरा–संज्ञा पुं० [सं० घर्घर = क्षुद्रघंटिका] [स्त्री० अल्प० घाँघरी] (१) वह चुननदार और घेरदार पहरावा जिसे स्त्रियाँ कमर में पहनती हैं और जो पैर तक लटकता है। लहँगा। (२) लोबिया। बोड़ा। बजरबट्टू।

घांघरी–संज्ञा स्त्री० दे० "घाँघरा"।

घाँघरो†*–संज्ञा पुं० दे० "घाँघरा"।

घाँची†*–संज्ञा पुं० [हिं० घान + ची] तेली। (डिं०)

घाँटी†–संज्ञा स्त्री० [सं० घंटिका] (१) गले के भीतर की घंटी। कौआ।

मुहा०—घाँटी बैठाना = गले की घंटी की सूजन को दबा कर मिटाना। (यह रोग बच्चों को बहुत होता है।)

विशेष—दे० "कौआ"।

(२) गला। उ०—उतरा घाँटी हुआ माटी।

घांटो–संज्ञा पुं० [?] एक राग जो चैत के महीने में गाया जाता है।

घाँही†*–संज्ञा पुं० [हिं० घाँ] तरफ़। ओर। उ०—छकी अछेद उछाह मत तनक तकी यहि घाँहँ। दै छतिया छद छोभ हद गई छुवावत छाँहँ।—शृं० सत०।

घाँहीं–संज्ञा पुं० दे० "घाँह"।

घा†–संज्ञा स्त्री० [सं० ख अथवा घाट = ओर] ओर। तरफ़। जैसे—चहूँ घा।

घाइ*–संज्ञा पुं० दे० "घाव"।

घाइबो–क्रि० अ० दे० "घाना"।

घाइल†*–वि० दे० "घायल"।

घाईं*†–संज्ञा स्त्री० [हिं० घाँ या घा] (१) ओर। तरफ। अलग। उ०—(क) प्यारी लजाय रही मुख फेरि दियो हँसि हेरि सखीन की घाईं।—सुंदरीसर्वस्व। (ख) हँसैं कुंद हे मुकुंद सहैं बन बागन में करैं चहुँ घाईं कीर कोकिला चवाई हैं।—दीनदयालु। (२) दो वस्तुओं के बीच का स्थान। संधि। उ०—चुरियानहु में चपि चूर भयो दबि छंद पछेलन घाँईं कहूँ।—हरिसेवक। (३) बार। दफ़ा। (४) पानी में पड़ता हुआ भँवर। गिरदाव।

घाई–संज्ञा स्त्री० [सं० गभस्ति = उँगली] (१) दो उँगलियों के बीच की संधि। अंटी। अँगूठे और उँगली के मध्य का कोण। (२) पेड़ी और डाल के बीच का कोना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० घाव] (१) चोट। आघात। मार। प्रहार। वार। उ०—जदपि गदा की बड़ी बड़ाई। पै कछु और चक्र की घाई।—लाल। (२) पटेबाजी की विशेष चोट। जैसे—दो की घाई, चार की घाई। (३) धोखा। चालबाजी। उ०—दई घोर अँध्यार में घोर घाई। कभू सामुहें दाहिने बाम धाई।—सूदन।

मुहा०—घाइयाँ बताना = झाँसा देना। टाल टूल करना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० गाही] पाँच वस्तुओं का समूह। पंचकरी। गाही।

घाउ†–संज्ञा पुं० दे० "घाव"।

घाऊघप–वि० [हिं० खाऊ + गप वा घप] (१) चुपचाप माल हज़म करनेवाला। गुप्त रूप से दूसरे का धन खानेवाला। (२) चुपचाप अपना मतलब निकालनेवाला। जिसकी चाल जल्दी न खुले। जिसका भेद कोई न पावे। चुप्पा।

घाग–संज्ञा पुं० दे० "घाघ"।

घागही†–संज्ञा स्त्री० [देश०] सनई। पटसन।

घाघ–संज्ञा पुं० (१) गोंडे के रहनेवाले एक बड़े चतुर और अनुभवी व्यक्ति का नाम जिसकी कही हुई बहुत सी कहावतें उत्तरीय भारत में प्रसिद्ध हैं। खेती बारी, ऋतु काल तथा लग्न मुहूर्त्त आदि के संबंध में इनकी विलक्षण उक्तियाँ किसान तथा और सर्वसाधारण लोग बहुत कहा करते हैं। जैसे, मुए चाम से चाम कटावे, भुइँ सकरी में सोवै। कहे घाघ ये तीनों भकुवा, उढ़रि जाय औ रोवै। (२) अत्यंत चतुर मनुष्य। अनुभवी आदमी। गहरा चालाक। खुर्रांट। सयाना। (३) इंद्रजाली। जादूगर। बाज़ीगर। उ०—जैसो तुम कहत उठायो एक गिरिवर ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं। काटे जो कहत सीस, काटत घनेरे घाघ, मगर के खेले कहा भट पद पावहीं।—केशव।

संज्ञा पुं० [हिं० घुग्घू] उल्लू की जाति का एक पक्षी जो चील के बराबर होता है

घाघरा–संज्ञा पुं० [सं० घर्घर = क्षुद्रघंटिका] [स्त्री० अल्प० घाघरी] वह चुननदार और घेरदार पहरावा जिसे स्त्रियाँ कमर में पहनती हैं और जिससे कमर से लेकर एँड़ी तक अंग ढका रहता है। लहँगा।

यौ०—घाघरा पलटन = स्काटलैंड देश के पहाड़ी गोरों की सेना जिनका पहनावा कमर से घुटने तक लहँगे की तरह का होता है।

संज्ञा पुं० [सं० घर्घर = उल्लू] एक प्रकार का कबूतर।

संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधे का नाम।

संज्ञा स्त्री० [सं० घर्घर] सरजू नदी का एक नाम।

घाघस–संज्ञा पुं० दे० "घाघ" पक्षी।

घाघी–संज्ञा स्त्री० [सं० घर्घर] मछली फँसाने का बड़ा जाल।

घाट–संज्ञा पुं० [सं० घट्ट] (१) नदी, सरोवर या और किसी जलाशय का वह स्थान जहाँ लोग पानी भरते वा नहाते धोते हैं। नदी झील आदि का वह किनारा जिस पर पानी तक उतरने के लिये सीढ़ियाँ आदि बनी हों।

मुहा०—घाट घाट का पानी पीना = (१) चारों ओर देश देशांतर में घूम कर अनुभव प्राप्त करना। अनेक स्थानों में अनेक प्रकार के व्यापारों में रह कर जानकार होना। (२) इधर उधर मारे मारे फिरना।

(२) नदी वा जलाशय के किनारे का वह स्थान जहाँ धोबी कपड़े धोते हैं। जैसे—धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का। (३) नदी वा जलाशय के किनारे का वह स्थान जहाँ नाव पर चढ़कर या पानी में हलकर लोग पार उतरते हैं।

मुहा०—घाट धरना = राह छेंकना। जबरदस्ती के लिये रास्ते में खड़े होना। उ०—घाट धर्यो तुम यहै जानि कै करत ठगन के छंद।—सूर। घाट मारना = नदी की उतराई न देना। नाव या पुल का महसूल बिना दिए चले जाना। घाट लगना = नदी के किनारे बहुत से आदमियों का पार उतरने के लिये इकट्ठा होना। नाव का पूरा खेवा इकट्ठा होना। नाव का घाट लगना = नाव का किनारे पर पहुँचना। (किसी का) किसी घाट लगना = कहीं ठिकाना पाना। कहीं आश्रय पाना। घाट नहाना = किसी के मरने पर उदक क्रिया करना।

(४) तंग पहाड़ी रास्ता। चढ़ाव उतार का पहाड़ी मार्ग। उ०—(क) घाट छोड़ि कस औघट रेंगहु कैसे लगिहहु पारा हो।—कबीर। (ख) है आगे परबत की बाटैं। विषम पहार अगम सुठि घाटैं।—जायसी। (५) पहाड़। (६) ओर। तरफ़। दिशा। (७) रंग ढंग। डौल। चाल ढाल। ढब। तौर तरीक़ा। भेद। मर्म। उ०—जो करनी अंतर बसै, निकसै मुँह की बाट। बोलत ही पहिचानिए, चोर साहु को घाट।—कबीर। (८) तलवार की धार जिसमें उतार चढ़ाव होता है। तलवार की बाढ़ का ऊपरी भाग। (९) अँगिया का गला। (१०) जौ की गिरी। (११) दुलहिन का लहँगा।

† संज्ञा स्त्री० [सं० घात वा हिं० घट = कम] (१) धोखा। छल। कपट। (२) बुराई। कुकर्म।

† वि० [हिं० घट] **कम । थोड़ा ।**

संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० घाटी, घाटिका] **गरदन का पिछला भाग ।**

घाट-कप्तान–संज्ञा पुं० [हिं० घाट + अं० कैपटेन] **बंदरगाह का प्रधान अध्यक्ष ।**

घाटबंदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० घाट + बंदी] **(१) नाव या जहाज़ खोलने की मनहाई । किश्ती खोलने या चलाने की मुमानियत । (२) घाट बँधने का भाव या क्रिया ।**

घाटा–संज्ञा पुं० [हिं० घटना] **घटी । हानि । नुकसान ।** उ०—**इस व्यवसाय में उन्हें बड़ा घाटा आया ।**

क्रि० प्र०—आना ।—पड़ना ।—होना ।—उठाना ।—देना ।—सहना ।—बैठना ।—खाना ।

मुहा०—घाटा उठाना = हानि सहना । नुकसान में पड़ना । **घाटा भरना** = (१) नुकसान भरना । अपने पल्ले का रुपया देना । (२) नुकसान पूरा करना । हानि की कसर निकालना । कमी पूरी करना ।

घाटारोह†*–संज्ञा पुं० [हिं० घाट + सं० रोध] **घाट का रोकना । घाट से किसी को उतरने न देना ।** उ०—**हथवासहु बोरहु तरनि कीजै घाटारोहु ।—तुलसी ।**

घाटवाल–संज्ञा पुं० [हिं० घाट + वाला (प्रत्य०)] **घाट पर बैठनेवाला ब्राह्मण जो स्नान करनेवालों से दान लेता है । घाटिया । गंगापुत्र ।**

घाटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] **गरदन का पिछला भाग । ल्यौंड़ी और रीढ़ का संधि भाग ।**

घाटि*†–वि० [हिं० घटना] **कम । न्यून । घट कर ।**

संज्ञा स्त्री० [सं० घात, हिं० घट = कम] **पाप । नीच कर्म । बुराई ।** उ०—**रावन घाटि रची जग माहीं ।—तुलसी ।**

घाटिया–संज्ञा पुं० [हिं० घाट + इया (प्रत्य०)] **तीर्थ स्थानों के घाटों पर बैठ कर स्नान करनेवालों से दक्षिणा लेनेवाला ब्राह्मण । गंगापुत्र ।**

घाटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० घाट] **(१) पर्वतों के बीच की भूमि । पहाड़ों के बीच का मैदान । पर्वतों के बीच का सकरा मार्ग । दर्रा । (२) पहाड़ की ढाल । चढ़ाव उतार का पहाड़ी मार्ग ।** उ०—**चलूँ चलूँ सब कोई कहै पहुँचै बिरला कोय । एक कनक इक कामिनी, दुर्गम घाटी दोय ।—कबीर । (३) महसूली वस्तुओं को ले जाने का आज्ञापत्र । रास्ते का कर वा महसूल चुकाने का स्वीकारपत्र ।**

संज्ञा स्त्री० [सं०] **गले का पिछला भाग ।**

घाटो†*–संज्ञा पुं० [हिं० घटना] **(१) दे० "घाटा" ।**

संज्ञा पुं० [हिं० घट] **एक प्रकार का गीत । घाँटो ।**

वि० [हिं० घटना] **दरिद्र । (डिं०)**

घात–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० घाती] **(१) प्रहार । चोट । मार । धक्का । ज़रब ।** उ०—**(क) चुकै न घात मार मुठ भेरी ।—तुलसी । (ख) कपीश कूद्यो बात घात बारिधि हिलोरि कै ।—तुलसी ।**

क्रि० प्र०—करना ।—चलाना ।—होना ।

मुहा०—**घात चलाना** = मारन मोहन आदि प्रयोग करना । मूठ चलाना । जादू टोना करना ।

(२) बध । हत्या ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—गोघात । नरघात । विश्वासघात ।

(३) अहित । बुराई । उ०—**हित की कहौ न, कहौ अंत समय घात की ।—प्रताप । (४) (गणित में) गुणन फल । (५) (ज्योतिष में) प्रवेश । संक्रांति ।**

यौ०—घाततिथि । घातवार ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] **(१) अभिप्राय सिद्ध करने का उपयुक्त स्थान और अवसर । कोई कार्य्य करने के लिये अनुकूल स्थिति । दावँ । सुयोग ।** उ०—**आप अपनी घात निरखत खेल जम्यो बनाइ ।—सूर ।**

क्रि० प्र०—तकना ।

मुहा०—घात पर चढ़ना = किसी की ऐसी स्थिति होना जिससे दूसरे का मतलब सिद्ध हो । अभिप्राय साधन के अनुकूल होना । दाँव पर चढ़ना । वश में आना । हत्थे चढ़ना । **घात में आना** = दे० "घात पर चढ़ना ।" **घात में पाना** = किसी को ऐसी स्थिति में पाना जिससे कोई अर्थ सिद्ध हो । वश में पाना । **घात लगना** = सुयोग मिलना । किसी कार्य्य के लिये अनुकूल स्थिति होना । उ०—**हमरिउ लागी घात तब हमहूँ देब कलंक ।—विश्राम । घात लगाना** = अवसर हाथ में लेना । युक्ति भिड़ाना । तदबीर करना । काम निकालने का ढर्रा निकालना । उ०—**केलि कै राति अघाने नहीं दिन ही में लला पुनि घात लगाई ।—मतिराम ।**

(२) किसी पर आक्रमण करने या किसी के विरुद्ध और कोई कार्य्य करने के लिये अनुकूल अवसर की खोज । किसी कार्य्य-सिद्धि के लिये उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा । ताक । जैसे—**शेर या बिल्ली का शिकार की घात में रहना । डाकुओं का लूटने की घात में रहना ।**

मुहा०—**घात में फिरना** = ताक में घूमना । अनिष्ट साधने के लिये अनुकूल अवसर ढूँढ़ते फिरना । उ०—**उससे बचे रहना, वह बहुत दिनों से तुम्हारी घात में फिर रहा है । घात में बैठना** = आक्रमण करने वा मारने के लिये छिप कर बैठना । किसी के विरुद्ध कोई कार्य्य करने के लिये गुप्त रूप से तैयार रहना । उ०—**चित्रकूट अचल अहेरी बैठो घात मानो पातक के व्रात घोर सावज सँघारिहैं ।—तुलसी । घात में रहना** = किसी के विरुद्ध कोई कार्य्य करने के लिये अनुकूल अवसर ढूँढ़ते रहना ।

ताक में रहना। घात में होना = किसी के विरुद्ध कार्य्य करने की ताक में होना। घात लगाना = किसी कार्य्य के लिये अनुकूल अवसर ढूँढ़ना। मौका ताकना। उ०—वह बहुत देर से घात लगाए बैठा है।

(३) दावँ पेच। चाल। छल। चालबाजी। कपट युक्ति। उ०—मोसों कहति श्याम हैं कैसे ऐसी मिलई घातैं।—सूर।

मुहा०—घातें बताना = (१) चाल सिखाना। (२) चालबाजी करना। रास्ता बताना। बहलाना।

(४) रंग ढंग। ढब। धज। तौर तरीका।

घातक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हत्यारा। मार डालनेवाला। (२) हिंसक। बधिक। जल्लाद। (३) फलित ज्योतिष में वह योग जिसका फल किसी की मृत्यु हो। (४) शत्रु। दुश्मन।

घातकी–संज्ञा पुं० दे० "घातक"।

घातवर्त्तना–संज्ञा स्त्री० [सं०] कोहल मुनि के मत से नृत्य में एक प्रकार की वर्त्तना।

घातिक–संज्ञा पुं० दे० "घातक"।

घातिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मारनेवाली। वध करनेवाली। (२) नाश करनेवाली। उ०—बड़ी विकराल बाल घातिनी न जात कहि, बाहु बल बालक छबीले छोटे छरैगी।—तुलसी।

घातिया–संज्ञा पुं० दे० "घाती"।

घाती–संज्ञा पुं० [सं० घातिन्] [स्त्री० घातिनी] (१) घातक। वध करनेवाला। मारनेवाला। संहारक। उ०—हम जड़ जीव जीवगण घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती।—तुलसी। (२) नाश करनेवाला।

घातुक–वि० [सं०] हिंसक। नाशकारी। (२) क्रूर। निष्ठुर।

घान–संज्ञा पुं० [सं० घन = समूह] (१) उतनी वस्तु जितनी एक बार डाल कर कोल्हू में पेरी जाय। उ०—पहले घान का तेल अच्छा नहीं होता। (२) उतनी वस्तु जितनी एक बार चक्की में डाल कर पीसी जाय। (३) उतनी वस्तु जितनी एक बार में पकाई वा भूनी जाय। उ०—दो घान पूरियाँ निकाल कर अलग रख दो।

मुहा०—घान उतरना = (१) कोल्हू में एक बार डाली हुई वस्तु से तेल वा रस आदि निकलना। (२) कढ़ाई में से पकवान का निकलना। घान उतारना = कोल्हू में से तेल, रस आदि तथा कढ़ाई में से पकवान निकालना। घान डालना = (१) कोल्हू में पेरने वा कढ़ाई में एक बार में तलने के लिये वस्तु डालना। (२) किसी काम में हाथ लगाना। घान पड़ना = कोल्हू में पेरने या कढ़ाई में पकाने के लिये वस्तु का डाला जाना। घान पड़ जाना = किसी काम में हाथ लग जाना। किसी कार्य्य का आरंभ हो जाना। घान लगना = घान का कार्य्य आरंभ होना।

संज्ञा पुं० [हिं० घन = बड़ा हथौड़ा] प्रहार। चोट। आघात। उ०—मंद मंद उर पै अनंद ही के आँसुन की, बरसैं सुबूँदैं मुकतान ही के दाने सी। कहै पद्माकर प्रपंची पंचबानन न, कानन की भान पै परी त्यों घोर घाने सी।—पद्माकर।

घाना†*–क्रि० स० [सं० घात, प्रा० घाय + ना (प्रत्य०)] मारना। संहार करना। नाश करना। (इस शब्द का प्रयोग व्रजभाषा में घायबो, घैबो आदि रूपों में ही मिलता है।) उ०—बाग तोरि खाइ, बल आपनो जनाइ ताको एक पूत घाइ तब सिंधु पार जाइहौं।—हनुमान।

क्रि० स० [हिं० गहना = पकड़ना] पकड़ाना।

घानी–संज्ञा स्त्री० [हिं० घान] (१) उतनी वस्तु जितनी एक बार में चक्की में डाल कर पीसी या कोल्हू में डाल कर पेरी जा सके। दे० "घान"। उ०—(क) समर तैलिक यंत्र, तिल तमीचर निकर, पेरि डारे सुभट घालि घानी।—तुलसी। (ख) सुकृत सुमन तिल मोद बास बिधि जतन यंत्र भरि घानी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—उतरना।—उतारना।—डालना।—पड़ना।

मुहा०—घानी करना = पेरना।

(२) समूह। ढेर।

घानी की सवारी–संज्ञा स्त्री० मालखंभ की एक कसरत जिसमें एक हाथ में मोंगरा पकड़ कर मलखंभ के चारों ओर घानी वा कोल्हू के बैल के समान चक्कर देते हैं।

घाम†–संज्ञा पुं० [सं० घर्म, प्रा० घम्म] धूप। सूर्य्यातप। उ०—घाम घरीक निवारिये कलित ललित अलिपुंज। जमुना तीर तमाल तरु मिलति मालती कुंज।—बिहारी।

क्रि० प्र०—लगना।—होना।—चढ़ना।—निकलना।

मुहा०—घाम खाना = (१) गरमी के लिये धूप में रहना। (२) ऐसे स्थान पर रहना जहाँ धूप वा सूर्य की गरमी का प्रभाव पड़े। घाम लगना = लू लगना। घर घाम में छाना = आफ़त में डालना। विपत्ति में डालना। घर में घाम आना = बड़ी कठिनता का सामना होना। बड़ी मुसीबत होना। जैसे—इस काम को करना सहज नहीं है, घर में घाम आवेगा।

घामड़–वि० [हिं० घाम] (१) घाम वा धूप से व्याकुल (चौपाया)। धूप लग जाने के कारण हर समय हाँफनेवाला (चौपाया)। (२) जिसके होश ठिकाने न हों। नासमझ। मूर्ख। जड़। गावदी। बोदा। (३) आलसी अहदी।

घाय†*–संज्ञा पुं० [सं० घात] [वि० घायल] घाव। ज़ख्म।

घायक–वि० [हिं० घातक] (१) विनाशक। मारनेवाला। उ०—दुर्जन दल घायक श्री रघुनायक सुखदायक त्रिभुवन शासन।—केशव। (२) घायल करनेवाला। जिससे घाव हो जाय।

घायल–वि० [हिं० घाय] जिसके घाव लगा हो। चोट खाया हुआ। चुटैल। ज़ख्मी। आहत।

संज्ञा पुं० कनकौए के एक रंग का नाम।

घार†—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्त्त] पानी के बहाव से कट कर बना हुआ मार्ग वा गड्ढा।

घारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० खरिक] घास फूस से छाया हुआ वह मकान जहाँ चौपाये बाँधे जाते हैं। खरका।

घाल, घाला†—संज्ञा पुं० [हिं० घालना] सौदे की उतनी वस्तु जितनी गाहक को तौल वा गिनती के ऊपर दी जाय। घलुआ।

मुहा०—घाल न गिनना = पसंगे बराबर भी न समझना। तुच्छ समझना। हेच समझना। उ०—(क) रघुवीर बल गर्वित विभीषण घाल नहिं ता कहँ गनै।—तुलसी। (ख) बीर करि केसरी कुठारपानि मानी हार तेरी कहा चली विड तो को गनै घाल को?—तुलसी। (ग) चढ़हिं कुँवर मन करैं उछाहू। आगे घाल गनैं नहिं काहू।—जायसी।

घालक—संज्ञा पुं० [हिं० घालना] [स्त्री० घालिका] (१) मारनेवाला। (२) नाश करनेवाला।

घालकता—संज्ञा स्त्री० [सं० घालक + ता (प्रत्य०)] मारने का काम। विनाश करने की क्रिया। उ०—अति कोमल कै सब बालकता। बहु दुष्कर राक्षस घालकता।—केशव।

घालना—क्रि० स० [सं० घटन, प्रा० घडन वा घलन] (१) डालना। रखना। किसी वस्तु के भीतर वा ऊपर रखना। उ०—(क) को अस हाथ सिंह मुख घालै। को यह बात पिता सों चालै।—जायसी। (ख) सो भुजबल राख्यो उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली।—तुलसी। (ग) स्यंदन घालि तुरत गृह आना।—तुलसी। (२) फेंकना। चलाना। छोड़ना। उ०—(क) जिन नैनन में बसत हैं रसनिधि मोहनलाल। तिन में क्यों घालत अरी तैं भरि मूठ गुलाल।—रसनिधि। (ख) पहिल घाव घालौ तुम आछे। हिये हौस रहि जैहै पाछे।—लाल। (३) कर डालना। उ०—केहि के बल घालेसि बन खीसा।—तुलसी।

विशेष—पूरबी हिंदी (प्रांतिक) में 'घालना' क्रिया का प्रयोग 'डालना' के समान संयो० क्रि० के रूप में भी होत है जैसे "कइ घालेसि"।

(४) बिगाड़ना। नाश करना। जैसे—घर घालना। उ०—चित्रकेतु कर घर इन घाला।—तुलसी। (५) मार डालना। बध करना।

घालमेल—संज्ञा पुं० [हिं० घालना + मेलना] (१) कई भिन्न प्रकार की वस्तुओं की एक साथ मिलावट। गड्ड बड्ड। (२) मेल जोल। घनिष्टता।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—बढ़ाना।

घालिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० घालक] नष्ट करनेवाली। विनाश करनेवाली।

घालिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घालना] नाश करनेवाली। मार डालनेवाली।

घाव—संज्ञा पुं० [सं० घात, प्रा० घाअ] शरीर पर का वह स्थान जो कट या चिर गया हो। क्षत। ज़ख्म।

मुहा०—घाव खाना = ज़ख्मी होना। घायल होना। घाव पर नमक या लोन छिड़कना = दुःख के समय और दुःख देना। शोक पर और शोक उत्पन्न करना। घाव देना = दुःख पहुँचाना। शोक में डालना। घाव पूजना या भरना = घाव का अच्छा होना।

घावरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ जो बहुत ऊँचा और सुंदर होता है। इस की छाल चिकनी और सफ़ेद होती है और हीर की लकड़ी बहुत चमकीली तथा दृढ़ होती है। यह पेड़ हिमालय पर ३००० फुट की ऊँचाई पर होता है। लकड़ी इसकी नाव जहाज तथा खेती के सामान बनाने के काम में आती है। इसकी पत्तियों से चमड़ा सिझाया और कमाया जाता है।

घावरिया†*—संज्ञा पुं० [हिं० घाव + वरिया (वाला)] घावों की चिकित्सा करनेवाला। सतिया। जर्राह। उ०—तब चाल्यो लै लाठी कर में। पहुँच्यौ घावरिया के घर में। ताहि कह्यो फोहा अस दीजै। घाव पाँव को तुरत भरीजै।—निश्चल।

घास—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी पर उगनेवाले छोटे छोटे उद्भिद जिन्हें चौपाए चरते हैं। तृण। चारा।

क्रि० प्र०—काटना।—चरना।—छीलना।

यौ०—घास पात = (१) तृण और बनस्पति। (२) खर पतवार। कूड़ा करकट। घास फूस = (१) कूड़ा करकट। खर पतवार। (२) बेकाम चीज।

मुहा०—घास काटना या खोदना = (१) तुच्छ काम करना। छोटा और सहल काम करना। (२) व्यर्थ काम करना। निरर्थक प्रयत्न करना। उ०—तुम सों प्रेम कथा को कहिबो मनो काटिबो घास।—सूर। (३) किसी काम को बेपरवाही से जल्दी जल्दी करना। घास खाना = पशु बनना। पशु के समान हो जाना। घास छीलना = (१) खुरपे से घास को जड़ के पास से काटना। (२) दे० "घास काटना"।

(२) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। (३) कागज़ पन्नी आदि के महीन कटे हुए टुकड़े जो 'ताज़िए' तथा और किसी वस्तु पर सजावट के लिये चिपकाए जाते हैं।

घासी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घास] घास। चारा। तृण। उ०—चारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी।—तुलसी।

घाह*†—संज्ञा पुं० [सं० गभस्ति = उँगली] उँगलियों के बीच की संधि। गावा। घाई। उ०—घारैं बान, कूल धनु, भूषण जलचर, भँवर सुभग सब घाहैं।—तुलसी।

घिश्र†–संज्ञा पुं० दे० "घी"।

घिश्रौंड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० घी + हंडा] घी रखने का मिट्टी का बरतन। घृतपात्र। अमृतबान।

घिश्रा–संज्ञा पुं० दे० "घिया"।

घिउ†–संज्ञा पुं० दे० "घी"।

घिग्घी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) सांस लेने में वह रुकावट जो रोते रोते पड़ने लगती है। हिचकी। सुबकी। (२) डर के मारे मुँह से स्पष्ट शब्द न निकलना। बोलने में वह रुकावट जो भय के मारे पड़ती है।

मुहा०—घिग्घी बँधना = (१) रोते रोते साँस का रुक रुक कर निकलना और स्पष्ट शब्द मुँह से बाहर न होना। हिचकी बँधना। (२) डर के मारे मुँह से साफ़ बोली न निकलना।

घिघियाना–क्रि० अ० [हिं० घिग्घी] (१) रो रो कर बिनती करना। गिड़गिड़ाना। करुण स्वर से प्रार्थना करना।† (२) चिल्लाना।

घिचपिच–संज्ञा स्त्री० [सं० घृष्ट पिष्ट] (१) स्थान की संकीर्णता। जगह की तंगी। सँकरापन। (२) थोड़े स्थान में बहुत से व्यक्तियों वा वस्तुओं का समूह।

वि० अस्पष्ट। जो साफ़ न हो। गिचपिच। जैसे—बड़ी घिचपिच लिखावट है, साफ़ पढ़ी नहीं जाती।

घिन–संज्ञा स्त्री० [सं० घृणा] [क्रि० घिनाना। वि० घिनौना] (१) चित्त की वह खिन्नता जो किसी बुरी या कुत्सित वस्तु को देख या सुन कर उत्पन्न होती है। अरुचि। नफ़रत। घृणा। (२) किसी गंदी चीज़ को देख सुन कर जी मचलाने की सी अवस्था। जी बिगड़ना।

क्रि० प्र०—आना।—लगना।

मुहा०—घिन खाना = घृणा करना। नफ़रत करना।

घिनाना–क्रि० अ० [हिं० घिन] घृणा करना। नफ़रत करना। उ०—ज्ञान गहीरिन सो रुचि माने अहीरिन सों घनश्याम घिनाने।—रसकुसुमाकर

घिनावना–वि० [हिं० घिन + आवना (प्रत्य०)] [स्त्री० घिनावनी] जिसे देख कर घिन लगे। घृणित। बुरा। गंदा।

घिनौची†–संज्ञा स्त्री० दे० "घिड़ौंची"।

घिनौना†–वि० दे० "घिनावना"।

घिनौरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० घिन] ग्वालिन नाम का कीड़ा।

घिन्नी–संज्ञा स्त्री० (१) दे० "घिरनी"। (२) दे० "गिन्नी"।

घियाँ†–संज्ञा पुं० दे० "घी"।

घिया–संज्ञा पुं० [हिं० घी] (१) एक प्रकार की बेल जिसके फलों की तरकारी होती है। इसके पत्ते गोल गोल कुम्हड़े की तरह के और फूल सफ़ेद रंग के होते हैं। घिया दो प्रकार का होता है—एक लंबे फल का और दूसरा गोल फल का, जिसे कद्दू कहते हैं। इसकी एक जाति कड़ुई भी होती है जिसे तितलौकी कहते हैं। घिया बहुत मुलायम होता है तथा गुण में शीतल और रोगी के लिये पथ्य माना जाता है। इसके बीज का तेल (कद्दू का तेल) सिर का दर्द दूर करने के लिये लगाया जाता है। इसे लौकी या लौआ भी कहते हैं। †(२) नेनुआँ। घिया तोरी।

घियाकश–संज्ञा पुं० [हिं० घिया + फ़ा० कश] चौकी के आकार की एक वस्तु जिसमें उभड़े हुए छेद घिया, कद्दू, पेठे आदि को बारीक छीलने के लिये बने रहते हैं। कद्दूकश।

घियातरोई–संज्ञा स्त्री० दे० "घियातोरी"।

घियातोरई–संज्ञा स्त्री० दे० "घियातोरी"।

घियातोरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० घिया + तोरी] एक प्रकार की बेल जिसके लंबे लंबे फलों की तरकारी होती है। इसके पत्ते गोल और फूल पीले रंग के होते हैं। फल लंबाई में ८–१० अंगुल और मोटाई में दो ढाई अंगुल होते हैं। पूरब में इसे नेनुवा कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं। एक साधारण जिसके फल लंबे और बड़े होते हैं और दूसरा सतपुतिया जो घौद में फलती और छोटे फलोंवाली होती है।

घिरत†–संज्ञा पुं० दे० "घृत"।

घिरना–क्रि० अ० [सं० ग्रहण] (१) किसी चारों ओर फैली हुई वस्तु के बीच में पड़ना। किसी वस्तु से चारों ओर व्याप्त होना। सब ओर से छेंका जाना। आवृत होना। आवेष्टित होना। घेरे में आना। उ०—वह चारों ओर शत्रुओं से घिर गया। (२) चारों ओर छाना। चारों ओर इकट्ठा होना। जैसे—घटा घिरना। (इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग घटा और बादल के ही साथ होता है।)

घिरनी–संज्ञा स्त्री० [सं० घूर्णन] (१) गराड़ी। चरखी। (२) चक्कर। फेरा।

मुहा०—घिरनी खाना = चक्कर लगाना। चारों ओर फिरना।

(३) रस्सी बटने की चरखी। (४) दे० "गिन्नी"। (५) एक जल-पक्षी जो जल के ऊपर फड़फड़ाता रहता है और मछली देखते ही चट से टूट पड़ता है। कौड़ियाला। किलकिला। (६) लोटन कबूतर।

घिराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० घेरना] (१) घेरने की क्रिया या भाव। (२) पशुओं को चराने का काम। (३) पशुओं को चराने की मज़दूरी।

घिरायँद–संज्ञा पुं० [सं० क्षार, हिं० खार, खरायँद] मूत्र की दुर्गंध।

घिराव–संज्ञा पुं० [हिं० घेरना] (१) घेरने की क्रिया वा भाव। (२) घेरा।

घिरिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० घिरना] मनुष्यों का घेरा जो शिकार को घेरने के लिये बनाया जाय।

मुहा०—घिरिया में घिरना = असमंजस वा कठिनता में पड़ना। ऐसी अवस्था में पड़ना जिससे निस्तार कठिन हो।

घिरौंची–संज्ञा स्त्री० दे० "घड़ौंची"।

घिरौरा†–संज्ञा पुं० [देश०] घूस का बिल। उ०—माछी कहै अपनो घर माछरू मूसो कहै अपनो घर ऐसो। कोने घुसी कहै घूस घिरौरा, बिलारि औ ब्याल बिले मुँह वैसो।—केशव।

घिर्रना†–क्रि० स० [अनु० घर्र] रगड़ना। घिसना।

घिर्राना†–क्रि० स० [अनु० घिर घिर] (१) घसीटना। (पू० हिं) (२) घिघियाना। गिड़गिड़ाना। (बुं० खं०)

घिर्री–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार की घास। (२) दे० "घिरनी"। (३) "घिन्नी"।

घिव†–संज्ञा पुं० दे० "घी"।

घिसकना†–क्रि० अ० दे० "खसकना"।

घिसघिस–संज्ञा स्त्री० [हिं० घिसना] (१) अनुचित विलंब। वह देर जो सुस्ती के कारण हो। कार्य्य में शिथिलता। अतत्परता उ०—इसी तुम्हारी घिसघिस में बारह बज गए। (२) कोई बात स्थिर करने में व्यर्थ का विलंब। अनिश्चय। गड़बड़ी।

घिसटना†–क्रि० अ० दे० "घसिटना"।

घिसन†–संज्ञा स्त्री० [हिं० घिसना] रगड़।

घिसना–क्रि० स० [सं० घर्षण, प्रा० घसण] (१) एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर रख कर खूब दबाते हुए इधर उधर फिराना। रगड़ना। उ०— इसको पत्थर पर घिस दो तो चिकना हो जायगा।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—घिस घिस कर चलना = बहुत दिनों तक ख़ूब काम में लाया जाना और चलना।

(२) किसी वस्तु को दूसरी वस्तु पर इस प्रकार रगड़ना कि उसका कुछ अंश छूट कर अलग हो जाय। जैसे, चंदन घिसना।

मुहा०—घिस लगाने को नहीं = घिस कर तिलक वा अंजन लगाने भर को भी नहीं। लेश मात्र नहीं।

(३) संभोग करना। (बाज़ारू)

क्रि० अ० रगड़ खाकर कम होना वा छीजना। उ०—जूते की एँड़ी चलते चलते घिस गई।

संयो० क्रि०—जाना।—उठना।

घिसपिस†–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) घिस घिस। (२) सट्टाबट्टा। मेल जोल।

घिसवाना–क्रि० स० [हिं० घिसना का प्रे०] घिसने का काम कराना। रगड़वाना।

घिसाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० घिसना] (१) घिसने की क्रिया। (२) घिसने की मज़दूरी। (३) घिसने का भाव।

घिसाना–क्रि० स० [हिं० घिसना का प्रे०] रगड़ाना।

घिसाव–संज्ञा पुं० [हिं० घिसना] रगड़।

घिसावट–संज्ञा स्त्री० [हिं० घिसना] रगड़। घिसन।

घिसिआना†–क्रि० स० [सं० घर्षण] घसीटना।

घिसिर पिसिर–संज्ञा स्त्री० दे० "घिसपिस"।

घिस्ट पिस्ट–संज्ञा पुं० [सं० घृष्ट पिष्ट] (१) गहरा मेल जोल। प्रगाढ़ मित्रता। गहरी घनिष्टता। (२) अनुचित संबंध। अपवित्र संबंध।

घिस्समघिस्सा–संज्ञा पुं० [हिं० घिसना] (१) गहरा धक्का। ख़ूब भीड़ भाड़। (२) लड़कों का एक खेल जिसमें एक अपनी डोरी या नख को दूसरे की नख या डोरी में फँसा कर झटका देता या रगड़ता है जिसमें इसी की डोरी कट जाय।

घिस्सा–संज्ञा पुं० [हिं० घिसना] (१) रगड़ा। उ०—घिस्सा लगते ही कनकौआ कट गया।

क्रि० प्र०—पड़ना।—बैठना।—लगना।

(२) धक्का। ठोकर। (३) वह आघात जो पहलवान अपनी कुहनी और कलाई के बीच की हड्डी की रगड़ से देते हैं। कुंदा। रद्दा। (४) लड़कों का एक खेल जिसमें एक अपनी नख या डोरी की रगड़ से दूसरे की नख या डोरी को काटने का यत्न करता है।

घींच†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खींचना वा सं० ग्रीव] गरदन। ग्रीवा।

घींचना†–क्रि० स० [सं० कर्षण, हिं० खींचना] खींचना। ऐंचना।

घी–संज्ञा पुं० [सं० घृत, प्रा० घीअ] दूध का चिकना सार जिसमें से जल का अंश तपा कर निकाल दिया गया हो। तपाया हुआ मक्खन। घृत।

मुहा०—घी कड़कड़ाना = साफ़ और सोंधा करने के लिये घी को तपाना। घी का कुप्पा लुढ़ना = किसी बहुत बड़े धनी का मर जाना। किसी बड़े आदमी की मृत्यु होना। (२) भारी हानि होना। बहुत नुकसान होना। घी के कुप्पे से जा लगना = किसी ऐसे स्थान तक पहुँच जाना जहाँ ख़ूब प्राप्ति हो। किसी ऐसे धनी तक पहुँच होना जहाँ ख़ूब माल मिले। घी का डोरा = घी की धार जो दाल आदि में डालते समय बँध जाती है। घी का डोरा देना = किसी भोजन में तपाया हुआ घी डालना। घी के जलना = दे० "घी के दीए जलना"। घी के दीए जलना = (१) कामना पूरी होना। मनोरथ सफल होना। (२) आनंद मंगल होना। उत्सव होना। (३) सुख सौभाग्य की दशा होना। धन धान्य की पूर्णता होना। समृद्धि होना। ऐश्वर्य्य होना। घी के दीए जलाना = (१) आनंद मंगल मनाना। उत्सव मनाना। (२) सुख संपत्ति का भोग करना। बड़े सुख चैन से रहना। घी के दीए भरना = (१) आनंद मंगल मनाना। उत्सव मनाना। उ०—भूप गहे ऋषिराज के पाय कह्यो अब दीप भरो सब घी के।—हनुमान। (२) सुख संपत्ति का भोग करना। बड़े सुख चैन से रहना। घी

खिचड़ी = ख़ूब मिला जुला। घी खिचड़ी होना = ख़ूब मिल जुल जाना। अभिन्न हृदय होना। (किसी की) पांचो उँगली घी में होना = ख़ूब आराम चैन का मौक़ा मिलना। सुख भोग का अवसर मिलना। ख़ूब लाभ होना।

घीउ, घीऊ–संज्ञा पुं॰ दे॰ "घी"।

घीकुवाँर–संज्ञा॰ पुं॰ [स॰ घृतकुमारी] ग्वारपाठा। गोंडपट्ठा।

घुँइयाँ–संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक तरकारी। अरवी।

घुँगची–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "घुँघची"।

घुँघची–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ गुंजा, प्रा॰ गुंचा] (१) एक प्रकार की मोटी बेल जो प्रायः जंगलों में बड़ी बड़ी झाड़ियों के ऊपर फैली हुई पाई जाती है। इसकी पत्तियाँ इमली की पत्तियों की सी और खाने में कुछ मीठी होती हैं और फूल सेम के फूलों के समान होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर मटर की तरह की फलियाँ गुच्छों में लगती हैं जो जाड़े में सूख कर फट जाती हैं और उनके भीतर के लाल लाल बीज दिखाई पड़ते हैं। ये ही बीज घुँघची वा गुंजा के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका सारा अंग लाल होता है केवल मुख पर छोटा सा काला छींटा रहता है जो बहुत सुंदर लगता है। सफ़ेद रंग की घुँघची भी होती है जिसके मुँह पर काला दाग नहीं होता। मुलेठी या जेठी मधु इसी घुँघची की जड़ है। वैद्यक में घुँघची कड़ुई, बलकारक, केश और त्वचा को हितकारी, तथा व्रण, कुष्ट, गंज इत्यादि को दूर करनेवाली मानी जाती है। जड़ और पत्ते विषनाशक कहे जाते हैं। सफ़ेद घुँघची वशीकरण की सामग्री मानी जाती है। (२) इस लता का बीज।

पर्य्या॰—रक्तिका। गुंजिका। कृष्णला। काकिनी। कक्षा। कनीची। काकचिंची। कांची। सौम्या। शिखंडी। अरुणा। कांबोजी। काकशिंबी। चटकी।

घुँघनी–संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] भिगो कर घी या तेल में तला हुआ चना, मटर या और कोई अन्न। घुघरी।

मुहा॰—घुँघनियाँ मुँह में रख कर बैठना = चुपचाप बैठना। मौन होकर बैठना।

घुँघरारे†*–वि॰ [हिं॰ घुमरना + वारे] घुँघराले। घूघँरवाले। उ॰—मृगमद मलय अलक घुँघरारे। उन मोहन मन हरे हमारे।—सूर।

घुँघराले–वि॰ [हिं॰ घुमरना + वाले] [स्त्री॰ घुँघराली] घूमे हुए (बाल)। टेढ़े और बल खाए हुए (बाल)। छल्लेदार। (बाल)। घूँघरवाले। कुंचित।

घुँघरू–संज्ञा पुं॰ [अनु॰ घुन घुन, + सं॰ रव वा रू] (१) किसी धातु की बनी हुई गोल और पोली गुरिया जिसके भीतर 'घन घन' बजने के लिये कंकड़ भर देते हैं। चौरासी। मंजीर।

मुहा॰—घुँघुरू सा लदना = शरीर में बहुत अधिक फुंसियाँ, चेचक या छाले आदि निकलना।

(२) ऐसी गुरियों का बना हुआ पैर का एक गहना जो बच्चे या नाचनेवाले पहनते हैं।

मुहा॰—घुँघुरू बाँधना = (१) नाचने में चेला करना। (२) नाचने के लिये तैयार होना।

(३) गले का वह घुर घुर शब्द जो मरते समय कफ छेंकने के कारण निकलता है। घुटका। घटुका।

मुहा॰—घुँघरू बोलना = घर्रा लगना। घटका लगना। मरते समय कफ छेंकना।

(४) वह कोश जिसके भीतर चने का दाना रहता है। बूट के ऊपर की खोल। (५) सनई का फल जिसके भीतर बीज रहते हैं। (सूखने पर ये फल बजते हैं जिसके कारण लड़के उन्हें खेल के लिये पांव में बाँधते हैं)।

घुँघरूदार–वि॰ [हिं॰ घुँघरू + फ़ा॰ दार] जिसमें घुँघरू लगे हों।

घुँघरूबंद–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ घुँघरू + सं॰ बंध, फ़ा॰ बंद] वह वेश्या जो नाचने गाने का काम करती हो।

घुँघरूमोतिया–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ घुँघरू + मोतिया] एक प्रकार का मोतिया बेला।

घुँघुवारे–वि॰ दे॰ "घुँघराले"। उ॰—घुँघुवारी लटैं लटकैं मुख ऊपर।—तुलसी।

घुँट–संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक जंगली पेड़ जिसे घेँट भी कहते हैं। इसकी छाल और फलियों से चमड़ा सिझाया जाता है।

घुँटना–क्रि॰ अ॰ दे॰ "घुटना"।

घुंडी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ ग्रंथि] (१) कपड़े की सिली हुई मटर के आकार की छोटी गोली जिसे अँगरखे वा कुरते आदि का पल्ला बंद करने के लिये टाँकते हैं। कपड़े का गोल बटन। गोपक।

मुहा॰—घुंडी लगाना = (१) घुंडी टाँकना। (२) घुंडी में तुकमे से अँगरखे आदि का पल्ला अटकाना। जी की घुंडी खोलना = हृदय की गाँठ खोलना। चित्त से दुर्भाव वा द्वेष निकालना।

(२) हाथ या पैर में पहनने के कड़े के दोनों छोरों पर की गाँठ जो कई आकार की बनाई जाती है। (३) बाजू, जोशन, आदि गहनों में लगी हुई धातु की गोल गाँठ जिसे सूत के घर में डाल कर गहनों को कसते हैं। यह घुंडी प्रायः लटकती रहती है। (४) एक प्रकार की घास। (५) धान का अंकुर जो खेत कटने पर जड़ से फूट कर निकलता है। दोहला।

घुंडीदार–वि॰ [हिं॰ घुंडी + फ़ा॰ दार] जिसमें घुंडी लगी हो। संज्ञा पुं॰ एक प्रकार की सिलाई जिसमें एक टाँके के बाद दूसरा टाँका फंदा डाल कर लगाते जाते हैं।

घुंसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक लकड़ी जिसके सहारे से जाठ उठा कर कोल्हू में डालते हैं।

घुग्रा—संज्ञा पुं० दे० "घूग्रा"।

घुइरना†—क्रि० स० दे० "घूरना"।

घुइस†—संज्ञा स्त्री० दे० "घूस"।

घुकुग्रा, घुकुवा†—संज्ञा पुं० दे० "घूका"।

घुग्घी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) तिकोना लपेटा हुआ कंबल आदि जिसे किसान वा गड़ेरिए धूप, पानी, और शीत से बचने के लिये सिर पर डालते हैं। घोंघी। खुडुआ। (२) कपोत जाति की एक चिड़िया जिसका रंग खूब पकी ईंट की तरह का होता है। इसकी बोली कबूतर से भिन्न होती है। टुटरू। पेंड़की। पंडुक। फ़ाख़्ता।

घुग्घू—संज्ञा पुं० [सं० घूक] (१) उल्लू नाम की चिड़िया। (२) मिट्टी का एक खिलौना जो फूँकने से बजता है।

घुघुग्रा—संज्ञा पुं० दे० "घुग्घू"।

घुघुग्राना—क्रि० अ० [हिं० घुग्घू] (१) उल्लू पक्षी का बोलना। (२) बिल्ली का गुर्राना। (३) उल्लू की तरह बोलना। (४) बिल्ली की तरह गुर्राना।

घुघुरी—संज्ञा स्त्री० (१) दे० "घुँघुरू"। (२) दे० "घुँघनी"।

घुघुवाना—क्रि० अ० दे० "घुघुग्राना"।

घुटकना†—क्रि० स० [हिं० घूँट+करना] (१) घूँट घूँट करके पी जाना। पी जाना। पान करना। उ०—नृपसिंधुर सिंधु-रसै घुटकैं।—गोपाल। (२) निगल जाना।

घुटकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुटकना] घुटकने की नली। गले की वह नली जिसके द्वारा खाना पानी आदि पेट में जाते हैं।

घुटना—संज्ञा पुं० [सं० घुंटक] पाँव के मध्य भाग का जोड़। जाँघ के नीचे और टाँग के ऊपर का जोड़। टाँग और जाँघ के बीच की गाँठ। उ०—माटे घुटना फूटे आँख। (कहावत)

मुहा०—घुटना टेकना=घुटनों के बल बैठना। घुटनों चलना=बैयाँ बैयाँ चलना। घुटनों के बल चलना=दे० "घुटनो चलना।" घुटनों में सिर देना=(१) सिर नीचा किए चिंतित वा उदास होना। (२) लज्जित होना। सिर नीचा करना। घुटनों से लग कर बैठना=दूर घड़ी पास रहना। घुटनों से लगा कर बैठाना=पास बैठाए रखना। (इसका प्रयोग प्रायः माता-पिता बच्चों के लिये करते हैं।)

क्रि० अ० [हिं० घूंटना वा घोटना] (१) साँस का भीतर ही दब जाना, बाहर न निकलना। रुकना। फँसना। उ०—वहाँ तो इतना धुँआ है कि दम घुटता है।

मुहा०—घुट घुट कर मरना=दम तोड़ते हुए साँसत से मरना। (२) फँसना। उलझ कर कड़ा पड़ जाना। उ०—हठ न हठीली कर सकै, यहि पावस ऋतु पाइ। आन गाँठ घुटि जाय त्यों, मान गाँठ छुटि जाय।—बिहारी।

क्रि० अ० [हिं० घोटना] (१) घोटा जाना। पीसा जाना। उ०—रोज़ भाँग घुटा करती है।

मुहा०—घुटा हुआ=छँटा हुआ। चालाकी में माँजा हुआ। भारी चालाक।

(२) रगड़ खा कर चिकना होना। रगड़ से चिकना और चमकीला होना। उ०—तुम्हारी पट्टी घुट गई कि अभी नहीं। (३) घनिष्ठता होना। मेल जोल होना। उ०—दोनों में आज कल ख़ूब घुटती है। (४) मिल-जुल कर बात होना। (५) किसी कार्य्य का विशेषतः पढ़ने लिखने के कार्य्य का इसलिये बार बार होना जिसमें उसका ख़ूब अभ्यास हो जाय।

घुटन्ना—संज्ञा पुं० [हिं० घुटना] (१) घुटनों तक का पायजामा। (२) पतली मोहरी का पायजामा। (पंजाबी)

घुटरू†—संज्ञा पुं० [सं० घुट] पाँव के मध्य भाग का जोड़। घुटना।

घुटवाना—क्रि० स० [हिं० घोटना का प्रे०] (१) घोटने का काम कराना। (२) बाल मुँड़ाना।

घुटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुटना] (१) घोटने वा रगड़ने का भाव या क्रिया। (२) रगड़ कर चिकना और चमकीला बनाने का भाव वा क्रिया। उ०—इस कपड़े पर ख़ूब घुटाई हुई है। (३) रगड़ कर चिकना और चमकीला करने की मज़दूरी।

घुटाना—क्रि० स० [घोटना का प्रे०] घोटने का काम कराना।

घुटुरू†*—संज्ञा पुं० दे० "घुटना" (संज्ञा)

घुटुवा—संज्ञा पुं० दे० "घुटना"। (संज्ञा)।

घुट्टा—संज्ञा पुं० दे० "घोटा"।

घुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घूँट] वह दवा जो छोटे बच्चों को पाचन के लिये पिलाई जाती है।

क्रि० प्र०—देना।—पिलाना।

मुहा०—घुट्टी में पड़ना=स्वभाव के अंतर्गत होना। उ०—झूठ बोलना तो इनकी घुट्टी में पड़ा है।

घुड़कना—क्रि० स० [सं० घुर] किसी पर क्रुद्ध हो कर उसे डराने के लिये ज़ोर से कोई बात कहना। कड़क कर बोलना। डाँटना। उ०—जो लड़के घुड़कने से नहीं मानते वे मार को भी कुछ नहीं समझते।

घुड़की—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुड़कना] (१) वह बात जो क्रोध में आकर डराने के लिये ज़ोर से कही जाय। डाँट। डपट। फटकार। (२) घुड़कने की क्रिया।

यौ०—बंदरघुड़की=झूठ मूठ डर दिखाना।

घुड़चढ़ा—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा+चढ़ना] (१) सवार। अश्वारोही। (२) एक प्रकार का स्वाँग जिसमें एक मनुष्य अपने पेट के सामने घोड़े के मुँह का और पीछे दुम आदि का आकार बना कर जोड़ता है जिससे वह देखने में घोड़े पर सवार जान पड़ता है। ग़ाज़ी मियाँ की सवारी की नक़ल दिखा कर भीख माँगने के लिये प्रायः डफाली ऐसा स्वाँग बनाते हैं। इसे लिल्ली घोड़ी भी कहते हैं।

घुड़चढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + चढ़ना] (१) विवाह की एक रीति जिसमें दूल्हा घोड़े पर चढ़ कर दुलहिन के घर जाता है। (२) दिहाती रंडी या तवायफ़ जो प्रायः घोड़ों पर चढ़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती हैं। निकृष्ट श्रेणी की गानेवाली वेश्या। (३) एक प्रकार की छोटी तोप जो घोड़े पर रख कर चलाई जाती है। (४) दे० "घोड़ा चोली"।

घुड़दौड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + दौड़] (१) घोड़ों की दौड़। (२) एक प्रकार का जुए का खेल जिसमें कई एक मनुष्य एक स्थान से अपने अपने घोड़े दौड़ाते हैं। जिसका घोड़ा सब से आगे निकल कर निश्चित स्थान पर पहले पहुँच जाय उसकी जीत समझी जाती है। (३) घोड़े दौड़ाने का स्थान या सड़क। (४) एक प्रकार की नाव जिसका अगला भाग घोड़े के मुँह के आकार का बना होता है। बैठने के लिये इसके बीच में बँगला रहता है। (५) अश्वारोही सेना की परेड वा क़वायद।
क्रि० वि० [हिं० घोड़ा + दौड़] बड़ी तेज़ी से। अति शीघ्रता से। उ०—(क) आज घुड़दौड़ कहाँ चले जा रहे हो। (ख) घुड़दौड़ मत चलो, नहीं तो ठोकर लगेगी।

घुड़दौर†—संज्ञा स्त्री० दे० "घुड़दौड़"।
क्रि० वि० दे० "घुड़दौड़"।

[illegible]—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + नाल] एक प्रकार की तोप जो घोड़ों पर चलती है।

घुड़बहल—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा + बहल] वह रथ जिसमें घोड़े जुतते हों।

घुड़मक्खी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + मक्खी] एक प्रकार की भूरे रंग की मक्खी जो घोड़ों को तंग किया करती है।

घुड़मुहाँ—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा + मुहँ] (१) एक कल्पित मनुष्य-जाति जिसका सारा धड़ मनुष्य का सा और मुहँ घोड़े का सा माना जाता है। (२) वह मनुष्य जिसका मुँह लंबा और बेढंगा हो। लंबे मुहँवाला मनुष्य।

घुड़ला—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा + ला (प्रत्य०)] (१) मिट्टी वा किसी धातु वा मिठाई का बना हुआ घोड़े के आकार का खिलौना। (२) छोटा घोड़ा। (३) कोई छोटी रस्सी वा पतली जंजीर जिससे जहाज़वाले अनेक काम लेते हैं और जिसे अंगरेजी में लैन-यार्ड कहते हैं।

घुड़सार—संज्ञा स्त्री० दे० "घुड़साल"।

घुड़साल—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + शाला] घोड़ों के बाँधने का स्थान। अस्तबल। पैंड़ा।

घुड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ी का अल्प०] (१) छोटी घोड़ी। (२) दे० "घोड़िया"।

घुड़ुकना—क्रि० स० दे० "घुड़कना"।

घुण—संज्ञा पुं० दे० "घुन"।

घुणाक्षरन्याय—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी कृति वा रचना जो अनजान में इसी प्रकार हो जाय जिस प्रकार घुनों के खाते खाते लकड़ी में अक्षर की तरह के बहुत से चिह्न वा लकीरें बन जाती हैं। (इस न्याय वा उक्ति का प्रयोग ऐसे स्थलों पर करते हैं जहाँ किसी के द्वारा ऐसा आकस्मिक कार्य्य हो जाता है जो उसे ज्ञात वा अभीष्ट न रहा हो) उ०—होय घुनाक्षर न्याय ज्यों पुनि प्रत्यूह अनेक।—तुलसी।

घुन—संज्ञा पुं० [सं० घुण] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो अनाज, पौधे और लकड़ी आदि में लगता है। जिस लकड़ी वा अनाज में यह लगता है उसे भीतर ही भीतर खाते खाते खोखला कर डालता है। इस कीड़े का भी रेशम के कीड़े के समान कई रूपांतर होता है। यह भी पहले गंडेदार लंबे ढोले के रूप में रहता है।

मुहा०—घुन लगना = (१) घुन का अनाज या लकड़ी को खाना। (२) भीतर ही भी भीतर किसी वस्तु का क्षीण होना। धीरे धीरे अप्रत्यक्ष रूप में किसी वस्तु का ह्रास होना। भीतर ही भीतर छीजना वा नष्ट होना। जैसे, शरीर में घुन लगना, रोजगार में घुन लगना, जवानी में घुन लगना। उ०—कीट मनोरथ दारु शरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा?।—तुलसी। घुन झड़ना = घुन की खाई हुई लकड़ी का चूर गिरना।

विशेष—इस कीड़े की कई जातियाँ होती हैं। लकड़ी का घुन अनाज के घुन से भिन्न होता है।

घुनघुना—संज्ञा पुं० [अनु०] लकड़ी, पीतल इत्यादि का बना हुआ एक छोटा सा खिलौना, जिसे लड़के हाथ में लेकर बजाया करते हैं। इसका रूप गोल वा लंबोतरा गोल होता है। इसमें एक ओर एक दस्ता लगा होता है जिसे हाथ में पकड़ते हैं। झुनझुना।

घुनना—क्रि० स० [सं० घुण] (१) घुन के द्वारा लकड़ी आदि का खाया जाना। घुन के खाने से खोखला और कमज़ोर हो जाना। जैसे, लकड़ी घुनना, अनाज घुनना। (२) किसी दोष के कारण किसी चीज का भीतर ही भीतर छीजना। जैसे, शरीर घुनना।
संयो० क्रि०—जाना।

घुनाक्षरन्याय—संज्ञा पुं० दे० "घुणाक्षरन्याय"।

घुन्ना—वि० [अनु० घुनघुनाना] [स्त्री० घुन्नी] जो अपने क्रोध, द्वेष आदि भावों को मन ही में रक्खे और चुपचाप उनके अनुसार कार्य्य करे। मन ही मन बुरा माननेवाला। चुप्पा।

घुन्नी—वि० स्त्री० [हिं० घुन्ना] अपने मन का भाव गुप्त रखनेवाली (स्त्री)। चुप्पी (स्त्री)।
संज्ञा स्त्री० चुप्पी।
क्रि० प्र०—साधना।

घुप–वि० [सं० कूप वा अनु०] गहरा (अँधेरा)। निबिड़ (अंध-कार)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'अँधेरा' शब्द ही के साथ होता है, जैसे 'अँधेराघुप'।

घुमँड़ना†–क्रि० अ० दे० "घुमड़ना"।

घुमक्कड़–वि० [हिं० घूमना + अक्कड़ (प्रत्य०)] बहुत घूमनेवाला।

घुमची†–संज्ञा स्त्री० दे० "घुँघची"।

घुमटा–संज्ञा पुं० [हिं० घूमना + टा (प्रत्य०)] सिर का चक्कर जिसमें आँख के सामने अँधेरा सा जान पड़ता है और आदमी खड़ा नहीं रह सकता।

क्रि० प्र०—आना।

घुमड़–संज्ञा स्त्री० [हिं० घुमड़ना] बरसनेवाले बादलों का घेरघार।

घुमड़ना–क्रि० अ० [हिं० घूम + अटना] (१) बादलों का घूम घूम कर इकट्ठा होना। घने मेघों का छाना। बादलों का इधर उधर घने होकर जमना। उ०—(क) घुमड़ि घुमड़ि घटा घन की घनेरी अबै गरज गई ती फेर गरजन लागी री।—पद्माकर। (ख) उमड़ि घुमड़ि घन बरसन लागे।—गीत। (२) इकट्ठा होना। छाजाना। उ०—देव लला गये सोवत ते मुख माहिं महा सुखमा घुमड़ी सी।—देव।

घुमड़ाना†–क्रि० अ० दे० "घुमड़ना"। उ०—कहीं भभूके आगि द्वै धूँवां घुमड़ाया।—सूदन।

घुमड़ी–सं० स्त्री० [हिं० घूमना] (१) किसी केंद्र पर स्थिर रह कर चारों ओर फिरने की क्रिया। कुम्हार के चाक की तरह घूमने की क्रिया।

क्रि० प्र०—लेना।—लगाना।

(२) वह चक्कर जो इस प्रकार घूमने से लोगों के सिर में आता है।

क्रि०प्र०—आना।

(३) सिर में चक्कर आने का रोग जिसमें आँख के सामने अँधेरा सा जान पड़ता है। (४) किसी वस्तु के चारों ओर फेरा लगाने की क्रिया। परिक्रमा।

घुमना†–वि० [हिं० घूमना] [स्त्री० घुमनी] घूमनेवाला। इधर उधर बहुत फिरनेवाला। घुमक्कड़।

घुमनी–वि० स्त्री० [हिं० घूमना] जो इधर उधर घूमती फिरे।

संज्ञा स्त्री० [हिं० घूमना] (१) पशुओं का एक रोग जिसमें उनके पेट में पीड़ा होती है और वे इधर उधर चक्कर लगा कर गिर जाते हैं। इसे 'घुमड़ी' भी कहते हैं। (२) दे० "घुमड़ी"।

घुमरना–क्रि० अ० [अनु० घम घम] (१) घोर शब्द करना। ऊँचे शब्द से बजना। दे० "घुरना"। उ०—(क) बीस सहस घुम्मरहिं निसाना गुलकंचन फहरैं असमाना।—जायसी। (ख) निदरि घनहिं घुम्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनिय न काना।—तुलसी। (२) दे० "घुमड़ना"। † (३) घूमना।

घुमराना–क्रि० अ० दे० "घुमरना"। उ०—गरजि घुमरात मद मार गंडनि श्रवत पवन ते वेग तेहि समय चीन्हों।—सूर।

घुमरी†–संज्ञा स्त्री० (१) दे० "घुमड़ी"। (२) भँवर। (पानी का) (३) घुमनी नाम का रोग जो चौपायों को होता है।

घुमाँ–संज्ञा पुं० [हिं० घूमना] पंजाब में ज़मीन की एक नाप जो दो बीघों के बराबर होती है।

घुमाना–क्रि० स० [हिं० घूमना] (१) चक्कर देना। चारों ओर फिराना। (२) इधर उधर टहलाना। सैर कराना। (३) किसी ओर प्रवृत्त करना। किसी विषय की ओर लगाना। उ०—उन्हें क्या, जिधर घुमाओ उधर घूम जायँगे। (४) ऐंठना। मरोड़ना। जैसे, कल घुमाना।

घुमाव–संज्ञा पुं० [हिं० घुमाना] (१) घूमने वा घुमाने का भाव। (२) फेर। चक्कर।

यौ०—घुमावदार।

मुहा०—घुमाव फिराव की बात = पेचीली बात। हेर फेर की बात।

(३) उतनी भूमि जितनी एक जोड़ी बैल से एक दिन में जोती जाय। (४) रास्ते का मोड़। (५) दे० "घुमाँ"।

घुमावदार–वि० [हिं० घुमाव + दार] चक्करदार। जिसमें कुछ घुमाव फिराव हो।

घुम्मरना*–क्रि० अ० दे० "घुमरना"। उ०—निदरि घनहिं घुम्मरहिं निसाना। निज पराई कछु सुनिय न काना।—तुलसी।

घुरकना†*–क्रि० अ० दे० "घुड़कना"।

घुरका–संज्ञा पुं० [हिं घुरघुराना] चौपायों की एक बीमारी।

घुरघुर–संज्ञा पुं० [अनु०] घुरघुर शब्द जो बिल्ली, सूअर आदि के गले से तथा कफ़ छेंकने के कारण मनुष्य के गले से भी साँस लेते समय निकलता है।

घुरघुराना–क्रि० अ० [अनु० घुरघुर] गले से घुर घुर शब्द निकालना।

घुरघुराहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० घुरघुराना] घुरघुर शब्द निकालने का भाव।

घुरचा†–संज्ञा पुं० [देश०] कपास ओटने की चरखी। (अलमोड़ा)।

घुरना*–क्रि० अ० दे० "घुलना"।

क्रि० अ० [सं० घुर] शब्द करना। बजना। उ०—(क) अवधपुर आये दशरथ राइ। राम लक्ष्मण भरत शत्रुघन शोभित चारो भाइ। घुरत निसान मृदंग शंख धुनि भेरि झाँझ सहनाइ।—सूर। (ख) डंकन के शोर चहुँ ओर महा घोर घुरे, मानो घनघोर घोरि उठे भुव ओर तें।—सूदन।

घुरबिनिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० घूरा + बीनना] (१) घूरे पर से दाना इत्यादि बीन बीन कर एकत्र करने का काम। (२) गली कूचों में से टूटी फूटी चीजों के टुकड़े चुन चुन कर एकत्र करने का काम। उ०—राम गरीबनिवाज हैं राज देत जन जानि। तुलसी मन परिहरत नहिं घुरबिनिया की बानि।—तुलसी।

घुरुहरी–संज्ञा स्त्री० दे० "घुरुहुरी"।

घुरुहुरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० खुर + हर (प्रत्य०)] (१) जंगल में पशुओं के चलने से बना हुआ तंग रास्ते का सा निशान। (२) वह तंग रास्ता जिस पर केवल एक ही मनुष्य चल सकै। पगडंडी।

घुर्मित–क्रि० वि० [सं० घूर्णित:] घूमता हुआ। चक्कर खाता हुआ। उ०—पुनि उठि तेहि मारेहु हनुमंता। घुर्मित भूतल परयो तुरंता।—तुलसी।

घुर्राना†–क्रि० अ० दे० "गुर्राना"।

घुर्रवा–संज्ञा पुं० [देश०] जानवरों का एक रोग। यह रोग एक पशु से उड़ कर दूसरे में जा व्यापता है और कठिनाई से दूर होता है। इसकी उत्पत्ति एक प्रकार के जहर से होती है जो पशुओं के रुधिर में पैदा हो जाता है। इसमें गला सूज उठता है और ज्वर बड़े जोर से चढ़ता है।

घुलना–क्रि० अ० [सं० घूर्णन, प्रा० घुलन] (१) पानी, दूध आदि पतली चीज़ों में खूब हिल मिल जाना। किसी द्रव पदार्थ में मिश्रित हो जाना। हल होना। उ०—चीनी को अभी हिलाओ जिसमें पानी में घुल जाय।

संयो० क्रि०—जाना।

यौ०—घुलना मिलना।

मुहा०—घुल घुल कर बातें करना = ख़ूब मिल जुल कर बातें करना। अभिन्न हृदय होकर बातें करना। बड़ी घनिष्ठता के साथ बातें करना। घुल मिल कर = ख़ूब मेल जोल के साथ। नज़र वा आँखें घुलना = आँख से आँख प्रेमपूर्वक मिलना। उ०—छबीले दृग घुरि घुरि हँसि मुरि जात।—नागरी। कलम का घुल जाना = कलम का स्याही में रहते रहते नरम हो जाना जिससे वह ख़ूब चले।

(२) गलना। जल आदि के संयोग से किसी पदार्थ के अणुओं का अलग अलग होना। द्रवित होना। (३) पक कर पिलपिला होना। नरम होना। उ०—ख़ूब घुले घुले आम लाना। (४) रोग आदि से शरीर का क्षीण होना। दुर्बल होना।

मुहा०—घुला हुआ = बुड्ढा। वृद्ध। घुल घुल कर काँटा होना = बहुत दुबला हो जाना। इतना दुबला हो जाना कि शरीर की हड्डियाँ दिखाई दें। घुल घुल कर मरना = बहुत दिनों तक कष्ट भोग कर मरना।

(५) जाता रहना। दाँव का हाथ से निकल जाना। (जुआरी) (६) (समय) बीतना। व्यतीत होना। गुज़रना। उ०—ज़रा से काम में महीनों घुल गए।

घुलवाना–क्रि० स० [हिं० घुलाना का प्रे०] (१) गलवाना। द्रवित कराना। (२) आँख में सुरमा लगवाना।

क्रि० स० [हिं० 'घोलना' का प्रे०] किसी द्रव पदार्थ में मिश्रित कराना। हल कराना।

घुलाना–क्रि० स० [हिं० घुलना] (१) गलाना। द्रवित करना। (२) शरीर दुर्बल करना। शरीर क्षीण करना। (३) मुँह में रख कर धीरे धीरे रस चूसना। मुँह में रख कर धीरे धीरे गलाना। चुभलाना। (४) पका कर पिलपिला करना। गरमी वा दाब पहुँचा कर नरम करना। (५) (सुरमा या काजल) लगाना। सारना। (६) (समय) बिताना। व्यतीत करना। गुज़ारना। उ०—इस सुनार को मत दो, यह बरसों घुला देगा।

घुलावट–संज्ञा स्त्री० [हिं० घुलना] घुलने का भाव या क्रिया।

घुवा–संज्ञा पुं० दे० "घूआ"।

घुसड़ना†–क्रि० अ० दे० "घुसना"।

घुसना–क्रि० अ० [सं० कुश = आलिंगन करना, घेरना। अथवा घर्षण] (१) कुछ वेगपूर्वक अथवा दूसरे की इच्छा का विरोध करते हुए भीतर जाना। भीतर पैठना। प्रवेश करना।

संयो० क्रि०—आना।—जाना।—पड़ना।—बैठना।

यौ०—घुस पैठ।

मुहा०—घुस कर बैठना = (१) छिप रहना। सामने न आना। (२) पास पास बैठना। सट कर बैठना।

धँसना। चुभना। गड़ना। (३) किसी काम में दख़ल देना। अनधिकार चर्चा वा कार्य्य करना। उ०—तुम क्यों हर एक काम में घुस पड़ते हो। (४) मनोनिवेश करना। किसी विषय की ओर ख़ूब ध्यान लगाना। (५) दूर हो जाना। जाता रहना। उ०—एक थप्पड़ लगावेंगे, सारी बदमाशी घुस जायगी।

घुसपैठ–संज्ञा स्त्री० [हिं० घुसना + पैठना] पहुँच। गति। प्रवेश। रसाई।

घुसवाना–क्रि० स० [हिं० घुसाना का प्रे०] घुसाने का काम कराना।

घुसाना–क्रि० स० [हिं० घुसना] (१) भीतर घुसेड़ना। पैठाना। (२) चुभाना। धँसाना।

संयो० क्रि०—देना।

घुसेड़ना–क्रि० स० [हिं० घुसना] घुसाना। पैठाना। धँसाना।

संयो० क्रि०—देना।

घूँगची†–संज्ञा स्त्री० दे० "घुँघची"।

घूँघट–संज्ञा पुं० [सं० गंठ] (१) स्त्रियों की साड़ी या चादर के किनारे का वह भाग जिसे वे लज्जावश वा परदे के लिये

सिर पर से नीचे बढ़ा कर मुँह पर डाले रहती हैं। वस्त्र का वह भाग जिससे कुलवधू का मुँह ढँका रहता है।

क्रि॰ प्र॰—खोलना।—डालना।—† घालना।

मुहा॰—घूँघट उठाना = (१) घूँघट को ऊपर की ओर खसकाना जिससे मुँह खुल जाय। (२) पड़दा दूर करना। नई आई बधू का सबके सामने मुँह खोलना। घूँघट उलटना = दे॰ घूँघट उठाना। घूँघट करना = (१) घूँघट डालना। (२) लज्जा करना। शर्म करना। (३) घोड़े का पीछे की ओर गरदन मोड़ना। (सवार)। घूँघट काढ़ना = घूँघट डालना। मुँह को घूँघट से ढकना। घूँघट खाना = लड़ाई के मैदान से मुँह मोड़ना। सेना का युद्धस्थल से पीछे की ओर भागना। लड़ाई में सेना का पीठ दिखाना। घूँघट निकालना = "दे॰ घूँघट काढ़ना"। घूँघट मारना = दे॰ "घूँघट काढ़ना"।

(२) परदे की वह दीवार जो बाहरी दरवाज़े के सामने इसलिये रहती है जिसमें चौक वा आँगन बाहर से दिखाई न पड़े। ग़ुलाम गर्दिश। ओट।

घूँघर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ घुमरना] बालों में पड़े हुए छल्ले या मरोड़।

यौ॰—घूँघरवाले।

घूँघरवारे, घूँघरवाले—वि॰ [हिं॰ घूंघर] कुंचित। टेढ़े छल्लेदार। झबरीले (बाल)।

घूँघरा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का बाजा।

घूँघरी†—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰ घुन+घुर] नूपुर। नेउर। घुँघुरू। उ॰—(क) पद पद्म की शुभ घूँघरी, मणि नील हाटक सों जरी।—केशव। (ख) बिछिया अनौट बांके घूँघरी जराय जरी, जेहरि छबीली छुद्र घंटिका की जालिका।—केशव।

घूँघरू†—संज्ञा पुं॰ दे॰ "घुँघुरू"।

घूँचा—संज्ञा पुं॰ दे॰ "घूँसा"।

घूँट—संज्ञा पुं॰ [अनु॰ घुट घुट = गले के नीचे पानी आदि उतारने का शब्द] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ का उतना अंश जितना एक बार में गले के नीचे उतारा जाय। चुसकी। उ॰—ऊपर से दो घूँट पानी पी लो।

मुहा॰—घूँट फेंकना = किसी पीने की वस्तु का बहुत थोड़ा सा अंश पीने के पहले पृथ्वी पर गिराना जिसमें नजर न लगे या किसी देवी देवता का अंश निकल जाय। घूँट लेना = घूँट घूँट कर के पीना। बहुत थोड़ा थोड़ा करके पीना। उ॰—घूँट मत लो, एक सांस में सब दवा पी जाओ। घूँट घूँट कर मारना = तंग करके मारना। दुःख पहुँचा पहुँचा कर मारना।

संज्ञा पुं॰ [सं॰ घुट] पहाड़ी टट्टुओं की एक जाति जिसे गूँठ या गुंठा भी कहते हैं।

संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार का पेड़ वा झाड़ जो बंगाल को छोड़ भारतवर्ष के बहुत से स्थानों में होता है। पत्तियाँ चार पांच अंगुल लंबी, गहरे हरे रंग की और नीचे की ओर कुछ रोएँदार होती हैं। यह बैसाख जेठ में फूलती है और जाड़े में फलती है। फल खाए नहीं जाते पर उनकी गुठलियाँ खाने के काम में आती हैं। पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। छाल और सूखे फल चमड़ा रँगने के काम में आते हैं।

घूँटना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ घूँट] पानी या और किसी द्रव पदार्थ को गले के नीचे उतारना। पीना।

संयो॰ क्रि॰—जाना।—लेना।

घूँटी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ घूँट] एक औषध जो स्वास्थ्यकर और पाचक होने के कारण बच्चों को नित्य पिलाई जाती है।

मुहा॰—जनम घूँटी = वह घूँटी जो बच्चे को उसका पेट साफ़ करने के लिये जन्म के दूसरे ही दिन दी जाती है। जब तक यह घूँटी पिला कर बच्चे का पेट साफ़ नहीं कर लिया जाता तब तक उसे माता का दूध नहीं पिलाया जाता।

घूँस—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "घूस"।

घूँसा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ घिस्सा] (१) बँधी हुई मुट्ठी जो मारने के लिये उठाई जाय। मुक्का। डुक। धमाका। जैसे, घूँसा तानना। (२) बँधी हुई मुट्ठी का प्रहार।

क्रि॰ प्र॰—खाना।—चलाना।—जड़ना।—तानना।—मारना।—लगाना।

यौ॰—घूँसेबाज़ी = घूँसों की लड़ाई।

मुहा॰—घूँसों का क्या उधार ? = मार का बदला मार से लेने में क्या देर ? मार पीट का बदला तुरंत ले।

घूआ—संज्ञा पुं॰ [देश॰] (१) कांस, मूँज वा सरकंडे आदि का रुई की तरह का फूल जो लंबे सींकों में लगता है। (२) पानी के किनारे मिट्टी में रहनेवाला एक कीड़ा जिसे बुलबुल आदि पक्षी खाते हैं। रेवाँ। (३) दरवाज़े में ऊपर या नीचे का वह छेद जिसमें किवाड़े की चूल अटकाई जाती है।

घूक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ घूकी] घुग्घू। उल्लू पक्षी। रुरुआ।

घूका—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ घूआ] बांस, बेंत, रहटे वा मूँज इत्यादि का बना हुआ सँकरे मुँह का बर्त्तन या डलिया। घुकुवा।

घूगस†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] ऊँचा बुर्ज। गरगज।

घूघ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ घोघी] लोहे या पीतल की बनी टोपी जो लड़ाई में सिर को चोट से बचाने के लिये पहनी जाती है। है। उ॰—अरुन रंग आनन छवि लीने। माथे घूघ लोह की दीने।—लाल कवि।

घूघी†—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] (१) थैली। (२) जेब। खीसा। (३) घुग्घी। पंडुक। पेंडुकी। फ़ाख़्ता।

घूघू—संज्ञा पुं॰ दे॰ "घुग्घू"।

घूटना†–क्रि० स० [हिं० घुटना क्रि०] दबाना । साँस रोकना । जैसे, गला घूटना ।

घूना†–वि० [देश०] (१) चतुर । अनुभवी । खुर्राट । (२) दे० "घुन्ना" ।

घूम–संज्ञा स्त्री० [हिं० घूमना] (१) घुमाव । फेर । चक्कर । घूमने का भाव । (२) मोड़ । वह स्थान जहाँ से किसी ओर मुड़ना पड़े ।

घूमना–क्रि० अ० [सं० घूर्णन] (१) चारों ओर फिरना । चक्कर खाना । एक ही धुरी पर चारों ओर भ्रमण करना । (२) सैर करना । टहलना । (३) देशांतर में भ्रमण करना । सफ़र करना । (४) मँड़राना । एक वृत्त की परिधि में गमन करना । कावा काटना । (५) किसी ओर को मुड़ना । उ०—वहाँ से वह रास्ता पश्चिम को घूम गया है । (६) लौटना । वापस आना व जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

मुहा०—घूम पड़ना = सहसा क्रुद्ध हो जाना । बिगड़ उठना । उ०—मैं तो उन्हें समझाने गया था वे मेरे ही ऊपर घूम पड़े ।

†* (७) उन्मत्त होना । मतवाला होना । उ०—बिहँसि बुलाय बिलोकि उत प्रौढ़ तिया रस घूमि । पुलकि पसीजति पूत को पिय चूमो मुख चूमि ।—बिहारी ।

घूमनी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० घूमना] सिर का चक्कर । घुमटा ।

घूमघुमारा–वि० [हिं० घूमना] घेरदार । बड़े घेरे का । जैसे, घूमघुमारा लहँगा ।

घूर–संज्ञा पुं० [सं० कूट, हिं० कूरा] (१) वह जगह जहाँ कूड़ा करकट फेंका जाय । खाद, कूड़ा, करकट कतवार आदि फेंकने वा एकत्र करने का स्थान । (२) कूड़े का ढेर । (३) किसी पोली चीज़ में उसको भारी करने के लिये भरा हुआ बालू और सुहागा आदि (सोनारी)

घूरना–क्रि० अ० [सं० घूर्णन = इधर उधर फिराना] (१) बार बार आँख गड़ा कर बुरे भाव से देखना । बुरी नीयत से एक टक देखना । जैसे, स्त्री घूरना । (२) क्रोधपूर्वक एकटक देखना । कुपित दृष्टि से ताकना । आँख निकालना । (३) † घूमना । टहलना (बिहार) ।

घूरा–संज्ञा पुं० [सं० कूट, हिं० कूरा] (१) कूड़े करकट का ढेर । (२) वह स्थान जहाँ कूड़ा करकट फेंका जाता है । कतवारखाना ।

घूरा घारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० घूरना + घारना (अनु०)] घूरने की क्रिया ।

घूस–संज्ञा स्त्री० [सं० गुहाशय = चूहा] चूहे के वर्ग का एक बड़ा जंतु जो प्रायः पृथ्वी के भीतर बड़े लंबे बिल खोद कर रहता है । एक प्रकार का बड़ा चूहा ।

संज्ञा स्त्री० [सं० गुह्याशय = गुप्त अभिप्राय से दिया हुआ धन] वह द्रव्य जो किसी को अपने अनुकूल कोई कार्य्य कराने के लिये अनुचित रूप से दिया जाय । रिशवत । उत्कोच । लाँच । उ०—वह घूस देकर अपना काम निकालता है ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।—लेना ।

यौ०—घूसखोर = घूस खानेवाला । घूस पचड़ = रिशवत ।

घृणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० घृणित] (१) घिन । नफ़रत । (२) वीभत्स रस का स्थायी भाव ।

घृणित–वि० [सं०] (१) घृणा करने योग्य । (२) जिसे देख या सुन कर घृणा पैदा हो ।

घृत–संज्ञा पुं० [सं०] घी ।

घृतकुमारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] घीकुवार । गुआरपाठा । गौंड़पट्ठा ।

घृतधारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घी की धारा । (२) पश्चिम देश की एक नदी । पुराणानुसार कुश द्वीप की एक नदी ।

घृतपूर–संज्ञा पुं० [सं०] घेवर नामक पकवान । दे० "घेवर" ।

घृतप्रमेह–संज्ञा पुं० [सं०] प्रमेह रोग का एक प्रकार जिसमें मूत्र घी के समान गाढ़ा और चिकना होता है ।

घृताची–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वर्ग की एक अप्सरा । (२) वह करछुली जिससे यज्ञों में घी अग्नि में डाला जाता है । श्रुवा । (३) कुशनाभ नामक एक प्राचीन राजा की रानी का नाम ।

घेंघ–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का भोजन जो चने की बहुरी को चावलों में मिला कर पकाने से बनता है । (२) घेघा ।

घेंघा–संज्ञा पुं० दे० "घेघा" ।

घेंट†–संज्ञा पुं० [हिं० घाँटी] गला । गरदन ।

घेंटा–संज्ञा पुं० [अनु० घें घें] सूअर का बच्चा ।

घेंटी†–संज्ञा स्त्री० [?] (१) चने की फली । चने की फली जिसके भीतर बीज रूप से चना होता है । (२) चने की फली के आकार की कोई वस्तु ।

घेंटुला†–संज्ञा पुं० [हिं० घेंटा] [स्त्री० घेंटुलिया] सूअर का छोटा बच्चा ।

घेघा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) गला । गले की नली जिससे भोजन वा पानी पेट में जाता है । (२) गले का एक रोग जिसमें गले में सूजन होकर बतौड़ा सा निकल आता है । यह रोग गोरखपुर, बस्ती आदि जिलों के निवासियों को बहुधा हुआ करता है ।

घेड़ौंची–संज्ञा स्त्री० दे० "घड़ौंची" ।

घेतल,घेतला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का भद्दा जूता जिसका पंजा चपटा और मुड़ा हुआ होता है । इसे महाराष्ट्र या दक्षिणी अधिक पहनते हैं ।

घेनौंची†–संज्ञा स्त्री० दे० "घनौंची" ।

घेपना†–क्रि० स० [देश०] (१) हाथ पैर से रौंद कर मिलाना ।

एक में लथपथ करना। (२) खुरचना। छीलना। (३) स्त्री-प्रसंग करना। (बाजारू)

घेर–संज्ञा पुं० [हिं० घेरना] घेरा। परिधि। चारों ओर का फैलाव।

यौ०—घेरदार। जैसे, घेरदार पायजामा।

घेरघार–संज्ञा पुं० [हिं० घेरना] (१) चारों ओर से घेरने वा छा जाने की क्रिया। उ०—बादलों का घेरघार देखने से जान पड़ता है कि पानी बरसेगा। (२) चारों ओर का फैलाव। विस्तार। (३) किसी कार्य्य के लिये किसी के पास बार बार उपस्थित होने का कार्य्य। किसी के पास जाकर बार बार अनुरोध वा विनय करने का कार्य्य। खुशामद। विनती। उ०—बिना घेरघार किए आज कल जगह नहीं मिलती।

घेरना–क्रि० स० [सं० ग्रहण] (१) चारों ओर हो जाना। चारों ओर से छेंकना। सब ओर से आबद्ध हो कर मंडल वा सीमा के भीतर लाना। बाँधना। उ०—(क) इस स्थान को टट्टियों से घेर दो। (ख) दुर्ग को खाँई चारों ओर से घेरे है। (ग) इतना अंश लकीर से घेर दो। (२) चारों ओर से रोकना। छेंकना। ग्रसना। आक्रांत करना। उ०—(क) धर्म सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछूंदर केरी।—तुलसी। (ख) गैयन घेरि सखा सब लाए।—सूर। (ग) बाल बिहाल वियोग की घेरी।—पद्माकर। (३) गाय आदि चौपायों की चराई करना। चराना। चराने का काम अपने ऊपर लेना। (४) किसी स्थान को अपने अधिकार में रखना। स्थान छेंकना वा फँसाए रखना। (५) सेना का शत्रु के किसी नगर वा दुर्ग के चारों ओर आक्रमण के लिये स्थित होना। चारों ओर से अधिकार करने के लिये छेकना। (६) किसी कार्य्य के लिये किसी के पास बार बार जाना। किसी बात के लिये किसी के पास बार बार जाकर अनुरोध वा विनय करना। खुशामद करना। उ०—हमको क्यों घेरते हो, हम इस मामले में कुछ भी नहीं कर सकते।

यौ०—घेरना घारना।

घेरा–संज्ञा पुं० [हिं० घेरना] (१) चारों ओर की सीमा। किसी तल के सब ओर के बाहरी किनारे। परिधि। लंबाई चौड़ाई आदि का सारा विस्तार वा फैलाव। उ०–(क) वह बगीचा दो मील के घेरे में है। (ख) उस घेरे के भीतर मत जाओ। (ग) इस अंगरखे का घेरा बहुत कम है। (२) चारों ओर की सीमा की माप का जोड़। परिधि का मान। उ०–इस बगीचे का घेरा दो मील है। (३) वह वस्तु जो किसी स्थान के चारों ओर हो (जैसे दीवार आदि)। वह जो किसी जगह को चारों ओर से घेरे हो। (४) घिरा हुआ स्थान। हाता। मंडल। उ०—उस घेरे के भीतर मत जाना। (५) किसी लंबे और घन पदार्थ की चौड़ाई और मोटाई का विस्तार। पेटा। उ०—इस धरन का घेरा २० इंच है। (६) सेना का किसी दुर्ग वा गढ़ को चारों ओर से छेंकने का काम। चारों ओर से आक्रमण। मुहासरा।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

घेराई–संज्ञा स्त्री० दे० "घिराई"।

घेराव–संज्ञा पुं० दे० "घिराव"।

घेलौना†–संज्ञा पुं० [हिं० घाल] थोड़े मूल्य की वस्तुओं की बिक्री में उतनी वस्तु जितनी सौदे के ऊपर दी जाती है। वह अधिक वस्तु जो ग्राहक को उचित तौल के अतिरिक्त दी जाय। घाल। घलुवा।

घेवर–संज्ञा पुं० [हिं० घी + पूर] एक प्रकार की मिठाई जो पतले घुले हुए मैदे, घी और चीनी से बनाई जाती है और बड़ी टिकिया वा खजले के आकार की और सूराखदार होती है।

घेंटा–संज्ञा पुं० दे० "घेंटुला"।

घैसाहर*–संज्ञा स्त्री० [?] फ़ौज। सेना। लश्कर। (डिं०)

घैया–संज्ञा पुं० [हिं० घी वा सं० घात] (१) ताजे और बिना मथे हुए दूध के ऊपर उतराते हुए मक्खन को काछ कर इकट्ठा करने की क्रिया। उ०—(क) कजरी धुमरी सेंदुरी धौरी मेरी गैया। दुहि ल्यावैं मैं तुरत ही तू करि दे घैया।—सूर। (ख) दूध दोहनी ले री मैया। दाऊ टेरत सुनि मैं आऊँ तब लौं करि तू घैया।—सूर। (२) किसी पेड़ या लकड़ी आदि को काटने अथवा उसमें से रस आदि निकालने के लिये शस्त्र से पहुँचाया हुआ आघात। संज्ञा स्त्री० [हिं० घाई वा घा] ओर। तरफ़। दिशा। उ०—सोहर शोर मनोहर नोहर माचि रह्यौ चहुँ घैया।—रघुराज।

घैर, घैरु, घैरो,†*–संज्ञा पुं० [देश०] (१) निंदामय चर्चा। बदनामी। अपयश। (गुप्त) उपहास। उ०–चलत घैर घर घर तऊ घरी न घर ठहराइ।—बिहारी। (२) चुगुली। गुप्त शिकायत। उ०–तोहि न रूसनो योग बलाय ल्यौं घैर किये मत काहू के लागहि।–रघुनाथ।

घैला†–संज्ञा पुं० [सं० घट] [स्त्री अल्प० घैली] घड़ा। कलसा। गगरा।

घैहल†–वि० [हिं० घाव, घायल वा सं० घात] जिसके घाव लगा हो। ज़ख्मी। घायल।

घैहा†–वि० [हिं० घाव] घायल। ज़ख्मी।

घोंघ–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

घोंघा–संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० घोंघी] (१) शंख की तरह का एक कीड़ा जो प्रायः नदियों, तालाबों तथा और जलाशयों में पाया जाता है। इसकी बनावट घुमावदार होती है, पर इसका मुँह गोल होता है, जो खुल सकता और बंद हो सकता है। इसके ऊपर का अस्थि-कोश शंख से बहुत पतला होता है। वैद्यक में घोंघे का मांस मधुर और पित्तनाशक माना जाता है। घोंघे का चूना भी बनता है।

पर्य्या०—शंबुक।

(२) गेहूँ की बाल में वह कोश वा कोथली जिसमें दाना रहता है।

वि० (१) जिसमें कुछ सार न हो। (२) मूर्ख। जड़। बेवकूफ़। गावदी।

घोंचवा-संज्ञा पुं० दे० "घोंचा (२)"।

घोंचा-संज्ञा पुं० [हिं० गुच्छा] (१) गौद। गुच्छा। घौद। स्तवक। (२) वह बैल जिसके सींग मुड़ कर कान से जा लगे हों।

घोंची-संज्ञा स्त्री० [हिं० घोंचा] वह गाय जिसके सींग कानों की ओर मुड़े हों।

घोंचुआ-संज्ञा पुं० दे० "घोंसुआ"।

घोंट-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक जंगली वृक्ष जो बहुत बड़ा होता है। इसकी लकड़ी मज़बूत होती है और किसानी के औज़ार बनाने के काम में आती है। (२) घूँट नामक वृक्ष।

घोंटना†-क्रि० स० [हिं० घूँट, पू० हिं० घोंट] (१) घूँट घूँट करके पीना। पानी या और किसी द्रव पदार्थ को थोड़ा थोड़ा करके गले के नीचे उतारना। पीना। (२) किसी दूसरे की वस्तु को लेकर न लौटाना। हज़म करना। पचाना।

क्रि० स० [सं० घुट] (१) (गला) इस प्रकार दबाना कि दम रुक जाय। (गला) मरोड़ना। उ०—चोर ने लड़के का गला घोंट दिया। (२) दे० "घोटना"।

घोंपना-क्रि० स० [अनु० 'घप'] (१) धँसाना। चुभाना। गड़ाना। (२) बुरी तरह सीना। गांठना।

घोंसला-संज्ञा पुं० [सं० कुशालय, अथवा हिं० घुसना] वृक्ष, पुरानी दीवार आदि पर खर, पत्ते, घास, फूस और तिनके आदि से बना हुआ स्थान जिसमें पक्षी रहते हैं। चिड़ियों के रहने और अंडे देने का स्थान। नीड़। खोता।

क्रि० प्र०—बनाना।—रखना।—लगाना।

घोंसुआ†*-संज्ञा पुं० [हिं० घोंसला] घोंसला। खोता। उ०—बचै न बड़ी सबीलहू चील घोंसुआ माँस।—बिहारी।

घोखना-क्रि० स० [सं० घुष] धारणा के लिये बार बार पढ़ना। स्मरण रखने के लिये बार बार उच्चारण करना। पाठ की बार बार आवृत्ति करना। रटना। घोटना।

घोखवाना-क्रि० स० [हिं० घोखना का प्रे०] रटवाना। बार बार कहलाना। याद कराना।

घोगर-संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़। दे० "खरपत"।

घोघ-संज्ञा पुं० [देश०] बटेर फँसाने का जाल।

घोघा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो चने की फ़सल को हानि पहुँचाता है। यह कीड़ा सरदी से पैदा होता और चने की घेँटियों के भीतर घुस कर दाने खा जाता है, जिससे खाली घेँटी ही घेँटी रह जाती है।

घोघी†-संज्ञा स्त्री० दे० "घुग्घी"।

घोचिल-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

घोट, घोटक-संज्ञा पुं० [सं० घोटक] घोड़ा। अश्व।

घोटना-क्रि० स० [सं० घुट्=आवर्त्तन वा प्रतिघात करना] (१) किसी वस्तु को दूसरी वस्तु पर इस लिये बार बार रगड़ना कि वह दूसरी वस्तु चिकनी और चमकीली हो जाय। जैसे, कपड़ा घोटना, तख़्ती घोटना, दीवार घोटना, काग़ज़ घोटना। (२) किसी वस्तु को बट्टे या और दूसरी वस्तु से इस लिये बार बार रगड़ना कि वह बहुत बारीक पिस जाय। रगड़ना। जैसे, भाँग घोटना, सुरमा घोटना।

विशेष—घिसने और घोटने में यह अंतर है कि घिसने का प्रभाव जो वस्तु ऊपर रख कर फिराई जाती है उस पर वांछित होता है, जैसे, चंदन घिसना; पर घोटने का प्रभाव आधार (जैसे, कपड़ा, काग़ज़ आदि) या उस पर रखी हुई किसी वस्तु (जैसे सिल पर रखी हुई भाँग) पर वांछित होता है, जैसे, कपड़ा घोटना, भाँग घोटना। पीसने का प्रभाव केवल आधार पर रखी हुई वस्तु ही पर वांछित होता है, जैसे, भाँग पीसना, आटा पीसना। रगड़ने और घोटने में भी वही अंतर है जो घिसने और घोटने में है।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

(३) किसी पात्र में रख कर कई वस्तुओं को बट्टे आदि से रगड़ कर परस्पर मिलाना। हल करना। (४) कोई कार्य्य विशेषतः लिखने पढ़ने का कार्य्य इसलिये बार बार करना कि उसका अभ्यास हो जाय। अभ्यास करना। मश्क़ करना। जैसे, सबक़ घोटना, पट्टी या तख़्ती घोटना। (५) डाँटना। फटकारना। बहुत बिगड़ना। उ०—अफ़सर ने बुला कर उन्हें ख़ूब घोटा। (६) छुरा या उस्तरा फेर कर शरीर के बाल दूर करना। मूँड़ना। (७) (गला) इस प्रकार दबाना कि साँस रुक जाय। (गला) मरोड़ना।

मुहा०—गला घोटना=दे० "गला"।

संज्ञा पुं० (१) घोटने का औज़ार। वह वस्तु जिससे कुछ घोटा जाय। जैसे, भँगघोटना। (२) रँगरेजों का लकड़ी का वह कुंदा जो जमीन में कुछ गड़ा रहता है और जिस पर रख कर रँगे कपड़े घोटे जाते हैं।

घोटनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० घोटना] वह छोटी वस्तु जिससे कोई वस्तु घोटी जाय।

घोटवाना-क्रि० स० [हिं० घोटना का प्रे०] (१) रगड़वाना। घोट कर चिकना कराना। (२) पालिश कराना। (३) कुंदी कराना। (४) सिर या दाढ़ी आदि के बाल बनवा डालना।

घोटा-संज्ञा पुं० [हिं० घोटना] (१) वह वस्तु जिससे घोटने का काम किया जाय। (२) रँगरेजों का एक औज़ार जिसे वे रंगे हुए कपड़ों पर चमक लाने के लिये रगड़ते हैं। दुवाली। मोहरा। (३) घुटा हुआ चमकीला कपड़ा। (४) भाँग घोटने

का सोंटा वा डंडा। (५) बाँस का वह चोंगा जिससे घोड़ों, बैलों आदि पशुओं को नमक, तेल या और कोई औषध पिलाई जाती है। (६) नगजड़ियों का एक औज़ार जिससे वे डाँक को चमकीला बनाते हैं। (बाँस की नली में लाख देकर गोरा पत्थर का एक टुकड़ा चिपकाया रहता है, इसी से डाँक को रगड़ कर चमकदार करते हैं)। (७) रगड़ा। घोटाई। घोटने का काम। (८) चौर। हजामत।

क्रि० प्र०—फिरवाना।

घोटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोटना + आई (प्रत्य०)] (१) घोटने का भाव। (२) घोटने की क्रिया। (३) घोटने की मज़दूरी।

घोटाघोबा—संज्ञा पुं० [देश०] रेंवद चीनी की जाति का एक पेड़ जो खसिया की पहाड़ियों, पूरबी बंगाल तथा लंका आदि में होता है। इसमें से एक प्रकार की राल निकलती है जो रँगाई तथा दवा के काम में आती है। कनकुटकी। रेवा चीनी। सीरा।

घोटाला—संज्ञा पुं० [देश०] घपला। गड़बड़।

यौ०—गड़बड़ घोटाला।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—पड़ना।

मुहा०—घोटाले में पड़ना = गड़बड़ में पड़ना। निश्चित वा ठीक न होना। अस्थिर रहना।

घोटू†—संज्ञा पुं० [हिं० घोटना] (१) घोटनेवाला। (२) घोटने का औज़ार। घोटा।

संज्ञा पुं० [हिं० घुटना] घुटना। पैर की गाँठ।

घोड़†—संज्ञा पुं० [सं० घोटक] घोड़ा।

यौ०—घोड़चढ़ा। घोड़दौड़ आदि।

घोड़चढ़ा—संज्ञा पुं० दे० "घुड़चढ़ा"।

घोड़दौड़—संज्ञा स्त्री० दे० "घुड़दौड़"।

घोड़बच—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ + बच] बच नाम की ओषधि की एक किसिम जो घोड़ों को ही दी जाती है।

घोड़मुहाँ—संज्ञा पुं० दे० "घुड़मुहाँ"।

घोड़राई—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + राई] वह राई जिसके दाने कुछ बड़े बड़े होते हैं। यह मसाले के साथ घोड़ों को खिलाई जाती है।

घोड़रासन—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा + रासन] एक प्रकार का रासन वा रास्ना। दे० "रास्ना"

घोड़रोज—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा + रोज] एक प्रकार का रोज वा नीलगाय जो घोड़े की भाँति बहुत तेज़ भागती है। कोई कोई इसे पालतू बना गाड़ियों में भी जोतते हैं।

घोड़सन—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा + सन] एक प्रकार का सन।

घोड़सार, घोड़साल†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + शाला] घोड़ा बाँधने का स्थान। अस्तबल। पैंडा।

घोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० घोटक, प्रा० घोडा] [स्त्री० घोड़ी] (१) चार पैरोंवाला एक बड़ा पशु जिसके पैरों में पंजे नहीं होते, गोलाकार सुम (टाप) होते हैं। यह उसी जाति का पशु है जिस जाति का गदहा है पर गदहे से यह मज़बूत, बड़ा और तेज़ होता है। इसके कान भी गदहे के कानों से छोटे और खड़े होते हैं। इसकी गरदन पर लंबे लंबे बाल होते हैं और पूँछ नीचे से ऊपर तक बहुत लंबे लंबे बालों से ढकी होती है। टापों के ऊपर और घुटनों से नीचे एक प्रकार के घट्टे वा गाँठें होती हैं। घोड़े बहुत रंगों के होते हैं जिनमें से कुछ के नाम ये हैं—लाल, सुरंग, कुम्मैत, सब्ज़ा, मुश्की, नुकरा, गर्रा, बादामी, चीनी, गुलदार, अबलक़ इत्यादि। बहुत प्राचीन काल से मनुष्य घोड़े से सवारी का काम लेते आ रहे हैं जिसका कारण उसकी मज़बूती और तेज़ चाल है। पोइया, दुलकी, सरपट, क़दम, रहवाल, लंगूरी आदि इसकी कई चालें प्रसिद्ध हैं। घोड़े की बोली को हिनहिनाना कहते हैं। जिसमें घोड़ों की पहचान, चाल, लक्षण आदि का वर्णन होता है उस विद्या को शालिहोत्र कहते हैं। शालिहोत्र ग्रंथों में घोड़ों के कई प्रकार से कई भेद किए गए हैं, जैसे देश-भेद से उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और नीच; जाति-भेद से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा गुण-भेद से सात्त्विक राजसी और तामसी। इनकी अवस्था का अनुमान इनके दाँतों से किया जाता है। इससे दाँतों की गिनती और रंग आदि के अनुसार भी घोड़ों के आठ भेद माने गए हैं—कालिका, हरिणी, शुक्ला, काचा, मक्षिका, शंख, मुशलक और चलता। प्राचीन भारतवासियों को जिन जिन देशों के घोड़ों का ज्ञान था उनके अनुसार उन्होंने उत्तम, मध्यम आदि भेद किए हैं। जैसे, ताजिक, तुषार और खुरासान के घोड़ों को उत्तम, गोजिकाण, केकाण और प्रौढ़ाहार के घोड़ों को मध्यम, गांधार, साध्यवास और सिंधुद्वार के घोड़ों को कनिष्ट कहा है। आजकल अरब, स्पेन, फ्लैंडर्स, नारफ़ाक आदि के घोड़े बहुत अच्छी जाति के गिने जाते हैं। नैपाल और बरमा के टाँगन प्रसिद्ध हैं। भारतवर्ष में कच्छ, काठियावाड़ और सिंध के घोड़े उत्तम गिने जाते हैं। शालिहोत्र में घोड़े रंग, नाप और भँवरी आदि के अनुसार स्वामियों के लिये शुभ वा अशुभ फल देनेवाले समझे जाते हैं। जैसे, जिसके चारों पैर और दोनों आँखें सफ़ेद हों, कान पूँछ छोटी हो उसे चक्रवाक कहते हैं। यह बहुत प्रभुभक्त और मंगलदायक समझा जाता है। इसी प्रकार मल्लिक, कल्याणपंचक, गजदंत, उष्ट्रदंत आदि बहुत से भेद किए गए हैं। गरदन पर अयाल के नीचे वा पीठ पर जो भौंरी (घूमे हुए रोएँ) होती है उसे साँपिन कहते हैं। उसका मुँह यदि घोड़े के मुँह की ओर हो तो यह बहुत अशुभ मानी जाती है। भौंरियों के भी कई नाम हैं, जैसे, भुजबल (जो अगले पैरों के ऊपर होती है), छत्रभंग (जो पीठ या रीढ़ के पास होती है और बहुत

अशुभ मानी जाती है), गंगापाट (तंग के नीचे) आदि। घोड़ों के शुभाशुभ लक्षण फारसवाले भी मानते हैं, इससे हिंदुस्तान में उनसे संबंध रखनेवाले जो शब्द प्रचलित हैं उनमें से बहुत से फ़ारसी शब्द भी हैं जैसे, स्याहतालू, गावकोहान आदि।

पर्य्या०—घोटक। तुरग। अश्व। बाजी। वाह। तुरंगम। गंधर्व। हय। सैंधव। हरि। वीती। जवन। शालिहोत्र। प्रकीर्णव। वातायन। चामरी। मरुद्रथ। राजस्कंध। विमानक। वह्नि। दधिक्रा। उच्चैःश्रवा। आशु। अरुष। पतंग। नर। सुपर्णस।

मुहा०—**घोड़ा उठाना** = घोड़े को तेज़ दौड़ाना। **घोड़ा उलाँगना** = किसी नए घोड़े पर पहले पहल सवार होना। **घोड़ा कसना** = घोड़े पर सवारी के लिये जीन या चारजामा कसना। **घोड़ा खोलना** = (१) घोड़े का साज व चारजामा उतारना। (२) घोड़े को बंधनमुक्त करना। (३) घोड़ा चुराना या छीनना। उ०—चोर घोड़ा खोल ले गए। **घोड़ा छोड़ना**—(१) किसी ओर घोड़ा दौड़ाना। किसी के पीछे घोड़ा दौड़ाना। (२) घोड़े को घोड़ी से जोड़ा खाने के लिये छोड़ना। घोड़े का घोड़ी से समागम कराना। (३) घोड़े को उसके इच्छानुसार चलने देना। (४) दिग्विजय के लिये अश्वमेध का घोड़ा छोड़ना कि वह जहाँ चाहे वहाँ जाय। (५) घोड़े का साज वा चारजामा उतारना। दे० "घोड़ा खोलना"। **घोड़ा डालना** = किसी ओर वेग से घोड़ा बढ़ाना। उ०—उसने हिरन के पीछे घोड़ा डाला। **घोड़ा देना** = घोड़े को घोड़ी से जोड़ा खिलाना। **घोड़ा निकालना** = (१) घोड़े को सिखला कर सवारी के योग्य बनाना। (२) घोड़े को आगे बढ़ा ले जाना। **घोड़े पर चढ़े आना** = किसी स्थान पर पहुँच कर वहाँ से लौटने के लिये जल्दी मचाना। **घोड़ा पलाना** = घोड़े पर काठी या ज़ीन कसना। **घोड़ा फेंकना** = वेग से घोड़ा दौड़ाना। **घोड़ा फेरना** = (१) घोड़े को सिखा कर सवारी के योग्य बनाना। (२) घोड़े को दौड़ने का अभ्यास कराने के लिये एक वृत्त में घुमाना। कावा देना। **घोड़ा बेच कर सोना** = खूब निश्चिंत होकर सोना। गहरी नींद में सोना। **घोड़ा भर जाना** = चलते चलते घोड़े का दम भर जाना। घोड़े का थक जाना। **घोड़ा मारना** = घोड़े को तेज़ दौड़ाने के लिये मारना। घोड़े को मार मार कर खूब तेज़ बढ़ाना।

(२) घोड़े के मुख के आकार का वह पेंच वा खटका जिसके दबाने से बंदूक में रंजक लगती है और गोली चलती है।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—दबाना।

(३) घोड़े के मुख के आकार का टोटा जो भार सँभालने के लिये छज्जे के नीचे दीवार में लगाया जाता है। (यह काठ का भी होता है और पत्थर का भी)। (४) शतरंज का एक मोहरा जो ढाई घर चलता है। (५) कसरत के लिये लकड़ी का एक मोढा कुंदा जो चार पायों पर ठहरा होता है और जिसे लड़के दौड़ कर लाँघते हैं। (६) कपड़े आदि टाँगने की खूँटी।

घोड़ाकरंज—संज्ञा पुं० [सं० घृतकरंज] एक प्रकार का करंज जो चर्म रोग और बवासीर तथा विष को दूर करनेवाला माना जाता है।

घोड़ागाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + गाड़ी] (१) वह गाड़ी जो घोड़े द्वारा चलाई जाती है। (२) डाकगाड़ी। मेल कार्ट। वह गाड़ी जो डाक के थैले ऐसी जगह पहुँचाती है जहाँ रेल इत्यादि नहीं गई रहती। (बहुधा इस गाड़ी में घोड़े जोते जाते हैं।

घोड़ाचोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + चोला = शरीर] वैद्यक की एक प्रसिद्ध ओषधि जो अनुपानभेद से बहुत से रोगों पर दी जाती है।

घोड़ानीम—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ + नीम] बकाइन वृक्ष।

घोड़ापलास—संज्ञा पुं० [देश०] मालखंभ की एक कसरत जिसमें एक हाथ मालखंभ पर उलटा ऐंठ कर सामने रखते और दूसरे से मोगरे को पकड़ते हैं। जिधर का हाथ मोगरे पर होता है उसी ओर का पांव मलखंभ पर फेंक, सवारी बाँधते हैं और दोनों हाथ निकाले हुए ताल ठोंकते हैं। इसमें मुँह फूटने का डर रहता है।

घोड़ाबच—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + बच] खुरासानी बच जो सफ़ेद होती है और जिसमें बड़ी उग्र गंध होती है।

घोड़ाबाँस—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा + बाँस] एक प्रकार का बांस जो पूर्वी बंगाल और आसाम में बहुत होता है।

घोड़ाबेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा + बेल] एक लिपटनेवाली लता जिसकी जड़ें गँठीली होती हैं। इसकी पत्तियाँ एक बालिश्त के सीकों में लगती हैं और पतझड़ में झड़ जाती हैं। चैत, बैसाख में यह बेल घनी मंजरी के रूप में फूलती है। यह बेल बुंदेलखंड तथा उत्तरीय भारत के कई भागों में मिलती है। बिलाई कंद इसी की जड़ है। इसे सुराल और सरवाला भी कहते हैं।

घोड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ी + या (प्रत्य०)] (१) छोटी घोड़ी। (२) दीवार में गड़ी हुई खूँटी जिससे कपड़े लटकाए जाते हैं। (३) छोटा टोड़ा। (४) जोलाहों का एक औज़ार। दे० "घोड़ी"।

घोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोड़ा] (१) घोड़े की मादा। (२) पायों पर खड़ी काठ की लंबी पटरी जो पानी के घड़े रखने, गोटे पट्ठे की बुनाई में तार कसने, सेंवई पूरने, सेव बनाने आदि बहुत से कामों में आती है। पाटा। (३) दूर दूर रक्खे हुए दो जोड़े बाँसों के बीच में बँधी हुई डोरी वा अलगनी जिस पर धोबी कपड़े सुखाते हैं। (४) विवाह की वह रीति जिसमें दूल्हा घोड़ी पर चढ़ कर दुलहिन के घर जाता है।

मुहा०—घोड़ी चढ़ना = दूल्हे का बरात के साथ दुलहिन के घर जाना।

(५) वे गीत जो विवाह में वर पक्ष की ओर से गाए जाते हैं। (६) खेल में वह लड़का जिसकी पीठ पर दूसरे लड़के सवार होते हैं। (७) जुलाहों का एक औज़ार जिसमें दोहरे पायों के बीच में एक डंडा लगा रहता है। (कपड़ा बुनते बुनते जब बहुत थोड़ा रह जाता है तब वह झुकने लगता है उसी को ऊँचा करने के लिये यह काम में लाया जाता है)।

घोण—संज्ञा पुं० [देश०] बहुत प्राचीन काल का एक बाजा जिसमें तार लगे रहते थे। इन्हीं तारों को छेड़ने से वह बजता था।

*संज्ञा स्त्री० [सं० घ्राण] नाक। (डिं०)

घोमसा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास।

घोर—वि० [सं०] (१) भयंकर। भयानक। डरावना। बिकराल। (२) सघन। घना। दुर्गम। जैसे, घोर वन। (३) कठिन। कड़ा। जैसे, घोर गर्जन, घोर शब्द। (४) गहरा। गाढ़ा। जैसे, घोर निद्रा। (५) बुरा। अति बुरा। जैसे, घोर कर्म, घोर पाप। (६) बहुत अधिक। बहुत ज़्यादा। बहुत भारी। उ०—ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।—भूषण।

संज्ञा स्त्री० [सं० घुर] शब्द। गर्जन। ध्वनि। आवाज़। उ०—कहि काको मन रहत श्रवण सुनि सरस मधुर मुरली की घोर।—सूर।

‡संज्ञा पुं० दे० "घोड़ा"। उ०—चोर मोर घोर। पानी पियें बड़े भोर।

क्रि० वि० अत्यंत। बहुत। जैसे, घोर निर्दय।

घोरना*†—क्रि० स० दे० "घोलना"।

क्रि० अ० भारी शब्द करना। गरजना।

घोरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा और शतभिखा नक्षत्रों में बुध की गति घोरा कहलाती है।

|*संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा] (१) घोड़ा। (२) खूँटा। (३) टोड़ा।

घोरारा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गन्ना।

घोरिया†—संज्ञा स्त्री० दे० "घोड़िया"।

घोरिला†*—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ी] (१) मिट्टी का बना हुआ लड़कों के खेलने का घोड़ा। उ०—जो प्रभु समर सुरासुर धावत खगपति पीठ सवारा। तेहि घोरिल चढ़ाइ नृप रानी करवावैं संचारा।—रघुराज। (२) वह खूँटा जिसका मुहँ घोड़े के आकार का होता है। उ०—फूलन के विविध हार घोरिलनि उरमत उदार बिच बिच मणि श्यामहार उपमा शुक भाषी।—केशव।

घोरी†—संज्ञा स्त्री० (१) दे० "अघोरी"। (२) दे० "घोड़ी"। (३) "दे० अगौरा"।

घोलदही—संज्ञा पुं० [हिं० घोलना + दही] मट्ठा।

घोलना—क्रि० स० [हिं० घुलना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ में किसी वस्तु को हिला कर मिलाना। किसी वस्तु को इस प्रकार पानी आदि में डाल कर हिलाना कि उसके कण पृथक् पृथक् होकर पानी में फैल जाँय। हल करना। जैसे, चीनी घोलना, शरबत घोलना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—घोल पीना = (१) शरबत की तरह पी जाना। (२) सहज में मार डालना। सहज में नष्ट कर देना। (३) कुछ न समझना। तृण समझना। घोल कर पी जाना = (१) सहज में मार डालना। देखते देखते नाश कर डालना। (२) कुछ न गिनना।

घोला—संज्ञा पुं० [हिं० घोलना] (१) वह जो घोल कर बना हो। जैसे, घोली हुई अफ़ीम।

मुहा०—घोले में डालना = (१) खटाई में डालना। रोक रखना। फँसा रखना। उलझन में डाल रखना। किसी काम में बहुत देर लगाना। (२) किसी काम में टालमटूल करना। घोले में पड़ना = बखेड़े में पड़ना। उलझन में फँसना। ऐसे काम में फँसना जो जल्दी न निपटे।

(२) नाली जिसके द्वारा खेत सींचने के लिये पानी ले जाते हैं। बरहा।

घोलुवा†—वि० [हिं० घोलना + उवा (प्रत्य०)] घोला हुआ। जो घोल कर बना हुआ हो।

संज्ञा पुं० (१) घोली हुई पतली दवा। अर्क़। (२) रसा। शोरबा। (३) पानी में घोली हुई अफ़ीम।

मुहा०—घोलुवा पीना = कड़ुई वस्तु (दवा आदि) पीना। घोलुवा घोलना = किसी काम में बहुत देर करना।

घोष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आभीरपल्ली। अहीरों की बस्ती। (२) अहीर। (३) बंगाली कायस्थों का एक भेद। (४) गोशाला। उ०—(क) आजु कन्हैया बहुत बच्यो री। खेलत रह्यो घोष के बाहर कोउ आयो शिशु रूप रच्यो री।—सूर। (ख) बकी जो गई घोष में छल करि यशुदा की गति दीनी।—सूर। (५) तट। किनारा। (६) ईशान कोण में एक देश। (७) शब्द। आवाज़। नाद। (८) गरजने का शब्द। (९) ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक। (१०) शब्दों के उच्चारण में ११ बाह्य प्रयत्नों में से एक। इस प्रयत्न से ये ये वर्ण बोले जाते हैं—ग, घ, ज, झ, ड, ढ, द, ध, ब, भ, ङ, ञ, ण, न, म, य, र, ल, व और ह।

घोषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उच्च स्वर से किसी बात की सूचना। (२) राजाज्ञा आदि का प्रचार। मुनादी। डुग्गी।

यौ०—घोषणापत्र = वह पत्र जिसमें सर्वसाधारण के सूचनार्थ राजाज्ञा आदि लिखी हो। सूचनापत्र। विज्ञप्ति।

(३) गर्जन। ध्वनि। शब्द। आवाज़।

घोषलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कड़ुई तोरई।

घोषवत्—वि० [सं०] वह शब्द जिसमें घोष प्रयत्नवाले अक्षर अधिक हों।

घोषवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वीणा।

घोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंफ़।

घोषाल—संज्ञा पुं० [सं० घोष] बंगाली ब्राह्मणों की एक जाति।

घोसी—संज्ञा पुं० [सं० घोष] अहीर। ग्वाला। दूध बेचनेवाला।

विशेष—आज कल जो अहीर मुसलमान होते हैं वे घोसी कहलाते हैं।

घौंर, घौंरा—संज्ञा पुं० दे० "घौद"।

घौद—संज्ञा पुं० [देश०] फलों का गुच्छा। गौद। जैसे, केले का घौद।

घौर, घौरा—संज्ञा पुं० दे० "घौंर"।

घौरी—संज्ञा स्त्री० दे० "घौंरा"।

घौहा—संज्ञा पुं० [हिं० घाव] चुटैला आम वा कोई फल। वह फल जिसको कुछ चोट लग चुकी हो।

वि० चुटीला, जिसे घाव लगा हो।

घ्राण—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० घ्रेय] (१) नाक।

यौ०—घ्राणेंद्रिय।

(२) सूँघने की शक्ति। (३) गंध। सुगंध।



ङ

ङ—व्यंजन वर्ण का पाँचवाँ और कवर्ग का अंतिम अक्षर। यह स्पर्श है और इसका उच्चारण स्थान कंठ और नासिका है। इसमें सवार, नाद, घोष और अल्पप्राण नामक प्रयत्न लगते हैं।

ङ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विषय। (२) विषय की इच्छा। (३) भैरव।



च

च-संस्कृत वा हिंदी वर्णमाला का २२ वाँ अक्षर और छठाँ व्यंजन जिसका उच्चारण-स्थान तालु है। यह स्पर्श वर्ण है और इसके उच्चारण में श्वास, विवार, घोष और अल्पप्राण प्रयत्न लगते हैं।

चंक*-वि० [सं० चक्र] (१) पूरा पूरा। समूचा। सारा। समस्त। उ०-चक्रवती चकता चतुरंगिनि चारिउ चापि लई दिसि चंक।-भूषण। (२) एक उत्सव जो उत्तर भारत, तथा मध्य प्रदेश आदि में फ़सल कटने पर होता है।

चंकुर-संज्ञा० पुं० [सं०] (१) रथ। यान। (२) वृक्ष। पेड़।

चंक्रमण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) टहलना। धीरे धीरे इधर से उधर घूमना। (२) बार बार घूमना। बहुत घूमना।

चंक्रायण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रवर का नाम।

चंग-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) डफ के आकार का एक छोटा बाजा जिसे लावनीवाले बजाया करते हैं। लावनी-बाज़ों का बाजा। (२) सितार का चढ़ा हुआ सुर। (सितारियों की परि०)

संज्ञा पुं० [?] गंजीफ़े के आठ रंगों में से एक रंग।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार का तिब्बती जौ। (२) एक प्रकार के जौ की शराब जो भूटान में बनती है।

संज्ञा स्त्री० [सं० चं = चंद्रमा] पतंग। गुड्डी। उ०-रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंचि खेलारू।-तुलसी।

मुहा०-चंग चढ़ना वा उमहना = बढ़ी चढ़ी बात होना। खूब ज़ोर होना। उ०-त्यौं पद्माकर दीजै मिलाय क्यों चंग चबाइन की उमही है।-पद्माकर। चंग पर चढ़ाना = (१) इधर उधर की बातें कह कर किसी को अपने अनुकूल करना। किसी को अभिप्राय साधन के अनुकूल करना। (२) आसमान पर चढ़ा देना। मिजाज़ बढ़ा देना।

वि० [सं०] (१) दक्ष। कुशल। (२) स्वस्थ। तंदुरुस्त। (३) सुंदर। शोभायुक्त।

चँगना*-क्रि० स० [हिं० चंगा वा फ़ा० तंग] तंग करना। कसना। खींचना। उ०-राम रंग ही सों रँगरेजवा मेरी अँगिया रँग दे रे।............त्रिगुन करम तागन से बीनी, रोम रोम झाँझरि अति झीनी, बड़े सुकृत रतनन से कीनी, खसक होइ तौ चँगि दे रे।-देव स्वामी।

चंगला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो मेघ राग की पुत्रवधू कही जाती है।

चंगवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चंग + बाई] एक प्रकार का वात रोग जिसमें हाथ पैर जकड़ जाते हैं।

चंगा-वि० [सं० चङ्ग] [स्त्री० चंगी] (१) स्वस्थ। तंदुरुस्त। नीरोग। उ०-इस दवा से तुम दो दिन में चंगे हो जाओगे।

क्रि० प्र०-करना।-होना।

(२) अच्छा। भला। सुंदर। उ०-भले जू भले नंदलाल, वेऊ भली चरन जावक पाग जिनहिँ रंगी। सूर प्रभु देखि अंग अंग बानिक कुशल मैं रही रीझि वह नारि चंगी।-सूर। (३) निर्मल। शुद्ध। उ०-मन चंगा तो कठौती में गंगा।

चंगु*-संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + अंगुल] (१) चंगुल। पंजा। उ०-चरन चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर। तुलसी परबस हाड़ पर परिहै पुहुमी नीर।-तुलसी। (२) पकड़। वश। अधिकार।

चंगुल-संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + अंगुल वा फ़ा० चंगाल] (१) चिड़ियों वा पशुओं का टेढ़ा पंजा जिससे वे कोई वस्तु पकड़ते वा शिकार मारते हैं। उ०-(क) फिरत न बारहिँ बार प्रचारयो। चपरि चोँच चंगुल हय हति रथ खंड खंड करि डारयो।-तुलसी। (ख) चीते के चंगुल में फँसिकै करसायल घायल ह्वै निबहै।-देव। (२) हाथ के पंजों की वह स्थिति जो उँगलियों को बिना हथेली से लगाए किसी वस्तु को पकड़ने, उठाने वा लेने के समय होती है। बकोटा। उ०-चंगुल भर आटा साँईं को।

मुहा०-चंगुल में फँसना = पंजे में फँसना। वश वा पकड़ में आना। क़ाबू में होना।

चँगेर, चँगेरी-संज्ञा स्त्री० [सं० चंगेरिक] (१) बाँस की पट्टियों की बनी हुई छिछली डलिया। थाली के आकार की बाँस की चौड़ी टोकरी। (२) फूल रखने की डलिया। डगरी। उ०-रघुनाथ काल्हि भेजे मेवा भाँति भाँतिन के फूलन के हार सों चँगेर सोने की भरी।-रघुनाथ। (३) चमड़े का जलपात्र। मशक। पखाल (४) रस्सी में बाँध कर लटकाई हुई टोकरी जिसमें बच्चों को सुला कर पालना झुलाते हैं। बहुत छोटे बच्चों का झूला। (बच्चा जन्मने पर फूफी आदि संबंधी स्त्रियाँ बच्चे की माँ को इसे भेंट करती हैं।) उ०-रघुकुल की सब सुभग सुवासिनि शीसन लिए चँगेरी। विविध भाँति की जटित जवाहिर दीपावली घनेरी।-रघुराज। (५) जालीदार चाँदी का एक पात्र जो प्रायः प्याले के आकार का होता है। यह भी फूल रखने के काम में आता है।

चँगेल-संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक घास जो पुराने खेड़े वा गिरे हुए मकानों के खँडहर में उत्पन्न होती है। इसकी पत्तियाँ गोल गोल होती हैं और खाने में कुछ कनकनाती हैं। इसमें कुछ कालापन लिए लाल रंग के घंटी के आकार के फूल लगते हैं। बीज गोल गोल होते हैं और हकीमी चिकित्सा

में ये खुब्बाज़ी के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह घास फ़ारस के शीराज, मर्जंदरान आदि प्रदेशों में बहुत होती है।

चँगेली—संज्ञा स्त्री० दे० "चँगेर" वा चँगेरी"।

चंच—संज्ञा पुं० [सं०] पाँच अंगुल की एक नाप।

* संज्ञा पुं० दे० "चंचु"।

चंचत्पुट—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक ताल जिसमें पहले दो गुरु, तब एक लघु, फिर एक प्लुत मात्रा होती है। द्विकल के अतिरिक्त यह चतुष्कल और अष्टकल भी होता है।

√**चंचनाना**—क्रि० अ० दे० चुनचुनाना"।

चँचरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) पत्थर के ऊपर से होकर बहने वाला पानी (माझियों की भाषा)। (२) एक चिड़िया जो भारत में स्थिर रूप से रहती है। यह छोटा घोसला बनाती है जो ज़मीन पर घास आदि के नीचे छिपा रहता है। यह प्रायः ३ अंडे देती है। (३) वह अन्न जो दाना पीटने पर भी बाल में लगा रहे। (ज्वार, मूँग आदि के लिये)। गूरी। कोसी। करही। भूड़री।

चंचरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भ्रमरी। भँवरी (२) चाँचरि। होली में गाने का एक गीत। (३) हरिप्रिया छंद। इसी को भिखारीदास अपने पिंगल में 'चंचरी' कहते हैं। इसके प्रत्येक पद में १२ + १२ + १२ + १० के विराम से ४६ मात्राएँ होती हैं। अंत में एक गुरु होता है। उ०—सूरज गुन दिसि सजाय, अंतै गुरु चरण ध्याय, चित्त दै हरि प्रियहिं, कृष्ण कृष्ण गावो। (४) एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में (र स ज ज भ र) ऽ।ऽ ।।ऽ ।ऽ। ।ऽ। ऽ।। ऽ।ऽ होते हैं। इसे 'चचरा', 'चंचली', और 'विबुधप्रिया' भी कहते हैं। उ०—री सजै जु भरी हरी नित वाणि तू। औ सदा लछमान संत समाज में जग मांहि तू। भूलि के जु बिसारि रामहिं आन को गुण गाइहै। चंपकै सम ना हरी जन चंचरी मन भाइहै। (५) एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक पद में २६ मात्राएँ होती हैं। उ०—सेतु सीतहि शोभना दरसाइ पंचवटी गये। पाँय लागि अगस्त्य के पुनि अत्रि पै ते विदा भये। चित्रकूट विलोकि कै तबही प्रयाग विलोकियो। भरद्वाज बसैं जहाँ जिनते न पावन है वियो।

चंचरीक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चंचरीकी] भ्रमर। भौंरा। उ०—तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।—तुलसी।

चंचरीकावली—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भौंरों की पंक्ति। (२) तेरह अक्षरों के एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में यगण, मगण, दो रगण और एक गुरु होता है। (।ऽऽ ऽऽऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ) उ०—यमौ रे! रागै छांड़ौ यहै ईश भावै। न भूलो माधो को विश्व ही जो चलावै। लखौ या पृथ्वी को बाटिका चंपकी ज्यों। बसौ रागै त्यागे चंचरीकावली ज्यों।

चंचल—वि० [सं०] [स्त्री० चंचला] (१) चलायमान। अस्थिर। हिलता डोलता। एक स्थिति में न रहनेवाला। (२) अधीर। अव्यवस्थित। एकाग्र न रहनेवाला। अस्थित प्रज्ञ। जैसे, चंचलबुद्धि, चंचलचित्त। (३) उद्विग्न। घबड़ाया हुआ। (४) नटखट। चुलबुला। जैसे, चंचल बालक। उ०—देखी बनवारी चंचल भारी तदपि तपोधन मानी।—केशव।

संज्ञा पुं० (१) हवा। वायु। (२) रसिक। कामुक।

चंचलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अस्थिरता। चपलता। (२) नटखटी। शरारत।

चंचलताई*—संज्ञा स्त्री० दे० "चंचलता"।

चंचला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) बिजली। (३) पिप्पली। (४) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १६ अक्षर होते हैं। (र ज र ज र ल) ऽ।ऽ ।ऽ। ऽ।ऽ ।ऽ। ऽ।ऽ।, इसका दूसरा नाम चित्र भी है। उ०—री जरा जुरो लखो कहाँ गयो हमैं बिहाय। कुंज बीच मोहिं तीय ग्वाल बाँसुरी बजाय। देखि गोपिका कहैं परी जु टूटि पुष्प माल। चंचला सखी गई बिलाय आजु नंदलाल।

चंचलाई*—संज्ञा स्त्री० [सं० चंचल + आई (प्रत्य०)] चपलता। चंचलता। अस्थिरता। चुलबुलाहट।

चंचलास्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगंध द्रव्य।

चंचलाहट—संज्ञा स्त्री० [सं० चंचल + आहट (प्रत्य०)] चंचलता।

चंचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास फूस का पुतला जिसे खेतों में पक्षियों आदि को डराने के लिये गाड़ते हैं।

चंचु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का शाक जो बरसात में उत्पन्न होता है और जिसमें पीले पीले फूल और छोटी छोटी फलियाँ लगती हैं। यह कई तरह का होता है। वैद्यक में यह शीतल, सारक, पिच्छिल और बलकारक माना जाता है। चेंच। (२) रेंड़ का पेड़। (३) मृग। हिरन।

संज्ञा स्त्री० चिड़ियों की चोंच।

चंचुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोंच

चंचुपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] चेंच का साग।

चंचुपुट—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोंच। ठोर।

चंचुभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी।

चंचुमान्—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी।

चंचुर—वि० [सं०] दक्ष। निपुण।

संज्ञा पुं० चेंच का साग।

चंचुल—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

चंचूसूची—संज्ञा पुं० [सं०] कारंडव पक्षी। हस की जाति की एक चिड़िया। एक प्रकार का बत्तख़।

√**चँचोरना**—क्रि० स० [अनु०] दांतों से दबा दबा कर चूसना। जैसे, हड्डी चँचोरना। दे० "चचोड़ना"। उ०—या माया के

कारने, हरि सों बैठा तोरि। माया करक कदीम है, केता गया चँचोरि।—कबीर।

चंट–वि० [सं० चंड] (१) चालाक। होशियार। सयाना। (२) धूर्त्त। छटा हुआ।

चंड–वि० [सं०] [स्त्री० चंडा] (१) तेज़। तीक्ष्ण। उग्र। प्रखर। प्रबल। घोर। (२) बलवान्। दुर्दमनीय। (३) कठोर। कठिन। विकट। (४) क्रोधी। उग्र स्वभाव का। उद्धत। गुस्सावर।

संज्ञा पुं० [सं० चंड] (१) ताप। गरमी। (२) एक यम दूत। (३) एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था। (४) कार्त्तिकेय। (५) एक शिवगण। (६) एक भैरव। (७) इमली का पेड़। (८) विष्णु का एक पारिषद्। (९) राम की सेना का एक बंदर। (१०) सम्राट् पृथ्वीराज का एक सामंत जिसे साधारण लोग "चौंड़ा" कहते थे। (११) पुराणों के अनुसार कुबेर के आठ पुत्रों में से एक जो शिव-पूजन के लिये सूँघ कर फूल लाया था, और इसी पर पिता के शाप से जन्मांतर में कंस का भाई हुआ था और कृष्ण के हाथ से मारा गया था।

चंडकर–संज्ञा पुं० [सं०] (तीक्ष्ण किरणवाला) सूर्य। उ०—जयति बालकपि केलि कौतुक उदित चंडकर मंडल ग्रास-कर्त्ता।—तुलसी।

चंडकौशिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक मुनि का नाम। (२) एक नाटक जिसमें विश्वामित्र और हरिश्चंद्र की कथा है। (३) जैन पुराणानुसार एक विषधर साँप जिसने महावीर स्वामी का दर्शन कर डसना आदि छोड़ दिया था और जो बिल में मुहँ डाले पड़ा रहता था, यहाँ तक कि जब उसे चीँटियों ने घेरा तब भी उसने उनके दबने के डर से करवट तक न बदली।

चंडता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उग्रता। प्रबलता। घोरता। (२) बल। प्रताप। उ०—तुलसी लषन राम रावन विबुध विधि चक्रपानि चंडीपति चंडता सिहात है।—तुलसी।

चंडतुंडक–संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

चंडत्व–संज्ञा पुं० [सं०] उग्रता। प्रबलता।

चंडदीधिति–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

चंडनायिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) तांत्रिकों की अष्ट नायिकाओं में से एक जो दुर्गा की सखी मानी जाती है।

चंडभार्गव–संज्ञा पुं० [सं०] च्यवन वंशी एक ऋषि जो महाराज जन्मेजय के सर्पयज्ञ के होता थे।

चंडमुंड–संज्ञा पुं० [सं०] दो राक्षसों के नाम जो देवी के हाथों से मारे गए।

चंडमुंडा–संज्ञा स्त्री० [सं०] चामुंडा देवी।

चंडमुंडी–संज्ञा स्त्री० [सं०] महास्थान स्थित तांत्रिकों की एक देवी।

चंडरसा–संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्ण-वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक यगण होता है। इसी को चौबंसा, शशिवदना और पादांकुलक भी कहते हैं। उ०—नय धरु एका, न भजु अनेका। गहुपन साखो, शशिवदना सो।

चंडरुद्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की सिद्धि जो अष्ट नायिकाओं के पूजन से प्राप्त होती है। (तांत्रिक)

चंडवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) अष्ट नायिकाओं में से एक।

चंडवृष्टिप्रपात–संज्ञा पुं० [सं०] एक दंडक वृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण (।।।) और सात रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। उ०—न नर गिरि धरै तजै भूलि कै राख जो चंडवृष्टि प्रपाता-कुलै गोकुलै।

चंडांशु–संज्ञा पुं० [सं०] (तीक्ष्ण किरणवाला) सूर्य्य। उ०—भरे अतर के अमल विराजत राजत कनक पराता। चारु चंद्र चंडांशु अकारहि थार विविध अवदाता।—रघुराज।

चंडा–वि० स्त्री० [सं०] उग्र स्वभाव की। कर्कशा। दे० "चंड"।

संज्ञा स्त्री० (१) अष्ट नायिकाओं में से एक। (२) चोर नामक गंध-द्रव्य। (३) केंवाँच। कौंछ। (४) सफ़ेद दूब। (५) सौंफ। (६) सोवा। (७) एक प्राचीन नदी का नाम।

चँड़ाई*–संज्ञा स्त्री० [सं० चंड = तेज] (१) शीघ्रता। जल्दी। फुरती। चटपटी। उतावली। उ०—(क) देखहु जाइ कहा जेवन कियो जसुमति रोहिनि तुरत पठाई। मैं अन्हवाए देति दुहुन कों तुम भीतर अति करौ चँड़ाई।—सूर। (ख) सुद्रा-वली उतारति कटि तें सैंति धरति मनहीं मन वारति। रोहिनि भोजन करहु चँड़ाई बार बार कहि कहि करि आरति। —सूर। (ग) जननी मथति दधि गो दुहत कन्हाई। सखा परस्पर कहत स्याम सों हमहूँ ते तुम करत चँड़ाई। दुहन देहु कछु दिन अरु मोकों तब करिहौ मों सम सरिआई। जब लौं एक दुहौगे तब लौं चारि दुहौं तौ नंद दोहाई। झूठहिं करत दुहाई प्रातहिं देखहिंगे तुमरी अधिकाई। सूर श्याम कह्यो कालि दुहैंगे हमहूँ तुम मिलि होड़ लगाई। —सूर। (घ) कहा भयो जो हम पै आई कुल की रीति गमाई। हमहूँ कौं विधि को डर भारी अजहूँ जाहु चँड़ाई।—सूर। (२) प्रबलता। जबरदस्ती। अधम अत्याचार। उ०—करत चँड़ाई फिरत हौ नागर नंदकिशोर।

चंडात–संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगंधित घास वा पौधा।

चंडातक–संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों की चोली वा कुरती।

चंडाल–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चंडालिन, चंडालिनी] चांडाल। श्वपच। डोम।

विशेष—दे० "चांडाल"

चंडालकंद–संज्ञा पुं० [सं०] एक कंद जो कफ-पित्त-नाशक, रक्त-

शोधक और विषघ्न माना जाता है । पत्तियों की संख्या के हिसाब से इसके पाँच भेद माने गए हैं ।

चंडालता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंडाल होने का भाव । (२) नीचता । अधमता ।

चंडालत्व—संज्ञा पुं० दे० "चंडालता" ।

चंडाल पक्षी—संज्ञा पुं० [सं०] काक । कौवा । उ०—सठ स्वपच्छ तव हृदय बिसाला । सपदि होहु पच्छी चंडाला ।—तुलसी ।

चंडाल बाल—संज्ञा पुं० [हिं० चंडाल + बाल] वह कड़ा और मोटा बाल जो किसी के माथे पर निकल आता है और बहुत अशुभ माना जाता है ।

चंडाल वल्लकी—संज्ञा स्त्री० दे० "चंडालवीणा" ।

चंडाल वीणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तँबूरा वा चिकारा ।

चंडालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा (२) चंडालवीणा । (३) एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ आदि दवा के काम में आती हैं ।

चंडालिनी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंडाल वर्ण की स्त्री । (२) दुष्टा स्त्री । पापिनी स्त्री । (३) एक प्रकार का दोहा जो दूषित माना जाता है । जिस दोहे के आदि में जगण पड़े उसको चंडालिनी दोहा कहते हैं । उ०—जहाँ विषम चरनति परै, कहूँ जगण जो आन । बखानना चंडालिनी, दोहा दुख की खान ।

विशेष—प्रथम और तृतीय चरण के आदि के एक ही शब्द में जगण पड़े तो दूषित है ; यदि आदि के शब्द में जगण पूरा न हो और दूसरे शब्द से अक्षर लेना पड़े तो उसमें दोष नहीं है । पर यदि यह भी बचाया जा सके तो और भी उत्तम है ।

चंडावल—संज्ञा पुं० [सं० चंड + आवलि] (१) सेना के पीछे का भाग । पीछे रहनेवाले सिपाही । 'दरावल' का उलटा । (२) वीर योद्धा । बहादुर सिपाही । (३) संतरी । पहरेदार । चौकीदार ।

चंडाह—संज्ञा पुं० [देश०] गाढ़े की तरह का एक मोटा कपड़ा ।

चंडिआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का देसी लोहा ।

चंडिकघंट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

चंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा । (२) लड़ाकी स्त्री । कर्कशा स्त्री । (३) गायत्री देवी ।

वि० लड़ाकी । कर्कशा ।

चंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा का वह रूप जो उन्होंने महिषासुर के वध के लिये धारण किया था और जिसकी कथा मार्कंडेय पुराण में लिखी है । दुर्गा । (२) कर्कशा और उग्र स्त्री । (३) तेरह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसमें दो नगण, दो सगण और एक गुरु होता है । उ०—न नसु सिगरि नर ! आयु तु अल्पा । निसि दिन भजत बिलासिनि तल्पा । कुबुध कुजन अघ ओघन खंडी । भजहु भजहु जनपालिनि चंडी ।

चंडीकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कनेर ।

चंडीपति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

चंडीश—संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

चंडीसुर—संज्ञा पुं० [सं० चंडीश्वर] एक तीर्थ का नाम ।

चंडु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूहा । (२) एक प्रकार का छोटा बंदर ।

चंडू—संज्ञा पुं० [सं० चंड = तीक्ष्ण ?] अफ़ीम का किवाम जिसका धुआँ नशे के लिये एक नली के द्वारा पीते हैं ।

क्रि० प्र०—पीना ।

विशेष—चीनी लोग चंडू बहुत पीते हैं । अफ़गानिस्तान से चंडू बन कर हिंदुस्तान में आता है । वहाँ चंडू बनाने के लिये अफ़ीम को तरल करके कई बार ताव दे दे कर छानते हैं ।

चंडूखाना—संज्ञा पुं० [हिं० चंडू + खाना] वह घर वा स्थान जहाँ लोग इकट्ठे होकर चंडू पीते हैं ।

मुहा०—चंडूखाने की गप = मतवालों की झूठी बकवाद । बिलकुल झूठी बात ।

चंडूबाज़—संज्ञा पुं० [हिं० चंडू + फ़ा० बाज़ (प्रत्य०)] चंडू पीनेवाला । चंडू पीने का व्यसनी ।

चंडूल—संज्ञा पुं० [देश०] एक खाकी रंग की छोटी चिड़िया जो पेड़ों और झाड़ियों में बहुत सुंदर घोंसला बनाती है और बहुत अच्छा बोलती है ।

मुहा०—पुराना चंडूल = बेडौल, भद्दा या बेवकूफ़ आदमी । (बाज़ारू) ।

चंडेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] रक्तवर्ण शरीरधारी शिव का एक रूप ।

चंडोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसे रावण ने सीता के समझाने के लिये नियत किया था ।

चंडोल—संज्ञा पुं० [सं० चंद्र + दोल] (१) एक प्रकार की पालकी जो हाथी के हौदे वा अँबारी के आकार की होती है और जिसे चार आदमी उठाते हैं । (२) मिट्टी का एक खिलौना जिसे चौघड़ा भी कहते हैं ।

चंद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "चंद्र" । (२) हिंदी के एक अत्यंत वा सब से प्राचीन कवि जो दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की सभा में थे । इनका बनाया हुआ पृथ्वीराज रासो बहुत बड़ा काव्य है । ये लाहौर के रहनेवाले थे ।

वि० [फ़ा०] (१) थोड़े से । कुछ । उ०—अभी चंद रोज़ उन्हें आए हुए । (२) कई एक । कुछ उ०—चंद आदमी वहाँ बैठे हैं ।

चंदक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) चाँदनी। (३) एक प्रकार की छोटी चमकीली मछली। चांद मछली (४) माथे पर पहनने का एक अर्द्धचंद्रकार गहना जिसके बीच में नग और किनारे पर मोती जड़े रहते हैं। सिर में यह तीन जगह से बँधा रहता है। (५) नथ में पान के आकार की बनावट जिसमें उसी आकार का नग वा हीरा बैठाया रहता है और किनारे पर छोटे छोटे मोती जड़े रहते हैं।

चंदकपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लौंग। (२) दे० "चंद्रकला"।

चंदन—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ जिसके हीर की लकड़ी बहुत सुगंधित होती है और जो दक्षिण भारत के मैसूर, कुर्ग, हैदराबाद, करनाटक, नीलिगिरि, पश्चिमी घाट आदि स्थानों में बहुत होता है। उत्तर भारत में भी कहीं कहीं यह पेड़ लगाया जाता है। चंदन की लकड़ी औषध तथा इत्र तेल आदि बनाने के काम में आती है। हिंदू लोग इसे घिस कर इसका तिलक लगाते हैं और देव पूजन आदि में इसका व्यवहार करते हैं।

विशेष—चंदन की कई जातियाँ होती हैं जिसमें मलयागिरि वा श्रीखंड (सफ़ेद चंदन) ही असली चंदन समझा जाता है और सब से सुगंधित होता है। इसका पेड़ २०, ३० फुट ऊँचा और सदाबहार होता है। पत्तियाँ इसकी डेढ़ इंच लंबी और बेल की पत्तियों के आकार की होती हैं। फूल, पत्तियों से अलग निकली हुई टहनियों में तीन तीन चार चार के गुच्छों में लगते हैं। यह पेड़ प्रायः सूखे स्थानों में ही होता है। इसके हीर की लकड़ी कुछ मटमैलापन लिए सफेद होती है जिसमें से बड़ी सुंदर महक निकलती है। यह महक एक प्रकार के तेल की होती है जो लकड़ी के भीतर होता है। जड़ में यह तेल सब से अधिक होता है इससे तेल वा इत्र खींचने के लिये इसकी जड़ की बड़ी माँग रहती है। चंदन की लकड़ी के चौखटे, नक्काशीदार संदूक आदि बहुत से सामान बनते हैं जिनमें सुगंध के कारण घुन नहीं लगते। हिंदू लोग इसकी लकड़ी को पत्थर पर पानी के साथ घिस कर तिलक लगाते हैं। इसका बुरादा धूप के समान सुगंध के लिये जलाया जाता है। चीन, बरमा आदि देशों के मंदिरों में चंदन के बुरादे की धूप बहुत जलती है। चंदन का पेड़ वास्तव में उस जाति के पेड़ों में है जो दूसरे पौधों के रस से अपना पोषण करते हैं (जैसे, बाँदा, कुकुरमुत्ता आदि)। इसी से यह घास, पौधों और छोटी छोटी झाड़ियों के बीच में अधिक उगता है। कौन कौन पौधे इसके आहार के लिये अधिक उपयुक्त होते हैं इसका ठीक ठीक पता न चलने से इसे लगाने में कभी कभी उतनी सफलता नहीं होती। यों ही अच्छी उपजाऊ ज़मीन में लगा देने से पेड़ बढ़ता तो खूब है पर उसकी लकड़ी में उतनी सुगंध नहीं होती। सरकारी जंगल-विभाग के एक अनुभवी अफसर की राय है कि चंदन के पेड़ के नीचे खूब घास पात उगने देना चाहिए, उसे काटना न चाहिए। घास पात के जंगल के बीच में बीज पड़ने से जो पौधा उगेगा और बढ़ेगा उसकी लकड़ी में अच्छी सुगंध होगी। श्रीखंड वा असली चंदन के सिवाय और बहुत से पेड़ हैं जिनकी लकड़ी चंदन कहलाती है। जंजिबार (अफ्रिका) से भी एक प्रकार का श्वेत चंदन आता है जो मलयागिरि के समान व्यवहृत होता है। हमारे यहाँ रंग के अनुसार चंदन के कुछ भेद किए गए हैं। जैसे, श्वेत चंदन, पीत चंदन, रक्त चंदन इत्यादि। श्वेत चंदन और पीत चंदन एक ही पेड़ से निकलते हैं। रक्त चंदन का पेड़ भिन्न होता है। उसकी लकड़ी कड़ी होती है और उसमें महँक भी वैसी नहीं होती। निघंटुरत्नाकर आदि वैद्यक के ग्रंथों में चंदन के दो भेद किए गए हैं एक वेट्ट, दूसरा सुकडि। मलयागिरि के अंतर्गत कुछ पर्वत हैं जो वेट्ट कहलाते हैं। अतः उन पर्वतों पर होनेवाले चंदन को वेट्ट कहते हैं। राजनिघंटु में एक शंबर नामक चंदन का भी उल्लेख है जिसे कैरातक भी कहते हैं। संभव है कि यह किरात देश (आसाम और भूटान) से आता रहा हो। चंदन के विषय में अनेक प्रकार के प्रवाद लोगों में प्रचलित हैं। ऐसा कहा जाता है कि चंदन के पेड़ में बड़े बड़े साँप लिपटे रहते हैं। चंदन अपनी सुगंध के लिये बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। अरबवाले पहले भारतवर्ष, लंका आदि से चंदन पश्चिम के देशों में ले जाते थे। भारतवर्ष में यद्यपि दक्षिण ही की ओर चंदन विशेष होता है पर उसके इत्र और तेल के कारखाने कन्नौज ही में हैं। पहले लखनऊ और जौनपुर में भी कारखाने थे। तेल निकालने के लिये चंदन को खूब महीन कूटते हैं, फिर इस बुकनी को दो दिन तक पानी में भिगो कर उसे भभके पर चढ़ाते हैं। भाप होकर जो पानी टपकता है उसके ऊपर तेल तैरने लगता है। इसी तेल को काँछ कर रख लेते हैं। एक मन चंदन में से २ से ३ सेर तक तेल निकलता है। अच्छे चंदन का तेल मलयागिरि कहलाता है और घटिया मेल का कठिया या जहाज़ी। चंदन औषध के काम में भी बहुत आता है। क्षत वा घाव इससे बहुत जल्दी सूखते हैं। वैद्यक में चंदन शीतल और कड़ुआ तथा दाह, पित्त, ज्वर, छर्दि, मोह, तृषा आदि को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्य्या०—श्रीखंड। चंद्रकांत। गोशीर्ष। भोगिवल्लभ। भद्रसार। मलयज। गंधसार। भद्रश्री। एकांग। पटीर। वर्णक। भद्राश्रय। सेव्य। रौहिण। ग्राम्य। सर्पेष्ट। पीतसार। महार्ह। मलयोद्भव, गंधराज। सुगंध। सर्पावास। शीतल। शीतगंध। तैलपर्णिक। चंद्रद्युति। सितहिम, इत्यादि।

(२) चंदन की लकड़ी । चंदन की लकड़ी वा टुकड़ा ।

क्रि० प्र०—घिसना ।—रगड़ना ।

मुहा०—चंदन उतारना = पानी के साथ चंदन की लकड़ी को घिसना जिसमें उसका अंश पानी में घुल जाय ।

(३) वह लेप जो पानी के साथ चंदन को घिसने से बने । घिसे हुए चंदन का लेप ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—चंदन चढ़ाना = घिसे हुए चंदन को शरीर में लगाना ।

(४) गंधपसार । पसरन । (५) राम की सेना का एक बंदर । (६) छप्पय छंद के तेरहवें भेद का नाम । (७) एक प्रकार का बड़ा तोता जो उत्तरीय भारत, मध्य भारत, हिमालय की तराई, काँगड़ा आदि में पाया जाता है ।

चंदनगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] मलयाचल पर्वत ।

चंदनगोह—संज्ञा पुं० [हिं० चंदन + गोह] एक प्रकार की गोह जो बहुत छोटी होती है ।

चंदनधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो पुत्र द्वारा सौभाग्यवती मृत माता के उद्देश्य से चंदन से अंकित करके दी जाती है । यह दान वृषोत्सर्ग के स्थान में होता है क्योंकि पिता की उपस्थिति में पुत्र को वृषोत्सर्ग का अधिकार नहीं है ।

चंदनपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन का फूल । (२) लौंग । लवंग ।

चंदनयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षयतृतीया । वैशाख सुदी तीज ।

चंदनवती—वि० स्त्री० [सं०] चंदन से युक्त ।

संज्ञा स्त्री० केरल देश की भूमि ।

चंदनशारिवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की शारिवा जिसमें चंदन की सी सुगंध होती है ।

चंदनसार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्रक्षार । नौसादर । (२) घिसा हुआ चंदन ।

चंदनहार—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र + हिं० हार] एक प्रकार की गले में पहनने की माला जो कई प्रकार की होती है । दे० "चंद्रहार" ।

चंदना—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंदनशारिवा ।

चंदनादि तैल—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन के योग से बननेवाला आयुर्वेद में एक प्रसिद्ध तैल जो शरीर के अनेक रोगों पर चलता है और शरीर में नई कांति लानेवाला माना जाता है ।

विशेष—रक्त चंदन, अगर, देवदारु, पद्मकाठ, इलायची, केसर, कपूर, कस्तूरी, जायफल, शीतलचीनी, दालचीनी, नागकेसर इत्यादि को पानी के साथ पीस कर तेल में पकाते हैं और पानी के जल जाने पर तेल छान लेते हैं ।

चंदनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम जिसका उल्लेख रामायण में है ।

†* संज्ञा स्त्री० दे० "चाँदनी" ।

चंदनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरोचन ।

चंदनौता—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लहँगा । उ०—चँद-नोता जो खर दुख भारी । बाँसपूर झिलमिल की सारी ।—जायसी ।

चंदबान—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रबाण] एक प्रकार का बाण । इस बाण के सिरे पर अर्द्धचंद्राकार लोहे की गाँसी वा फल लगा रहता है । इस बाण को उस समय काम में लाते हैं जब किसी का सिर काटना होता है । उ०—चले चंदबान, घन-बान औ कुहूकबान ।—भूषण ।

चँदराना†—क्रि० स० [देश०] (१) झुठलाना । झूठा बनाना । बहलाना । (२) जान बूझ कर कोई बात पूछना । जान बूझ कर अनजान बनना ।

चँदला—वि० [हिं० चांद = खोपड़ी] जिसकी चांद के बाल झड़ गए हों । गंजा । खल्वाट ।

चँदवा—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रा वा चंद्रोदय] एक प्रकार का छोटा मंडप जो राजाओं के सिंहासन वा गद्दी के ऊपर चाँदी वा सोने की चार चोबों के सहारे ताना जाता है । चँदोवा । चदरछत । वितान । उ०—ऊपर राता चँदवा छावा । औ भुइँ सुरँग बिछाव बिछावा ।—जायसी ।

विशेष—इसकी लंबाई चौड़ाई दो ढाई गज़ से अधिक नहीं होती और यह प्रायः मखमल रेशम आदि का होता है जिस पर कारचोब का काम बना रहता है । इसके बीच में प्रायः गोल काम रहता है ।

संज्ञा पुं० [सं० चंद्रक] (१) गोल आकार की चकती । गोल थिगली वा पैवंद । जैसे, टोपी का चँदवा । (२) [स्त्री० चँदिया] तालाब के भीतर का गहरा गड्ढा जिसमें मछलियाँ पकड़ी जाती हैं । (३) मोर की पूँछ पर का अर्द्धचंद्राकार चिह्न जो सुनहले मंडल के बीच में होता है । मोर पंख की चंद्रिका । उ०—(क) मोरन के चँदवा माथे बने राजत रुचिर सुदेस री । बदन कमल ऊपर अलिगन मानो घूँघरवारे केस री ।—सूर । (ख) सोहत हैं चँदवा सिर मोर के जैसिय सुंदर पाग कसी है ।—रसखान । (४) एक प्रकार की मछली ।

चंदा—संज्ञा पुं० [सं० चंद वा चंद्र] चंद्रमा । उ०—ज्यों चकोर चंदा को निरखै इत उत दृष्टि न जाहि । सूर श्याम बिन छिन छिन युग सम क्यों करि रैन बिहाहि ।—सूर ।

मुहा०—चंदा मामा = लड़कों को बहलाने का एक वाक्य । जैसे 'चंदा मामा दौरि आ । दूध भरी कटोरिया' इत्यादि ।

संज्ञा पुं० [फ़ा० चंद = कई एक] (१) वह थोड़ा थोड़ा धन जो कई आदमियों से उनके इच्छानुसार किसी कार्य्य के लिये लिया जाय । बेहरी । उगाही । बरार । (२) किसी सामयिक पत्र वा पुस्तक आदि का वार्षिक वा मासिक मूल्य । (३) वह

धन जो किसी सभा सोसायटी आदि को उसके सदस्यों वा सहायकों द्वारा नियत समय पर दिया जाय।

चंदावत–संज्ञा पुं० [सं० चंद्र] क्षत्रियों की एक जाति वा शाखा।

चंदावती–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्री राग की सहचरी एक रागिनी।

चंदिका–संज्ञा स्त्री० दे० "चंद्रिका"।

चंदिनि, चंदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० चंद] चाँदनी। चंद्रिका। उ०—चैत चतुरदसी चंदिनि अमल उदित निसिराजु। उड़गन अवलि लसीँ दस दिसि उमगत आनँद आजु।—तुलसी।

वि० चाँदनी। उजेली। उ०—तिन्हहिँ सुहाइ न अवध बधावा। चोरहिँ चंदिनि रात न भावा।—तुलसी।

चँदिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद] (१) खोपड़ी। सिर का मध्य भाग।

मुहा०—चँदिया पर बाल न छोड़ना = (१) सिर के बाल तक न छोड़ना। सब कुछ ले लेना। सर्वस्व हरण कर लेना। (२) सिर पर जूते लगाते लगाते बाल उड़ा देना। खूब जूते उड़ाना। **चँदिया से परे सरक** = सिर के ऊपर से अलग जाकर खड़ा हो। पास से हट जा। **चँदिया मूँड़ना** = (१) सिर मूड़ना। हजामत बनाना। (२) लूट कर खाना। धोखा देकर किसी का धन आदि ले लेना। (३) सिर पर खूब जूते लगाना। **चँदिया खाना** = (१) बकवाद से तंग करना। सिर खाना। सिर में दर्द पैदा करना। (२) सब कुछ हरण करके दरिद्र बना देना। **चँदिया खुजाना** = (१) सिर खुजलाना। (२) मार वा जूते खाने को जी चाहना। मार खाने का काम करना।

(२) छोटी सी रोटी। बचे हुए आटे की टिकिया। पिछली रोटी। (३) किसी ताल में वह स्थान जहाँ सब से अधिक गहराई हो। उ०—इस साल तो ऐसी कम वर्षा हुई कि तालों की चँदिया भी सूख गईं। (४) चाँदी की टिकिया।

चंदिर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। उ०—(क) रच्यो विश्वकर्मा सो मंदिर। परम प्रकाशित मानहु चंदिर।—रघुराज। (ख) हेम कलश कल कोट कँगूरे कहुँ मंदिर चंदिर सम रूरे।—रघुराज। (२) हाथी।

चँदेरी–संज्ञा स्त्री० [सं० चेदि वा हिं० चंदेल] एक प्राचीन नगर जो ग्वालियर राज्य के नरवार जिले में है। आज कल की बस्ती से ४,५ कोस पर पुरानी इमारतों के खँडहर हैं। पहले यह नगर बहुत समृद्ध दशा में था पर अब कुछ उजड़ गया है। यहाँ की पगड़ी प्रसिद्ध है। चँदेरी में कपड़े (सूती और रेशमी) अब भी बहुत अच्छे बुने जाते हैं। यहाँ एक पुराना क़िला है जो ज़मीन से २३० फुट की ऊँचाई पर है। इसका फाटक 'खूनी दरवाजा' के नाम से प्रसिद्ध है क्यों कि पहले यहाँ अपराधी क़िले की दीवार पर से ढकेले जाते थे। रमायण महाभारत और बौद्ध ग्रथों के देखने से पता लगता है कि प्राचीन काल में इसके आस पास का प्रदेश चेदि, कलचुरि वा हैहय वंश के अधिकार में था, और चेदि देश कहलाता था। चंदेलों का जब प्रताप चमका तब उनके राजा यशोवर्म्मा (संवत ९८२ से १०१२ तक) ने कलचुरि लोगों के हाथ से कालिंजर का क़िला तथा आस पास का प्रदेश ले लिया। इसी से कोई कोई चँदेरी शब्द की व्युत्पत्ति 'चंदेल' से बतलाते हैं। अलबरूनी ने चँदेरी का उल्लेख किया है। सन् १२५१ ईसवी में गयासुद्दीन बलबन ने चंदेरी पर अधिकार किया। सन् १४३८ में यह नगर मालवा के बादशाह महमूद खिलजी के अधिकार में गया। सन् १५२० में चित्तौर के राणा साँगा ने इसे जीत कर मेदिनी राव को दे दिया। मेदिनीराव से इस नगर को बाबर ने लिया। सन् १५८६ के उपरांत बहुत दिनों तक यह नगर बुंदेलों के अधिकार में रहा और फिर अंत में सन् १८११ में यह ग्वालियर राज्य के अधिकार में आया। उ०—राव चंदेरी को भूपाल। जाको सेवत सब भूपाल। सूर।

चंदेरीपति–संज्ञा पुं० [सं०] चंदेरी का राजा, शिशुपाल।

चंदेल–संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों की एक शाखा जो किसी समय कालंजर और महोबे में राज्य करती थी। परमर्दिदेव वा राजा परमाल इसी वंश के थे, जिनके सामंत आल्हा और ऊदल प्रसिद्ध हैं। संस्कृत लेखों में यह वंश चंद्रात्रेय के नाम से प्रसिद्ध है।

विशेष—चंदेलों की उत्पत्ति के विषय में यह कथा प्रसिद्ध है कि काशी के राजा इंद्रजित् के पुरोहित हेमराज की कन्या हेमवती बड़ी सुंदरी थी। वह एक कुंड में स्नान कर रही थी। इसी बीच में चंद्र देव ने उस पर आसक्त हो कर उसे आलिंगन किया। हेमवती ने जब बहुत कोप प्रकट किया तब चंद्रदेव ने कहा "मुझसे तुम्हें जो पुत्र होगा वह बड़ा प्रतापी राजा होगा और उसका राजवंश चलेगा।" जब उसे कुमारी अवस्था ही में गर्भ रह गया तब चंद्रमा के आदेशानुसार उसने अपने पुत्र को ले जाकर खजुराहो के राजा को दिया। राजा ने उसका नाम चंद्रवर्म्मा रखा। कहते हैं कि चंद्रमा ने राजा के लिये एक पारस पत्थर दिया था। पुत्र बड़ा प्रतापी हुआ। उसने महोबा नगर बसाया और कालिंजर का क़िला बनवाया। खजुराहों के शिलालेखों में लिखा है कि मरीचि के पुत्र अत्रि को एक चंद्रात्रेय नाम का पुत्र था। उसी के नाम पर यह चंद्रात्रेय नाम का वंश चला। ईसवी सन् ८०० से ले कर १५४५ तक इस वंश का प्रबल राज्य बुंदेलखंड और मध्य भारत में रहा। परमर्दिदेव के समय से इस वंश का प्रताप घटन लगा।

चँदोया–संज्ञा पुं० दे० "चँदवा"।

चँदोवा–संज्ञा पुं० दे० "चँदवा"।

चंद्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा।

विशेष—समास में इस शब्द का प्रयोग बहुत अधिक होता है, जैसे मुखचंद्र, चंद्रमुखी। कहीं कहीं यह श्रेष्ठ का अर्थ भी देता है, जैसे, पुरुषचंद्र। दे० "चंद्रमा"।

(२) संख्या सूचित करने की काव्य शैली में एक की संख्या। (३) मोर की पूँछ की चंद्रिका। उ०—मदन मोर के चंद्र की झलकनि निदरति तन जोति।—तुलसी। (४) कपूर। (५) जल। (६) सोना। स्वर्ण। (७) रोचनी नाम का पौधा। (८) पौराणिक भूगोल के १८ उपद्वीपों में से एक। (९) वह बिंदी जो सानुनासिक वर्ण के ऊपर लगाई जाती है। (१०) लाल रंग का मोती। (११) पिंगल में टगण का दसवाँ भेद (।।ऽ।।)। उ०—मुरलीधर। (१२) हीरा। (१३) मृगशिरा नक्षत्र। (१४) कोई आनंददायक वस्तु। (१५) नैपाल में एक पर्वत। (१६) चंद्रभागा में गिरनेवाली एक नदी।

वि० (१) आह्लादजनक। आनंददायक। (२) सुंदर। रमणीय।

चंद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) चंद्रमा के ऐसा मंडल वा घेरा। (३) चंद्रिका। चाँदनी। (४) मोर की पूँछ की चंद्रिका। (५) नह। नाखून। (६) एक प्रकार की मछली। (७) कपूर। उ०—करि उपचार थकी चहो चलि उताल नँदनंद। चंद्रक चंदन चंद तें ज्वाल जगी चौचंद।—शृं० सत। (८) मालकोश राग का पुत्र। (संगीत)। (९) सफ़ेद मिर्च। (१०) सहजन।

चंद्रकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमंडल का सोलहवाँ अंश। दे० "कला"। (२) चंद्रमा की किरण वा ज्योति। उ०—धनि द्वैज की चंद्रकला अबला सो लला की सजीवन मूरि भई है।—सेवक। (३) एक वर्णवृत्त जो आठ सगण और एक गुरु का होता है। इसका दूसरा नाम सुंदरी भी है। यह एक प्रकार का सवैया है। उ०—सब सों गहि पाणि मिले रघुनंदन भेंटि कियो सब को बड़ भागी। (४) माथे पर पहनने का एक गहना। (५) छोटा ढोल। (६) एक प्रकार की मछली जिसे बचा भी कहते। (७) एक प्रकार की बँगला मिठाई। (८) एक प्रकार का सात-ताला ताल जिसमें तीन गुरु और तीन प्लुत के बाद एक लघु होता है। इसका बोल यह है,—तक्टि किट तक्टि किट धिक तां तां तां धिम धिक ताँ तां ताँ धिम धिक तां तां तां धिम धा।

चंद्रकलाधर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

चंद्रकांत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन ग्रंथों के अनुसार एक मणि वा रत्न जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह चंद्रमा के सामने करने से पसीजता है और उससे बूँद बूँद पानी टपकता है। (२) एक राग जो हिंडोल राग का पुत्र माना जाता है। (३) चंदन। (४) कुमुद। (५) लक्ष्मण के पुत्र चंद्रकेतु की राजधानी का नाम।

चंद्रकांता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की स्त्री। (२) रात्रि। रात। (३) मल्लभूमि की एक नगरी जहाँ लक्ष्मण के पुत्र चंद्रकेतु राज्य करते थे। (४) पंद्रह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति।

चंद्रकांति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदी।

चंद्रकाम—संज्ञा पुं० [सं०] वह पीड़ा जो किसी पुरुष को उस समय होती है जब कोई स्त्री उसे वशीभूत करने के लिये मंत्र तंत्र आदि का प्रयोग करती है।

चंद्रकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चंद्रकिन्] वह जिसे चंद्रक हो। मोर। मयूर।

चंद्रकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा का पुत्र, बुध। (२) बौद्धों के एक यातक का नाम।

चंद्रकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] काश्मीर की एक नदी का प्राचीन नाम।

चंद्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] कामरूप प्रदेश का एक पर्वत जिसका बहुत कुछ माहात्म्य कालिका पुराण में लिखा है।

चंद्रकूप—संज्ञा पुं० [सं०] काशी का एक प्रसिद्ध कुआँ जो तीर्थ-स्थान माना जाता है।

चंद्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मण के एक पुत्र का नाम जिन्हें भरत के कहने से राम ने उत्तर का चंद्रकांत प्रदेश दिया था।

चंद्रक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] अमावास्या।

चंद्रगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] नैपाल का एक पर्वत जो काठमाँडू के पास है। इसकी ऊँचाई ८५०० फ़ुट है।

चंद्रगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्रगुप्त जो यम की सभा में रहते हैं। (२) मगध देश का प्रथम मौर्य्यवंशी राजा जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी और जिसने बलख के यूनानी (यवन) राजा सील्यूकस पर विजय प्राप्त करके उसकी कन्या ब्याही थी। कौटिल्य चाणक्य की सहायता से महानंद तथा और नंदवंशियों को मार इसने मगध का राजसिंहासन प्राप्त किया था, जिसकी कथा विष्णु, ब्रह्म, स्कंद, भागवत आदि पुराणों में मिलती है। इसी कथा को लेकर संस्कृत का प्रसिद्ध नाटक मुद्राराक्षस बना है। चंद्रगुप्त बड़ा प्रतापी राजा था। इसने पंजाब आदि स्थानों से यवनों (यूनानियों) को निकाल दिया था। यह ईसा से ३२१ वर्ष पूर्व मगध के राजसिंहासन पर बैठा और २४ वर्ष तक रहा। (३) गुप्त वंश का एक बड़ा प्रतापी राजा जिसे विक्रम वा विक्रमादित्य भी कहते थे। इसका विवाह लिच्छवीराज की कन्या कुमारी देवी से हुआ था। शिलालेखों से जाना जाता है कि इस राजा ने सन् ३१८ के लगभग समस्त उत्तरीय भारत पर साम्राज्य स्थापित किया था। लोगों का अनुमान है कि इसी प्रथम चंद्रगुप्त ने गुप्त संवत् चलाया था। (४) गुप्त वंश का एक दूसरा राजा जो प्रथम चंद्रगुप्त के पुत्र समुद्रगुप्त का पुत्र था। इसकी माता का नाम दत्तदेवी था। इसे विक्रमांक और

देवराज भी कहते थे। इसने अपना विवाह नैपाल के राजा की कन्या ध्रुवदेवी के साथ किया था। इसने दिग्विजय करके बहुत से देशों में अपनी कीर्त्ति स्थापित की थी। शिलालेखों से पता लगता है कि इसने ईसवी सन् ४०० से ४१३ तक इसने राज्य किया।

चंद्रगृह—संज्ञा पुं० [सं०] कर्कराशि।

विशेष—चंद्र वा उसके किसी पर्य्यायवाची शब्द में गृह वा उसके किसी पर्य्यायवाची शब्द के लगने से 'कर्कराशि' अर्थ होता है।

चंद्रगोल—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमंडल।

चंद्रगोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रिका। चाँदनी।

चंद्रग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का ग्रहण। दे० "ग्रहण।"

चंद्रचंचल—संज्ञा पुं० [सं०] खरसा मछली।

चंद्रचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम जिसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है।

चंद्रचूड़—संज्ञा पुं० [सं०] (मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाले) शिव। महादेव।

चंद्रचूड़ामणि—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में ग्रहों का एक योग। जब नवम स्थान का स्वामी केंद्रस्थ हो तब यह योग होता है। उ०—केंद्री है नवयें कर स्वामी योग चंद्र चूड़ामणि। गुरु द्विज भक्त सकल गुण सागर दाता शूर शिरोमणि।

चंद्रज—संज्ञा पुं० [सं०] बुध (जो चंद्रमा के पुत्र माने जाते हैं)।

चंद्रजोत—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्र+ज्योति] (१) चंद्रमा का प्रकाश। (२) महताबी नाम की आतशबाज़ी।

चंद्रताल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बारहताला ताल जिसे परम भी कहते हैं।

चंद्रदारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] २७ नक्षत्र जो पुराणानुसार दक्ष की कन्याएँ हैं और चंद्रमा को ब्याही हैं।

चंद्रद्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा का प्रकाश वा किरण। (२) चंदन।

चंद्रधनु—संज्ञा पुं० [सं०] वह इंद्रधनुष जो रात को चंद्रमा के प्रकाश के पड़ने के कारण दिखाई पड़ता है।

चंद्रधर—संज्ञा पुं० [सं०] (चंद्रमा को धारण करनेवाले) महादेव। शिव।

चंद्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारिणी लता।

चंद्रपुली—संज्ञा स्त्री० [सं० चंद्र+देश० पूर] एक बँगला मिठाई जो गरी से बनाई जाती है।

चंद्रपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चाँदनी। (२) बकुची। (३) सफ़ेद भटकटैया।

चंद्रप्रभ—वि० [सं०] चंद्रमा के समान ज्योतिवाला। कांतिवान्। संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैनों के आठवें तीर्थंकर। इनके पिता का नाम महासेन और माता का नाम लक्ष्मणा था। (२) तक्षशिला के राजा एक बोधिसत्त्व जो बड़े दानी थे। एक बार एक ब्राह्मण ने आ कर इनसे इनका मस्तक माँगा। इन्होंने बहुत धन देकर उसे संतुष्ट करना चाहा पर जब उसने न माना तब इन्होंने अपने मस्तक पर से राजमुकुट उतार उसके आगे रखा। तब ब्राह्मण इन्हें एकांत में ले गया और वहाँ जाकर उसने इनका सिर काट लिया।

चंद्रप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की ज्योति। चाँदनी। चंद्रिका। (२) बकुची नाम की ओषधि। (३) कचूर। (४) वैद्यक की एक प्रसिद्ध गुटिका जो अर्श भगंदर आदि रोगों पर दी जाती है।

चंद्रबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा का भाई, शंख (क्योंकि चंद्रमा के साथ वह भी समुद्र में से निकला था)। (२) कुमुद।

चंद्रबधूटी—संज्ञा स्त्री० [सं० इंद्रवधू=इंदुवधू] वीरबहूटी। उ०—नाथ लटू भए लालन जू लखि भामिनि भाल की बंदन बूटी। चोप सों चारु सुधारस लोभ बिधी विधु में मनो चंद्रबधूटी।—नाथ।

चंद्रबाण—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रबाण] अर्द्धचंद्रबाण जो सिर काटने के लिये छोड़ा जाता था। (इसका फल अर्द्धचंद्राकार बनता था जिसमें गले में पूरा पूरा बैठ जाय।) उ०—चले चंदबान, घनबान औ कुहूकबान।—भूषण।

चंद्रबाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की स्त्री। (२) चंद्रमा की किरण। (३) बड़ी इलायची।

चंद्रबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।

चंद्रबिंदु—संज्ञा पुं० [सं०] अर्द्ध अनुस्वार की बिंदी। अर्द्ध चंद्राकार चिह्न युक्त बिंदु जो सानुनासिक वर्ण के ऊपर लगता है। जैसे "गाँव" में 'गा' के ऊपर।

चंद्रबिंब—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो दिन के पहले पहर में गाया और हिंडोल राग का पुत्र माना जाता है।

चंद्रबोड़ा—संज्ञा० पुं० [सं० चंद्र+बँ० बोड़ा] एक प्रकार का अजगर।

चंद्रभवन—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी का नाम।

चंद्रभस्म—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

चंद्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा का प्रकाश। (२) सफ़ेद भटकटैया।

चंद्रभाग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा की कला। (२) सोलह की संख्या। (३) हिमालय के अंतर्गत एक पर्वत वा शिखर का नाम जिससे चंद्रभागा वा चेनाब निकली है। ऐसी कथा है कि किसी समय ब्रह्मा ने इसी पर्वत पर बैठ कर देवताओं और पितरों के निमित्त चंद्रमा के भाग किए थे।

चंद्रभागा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंजाब की चनाब नाम की नदी जो हिमालय के चंद्रभाग नामक खंड से निकल कर सिंधु नदी में मिलती है। दे० "चनाब"।

विशेष—कालिका पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा के आदेश से

चंद्रभाग पर्वत से शीता नाम की नदी उत्पन्न हुई। यह नदी चंद्रमा को डुबाती हुई एक सरोवर में गिरी। चंद्रमा के प्रभाव से इसका जल अमृतमय हो गया। इसी जल से चंद्रभागा नाम की कन्या उत्पन्न हुई जिसे समुद्र ने ब्याहा। चंद्रमा ने अपनी गदा की नोक से पहाड़ में दरार कर दिया जिससे होकर चंद्रभागा नदी बह निकली। उ०—शुभ कुरुखेत, अयोध्या, मिथिला, प्राग, त्रिबेनी न्हाए। पुनि शतद्रु औरहु चँद्रभागा, गंग ब्यास अन्हवाए।—सूर।

चंद्रभाट—संज्ञा पुं० सं० चंद्र + हिं० भाट] एक प्रकार के भिक्षुक साधु जो शिव और काली के उपासक होते हैं। ये अपने साथ, गाय, बैल, बकरी और बंदर आदि लेकर चलते हैं। ये प्रायः गृहस्थ होते हैं और खेती बारी करते हैं।

चंद्रभानु—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण की पटरानी सत्यभामा के १० पुत्रों में से सातवें पुत्र का नाम। उ०—भानु स्वभाव तथा अतिभानू। बृहद्भानु स्वरभानु प्रभानू। चंद्रभानु श्रीरवि प्रतिभानू। भानुमान सह दस मतिमानू।—गोपाल।

चंद्रभाल—संज्ञा पुं० [सं०] (मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाले) शिव। महादेव।

चंद्रभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदी।

चंद्रभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। उ०—सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंद्रभूषण भालहीं।—तुलसी।

चंद्रमणि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रकांत मणि। उ०—(क) चौकी हेम चंद्रमणि लागी हीरा रतन जराय खची। भुवन चतुर्दश की सुंदरता राधे के मुख मनहि रची।—सूर। (ख) केती सोमकला करो, करो सुधा को दान। नहीं चंद्रमणि जो द्रवै, यह तेलिया पखान।—दीनदयाल। (२) उल्लाला छंद का एक नाम।

चंद्रमस्—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

चंद्रमा—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमस्] आकाश में चमकनेवाला एक उपग्रह जो महीने में एक बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है और सूर्य्य से प्रकाश पा कर चमकता है।

विशेष—यह उपग्रह पृथ्वी के सब से निकट है अर्थात् यह पृथ्वी से २३८८०० मील की दूरी पर है। इसका व्यास २१६२ मील है और इसका परिमाण पृथ्वी का $\frac{१}{४९}$ है। इसका गुरुत्व पृथ्वी के गुरुत्व का $\frac{१}{८०}$ वाँ भाग है। इसे पृथ्वी के चारों ओर घूमने में २७ दिन, ७ घंटे, ४३ मिनिट और ११$\frac{१}{२}$ सेकंड लगते हैं, पर व्यवहार में जो महीना आता है वह २९ दिन, १२ घंटा, ४४ मिनिट और २·७ सेकंड का होता है। चंद्रमा के परिक्रमण की गति में सूर्य्य की क्रिया से बहुत कुछ अंतर पड़ता रहता है। चंद्रमा अपने अक्ष पर महीने में एक बार के हिसाब से घूमता है इससे प्रायः उसका एकही पार्श्व पृथ्वी की ओर सदा रहता है। इसी विलक्षणता को देख कुछ लोगों को यह भ्रम हुआ था कि यह अक्ष पर घूमता ही नहीं है। चंद्रमंडल में बहुत से धब्बे दिखाई देते हैं जिन्हें पुराणानुसार जन साधारण कलंक आदि कहते हैं। पर एक अच्छी दूरबीन के द्वारा देखने से ये धब्बे गायब हो जाते हैं और इनके स्थान पर पर्वत, घाटी, गर्त्त, ज्वालामुखी पर्वतों के विवर आदि अनेक पदार्थ दिखाई पड़ते हैं। चंद्रमा का अधिकांश तल पृथ्वी के ज्वालामुखी पर्वतों से पूर्ण किसी प्रदेश का सा है। चंद्रमा में वायुमंडल नहीं जान पड़ता और न बादल वा जल ही के कोई चिह्न दिखाई पड़ते हैं। चंद्रमा में गरमी बहुत थोड़ी दिखाई पड़ती है। प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों के मत से भी चंद्रमा एक ग्रह है जो सूर्य्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। भास्कराचार्य्य के मत से चंद्रमा जलमय है, इसमें निज का कोई तेज नहीं है। उसका जितना भाग सूर्य्य के सामने पड़ता है उतना दिखाई पड़ता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार धूप में घड़ा रखने से उसका एक पार्श्व चमकता है और दूसरा पार्श्व उसी की छाया से अप्रकाशित रहता है। जिस दिन चंद्रमा के नीचे के भाग पर अर्थात् उस भाग पर जो हम लोगों की ओर रहता है, सूर्य्य का प्रकाश बिलकुल नहीं पड़ता उस दिन अमावास्या होती है। ऐसा तभी होता है जब सूर्य्य और चंद्र एक राशिस्थ अर्थात् सम सूत्र में होते हैं। चंद्रमा बहुत शीघ्र सूर्य्य की सीध से पूर्व की ओर हट जाता है और उसकी एक एक कला क्रमशः प्रकाशित होने लगती है। चंद्रमा सूर्य्य की सीध (सम सूत्रपात) से जितना ही अधिक हटता जायगा उसका कतना ही अधिक भाग प्रकाशित होता जायगा। द्वितीया के दिन चंद्रमा के पश्चिमांश पर सूर्य्य का जितना प्रकाश पड़ता है, उतना भाग प्रकाशित दिखाई पड़ता है। सूर्य्यसिद्धांत के मतानुसार जब चंद्रमा सूर्य्य की सीध से ६ राशि पर चला जाता है तब उसका समग्र आधा भाग प्रकाशित हो जाता है और हमें पूर्णिमा का पूरा चंद्रमा दिखाई पड़ता है। पूर्णिमा के अनंतर ज्यों ज्यों चंद्रमा बढ़ता जाता है त्यों त्यों सूर्य्य की सीध से उसका अंतर कम होता जाता है अर्थात् वह सूर्य की सीध की ओर आ जाता है और प्रकाशित भाग क्रमशः अंधकार में पड़ता जाता है। अनुपात के मतानुसार प्रकाशित और अप्रकाशित भागों की इस ह्रास और वृद्धि का हिसाब जाना जा सकता है। यही मत आर्य्य भट्ट, श्रीपति, ज्ञानराज, लल्ल, ब्रह्मगुप्त आदि सभी पुराने ज्योतिषियों का है। चंद्रमा में जो धब्बे दिखाई पड़ते हैं उनके विषय में सूर्य्यसिद्धांत, सिद्धांतशिरोमणि, बृहत्संहिता इत्यादि में कुछ नहीं लिखा है। हरिवंश में लिखा है कि ये धब्बे पृथ्वी की छाया हैं। कवि लोगों ने चकोर और कुमुद को चंद्रमा पर अनुरक्त वर्णन किया है। पुराणानुसार

चंद्रमा समुद्र-मथन के समय निकले हुए चौदह रत्नों में से हैं और देवताओं के बीच गिने जाते हैं। जब एक असुर देवताओं की पंक्ति में चुपचाप बैठ कर अमृत पी गया तब चंद्रमा ने यह वृत्तांत विष्णु से कह दिया। विष्णु ने उस असुर के दो खंड कर दिये जो राहु और केतु हुए। वही पुराना वैर लेकर राहु ग्रहण के समय चंद्रमा को ग्रसा करता है। चंद्रमा के धब्बे के विषय में भी भिन्न भिन्न कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कुछ लोग कहते हैं कि दक्षप्रजापति के शाप से चंद्रमा को राजयक्ष्मा रोग हुआ, उसी की शांति के लिये वे अपनी गोद में एक हिरन लिए रहते हैं। किसी किसी के मत से चंद्रमा ने अपनी गुरु-पत्नी के साथ गमन किया था इसी कारण शापवश उनके शरीर पर काला दाग पड़ गया है। कहीं कहीं यह भी लिखा है कि जब इंद्र ने अहल्या का सतीत्व भंग किया था तब चंद्रमा ने इंद्र को सहायता दी थी। गौतम ऋषि ने क्रोध वश उन्हें अपने कमंडल और मृगचर्म्म से मारा जिसका दाग उनके शरीर पर पड़ गया।

पर्य्या०—हिमांशु। इंदु। कुमुदबांधव। विधु। सुधांशु। शुभ्रांशु। ओषधीश। निशापति। अज। जैवातृक। सोम। ग्लौ। मृगांक। कलानिधि। द्विजराज। शशधर। नक्षत्रराज। क्षपाकर। दोषाकर। निशानाथ। शर्वरीश। एणांक। शीतरश्मि। सारस। श्वेतवाहन। नक्षत्रनेमि। उडुप। क्षुधासूति। तिथिप्रणी। अमति। चंदिर। चित्राचीर। पक्षधर। रोहिणीश। अत्रिनेत्रज। पत्रज। सिंधुजन्मा। दशाश्व। तारापीड़। निशामणि। मृगलांछन। दाक्षायणीपति। लक्ष्मीसहज। सुधाकर। सुधाधार। शीतभानु। तमोहर। तुषारकिरण। हरि। हिमद्युति। द्विजपति। विश्वप्सा। अमृतदीधिति। हरिणांक। रोहिणीपति। सिंधुनंदन। तमोनुद्। एणतिलक। कुमुदेश। क्षीरोदनंदन। कांत। कलावान्। यामिनीपति। सिप्र। सुधानिधि। तुंगी। पक्षजन्मा। समुद्रनवनीत। पीयूषमहा। शीतमरीचि। त्रिनेत्रचूड़ामणि। सुधांग। परिज्ञा। तुंगीपति। पर्व्वधि। क्लेदु। जयंत। तपस। खचमस। विकस। दशवाजी। श्वेतवाजी। अमृतसू। कौमुदीपति। कुमुदुनीपति। दक्षजापति। कलामृत। शशभृत्। एणभृत्। छायाभृत्। निशारत्न। निशाकर। रजनीकर। क्षपाकर। अमृत। श्वेतद्युति। शशि। शश लांछन। मृगलांछन।

चंद्रमात्रा—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में तालों के १४ भेदों में से एक।

चंद्रमाललाट—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रमा + ललाट] (वह जिस के माथे पर चंद्रमा हो) शिव। महादेव।

चंद्रमाललाम संज्ञा पुं० [सं० चंद्रमा + ललाम = तिलक, मस्तक पर का चिह्न] महादेव। शंकर! शिव। उ०—तहाँ दसरथ के समत्थ नाथ तुलसी के चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमाललाम को।—तुलसी।

चंद्रमाला—संज्ञा पुं० [सं०] (१) २८ मात्राओं का एक छंद। उ०—नृपहि महाभट गुणि अति रिस करि अगणित सायक मारयो। (२) चंद्रहार। एक प्रकार का हार।

चंद्रमास—संज्ञा पुं० दे० "चांद्रमास"।

चंद्रमौलि—संज्ञा पुं० [सं०] (मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाले) शिव। महादेव। उ०—तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि वृषकेतू।—तुलसी।

चंद्ररेखा, चंद्रलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की कला। (२) चंद्रमा की किरन। (३) द्वितीया का चंद्रमा। (४) बकुची। (५) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में म र म य य (ऽऽऽ ऽ।ऽ ऽऽऽ।ऽऽ।ऽऽ) होता है। उ०—मैं री मैया यही लैहौं चंद्रलेखा खिलौना।

चंद्रलोक—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का लोक। उ०—चंद्रलोक दीन्हौं शशि को तब फगुआ में हरि आप। सब नक्षत्र को राजा कीन्हो शशि मंडल में छाप।—सूर।

चंद्रवंश—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों के दो आदि और प्रधान कुलों में से एक जो पुरुरवा से आरंभ हुआ था।

चंद्रवंशी—वि० [सं० चंद्रवंशिन्] चंद्रवंश का। जो क्षत्रियों के चंद्रवंश में उत्पन्न हुआ हो।

चंद्रवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवधू] बीरबहूटी।

विशेष—जान पड़ता है कि इंद्रवधू को किसी कवि ने 'इंदुवधू' समझ कर ही इस शब्द का इस अर्थ में प्रयोग किया है।

चंद्रवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम, जिसके प्रत्येक चरण में रगण, नगण, भगण, और सगण (ऽ।ऽ ।।। ऽ।। ।।ऽ) होते हैं। उ०—रे नभा सिव ललाट शशि समा। जानि त्यागहु धतूर हिय तमा।

चंद्रवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमलता।

चंद्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोमलता। (२) माधवी लता। (३) प्रसारिणी। पसरन।

चंद्रवार—संज्ञा पुं० [सं०] सोमवार।

चंद्रवाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची।

चंद्रवेष—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव। उ०—अहँ चंदवेष करि कै वनिता को ह्वै रहे।—लल्लू।

चंद्रव्रत—संज्ञा पुं० दे० "चांद्रायण"।

चंद्रशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चाँदनी। चंद्रिका। (२) अटारी। धुर ऊपर की कोठरी। सबसे ऊपर का बँगला। उ०—(क) चंद्रशाला, केलिशाला, पानशाला, पाकशाला, गजशाला हेम की जड़ी मनी।—रघुराज। (ख) चौक चंद्रशाला छबिमाला। रजत कनक की बनी दिवाला।—रघुराज। (ग) चढ़ी उतंग चंद्रशाला मँ लखी अयोध्या नगरी।—रघुराज।

चंद्रशूर—संज्ञा पुं० [सं०] चंसुर। हालों या हालिम नाम का पौधा।

चंद्रशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] द्वितीया के चंद्रमा के दोनों नुकीले छोर।

चंद्रशेखर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका शिरोभूषण चंद्रमा है। शिव। महादेव। (२) एक पर्वत का नाम। (अराकान में इस नाम का एक पर्वत है)। (३) एक पुराण-प्रसिद्ध नगर का नाम। (४) संगीत में अष्टतालों में से एक। एक प्रकार का सात-ताला ताल जिसका बोल इस प्रकार है—·········भें भें। तक धी तक··· ऽ ···दिधि तक दिगिदां ऽ थोंगा। गिड़ि थों।

चंद्रसं-संज्ञा पुं० [देश०] गंधाबिरोज़ा।

चंद्रसरोवर-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रज का एक तीर्थस्थान जो गोवर्द्धन गिरि के समीप है।

चंद्रहार-संज्ञा पुं० [सं०] गले में पहनने का एक गहना वा माला जिसमें अर्द्धचंद्राकार क्रमशः छोटे बड़े अनेक मनके होते हैं। बीच में पूर्ण चंद्र के आकार का गोल पनवा होता है। यह हार सोने का बनता है और प्रायः जड़ाऊ होता है। नौलखा हार।

चंद्रहास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खड्ग। तलवार। (२) रावण की तलवार का नाम। उ०—चंद्रहास हर मम परितापं। रघुपति विरह अनल संजातं।—तुलसी। (३) चाँदी।

चंद्रहासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमलता।

चंद्रांकित-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

चंद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी इलायची। (२) वितान। चँदवा। चँदोवा। (३) गुडूची। गुर्च।

संज्ञा स्त्री० [सं० चंद्र] मरने के समय की वह अवस्था जब टकटकी बँध जाती है, गला कफ से रुँध जाता है और बोला नहीं जाता। उ०—इधर बाप को चंद्रा लग रही थी इधर बेटे का ब्याह हो रहा था।

क्रि० प्र०—लगना।

चंद्रागति-घात-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृदंग की एक थाप। उ०—ताल धरे बनिता मृदंग चंद्रागतिघात बजै थोरी थोरी।

चंद्रातप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाँदनी। चंद्रिका। (२) चँदवा। वितान।

चंद्रापीड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) काश्मीर का एक राजा जिसका दूसरा नाम वज्रादित्य था। यह प्रतापादित्य का ज्येष्ठ पुत्र था और उसकी मृत्यु के उपरांत ६०४ शकाब्द में सिंहासन पर बैठा था। यह अत्यंत उदार और धर्मात्मा राजा हुआ।

चंद्रायण*-संज्ञा पुं० दे० "चांद्रायण"।

चंद्रायतन-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रशाला।

चंद्रार्द्धचूड़ामणि-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

चंद्रालोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा का प्रकाश। (२) जयदेव नामक कवि रचित अलंकार का एक संस्कृत ग्रंथ। (अधिकांश लोगों का मत है कि चंद्रालोककार जयदेव, गीतगोविंदकार जयदेव से भिन्न हैं।)

चंद्रावर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक पद में ४ नगण पर १ सगण होता है और ८+७ पर विराम। विराम न होने से 'शशिकला' (मणि गुण शरभ) वृत्त होता है। इसका दूसरा नाम 'मणि-गुण-निकर' है। उ०—नचहु सुखद यशुमति सुत सहिता। लहहु जनम इह सखि सुख अमिता।

चंद्रावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण में अनुरक्त एक गोपी का नाम जो चंद्रभानु की कन्या थी।

चंद्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा का प्रकाश। चाँदनी। ज्योत्स्ना। कौमुदी। (२) मोर की पूँछ के पर का गोल चिह्न वा आँख। मोर की पूँछ पर का वह अर्द्ध चंद्राकार चिह्न जो सुनहले मंडल से घिरा होता है। उ०—सोभित सुमन मयूर चंद्रिका नील नलिन तनु स्याम।—सूर। (३) बड़ी इलायची। (४) चाँदा नाम की मछली। (५) चंद्रभागा नदी। (६) छोटी इलायची। (७) कर्णस्फोटा। कनफोड़ा घास। (८) जूही या चमेली। (९) सफ़ेद फूल की भटकटैया। (१०) मेथी। (११) चंद्रशूर। चनसुर। (१२) एक देवी। (१३) एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नन तत ग (।।। ।।। ऽऽ। ऽऽ। ऽ) और ७ + ६ पर यति होती है। उ०—न नित तगि कहू आन को धाव रे। भजहु हर घरी राम को बावरे। (१४) वासपुष्पा। (१५) संस्कृत व्याकरण का एक ग्रंथ। (१६) माथे पर का एक भूषण। बेंदी। बेंदा। उ०—यहि भाँति नाचत गोपिका सब थकित ह्वै झुकि झुकि रहीं। कहिं माल पायल चंद्रिका खसि परी नकबेसर कहीं।—विश्राम। (१७) स्त्रियों का एक प्रकार का मुकुट वा शिरोभूषण जिसे प्राचीन काल की रानियाँ धारण करती थीं। चंद्रकला।

चंद्रिकाभिसारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्लाभिसारिका नायिका।

चंद्रिकोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] शरदोत्सव। शरत् पूनो का उत्सव।

चंद्रिल-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

चंद्रोदय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा का उदय। (२) वैद्यक में एक रस जो गंधक, पारे और सोने को भस्म कर के बनाया जाता है। यह रस बड़ा उत्तेजक होता है। मरणासन्न मनुष्य को देने से उसकी बेहोशी थोड़ी देर के लिये दूर हो जाती है। इसे पुष्टई की तरह भी लोग खाते हैं। (३) चँदवा। चँदोवा। वितान।

चंद्रोपराग-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रग्रहण।

चंद्रोपल-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रकांतमणि।

चंद्रौल–संज्ञा स्त्री० [सं० चंद्र] राजपूतों की एक जाति वा शाखा ।

चंप–संज्ञा पुं० [सं० चंपक] (१) चंपा । (२) कचनार । कोविदार वृक्ष ।

चंपई–वि० [हिं० चंपा] चंपा के फूल के रंग का । पीले रंग का ।

चंपक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंपा । (२) चंपा केला । (३) सांख्य में एक सिद्धि जिसे रम्यक भी कहते हैं । दे० "रम्यक" । (४) संपूर्ण जाति का एक राग जिसके गाने का समय तीसरा पहर है । यह दीपक राग का पुत्र माना जाता है ।

चंपकमाला–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंपा के फूलों की माला । (२) एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक पाद में भगण मगण सगण और एक गुरु (ऽ।। ऽऽऽ ।।ऽ ऽ) होता है । उ०—भूमि सगी काहू कर नाहीं । कृष्ण सगा साँचो जग माहीं ।

चंपकालु–संज्ञा पुं० [सं०] जाक या रोटीफल का पेड़ ।

चंपत–वि० [देश०] चलता । ग़ायब । अंतर्द्धान ।

क्रि० प्र०—बनना ।—होना ।

✓**चँपना**–क्रि० अ० [सं० चप्] (१) दबना । बोझ से दबना । (२) लज्जा से दबना । लज्जित होना । (३) उपकार से दबना । एहसान से दबना ।

चंपा–संज्ञा पुं० [सं० चंपक] (१) एक मझोले क़द का पेड़ जिसमें हलके पीले रंग के फूल लगते हैं । इन फूलों में बड़ी तीव्र सुगंध होती है । चंपा दो प्रकार का होता है । एक साधारण चंपा, दूसरा कटहलिया चंपा । कटहलिया चंपा के फूल की महक पके कटहल से मिलती हुई होती है । ऐसा प्रसिद्ध है कि चंपा के फूल पर भौंरे नहीं बैठते । जंगलों में चंपे के जो पेड़ होते हैं वे बहुत बड़े और ऊँचे होते हैं । इसकी लकड़ी पीली, चमकीली और मुलायम, पर बहुत मज़बूत होती है और नाव, टेबुल, कुरसी आदि बनाने और इमारत के काम में आती है । हिमालय की तराई, नैपाल, बंगाल, आसाम तथा दक्षिण भारत के जंगलों में यह अधिकता से पाया जाता है । चित्रकूट में इसकी लकड़ी की मालाएँ बनती हैं । (२) एक पुरी जो प्राचीन काल में अंगदेश की राजधानी थी । यह वर्त्तमान भागलपुर के आस पास कहीं रही होगी । कर्ण यहीं का राजा था । (३) एक जाति का मीठा केला जो बंगाल में होता है । (४) घोड़े की एक जाति । (५) एक प्रकार का कुसियार या रेशम का कीड़ा जिसके रेशम का व्यवहार पहले आसाम में बहुत होता था । (६) एक प्रकार का बहुत बड़ा सदाबहार पेड़ जो दक्षिण-भारत में अधिकता से पाया जाता है । इसकी लकड़ी कुछ पीलापन लिए बहुत मज़बूत होती है और इमारत के काम के अतिरिक्त गाड़ी, पालकी, नाव आदि के बनाने के काम में भी आती है । इसे "सुलताना चंपा" भी कहते हैं ।

चंपाकली–संज्ञा स्त्री० [हिं० चंपा + कली] गले में पहनने का स्त्रियों का एक गहना जिसमें चंपा की कली के आकार के सोने के दाने रेशम के तागे में गुँथे रहते हैं ।

चंपानेर–संज्ञा पुं० [हिं० चंपा + नगर] एक पुराना नगर जिसके खँड़हर अब तक बंबई के पंचमहाल ज़िले के अंतर्गत हैं । ईसा की १५ वीं शताब्दी के अंतिम भाग तक यह एक राजपूत सरदार के अधिकार में था । पर सन् १४८२ में अहमदाबाद के बादशाह महमूद ने राजपूतों के आक्रमण से तंग आकर इसे ले लिया और इसके पास ही महम्मदाबाद चंपानेर बसाया । इस नगर को हुमायूं ने सन् १५३३ में उजाड़ दिया । सन् १८०३ तक इसमें ४००-५०० आदमियों की बस्ती थी । पर अब दो चार घर रह गए हैं ।

चंपारण्य–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक जंगल जो कदाचित् उस स्थान पर रहा हो जिसे आज कल चंपारन कहते हैं ।

चंपारन–संज्ञा पुं० [सं० चंपारण्य] विहार प्रांत का एक प्रदेश वा ज़िला ।

चंपू–संज्ञा पुं० [सं०] गद्यपद्यमय काव्य । वह काव्यग्रंथ जिसमें गद्य के बीच बीच में पद्य भी हों ।

चँपौनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँपना] जुलाहों के करघे की भँजनी में एक पतली लकड़ी जो दूसरी भाँज को दबाने के लिये लगी रहती है ।

चंबल–संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मण्वती] (१) एक नदी जो विंध्य पर्वत से निकल कर इटावे से १२ कोस पर जमुना में जा मिली है । (२) नहरों वा नालों के किनारे पर लगी हुई लकड़ी जिससे सिँचाई के लिये पानी ऊपर चढ़ाते हैं ।

संज्ञा पुं० पानी की बाढ़ ।

मुहा०—चंबल लगना = खूब पानी बढ़ना । जलमय होना ।

संज्ञा पुं० [फ़ा० चुंबल] (१) भीख माँगने का कटोरा या खप्पर । (२) चिलम का सरपोश ।

चंबली–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चुंबल] एक प्रकार का छोटा प्याला ।

चंबी–संज्ञा स्त्री० [देश०] काग़ज़ वा मोमजामे का एक तिकोना टुकड़ा जो कपड़ों पर रंग छापते समय उन स्थानों पर रक्खा जाता है जहाँ रंग चढ़ाना मंजूर नहीं होता । पट्टी । कतरनी ।

चंबू–संज्ञा पुं० [?] (१) एक प्रकार का धान जो पहाड़ों में बिना सींची जमीन पर चैत में होता है । (२) ताँबे, पीतल या और किसी धातु का छोटे मुँह का सुराहीनुमा बरतन जिससे हिंदू देवमूर्त्तियों पर जल चढ़ाते हैं । (३) एक प्रकार का लोटा जो विशेष कर ओड़छा में बनता है । इसका फूल बहुत उत्तम होता है ।

चँबेलिया†–वि० दे० "चमेलिया" ।

चँबेली–संज्ञा स्त्री० दे० "चमेली" ।

चँवर–संज्ञा पुं० [सं० चामर] [स्त्री० अल्प० चँवरी] (१) सुरा

गाय की पूँछ के बालों का गुच्छा जो काठ, सोने, चाँदी आदि की डाँड़ी में लगा रहता है। यह राजाओं या देव-मूर्त्तियों के सिर पर, पीछे या बगल से डुलाया जाता है जिसमें मक्खियाँ आदि न बैठने पावें। कभी कभी यह खस का भी बनता है। मोर की पूँछ का जो बनता है उसे मोर-छल कहते हैं। चँवर प्रायः तिब्बती और भोटिया ले आते हैं। (२) घोड़े और हाथियों के सिर पर लगाने की कलगी। उ०—तैसे चँवर बनाए औ घाले गल झंप। बँधे सेत गज-गाह तहँ जो देखै सो कंप।—जायसी।

चँवरढार–संज्ञा पुं० [हिं० चँवर+ढारना] चँवर डोलानेवाला सेवक। उ०—चँवरढार दुइ चँवर डोलावहिं।—जायसी।

चँवरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चँवर] लकड़ी के बेंट वा डाँड़ी में लगा हुआ घोड़े की पूँछ के बालों का गुच्छा जिससे घोड़े के ऊपर की मक्खियाँ उड़ाई जाती हैं।

चंसुर–संज्ञा पुं० [सं० चंद्रशूर] हालों या हालिम नाम का पौधा जो लगभग २ फुट ऊँचा होता है। इसके पत्ते पतले और कटावदार गुलदावदी के पत्तों के से होते हैं। पत्तों का लोग साग खाते हैं। पौधे के बीज को भी चंसुर कहते हैं।

च–संज्ञा पुं० [स०] (१) कच्छप। कछुआ। (२) चंद्रमा। (३) चोर। (४) दुर्जन।

चइ–[अनु०] महावतों की बोली का एक शब्द जिसका व्यवहार हाथी को घुमाने के लिये किया जाता है।

चइत†–संज्ञा पुं० दे० "चैत"।

चइन†–संज्ञा पुं० दे० "चैन"।

चई–संज्ञा स्त्री० [सं० चव्य] पिपरामूल की जाति का और लता की तरह का एक प्रकार का पेड़ जो दक्षिण भारत तथा अन्य स्थानों में नदियों और जलाशयों के किनारे होता है। इसकी जड़ जल्दी नष्ट नहीं होती और यदि वृक्ष काट भी लिया जाय तो उसमें फिर पत्ते निकल आते हैं। इसके पत्तों का आकार पान का सा होता है। इसकी जड़ तथा लकड़ी दवा के काम में आती है। दे० "चाव"।

चउँहान–संज्ञा पुं० दे० "चौहान"।

चउक†–संज्ञा पुं० दे० "चौक"।

चउकी–संज्ञा स्त्री० दे० "चौकी"

चउतरा–संज्ञा पुं० दे० "चबूतरा"।

चँउथा–वि० दे० "चौथा"।

चउदस†–संज्ञा स्त्री० दे० "चौदस"।

चउदह†–वि० दे० "चौदह"।

चउपाई†*–० संज्ञा स्त्री० दे० "चौपाई"।

चउपारि†–संज्ञा स्त्री दे० "चौपाल"।

चउर*†–संज्ञा पुं० [हिं० चँवर] चँवर। मोरछल। उ०—धरि धरि सुंदर वेष चले हरषित हिये। चउर चीर उपहार हार मनिगन लिये।—तुलसी।

चउरा–संज्ञा पुं० दे० "चौरा"।

चउहट्ट–संज्ञा पुं० [हिं०] चौहट्ट। चौराहा।

चऊतरा–संज्ञा पुं० दे० "चबूतरा"।

चक–[सं० चक्र] (१) चकई नाम का खिलौना। उ०—इत आवत दै जात दिखाई ज्यों भँवरा चक डोर। उत तें सूत न टारत कतहूँ मोसों मानत कोर।—सूर। (२) चक्रवाक पक्षी। चकवा। उ०—संपति चकई भरत चक, मुनि-आयसु खेलवार। तेहि निसि आश्रम पींजरा, राखे भा भिनसार।—तुलसी। (३) चक्र नामक अस्त्र। (४) चक्का। पहिया। (५) जमीन का बड़ा टुकड़ा। भूमि का एक भाग। पट्टी।

यौ०—चकबंदी।

मुहा०—चक काटना=भूमि का विभाग करना। जमीन की हद बाँधना।

(६) छोटा गाँव। खेड़ा। पट्टी। पुरवा। (७) करघे की बैसर के कुलवाँसे से लटकती हुई रस्सियों से बँधा हुआ डंडा जिसके दोनों छोरों पर से चकडोर नीचे की ओर जाती है। (जुलाहे)। (८) किसी बात की निरंतर अधिकता। तार।

मुहा०—चक बँधना=बराबर बढ़ता जाना। एक पर एक अधिक होता जाना। तार बँधना। उ०—यहाँ आकर काम करो, देखो रुपयों का चक बँध जाता है।

(९) अधिकार। दखल।

मुहा०—चक जमना=रंग जमना। अधिकार होना।

(१०) सोने का एक गहना जिसका आकार गोल और उभार-दार होता है। इसका चलन पंजाब में है। चौक।

वि० भरपूर। अधिक। ज्यादा। उ०—(क) उन्होंने चक माल मारा है। (ख) उनकी चक छनी है। (भंगड़)।

वि० [सं०] भ्रांत। चकपकाया हुआ। भौचक्का। उ०—चक चकित चित्त चरबीन चुभि चकचकाइ चंडी रहत।—पद्माकर।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधु। (२) खल।

चकई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चकवा] मादा चकवा। मादा सुरखाब। दे० "चकवा"। उ०—(क) सीतै सिष दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चंद निसि जैसे।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] घिरनी वा गड़ारी के आकार का एक छोटा गोल खिलौना जिसके घेरे में डोरी लपेटी रहती है। इसी डोरी के सहारे लड़के इसे फिराते वा नचाते हैं। उ०—(क) भौंरा चकई लाल पाट को लेंडुआ माँगु खेलौना।—सूर। (ख) इततैं उत उततैं इतै छिन न कहूँ ठहराति। जक न परति चकई भई, फिरि आवति फिरि जाति।—बिहारी।

वि० गोल बनावट का। जैसे, चकई आँडू।

चकचकाना–क्रि० अ० [देश०] (१) पानी, खून, रस या और किसी द्रव पदार्थ का सूक्ष्म कणों के रूप में किसी वस्तु के भीतर से निकलना । रस रस कर ऊपर आना । उ०—जहाँ जहाँ बेत लगा है, खून चकचका आया है । (२) भींग जाना । उ०—चक चकित चित्त चरबीन चुभि चकचकाइ चंडी रहत ।—पद्माकर ।

चकचकी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] करताल नाम का बाजा ।

चकचाना*†–क्रि० [देश०] चौंधियाना । चकाचौंध लगना । उ०—तो पद चमक चकचाने चंद्रचूड़ चष चितवत एकटक जंक बँध गई है ।—चरण ।

चकचाल†–संज्ञा पुं० [सं० चक्र + हिं० चाल] चक्कर । भ्रमण । फेरा । उ०—माया मत चकचाल करि चंचल कीये जीव । माया माते मद पिया दादू बिसरा पीव ।—दादू ।

चकचाव†*–संज्ञा पुं० [देश०] चकाचौंध । उ०—गोकुल के चष सेँ चकचाव गो चोर लौं चौकि अयान बिसासी ।

चकचून–वि० [सं० चक्र + चूर्ण] चूर किया हुआ । पिसा हुआ । चकनाचूर । उ०—पान, सुपारी खैर कहँ मिलै करै चकचून । तब लगि रंग न राचै जब लगि होय न चून ।—जायसी ।

चकचौंध–संज्ञा स्त्री० दे० "चकाचौंध" ।

चकचौंधना–क्रि० अ० [सं० चक्षुष् + अंध] आँख का अत्यंत अधिक प्रकाश के सामने ठहर न सकना । अत्यंत प्रखर प्रकाश के सामने दृष्टि स्थिर न रहना । आँख तिलमिलाना । चकाचौंध होना ।

क्रि० स० आँख में चमक उत्पन्न करना । आँखों में तिलमिलाहट पैदा करना । चकाचौंधी उत्पन्न करना । उ०—(क) अंध धुंध अंबर ते गिरि पर मानौ परत वज्र के तीर । चमकि चमकि चपला चकचौंधति श्याम कहत मन धीर ।—सूर । (ख) चकचौंधति सी चितवै चित मैं चित सोवत हूँ महँ जागत है ।—केशव ।

चकचौंधी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चकाचौंध" ।

चकचौंह*–संज्ञा स्त्री० [देश०] चकाचौंध ।

चकचौहना*–क्रि० स० [देश०] चाह से देखना । आशा लगाए टक बाँध कर देखना । उ०—जनु चातक मुख बूँद सेवाती । राजा चकचौहत तेहि भाँती ।—जायसी ।

चकड़वा–संज्ञा पुं० दे० "चकरबा" ।

चकडोर–संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) चकई की डोरी । चकई नामक खिलौने में लपेटा हुआ सूत । उ०—(क) खेलत अवध खोरि गोली भँवरा चकडोरि मूरति मधुर बसै तुलसी के हिय रे ।—तुलसी । (ख) दे मैया भँवरा चकडोरी । जाइ लेहु आरे पर राखे कालिह मोल लै राखे कोरी ।—सूर । (२) जुलाहों के करघे में वह डोरी जो चक वा नचनी में लगी हुई नीचे लटकती है और जिसमें बेसर बँधी रहती है ।

चकताई–संज्ञा पुं० दे० "चकत्ता" ।

चकत–संज्ञा पुं० [हिं० चकत्ता] चकोटा । दाँत की पकड़ ।

मुहा०—चकत मारना = दाँत से माँस आदि नोच लेना । बकोटा मारना । दाँतों से काट खाना ।

चकती–संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रवत्] (१) किसी चद्दर के रूप की वस्तु का छोटा गोल टुकड़ा । चमड़े, कपड़े आदि में से काटा हुआ गोल वा चौकोर छोटा टुकड़ा । पट्टी । गोल वा चौकोर धज्जी । उ०—इस पुराने कपड़े में से एक चकती निकाल लो (२) किसी कपड़े, चमड़े, बरतन इत्यादि के फटे वा फूटे हुए स्थान पर दूसरे कपड़े, चमड़े वा धातु (चद्दर) इत्यादि का टँका वा लगा हुआ टुकड़ा । किसी वस्तु के फटे फूटे स्थान को बंद करने वा मूँदने के लिये लगी हुई पट्टी वा धज्जी । थिगली ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—बादल में चकती लगाना = अनहोनी बात करने का प्रयत्न करना । असंभव कार्य्य करने का आयोजन करना । बहुत बढ़ी चढ़ी बात कहना ।

(३) दुंबे भेँड़े की गोल और चौड़ी दुम ।

चकत्ता–संज्ञा पुं० [सं० चक्र + वत्त] (१) शरीर के ऊपर बड़ा गोल दाग़ । चमड़े पर पड़ा हुआ धब्बा वा दाग़ । (रक्त-विकार के कारण चमड़े के ऊपर लाल, नीले वा काले चकत्ते पड़ जाते हैं ।) (२) खुजलाने आदि के कारण चमड़े के ऊपर थोड़े से घेरे के बीच पड़ी हुई चिपटी और बराबर सूजन जो उभड़ी हुई चकती की तरह दिखाई देती है ददोरा । (३) दाँतों से काटने का चिह्न । दाँत चुभने का निशान ।

क्रि० प्र०—डालना ।

मुहा०—चकत्ता भरना = दाँतों से काटना । दाँतों से माँस निकाल लेना । चकत्ता मारना = दाँतों से काटना ।

संज्ञा पुं० [तु० चग़ताई] (१) मोग़ल वा तातार अमीर चग़ताई खाँ जिसके वंश में बाबर अकबर आदि भारतवर्ष के मोग़ल बादशाह थे । उ०—मोटी भई चंडी बिनु चोटी के चबाय सीस, खोटी भई संपति चकत्ता के घराने की ।—भूषण । (२) चग़ताई वंश का पुरुष । उ०—मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीनो सरज़ा सुरेस ज्यों दुचित्त ब्रजराज को ।—भूषण ।

चकदार–संज्ञा पुं० [हिं० चक + फा० दार (प्रत्य०)] वह जो दूसरे की ज़मीन पर कुआँ बनवावे और उस ज़मीन का लगान दे

चकना*–क्रि० अ० [सं० चक = भ्रांत] (१) चकित होना । भौचक्का होना । चकपकाना । विस्मित होना । उ०—(क) चित्त चितेरी रही चकि सी जकि एक तेँ ह्वै गई ह्वै तस्वीर सी ।—बेनी प्रवीन । (ख) यदुबंसी धनि धनि मुख कहहीं हरि की रीति देखि चकि रहहीँ ।—रघुराज । (२) चौंकना

आशंकायुक्त होना । उ०—(क) चित्र लिये नल को कर मैं। भवन अकेली ह्वै भरमैं। संग सखीनहुँ सों चकि कै। यौं समता मिलवै तकि कै।—गुमान। उ०—(ख) फूलत फूल गुलाबन के चटकाहटि चौंकि चकी चपला सी।—पद्माकर। (ग) उचकी लची चौंकी चकी मुख फेरि तरेरि बड़ी अँखियाँ चितई।—बेनी।

चकनाचूर–वि० [हिं० चक = भरपूर + चूर] (१) जिसके टूट फूट कर बहुत से छोटे छोटे टुकड़े हो गए हों। चूर चूर। खंड खंड। चूर्णित। उ०—साहब का घर दूर है जैसी लँबी खजूर। चढ़ै तो चाखै प्रेम रस गिरै तो चकनाचूर।—कबीर। (२) बहुत थका हुआ। श्रम से शिथिल। अत्यंत श्रांत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

चकपक–वि० [सं० चक = भ्रांत] भौंचक्का। चकित। हक्काबक्का। स्तंभित।

चकपकाना–क्रि० अ० [सं० चक = भ्रांत] (१) आश्चर्य से इधर उधर ताकना। विस्मित होकर चारों ओर देखना। भौंचक्का होना। (२) आशंका से इधर उधर ताकना। चौंकना।

चकफेरी–संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र, हिं० चक + हिं० फेरी] किसी वृत्त वा मंडल के चारों ओर फिरने की क्रिया। परिक्रमा। भँवरी।

क्रि० प्र०—करना।—फिरना।—होना।

चकबंदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चक + फ़ा० बंदी] भूमि को कई भागों में विभक्त करने की क्रिया। ज़मीन की हदबंदी।

चकबस्त–संज्ञा पुं० [फ़ा०] ज़मीन की हदबंदी। किश्तवार।
संज्ञा पुं० काश्मीरी ब्राह्मणों का एक भेद।

चक़मक़–संज्ञा पुं० [तु०] एक प्रकार का कड़ा पत्थर जिस पर चोट पड़ने से बहुत जल्दी आग निकलती है।

विशेष—पहले यह बंदूकों पर लगाया जाता था और इसी के द्वारा आग निकाल कर बंदूक छोड़ी जाती थी। दियासलाई निकलने के पहले इसी पर सूत रख कर और एक लोहे से चोट देकर आग झाड़ते थे।

चकमा–संज्ञा पुं० [सं० चक = भ्रांत] (१) भुलावा। धोखा। उ०—कल तो तुमने उसको गहरा चकमा दिया।

मुहा०—चकमा खाना = धोखा खाना। भुलावे में आना। चकमा देना = धोखा देना। भुलवाना। भ्रांत करना।

(२) हानि। नुक़सान।

क्रि० प्र०—उठाना।—देना।

(३) लड़कों के एक खेल का नाम।
संज्ञा पुं० [देश०] बबून नामक बंदर की एक जाति।

चक़माक़–संज्ञा पुं० दे० "चक़मक़"।

चक़माक़ी–वि० [तु० चक़मक़] चकमक का। जिसमें चकमक लगा हो।
संज्ञा स्त्री० बंदूक।

चकर†*–संज्ञा पुं० [सं० चक्र] (१) चक्रवाक पक्षी। चकवा। (२) दे० "चक्कर"।

यौ०—चकर मकर = धोखा। भुलावा। झाँसा। (लश०)

चकरबा–संज्ञा पुं० [सं० चक्रव्यूह] (१) चक्कर। फेर। कठिन स्थिति। ऐसी अवस्था जिसमें यह न सूझे कि क्या करना चाहिए। असमंजस। (२) झगड़ा। बखेड़ा। टंटा।

क्रि० प्र०—में पड़ना।

चकरसी–संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत बड़ा पेड़ जो पूरबी बंगाल आसाम और चटगाँव में होता है। इसके हीर की चमकीली और मज़बूत लकड़ी, मेज़, कुरसी आदि सामान बनाने के काम में आती है। इसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है।

चकरा†–संज्ञा पुं० [सं० चक्र] पानी का भँवर।
वि० [स्त्री० चौड़ी] चौड़ा। विस्तृत। उ०—सौ योजन विस्तार कनकपुरि चकरी जोजन बीस।—सूर।

चकराना–क्रि० अ० [सं० चक्र] (१) (सिर का) चक्कर खाना। (सिर) घूमना। उ०—देखते ही मेरा सिर चकराने लगा। (२) भ्रांत होना। चकित होना। भूलना। उ०—वहाँ जाते ही तुम्हारी बुद्धि चकरा जायगी। (३) आश्चर्य से इधर उधर ताकना। चकपकाना। चकित होना। हैरान होना। घबड़ाना।
क्रि० स० आश्चर्य में डालना। चकित करना। हैरान करना।

चकरानी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चाकर] दासी। सेवकिनी। टहलुई।

चकरिया‡–संज्ञा पुं० [फ़ा० चाकरी + हा (प्रत्य०)] चाकरी करनेवाला। नौकर। सेवक। टहलुवा।

चकरिहा‡–संज्ञा पुं० दे० "चकरिया"।

चकरी–संज्ञा स्त्री० [सं० चक्री] (१) चक्की। (२) चक्की का पाट। उ०—जँतइत के धन हेरिनि ललइच कोदइत के मन दौरा हो। दुइ चकरी जिन दरन पसारहु तब पैहौ ठिक ठौरा हो।—कबीर। (३) चकई नाम का लड़कों का खिलौना। उ०—बोलि लिये सब सखा संग के खेलत स्याम नंद की पौरी। तैसेइ हरि तैसेइ सब बालक कर भौंरा चकरीन की जोरी।—सूर।
वि० चक्की के समान इधर उधर घूमनेवाला। भ्रमित। अस्थिर। चंचल। उ०—हमारे हरि हारिल की लकरी। मन क्रम बचन नंद नंदन उर यह दृढ़ करि पकरी। जागत सोवत स्वप्न दिवस निसि 'कान्ह कान्ह' जक री। सुनत हिये लागत हमैं ऐसो ज्यों करुई कँकरी। सु तौ व्याधि हमकों लै आए देखी सुनी न करी। यह तौ सूर तिन्हैं लै सौंपौ जिनके मन चकरी।—सूर।
वि० स्त्री० चौड़ी। दे० "चकरा"।

चकरीगिरह–संज्ञा स्त्री० [जहाजी] बेंवड़े में लगी हुई रस्सी की गाँठ जो उसे रोक रखती है। (लश०)

चकल–संज्ञा पुं० [हिं० चका] (१) किसी पौधे को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाने के लिये मिट्टी समेत उखाड़ने की क्रिया।

(२) वह मिट्टी की पींड़ी जो पौधे को दूसरी जगह लगाने के लिये उखाड़ते समय जड़ के आस पास लगी रहती है।

क्रि० प्र०—उठाना।

चकलई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चकला] चौड़ाई।

चकला–संज्ञा पुं० [सं० चक्र, हिं० चक+ला (प्रत्य०)] (१) पत्थर या काठ का गोल पाटा जिस पर रोटी बेली जाती है। चौका। (२) चक्की। (३) देश का एक विभाग जिसमें कई गांव या नगर होते हैं। इलाक़ा। ज़िला।

यौ०—चकलेदार। चकलाबंदी।

(४) व्यभिचारिणी स्त्रियों का अड्डा। कसबीख़ाना। रंडियों के रहने का घर या महल्ला।

वि० [स्त्री० चकली] चौड़ा।

चकलाना–क्रि० स० [हिं० चकल] किसी पौधे को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाने के लिये मिट्टी समेत उखाड़ना। चकल उठाना।

क्रि० स० [हिं० चकला] चौड़ा करना।

चकली–संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र, हिं० चक] (१) घिरनी। गड़ारी। (२) छोटा चकला या चौका जिस पर चंदन घिसते हैं। होरसा।

वि० स्त्री० चौड़ी।

चकलेदार–संज्ञा पुं० [देश०] किसी प्रदेश का शासक वा कर संग्रह करनेवाला। किसी सूबे का हाकिम वा मालगुज़ारी वसूल करनेवाला।

विशेष—अवध में नवाब की ओर से जो कर्मचारी मालगुज़ारी वसूल करने के लिये नियुक्त होते थे वे चकलेदार कहलाते थे।

चकवँड़–संज्ञा पुं० [सं० चक्रमर्द] एक हाथ से डेढ़ दो हाथ तक ऊँचा एक पौधा जिसकी पत्तियाँ डंठल की ओर नुकीली और सिरे की ओर गोलाई लिए हुए चौड़ी होती हैं। पीले रंग के छोटे छोटे फूलों के झड़ जाने पर इसमें पतली लंबी फलियाँ लगती हैं। फलियों के भीतर उरद के दाने के ऐसे बीज होते हैं जो खाने में बहुत कड़ुए होते हैं। इसकी पत्ती, जड़, छाल, बीज सब औषध के काम में आते हैं। वैद्यक में यह पित्त-वात-नाशक, हृदय को हितकारी तथा श्वास, कुष्ट, दाद, खुजली आदि को दूर करनेवाला माना जाता है। पमार। पवाड़।

संज्ञा पुं० [सं० चक्र=चाक+ भांड] कुम्हारों का वह बरतन जो पानी से भरा हुआ चाक के पास रखा रहता है। पानी हाथ में लगा कर चाक पर चढ़े हुए बरतन के लोंदे को चिकना करते हैं।

चकवा–संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाक] [स्त्री० चकई] एक पक्षी जो जाड़े में नदियों और बड़े जलाशयों के किनारे दिखाई देता है और बैसाख तक रहता है। अधिक गरमी पड़ते ही यह भारतवर्ष से चला जाता है। यह दक्षिण को छोड़ और सारे भारतवर्ष में पाया जाता है। यह पक्षी प्रायः झुंड में रहता है। यह हंस की जाति का पक्षी है। इसकी लंबाई हाथ भर तक होती है। इसके शरीर पर कई भिन्न भिन्न रंगों का मेल दिखाई पड़ता है। पीठ और छाती का रंग पीला तथा पीछे की ओर का खैरा होता है। किसी किसी के बीच बीच में काली और लाल धारियाँ भी होती हैं। पूँछ का रंग कुछ हरापन लिए होता है। कहीं कहीं इन रंगों में भेद भी होता है। डैनों पर कई रंगों का गहरा मेल दिखाई पड़ता है। यह अपने जोड़े से बहुत प्रेम रखता है। बहुत काल से इस देश में ऐसा प्रसिद्ध है कि रात्रि के समय वह अपने जोड़े से अलग रहता है। कवियों ने इसके रात्रिकाल के इस वियोग पर अनेक उक्तियाँ बांधी हैं। इस पक्षी को सुरख़ाब भी कहते हैं। उ०—चकवा चकई दो जने, इन मत मारो कोय। ये मारे करतार के, रैन बिछोहा होय।

संज्ञा पुं० [सं० चक्र] (१) हाथ से कुछ बढ़ाई हुई आटे की लोई। (२) जुलाहों की चरखी तथा नटाई में लगी हुई बांस की छड़ी।

संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो मध्यप्रदेश, दक्षिण भारत तथा चटगांव की ओर बहुत मिलता है। इसके हीर की लकड़ी बहुत मज़बूत और छाल कुछ स्याही लिए सफ़ेद वा भूरी होती है। इसके पत्ते चमड़ा सिझाने के काम में आते हैं।

चकवाना*†–क्रि० [देश०] चकपकाना। हैरान होना। चकित होना। उ०—मुखचंद की देखि प्रभा दिन में चकवा चकई चकवाने रहैं।—देव।

चकवाह*–संज्ञा पुं० दे० "चकवा"।

चकवी–संज्ञा स्त्री० दे० "चकई", "चकवा"।

चकसेनी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] काकजंघा।

चकहा†*–संज्ञा पुं० [सं० चक्र] पहिया। चक्का। उ०—महा उतंग मनि जोतिन के संग आनि कैयो रंग चकहा गहत रवि रथ के।—भूषण।

चकाँडू–संज्ञा पुं० [हिं०] चकैया आँडू। चिपटा आँडू।

चका†*–संज्ञा पुं० [सं० चक्र] पहिया। चक्का। चाक। उ०—बदन बहल कुंडल चका भौंह जुवा हय नैन। फेरत चित मैदान मैं बहलवान वह मैन।—रसनिधि।

चकाकेवल–संज्ञा स्त्री० [हिं० चक वा चक्का] काले रंग की मिट्टी जो सूखने पर चिटक जाती और पानी पड़ने से लसदार होती है। यह कठिनता से जोती जाती है।

चकाचक–संज्ञा स्त्री० [अनु०] तलवार आदि के लगातार शरीर पर पड़ने का शब्द।

वि० तर। तराबोर। लथपथ। डूबा हुआ। जैसे घी में चकाचक।

क्रि० वि० [सं० चक = तृप्त होना] खूब। भरपूर। अघा कर। पेट भर। उ०—आज उनकी चकाचक छनी है।

चकाचौंध—संज्ञा स्त्री० [सं० चक् = चमकना + चौ = चारों ओर + अंध] अत्यंत अधिक चमक वा प्रकाश के सामने आँखों की झपक। अत्यंत प्रखर प्रकाश के कारण दृष्टि की अस्थिरता। कड़ी रोशनी के सामने नज़र का न ठहरना। तिलमिलाहट। तिलमिली।

क्रि० प्र०—लगना।—होना।

चकाचौंधी—संज्ञा स्त्री० दे० "चकाचौंध"।

चकातरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम।

चकाना*—क्रि० अ० सं० चक = भ्रांत] चकपकाना। चकराना। अचंभे से ठिठक जाना। हैरान होना। घबराना। उ०—(क) रही कहाँ चकआइ चित चल पिय सादर देख। लोहा कंचन होत तहँ पारस परस बिसेख।—रसनिधि] (ख) दुराधर्ष हर्षी दोऊ युद्ध ठाने। लखैं राचसै बानरौ ते चकाने।—रघुराज।

चकाबू—संज्ञा पुं० [सं० चक्रव्यूह] प्राचीन काल में युद्ध के समय किसी व्यक्ति वा वस्तु की रक्षा के लिये उसके चारों ओर एक के पीछे एक कई मंडलाकार पंक्तियों में सैनिकों की स्थिति।

विशेष—इसकी रचना ऐसी चक्करदार होती थी कि इसके भीतर मार्ग पाना बड़ा कठिन होता था। यह एक प्रकार की भूलभुलैयाँ थी। दे० "चक्रव्यूह"।

मुहा०—चकाबू में पड़ना वा फँसना = फेर में पड़ना। चक्कर में पड़ना। ऐसी स्थिति में होना जिसमें कर्त्तव्य न सूझ पड़े।

चकार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वर्णमाला में छठा व्यंजन वर्ण। (२) दुःख वा सहानुभूति सूचक शब्द। उ०—वह वहीं खड़ा सब देखता था पर उसके मुँह से चकार तक न निकला।

चकावल—संज्ञा स्त्री० [देश०] घोड़ों के अगले पैर में गामचे की हड्डी का उभार।

चकित—वि० [सं०] (१) चकपकाया। विस्मित। आश्चर्यान्वित। दंग। हक्काबक्का। भौचक्का। भ्रांत। (२) हैरान। घबराया हुआ। उ०—(क) अजित रूप ह्वै शैल धरो हरि जलनिधि मथिबे काज। सुर अरु असुर चकित भए देखे किये भक्त के काज।—सूर। (ख) लछिमन दीख उमाकृत वेषा। चकित भए भ्रम हृदय विशेषा।—तुलसी। (ग) जागै बुध विद्या हित पंडित चकित चित जागै लोभी लालची धरनि धन धाम के।—तुलसी। (३) चौकन्ना। सशंकित। डरा हुआ। (४) डरपोक। कायर।

संज्ञा पुं० (१) विस्मय। (२) आशंका। व्यर्थ भय। (३) कायरता।

चकितवंत*—वि० [सं० चकित + वत् (प्रत्य०)] आश्चर्ययुक्त। विस्मित। भ्रांत। उ०—अब अति चकितवंत मन मेरो। आयो हौं निर्गुन उपदेसन भयों सगुन को चेरो।—सूर।

चकिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में गणों का क्रम इस प्रकार होता है—ऽ।। ।।ऽ ऽऽऽ ऽऽ। ।।। ऽ उ०—भो सुमति ! न गोविंदा जानो निपट नरा। देखति जिन गोपि ग्वाल के जो गिरिहिं धरा।

चकुंदा†—संज्ञा पुं० [सं० चक्रमर्द] चकवड़। पमाड़। दे० "चकवड़"।

चकुरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] छोटी हाँड़ी।

चकुला†*—संज्ञा पुं० [देश०] चेंटुवा। चिड़िया का बच्चा। उ०—अंडन के मनो मंडल मध्य तें ह्वै निकसे चकुला चकवा के।—गंग।

चकुलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रकुल्या] एक प्रकार का पौधा वा झाड़ी।

चकृत*—वि० दे० "चकित"।

चकेठ—संज्ञा पुं० [सं० चक्र + यष्टि] बाँस वा लकड़ी का एक नोकदार डंडा जिससे कुम्हार अपना चाक घुमाते हैं। कुलालदंड।

चकोटना—क्रि० स० [हिं० चिकोटी] चुटकी से मांस नोचना। चुटकी काटना। उ०—चंचल चपेट चोट चरन चकोटि चाहै हहरानी फौज भहरानी जातुधान की।—तुलसी।

चकोतरा—संज्ञा पुं० [सं० चक्र = गोला] एक प्रकार का बड़ा जँबीरी नीबू जिसका स्वाद खट्टापन लिए मीठा होता है। इसकी फाँकों का रंग हलका सुनहला होता है। यह फल जाड़े के दिनों में मिलता है। बड़ा नीबू। महानीबू। सदाफल। सुगंधा। मातुलंग। मधुकर्कटी।

चकोता—संज्ञा पुं० [हिं० चकत्ता] एक रोग जिसमें घुटने के नीचे छोटी छोटी फुंसियाँ निकलती हैं और बढ़ती चली जाती हैं।

चकोर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चकोरी] (१) एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी तीतर जो नैपाल, नैनीताल आदि स्थानों तथा पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान के पहाड़ी जंगलों में बहुत मिलता है। इसके ऊपर का रंग काला होता है जिस पर सफ़ेद सफ़ेद चित्तियाँ होती हैं। पेट का रंग कुछ सफ़ेदी लिए होता है चोंच और आँखें इसकी बहुत लाल होती हैं। यह पक्षी झुंडों में रहता है और बैसाख जेठ में बारह बारह अंडे देता है। भारतवर्ष में बहुत काल से प्रसिद्ध है कि यह चंद्रमा का बड़ा भारी प्रेमी है और उसकी ओर एकटक देखा करता है, यहाँ तक कि वह आग की चिनगारियों को चंद्रमा की किरनें समझ कर खा जाता है। कवि लोगों ने इस प्रेम का उल्लेख अपनी उक्तियों में बराबर किया है। लोग इसे पिंजरे में पालते भी हैं। उ०—(क) नयन रात निसि मारग जागे। चख चकोर जानहुँ ससि लागे।—जायसी। (ख) सरद ससिहिं जनु चितव चकोरी।—तुलसी। (२) एक वर्ण वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण, एक गुरु और एक लघु होता है। यह यथार्थ में एक प्रकार का

सवैया है। उ०—भासत ग्वाल सखीगन में हरि राजत तारन में जिमि चंद।

चकोरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा चकोर।

चकोह†-संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाह] प्रवाह में घूमता हुआ पानी। भँवर।

चकौंड़†-संज्ञा पुं० दे० "चकवड़"।

चकौंध*-संज्ञा स्त्री० दे० "चकाचौंध"। उ०—सेस सीस मनि चमक चकौंधन तनिकहु नहिँ सकुचाहीँ।—हरिश्चंद्र।

चकौटा-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का लगान जो बीघे के हिसाब से नहीँ होता। (२) वह पशु जो ऋण के बदले में दिया जाय। इसे 'मुलवन' कहते हैं।

चक्क-संज्ञा पुं० [सं०] पीड़ा। दर्द।

*संज्ञा पुं० [सं० चक्र] (१) चक्रवाक। चकवा। (२) कुम्हार का चाक। (३) दिशा। प्रांत। उ०—(क) पैज प्रतिपाल भूमिभार को हमाल चहुँ चक्क को अमाल भयो दंडक जहान को।—भूषण। (ख) भूषन भनत वह चहूँ चक्क चाहि कियो पातसाहि चक्क ताकि छाती माँहिँ छेवा है।—भूषण।

चक्कर-संज्ञा पुं० [सं० चक्र] (१) पहिये के आकार की कोई (विशेषतः घूमनेवाली) बड़ी गोल वस्तु। मंडलाकार पटल। चाक। उ०—उस मशीन में एक बड़ा चक्कर है जो बराबर घूमता रहता है। (२) गोल वा मंडलाकार घेरा। वृत्ताकार परिधि। मंडल। (३) मंडलाकार मार्ग। गोल सड़क वा रास्ता। घुमाव का रास्ता। उ०—उस बगीचे में जो चक्कर है उसके किनारे किनारे बड़ी सुंदर घास लगी है। (४) मंडलाकार गति। परिक्रमण। फेरा। (५) पहिये के ऐसा भ्रमण। अक्ष पर घूमना।

मुहा०—चक्कर काटना = वृत्ताकार परिधि में घूमना। परिक्रमा करना। मँडराना। चक्कर खाना = (१) पहिये की तरह घूमना। अक्ष पर घूमना। (२) घुमाव फिराव के साथ जाना। सीधे न जाकर टेढ़े मेढ़े जाना। उ०—(क) उतना चक्कर कौन खाय, इसी बगीचे से निकल चलो। (ख) यह रास्ता बहुत चक्कर खा कर गया है। (३) भटकना। भ्रांत होना। हैरान होना। उ०—घंटों से चक्कर खा रहे हैं, यह सवाल नहीं आता है। चक्कर देना = (१) मंडल बाँध कर घूमना। परिक्रमा करना। मँडराना। (२) दे० "चक्कर खाना (२)"। चक्कर पड़ना = जाने के लिये सीधा न पड़ना। घुमाव वा फेर पड़ना। उ०—उधर से क्यों जाते हो, बड़ा चक्कर पड़ेगा। चक्कर बाँधना = मंडलाकार मार्ग बनाना। वृत्त बनाते हुए घूमना। चक्कर मारना = (१) पहिये की तरह अक्ष पर घूमना। (२) वृत्ताकार परिधि में घूमना। परिक्रमा करना। (३) चारों ओर घूमना। इधर उधर फिरना। उ०—दिन भर तो चक्कर मारते ही रहते हो, थोड़ा बैठ जाओ। चक्कर में आना = चकित होना। भ्रांत होना। हैरान होना। दंग रह जाना। उ०—सब लोग उनकी अद्भुत वीरता देख चक्कर में आ गये। चक्कर में डालना = (१) चकित करना। हैरान करना। (२) कठिनता वा असमंजस में डालना। फेर में डालना। ऐसी स्थिति में करना जिसमें यह न सूझ पड़े कि क्या करना चाहिए। हैरान करना। चक्कर में पड़ना = (१) असमंजस में पड़ना। दुबधे में पड़ना। कठिन स्थिति में पड़ना। (२) हैरान होना। माथा खपाना। चक्कर लगाना = (१) परिक्रमा करना। मँडराना। (२) चारों ओर घूमना। इधर उधर फिरना। फेरा लगाना। आना जाना। घूमना फिरना। उ०—(क) हम बड़ी दूर का चक्कर लगा कर आ रहे हैं। (ख) तुम इनके यहाँ नित्य एक चक्कर लगा जाया करो।

(६) घुमाव। पेँच। जटिलता। दुरूहता। फेरफार। उ०—यह बड़े चक्कर का सवाल है।

मुहा०—किसी के चक्कर में आना या पड़ना = किसी के धोखे में आना या पड़ना। भुलावे में आना।

(७) सिर घूमना। घुमरी। घुमटा। बेहोशी। मूर्छा।

क्रि० प्र०—आना।

(८) पानी का भँवर। जंजाल। (९) चक्र नामक अस्त्र।

मुहा०—चक्कर पड़ना = वज्रपात होना। विपत्ति आना। (स्त्री०)।

(१०) कुश्ती का एक पेंच जिसमें अपने दोनों हाथ पेट में घुसे हुए विपक्षी के दोनों मोढ़ों पर रख कर उसकी पीठ अपने सामने कर लेते हैं और फिर टाँग मार कर उसे चित कर देते हैं।

चक्कवइ*-वि० [सं० चक्रवर्ती] चक्रवर्ती (राजा)। सार्वभौम (राजा)। उ०—ससुर चक्कवइ कोसल राऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ।—तुलसी।

चक्कवत*-संज्ञा पुं० [सं० चक्रवत्] चक्रवर्ती राजा।

चक्कवा*-संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाक] चकवा। चक्रवाक। उ०—रघुवर कीरति सज्जननि सीतल खलनि सु ताति। ज्यों चकोर चय चक्कवनि तुलसी चंदिनि राति।—तुलसी।

चक्कवै*-वि० [सं० चक्रवर्ती, प्रा० चक्कवत्ती, चक्कवइ] चक्रवर्त्ती (राजा)। आसमुद्रांत पृथ्वी का राजा।

चक्कस-संज्ञा पुं० [फ़ा० चकस] बुलबुल, बाज़ आदि पक्षियों के बैठने का अड्डा।

चक्का-संज्ञा पुं० [सं० चक्र, प्र० चक्क] (१) पहिया। चाका। (२) पहिये के आकार की कोई गोल वस्तु। (३) बड़ा चिपटा टुकड़ा। बड़ा कतरा। जैसे, मिट्टी का चक्का, खली का चक्का। (४) जमा हुआ कतरा। अँथरी। अंठी। थक्का। जैसे, चक्का दही। (५) ईंटों या पत्थरों का ढेर जो माप वा गिनती के लिये क्रम से लगाया गया हो।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

चक्की—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्री, प्र० चक्की] (१) नीचे ऊपर रखी हुई पत्थर के दो गोल और भारी पहियों का बना हुआ यंत्र जिसमें आटा पीसा जाता है या दाना दला जाता है । आटा पीसने या दाल दलने का यंत्र । जाँता ।

यौ०—पनचक्की ।

क्रि० प्र०—चलना ।—चलाना ।

मुहा०—चक्की का पाट = चक्की का एक पत्थर । चक्की की मानी = (१) चक्की के नीचे के पाट के बीच में गड़ी हुई वह खूँटी जिस पर ऊपर का पाट घूमता है । (२) ध्रुव । ध्रुव तारा । चक्की छूना = (१) चक्की में हाथ लगाना । चक्की चलाना आरंभ करना । चक्की चलाना । (२) अपना चरखा शुरू करना । अपना वृत्तांत आरंभ करना । अपनी कथा छेड़ना । बीती सुनाना । चक्की पीसना = (१) चक्की में डाल कर गेहूँ आदि पीसना । चक्की चलाना । (२) कड़ा परिश्रम करना । बड़ा कष्ट उठाना । चक्की रहाना = चक्की को टाँकी से खोद खोद कर खुरदरा करना जिसमें दाना अच्छी तरह पिसे । चक्की कूटना ।

(२) [सं० चक्रिका] पैर के घुटने की गोल हड्डी । (३) ऊँटों के शरीर पर का गोल घट्टा ।*† चाकी । बिजली । बज्र ।

चक्कीरहा—संज्ञा पुं० [हिं० चक्की + रहाना] चक्की को टाँकी से कूट कर खुरदरी करनेवाला ।

चक्कू†—संज्ञा पुं० दे० "चाकू" ।

चक्खी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चाट । स्वाद के लिये चरपरी खाने की चीज़ । (२) बटेरों की चुगाई ।

चक्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहिया । चाका । (२) कुम्हार का चाक । (३) चक्की । जाँता । (४) तेल पेरने का कोल्हू । (५) पहिये के आकार की कोई गोल वस्तु । (६) लोहे के एक अस्त्र का नाम जो पहिये के आकार का होता है ।

विशेष—इसकी परिधि की धार बड़ी तीक्ष्ण होती है । शुक्र-नीति के अनुसार चक्र तीन प्रकार का होता है, उत्तम, मध्यम और अधम । जिसमें आठ आर (आरे) हों वह उत्तम, जिसमें छः हों वह मध्यम, जिसमें चार हों वह अधम है । इसके अतिरिक्त तौल का भी हिसाब है । विस्तार भेद से १६ अंगुल का चक्र उत्तम माना गया है । प्राचीन काल में यह युद्ध के अवसर पर नचा कर फेंका जाता था । यह विष्णु भगवान् का विशेष अस्त्र माना जाता है । आज कल भी गुरु गोविंद-सिंह के अनुयायी सिख अपने सिर के बालों में एक प्रकार का चक्र लपेटे रहते हैं ।

मुहा०—चक्र गिरना वा पड़ना = वज्रपात होना । विपत्ति आना ।

(७) पानी का भँवर । (८) वातचक्र । बवंडर । (९) समूह । समुदाय । मंडली । (१०) दल । झुंड । सेना । (११) एक प्रकार का व्यूह वा सेना की स्थिति । दे० "चक्रव्यूह" । (१२) ग्रामों या नगरों का समूह । मंडल । प्रदेश । राज्य । (१३) एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक फैला हुआ प्रदेश । आसमुद्रांत भूमि ।

यौ०—चक्रवर्त्ती ।

(१४) चक्रवाक पक्षी । चकवा । (१५) तगर का फूल । गुलचाँदनी । (१६) योग के अनुसार मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर आदि शरीरस्थ ६ पद्म । (१७) मंडलाकार घेरा । वृत्त । जैसे, राशिचक्र । (१८) रेखाओं से घिरे हुए गोल वा चौखूँटे खाने जिनमें अंक, अक्षर, शब्द आदि लिखे हों । जैसे, कुंडली चक्र ।

विशेष—तंत्र में मंत्रों के उद्धार तथा शुभाशुभ विचार के लिये अनेक प्रकार के चक्रों का व्यवहार होता है जैसे, अकडम चक्र, अकथ चक्र, कुलाल चक्र । रुद्रयामल आदि तंत्र-ग्रंथों में महाचक्र, राजचक्र, दिव्यचक्र आदि अनेक चक्रों का उल्लेख है । मंत्र के उद्धार के लिये जो चक्र बनाए जाते हैं उन्हें यंत्र कहते हैं ।

(१९) हाथ की हथेली वा पैर के तलवे में घूमी हुई महीन महीन रेखाओं का चिह्न जिनसे सामुद्रिक में अनेक प्रकार के शुभाशुभ फल निकाले जाते हैं । (२०) फेरा । भ्रमण । घुमाव । चक्कर । उ०—कालचक्र के प्रभाव से सब बातें बदला करती हैं । (२१) दिशा । प्रांत । उ०— कहै पदमाकर चहाँ तो चहूँ चक्रन को चीरि डारौं पल में पलैया पैज पन हौं ।—पद्माकर । (२२) एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक भगण, तीन नगण और फिर लघु, गुरु होते हैं । उ०—भौननि लगत न कतहुँ ठिकनवाँ । राम विमुख रहि सुख मिल कहवाँ । (२३) धोखा । भुलावा । जाल । फ़रेब ।

यौ०—चक्रधर = बाजीगर ।

चक्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नव्य न्याय में एक तर्क । (२) एक प्रकार का सर्प ।

चक्रकारक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नखी नामक गंधद्रव्य । (२) हाथ का नाखून ।

चक्रकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रपर्णी लता । पिठवन ।

चक्रगज—संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड़ ।

चक्रगुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष ।

चक्रगोप्ता—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेनापति । (२) राज्यरक्षक । (३) वह कर्म्मचारी वा योद्धा जो रथ, चक्र आदि की रक्षा करे ।

चक्रचर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेली । (२) कुम्हार ।

चक्रजीवक—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हार ।

चक्रताल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चौताला ताल

जिसमें तीन लघु, लघु की एक मात्रा, एक गुरु और गुरु की दो मात्राएँ होती हैं। इसका बोल यह है—ताहं । धिमि धिमि । तकितां । धिधिगन थों । (२) एक प्रकार का चौदह-ताला ताल जिसमें क्रम से चार द्रुत, द्रुत की आधी मात्रा, एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक द्रुत, द्रुत की आधी मात्रा, एक लघु और लघु की आधी मात्रा होती है। इसका बोल यह है—जग० जग० नक० थै० ताथै। थरि० कुकु० धिमि० दांथै। दां० दां० धिधिकिट। धिधि० गनथा।

चक्रतीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दक्षिण में वह तीर्थ स्थान जहाँ ऋष्यमूक पर्वतों के बीच तुंगभद्रा नदी घूम कर बहती है । उ०—चक्रतीर्थ महँ परम प्रकासी। बसैं सुदर्सन प्रभु छवि रासी।—रघुराज। (२) नैमिषारण्य का एक कुंड।

विशेष—महाभारत तथा पुराणों में अनेक चक्रतीर्थों का उल्लेख है। काशी, कामरूप, नर्मदा, श्रीक्षेत्र, सेतुबंध, रामेश्वर आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थों में एक एक चक्रतीर्थ का वर्णन है। स्कंदपुराण में प्रभास क्षेत्र के अंतर्गत चक्रतीर्थ का बड़ा माहात्म्य लिखा है। उसमें लिखा है कि एक बार विष्णु ने बहुत से असुरों का संहार किया जिससे उनका चक्र रक्त से रँग उठा। उसे धोने के लिये विष्णु ने तीर्थों का आह्वान किया। इस पर कई कोटि तीर्थ वहाँ आ उपस्थित हुए और विष्णु की आज्ञा से वहीं स्थित हो गए।

चक्रतुंड–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसका मुँह गोल होता है।

चक्रदंड–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की कसरत जिसमें ज़मीन पर दंड करके झट दोनों पैर समेट लेते हैं और फिर दहने पैर को दहनी ओर और बाएँ को बाईं ओर चक्कर देते हुए पेट के पास लाते हैं।

चक्रदंती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दंती वृक्ष। (२) जमालगोटा।

चक्रदंष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] सूअर।

चक्रधर–वि० [सं०] जो चक्र धारण करे।

संज्ञा पुं० (१) वह जो चक्र को धारण करे। (२) विष्णु भगवान। (३) श्रीकृष्ण। (४) बाज़ीगर। इंद्रजाल करनेवाला। (५) कई ग्रामों या नगरों का अधिपति। (६) सर्प। साँप। (७) गाँव का पुरोहित। (८) नट राग से मिलता जुलता षाडव जाति का एक प्रकार का राग जो षड़ज स्वर से आरंभ होता है और जिसमें पंचम स्वर नहीं लगता। यह संध्या समय गाया जाता है।

चक्रधारी–संज्ञा पुं० दे० "चक्रधर"।

चक्रनख–संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्रनख नामक ओषधि। बघनहाँ।

चक्रनदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडकी नदी।

चक्रनाम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) माक्षिक धातु। सोनामक्खी। (२) चकवा पक्षी।

चक्रनायक–संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्रनख नाम की ओषधि।

चक्रपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन।

चक्रपाणि–संज्ञा पुं० [सं०] (हाथ में चक्र धारण करनेवाले) विष्णु।

चक्रपाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी। रथ। (२) हाथी।

चक्रपानि*–संज्ञा पुं० दे० "चक्रपाणि"।

चक्रपाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी प्रदेश का शासक। सूबेदार। चकलेदार। (२) वह जो चक्र धारण करे। (३) वृत्त। गोलाई। (४) शुद्ध राग का एक भेद।

चक्रपूजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक विधि।

चक्रफल–संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र जिसमें गोल फल लगा रहता है।

चक्रबंध–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चित्र काव्य जिसमें एक चक्र वा पहिये के चित्र के भीतर पद्य के अक्षर बैठाए जाते हैं।

चक्रबंधु–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

चक्रबांधव–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य। (सूर्य्य के प्रकाश में चकवा चकई एक साथ रहते हैं।)

चक्रभृत्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो चक्र धारण करे। (२) विष्णु।

चक्रभेदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] रात। रात्रि। (रात में चकवा चकई का जोड़ा अलग हो जाता है।)

चक्रभोग–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में ग्रह की वह गति जिसके अनुसार वह एक स्थान से चल कर फिर उसी स्थान पर प्राप्त होता है। इसे परिवर्त भी कहते हैं।

चक्रभ्रमर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य।

चक्रमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य जिसमें नाचनेवाला चक्र की तरह घूमता है। इस प्रकार के नृत्य में शरीर के प्रायः सब अंगों का संचालन होता है।

चक्रमंडली–संज्ञा पुं० [सं०] अजगर साँप।

चक्रमर्द–संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड़।

चक्रमीमांसा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैष्णवों की चक्र मुद्रा धारण करने की विधि। (२) विजयेंद्र स्वामी रचित एक ग्रंथ जिसमें चक्र मुद्रा धारण की विधि आदि लिखी है।

चक्रमुख–संज्ञा पुं० [सं०] सूअर।

चक्रमुद्रा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चक्र आदि विष्णु के आयुधों के चिह्न जो वैष्णव अपने बाहु तथा और अंगों पर छपाते हैं।

चक्र मुद्रा दो प्रकार की होती है, तप्त मुद्रा और शीतल मुद्रा। जो चिह्न आग में तपे हुए चक्र आदि के ठप्पों से शरीर पर दागे जाते हैं उन्हें तप्त मुद्रा कहते हैं। जो चंदन आदि से शरीर पर छापे जाते हैं उन्हें शीतल मुद्रा कहते हैं। तप्त मुद्रा का प्रचार रामानुज संप्रदाय के वैष्णवों में विशेष है। तप्तमुद्रा द्वारका में ली जाती है। उ०—मूँड़े मूँड़, कंठ वनमाला मुद्राचक्र दिए। सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिए।—सूर। (२) तांत्रिकों की एक अंग-मुद्रा जो पूजन के समय की जाती है। इसमें दोनों हाथों को सामने खूब फैला कर मिलाते और अंगूठे को कनिष्ठा उँगली पर रखते हैं।

चक्रयंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक यंत्र।

चक्ररिष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बक। बगला।

चक्रलक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरुच। गुडूची।

चक्रलिप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में राशिचक्र का कलात्मक भाग अर्थात् २१६०० भागों में से एक भाग।

चक्रवर्ती—वि० [सं० चक्रवर्तिन्] [स्त्री० चक्रवर्त्तिनी] आसमुद्रांत भूमि पर राज्य करनेवाला। सार्वभौम।

संज्ञा पुं० (१) एक चक्र का अधीश्वर। एक समुद्र से लेकर दूसरे समुद्र तक की पृथ्वी का राजा। आसमुद्रांत भूमि का राजा। उ०—चक्रवर्त्ति के लक्षण तोरे। देखत दया लागि अति मोरे।—तुलसी। (२) किसी दल का अधिपति। समूह का नायक। (३) बथुआ। वास्तुक नामक शाक।

चक्रवर्त्तिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी दल वा समूह की अधीश्वरी। (२) जनी नामक गंध-द्रव्य। पानड़ी।

चक्रवाक—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री० चक्रवाकी] चकवा पक्षी।

यौ०—चक्रवाकबंधु = सूर्य।

चक्रवाड़—संज्ञा पुं० दे० "चक्रवाल"।

चक्रवात—संज्ञा पुं० [सं०] बवंडर। वेग से चक्कर खाती हुई वायु। वातचक्र। उ०—तृणावर्त्त विपरीति महाखल सो नृप राय पठायो। चक्रवात ह्वै सकल घोष मैं रज धुंधर ह्वै छायो।—सूर।

चक्रवान्—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौराणिक पर्वत का नाम जो चौथे समुद्र के बीच स्थित माना गया है। यहाँ विष्णु-भगवान् ने हयग्रीव और पंचजन नामक दैत्यों को मार कर चक्र और शंख दो आयुध प्राप्त किये थे।

चक्रवाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पुराण-प्रसिद्ध पर्वत जो भूमंडल के चारों ओर स्थित तथा प्रकाश और अंधकार (दिन रात) का विभाग करनेवाला माना गया है। लोकालोक पर्वत। (२) मंडल। घेरा।

चक्रविरति—संज्ञा स्त्री० दे० "चक्रवृत्ति"।

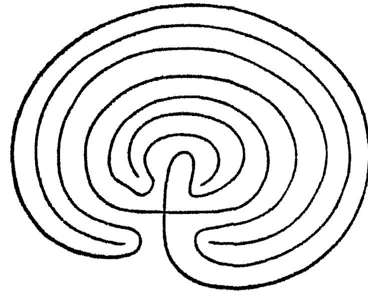
चक्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्ति का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक भगण तीन नगण और अंत में लघु गुरु होते हैं।

चक्रवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का सूद वा ब्याज जिसमें उत्तरोत्तर ब्याज पर भी ब्याज लगता जाता है। सूद दर सूद।

विशेष—मनु ने इसे अत्यंत निंदनीय ठहराया है।

(२) गाड़ी आदि का भाड़ा।

चक्रव्यूह—संज्ञा पुं० [सं] प्राचीन काल में युद्ध के समय किसी व्यक्ति वा वस्तु की रक्षा के लिये उसके चारों ओर कई घेरों में सेना की कुंडलाकार स्थिति। इसकी रचना इतनी चक्करदार होती थी कि इसके भीतर प्रवेश करना अत्यंत कठिन होता था। महाभारत में द्रोणाचार्य्य ने यह व्यूह रचा था जिसमें अभिमन्यु मारे गए थे। इसका आकार इस प्रकार का माना जाता है।



चक्रशल्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद घुँघची। (२) काकतुंडी।

चक्रशृंगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजशृंगी। मेढ़ासींगी।

चक्रसंज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वंग धातु। राँगा। (२) चकवा पक्षी।

चक्रसंवर—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

चक्रांक—संज्ञा पुं० [सं०] चक्र का चिह्न जो वैष्णव अपने बाहु आदि पर दगवाते हैं।

चक्रांकित वि० [सं०] जिसने चक्र का चिह्न दगवाया हो। जिसने चक्र का छाप लिया हो।

संज्ञा पुं० वैष्णवों का एक संप्रदाय भेद। इस संप्रदाय के लोग चक्र का चिह्न दगवाते हैं।

चक्रांग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चकवा। (२) रथ या गाड़ी। (३) हंस। (४) कुटकी नाम की ओषधि। (५) एक प्रकार का शाक। हिलमोचिका।

चक्रांगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकड़ासिंगी। (२) सुदर्शना लता।

चक्रांगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुटकी। (२) हंसिनी। मादा हंस

(३) एक प्रकार का शाक। हुल हुल। हुर हुर। हिलमोचिका। (४) मजीठ। (५) काकड़ासिंगी। (६) वृषपर्णी। मूसाकरनी।

चक्रांत–संज्ञा पुं० [सं०] किसी अनुचित कार्य्य वा किसी के अनिष्टसाधन के लिये कई मनुष्यों की गुप्त मंत्रणा। षट्चक्र। षड्यंत्र। गुप्त अभिसंधि।

चक्रांतर–संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

चक्रांश–संज्ञा पुं० [सं०] राशिचक्र का ३६० वाँ अंश।

चक्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागर मोथा। (२) काकड़ासिंगी।

चक्राकार–वि० [सं०] पहिये के आकार का। मंडलाकार। गोल।

चक्राकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसिनी। मादा हंस।

चक्राट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मदारी। साँप पकड़नेवाला। (२) साँप का विष झाड़नेवाला। (३) धूर्त्त। धोखेबाज। (४) सोने का एक सिक्का। दीनार।

चक्राथ–संज्ञा पुं० [सं०] एक कौरव योद्धा का नाम।

चक्राधिवासी–संज्ञा पुं० [सं० चक्राधिवासिन्] नारंगी।

चक्रायुध–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

चक्रावल–संज्ञा पुं० [सं० चक्रावलि] घोड़ों का एक रोग जिस में घोड़ों के पैरों में घाव हो जाता है। इससे कभी कभी वे लँगड़े भी हो जाते हैं।

चक्राह्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चकवा पक्षी। चक्रवाक। (२) चकवँड़।

चक्रिक–संज्ञा पुं० [सं०] चक्र धारण करनेवाला।

चक्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] घुटने पर की गोल हड्डी। चक्की।

चक्रित–*वि० दे० "चकित"।

चक्री–संज्ञा पुं० [सं० चक्रिन्] (१) वह जो चक्र धारण करे। (२) विष्णु। (३) ग्रामजालिक। गाँव का पंडित वा पुरोहित। (४) चक्रवाक। चकवा। (५) कुलाल। कुम्हार। (६) सर्प। (७) सूचक। गोइंदा। जासूस। मुखबिर। दूत। चर। (८) तेली। (९) बकरा। (१०) चक्रवर्त्ती। (११) चक्रमर्द्द। चकवँड़। (१२) तिनिश वृक्ष। (१३) व्याघ्रनख नाम का गंध-द्रव्य। बघनहाँ (१४) काक। कौवा। (१५) गदहा। गधा। (१६) वह जो रथ पर चढ़ा हो। रथ का सवार। (१७) चंद्रशेखर के मत से आर्य्या छंद का २२ वाँ भेद जिसमें ६ गुरु और ४५ लघु होते हैं। (१८) एक वर्णसंकर जाति जिसका उल्लेख औशनस के 'जातिविवेक' में है।

चक्रेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चक्रवर्ती। (२) तांत्रिकों के चक्र का अधिष्ठाता।

चक्रेश्वरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों की महाविद्याओं में से एक।

चक्षण–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गजक। चाट। मद्य के ऊपर खाने की वस्तु। (२) कृपादृष्टि। अनुग्रह। (३) कथन।

चक्षम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृहस्पति। (२) उपाध्याय।

चक्षुःश्रवा–संज्ञा पुं० [सं० चक्षुःश्रवस्] (जो आँख ही से सुने) साँप। सर्प।

चक्षु–संज्ञा पुं० [सं० चक्षुस्] (१) दर्शनेंद्रिय। आँख। (२) अजमीढ़ वंशी एक राजा जिसके पिता का नाम पुरुजानु और पुत्र का नाम हर्यश्व था। (विष्णुपुराण)। (३) एक नदी का नाम जिसे आज कल आक्सस वा जेहूँ कहते हैं। वेदों में इसी का नाम वंक्षुनद है। विष्णुपुराण में लिखा है कि गंगा जब ब्रह्मलोक से गिरी तब चार नदियों के रूप में चार ओर प्रवाहित हुई। जो नदी केतुमाल पर्वत के बीच से होती हुई पश्चिम सागर में जाकर मिली उसका नाम चक्षुस् हुआ।

चक्षुरिंद्रिय–संज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की इंद्रिय। आँख।

चक्षुर्दर्शनावरण–संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र में वह कर्म जिसके उदय होने से चक्षु द्वारा सामान्य बोध की लब्धि का विघात हो।

चक्षुर्वर्द्धनिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार शाकद्वीप की एक नदी।

चक्षुर्वहन–संज्ञा पुं० [सं०] अजशृंगी। मेढ़ासींगी।

चक्षुर्हन्–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्रकार का सर्प जिसके देखते ही जीव जंतुओं की आँखें फूट जाती हैं।

चक्षुष्पति–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

चक्षुष्य–वि० [सं०] (१) जो नेत्रों को हितकारी हो (ओषधि आदि)। (२) सुंदर। प्रियदर्शन। (३) नेत्रों से उत्पन्न। नेत्र संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) केतकी। केवड़ा। (२) शोभांजन। सहजन का पेड़। (३) अंजन। सुरमा। (४) खपरिया। तूतिया।

चक्षुष्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वनकुलथी। चाकसू। (२) मेढ़ासींगी। अजशृंगी।

चक्षुस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आँख। (२) आक्सस वा जेहूँ नदी जो मध्य एशिया में है।

चख*–संज्ञा पुं० [सं० चक्षुस्] आँख।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० चखिमा] झगड़ा। तकरार। कलह टंटा।

यौ०—चख चख = तकरार। बकबक। झकझक। कहा सुनी।

चखना–क्रि० स० [सं० चष] स्वाद लेना। स्वाद लेने के लिये मुँह में रखना। स्वाद वा मज़ा लेते हुए खाना

उ०—साहब का घर दूर है जैसे लँबी खजूर। चढ़ै तो चाखै प्रेम-रस गिरै तो चकनाचूर।

संयो० क्रि०—डालना।—लेना।

चखचौंधा*–संज्ञा स्त्री० दे० "चकचौंध"।

चखाचखी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चख = झगड़ा] लागडाँट। विरोध बैर।

क्रि० प्र०—चलना।—होना।

चखाना—क्रि० स० [हिं० 'चखना' का प्रे०] खिलाना। स्वाद दिलाना।

चखिया—वि० [फ़ा० चख = झगड़ा] झगड़ालू। तकरार करनेवाला। झकझक करनेवाला।

चखु—संज्ञा पुं० दे० "चक्षु"।

चखोड़ा*†—संज्ञा पुं० [हिं० चख + ओड़] दिठौना। डिठौना। मस्तक पर काजल की लंबी रेखा जो बच्चों को नज़र से बचाने के लिये लगाई जाती है। उ०—(क) लट लटकनि सिर चारु चखोड़ा सुठि शोभा सो है शिशु भाल।—सूर। (ख) अंजन दोउ दृग भरि दीनो। भुव चारु चखोड़ा कीनो।—सूर।

चखौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चखना] चटपटा खाना। तीक्ष्ण स्वाद का भोजन।

चगड़—वि० [देश०] चालाक। चतुर।

चगताई—संज्ञा पुं० [तु०] मध्य एशिया-निवासी तुर्कों का एक प्रसिद्ध वंश जो चग़ताई ख़ाँ से चला था। बाबर, अकबर आदि भारत के मोगल बादशाह इसी वंश के थे।

चगताई खाँ—संज्ञा पुं० [तु०] प्रसिद्ध मोगल विजेता चंगेज़ ख़ाँ का एक पुत्र जो अत्यंत न्यायशील और धार्म्मिक था। चंगेज़ ख़ाँ ने १२२७ ई० में इसे बलख़, बदख़्शाँ, काशग़र आदि प्रदेशों का राज्य दिया था। सन् १२४१ में इसकी मृत्यु हुई। बाबर इसी के वंश में था।

चगर—संज्ञा पुं० [देश०] (१) घोड़ों की एक जाति। (२) एक चिड़िया।

चगुनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो संयुक्त प्रांत, बंगाल और बिहार की नदियों में पाई जाती है। यह १८ इंच लंबी होती है।

चचर—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह ज़मीन जो बहुत दिन परती रह कर एक वर्ष की बोई जोती हो।

चचरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम।

चचा—संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० चची] बाप का भाई। पितृव्य।

मुहा०—चचा बनाना = यथोचित दंड देना। ख़ूब बदला लेना। दुरुस्त करना। चचा बना कर छोड़ना = ख़ूब बदला लेकर छोड़ना।

चचिया—वि० [हिं० चचा] चाचा के बराबर का संबंध रखनेवाला।

यौ०—चचिया ससुर = पति वा पत्नी का चाचा। चचिया सास = पति वा पत्नी की चाची।

चचींडा †—संज्ञा पुं० [सं० चिचिंड] (१) तोरई की तरह की एक बेल जिस में हाथ हाथ भर लंबे और दो ढाई अंगुल मोटे साँप की तरह के फल लगते हैं। इन फलों की तरकारी होती है। इसे कहीं कहीं परवल भी कहते हैं।

विशेष—चचींडा बरसात के आरंभ में बोया जाता है और भादों कुआर में फलता है। इस में सफेद रंग के पतले लंबे फूल लगते हैं। इसे चढ़ाने के लिये टट्टियाँ लगानी पड़ती हैं। इसकी कुछ जातियाँ बहुत कड़ुई होने के कारण खाई नहीं जातीं। वैद्यक में यह वात-पित्त-नाशक, बलकारक, पथ्य और शोष रोग को दूर करनेवाला माना जाता है।

(२) अपामार्ग। चिचड़ी।

चची—संज्ञा स्त्री० [हिं० चचा] चाचा की स्त्री।

चचैँड़ा †—संज्ञा पुं० दे० "चचींड़ा"।

चचेरा—वि० [हिं० चचा] चाचा से उत्पन्न। चाचाजाद। जैसे, चचेरा भाई। चचेरी बहिन।

चचोड़ना—क्रि० स० [अनु० वा देश०] दाँत से खींच खींच वा दबा दबा कर रस वा सार चूसना। दबा दबा कर चूसना। उ०—कुत्ता हड्डी चचोड़ रहा है।

चचोड़वाना—क्रि० स० [हिं० 'चचोड़ना' का प्रे०] चचोड़ने का काम कराना। चचोड़ने देना। दबा दबा कर चूसने देना।

चट—क्रि० वि० [सं० चटुल = चंचल] जल्दी से। झट। तुरंत। फ़ौरन। शीघ्र।

यौ०—चटपट।

मुहा०—चट से = जल्दी से। शीघ्र।

*† संज्ञा पुं० [सं० चित्र, हिं० चित्ती, दाग] (१) दाग़। धब्बा। (२) गरमी के घाव या ज़ख़म का दाग़। घाव का चकत्ता।

† (३) कलंक। दोष। ऐब।

संज्ञा [अनु०] (१) वह शब्द जो किसी कड़ी वस्तु के टूटने पर होता है। जैसे, लकड़ी चट से टूट गई।

यौ०—चट चट।

विशेष—'खट, पट' आदि इस प्रकार के और शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' के साथ ही क्रि० वि० पद के समान होता है। अतः इसके लिंग का विचार व्यर्थ है। यौ० 'चट चट' शब्द को स्त्री० मानेंगे।

(२) वह शब्द जो उँगलियों को मोड़ कर दबाने से होता है। उँगली फूटने का शब्द। उ०—तुव जस शीतल पौन परसि चटकी गुलाब की कलियाँ। अति सुख पाइ असीस देत सोइ करि अँगुरिन 'चट' अलियाँ।—हरिश्चंद्र।

वि० [हिं० चाटना] चाट पोंछ कर खाया हुआ।

मुहा०—चट कर जाना = (१) सब खा जाना। (२) पचा जाना। हज़म कर लेना। दूसरे की वस्तु ले कर न देना।

चटक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चटका] (१) गौरा पक्षी। गौरवा। गौरैया। चिड़ा।

यौ०—चटकाली = गैारों की पंक्ति। गैारों का झुंड।

(२) पिपरामूल।

संज्ञा स्त्री० [सं० चटुल = सुंदर] चटकीलापन । चमक दमक । कांति । उ०—(क) मुकुट लटक अरु भ्रुकुटि मटक, देखो । कुंडल की चटक सों अटकि परी दगनि लपटि ।—सूर । (ख) जो चाहै चटक न घटै मैलो होय न मित्त । रस राजस न छुवाइए, नेह चीकने चित्त ।—बिहारी ।

यौ०—चटक मटक ।

† वि० चटकीला । चमकीला । शोख़ । उ०—ऐसो माई एक कोद को हेत । जैसे बसन कुसुँभ रँग मिलि कै नेकु चटक पुनि श्वेत ।—सूर ।

संज्ञा स्त्री० [सं० चटुल = चंचल] तेज़ी । फुरती । शीघ्रता ।

क्रि० वि० चटपट । तेज़ी से । शीघ्रता से । तुरंत । उ०—भरि जल कलस कंध धरि पाछे चल्यो चटक जग-मीता ।—रघुराज ।

† वि० फुरतीला । तेज़ । आलस्यहीन ।

वि० चटपटा । चटकारा । चरपरा । तीक्ष्ण स्वाद का । नमक, मिर्च खटाई आदि से तेज़ किया हुआ । मज़ेदार ।

संज्ञा पुं० छपे हुए कपड़ों को साफ़ करके धोने की रीति ।

विशेष—भेड़ी की मेंगनी और पानी में कपड़ों को कई बार सैांद सैांद कर सुखाते हैं ।

चटकई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटक] तेज़ी । फुर्ती ।

चटकदार—वि० [हिं० चटक + फ़ा० दार (प्रत्य०)] चटकीला । भड़कीला । चमकीला ।

चटकन—संज्ञा पुं० दे० "चटकना" ।

चटकना—क्रि० अ० [अनु० चट] (१) 'चट' शब्द करके टूटना या फूटना । बिना किसी प्रबल बाहरी आघात के फटना या फूटना । हलकी आवाज़ के साथ टूटना । तड़कना । कड़कना । जैसे, आँच से चिमनी चटकना, हांड़ी चटकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(२) कोयले, गँठीली लकड़ी आदि का जलते समय चट चट करना । (३) चिड़चिड़ाना । बिगड़ना । झुँझलाना । क्रोध से बोलना । झल्लाना । जैसे, चटक कर बोलना । (४) धूप वा खुली हवा में पड़ी रहने के कारण लकड़ी या और किसी वस्तु में दरज पड़ना । स्थान स्थान पर फटना । (५) उँगलियों का मोड़ कर दबाने पर चटचट शब्द करना । उँगली फूटना । (६) कलियों का फूटना वा खिलना । प्रस्फुटित होना । उ०—तुव जस सीतल पैान परसि चटकीं गुलाब की कलियाँ । अति सुख पाइ असीस देत सोइ, करि अँगुरिन चट अलियाँ ।—हरिश्चंद्र । (७) अनबन होना । खटकना । उ०—उन दोनों में आज कल चटक गई है ।

विशेष—इस अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग 'खटकना' की तरह स्त्री० ही में होता है क्योंकि इसका कर्त्ता 'बात' लुप्त है ।

संज्ञा पुं० [अनु० चट] चपत । तमाचा । थप्पड़ ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।—लगाना ।

चटकनी—संज्ञा स्त्री० [अनु० चट] किवाड़ों को बंद रखने वा अड़ाने के लिये लगी हुई छड़ । सिटकिनी । अगरी ।

चटक मटक—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटक + मटक] बनाव सिंगार । वेशविन्यास और हावभाव । नाज़ नख़रा । ठसक । चमक । दमक । जैसे, चटक मटक से चलना ।

चटकवाही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटक + वाही (प्रत्य०)] शीघ्रता । जल्दी । फुरती ।

चटका†—संज्ञा पुं० [हिं० चट] फुरती । जल्दी । शीघ्रता । उ०—प्रभु हैाँ बड़ो बेर को ठाढ़ो । और पतित तुम जैसे तारे तिनहीं में लिखि गाढ़ो । जुग जुग यहै बिरद चलि आयो टेरि कहत हैाँ या ते । मरियत लाज पाँच पतितन में होब कहा चटकाते । कै प्रभु हार मानि कै बैठहु कै करो बिरद सही । सूर पतित जैा झूठ कहत है देखैा खोजि बही ।—सूर ।

संज्ञा पुं० [देश०] चने का वह हरा ढोंढ़ जिस में अच्छी तरह दाने न पड़े हों । पपटा ।

संज्ञा पुं० [सं० चित्र, हिं० चित्ती, चट्टा] दाग़ । धब्बा । चकत्ता ।

संज्ञा पुं० [हिं० चाट] (१) चरपरा स्वाद । चटकारा । (२) चसका ।

चटकाना—क्रि० स० [अनु० चट] (१) तोड़ना । ऐसा करना जिसमें कोई वस्तु चटक जाय । (२) उँगलियों को खींच कर वा मोड़ते हुए दबा कर चट चट शब्द निकालना । उँगलियाँ फोड़ना । (३) एक वस्तु पर किसी दूसरी चीमड़ वस्तु को बार बार टकराना जिससे चट चट शब्द निकले । जैसे, गेंद चटकाना, जूतियाँ चटकाना ।

मुहा०—जूतियाँ चटकाना = फटा हुआ या चट्टी जूता पहन कर इधर उधर घूमना जिसमें तला बार बार एँड़ी से लग कर चट चट शब्द करे । जूता घसीटते हुए फिरना । बुरी दशा में इधर उधर पैदल फिरना । मारा मारा फिरना । उ०—अपने पास का सब खो कर अब वह गली गली जूतियाँ चटकाता फिरता है ।

(४) उचाटना । अलग करना । दूर करना । छोड़ना । (५) चिढ़ाना । कुपित करना । उ०—तुमने उसे नाहक चटका दिया नहीं तो कुछ और बातें होतीं ।

चटकामुख—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक अस्त्र जिसका उल्लेख महाभारत में है ।

चटकारा—वि० [सं० चटुल] (१) चटकीला । चमकीला । (२) चंचल । चपल । तेज़ । उ०—अटपटात अलसात पलक पट मूँदत कबहूँ करत उघारे । मनहुँ मुदित मरकत मणि आँगन खेलत खंजरीट चटकारे ।—सूर ।

वि० [अनु० चट] वह शब्द जो किसी स्वादिष्ट वस्तु को खाते समय तालू पर जीभ लगने से निकलता है । स्वाद से जीभ चटकाने का शब्द ।

मुहा०—चटकारे का = चरपरा। मज़ेदार। तीक्ष्ण स्वाद का। जैसे, चटकारे का सालन। चटकारे का भुरता। चटकारे भरना = खूब जीभ से चाट चाट कर स्वाद लेना। श्रोंठ चाटना।

चटकाली—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक + आलि] (१) गौरों की पंक्ति। गौरैया नाम की चिड़ियों का झुंड। (२) चिड़ियों की पंक्ति वा समूह।

चटकाशिरा—संज्ञा पुं० [सं०] पिपरामूल।

चटकाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटकना] (१) चटकने वा फूटने का शब्द। (२) चटकने वा तड़कने का भाव। (३) कलियों के खिलने का अस्फुट शब्द। कलियों के प्रस्फुटित होने का भाव।

चटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक] बुलबुल की तरह की एक चिड़िया जो ८ या १० अंगुल लंबी होती है और पंजाब और राजपूताने को छोड़ सारे भारतवर्ष में होती है। यह गरमी के दिनों में हिमालय की ओर चली जाती है और वहीं चट्टानों के नीचे वा पेड़ों पर अंडे देती है।

चटकीला—वि० [हिं० चटक + इला (प्रत्य०)] [स्त्री० चटकीली] (१) जिसका रंग फीका न हो। खुलता। शोख़। भड़कीला। जैसे, चटकीला रंग। उ०—चटकीलो पट लपटानो कटि बंसीबट जमुना के तट, नागर नट।—सूर। (२) चमकीला। चमकदार। आभायुक्त। उ०—चटकी धोई धोवती, चटकीली मुख जोति। फिरति रसोई के बगर जगर मगर दुति होति।—बिहारी। (३) जिसका स्वाद फीका न हो। जिसका स्वाद नमक, खटाई, मिर्च आदि के द्वारा तीक्ष्ण हो। चरपरा। चटपटा। मज़ेदार।

चटकीलापन—संज्ञा पुं० [हिं० चटकीला + पन (प्रत्य०)] (१) चमक दमक। आभा। शोख़ी। (२) चरपरापन।

चटखना—क्रि० स० दे० "चटकना"।
संज्ञा पुं० दे० "चटकना"।

चटखनी—संज्ञा स्त्री० दे० "चटकनी"।

चटखौता—संज्ञा पुं० [हिं० चरखा] भालुओं का चरखा कातने का खेल। (कलंदर)।
क्रि० प्र०—कातना।

चट चट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) चटकने का शब्द। टूटने का शब्द। (२) जलती लकड़ियों का चटचट शब्द। (३) वह शब्द जो उँगलियों को खींचने वा मोड़ कर दबाने से निकलता है। उँगली फूटने का शब्द।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
मुहा०—चट चट बलैया लेना = किसी प्रिय व्यक्ति (विशेषतः बच्चे) की विपत्ति बाधा दूर करने वा मंगल के लिये उँगलियाँ चटका कर प्रार्थना करना। (स्त्रियाँ किसी शत्रु का नाश मनाती हुई हाथों की उँगलियाँ चटकाती हैं। जब बच्चों को नज़र लगती है तब प्रायः ऐसा करती हैं जिसका अभिप्राय यह होता है कि नज़र लगानेवाले का नाश हो जाय।)

चटचटाना—क्रि० अ० [सं० चट = भेदन] (१) चटचट करते हुए टूटना वा फूटना। उ०—गर्व वचन प्रभु सुनत तुरत ही तनु बिस्तारयो। हाय हाय करि उरग बारही बार पुकारयो। शरन शरन अब मरत हौं मैं नहिँ जान्यों तोहिँ। चटचटात अँग फूटहीं राखु राखु प्रभु मोहिँ।—सूर (२) गँठीली लकड़ी, कोयले आदि का चटचट शब्द करते हुए जलना।

चटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाटना] (१) चाटने की चीज़। वह गीली वस्तु जिसे एक उँगली से थोड़ा थोड़ा उठा कर जीभ पर रख सकें। अवलेह। (२) वह गीली चरपरी वस्तु जो पुदीना, हरी धनियाँ, मिर्च, खटाई आदि को एक साथ पीसने से बनती है और भोजन का स्वाद तीक्ष्ण करने के लिये थोड़ी थोड़ी खाई जाती है।
मुहा०—चटनी करना = (१) बहुत महीन पीसना। (२) पीस डालना। चूर चूर कर देना। मार डालना। खा जाना। चटनी होना = (१) खूब पिस जाना। (२) चट हो जाना। चट पट खा लिया जाना। खाने भर को न होना। (३) चुक जाना। खतम हो जाना। उड़ जाना।
(३) काठ का चार पाँच अंगुल का एक खिलौना जिसे छोटे बच्चे मुँह में डाल कर चाटते वा चूसते हैं।

चटपट—क्रि० वि० [अनु०] शीघ्र। जलदी। तुरंत। झटपट। तत्क्षण। तत्काल। फौरन।
मुह०—चटपट की गिरह = वह फंदा जिसे खींच लेने से चट से गाँठ पड़ जाय। सकरमुद्धी। (लश०)। चटपट होना = चटपट मर जाना। थोड़ी ही देर में समाप्त हो जाना। बात की बात में मर जाना।

चटपटा—वि० [हिं० चाट] [स्त्री० चटपटी] चरपरा। तीक्ष्ण स्वाद का। मज़ेदार।

चटपटाना—क्रि० अ० [हिं० चटपट] जल्दी करना। हड़बड़ी मचाना।

चटपटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपट] [वि० चटपटिया] (१) आतुरता। हड़बड़ी। उतावली। शीघ्रता।
क्रि० प्र०—पड़ना।—मचाना।—होना।
(२) घबराहट। व्यग्रता। आकुलता। (३) उत्सुकता। आकुलता। वह बेचैनी जो किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिये हो। छटपटी। उ०—(क) देखे बिना चटपटी लागति कछू मूँड़ पड़ि पर ज्यौं।—सूर। (ख) नैनन चटपटी मेरे तब तें लगी रहति कहाँ प्राण प्यारे निर्धन को धन।—सूर।
वि० स्त्री० दे० "चटपटा"।
संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपटा] चटपटी चीज़। जैसे, कचालू आदि।

चटर–संज्ञा पुं० [अनु०] चटचट शब्द। किसी चीमड़ वस्तु के किसी कड़ी वस्तु पर बार बार पड़ने का शब्द।

मुहा०—चटर करना = मस्तूल आदि को घुमाना वा फेरना। चक्कर देना। (लश०)।

चटरजी—संज्ञा० पुं० [बं०] बंगदेश के ब्राह्मणों की एक शाखा। चट्टोपाध्याय।

चटरी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] खेसारी नाम का कुधान्य। लतरी। चिपटैया।

चटवाना–क्रि० स० [हिं० चाटना का प्रे०] (१) चाटने का काम कराना। चाटने में प्रवृत्त करना। चटाना। (२) छुरी, तलवार आदि पर सान धरवाना। सान पर चढ़वाना।

चटशाला—संज्ञा स्त्री० [हिं० चट + सं० शाला] बच्चों के पढ़ने का स्थान। छोटी पाठशाला। मकतब।

चटसार–संज्ञा स्त्री० [हिं० चट्टा = चेला + सार = शाला] बच्चों के पढ़ने का स्थान। पाठशाला। मकतब। उ०—अब समझी हम बात तुम्हारी पढ़े एक चटसार।—सूर।

चटसाल–संज्ञा स्त्री० दे० "चटशाला"। उ०—तिनके सँग चटसाल पठायो। राम नाम सों तिन चित लायो।—सूर।

चटाई–संज्ञा स्त्री० [सं० कट = चटाई ?] वह बिछावन जो घास फूस, सींक, ताड़ के पत्तों, बाँस की पतली फट्टियों आदि का बनता है। साथरी। तृण का डासन।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चाटना] चाटने की क्रिया।

चटाक–संज्ञा [अनु०] लकड़ी आदि के टूटने, उँगली के चटकने वा चपत के पड़ने आदि का शब्द। जैसे, चटाक से छड़ी टूटना, उँगली फूटना, चपत लगाना इत्यादि। उ०—महा भुजदंड द्वै अंडकटाह चपेट के चोट चटाक दै फोरौं।—तुलसी।

विशेष—चट, खट आदि अन्य अनुकरण शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० पद के समान होता है, अतः इसके लिंग का विचार व्यर्थ है।

यौ०—चटाक पटाक = चटाक वा चट चट शब्द के साथ।

संज्ञा पुं० [हिं० चट्टा] चकत्ता। दाग। धब्बा। (विशेषतः शरीर पर का, जैसे, कुष्ठ आदि का)।

चटाकर–संज्ञा पुं० [हिं०] एक पेड़ जिसका फल खट्टा होता है। यह मध्य भारत के सागर आदि स्थानों में विशेष होता है।

चटाका–संज्ञा पुं० [अनु०] लकड़ी या और किसी कड़ी वस्तु के जोर से टूटने का शब्द।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—चटाके का = बहुत तेज। उग्र। प्रचंड। जैसे, चटाके की धूप। चटाके की प्यास। (इसका प्रयोग गरमी तथा उसके कारण लगी हुई प्यास आदि की अधिकता ही के लिये प्रायः करते हैं।)

चटाख–संज्ञा पुं० दे० "चटाक"।

चटाचट–संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी वस्तु के टूटने में चट चट शब्द।

चटाना–क्रि० स० [हिं० चाटना का प्रे०] (१) चाटने का काम कराना। जीभ लगा कर किसी वस्तु का थोड़ा थोड़ा अंश मुँह में डालने देना। (२) थोड़ा थोड़ा किसी दूसरे के मुँह में डालना। खिलाना। जैसे, अन्न चटाना। (३) कुछ घूस देना। रिशवत देना। उ०—उन्होंने कुछ चटाया होगा, तब नौकरी मिली है। (३) छुरी, तलवार आदि पर सान धरवाना। सान पर चढ़वाना।

चटापटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपट] (१) शीघ्रता। जल्दी। फुरती। (२) किसी संक्रामक रोग के कारण बहुत से मनुष्यों की जल्दी जल्दी मृत्यु।

क्रि० प्र०—होना।

चटावन–संज्ञा पुं० [हिं० चटाना] बच्चे को पहले पहल अन्न चटाने का संस्कार। अन्नप्राशन।

चटिक*–क्रि० वि० [हिं० चट] चट पट। उसी समय। तत्क्षण। तत्काल। उ०—सुनत भूप भाषित चतुरानन। चले चटिक प्रियव्रत जेहि कानन।—रघुराज।

चटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पिपरामूल।

चटियल–वि० [देश०] अनावृत। खुला हुआ (मैदान)। जिसमें पेड़ पौधे न हों। निचाट।।

चटिहाट–वि० [देश०] जड़। मूर्ख। उजड्ड।

चटी–संज्ञा स्त्री० [देश०] चटसार। पाठशाला उ०—मुनिवृंद जहाँ जिहि वेदपठी शुक सारस हंस चकोर चटी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] एक प्रकार की जूती, जो एँड़ी की ओर खुली होती है।

चटीचरि–संज्ञा पुं० [देश०] पेच विशेष।

चटु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाटु। प्रिय वाक्य। खुशामद। चापलूसी। (२) व्रतियों का एक आसन। (३) उदर। पेट।

चटुल–वि० [सं०] (१) चंचल। चपल। चालाक। (२) सुंदर। प्रियदर्शन। मनोहर। उ०—(क) छठि छः राग रस रागिनी हरि होरी है। ताल तान बँधान अहो हरि होरी है। चटुल चारु रतिनाथ के हरि होरी है। सीखत होइ औधान अहो हरि होरी है।—सूर। (ख) मंजुल महरि मयूर चटुल चातक चकोर गन।—भूषन। (ग) मोती लटकन को नवल नट नाचैं नयन निरत बट बानि की चटुल चटसार मैं।—देव।

चटुला–संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली।

चटोरा—वि० [हिं० चाट + ओरा (प्रत्य०)] (१) जिसे अच्छी अच्छा चीजें खाने का व्यसन हो। जिसे स्वाद का व्यसन हो। स्वादिष्ट वस्तु खाने का लालची। स्वादलोलुप। जैसे, चटोरा आदमी, चटोरी ज़बान। (२) लोलुप। लोभी। उ०—अधर डोर बंसी सुनिल छवि जल वसुधा बाल। रूप चटोरा मीन दृग आइ फँसत ततकाल।—मुबारक।

चटोरापन—संज्ञा पुं० [हिं० चटोरा + पन (प्रत्य०)] अच्छी अच्छी चीजें खाने का व्यसन। स्वादलोलुपता।

चट्ट—†वि० [हिं० चाटना] (१) चाट पोंछ कर खाया हुआ। (२) समाप्त। नष्ट। गायब। उ०—दया चट्ट हो गई धर्म धँसि गयो धरणि मैं।

चट्टा—संज्ञा पुं० [सं० चेटक = दास] चेला। शिष्य।

संज्ञा पुं० [सं० कट = चटाई ?] बाँस की चटाई।

संज्ञा पुं० [?] चटियल मैदान। खुला मैदान। ऐसा मैदान जिसमें पेड़ आदि न हों।

संज्ञा पुं० [हिं० चकत्ता] शरीर पर कुष्ट आदि के कारण निकला हुआ चकत्ता। दाग़।

क्रि० प्र०—निकलना।—पड़ना।

चट्टान—संज्ञा स्त्री० [हिं०] पहाड़ी भूमि के अंतर्गत पत्थर का चिपटा बड़ा टुकड़ा। विस्तृत शिलापटल। शिलाखंड।

चट्टाबट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० चट्टू = चाटने का खिलौना + बट्टा = गोला] (१) छोटे बच्चों के खेलने के लिये काठ के खिलौनों का समूह जिसमें चट्टू, झुनझुने और गोले इत्यादि रहते हैं। (२) गोले और गोलियाँ जिन्हें बाजीगर एक थैली में से निकाल कर लोगों को तमाशा दिखाते हैं।

मुहा०—एक ही थैली के चट्टे बट्टे = एक ही गुट्ट के मनुष्य। एक ही स्वभाव और रुचि के लोग। एक ही मेल के आदमी। एक ही विचार के लोग। चट्टे बट्टे लड़ाना = इधर की उधर लगा कर लड़ाई कराना। चुटकुला छोड़ना। ऐसी बात कहना जिसमें कुछ लोग आपस में लड़ जायँ। उ०—तुम्हें बहुत चट्टे बट्टे लड़ाना आता है।

चट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) टिकान। पड़ाव। मंजिल। उ०—सो कहु आगे द्वीप लखाई। तहँ एक चट्टी परम सुहाई।—रघुराज। (२) फरुंखाबाद के ज़िले में पैर में पहनने का एक गहना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा वा अनु० चट चट] एँड़ी की ओर खुला हुआ जूता। स्लिपर।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँटा = चपत] (१) हानि। घाटा। टोटा। नुकसान। तावान।

मुहा०—चट्टी भरना = हानि पूरी करना।

(२) दंड। जुरमाना।

मुहा०—चट्टी धरना = दंड लगाना।

चट्टू—वि० [हिं० चाट] स्वादलोलुप। चटोरा।

संज्ञा पुं० [हिं० चट्टान वा अनु० चट] पत्थर का बड़ा खरल।

संज्ञा पुं० [हिं० चाटना] काठ का एक खिलौना जिसे लड़के मुहँ में डाल कर चाटते हैं।

चड़—संज्ञा [अनु०] सूखी लकड़ी आदि के फटने का शब्द।

विशेष—चट, पट आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वत् होता है, अतः इसके लिंग का विचार व्यर्थ है।

चड़कपूजा—संज्ञा स्त्री० दे० "चरखपूजा"।

चड़चड़—संज्ञा पुं० [अनु०] सूखी लकड़ी के टूटने वा जलने का शब्द।

चड़बड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] टें टें। बक बक। निरर्थक प्रलाप।

मुहा०—चड़बड़ चड़बड़ करना = बकवाद करना।

चड़सी—संज्ञा पुं० [देश०] चरस पीनेवाले लोग। चरसबाज़। चरस का नशा करनेवाले लोग।

चड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० चरण ?] वह लात जो उछल कर मारी जाय।

क्रि० प्र०—जमाना।—मारना।—लगाना।

चड्डा—संज्ञा पुं० [देश०] जाँघ की जड़। जंघे का ऊपरी भाग।

वि० गावदी। मूर्ख।

चड्डी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का लँगोट।

चड्ढी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] लड़कों का वह खेल जिसमें एक लड़का दूसरे की पीठ पर चढ़ कर चलता है। (जो लड़का हारता है उसी की पीठ पर सवारी की जाती है।)

क्रि० प्र०—चढ़ना।

मुहा०—चड्ढी देना = (१) हार कर पीठ पर चढ़ाना। (२) गुदामैथुन कराना।

चढ़त—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ाना] किसी देवता को चढ़ाई हुई वस्तु। देवता की भेंट।

चढ़ता—वि० [हिं० चढ़ना] (१) निकलता और ऊपर आता हुआ। बराबर ऊपर की ओर जाता हुआ। जैसे, चढ़ता चाँद। (२) आरंभ होता और बढ़ता हुआ। अग्रसर होता हुआ। जैसे, चढ़ती जवानी, चढ़ती बैस।

चढ़न*—संज्ञा स्त्री० [हिं०] चढ़ने की क्रिया या भाव। चढ़ाई।

चढ़नदार—संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ना + फा० दार (प्रत्य०)] वह मनुष्य जिसे व्यापारी गाड़ी नाव आदि पर माल के साथ रक्षा के लिये भेजते हैं। (लश०)

चढ़ना—क्रि० अ० [सं० उच्चलन, प्रा० उच्चडन, चड्ढन] (१) नीचे से ऊपर को जाना। ऊँचाई पर जाना। ऊँचे स्थान पर जाना। 'उतरना' का उलटा। जैसे, सीढ़ी पर चढ़ना, पहाड़ पर चढ़ना, पेड़ पर चढ़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—सूरज वा चाँद का चढ़ना=सूर्य्य वा चंद्रमा का उदय हो कर क्षितिज के ऊपर आना। दिन चढ़ना=(१) दिन का प्रकाश फैलना। (२) दिन वा काल व्यतीत होना। जैसे, चार घड़ी दिन चढ़ा। दे० "दिन"।

(२) ऊपर उठना। उड़ना। उ०—गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा।—तुलसी। (३) किसी नीचे तक लटकती हुई वस्तु का सिकुड़ वा खिसक कर ऊपर की ओर हो जाना। ऊपर की ओर सिमटना। जैसे, आस्तीन चढ़ना, बाहीं चढ़ना, पायजामा चढ़ना, पायचा चढ़ना, मोहरी चढ़ना। (४) एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु का सटना। मढ़ा जाना। आवरण के रूप में लगना। ऊपर से टँकना। जैसे, किताब पर जिल्द या कागज़ चढ़ना, छाते पर कपड़ा चढ़ना, तकिये पर खोल वा गिलाफ चढ़ना, गोट चढ़ना। (५) बढ़ना। उन्नति करना।

मुहा०—चढ़ बढ़ कर या बढ़ चढ़ कर होना=श्रेष्ठ होना। अधिक महत्व का होना। चढ़ा बढ़ा या बढ़ा चढ़ा=श्रेष्ठ। अधिक बड़ा वा अच्छा। अधिक। विशेष। चढ़ बनना=मनोरथ सफल होना। सुयोग मिलना। लाभ का अवसर हाथ आना। उ०—उनकी आज कल खूब चढ़ बनी है। चढ़ बजना=बात बनना। पौ बारह होना। खूब चलती होना। उ०—अधर रस मुरली लूटि करावति। आपुन बार बार लै अँचवति जहाँ तहाँ ढरकावति। आजु महा चढ़ि बाजी वाकी जोइ कोइ करै विराजै। करि सिंहासन पैठि अधर सिर छत्र धरे वह गाजै।—सूर।

(६) (नदी या पानी का) बाढ़ पर आना। बढ़ना। उ०—(क) बरसात के कारण नदी खूब चढ़ी थी। (ख) आज तीन हाथ पानी चढ़ा है। (७) आक्रमण करना। धावा करना। चढ़ाई करना। किसी शत्रु से लड़ने के लिये दल बल सहित जाना।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—दौड़ना।

(८) बहुत से लोगों का दल बाँध कर किसी काम के लिये जाना। साज बाज के साथ चलना। गाजे बाजे के साथ कहीं जाना। उ०—आपके साथ मैं सारे इंदरलोक को समेट कुँवर उदयभान को व्याहने चढ़ूँगा।—इंशाअल्ला। (९) महँगा होना। भाव का बढ़ना। उ०—आज कल घी बहुत चढ़ गया है। (१०) स्वर का तीव्र होना। सुर ऊँचा होना। आवाज तेज होना। (११) नदी वा प्रवाह में उस ओर को चलना जिधर से प्रवाह आता हो। धारा वा बहाव के विरुद्ध चलना। (१२) ढोल, सितार आदि की डोरी या तार का कस जाना। तनना। जैसे, ढोल चढ़ना, तासा चढ़ना।

मुहा०—नस चढ़ना=नस का अपने स्थान से हट जाने के कारण तन जाना।

(१३) किसी देवता, महात्मा आदि को भेंट दिया जाना। देवार्पित होना। जैसे, माला फूल चढ़ना, बलि चढ़ना, बकरा चढ़ना। (१४) सवारी पर बैठना। सवारी करना। सवार होना। जैसे, घोड़े पर चढ़ना, गाड़ी पर चढ़ना।

संयो० क्रि०—जाना।—बैठना।

(१५) किसी निर्दिष्ट काल-विभाग जैसे, वर्ष, मास, नक्षत्र आदि का आरंभ होना। जैसे, असाढ़ चढ़ना, महीना चढ़ना, दशा चढ़ना। उ०—(क) चढ़ा आसाढ़ दुँद घन गाजा। (ख) चढ़ति दसा यह उतरत जाति निदान। कहउँ न कबहूँ करकस भौंह कमान।—तुलसी।

विशेष—बार तिथि वा उससे छोटे काल-विभाग के लिये 'चढ़ना' का प्रयोग नहीं होता।

(१६) किसी के ऊपर ऋण होना। कर्ज होना। पावना होना। जैसे, ब्याज चढ़ना। उ०—इधर कई महीनों के बीच में उस पर सैकड़ों रुपये महाजनों के चढ़ गए। (१७) किसी पुस्तक बही वा कागज आदि पर लिखा जाना। टँकना। दर्ज होना। (यह प्रयोग ऐसी रकम, वस्तु वा नाम के लिये होता है जिसका लेखा रखना होता है।) जैसे, (क) ५) आज आए हैं, वे बही पर चढ़े कि नहीं? (ख) रजिस्टर पर लड़के का नाम चढ़ गया। (१८) किसी वस्तु का बुरा और उद्वेगजनक प्रभाव होना। बुरा असर होना। आवेश होना। जैसे, क्रोध चढ़ना, नशा चढ़ना, भूत चढ़ना, ज्वर चढ़ना।

मुहा०—पाप चढ़ना=पाप के प्रभाव से बुद्धि का ठिकाने न रहना।

(१९) पकने वा आँच खाने के लिये चूल्हे पर रखा जाना। जैसे, दाल चढ़ना, भात चढ़ना, हांडी चढ़ना, कड़ाह चढ़ना। (२०) लेप होना। लगाया जाना। पोता जाना। जैसे, (अंग पर) दवा चढ़ना, वारनिश चढ़ना, रोगन चढ़ना, रंग चढ़ना। दे० "रंग"।

मुहा०—रंग चढ़ना=रंग का किसी वस्तु पर आना। रंग का खिलना। दे० "रंग"। उ०—सूरदास खल कारी कामरि चढ़त न दूजो रंग।—सूर।

(२१) किसी मामले को लेकर अदालत तक जाना। कचहरी तक मामला ले जाना। उ०—चार आदमी जो कह दें, मान लो, कचहरी चढ़ने क्यों जाते हो?

चढ़वाना—क्रि० स० [हिं० चढ़ाना का प्रे०] चढ़ाने का काम कराना।

चढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] (१) चढ़ने की क्रिया या भाव। (२) ऊँचाई की ओर ले जानेवाली भूमि। वह स्थान जो आगे की ओर बराबर ऊँचा होता गया हो और जिस पर चलने में पैर कुछ उठा कर रखने के कारण अधिक परिश्रम

पड़े। उ०—आगे दो कोस की चढ़ाई पड़ती है। (३) धावा। आक्रमण। शत्रु से लड़ने के लिये दल बल के सहित प्रस्थान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(४) किसी देवता की पूजा का आयोजन। (५) किसी देवता को पूजा वा भेंट चढ़ाने की क्रिया। चढ़ावा। कड़ाही। उ०—सूर नंद सों कहत जशोदा दिन आए अब करहु चढ़ाई।—सूर।

चढ़ाउ†—संज्ञा पुं० दे० "चढ़ाव"।

चढ़ा उतरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना + उतरना] बार बार चढ़ने उतरने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—चढ़ा उतरी लगाना = बार बार चढ़ना उतरना।

चढ़ा ऊपरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना + ऊपर] एक दूसरे से आगे होने वा बढ़ने का प्रयत्न। लाग डाँट। होड़।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—चढ़ा ऊपरी लगाना = एक दूसरे से आगे होने वा बढ़ने का प्रयत्न करना। होड़ा होड़ी करना।

चढ़ा चढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] एक दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न। होड़ा होड़ी। लाग डाँट। खींच तान। उ०—(क) ज्यों कुच त्यों ही नितंब चढ़े, कछु ज्यों ही नितंब त्यों चातुरई सी। जानी न ऐसी चढ़ा चढ़ी में किहिधौं कटि बीचहिँ लूटि लई सी।—पद्माकर। (ख) देखतै बनी है दूहूँ दल की चढ़ा चढ़ी मैं राम दग हूँ पै नेकु लाली जो चढ़ै लगी।—पद्माकर।

चढ़ाना—क्रि० स० [हिं० चढ़ना का प्रे०] (१) नीचे से ऊपर ले जाना। ऊँचाई पर पहुँचाना। उ०—यह चारपाई ऊपर चढ़ा दो।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

(२) चढ़ने का काम कराना। चढ़ने में प्रवृत्त करना। उ०—उसे व्यर्थ क्यों पेड़ पर चढ़ाते हो, गिर पड़ेगा।

क्रि० प्र०—देना।

(३) किसी नीचे तक लटकती हुई वस्तु को सिकोड़ वा खिसका कर ऊपर की ओर ले जाना। ऊपर की ओर समेटना। जैसे, आस्तीन चढ़ना, मोहरी चढ़ाना, धोती चढ़ाना।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

(४) आक्रमण कराना। धावा कराना। चढ़ाई कराना। दूसरे को आक्रमण में प्रवृत्त करना।

मुहा०—चढ़ा लाना = आक्रमण वा चढ़ाई के लिये किसी को दल बल सहित साथ लाना। उ०—वह नादिरशाह को दिल्ली पर चढ़ा लाया।

(५) महँगा करना। भाव बढ़ाना। (६) स्वर तीव्र करना। सुर ऊँचा करना। आवाज़ तेज़ करना। (७) ढोल, सितार आदि की डोरी को कसना वा तानना। (८) किसी देवता वा महात्मा आदि को भेंट देना। देवार्पित करना। नज़र रखना। जैसे, फूल चढ़ाना, मिठाई चढ़ाना। (९) सवारी पर बैठाना। सवार कराना। जैसे घोड़े पर चढ़ाना, गाड़ी पर चढ़ाना। (१०) चटपट पी जाना। गले से उतार जाना। उ०—वह आज एक लोटा भाँग चढ़ा गया।

विशेष—शिष्टता के व्यवहार में इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग नहीं होता। इसमें पीनेवाले पर अधिक पी जाने आदि का व्यंग्य रहता है। इससे इसका प्रयोग व्यंग्य वा विनोद के अवसर पर ही होता है।

(११) किसी के माथे ऋण निकालना। किसी को देनदार ठहराना। उ०—उसके ऊपर क्यों इतना कर्ज़ा चढ़ाते जाते हो? (१२) किसी पुस्तक, बही, कागज़ आदि पर लिखना। टाँकना। दर्ज करना। (यह प्रयोग किसी ऐसी रकम, वस्तु, वा नाम के लिये होता है जिसका लेखा रखना होता है।) उ०—इन रुपयों को भी बही पर चढ़ा लो। (१३) पकने वा आँच खाने के लिये चूल्हे पर रखना। जैसे, दाल चढ़ाना, हाँड़ी चढ़ाना। (१४) लेप करना। लगाना। पोतना। जैसे, माथे पर चंदन चढ़ाना, दवा चढ़ाना, कपड़े पर रंग चढ़ाना। (१५) एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु साँटना। मढ़ना। ऊपर से लगाना। आवरण रूप से लगाना। ऊपर से टाँकना। जैसे, जिल्द चढ़ाना, किताब पर कागज़ चढ़ाना, छाते पर कपड़ा चढ़ाना, खोल वा गिलाफ़ चढ़ाना, गोंट चढ़ाना। (१६) सितार, सारंगी, धनुष आदि में तार वा डोरी कस कर बाँधना। जैसे, रोदा चढ़ाना।

मुहा०—धनुष चढ़ाना = धनुष की कोटि पर पतंचिका चढ़ाना। धनुष की डोरी को तान कर छोर पर बाँधना वा अटकाना। दे० "धनुष"।

चढ़ानी—संज्ञा स्त्री० [सं० चढ़ना] ऊँचाई की ओर लेजानेवाली सतह। वह स्थान जो आगे की ओर बराबर ऊँचा होता गया हो, और जिस पर चलने में अधिक परिश्रम पड़े। उ०—आगे उस पहाड़ की बड़ी कड़ी चढ़ानी है।

चढ़ाव—संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ना] (१) चढ़ने का भाव।

यौ०—चढ़ाव उतार = ऊँचा नीचा स्थान। ऐसा स्थान जहाँ बार बार चढ़ना और फिर उतरना पड़ता हो।

(२) बढ़ने का भाव। उत्तरोत्तर अधिक होने का भाव। वृद्धि। बाढ़। जैसे, पानी का चढ़ाव, नदी का चढ़ाव।

यौ०—चढ़ाव उतार = एक सिरे पर मोटा और दूसरे सिरे की ओर क्रमशः पतला होते जाने का भाव। गावदुम आकृति। उ०—इस छड़ी का चढ़ाव उतार देखो।

(३) वह गहना जो दूल्हा के घर की ओर से दुलहिन को विवाह के दिन पहनाया जाता है। (४) विवाह के दिन दुलहिन को दूल्हा के यहाँ से आए हुए गहने पहनाने की रीति। उ०—अब मैं गवनब जहाँ कुमारी। करिहैं चढ़न चढ़ाव तयारी।—रघुराज। (५) दरी के करघे का वह बाँस जो बुननेवाले के पास रहता है। (६) वह दिशा जिधर से नदी या पानी की धारा आई हो। 'बहाव' का उलटा। उ०—चढ़ाव पर नाव ले जाने में बड़ी मिहनत पड़ती है।

चढ़ावा–संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ना] (१) वह गहना जो दूल्हे की ओर से दुलहिन को विवाह के दिन पहनाया जाता है। (२) वह सामग्री जो किसी देवता को चढ़ाई जाय। पुजापा। (३) टोटके की वह सामग्री जो बीमारी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये किसी चौराहे या गाँव के किनारे रख दी जाती है। (४) बढ़ावा। दम। उत्साह।

मुहा०—चढ़ावा बढ़ावा देना = जी बढ़ाना। उत्साह बढ़ाना। उसकाना। उत्तेजित करना।

चढ़ैत–संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ना + ऐत (प्रत्य०)] चढ़नेवाला। सवार होनेवाला।

चढ़ैता–संज्ञा पुं० [हिं० चढ़ना + ऐत (प्रत्य०)] दूसरों का घोड़ा फेरनेवाला। सवार।

चढ़ौवाँ–वि० [हिं० चढ़ना] उठी हुई एँड़ी का जूता। खड़ी एँड़ी का जूता।

चणक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चना। (२) एक गोत्रकार ऋषि।

चणकात्मज–संज्ञा पुं० [सं०] चाणक्य।

चणद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग का नाम।

चणपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] रुदंती नाम का पौधा जिसकी पत्तियाँ चने की पत्तियों जैसी होती हैं।

चणिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घास जिसके खाने से गाय को दूध अधिक होता है। यह घास औषध के काम में भी आती है और वृष्य तथा बलकारक समझी जाती है।

चतरंग–संज्ञा पुं० दे० "चतुरंग"।

चतरभंग–संज्ञा पुं० [सं० छत्रभंग] बैलों का एक दोष, जिसमें उनके डिल्ले का मांस एक ओर लटक जाता है। जिस बैल में यह दोष हो, उसका रखना या पालना हानिकारक और अशुभ समझा जाता है।

चतरभाँगा–वि० [हिं० चतरभंग] (वह बैल) जिसे चतरभंग का रोग हो।

चतुरंग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह गाना जिसमें चार प्रकार (जैसे, साधारण गाना, सरगम, तराना, और तबले, मृदंग, सितार आदि) के बोल गठे हों। उ०—(क) ग सा रे रे म म प प नि नि स स नि स रे स नि ध प प ध म म नि ध प ध प म ग रे। (ख) तनन तनन तूम दिर दिर तूम दिर तारे दानी। (ग) सोरठ चतरंग ससुरन से। (घ) धा तिरकिट धुम किट धा तिर किट धुम किट धा तिर किट धुम किट धा। (२) एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना। (३) चतुरंगिणी सेना का प्रधान अधिकारी।

‡ वि० [सं०] (१) सेना के चार अंग, हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल। (२) चतुरंगिणी (सेना)। उ०—प्रात चली चतुरंग चमू बरनी सो न केशव कैसहुँ जाई।—केशव। (३) चार अंगोंवाला।

संज्ञा पुं० [सं०] शतरंज का खेल।

विशेष—इस खेल के उत्पत्तिस्थान के विषय में लोगों के भिन्न भिन्न मत हैं। कोई इसे चीन देश से निकला हुआ बतलाते हैं, कोई मिस्र से और कोई यूनान से। पर अधिकांश लोगों का मत है, और ठीक भी है कि यह खेल भारतवर्ष से निकला है। यहाँ से यह खेल फ़ारस में गया, फ़ारस से अरब में और अरब से युरोपीय देशों में पहुँचा। फ़ारसी में इसे चतरंग ही कहते हैं पर अरबवाले इसे शातरंज, शतरंज आदि कहने लगे। फ़ारस में ऐसा प्रवाद है कि यह खेल नौशेरवाँ के समय में हिंदुस्तान से फ़ारस में गया और इसका निकालनेवाला दाहिर का बेटा कोई सस्सा नामक था। ये दोनों नाम किसी भारतीय नाम के अपभ्रंश हैं। इसके निकाले जाने का कारण फ़ारसी पुस्तकों में यह लिखा है कि भारत का कोई युद्ध-प्रिय राजा जो नौशेरवाँ का समकालीन था, किसी रोग से अशक्त हो गया। उसी के जी बहलाने के लिये सस्सा नामक एक व्यक्ति ने चतुरंग का खेल निकाला। यह प्रवाद भारतीय प्रवाद से मिलता जुलता है कि यह खेल मंदोदरी ने अपने पति को बहुत युद्धासक्त देख कर निकाला था। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि भारतवर्ष में इस खेल का प्रचार नौशेरवाँ से बहुत पहले था। चतुरंग पर संस्कृत में अनेक ग्रंथ हैं, जिनमें से चतुरंगकेरली, चतुरंगक्रीड़न, चतुरंगप्रकाश और चतुरंगविनोद नामक चार ग्रंथ मिलते हैं। प्रायः सात सौ वर्ष हुए कि त्रिभंगाचार्य्य नामक एक दक्षिणी विद्वान् इस विद्या में बहुत निपुण थे। उनके अनेक उपदेश इस क्रीड़ा के संबंध में हैं। इस खेल में चार रंगों का व्यवहार होता था–हाथी, घोड़ा, नौका और बट्टे (पैदल)। छठीं शताब्दी में जब यह खेल फ़ारस में पहुँचा और वहाँ से अरब गया तब इसमें ऊँट और वज़ीर आदि बढ़ाए गए और खेलने की क्रिया में भी फेरफार हुआ। तिथितत्त्व नामक ग्रंथ में वेदव्यासजी ने युधिष्ठिर को इस खेल का जो विवरण बताया है वह इस प्रकार है।—चार आदमी मिल कर यह खेल खेलते थे। इसका चित्रपट (बिसात) भी ६४ घरों का होता था जिसके चारों ओर खेलनेवाले बैठते थे। पूर्व और पश्चिम बैठनेवाले एक दल में और उत्तर दक्षिण बैठनेवाले दूसरे दल में होते थे। प्रत्येक खेलाड़ी

के पास एक राजा, एक हाथी, एक घोड़ा, एक नाव और चार बट्टे वा पैदल होते थे। पूर्व की ओर की गोटियाँ लाल, पश्चिम की पीली, दक्षिण की हरी और उत्तर की काली होती थीं। चलने की रीति प्रायः आज ही कल के ऐसी थी। राजा चारों ओर एक घर चल सकता था, बट्टे वा पैदल यों तो केवल एक घर सीधे जा सकते थे पर दूसरी गोटी मारने के समय एक घर आगे तिरछे भी जा सकते थे। हाथी चारों ओर (तिरछे नहीं) चल सकता था। घोड़ा तीन घर तिरछे जाता था। नौका दो घर तिरछे जा सकती थी। मोहरे आदि बनने का क्रम प्रायः वैसा ही था जैसा आज कल है। हार जीत भी कई प्रकार की होती थी, जैसे, सिंहासन, चतुराजी, नृपाकृष्ट, षट्पद, काककाष्ठ, बृहन्नौका इत्यादि।

चतुरंगिणी–वि० स्त्री० [सं०] चार अंगोंवाली (विशेषतः सेना)। संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जिसमें हाथी, घोड़े, रथ और पैदल ये चारो अंग हों।

चतुरंगिनी–संज्ञा स्त्री० दे० "चतुरंगिणी"।

चतुरंगुल–संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

चतुरंगुला–संज्ञा स्त्री० [सं०] शीतली लता।

चतुरंत–संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] पृथिवी।

चतुर–वि० पुं० [सं०] [स्त्री० चतुरा] (१) टेढ़ी चाल चलनेवाला। वक्रगामी। (२) फुरतीला। तेज। जिसे आलस्य न हो। (३) प्रवीण। होशियार। निपुण। (४) धूर्त्त। चालाक।

संज्ञा पुं० (१) शृंगार रस में नायक का एक भेद। वह नायक जो अपनी चातुरी से प्रेमिका के संयोग का साधन करे। इसके दो भेद हैं; क्रियाचतुर, और वचनचतुर। (२) हाथीखाना। वह स्थान जहाँ हाथी रहते हों। (३) नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा।

चतुरई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चतुराई] चतुरता। चतुराई।

क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।—सीखना।

मुहा०—चतुरई छोलना = चालाकी करना। धोखा देना। उ०—जादु चले गुन प्रगट सूर प्रभु कहा चतुरई छोलत हौ।—सूर। चतुरई तौलना = चालाकी करना। उ०—बहुनायकी आजु मैं जानी कहा चतुरई तौलत हो।—सूर।

चतुरक–संज्ञा पुं० [सं०] चतुर।

चतुरक्रम–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताल जिसमें दो गुरु, दो प्लुत और इनके बाद एक गुरु होता है। यह ३२ अक्षरों का होता है और इसका व्यवहार शृंगार-रस में होता है।

चतुरजाति–संज्ञा स्त्री० दे० "चतुर्जातक"।

चतुरता–संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर + ता (प्रत्य०)] चतुर का भाव। चतुराई। प्रवीणता। होशियारी।

चतुरनीक–संज्ञा पुं० [सं०] चतुरानन। ब्रह्मा।

चतुरपन†–संज्ञा पुं० [हिं० चतुर + पन] चतुराई। चतुरता।

चतुरबीज–संज्ञा पुं० दे० "चतुर्बीज"।

चतुरभुज–संज्ञा पुं० दे० "चतुर्भुज"।

चतुरमास–संज्ञा पुं० दे० "चातुर्मास"।

चतुरमुख–संज्ञा पुं० दे० "चतुर्मुख"।

चतुरम्ल–संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेत, इमली, जंबीरी और काग़ज़ी नीबू, इन चार खटाइयों का समूह। (वैद्यक)

चतुरशीति–वि० [सं०] चौरासी।

चतुरश्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मसंतान नामक केतु। (२) ज्योतिष में चौथी या आठवीं राशि।

वि० जिसके चार कोने हों। चौकोर।

चतुरसम†–संज्ञा पुं० दे० "चतुस्सम"। उ०—मंगलमय निज निज भवन लोगन रचे बनाय। बीथी सींची चतुरसम चौकें चारु पुराय।—तुलसी।

चतुरस्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का तिताला ताल जिसमें क्रम से एक गुरु, गुरु की दो मात्राएँ, एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक प्लुत और प्लुत की तीन मात्राएँ होती हैं। इसका बोल यह है—धरिकुकु थां थांऽधिगदां। धिमि धिमि धिधिगन थों थों डे। (२) नृत्य में एक प्रकार का हस्तक।

चतुरह–संज्ञा पुं० [सं०] वह याग जो चार दिनों में हो।

चतुरा†–संज्ञा स्त्री० [सं०] नृत्य में धीरे धीरे भौंहें कँपाने की क्रिया।

संज्ञा पुं० [हिं० चतुर] [स्त्री० चतुरी] (१) चतुर। प्रवीण। (२) धूर्त्त। चालाक।

चतुराई–संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर + आई (प्रत्य०) (१) होशियारी। निपुणता। दक्षता। (२) धूर्त्तता। चालाकी।

चतुरात्मा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) विष्णु।

चतुरानन–संज्ञा पुं० [सं०] चार मुखवाला, ब्रह्मा।

चतुरापन†–संज्ञा पुं० [हिं० चतुरा + पन (प्रत्य०)] चतुराई। होशियारी। उ०—फिर बात चले चतुरापन की चित चाव चढ्यौ सुधि बारि दई।—रघुनाथ।

चतुराम्ल–संज्ञा पुं० दे० "चतुरम्ल"।

चतुरिंद्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] चार इंद्रियोंवाले जीव।

विशेष—प्राचीन काल के भारतवासी मक्खी, भौंरे, साँप आदि की श्रवणेंद्रिय नहीं मानते थे इसी से उन्हें चतुरिंद्रिय कहते थे। (वैद्यक)

चतुरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] पुराने ढंग की एक प्रकार की पतली नाव जो प्रायः एक ही लकड़ी में खोद कर या और किसी प्रकार बनाई जाती है।

चतुरूषण–संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ, मिर्च, पीपर और पिपरामूल, इन चार गरम पदार्थों का समूह। (वैद्यक)

चतुर्–वि० [सं०] चार।

संज्ञा पुं० चार की संख्या।

विशेष—हिंदी में इसका प्रयोग केवल समस्तपदों ही में होता है। जैसे, चतुरंगिणी, चतुरानन।

चतुर्गति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कछुआ। (२) विष्णु। (३) ईश्वर।

चतुर्गुण–वि० [सं०] (१) चौगुना। (२) चार गुणोंवाला।

चतुर्जातक–संज्ञा पुं० [सं०] इलायची (फल), दारचीनी (छाल), तेजपत्ता (पत्ता), नागकेसर (फूल), इन चार पदार्थों का समूह। (वैद्यक)

चतुर्णवत्–वि० [सं०] चौरानबेवां।

चतुर्णवति–संज्ञा स्त्री० [सं०] चौरानबे की संख्या।

वि० चौरानबे।

चतुर्थ–वि० [सं०] चार की संख्या पर का। चौथा। जैसे, चतुर्थ परिच्छेद।

संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तिताला ताल।

चतुर्थक–संज्ञा पुं० [सं०] चौथिया बुखार। वह बुखार जो हर चौथे दिन आवे।

चतुर्थकाल—संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्र के अनुसार वह काल जिस में भोजन करने का विधान है। भोजन का समय। दोपहर वा उसके लगभग का समय।

चतुर्थभक्त–संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्थकाल।

चतुर्थभाज्–वि० [सं०] प्रजा के उत्पन्न किए हुए अन्न आदि में से कर स्वरूप एक चौथाई अंश लेनेवाला (राजा)।

विशेष—मनु के मत से कोई विशेष आवश्यकता या आपत्ति आ पड़ने के समय, केवल प्रजा के हितकर कामों में ही लगाने के लिये, राजा को अपनी प्रजा से उसकी उपज का एक चौथाई तक अंश लेने का अधिकार है।

चतुर्थांश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी चीज़ के चार भागों में से एक। चौथाई। (२) चार अंशों में से एक अंश का अधिकारी। एक चौथाई का मालिक।

चतुर्थाश्रम–संज्ञा पुं० [सं०] संन्यास।

चतुर्थिकर्म्म–संज्ञा पुं० दे० "चतुर्थी (२)"।

चतुर्थिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक का एक परिमाण जो ४ कर्ष के बराबर होता है। पल।

चतुर्थी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पक्ष की चौथी तिथि। चौथ।

विशेष—(क) इस तिथि की रात, और किसी किसी के मत से रात के पहले पहर में अध्ययन करना शास्त्रों में निषिद्ध बतलाया गया है। (ख) भादों शुक्ल चतुर्थी को चंद्रमा के दर्शन करने का निषेध है। कहते हैं, उस दिन चंद्रमा के दर्शन करने से किसी प्रकार का मिथ्या कलंक या अपवाद आदि लगता है।

(२) वह विशिष्ट कर्म्म जो विवाह के चौथे दिन होता है और जिससे पहले वर-वधू का संयोग नहीं हो सकता। गंगा प्रभृति नदियों और ग्राम देवता आदि का पूजन इसी के अंतर्गत है (३) एक रसम जिसमें किसी प्रेत-कर्म्म करने-वाले के यहां मृत्यु से चौथे दिन बिरादरी के लोग एकत्र होते हैं। चौथा। (४) तांत्रिक मुद्रा।

चतुर्दंष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) कार्त्तिकेय की सेना। (३) एक राक्षस का नाम।

चतुर्दंत–संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत हाथी, जिसके चार दांत हैं।

चतुर्दश–संज्ञा पुं [सं०] चौदह।

चतुर्दशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पक्ष की चौदहवीं तिथि। चौदस।

चतुर्दिक–संज्ञा पुं० [सं०] चारों दिशाएँ।

क्रि० वि० चारों ओर।

चतुर्दिश–संज्ञा पुं० [सं०] चारों दिशाएँ।

क्रि० वि० चारों ओर।

चतुर्दोल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार डंडों का हिँडोला या पालना। (२) वह सवारी जिसे चार आदमी कंधों पर उठावें। जैसे—पालकी, नालकी आदि। (३) चंडोल नाम की सवारी।

चतुर्धाम–संज्ञा पुं० [सं०] चारों धाम। चार मुख्य तीर्थ। दे० "धाम"।

चतुर्बाहु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) विष्णु।

चतुर्भद्र–संज्ञा पुं० [सं०] अर्थ, धर्म्म, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों का समुच्चय।

वि० अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष-युक्त।

चतुर्भुज–वि० [सं०] [स्त्री० चतुर्भुजा] चार भुजाओंवाला। जिसमें चार भुजाएँ हों।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु। (२) वह क्षेत्र जिसमें चार भुजाएँ और चार कोण हों। जैसे,

यौ०—सम चतुर्भुज = चार भुजाओंवाला वह क्षेत्र जिसमें चार समकोण हों और जिसकी चारों भुजाएँ समान हों। जैसे,

चतुर्भुजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक विशिष्ट देवी। (२) गायत्री रूपधारिणी महाशक्ति।

चतुर्भुजी–संज्ञा पुं० [सं० चतुर्भुज+ई (प्रत्य०)] (१) एक वैष्णव संप्रदाय जिसके आचार व्यवहार आदि रामानंदियों से मिलते जुलते होते हैं।

विशेष—लोग कहते हैं कि इस संप्रदाय के प्रवर्त्तक किसी साधु ने एक बार चार भुजाएँ धारण की थीं, इसी से उसके संप्रदाय का नाम चतुर्भुजी पड़ा।

(२) इस संप्रदाय का अनुयायी।

वि० चार भुजाओंवाला, जैसे, चतुर्भुजी मूर्त्ति।

चतुर्मास–संज्ञा पुं० [सं० चातुर्मास] बरसात के चार महीनों (आषाढ़, सावन, भादों, कुआर) का चौमासा।

चतुर्मुख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें क्रम से एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक गुरु, गुरु की दो मात्राएँ, एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक प्लुत और प्लुत की तीन मात्राएँ होती हैं। इसका बोल यह है—तांह। तकि तकि तांह ऽ थकि थरि। तकि तकि दिधि गन थों डे। (२) नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा। (३) विष्णु।

वि० [स्त्री० चतुर्मुखी] जिसके चार मुख हों। चार मुँहवाला।

क्रि० वि० चारों ओर।

चतुर्मूर्त्ति–संज्ञा पुं० [सं०] विराट, सूत्रात्मा, अव्याकृत और तुरीय इन चारों अवस्थाओं में रहनेवाला, ईश्वर।

चतुर्युगी–संज्ञा स्त्री० [सं०] चारों युगों का समय। उतना समय जितने में चारों युग एक बार बीत जाँय, अर्थात्, ४३२०००० वर्ष का समय। चौजुगी। चौकड़ी।

चतुर्वक्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] चार मुँहवाले, ब्रह्मा।

चतुर्वर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष।

चतुर्वर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

चतुर्वाही–संज्ञा पुं०] [सं०] चार घोड़ों की गाड़ी। चौकड़ी।

चतुर्विंश–संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का याग।

वि० चौबीसवाँ।

चतुर्विंशति–संज्ञा स्त्री० [सं०] चौबीस।

चतुर्विद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] चारों वेदों की विद्या।

वि० चारों वेद जाननेवाला।

चतुर्वीज–संज्ञा पुं० [सं० चतुष्+बीज] काला जीरा, अजवाइन, मेथी और हालिम इन चार प्रकार के दानों या बीजों का समूह। (वैद्यक)

चतुर्वीर–संज्ञा पुं० [सं०] चार दिनों में होनेवाला एक प्रकार का सोमयाग।

चतुर्वेद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर। ईश्वर। (२) चारों वेद।

वि० चारों वेद जाननेवाला।

चतुर्वेदी–संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वेदिन्] (१) चारों वेदों का जाननेवाला पुरुष। (२) ब्राह्मणों की एक जाति।

चतुर्व्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार मनुष्यों अथवा पदार्थों का समूह। जैसे, (क) राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न। (ख) कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। (ग) संसार, संसार का हेतु, मोक्ष और मोक्ष का उपाय। (२) विष्णु।

विशेष—विष्णुसहस्रनाम के भाष्यकार के अनुसार विष्णु के शरीर-पुरुष, छंदःपुरुष, वेदपुरुष और महापुरुष ये चार रूप हैं; और पुराणों के अनुसार ब्रह्मा ने सृष्टि के कार्यों के लिये वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चार रूपों में अवतार लिया था, इसलिये उन्हें चतुर्व्यूह कहते हैं।

(३) योगशास्त्र। (४) चिकित्साशास्त्र।

चतुर्होत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर। (२) विष्णु।

चतुल–संज्ञा पुं० [सं०] स्थापन करनेवाला। स्थापक।

चतुश्चक्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चक्र जिसके अनुसार तांत्रिक लोग मंत्रों के शुभ या अशुभ होने का विचार करते हैं।

चतुश्चत्वारिंश–वि० [सं०] चौवालीसवाँ।

चतुश्चत्वारिंशत्–संज्ञा स्त्री० [सं०] चौवालीस की संख्या।

चतुश्शृंग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके चार सींग हों। (२) पुराणों के अनुसार कुशद्वीप के एक वर्ष के पर्व्वत का नाम।

चतुष्क–वि० [सं०] जिसके चार अंग वा पार्श्व हों। चौपहल।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का घर। (२) एक प्रकार की छड़ी वा डंडा।

चतुष्कर, चतुष्करी–संज्ञा पुं० [सं०] वह जंतु जिसके चारों पैरों के आगे के भाग हाथ के समान हों। पंजेवाले जानवर।

चतुष्कर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम।

चतुष्कल–वि० [सं०] चार कलाओंवाला। जिसमें चार मात्राएँ हों। जैसे, छंदःशास्त्र में चतुष्कल गण, संगीत में चतुष्कल ताल।

चतुष्की–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुष्करिणी का एक भेद। (२) मसहरी। (३) चौकी।

चतुष्कोण–वि० [सं०] चार कोणवाला। चौकोर। चौकोना।

संज्ञा पुं० वह जिसमें चार कोण हों।

चतुष्टय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार की संख्या। (२) चार चीज़ों का समूह। जैसे, अंतःकरणचतुष्टय। (३) जन्मकुंडली में केंद्र, लग्न और लग्न से सातवाँ तथा दसवाँ स्थान।

चतुष्टोम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार स्तोमवाला एक यज्ञ। (२) अश्वमेध यज्ञ का एक अंग। (३) वायु।

चतुष्पंचाश–वि० [सं०] चौवनवां ।

चतुष्पंचाशत्–संज्ञा स्त्री०[सं०] चौवन की संख्या ।

चतुष्पत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुसना नाम का साग । दे० "चतुष्पर्णी" ।

चतुष्पथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौराहा । चौमुहानी । (२) ब्राह्मण ।

चतुष्पथरता–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

चतुष्पद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार पैरोंवाला जीव या पशु । चौपाया ।

यौ०—चतुष्पदवैकृत ।

(२) ज्योतिष में एक प्रकार का करण । फलित ज्योतिष के अनुसार इस करण में जन्म लेनेवाला दुराचारी, दुर्बल और निर्धन होता है । (३) वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक इन चारों का समूह ।

वि० चार पदोंवाला । जिसमें अथवा जिसके चार पद हों ।

चतुष्पदवैकृत–संज्ञा पुं० [सं०] एक जाति के चौपायों का दूसरी जाति के चौपायों से गमन करना, उनको स्तनपान कराना अथवा इसी प्रकार का और कोई नियम-विरुद्ध कार्य्य करना ।

विशेष—फलित-ज्योतिष में इस प्रकार की क्रिया को अशुभ और अमंगल-सूचक माना है और ऐसा करनेवाले पशुओं के त्याग का विधान किया गया है ।

चतुष्पदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] चौपैया छंद, जिसका प्रत्येक चरण ३० मात्राओं का होता है । जैसे, भे प्रगट कृपाला, दीन दयाला, कौशल्या हितकारी । हर्षित महतारी, मुनि मन हारी, अद्भुत रूप निहारी ।—तुलसी ।

चतुष्पदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चौपाई छंद जिसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ और अंत में गुरु लघु होते हैं । जैसे, राम रमापति तुम मम देव । मम दिशि देखो यह यश लेव । (२) चार पाद का गीत ।

चतुष्पर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी अमलोनी । (२) सुसना नामक साग जो पानी के किनारे होता है और जिसमें चार चार पत्तियाँ होती हैं ।

चतुष्पाटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।

चतुष्पाठी–संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्यार्थियों के पढ़ने का स्थान । पाठशाला ।

चतुष्पाणि–वि० [सं०] जिसके चार हाथ हों । चार हाथोंवाला । संज्ञा पुं० विष्णु ।

चतुष्फल–वि० [सं०] जिसमें चार फल हों । चौपहला ।

चतुष्फला–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवला नामक औषधि ।

चतुस्तन–संज्ञा स्त्री० [सं०] चार स्तनोंवाली, गाय ।

चतुस्ताल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें तीन द्रुत और एक लघु (० ० ० ।) होता है । इसका बोल यह है, (१) था० थरि० धिमि० थिरिथा । अथवा (२) था० अधि० गण० थों ई ।

चतुस्त्रिंश–वि० [सं०] चौंतीसवां ।

चतुस्त्रिंशत्–संज्ञा स्त्री० [सं०] चौंतीस की संख्या ।

चतुस्सन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सनक, सनत्कुमार, सनंदन और सनातन ये चार ऋषि । (२) विष्णु ।

चतुस्सम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक औषध जिसमें लौंग, ज़ीरा, अजवाइन और हड़ बराबर सम भाग होते हैं । यह पाचक, भेदक और आमशूल-नाशक होती है । (२) एक गंध द्रव्य जिसमें २ भाग कस्तूरी, ४ भाग चंदन, ३ भाग कुंकुम और ३ भाग कपूर का रहता है ।

चतुस्सूत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यासदेव कृत वेदांत के पहले चार सूत्र जो बहुत कठिन हैं और जिन पर भाष्यकारों का बहुत कुछ मत-भेद है । ये चारों सूत्र पढ़ने के लिये लोग प्रायः बहुत अधिक परिश्रम करते हैं ।

चतुःपंचाश–वि० [सं०] चौवनवां ।

चतुःपंचाशत्–संज्ञा पुं० [सं०] चौवन की संख्या ।

चतुःषष्ठ–वि० [सं०] चौंसठवां ।

चतुःषष्ठि–संज्ञा स्त्री० [सं०] चौंसठ की संख्या वा अंक ।

चतुःसंप्रदाय–संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों के चार प्रधान संप्रदाय—श्री, माध्व, रुद्र और सनक संप्रदाय ।

चतुःसप्तत्–वि० [सं०] चौहत्तरवां ।

चतुःसप्तति–संज्ञा स्त्री० [सं०] चौहत्तर की संख्या वा अंक ।

चतूरात्र–संज्ञा पुं० [सं०] चार रात्रियों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

चत्त्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौमुहानी । चौरस्ता । (२) वह स्थान जहां भिन्न भिन्न देशों से लोग आकर रहें । (३) होम के लिये साफ़ किया हुआ स्थान ।

चत्वरवासिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

चत्वारिंश–वि० [सं०] चालीसवां ।

चत्वारिंशत्–संज्ञा स्त्री० [सं०] चालीस की संख्या ।

चत्वाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) होम-कुंड । (२) कुश नाम की घास । (३) गर्भ । (४) वेदी । चबूतरा ।

चदरा†–संज्ञा पुं० दे० "चादर" ।

चदिर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपूर । (२) चंद्रमा । (३) हाथी । (४) सांप ।

चद्दर–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चादर] (१) चादर । (२) किसी धातु का लंबा चौड़ा चौकोर पत्तर ।

क्रि० प्र०—काटना ।—जड़ना ।

(३) नदी आदि के तेज़ बहाव में पानी का वह बहता हुआ अंश जिसका ऊपरी भाग कुछ विशेष अवस्थाओं में बिलकुल समतल हो जाता है।

विशेष—इस प्रकार की चद्दर में ज़रा भी लहर नहीं उठती और यह चद्दर बहुत भयानक समझी जाती है। यदि नाव या मनुष्य किसी प्रकार इस चद्दर में पड़ जाय तो उसका निकलना बहुत कठिन हो जाता है।

मुहा०—चद्दर पड़ना = नदी के बहते हुए पानी के कुछ अंश का एकदम समतल हो जाना।

विशेष—दे० "चादर"।

चनक†—संज्ञा पुं० [सं० चणक] चना। उ०—जानत हौं चारो फल चार ही चनक कौ।—तुलसी।

चनकन†—संज्ञा पुं० [देश०] शलगम।

✓**चनकना†**—क्रि० अ० दे० "चटकना"। उ०—विरह आंच नहिं सहि सकी सखी भई बेताब। चनकि गई सीसी गयो छिरकत छनकि गुलाब।—शृं० सत०।

चनकाम्ल—संज्ञा पुं० दे० "चणकाम्ल"।

✓**चनखना†**—क्रि० अ० [?] चिढ़ना। खफा होना। चिटकना। उ०—श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुंज विहारी सों प्यारी जब तुँ बोलत चनख चनख।—हरिदास।

चनचना—संज्ञा पुं० [अनु०] एक कीड़ा जो तमाखू की फसल को हानि पहुँचाता है। यह तमाखू के पत्तों की नसों में छेद कर देता है जिससे पत्ते सूख जाते हैं। इसे झनझना भी कहते हैं।

चनन—संज्ञा पुं० [सं० चन्दन] चंदन। संदल। उ०—ओंठ की चनन केंवरिया जो हौंबाट। उड़िगै सोन चिरैया पिंजर हाथ।—रहीम।

चनसित—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ। महान्।

विशेष—वैदिक काल में सम्मान के लिये नाम के पहले इस शब्द को लगा कर ब्राह्मणों को संबोधन करते थे।

चना—संज्ञा पुं० [सं० चणक] चैती फसल का एक प्रधान अन्न जिसका पौधा हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा होता है। इसकी छोटी कोमल पत्तियाँ कुछ खटाई और खार लिए होती हैं और खाने में बहुत स्वादिष्ट होती हैं। इस अन्न के दाने प्रायः गोल होते हैं और उसके ऊपर का छिलका उतार देने पर अंदर से दो दालें निकलती हैं जो और दालों की तरह उबाल कर खाई जाती हैं। यह अनेक प्रकार से खाने के काम में आता है। ताजा चना लोग कच्चा भी खाते हैं और सूखा चना भाड़ में भून कर खाया जाता है। इससे कई तरह की मिठाइयाँ और खाने की नमकीन चीजें बनती हैं। यह बहुत बलवर्द्धक और पुष्टिदायक समझा जाता है, पर कुछ गुरुपाक होता है। भारत में यह घोड़ों और दूसरे चौपायों को बलिष्ट करने के लिये दिया जाता है। वैद्यक में इसे मधुर, रूखा, और मेह, कृमि और रक्त-पित्त-नाशक, दीपन, और रुचि तथा बलकारक माना गया है। इसे बूट, छोला और रहिला भी कहते हैं।

पर्य्या०—हरिमंथ। चण। सुगंफ। कृष्णचंचुक। बालभोज्य। राजिभक्ष्य। कंचुकी।

मुहा०—चने का मारा मरना = इतना दुर्बल होना कि बहुत जरा सी चोट से मर जाय। नाकों चने चबवाना = बहुत तंग करना। बहुत दिक या हैरान करना। नाकों चने चबाना = बहुत हैरान होना। लोहे का चना = अत्यंत कठिन काम। दुष्कर कार्य्य। विकट कार्य्य। लोहे का चना चबाना = अत्यंत कठिन कार्य्य करना।

चनाखार—संज्ञा पुं० [हिं० चना + खार] चने के डंठलों और पत्तियों आदि को जला कर निकाला हुआ खार।

चनाब—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रभागा] पंजाब की पांच नदियों में से एक जो लद्दाख के पर्वतों से निकल कर सिंध में जा गिरी है। यह प्रायः ६०० मील लंबी है।

चनार—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ जो उत्तर-भारत, विशेषतः काश्मीर में बहुत अधिकता से होता है। इसके पत्ते पंजे के आकार के होते हैं और जाड़े में बिलकुल झड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी पीलापन लिए सफ़ेद रंग की और बहुत मज़बूत होती है, बहुत देर में जलती है और मेज़ कुरसियाँ आदि बनाने के काम में आती है।

चनियारी—संज्ञा स्त्री० [?] एक जल-पक्षी जो सांभर झील के निकट और बरमा में अधिकता से पाया जाता है। इसके पर बहुत सुंदर होते हैं और मेमों की टोपियों में लगाने और गुलूबंद बनाने के काम में आते हैं। इसे 'हरगीला' भी कहते हैं।

चनुअरी—संज्ञा स्त्री० दे० "चनोरी"।

चनेठ—संज्ञा पुं० [हिं० चना] (१) एक प्रकार की घास जिसकी पत्ती चने की पत्ती से मिलती जुलती होती है। यह बहुधा पशुओं की ओषधि में काम आता है। (२) इस घास से बनाई हुई ओषधि जो प्रायः पशुओं को दी जाती है।

चनोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद] वह भेड़ जिसके सारे शरीर के रोएँ सफ़ेद हों। (गड़ेरिया)

चन्हारिन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की जंगली चिड़िया।

चप—संज्ञा स्त्री० [देश०] घोली हुई वस्तु। जैसे, चूने का चप।

चपकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चपकना] (१) एक प्रकार का अंगा। अँगरखा। (२) लोहे वा पीतल का एक साज जिसे किवाड़, संदूक आदि में इसलिये लगाते हैं जिसमें बंद संदूक वा किवाड़ के पल्ले अँटके रहें और झटके आदि से खुल न सकें। इसी के कोंढ़े में ताला लगाया जाता है। (३) एक छोटी कील जो हल की हरिस में आगे की ओर लगी होती है।

चपकना–क्रि० अ० दे० "चिपकना"।

चपका–संज्ञा पुं० [हिं० चपकना] एक प्रकार का कीड़ा।

चपकाना–क्रि० स० दे० "चिपकाना"।

चपकुलिस–संज्ञा स्त्री० [तु०] (१) अड़चन । फेर । कठिनाई । झंझट । कठिन स्थिति । अंडस ।

क्रि० प्र०—में पड़ना ।

(२) कसामसी । बहुत भीड़भाड़ । अंडस ।

चपट–संज्ञा पुं० [सं०] चपत । तमाचा ।

चपटना†–क्रि० अ० दे० "चिपकना", "चिमटना"।

चपटा†–वि० दे० "चिपटा"।

चपटा-गाँजा–संज्ञा पुं० [हिं० चपटा + गाँजा] दबाया हुआ गाँजा । बालूचर गाँजा ।

चपटाना†–क्रि० स० दे० "चिपकाना", "चिमटाना"।

चपटी†–वि० स्त्री० दे० "चिपटी"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] (१) एक प्रकार की किलनी जो चौपायों को लगती है । (२) ताली । थपोड़ी । (३) योनि । भग ।

मुहा०—चपटी खेलना = दो स्त्रियों का परस्पर योनि मिला कर रगड़ना । चपटी लड़ाना = दे० "चपटी खेलना"।

चपड़गट्टू–वि० [देश०] आफ़त का मारा ।

वि० गुत्थमगुत्था ।

चपड़ चपड़–संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द जो कुत्तों के मुँह से खाते वा पानी पीते समय निकलता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चपड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० चपटा] (१) साफ़ की हुई लाख का पत्तर । साफ़ की हुई काम में लाने योग्य लाख । (२) लाल रंग का एक कीड़ा वा फतिंगा जो प्रायः पाखानों तथा सीड़ लिए हुए गंदे स्थानों में होता है । (३) कोई पिटी हुई या चिपटी वस्तु । पत्तर ।

चपड़ा लेना–क्रि० अ० [हिं० चपड़ा] मस्तूल के जोड़ पर रस्सी लपेटना । (लश०)

चपड़ी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] (१) तख़ती । पटिया । (२) दे० "चिपड़ी"।

चपत–संज्ञा पुं० [सं० चपट] (१) तमाचा । थप्पड़ । (जो सिर या गाल पर मारा जाय) ।

विशेष—कुछ लोग चपत केवल उसी थप्पड़ को कहते हैं जो सिर पर लगे ।

क्रि० प्र०—जमना ।—जमाना ।—बैठना ।—मारना ।—लगाना ।

मुहा०—चपत झाड़ना वा धरना = चपत मारना ।

यौ०—चपतगाह = खोपड़ा । गुद्दी ।

(२) धक्का । हानि । नुकसान । उ०—बैठे बैठाये चार रुपये का चपत बैठ गया ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—बैठना ।

चपती–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपटा] काठ की वह चिपटी छड़ जिससे लड़के सीधी लकीरें खींचते हैं ।

चपदस्त–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह घोड़ा जिसका अगला दहिना पैर सफ़ेद हो ।

चपना–क्रि० अ० [सं० चपन = कूटना, कुचलना] (१) दबना । दाब में पड़ना । कुचल जाना । (२) लज्जा से गड़ जाना । लज्जित होना । शरमाना । झेंपना । सिर नीचा करना । छिप जाना । † (३) चौपट होना । नष्ट होना ।

चपनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपना] (१) छिछला कटोरा । कटोरी ।

मुहा०—चपनी भर पानी में डूब मरना = लज्जा के मारे किसी को मुँह न दिखाना ।

(२) एक प्रकार का कमंडल जो दरियाई नारियल का होता है । (३) वह लकड़ी जिसमें गड़रिये ताना बाँध कर कंबल की पट्टियाँ बुनते हैं । (४) हाँडी का ढक्कन ।

मुहा०—चपनी चाटना = बहुत थोड़ा अंश पाकर रह जाना ।

(५) घुटने की हड्डी । चक्की ।

चपरउनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] लोहारों का एक औजार जिससे बालटू पीट कर फैलाया जाता है ।

चपरगट्टू–वि० [हिं० चौपट + गटपट] (१) सत्यानाशी । चौपटा । आफत का मारा । अभागा । (२) गुत्थमगुत्था । एक में उलझा हुआ ।

चपरना†*–क्रि० स० [अनु० चपचप] (१) किसी गीली या चिपचिपी वस्तु को दूसरी वस्तु पर फैला कर लगाना । दे० "चुपड़ना"। उ०—ऊधो जाके माथे भागु । अबलन योग सिखावन आए चेरिहि चपरि सोहागु ।—सूर । (२) परस्पर मिलाना । सानना । ओत प्रोत करना । उ०—विषय चिंता दोउ है माया । दोउ चपरि ज्यों तरुवर छाया ।—सूर । ‡ (३) भाग जाना । खिसक जाना ।

चपरनी–संज्ञा स्त्री० [देश०] मुजरा । गाना । (वेश्याओं की बोली) ।

चपरा–संज्ञा पुं० दे० "चपड़ा"।

†वि० कोई बात कह कर या कोई काम करके उससे इनकार करनेवाला । मुकर जानेवाला । झूठा ।

अव्य० [हिं० चपरना] हठात् । मान न मान । ख्वाहमख्वाह । जैसे हो तैसे । उ०—देखा भाला तोपची चपरा सैयद होय ।

चपराना†–क्रि० स० [देश०] झूठा बनाना । झुठलाना ।

चपरास–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपरासी] (१) पीतल आदि धातुओं की एक छोटी पट्टी जिसे पेटी वा परतले में लगा कर

सिपाही, चौकीदार, अरदली आदि पहनते हैं और जिस पर उनके मालिक, कार्य्यालय आदि के नाम खुदे रहते हैं। बल्ला। बैज। (२) मुलम्मा करने की कलम। (३) मालखंभ की एक कसरत जो दुबगली के समान होती है। दुबगली में पीठ पर से बेंत आता है और इसमें छाती पर से आता है। (४) बढ़इयों के आरे के दांतों का दहिने और बाएँ झुकाव। (बढ़ई आरे के कुछ दांतों को दहिनी ओर कुछ को बाँई ओर थोड़ा मोड़ देते हैं जिसमें आरे के पत्ते की मोटाई से चिराव के दरज की मोटाई कुछ अधिक हो और लकड़ी आरे को पकड़ने न पावे।) (५) कुरतों के मोढ़े पर की चौड़ी धज्जी।

चपरासी–संज्ञा पुं० [फ़ा० चप = बायाँ + रास्त = दाहना] सिपाही। प्यादा। मिरदहा। अरदली। वह नौकर जो चपरास पहने हो और मालिक के साथ रहे।

चपरि*–क्रि० वि० [सं० चपल] फुरती से। चपलता से। तेजी से। जोर से। सहसा। एक बारगी। उ०—(क) जीवन ते जागी आगि चपरि चौगुनी लागि तुलसी विलोकि मेघ चले मुँह मोरि कै।—तुलसी। (ख) तहां दसरथ के समर्थ नाथ तुलसी को चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमा ललाम को।—तुलसी (ग) राम चहत सिव चापहि चपरि चढ़ावन।—तुलसी। (घ) चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप ही कि न होइ निबाहु। —तुलसी। (च) कियो छुड़ावन विविध उपाई। चपरि गह्यो तुलसी बरियाई।—रघुराज।

चपरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] खेसारी। चिपटैया। एक कदन्न वा घास जिसमें चिपटी चिपटी फलियां लगती हैं।

चपरैला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे कूरी भी कहते हैं।

चपल–वि० [सं०] (१) चंचल। तेज़। फुरतीला। चुलबुला। कुछ काल तक एक स्थिति में न रहनेवाला। बहुत हिलने डोलनेवाला। उ०—(क) भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाय।—तुलसी। (ख) जस अपजस देखति नहीं, देखति सांवल गात। कहा करौं लालच भरे, चपल नैन ललचात।—बिहारी। (२) क्षणिक। बहुत काल तक न रहनेवाला। (३) उतावला। हड़बड़ी मचानेवाला। जल्दबाज़। (४) अभिप्राय साधन में उद्यत। अवसर न चूकनेवाला। चालाक। धृष्ट। उ०—मधुप तुम कान्ह ही की कही क्यों न कही है? यह बतकही चपल चेरी की निपट चरेरी और ही है।—तुलसी।

संज्ञा पुं० (१) पारा। पारद। (२) मछली। मत्स्य। (३) चातक। पपीहा। (४) एक प्रकार का पत्थर। (५) चोर नामक सुगंधि द्रव्य। (६) राई। (७) एक प्रकार का चूहा।

चपलता–संज्ञा स्त्री०] [सं०] (१) चंचलता। तेजी। जल्दी। (२) उतावली। धृष्टता। ढिठाई। उ०—चूक चपलता मेरियै तूँ बड़ो बड़ाई। बंदि छोर बिरदावली निगमागम गाई।—तुलसी।

चपलत्व–संज्ञा पुं० [सं०] चपलता। चंचलता।

चपलफांटा–संज्ञा पुं० [सं० चपल + हिं० फट्टा = धज्जी] जहाज़ के फर्श के तख्तों के बीच की खाली जगह में खड़े बैठाए तख्ते या पचड़ जिनसे मस्तूल इत्यादि फँसे रहते हैं।

चपलस–संज्ञा पुं० [देश०] एक ऊँचा पेड़। इसके भीतर की लकड़ी पीलापन लिए भूरी और बहुत ही मज़बूत होती है। इससे सजावट के सामान, चाय के संदूक, नाव, तख्ते आदि बनते हैं। यह ज्यों ज्यों पुरानी होती है त्यों त्यों कड़ी और मज़बूत होती जाती है।

चपला–वि० स्त्री० [सं०] चंचल। फुरतीली। तेज़।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) बिजली। चंचला। (३) आर्य्या छंद का एक भेद। जिस आर्य्यादल के प्रथम गण के अंत में गुरु हो, दूसरा गण जगण हो, तीसरा गण दो गुरु का हो, चौथा गण जगण हो, पांचवें गण का आदि गुरु हो, छठा गण जगण हो, सातवां जगण न हो, अंत में गुरु हो, उसे चपला कहते हैं। परंतु केदारभट्ट और गंगादास का मत है कि जिस आर्या में दूसरा और चौथा गण जगण हो वही चपला है। जैसे, 'रामा भजौ सप्रेमा, सुभक्ति पैहौ सुमुक्तिहू पैहौ। इसके तीन भेद हैं—(क) मुख-चपला। (ख) जघन-चपला। (ग) महा-चपला। (४) पुंश्चली स्त्री। (५) पिप्पली। पीपल। (६) जीभ। जिह्वा। (७) विजया। भाँग। (८) मदिरा। (९) प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो ४८ हाथ लंबी, २४ हाथ चौड़ी और २४ हाथ ऊँची होती थी और केवल नदियों में चलती थी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चप्पड़] जहाज़ में लोहे वा लकड़ी की पट्टी जो पतवार के दोनों ओर उसकी रोक के लिये लगी रहती है। (लश०)

चपलाई*–संज्ञा स्त्री० [सं० चपल] चपलता। उ०—रही विलोकि विचारि चारु छवि परमिति पार न पाई री। मंजुल तारन की चपलाई चितु चतुरानन करषै री।—सूर।

चपलान–संज्ञा पुं० [हिं० चप्पड़] जहाज़ की गलही के अगल बगल के कुंदे जो धक्के सँभालने के लिये लगाए जाते हैं। (लश०)

चपलाना*–क्रि० अ० [सं० चपल] चलना। हिलना। डोलना।

क्रि० स० चलाना। हिलाना। डोलाना।

चपली†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] जूती । चट्टी ।

चपाट–संज्ञा पुं० [हिं० चपटा] वह जूता जिसकी एँड़ी उठी न हो । चपौर जूता ।

चपाती–संज्ञा स्त्री० [सं० चर्पटी] वह पतली रोटी जो हाथ से बढ़ाई जाती है ।

मुहा०—चपाती सा पेट = वह पेट जो बहुत निकला हुआ न हो । कृशोदर ।

चपातीसुमा–वि० [उ०] रोटी के ऐसे सुमवाला (घोड़ा) ।

चपाना–क्रि० स० [हिं० चपना] (१) एक रस्सी के सूत को दूसरी रस्सी के सूत के साथ बुन कर जोड़ना वा फँसाना । रस्सी जोड़ना । (२) दबवाना । दबाने का काम कराना । (३) लज्जा से दबाना । लज्जित करना । छिपाना । शरमिंदा करना ।

चपेकना†–क्रि० स० दे० "चिपकाना" ।

चपेट–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपना = दबाना] (१) झोंका । रगड़ा । धक्का । आघात । घिस्सा । रगड़ के साथ वह दबाव जो किसी भारी वस्तु के वेगपूर्वक चलने से पड़े । उ०—चारिहु चरन की चपेट चपिट चापे चिपटिगो उचकि चारि आँगुल अचलुगो । —तुलसी । (२) झापड़ । थप्पड़ । तमाचा । उ०—याको फल पावहुगो आगे । बानर भालु चपेटन्हि लागे ।—तुलसी । (३) दबाव । संकट ।

चपेटना–क्रि० स० [सं० चपेट] (१) दबाना । दबोचना । दबाव में डालना । रगड़ा देना । (२) बलपूर्वक भगाना । आघात पहुँचाते हुए हटाना । उ०—सिख लोग शत्रुओं की सेना को चारों ओर से चपेटने लगे । (३) डाँटना । फटकार बताना । उ०—आने दो, उसको हम ऐसा चपेटेंगे कि वह भी क्या समझेगा ।

चपेटा–संज्ञा पुं० (१) दे० "चपेट" । (२) दोगला । वर्णसंकर ।

चपेटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी छठ । भाद्रपद की शुक्ला षष्ठी । स्कंदपुराण में संतान के हितार्थ पूजन के लिये गिनाई हुई द्वादश षष्ठियों में से एक ।

चपेरना*–संज्ञा पुं० [हिं० चापना = दबाना] चापना । दबाना । उ०—दुर्मति केर दोहागिनि मेटै ढोटै चापि चपेरै । कह कबीर सोई जन मेरा घर की रारि निबेरै ।—कबीर ।

चपेहर–संज्ञा पुं० [देश०] एक फूल का नाम ।

चपोटसिरीस–संज्ञा स्त्री० [देश०] सिरीस वा सीसम की जाति का एक पेड़ जो शिशिर में अपनी पत्तियाँ झाड़ देता है और जमुना के पूर्व हिमालय की तराई में होता है । यह मध्य भारत, दक्षिण तथा बंबई प्रांत में भी होता है । इसके बीजों में से तेल निकलता है और इसकी पत्ती तथा छाल दवा के काम में आती है । इस पेड़ में से बहुत मज़बूत और लंबी धरन निकलती है जो इमारत आदि के काम में आती है ।

चपोटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपना वा चिपटा] छोटी टोपी । सिर में जमी हुई टोपी ।

चपौर–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक जल पक्षी जो शरद ऋतु में बंगाल तथा आसाम में दिखाई पड़ता है । इसकी चोंच और पैर पीले तथा सिर गर्दन और छाती हलकी भूरी होती है । †(२) [हिं० चपटा] वह जूता जिसकी एड़ी उठी न हो । चपाट जूता ।

चप्पड़–संज्ञा पुं० दे० "चिप्पड़" ।

चप्पन–संज्ञा पुं० [हिं० चपना = दबना] छिछला कटोरा । दबी हुई वा नीची बारी का कटोरा ।

चप्पल–संज्ञा पुं० [हिं० चपटा] (१) एक प्रकार का जूता जिसकी एड़ी चिपटी होती है । वह जूता जिसकी एड़ी पर दीवार न हो । (२) वह लकड़ी जिस पर जहाज़ की पतवार या और कोई खंभा जड़ा होता है । (लश०)

चप्पल-सेहुँड़–संज्ञा पुं० [हिं चपटा + सेहुँड़] नागफनी ।

चप्पा–संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पाद, प्रा० चउप्पाव] (१) चतुर्थांश । चौथाई भाग । चौथाई हिस्सा । (२) थोड़ा भाग । न्यून अंश । (३) चार अंगुल वा चार बालिश्त जगह । (४) थोड़ी जगह । उ०—उस राज तक अधर में छत सी बाँध दो, चप्पा चप्पा कहीं न रहे, जहाँ धूम धड़क्का भीड़ भड़क्का न हो ।—इंशाअल्ला ।

चप्पी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपना = दबना] धीरे धीरे हाथ पैर दबाने की क्रिया । चरणसेवा ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चप्पू–संज्ञा पुं० [हिं० चाँपना] कलवारी । एक प्रकार का डाँड़ जो पतवार का काम भी देता है ।

क्रि० प्र०—मारना ।

चफाल†–संज्ञा पुं० [हिं० चौ + फाल] वह भूमि जिसके चारों ओर कीचड़ वा दलदल हो ।

चबक–संज्ञा स्त्री० [देश०] रह रह कर उठनेवाला दर्द । चिलक । टीस । हूल । पीड़ा ।

वि० [हिं० चपना] दब्बू । डरपोक ।

चबकना–क्रि० अ० [देश०] रह रह कर दर्द करना । टीसना । चमकना । चिलकना । हूल मारना । पीड़ा उठना ।

चबकी– संज्ञा स्त्री० [देश०] सूत वा ऊन की वह गुथी हुई रस्सी जिससे स्त्रियाँ केश बाँधती हैं । परांदा । मुड़बँधना । चँवरी ।

चबनी हड्डी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चबना + हड्डी] वह हड्डी जो भुरभुरी और पतली हो ।

चबला†–संज्ञा पुं० [देश०] पशुओं के मुँह का एक रोग । लाल रोग ।

चबवाना–क्रि॰ स॰ [हि॰ चबाना का प्रे॰] चबाने का काम कराना।

चबाना–क्रि॰ स॰ [सं॰ चर्वण] (१) दाँतों से कुचलना। जुगालना।

मुहा॰– चबा चबा कर बातें करना = स्वर बना बना कर एक एक शब्द धीरे धीरे बोलना। मठार मठार कर बातें करना। चबे को चबाना = एक ही काम को बार बार करना। किए हुए काम को फिर फिर करना। पिष्टपेषण करना। उ॰—बरस पचासक लौं विषय ही में वास कियो तऊ ना उदास भये चबे को चबाइए।—प्रिया॰।

† (२) दाँत से काटना। दरदरना।

चबारा†–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चौबारा] चौबारा। घर के ऊपर का बँगला। उ॰—उज्ज्वल अखंड खंड सातएँ महल महामंडल चबारो चंद मंडल की चोट ही।—देव।

चबाव–संज्ञा पुं॰ दे॰ "चवाव"।

चबूतरा–संज्ञा पुं॰ [सं॰ चत्वाल हिं॰ चौतरा] (१) चौतरा। बैठने के लिये चौरस बनाई हुई ऊँची जगह। † (२) कोतवाली। बड़ा थाना।

चबेना–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चबाना] चबा कर खाने के लिये सूखा भुना हुआ अनाज का दाना। चर्वण। भूँजा।

चबेनी–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चबाना] (१) तली दाल मिठाई आदि जो बरातियों को जल-पान के लिये दी जाती है। (२) जलपान का सामान। (३) जलपान का मूल्य।

चब्बा†–संज्ञा पुं॰ दे॰ "चौवा"।

चब्बू†–वि॰ [हिं॰ चबाना] बहुत चबानेवाला। बहुत खानेवाला।

चब्भू†–वि॰ दे॰ "चब्बू"।

चभोा†–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चमकना] दूसरे का दिया हुआ गोता। डुब्बी। डुबकी।

क्रि॰ प्र॰—देना।

चभक–संज्ञा [अनु॰] पानी में किसी वस्तु के डूबने का शब्द।

विशेष—'से' विभक्ति के साथ ही क्रि॰ वि॰ वत् आता है।

† संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] काटने वा डंक मारने की क्रिया।

चभड़ चभड़–संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] (१) वह शब्द जो किसी वस्तु को खाते समय मुँह के हिलने आदि से होता है। (२) कुत्ते, बिल्ली आदि के जीभ से पानी पीने का शब्द।

चभाना–क्रि॰ स॰ [हिं॰ 'चाभना' का प्रे॰] खिलाना। भोजन कराना।

चभोक†–संज्ञा पुं॰ [देश॰] बेवकूफ। मूर्ख। गावदी।

चभोकना†–क्रि॰ स॰ [हिं॰ चुभकी] (१) डुबाना। गोता देना। (२) भिगोना। तर करना।

चभोरना–क्रि॰ [हिं॰ चुभकी] (१) डुबोना। गोता देना। (२) आप्लावित करना। तर करना। भिगोना। उ॰—(क) घेवर अति घिरत चभोरे। लै खाँड उपर तर बोरे।—सूर। (ख) मीठे अति कोमल हैं नीके। ताते तुरत चभोरे घी के। —सूर।

चमंक–संज्ञा पुं॰ दे॰ "चमक"।

चमक–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ चमत्कृत] (१) प्रकाश। ज्योति। रोशनी। जैसे, आग या सूर्य की चमक, बिजली की चमक। (२) कांति। दीप्ति। आभा। झलक। दमक। जैसे, सोने की चमक, कपड़े की चमक।

यौ॰—चमक दमक। चमक चाँदनी।

मुहा॰—चमक देना वा मारना = चमकना। झलकना। चमक लाना = चमक उत्पन्न करना। झलकाना।

(३) कमर आदि का वह दर्द जो चोट लगने वा एक बारगी अधिक बल पड़ने के कारण होता है। लचक। चिक। झटका। जैसे, उसकी कमर में चमक आ गई है।

क्रि॰ प्र॰—आना।—पड़ना।

चमक-चाँदनी–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चमक + चाँदनी] बनी ठनी रहनेवाली दुश्चरित्रा स्त्री।

चमक दमक–संज्ञा स्त्री॰ (१) दीप्ति। आभा। झलक। तड़क भड़क। (२) ठाट बाट। लक दक। उ॰—दरबार की चमक दमक देख कर लोग दंग हो गए।

चमकदार–वि॰ [हिं॰ चमक + फ़ा॰ दार] जिसमें चमक हो। चमकीला। भड़कीला।

चमकना–क्रि॰ अ॰ [हिं॰ चमक] (१) प्रकाश वा ज्योति से युक्त दिखाई देना। प्रकाशित होना। देदीप्यमान होना। प्रभामय होना। जगमगाना। जैसे, सूर्य्य का चमकना, आग का चमकना।

संयो॰ क्रि॰—उठना।—जाना।

(२) कांति वा आभा युक्त होना। झलकना। भड़कीला होना। दमकना। जैसे, सोने चाँदी का चमकना, कपड़े का चमकना। (३) कीर्त्ति लाभ करना। प्रसिद्ध होना। समृद्धि लाभ करना। श्रीसम्पन्न होना। उन्नति करना। उ॰—देखो, वहां जाते ही वे कैसे चमक गए। (४) वृद्धि प्राप्त करना। बढ़ना। बढ़ती पर होना। समृद्ध होना। तरक्की पर होना। जोर पर होना। उ॰—आज कल उनकी वकालत ख़ूब चमकी है।

मुहा॰—किसी की चमकना = किसी की श्रीवृद्धि होना। किसी की बढ़ती और कीर्त्ति होना।

(५) चौंकना। भड़कना। चंचल होना। (घोड़े आदि के लिये) उ॰—चमक तमक हाँसी सिसक मसक झपट लपटानि। जेहि रति सों राते मुकत और मुकति अति हानि।—बिहारी। (६) फुरती से खसक जाना। झट से निकल जाना। उ॰—सखा साथ के चमकि गए सब गह्यो श्याम कर धाइ। और न जानि जान मैं दीनो तुम कहँ जाहु पराइ।—सूर।

(७) एक बारगी दर्द हो उठना। हिलने डोलने में किसी अंग की स्थिति में विपर्य्यय वा गड़बड़ होने से उस अंग में सहसा तनाव लिए हुए पीड़ा उत्पन्न होना। उ०—बोझ उठाने में उसकी कमर चमक गई है। (८) मटकना। उँगलियाँ आदि हिला कर भाव बताना (जैसा कि स्त्रियाँ प्रायः करती हैं)। (९) मटक कर कोप प्रकट करना (१०) लड़ाई ठनना। झगड़ा होना। उ०—आज कल उन दोनों के बीच खूब चमक रही है। (११) कमर में चिक आना। अधिक बल पड़ने वा चोट पहुँचने के कारण कमर में दर्द उठना। झटका लगना। लचक आना। उ०—बोझ इतना भारी था कि उसे उठाने में कमर चमक गई।

क्रि० प्र०—जाना।

चमकनी—वि० स्त्री० [हिं० चमकना] (१) चमक जानेवाली। जल्दी चिढ़ वा भड़क जानेवाली। (२) हावभाव करनेवाली।

चमकवाना—क्रि० स० ['चमकाना' का प्रे०] चमकाने का काम कराना।

चमकाना—क्रि० स० [हिं० चमकना] (१) चमकीला करना। चमक लाना। दीप्तिमान् करना। कांति लाना। ओपना। झलकाना। (२) उज्वल करना। निर्मल करना। साफ़ करना। झक करना। (३) भड़काना। चौंकाना। (४) चिढ़ाना। खिझाना। (५) घोड़े को चंचलता के साथ बढ़ाना। (६) भाव बताने के लिये उँगली आदि हिलाना। मटकाना। जैसे, उँगली चमकाना।

चमकारा—संज्ञा पुं० [सं० चमत्कार] चमक। प्रकाश। चकाचौंध उत्पन्न करनेवाला प्रकाश।

चमकारी*—संज्ञा स्त्री० [सं० चमत्कार] चमक। प्रकाश। उ०—अधरबिंब दसनन की सोभा दुति दामिनि चमकारी।—सूर।
वि० चमकीली।

चमकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमक] कारचोबी में रुपहले सुनहले तारों के छोटे छोटे गोल या चौकोर चिपटे टुकड़े जो ज़मीन भरने के काम में आते हैं। सितारे। तारे।

चमकीला—वि० [हिं० चमक + ईला (प्रत्य०)] (१) जिसमें चमक हो। चमकनेवाला। चमकदार। ओपदार। (२) भड़कदार। भड़कीला। शानदार।

चमकौवल—संज्ञा पुं० [हिं० चमक + औवल (प्रत्य०)] (१) चमकाने की क्रिया। (२) मटकाने की क्रिया।

चमक्को—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमकना] (१) चमकने मटकनेवाली स्त्री। चंचल और निर्लज्ज स्त्री। (२) कुलटा स्त्री। व्यभिचारिणी स्त्री। (३) जल्दी चिढ़ जानेवाली स्त्री। झल्लानेवाली स्त्री। झगड़ालू स्त्री।

चमगादड़—संज्ञा पुं० [सं० चर्मचटका, पं० चमाचिचड़ी, हिं० चमगिद्दी] एक उड़नेवाला बड़ा जंतु जिसके चारों पैर परदार होते हैं। यह ज़मीन पर अपने पैरों से चल फिर नहीं सकता, या तो हवा में उड़ता रहता है या किसी पेड़ की डाल में चिपटा रहता है। दिन के प्रकाश में यह बाहर नहीं निकलता, किसी अँधेरे स्थान में पैर ऊपर और सिर नीचे करके औंधा लटका रहता है। इनके झुंड के झुंड पुराने खंडहरों आदि में लटके पाए जाते हैं। इस जंतु के कान बड़े बड़े होते हैं और उनमें आहट पाने की बड़ी शक्ति होती है। यद्यपि यह जंतु हवा में बहुत ऊपर तक उड़ता है पर उसमें चिड़ियों के लक्षण नहीं हैं। इसकी बनावट चूहे की सी होती है, इसे कान होते हैं और यह अंडा नहीं देता, बच्चा देता है। अगले पर बहुत लंबे होते हैं और उनके छोरों के पास से पतली हड्डियों की तीलियाँ निकली होती हैं, जिनके बीच में झिल्ली मढ़ी होती है। यही झिल्ली पर का काम देती है। तीलियों के सहारे से यह जंतु झिल्ली को छाते की तरह फैलाता और बंद करता है। चमगादड़ प्रायः कीड़े मकोड़े और फल खाता है। चमगादड़ अनेक प्रकार के होते हैं कुछ तो छोटे छोटे होते हैं और कुछ इतने बड़े होते हैं कि परों को दोनों ओर फैला कर नापने से वे गज़ डेढ़ गज़ ठहरते हैं।

चमचम—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बँगला मिठाई जो दूध फाड़ कर उसके छेने से बनती है।
क्रि० वि० दे० "चमाचम"।

चमचमाना—क्रि० अ० [हिं० चमक] चमकना। प्रकाशमान होना। दीप्तिमान होना। झलकना। दमकना। उ०—बादर घुमड़ि घुमड़ि आए ब्रज पर बरषत कारे घूम घटा अति ही जल। चपला अति चमचमाति ब्रज-जन सब उर डरात टेरत शिशु पिता मात ब्रज गलबल।—सूर।
क्रि० स० चमकाना। झलकाना। चमक लाना। दमक लाना।

चमचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० । सं० चमस] [स्त्री० अल्प० चमची] (१) डाँड़ी लगी हुई एक प्रकार की छोटी कटोरी या पात्र जिससे दूध, चाय आदि उठा उठा कर पीते हैं। एक प्रकार की छोटी कलछी। चम्मच। डोई। कफ़चा। † (२) चिमटा। (३) नाव में डाँड़ का चौड़ा अग्रभाग। हाथा। हलेसा। पँगई। बैठा। (४) कोयला निकालने का एक प्रकार का फावड़ा। डूँगा। (५) जहाज़ के दरजों में अलकतरा ढालने की चोंचदार कलछी। (लश०)

चमचिचड़—वि० [हिं० चाम + चिचड़ी] चिचड़ी वा किलनी की तरह चिपटनेवाला। पिंड वा पीछा न छोड़नेवाला।

चमची–संज्ञा स्त्री० [हिं० चमचा] (१) छोटा चम्मच। (२) आचमनी। (३) छोटा चिमटा। (४) घुला हुआ चूना और कत्था निकालने और पान पर फैलाने की चिपटे और चौड़े मुँह की सलाई।

चमजुई–संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मयूका] (१) एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो पशुओं और कभी कभी मनुष्यों के शरीर पर उत्पन्न हो जाता है। एक प्रकार की बहुत छोटी किलनी। चिचड़ी। (२) चिचड़ी की तरह चिमटनेवाली वस्तु। पीछा न छोड़नेवाली वस्तु। जल्दी न जानेवाली वस्तु वा व्यक्ति। उ०—जगमगी जोन्हैं ज्वाल जालन सों जारती न चमजोई जामिनि जुगत सम ह्वै जाती क्यों ?—देव।

चमजोई–संज्ञा स्त्री० दे० "चमजुई"।

चमटना†–क्रि० स० दे० "चिमटना"।

चमटा–संज्ञा पुं० दे० "चिमटा"।

चमड़ा–संज्ञा पुं० [सं० चर्म] (१) प्राणियों के सारे शरीर का वह ऊपरी आवरण जिसके कारण मांस नसें आदि दिखाई नहीं देतीं। चर्म। त्वचा। जिल्द।

विशेष—चमड़े के दो विभाग होते हैं, एक भीतरी दूसरा ऊपरी। भीतरी ऐसे तंतु पात्र के रूप में होता है जिसके भीतर रक्त, मज्जा आदि रहते और संचरित होते हैं। इसमें छोटी छोटी गुलथियाँ होती हैं। स्वेदधारक गुलथियाँ एक नली के रूप में होती हैं जिसका ऊपरी मुँह बाहरी चमड़े के ऊपर तक गया रहता है और निचला भाग कई फेरों में घूमी हुई गुलझटी के रूप में होता है। इसका अंश न पिघल कर अलग होता है और न छिलके के रूप में छूटता है। बाहरी चमड़ा या तो समय समय पर झिल्ली के रूप में छूटता या पिघल कर अलग होता है। यह वास्तव में चिपटे कोशों से बनी हुई सूखी कड़ी झिल्ली है जो झड़ती है और जिसके नाखून, पंजे, खुर, बाल आदि बनते हैं।

मुहा०—चमड़ा उधेड़ना वा खींचना=(१) चमड़े को शरीर से अलग करना। (२) बहुत मार मारना।

विशेष—दे० "खाल"।

(२) प्राणियों के मृत शरीर पर से उतारा हुआ चर्म जिससे जूते, बैग आदि बहुत सी चीजें बनती हैं। खाल। चरसा।

विशेष—काम में लाने के पहले चमड़ा सिझा कर नरम किया जाता है। सिझाने की क्रिया एक प्रकार की रासायनिक क्रिया है जिसमें टनीन, फिटकिरी, कसीस आदि द्रव्यों के संयोग से चर्मस्थित द्रव्यों में परिवर्त्तन होता है। भारतवर्ष में चमड़े को सिझाने के लिये उसे बबूल, बहेड़े, कत्थे, बलूत आदि की छाल के काढ़े में डुबाते हैं। पशु भेद से चमड़ों के भिन्न भिन्न नाम होते हैं। जैसे, बरदी (बैल का), भैंसौरी (भैंस का), गोखा (गाय का), किरकिल, कीमुख्त (गदहे या घोड़े का दानेदार), मुरदारी (मरी लाश का), साबर, हुलानी इत्यादि।

मुहा०—चमड़ा सिझाना=चमड़े को बबूल की छाल, सज्जी, नमक आदि के पानी में डाल कर मुलायम करना।

(३) छाल। छिलका।

चमड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चमड़ा] चर्म। त्वचा। खाल।

मुहा०—दे० "खाल"।

चमत्करण–संज्ञा पुं० [सं०] चमत्कार करने या होने की क्रिया।

चमत्कार–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चमत्कारी, चमत्कृत] (१) आश्चर्य्य। विस्मय। (२) आश्चर्य्य का विषय। वह जिसे देख कर चित्त में विस्मययुक्त आह्लाद उत्पन्न हो। अद्भुत व्यापार। विचित्र घटना। असाधारण और अलौकिक बात। करामात। (३) अनूठापन। विचित्रता। विलक्षणता। उ०—इस कविता में कोई चमत्कार नहीं है। (४) डमरू। (५) अपामार्ग। चिचड़ा।

चमत्कारक–वि० [सं०] चमत्कार उत्पन्न करनेवाला। आश्चर्य्यजनक। विलक्षण। अनूठा।

चमत्कारी–वि० [सं०] [स्त्री० चमत्कारिणी] (१) जिसमें चमत्कार हो। जिसमें कुछ विलक्षणता हो। अद्भुत। (२) चमत्कार दिखानेवाला। अद्भुत दृश्य उपस्थित करनेवाला। विलक्षण बातें करनेवाला। करामाती।

चमत्कृत–वि० [सं०] आश्चर्य्यित। विस्मित।

चमत्कृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्चर्य्य। विस्मय।

चमन–संज्ञा पुं० [फा०] (१) हरी क्यारी। (२) फुलवारी। घर के भीतर का छोटा बगीचा। (३) गुलजार बस्ती। रौनकदार शहर।

चमर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चमरी] (१) सुरागाय। (२) सुरागाय की पूँछ का बना चँवर। चामर। (३) एक दैत्य का नाम।

चमरख–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाम+रखा] मूँज वा चमड़े की बनी हुई चकती जो चरखे के आगे की ओर छोटी पिढ़ई के आस पास की खूँटियों में लगी रहती है और जिसमें से होकर तकला वा टेकुवा घूमता है। चरखे की गुड़ियों में लगाने की चकती। उ०—(क) एक टका कै चरखा बनावल ढेबुवहिँ टेकुआ चमरख लावल।—कबीर। (ख) और कुबड़ी कमर हो गई सिर हो गया दगला। मुँह सूख के चमरख हुआ तन हो गया तकला।—नजीर।

वि० स्त्री० दुबली पतली (स्त्री०)। उ०—वह तो सूख कर चमरख हो गई है।

चमरखा–संज्ञा पुं० [सं० चर्मकशा] एक सुगंधित जड़ जो उबटन आदि में पड़ती है।

चमर-जुलाहा–संज्ञा पुं० [हिं० चमार+जुलाहा] हिंदू कपड़ा बुननेवाला। हिंदू जुलाहा। कोरी।

चमर-बकुलिया†–संज्ञा स्त्री० दे० "चमरबगली"।

चमरबगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमार + बगला] बगले की जाति की एक काले रंग की चिड़िया।

चमरशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं० चामर + शिखा] घोड़ों की कलगी। उ०—जबहि रास ढीली मैं कीनी। तानि देह अगली इन लीनी। चलत कनौती लई दबाई। चमरशिखा हूँ हलन न पाई।—लक्ष्मणसिंह।

चमरस—संज्ञा पुं० [हिं० चाम] वह घाव जो चमड़े वा जूते की रगड़ से हो जाय।

चमराखारी—संज्ञा पुं० [हिं० चमार + खारी] खारी नमक।

चमरावत—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमार] चमड़ा वा मोट आदि बनाने की मज़दूरी जो जिमींदार वा काश्तकार की ओर से चमारों को मिलती है।

चमरिक—संज्ञा पुं० [सं०] कचनार का पेड़।

चमरिया सेम—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की सेम। सेम का एक भेद।

चमरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुरागाय। (२) चँवरी। (३) मंजरी।

चमरू—संज्ञा पुं० [देश०] चमड़ा। खाल। चरसा। (लश०)

चमरोर—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ जिसकी छाया बहुत घनी होती है।

चमरौट—संज्ञा पुं० [हिं० चमार + औट (प्रत्य०)] खेत, फसल आदि का वह भाग जो गाँव में चमारों को उनके काम के बदले में मिलता है।

चमरौधा—संज्ञा पुं० दे० "चमौवा"।

चमला—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्प० चमली] भीख माँगने का ठीकरा। भिक्षापात्र।

चमस—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्प० चमसी] (१) सोमपान करने का चम्मच के आकार का एक यज्ञपात्र जो पलाश आदि की लकड़ी का बनता था। (२) कलछा। चम्मच। (३) पापड़। (४) लड्डू। (५) उर्द का आटा। धुआँस। (६) एक ऋषि का नाम। (७) नौ योगीश्वरों में से एक।

चमसा—संज्ञा पुं० [सं० चमस] चमचा। चम्मच। यज्ञपात्र।
‡ संज्ञा पुं० दे० "चौमासा"।

चमसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चम्मच के आकार का लकड़ी का का एक यज्ञपात्र। (२) उर्द, मूँग, मसूर आदि की पीठी।

चमसोद्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभासक्षेत्र के पास का एक तीर्थ।
विशेष—महाभारत में लिखा है कि सरस्वती नदी यहीं अदृश्य हुई है। यहाँ पर स्नान करने का बड़ा फल लिखा है।

चमाऊ*—संज्ञा पुं० [सं० चामर] चमर। चामर। चँवर। उ०—हाड़ा, रायठौर, कछवाहे, गौर और रहे अटल चकत्ता को चमाऊ धरि डरि कै।—भूषण।
संज्ञा पुं० दे० "चमौवा"।

चमाचम—वि० [हिं० चमकना का अनु०] उज्ज्वल कांति के सहित। झलक के साथ। उ०—देखो बरतन कैसे चमाचम चमक रहे हैं।

चमार—संज्ञा पुं० [सं० चर्मकार] [स्त्री० चमारिन, चमारी] चमड़े का काम करनेवाला। एक नीच जाति जो चमड़े का काम बनाती है।
यौ०—चमार चौदस = (१) चमारों का उत्सव। (२) वह धूम-धाम जो छोटे और दरिद्र लोग इतरा कर करते हैं। चार दिन का जलसा।

चमारनी †—संज्ञा स्त्री० दे० "चमारी"।

चमारिन †—संज्ञा स्त्री० दे० "चमारी"।

चमारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमार] (१) चमार जाति की स्त्री। चमार की स्त्री। (२) चमार का काम। (३) कमल का वह फूल जिसमें कमलगट्टे के ज़ीरे ख़राब हो जाते हैं।

चमियारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पद्माकाठ।

चमीकर—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक खान जिससे सोना निकलता था। (इसी से सोने को चामीकर कहते हैं।)

चमू—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेना। फ़ौज। (२) नियत संख्या की सेना जिसमें ७२९ हाथी, ७२९ रथ, २१८७ सवार और ३६४५ पैदल होते थे।

चमूकन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की किलनी जो चौपायों के शरीर में चिमटी रहती है।

चमूचर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिपाही। (२) सेनापति।

चमूरु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग।

चमूहर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

चमेठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पालकी के कहारों की एक बोली।
विशेष—सवारी लेकर जब कहार खेतों में चलता है और रास्ते में अरहर, गेहूँ, तीसी आदि की खूँटियाँ पड़ती हैं तो उनसे बचने के लिये अगला कहार, 'चमेठी' 'चमेठी' कह कर पिछले कहारों को सावधान करता है।

चमेलिया—वि० [हिं०] चमेली के रंग का। सोनजर्द।

चमेली—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पकवेलि। यद्यपि वैद्यक के निघंटु में चम्वेली शब्द आया है पर वह संस्कृत नहीं प्रतीत होता] (१) एक झाड़ी वा लता जो अपने सुगंधित फूलों के लिये प्रसिद्ध है। इसमें लंबी पतली टहनियाँ निकलती हैं जिसके दोनों ओर पतली सींकों में लगी हुई छोटी छोटी पत्तियाँ होती हैं। चमेली दो प्रकार की होती है। एक साधारण चमेली जिसमें सफ़ेद रंग के फूल लगते हैं और दूसरी ज़र्द चमेली जिसमें पीले रंग के फूल लगते हैं। फूलों की महक बड़ी मीठी होती है। चमेली के फूलों से तेल बासा जाता है जो चमेली का तेल कहलाता है। (२) मल्लाहों की बोली में पानी की वह थपेड़

जो ऊँची लहर उठने के कारण दोनों ओर लगती है और जिसके कारण प्रायः नावें डूब जाती हैं।

चमोई–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जिसकी छाल से नैपाली कागज़ बनाया जाता है। इसे धनकोटा, सतपूरा, सतबरसा इत्यादि भी कहते हैं। यह पेड़ सिकिम से भूटान तक होता है।

चमोटा–संज्ञा पुं० [हिं० चाम + ओटा (प्रत्य०)] पाँच छः अंगुल मोटे चमड़े का टुकड़ा जिस पर नाई छुरे को उसकी धार तेज़ करने के लिये बार बार रगड़ते हैं।

चमोटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाम + ओटा (प्रत्य०)] (१) चाबुक। कोड़ा। उ०—(क) माखन चोर री मैं पायो। मैं जु कही सखी हेतु कहा है भाजन लगत भुभायो। जौ चाहौ तो जान क्यों पैहै बहुत दिननु है खायो। बार बार हौ ढूँका लागी मेरी घात न आयो। नोई नेत की करौं चमोटी घूँघट में डरवायो। विहँसत निकसि रही दो दतियाँ तब लै कंठ लगायो। मेरे लाल को मारि सकै को रोहिनि गहि हलरायो। सूरदास प्रभु बालक लीला विमल विमल यश गायो।—सूर। (ख) खोटी परै उचटै सिर चोटी चमोटी लगै मनो काम गुरू की। (२) पतली छड़ी। कमची। बेंत। उ०—चमोटी लगै छमाछम विद्या आवै झमाझम।—पाठशाला के लड़के। (३) वह चमड़ा जिसे कैदियों की बेड़ियों में लोहे की रगड़ से बचने के लिये लगाते हैं। (४) चमड़े का वह टुकड़ा जिस पर नाई छुरे की धार घिसते हैं। (५) चमड़े का चार पाँच हाथ लंबा तस्मा जो खराद वा सान में लपेटा रहता है और जिसे खींचने से खराद वा सान का चक्कर घूमता है।

चमौवा–संज्ञा पुं० [हिं० चाम] वह भद्दा जूता जिसका तला चमड़े से सिया गया हो। चमरौधा।

चम्मच–संज्ञा पुं० [फ़ा० । सं० चमस्] एक प्रकार की हलकी कलछी जिससे दूध, चाय तथा और भी खाने पीने की चीजें चलाते और निकालते हैं।

चम्मल–संज्ञा पुं० दे० "चमला"।

चम्मोरानी–संज्ञा पुं० [?] लड़कों का एक खेल जिसे 'सात समुंदर' भी कहते हैं।

चम्रिष–संज्ञा स्त्री० [सं०] चम्मच में रक्खा हुआ अन्न वा खाने की वस्तु।

चम्रीष–वि० [स०] चम्मच में रक्खा हुआ।

चय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। ढेर। राशि। (२) धुस्स। टीला। ढूह। (३) गढ़। किला। (४) किसी किले वा शहर के चारों ओर रक्षा के लिये बनाई हुई दीवार। धुस। कोट। चहार-दीवारी। प्राकार। (५) बुनियाद जिसके ऊपर दीवार बनाई जाती है। नींव। (६) चबूतरा। (७) चौकी। ऊँचा आसन। (८) कफ़, वात या पित्त की विशेष अवस्था। (९) यज्ञ के लिये अग्नि आदि का एक विशेष संस्कार। चयन।

चयन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इकट्ठा करने का कार्य्य। संग्रह। संचय। (२) चुनने का कार्य्य। चुनाई। (३) यज्ञ के लिये अग्नि का संस्कार। (४) क्रम से लगाने की क्रिया। चुनने की क्रिया।

*†संज्ञा पुं० दे० "चैन"।

चर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा की ओर से नियुक्त किया हुआ वह मनुष्य जिसका काम प्रकाश या गुप्त रूप से अपने अथवा पराये राज्यों की भीतरी दशा का पता लगाना हो। गूढ़ पुरुष। उ०—पठये अवध चतुर चर चारी।—तुलसी। (२) किसी विशेष कार्य्य के लिये कहीं भेजा हुआ आदमी। दूत। क़ासिद। (३) वह जो चले। जैसे—अनुचर, खेचर, निशिचर। (४) ज्योतिष में देशांतर जिसकी सहायता दिनमान निकालने में ली जाती है (५) खंजन पक्षी। (६) कौड़ी। कपर्दिका। (७) मंगल। भौम। (८) पासे से खेला जानेवाला एक प्रकार का जूआ। (९) नदियों के किनारे या संगमस्थान पर की वह गीली भूमि जो नदी के साथ बह कर आई हुई मिट्टी के जमने से बनती है। (१०) दलदल। कीचड़। (११) नदियों के बीच में बालू का बना हुआ टापू। (१२) छिछला पानी। (लश०) (१३) नदी का तट। (लश०) (१४) नाव वा जहाज़ में एक गूढ़े (आड़ी लगी हुई लकड़ी का बाहर की ओर निकला हुआ भाग) से दूसरे गूढ़े के बीच का स्थान। (लश०)

वि० [सं०] (१) आप से आप चलनेवाला। जंगम। जैसे–चर जीव, चराचर। (२) एक स्थान पर न ठहरनेवाला। अस्थिर। जैसे, चर राशि। चर नक्षत्र। (३) खानेवाला। आहार करनेवाला।

संज्ञा [अनु०] कागज़ कपड़े आदि के फटने का शब्द।

विशेष—खट, पट, चट आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वत् होता है, अतः इसका लिंगविचार व्यर्थ है।

चरई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चारा] पत्थर पर ईंट आदि का बना हुआ वह गहरा गड्ढा जिसमें जानवरों को चारा या पानी दिया जाता है।

चरक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूत। क़ासिद। चर। (२) गुप्तचर। भेदिया। जासूस। (३) वैद्यक के एक प्रधान आचार्य्य जो शेषनाग के अवतार माने जाते हैं, और जिनका रचा हुआ 'चरकसंहिता' वैद्यक का सर्वमान्य ग्रंथ है। (४) मुसाफ़िर। बटोही। पथिक। (५) दे० "चटक"। (६)

चरकसंहिता नाम का ग्रंथ। (७) बौद्धों का एक संप्रदाय। (८) भिखमंगा। भिक्षुक।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की मछली। उ०—मारे चरक चाल्ह पर हासी। जल तजि कहाँ जाँय जलवासी।—जायसी।

संज्ञा पुं० [सं० चक्र] कुष्ट का दाग। सफ़ेद दाग। फूल।

चरकटा—संज्ञा पुं० [हिं० चारा + काटना] (१) ऊँट या हाथी के लिये चारा काट कर लानेवाला आदमी। (२) तुच्छ मनुष्य। छोटे वित्त का आदमी।

चरकसंहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] चरक मुनि का बनाया हुआ वैद्यक संबंधी एक प्रसिद्ध और सर्वमान्य ग्रंथ।

चरका-संज्ञा पुं० [फ़ा० चरक] (१) हलका घाव। ज़ख्म।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

(२) गरम धातु से दागने का चिह्न। (३) हानि। नुकसान। धक्का।

क्रि० प्र०—देना।

संज्ञा पुं० [देश०] मडुवा नामक अन्न का एक भेद।

चरकाल-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ज्योतिष के अनुसार समय का कुछ विशेष अंश जिसका काम दिनमान स्थिर करने में पड़ता है। (२) वह समय जो कि ग्रह को एक अंश से दूसरे अंश पर जाने में लगता है।

चरख-संज्ञा पुं० [फ़ा० चर्ख] (१) पहिए के आकार का अथवा इसी प्रकार का और कोई घूमनेवाला गोल चक्कर। चाक।

विशेष—इस प्रकार के चक्कर की सहायता से कूएँ से पानी खींचा जाता है, आतिशबाज़ी छोड़ी जाती है और इसी प्रकार के और बहुत से काम होते हैं।

(२) खराद।

यौ०—चरखकश।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।

(३) लकड़ी का एक ढांचा जिस में चार अंगुल की दूरी पर दो छोटी चरखियां लगी रहती हैं और जिनके बीच में रेशम या कलाबत्तू लपेटा जाता है। (४) सूत कातने का चरखा। (५) कुम्हार का चाक। (६) गोफन। ढेलवाँस। (७) वह गाड़ी जिस पर तोप चढ़ी रहती है। उ०—चरखिनु आकरषैं सदजल बरषैं परदल धरषैं भले भले।—सूदन। (८) तेंदुए की जाति का लकड़बग्घा नाम का जानवर। (९) बाज की जाति की एक शिकारी चिड़िया।

चरखकश-वि० [फ़ा चर्खकश] (१) खराद की डोरी या पट्टा खींचनेवाला। (२) खराद चलानेवाला।

चरखपूजा-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चर्ख + पूजा] एक प्रकार की पूजा जो चैत की संक्रांति को होती है। इसका आयोजन ७ या ८ दिन पहले से होता है। यह पूजा शिव को प्रसन्न करने के लिये की जाती है। इस में भक्त लोग गाते बजाते और नाचते हुए भक्ति में उन्मत्त से हो जाते हैं, यहाँ तक कि कोई कोई अपनी जीभ छेदते हैं, कोई लोहे के काँटे पर कूदते हैं और कोई अपनी पीठ को बरछे से नाथ कर चारों ओर घूमते हैं। जिस खंभे पर इस बरछे को लगा कर चारों ओर घूमते हैं उसे चरख कहते हैं। ये सब क्रियाएं एक प्रकार के संन्यासी करते हैं। सरकारी क़ानून के कारण अब ये क्रियाएँ बहुत संक्षिप्त होती हैं। बृहद्धर्म्मपुराण नामक ग्रंथ में इस पूजा का विधान और फल लिखा हुआ है। ऐसी कथा है कि चैत्र की संक्रांति को बाण नामक एक शैव राजा ने भक्ति के आवेश में अपने शरीर का रक्त चढ़ा कर शिव को प्रसन्न किया था।

चरखा-संज्ञा पुं० [फ़ा० चर्ख] (१) पहिए के आकार का अथवा इसी प्रकार का कोई और घूमनेवाला गोल चक्कर। चरख। (२) लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का यंत्र जिसकी सहायता से ऊन, कपास या रेशम आदि को कात कर सूत बनाते हैं। इसमें एक ओर बड़ा गोल चक्कर होता है जिसे चरखी कहते हैं और जिसमें एक ओर एक दस्ता लगा रहता है। दूसरी ओर लोहे का एक बड़ा सूआ होता है जिसे तकुआ या तकला कहते हैं। जब चरखी घुमाई जाती है तब एक पतली रस्सी की सहायता से जिसे माला कहते हैं, तकुआ घूमने लगता है। उसी तकुए के घूमने से उसके सिरे पर लगे हुए ऊन या कपास आदि का कत कर सूत बनता जाता है। रहट।

क्रि० प्र०—कातना।—चलाना।

(३) कुएँ से पानी निकालने का रहट। (४) ऊँख का रस निकालने के लिये बनी हुई लोहे की कल। (५) एक प्रकार का बेलन जिससे पौठिए तार खींचते हैं। (६) सूत लपेटने की गराड़ी। चरखी। रील। (७) गराड़ी। घिरनी। (८) बड़ा या बेडौल पहिया। (९) रेशम खोलने का 'उड़ा' नाम का औज़ार। (१०) गाड़ी का वह ढांचा जिसमें जोत कर नया घोड़ा निकालते हैं। खड़खड़िया। (११) वह स्त्री या पुरुष जिसके सब अंग बहुत बुढ़ापे के कारण शिथिल हो गए हों। (१२) झगड़े बखेड़े या झंझट का काम।

क्रि० प्र०—निकालना।

(१३) कुश्ती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब जोड़ (विपक्षी) नीचे होता है। इसमें जोड़ की दाहिनी ओर बैठ कर और अपनी बांई टाँग जोड़ की दाहिनी टाँग में भीतर से डाल कर निकालते हैं और अपनी दाहिनी टाँग जोड़ की गरदन में डाल कर दोनों पैर मिला कर डंड करते हैं जिससे जोड़ चित हो जाता है।

चरखी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चरखा का स्त्री अल्प०] (१) पहिए की तरह घूमनेवाली कोई वस्तु। (२) छोटा चरखा।

(३) कपास ओटने की चरखी। बेलनी। ओटनी। (४) सूत लपेटने की फिरकी। (५) धनुष के आकार का लकड़ी का एक यंत्र जिसमें एक खूँटी लगी रहती है और जिस की सहायता से मोटी रस्सियाँ बनाई जाती हैं। (६) कुएँ से पानी खींचने आदि की गराड़ी। घिरनी। (७) पतली कमाचियों से बना हुआ जोलाहों का एक औज़ार जिस की सहायता से कई सूत एक में लपेटे जाते हैं। (८) कुम्हार का चाक। (९) एक प्रकार की आतिशबाज़ी जो छूटने के समय खूब घूमती है।

चरखे का गलखोड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब विपक्षी उलटे उखाड़ से फेंकना चाहता है तब उसकी पीठ पर से चरखे के समान करवट ले कर अपनी टाँग उसकी गर्दन पर चढ़ाते हैं और उसका एक हाथ और एक पाँव गलखोड़े से बाँध कर उसे गिरा देते हैं। इसी को चरखे का गलखोड़ा कहते हैं।

चरग†—संज्ञा पुं० [फ़ा० चरग] (१) बाज़ की जाति की एक शिकारी चिड़िया। चरख। उ०—चरग चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की पीर। तुलसी परबस हाड़ पर परिहैं पुहुमी नीर।—तुलसी। (२) लकड़बग्घा नामक जंतु जो कुत्तों का शिकार करता है।

चरगृह, चरगेह—संज्ञा पुं० दे० "चर राशि"।

चरचना—क्रि० स० [सं० चर्चन] (१) देह में चंदन आदि लगाना। उ०—चरचति चंदन अंग हरन अति ताप पीर के।—व्यास। (२) लेपना। पोतना। (३) भाँपना। अनुमान करना। समझ लेना। उ०—चरचहिँ चेष्टा परखहिँ नारी। निपट नाहिँ औषध तहँ वारी।

क्रि० स० [सं० अर्चन] पूजन करना। उ०—तबहिँ नंद जू कही स्याम सौं हमरे सुरपति पूजा। गोधन गिरि पै वाहि चरचिहै यह है मुखपूजा।—सूदन।

चरचरा—संज्ञा पुं० [अनु०] खाकी रंग की एक चिड़िया जिसकी छाती सफ़ेद होती है और जिसके शरीर के ऊपरी भाग पर चारखानेदार धारियाँ होती हैं। यह प्रायः ६ से १० अंगुल तक लंबा होता और समस्त भारत में पाया जाता है। इसका अंडा देने का कोई निश्चित समय नहीं है। इसके मुनिया (लाल, हरा, तेलिया आदि) और सिंघाड़ा आदि अनेक भेद हैं।

‡वि० दे० "चिड़चिड़ा"।

चरचराना—क्रि० अ० [अनु० चरचर] (१) चर चर शब्द के साथ टूटना या जलना। उ०—गगड़ गड़ गड़ान्यो खंभ फाट्यो चरचराय कै निकस्यो नर नाहर को रूप अति भयानो है। (२) घाव आदि का खुश्की से तनना और दर्द करना। चर्राना।

क्रि० स० चर चर शब्द के साथ (लकड़ी आदि) तोड़ना।

चरचराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरचराना + हट (प्रत्य०)] (१) चरचराना का भाव। (२) चर चर शब्द के साथ किसी चीज़ के टूटने या फटने का शब्द।

चरचा—संज्ञा स्त्री० दे० "चर्चा"। उ०—(क) हरिजन हरिचरचा जो करै। दासी सुत सो हिरदै धरै।—सूर। (ख) निज लोक बिसरे लोकपति घर की न चरचा चालहीं।—तुलसी। (ग) पुरवासियों के प्यारे राम के अभिषेक की उस चरचा ने प्रत्येक पुरवासी को हर्षित किया।—लक्ष्मणसिंह।

चरचारी*—संज्ञा पुं० [हिं० चरचा] (१) चरचा चलानेवाला। (२) निंदक। शिकायत करनेवाला। उ०—हौं हारी समुझाइ कै चरचारिहि डरै न। लगैं लगौंहैं नैन ये नित चित करत अचैन।—शृं० सत०।

चरचित—वि० दे० "चर्चित"।

चरज—संज्ञा पुं० [फ़ा० चरग] चरख नाम का पक्षी। उ०—हारिल चरज आय बंद परे। बनकुकरी जलकुकरी धरे।—जायसी।

चरजना*—क्रि० अ० [सं० चर्चन] (१) बहकाना। भुलावा देना। बहाली देना। उ०—चंचला चमाकैं चहूँ ओरन ते चाय भरी चरजि गई ती फेर चरजन लागी री।—पद्माकर। (२) अनुमान करना। अंदाज से लगाना। उ०—अरज गरज सुनि चरजि चित्त महँ हरज मरज बरकाई।—रघुराज

चरट—संज्ञा पुं० [सं०] खंजन पक्षी।

चरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पग। पैर। पाँव। कदम।

यो०—चरणपादुका। चरणपीठ। चरणसेवा।

मुहा०—चरण छूना = दंडवत या प्रणाम आदि करना। बड़े का अभिवादन करना। चरण देना = पैर रखना। उ०—जेहि गिरि चरण देइ हनुमंता।—तुलसी। चरण पड़ना = आगमन होना। कदम जाना। जैसे, जहँ जहँ चरण पड़ैं संतन के तहँ तहँ बंटाधार। चरण लेना = पैर पड़ना। पैर छूकर प्रणाम करना। चरण सेवा = (बड़ों की) सेवा शुश्रूषा।

(२) बड़ों का सान्निध्य। बड़ों की समीपता। बड़ों का संग उ०—ग्वाल सखा कर जोरि कहत हैं हमहिँ स्याम तुम जनि बिसरायहु। जहाँ जहाँ तुम देह धरत हौ तहाँ तहाँ जनि चरण छुड़ायहु।—सूर।

क्रि० प्र०—में आना।—में रखना।—में रहना।—छोड़ना।—छूटना।

(३) किसी छंद, श्लोक या पद्य आदि का एक पद। दल।

यौ०—चरणगुप्त।

(४) किसी पदार्थ का चतुर्थांश। किसी चीज़ चौथाई का भाग। जैसे, नक्षत्र का चरण, युग का चरण आदि। (५)

मूल। जड़। (६) गोत्र। (७) क्रम। (८) आचार। (९) विचरण करने का स्थान। घूमने की जगह। (१०) सूर्य्य आदि की किरण। (११) अनुष्ठान। (१२) गमन। जाना। (१३) भक्षण। चरने का काम।

चरणकरणानुयोग–संज्ञा पुं० [सं०] जैन साहित्य में वह ग्रंथ आदि जिसमें किसी के चरित्र पर बहुत ही सूक्ष्म रूप से विचार या व्याख्या की गई हो।

चरणगुप्त–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसके कई भेद होते हैं। इसमें कोष्टक बना कर अक्षर भरे जाते हैं जिनके पढ़ने के क्रम भिन्न भिन्न होते हैं। उ०—

इं	जी	सं	त	कि	रा	र	ली
द्र	त	गी	लै	ये	म	स	न
छु	गी	सं	त	भ	का	ब	दी

(दो०—इंद्रजीत संगीत लै किये राम रस लीन।
छुद्र गीत संगीत लै भये काम बस दीन।)

रा	का	रा	ज
मा	स	मा	स
रा	धा	मी	त
सा	ल	सी	सु

(दो०—राकाराज जराकारा मासमास समासमा।
राधा मीत तमी धारा साल सीसु सुसील सा।)

चरणचिह्न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पैरों के तलुए की रेखा। पाँव की लकीरें। (२) कीचड़। धूल या बालू आदि पर पड़ा हुआ पैर का निशान। (३) पत्थर आदि पर बनाया हुआ चरण के आकार का चिह्न जिसका पूजन होता है।

चरणतल–संज्ञा पुं० [सं०] पैर का तलुवा।

चरणदास–संज्ञा पुं० दिल्ली के रहनेवाले एक महात्मा साधु का नाम जो जाति के दूसर बनिये थे। इनका जन्म १७६० सं० वि० में और शरीरांत सं० १८३९ में हुआ था। इनके बनाए हुए कई एक ग्रंथ हैं जिनमें से 'स्वरोदय' बहुत प्रसिद्ध है। इन्होंने अपना एक पृथक् संप्रदाय चलाया था। इस संप्रदाय के साधु अब तक पाए जाते हैं और चरणदासी साधु कहलाते हैं।

चरणदासी–वि० [चरणदास] महात्मा चरणदास के संप्रदाय का। चरणदास का अनुयायी।

संज्ञा स्त्री० [सं० चरण + दासी] (१) स्त्री। पत्नी। (२) जूता। पनही।

चरणपर्व्व–संज्ञा पुं० [सं०] गुल्फ। एड़ी।

चरणपादुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खड़ाऊँ। पावड़ी। (२) पत्थर आदि पर बना हुआ चरण के आकार का चिह्न जिसका प्रायः पूजन होता है। चरणचिह्न।

चरणपीठ–संज्ञा पुं० [सं०] चरणपादुका। पाँवड़ी। खड़ाऊँ। उ०—(क) तुलसी प्रभु निज चरनपीठ मिस भरत प्रान रखवारो।—तुलसी। (ख) सिंहासन सुभग राम चरनपीठ धरत चालत सब राज काज आयसु अनुसरत। —तुलसी।

चरणसेवा–संज्ञा स्त्री० [सं० चरण + सेवा] पैर दबाना बड़ों की सेवा।

चरणा–संज्ञा पुं० [हिं० चरण] काछा।

विशेष—दे० "चरना"।

क्रि० प्र०—काछना।

संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों की योनि का एक रोग। इस रोग में मैथुन के समय स्त्री का रज बहुत जल्दी स्खलित हो जाता है।

चरणाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] अक्षपाद। गौतम।

चरणाद्रि–संज्ञा पुं० [सं०] चुनार नामक स्थान जो काशी और मिर्ज़ापुर के बीच में है। यहाँ एक छोटा सा पहाड़ है जिसकी एक शिला पर बुद्धदेव का चरण-चिह्न है। आज कल यह शिला एक मसजिद में रक्खी हुई है और मुसलमान उस पर के चिह्न को "क़दमेरसूल" बतलाते हैं।

चरणानुग–वि० [सं०] (१) अनुगामी। किसी बड़े के साथ या उसकी शिक्षा पर चलनेवाला। (२) शरणागत।

चरणामृत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पानी जिस में किसी महात्मा या बड़े के चरण धोये गये हों। पादोदक।

मुहा०—चरणामृत लेना = किसी महात्मा या बड़े के चरण धो कर पीना।

(२) एक में मिला हुआ दूध, दही, घी, शक्कर और शहद जिसमें किसी देवमूर्त्ति को स्नान कराया गया हो।

विशेष—हिंदू लोग बड़े पूज्य भाव से चरणामृत पीते हैं। चरणामृत बहुत ही थोड़ी मात्रा में पीने का विधान है।

क्रि० प्र०—लेना।

मुहा०—चरणामृत लेना = बहुत ही थोड़ी मात्रा में कोई तरल पदार्थ पीना।

चरणायुध–संज्ञा पुं० [सं०] मुरगा। अरुणशिखा।

चरणार्द्ध–वि० [सं०] (१) चरण या चतुर्थांश का आधा। किसी चीज का आठवाँ भाग। (२) किसी श्लोक वा छंद के पद का आधा भाग।

चरणि–संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य।

चरणोदक–संज्ञा पुं० [सं०] चरणामृत।

चरत–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा पक्षी जिसका शिकार किया जाता है।

विशेष—दे० "चीनी मोर"।

चरता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चलने का भाव। (२) पृथ्वी।

चरतिरिया†–संज्ञा स्त्री० [देश०] मिरजापुर के जिले में पैदा होनेवाली एक प्रकार की कपास जो मामूली होती है।

चरती–संज्ञा पुं० [हिं० चरना = खाना] वह जो व्रत न हो। व्रत के दिन उपवास न करनेवाला।

यौ०—बरती चरती।

चरत्व–संज्ञा पुं० [सं०] चलने का भाव।

चरथ–वि० [सं०] चलनेवाला। जंगम।

चरदास–संज्ञा स्त्री० [?] मथुरा जिले में होनेवाली एक प्रकार की कपास जो कुछ घटिया होती है।

चरन–संज्ञा पुं० दे० "चरण"।

विशेष—"चरन" के यौगिक आदि के लिये देखो "चरण" के यौगिक।

चर-नक्षत्र–संज्ञा पुं० [सं०] स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण और धनिष्ठा आदि कई नक्षत्र जिनकी संख्या भिन्न भिन्न आचार्य्यों के मत से अलग अलग है।

चरनचर†–संज्ञा पुं० [सं० चरणचर] पैदल सिपाही।

चरनदासी–संज्ञा स्त्री० [सं० चरण + दासी] जूता। पनही। (साधु)

चरनबरदार–संज्ञा पुं० [सं० चरण + फ़ा० बरदार] बड़े आदमियों का जूता उठाने और रखनेवाला नौकर।

चरना–क्रि० स० [सं० चर = चलना। मि० फ़ा० चरीदन] पशुओं का खेतों या मैदानों में घूम घूम कर घास चारा आदि खाना।

मुहा०—अक्ल का चरने जाना = दे० "अक्ल" के मुहावरे।

क्रि० अ० [सं० चर = चलना] घूमना फिरना। बिचरना। उ०—जोहिँ तें विपरीत क्रिया करिये। दुख से सुख मानि सुखी चरिये।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० चरण = पैर] काछा। उ०—इस बात के सुनते ही राजा ने चरना काछ कर उस देव को ललकारा।—लल्लू।

संज्ञा पुं० [देश०] सुनारों का एक औज़ार जिससे नकाशी करने में सीधी लकीर या लंबा चिह्न बनाया जाता है।

चरनायुध–संज्ञा पुं० दे० "दे० चरणायुध"। उ०—परै न पहर चरनायुध करैं न सोर पसरै न प्राची ओर कर दिनकर को।—रघुनाथ।

चरनि*–संज्ञा स्त्री० [सं० चर = गमन] चाल। गति। उ०—लसत कर प्रतिबिंब मनि आँगन घुटुरुवनि चरनि।—तुलसी।

चरनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चरना] (१) पशुओं के चरने का स्थान। चरी। चरागाह। (२) वह नाँद जिसमें पशुओं को खाने के लिये चारा दिया जाता है। (३) चौतरे के आकार का बना हुआ वह लंबा स्थान जिस पर पशुओं को चारा दिया जाता है। (४) पशुओं का आहार, घास चारा आदि। उ०—कमल बदन कुम्हिलात सबन के गौवन छाँड़ी तृन की चरनी।—सूर।

विशेष—कहीं कहीं चरही शब्द भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

चरन्नी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चवन्नी"।

चरपट–संज्ञा पुं० [सं० चर्पट] (१) चपत। तमाचा। थप्पड़। (२) किसी की वस्तु उठा कर भाग जानेवाला। चाईं। उचक्का। उ०—(क) जौ लौं जीवै तौ लौं हरि भजि रे मन और बात सब बादि। द्योस चारि के हला भला तूँ कहा लेइगो लादि। धनमद जोवनमद राजमद भूल्यो नगर विवादि। कहि हरिदास लोभ चरपट यों काहे की लगै फिरादि।—स्वामी हरिदास। (ख) चरपट चोर गँठिछोरा मिले रहहिँ तेहि नांच। जो तेहि हाट सजग रहइ गँठि ताकरि गइ बांच।—जायसी। (३) एक प्रकार का छंद। चर्पट। उ०—तोमर उनइस चरपट साता। हरियक आठ भुजंगप्रयाता।—विश्राम।

चरपनी–संज्ञा० स्त्री० [देश०] वेश्या का गाना। मुजरा। (वेश्याओं और सपर्दाइयों की परिभाषा)

चरपर–वि० दे० "चरपरा"।

चरपरा–वि० [अनु०] झालदार। तीता। स्वाद में तीक्ष्ण। (नमक, मिर्च, खटाई आदि के संयोग से यह स्वाद उत्पन्न होता है। उ०—(क) खंडहि कीन्ह आँब चरपरा। लौंग इलाची सो खँडबरा।—जायसी। (ख) मीठे चरपरे उज्ज्वल कौरा। हौंस होइ तो ल्याऊँ औरा।—सूर।

वि० [सं० चपल] चुस्त। तेज। फुरतीला।

चरपराना–क्रि० अ० [हिं० चरचर] घाव का चर्राना। घाव में खुश्की के कारण तनाव लिए हुए पीड़ा होना।

चरपराहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० चरपरा] (१) स्वाद की तीक्ष्णता। झाल। (२) घाव आदि की जलन। (३) द्वेष। डाह। ईर्ष्या।

चरफरा†–वि० दे० "चरपरा"।

चरफराना†*–क्रि० अ० [अनु०] तड़फड़ाना। तड़पना। उ०—चरफराहिँ मग चलहिँ न घोरे। बनमृग मनहु आनि रथ जोरे।—तुलसी।

चरब–वि० [फ़ा० चर्ब] तेज़ । तीखा । उ०—समर सरब से चरब शस्त्र सत परब सरिस धरि ।—गोपाल ।

यौ०—चरब ज़बानी = (१) बहुत अधिक और जल्दी जल्दी बोलना । (२) चिकनी चुपड़ी बातें करना । ख़ुशामद करना ।

चरबन†–संज्ञा पुं० [सं० चर्वण] भूना हुआ अन्न । चबैना । दाना ।

चरबाँक, चरबाक–वि० [फ़ा० चर्ब = तेज़] (१) चतुर । चालाक । होशियार । (२) शोख़ । निर्भय । निडर । चंचल । उ०—राखे है सु र मदन ये ऐसे ही चरबाँक । पैनी भौंहन की दरी अब नैननि कौं बाँक ।—रसनिधि ।

मुहा०—चरबाँक दीदा = (१) जिसकी दृष्टि चंचल हो । चंचल नेत्रवाला । (२) ढीठ । निडर । शोख़ ।

चरबा–संज्ञा पुं० [फ़ा० चरबः] प्रतिमूर्त्ति । नक़ल । ख़ाका ।

मुहा०—चरबा उतारना = (१) ख़ाका खींचना । नक़शा उतारना । चित्र खींचना । (२) किसी की नक़ल करना ।

चरबाना–क्रि० स० [सं० चर्म] ढोल पर चमड़ा मढ़ाना ।

चरबी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सफ़ेद या कुछ पीले रंग का एक चिकना गाढ़ा पदार्थ जो प्राणियों के शरीर में और बहुत से पौधों और वृक्षों में भी पाया जाता है । वैद्यक के अनुसार यह शरीर की सात धातुओं में से एक है और मांस से बनता है । अस्थि इसी का परिवर्त्तित और परिवर्द्धित रूप है । पाश्चिमात्य रासायनिकों के अनुसार सब प्रकार की चरबियाँ गंध और स्वाद-रहित होती हैं और पानी में घुल नहीं सकतीं । बहुत से पशुओं और वनस्पतियों की चरबियाँ प्रायः दो वा अधिक प्रकार की चरबियों के मेल से बनी होती हैं । इसका व्यवहार औषध के रूप में खाने, मरहम आदि बनाने, साबुन और मोमबत्तियाँ तैयार करने, इंजिनों या कलों में तेल की जगह देने और इसी प्रकार के दूसरे कामों में होता है । शरीर से बाहर निकाली हुई चरबी गरमी में पिघल और सरदी में जम जाती है । मेद । वपा । पीह ।

मुहा०—चरबी चढ़ना = मोटा होना । चरबी छाना = (१) (किसी मनुष्य या पशु आदि का) बहुत मोटा हो जाना । शरीर में मेद बढ़ जाना । (ऐसी अवस्था में केवल शरीर की मोटाई बढ़ती है, उसमें बल नहीं बढ़ता ।) (२) मदांध होना । गर्व के कारण किसी को कुछ न समझना । आँखों में चरबी छाना = दे० "आँख" के मुहावरे ।

चरभ–संज्ञा पुं० [सं०] चर राशि । चर गृह ।

चरभवन–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में चर राशि ।

चरम–वि० [सं०] अंतिम । हद दरजे का । सबसे बढ़ा हुआ । चोटी का । पराकाष्ठा का ।

संज्ञा पुं० (१) पश्चिम । (२) अंत ।

संज्ञा पुं० दे० "चर्म" ।

चरमकाल–संज्ञा पुं० [सं०] अंतकाल । मृत्यु का समय ।

चरमदृष्टि–संज्ञा स्त्री० दे० चर्मदृष्टि" ।

चरमर–संज्ञा पुं० [अनु०] किसी से तनी हुई या चीमड़ वस्तु (जैसे, जूता, चारपाई) के दबने वा मुड़ने का शब्द । उ०—उनका जूता ख़ूब चरमर बोलता है ।

चरमरा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे तकड़ी भी कहते हैं ।

विशेष—दे० "तकड़ी" ।

वि० [हिं० चरमराना अनु०] चरमर शब्द करनेवाला । जिससे चरमर शब्द निकले । जैसे, चरमरा जूता ।

चरमराना–क्रि० अ० [अनु०] चरमर शब्द होना । जैसे जूते का चरमराना ।

क्रि० स० [अनु०] किसी चीज़ में से चरमर शब्द उत्पन्न करना ।

चरमवती†*–संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मण्वती] चंबल नदी ।

चर राशि–संज्ञा स्त्री० [सं०] मेष, कर्क, तुला और मकर राशि ।

चरलीता–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की काष्ठौषध । उ०—चव चिराइता चित्रक चीता । चोक चोब चीनी चरलीता ।—सूदन ।

चरवाँक–वि० दे० "चरबाँक" ।

चरवा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया और मुलायम चारा जो खेत या खेत की ज़मीन में बारहो मास अधिकता से उत्पन्न होता है । बैल और घोड़े इसे बड़े चाव से खाते हैं । कहीं कहीं यह गायों और भैंसों को उनका दूध बढ़ाने के लिये भी दिया जाता है । धम्मन ।

चरवाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चराना] (१) चराने का काम (२) चराने की मज़दूरी ।

चरवाना–क्रि० स० [हिं० चराना का प्रे०] चराने का काम कराना ।

चरवाहा–संज्ञा पुं० [हिं० चरना + वाहा = वाहक] गाय भैंस आदि चरानेवाला । पशुओं को चराई पर लेजानेवाला । वह जो पशु चरावे । चौपायों का रक्षक ।

चरवाही–संज्ञा स्त्री० [सं० चर + वाही] (१) पशु चराने का काम । (२) वह धन या वेतन जो पशु चराने के बदले में दिया जाय । चराने की मज़दूरी ।

चरवी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] कहारों का एक सांकेतिक शब्द । इससे आगेवाला कहार पीछेवाले कहार को इस बात की सूचना देता है कि रास्ते में गाड़ी एक्का आदि हैं ।

चरवैया†‡–संज्ञा पुं० [हिं० चरना] (१) चरनेवाला । (२) चरानेवाला ।

चरव्य–वि० [सं०] चरु बनाने योग्य ।

चरस–संज्ञा पुं० [सं० चर्म्म] (१) भैंस या बैल आदि के चमड़े से बना हुआ बड़ा थैला। (२) चमड़े का बना हुआ वह बहुत बड़ा डोल जिससे प्रायः खेत सींचने के लिये पानी निकाला जाता है। इसमें पानी बहुत अधिक आता है और उसे खींचने के लिये प्रायः एक या दो बैल लगते हैं। चरसा। तरसा। पुर। मोट। उ०—चिबुक कूप, रसरी अलक, तिल सु चरस दृग बैल। बारी बैस गुलाब की, सींचत मनमथ छैल। (३) भूमि नापने का एक परिमाण जो किसी किसी के मत से २१०० हाथ का होता है। गोचर्म्म। (४) गाँजे के पेड़ से निकला हुआ एक प्रकार का गोंद वा चेप जो देखने में प्रायः मोम की तरह का और हरे अथवा कुछ पीले रंग का होता है और जिसे लोग गाँजे या तमाकू की तरह पीते हैं। नशे में यह प्रायः गाँजे के समान ही होता है। यह चेप गाँजे के डंठलों और पत्तियों आदि से उत्तर पश्चिम हिमालय में नेपाल, कमाऊँ, काश्मीर से अफ़ग़ानिस्तान और तुर्किस्तान तक बराबर अधिकता से निकलता है, और इन्हीं प्रदेशों का चरस सबसे अच्छा समझा जाता है। बंगाल, मध्य-प्रदेश आदि देशों में और योरप में भी, यह बहुत ही थोड़ी मात्रा में निकलता है। गाँजे के पेड़ यदि बहुत पास पास हों तो उनमें से चरस भी बहुत ही कम निकलता है। कुछ लोगों का मत है कि चरस का चेप केवल नर पौधों से ही निकलता है। गरमी के दिनों में गाँजे के फूलने से पहले ही इसका संग्रह होता है। यह गाँजे के डंठलों को हावन दस्ते में कूट कर या अधिक मात्रा में निकलने के समय उस पर से खरोच कर इकट्ठा किया जाता है। कहीं कहीं चमड़े का पायजामा पहन कर भी गाँजे के खेतों में खूब चक्कर लगाते हैं जिससे वह चेप उसी चमड़े में लग जाता है, पीछे उसे खरोच कर उस रूप में ले आते हैं जिसमें वह बाज़ारों में बिकता है। ताजा चरस मोम की तरह मुलायम और चमकीले हरे रंग का होता है पर कुछ दिनों बाद वह बहुत कड़ा और मटमैले रंग का हो जाता है। कभी कभी व्यापारी इसमें तीसी के तेल और गाँजे की पत्तियों के चूर्ण की मिलावट भी देते हैं। इसे पीते ही तुरंत नशा होता है और आँखें बहुत लाल हो जाती हैं। यह गाँजे और भाँग की अपेक्षा बहुत अधिक हानिकारक होता है और इस के अधिक व्यवहार से मस्तिष्क में विकार आ जाता है।

विशेष—पहले चरस मध्य एशिया से चमड़े के थैलों या छोटे छोटे चरसों में भर कर आता था। इसी से उसका नाम चरस पड़ गया।

संज्ञा पुं० [फ़ा० चर्ज़] आसाम प्रांत में अधिकता से होनेवाला एक प्रकार का पक्षी जिसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है। इसे बन-मोर या चीनी मोर भी कहते हैं।

चरसा–संज्ञा पुं० [हिं० चरस] (१) भैंस बैल आदि का चमड़ा। (२) चमड़े का बना हुआ बड़ा थैला। (३) चरस। मोट। पुर। (४) भूमि का एक परिमाण। गोचर्म।

विशेष—दे० "चरस"।

संज्ञा पुं० दे० "चरस" पक्षी।

चरसिया–संज्ञा पुं० दे० "चरसी"।

चरसी–संज्ञा पुं० [हिं० चरस + ई (प्रत्य०)] (१) वह जो चरस की सहायता से कूएँ से पानी निकालता हो। चरस द्वारा खेत सींचनेवाला। (२) वह जो चरस पीता हो। चरस का नशा करनेवाला। जैसे, चरसी यार किसके? दम लगाया खिसके।—कहावत।

चरही †–संज्ञा स्त्री० दे० "चरनी"।

चराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चरना] (१) चरने का काम। चरने की क्रिया। (२) चराने का काम। (३) चराने की मज़दूरी।

चराऊ ‡–संज्ञा पुं० [हिं० चरना] वह स्थान जहाँ पशु चरते हैं। चरागाह। चरनी।

चराक–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

चराग †–संज्ञा पुं० दे० "चिराग"।

चरागाह–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह मैदान वा भूमि जहाँ पशु चरते हों। पशुओं के चरने का स्थान। चरनी। चरी।

चराचर–वि० [सं०] (१) चर और अचर। जड़ और चेतन। स्थावर और जंगम। उ०—त्रिभुवन हार सिंगार भगवती सलिल चराचर जाके ऐन। सूरजदास विधाता के तप प्रगट भई संतन सुखदैन।—सूर। (२) जगत। संसार। (३) कौड़ी।

चराचरगुरु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) परमेश्वर।

चरान–संज्ञा पुं० [हिं० चरना] चौपायों के चरने की भूमि।

संज्ञा पुं० [हिं० चर = दलदल] समुद्र के किनारे का वह दलदल जिसमें से नमक निकाला जाता है।

चराना–क्रि० स० [हिं० चरना] (१) पशुओं को चारा खिलाने के लिये खेतों या मैदानों में ले जाना। जैसे, गाय चराना, भैंस चराना। (२) किसी को धोखा देना। बातों में बहलाना। मूर्ख बनाना। जैसे, हम तुम्हारे सरीखे सैकड़ों को रोज चराया करते हैं।

चराव–संज्ञा पुं० [सं० चर] पशुओं के चरने का स्थान। चरनी। चरागाह।

चरावना †–क्रि० स० दे० "चराना"।

चरावर †*–संज्ञा स्त्री० [देश०] व्यर्थ की बात। बकवाद। उ०—फागुन में एक प्रेम को राज है काहे बेकाज करो है चरावर।

चरिंदा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] चरनेवाला जीव। जैसे, गाय, भैस, बैल, आदि। पशु। हैवान।

चरि–संज्ञा पुं० [सं०] पशु ।

चरित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रहन सहन । आचरण । (२) काम । करनी । करतूत । कृत्य । जैसे, अभी आप उनके चरित नहीं जानते । (३) किसी के जीवन की विशेष घटनाओं वा कार्यों आदि का वर्णन । जीवनी । जीवन-चरित । जैसे, लघुमति मोरि चरित अवगाहा ।—तुलसी ।

विशेष—किसी किसी के मत से चरित दो प्रकार का होता है एक अनुभव, दूसरा लीला । पर यह भेद सर्वसम्मत नहीं है ।

चरितनायक–संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रधान पुरुष जिसके चरित्र-का आधार ले कर कोई पुस्तक लिखी जाय ।

चरितवान्–वि० दे० "चरित्रवान्" ।

चरितव्य–वि० [सं०] आचरण करने योग्य । करने योग्य ।

चरितार्थ–वि० [सं०] (१) जिसके उद्देश्य वा अभिप्राय की सिद्धि हो चुकी हो । कृतकृत्य । कृतार्थ । (२) जो ठीक ठीक घटे । जो पूरा उतरे । जैसे, आपवाली कहावत यहीं चरितार्थ होती है ।

चरित्तर–संज्ञा पुं० [सं० चरित्र] मिस । बहाना । नखरेबाज़ी । धूर्त्तता की चाल । नकल । उ०—यह सब स्त्रियों के चरित्तर हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।

चरित्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वभाव । (२) कार्य्य । वह जो किया जाय । (३) करनी । करतूत । (४) चरित ।

विशेष—दे० "चरित" ।

चरित्रनायक–संज्ञा पुं० दे० "चरितनायक" ।

चरित्रवान्–वि० [सं०] [स्त्री० चरित्रवती] अच्छे चरित्रवाला । उत्तम आचरणोंवाला । अच्छे चाल चलनवाला । सदाचारी ।

चरित्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली का पेड़ ।

चरिष्णु–वि० [सं०] चलनेवाला । जंगम ।

चरी–संज्ञा स्त्री० [सं० चर वा हिं० चारा] (१) वह ज़मीन जो किसानों को अपने पशुओं के चारे के लिये जमींदार से बिना लगान मिलती है । (२) वह प्रथा या नियम जिसके अनुसार किसान ऐसी ज़मीन जमींदार से लेता है । (३) वह खेत या मैदान जो इस प्रथा के अनुसार चारे के लिये छोड़ दिया गया हो (४) छोटी ज्वार के हरे पेड़ जो चारे के काम में आते हैं । कड़वी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० चर = दूत] (१) दूती । संदेसा ले जानेवाली । (२) मजदूरनी । दासी । नौकरानी ।

चरु–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चरव्य] (१) हवन या यज्ञ की आहुति के लिये पकाया हुआ अन्न । हव्यान्न । हविष्यान्न । उ०—हाँड़ी हाटक घटित चरु राँधे स्वाद सुनाज ।—तुलसी । (२) वह पात्र जिसमें उक्त अन्न पकाया जाय । (३) मिट्टी के कसोरे में पकाया हुआ चार मुट्ठी चावल । (४) बिना माँड़ पसाया हुआ भात । वह भात जिसमें माँड़ मौजूद हो । (५) पशुओं के चरने की ज़मीन । (६) वह महसूल जो ऐसी ज़मीन पर लगाया जाय । (७) यज्ञ । (८) बादल । मेघ ।

चरुआ†–संज्ञा पुं० [सं० चरु] [स्त्री० अल्प० चरुई] मिट्टी का चौड़े मुँह का बरतन । खास कर वह बरतन जिसमें प्रसूता स्त्री के लिये कुछ औषध मिला जल पकाया जाता है ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।

चरुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का धान । चरक ।

चरुखला†‡–संज्ञा पुं० [हिं० चरखा] सूत कातने का चरखा । उ०—जो चरखा जरि जाय बढ़ैया ना मरै । मैं कातौं सूत हजार चरुखला ना जरै ।—कबीर ।

चरुचेली–संज्ञा पुं० [सं० चरुचेलिन्] शिव ।

चरुपात्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र जिसमें हविष्यान्न रखा वा पकाया जाय ।

चरुव्रण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पकवान । एक प्रकार का पूआ जिसमें चित्र बने रहते हैं ।

चरुस्थाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पात्र जिसमें हविष्यान्न रखा वा पकाया जाय । चरुपात्र ।

चरू*†–संज्ञा पुं० दे० "चरु" ।

संज्ञा स्त्री० दे० "चरी" ।

चरेर†‡–वि० दे० "चरेरा" ।

चरेरा–वि० [चरचर से अनु०] [स्त्री० चरेरी] (१) कड़ा और खुरदुरा । (२) कर्कश । रूखा । उ०—मधुप तुम कान्ह ही की कही क्यों न कही है । यह बतकही चपल चेरी की निपट चरेरीए रही है ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो हिमालय की तराई और पूर्वी बंगाल में अधिकता से होता है । इसके हीर की लकड़ी कुछ ललाई लिए हुए सफ़ेद रंग की और बहुत मज़बूत होती है और प्रायः इमारत के काम में आती है । इसके फलों से एक प्रकार का तेल भी निकलता है ।

चरेरू†–संज्ञा पुं० [हिं० चरना] चिड़िया । पक्षी ।

चरेली–संज्ञा स्त्री० [हिं० चरना ?] ब्राह्मी बूटी ।

चरैया†–संज्ञा पुं० [हिं० चरना] (१) चरानेवाला । (२) चरनेवाला ।

चरैला–संज्ञा पुं० [हिं० चार + ऐल = चूल्हे का मुहँ] एक प्रकार का चूल्हा जिस पर एक साथ चार चीज़ें पकाई जा सकती हैं ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जाल जिससे झील या तालाब के किनारे रहनेवाले पक्षी पकड़े जाते हैं ।

चरोखर†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चारा + खर] पशुओं की चरने की जगह । चरी ।

चरोतर–संज्ञा पुं० [सं० चिरोत्तर] वह भूमि जो किसी मनुष्य को उसके जीवन भर के लिये दी गई हो।

चरौवा†–संज्ञा पुं० [हिं० चराना] (१) पशुओं के चरने का स्थान। चरी।

चर्क–संज्ञा पुं० [देश०] जहाज़ का मार्ग। रूस। (लश०)।

चर्ख–संज्ञा पुं० दे० "चरख"।

चर्खकश–संज्ञा पुं० [फा०] (१) खराद की डोरी या पट्टा खींचनेवाला। (२) खराद चलानेवाला।

चर्खा–संज्ञा पुं० दे० "चरखा"।

चर्खी–संज्ञा स्त्री० दे० "चरखी"।

चर्च–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह मंदिर जिसमें ईसाई प्रार्थना करते हैं। गिरजा। (२) ईसाई धर्म्म का कोई संप्रदाय।

विशेष—ईसाई धर्म्म में अनेक संप्रदाय हैं और प्रत्येक संप्रदाय के चर्च या प्रार्थना-मंदिर भिन्न भिन्न होते हैं। जो ईसाई जिस संप्रदाय का होता है वह उसी संप्रदाय के चर्च में जाता और फलतः उसी चर्च का अनुयायी कहलाता है।

चर्चक–संज्ञा पुं० [सं०] चर्चा करनेवाला।

चर्चन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चर्चा। (२) लेपन।

चर्चर–वि० [सं०] गमनशील। चलनेवाला।

चर्चरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक में वह गान जो किसी एक विषय की समाप्ति और जवनिका-पात होने पर और किसी दूसरे विषय के आरंभ होने और जवनिका उठने से पहले होता रहता है। इस बीच में पात्र तैयार होते हैं और दर्शकों के मनोरंजन के लिये यह गान होता है।

विशेष—(क) कालिदास के विक्रमोर्वशी नाटक में अनेक चर्चरिकाएं हैं। (ख) आधुनिक नाटकों में केवल किसी अंक की समाप्ति पर ही पात्रों के तैयार होने का समय मिलता है, गर्भांक या दृश्य की समाप्ति पर दूसरा अंक आरंभ होने से पहले जो गान होता है वह भी चर्चरिका ही है।

चर्चरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का गाना जो वसंत में गाया जाता है। फाग। चांचर। (२) होली की धूम धाम। होली का उत्सव। होली का हुल्लड़। (३) एक वर्णवृत्त जिसमें रगण, सगण, दो जगण और तब फिर रगण (र, स, ज, ज, भ, र) होता है। उ०—बैन ये सुनि कै चली मिथिलेशजा हरषाय कै। हाँकि कै पहुँचे रथै सुरआपगा ढिग जाय कै। (४) करतल-ध्वनि। ताली बजाने का शब्द। (५) ताल के मुख्य ६० भेदों में से एक। (६) चर्चरिका। (७) प्राचीन काल का एक प्रकार का ढोल या बाजा जो चमड़े से मढ़ा हुआ होता था। (८) आमोद-प्रमोद। क्रीड़ा। (९) गाना बजाना। नाचना कूदना। आनंद की धूम।

चर्चरीक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाकाल भैरव। (२) साग। भाजी। (३) केशविन्यास। बाल सँवारने की क्रिया।

चर्चस्–संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर की नौ निधियों में से एक।

चर्चा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जिक्र। वर्णन। बयान। उ०—(क) हरिजन हरिचरचा जो करैं। दासी सुत सो हिरदै धरैं।—सूर। (ख) निज लोक बिसरे लोक-पति घर की न चरचा चालही।—तुलसी। (२) वार्त्तालाप। बातचीत। (३) किंवदंती। अफ़वाह। उ०—पुरवासियों के प्यारे राम के अभिषेक की उस चर्चा ने प्रत्येक पुरवासी को हर्षित किया।—लक्ष्मणसिंह।

क्रि० प्र०—करना।—चलना।—छिड़ना।—उठना।—होना।

(४) लेपन। पोतना। (५) गायत्री रूपा महादेवी। (६) दुर्गा।

चर्चिक–वि० [सं०] वेद आदि जाननेवाला।

चर्चिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चर्चा। जिक्र। (२) दुर्गा। (३) एक प्रकार का सेम।

चर्चित–वि० [सं०] (१) लेपित। लगा या लगाया हुआ। पोता हुआ। जैसे, चंदनचर्चित नीलकलेवर पीतवसन वनमाली। (२) जिसकी चर्चा हो।

संज्ञा पुं० लेपन।

चर्नार*†–दे० "चरणादि" या "चुनार"।

चर्पट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चपत। थप्पड़। (२) हाथ की खुली हुई हथेली।

वि० विपुल। अधिक।

चर्पटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी छठ।

चर्पटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रोटी या चपाती।

चर्परा–वि० दे० "चरपरा"।

चर्बण–संज्ञा पुं० दे० "चर्वण"।

चर्बित–वि० दे० "चर्वित"।

चर्बी–संज्ञा स्त्री० दे० "चरबी"।

चर्भट–संज्ञा पुं० [सं०] ककड़ी।

चर्भटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चर्चरी गीत। (२) चर्चा। (३) आनंद। क्रीड़ा। (४) आनंद ध्वनि।

चर्म–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमड़ा।

यौ०—चर्मकार।

(२) ढाल। सिपर।

चर्मकरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक सुगंधि-द्रव्य। (२) मांस-रोहिणी लता। रोहिनी।

चर्मकशा, चर्मकषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का

सुगंधि-द्रव्य। चमरखा। (२) माँसरोहिणी नाम की लता। (३) एक प्रकार का थूहड़ जिसे सातला कहते हैं।

चर्मकार-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री०चर्मकारी] चमार। चमड़े का काम करनेवाली जाति।

विशेष—मनु के अनुसार निषाद पुरुष और वैदेही स्त्री के गर्भ से इस जाति की उत्पत्ति है। पराशर ने तीवर और चांडाली से चर्मकार की उत्पत्ति मानी है।

पर्य्या०—चमार। कारावर। पादुकृत्। चर्मकृत। चर्मक। कुवट। पादुकाकार।

चर्मकार्य-संज्ञा पुं० [सं०] चर्मकार का काम। चमड़े के जूते, जीन आदि की सिलाई का काम।

चर्मकील-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बवासीर। (२) एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर में एक प्रकार का नुकीला मसा निकल आता है और जिसमें कभी कभी बहुत पीड़ा होती है। न्यच्छ।

चर्मग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम।

चर्मचक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] साधारण चक्षु। ज्ञान-चक्षु का उलटा।

चर्मचटका, चर्मचटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़।

चर्मचित्रक-संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत कुष्ट। कोढ़ का रोग।

चर्मज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोआँ। रोम। (२) लहू। खून।

चर्मण्वती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंबल नदी जो विंध्याचल पर्वत से निकल कर इटावे के पास यमुना से मिलती है। इसका दूसरा नाम शिवनद भी है। (२) केले का पेड़।

चर्मतरंग-संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े पर पड़ी हुई शिकन। झुर्री।

चर्मदंड-संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े का बना हुआ कोड़ा या चाबुक।

चर्मदल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोढ़ जिसमें पहले किसी स्थान पर बहुत सी फुंसियाँ हो जाती हैं और तब वहाँ का चमड़ा फट जाता है। इसमें बहुत पीड़ा होती है और दूषित स्थान किसी प्रकार छूआ नहीं जा सकता।

चर्मदूषिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दाद का रोग।

चर्मदृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] साधारण दृष्टि। ज्ञान-दृष्टि का उलटा। आँख।

चर्मदेहा-संज्ञा पुं० [सं०] मशक के ढंग का एक प्रकार का बाजा जो प्राचीन काल में मुँह से फूँक कर बजाया जाता था।

चर्मद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़।

चर्मनालिका, चर्मनासिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े का बना हुआ कोड़ा या चाबुक।

चर्मपत्रा, चर्मपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़।

चर्मपादुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जूता।

चर्मपीड़िका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की शीतला (रोग) जिसमें रोगी का गला बंद हो जाता है।

चर्मपुट, चर्मपुटक-संज्ञा पुं० [सं०] तेल घी आदि रखने का चमड़े का बना हुआ कुप्पा।

चर्मप्रभेदिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़ा काटने का औज़ार। सुतारी।

चर्मबंध-संज्ञा पुं० [सं०] चाबुक।

चर्ममंडल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है।

चर्ममसूरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मसूरिका रोग का एक भेद जिसमें रोगी के शरीर में छोटी छोटी फुंसियाँ या छाले निकल आते हैं, कंठ रुक जाता है और अरुचि, तंद्रा, प्रलाप तथा विकलता होती है।

चर्ममुंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

चर्ममुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र में एक प्रकार की मुद्रा जिसमें बाँया हाथ फैला कर उँगली सिकोड़ लेते हैं।

चर्मयष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े का कोड़ा या चाबुक।

चर्मरंग-संज्ञा पुं० [सं०] पौराणिक भूगोल के अनुसार एक देश जो कूर्मखंड के पश्चिम-उत्तर में है।

चर्मरंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसे आवर्त्तकी और भगवद्वल्ली भी कहते हैं।

चर्मरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसका फल बहुत विषैला होता है। इसकी गणना स्थावर विषों में की गई है।

चर्मरु-संज्ञा पुं० [सं०] चमार।

चर्मवंश-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जो मुँह से फूँक कर बजाया जाता था।

चर्मवसन-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

चर्मवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़।

चर्मसंभवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इलायची।

चर्मसार-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में शरीर के अंतर्गत चमड़े के भीतर रहनेवाला वह रस जो खाए हुए पदार्थों से बनता है।

चर्मांत-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का उप-यंत्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में चीर फाड़ आदि में होता था।

चर्मांभरु-संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े में का रस। चमड़े के अंदर होनेवाला रस जो खाए हुए पदार्थों से बनता है। चर्म-सार।

चर्माख्य-संज्ञा पुं० [सं०] कोढ़ रोग का एक भेद।

चर्मानला-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक नदी का नाम।

चर्मार-संज्ञा पुं० [सं०] चर्मकार। चमार।

चर्मिक, चर्मी-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो ढाल हाथ में लेकर लड़े। हाथ में ढाल लेकर लड़नेवाला योद्धा।

चर्य्य-वि० [सं०] (१) जो करने योग्य हो। (२) जिसका करना आवश्यक हो। कर्त्तव्य।

चर्य्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह जो किया जाय। आचरण। जैसे, व्रतचर्य्या, दिनचर्य्या आदि। (२) आचार। चाल चलन। (३) काम काज। (४) वृत्ति। जीविका। (५) सेवा। (६) विहित कार्य्य का अनुष्ठान और निषिद्ध का त्याग। (७) भक्षण। खाने की क्रिया या भाव। (८) गमन। चलने की क्रिया या भाव।

चर्य्यापरीषत–संज्ञा पुं० [सं०] एक स्थान पर न रहना, बल्कि निर्द्वंद्वतापूर्वक चारों ओर विचरना। (जैन धर्म)।

चर्राना–क्रि० अ० [अनु०] (१) लकड़ी आदि का टूटने या तड़कने के समय चर चर शब्द करना। (२) शरीर के थोड़ा छिल जाने या घाव पर जमी हुई पपड़ी आदि के उखड़ जाने के कारण खुजली या सुरसरी मिली हुई हलकी पीड़ा होना। (३) खुश्की और रुखाई के कारण (जैसा कि प्रायः जाड़े में होता है) किसी अंग में तनाव और हलकी पीड़ा होना। उ०—बहुत दिनों से तेल नहीं लगाया इससे बदन चर्राता है। (४) किसी बात की वेगपूर्ण इच्छा होना। किसी बात की आवश्यकता से अधिक और बेमौके बड़ी चाह होना। जैसे, शौक चर्राना, मुहब्बत चर्राना।

चर्री–संज्ञा स्त्री० [हिं० चर्राना] लगती हुई व्यंग्यपूर्ण बात। चुटीली बात।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—सुनाना।

चर्वण–संज्ञा पुं० [स०] [वि० चर्व्य] (१) किसी चीज़ को मुँह में रख कर कर दाँतों से बराबर तोड़ने की क्रिया। चबाना। (२) वह वस्तु जो चबाई जाय। (३) भूना हुआ दाना आदि जो चबा कर खाया जाता है। चबैना। बहुरी। दाना।

चर्वित–वि० [सं०] चबाया हुआ। दाँतों से कुचला हुआ।

चर्वितचर्वण–संज्ञा पुं० [सं०] जो हो चुका हो उसे फिर से करना। किसी किए हुए काम या कही हुई बात को फिर से करना या कहना। पिष्टपेषण।

चर्विल–संज्ञा पुं० [अं०] गाजर की तरह की एक अंगरेजी तरकारी जो कुआर कातिक में क्यारियों में बोई जाती है।

चर्व्य–वि० [सं०] (१) चबाने योग्य। (२) जो चबा कर खाया जाय।

चर्षणि–संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य। आदमी।

संज्ञा स्त्री० कुलटा स्त्री।

चर्षणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] मनुष्य जाति। मानव जाति।

चर्स–संज्ञा पुं० दे० "चरस"।

चलंता–वि० [हिं० चलना] (१) चलता हुआ। (२) चलनेवाला।

चलंदरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चलन+दरी] पौसला। प्याऊ।

चल–वि० [सं०] चंचल। अस्थिर। चलायमान। उ०—चलन समै में चल पलन दगा दई।

यौ०—चलदल।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारा। (२) दोहा छंद का एक भेद जिसमें ११ गुरु और २६ लघु मात्राएँ होती हैं। जैसे, जन्म सिंधु पुनि बंधु विष दिन मलीन सकलंक। सिय मुख समता पाव किमि चंद्र बापुरो रंक।—तुलसी। (३) शिव। महादेव। (४) विष्णु। (५) कंपन। काँपना। (६) दोष। ऐब। नुक्स। (७) भूल। चूक। (८) धोखा। छल। कपट। (९) नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा जिसमें हाथ के इशारे से किसी को बुलाया जाता है। (१०) नृत्य में शोक, चिंता, परिश्रम या उत्कंठा दिखलाने के लिये कुछ गहरी साँस लेना।

चलकना–क्रि० [अनु०] (१) चमकना। उ०—नर नारिन के मुख कमलन की शोभा दूनी चलकि उठी।—देव स्वामी। (२) दे० "चिलकना"।

चलकर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पृथिवी से ग्रहों का स्वाभाविक अंतर। (२) वह जिसके कान सदा हिलते रहें। (३) हाथी।

चलका–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की साधारण नाव।

चलकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष केतु वा पुच्छल तारा जो पश्चिम दिशा में उदय होता है। इसमें दक्षिण की ओर उठी हुई एक चोटी भी होती है। उदय होने के उपरांत यह क्रमशः उत्तर की ओर बढ़ता और पीछे आकाश में किसी स्थान में अस्त हो जाता है। कभी कभी यह उत्तरी ध्रुव, सप्तर्षि-मंडल या अभिजित् नक्षत्र तक भी पहुँच जाता है। फलित के अनुसार किसी के मत से इसके उदय होने के दस महीने और किसी के मत से अठारह महीने बाद देश में दुर्भिक्ष और कई प्रकार का अनिष्ट होता है।

चलचंचु–संज्ञा पुं० [सं०] चकोर।

चलचलाव–संज्ञा पुं० [हिं० चलना] (१) प्रस्थान। यात्रा। चलाचली। (२) महाप्रस्थान। मृत्यु। मौत।

चलचाल–क्रि० वि० [सं०] चल विचल। चंचल। अस्थिर। उ०—होन न देहुँ कहूँ चलचाल सुराखैं हिये पै मिलाय कै मालहि।

चलचूक–संज्ञा [सं० चल=चंचल] धोखा। छल। कपट। उ०—जो चलचूक गने कछु या महँ तौ यह न्याउ अनंग के आगे।—गुमान।

चलता–वि० [हिं० चलना] [स्त्री० चलती] (१) चलता हुआ। गमन करता हुआ। गतिवान्। जैसे, चलती गाड़ी।

मुहा०—चलता करना=(१) हटाना। भगाना। भेजना। उ०—(क) अब इन्हें क्यों बैठाये हो? चलता करो। (ख) इस कागज़ को आज चलता करो। (२) किसी प्रकार निपटाना। झगड़ा दूर करना। उ०—किसी प्रकार इस मामले को चलता करो। चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाना=होते हुए कार्य्य में बाधा डालना। चलता पुरज़ा=व्यवहारकुशल।

चालाक । चुस्त । व्यवहारतत्पर । **चलता बनना**=चल देना । प्रस्थान करना । उ०—तुम तो वहाँ से चलते बने, पकड़े गए हम । **चलता होना**=चल देना । प्रस्थान करना ।

(२) जिसका क्रमभंग न हुआ हो । जो बराबर जारी हो ।

मुहा०—**चलता लेखा वा खाता**=वह हिसाब जिसके संबंध का लेन देन बराबर होता रहे और जिसकी बाक़ी न गिराई गई हो ।

(३) जिसका चलन अधिक हो । जिसका रवाज बहुत हो । प्रचलित । उ०—यह चलती चीज़ है, दूकान पर रख लो ।

मुहा०—**चलता गाना**=वह गाना जो शुद्ध राग रागिनियों के अंतर्गत न हो पर जिसका प्रचार सर्वसाधारण में हो । जैसे दादरा, ख्याल, लावनी इत्यादि ।

(४) काम करने योग्य । जो अशक्त न हुआ हो । जैसे चलता बैल । (५) व्यवहार में तत्पर । व्यवहारपटु । चालाक । चुस्त ।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का बहुत बड़ा सदाबहार पेड़ जिसकी लकड़ी चिकनी, बहुत मज़बूत और अंदर से लाल होती है । यह बंगाल, मदरास और मध्यभारत में बहुत अधिकता से उत्पन्न होता है । इसकी लकड़ी प्रायः इमारत के काम में आती है और पानी में जल्दी नहीं सड़ती । इसके पुराने पत्तों से हाथीदाँत साफ़ किया जाता है । इसमें बेल के आकार का बड़ा फल लगता है जो कच्चा भी खाया जाता है और जिसकी तरकारी भी बनती है । फल में रेशा बहुत अधिक होता है इसलिये उसे कच्चा या तरकारी बनने पर चूस चूस कर खाते हैं । (२) रास्ते में वह स्थान जहाँ फिसलन और कीचड़ बहुत अधिक हो । (कहारों की परि०) (३) कवच । फ़िलम ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] चलने का भाव । चंचलता । अस्थिरता ।

चलती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] मान मर्यादा । प्रभाव । अधिकार । उ०—आज कल उस दरबार में उनकी बड़ी चलती है ।

चलतू—वि० [हिं० चलना] (१) दे० "चलता" । (२) (भूमि) जो जोती बोई जाती हो । आबाद ।

चलदंग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे झींगा कहते हैं ।

चलदल—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का वृक्ष । उ०—चलदल-पत्र पताक-पट दामिनि कच्छप माथ । भूत दीप दीपक शिखा त्यौं मन वृत्ति अनाथ ।

चलन—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] (१) गति । चाल । चलने का भाव ।

यौ०—चलनहार ।

(२) रिवाज । रस्म । व्यवहार । रीति ।

मुहा०—**चलन से चलना**=अपने पद और मर्य्यादा आदि के अनुकूल काम करना । उचित रीति से व्यवहार करना ।

(३) किसी चीज़ का व्यवहार, उपयोग या प्रचार । जैसे, (क) आज कल ऐसी टोपी का बहुत चलन है । (ख) बादशाही ज़माने के रुपयों का चलन अब उठ गया ।

क्रि० प्र०—उठना ।—चलना ।—होना ।

यौ०—चलनसार ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में एक क्रांतिपात गति अथवा विषुवत् की उस समय की गति जब दिन और रात दोनों बराबर होते हैं ।

यौ०—चलन कलन ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) गति । भ्रमण । (२) काँपना । कंपन । (३) हिरन । (४) चरण । पैर । (५) नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा ।

चलन कलन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक प्रकार का गणित जिसके द्वारा पृथ्वी की गति के अनुसार दिन रात के घटने बढ़ने का हिसाब लगाया जाता है ।

चलनदरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलन+दर] वह स्थान जहाँ रास्ता चलनेवालों को पुण्यार्थ जल पिलाया जाता हो । पौसरा ।

चलन समीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया । दे० "समीकरण" ।

चलनसार—वि० [हिं० चलन+सार (प्रत्य०)] (१) जिसका उपयोग वा व्यवहार प्रचलित हो । जैसे, चलनसार सिक्का । †(२) जो अधिक दिनों तक काम में लाया जा सके । जो बहुत दिनों तक चले । जैसे, चलनसार कपड़ा ।

चलना—क्रि० अ० [स० चलन] (१) एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना । गमन करना । प्रस्थान करना ।

विशेष—यद्यपि 'जाना' और 'चलना' दोनों क्रियाएँ कभी कभी समान अर्थ में प्रयुक्त होती हैं पर दोनों के भावों में कुछ अंतर है । 'जाना' क्रिया में स्थान की ओर विशेष लक्ष्य रहता है पर 'चलना' में गति की ओर विशेष लक्ष्य रहता है । जैसे, 'चलती गाड़ी पर सवार होना ठीक नहीं है' । 'चलना' क्रिया से भूतकाल में भी क्रिया की समाप्ति अर्थात् किसी स्थान पर पहुँचने का बोध नहीं होगा, जैसे, 'वह दिल्ली चला' । पर 'जाना' से भूतकाल में पहुँचने का बोध हो सकता है ; जैसे 'वह गाँव में गया' । वक्ता अपने साथ प्रस्थान करने के संबंध में जब किसी से प्रश्न वा अनुरोध करेगा तब वह 'चलना' क्रिया का प्रयोग करेगा, 'जाना' का नहीं ; जैसे, तुम मेरे साथ चलोगे ?, 'अब यहाँ से चलो' ।

(२) गति में होना । हिलना डोलना । हरकत करना । जैसे, नाड़ी चलना, कल चलना, पुरज़ा चलना, घड़ी चलना ।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

मुहा०—किसी का चलना = किसी का काम चलना। गुज़र होना। निर्वाह होना। उ०—इतने में हमारा नहीं चल सकता। पेट चलना = (१) दस्त आना। (२) निर्वाह होना। गुज़र होना। उ०—इतने में पेट कैसे चलेगा? मन चलना वा दिल चलना = इच्छा होना। लालसा होना। किसी वस्तु के लिये चित्त चंचल होना। प्राप्ति की इच्छा होना। उ०—(क) जिस किसी की वस्तु हुई उसी पर तुम्हारा मन चल जाता है। (ख) उसका मन पराई स्त्री पर कभी नहीं चलता। मुँह चलना = (१) खाते समय मुँह का हिलना। खाया जाना। भक्षण होना। उ०—जब देखो तब उसका मुहँ चलता रहता है। (२) मुहँ से बकवाद वा अनुचित शब्द निकलना। उ०—तुम्हारा मुहँ बहुत चलता है, तुमसे चुप नहीं रहा जाता। मुहँ पेट चलना = कै दस्त होना। हाथ चलना = मारने के लिये हाथ उठना। चल बसना = मर जाना। अपने चलते = भरसक। यथाशक्ति। उ०—(क) अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहु क कीन्ह।—तुलसी। (ख) अपने चलते तो हम ऐसा कभी न होने देंगे।

(३) निभना। कार्य्य-निर्वाह में समर्थ होना। उ०—यह लड़का इस दर्जे में चल जायगा।

मुहा०—चल निकलना = किसी कार्य्य में उन्नति करना। किसी विषय में क्रमशः आगे बढ़ना। उ०—उन्हें काम सीखते थोड़े ही दिन हुए पर वे चल निकले।

(४) प्रवाहित होना। बहना। जैसे, मोरी चलना, हवा चलना। (५) वृद्धि पर होना। बाढ़ पर होना। जैसे, अब यह पौधा भी चला। (६) किसी कार्य्य में अग्रसर होना। किसी कार्य्य का आगे बढ़ना। किसी युक्ति का काम में आना। उ०—सब उपाय करके तो तुम हार गए, अब चलो। (७) आरंभ होना। छिड़ना। जैसे, बात चलना, जिक्र चलना, चर्चा चलना। (८) बराबर बना रहना। जारी रहना। क्रम वा परंपरा का निर्वाह होना। जैसे, वंश चलना, नाम चलना। उ०—जब तक रामचरित-मानस रहेगा, तब तक तुलसीदास जी का नाम चला जायगा। (९) खाने पीने की वस्तु का परसा जाना। खाने के लिये रक्खा जाना। उ०—इसके बाद अब मिठाई चलेगी। (१०) बराबर काम देना। टिकना। ठहरना। खटाना। उ०—यह जूता कुछ भी न चला। (११) व्यवहार में आना। लेन देन के काम में आना। उ०—यह रुपया यहाँ नहीं चलेगा। (१२) प्रचलित होना। प्रचार पाना। जारी होना। रवाज पाना। जैसे, रीति चलना, चाल चलना। उ०—(क) रघु-कुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाइ बरु बचन न जाई।—तुलसी। (ख) कुछ दिनों तक गोल टोपी खूब चली अब उसकी चाल उठती जाती है। (१३) प्रयुक्त होना। व्यवहृत होना। काम में लाया जाना। जैसे, तलवार चलना, घूँसा चलना, लाठी चलना, कलम चलना, फावड़ा चलना। (१४) अच्छी तरह काम देना। उपयोग वा व्यवहार के अनुकूल होना। उ०—कलम चलती नहीं। (१५) तीर, गोली आदि का छूटना। (१६) लड़ाई झगड़ा होना। विरोध होना। शत्रुता होना। उ०—आज कल उन दोनों में खूब चल रही है। (१७) किसी व्यवसाय की वृद्धि होना। किसी व्यापार का बढ़ना। काम चमकना। उ०—(क) यह दूकान खूब चली। (ख) कुछ दिनों तक लाख का काम ब चला था।

मुहा०—चल निकलना = किसी काम का ढर्रे पर आना। किसी कार्य्य का निर्वाह होने लगना। किसी कार्य्य में सफलता होना। उ०—अब तो तुम्हारा रोजगार चल निकला।

(१८) पढ़ा जाना। बाँचा जाना। उचरना। उ०—यह लिखावट तो हमसे नहीं चलती। (१९) कृतकार्य्य होना। सफल होना। प्रभाव करना। कारगर होना। उपाय लगना। वश चलना। उ०—(क) यहाँ तुम्हारी एक भी न चलेगी। (ख) उस पर जादू टोना कुछ भी नहीं चल सकता।

मुहा०—किसी की चलना = (किसी का) उपाय लगना। वश चलना। प्रयत्न सफल होना। उ०—अंग निरखि अनंग लज्जित सकै नहिं ठहराय। एक की कहा चलै शत शत कोटि रहत लजाय।—सूर।

(२०) आचरण करना। व्यवहार करना। उ०—बड़ों के आज्ञानुसार चलने से कभी धोखा नहीं होता। (२१) गले के नीचे उतरना। निगला जाना। खाया जाना। उ०—अब बिना घी के एक कौर नहीं चलता है? (२२) थान पर से कपड़ा उतारते समय कपड़े का बीच में मोटा सूत आदि पड़ जाने के कारण सीधा न फटना, कुछ इधर उधर हो जाना। (बजाज) (२३) † बासी होना। सड़ना। जैसे, सालन चल गया, दाल चल गई।

क्रि० स० शतरंज या चौसर आदि खेलों में किसी मोहरे या गोटी आदि को अपने स्थान से बढ़ाना या हटाना; अथवा ताश या गंजीफे आदि खेलों में किसी पत्ते को खेल के कामों के लिये सब खेलनेवालों के सामने फेंकना। जैसे, हाथी चलना, वज़ीर चलना, दहला चलना, एक्का चलना आदि।

संज्ञा पुं० [हिं० चलनी] (१) बड़ी चलनी वा छलनी। (२) चलनी की तरह का लोहे का एक बड़ा कलछुला या डोई जिससे खँड़सार में उबलते हुए रस के ऊपर का फेन, मैल आदि साफ़ करते हैं। (३) हलवाइयों का एक औज़ार जो छेददार डोई के समान होता है और जिससे शीरा वा चासनी इत्यादि साफ़ की जाती है। छन्ना।

चलनि*—संज्ञा स्त्री० दे० "चलन"।

चलनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्रियों के पहनने का घाघरा। (२) रेशमी झालर।

चलनी†—संज्ञा स्त्री० दे० "छलनी"।
संज्ञा स्त्री० दे० "चलनिका"।

चलनौस†—संज्ञा पुं० [हिं० चालना + औंस (प्रत्य०)] वह पदार्थ जो चालने से छलनी में रह जाय। चोकर। चालन।

चलनौसन†—संज्ञा पुं० दे० "चलनौस"।

चलपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का वृक्ष।

चलबाँक—वि० (१) दे० "चर्बाक"। (२) "चरबाँक"।
वि० [हिं० चलना + बाँका] तेज चलनेवाला। शीघ्रगामी।

चलबिचल—वि० दे० "चलविचल"।

चलवंत†*—संज्ञा पुं० [सं० चल + वंत] पैदल सिपाही। प्यादा।

चलवाना—क्रि० स० [हिं० चलाना का प्रे०] चलाने का कार्य्य दूसरे से कराना।

चलविचल—वि० [सं० चल + विचल] (१) जो अपने स्थान से हट गया हो। जो ठीक जगह से इधर उधर हो गया हो। उखड़ा पुखड़ा। अंडबंड। बेठिकाने। उ०—(क) उतने ऊपर से कूदते हो, कोई हड्डी चलविचल हो जायगी तो रह जाओगे। (ख) उसका सब काम चलविचल हो गया। (२) जिसके क्रम वा नियम का उल्लंघन हुआ हो। अव्यवस्थित।
संज्ञा स्त्री० किसी नियम वा क्रम का उल्लंघन। व्यतिक्रम। नियमपालन में त्रुटि। उ०—जहाँ ज़रा सी चलविचल हुई, कि सब काम बिगड़ जायगा।
विशेष—इस शब्द को कहीं कहीं पुं० भी बोलते हैं।

चलवैया†—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] चलनेवाला।

चला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिजली। दामिनी। (२) पृथ्वी। भूमि। (३) लक्ष्मी। (४) पिप्पली। पीपल। (५) शिलारस नाम का गंध-द्रव्य।
† संज्ञा पुं० [हिं० चाल वा चलना] (१) व्यवहार। प्रचार। रिवाज। चाल। रीति रस्म। दस्तूर। (२) अधिकार। प्रभुत्त्व। स्वामित्त्व। उ०—अभी तो ऐसा नहीं हो सकता, जब तुम्हारा चला हो तब तुम जो चाहे सो करना।

चलाऊ—वि० [हिं० चलना] (१) चिरस्थायी। जो बहुत दिनों तक चले। मज़बूत। टिकाऊ। (२) बहुत चलने फिरने या घूमनेवाला।

चलाँक†—वि० दे० "चालाक"।

चलाँकी†—संज्ञा स्त्री० दे० "चालाकी"।

चलाका†*—संज्ञा स्त्री० [सं० चला = बिजली] बिजुली। विद्युत्। तड़ित्। उ०—सुंदर कसौटी बीच ललित लकीर जिमि मेघ मैं चलाका जैसे शोभा प्रेम जाल की।

चलाचल*—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] (१) चलाचली। (२) गति। चाल। उ०—उपदेव बिराट भिरे बल सों। पुरई धुनि चाप चलाचल सों।—गोपाल।
वि० [सं०] चंचल। चपल। उ०—बैनिन की गति गूढ़ चलाचल केशवदास अकास चढ़ैंगी।—केशव।

चलाचली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] (१) चलने के समय की घबराहट, धूम या तैयारी। चलने की हड़बड़ी। रवारवी। (२) बहुत से लोगों का प्रस्थान। बहुत से लोगों का किसी एक स्थान से चलना। उ०—हय चले, हाथी चले, संग छांड़ि साथी चले, ऐसी चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रह्यो।—भूषण। (३) चलने की तैयारी या समय।
वि० जो चलने के लिये तैयार हो। चलनेवाला। उ०—विरह विपति दिन परत ही तजे सुखन सब अंग। रहि अबलौं अब दुखौ भए चलाचली जिय संग।—बिहारी।

चलातंक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वातरोग, जिसमें हाथ पाँव आदि अंग काँपने लगते हैं। कंपबाई। राशा।

चलान—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] (१) भेजे जाने या चलने की क्रिया। (२) भेजने या चलाने की क्रिया। (३) किसी अपराधी का पकड़ा जा कर न्याय के लिये न्यायालय में भेजा जाना। जैसे, कल संध्या को वह पकड़ा गया और आज उसकी चलान हो गई। (४) माल असबाब आदि का एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जाना। जैसे, आज यहाँ से दस बोरों की चलान हो गई है, आठ दिन में माल आपको वहाँ मिल जायगा। (५) एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा या आया हुआ माल। जैसे, हाल में एक नई चलान आई है, उसमें आप के काम की बहुत सी चीजें हैं।
क्रि० प्र०—आना।—भेजना।—मँगाना।
(६) वह कागज जिसमें किसी की सूचना के लिये भेजी हुई चीजों की सूची या विवरण आदि हो। रवन्ना।
विशेष—(क) इस प्रकार की चलान प्रायः सरकारी खज़ानों या तहसीलों आदि से दूसरे दफ़्तरों में भेजे जानेवाले रुपए के साथ भेजी जाती है। (ख) यह चलान चुंगी आदि के संबंध में माल के लिये राहदारी के परवाने का भी काम देती है।
क्रि० प्र०—देना।—भेजना।—लिखना, आदि।
विशेष—(क) उर्दू वालों ने इस शब्द को "चालान" बना लिया है। (ख) पश्चिम में यह शब्द प्रायः पुंल्लिंग माना जाता है।

चलानदार—संज्ञा पुं० [हिं० चलान + फ़ा० दार] वह मनुष्य जो माल की चलान के साथ उसकी रक्षा के लिये जाता है।

चलाना—क्रि० स० [हिं० चलना] (१) किसी को चलने में लगाना। चलने के लिये प्रेरित करना। जैसे, गाड़ी, घोड़ा, नाव या

रेल आदि चलाना। (२) गति देना। हिलाना डुलाना। हरकत देना। जैसे, चरखा चलाना, (कलछी आदि से) दाल भात चलाना, घड़ी चलाना।

मुहा०—(किसी) की चलाना = प्रसंग वश किसी का जिक्र करना। किसी के बारे में कुछ कहना। जैसे, हम और किसी की नहीं चलाते, अपने बारे में ही कह सकते हैं। पेट चलाना = (१) दस्त लाना। जैसे, यह दवा एक दम पेट चला देगी। (२) निर्वाह करना। गुजर करना। मन वा दिल चलाना = इच्छा करना। लालसा करना। जैसे, यह चीज़ तुम्हें मिलने की नहीं; क्यों व्यर्थ मन चलाते हो। मुहँ चलाना = खाना। भक्षण करना। जैसे, तुम खाली क्यों बैठे हो, धीरे धीरे मुहँ चलाते चलो। मुँह पेट चलाना = कै दस्त लाना। हाथ चलाना = मारने के लिये हाथ उठाना। मारना। पीटना।

(३) कार्य्य-निर्वाह में समर्थ करना। निभाना। जैसे, हम इन्हें भी जैसे तैसे अपने साथ चला ले जायँगे। (४) प्रवाहित करना। बहाना। जैसे, मोरी चलाना, हवा चलाना। (५) वृद्धि करना। उन्नति करना। (६) किसी कार्य्य को अग्रसर करना। किसी काम को जारी वा पूरा करना। जैसे, (क) हमने इस काम को चला दिया है, (ख) काम चलाने भर को इतना बहुत है। (७) आरंभ करना। छेड़ना। जैसे, बात चलाना, जिक्र चलाना। (८) बराबर बनाए रखना। जारी रखना। जैसे, वंश चलाना, नाम चलाना। कारखाना चलाना। (९) खाने पीने की वस्तु परोसना। खाने की चीज आगे रखना। (१०) बराबर काम में लाना। टिकाना। जैसे, यह कोट अभी आप तीन बरस और चलावेंगे। (११) व्यवहार में लाना। लेन देन के काम में लाना। जैसे, इन्होंने वह खोटा रुपया भी चला दिया। (१२) प्रचलित करना। प्रचार करना। जैसे, रीति चलाना, धर्म चलाना। उ०—(क) आप तो यह एक नई रीति चलाते हैं। (ख) मुहम्मद साहब ने मुसलमानी धर्म चलाया था। (१३) व्यवहृत करना। प्रयुक्त करना। जैसे, तलवार चलाना, लाठी चलाना, कलम चलाना, हाथ पैर चलाना। (१४) तीर गोली आदि छोड़ना। किसी वस्तु को किसी ओर लक्ष्य करके वेग के साथ फेंकना। जैसे, ढेला या गुलेला चलाना, किसी वस्तु से प्रहार करना। किसी चीज़ से मारना। जैसे, हाथ चलाना, डंडा चलाना। (१६) किसी व्यवसाय या व्यापार की वृद्धि करना। काम चमकाना। जैसे, जब सब लोग हार गए तो इन्होंने कारखाना चला कर दिखला दिया। (१७) आचरण कराना। व्यवहार कराना। (१८) थान में से कपड़ा उतारते समय उसे सीधा न फाड़ कर असावधानी आदि के कारण टेढ़ा या तिरछा फाड़ना। (बजाज)

चलायमान—वि० [सं०] (१) चलनेवाला। जो चलता हो। (२) चंचल। (३) विचलित।

चलाव†—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] (१) चलने का भाव। यात्रा। प्रयाण। पयान। रवानगी। उ०—तपावंत छाला लिख दीन्हा। बेग चलाव चहूँ दिसि कीन्हा।—जायसी। (२) दे० "चलावा"।

चलावना‡—क्रि० स० दे० "चलाना"।

चलावा—संज्ञा पुं० [हिं० चलाना] (१) रीति। रस्म। रिवाज।

क्रि० प्र०—चलना।

(२) द्विरागमन। गौना। मुकलावा। (३) एक प्रकार का उतारा जो प्रायः गावों में भयंकर बीमारी पड़ने के समय किया जाता है। इसे लोग बाजा बजाते हुए अपने गाँव की सीमा के बाहर ले जाकर किसी दूसरे गाँव की सीमा पर रख आते हैं और समझते हैं कि बीमारी इस गाँव से निकल कर उस गाँव में चली गई।

चलासन—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के मत से एक प्रकार का दोष जो सामयिक व्रत में आसन बदलने के कारण होता है।

चलित—वि० [सं०] (१) अस्थिर। चलायमान। (२) चलता हुआ।

यौ०—चलित ग्रह।

संज्ञा पुं० नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा जिसमें ठोड़ी की गति से क्रोध या क्षोभ प्रकट होता है।

चलित ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] वह ग्रह जिसके फल का कुछ अंश भोगा जा चुका हो और कुछ भोगने को बाकी रह गया हो। (ज्यो०)।

चलैया†—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] चलनेवाला।

चलौना—संज्ञा पुं० [हिं० चलाना] (१) वह कलछा वा लकड़ी का डंडा जिससे दूध, पानी या और कोई द्रव पदार्थ हिलाया जाता है। (२) वह लकड़ी का टुकड़ा जिससे चरखा चलाया जाता है।

चलौवा—संज्ञा पुं० दे० "चलावा" (१)।

चल्ली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] तकले पर लपेटा हुआ सूत या ऊन आदि। कुकड़ी।

चवकी—संज्ञा स्त्री० दे० "चौकी"।

चवन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ (चार का अल्प०) + आना + ई (प्रत्य०)] चार आने मूल्य का चाँदी का सिक्का।

चवपैया—संज्ञा स्त्री० दे० "चौपैया"।

चवर—संज्ञा पुं० दे० "चँवर"।

चवरा—संज्ञा पुं० [सं० चवल] लोबिया।

चवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चवर्गीय] च से ञ तक के अक्षरों का समूह। इन अक्षरों का उच्चारण तालु से होता है।

चवल—संज्ञा पुं० [सं०] लोबिया।

चवा*—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौवाई] चारों ओर से चलनेवाली हवा। एक साथ सब दिशाओं से बहनेवाली वायु उ०—लागि दवारि पहार ढही ढहकी कपि लंक यथा खरखौकी। चारु चवा चहुँ ओर चली लपटी झपटी सो तमीचर तौकी।—तुलसी।

चवाई—संज्ञा पुं० [हिं० चवाव] [स्त्री० चवाइन] (१) बदनामी की चर्चा फैलानेवाला। कलंकसूचक प्रवाद फैलानेवाला। दूसरों की बुराई करनेवाला। निंदक। उ०—(क) मैं तरुनी तुम तरुन तन चुगल चवाई गाँव। मुरली लै न बजाइयो कबहुँ हमारे गाँव।—पद्माकर। (ख) चौचंद चार चवाइन के चहुँ ओर मचै विरचै करि हाँसी। (ग) चार चवाइनै लै दुरबीनन धाओ न आज तमाशे लखात हैं।—हरिश्चंद्र। (२) झूठी बात कहनेवाला। व्यर्थ इधर की उधर लगानेवाला। चुगलखोर। उ०—सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई जनमत ही को धूत। सूरश्याम मोहिं गोधन की सौं हौं माता तू पूत।—सूर।

चवाउ‡—संज्ञा पुं० दे० "चवाव"।

चवालीस—संज्ञा पुं० दे० "चौवालीस"।

चवाव—संज्ञा पुं० [हिं० चौवाई] (१) चारों ओर फैलनेवाली चर्चा। प्रवाद। अफ़वाह। (२) चारों ओर फैली हुई बदनामी। निंदा की चर्चा। किसी की बुराई की चर्चा। उ०—(क) नैनन तें यह भई बड़ाई। घर घर यहै चवाव चलावत हम सों भेंट न माई।—सूर। (ख) ये घरहाई लोगाई सबै निसि द्योस निवाज हमैं दहती हैं। बातैं चवाव भरी सुनि कै रिस लागति पै चुप ह्वै रहती हैं।—निवाज। (ग) ज्यों ज्यों चवाव चलै चहुँ ओर धरै चित चाव ये त्योंहि त्यों चोखे।

क्रि० प्र०—करना।—चलना।—चलाना।

(३) पीठ पीछे की निंदा। चुगलख़ोरी।

चवि, चविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चव्य नाम की ओषधि।

विशेष—दे० "चव"।

चवैया‡—संज्ञा पुं० [हिं० चौवायु] दे० "चवाई"।

चव्य, चव्यका—संज्ञा पुं० [सं०] एक ओषधि। दे० "चाव"।

चव्यजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपीपल।

चव्या—संज्ञा स्त्री० दे० "चव्य"।

चशक—संज्ञा स्त्री० [हिं० चसका] वह भोजन जो साहबों के यहाँ से किसी विशेष अवसर पर बावर्चियों को मिलता है।

चशम—संज्ञा स्त्री० दे० "चश्म"।

विशेष—चशम के यौ० आदि के लिये देखो "चश्म"।

चशमा—संज्ञा पुं० दे० "चश्मा"।

चश्म—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चश्मा] नेत्र। आँख। लोचन। नयन।

यौ०—चश्मदीद। चश्मनुमाई, आदि।

मुहा०—चश्म बद दूर = बुरी नजर दूर हो। बुरी नजर न लगे।

विशेष—इस वाक्य का व्यवहार किसी चीज़ की प्रशंसा करते समय उसे नज़र लगने से बचाने के अभिप्राय से किया जाता है।

चश्मक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चश्म] (१) मनमोटाव। वैमनस्य। ईर्ष्या। द्वेष। (२) चश्मा। ऐनक। (३) आँख का इशारा।

चश्मदीद—वि० [फ़ा०] जो आँखों से देखा हुआ हो।

यौ०—चश्मदीद गवाह = वह साक्षी जो अपनी आँखों से देखी घटना कहे। वह गवाह जो चश्मदीद माजरा बयान करे।

चश्मनुमाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] घूर कर किसी के मन में भय उत्पन्न करना। धमकी या घुड़की। आँख दिखाना।

चश्मपोशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] आँख चुराना। सामने न होना। कतराना।

चश्मा—संज्ञा पुं० [फ़ा] (१) कमानी में जड़ा हुआ शीशे या पारदर्शी पत्थर के तालों का जोड़ा जो आँखों पर उनका दोष दूर करने, दृष्टि बढ़ाने अथवा धूप, चमक या गर्द आदि से उनकी रक्षा करने और उन्हें ठंढा रखने के अभिप्राय से लगाया जाता है। ऐनक।

विशेष—चश्मे के ताल हरे, लाल, नीले, सफ़ेद और कई रंगों के होते हैं। दूर की चीज़ें देखने के लिये नतोदर और पास की चीज़ें देखने के लिये उन्नतोदर तालों का चश्मा लगाया जाता है।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—चश्मा लगना = आँखों में चश्मा लगाने की आवश्यकता होना। जैसे, अब तो उनकी आँख कमजोर हो गई है, चश्मा लगता है।

(२) पानी का सोता। स्रोत। (३) नदी। छोटा दरिया। (४) कोई जलाशय।

चष*—संज्ञा पुं० [सं० चक्षु] नेत्र। आँख।

यौ०—चषचोल।

चषक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्य पीने का पात्र। वह बरतन जिसमें शराब पीते हैं। उ०—प्राण ये मन रसिक ललिता धी लोचन चषक पिवति मकरंद सुख रासि अंतर सची।—सूर। (२) मधु। शहद। (३) एक विशेष प्रकार की मदिरा।

चषचोल*—संज्ञा पुं० [हिं० चष + चोल = वस्त्र] आँख की पलक। आँख का परदा। उ०—चलिगो कुंकुम गात तें दलि गो नयो निचोल। दुरै दुरायो क्यों सुरत मुरत जुरत चषचोल। —शृं० सत०।

चषण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोजन। भक्षण। (२) बध करना। (३) क्षय करना।

चषाल—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के यूप में लगी हुई पशु बाँधने की गराड़ी।

चस–संज्ञा स्त्री० [देश०] किसी किनारदार कपड़े में किनारे के ऊपर वा नीचे की ओर बनी हुई कलाबतून वा किसी दूसरे रंग के रेशम वा सूत की पतली लकीर या धारी।

चसक–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) हलका दर्द। कसक। (२) गोटे या अतलस आदि की पतली गोट जो संजाफ या मगजी के आगे लगाई जाती है।

* संज्ञा पुं० दे० "चषक"।

चसकना–क्रि० अ० [हिं० चसक] हलकी पीड़ा होना। मीठा दर्द होना। टीसना।

चसका–संज्ञा पुं० [सं० चषण] (१) किसी वस्तु (विशेषतः खाने पीने की वस्तु) या किसी काम में एक या अनेक बार मिला हुआ आनंद जो प्रायः उस चीज़ के पुनः पाने या उस काम के पुनः करने की इच्छा उत्पन्न करता है। शौक। चाट। (२) इस प्रकार पड़ी हुई आदत। लत। उ०—उसे शराब पीने का चसका लग गया है।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—लगना।

चसना–क्रि० अ० [सं० चषण] (१) मरना। प्राण त्यागना। (२) फंदे में फँस कर किसी मनुष्य का कुछ देना, विशेषतः किसी गाहक का माल खरीदना। (दलालों की परि०)

क्रि० अ० [हिं० चाशनी] दो चीज़ों का एक में सटना। लगना। चपकना। उ०—ज्यों नाभी सर एक नाल नव कनक कमल विवि रहे चसी री।—सूर।

चसम†–संज्ञा पुं० दे० "चश्म"।

संज्ञा पुं० [देश०] रेशम का खुज्झा। रेशम के तागों में निकला हुआ निकम्मा अंश।

चसमा†–संज्ञा पुं० दे० "चश्मा"।

चस्का–संज्ञा पुं० दे० "चसका"।

चस्पाँ–वि० [फा०] चिपकाया हुआ। सटाया हुआ। लेई आदि से लगाया हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

चस्सी–संज्ञा पुं० [देश०] हथेली और तलवों की खुजली।

चह–संज्ञा पुं० [सं० चय] नदी के किनारे कच्चे घाटों पर लकड़ियाँ गाड़ कर और घास फूस और बालू आदि से पाट कर बनाया हुआ चबूतरा जिस पर से होकर मनुष्य और पशु आदि नावों पर चढ़ते हैं। पाट।

क्रि० प्र०—बाँधना।

* † संज्ञा स्त्री० [फा० चाह] गड्ढा। गर्त्त।

यौ०—चहबच्चा।

चहक–संज्ञा स्त्री० [हिं० चहकना] "चहकना" का भाव। लगातार होनेवाला पक्षियों का मधुर शब्द। चिड़ियों का चहचह शब्द।

† संज्ञा पुं० दे० "चहला"।

चहकना–क्रि० अ० [अनु०] (१) पक्षियों का आनंदित होकर मधुर शब्द करना। चहचहाना। (२) उमंग वा प्रसन्नता से अधिक बोलना। (बाजारू)।

चहका–संज्ञा पुं० [सं० चय] ईंट या पत्थर का फ़र्श।

संज्ञा पुं० [देश०] जलती हुई लकड़ी। लुआठी। लूका।

मुहा०—चहका देना वा लगाना = लूका लगाना। आग लगाना। जलाना। (स्त्रियों की गाली)।

(३) बनेठी।

संज्ञा पुं० [हिं० चहला] (१) कीचड़। चहला।

चहकार–संज्ञा स्त्री० दे० "चहक"।

चहकारना†–क्रि० अ० दे० "चहकना"।

चहचहा–संज्ञा पुं० [हिं० चहचहाना] (१) 'चहचहाना' का भाव। चहक। (२) हँसी दिल्लगी। ठट्ठा। चुहलबाज़ी।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

वि० (१) जिसमें चहचह शब्द हो। उल्लास शब्द युक्त। उ०—चहचही चुहिल चहूँकित अलीन की।—रसखान। (२) आनंद और उमंग उत्पन्न करनेवाला। बहुत मनोहर। उ०—चहचही चहल चहूँधा चारु चंदन की चंद्रक चुनीन चौक चौकत चढ़ी है आब।—पद्माकर। (३) ताजा। हाल का।

चहचहाना–क्रि० अ० [अनु०] पक्षियों का चह चह शब्द करना। चहकना। चहकारना।

चहटा†–संज्ञा पुं० [अनु०] कीचड़। पंक।

चहता†–संज्ञा पुं० [स्त्री० चहती] दे० "चहेता"।

चहनना†–क्रि० स० [हिं० चहलना] चहलना। दबाना। रौंदना।

मुहा०—चहन कर खाना = बहुत अच्छी तरह खाना। कस कर खाना। उ०—लुचई पोइ पोइ घी भेंई। पाछे चहन खाँड़ सों जेई।—जायसी।

चहना†–क्रि० स० दे० "चाहना"।

चहनि†*–संज्ञा स्त्री० दे० "चाह"।

चहबच्चा–संज्ञा पुं० [फा० चाह = कुआँ + बच्चा] (१) पानी (विशेषतः गंदा या नल आदि का) भर रखने का छोटा गड्ढा या हौज़। (२) धन गाड़ने वा छिपा रखने का छोटा तहखाना।

विशेष—कुछ लोग इसे "चौबच्चा" भी कहते हैं।

चहर†*–संज्ञा स्त्री० [हिं० चहल] (१) आनंद की धूम। आनंदोत्सव। रौनक। उ०—हरख भए नँद करत बधाई दान देत कहा कहौं महर की। पंच शब्द ध्वनि बाजत नाचत गावत मंगलचार चहर की।—सूर।

(२) जोर का शब्द। शोर गुल। हल्ला। उ०—मथति दधि जसुमति मथानी धुनि रही घर गहरि। श्रवन सुनति न महरि

बातें जहाँ तहाँ गई चहरि।—सूर। (३) उपद्रव। उत्पात। उ०—सुत को बरजि राखौ महरि।...............जमुन तट हरि देख ठाढ़े डरनि आवैं बहुरि। सूर स्यामहिं नेक बरजौ करत है अति चहरि।—सूर।

वि० (१) बढ़िया। उत्तम। (२) चुलबुला। तेज। उ०—गूढ़ गिरि गिरी गुलगुल से, गुलाब रंग चहर चगर चटकीले हैं बलक के।—सूदन।

चहरना †*-क्रि० अ० [हिं० चहर] आनंदित होना। प्रसन्न होना। उ०—आनंद भरी जसोदा उमगि अंग न समाति, आनंदित भईं गोपी गावति चहरि के।—सूर।

चहराना †*-क्रि० अ० (१) दे० "चहरना"। (२) "चर्राना"। क्रि० अ० [देश०] दरकना। फटना। तड़कना। चटकना।

चहरुम-वि० दे० "चहारुम"।

चहल-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) कीचड़। कीच। कर्दम। उ०—चहचही चहल चहूँधा चारु चंदन की चंदक चुनीन चौक चौकन चढ़ी है आब।—पद्माकर। (२) कीचड़ मिली हुई कड़ी चिकनी मिट्टी की ज़मीन जिसमें बिना हल चलाए जोताई होती है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चहचहाना] आनंद की धूम। आनंदोत्सव। रौनक।

यौ०—चहल पहल।

चहलक़दमी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चहल + फ़ा० क़दम] धीरे धीरे टहलना, घूमना या चलना।

चहल पहल-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) किसी स्थान पर बहुत से लोगों के आगे जाने की धूम। अबादानी। (२) बहुत से लोगों के आने जाने के कारण किसी स्थान पर होनेवाली रौनक। आनंदोत्सव। आनंद की धूम।

क्रि० प्र०—मचना।—होना।

चहला †-संज्ञा पुं० [सं० चिकिल] कीचड़। पंक। उ०—चंदन के चहला मैं परी परी पंकज की पँखुरी नरमी मैं।

चहली †-संज्ञा स्त्री० [देश०] कुएँ से पानी खींचने की चरखी। गराड़ी। घिरनी।

चहलुम-संज्ञा पुं० दे० "चेहलुम"।

चहारदीवारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी स्थान के चारों ओर की दीवार। प्राचीर। कोट। परिखा।

चहारुम-वि० [फ़ा०] किसी वस्तु के चार भागों में से एक भाग। चतुर्थांश। चौथाई।

चहुँ*-वि० [हिं० चार] चार। चारों।

विशेष—यह शब्द यौगिक के पहले आता है। जैसे, चहुँधा, चहुँचक (चारों ओर) आदि।

चहुँक-संज्ञा स्त्री० दे० "चिहुँक"।

चहुरा †-वि० पुं० (१) दे० "चौघरा"। (२) "चौहरा"।

चहुरी †-संज्ञा स्त्री० [हिं० चहु] एक पात्र या मान।

चहुवान-संज्ञा पुं० दे० "चौहान"।

चहूँ-वि० दे० "चहुँ"।

चहूँटना †-क्रि० अ० [हिं० चिमटना] सटना। लगना। मिलना। उ०—डोरी लागी भय मिटा, मन पाया विश्राम। चित्त चहूँटा राम सों, याही के बल धाम।—कबीर।

चहेटना-क्रि० स० [?] (१) किसी चीज को दबाकर उसका रस या सार भाग निकालना। गारना। निचोड़ना। उ०—चंद चहेटि समेटि सुधारस कीन्हों तवै तिय के अधरान को। (२) दे० "चपेटना"।

चहेता-वि० [हिं० चाहना + एता (प्रत्य०)] [स्त्री० चहेती] जिसके साथ प्रेम किया जाय। जिसे चाहा जाय। प्यारा।

चहेती-वि० स्त्री० [हिं० चाहना] प्यारी। जिसे चाहा जाय। जैसे, चहेती स्त्री।

चहेल †-संज्ञा स्त्री० [हिं० चहला] (१) चहला। कीचड़। (२) वह भूमि जहाँ कीचड़ बहुत हो। दलदली भूमि।

चहोरना †-क्रि० अ० [देश०] (१) धान वा अन्य किसी वृक्ष के पौधे को एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगाना। रोपना। बैठाना। (२) सहेजना। सँभालना। देख भाल कर सुरक्षित करना। उ०—काटी कूटी माछरी छींके धरी चहोरि। कोइ एक औगुन मन बसा दह में परी बहोरि।—कबीर। क्रि० स० दे० "चगोरना"।

चहोरा-संज्ञा पुं० [हिं० चहोरना] जड़हन धान, जिसे रोपुवा धान भी कहते हैं।

चाँई-वि० [सं० चंचुर = दक्ष वा देश० चाई = नैपाल की एक जंगली जाति जो डाका डालती है] (१) ठग। उचक्का। (२) होशियार। छली। चालाक।

संज्ञा स्त्री० [?] सिर में होनेवाली एक प्रकार की फुंसियाँ जिनसे बाल झड़ जाते हैं।

वि० जिसके बाल झड़ गये हों। गंजा।

चाँईं चूँईं-संज्ञा स्त्री० [?] सिर में होनेवाली एक प्रकार की फुंसियाँ जिनके कारण बाल गिर जाते हैं।

चाँक-संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + अंक = चिह्न] (१) काठ की वह थापी जिस पर अक्षर वा चिह्न खुदे होते हैं और जिससे खलियान में अन्न की राशि पर ठप्पा लगाते हैं। (२) खलियान में अन्न की राशि पर डाला हुआ चिह्न। (३) टोटके के लिये शरीर के किसी पीड़ित स्थान के चारों ओर खींचा हुआ घेरा। गोंठ।

चाँकना-क्रि० स० [हिं० चाँक] (१) खलियान में अनाज की राशि पर मिट्टी, राख वा ठप्पे से छापा लगाना जिसमें यदि अनाज निकाला जाय तो मालूम हो जाय। उ०—तुलसी

तिलोक की समृद्धि सौज संपदा सकेलि चांकि राखी राशि जाँगरु जहान गो।—तुलसी। (२) सीमा बाँधने के लिये किसी वस्तु को रेखा वा चिह्न खींच कर चारों ओर से घेरना। हद खींचना। हद बाँधना। उ०—सकल भुवन शोभा जनु चांकी।—तुलसी। (३) पहचान के लिये किसी वस्तु पर चिह्न डालना।

चांका-संज्ञा पुं० दे० "चांक"।

चाँगड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] तिब्बत देश का एक प्रकार का बकरा।

चाँगला-वि० [सं० चंग, हिं० चंगा] (१) स्वस्थ। तंदुरुस्त। हृष्ट। पुष्ट। (२) चतुर। चालाक।

संज्ञा पुं० घोड़ों का एक रंग।

चांगेरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] खट्टी लोनी। अमलोनी जिसका साग होता है।

चाँचर, चांचरि-संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] वसंत ऋतु में गाया जानेवाला एक राग। चर्चरी राग जिसके अंतर्गत, होली, फाग, लेद इत्यादि माने जाते हैं। उ०—तुलसिदास चांचरि मिसु, कहे राम गुण ग्राम।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) वह ज़मीन जो एक वर्ष तक वा कई वर्षों तक बिना जोती बोई छोड़ दी जाय। परती छोड़ी हुई ज़मीन। (२) एक प्रकार की मटियार भूमि।

संज्ञा पुं० [देश०] टट्टी वा परदा जो किवाड़ के बदले काम में लाया जाय।

चांचल्य-संज्ञा पुं० [सं०] चंचलता। चपलता।

चांचिया गलवत, चाँचिया जहाज़-संज्ञा पुं० [हिं० चाँई ?] डाकुओं का जहाज़ जो समुद्र में सौदागरी के जहाज़ों को लूटता है।

चाँचु*-संज्ञा पुं० [सं० चंचु] चोंच। उ०—बकासुर रचि रूप माया रह्यो छल करि आइ। चाँचु पकरि पुहुमी लगाई इक अकास समाइ।—सूर।

चाँट-संज्ञा पुं० [हिं० छींटा] (१) हवा में उड़ता हुआ जल-कण का प्रवाह जो तूफ़ान आने पर समुद्र में उठता है। (लश०)

मुहा०—चाँट मारना = जहाज़ के बाहरी किनारे के तख़्तों पर या पाल पर पानी छिड़कना। (यह पानी इस लिये छिड़का जाता है जिसमें तख़्ते धूप की गरमी से न चिटकें या पाल कुछ भारी हो जाय।

चाँटा-संज्ञा पुं० [हिं० चिमटना] [स्त्री० चाँटी] चींटा। चिउँटा। उ०—(क) नेरे दूर फूल जस काँटा। दूर जो नेरे जस गुर चाँटा।—जायसी। (ख) अदल कहौं प्रथमैं जस होई। चाँटा चलत न दुखवै कोई।—जायसी।

संज्ञा पुं० [अनु० चट वा सं० चट = तोड़ना] थप्पड़। तमाचा। चपत।

क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—मारना।—लगाना।

चाँटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँटा] (१) चींटी। उ०—कीन्हेसि लावा, इंदुर, चाँटी।—जायसी। (२) वह कर जो पहले कारीगरों पर लगाया जाता था। (३) तबले की सँजाफ़दार मगजी जिस पर तबला बजाते समय तर्जनी उंगली पड़ती है। (४) तबले का वह शब्द जो इस स्थान पर तर्जनी उंगली का आघात पड़ने से होता है।

चाँड़-वि० [सं० चंड] (१) प्रबल। बलवान। उ०—दान कृपान बुद्धिबल चाँडे।—लाल। (२) उग्र। उद्धत। शोख़। उ०—धीर धरहु फल पावहुगे। अपने ही पिय के सुख चाँडे कबहूं तो बस आवहुगे।—सूर। (३) बढ़ा चढ़ा। श्रेष्ठ। (४) तृप्त। संतुष्ट। अघाया हुआ। अफरा हुआ। उ०—ऊधो तुम्हरी बात इमि जिमि रोगी हित माँड़। जो जेंवत है सेर भर सो किमि होवै चाँड़।—विश्राम।

संज्ञा स्त्री० [सं० चंड = प्रबल] (१) टेक। थूनी। भार सँभालने का खंभा।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

(२) भारी जरूरत। किसी ऐसी बात की आवश्यकता जिसके बिना कोई काम तुरंत बिगड़ता हो। तात्कालिक आवश्यकता। किसी अभावपूर्त्ति के निमित्त आकुलता। गहरी चाह। भारी लालसा। उ०—तुम्हें जब रुपए की चाँड़ लगती है तब हमारे पास आते हो।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—चांड सरना = इच्छा पूरी होना। काम पूरा होना। लालसा पूरी होना। उ०—तोरे धनुष चाँड़ नहिं सरई। जीवत हमहिं कुँवरि को बरई।—तुलसी। चाँड़ सराना = इच्छा पूरा करना। लालसा मिटाना। उ०—पुरुष भँवर दिन चारि आपने अपनो चाँड़ सरायो।—सूर।

(३) दबाव। संकट। उ०—तुम जब गहरी चाँड़ लगाओगे तभी रुपया निकलेगा। (४) प्रबल इच्छा। गहरी चाह। छटपटी। दे० "चाड़"। (५) प्रबलता। अधिकता। बढ़ती। उ०—भोज बली रतनेस भए मतिराम सदा यश चाँड़न ही में।—मतिराम।

चाँड़ना-क्रि० स० [?] (१) खोदना। खोदकर गिराना। खोद कर गहरा करना। (२) उखाड़ना। उजाड़ना। उ०—प्रविशि बाटिका चाँड़न लागे। घुरघुरात रखवारे भागे।—विश्राम।

चांडाल-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री चांडाली, चांडालिन] (१) अत्यंत नीच जाति। डोम। श्वपच।

विशेष—मनु के अनुसार चांडाल शूद्र पिता और ब्राह्मणी माता से उत्पन्न हैं और अत्यंत नीच माने गए हैं। इनकी बस्ती ग्राम के बाहर होनी चाहिए, भीतर नहीं। इनके लिये सोने चाँदी आदि के बरतनों का व्यवहार निषिद्ध है। वे जूठे बरतनों में भोजन कर सकते हैं। चाँदी सोने के बरतनों को छोड़ और किसी बरतन में यदि चांडाल भोजन कर ले तो

वह किसी प्रकार शुद्ध नहीं हो सकता। कुत्ते गदहे आदि पालना, मुरदे का कफन आदि लेना, तथा इधर उधर फिरना इनका व्यवसाय ठहराया गया है। यज्ञ वा और किसी धर्मानुष्ठान के समय इनके दर्शन का निषेध है। इन्हें अपने हाथ से भिक्षा तक न देनी चाहिए, सेवकों के हाथ से दिलवानी चाहिए। रात्रि के समय इन्हें बस्ती में न निकलना चाहिए। प्राचीन काल में अपराधियों का वध इन्हीं के द्वारा कराया जाता था। लावारिसों की दाह आदि क्रिया भी ये ही करते थे।

पर्य्या०—श्वपच। प्लव। मातंग। दिवाकीर्त्ति। जनंगम। निषाद। श्वपाक। अंतेवासी। पुक्कस। निष्क।

(२) पतित मनुष्य। कुकर्म्मी, दुष्ट, दुरात्मा, क्रूर या निष्ठुर मनुष्य।

चांडाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] चांडाल जाति की स्त्री। वह स्त्री जो चांडाल जाति की हो।

चाँड़िला†*-वि० [सं० चंड] [स्त्री० चाँड़िली] (१) प्रचंड। प्रबल। उग्र। उद्धत। नटखट। शोख़। उ०—नंद सुत लाड़िले प्रेम के चाँड़िले सैंहु दै कहत हैं नारि आगे।—सूर। (२) बहुत अधिक। बहुत ज्यादा। उ०—मोती नग हीरन गहीरन बनत हार चीरन चुनत चितै चोप चित चाँड़िली।—देव।

चाँडू†-संज्ञा पुं० दे० "चंडू"।

चाँढा-संज्ञा पुं० [हिं० संधि] जहाज की बनावट में वह स्थान जहाँ दो तख्ते आकर मिलते हैं।

चाँद-संज्ञा पुं० [सं० चन्द] (१) चंद्रमा।

क्रि० प्र०—निकलना।

मुहा०—**चाँद का कुंडल वा मंडल बैठना** = बहुत हलकी बदली पर प्रकाश पड़ने के कारण चंद्रमा के चारों ओर एक वृत्त वा घेरा सा बन जाना। **चांद का खेत करना** = चंद्रोदय का प्रकाश क्षितिज पर दिखाई पड़ना। चंद्रमा के निकलने के पहले उसकी आभा का फैलना। **चाँद का टुकड़ा** = अत्यंत सुंदर मनुष्य। **चांद चढ़ना** = चंद्रमा का ऊपर आना। **चांद दीखे** = शुक्र द्वितीया के पीछे। जैसे, चाँद दीखे आना तुम्हारा हिसाब चुकता हो जायगा। **चाँद पर थूकना** = किसी महात्मा पर कलंक लगाना जिसके कारण स्वयं अपमानित होना पड़े। (ऊपर की ओर थूकने से अपने ही मुहँ पर थूक पड़ता है इसी से यह मुहा० बना है।) **चाँद पर धूल डालना** = किसी निर्दोष पर कलंक लगाना। किसी साधु वा महात्मा पर दोषारोपण करना। **चाँद सा मुखड़ा** = अत्यंत सुंदर मुख। **किधर चाँद निकला है?** = आज कैसे दिखाई पड़े? क्या अनहोनी बात हुई जो आप दिखाई पड़े? (जब कोई मनुष्य बहुत दिनों पर दिखाई पड़ता है तब उसके प्रति इस मुहा० का प्रयोग किया जाता है।)

(२) चांद्रमास। महीना। उ०—एक चांद के अंदरै तुम्हैं आवना रास। यह लिखि सुतुर सवार को भेज्यो दखिनिन पास।—सूदन।

क्रि० प्र०—चढ़ना।

(३) द्वितीया के चंद्रमा के आकार का एक आभूषण। (४) ढाल के ऊपर की गोल फुलिया। ढाल के ऊपर जड़ा हुआ गोल फूलदार काँटा। (५) चाँदमारी का वह काला दाग जिस पर निशाना लगाया जाता है। (६) टीन आदि चमकीली धातुओं का वह गोल टुकड़ा जो लंप की चिमनी के पीछे प्रकाश बढ़ाने के लिये लगा रहता है। कमरखी। (७) घोड़े के सिर की एक भौंरी का नाम। (८) एक प्रकार का गोदना जो स्त्रियों की कलाई के ऊपर गोदा जाता है। (९) भालू की गरदन में नीचे की ओर सफ़ेद बालों का एक घेरा। (कलंदर)।

संज्ञा स्त्री० (१) खोपड़ी का मध्य भाग। खोपड़ी का सबसे ऊँचा भाग। (१) खोपड़ी।

मुहा०—**चाँद पर बाल न छोड़ना** = (१) सिर पर इतने जूते लगाना कि बाल झड़ जांय। सिर पर खूब जूते लगाना। (२) खूब मूँडना। सर्वस्व हरण करना। सब कुछ लेलेना।

चाँदतारा-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार की बारीक मलमल जिस पर चाँद और तारों के आकार की बूटियाँ बनी हों। (२) एक प्रकार की पतंग या कनकौवा जिसमें रंगीन काग़ज़ के चाँद और तारे बना कर चिपका देते हैं।

चाँदना-संज्ञा पुं० [हिं० चाँद] (१) प्रकाश। उजाला। (२) चाँदनी।

चाँदनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद] (१) चंद्रमा का प्रकाश। चंद्रमा का उजाला। चंद्रिका। ज्योत्स्ना। कौमुदी।

यौ०—**चाँदनी रात** = वह रात जिसमें चंद्रमा का प्रकाश हो। उजाली रात। शुक्ल पक्ष की रात्रि।

मुहा०—**चाँदनी खिलना वा छिटकना** = चंद्रमा के स्वच्छ प्रकाश का खूब फैलना। शुभ्र ज्योत्स्ना का फैलना। **चाँदनी का खेत** = चंद्रमा का चारों ओर फैला हुआ प्रकाश। **चाँदनी मारना** = (१) चाँदनी का बुरा प्रभाव पड़ने के कारण घाव या जख़्म का अच्छा न होना। (कुछ लोगों में यह प्रवाद प्रचलित है कि घाव पर चाँदनी पड़ने से वह जल्दी अच्छा नहीं होता।) (२) चाँदनी पड़ने के कारण घोड़ों को एक प्रकार का आकस्मिक रोग हो जाना, जिससे उनका शरीर ऐँठने लगता है और वे तड़फ तड़फ कर मर जाते हैं। कहते हैं कि यह रोग किसी पुरानी चोट के कारण होता है। **चार दिन की चाँदनी** = थोड़े दिन रहनेवाला सुख वा आनंद। क्षणिक समृद्धि।

(२) बिछाने की बड़ी सफ़ेद चद्दर। सफ़ेद फ़र्श। (३) ऊपर तानने का सफेद कपड़ा। छतगीर। (४) गुल-चाँदनी। तगर।

चाँदबाला-संज्ञा पुं० [हिं० चाँद + बाला] कान में पहनने का एक प्रकार का बाला जो अर्द्धचंद्राकार होता है।

चाँदमारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद + मारना] बंदूक के निशाना लगाने का अभ्यास। दीवार या कपड़े पर बने हुए चिह्नों को लक्ष्य करके गोली चलाने का अभ्यास।

चाँदला†—वि० [हिं० चाँद] (१) (दूज के चंद्रमा के समान) टेढ़ा। वक्र। कुटिल। (२) दे० "चँदला"।

चाँद सूरज—संज्ञा पुं० [हिं० चाँद + सूरज] एक प्रकार का गहना जिसे स्त्रियाँ चोटी में गूँध कर पहनती हैं।

चाँदा—संज्ञा पुं० [हिं० चाँद] (१) वह लक्ष्य स्थान जहाँ दूरबीन लगाई जाती है। (२) पैमाइश वा भूमि की नाप में वह विशेष स्थान जिसकी दूरी को लेकर हदबंदी की जाती है। (३) छप्पर का पाखा।

चाँदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद] (१) एक सफ़ेद चमकीली धातु जो बहुत नरम होती है। इसके सिक्के, आभूषण और बरतन इत्यादि बनते हैं। यह खानों में कभी शुद्ध रूप में, कभी दूसरे खनिज पदार्थों में गंधक, संखिया, सुरमा आदि के साथ मिली हुई पाई जाती है। इसका गुरुत्व सोने के गुरुत्व का आधा होता है। इसका अम्लक्षार बड़ी कठिनता से बनता है। चाँदी के अम्लक्षार को नौसादर के पानी में घोल कर सुखाने से ऐसा रासायनिक पदार्थ तैयार होता है जो हलकी रगड़ से भी बहुत जोर से भड़कता है। वैद्य लोग इसे भस्म करके रसौषध बनाते हैं। हकीम लोग भी इसका वरक रोगियों को देते हैं। चाँदी का तार बहुत अच्छा खिँचता है जिससे कारचोबी के अनेक प्रकार के काम बनते हैं। चाँदी से कई एक ऐसे क्षार बनाए जाते हैं जिन पर प्रकाश का प्रभाव बड़ा विलक्षण पड़ता है। इसी से उनका प्रयोग फोटोग्राफी में होता है।

पर्य्या०—रौप्य। रजत। चामीकर।

मुहा०—चाँदी कर डालना या देना = जला कर राख कर डालना। उ०—तुम तो तमाकू को चाँदी कर डालते हो तब दूसरे को देते हो। चाँदी का जूता = वह धन जो किसी को अपने अनुकूल वा वश में करने को दिया जाता है। जैसे, घूस, इनाम आदि। चाँदी काटना = (१) खूब रुपया पैदा करना। खूब माल मारना। (२) स्त्री से प्रथम समागम करना। चाँदी का पहरा = सुख समृद्धि का समय। सौभाग्य की दशा। धन-धान्य की पूर्णता की अवस्था।

(२) धन की आय। आर्थिक लाभ। उ०—आज कल तो उनकी चाँदी है। (३) खोपड़ी का मध्य भाग। चाँद। चँदिया।

मुहा०—चाँदी खोलवाना = चाँद के ऊपर के बाल मुड़ाना।

(४) एक प्रकार की मछली जो दो या तीन इंच लंबी होती है।

चाँद्र—वि० [सं०] चंद्रमा संबंधी। जैसे, चाँद्रमास। चाँद्रवत्सर। संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाद्रायण व्रत। (२) चंद्रकांत मणि। (३) अदरख। (४) मृगशिरा नक्षत्र। (५) लिंगपुराण के अनुसार प्लक्षद्वीप का एक पर्वत।

चाँद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ।

चाँद्रपुर—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक नगर जिसमें एक प्रसिद्ध शिवमूर्त्ति के होने का उल्लेख है।

चाँद्रमस—वि० [सं०] चँद्रमा संबंधी।

संज्ञा पुं० मृगशिरा नक्षत्र।

चाँद्रमसायन—संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह।

चाँद्रमाण—संज्ञा पुं० [सं०] काल का वह परिमाण जो चँद्रमा की गति के अनुसार निर्धारित किया गया हो।

चाँद्रमास—संज्ञा पुं० [सं०] वह मास जो चँद्रमा की गति के अनुसार हो। उतना काल जितना चँद्रमा को पृथ्वी की परिक्रमा करने में लगता है।

विशेष—चाँद्रमास दो प्रकार का होता है। एक गौण, दूसरा मुख्य। कृष्ण प्रति पदा से लेकर पूर्णिमा तक का काल गौण वा पूर्णिमांत और शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावास्या तक का काल मुख्य वा अमांत चाँद्रमास कहलाता है।

चाँद्रवत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्ष जो चँद्रमा की गति के अनुसार हो।

चाँद्रव्रतिक—वि० [सं०] जो चाँद्रायण व्रत करे।

संज्ञा पुं० राजा।

चाँद्रायण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चाँद्रायणिक] (१) महीने भर का एक कठिन व्रत जिसमें चँद्रमा के घटने बढ़ने के अनुसार आहार घटाना बढ़ाना पड़ता है।

विशेष—मिताक्षरा के अनुसार इस व्रत का करनेवाला शुक्ल प्रतिपदा के दिन त्रिकाल स्नान करके केवल एक ग्रास मोर के अंडे के बराबर का खा कर रहे। द्वितीया को दो ग्रास खाय। इसी प्रकार क्रमशः एक एक ग्रास नित्य बढ़ाता हुआ पूर्णिमा के दिन पंद्रह ग्रास खाय। फिर कृष्ण प्रतिपदा को चौदह ग्रास खाय। द्वितीया को तेरह, इसी प्रकार क्रमशः एक एक ग्रास नित्य घटाता हुआ कृष्ण चतुर्दशी के दिन एक ग्रास खाय और अमावस्या के दिन कुछ न खाय, उपवास करे। इस व्रत में ग्रासों की संख्या आरंभ और अंत में कम तथा बीच में अधिक होती है, इसी से इसे यवमध्य चाँद्रायण कहते हैं। इसी व्रत को यदि कृष्ण प्रतिपदा से पूर्वोक्त क्रम से (अर्थात् प्रतिपदा को चौदह ग्रास, द्वितीया को तेरह इत्यादि) आरंभ करे और पूर्णिमा को पूरे पंद्रह ग्रास खा कर समाप्त करे तो वह पिपीलिका-तनुमध्य चाँद्रायण होगा। कल्पतरु के मत से एक यति चाँद्रायण होता है, जिसमें एक महीने तक नित्य तीन तीन ग्रास खा कर रहना पड़ता है। सुभीते

के लिये चांद्रायण व्रत का एक और विधान भी है। इसमें महीने भर के सब ग्रासों को जोड़ कर तीस से भाग देने से जितने ग्रास आते हैं उतने ग्रास नित्य खा कर महीने भर रहना पड़ता है। महीने भर के ग्रासों की संख्या २२५ होती है जिसमें ३० का भाग देने से ७½ ग्रास होते हैं। पल प्रमाण का एक ग्रास लेने से पाव भर के लगभग अन्न होता है। अतः इतना ही हविष्यान्न नित्य खा कर रहना पड़ता है। मनु, पाराशर, बौद्धायन इत्यादि सब स्मृतियों में इस व्रत का उल्लेख है। गौतम के मत से इस व्रत के करनेवाले को चंद्रलोक की प्राप्ति होती है। स्मृतियों में पापों और अपराधों के प्रायश्चित्त के लिये भी इस व्रत का विधान है।

(२) एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ११ और १० के विराम से २१ मात्राएँ होती हैं। पहले विराम पर जगण और दूसरे पर रगण होना चाहिए। उ०—हरि हर कृपा-निधान, परम पद दीजिए। प्रभु जू दया निकेत, शरण रख लीजिए।

चाँद्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की स्त्री। (२) चाँदनी। ज्योत्स्ना। (३) सफेद भटकटैया।

वि० चंद्रमा संबंधी।

चाँप-संज्ञा पुं० दे० "चाप"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चँपना] (१) चप वा दब जाने का भाव। दबाव।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(२) बंदूक का वह पुरजा जिसके द्वारा कुंदे से नली जुड़ी रहती है। (३) पैर की आहट। पैर ज़मीन पर पड़ने का शब्द। दे० "चाप"।

संज्ञा स्त्री० [देश०] सोने की वे कीलें जिन्हें लोग अगले दाँतों पर जड़वाते हैं।

†*संज्ञा पुं० [हिं० चँपा] चँपा का फूल। उ०—कोई परा भँवर होय वास कीन जनु चाँप। कोइ पतंग भा दीपक कोई अधजर तन काँप।—जायसी।

चाँपना-क्रि० स० [सं० चपन = माँडना] (१) दबाना। मीड़ना। उ०—बड़ भागी अंगद हनुमाना। चाँपत चरणकमल विधि नाना।—तुलसी। (२) जहाज का पानी निकालने के लिये पंप का पेच चलाना। —(लश०)।

चाँयँ चाँयँ-संज्ञा स्त्री० [अनु०] व्यर्थ की बकवाद। बकबक।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

चावँ चावँ-संज्ञा स्त्री० दे० "चाँयँ चाँयँ"

चांसलर-संज्ञा पुं० [अं०] विश्वविद्यालय का प्रधान अधिकारी जो बी० ए०, एम० ए० आदि की उपाधि देता है।

चा-संज्ञा स्त्री० दे० "चाय"।

चाउ†*-संज्ञा पुं० दे० "चाव"।

चाउर†-संज्ञा पुं० दे० "चावल"।

चाऊ-संज्ञा पुं० [देश०] ऊँट या बकरे का बाल। (पहाड़ी बोली)।

चाक—संज्ञा पुं० [सं० चक्र, प्रा० चक्क] (१) पहिये की तरह का वह गोल (मंडलाकार) पत्थर जो एक कील पर घूमता है और जिस पर मिट्टी का लोंदा रख कर कुम्हार बरतन बनाते हैं। कुलालचक्र।

विशेष—इसके किनारे पर एक जगह रुपये के बराबर एक छोटा सा गड्ढा होता है जिसे कुम्हार 'चित्ती' कहते हैं। इसी चित्ती में डंडा अँटका कर चाक घुमाते हैं।

(२) गाड़ी वा रथ का पहिया। उ०—विविधि कला के लगे पताके छुवैं जे रविरथ चाके।—रघुराज। (३) गराड़ी। घिरनी। चरखी जिस पर कुएँ से पानी खींचने की रस्सी रहती है। (४) मिट्टी की वह गोल घरिया जिसमें मिस्री जमाते हैं। (५) थापा जिससे खलियान की राशि पर छापा लगाते हैं। दे० "चाकना" (६) सान जिस पर छुरी, कटार आदि की धार तेज़ की जाती है। (७) ढेंकली के पिछले छोर पर बोझ के लिये रक्खी हुई मिट्टी की पिंडी। (८) मिट्टी का वह बरतन जिससे ऊख का रस कड़ाह में पकने के लिये डाला जाता है। (९) मंडलाकार चिह्न की रेखा। गोंड़ला।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) दरार। चीड़।

मुहा०—चाक करना वा देना = चीरना। फाड़ना। चाक होना = चीरा जाना। फाड़ा जाना।

(२) आस्तीन का खुला हुआ मोहरा।

वि० [तु० चाक] (१) दृढ़। मज़बूत। पुष्ट। (२) हृष्ट पुष्ट। तंदुरुस्त। चुस्त।

यौ०—चाक चौबंद = हृष्ट पुष्ट। तगड़ा। (२) चुस्त। चालाक। फुरतीला। तत्पर।

संज्ञा पुं० [अं०] दुद्धी। खरिया मिट्टी।

यौ०—चाक प्रिंटिंग = एक प्रकार की सफ़ेद रंग की छपाई जो प्रायः पुस्तकों के टाइटिल पेज (आवरणपत्र) आदि पर होती है। इसकी स्याही खरिया के योग से बनती है।

चाकचक-वि० [तु० चाक + सं० चक्र] चारों ओर से सुरक्षित। दृढ़। मज़बूत। उ०—चाकचक चमू के अचाकचक चहूँ ओर चाक सी फिरत धाक चंपति के लाल की।—भूषण।

चाकचक्य-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमक दमक। चमचमाहट। उज्वलता। (२) शोभा। सुंदरता।

चाकट†-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कड़ा जो हाथ में पहना जाता है।

चाकदिल-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का बुलबुल।

चाकना–क्रि० स० [हिं० चाँक] (१) सीमा बाँधने के लिये किसी वस्तु को रेखा वा चिह्न खींच कर चारों ओर से घेरना। हद खींचना। उ०—सकल भुवन शोभा जनु चाकी।—तुलसी। (२) खलियान में अनाज की राशि पर मिट्टी वा राख से छापा लगाना जिसमें यदि अनाज निकाला जाय तो मालूम हो जाय। उ०—तुलसी तिलोक की समृद्धि सौज संपदा सकेलि चाकि राखी राशि जाँगरु जहान भो।—तुलसी। (३) पहचान के लिये किसी वस्तु पर चिह्न डालना।

चाकर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० चाकरानी] दास। भृत्य। सेवक। नौकर।

चाकरनी–संज्ञा स्त्री० दे० "चाकरानी"।

चाकरानी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाकर का स्त्री०] नौकरानी। दासी। लौंड़ी।

चाकरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सेवा। नौकरी। टहल। ख़िदमत।
क्रि० प्र०—करना।
मुहा०—चाकरी बजाना = सेवा करना। ख़िदमत करना।

चाकल †वि० दे० "चकला"।

चाकसू–संज्ञा पुं० [सं० चक्षुष्या] (१) बनकुलथी का पौधा। (२) बनकुलथी का बीज।
विशेष—ये बीज बहुत छोटे और काले काले होते हैं। औषध के रूप में ये पीस कर आँख में डाले जाते हैं।

चाका–संज्ञा पुं० दे० "चाक (२)"।

चाकी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाक] चक्की। आटा पीसने का यंत्र।
संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] (१) बिजली। बज्र।
क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।
(२) पटे की एक चोट जो सिर पर की जाती है।

चाकू–संज्ञा पुं० [तु०] क़लम, फल तथा और छोटी मोटी चीज़ों को काटने छीलने आदि का औज़ार। छुरी।

चाक्रायण–संज्ञा पुं० [सं०] चक्र नामक ऋषि के वंशधर जिनका उल्लेख छांदोग्य उपनिषद में है।

चाक्रिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूसरों की स्तुति गानेवाला। चारण। भाट।
विशेष—याज्ञवल्क्य स्मृति में चाक्रिक के अन्नभोजन का निषेध है।
(२) तेली। (३) गाड़ीवान। (४) कुम्हार। (५) अनुचर। सहचर।
वि० (१) चक्राकार। (२) चक्र संबंधी। (३) किसी चक्र वा मंडली से संबंध रखनेवाला।

चाक्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक फूल का नाम।

चाक्षुष–वि० [सं०] (१) चक्षु संबंधी। (२) आँख से देखने का। जिसका बोध नेत्रों से हो। चक्षुर्ग्राह्य।
संज्ञा पुं० (१) न्याय में प्रत्यक्ष प्रमाण का एक भेद। ऐसा प्रत्यक्ष जिसका बोध नेत्रों द्वारा हो। (२) छठें मनु का नाम।
विशेष—भागवत के मत से ये विश्वकर्मा के पुत्र थे। इनकी माता का नाम आकृति और स्त्री का नाम नड्वला था। पुरु, कुत्स्न, अमृत, द्युमान्, सत्यवान्, धृत, अग्निष्टोम, अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिवि और उल्लूक इनके पुत्र थे। जिस मन्वंतर के ये स्वामी थे उसके इंद्र का नाम मंत्रद्रुम था। मत्स्यपुराण में पुत्रों के नामों में कुछ भेद है। मार्कंडेय पुराण में चाक्षुष मनु की बड़ी लंबी चौड़ी कथा आई है। उस में लिखा है कि अनमित्र नामक राजा को उनकी रानी भद्रा से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन रानी उस पुत्र को लेकर बहुत प्यार कर रही थी इतने में पुत्र एकबारगी हँस पड़ा। जब रानी ने कारण पूछा तब पुत्र ने कहा—"मुझे खाने के लिये एक बिल्ली ताक में बैठी है। मैं तुम्हारी गोद में ८—९ दिन से अधिक नहीं रहने पाऊँगा, इसीसे तुम्हारा मिथ्या स्नेह देख कर मुझे हँसी आई"। रानी यह सुनकर बड़ी दुखी हुई। उसी दिन विक्रांत नामक राजा की रानी को भी एक पुत्र हुआ। भद्रा कौशल से अपने पुत्र को विक्रांत की रानी की चारपाई पर रख आई और उसका पुत्र लाकर आप पालने लगी। विक्रांत राजा ने उस पुत्र का नाम आनंद रखा। जब आनंद का उपनयन होने लगा तब आचार्य्य ने उसे उपदेश दिया कि "पहले अपनी माता की पूजा करो"। आनंद ने कहा "मेरी माता तो यहाँ है नहीं अतः जिसने मेरा पालन किया है, उसीकी पूजा करता हूँ।" आनंद ने सब व्यवस्था कह सुनाई। पीछे राजा रानी को ढाढ़स बँधा कर वे स्वयं तपस्या करने लगे। आनंद की तपस्या से संतुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसे मनु बना दिया और उसका नाम चाक्षुष रक्खा।
(३) स्वयंभुव मनु के पुत्र का नाम। चौदहवें मन्वंतर के एक देवगण का नाम।

चाख–संज्ञा पुं० दे० "चाष"।

चाखना †–क्रि० स० दे० "चखना"।

चाचपुट–संज्ञा पुं० [सं०] ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक। इसमें एक गुरु, एक लघु और एक प्लुत स्वर होते हैं।

चाचर, चाचरि–संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] (१) होली में गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत। चर्चरी राग जिसके अंतर्गत होली, फाग, लेद आदि माने जाते हैं। उ०—तुलसिदास चाचरि मिस कहै राम गुन ग्राम।—तुलसी। (२) होली में होनेवाले खेल तमाशे। होली का स्वांग और हुल्लड़। होली की धमार। हर्षक्रीड़ा। उ०—(क) श्रुति, पुराण बुध सम्मत चाचरि चरित मुरारि।—तुलसी। (ख) तैसी ये बसंत पाँचैं चाय सों चाचरि मांचै, रंग राचैं कीच माचै

केसर के नीर की ।—देव । †(३) उपद्रव । दंगा । हलचल । हल्ला गुल्ला ।

क्रि० प्र०—मचना ।—मचाना ।

चाचरी–संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] योग की एक मुद्रा । उ०—महदाकाश चाचरी मुद्रा शक्ती जाना ।—कबीर ।

चाचा–संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० चाची] काका । पितृव्य । बाप का भाई ।

विशेष—दे० "चचा" ।

चाची–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाचा] चाचा की स्त्री । काकी ।

चाट–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाटना] (१) चटपटी चीजों के खाने वा चाटने की प्रबल इच्छा । स्वाद लेने की इच्छा । मजे की चाह । (२) एक बार किसी वस्तु का आनंद लेकर फिर उसी का आनंद लेने की चाह । चसका । शौक़ । लालसा ।

क्रि० प्र०—लगना ।

(३) प्रबल इच्छा । कड़ी चाह । लोलुपता । उ०—तुम्हें तो बस रुपये की चाट लगी है ।

क्रि० प्र०—लगना ।—होना ।

(४) लत । आदत । बान । टेव । धत । (५) मिर्च, खटाई, नमक आदि डाल कर बनाई हुई चरपरे स्वाद की वस्तु । चरपरी और नमकीन खाने की चीज़ें । जैसे, सेव, दही-बड़ा, दालमोठ इत्यादि । गज़क । (ऐसी चीज़ें शराब पीने के पीछे ऊपर से प्रायः खाई जाती हैं) उ०—चाट की दूकान । संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वासघाती चोर । वह जो किसी का विश्वासपात्र बन कर उसका धन हरण करे । ठग । (स्मृतियों में ऐसे व्यक्ति का दंडविधान है ।) (२) उचक्का । चाँई उ०—चाट, उचाट सी चेटक सी चुटकी भ्रुकुटीन जम्हाति अमेठी ।—देव ।

चाट की टँगड़ी–संज्ञा स्त्री० कुश्ती का एक पेंच जो उस समय काम में लाया जाता है जब प्रतिपक्षी (जोड़) पहलवान के पेट के नीचे घुस आता है और अपना बायाँ हाथ उसकी कमर पर लाता है । इसमें पहलवान अपने बाएँ हाथ से प्रतिपक्षी का बायाँ हाथ (जो पहलवान की कमर पर होता है) दबाते हुए उसकी दाहनी कलाई को पकड़ता है और अपना दाहना हाथ और पैर बढ़ा कर बाईं जाँघ और पिंडली पर धक्का मार कर उसे गिराता है ।

चाटना–क्रि० स० [अनु० चट चट = जीभ चलने का शब्द] (१) खाने वा स्वाद लेने के लिये किसी वस्तु को जीभ से उठाना । किसी पतली वा गाढ़ी चीज़ को जीभ से पोंछ पोंछ कर मुँह में लेना । जीभ लगा कर खाना । जैसे, शहद चाटना, अवलेह चाटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—लेना ।—डालना ।

(२) पोंछ कर खा लेना । चट कर जाना । उ०—इतना हलुआ था सब चाट गए ।

मुहा०—चाट पोंछकर खाना = सब खा जाना । कुछ भी न छोड़ना ।

(३) (प्यार आदि से) किसी वस्तु पर जीभ फेरना । उ०—गाय अपने बछड़े को चाट रही है ।

यौ०—चूमना चाटना = प्यार करना ।

(४) कीड़ों का किसी वस्तु को खा जाना । उ०—जितना काग़ज़ था सब दीमक चाट गए ।

चाटपुट–संज्ञा पुं० [सं०] तबले का एक ताल । दे० "चाचपुट" ।

चाटा–संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्प० चाटी] वह बरतन जिसमें कोल्हू का पेरा हुआ रस इकट्ठा होता है । नाँद ।

चाटी–संज्ञा स्त्री० [देश०] मिट्टी की मटकी जिसका दल ख़ूब मोटा हो ।

चाटु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मीठी बात । प्रिय बात । (२) झूठी प्रशंसा वा विनय से भरी हुई ऐसी बात जो केवल दूसरे को प्रसन्न वा अनुकूल करने के लिये कही जाय । ख़ुशामद । चापलूसी ।

चाटुकार–संज्ञा पुं० [सं०] ख़ुशामद करनेवाला । ख़ुशामदी । झूठी प्रशंसा करनेवाला । चापलूस ।

चाटुकारी–संज्ञा स्त्री० [सं० चाटुकार + ई (प्रत्य०)] झूठी प्रशंसा वा ख़ुशामद करने का काम । चापलूसी ।

चाटुपटु–संज्ञा पुं० [सं०] भंड । भाँड़ ।

चाड़ *–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँड़ सं० चंड = प्रबल ?] गहरी चाह । चाव । प्रेम । उ०—(क) हित पुनीत सब स्वारथहि अरि अशुद्ध बिन चाड़ । निज मुख मानिक सम दसन भूमि परे ते हाड़ ।—तुलसी । (ख) कुच गिरि चढ़ि अति थकित ह्वै चली दीठि मुख चाड़ । फिरि न टरी परिये रही परी चिबुक के गाड़ ।—बिहारी । (ग) काहे को काहू को दीजै उराहनो आवैं इहाँ हम आपनी चाड़ें ।

क्रि० प्र०—लगना ।

विशेष—दे० "चाँड़" ।

चाड़िला–वि० दे० "चाँड़िला" ।

चाड़ी †–संज्ञा स्त्री० [सं० चाटु] पीठ पीछे की निंदा । चुग़ली ।

क्रि० प्र०—खाना ।

चाढ़ा †*–संज्ञा पुं० [हिं० चाड़] [स्त्री० चाढ़ी] (१) प्रेमपात्र । प्यारा । प्रिय । उ०—धन्य धन्य भक्तन के चाढ़े ।—सूर । (२) चाहनेवाला । प्रेमी । आशिक । आसक्त । उ०—(क) तुम हम पर रिस करति हौ हम हैं तुव चाढ़े । निठुर भई हौ लाड़िली कब के हम ठाढ़े ।—सूर । (ख) दिन थोरी भोरी अति कोरी देखत ही जु श्याम भये चाढ़े ।—सूर ।

चाणक्य-संज्ञा पुं० [सं०] चणक ऋषि के वंश में उत्पन्न एक मुनि जिनके रचे हुए अनेक नीति ग्रंथ प्रचलित हैं। ये पाटलिपुत्र के सम्राट् चंद्रगुप्त के मंत्री थे और कौटिल्य नाम से भी प्रसिद्ध हैं। मुद्राराक्षस के अनुसार इनका असली नाम विष्णुगुप्त था।

विशेष—विष्णुपुराण, भागवत आदि पुराणों तथा कथा सरित्सागर आदि संस्कृत ग्रंथों में तो चाणक्य का नाम आया ही है, बौद्ध-ग्रंथों में भी इनकी कथा बराबर मिलती है। बुद्धघोष की बनाई हुई विनयपिटक की टीका तथा महानाम स्थविर रचित महावंश की टीका में चाणक्य का वृत्तांत दिया हुआ है। चाणक्य तक्षशिला (एक नगर जो रावलपिंडी के पास था) के निवासी थे। इनके जीवन की घटनाओं का विशेष संबंध मौर्य्य चंद्रगुप्त की राज्यप्राप्ति से है। ये उस समय के एक प्रसिद्ध विद्वान् थे, इसमें कोई संदेह नहीं। चंद्रगुप्त के साथ इनकी मैत्री की कथा इस प्रकार है। पाटलिपुत्र के राजा नंद वा महानंद के यहाँ कोई यज्ञ था। उसमें ये भी गए और भोजन के समय एक प्रधान आसन पर जा बैठे। महाराज नंद ने इनका काला रंग देख इन्हें आसन पर से उठवा दिया। इस पर क्रुद्ध हो कर इन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं नंदों का नाश न कर लूँगा तब तक अपनी शिखा न बाँधूँगा। उन्हीं दिनों राजकुमार चंद्रगुप्त राज्य से निकाले गये थे। चंद्रगुप्त ने चाणक्य से मेल किया और दोनों आदमियों ने मिलकर म्लेच्छ राजा पर्वतक की सेना लेकर पटने पर चढ़ाई की और नंदों को युद्ध में परास्त कर के मार डाला। नंदों के नाश के संबंध में कई प्रकार की कथाएँ हैं। कहीं लिखा है कि चाणक्य ने शकटार के यहाँ निर्माल्य भेजा जिसे छूते ही महानंद और उनके पुत्र मर गए। कहीं विषकन्या भेजने की कथा लिखी है। मुद्राराक्षस नाटक के देखने से जाना जाता है कि नंदों का नाश करने पर भी महानंद के मंत्री राक्षस के कौशल और नीति के कारण चंद्रगुप्त को मगध का सिंहासन प्राप्त करने में बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ पड़ीं। अंत में चाणक्य ने अपने नीतिबल से राक्षस को प्रसन्न किया और उसे चंद्रगुप्त का मंत्री बनाया। बौद्ध ग्रंथों में भी इसी प्रकार की कथा है, केवल महानंद के स्थान पर धननंद है। दे० "चंद्रगुप्त"। चाणक्य के शिष्य कामंदक ने अपने "नीतिसार" नामक ग्रंथ में लिखा है कि विष्णुगुप्त चाणक्य ने अपने बुद्धिबल से अर्थशास्त्र रूप महोदधि को मथ कर नीति शास्त्र रूपी अमृत निकाला। चाणक्य का 'अर्थशास्त्र' संस्कृत में राजनीति विषय पर एक विलक्षण ग्रंथ है। इनके नीति के श्लोक तो घर घर प्रचलित हैं। पीछे से लोगों ने इनके नीति ग्रंथों से घटा बढ़ा कर वृद्धचाणक्य, लघुचाणक्य, बोधिचाणक्य आदि कई नीति ग्रंथ संकलित कर लिए। चाणक्य सब विषयों के पूर्ण पंडित थे। 'विष्णुगुप्त सिद्धांत" नामक इनका एक ज्योतिष का ग्रंथ भी मिलता है। कहते हैं कि आयुर्वेद पर भी इनका लिखा वैद्यजीवन नाम का एक ग्रंथ है। न्याय भाष्यकार वात्स्यायन और चाणक्य को कोई कोई एक ही मानते हैं पर यह भ्रम है जिसका मूल हेमचंद्र का यह श्लोक है—वात्स्यायनो, मल्लनागः, कौटिल्य-श्चणकात्मजः। द्रामिलः पक्षिलस्वामी विष्णुगुप्तोऽङ्गुलश्च सः।

चाणूर-संज्ञा पुं० [सं०] कंस का एक मल्ल जिसे धनुष यज्ञ के समय श्रीकृष्ण ने मारा था।

चातक-संज्ञा पुं० [सं०][स्त्री० चातकी] एक पक्षी जो वर्षाकाल में बहुत बोलता है। पपीहा। दे० "पपीहा"।

विशेष—इस पक्षी के विषय में प्रसिद्ध है कि यह नदी तड़ाग आदि का संचित जल नहीं पीता, केवल बरसता हुआ पानी पीता है। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि यह केवल स्वाती नक्षत्र की बूँदों ही से अपनी प्यास बुझाता है। इसी से यह मेघ की ओर देखता रहता है और उससे जल की याचना करता है। इस प्रवाद को कवि लोग अपनी कविता में बहुत लाए हैं। तुलसीदासजी ने तो अपनी सतसई में इसी चातक को लेकर न जाने कितनी सुंदर सुंदर उक्तियाँ कही हैं।

पर्य्या०—स्तोकक। सारंग। मेघजीवन। तोकक।

यौ०—चातकानंदवर्द्धन = (१) मेघ। बादल। (२) वर्षाकाल।

चातकानंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वर्षाकाल। (२) मेघ।

चातर-संज्ञा पुं० [हिं० चादर] (१) मछली पकड़ने का बड़ा जाल। (२) षड्यंत्र। साज़िश।

†वि० दे० "चातुर" वा "चतुर"।

चातुर-वि० [सं०] (१) नेत्रगोचर। (२) चतुर। (३) खुशामदी। चापलूस।

संज्ञा पुं० (१) गोल तकिया या मसनद। (२) चार पहियों की गाड़ी।

चातुरई†-संज्ञा स्त्री० दे० "चतुरई"।

चातुरता†-संज्ञा स्त्री० दे० "चतुरता"।

चातुराश्रम्य-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास नामक चार आश्रम।

चातुरिक-संज्ञा पुं० [सं०] सारथी। रथवान।

चातुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चतुरता। चतुराई। व्यवहार-दक्षता। (२) चालाकी। धूर्त्तता।

चातुर्जात, चातुर्जातक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भावप्रकाश के अनुसार चार सुगंध द्रव्य—नागकेसर, इलायची, तेजपात और दालचीनी। (२) गुजरात के प्राचीन राजाओं के प्रधान कर्म्मचारी की उपाधि। प्रधान शासक।

चातुर्थक, चातुर्थिक–संज्ञा पुं० [सं०] चौथे दिन आनेवाला ज्वर। चौथिया बुखार।

वि० चौथे दिन होनेवाला।

चातुर्दश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राक्षस। (२) वह जो चतुर्दशी को उत्पन्न हो।

चातुर्भद्र, चातुर्भद्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार पदार्थ—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। (२) वैद्यक के अनुसार ये चार ओषधियाँ—नागरमोथा, पीपल (पिप्पली), अतीस और काकड़ासिंगी। कोई कोई चक्रदत्त के अनुसार इन चार चीजों को लेते हैं—जायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी और पीपल।

चातुर्भद्रावलेह–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक प्रसिद्ध अवलेह जो जायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी और पीपल को एक साथ पीस कर शहद मिलाने से बनता है। चौहद्दी।

विशेष—यह अवलेह श्वास, कास, अतीसार और ज्वर में उपकारी है और बच्चों को बहुत दिया जाता है।

चातुर्महाराजिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णुभगवान्। (२) बुद्ध का एक नाम।

चातुर्मास–वि० [सं०] चार महीनों में होनेवाला। चार महीने का।

चातुर्मासिक–वि० [सं०] चार महीने में होनेवाला (यज्ञ, कर्म आदि)।

चातुर्मासी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पौर्णमासी।

चातुर्मास्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार महीने में होनेवाला एक वैदिक यज्ञ।

विशेष—कात्यायन श्रौतसूत्र अध्याय ८ में इस यज्ञ का पूरा विधान लिखा है। सूत्र के अनुसार फाल्गुनी पौर्णमासी से इस यज्ञ का आरंभ होना चाहिए, पर भाष्य और पद्धति में लिखा है कि इसका आरंभ फाल्गुन, चैत्र वा वैशाख की पूर्णिमा से हो सकता है। इस यज्ञ के चार पर्व हैं—वैश्वदेव, वरुणघास, शाकमेध और सुनाशीरीय।

(२) चार महीने का एक पौराणिक व्रत जो वर्षा काल में होता है।

विशेष—वराह के मत से आषाढ़ शुक्ल द्वादशी वा पूर्णिमा से इस व्रत का आरंभ करके कार्त्तिक शुक्ल द्वादशी वा पूर्णिमा को इसका उद्यापन करना चाहिए। मत्स्यपुराण में इस व्रत के अनेक विधान और फल लिखे हैं, जैसे, गुड़ त्याग करने से स्वर मधुर होता है, मद्य माँस त्याग करने से योग सिद्धि होती है, बटलोई में पका भोजन त्यागने से संतान की वृद्धि होती है, इत्यादि इत्यादि। यह विष्णुभगवान् का व्रत है अतः 'नमो नारायणाय' मंत्र के जप का भी विधान है। सनत्कुमार के मत से इस व्रत का आरंभ आषाढ़ शुक्ल एकादशी, पूर्णिमा वा कर्क की संक्रांति से होना चाहिए। इन चार महीनों में काठक गृह्यसूत्र के मत से यतियों को एक ही स्थान पर जम कर रहना चाहिए। इस नियम का पालन बौद्ध भिक्खु (यति) भी करते हैं।

चातुर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] चतुराई। निपुणता। दक्षता।

चातुर्वर्ण्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चारों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। (२) चारों वर्णों का अनुष्ठेय धर्म, जैसे, ब्राह्मण का धर्म यजन, याजन, दान, अध्यापन, अध्ययन और प्रतिग्रह, क्षत्रिय का धर्म बाहुबल से प्रजापालन इत्यादि।

चातुर्होत्र–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चातुर्होत्रिय] वह यज्ञ जो चार होताओं द्वारा संपन्न हो।

चात्र–संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमंथन यंत्र का एक अवयव। यह बारह अंगुल की खैर की लकड़ी होती है जिसके अगले छोर में लोहे की एक कील लगी होती है और पीछे की ओर एक छेद होता है।

चात्रिक†*–संज्ञा पुं० दे० "चातक"।

चात्वाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हवनकुंड। (२) उत्तर वेदी। (३) दर्भ। डाभ वा कुश। (४) गड्ढा।

चादर–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) कपड़े का लंबा चौड़ा टुकड़ा जो ओढ़ने के काम में आता है। हलका ओढ़ना। चौड़ा दुपट्टा। पिछौरी।

मुहा०—चादर उतारना = बेपर्द करना। इज्जत उतारना। अपमानित करना। मर्य्यादा बिगाड़ना। (स्त्रियों के संबंध में इसे उसी अर्थ में बोलते हैं जिस अर्थ में पुरुषों के लिये 'पगड़ी उतारना' बोलते हैं)। चादर ओढ़ाना या डालना = किसी विधवा को रख लेना। चादर छिपौवल = लड़कों का एक खेल जिसमें वे किसी लड़के के ऊपर चादर डाल देते हैं और दूसरी गोल के लड़कों से उसका नाम पूछते हैं। जो ठीक नाम बता देता है वह चादर से ढके लड़के को स्त्री बना कर ले जाता है। चादर रहना या लाज की चादर रहना = इज्जत रहना। कुल की मर्य्यादा रहना। प्रतिष्ठा का बना रहना। उ०—लाल बिनु कैसे लाज चादर रहेगी आज कादर करत आय बादर नये नये।—श्रीपति। चादर से बाहर पैर फैलाना = (१) अपनी हद से बाहर जाना। (२) अपने वित्त से अधिक खर्च आदि करना। चादर हिलाना = युद्ध में शत्रुओं से घिरे हुए सिपाही का युद्ध रोकने वा आत्म समर्पण करने के लिये कपड़ा हिलाना। युद्ध रोकने का झंडा दिखाना।

(२) किसी धातु का बड़ा चौखूँटा पत्तर। चद्दर। (३) पानी की चौड़ी धार जो कुछ ऊपर से गिरती हो। (४) बढ़ी हुई नदी या और किसी वेग से बहते हुए प्रवाह में स्थान स्थान पर पानी का वह फैलाव जो बिल्कुल बराबर होता है अर्थात् जिसमें भँवर या हिलोरा नहीं होता। (५) फूलों की राशि जो किसी देवता या पूज्य स्थान पर चढ़ाई जाती है। जैसे, मज़ार पर चादर चढ़ाना

चादरा—संज्ञा पुं० [हिं० चादर] मरदानी चादर। बड़ी चादर।

चानक*—क्रि० वि० [हिं० अचानक] अचानक। सहसा। अकस्मात्। उ०—हरिनी जनु चानक जाल परी। जनु सेन चिरी अबहीं पकरी।—गुमान।

चानस—संज्ञा पुं० [अं० चांस] ताश का एक खेल।

चाप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष। कमान। (२) गणित में आधा वृत्तक्षेत्र।

विशेष—सूर्यसिद्धांत में ग्रहादि के चाप निकालने की क्रिया दी हुई है।

(३) वृत्त की परिधि का कोई भाग। (४) धनु राशि।

संज्ञा स्त्री० [सं० चाप = धनुष] (१) दबाव।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(२) पैर की आहट। पैर ज़मीन पर पड़ने का शब्द। उ०—इतने में किसी के पाँव की चाप सुनाई दी।

चापजरीब—संज्ञा पुं० [हिं० चाप + अ० जरीब] किसी ज़मीन की सीधी नाप। लंबाई की नाप।

चापट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपटना] दाने की वह भूसी जो आटा पीसने पर निकलती है। चोकर।

वि० दे० "चापड़"।

चापड़—वि० [सं० चिपिट, हिं० चिपटा, चपटा] (१) जो दब कर चिपटा हो गया हो। जो कुचले जाने के कारण ज़मीन के बराबर हो गया हो (२) बराबर। समतल। हमवार। (३) मटियामेट। चौपट। उजाड़। उ०—ऐसी बाढ़ आई कि कई गाँव चापड़ हो गए।

संज्ञा स्त्री० चोकर। भूसी।

चापदंड—संज्ञा पुं० [सं०] वह डंडा जिससे कोई वस्तु आगे की ओर ठेली जाय।

चापना—क्रि० स० [सं० चाप = धनुष] दबाना। मीड़ना। उ०—चापत चरण लखन उर लाये। सभय सप्रेम परम सचुपाये।—तुलसी।

चापर—वि० दे० "चापड़"।

चापल—संज्ञा पुं० [सं०] चंचलता। अस्थिरता।

*वि० [हिं० चपल] चंचल।

चापलता*—संज्ञा स्त्री० [हिं० चापल + ता (प्रत्य०)] चंचलता। ढिठाई। उ०—लघुमति चापलता कवि छमहू।—तुलसी।

चापलूस—वि० [फ़ा०] [संज्ञा चापलूसी] खुशामदी। लल्लो चप्पो करनेवाला। चाटुकार।

चापलूसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] खुशामद। वह झूठी प्रशंसा जो केवल दूसरे को प्रसन्न और अनुकूल करने के लिये की जाय। चाटुकारी।

चापी—संज्ञा पुं० [सं० चापिन्] (१) धनुर्धर। वह जो धनुष धारण करे। (२) शिव। (३) धनु राशि।

चापू—संज्ञा पुं० [देश०] हिमालय के आस पास के प्रदेशों की एक प्रकार की छोटी बकरी जिसके बाल बहुत लंबे और मुलायम होते हैं। इसके बालों के कंबल आदि बनते हैं।

चाफंद—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + फंदा] मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल।

चाब—संज्ञा स्त्री० [सं० चव्य] (१) गजपिप्पली की जाति का एक पौधा जिसकी लकड़ी और जड़ औषध के काम में आती है। एशिया के दक्षिण और विशेषतः भारत में यह पौधा या तो नदियों के किनारे आपसे आप उगता है या लकड़ी और जड़ के लिए बोया जाता है। इसकी जड़ में बहुत दिनों तक पनपने की शक्ति रहती है और पौधे को काट लेने पर उसमें से फिर नया पौधा निकलता है। इसमें काली मिर्च के समान छोटे फल लगते हैं जो पहले हरे रहते और पकने पर लाल हो जाते हैं। यदि कच्चे फल तोड़ कर सुखा लिए जाँय तो उनका रंग काला हो जाता है। ये फल भी औषध के काम में आते और "चव" कहलाते हैं। कुछ लोग भूल से इसीके फल को "गजपिप्पली" कहते हैं। पर "गजपिप्पली" इससे भिन्न है। बंगाल में इसकी लकड़ी और जड़ से कपड़े आदि रँगने के लिये एक प्रकार का पीला रंग निकाला जाता है। डाक्टरों के मत से "चव" फल के गुण बहुत से अंशों में काली मिर्च के समान ही हैं। वैद्यक में चाब को गरम, चरपरी, हलकी, रोचक, जठराग्नि-प्रदीपक और कृमि, श्वास, शूल और क्षय आदि को दूर करनेवाली और विशेषतः गुदा के रोगों को दूर करनेवाली माना है।

पर्य्या०—चविका। चव्य। चवी। रसावली। तेजोवती। कोला। नाकुली। कोलवल्ली। कुटिल। सप्तक। कूकर।

(२) इस पौधे का फल। (३) चार की संख्या (डिं०)। (४) कपड़ा (डिं०)।

संज्ञा पुं० [सं० चप = एक प्रकार का बाँस] एक प्रकार का बाँस।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चाबना] (१) डाढ़। चौभड़। वे चौखूंटे दाँत जिनसे भोजन कुचल कर खाया जाता है। (२) बच्चे के जन्मोत्सव की एक रीति जिसमें संबंध की स्त्रियाँ गाती बजाती और खिलौने कपड़े आदि लेकर आती हैं।

चाबना—क्रि० स० [सं० चर्वण, प्रा० चब्बण] (१) दाँतों से कुचल कुचल कर खाना। चबाना। जैसे, चने चाबना। उ०—चाबत पान चली झमकि पूतनिका मदमान।—सुकवि।

संयो० क्रि०—जाना।—डालना।—लेना।

(२) खाना। खूब भोजन करना।

चाबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाप = दबाव वा पुर्त्त० चेव] (१) कुंजी। ताली।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—चाबी देना = (१) कुंजी ऐंठ कर ताला बंद करना। (२) कुंजी के द्वारा किसी कल की कमानी को ऐंठ कर कसना जिसमें झटके के कारण उसके सब पुरजे फिर ज्यों के त्यों चलने लगें। जैसे, घड़ी में चाबी देना। चाबी भरना = दे० "चाबी देना"।

(२) कोई ऐसा पच्चड़ जिसे दो जुड़ी हुई वस्तुओं की संधि में ठोंक देने से जोड़ दृढ़ हो जाय।

क्रि० प्र०—भरना।

चाबुक—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कोड़ा। हंटर। सांटा।

क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—फटकारना।—मारना।—लगाना।

यौ०—चाबुकसवार।

(२) कोई ऐसी बात जिससे किसी कार्य्य के करने की उत्तेजना उत्पन्न हो। उ०—तुम्हारी व्यंग्य भरी बात ही उसके लिये चाबुक हो गई।

चाबुकसवार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [संज्ञा चाबुकसवारी] घोड़े को विविध प्रकार की चालें सिखानेवाला। घोड़े की चाल दुरुस्त करनेवाला। घोड़े को निकालनेवाला।

चाबुकसवारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चाबुक सवार का काम वा पेशा।

चाभ—संज्ञा स्त्री० दे० "चाब"।

चाभना—क्रि० स० [हिं० चाबना] खाना। भक्षण करना।

मुहा०—माल चाभना = अनेक प्रकार के स्वादिष्ट और पौष्टिक पदार्थ खाना। बढ़िया बढ़िया चीजें खाना।

चाभा—संज्ञा पुं० [हिं० चाबना] बैलों का एक रोग जिसमें उनकी जीभ पर कांटे से उभड़ आते हैं और उनसे कुछ खाते नहीं बनता।

चाभी—संज्ञा स्त्री० दे० "चाबी"।

चाम—संज्ञा पुं० [सं० चर्म] चमड़ा। खाल। चमड़ी।

मुहा०—चाम के दाम = चमड़े के सिक्के। (ऐसा प्रसिद्ध है कि निज़ाम नामक एक भिश्ती ने हुमायूँ को डूबने से बचाया था और इसके बदले में आधे दिन की बादशाही पाई थी। उसी आधे दिन की बादशाहत में उसने चमड़े के सिक्के चलाए थे।) चाम के दाम चलाना = अपनी जबरदस्ती के भरोसे कोई काम करना। अन्याय करना। अंधेर करना। उ०—(क) ऊधो अब कछु कहत न आवै। सिर पै सौति हमारे कुबजा चाम के दाम चलावै।—सूर। (ख) बतियान सुनाय के सौतिन की छतियान में साल सलाय ले री। सपनेहू न कीजिय मान अये अपने जोबना की बलाय ले री। परमेस जू रूप तरंगन सों अँग अंगन रूप रलाय ले री। दिन चारिक तू पिय प्यारे के प्यार सों चाम के दाम चलाय ले री।—परमेश।

चामचोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाम + चोरी] गुप्त रूप से पर-स्त्री-गमन।

चामड़ी†—संज्ञा स्त्री० दे० "चमड़ी"।

चामर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौंर। चँवर। चौंरी। (२) मोरछल। (३) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में रगण, जगण, रगण, जगण और रगण होते हैं। उ०—रोज रोज राधिका सखीन संग आइ कै। खेल रास कान्ह संग चित्त हर्ष लाइ कै। बांसुरी समान बोल सप्त ग्वाल गाय कै। कृष्ण ही रिझावहीं सु चामरै डुलाइ कै।

चामरपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काँस। (२) सुपारी का पेड़ (३) केतकी। (४) आम।

चामरिक—संज्ञा पुं० [सं०] चँवर डुलानेवाला।

चामरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरागाय।

चामिल†—संज्ञा स्त्री० दे० "चंबल" उ०—चामिल तेरे वारौं आये।—लाल।

चामीकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) धतूरा।

वि० स्वर्णमय। सुनहरी।

चामुंडराज—संज्ञा पुं० [सं०] गुजरात का एक राजा जो चापोत्कट वंशीय सामंतराज का भाँजा था। इसकी मृत्यु १०२९ ईसवी में हुई।

चामुंडराय—संज्ञा पुं० [सं०] महाराज पृथ्वीराज के एक सामंत राजा जिनका वर्णन पृथ्वीराज रासो में आया है।

चामुंडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम जिन्होंने चंडमुंड नामक शुंभ निशुंभ के दो सेनापति दैत्यों का वध किया था।

पर्य्या०—चर्विका। चर्ममुंडा। मार्जारकर्णिका। कर्णमोटी। महागंधा। भैरवी। कापालिनी।

चाय—संज्ञा स्त्री० [चीनी चा] एक पौधा वा झाड़ जो प्रायः दो से चार हाथ तक ऊँचा होता है। इसकी पत्तियां १०-१२ अंगुल लंबी, ३-४ अंगुल चौड़ी और दोनों सिरों पर नुकीली होती हैं। इसमें सफ़ेद रंग के चार पांच दलों के फूल लगते हैं जिनके झड़ जाने पर एक, दो, या तीन बीजों से भरे फल लगते हैं। यह पौधा कई प्रकार का होता है। इसकी सुगंधित और सुखाई हुई पत्तियों को उबाल कर पीने की चाल अब संसार भर में फैल गई है।

विशेष—चाय पीने का प्रचार सब से पहले चीन देश में हुआ। वहाँ से क्रमशः जापान, बरमा, श्याम आदि देशों में हुआ। चीन देश में कहीं कहीं यह कहानी प्रचलित है कि धर्म नामक कोई ब्राह्मण चीन देश में धर्मोपदेश करने गया। वहाँ वह एक दिन चलते चलते थक कर एक स्थान पर सो गया। जागने पर उसे बड़ी सुस्ती मालूम हुई। इस पर क्रुद्ध होकर वह अपनी भौं के बाल नोच नोच कर फेंकने

लगा। जहाँ जहाँ उसने बाल फेंके वहाँ वहाँ कुछ पौधे उग आए, जिनकी पत्तियों को खाने से वह आध्यात्मिक ध्यान में मग्न हो गया। वे ही पौधे चाय के नाम से प्रसिद्ध हुए। चीन में पहले औषध के रूप में इसका व्यवहार चाहे बहुत प्राचीन काल में रहा हो पर इस प्रकार उबाल कर पीने की चाल वहाँ ईसा की सातवीं या आठवीं शताब्दी के पहले नहीं थी। भारतवर्ष में आसाम तथा मनीपुर आदि प्रदेशों में यह पौधा जंगली होता है। नागा की पहाड़ियों पर भी इसके जंगल पाए गए हैं, पर इसके पीने की प्रथा का प्रचार भारतवर्ष में नहीं था। चीन से चाय मँगा मँगा कर जब से ईस्ट इंडिया कंपनी यूरोप को भेजने लगी तभी से इसकी ओर ध्यान आकर्षित हुआ और भारत में उसके लगाने का भी उद्योग आरंभ हुआ। पहले पहल यहाँ मलाबार के किनारे पर चीन से बीज मँगा कर चाय उत्पन्न करने की चेष्टा अँगरेजों द्वारा की गई, क्योंकि तब तक यह नहीं ज्ञात था कि यह पौधा भारतवर्ष में भी जंगली होता है। पर यह चाय उस चाय से भिन्न थी जो आसाम में होती है। लुशाई चाय की पत्तियाँ सब से बड़ी होती हैं। नागा चाय की पत्तियाँ पतली और छोटी होती हैं। चाय की पत्तियाँ यों ही सुखा कर नहीं पी जाती हैं। वे अनेक प्रक्रियाओं से सुगंधित और प्रस्तुत की जाती हैं। चाय के अनेक प्रकार के जो नाम आज कल प्रचलित हैं उनमें से अधिकांश क्षुप-भेद-सूचक नहीं हैं, केवल प्रक्रिया के भेद से वा पत्तियों की अवस्था के भेद से रक्खे गए हैं। साधारणतः चाय के दो भेद प्रसिद्ध हैं, काली चाय और हरी चाय। यद्यपि चीन में कहीं कहीं पत्तियों में यह भेद देखा जाता है जैसे, कियाङसू पर्वत की हरी चाय जिसे सुंगलो कहते हैं और कानटन की घटिया काली चाय, पर अधिकतर यह भेद भी अब प्रक्रिया पर निर्भर है। काली चायों में पीको, बोहिया काँगो, सूचंग, बहुत प्रसिद्ध हैं और हरी चायों में से टवांके, हैसन, बारूद आदि प्रसिद्ध हैं। काली चायों में से पीको सब से स्वादिष्ट और उत्तम होती है और हरी चायों में से बारूद चाय सब से बढ़िया मानी जाती है। नारंगी पीको में बहुत अच्छी सुगंध होती है। ये दोनों प्रकार की चायें पहली चुनाई की होती हैं, जब कि पत्तियाँ बिलकुल नए कल्लों के रूप में रहती हैं। चाय बीजों से उत्पन्न की जाती है।

संज्ञा स्त्री० चाय उबाला हुआ पानी। चाय का काढ़ा।

क्रि० प्र०—पीना।—बनाना।—लेना।

यौ०—चाय पानी = जलपान"।

संज्ञा पुं० दे० "चाव"।

चायक-*संज्ञा पुं० [हिं० चाय] चाहनेवाला। प्रेमी। उ०—जय यदुकुल उडु इंदु सत चकोर चायक चतुर।—रघुराज।

संज्ञा पुं० [सं०] चुननेवाला। चयन करनेवाला।

चार-वि० [सं० चतुर्] (१) जो गिनती में दो और दो हो। तीन से एक अधिक। जैसे, चार आदमी।

मुहा०—चार आँखें करना = आँखें मिलाना। देखा देखी करना। सामने आना। साक्षात्कार करना। मिलना। उ०—अब वह हमारे सामने चार आँखें नहीं करता। चार आँखें होना = नज़र से नज़र मिलना। देखा देखी होना। साक्षात्कार होना। चार चाँद लगना = (१) चौगुनी प्रतिष्ठा होना। (२) चौगुनी शोभा होना। सौंदर्य्य बढ़ना। (*स्त्रि०)। चार के कंधे पर चढ़ना वा चलना = मर जाना। श्मशान को जाना। चार ताल = चौताला। तबले वा मृदंग के एक ताल का नाम। चार पगड़ी करना = जहाज का लंगर डालना। जहाज़ को ठहराना। (लश०)। चार पाँच = (१) इधर उधर की बात। हीला-हवाला। (२) हुज्जत। तकरार। चार पाँच करना = हीला हवाला करना। इधर उधर करना। बातें बढ़ाना। हुज्जत करना। तकरार करना। चार पाँच लाना = दे० "चार पाँच करना"। चारों फूटना = चारों आँखें फूटना (दो हिये की, दो ऊपर की)। अंधा होना। उ०—आछो गात अकारथ गारथो। करी न प्रीति कमल लोचन सों जन्म जुवा ज्यों हारयो। निसि दिन विषय विलासनि विलसत फूटि गईं तब चारयो।—सूर। चार मग़ज़ = हकीमी में चार वस्तुओं के बीजों की गिरी—खीरा, ककड़ी, कद्दू और खरबूजा। चारों खाने चित्त गिरना वा पड़ना = (१) ऐसा चित्त गिरना जिससे हाथ पाँव फैल जायँ। हाथ पाँव फैलाए पीठ के बल गिरना। (२) किसी दारुण संवाद को पाकर स्तंभित होना। अकस्मात् कोई प्रतिकूल बात सुन कर ठक रह जाना। बेसुध होना। सकपका उठना।

(२) कई एक। बहुत से। उ०—चार आदमी जो कहें उसे मानो। (३) कुछ। थोड़ा बहुत। जैसे, चार आँसू गिराना।

मुहा०—चार तार = चार थान कपड़े वा गहने। कुछ कपड़ा लत्ता और ज़ेवर। चार दिन = थोड़े दिन। कुछ दिन। उ०—चार दिन की चाँदनी, फिर अँधेरा पाख। चार पैसे = कुछ धन। कुछ रुपया पैसा। उ०—जब चार पैसे पास रहेंगे तब सब 'हाँजी हाँजी' करेंगे।

संज्ञा पुं० चार की संख्या। चार का अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है।—४।

संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चारित, चारी] (१) गति। चाल। गमन। (२) बंधन। कारागार। (३) गुप्त दूत। चर। जासूस। (४) दास। सेवक। उ०—लोभी यश चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी।—तुलसी। (५) चिरौंजी का पेड़। पियार। अचार। (६) कृत्रिम विष जैसे,

मछली फँसाने की कँटिया में लगा चारा, चिड़ियों को बेहोश करने की गोली आदि। (७) आचार। रीति। रस्म। जैसे, ब्याहचार, द्वारचार। उ०—(क) फेरे पान फिरा सब कोई। लाग्यो ब्याहचार सब होई।—जायसी। (ख) भइ भाँवरि न्योछावरि राज चार सब कीन्ह।—जायसी। (ग) औरहु चार करावहु मुनिवर शशि सूरज सुत देखैं।—रघुराज। (घ) अर्द्ध रात्रि लौं सकल चार करि आए जाहु जनवासे।—रघुराज।

चार आइना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का कवच या बकतर जिसमें लोहे की चार पटरियाँ होती हैं; एक छाती पर, एक पीठ पर और दो दोनों बगलों में (भुजा के नीचे)।

चारक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाय भैंस चरानेवाला। चरवाहा। (२) चलानेवाला। संचारक। (३) गति। चाल। (४) चिरौंजी का पेड़। पियाल। (५) कारागार। (६) गुप्त चर। जासूस। (७) सहचर। साथी। (८) अश्वारोही। सवार। (९) घूमनेवाला ब्राह्मण छात्र वा ब्रह्मचारी। (१०) मनुष्य। (११) चरकनिर्मित ग्रंथ वा सिद्धांत।

चारकाने—संज्ञा पुं० [हिं० चार + काना = मात्रा] चौसर वा पासे का एक दाँव।

विशेष—यह उस समय होता है जब नर्द बाज़ी के तीनों पासे इस प्रकार पड़ते हैं कि एक पासे में तो दो चित्ती और बाकी दोनो पासों में एक एक चित्ती ऊपर की ओर दिखाई पड़ती है।

चारखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का कपड़ा जिसमें रंगीन धारियों के द्वारा चौखूँटे घर बने रहते हैं।

चारचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० चारचक्षुष्] वह जो दूतों ही के द्वारा सब बातों की जानकारी प्राप्त करे। राजा।

चारज—संज्ञा पुं० [अं० चार्ज] (१) कार्य्यभार। काम की जिम्मेदारी।

मुहा०—**चारज देना** = किसी काम को छोड़ते समय उसका भार अपने स्थान पर आए हुए मनुष्य को सहेज कर देना। **चारज लेना** = किसी कार्य्य के भार को उससे अलग होनेवाले मनुष्य से सहेज कर लेना।

(२) सुपुर्दगी। निगरानी। संरक्षा का भार।

चारजामा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चमड़े वा कपड़े का बना हुआ वह आसन जिसे घोड़े की पीठ पर कस कर सवारी करते हैं। ज़ीन। पलान। काठी।

चारटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नली नामक गंध-द्रव्य।

चारटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पद्मचारिणी वृक्ष। भूम्यामलकी।

चारण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाट। वंश की कीर्त्ति गानेवाला। बंदीजन। (२) राजपूताने की एक जाति।

विशेष—सह्याद्रिखंड में लिखा है कि जिस प्रकार वैतालिकों की उत्पत्ति वैश्य और शूद्रा से है उसी प्रकार चारणों की भी है, पर चारणों का वृषलत्त्व कम है। इनका व्यवसाय राजाओं और ब्राह्मणों का गुण वर्णन करना तथा गाना बजाना है। चारण लोग अपनी उत्पत्ति के संबंध में अनेक अलौकिक कथाएँ कहते हैं।

(३) भ्रमणकारी।

चारणविद्य, चारणवैद्य—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्व वेद का एक अंश।

चारदा—संज्ञा पुं० [हिं० चार + दा (प्रत्य०)] (१) चौपाया। (२) (कुम्हारों की बोली में) गदहा।

चारदीवारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) वह दीवार जो किसी स्थान की रक्षा के लिये उसके चारों ओर बनाई जाय। घेरा। हाता। (२) शहरपनाह। प्राचीर। कोट।

चारन—संज्ञा पुं० दे० "चारण"।

चारना*†—क्रि० स० [सं० चारण] चराना। उ०—(क) गो चारत मुरली धुनि कीन्हा। गोपी जन के मन हरि लीन्हा।—गोपाल। (ख) जहँ गोचारत नित गोपाला। संग लिये ग्वालन की माला।

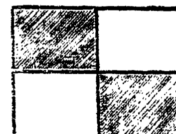
चार ना चार—क्रि० वि० [फ़ा०] विवश होकर। लाचार होकर। मजबूरन।

चारपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चार + पाया] खाट। छोटा पलंग। खटिया। मंजी। माचा।

मुहा०—**चारपाई पर पड़ना** = (१) चारपाई पर लेटना। (२) बीमार होना। अस्वस्थ होना। रोगग्रस्त होना। **चारपाई धरना, पकड़ना वा लेना** = (१) इतना बीमार होना कि चारपाई से उठ न सके। अत्यंत रुग्ण होना। (२) चारपाई पर लेटना। सोना। उ०—तुम खाते ही चारपाई पकड़ते हो। **चारपाई में कान निकलना** = चारपाई का टेढ़ा होना। चारपाई में कज पड़ना। **चारपाई से (किसी की) पीठ लगना** = बीमारी के कारण चारपाई से उठ न सकना। **(किसी का) चारपाई से लगना** = दे० "चारपाई से पीठ लगना"।

चारपाया—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चौपाया। चार पाँववाला पशु। जानवर।

चारबाग—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) चौखूँटा बगीचा। (२) वह चौखूँटा शाल वा रूमाल जो भिन्न भिन्न रंगों के द्वारा चार बराबर खानों में बँटा होता है।



चारबालिश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का गोल तकिया।

चारयारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चार + फ़ा० यार] (१) चार मित्रों की मंडली। (२) मुसलमानों में सुन्नी संप्रदाय की एक मंडली जो अबुबक्र, उमर, उसमान और अली इन्हीं चारों को ख़लीफ़ा मानती है। (३) चाँदी का एक चौकोर सिक्का जिस पर मुहम्मद साहब के चार मित्रों वा ख़लीफ़ों के नाम अथवा कलमा लिखा रहता है। यह सिक्का अकबर और जहाँगीर के समय में बना था। इस सिक्के वा रुपये के बराबर चावल तौल कर उन लोगों को खिलाते हैं जिन पर कोई वस्तु चुराने का संदेह होता है और कह देते हैं कि जो चोर होगा उसके मुहँ से ख़ून निकलने लगेगा। इस धमकी में आकर कभी कभी चुरानेवाले चीज़ों को फेंक वा रख जाते हैं। उ०—चारयारी का रुपया।

चारवा†–संज्ञा पुं० [हिं० चार + पाँव] चौपाया। पशु। जानवर।

चारवायु–संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रीष्म की गरम हवा। लू।

चारा–संज्ञा पुं० [हिं० चरना] (१) पशुओं के खाने की घास, पत्ती, डंठल आदि। (२) चिड़ियों, मछलियों या और जीवों के खाने की वस्तु। (३) आटा या और कोई वस्तु जिसे कटिया में लगा कर मछली फँसाते हैं।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] उपाय। इलाज। तदबीर।

चाराजोई–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दूसरे से पहुँची हुई वा पहुँचनेवाली हानि के प्रतिकार वा बचाव का उपाय। नालिश। फ़रियाद। जैसे, अदालत से चाराजोई करना।

चारायण–संज्ञा पुं० [सं०] काम-शास्त्र के एक आचार्य्य जिनके मत का उल्लेख वात्स्यायन ने किया है।

चारि†*–वि० दे० "चार"।

चारिणी–वि० स्त्री० [सं०] आचरण करनेवाली। चलनेवाली।

संज्ञा स्त्री० [सं०] करुणी वृक्ष।

चारित–वि० [सं०] (१) जो चलाया गया हो। चलाया हुआ। (२) भबके द्वारा खींचा हुआ। उतारा हुआ। (अर्क)

चारित्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुल-क्रमागत आचार। (२) चाल चलन। व्यवहार। स्वभाव। (३) संन्यास (जैन)।

यौ०—चारित्र धर्म = संन्यास धर्म।

(४) मरुत्गणों में से एक।

चारित्रविनय–संज्ञा पुं० [सं०] चरित्र द्वारा नम्र वा विनीत भाव प्रदर्शन। शिष्टाचार। नम्रता।

चारित्रमार्गणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] चारित्र की खोज। चारित्र का अनुसरण (जैन)। चारित्र ५ प्रकार का है—(क) सामयिक, (ख) छेदोपस्थापनीय, (ग) परिहारविशुद्धि, (घ) सूक्ष्म-सपर्या, (च) आधारन्यास। इनके विपक्षी संयम और असंयम हैं।

चारित्रवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की समाधि।

चारित्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

चारित्र्य–संज्ञा पुं० [सं०] चरित्र।

चारिवाच्–संज्ञा स्त्री० [सं०] काकड़ासिंगी।

चारी–वि० [सं० चारिन्] [स्त्री० चारिणी] (१) चलनेवाला। जैसे, आकाशचारी। (२) आचरण करनेवाला। व्यवहार करनेवाला। जैसे, स्वेच्छाचारी।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग हिंदी में प्रायः समास ही में होता है।

संज्ञा पुं० (१) पदाति सैन्य। पैदल सिपाही। (२) संचारी भाव।

संज्ञा स्त्री० [सं०] नृत्य का एक अंग।

विशेष–शृंगार आदि रसों का उद्दीपन करनेवाली मधुर गति को चारी कहते हैं। किसी किसी के मत से एक या दो पैरों से नाचने का ही नाम चारी है। चारी के दो भेद हैं—एक भूचारी, दूसरी आकाशचारी। भूचारी २६ प्रकार की होती है, यथा—समनखा, नूपुरविद्धा, तिर्य्यङ्मुखी, सरला, कातरा, कुवीरा, विश्लिष्टा, रथचक्रिका, पांचिरेचितका, तलदर्शिनी, गजहस्तिका, परावृत्ततला, चारुताड़िता, अर्द्धमंडला, स्तंभक्रीड़नका, हरिणत्रासिका, चारुरेचिका, तलोद्वृत्ता, संचारिता, स्फूरिका, लंघितजंघा, संघटिता, मदालसा, उत्कुंचिता, अतितिर्य्यक्कुंचिता, और अपकुंचिता,। मतांतर से भूचारी १६ प्रकार की होती हैं—समपादस्थिता, विद्धा, शकटाङ्किका, विच्याधा, ताड़िता, आवद्धा, एड़का, क्रीड़िता, उरुवृत्ता, छंदिता, जनिता, स्पंदिता, स्पंदितावती, समतन्वी, समोत्सारितघट्टिता और उच्छुंदिता। आकाशचारी १६ प्रकार की होती है—विपेक्षा, अधरी, अंघ्रिताड़िता, भ्रमरी, पुरःक्षेपा, सूचिका, अपक्षेपा, जंघावर्त्ता, विद्धा, हरिणप्लुता, उरुजंघांदोलिता, जंघा, जंघनिका, विद्युत्कांता, भ्रमरिका, और दंडपार्श्वा। मतांतर से—विभ्रांता, अतिक्रांता, अपकांता, पार्श्वक्रांतिका, ऊर्द्ध्वजानु, दोलोद्धृता, पादोद्धृता, नूपुरपादिका, भुजंगभासिका, क्षिप्ता, आविद्धा, ताला, सूचिका, विद्युत्कांता, भ्रमरिका और दंडपादा।

चारु–वि० [सं०] सुंदर। मनोहर।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति। (२) रुक्मिणी से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र। (३) कुंकुम। केसर।

चारुक–संज्ञा पुं० [सं०] सरपत के बीज जो दवा के काम में आते हैं। वैद्यक में ये बीज मधुर, रूखे, रक्त-पित्त-नाशक, शीतल, वृष्य, कसैले और वात उत्पन्न करनेवाले माने जाते हैं।

चारुकेशरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागरमोथा। (२) तरुणी पुष्प। सेवती का फूल।

चारुगर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

चारुगुप्त–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

चारुचित्र–संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चारुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदरता। मनोहरता। सोहावनापन

चारुदेष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुक्मिणी से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र जिन्होंने निकुंभ आदि दैत्यों के साथ युद्ध किया था। (हरिवंश) (२) गंडूष के एक पुत्र का नाम।

चारुधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की पत्नी शची।

चारुधिष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] ग्यारहवें मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक।

चारुनालक—संज्ञा पुं० [सं०] कोकनद। रक्त कमल।

चारुनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] हरिण।
वि० सुंदर नेत्रवाला।

चारुपद—संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार पुरुवंशी राजा मनुष्यु का एक पुत्र।

चारुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारणी। पसरन। गंधपसार।

चारुपुट—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक।

चारुफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगूर वा दाख की एक बेल। द्राक्षा लता।

चारुबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

चारुभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

चारुमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुक्मिणी से उत्पन्न कृष्ण की एक पुत्री। (हरिवंश)

चारुयश—संज्ञा पुं० [सं० चारुयशस्] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (महाभारत अनुशासन पर्व)

चारुरावा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्राणी। शची।

चारुविंद—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र। (हरिवंश)

चारुवेश—संज्ञा पुं० [सं०] रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र। (हरिवंश)

चारुश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० चारुश्रवस्] रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र।
वि० सुंदर कानवाला।

चारुहासी—वि० [सं०] [स्त्री० चारुहासिनी] सुंदर हँसनेवाला।

चारुहासिनी—वि० स्त्री० [सं०] सुंदर हँसनेवाली। मनोहर मुसकानवाली।
संज्ञा स्त्री० (१) मनोहर मुसकानवाली स्त्री। (२) वैताली छंद का एक भेद।

चारोली—संज्ञा पुं० [देश०] गुठली।

चार्य्य—संज्ञा पुं० [सं०] व्रात्यवैश्य द्वारा सवर्णा स्त्री से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति। (मनु)

चार्वाक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक अनीश्वरवादी और नास्तिक तार्किक।

पर्य्या०—बार्हस्पत्य। नास्तिक। लोकायतिक।

विशेष—ये नास्तिक मत प्रवर्त्तक बृहस्पति के शिष्य माने जाते हैं। बृहस्पति और चार्वाक कब हुए इसका कुछ भी पता नहीं है। बृहस्पति को चाणक्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में अर्थशास्त्र का एक प्रधान आचार्य्य माना है। सर्वदर्शन-संग्रह में इनका मत दिया हुआ मिलता है। पद्मपुराण में लिखा है कि असुरों को बहकाने के लिये बृहस्पति ने वेद-विरुद्ध मत प्रकट किया था। नास्तिक मत के संबंध में विष्णुपुराण में लिखा है कि जब धर्मबल से दैत्य बहुत प्रबल हुए तब देवताओं ने विष्णु के यहाँ पुकार की। विष्णु ने अपने शरीर से मायामोह नामक एक पुरुष उत्पन्न किया जिसने नर्मदा तट पर दिगंबर रूप में जा कर तप करते हुए असुरों को बहका कर धर्म मार्ग से भ्रष्ट किया। मायामोह ने असुरों को जो उपदेश किया वह सर्वदर्शन-संग्रह में दिए हुए चार्वाक मत के श्लोकों से बिलकुल मिलता है। जैसे मायामोह ने कहा—"यदि यज्ञ में मारा हुआ पशु स्वर्ग जाता है तो यजमान अपने पिता को क्यों नहीं मार डालता?" इत्यादि। लिंगपुराण में त्रिपुरविनाश के प्रसंग में भी शिव प्रेरित एक दिगंबर मुनि द्वारा असुरों के इसी प्रकार बहकाए जाने की कथा लिखी है जिसका लक्ष्य जैनों पर जान पड़ता है। रामायण (अयोध्या०) में महर्षि जावालि ने रामचंद्र को वनवास छोड़ अयोध्या लौट जाने के लिये जो उपदेश दिया है वह भी चार्वाक के मत से बिलकुल मिलता है। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि नास्तिक मत बहुत प्राचीन है। इसका आविर्भाव उसी समय से समझना चाहिए जब वैदिक कर्मकांडों की अधिकता लोगों को कुछ खटकने लगी थी। चार्वाक ईश्वर और परलोक नहीं मानते। परलोक न मानने के कारण ही इनके दर्शन को लोकायत भी कहते हैं। चार्वाक के मत से सुख ही इस जीवन का प्रधान लक्ष्य है। संसार में दुःख भी है, यह समझ कर जो सुख नहीं भोगना चाहते वे मूर्ख हैं। मछली में काँटे होते हैं, तो क्या इससे कोई मछली ही न खाय? चौपाए खेत चर जायँगे इस डर से क्या कोई खेत ही न बोवे? इत्यादि। (सर्वदर्शनसंग्रह)। चार्वाक आत्मा को पृथक कोई पदार्थ नहीं मानते। उनके मत से जिस प्रकार गुड़, तंडुल आदि के संयोग से मद्य में मादकता उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार भूतों के संयोग-विशेष से चेतनता उत्पन्न हो जाती है। इनके विश्लेषण वा विनाश से "मैं" अर्थात् चेतनता का भी नाश हो जाता है। इस चेतन शरीर के नाश के पीछे फिर पुनरागमन आदि नहीं होता। ईश्वर, परलोक आदि विषय अनुमान के आधार पर हैं। पर चार्वाक प्रत्यक्ष को छोड़ अनुमान को प्रमाण में नहीं लेते। उनका तर्क है कि अनुमान व्याप्तिज्ञान के आश्रित है। जो ज्ञान हमें बाहरी इंद्रियों के द्वारा होता है उसे भूत और भविष्य तक बढ़ा कर ले जाने को व्याप्ति-ज्ञान है, जो असंभव है। मन में यह ज्ञान प्रत्यक्ष होता है,

यह कोई प्रमाण नहीं क्योंकि मन अपने अनुभव के लिये इंद्रियों ही का आश्रित है। यदि कहो कि अनुमान के द्वारा व्याप्तिज्ञान होता है तो इतरेतराश्रय दोष आता है। क्योंकि व्याप्तिज्ञान को ले कर ही तो अनुमान को सिद्ध किया चाहते हो। चार्वाक का मत सर्वदर्शन-संग्रह, सर्वदर्शन-शिरोमणि और बृहस्पतिसूत्र में देखना चाहिए। नैषध के १७ वें सर्ग में भी इस मत का विस्तृत उल्लेख है।

(२) एक राक्षस जो कौरवों के मारे जाने पर ब्राह्मण वेश में युधिष्ठिर की राजसभा में जा कर उनको राज्य के लोभ से भाई बंधुओं को मारने के लिये धिक्कारने लगा। इस पर सभास्थित ब्राह्मण लोग हुंकार छोड़ कर दौड़े और उन्होंने उस छद्मवेशधारी राक्षस को मार डाला।

चार्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुद्धि। (२) चाँदनी। ज्योत्सना। (३) दीप्ति। आभा। (४) सुंदर स्त्री। (५) कुबेर-पत्नी। (६) दारु हलदी।

चाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना, सं० चार] (१) गति। गमन। चलने की क्रिया। उ०—इस गाड़ी की चाल बहुत धीमी है। (२) चलने का ढंग। चलने का ढब। गमन प्रकार। जैसे, यह घोड़ा बहुत अच्छी चाल चलता है। उ०—रहिमन सूधी चाल तें प्यादा होत वजीर। फ़रजी मीर न ह्वै सकै, टेढ़े की तासीर।—रहीम। (३) आचरण। चलन। बर्त्ताव। व्यवहार। जैसे, अपनी इसी बुरी चाल से तुम कहीं नहीं टिकने पाते। उ०—अपने सुत की चाल न देखत उलटी तू हम पै रिस ठानति।—सूर।

यौ०—चाल चलन। चाल ढाल।

मुहा०—चाल सुधारना = आचरण ठीक करना।

(४) आकार प्रकार। ढब। बनावट। आकृति। गढ़न। जैसे, इस चाल का लोटा हमारे यहाँ नहीं बनता। (५) चलन। रीति। रवाज। रस्म। प्रथा। परिपाटी। जैसे, हमारे यहाँ इसकी चाल नहीं है। (६) गमन-मुहूर्त्त। चलने की सायत। चाला। उ०—पोथी काढ़ि गवन दिन देखै कौन दिवस है चाल।—जायसी। (७) कार्य्य करने की युक्ति। कृतकार्य्य होने का उपाय। ढंग। तदबीर। ढब। जैसे, किसी चाल से यहाँ से निकल चलो। (८) धोखा देने की युक्ति। चालाकी। कपट। छल। धूर्त्तता। उ०—जोग कथा पठई ब्रज को सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—चालबाजी।

मुहा०—चाल चलना = धोखा देने की युक्ति का कृतकार्य्य होना। धूर्त्तता से कार्य्य सिद्ध होना। जैसे, यहाँ तुम्हारी चाल नहीं चलेगी। चाल चलना (सकर्मक) = धोखा देने का आयोजन करना। चालाकी करना। धूर्त्तता करना। जैसे, हमसे चाल चलते हो, बचा। चाल में आना = धोखे में पड़ना। धोखा खाना। प्रतारित होना।

(९) ढंग। प्रकार। विधि। तरह। जैसे, मैंने उसे कई चाल से समझाया पर उसकी समझ में न आया। (१०) शतरंज, चौसर, ताश आदि के खेल में गोटी को एक घर से दूसरे घर में ले जाने अथवा पत्ते वा पासे को दाँव पर डालने की क्रिया। जैसे, देखते रहो, मैं एक ही चाल में मात करता हूँ।

क्रि० प्र०—चलना।

(११) हलचल। धूम। आंदोलन। उ०—सातहू पताल काल सबद कराल राम भेदे सात ताल चाल परी सात सात में।—तुलसी। (१२) आहट। हिलने डोलने का शब्द। खटका। उ०—देखो सब वृक्ष निश्चल हो गए, मृग और पक्षियों की कुछ भी चाल नहीं मिलती।

मुहा०—चाल मिलना = हिलने डोलने का शब्द सुनाई देना। आहट मिलना।

(१३) वह मकान जिसमें बहुत से किरायेदार टिकते हों। किराए का बड़ा मकान। (बंबई)

संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर का छप्पर वा छत। छाजन। (२) स्वर्णचूड़ पक्षी।

चालक—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] (१) चलानेवाला। संचालक। (२) वह हाथी जो अंकुश न माने। नटखट हाथी। (३) नृत्य में भाव बताने वा सुंदरता लाने के लिये हाथ चलाने की क्रिया।

संज्ञा पुं० [हिं० चाल = धूर्त्तता] चाल चलनेवाला। धूर्त्त। छली। उ०—घरघाल, चालक, कलहप्रिय कहियत परम परमारथी।—तुलसी।

चालकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] चिलका नाम की झील जो उड़ीसा में है।

चाल चलन—संज्ञा पुं० [हिं० चाल + चलन] आचरण। व्यवहार। चरित्र। शील। जैसे, उसका चाल चलन अच्छा नहीं है।

चाल ढाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाल + ढाल] (१) आचरण। व्यवहार। (२) ढंग। तौर तरीका।

चालन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चलाने की क्रिया। परिचालन। (२) चलने की क्रिया। गति। गमन। (३) चलनी। छलनी।

संज्ञा पुं० [हिं० चालना] भूसी या चोकर जो आटा चालने के पीछे रह जाता है। चलनौस।

चालनहार*†—संज्ञा पुं० [हिं० चालन + हार (प्रत्य०)] चलानेवाला। ले जानेवाला।

संज्ञा पुं० [हिं० चलना] चलनेवाला । उ०—तौ दिसि उत्तर चालनहार के मारग केतोइ फेर परै किन । वा उज्जयनि के आछे अटा परसे बिन तू चलियो कितहू जिन ।—लक्ष्मणसिंह ।

चालना*†–क्रि० स० [सं० चालन] (१) चलाना । परिचालित करना । (२) एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना । (३) बिदा करा के ले आना । (बहू) । (४) हिलाना । डोलना । इधर उधर फेरना । उ०—चालति न भुज बल्ली विलोकनि विरह बस भइ जानकी ।—तुलसी । (५) कार्य्य निर्वाह करना । भुगताना । उ०—चालत सब राज काज आयसु अनुसरत ।—तुलसी । (६) बात उठाना । प्रसंग छेड़ना । उ०—बनमाली दिसि सैन कै ग्वाली चाली बात । (७) आटे को छलनी में रख कर इधर उधर हिलाना जिसमें महीन आटा नीचे गिर जाय और भूसी या चोकर छलनी में रह जाय । छानना ।

क्रि० अ० [सं० चालन] (१) चलना । गति में होना । एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना ।

यौ०—चालनहार = चलनेवाला ।

(२) बिदा हो कर आना । चाला होना । (नववधू) उ०—पाखहू न बीत्यो चालि आए हमैं पीहर तें नीके कै न जानी सासु ननद जेठानी है ।—शिवराम ।

चालनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] चलनी । छलनी ।

चालबाज़–वि० [हिं० चाल + फ़ा० बाज़] धूर्त । छली ।

चालबाज़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चालबाज़] चालाकी । छल । धोखेबाज़ी । धूर्त्तता ।

चाला–संज्ञा पुं० [हिं० चाल] (१) प्रस्थान । कूच । रवानगी । (२) नई बहू का पहले पहल मायके से ससुराल वा ससुराल से मायके जाना । (३) यात्रा का मुहूर्त्त । प्रस्थान के लिये शुभ दिन । चलने की सायत । जैसे, आज पूरब का चाला नहीं है ।

मुहा०—चाला देखना = यात्रा का मुहूर्त विचारना । चाला निकालना = मुहूर्त निश्चित करना ।

चालाक–वि० [फ़ा०] (१) चतुर । व्यवहारकुशल । दक्ष । (२) धूर्त्त । चालबाज़ ।

चालाकी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) चतुराई । व्यवहारकुशलता । दक्षता । पटुता । (२) धूर्त्तता । चालबाजी ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—चालाकी खेलना = चालाकी करना ।

(३) युक्ति । कौशल ।

चालान–संज्ञा पुं० [हिं० चलना] (१) भेजे हुए माल की फिहरिस्त । बीजक । इनवायस । (व्यापारी) । (२) भेजा हुआ माल वा रुपया अथवा उसका ब्योरेवार हिसाब ।

यौ०—चालानदार । चालान बही ।

(३) रवन्ना । चले जाने वा माल आदि ले जाने का आज्ञापत्र (४) मुजरिमों का विचार के लिये अदालत में भेजा जाना । अपराधियों का सिपाहियों के पहरे में थाने वा न्यायालय की ओर प्रस्थान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चालानदार–संज्ञा पुं० [हिं० चालान + फ़ा० दार] (१) वह व्यक्ति जो भेजे हुए माल के साथ जाता है और जिसकी जिम्मेदारी पर माल भेजा जाता है । चड़नदार । जमादार । (२) जिसके जिम्मे वा जिसके पास चालान का काग़ज़ हो ।

चालान बही–संज्ञा स्त्री० [हिं० चालान + बही] वह बही जिसमें बाहर से आनेवाले या बाहर जानेवाले माल का ब्योरा लिखा जाता है ।

चालिया–[हिं० चाल = इया (प्रत्य०)] चालबाज । धूर्त्त । छली । धोखेबाज ।

चालिस†–वि० दे० "चालीस" ।

चाली–वि० [हिं० चाल] (१) चालिया । धूर्त्त । चालबाज । (२) चंचल । नटखट । शरीर । उ०—जनम को चाली ए री अद्भुत है ख्याली आजु काली की फनाली पै नचत बनमाली है ।—पद्माकर ।

चालीस–वि० [सं० चत्वारिंशत्, प्रा० चत्तालीस] जो गिनती में बीस और बीस हो । तीस से दस अधिक । जैसे, चालीस दिन ।

संज्ञा पुं० बीस और बीस की संख्या । बीस और बीस का अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४० ।

चालीसवाँ–वि० [हिं० चालीस] जिसका स्थान उनतालीसवें के आगे हो । जिसके पीछे उनतालीस और हों । जो क्रम में उनतालीस वस्तुओं के आगे पड़ता हो । जैसे, चालीसवाँ प्रकरण ।

संज्ञा पुं० [हिं० चालीस] मृतक कर्म करने में चालीसवें दिन का कृत्य । चहलुम । (मुसलमान) ।

चालीसा–संज्ञा पुं० [हिं० चालीस] [स्त्री० चालीसी] (१) चालीस वस्तुओं का समूह । जैसे, चालीसा चूरन (जिसमें चालीस चीजें पड़ती हैं) । (२) चालीस दिन का समय । चिल्ला (३) चालीस वर्ष का समय । (४) चालीस पद्यों का ग्रंथ वा काव्य । जैसे, हनुमानचालीसा ।

चालुक्य–संज्ञा पुं० दक्षिण का एक अत्यंत प्रबल और प्रतापी राजवंश जिसने शक ४११ से ले कर ईसा की १२वीं शताब्दी तक राज्य किया ।

विशेष—विह्लण के विक्रमांकचरित में लिखा है कि चालुक्य वंश का आदि पुरुष ब्रह्मा के चुलुक (चुल्लू) से उत्पन्न हुआ था । पर चालुक्य नाम का यह कारण केवल

कवि-कल्पित ही है। कई ताम्रपत्रों में लिखा पाया गया है कि चालुक्य चंद्रवंशी थे और पहले अयोध्या में राज्य करते थे। विजयादित्य नाम के एक राजा ने दक्षिण पर चढ़ाई की और वह वहीं त्रिलोचन पल्लव के हाथ से मारा गया। उसकी गर्भवती रानी ने अपने कुल-पुरोहित विष्णु भट्ट सोमयाजी के साथ मूड़िवेमु नामक स्थान में आश्रय ग्रहण किया। वहीं उसे विष्णुवर्द्धन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने गंग और कादंब राजाओं को परास्त करके दक्षिण में अपना राज्य जमाया। विष्णुवर्द्धन का पुत्र पुलिकेशी (प्रथम) हुआ जिसने पल्लवों से वातापी नगरी (आज कल की बादामी) को जीत कर उसे अपनी राजधानी बनाया। पुलिकेशी (प्रथम) शक ४११ में सिंहासन पर बैठा। पुलिकेशी (प्रथम) का पुत्र कीर्त्तिवर्म्मा हुआ। कीर्त्तिवर्म्मा के पुत्र छोटे थे इससे कीर्त्तवर्म्मा की मृत्यु के उपरांत उसके छोटे भाई मंगलीश गद्दी पर बैठे। पर जब कीर्त्तिवर्म्मा का जेठा लड़का सत्याश्रय बड़ा हुआ तब मंगलीश ने राज्य उसके हवाले कर दिया। वह पुलिकेशी द्वितीय के नाम से शक ५३१ में सिंहासन पर बैठा और उसने मालवा, गुजरात, महाराष्ट्र, कोंकण, कांची आदि को अपने राज्य में मिलाया। यह बड़ा प्रतापी राजा हुआ। समस्त उत्तरीय भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करनेवाले कन्नौज के महाराज हर्षवर्द्धन तक ने दक्षिण पर चढ़ाई करके इस राजा से हार खाई। चीनी यात्री हुएनसांग ने इस राजा का वर्णन किया है। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि फ़ारस के बादशाह ख़ुसरो (दूसरा) से इसका व्यवहार था, तरह तरह की भेंट लेकर दूत आते जाते थे। पुलिकेशी के उपरांत चंद्रादित्य, आदित्यवर्म्मा, विक्रमादित्य क्रम से राजा हुए। शक ६०१ में विनयादित्य गद्दी पर बैठा। यह भी प्रतापी राजा हुआ और शक ६१८ तक सिंहासन पर रहा। शक ६७८ में इस वंश का प्रताप मंद पड़ गया, बहुत से प्रदेश राज्य से निकल गए। अंत में विक्रमादित्य (चतुर्थ) के पुत्र तैल (द्वितीय) ने फिर राज्य का उद्धार किया और चालुक्य वंश का प्रताप चमकाया। इस राजा ने प्रबल राष्ट्रकूटराज को दमन किया। शक ८९१ में महाप्रतापी त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्य (छठां) के नाम से राजसिंहासन पर बैठा और इसने चालुक्य विक्रम-वर्ष नाम का संवत् चलाया। इस राजा के समय के अनेक ताम्रपत्र मिलते हैं। विह्लण कवि ने इसी राजा को लक्ष्य करके विक्रमांकदेवचरित नामक काव्य लिखा है। इस राजा के उपरांत थोड़े दिनों तक तो चालुक्य वंश का प्रताप अखंड रहा पर पीछे घटने लगा। शक ११११ तक वीर सोमेश्वर ने किसी प्रकार राज्य बचाया, पर अंत में मैसूर के हयशाल वंश के प्रबल होने पर वह धीरे धीरे हाथ से निकलने लगा। इस वंश की एक शाखा गुजरात में और एक शाखा दक्षिण के पूर्वीय प्रांत में भी राज्य करती थी।

चाल्ह—संज्ञा स्त्री० [देश०] चेल्हवा मछली। उ०—बात कहत भइ देस गुहारी। केवटहि चाल्ह समुँद महँ मारी।—जायसी।

चाल्ही—संज्ञा स्त्री० [?] नाव में वह स्थान जो मरिया के पास ही बाँस की फट्टियों से पटा रहता है और जहाँ खेनेवाले मल्लाह बैठते हैं।

चावँ चावँ—संज्ञा पुं० दे० "चाँयँ चाँयँ"।

चाव—संज्ञा पुं० [हिं० चाह] (१) प्रबल इच्छा। अभिलाषा। लालसा। अरमान। उ०—(क) चित्रकेतु पृथ्वीपति राव। सुतहित भयो तासु हिय चाव।—सूर। (ख) चहौं दीप वह देखा, सुनत उठा तस चाव।—जायसी।

क्रि० प्र०—उठना।—करना।—होना।

मुहा०—चाव निकालना = लालसा पूरी करना।

(२) प्रेम। अनुराग। चाह। उ०—ज्यों ज्यों चवाव चलै चहुँ ओर धरैं चित चाव ये त्यों ही त्यों चोखे। (३) शौक़। उत्कंठा। उ०—चोप घटी कि मिटो चित चाव, कि आलस नींद, कि बेपरवाही? (४) लाड़ प्यार। दुलार। नखरा।

यौ०—चाव चोचला।

(५) उमंग। उत्साह। आनंद। उ०—यहि विधि जासु प्रभाव, श्री दसरथ महिपाल मणि। और सबै चित चाव, सुत बिन तापित रहत हिय।—रघुराज।

चावड़ी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] पथिकों के उतरने का स्थान। चट्टी। पड़ाव।

चावड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] गुजरात का एक प्रसिद्ध और प्राचीन राजपूत वंश जिसने कई शताब्दियों तक गुजरात में राज्य किया। इस वंश की राजधानी अनहलवाड़ा थी। जिस समय महमूद ग़ज़नवी ने सोमनाथ पर आक्रमण किया था उस समय सोमनाथ चावड़ा राजा के अधिकार में था। इस वंश की उत्पत्ति का ठीक पता नहीं है। कोई कोई चावड़ों को विदेश से आया बतलाते हैं पर अधिकांश लोग इन्हें विस्तृत प्रमार वंश की शाखा मानते हैं। इनके सब से प्राचीन पूर्वज का नाम बछराज मिलता है। बछराज दीव या दीउ नामक स्थान में राज्य करते थे। बछराज के पुत्र वेणीराज के समय में जब दीउ टापू का अधिकांश समुद्र-मग्न हो गया तब उनकी रानी वहाँ से चंदूर नामक स्थान में भागी जहाँ उनके गर्भ से वनराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र बड़ा प्रतापी हुआ और डाकुओं का बड़ा भारी दल इकट्ठा करके इधर उधर लूट मार करने लगा। अंत में अनहल नामक चरवाहे ने पट्टन नगर के खँडहरों में प्रमारों का बहुत सा संचित धन उसे दिखा दिया। इसी धन के बल से उसने उसी स्थान पर संवत् ८०२ में अनहलवाड़ा नामक नगर बसाया।

चावर†–संज्ञा पुं० दे० "चावल"।

चावल–संज्ञा पुं० [सं० तंडुल] (१) एक प्रसिद्ध अन्न। धान के बीज की गुठली। तंडुल।

मुहा०—चावल चबवाना = जिन जिन पर किसी वस्तु के चुराने का संदेह हो उन्हें चरयारी रुपया भर चावल यह कह कर चबवाना कि जो चोर होगा उसके मुँह से थूकने पर ख़ून निकलेगा। यह वास्तव में एक प्रकार की धमकी है जिससे डर कर कभी कभी चोर चीजें फेंक देते हैं।

(२) राँधा चावल। भात। (३) छोटे छोटे बीज के दाने जो किसी प्रकार खाने के काम में आवें। जैसे, लटजीरा के चावल, जवाइन के चावल, इत्यादि। (४) एक रत्ती का आठवां भाग या उसके बराबर की तौल।

मुहा०—चावल भर = रत्ती के आठवें भाग के बराबर।

चाशनी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) चीनी, मिस्री या गुड़ का रस जो आंच पर चढ़ा कर गाढ़ा और मधु के समान लसीला किया गया हो। चाशनी में डुबा कर बहुत सी मिठाइयाँ बनती हैं।

मुहा०—चाशनी में पागना = मीठा करने के लिये चाशनी में डुबाना।

(२) किसी वस्तु में थोड़े से मीठे आदि की मिलावट। जैसे, तमाकू में खमीरे की चाशनी।

क्रि० प्र०—देना।

(३) चसका। मज़ा। जैसे, अब उसे इसकी चाशनी मिल गई है। (४) नमूने का सोना जो सुनार को गहने बनाने के लिये सोना देनेवाला गाहक अपने पास रखता है और जिससे वह बने हुए गहनों के सोने का मिलान करता है।

विशेष—जब किसी सुनार को बहुत सा सोना ज़ेवर बनाने के लिये दिया जाता है तब बनानेवाला उसमें का थोड़ा सा (लगभग १ माशा) सोना निकाल कर अपने पास रख लेता है और जब सुनार ज़ेवर बना कर लाता है तब वह उस ज़ेवर के सोने को कसौटी पर कस कर अपने पास के नमूने से मिलाता है। यदि ज़ेवर का सोना नमूने से न मिला तो समझा जाता है कि सुनार ने सोना बदल लिया या उसमें कुछ मिला दिया।

चाष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीलकंठ पक्षी। उ०—चारा चाषु वाम दिसि लेई। मनो सकल मंगल कहि देई।—तुलसी। (२) चाहा पक्षी।

*संज्ञा पुं० [सं० चक्षु] आँख। नेत्र। उ०—अचरज देखि चाष लागै न निमेष कहूँ।—प्रिया।

चास†–संज्ञा स्त्री० [देश० चासा] जोत। बाह।

चासना†–क्रि० अ० [हिं० चास] जोतना।

चासनी–संज्ञा स्त्री० दे० "चाशनी"।

चासा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) उड़ीसा की एक जाति जो किसानी पर निर्वाह करती है। (२) हलवाहा। हल जोतनेवाला। (३) किसान। खेतिहर।

चाह–संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा। (आद्यन्त विपर्यय) च्छाइ, हिं० चाहि। अथवा सं० उत्साह, प्रा० उच्छाह] (१) इच्छा। अभिलाषा। (२) प्रेम। अनुराग। प्रीति। (३) पूछ। आदर। क़दर। उ०—अच्छे आदमी की सब जगह चाह है। (४) मांग। ज़रूरत। आवश्यकता।

*संज्ञा स्त्री० [हिं० चाल = आहट] ख़बर। समाचार। गुप्त भेद। मर्म। उ०—(क) राव रंक जहँ लग सब जाती। सब की चाह लेइ दिन राती।—जायसी। (ख) पुर घर घर आनँद महा सुनि चाह सोहाई।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० दे० "चाय", "चाव"।

चाहक*–संज्ञा पुं० [हिं० चाहना] चाहनेवाला। प्रेम करनेवाला।

चाहत–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाह] चाह। प्रेम।

चाहना–क्रि० स० [हिं० चाह] (१) इच्छा करना। अभिलाषा करना। (२) प्रेम करना। स्नेह करना। प्यार करना। (३) लेने वा पाने की इच्छा प्रकट करना। माँगना। उ०—हम तुमसे रुपया पैसा कुछ नहीं चाहते। (४) प्रयत्न करना। ज़ोर करना। कोशिश करना। उ०—उसने बहुत चाहा कि हाथ छुड़ा कर निकल जाँय पर एक न चली। (५) चाह से देखना, ताकना, निहारना। उ०—पुनि रूपवंत बखानौ काहा। जावत जगत सबै मुख चाहा।—जायसी। (६) ढूँढ़ना। खोजना। तलाश करना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चाहना] चाह। ज़रूरत। उ०—जाकी यहाँ चाहना है ताकी वहाँ चाहना है, जाकी यहाँ चाह ना है ताकी वहाँ चाह ना।

चाहा–संज्ञा पुं० [चाष] जल के निकट रहनेवाला बगले की तरह का एक पक्षी जिसका सारा शरीर गुलदार और पीठ सुनहरी होती है। यह जल अथवा कीचड़ के कीड़े मकोड़े खाता है। इसका लोग मांस के लिये शिकार करते हैं। यह पक्षी कई प्रकार का होता है, जैसे, चाहा करमाठी = गर्दन सफ़ेद, शेष सब काला। चाहा चुका = चोंच और पैर लाल, शेष सब खाकी। चाहा बगौधी = पैर लाल, शेष सब शरीर चितकबरा। चाहा लमगोड़ा = चितकबरा, चोंच और पैर कुछ अधिक लंबे।

चाहि*–अव्य० [सं० चैव = और भी ?] अपेक्षाकृत (अधिक)। बनिस्बत। से (बढ़ कर)। उ०—(क) ससि चौदस जो दई सँवारा। ताहू चाहि रूप उजियारा।—जायसी। (ख) मेघहिँ चाहि अधिक वे कारे। भयो असूझ देखि अँधियारे।—जायसी। (ग) जीव चाहि सो अधिक पियारी। माँगै जीउ देउँ बलिहारी।—जायसी। (घ) कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहि चाहि।—तुलसी।

चाहिए–अव्य० [हिं० चाहना] उचित है। उपयुक्त है। मुनासिब

है। उ०—लड़कों को चाहिए कि अपने माँ-बाप का कहना मानें।

विशेष—यह शब्द 'विधि' सूचित करने के लिये संयो० क्रि० की भाँति क्रियाओं में भी लगता है, जैसे, करना चाहिए, आना चाहिए, इत्यादि। उ०—तुम्हें ऐसा कभी नहीं करना चाहिए।

चाही-वि स्त्री० [हिं० चाह] चाही हुई। जो चाही जाय। चहेती। प्यारी।

वि० [फ़ा० चाह = कुँआँ] कुँआ संबंधी। (वह भूमि) जो कुँवें से सींची जाय।

चाहे-अव्य० [हिं० चाहना] (१) जी चाहे। इच्छा हो। मन में आवे। उ०—(क) तुम जहाँ चाहे वहाँ जाओ, मुझ से मतलब? (ख) इनमें से चाहे जिसको लो। (२) यदि जी चाहे तो। जैसा जी चाहे। या तो। उ०—चाहे यह लो चाहे वह। (३) होना चाहता हो। होनेवाला हो। उ०—चाहे जो हो, हम वहाँ अवश्य जायँगे।

चिँआँ-संज्ञा पुं० [सं० चिंचा = इमली] इमली का बीज। उ०—तेरी महिमा ते चलैं चिंचिनी चिआँ रे।—तुलसी।

मुहा०—चिँआँ सी = छोटी। बहुत छोटी। जैसे, चिँआँ सी आँख।

चिँउँटा-संज्ञा पुं० [हिं० चिमटा] एक कीड़ा जो मीठे के पास बहुत जाता है और जिस चीज़ को चिमटता है उसे जल्दी नहीं छोड़ता। चींटा।

मुहा०—गुड़ चिँउँटा होना = एक दूसरे से गुथ जाना। परस्पर चिमट जाना। गुत्थमगुत्था होना। चिँउँटे के पर निकलना = ऐसा काम करना जिससे मृत्यु हो। मरने पर होना। (चिँउँटों के जब पर निकलते हैं तब वे हवा में उड़ते हैं और गिर पड़ कर मर जाते हैं।)

चिँउँटिया रेंगान-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिउँटी + रेंगना] (१) बहुत धीमी चाल। बहुत सुस्त चाल। अत्यंत मंद गमन। हौले हौले चलना। (२) सिर के बालों की बड़ी बारीक कटाई जिसमें चिँउँटी रेंगती हुई देख पड़े। (नाई)

चिँउँटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिमटाना] एक बहुत छोटा कीड़ा जो मीठे के पास बहुत जाता है और अपने नुकीले मुँह से काटता और चिमटता है। चींटी। पिपीलिका।

विशेष—चिँउँटियों के मुँह के दोनों किनारों पर दो निकली हुई नोकें होती हैं, जिनसे वे काटती वा चिमटती हैं। इनकी जीभ एक नली के रूप में होती है जिससे वे रसीली चीजें चूसती हैं। चिँउँटी की अनेक जातियाँ होती हैं। मधुमक्खियों के समान चींटियों में भी नर, मादा के अतिरिक्त क्लीव होते हैं जो केवल कार्य्य करते हैं, संतानोत्पत्ति नहीं करते। चिँउँटियाँ झुंड में रहती हैं। इनके झुंड में व्यवस्था और नियम का अद्भुत पालन होता है। समुदाय के लिये भोजन संचित करके रखना, स्थान को रक्षित बनाना आदि कार्य्य बड़ी तत्परता के साथ किए जाते हैं। इनका श्रम और अध्यवसाय प्रसिद्ध है।

मुहा०—चिँउँटी की चाल = बहुत सुस्त चाल। मंद गति।

चिंगट-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्प० चिंगटी] एक प्रकार की मछली। झिंगवा। झिंगा।

विशेष—यह मछली केकड़े की जाति के अंतर्गत है। दे० "झिंगा"।

चिंगड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० झींगा] झींगा मछली।

चिंगना-संज्ञा पुं० [देश०] (१) किसी पक्षी, विशेषतः मुरगी का छोटा बच्चा। (२) छोटा बालक। बच्चा।

चिंगारी-संज्ञा स्त्री० दे० "चिनगारी"।

चिँगुरना†-क्रि० अ० [हिं० चंग] बहुत देर तक एक स्थिति में रहने के कारण किसी अंग का जल्दी न फैलना। नसों का इस प्रकार संकुचित होना कि हाथ पैर जल्दी फैलाते न बने।

चिँगुरा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगुला।

संज्ञा पुं० [हिं० चिंगुरना] बहुत देर तक स्थिति में रहने के कारण किसी अंग का ऐसा संकोच कि वह फैलाने से जल्दी न फैले।

क्रि० प्र०—लगना।

चिँगुला†-संज्ञा पुं० [देश०] (१) बच्चा। बालक। (२) किसी पक्षी का छोटा बच्चा।

चिंघाड़-संज्ञा स्त्री० [सं० चीत्कार] (१) चीख़ मारने का शब्द। किसी जंतु का घोर शब्द। चिल्लाहट। (२) हाथी की बोली।

क्रि० प्र०—मारना।

चिंघाड़ना-क्रि० अ० [सं० चीत्कार] (१) चीख़ना। चिल्लाना। (२) हाथी का चिल्लाना।

चिंचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इमली। (२) इमली का चिँआँ।

चिंचाटक-संज्ञा पुं० [सं०] चेंच साग।

चिंचाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] चूका नाम का साग।

चिंचिनी*-संज्ञा स्त्री० [सं० तिंतिड़ी] (१) इमली का पेड़। (२) इमली का फल। उ०—तेरी महिमा तै चलै चिंचिनी चिँआँ रे।—तुलसी।

चिंची-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा। घुँघुची।

चिंचोटक-संज्ञा पुं० [सं०] चेंच साग।

चिंजा†*-संज्ञा पुं० [सं० चिरंजीव] [स्त्री० चिंजी] लड़का। पुत्र। बेटा। उ०—गिरत गब्भ कोट्टै गरब्भ चिंजी चिंजा डर।—भूषन।

चिंजी*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिंजा] लड़की। कन्या।

चिंड-संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य का एक भेद। नाच का एक ढंग। उ०—उलथा टेंकी आलम सदिंड। पद पलटि हुरमयी निशंक चिंड।—केशव।

चिंत–संज्ञा स्त्री० [सं० चिन्ता] चिंतना । चिंता । ध्यान । याद । सोच । फ़िक्र । उ०—सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिय भगति न पूजा ।—तुलसी ।

चिंतक–वि० [सं०] (१) चिंतन करनेवाला । ध्यान करनेवाला । उ०—(क) जे रघुबीर चरन चिंतक तिन्ह की गति प्रगट देखाई । अविरल अमल अनूप भगति दृढ़ तुलसिदास तब पाई ।—तुलसी । (ख) सिय पद चिंतक जे जग माहीं । साधु सिद्धि पावहिँ सक नाहीं ।—रामाश्वमेध । (२) सोचनेवाला । विचार करनेवाला । ध्यान करनेवाला ।

यैा०—हितचिंतक = ख़ैरख़्वाह ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समास में अधिक होता है ।

चिंतन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चिंतनीय, चिंतित, चिंत्य] (१) ध्यान । बार बार स्मरण । किसी बात को बार बार मन में लाने की क्रिया । उ०—श्री रघुबीर चरन चिंतन तजि नाहीं ठौर कहूँ ।—तुलसी । (२) विचार । विवेचना । ग़ौर ।

चिंतना*–क्रि० स० [सं०] (१) चिंतन करना । ध्यान करना । स्मरण करना । उ०—सनक शंकर ध्यान ध्यावत निगम अवरन वरन । शेष शारद ऋषि सुनारद संत चिंतत चरन ।—सूर । (२) सोचना । समझना । ग़ौर करना । विचारना ।

संज्ञा स्त्री० [सं० चिंतन] (१) ध्यान । स्मरण । भावना । (२) चिंता । सोच ।

चिंतनीय–वि० [सं०] (१) चिंतन करने योग्य । ध्यान करने योग्य । भावनीय । (२) चिंता करने योग्य । जिसकी फ़िक्र करना उचित हो । (३) विचार करने योग्य । सोचने समझने योग्य ।

चिंतवन*–संज्ञा पुं० दे० "चिंतन" ।

चिंता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ध्यान । भावना । (२) वह भावना जो किसी प्राप्त दुःख वा दुःख की आशंका आदि से हो । सोच । फ़िक्र । खटका । उ०—चिंता ज्वाल शरीर वन, दावा लगि लगि जाय । प्रगट धुवाँ नहिं देखिए, उर अंतर धुँधुआय ।—गिरधर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—चिंता लगना = चिंता का बराबर बना रहना । जैसे, मुझे दिन रात इसी की चिंता लगी रहती है । कुछ चिंता नहीं = कुछ परवाह नहीं । कोई खटके की बात नहीं ।

विशेष—साहित्य में चिंता करुण रस का व्यभिचारी भाव माना जाता है, अतः वियोग की दस दशाओं में से चिंता दूसरी दशा मानी गई है।

चिंताकुल–वि० [सं०] चिंता से व्यग्र ।

चिंतातुर–वि० [सं०] चिंता से घबराया हुआ ।

चिंतामणि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक कल्पित रत्न जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि उससे जो अभिलाषा की जाय वह पूर्ण कर देता है । उ०—राम चरित चिंतामणि चारू । संत-सुमत तिय सुभग सिँगारू ।—तुलसी । (२) ब्रह्मा । (३) परमेश्वर । (४) एक बुद्ध का नाम । (५) घोड़े के गले की एक शुभ भौंरी । (६) वह घोड़ा जिसके कंठ में उक्त भौंरी हो । (७) स्कंद-पुराण (गणपतिकल्प) के अनुसार एक गणेश जिन्होंने कपिल के यहां जन्म लेकर महाबाहु नामक दैत्य से उस चिंतामणि का उद्धार किया था जिसे उसने कपिल से छीन लिया था । (८) यात्रा का एक योग । (९) वैद्यक में एक रस जो पारा, गंधक, अभ्रक और जयपाल के योग से बनता है । (१०) सरस्वती देवी का मंत्र जिसे लोग बालक की जीभ पर विद्या आने के लिये लिखते हैं ।

चिंतावेश्म–संज्ञा पुं० [सं० चिंतावेश्मन्] सलाह करने का घर वा स्थान । मंत्रणागृह । गोष्ठीगृह ।

चिंति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश । (२) उस देश का निवासी ।

चिंतीड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली ।

चिंतित–वि० [सं०] जिसे चिंता हो । चिंतायुक्त । फ़िक्रमंद ।

चिंत्य–वि० [सं०] भावनीय । विचारणीय । विचार करने योग्य ।

चिंदी–संज्ञा स्त्री० [देश०] टुकड़ा ।

मुहा०—चिंदी चिंदी करना = किसी वस्तु को ऐसा तोड़ना कि उसके छोटे छोटे टुकड़े हो जायं । हिंदी की चिंदी निकालना = अत्यंत तुच्छ भूल निकालना । कुतर्क करना ।

चिंपा–संज्ञा पुं० [देश०] एक गहरे काले रंग का कीड़ा जो ज्वार, बाजरे, अरहर और तमाखू को खा डालता है ।

चिंपांज़ी–संज्ञा पुं० [अं० शिंपैंज़ी] अफ्रीका का एक बनमानुस जिसकी आकृति मनुष्य से बहुत मिलती जुलती होती है । इसका सिर ऊपर से चिपटा, माथा दबा हुआ , मुँह बहुत चौड़ा, कान बड़े और उभड़े हुए, नाक चिपटी तथा शरीर के बाल काले और मोटे होते हैं । इसके सिर, कंधे और पीठ पर बाल घने और पेट और छाती पर कम होते हैं । इसका मुख बिना रोएँ का और रंग गहरा ऊदा होता है । दोनों ओर के गलमुच्छे काले होते हैं । इसका क़द भी मनुष्य के बराबर ही होता है । चिंपांजी झुंड में रहते हैं ।

चिउड़ा–संज्ञा पुं० [सं० चिपिट, प्रा० चिविड] एक प्रकार का चर्वण जो हरे, भिगोए या उबाले हुए धान को कूटने से बनता है । चिड़वा । चूरा ।

चिउरा†–संज्ञा पुं० (१) दे० "चिउड़ा" । उ०—लै चिउरा निधि दई सुदामहि जद्यपि बाल मिताई ।—तुलसी । (२) चिउली ।

चिउली–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) महुए की जाति का एक जंगली पेड़ जो हिमालय के आस पास भूटान तक होता है। इसका पतझड़ होता है। इसमें से एक प्रकार का तेल निकलता है जो मक्खन की तरह जम जाता है। इस तेल के जमे हुए कतरों को चिउरा या चिउली का पीना या फुलवा भी कहते हैं। नैपाल आदि में इसे घी में मिलाते हैं। (२) एक प्रकार का रंगीन रेशमी कपड़ा।

पर्य्या०—चिउरा। फुलवारा। चार चूरी।

(२) [सं० चिपिट, प्रा० चिविड, चिविल] चिकनी सुपारी।

चिक–संज्ञा स्त्री० [तु० चिक्] (१) बाँस वा सरकंडे की तीलियों का बना हुआ झँझरीदार परदा। चिलमन। (२) पशुओं को मार कर उनका माँस बेचनेवाला। बूचर। बकर कसाई (बूचरों की दुकान पर चिक टँगी रहती है इसी से यह शब्द बना है)। उ०—जाट जुलाह जुरे दरजी मरजी पै चढ़े चिक चोर चमारे।

संज्ञा स्त्री० [देश०] कमर का वह दर्द जो एक बारगी अधिक बल पड़ने के कारण होता है। चमक। चिलक। झटका। लचक।

संज्ञा स्त्री० [अं०] चेक। हुंडी। किसी बंक वा महाजन के नाम वह काग़ज़ जिसमें रुपया देने का आदेश रहता है।

चिकट–वि० [सं० चिक्किद] (१) चिकना और मैल से गंदा। जिसपर मैल जमा हो। मैला कुचैला। (२) लसीला चिपचिपा।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का रेशमी या टसर का कपड़ा। (२) वे कपड़े जिन्हें भाई अपनी बहिन को उस समय देता है जब बहिन की संतान का विवाह होता है।

चिकटना–क्रि० अ० [हिं० चिकट वा चिक्कट] जमी हुई मैल के कारण चिपचिपा होना।

चिकटा–वि० दे० "चिकट"।

चिकड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पेड़ जो हिमालय पर ८००० फुट की ऊँचाई तक मिलता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और कुछ पीलापन लिए होती है। अमृतसर में इसकी कंघियाँ बहुत अच्छी बनती हैं। कठौत आदि बनाने के काम में भी यह लकड़ी आती है। पत्तों की खाद बनती है। फूलों में मीठी सुगंध होती है।

चिकन–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का महीन सूती कपड़ा जिसपर उभड़े हुए फूल वा बूटे बने रहते हैं। कसीदा काढ़ा हुआ कपड़ा। सूजनकारी का कपड़ा।

यौ०—चिकनकारी। चिकनगर।

चिकनकारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चिकन बनाने का काम।

चिकनगर, चिकनदोज़–संज्ञा पुं० [फ़ा०] चिकन काढ़नेवाला। चिकन का काम करनेवाला।

चिकना–वि० [सं० चिक्कण] [स्त्री० चिकनी] (१) जो छूने में खुरदुरा न हो। जो ऊबड़ खाबड़ न हो। जिस पर उँगली फेरने से कहीं उभाड़ आदि न मालूम हो। जो साफ़ और बराबर हो। जैसे चिकनी चौकी, चिकनी मेज़। (२) जिस पर पैर आदि फिसले। जिस पर सरकने में कुछ रुकावट न जान पड़े। जैसे, यहाँ की मिट्टी बड़ी चिकनी है, पैर फिसल जायगा।

मुहा०—चिकना देख फिसल पड़ना = केवल सौंदर्य वा धन देख कर रीझ जाना। धन वा रूप पर लुभा जाना।

(३) जिसमें रुखाई न हो। जिसमें तेल आदि का गीलापन हो। जिसमें तेल हो या लगा हो। स्निग्ध। तेलिया। तेलौंस।

मुहा०—चिकना घड़ा = (१) वह जिस पर अच्छी बातों का कुछ असर न पड़े। ओछा। निर्लज्ज। बेहया। (२) वह जिसके पेट में कोई बात न पचे। क्षुद्र स्वभाव का। चिकने घड़े पर पानी पड़ना = किसी पर किसी अच्छी बात या उपदेश का प्रभाव न पड़ना।

(४) साफ़ सुथरा। सँवारा हुआ। जैसे, तुम्हारा चिकना मुँह देख कर कोई रुपया नहीं दिए देता।

मुहा०—चिकना चुपड़ा = बना ठना। छैल चिकनियाँ। सँवार सिंगार किए हुए। चिकनी चुपड़ी = दे० "चिकनी चुपड़ी बातें।" चिकनी चुपड़ी बातें = मीठी बातें जो किसी को प्रसन्न करने, बहकाने वा धोखा देने के लिये कही जायँ। बनावटी स्नेह से भरी बातें। कृत्रिम मधुर भाषण। उ०—उसकी चिकनी चुपड़ी बातों में मत आना। चिकना मुँह = सुंदर और सँवारा हुआ चेहरा। चिकने मुँह का ठग = ऐसा धूर्त्त जो देखने में और बात चीत से भलामानुस जान पड़ता हो। वंचक।

(५) चिकनी चुपड़ी बातें कहनेवाला। केवल दूसरों को प्रसन्न करने के लिये मीठी बातें कहनेवाला। लप्पो चप्पो करनेवाला। चाटुकार। खुशामदी। (६) स्नेही। अनुरागी। प्रेमी। उ०—जे नर रूखे विषय रस चिकने राम सनेह। तुलसी ते प्रिय राम के कानन बसहिँ कि गेह।—तुलसी।

संज्ञा पुं० तेल, घी, चरबी आदि चिकने पदार्थ। जैसे, इसमें चिकना बहुत कम देना।

चिकनाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिकना + ई (प्रत्य०)] (१) चिकना होने का भाव। चिकनापन। चिकनाहट। (२) स्निग्धता। सरसता। (३) घी, तेल, चरबी इत्यादि चिकने पदार्थ।

चिकनाना–क्रि० स० [हिं० चिकना + ना (प्रत्य०)] (१) चिकना करना। खुरदुरा न रहने देना। बराबर करके साफ़ करना। (२) रूखा न रहने देना। तेलौंस करना। स्निग्ध करना। (३) मैल आदि साफ़ करके निखारना। साफ़ सुथरा करना। सँवारना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

क्रि० अ० (१) चिकना होना। (२) स्निग्ध होना। (३) चरबी से युक्त होना। हृष्ट पुष्ट होना। मोटाना। जैसे, देखो ये जब से यहाँ रहने लगे हैं, कैसे चिकना आए हैं। (४) स्नेहयुक्त होना। प्रेमपूर्ण होना। अनुरक्त होना। उ०—नहिँ नचाइ चितवति दृगनि नहिँ बोलति मुसुकाय। ज्यों ज्यों रुख रूखो करति त्यों त्यों चित चिकनाय।—बिहारी।

चिकनापन—संज्ञा पुं० [हिं० चिकना + पन (प्रत्य०)] चिकना होने का भाव। चिकनाई। चिकनाहट।

चिकनावट—संज्ञा स्त्री० दे० "चिकनाहट"।

चिकनाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिकना + हट (प्रत्य०)] चिकना होने का भाव। चिक्कणता। चिकनापन।

चिकनिया—वि० [हिं० चिकना] छैला। शौकीन। बाँका। बना-ठना। उ०—(क) सबही व्रज के लोग चिकनिया मेरे भाएँ घास। अब तो इहै बसी री माई नहिँ मानौंगी त्रास।—सूर। (ख) सूरदास प्रभु वाके बस परि अब हरि भए चिकनियाँ।—सूर। (ग) या माया रघुनाथ की बौरी खेलन चली अहेरा हो। चतुर चिकनियाँ चुनि चुनि मारै काहु न राखै नेरा हो।—कबीर।

चिकनी—वि० स्त्री० दे० "चिकना"।

संज्ञा स्त्री० चिकनी सुपारी।

चिकनी मिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिकनी + मिट्टी] (१) काले रंग की लसदार मिट्टी जो सिर मलने आदि के काम में आती है। करैली मिट्टी। काली मिट्टी।

विशेष—चना अलसी, जौ आदि इस मिट्टी में बहुत अच्छे होते हैं।

(२) पीले वा सफ़ेद रंग की साफ़ लसीली मिट्टी जो बड़ी नदियों के ऊँचे करारों में होती है और लीपने पोतने के काम में आती है।

चिकनी सुपारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चिक्कणी] एक प्रकार की उबाली हुई सुपारी जो चिपटी होती है। चिकनी डली।

विशेष—दक्षिण के कनारा नामक प्रदेश में यह सुपारी उबाल कर बनाई जाती है, इसी से इसे दक्खिनी सुपारी भी कहते हैं।

चिकरना—क्रि० अ० [सं० चीत्कार, प्रा० चीक्कार, चिक्कार] चीत्कार करना। चिंघाड़ना। चीखना। ज़ोर से चिल्लाना।

चिकवा—संज्ञा पुं० [तु० चिक् + वा] बकर कसाब। मांस बेचने-वाला। बूचड़। चिक।

चिकार—संज्ञा पुं० [सं० चीत्कार, प्रा० चिक्कार] चीत्कार। चिल्लाहट। चिंघाड़। उ०—(क) परयो भूमि करि घोर चिकारा।—तुलसी। (ख) मरत असुर चिकार पारयो मारयो नंद-कुमार।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

चिकारना—क्रि० अ० [हिं० चिकार] चीत्कार करना। चिंघाड़ना।

चिकारा—संज्ञा पुं० [हिं० चिकार] [स्त्री० अल्प० चिकारी] (१) सारंगी की तरह का एक बाजा जिसमें नीचे की ओर चमड़े से मढ़ा कटोरा रहता है और ऊपर डाँड़ी निकली रहती है। चमड़े के ऊपर से गए हुए तारों वा घोड़े के बालों को कमानी से रेतने से शब्द निकलता है। (२) हिरन की जाति का एक जंगली जानवर जो बहुत फुरतीला होता है। इसे छिकरा भी कहते हैं।

चिकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिकारा] (१) छोटा चिकारा। (२) मच्छड़ की तरह का एक प्रकार का बहुत छोटा कीड़ा।

चिकित—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

चिकितान—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

चिकितायन—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित ऋषि के वंशज।

चिकित्सक—संज्ञा पुं० [सं०] रोग दूर करने का उपाय करने-वाला। वैद्य।

चिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० चिकित्सित, चिकित्स्य] (१) रोग दूर करने की युक्ति वा क्रिया। शरीर स्वस्थ वा नीरोग करने का उपाय। रोग शांति का विधान। रोगप्रतीकार। इलाज।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

विशेष—आयुर्वेद के दो विभाग हैं, एक तो निदान जिसमें पह-चान के लिये रोगों के लक्षण आदि का वर्णन रहता है और दूसरा चिकित्सा जिसमें भिन्न भिन्न रोगों के लिये भिन्न भिन्न औषधों की व्यवस्था रहती है। चिकित्सा तीन प्रकार की मानी गई है, दैवी, आसुरी और मानुषी। जिसमें पारे की प्रधानता हो वह दैवी, जो छः रसों के द्वारा की जाय वह मानवी और जो अस्त्र प्रयोग वा चीर फाड़ के द्वारा हो वह आसुरी कहलाती है।

(२) वैद्य का व्यवसाय वा काम।

चिकित्सालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ रोगियों की आरोग्यता का प्रयत्न किया जाय। शफ़ाखाना। अस्पताल।

चिकित्सित—वि० [सं०] जिसकी चिकित्सा की गई हो। जिसकी दवा हुई हो।

संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम।

चिकित्सु—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सक।

चिकित्स्य—वि० [सं०] जो चिकित्सा के योग्य हो। साध्य।

चिकिल—संज्ञा पुं० [सं०] कीचड़। पंक।

चिकीर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० चिकीर्षित, चिकीर्ष्य] करने की इच्छा। जैसे, नाश-कर्म-चिकीर्षा।

चिकुटी*—संज्ञा स्त्री० दे० "चिकोटी", "चुटकी"। उ०—भृकुटी नचाइ भाल त्रिकुटी उचाइ कर चिकुटी रचाइ चित चायन चुनति फिरै।—देव।

चिकुर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) केश। सिर के बाल। (२) पर्वत। (३) सरीसृप। साँप आदि रेंगनेवाले जंतु। (४) एक पेड़ का नाम। (५) एक पक्षी का नाम। (६) एक सर्प का नाम। (७) छछूँदर। (८) गिलहरी। चिखुरा।

वि० चंचल। चपल।

चिकुला–संज्ञा पुं० [सं० चिकुर ?] चिड़िया का बच्चा।

चिकूर–संज्ञा पुं० दे० "चिकुर"।

चिकोटी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चुटकी", "चिमटी"

चिक्क–वि० [सं०] चिपटी नाकवाला।

संज्ञा पुं० छछूँदर।

चिक्कट–संज्ञा पुं० [हिं० चिकना + कीट वा काट] गर्द, तेल आदि का मैल जो कहीं जम गया हो। कीट।

वि० जिस पर मैल जमा हो। मैला कुचैला। गंदा।

चिक्कण–वि० [सं०] चिकना।

संज्ञा पुं० (१) सुपारी का पेड़ वा फल। (२) हड़। हर्रे। (३) आयुर्वेद में पाक वा आँच की तीन अवस्थाओं में से एक। कुछ तेज आँच।

चिक्कणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी।

चिक्कणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुपारी। (२) हड़।

चिक्कदेव–संज्ञा पुं० [सं०] मैसूर के एक यादववंशी राजा का नाम जिसने ई० १६७२ से लेकर १७०४ तक राज्य किया था।

चिक्कन†–वि० दे० "चिकना", "चिक्कण"।

चिक्करना–क्रि० अ० [सं० चीत्कार] चीत्कार करना। चिंघाड़ना। चीखना। जोर से चिल्लाना। उ०—चिक्करहिं दिग्गज, डोल महि, अहि, कोल, कूरम कलमले।—तुलसी।

चिक्कस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जौ का आटा। (२) हलदी और तेल मिला हुआ जौ का आटा जो जनेऊ या ब्याह में उबटन की तरह मला जाता है।

संज्ञा पुं० [देश०] लोहे पीतल आदि के छड़ का बना हुआ वह अड्डा जिस पर बुलबुल, तोते आदि बैठाए जाते हैं।

चिक्का–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी।

संज्ञा पुं० † दे० "चक्का"।

संज्ञा पुं० † [सं०] चूहा। मूसा।

चिक्कार–संज्ञा पुं० दे० "चिकार"।

चिक्कारा–संज्ञा पुं० दे० "चिकारा (२)"।

चिक्किर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चूहा जिसके काटने से सूजन और सिर में पीड़ा आदि होती है। (२) चिखुरा। गिलहरी।

चिखर†–संज्ञा पुं० [देश०] चने का छिलका। चने की भूसी। चने की कराई।

चिखुरन–संज्ञा स्त्री० [देश०] वह घास जो खेत को निरा कर निकाली जाती है।

चिखुरना–क्रि० स० [देश०] जोते हुए खेत में से घास निकाल कर बाहर करना।

चिखुरा†–संज्ञा पुं० [सं० चिक्किर वा चिकुर] [स्त्री० चिखुरी] गिलहरी।

चिखुराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिखुरना] (१) चिखुरने का काम या भाव। (२) चिखुरने की मजदूरी।

चिखुरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिखुरा] गिलहरी।

चिखौनी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चीखना] (१) चीखने वा चखने की क्रिया। स्वाद लेने वा देखने की क्रिया। (२) चखने की वस्तु। स्वाद लेने की वस्तु। चटपटे स्वाद की थोड़ी सी वस्तु।

चिचड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) डेढ़, दो हाथ ऊँचा एक पौधा जिसमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं। गाँठों के दोनों ओर पतली टहनियाँ या पत्तियाँ लगी होती हैं। पत्तियाँ दो तीन अंगुल लंबी, नसदार और गोल होती हैं। फूल और बीज लंबी लंबी सींकों में गुच्छे होते हैं। बीज ज़ीरे के आकार के होते हैं और कुछ नुकीले और रोएँदार होने के कारण कपड़ों में कभी कभी लिपट जाते हैं। इस पौधे की जड़ मूसला होती है। इसकी जड़, पत्ती आदि सब दवा के काम में आती है। ऋषि-पंचमी का व्रत रहनेवाले इसकी दतुअन करते हैं। कर्मकांडी इसे बहुत पवित्र मानते हैं। यह पौधा बरसात में और घासों के साथ उगता है और बहुत दिनों तक रहता है।

पर्य्या०—अपामार्ग। ओंगा। अंझाझार। लटजीरा।

(२) किलनी या किल्ली नाम का कीड़ा जो पशुओं के शरीर में चिमट कर उनका रक्त पीता है।

चिचड़ी–संज्ञा स्त्री० [?] एक कीड़ा जो चौपायों तथा कुत्तों बिल्लियों के शरीर में चिमटा रहता है और उनका ख़ून पिया करता है। किलनी। किल्ली।

मुहा०—चिचड़ी सा चिमटना = पीछा न छोड़ना। साथ में बना रहना। पिंड न छोड़ना।

चिचान*–संज्ञा पुं० [सं० सचान] बाज़ पक्षी। उ०—आज कालि पल छिनक में मारग मेला हित। काल चिचाना नर चिड़ा औजड़ औ औचिंत।—कबीर।

चिचिंगा–संज्ञा पुं० दे० "चचींड़ा"।

चिचिंड–संज्ञा पुं० [सं०] चचींड़ा। चिचिंडा।

चिचिंडा–संज्ञा पुं० दे० "चचींड़ा"।

चिचियाना†–क्रि० अ० [अनु० चीं चीं] चिल्लाना। चीखना। हल्ला करना।

चिचियाहट†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिचियाना] चिल्लाहट।

चिचुकना–क्रि० अ० दे० "चुचुकना"।

चिचेंडा†–संज्ञा पुं० दे० "चचींडा"।

चिचोड़ना†–क्रि० सं० दे० "चचोड़ना"।

चिचोड़वाना–क्रि० स० दे० "चचोड़वाना"।

चिच्छल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक देश का नाम (२) उस देश का निवासी।

चिजारा—संज्ञा पुं० [?] कारीगर। मेमार। उ०—(क) कबिरा देवल ढहि परा, भई ईंट सँहार। कोई चिजारा चूनिया, मिला न दूजी बार।—कबीर। (ख) करी चिजारा प्रीतड़ी ज्यों ढहै न दूजी बार।

चिट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीड़ना] (१) कागज का टुकड़ा। (२) पुरज़ा। रुक्का। छोटा पत्र। (३) कपड़े आदि का छोटा टुकड़ा।

क्रि० प्र०—निकलना।—फटना।

चिटकना—क्रि० अ० [अनु०] (१) सूख कर जगह जगह पर फटना। खरा हो कर दरकना। रुखाई के कारण ऊपरी सतह में दराज पड़ना। जैसे, चौकी धूप में मत रक्खो, चिटक जायगी। (२) गठीली लकड़ी आदि का जलते समय 'चिट चिट' शब्द करना। (३) चिढ़ना। चिड़चिड़ाना। बिगड़ना। जैसे, तुम्हें तो मैं कुछ कहता नहीं, तुम क्यों चिड़चिड़ाते हो।

चिटका†—संज्ञा पुं० [हिं० चिता] चिता।

चिटकाना—क्रि० स० [अनु०] (१) किसी सूखी हुई चीज़ को तोड़ना या तड़काना। (२) गठीली लकड़ी आदि को जला कर उसमें से "चट चट" शब्द उत्पन्न करना। (३) खिझाना। ऐसी बात कहना जिससे कोई चिढ़े।

चिटनवीस—संज्ञा पुं० [हिं० चिट + फ़ा० नवीस] चिट्ठी पत्री, हिसाब किताब लिखनेवाला। लेखक। मुहर्रिर। कारिंदा।

चिटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रसार के अनुसार चांडाल वेषधारिणी योगिनी जिसकी उपासना वशीकरण के लिये की जाती है।

चिटुकी†—संज्ञा स्त्री० दे० "चुटकी"।

चिट्ट—संज्ञा स्त्री० दे० "चिट"।

चिट्टा—वि० [सं० सित, प्रा० चित्त] [स्त्री० चिट्टी] सफ़ेद। धवला। श्वेत।

संज्ञा पुं० कुछ विशेष प्रकार की मछलियों के ऊपर का सीप के आकार का बहुत सफ़ेद छिलका या पपड़ी। यह दुअन्नी से ले कर रुपए तक के बराबर होता है और इससे रेशम के लिये माँड़ी तैयार की जाती है।

संज्ञा पुं० रुपया। (दलाल)

संज्ञा पुं० [?] झूठा बढ़ावा। वह उत्तेजना जो किसी को कोई ऐसा काम करने के लिये दी जाय जिसमें उसकी हानि वा हँसी हो।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—चिट्टा लड़ाना = झूठा बढ़ावा देना।

चिट्ठा—संज्ञा पुं० [हिं० चिट] (१) हिसाब की बही। खाता। लेखा। जमा खर्च वा लेन देन की किताब।

मुहा०—चिट्ठा बाँधना = लेखा तैयार करना।

(२) वह कागज़ जिस पर वर्ष भर का हिसाब जाँच कर नफ़ा नुकसान दिखाया जाता है। फ़र्द। (३) किसी रकम की सिलसिलेवार फिहरिस्त। सूची। टिकी। जैसे, चंदे का चिट्ठा। उ०—चिट्ठा सकल नरेसन केरे। आवहिँ चले दुशासन नेरे।—सबल। (४) वह रुपया जो प्रति दिन, प्रति सप्ताह वा प्रति मास मजदूरी वा तनख़ाह के रूप में बाँटा जाय। उ०—दिय चिट्ठा चाकरी चुकाई। बसे सबै सेवा मन लाई।—कबीर।

क्रि० प्र०—चुकाना।—बँटना।—बाँटना।

(५) खर्च की फिहरिस्त। उन वस्तुओं की मूल्य सहित सूची जो किसी कार्य्य के लिये आवश्यक हों। लगनेवाले खर्च का ब्योरा। जैसे, इस मकान में तुम्हारा अधिक नहीं लगेगा, बस २००) का चिट्ठा है। (६) ब्योरा। विवरण।

मुहा०—कच्चा चिट्ठा = पूरा और ठीक ठीक गुप्त वृत्तांत। ऐसा सविस्तर वृत्तांत जिसमें कोई बात छिपाई न गई हो। कच्चा चिट्ठा खोलना = गुप्त बातों को पूरे ब्योरे के साथ प्रकट करना। गुप्त वृत्तांत कहना। रहस्य उद्घाटित करना।

(७) रसद। सीधा जो बाँटा जाय।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—बँटना।—बाँटना।—मिलना।

चिट्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० चिट] (१) वह कागज़ जिस पर, एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिये, किसी प्रकार का समाचार आदि लिखा हो। पत्र। ख़त।

क्रि० प्र०—देना।—भेजना।—मँगाना।—पढ़ना, आदि।

यौ०—चिट्ठीरसाँ।

(२) वह छोटा पुरज़ा जो किसी माल विशेषतः कपड़े आदि के साथ रहता है और जिस पर उस माल का दाम लिखा रहता है। (३) कोई छोटा पुरजा या कागज़ जिस पर कुछ लिखा हो। (४) एक क्रिया जिसके द्वारा यह निश्चय किया जाता है कि कोई माल पाने या कोई काम करने का अधिकारी कौन बनाया जाय।

विशेष—जितने आदमी अधिकारी बनाने के योग्य होते हैं उन सब के नाम या संकेत अलग अलग कागज़ के छोटे टुकड़ों पर लिख कर उनकी गोलियाँ एक में मिला कर उनमें से कोई गोली उठा ली जाती है। जिसके नाम की गोली होती है वही उस माल के पाने या उस काम के करने का अधिकारी समझा जाता है। इस क्रिया से लोग प्रायः यह भी निश्चय किया करते हैं कि कोई काम (जैसे, विवाह आदि) करना चाहिए या नहीं।

क्रि॰ प्र॰—उठाना।—डालना।—पड़ना।

(५) किसी बात का आज्ञा-पत्र।

मुहा॰—चिट्ठी करना = किसी के नाम की हुंडी करना। किसी को रुपए दे देने की लिखित आज्ञा देना।

(६) किसी प्रकार का निमंत्रण-पत्र।

क्रि॰ प्र॰—बँटना।

चिट्ठीपत्री-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चिट्ठी + पत्री] (१) पत्र। ख़त। जैसे, वहाँ से कोई चिट्ठीपत्री आती है? (२) पत्र-व्यवहार। ख़त किताबत। जैसे, आप से उनसे चिट्ठीपत्री है।

क्रि॰ प्र॰—होना।

चिट्ठीरसाँ-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चिट्ठी + फा॰ रसाँ] चिट्ठी बाँटनेवाला। डाकिया। हरकारा। पोस्टमैन।

चिड़चिड़ा-संज्ञा पुं॰ दे॰ "चिचड़ा"।

संज्ञा पुं॰ [अनु॰] एक छोटा पक्षी जिसका रंग भूरा होता है।

वि॰ [हिं॰ चिड़चिड़ाना] शीघ्र चिढ़नेवाला। थोड़ी सी बात पर अप्रसन्न हो जानेवाला। तुनक मिज़ाज। जैसे, चिड़चिड़ा आदमी, चिड़चिड़ा स्वभाव।

चिड़चिड़ाना-क्रि॰ अ॰ [अनु॰] (१) गठीली लकड़ी, पानी मिले हुए तेल आदि के जलने में चिड़चिड़ शब्द होना। (२) सूख कर जगह जगह से फटना। खरा होकर दरकना। रुखाई के कारण ऊपरी सतह का पपड़ी की तरह हो जाना। जैसे, जाड़े की हवा से ओंठ चिड़चिड़ाना, रुखाई से बदन चिड़चिड़ाना।

संयो॰ क्रि॰—जाना।

(३) चिढ़ना। बिगड़ना। क्रोध लिए हुए बोलना। झुँझलाना।

संयो॰ क्रि॰—उठना।

चिड़चिड़ाहट-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चिड़चिड़ाना + हट (प्रत्य॰)] (१) चिड़चिड़ाने का भाव। (२) चिढ़ने का भाव।

चिड़वा-संज्ञा पुं॰ [सं॰ चिपिट] हरे, भिगोए, या कुछ उबाले हुए धान को भाड़ में भून कर और फिर कूट कर बनाया हुआ चिपटा दाना। चिउड़ा। (बहु॰ में "चिड़वे" अधिक बोलते हैं।)

विशेष—इसे लोग सूखा तथा दूध, दही में भिगो कर भी खाते हैं।

चिड़ा-संज्ञा पुं॰ [सं॰ चटक] गौरा पक्षी। गौरैया का नर।

चिड़ारा-संज्ञा पुं॰ [देश] नीची ज़मीन का खेत जिसमें जड़हन बोया जाता है। डबरी।

चिड़िया-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ चटक, हिं॰ चिड़ा] (१) आकाश में उड़नेवाला जीव। वह प्राणी जिसे ऊपर उड़ने के लिये पर हों। पक्षी। पखेरू। पंछी।

यौ॰—चिड़ियाख़ाना।

मुहा॰—चिड़िया का दूध = अप्राप्य वस्तु। अलभ्य वस्तु। ऐसी वस्तु जिसका होना असंभव हो। चिड़िया के छिनाले में पकड़ा जाना = व्यर्थ की आपत्ति में फँसना। नाहक झंझट में पड़ना। चिड़िया-नोचन = चारों ओर का तक़ाज़ा। चारों ओर की माँग। बहुत से लोगों का किसी बात के लिये अनुरोध वा दबाव। जैसे—घर से रुपया आ जाता तो हम इस चिड़िया-नोचन से छुट्टी पाते। चिड़िया फँसाना = (१) किसी स्त्री को बहका कर सहवास के लिये राज़ी करना। (अशिष्ट)। (२) किसी देनेवाले धनी आदमी को अपने अनुकूल करना। किसी मालदार को दाँव पर चढ़ाना। सोने की चिड़िया = (१) ख़ूब धन देनेवाला असामी। (२) अत्यंत सुंदर वा प्रिय व्यक्ति।

(२) अँगिया की वह सीवन जिससे कटोरियाँ मिली रहती हैं। (३) चिड़िया के आकार का गढ़ा हुआ काठ का टुकड़ा जो टेक देने के लिये कहारों की लकड़ी, लँगड़ों की बैसाखी, मकानों के खंभों आदि पर लगा रहता है। आड़ा लगा हुआ काठ का टेढ़ा टुकड़ा जिसका एक सिरा ऊपर की ओर चिड़िया की गरदन की तरह उठा हो। (४) पायजामे वा लहँगे का वह नली की तरह का पोला भाग जिसमें इज़ारबंद वा नाला पड़ा रहता है। (५) ताश का एक रंग जिसमें तीन गोल पखड़ियों की बूटी बनी होती है। चिड़ी। (६) लोहे का टेढ़ा अँकुड़ा जो तराज़ू की डांड़ी में लगा रहता है। (७) गाड़ी में लगा हुआ लोहे का टेढ़ा कोंढ़ा या अँकुड़ा जिसमें रस्सी लगा कर पैंजनी बांधते हैं। (८) एक प्रकार की सिलाई जिसमें पहले कपड़े आदि के दोनों पल्लों को सीकर तब सिलाई की ओरवाले उनके दोनों सिरों को अलग अलग उन्हीं पल्लों पर उलट कर इस प्रकार बखिया कर देते हैं कि उसमें एक प्रकार की बेल सी बन जाती है।

चिड़ियाख़ाना-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चिड़िया + फा॰ ख़ाना] वह स्थान वा घर जिसमें अनेक प्रकार के पक्षी और पशु आदि देखने के लिये रखे जाते हैं। पक्षिशाला।

चिड़ियावाला-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चिड़िया + वाला] उल्लू। गावदी। मूर्ख। जड़। (बाज़ारू)

चिड़िहार*-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चिड़िया + हार (प्रत्य॰)] चिड़ीमार। बहेलिया। चिड़िया पकड़नेवाला। व्याध।

चिड़ी-संज्ञा स्त्री॰ (१) दे॰ "चिड़िया"। (२) ताश का एक रंग जिसमें तीन गोल पखड़ियों की काली बूटी बनी रहती है।

चिड़ीमार-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चिड़ी + मारना] बहेलिया। चिड़िया पकड़नेवाला। व्याध।

चिढ़-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चिड़चिड़ाना] चिढ़ने का भाव। क्रोध लिए हुए घृणा। विरक्ति। अप्रसन्नता। कुढ़न। खिजलाहट। नफ़रत। उ॰—मुझे ऐसी बातों से बड़ी चिढ़ है।

मुहा॰—चिढ़ निकालना = ढूँढ़ कर ऐसी बात कहना जिससे कोई चिढ़े। चिढ़ाने की युक्ति निकालना। छेड़ने का ढंग

निकालना। कुढ़ाना। खिझाना। उ०—यदि इस बात से इतना चिढ़ोगे तो लड़के चिढ़ निकाल लेंगे।

चिढ़कना–क्रि० अ० दे० "चिढ़ना"।

चिढ़काना†–क्रि० स० दे० "चिढ़ाना"।

चिढ़ना–क्रि० अ० [हिं० चिड़चिड़ाना] (१) अप्रसन्न होना। विरक्त होना। खिन्न होना। नाराज़ होना। बिगड़ना। कुढ़ना। खीजना। झल्लाना। उ०—(क) तुम थोड़ी सी बात पर भी क्यों चिढ़ जाते हो।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

(२) द्वेष रखना। बुरा मानना। उ०—न जाने क्यों मुझसे वह बहुत चिढ़ता है।

चिढ़वाना–क्रि० स० [चिढ़ाना का प्रे०] दूसरे से चिढ़ाने का काम कराना।

चिढ़ाना–क्रि० स० [हिं० चिढ़ना] (१) अप्रसन्न करना। नाराज़ करना। खिझाना। कुढ़ाना। कुपित और खिन्न करना। उ०—ऐसी बात कह कर मुझे बार बार क्यों चिढ़ाते हो?

संयो० क्रि०—देना।

(२) किसी को कुढ़ाने के लिये मुहँ बनाना, हाथ चमकाना या इसी प्रकार की और कोई चेष्टा करना। खिझाने के लिये किसी की आकृति, चेष्टा, वा ढंग की नकल करना।

मुहा०—मुहँ चिढ़ाना = किसी को छेड़ने वा खिजाने के लिये विलक्षण आकृति बनाना। बिराना।

(३) कोई ऐसा प्रसंग छेड़ना जिसे सुन कर कोई लज्जित हो। कोई ऐसी बात कहना वा ऐसा काम करना जिससे किसी को अपनी असफलता, अपमान आदि का स्मरण हो। उपहास करना। ठट्ठा करना।

चित्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चैतन्य। चेतना। ज्ञान।

यौ०—चिदाकाश। चिदानंद। चिन्मय।

(२) चित्तवृत्ति।

संज्ञा पुं० (१) चुननेवाला। बीननेवाला। इकट्ठा करनेवाला। (२) अग्नि।

प्रत्य० [सं०] संस्कृत का एक अनिश्चयवाचक प्रत्यय जो कः किम् आदि सर्वनाम शब्दों में लगता है। जैसे, कश्चित्, किंचित्।

चित—वि० [सं०] (१) चुन कर इकट्ठा किया हुआ। ढेर करके लगाया हुआ। (२) ढका हुआ। आच्छादित।

संज्ञा पुं० [सं० चित्त] चित्त। मन। दे० "चित्त"।

*संज्ञा पुं० [हिं० चितवन] चितवन। दृष्टि। नज़र। उ०—चित जानकी अध कौं कियो। हरि तीन द्वै अवलोकियो।—केशव।

वि० [सं० चित = ढेर किया हुआ] इस प्रकार पड़ा हुआ कि मुँह, पेट आदि शरीर का अगला भाग ऊपर की ओर हो और पीठ, चूतड़ आदि पीछे का भाग नीचे की ओर किसी आधार से लगा हो। पीठ के बल पड़ा हुआ। 'पट' वा 'औंधा' का उलटा। जैसे, चित कौड़ी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—चितपट।

मुहा०—चित करना = कुश्ती में पछाड़ना। कुश्ती में पटकना। चारों खाने (या शाने) चित = (१) हाथ पैर फैलाए बिलकुल पीठ के बल पड़ा हुआ। (२) हक्का बक्का। स्तंभित। ठक। जड़ीभूत। चित होना = बेसुध होकर पड़ जाना। बेहोश होना। उ०—इतनी भाँग में तो तुम चित हो जाओगे।

क्रि० वि० पीठ के बल। जैसे, चित गिरना, चित पड़ना, चित लेटना।

चितउर *–संज्ञा पुं० दे० "चित्तौर"।

चितकबरा–वि० [सं० चित्र + कर्बुर] [स्त्री० चितकबरी] सफ़ेद रंग पर काले, लाल वा पीले दाग़वाला। काले, पीले या और किसी रंग पर सफ़ेद दाग़वाला। रंग बिरंगा। कबरा। चितला। शबल।

विशेष—दे० "कबरा"।

संज्ञा पुं० चितकबरा रंग।

चितकूट *–संज्ञा पुं० दे० "चित्रकूट"।

चितगुपित *–संज्ञा पुं० दे० "चित्रगुप्त"।

चितचोर–संज्ञा पुं० [हिं० चित + चोर] चित्त को चुरानेवाला। जी को लुभानेवाला। मनोहर। मनभावना। मन को आकर्षित करनेवाला। प्यारा। प्रिय।

चितपट–संज्ञा पुं० [हिं० चित + पट] (१) एक प्रकार का खेल वा बाज़ी जिसमें किसी फेंकी हुई वस्तु के चित वा पट पड़ने पर हार जीत का निश्चय होता है। (लोग प्रायः कौड़ी, पैसा, जूता आदि फेंकते हैं।) (२) कुश्ती। मल्लयुद्ध।

चितबाहु–संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक। उ०—आविद्ध निर्मर्याद कुल चितबाहु निस्सृत रिपु दुखै।—रघुराज।

चितभंग–संज्ञा पुं० [सं० चित्त + भंग] (१) ध्यान न लगना। उचाट। उदासी। उ०—(क) मेरो मन हरि चितवन अरुझानो। यह रस-मगन रहति निसि बासर हार जीत नहिं जानो। सूरदास चितभंग होत क्यों जो जेहि रूप समानो।—सूर। (ख) कमल, खंजन, मीन मधुकर होत है चितभंग।—सूर। (ग) देव मान मन भंग चितभंग मद क्रोध लोभादि पर्वत दुर्ग भुवन भर्त्ता।—तुलसी। (२) बुद्धि का लोप। होश का ठिकाने न रहना। मति-भ्रम। भौचक्कापन। चकपकाहट।

चितरना *–क्रि० स० [सं० चित्र] चित्रित करना। चित्र बनाना। नक्काशी करना। बेल बूटे बनाना।

चितरवा–संज्ञा पुं० [सं० चित्रक] एक चिड़िया जिसका रंग ईंट का सा लाल होता है। इसके डैनों पर काली काली चित्तियाँ पड़ी होती हैं और आँखें अनारदाने के समान सफ़ेद और लाल होती हैं।

चितरोख–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया का नाम। चितरवा। उ०—धौरी पांडुक कहि पिय ठाऊँ। जो चितरोखन दूसर नाऊँ।—जायसी।

चितला–वि० [सं० चित्रल] कबरा। चितकबरा। रंग बिरंगा। संज्ञा पुं० (१) लखनऊ का एक प्रकार का ख़रबूज़ा जिस पर चित्तियाँ पड़ी होती हैं। (२) एक प्रकार की बड़ी मछली जो लंबाई में तीन चार हाथ और तौल में डेढ़ दो मन होती है। इसकी पीठ बहुत उठी हुई होती है और उस पर पूँछ के पास पर होते हैं। इसमें काँटे बहुत होते हैं। गले से लेकर पेट के नीचे तक ४१ काँटों की पंक्ति होती है। इस मछली की पीठ का रंग कुछ मटमैला और तामड़ा और बग़ल का चाँदी की तरह सफ़ेद होता है। यह मछली बंगाल, उड़ीसा, आसाम और सिंध में होती है। इसमें से तेल बहुत अधिक निकलता है जो खाने और जलाने के काम में आता है।

चितवन–संज्ञा स्त्री० [हिं० चेतना] ताकने का भाव वा ढंग। अवलोकन। दृष्टि। कटाक्ष। नज़र। निगाह। उ०—(क) चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। तिलक रेख शोभा जनु चाँकी।—तुलसी। (ख) तुलसिदास पुनि भरेइ देखियत राम कृपा चितवनि चितये।—तुलसी। (ग) अनियारे दीरघ दृगनि किती न तरुनि समान। वह चितवनि औरै कछू जिहि बस होत सुजान।—बिहारी।

मुहा०—चितवन चढ़ाना = त्योरी चढ़ाना। भौं चढ़ाना। कुपित दृष्टि करना। क्रोध की दृष्टि से देखना।

चितवना †*–क्रि० स० [हिं० चेतना] देखना। ताकना। निगाह करना। अवलोकन करना। दृष्टि डालना। उ०—(क) चितवति चकित चहूँ दिसि सीता।—तुलसी। (ख) सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।—तुलसी।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

चितवनि †*–संज्ञा स्त्री० दे० "चितवन"।

चितवाना †*–क्रि० स० [हिं० चितवना का प्रे०] दिखाना। तकाना। उ०—चितवो चितवाए हँसाए हँसो औ बोलाए से बोलो रहै मति मैने।—केशव।

चिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चुन कर रक्खी हुई लकड़ियों का ढेर जिस पर रख कर मुरदा जलाया जाता है। मृतक के शवदाह के लिये बिछाई हुई लकड़ियों की राशि।

क्रि० प्र०—बनाना।—लगाना।

पर्य्या०—चित्या। चिति। चैत्य। काष्ठमठी।

यौ०—चितापिंड = वह पिंडदान जो शवदाह के उपरांत होता है।

मुहा०—चिता चुनना = शवदाह के लिये लकड़ियों को नीचे ऊपर क्रम से रखना। चिता साजना। चिता तैयार करना। चिता पर चढ़ना = मरना। चिता में बैठना = सती होने के लिये विधवा का मृत पति की चिता में बैठना। मृत पति के शरीर के साथ जलना। सती होना। चिता साजना = दे० = "चिता चुनना।"

(२) श्मशान। मरघट। उ०—भीख माँगि भव खाहिँ चिता नित सोवहिँ। नाचहिँ नगन पिशाच, पिसाचिन जोवहिँ।—तुलसी।

चिताना–क्रि० स० [हिं० चेतना] (१) सचेत करना। सावधान करना। होशियार करना। ख़बरदार करना। किसी आवश्यक विषय की ओर ध्यान दिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) स्मरण कराना। याद दिलाना। सुध दिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

(३) आत्मबोध कराना। ज्ञानोपदेश करना। (४) (आग) जगाना। (आग) सुलगाना। जलाना। (साधु)।

चिताभूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्मशान।

चितारी †–संज्ञा पुं० दे० "चितेरा"।

चितावनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिताना] चिताने की क्रिया। सतर्क वा सावधान करने की क्रिया। वह सूचना जो किसी को किसी आवश्यक विषय की ओर ध्यान देने के लिये दी जाय। सावधान रहने की पूर्व-सूचना।

क्रि० प्र०—देना।

चितासाधन–संज्ञा पुं० [सं०] तंत्रसार के अनुसार चिता वा श्मशान के ऊपर बैठ कर इष्ट मंत्र का अनुष्ठान जो चतुर्दशी वा अष्टमी को डेढ़ पहर रात गए किया जाता है।

चिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चिता। (२) समूह। ढेर। (३) चुनने वा इकट्ठा करने की क्रिया। चुनाई। (४) शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अग्नि का एक संस्कार। (५) यज्ञ में ईंटों का एक संस्कार। इष्टक संस्कार। (६) दीवार में ईंटों की चुनाई।। ईंटों की जोड़ाई। (७) चैतन्य। (८) दुर्गा। (९) दे० "चित्ती"।

चितिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) करधनी। मेखला। (२) दे० "चिति"

चितिया गुड़–संज्ञा पुं० [देश०] खजूर की चीनी की जूसी से जमाया हुआ गुड़।

चितिव्यवहार–संज्ञा पुं० [सं०] गणित की वह क्रिया जिसके द्वारा किसी दीवार या मकान में लगनेवाली ईंटों या पटियों की संख्या और नाप आदि का निश्चय होता है।

विशेष—लीलावती के अनुसार दीवार का क्षेत्रफल निकाल

कर उसमें ईंट के क्षेत्रफल का भाग देने से जो फल होगा वही ईंटों की संख्या होगी। इसी प्रकार की और और क्रियाएँ स्तर आदि निकालने के लिये हैं।

चितु *-संज्ञा पुं० दे० "चित्त"

चितेरा-संज्ञा पुं० [सं० चित्रकार] [स्त्री० चितेरिन] चित्रकार। चित्र बनानेवाला। तसवीर खींचनेवाला। मुसौवर। कमंगर। उ०—चकित भईं देखैं ढिंग ठाढ़ी। मनो चितेरे लिखि लिखि काढ़ी।—सूर।

चितेरिन, चितेरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चितेरा] (१) चित्र बनानेवाली स्त्री। (२) चित्रकार की स्त्री।

चितैला †-संज्ञा पुं० दे० "चितेरा"।

चितौन-संज्ञा स्त्री० दे० "चितवन"।

चितौना†-क्रि० स० "दे० चितवना"।

चितौनि-संज्ञा स्त्री० दे० "चितवन"।

चितौनी-संज्ञा स्त्री० दे० "चितावनी"।

चित्कार-संज्ञा पुं० दे० "चीत्कार"।

चित्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंतःकरण का एक भेद। अंतःकरण की एक वृत्ति।

विशेष—वेदांतसार के अनुसार अंतःकरण की चार वृत्तियाँ हैं—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। संकल्प विकल्पात्मक वृत्ति को मन, निश्चयात्मक वृत्ति को बुद्धि और इन्हीं दोनों के अंतर्गत अनुसंधानात्मक वृत्ति को चित्त और अभिमानात्मक वृत्ति को अहंकार कहते हैं। पंचदशी में इंद्रियों के नियंता मन ही को अंतःकरण माना है। आंतरिक व्यापार में मन स्वतंत्र है पर बाह्य व्यापार में इंद्रियाँ परतंत्र हैं। पंचभूतों की गुणसमष्टि से अंतःकरण उत्पन्न होता है जिसकी दो वृत्तियाँ हैं, मन और बुद्धि। मन संशयात्मक और बुद्धि निश्चयात्मक है। वेदांत में प्राण को मन का कारण कहा है। मृत्यु होने पर मन इसी प्राण में लय हो जाता है। इस पर शंकराचार्य्य कहते हैं कि प्राण में मन की वृत्ति लय हो जाती है, उसका स्वरूप नहीं। क्षणिकवादी बौद्ध चित्त ही को आत्मा मानते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार अग्नि अपने को प्रकाशित करके दूसरी वस्तु को भी प्रकाशित करती है उसी प्रकार चित्त भी करता है। बौद्ध लोग चित्त के चार भेद करते हैं—कामावचर, रूपावचर, अरूपावचर और लोकोत्तर। चार्वाक के मत से भी मन ही आत्मा है। योग के आचार्य्य पतंजलि चित्त को स्वप्रकाश नहीं स्वीकार करते। वे चित्त को दृश्य और जड़ पदार्थ मान कर उसका एक अलग प्रकाशक मानते हैं जिसे आत्मा कहते हैं। उनके विचार में प्रकाश्य और प्रकाशक के संयोग से प्रकाश होता है, अतः कोई वस्तु अपने ही साथ संयोग नहीं कर सकती। योगसूत्र के अनुसार चित्तवृत्ति पाँच प्रकार की है—प्रमाण, विपर्य्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—प्रमाण; एक में दूसरे का भ्रम—विपर्य्यय; स्वरूप ज्ञान के बिना कल्पना—विकल्प; सब विषयों के अभाव का बोध—निद्रा और कालांतर में पूर्व अनुभव का आरोप—स्मृति कहलाता है। पंचदशी तथा और दार्शनिक ग्रंथों में मन वा चित्त का स्थान हृदय वा हृत्पद्म गोलक लिखा है। पर आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान अंतःकरण के सारे व्यापारों का स्थान मस्तिष्क में मानता है जो कि सब ज्ञानतंतुओं का केंद्रस्थान है। खोपड़ी के भीतर जो टेढ़ी मेढ़ी गुरियों की सी बनावट होती है वही अंतःकरण है। उसी के सूक्ष्म मज्जा-तंतुजाल और कोशों की क्रिया द्वारा सारे मानसिक व्यापार होते हैं। भूतवादी वैज्ञानिकों के मत से चित्त, मन वा आत्मा कोई पृथक् वस्तु नहीं है, केवल व्यापार-विशेष का नाम है, जो छोटे जीवों में बहुत ही अल्प परिमाण में होता है और बड़े जीवों में क्रमशः बढ़ता जाता है। इस व्यापार का प्राणरस (प्रोटोप्लाज़्म) के कुछ विकारों के साथ नित्य संबंध है। प्राण-रस के ये विकार अत्यंत निम्नश्रेणी के जीवों में प्रायः शरीर भर में होते हैं पर उच्च प्राणियों में क्रमशः इन विकारों के लिये विशेष स्थान नियत होते जाते हैं और उनसे इंद्रियों और मस्तिष्क की सृष्टि होती है।

(२) अंतःकरण। जी। मन। दिल। वह मानसिक शक्ति जिससे धारण, भावना आदि की जाती है।

मुहा०—चित्त उचटना = जी न लगना। विरक्ति होना। **चित्त करना** = इच्छा होना। जी चाहना। उ०—ऐसा चित्त करता है कि यहाँ से चल दें। **चित्त चढ़ना** = दे० "चित्त पर चढ़ना।" उ०—तब चित चढ़यो जो शंकर कहेऊ।—तुलसी। **चित्त चुराना** = मन मोहना। मोहित करना। चित्त आकर्षित करना। उ०—नैन सैन दै चितहिँ चुरावति यहै मंत्र टोना सिर डारि।—सूर। **चित्त देना** = ध्यान देना। मन लगाना। गौर करना। उ०—चित दै सुनो हमारी बात।—सूर। **चित्त धरना** = (१) ध्यान देना। मन लगाना। उ०—कहौं सो कथा सुनौ चित धार। कहै सुनै सो लहै सुख सार।—सूर। (२) मन में लाना। उ०—हमारे प्रभु अवगुन चित न धरौ।—सूर। **चित्त पर चढ़ना** = (१) ध्यान पर चढ़ना। मन में बसना। बार बार ध्यान में आना। उ०—तुम्हारे तो वही चित्त पर चढ़ा हुआ है। (२) ध्यान में आना। स्मरण होना। याद पड़ना। **चित्त बँटना** = चित्त एकाग्र न रहना। ध्यान दो ओर हो जाना। एक विषय की ओर ध्यान स्थिर न रहना। ध्यान इधर उधर होना। **चित्त बँटाना** = ध्यान इधर उधर करना। ध्यान एक ओर न रहने देना। **चित्त में धँसना वा जमना** = दे० "चित्त में बैठना"। **चित्त में बैठना** = जी में जमना। हृदय में दृढ़ होना। मन में धँसना। हृदयंगम होना। उ०—अब हमारे चित बैठ्यो यह पद होनी होउ सो होउ।—

सूर। चित्त में होना, वा चित्त होना = इच्छा होना। जी चाहना। उ०—यह चित होत जाउँ मैं अबहीं यहाँ नहीं मन लागत।—सूर। चित्त लगना = मन लगना। जी न घबड़ाना। जी न ऊबना। मन की प्रवृत्ति स्थिर रहना। उ० = (क) काम में तुम्हारा चित्त नहीं लगता। (ख) अब यहाँ हमारा चित्त नहीं लगता है। चित्त लेना = इच्छा होना। जी चाहना। उ०—अपना चित्त ले चले जाओ। चित्त से उतरना = (१) ध्यान में न रहना। भूल जाना। उ०—सूर श्याम चित तें नहिं उतरत वह बन कुंज थली।—सूर। (२) दृष्टि से गिरना। प्रिय वा आदरणीय न रह जाना। विरक्तिभाजन होना। चित्त से न टलना = ध्यान में बराबर बना रहना। न भूलना। उ०—सूर चित्त तें टरति नाहीं राधिका की प्रीति।—सूर। (३) नृत्य में एक प्रकार की दृष्टि जिसका व्यवहार शृंगार में प्रसन्नता प्रकट करने के लिये होता है।

विशेष—दे० "चित।"

चित्तगर्भ-वि० [सं०] मनोहर। सुंदर।

चित्तज-संज्ञा पुं० [सं०] (चित्त से उत्पन्न) कामदेव।

चित्तप्रसादन-संज्ञा पुं० [सं०] योग में चित्त का संस्कार जो मैत्री, करुणा, हर्ष, उपेक्षा आदि के उपयुक्त व्यवहार द्वारा होता है। जैसे, किसी को सुखी देख उससे मित्रभाव रखना, दुखी के प्रति करुणा दिखाना, पुण्यवान को देख प्रसन्न होना, पापी के प्रति उपेक्षा रखना। इस प्रकार के साधन से चित्त में राजस और तामस की निवृत्ति हो कर केवल सात्त्विक धर्म का प्रादुर्भाव होता है।

चित्तभू-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

चित्तभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] योग में चित्त की अवस्थाएँ। व्यास के अनुसार ये पाँच हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। क्षिप्त अवस्था वह है जिसमें चित्त रजोगुण के द्वारा सदा अस्थिर रहे, मूढ़ वह है जिसमें चित्त तमोगुण के कारण निद्रायुक्त वा स्तब्ध हो, विक्षिप्त वह है जिसमें चित्त अस्थिर रहे पर कभी कभी स्थिर भी हो जाय, एकाग्र वह है जिसमें चित्त किसी एक विषय की ओर लगा हो। निरुद्ध वह है जिसमें सब वृत्तियों का निरोध हो जाय, केवल संस्कार मात्र रह जाय। इनमें से पहली तीन अवस्थाएँ योग के अनुकूल नहीं हैं। पिछली दो योग वा समाधि के उपयुक्त हैं। समाधि की भी चार भूमियाँ हैं—मधुमती, मधुप्रतीका, विशोका और ऋतंभरा जिनके लिये दे० "समाधि"।

चित्तवान्-वि० [सं०] [स्त्री० चित्तवती] उदार चित्त का।

चित्तविक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] चित्त की चंचलता वा अस्थिरता जो योग में बाधक हैं। इसके नौ भेद हैं—जैसे, व्याधि, स्त्यान (अकर्मण्यता), संशय, प्रमाद (त्रुटि), आलस्य, अविरति (वैराग्य का अभाव), भ्रांतिदर्शन (मिथ्या अनुभव), अलब्ध भूमिकत्व (समाधि की अप्राप्ति), अनवस्थितत्व (चित्त का न टिकना)।

चित्तविद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो चित्त की बात जाने। (२) बौद्ध दर्शन के अनुसार चित्त के भेदों और रहस्यों को जाननेवाला पुरुष।

चित्तविप्लव-संज्ञा पुं० [सं०] उन्माद।

चित्तविभ्रम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भ्रांति। भ्रम। भौचक्कापन। (२) उन्माद।

चित्तवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्त की गति। चित्त की अवस्था।

विशेष—योग में चित्तवृत्ति पाँच प्रकार की मानी गई है—प्रमाण, विपर्य्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। इन सब के भी क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो दो भेद हैं। अविद्या आदि क्लेश-हेतुक वृत्ति क्लिष्ट और उससे भिन्न अक्लिष्ट है।

चित्तल-संज्ञा पुं० [सं०, वा सं० चित्रल] एक प्रकार का मृग। चीतल।

चित्तापहारक-वि० [सं०] मनोहर। सुंदर।

चित्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुद्धिवृत्ति। (२) ख्याति। (३) कर्म। (४) अथर्व ऋषि की पत्नी का नाम।

चित्ती-संज्ञा स्त्री० [सं० चित्र, प्रा० चित्त] (१) छोटा दाग वा चिह्न। छोटा धब्बा। बुँदकी।

यौ०—चित्तीदार = जिस पर दाग़ या धब्बे हों।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—चित्ती पड़ना = बहुत खरी सेंकने के कारण रोटी में स्थान स्थान पर जलने का काला दाग़ पड़ना।

(२) कुम्हार के चाक के किनारे पर का वह गड्ढा जिसमें डंडा डाल कर चाक घुमाया जाता है। (३) मादा लाल। मुनिया। (४) अजगर की जाति का एक मोटा साँप जिसके शरीर पर चित्तियाँ होती हैं। चीतल।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चित = पीठ के बल पड़ा हुआ] वह कौड़ी जिसकी पीठ चिपटी और खुरदरी होती है। टैयाँ।

विशेष—यह फेंकने पर चित अधिक पड़ती है, इसी से इसे चित्ती कहते हैं। जुआरी इससे जूए के दावँ फेंकते हैं। उ०—अंतर्यामी यहौ न जानत जो मो उरहि बिती। ज्यों जुआरि रस बीधि हारि गथ सोचत पटकि चिती।

चित्तौर-संज्ञा पुं० [सं०] [चित्रकूट, प्रा० चित्तऊड़, चितउड़] एक इतिहास प्रसिद्ध प्राचीन नगर जो उदयपुर के महाराणाओं की प्राचीन राजधानी था। अलाउद्दीन के समय में प्रसिद्ध महारानी पद्मावती वा पद्मिनी यहीं कई सहस्र क्षत्राणियों के साथ चिता में भस्म हुई थीं। ऐसा प्रसिद्ध है कि राणाओं के पूर्व-पुरुष बाप्पा रावल ने ही ईसवी सन ७२८ में चित्तौर का गढ़ बनवाया और नगर

बसाया था। सन् १५६८ तक तो मेवाड़ के राणाओं की राजधानी चित्तौर ही रही, उसके पीछे जब अकबर ने चित्तौर का क़िला ले लिया तब महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर नामक नगर बसाया। चित्तौर का गढ़ एक ऊँची पहाड़ी पर है जिसके नीचे चारों ओर प्राचीन नगर के खँडहर दिखाई पड़ते हैं। हिंदूकाल के बहुत से भवन अभी यहाँ टूटे फूटे खड़े हैं। क़िले के भीतर भी बहुत से देवमंदिर, कीर्त्तिस्तंभ, प्रासाद आदि हैं जिनमें राणा कुंभ का कीर्त्तिस्तंभ, खवासिन-स्तंभ, सिंगारचौरी आदि प्रसिद्ध हैं। राणा कुंभ ने संवत् १५०५ में गुजरात और मालवा के सुलतान को परास्त करके यह कीर्त्तिस्तंभ स्मारक स्वरूप बनवाया था। यह १२२ फुट ऊँचा और नौ खंडों का है।

चित्य–वि० [सं०] (१) चुनने वा इकट्ठा करने योग्य। (२) चिता संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) चिता। (२) अग्नि।

चित्र–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चित्रित] (१) तिलक। चंदन आदि से माथे पर बनाया हुआ चिह्न। (२) विविध रंगों के मेल से बनी हुई नाना वस्तुओं की आकृति। किसी वस्तु का स्वरूप वा आकार जो काग़ज़, कपड़े, लकड़ी, शीशे आदि पर क़लम और रंग आदि के द्वारा बनाया गया हो। तसवीर। उ०—(क) चित्र लिखित कपि देखि डराती।—तुलसी। (ख) राम विलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।—तुलसी।

यौ०—चित्रकला। चित्रविद्या।

क्रि० प्र०—उरेहना*।—खींचना।—बनाना।—लिखना।

मुहा०—चित्र उतारना=(१) चित्र बनाना। तसवीर खींचना। (२) वर्णन आदि के द्वारा ठीक ठीक दृश्य सामने उपस्थित कर देना।

(३) काव्य के तीन अंगों में से एक जिसमें व्यंग्य की प्रधानता नहीं रहती। अलंकार। (४) काव्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें पद्यों के अक्षर इस क्रम से लिखे जाते हैं कि हाथी, घोड़े, खड्ग, रथ, कमल आदि के आकार बन जाते हैं। (५) एक प्रकार का वर्णवृत्त जो सामानिका वृत्ति के दो चरणों को मिलाने से बनता है। (६) आकाश। (७) एक प्रकार का कोढ़ जिसमें शरीर में सफ़ेद चित्तियाँ वा दाग़ पड़ जाते हैं। (८) एक यम का नाम। (९) चित्रगुप्त। (१०) रेंड़ का पेड़। (११) अशोक का पेड़। (१२) चीते का पेड़। चित्रक। (१३) धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक।

वि० (१) अद्भुत। विचित्र। आश्चर्यजनक। विस्मयकारी। (२) चितकबरा। कबरा। (३) रंग बिरंगा। कई रंगों का। (४) अनेक प्रकार का। कई तरह का।

चित्रकंठ–संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर। कपोत। परेवा।

चित्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिलक। (२) चीते का पेड़। चित्त। (३) चीता। बाघ। (४) शूर। बलवान्। (५) रेंड़ का पेड़। (६) चिरायता। (७) मुचकुंद का पेड़। (८) चित्रकार।

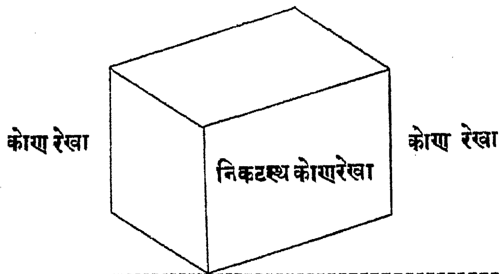
चित्रकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्र बनानेवाला। चित्रकार। (२) ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के अनुसार एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति विश्वकर्मा पुरुष और शूद्रा स्त्री से है। (३) तिनिश का पेड़।

चित्रकर्मी–संज्ञा पुं० [सं० चित्रकर्म्मिन्] (१) चित्रकार। मुसौवर। कमंगर। (२) विचित्र कार्य्य करनेवाला। (३) तिनिश वृक्ष।

चित्रकला–संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्र बनाने की विद्या। तसवीर बनाने का हुनर।

विशेष—चित्रकला का प्रचार चीन, मिस्र, भारत, आदि देशों में अत्यंत प्राचीन काल से है। मिस्र से ही चित्रकला यूनान में गई, जहाँ उसने बहुत उन्नति की। ईसा से १४०० वर्ष पहले मिस्र देश में चित्रों का अच्छा प्रचार था। लंडन के ब्रिटिश म्युज़ियम में ३००० वर्ष तक के पुराने मिस्री चित्र हैं। भारतवर्ष में भी अत्यंत प्राचीन काल से यह विद्या प्रचलित थी। इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। रामायण में चित्रों, चित्रकारों और चित्रशालाओं का वर्णन बराबर आया है। विश्वकर्मीय शिल्पशास्त्र में लिखा है कि स्थापक, तक्षक शिल्पी आदि में से शिल्पी ही को चित्र बनाना चाहिए। प्राकृतिक दृश्यों को अंकित करने में प्राचीन भारतीय चित्रकार कितने निपुण होते थे इसका कुछ आभास भवभूति के उत्तररामचरित के देखने से मिलता है, जिसमें अपने सामने लाए हुए वनवास के चित्रों को देख सीता चकित हो जाती हैं। यद्यपि आज कल कोई ग्रंथ चित्रकला पर नहीं मिलते हैं पर प्राचीन काल में अवश्य थे। काश्मीर के राजा जयादित्य की सभा के कवि दामोदर गुप्त ने आज से ११०० वर्ष पहले अपने 'कुट्टनीमत' नामक ग्रंथ में 'चित्रसूत्र' नामक चित्र विद्या के एक ग्रंथ का उल्लेख किया है। अजंटा गुफा के चित्रों में प्राचीन भारतवासियों की चित्रनिपुणता देख चकित रह जाना पड़ता है। बड़े बड़े विज्ञ यूरोपीयनों ने इन चित्रों की प्रशंसा की है। इन गुफाओं का बनना ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व से आरंभ हुआ था और आठवीं शताब्दी तक कुछ न कुछ गुफाएँ नई खुदती रहीं। अतः डेढ़ दो हज़ार वर्ष के प्रत्यक्ष प्रमाण तो ये चित्र अवश्य हैं। चित्र विद्या सीखने के लिये पहले प्रत्येक प्रकार की सीधी, टेढ़ी, वक्र आदि रेखाएँ खींचने का अभ्यास करना चाहिए, इसके उपरांत रेखाओं ही के द्वारा वस्तुओं के स्थूल ढाँचे बनाने चाहिएँ। इस विद्या में दूरी आदि के सिद्धांतों का पूरा अनुशीलन किए बिना निपुणता नहीं प्राप्त हो सकती। दृष्टि के समानांतर वा ऊपर नीचे के विस्तार का अंकन तो सहज है पर आँखों के ठीक सामने दूर तक गया हुआ विस्तार अंकित करना

कठिन विषय है। इस प्रकार की दूरी के विस्तार को प्रदर्शन करने की क्रिया को (Perspective) पर्सपेक्टिव कहते हैं। किसी नगर की दूर तक सामने गई हुई सड़क, सामने को बही हुई नदी आदि के दृश्य बिना इसके सिद्धांतों को जाने नहीं दिखाए जा सकते। किस प्रकार निकट के पदार्थ बड़े और साफ़ दिखाई पड़ते हैं, और दूर के पदार्थ क्रमशः छोटे और धुँधले होते जाते हैं यह सब बात अंकित करना पड़ता है। उदाहरण के लिये एक दूर पर रक्खा हुआ चौखूँटा संदूक लीजिए। मान लीजिए कि आप उसे एक ऐसे किनारे से देख रहे हैं जहाँ से उसके दो पार्श्व वा तीन कोण दिखाई पड़ते हैं। अब चित्र बनाने के निमित्त यदि हम एक पेंसिल आँखों के समानांतर लेकर एक आँख दबा कर देखेंगे तो संदूक की सब से निकटस्थ खड़ी कोण रेखा (ऊँचाई) सबसे बड़ी दिखाई देगी, जो पार्श्व अधिक सामने रहेगा उसके दूसरे ओर की कोण-रेखा उससे छोटी और जो पार्श्व कम दिखाई देगा उसके दूसरे ओर की कोण रेखा सबसे छोटी दिखाई पड़ेगी। अर्थात् निकटस्थ कोण रेखा से लगा हुआ उस पार्श्व का कोण जो कम दिखाई देता है अधिक दिखाई पड़नेवाले पार्श्व के कोण से छोटा होगा।



दृष्टि के समानांतर रेखा

दूसरा सिद्धांत आलोक और छाया का है जिसके बिना सजीवता नहीं आ सकती। पदार्थ का जो अंश निकट और सामने रहेगा वह (आलोकित) खुलता और स्पष्ट होगा और जो दूर वा बगल में पड़ेगा वह अस्पष्ट और कालिमा लिए होगा। पदार्थों का उभाड़ और गहराई आदि भी इसी आलोक और छाया के नियमानुसार दिखाई जाती है। जो अंश उठा वा उभड़ा होगा वह अधिक खुलता होगा, और जो धँसा वा गहरा होगा वह कुछ स्याही लिए होगा। इन्हीं सिद्धांतों को न जानने के कारण बाज़ारू चित्रकार शीशे आदि पर जो चित्र बनाते हैं वे खेलवाड़ से जान पड़ते हैं। चित्रों में रंग एक प्रकार की कूँची से भरा जाता है जिसे चित्रकार क़लम कहते हैं। पहले यहाँ गिलहरी की पूँछ के बालों की यह क़लम बनती थी। अब विलायती ब्रुश काम में आते हैं।

चित्रकाय—संज्ञा पुं० [सं०] चीता।

चित्रकार—संज्ञा पुं० [सं०] चित्र बनानेवाला। चितेरा।

चित्रकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्रकार + ई] (१) चित्रविद्या। चित्र बनाने की कला। (२) चित्रकार का काम। चित्र बनाने का व्यवसाय।

चित्रकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का काव्य जिसके अक्षरों को विशेष क्रम से लिखने से कोई विशेष चित्र बन जाता है। ऐसा काव्य अधम समझा जाता है।

चित्रकुंडल—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध रमणीय पर्वत जहाँ वनवास के समय राम और सीता ने बहुत दिनों तक निवास किया था। यह तीर्थस्थान बाँदा जिले में है और प्रयाग से २७ कोस दक्षिण पड़ता है। इस पहाड़ के नीचे पयोष्णी नदी बहती है जिसमें मंदाकिनी नाम की एक और छोटी नदी मिलती है। रामनवमी और दिवाली के अवसर पर यहाँ बहुत दूर दूर से तीर्थयात्री आते हैं। वाल्मीकि ने रामायण में इस स्थान को भारद्वाज के आश्रम से साढ़े तीन योजन दक्षिण की ओर लिखा है। (२) चित्तौर। (शिलालेखों में चित्तौर का यही नाम आता है)। (३) हिमवत् खंड के अनुसार हिमालय के एक शृंग का नाम।

चित्रकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश का पेड़।

चित्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके पास चित्रित पताका हो। (२) भागवत के अनुसार लक्ष्मण के एक पुत्र का नाम। (३) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (४) वशिष्ट के एक पुत्र का नाम। (५) कंसा के गर्भ से उत्पन्न देवभाग यादव का एक पुत्र। (६) भागवत के अनुसार शूरसेन देश का एक राजा जिसे पुत्रशोक से संतप्त देख नारद ने मंत्रोपदेश दिया था।

चित्रकोण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुटकी। (२) काली कपास।

चित्रगंध—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

चित्रगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] चौदह यमराजों में से एक जो प्राणियों के पाप और पुण्य का लेखा रखते हैं।

विशेष—चित्रगुप्त के संबंध में पद्मपुराण, गरुड़पुराण, भविष्यपुराण आदि पुराणों में कथाएँ मिलती हैं। स्कंदपुराण के प्रभासखंड में लिखा है कि चित्र नाम के कोई राजा थे, जो हिसाब-किताब रखने में बड़े दक्ष थे। यमराज ने चाहा कि इन्हें अपने यहाँ लेखा रखने के लिये ले जाँय। अतः एक दिन जब राजा नदी में स्नान करने गए तब यमराज ने उन्हें उठा मँगाया और अपना सहायक बनाया। इस पर राजा की एक बहिन अत्यंत दुखी हुई और चित्रपथा नाम की नदी होकर

चित्र को ढूँढ़ने समुद्र की ओर गई। भविष्यपुराण में लिखा है कि जब ब्रह्मा सृष्टि बनाकर ध्यान में मग्न हुए तब उनके शरीर से एक विचित्र-वर्ण पुरुष कलम दवात हाथ में लिए उत्पन्न हुआ। जब ब्रह्मा का ध्यान भंग हुआ तब उस पुरुष ने हाथ जोड़ कर कहा "महाराज! मेरा नाम और काम बताइए"। ब्रह्माजी ने संतुष्ट होकर कहा कि 'तुम हमारे शरीर से उत्पन्न हुए हो इसलिये तुम कायस्थ हुए और तुम्हारा नाम चित्रगुप्त हुआ। तुम प्राणियों के पाप-पुण्य का लेखा रखने के लिये यमराज के यहाँ रहो"। भट्ट, नागर, सेनक, गौड़, श्रीवास्तव्य, माथुर, अहिष्ठान, शैकसेन और अंबष्ठ ये चित्रकुप्त के पुत्र हुए। यह कथा पीछे की गढ़ी हुई जान पड़ती है क्यों कि ऊपर जो नाम दिए हैं वे प्रायः देश-भेद-सूचक हैं। गरुड़पुराण के चित्रकल्प में तो लिखा है कि यमपुर के पास ही एक चित्रगुप्तपुर है जहाँ चित्रगुप्त के अधीनस्थ कायस्थ लोग बराबर काम किया करते हैं। बिहार, संयुक्त और मध्य प्रदेश आदि के सब कायस्थ अपने को चित्रगुप्त के वंशज बतलाते हैं। यमद्वितीया के दिन कायस्थ लोग चित्रगुप्त और कलम दावात की पूजा करते हैं।

चित्रघंटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी जो नौ-दुर्गाओं में मानी जाती हैं।

चित्रचाप–संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रजल्प–संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में रस के अंतर्गत एक वाक्य-भेद। वह भावपूर्ण और अभिप्राय-गर्भित वाक्य जो नायक और नायिका रूठ कर एक दूसरे के प्रति कहते हैं। चित्रजल्प के दस भेद किए गए हैं, यथा—प्रजल्प, परिजल्पित, विजल्प, उज्जल्प, संजल्प, अवजल्प, अभिजल्पित, आजल्प, प्रतिजल्प और सुजल्प।

चित्रजात–संज्ञा पुं० दे० "चित्रयोग"।

चित्रतंडुल–संज्ञा पुं० [सं०] बायविडंग।

चित्रताल–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें दो द्रुत, एक प्लुत, फिर एक द्रुत और तब द्रुत की आधी मात्रा होती है। इसका बोल यह है,—ड्डगु० ड्डगु० धुमि धिमि थरिथा तक तक ऽ थों।

चित्रतैल–संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़ी वा अंडी का तेल।

चित्रत्वक्, चित्रत्वच्–संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र।

चित्रदंडक–संज्ञा पुं० [सं०] सूरन।

चित्रदीप–संज्ञा पुं० [सं०] पंचदशी नामक वेदांत ग्रंथ के अनुसार एक दीप। पट के ऊपर बने हुए चित्र के समान चैतन्य में जगत के विविध रूपों का आभास जिसे मायामय और मिथ्या समझना चाहिए।

चित्रदेव–संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय का अनुचर।

चित्रदेवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महेंद्रवारुणी लता। (२) शक्ति वा देवी का एक भेद।

चित्रधर्मा–संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

चित्रधाम–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञादि में पृथ्वी पर बनाया हुआ एक चौखूंटा चक्र जो चारखाने की तरह होता था और जिसके खानों को भिन्न भिन्न रंगों से भरते थे। सर्वतोभद्र मंडल।

चित्रनेत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।

चित्रपक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] तित्तिर पक्षी। तीतर।

चित्रपट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह कपड़ा, काग़ज़ वा पटरी जिस पर चित्र बनाया जाय या बना हो। चित्राधार। (२) वह वस्त्र जिस पर चित्र बने हों। छींट।

चित्रपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पुतली के पीछे का भाग जिस पर किरण पड़ने से पदार्थों के रूप दिखाई पड़ते हैं।
वि० विचित्र पक्ष युक्त। रंग बिरंगे परवाला (पक्षी)।

चित्रपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कपित्थपर्णी वृक्ष। (२) द्रोणपुष्पी। गूमा।

चित्रपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपिप्पली।

चित्रपथा–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभास तीर्थ के अंतर्गत ब्रह्मकुंड के पास की एक छोटी नदी जो अब सूख गई है, केवल बरसात में कुछ बहती है। दे० "चित्रगुप्त"।

चित्रपदा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में २ भगण और २ गुरु होते हैं। उ०—रूपहि देखत मोहैं। ईश कहौ नर को हैं। संभ्रम चित्त अरूझै। रामहिं यों सब बूझै।—केशव। (२) मैना चिड़िया। सारिका। (३) छुईमुई। लजाधुर। लजालू नाम की लता।

चित्रपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मँजीठ। (२) कर्णस्फोट लता। कनफोड़ा। (३) जलपिप्पली। (४) द्रोणपुष्पी। गूमा।

चित्रपादा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।

चित्रपिच्छक–संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

चित्रपुंख–संज्ञा पुं० [सं०] बाण। तीर।

चित्रपुट–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छः ताला ताल जिसमें दो लघु, दो द्रुत, एक लघु, और एक प्लुत होता है इसका बोल यह है—दिगिदाँ। धिमितक। दां० दां० तक थों। किट थरि धिधिगन थों ऽ।

चित्रपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] रामसर नाम की शर जाति की घास।

चित्रपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] आमड़ा।

चित्रपृष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] गौरा पक्षी। गौरैया।

चित्रफल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चितला मछली। (२) तरबूज़।

चित्रफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ककड़ी। (२) बैंगन। (३)

कंटकारि। भटकटैया। (४) लिंगिनी लता। (५) महेंद्रवारुणी। (६) फलुई मछली।

चित्रबर्ह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। मयूर। (२) गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

चित्रबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रभानु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) सूर्य्य। (३) चित्रक। चीते का पेड़। (४) अर्क। मदार। (५) भैरव। (६) अश्विनीकुमार। (७) साठ संवत्सरों के जो बारह युग होते हैं उनमें से चौथे युग के पहले वर्ष का नाम। (८) मणिपुर के राजा जो अर्जुन की पत्नी चित्रांगदा के पिता थे।

चित्रभेषजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठगूलर। कठूमर।

चित्रमद—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक आदि में किसी स्त्री का अपने पति या प्रेमी का चित्र देख कर विरह-सूचक भाव दिखलाना।

चित्रमृग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हिरन जिसकी पीठ पर सफ़ेद सफ़ेद चित्तियाँ होती हैं। चीतल।

चित्रमेखल—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

चित्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] चौंसठ कलाओं में से एक, अर्थात् बुड्ढे को जवान और जवान को बुड्ढा वा नपुंसक बना देने की विद्या। दे० "कला"।

चित्रयोधी—वि० [सं०] विचित्र युद्ध करनेवाला। भारी योद्धा।
संज्ञा पुं० (१) अर्जुन। (२) अर्जुन का पेड़।

चित्ररथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) एक गंधर्व का नाम जो कश्यप और दक्षकन्या मुनि के पुत्र थे। ये कुबेर के सखा माने जाते हैं। ये गंधर्वराज, अंगारपर्ण, दग्धरथ और कुबेरसख भी कहलाते हैं। (३) श्रीकृष्ण के पुत्र गद के एक पुत्र का नाम। (४) महाभारत के अनुसार अंग देश के एक राजा का नाम। (५) एक यदुवंशी राजा जो विष्णुपुराण के अनुसार रुषद्गु और भागवत के अनुसार विशद्गुरु के पुत्र थे। (६) महाभारत के अनुसार ऋषद्गुरु नामक राजा के एक पुत्र।
वि० विचित्र रथवाला।

चित्ररथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत (भीष्म) में वर्णित एक नदी।

चित्ररश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] मरुतों में से एक।

चित्ररेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाणासुर की कन्या ऊषा की एक सहेली। दे० "चित्रलेखा"।

चित्ररेफ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भागवत के अनुसार शाकद्वीप के राजा प्रियव्रत के पुत्र मेधातिथि के सात पुत्रों में से एक। (मेधातिथि ने अपने सात पुत्रों को सात वर्ष बाँट दिए थे जिनके नामों के अनुसार ही उन वर्षों के नाम पड़े।) (२) एक वर्ष वा भूविभाग का नाम।

चित्रल—वि० [सं०] चितकबरा। रंग बिरंगा। चितला।

चित्रलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मँजीठ।

चित्रला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरख इमली।

चित्रलिखन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुंदर लिखावट। खुशख़ती। (मनु०)। (२) चित्र बनाने का कार्य्य।

चित्रलेखनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तसवीर बनाने की क़लम। कूँची।

चित्रलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १ मगण, १ भगण, १ नगण, और तीन यगण होते हैं। उ०—मैं भीनी यों गुणनि सुनु यथा कामरी पाइ बारी। बोलो ना आलि! कहत तुमसों दीन ह्वै बारि बारी। (२) बाणासुर की कन्या ऊषा की एक सखी जो कुष्मांड की लड़की थी। यह चित्रकला में बड़ी निपुण थी। (३) एक अप्सरा का नाम। (४) चित्र बनाने की कलम। तसवीर बनाने की कूँची।

चित्रलोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।

चित्रवदल—संज्ञा पुं० [सं०] पाठीन मत्स्य। पहिना मछली।

चित्रवन—संज्ञा पुं० [सं०] गंडकी के किनारे का पुराण-प्रसिद्ध एक वन।

चित्रवर्मा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (२) मुद्राराक्षस के अनुसार कुलूत देश के एक राजा का नाम।

चित्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विचित्र लता। (२) महेंद्रवारुणी।

चित्रवहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नदी।

चित्रवाण—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] मणिपुर का एक नाग राजा। (महाभारत)

चित्रविचित्र—वि० [सं०] (१) रंग बिरंगा। कई रंगों का। (२) बेल बूटेदार। नक़्क़ाशीदार।

चित्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्र बनाने की विद्या। दे० "चित्रकला"।

चित्रवीर्य्य—वि० [सं०] विचित्र वली।
संज्ञा पुं० लाल रेंड़। रक्त एरंड।

चित्रवेगिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम।

चित्रशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह घर जहाँ चित्र बनते हों वा विक्रयार्थ रखे जाते हों। (२) वह घर जहाँ चित्र रखे हों। वह घर जिसमें बहुत सी तसवीरें टँगी हों। (३) वह स्थान जहाँ चित्रकारी सिखाई जाती हो।

चित्रशिखंडिज—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

चित्रशिखंडी—संज्ञा पुं० [सं० चित्रशिखंडिन्] सप्त ऋषि। मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ—ये सात ऋषि।

चित्रशिर—संज्ञा पुं० [सं० चित्रशिरस्] (१) एक गंधर्व का नाम। (२) सुश्रुत के अनुसार मल मूत्र से उत्पन्न एक विष। गंदगी का ज़हर।

चित्रसंग—संज्ञा पुं० [सं०] १६ अक्षरों का एक वर्णवृत्त ।

चित्रसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] चीतल साँप ।

चित्रसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्र + शाला] (१) वह घर जहाँ चित्र टँगे हों या दीवार पर बने हों । (२) रंगमहल । सजा हुआ सोने का कमरा । विलासभवन ।

चित्रसेन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । (२) एक गंधर्व का नाम । (३) एक पुरुवंशी राजा जो परीक्षित के पुत्रों में से थे । (४) शंबरासुर के एक पुत्र का नाम । (हरिवंश)

चित्रहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] वार का एक हाथ । हथियार चलाने का एक हाथ (महाभारत) ।

चित्रांग—वि० [सं०] [स्त्री० चित्रांगी] जिसका अंग विचित्र हो । जिसके अंग पर चित्तियां, धारियाँ आदि हों ।

संज्ञा पुं० (१) चित्रक । चीता । (२) एक प्रकार का सर्प । चीतल । (३) ईंगुर । (४) हरताल ।

चित्रांगद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न राजा शांतनु के एक पुत्र । ये विचित्रवीर्य्य के छोटे भाई थे । (२) देवी भागवत के अनुसार एक गंधर्व का नाम । (३) दशार्ण देश के एक प्राचीन राजा । (महाभारत, अश्व०)

चित्रांगदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मणिपुर के राजा चित्रवाहन की कन्या जो अर्जुन को ब्याही थी । (२) रावण की एक स्त्री जो वीरबाहु की माता थी ।

चित्रांगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मजीठ । (२) कनसलाई नाम का कीड़ा । कनखजूरा ।

चित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्ताईस नक्षत्रों में से चौदहवाँ नक्षत्र । इसकी तारा-संख्या एक मानी गई है पर यह योग-तारा भी दिखाई देता है । इसकी कला ४० और विक्षेप दो कला है । इसका कलांश १३ है अर्थात् यह सूर्य्य कक्षा के तेरहवें अंश के बीच अस्त और तेरहवें अंश पर उदय होता है । यह पूर्व दिशा में उदय होता है और पश्चिम दिशा में अस्त होता हैं । (सूर्य्य सिद्धांत) । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सुंदर और चित्र विचित्र होने के कारण ही इसे चित्रा कहते हैं । फलित में यह पार्श्वमुख नक्षत्र माना गया है । इसमें गृहारंभ, गृहप्रवेश, हाथी, रथ, नौका, घोड़े आदि का व्यवहार शुभ है । इस नक्षत्र में जिसका जन्म होता है वह राक्षस गण में माना जाता है, विवाह की गणना में उसका मेल मनुष्य गण के साथ नहीं होता । रात्रिमान को १५ भागों में बाँट देने से एक एक मुहूर्त्त निकल आता है । इनमें से १४ वें मुहूर्त्त को चित्रा का मुहूर्त्त मान लेना चाहिए, चाहे और कोई दूसरा नक्षत्र भी हो । जो जो कार्य्य चित्रा नक्षत्र में हो सकते हैं वे सब चित्रा मुहूर्त्त में भी हो सकते हैं । (२) मूषिकपर्णी । (३) ककड़ी या खीरा । (४) दंती वृक्ष । (५) गंड दूर्वा । (६) मजीठ । (७) बायबिडंग । (८) मूसाकानी । आखुकर्णी । (९) अजवाइन । (१०) सुभद्रा । (११) एक सर्प का नाम । (१२) एक नदी का नाम । (१३) एक अप्सरा का नाम । (१४) एक रागिनी जो भैरव राग की पाँच स्त्रियों में मानी जाती है । (१५) संगीत में एक मूर्छना का नाम । (१६) पंद्रह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसमें पहले तीन नगण, फिर दो यगण होते हैं । उ०—मो मो माया याही जानो याहि छाड़े बिना ना पावै कोऊ प्यारे भौ सिंधू कबौं पार जाना । (१७) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं और अंत में एक गुरु होता है । इसकी पाँचवीं, आठवीं और नवीं मात्रा लघु होती है । यह चौपाई का एक भेद है । उ०—इतनहि कहि निज सदनै आई । (१८) प्राचीन काल का एक बाजा जिसमें तार लगे होते थे । (१९) चितकबरी गाय ।

चित्राक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

वि० [स्त्री० चित्राक्षी] विचित्र या सुंदर नेत्रवाला ।

चित्राक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका । मैना ।

चित्राटीर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) शिव का अनुचर घंटाकर्ण ।

चित्रादित्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभास क्षेत्र में चित्रगुप्त की स्थापित सूर्य्य मूर्त्ति । (स्कंदपु० प्रभा०)

चित्रान्न—संज्ञा पुं० [सं०] बकरी के दूध में पकाया और बकरी के कान के रक्त में रँगा हुआ जौ और चावल ।

चित्रायस—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात । लोहा ।

चित्रायुध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विलक्षण अस्त्र । (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

वि० विलक्षण अस्त्रयुक्त ।

चित्राल—संज्ञा पुं० [सं० चित्रालय ?] काश्मीर के पश्चिम एक पहाड़ी प्रदेश ।

चित्रावसु—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों से मंडित रात्रि ।

चित्राश्व—संज्ञा पुं० [सं०] सत्यवान् का एक नाम ।

चित्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] चैत का महीना ।

चित्रिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पद्मिनी आदि स्त्रियों के चार भेदों में से एक ।

विशेष—डील डौल न बहुत भारी न बहुत छोटा, नाक तिल के फूल की सी, नेत्र कमलदल के समान, मुँह तिल, बिंदी आदि से सँवारा हुआ, येही सब इसके लक्षण हैं । यह विविध कलाओं तथा शृंगार-चेष्टा में निपुण होती है । इस जाति की स्त्री के साथ मृग जाति के पुरुष का जोड़ उपयुक्त होता है ।

चित्रित—वि० [सं०] (१) चित्र में खींचा हुआ । चित्र द्वारा दिखाया हुआ । जिसका रंग-रूप चित्र में दिखाया गया हो ।

जैसे, उसमें एक व्याघ्र चित्रित है। (२) जिस पर चित्र बने हों। जिस पर बेल बूटे आदि बने हों। जिस पर नक्क़ाशी हो। (३) जिस पर चित्तियाँ वा रंग की धारियाँ आदि हों।

चित्रेश–संज्ञा पुं० [सं०] (चित्रा नक्षत्र के पति) चंद्रमा।

चित्रोक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाश। (२) अलंकृत भाषा में कथन।

चित्रोत्तर–संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें प्रश्न ही के शब्दों में उत्तर हो या कई प्रश्नों का एक ही उत्तर हो। उ०—(क) कोकहिये जल सो सुखी काकहिये परस्याम। काकहिये जे रस बिना कोकहिये सुख वाम। इसमें 'कोक', 'काक', 'वाम' आदि उत्तर दोहे के शब्दों ही में निकल आते हैं। (ख) गाढ़ पीठ पर लेहु अंग राग अरु हार करु। गृह प्रकाश कर देहु कान्ह कह्यो "सारँग नहीं"। यहाँ "सारँग नहीं" से सब प्रश्नों का उत्तर हो गया। (ग) को शुभ अक्षर ? कौन युवति जो धन वश कीनी ? विजय सिद्धि संग्राम राम कहँ कौने दीनी ? कंसराज यदुवंश बसत कैसे केशवपुर ? बट सों कहिये कहा ? नाम जानहु अपने उर। कहि कौन युवति जग जनन किय कमल नयन सूक्षम बरणि ? सुन वेद पुराणन मैं कही सनकादिक शंकरतरुणि। इसे "प्रश्नोत्तर" भी कहते हैं।

चित्रोत्पला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उड़ीसा की एक नदी जिसे आज कल 'चितरतला' कहते हैं। (२) मत्स्य, मार्कंडेय और वामन पुराण के अनुसार एक नदी जो ऋक्षपाद पर्वत से निकली है।

चित्रोपला–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका उल्लेख महाभारत में है।

चित्य–वि० [सं०] (१) पूज्य। (२) चुनने वा इकट्ठा करने योग्य।

चिथड़ा–संज्ञा पुं० [सं० चीर्ण = फटा हुआ। वा चीर] फटा पुराना कपड़ा। कपड़े की धज्जी। लत्ता। लुगरा।

यौ०—चिथड़ा गुदड़ा = फटे पुराने कपड़े।

मुहा०—चिथड़ा लपेटना = फटे पुराने कपड़े पहनना।

चिथाड़ना–क्रि० स० चीर्ण] (१) चीरना। फाड़ना। कपड़े, चमड़े, काग़ज़ आदि चद्दर के रूप की वस्तुओं को फाड़ कर टुकड़े टुकड़े करना। धज्जी धज्जी करना। (२) धज्जियाँ उड़ाना। अपमानित करना। लज्जित करना। नीचा दिखाना। ज़लील करना।

चिदाकाश–संज्ञा पुं० [सं०] आकाश के समान निर्लिप्त और सब का आधारभूत ब्रह्म। परब्रह्म।

चिदात्मा–संज्ञा पुं० [सं०] चैतन्य स्वरूप परब्रह्म।

चिदानंद–संज्ञा पुं० [सं०] चैतन्य और आनंदमय परब्रह्म।

चिदाभास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चैतन्य स्वरूप परब्रह्म का आभास वा प्रतिबिंब जो महतत्त्व वा अंतःकरण पर पड़ता है। (२) जीवात्मा।

विशेष—अद्वैतवादियों के मत से अंतःकरण में ब्रह्म का आभास पड़ने से ही ज्ञान होता है। माया के संयोग से यह ज्ञान अनेक रूप विशिष्ट दिखाई पड़ता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार स्फटिक पर जिस रंग की आभा पड़ती है वह उसी रंग का दिखाई पड़ता है।

चिद्रूप–संज्ञा पुं० [सं०] चैतन्य स्वरूप ब्रह्म। ज्ञानमय परमात्मा।

चिद्विलास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चैतन्य स्वरूप ईश्वर की माया। उ०—तुलसिदास कह चिद्विलास जग बूझत बूझत बूझै।—तुलसी। (२) शंकराचार्य्य के एक शिष्य। बहुतों का विश्वास है कि शंकरविजय नामक ग्रन्थ इन्हीं का लिखा है, जिसमें चिद्विलास वक्ता और विज्ञानकंद श्रोता हैं।

चिन–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक बहुत बड़ा सदाबहार पेड़ जो हिमालय पर शिमले के आस पास बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है और इमारतों में लगती है। (२) एक घास जिसे चौपाए बड़ी रुचि से खाते हैं। यह घास खेतों के किनारे होती है। इसे सुखा कर भी रख सकते हैं।

चिनक–संज्ञा पुं० [हिं० चिनगी] (१) जलन लिए हुए पीड़ा। चुनचुनाहट। (२) मूत्रनाली की जलन वा पीड़ा जो सूज़ाक में होती है।

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

चिनग†–संज्ञा पुं० दे० "चिनक"।

चिनगारी–संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण, हिं० चुन + अंगार] (१) जलती हुई आग का छोटा कण वा टुकड़ा। जैसे, एक चिनगारी आग इस पर रख दो। (२) दहकती हुई आग में से फूट फूट कर उड़नेवाले कण। अग्निकण। स्फुलिंग।

क्रि० प्र०—उड़ना।—छूटना।

मुहा०—आँखों से चिनगारी छूटना = क्रोध से आँखें लाल लाल होना। चिनगारी छोड़ना = धीरे से ऐसी बात कर बैठना जिससे किसी प्रकार का उपद्रव खड़ा हो जाय। कोई ऐसी बात कह देना जिससे लोगों में लड़ाई झगड़ा हो जाय। ऐसी चाल चलना जिससे एक नई बात खड़ी हो जाय। चिनगारी डालना = (१) आग लगाना। (२) दे० "चिनगारी छोड़ना"।

चिनगी–संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण, हिं० चुन + अग्नि, प्रा० अग्गि] (१) अग्निकण। दे० "चिनगारी"। (२) चुस्त और चालाक लड़का। (३) वह लड़का जो नटों के साथ रहता है। (नट)

चिनत्ती†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चेना] चेना की रोटी।

चिनाई दौड़–संज्ञा स्त्री० [हिं० छीनना + दौड़] जहाज़ की घुमाव फिराव की चाल। जहाज़ का चक्कर। (लश०)

चिनाना†*–क्रि० स० [सं० चयन] (१) चुनवाना। बिनवाना। (२) ईंट आदि की जोड़ाई कराना। दीवार वा घर उठवाना।

उ०—कंचन महल चुनाइया सुबरन कली ढुलाय। ते मंदिर खाली परे रहे मसाना जाय।—कबीर।

चिनाव—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रभागा] पंजाब की एक नदी। चंद्रभागा।

चिनिया—वि० [हिं० चीनी] (१) चीनी के रंग का। सफ़ेद। (२) चीन देश का। चीनी।

चिनिया केला—संज्ञा पुं० [हिं० चिनिया + केला] छोटी जाति का एक केला जो बंगाल में होता है। यह खाने में बहुत मीठा होता है।

चिनिया घोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चीन वा चीनी] वह घोड़ा जिसके चारों पैर सफ़ेद हों और सारे बदन में लाल और कुछ सफ़ेद खिचड़ी बाल हों।

चिनिया-बत—संज्ञा पुं० [हिं० चिनिया + बत] बतक की तरह की एक चिड़िया।

चिनिया बदाम—संज्ञा पुं० [हिं० चीन + बादाम] मूँगफली।

चिनियारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चुचु ?] सुसना का साग।

चिन्न—संज्ञा पुं० [सं०] चना।

चिन्मय—वि० [सं०] ज्ञानमय।

संज्ञा पुं० परमेश्वर।

चिन्ह—संज्ञा पुं० दे० "चिह्न"।

चिन्हवाना †—क्रि० स० [हिं० "चीन्हना" का प्रे०] पहचनवाना। परिचित कराना। ठीक लक्षण बता देना। पहचान करा देना।

चिन्हाना †—क्रि० स० [हिं० "चीन्हना" का प्रे०] पहचनवाना। परिचित कराना।

चिन्हानी †—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिन्ह] (१) चीन्हने की वस्तु। पहचान। लक्षण। (२) स्मारक। यादगार। ऐसी वस्तु जिससे किसी बात वा मनुष्य का स्मरण हो। (३) चिह्न। रेखा। धारी। लकीर।

चिन्हार †—वि० [हिं० चिन्ह] जान पहचान का। परिचित। जिससे जान पहचान हो।

क्रि० प्र०—खींचना।

चिन्हारी †—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिन्ह] जान पहचान। भेंट मुलाकात। परिचय। उ०—कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी।—तुलसी।

चिन्हित *—वि० दे० "चिह्नित"

चिपकना—क्रि० अ० [सं० चिपिट = चिपटा । वा अनु० चिपचिप] (१) बीच में किसी लसीली वस्तु के कारण दो वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार जुड़ना कि जल्दी अलग न हो सकें। सटना। चिमटना। श्लिष्ट होना। जैसे, इस पुस्तक के पन्ने चिकप गए हैं।

क्रि० प्र०—जाना।

(२) लिपटना। प्रगाढ़ रूप से संयुक्त होना। (३) स्त्री पुरुष का संयोग होना। स्त्री पुरुष का परस्पर प्रेम में फँसना। (४) रोज़गार से लगना। किसी काम में लगना।

चिपकाना—क्रि० स० [हिं० चिपकना] (१) किसी लसीली वस्तु को बीच में देकर दो वस्तुओं को परस्पर इस प्रकार जोड़ना कि वे जल्दी अलग न हो सकें। चिमटाना। श्लिष्ट करना। चस्पाँ करना। जैसे, इस कागज़ पर टिकट चिपका दो।

संयो० क्रि०—देना।

(२) लिपटाना। प्रगाढ़ आलिंगन करना।

संयो० क्रि०—लेना।

(३) नौकरी लगाना। किसी काम धंधे में लगाना।

चिपचिप—संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द वा अनुभव जो किसी लसदार वस्तु को छूने से होता है।

क्रि० प्र०—करना।

चिपचिपा—वि० [अनु० चिपचिप। वा हिं० चिपकना] जिसे छूने से हाथ चिपकता हुआ जान पड़े। लसदार। लसीला। जैसे, चोटा, शहद, चाशनी आदि वस्तु।

चिपचिपाना—क्रि० अ० [हिं० चिपचिप] छूने में चिपचिपा जान पड़ना। लसदार मालूम होना। जैसे, स्याही में गोंद अधिक है, इसीसे चिपचिपाती है।

चिपचिपाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपचिपा] चिपचिपाने का भाव। लसीलापन। लस। लसी।

चिपटना—क्रि० अ० [सं० चिपिट = चिपटा] चिपकना। सटना। चिमटना। इस प्रकार जुड़ना कि जल्दी अलग न हो सके।

चिपटा—वि० [सं० चिपिट] [स्त्री० चिपटी] जो कहीं से उठा वा उभड़ा हुआ न हो। जिसकी सतह दबी और बराबर फैली हुई हो। जिसके पृष्ठ पर कहीं उभाड़ न हो। बैठा वा धँसा हुआ। जैसे, चिपटी नाक, चिपटा दाना, चिपटे बीज। उ०—पेड़ पर से गिर कर फल चिपटा हो गया।

चिपटाना—क्रि० स० [हिं० चिपटना] (१) चिपकाना। सटाना। (२) लिपटाना। आलिंगन करना।

चिपटी—वि० स्त्री० दे० "चिपटा"।

संज्ञा स्त्री० (१) कान में पहनने की एक प्रकार की बाली जिसे नैपाली स्त्रियाँ पहनती हैं। (२) भग। योनि।

मुहा०—चिपटी खेलना = दो स्त्रियों का कामवश परस्पर योनि से योनि घिसना। उ०—आओ पड़ोसिन चिपटी खेलैं, बैठे से बेगार भली। चिपटी लड़ाना = दे० "चिपटी खेलना"।

चिपड़ा †—वि० [हिं० चीपड़] जिसकी आँख में अधिक चीपड़ रहता हो। जिसकी आँख से अधिक चीपड़ निकलता हो।

चिपड़ी, चिपरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिप्पड़] गोबर के पाथे हुए चिपटे टुकड़े। उपली। गोहँठी।

क्रि० प्र०—पाथना।

चिपिट–वि० [सं०] चिपटा।

संज्ञा पुं० (१) चिउड़ा। चिड़वा। (२) चिपटी नाकवाला मनुष्य। (इसका दर्शन अशुभ माना जाता है)। (३) दृष्टि की चकपकाहट जो आँखों को उँगली आदि से दबाने से हो। (इस प्रकार की चकपकाहट से कभी एक के दो तीन पदार्थ दिखाई देते हैं, कभी पदार्थ नीचे या ऊपर हटे हुए दिखाई पड़ते हैं)।

चिपिटनासिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश जो कैलास पर्वत के उत्तर पड़ता है। तातार वा मंगोल देश जहाँ के निवासियों की नाक चिपटी होती है। (२) उस देश के निवासी, तातार या मंगोल।

वि० चिपटी नाकवाला।

चिपीटक–संज्ञा पुं० [सं०] चिउड़ा। चिड़वा।

चिपुआ†–संज्ञा पुं० [देश०] चेलहवा मछली।

चिप्प–संज्ञा पुं० [सं०] एक नख रोग जिसमें नाखून के नीचे मांस में जलन और पीड़ा होती है। कभी कभी नाखून पक भी जाता है।

चिप्पड़–संज्ञा पुं० [सं० चिपिट] (१) छोटा चिपटा टुकड़ा। उ०—इसके ऊपर काग़ज़ का एक चिप्पड़ लगा दो। (२) सूखी लकड़ी आदि के ऊपर की छूटी हुई छाल का टुकड़ा। पपड़ी। (३) किसी वस्तु के ऊपर से छील कर निकाला हुआ टुकड़ा।

चिप्पिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक रात्रिचर जंतु। (२) एक चिड़िया का नाम। उ०—बाँसा, बटेर, लव औ सिचान। धूती रु चिप्पिका चटक भान।—सूर।

चिप्पी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिप्पड़] (१) छोटा चिप्पड़। (२) उपली। गोहँठी। (३) वह बटखरा जिससे सीधा तौला जाता है। (४) सीधा। जिंस। (साधु)

चिबिल्ला†–वि० दे० "चिलबिला"।

चिबुक–संज्ञा पुं० [सं०] ठुड्डी। ठोढ़ी।

चिमगादड़†–संज्ञा पुं० दे० "चमगादड़"।

चिमटना–क्रि० अ० [हिं० चिपटना] (१) चिपकना। सटना। लस जाना। (२) लिपटना। प्रगाढ़ आलिंगन करना। उ०—वह अपने भाई को देखते ही उससे चिमट कर रोने लगा। (३) हाथ पैर आदि सब अंगों को लगा कर दृढ़ता से पकड़ना। कई स्थानों पर कस कर पकड़ना। गुथना। जैसे, चीटों का चिमटना। उ०—शेर को देखते ही वह एक पेड़ की डाल से चिमट गया। (४) पीछे पड़ जाना। पीछा न छोड़ना। पिंड न छोड़ना।

चिमटवाना–क्रि० स० [हिं० चिमटना का प्रे०] दूसरे से चिमटाने का काम कराना।

चिमटा–संज्ञा पुं० [हिं० चिमटना] [स्त्री० अल्प० चिमटी] लोहे पीतल आदि की दो लंबी और लचीली फट्टियों का बना हुआ एक औज़ार जिससे उस स्थान पर की वस्तुओं को पकड़ कर उठाते हैं जहाँ हाथ नहीं ले जा सकते। दस्तपनाह।

चिमटाना–क्रि० स० [हिं० चिमटना] (१) चिपकाना। सटाना। लसना। (२) लिपटाना। आलिंगन करना।

चिमटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिमटा] (१) छोटा चिमटा। (२) सुनारों का एक औज़ार जिससे तार आदि मोड़ने और महीन रवे उठाने का काम लिया जाता है। और भी कई पेशेवाले इस नाम के औज़ार का प्रयोग करते हैं। इसे चिमोटी वा चिकोटी भी कहते हैं।

चिमड़ा–वि० दे० "चीमड़"।

चिमनी–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) ऊपर उठी हुई शीशे की वह नली जिससे लंप का धुआँ बाहर निकलता और प्रकाश फैलता है। (२) किसी मकान के ऊपर का वह छेद जिससे धुआँ बाहर निकलता है।

विशेष—चिमनी कई प्रकार की बनाई जाती है। रहने के मकानों में जो चिमनी बनती है वह बहुत ऊपर उठी हुई नहीं होती। पर कल कारखानों (जैसे, पुतलीघर) में जो चिमनियाँ होती हैं वे बहुत ऊँची उठाई जाती हैं जिसमें धुआँ बहुत ऊपर जाकर आकाश में फैल जाय।

चिमोटा–संज्ञा पुं० दे० "चमोटा"।

चिमोटी–संज्ञा स्त्री० दे० "चिमटी"।

चिरंजीव–वि० [सं०] चिरजीवी।

विशेष—इस शब्द से दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया जाता है। यह शब्द पुत्र वाचक भी है। जैसे, आपके चिरंजीव ने ऐसा कहा है।

चिरंजीवी–वि० दे० "चिरजीवी"।

चिरंटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सयानी लड़की जो पिता के घर रहे। (२) युवती।

चिरंतन–वि० [सं०] पुरातन। पुराना। बहुत दिनों का।

चिरंभ, चिरंभण–संज्ञा पुं० [सं०] चील।

चिर–वि० [सं०] बहुत दिनों का। दीर्घकालवर्ती। जैसे, चिरकाल, चिरायु। उ०—होएहु संतत पियहि पियारी। चिर अहिवात असीस हमारी।—तुलसी।

क्रि० वि० बहुत दिन। अधिक समय तक। दीर्घ काल तक। जैसे, चिरस्थायी। चिरजीवी। उ०—चिरजीवहु सुत चारि चक्रवर्ति दशरथ के।—तुलसी।

यौ०—चिरायु। चिरकाल। चिरकारी। चिरक्रिय। चिरजात। चिरजीवी।

संज्ञा पुं० तीन मात्राओं का गण जिसका प्रथम वर्ण लघु हो।

चिरई†–संज्ञा स्त्री० [सं० चटक] चिड़िया। पक्षी।

चिरकढाँस–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरकना + ढाँसना] (१) एक न एक रोग का नित्य बना रहना। कभी कुछ रोग कभी कुछ। सदा बनी रहनेवाली अस्वस्थता। (२) नित्य का झगड़ा। रगड़ा।

चिरकना–क्रि० अ० [अनु०] थोड़ा थोड़ा मल निकालना। थोड़ा थोड़ा हगना।

चिरकारी–वि० [सं० चिरकारिन्] [स्त्री० चिरकारिणी] काम में देर लगानेवाला। दीर्घसूत्री।

चिरकाल–संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घकाल। बहुत समय। जैसे, चिरकाल से यह प्रथा चली आई है।

चिरकीन–वि० [फ़ा०] मैला। गंदा। (लश०)

चिरकुट—संज्ञा पुं० [सं० चीर + कुट्ट = काटना] फटा पुराना कपड़ा। चिथड़ा। गूदड़। उ०—काढ़हु कंथा चिरकुट लावा। पहिरहु राते दगल सुहावा।—जायसी।

चिरक्रिय–वि० [सं०] काम में देर लगानेवाला। दीर्घसूत्री।

चिरक्रियता–संज्ञा स्त्री० [सं०] दीर्घसूत्रता।

चिरचिटा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) चिचड़ा। अपामार्ग। (२) एक ऊँची घास जो बाजरे के पौधे के आकार की होती है। इसे चौपाए खाते हैं।

चिरचिरा†–वि० दे० "चिड़चिड़ा"।

संज्ञा पुं० दे० "चिचड़ा"।

चिरजीवक–संज्ञा पुं० [सं०] जीवक नाम का वृक्ष।

चिरजीवी–वि० [सं०] (१) बहुत दिनों तक जीनेवाला। दीर्घजीवी। (२) सब दिन जीवित रहनेवाला। अमर।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु। (२) कौवा। (३) जीवक वृक्ष। (४) सेमर का पेड़। (५) मार्कंडेय ऋषि। (६) अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य्य और परशुराम जो चिरजीवी माने गए हैं।

चिरतिक्त–संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता।

चिरत्न–वि० [सं०] पुरातन। पुराना।

चिरना–क्रि० अ० [सं० चीर्ण, हिं० चीरना] (१) फटना। सीध में कटना। जैसे, कपड़ा चिरना, लकड़ी चिरना। (२) लकीर के रूप में घाव होना। सीधा क्षत होना। उ०—फटी मत छूओ उँगली चिर जायगी।

संज्ञा पुं० (१) चीरने का औज़ार। (२) सोनारों का एक औज़ार जिससे वे चाँदी के तार चीरते हैं। (३) कुम्हारों का वह धारदार लोहा जिससे वे नरिया चीरते हैं। (४) कसेरों का एक औज़ार जिससे वे थाली के बीच में ठप्पा या गोल लकीर बनाते हैं।

चिरपाकी–संज्ञा पुं० [सं०] कैथ। कपित्थ।

चिरपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] बकुल। मौलसिरी।

चिरबत्ती–वि० [हिं० चिरना + बत्ती] चिथड़ा चिथड़ा। टुकड़ा टुकड़ा। पुरजा पुरजा।

मुहा०—चिरबत्ती कर डालना = चिथड़े चिथड़े कर डालना। फाड़ कर टुकड़े टुकड़े करना (काग़ज़, कपड़ा आदि)।

चिरबिल्व–संज्ञा पुं० [सं०] करंज वृक्ष। कंजा।

चिरमिटी–संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजा। घुँघुची।

चिरवल–संज्ञा पुं० [सं० चिरबिल्व या चिरवल्ली ?] एक पौधा जो बंगाल और उड़ीसा से लेकर मदरास और सिंहल तक होता है। यह पौधा छः महीने तक रहता है। इसकी जड़ की छाल से एक प्रकार का सुंदर लाल रंग निकलता है जिससे मछलीपट्टन, नेलोर आदि स्थानों में कपड़े रँगे जाते हैं। इन स्थानों में इस पौधे की खेती होती है। असाढ़ में इसके बीज बोए जाते हैं। इस पौधे को सुरबुली भी कहते हैं।

चिरवाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरवाना] (१) चिरवाने का भाव या कार्य। (२) चिरवाने की मज़दूरी। † (३) पानी बरसने पर खेतों की पहली जोताई।

चिरवाना–क्रि० स० [हिं० चीरना का प्रे०] चीरने का काम कराना। फड़वाना।

चिरवीर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंड़ का वृक्ष।

चिरस्थायी–वि० [सं० चिरस्थायिन्] बहुत दिनों तक रहनेवाला।

चिरस्मरणीय–वि० [सं०] (१) बहुत दिनों तक स्मरण रखने योग्य। (२) पूजनीय। प्रशंसनीय।

चिरहँटा†–संज्ञा पुं० [हिं० चिड़ी + हंता] चिड़ीमार। बहेलिया। व्याध। उ०—कतहुँ चिरहँटा पंखी लावा। कतहुँ पखंडी काठ नचावा।—जायसी।

चिराँदा–वि० [अनु० चिर चिर = लकड़ी आदि के जलने का शब्द] चिड़चिड़ा। थोड़ी थोड़ी बात पर बिगड़नेवाला।

चिराइता–संज्ञा पुं० दे० "चिरायता"।

चिराइन†–संज्ञा स्त्री० दे० "चिरायँध"।

चिराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चीरना] (१) चीरने का भाव या क्रिया। (२) चीरने की मज़दूरी।

चिराक†–संज्ञा पुं० दे० "चिराग"। उ०—सोहत चंद्र चिराक बीजना करत दसौं दिसि।—जयसिंह।

चिराग़–संज्ञा पुं० [फ़ा० चराग़] दीपक। दीआ।

क्रि० प्र०—गुल करना।—जलना।—जलाना।—बुझना।—बुझाना।

मुहा०—**चिराग़ का हँसना** = चिराग़ से फूल झड़ना। **चिराग़ को हाथ देना** = चिराग़ बुझाना। **चिराग़ गुल पगड़ी गायब** = मौका मिलते ही धन का उड़ा लिया जाना। **चिराग़ गुल करना** = (१) दीआ बुझाना। (२) किसी के वंश का विनाश करना। (३) रौनक़ मिटाना। **चिराग़ गुल होना** = (१) दीए का बुझ जाना। (२) रौनक़ मिटना। उदासी छाना। (३) किसी के वंश का विनाश होना। **चिराग़ जले** = अँधेरा होने पर। संध्या समय। **चिराग़ ठंढा करना** = चिराग़ बुझाना। **चिराग़ तले अँधेरा होना** = (१) किसी ऐसे स्थान पर बुराई होना जहाँ उसके रोकने का प्रबंध हो। जैसे, हाकिम के सामने अत्याचार होना, पुलिस के सामने चोरी होना, किसी उदार धनी के किसी संबंधी का भूखों मरना, इत्यादि, इत्यादि। (२) किसी ऐसे मनुष्य द्वारा कोई बुराई होना जिससे उसकी संभावना न हो। जैसे, किसी विद्वान् द्वारा कोई कुकर्म होना, इत्यादि। **चिराग़ दिखाना** = रोशनी दिखाना। सामने उजाला करना। **चिराग़ बढ़ाना** = चिराग़ बुझाना। **चिराग़ बत्ती करना** = दीआ जलाना। दीआ जलाने की तैयारी करना। **चिराग़ बत्ती का वक़्** = संध्या का समय। **चिराग़ ले कर ढूँढ़ना** = बड़ी छान बीन के साथ ढूँढ़ना। चारों ओर हैरान हो कर ढूँढ़ना। **चिराग़ से चिराग़ जलना** = एक को दूसरे से लाभ पहुँचना। परस्पर लाभ पहुँचना। **चिराग़ से फूल झड़ना** = चिराग़ की जलती हुई बत्ती में गोल गोल फुचड़े निकलना वा गिरना। चिराग़ से गुल झड़ना।

चिराग़दान—संज्ञा पुं० [अ०] दीयट। फ़तीलसोज़। शमादान।

चिराग़ी—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) चिराग़ जलाने का ख़र्च। किसी स्थान पर दीआबत्ती करते रहने का ख़र्च या मज़दूरी। (२) जुवारियों के अड्डे पर चिराग़ जलानेवालों की मज़दूरी जो बहुधा दाँव जीतनेवाला खिलाड़ी प्रत्येक दाँव जीतने पर देता है। (३) वह भेंट जो किसी मज़ार पर चढ़ाई जाती है।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—देना।

चिराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद पुनर्नवा। (२) चिरायता।

चिरातन—वि० [सं० चिरन्तन] (१) पुरातन। पुराना। (२) जीर्ण। उ०—हम तो तबही तें जोग लियो। पहिरि मेखला चीर चिरातन पुनि पुनि फेरि सिआए।—सूर।

चिराद्—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

चिराद—संज्ञा पुं० [सं० चिराद] बत्तक की जाति की एक प्रकार की बड़ी चिड़िया जिसका माँस स्वादिष्ट होता है।

चिराना—क्रि० स० [हिं० चीरना] चीरने का काम कराना। फड़वाना। जैसे, फोड़ा चिराना, लकड़ी चिराना।

वि० [सं० चिरंतन] (१) पुराना। पुरातन। उ०—भरेउ सो मानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना।—तुलसी। (२) जीर्ण।

यौ०—पुराना चिराना।

चिरायँध—संज्ञा पुं० [सं० चर्म + गंध] वह दुर्गंध जो चरबी, चमड़े, बाल, मांस आदि जीवों के अंगों के अंशों के जलने से फैलती है।

क्रि० प्र०—उड़ना।—उठना।—फैलना।—निकलना।

मुहा—**चिरायँध फैलना** = बदनामी फैलना।

चिरायता—संज्ञा पुं० [सं० चिरतिक्त वा चिरात्] दो ढाई हाथ ऊँचा एक पौधा जो हिमालय के किनारे कम ठंढे स्थानों में काश्मीर से भूटान तक होता है। खसिया की पहाड़ियों पर भी यह पौधा मिलता है। इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और तुलसी की पत्तियों के बराबर होती हैं। जाड़े के दिनों में इसमें फूल लगते हैं। सूखा पौधा (जड़, डंठल, फूल सब) औषध के काम में आता है। फूल लगने के समय पौधा उखाड़ा जाता है और दबा कर बाहर भेजा जाता है। नैपाल के मोरंग नामक स्थान से चिरायता बहुत आता है। चिरायते का सर्वांग कड़ुआ होता है, इसी से यह ज्वर में बहुत दिया जाता है। वैद्यक में यह दस्तावर, शीतल तथा ज्वर, कफ़, पित्त, सूजन, सन्निपात, खुजली, कोढ़ आदि को दूर करनेवाला माना जाता है। रक्त-शोधक ओषधियों में इसकी गणना है। डाक्टरी में भी इसका व्यवहार होता है। चिरायते की बहुतसी जातियाँ होती हैं। एक प्रकार का छोटा चिरायता दक्षिण में बहुत होता है। एक चिरायता कलपनाथ के नाम से प्रसिद्ध है जो सबसे अधिक कड़ुआ होता है। गीमा नाम का एक पौधा भी चिरायते ही की जाति का है जो सारे भारत में जलाशयों के किनारे होता है। दक्षिण देश के वैद्य और हकीम हिमालय के चिरायते की अपेक्षा शिला-रस वा शिलाजीत नाम का चिरायता अधिक काम में लाते हैं जो मदरास प्रांत के कई स्थानों में होता है।

पर्य्या०—भूनिंब। अनार्यतिक्त। कैरात। कांडतिक्तक। किरातक। किराततिक्त। चिरतिक्त। रामसेनक। सुतिक्तक। चिराटिका। कटुतिक्ता।

चिरायु—वि० [सं० चिरायुस्] बड़ी उम्रवाला। बहुत दिनों तक जीनेवाला। दीर्घायु।

संज्ञा पुं० देवता।

चिरारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चार] चिरौंजी। उ०—खारिक दाख अरु गरी चिरारी। पीड़ बदाम लेत बनवारी।—सूर।

चिराव—संज्ञा पुं० [हिं० चिरना] (१) चीरने का भाव वा क्रिया। (२) घाव जो चीरने से हो।

चिरिंटिका, चिरिंटी—संज्ञा स्त्री० दे० "चिरंटी"।

चिरिया†*—संज्ञा स्त्री० दे० "चिड़िया"।

चिरी*—संज्ञा स्त्री० दे० "चिड़िया"।

चिरु–संज्ञा पुं० [सं०] कंधे और बाँह का जोड़। मोढ़ा।

चिरैता†–संज्ञा पुं० दे० "चिरायता"।

चिरैया–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिड़िया] (१) दे० "चिड़िया"। (२) वर्षा का पुष्य नक्षत्र। (३) परिहत का सिरा जिसे जोतनेवाला पकड़ता है।

चिरौंजी–संज्ञा स्त्री० [सं० चार + बीज] पियार वा पियाल वृक्ष के फलों के बीज की गिरी। अचार के बीज की गिरी जो खाने में बड़ी स्वादिष्ट होती है और मेवों में समझी जाती है। यह किशमिश, बादाम आदि के साथ पकवानों और मिठाइयों में भी पड़ती है।

विशेष—दे० "पियार"।

चिर्भटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी।

चिर्री†–संज्ञा स्त्री० [सं० चिरिका = एक अस्त्र का नाम] बिजली। बज्र।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

चिलक–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिलकना] (१) आभा। कांति। द्युति। चमक। झलक। उ०—(क) कहै रघुनाथ वाके मुख की लुनाई आगे चिलक जुन्हाइन की चंद सरसानो है।—रघुनाथ। (ख) जब वाके रद की चिलक चमचमाति चहुँ कोति। मंद होति दुति चंद की चपति चंचला जोति।—शृंगार सत०। (ग) चिलक तिहारी चाहि के सूधो तिलक लगै न।—शृंगार सत०। (२) रह रह कर उठनेवाला दर्द। टीस। चमक। (३) एक बारगी उठ कर बंद हो जानेवाला दर्द। उ०—उठते बैठते कमर में चिलक होती है।

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

चिलकना–क्रि० अ० [हिं० चिल्ली = बिजली, या अनु०] (१) रह रह कर चमकना। चमचमाना। झलकना। (२) दर्द का रह रह कर उठना। (३) एक बारगी पीड़ा होकर बंद हो जाना। चमकना।

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

चिलका–संज्ञा पुं० [हिं० चिलक] चमकता हुआ चाँदी का सिक्का। रुपया।

चिलकाना†–क्रि० स० [हिं० चिलक] (१) चमकाना। झलकाना। (२) किसी वस्तु को इतना माँजना कि वह चमकने लगे। उज्ज्वल करना।

चिलगोजा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का मेवा। चीड़ वा सनोबर का फल।

विशेष—दे० "चीड़"।

चिलचिल–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिलकना] अभ्रक। अबरक। भोडल।

चिलड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] उलटा नाम का पकवान।

चिलता–संज्ञा पुं० [फ़ा० चिलतः] एक प्रकार का ज़िरहबकतर। एक प्रकार का कवच।

चिलबिल–संज्ञा पुं० [सं० चिलबिल्व] (१) एक बड़ा जंगली पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है और खेती के औज़ार बनाने के काम में आती है। इसकी पत्तियाँ जामुन की पत्तियों की सी होती हैं। (२) एक बड़ा पौधा जिसकी पत्तियाँ इमली की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं और पेड़ी डाल आदि बहुत हलकी और हरे रंग की होती हैं। यह बरसात में उगता है और चार पाँच हाथ तक ऊँचा होता है। यह पौधा तालों में भी होता है जहाँ उसके पानी के भीतर का भाग फूल कर खूब मोटा हो जाता है। इस भाग को खुखड़ी कहते हैं जिससे माली ब्याह के मौर, झालर, तोरण आदि बनाते हैं।

चिलबिला, चिलबिल्ला–वि० [सं० चल + बल] [स्त्री० चिलबिल्ली] चंचल। चपल। शोख। नटखट। उ०—यह बड़ा चिलबिला लड़का है।

चिलम–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] कटोरी के आकार का मिट्टी का एक बरतन जिसका निचला भाग चौड़ी नली के रूप में होता है। इस पर तमाकू और आग रख कर तमाकू पीते हैं। साधारणतः चिलम को हुक्के की नली के ऊपर बैठा कर तमाकू पीते हैं। पर कभी कभी चिलम की नली को हाथ में लेकर भी पीते हैं। तमाकू के अतिरिक्त गाँजा, चरस आदि भी चिलम पर रख कर पिए जाते हैं।

यौ०—चिलमचट। चिलम-बरदार।

मुहा०—चिलम पीना = चिलम पर रखे हुए तमाकू का धुआँ पीना। चिलम चढ़ाना = (१) चिलम पर तमाकू (गाँजा आदि) और आग रख कर उसे पीने के लिये तैयार करना। (२) गुलामी करना। चिलम भरना = दे० "चिलम चढ़ाना"।

चिलमगर्दा–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] हुक्के में हाथ भर की या उससे अधिक लंबी बाँस की नली जो चूल और जामिन से मिली होती है। इस पर चिलम रखी जाती है। (नैचाबंद)

चिलमचट–वि० [फ़ा० चिलम + हिं० चाटना] (१) बहुत अधिक चिलम पीनेवाला। वह जो चिलम पीने का बहुत व्यसनी हो। (२) इस प्रकार खींच कर चिलम पीनेवाला कि वह चिलम दूसरे के पीने योग्य न रहे।

चिलमची–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] देग के आकार का एक बरतन जिसके किनारे चारों ओर थाली की तरह दूर तक फैले होते हैं। इसमें लोग हाथ धोते और कुल्ली आदि करते हैं।

यौ०—चिलमची बरदार = हाथ मुँह धुलानेवाले नौकर।

चिलमन–संज्ञा पुं० [फ़ा०] बाँस की फट्टियों का परदा। चिक

क्रि० प्र०—डालना।—बाँधना।—लटकाना।

चिलमपोश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] धातु का एक झँझरीदार ढक्कन जिससे चिलम ढक देने से चिनगारी नहीं उड़ती।

चिलम-बरदार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] हुक्क़ा पिलानेवाला ख़िदमतगार।

चिलमीलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जुगनू। खद्योत। (२) बिजली। (३) एक प्रकार की कंठी।

चिलवाँस–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का फंदा जिससे चिड़ियाँ फँसाई जाती हैं।

चिलसी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का तमाकू जो काश्मीर में होता है। श्रीनगर के आसपास यह बहुत होता है। यह अप्रैल में बोया जाता है।

चिलहुल–संज्ञा पुं० [सं० चिल] एक प्रकार की छोटी मछली जो डेढ़ बालिश्त के लगभग होती है। यह सिंध, पंजाब, युक्त प्रांत और बंगाल की नदियों में पाई जाती है।

चिलिम †–संज्ञा स्त्री० दे० "चिलम"।

चिलमिलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गले में पहनने की एक प्रकार की माला। (२) जुगनू। (३) बिजली।

चिलिया–संज्ञा स्त्री० [सं० चिल] चिलहुल मछली।

चिलुआ–संज्ञा स्त्री० दे० "चेल्हवा"।

चिल्लड़–संज्ञा पुं० [सं० चिल = वस्त्र] जूँ की तरह का एक बहुत छोटा सफ़ेद रंग का कीड़ा जो मैले कपड़ों में पड़ जाता है। इस कीड़े के काटने से शरीर में बड़ी खुजली होती और छोटे छोटे दाने से पड़ जाते हैं।

क्रि० प्र०—पड़ना।—बीनना।

चिल्ल पों–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिल्लाना + अनु० पों] चिल्लाना। शोर गुल। पुकार। दोहाई।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।

चिल्लभक्ष्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] नख या नखी नाम का गंध-द्रव्य।

चिल्लवाँस–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिल्लाना] बच्चों का वह चिल्लाना जो जमुवा के रोग में होता है।

चिल्लवाना–क्रि० स० [हिं० चिल्लाना का प्रे०] चिल्लाने का काम दूसरे से कराना। चिल्लाने में प्रवृत्त करना।

चिल्ला–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) चालीस दिन का समय।

मुहा०—चिल्ले का जाड़ा = बहुत कड़ी सरदी।

विशेष—धन के पंद्रह, मकर पचीस। जाड़ा जानो दिन चालीस। इन्हीं चालीस दिनों के जाड़े को चिल्ले का जाड़ा कहते हैं।

(२) चालीस दिन का व्रत। चालीस दिन का बंधेज वा किसी पुण्य कार्य्य का नियम। (मुसल०)

क्रि० प्र०—खींचना।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक जंगली पेड़। (२) उर्द, मूँग वा रैंछे के मैदे की परौंठी वा घी चुपड़ कर सेंकी हुई रोटी। चीला। उलटा। (३) धनुष की डोरी। पतंचिका।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—उतारना।

संज्ञा पुं० [?] पगड़ी का छोर जिसमें कलाबतून का काम रहता है। तिल्ला।

चिल्लाना–क्रि० अ० [सं० चीत्कार] किसी प्राणी का ज़ोर से बोलना। मुँह से ऊँचा स्वर निकालना। शोर करना। हल्ला करना।

संयो० क्रि०—उठना।—पड़ना।

चिल्लाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिल्लाना] (१) चिल्लाने का भाव। (२) हल्ला। शोर। गुल।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

चिल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दोनों भौंहों के बीच का स्थान। (२) एक प्रकार का बथुआ साग जिसकी पत्तियाँ छोटी होती हैं।

चिल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] झिल्ली नाम का कीड़ा।

संज्ञा स्त्री० [सं० चिरिका = एक अस्त्र का नाम] बिजली। बज्र। चिर्री।—उ०—(क) चक्कहू तें, चिल्लिन ते, प्रलै की बिजुल्लिन तें जमजुत्थ जिल्लिन तें जगत उजेरो है।—पद्माकर। (ख) चिल्लिन को चाचा औ बिजुल्लिन को बाप बड़ो बाँकुरो बबा है बड़वानल अजब को।—पद्माकर।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लोध। (२) बथुआ साग।

चिल्हवाड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० चील] एक खेल जिसे लड़के पेड़ों पर चढ़ कर खेलते हैं। गिल्हर। गिलहर।

चिल्ही †–संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्ल] चील नाम की चिड़िया। उ०—चिकारी चहूँ ओर ते चाइ चिल्हीं।—सूदन।

चिवि–संज्ञा स्त्री० [सं०] चिबुक। ठोढ़ी।

चिविट–संज्ञा पुं० [सं०] चिउड़ा। चिड़वा।

चिवुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठुड्डी। ठोढ़ी। (२) मुचकुंद वृक्ष।

चिहुँकना*†–क्रि० अ० [सं० चमत्कृ, प्रा० चवँक्कि] चौंकना।

चिहुँटना*–क्रि० स० [सं० चिपिट, हिं० चिमटना] (१) चुटकी काटना। चुटकी से शरीर का मांस इस प्रकार पकड़ना जिसमें कुछ पीड़ा हो।

मुहा०—चित्त चिहुँटना = चित्त में संवेदना उत्पन्न करना। मर्म स्पर्श करना। चित्त में चुभना। उ०—लै चुभकी निकसै धँसै विहँसै अंग दिखाय। तकि तकि चित चिहुँटै खरी ऐंड़ भरी अँगिराय।—श्रृंगार सत०।

(२) चिपटना। लिपटना। उ०—बाल को लाल लई चिहुँटी रिस के मिस लाल सों बाल चिहूँटी।—देव।

चिहुँटनी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजा । घुँघची । चिरमिटी ।

चिहुँटी†–संज्ञा स्त्री० [?] चुटकी । चिकोटी । उ०—बाल को लाल लई चिहुँटी रिस के मिस लाल सों बाल चिहूँटी ।—देव ।

चिहुर*–संज्ञा पुं० [सं० चिकुर] सिर के बाल । केश । उ०—छूटे चिहुर बदन कुम्हिलाने ज्यों नलिनी हिमकर की मारी । —सूर ।

चिह्न–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चिह्नित] (१) वह लक्षण जिससे किसी चीज़ की पहचान हो । निशान । (२) पताका । झंडी । (३) किसी प्रकार का दाग या धब्बा ।

चिह्नधारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्यामा नाम की लता । कालीसर ।

चिह्नित–वि० [सं०] चिह्न किया हुआ । जिस पर चिह्न हो ।

चीँ, चीँ चीँ–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) पक्षियों अथवा छोटे बच्चों का बहुत महीन शब्द । (२) पक्षियों अथवा बच्चों का महीन स्वर में बहुत बोलना या शोर करना ।

मुहा०—चीं बोलना = अयोग्यता, अकर्मण्यता, वा अधीनता स्वीकार करना । दुर्बल होना ।

यौ०—चीँ चपड़ ।

चीँ चपड़–संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द या कार्य्य जो किसी बड़े या सबल के सामने प्रतिकार या विरोध के लिये किया जाय । जैसे, अगर ज़रा भी चीँ चपड़ करोगे तो हाथ पैर तोड़ कर रख दूँगा ।

चीँटवा†–संज्ञा पुं० दे० "चींटा" या "च्यूँटा" । उ०—राम मरै तो हम मरैँ नातर मरै बलाय । अबिनासी का चीँटवा, मरै न मारा जाय ।—कबीर ।

चीँटा–संज्ञा पुं० दे० "चिँउँटा" ।

चीँटी–संज्ञा स्त्री० दे० "चिँउँटी" ।

चीँता गोला–संज्ञा पुं० दे० "छीँटा गोला" ।

चीँथना–क्रि० स० दे० "चीथना" ।

चीक–संज्ञा स्त्री० [सं० चीत्कार] पीड़ा या कष्ट आदि के कारण बहुत ज़ोर से चिल्लाने का शब्द । चिल्लाहट ।

क्रि० प्र०—मारना ।

†संज्ञा पुं० [हिं० चिक] मांस बेचनेवाला । कसाई । बूचर ।

विशेष—प्रायः बूचरों की दूकानों पर आड़ के लिये चिकेँ टँगी रहती हैं, इसी से उन्हें चीक कहते हैं ।

संज्ञा पुं० दे० "कीच" या "कीचड़" ।

चीकट–संज्ञा पुं० दे० [हिं० कीचड़] (१) तेल का मैल । तलछट । (२) मटियार । लसार मिट्टी ।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) चिकट नाम का रेशमी कपड़ा । † (२) वह कपड़े या ज़ेवर आदि जो कोई मनुष्य अपने भांजे या भांजी के विवाह में अपनी बहन को देता है ।

वि० बहुत मैला या गंदा ।

चीकड़†–संज्ञा पुं० दे० "कीचड़" ।

चीकना†–वि० दे० "चिकना" ।

चीकना–क्रि० अ० [सं० चीत्कार] (१) पीड़ा या कष्ट आदि के कारण ज़ोर से चिल्लाना ।

संयो० क्रि०—उठना ।—पड़ना ।

(२) बहुत ज़ोर ज़ोर से बोलना । बहुत ऊँचे स्वर से बात करना ।

चीकर†–संज्ञा पुं० [देश०] कुएँ के ऊपर बना हुआ वह स्थान जिसमें मोट या चरस आदि से निकाला हुआ पानी गिराया जाता है और जहाँ से पानी नालियों द्वारा होकर खेतों में पहुँचता है ।

चीख–संज्ञा स्त्री० दे० "चीक" ।

चीखना–क्रि० स० [सं० चषण] किसी चीज़ को उसका स्वाद जानने के लिये, थोड़ी मात्रा में खाना या पीना ।

चीखना–क्रि० अ० दे० "चीकना" ।

चीखर, चीखल†–संज्ञा पुं० [हिं० चीकड़ (कीचड़)] (१) कीच । कीचड़ । उ०—जल दाध्या चीखल जला, बिरहा लागी आगि । तिनका बपुरा ऊबरा, गल पूरा के लागि ।—कबीर । (२) गारा । (डिं०) ।

चीखुर–संज्ञा पुं० [हिं० चिखुरा] गिलहरी ।

चीज़–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) वह जिसकी वास्तविक काल्पनिक अथवा संभावित परंतु दूसरों से पृथक् सत्ता हो । सत्तात्मक वस्तु । पदार्थ । वस्तु । द्रव्य । जैसे, (क) बहुत भूख लगी है, कोई चीज़ (खाद्य पदार्थ) हो तो लाओ । (ख) मेरे पास ओढ़ने के लिये कोई चीज़ (रज़ाई, दोहर या कोई कपड़ा) नहीं है । (ग) उनकी सब चीज़ें (लोटा, थाली, कपड़ा, किताबें आदि) हमारे यहाँ रक्खी हुई हैं ।

यौ०—चीज़ वस्तु = सामान । असबाब ।

(२) आभूषण । गहना । उ०—(क) वह चीज़ रख कर रुपए लाए हैं । (ख) लड़की के हाथ पैर नंगे हैं, इसे कोई चीज़ बनवा दो ।

यौ०—चीज़ वस्तु = ज़ेवर आदि ।

(३) गाने की चीज़ । राग । गीत । उ०—(क) कोई अच्छी चीज़ सुनाओ । (ख) उसने दो चीज़ें बहुत अच्छी सुनाई थीं । (४) विलक्षण वस्तु । विलक्षण जीव । उ०—(क) क्या कहें, मेरी अँगूठी गिर गई; वह एक चीज़ थी । (ख) आप भी तो एक चीज़ हैं । (५) महत्त्व की वस्तु । गिनती करने योग्य वस्तु । उ०—(क) काशी के आगे मथुरा क्या चीज़ है । (ख) उनके सामने ये क्या चीज़ हैं ।

चीठा†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चीकड़ (कीचड़)] मैल । उ०—कीड़े काठ

जु खाइया, खाया किनहूँ दीठ। छोत उपाई देखिया, भीतर जमिया चीठ।—कबीर।

चीठा†–संज्ञा पुं॰ दे॰ "चिट्ठा"। उ॰—नाम की लाज रामकरुनाकर, केहि न दिये कर चीठे।—तुलसी।

चीठी†–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "चिट्ठी"।

चीड़–संज्ञा पुं॰ [देश॰] (१) एक प्रकार का देशी लोहा। (२) जूते के लिये चमड़ा साफ़ करने की क्रिया। (मोचियों की परिभाषा)। (३) दे॰ "चीढ़"।

चीड़ा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] चीढ़ नाम का पेड़।

चीढ़–संज्ञा पुं॰ [सं॰ चीड़ा वा क्षीर = चीढ़] (१) एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ जो भूटान से काश्मीर और अफ़गानिस्तान तक बहुत अधिकता से होता है। इसके पत्ते सुंदर होते हैं और लकड़ी अंदर से नरम और चिकनी होती है जो प्रायः इमारत और सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। पानी पड़ने से यह लकड़ी बहुत जल्दी खराब हो जाती है। इस लकड़ी में तेल अधिक होता है इसलिये पहाड़ी लोग इसके टुकड़ों को जला कर उनसे मशाल का काम लेते हैं। इसकी लकड़ी औषध के काम में भी आती है। इसके गोंद को गंधा-बिरोजा कहते हैं। ताड़पीन (तेल) भी इसी वृक्ष से निकलता है। कुछ लोग चिलगोजे को इसीका फल बतलाते हैं पर चिलगोजा इसी जाति के दूसरे पेड़ का फल है। प्राचीन भारतीयों ने इसकी गणना गंधद्रव्य में की है और वैद्यक में इसे गरम, कासनाशक, चरपरा और कफनाशक कहा है। इसके अधिक सेवन से पित्त और कफ का दूर होना भी कहा गया है। इसे चील या सरल भी कहते हैं। (२) चीड़ नाम का देशी लोहा।

चीत*†–संज्ञा पुं॰ [सं॰ चित्त] चित्त। मन। दिल।

संज्ञा पुं॰ [सं॰ चित्रा] चित्रा नक्षत्र। उ॰—तुहि देखे पिय पलुहे कया। उतरा चीत बहुरि करि मया।—जायसी।

संज्ञा पुं॰ [सं॰] सीसा नामक धातु।

चीतकार†*–संज्ञा पुं॰ (१) दे॰ "चीत्कार"। (२) दे॰ "चित्रकार"।

चीतना–क्रि॰ स॰ [सं॰ चेत] [वि॰ चीता] (१) सोचना। विचारना। भावना करना। (२) चैतन्य होना। होश में आना। (३) स्मरण करना। याद करना।

क्रि॰ स॰ [सं॰ चित्र] चित्रित करना। तसवीर या बेल बूटे बनाना। उ॰—द्वार बुहारत फिरत अष्ट सिधि। कौरेन सथिया चीतत नव निधि।—सूर।

चीतर†–संज्ञा पुं॰ दे॰ "चीतल"।

चीतल–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चित्ती = लंबी धारी या दाग] (१) एक प्रकार का हिरन जिसके शरीर पर सफ़ेद रंग की चित्तियाँ या बुंदकियाँ होती हैं। यह मझोले कद का होता है और सारे भारत में प्रायः जल के किनारे झुंडों में पाया जाता है। इसके अयाल नहीं होती। इसकी मादा गर्भ धारण के आठ महीने बाद बच्चा देती है। (२) अजगर की जाति का पर उससे छोटा एक प्रकार का साँप जिसके शरीर पर छोटी छोटी सफ़ेद चित्तियाँ होती हैं। इसके आगे का भाग पतला और मध्य का बहुत भारी होता है। यह खरगोश, बिल्ली या बकरे के छोटे बच्चों को निगल जाता है। (३) एक प्रकार का सिक्का।

चीता–संज्ञा पुं॰ [सं॰ चित्रक] (१) बिल्ली की जाति का एक प्रकार का बहुत बड़ा हिंसक पशु जो प्रायः दक्षिणी एशिया और विशेषतः भारत के जंगलों में पाया जाता है। यह आकार में बाघ से छोटा होता है और इसकी गरदन पर अयाल नहीं होती। इसकी कमर बहुत पतली होती है और इसके शरीर पर लंबी, काली और पीली धारियाँ होती हैं जो देखने में सुंदर होती हैं। यह बहुत तेजी से चौकड़ी भरता और इसी प्रकार प्रायः हिरनों को पकड़ लेता है। यह साधारणतः बहुत हिंसक होता है और प्रायः पेट भरे रहने पर भी शिकार करता है। संध्या समय यह जलाशयों के किनारे छिपा रहता है और पानी पीनेवाले पशुओं को उठा ले जाता है। चीता मनुष्यों पर जल्दी आक्रमण नहीं करता, पर जब एक बार उसके मुहँ में आदमी का खून लग जाता है, तो फिर वह प्रायः गाँवों में उसी के लिये घुस जाता और मनुष्यों के बालकों को उठा ले जाता है। यह पेड़ पर नहीं चढ़ सकता पर पानी में बहुत तेज़ी से तैर सकता है। मादा एक बार में ३—४ तक बच्चे देती है। भारत में इसका शिकार किया जाता है। कहीं कहीं बड़े आदमी इसे दूसरे जानवरों का शिकार करने के लिये भी पालते हैं। इसका बच्चा पकड़ कर पाला भी जा सकता है। (२) एक प्रकार का बड़ा क्षुप जिसकी पत्तियाँ जामुन की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं। इसकी कई जातियाँ हैं जिनमें अलग अलग सफ़ेद, लाल, काले या पीले फूल लगते हैं। पर सफ़ेद फूलवाले चीते के सिवा और रंगों के फूलोंवाले चीते बहुत कम देखने में आते हैं। इसके फूल बहुत सुगंधित और जूही के फूलों से मिलते जुलते होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। इसकी छाल और जड़ ओषधि के काम में आती है। यह बहुत पाचक होता है। वैद्यक में इसे चरपरा, हलका, अग्निदीपक, भूख बढ़ानेवाला, रूखा, गरम और संग्रहणी, कोढ़, सूजन, बवासीर, खाँसी और यकृत् दोष आदि को दूर करनेवाला तथा त्रिदोषनाशक माना है। कहते हैं, लाल फूलवाले चीते की जड़ के सेवन से शरीर स्थूल हो जाता है और काले फूल के चीते की जड़ के सेवन से बाल काले हो जाते हैं।

पर्य्या०—चित्रक। अनल। वह्नि। विभाकर। शिखावान। शुष्मा। पावक। दारुण। शंबर। शिखी। हुतभुक्। पाची। इसके अतिरिक्त अग्नि के प्रायः सभी पर्य्याय इसके लिये व्यवहृत होते हैं।

†संज्ञा पुं० [सं० चित्त] चित्त। हृदय। दिल। उ०—अति अनंद गति ईंद्री जीता। जाको हरि बिन कबहुँ न चीता।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० चेत] संज्ञा। होश हवास। उ०—तिन को कहा परेखो कीजे कुबजा के मीता को। चढ़ि चढ़ि सेज सातहूँ सिंधू बिसरी जो चीता को।—सूर।

वि० [हिं० चेतना] सोचा हुआ। विचारा हुआ। जैसे, अब तो तुम्हारा चीता हुआ।

चीतावती†*-संज्ञा स्त्री० [सं० चेत] यादगार। स्मारकचिह्न।

चीत्कार-संज्ञा पुं० [सं०] चिल्लाहट। हल्ला। शोर। गुल। चिल्लाने का शब्द।

चीथड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० चीथना] फटे पुराने कपड़े का छोटा रद्दी टुकड़ा।

मुहा०—चीथड़ा लपेटना = फटा पुराना और रद्दी कपड़ा पहनना। चीथड़ों लगना = बहुत दरिद्र होना। इतना दरिद्र होना कि पहनने को केवल चीथड़े ही मिलें।

चीथना-क्रि० स० [सं० चीर्ण] टुकड़े टुकड़े करना। चोंथना। फाड़ना। (विशेषतः कपड़े के लिये)।

चीथरा-संज्ञा पुं० दे० "चीथड़ा"।

चीदः—वि० [फा०] चुना हुआ। छाँटा हुआ। (क्व०)

चीन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) झंडी। पताका। (२) सीसा नामक धातु। नाग। (३) तागा। सूत। (४) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। (५) एक प्रकार का हिरन। (६) एक प्रकार की ईख। (७) एक प्रकार का साँवाँ अन्न। दे० "चेना"। (८) एक प्रसिद्ध पहाड़ी देश जो एशिया के दक्षिण पूर्व में है। इसमें अठारह प्रांत हैं और इसकी राजधानी पेकिंग है। इसका साम्राज्य बड़ा और मध्य एशिया तक फैला हुआ है। मंचूरिया, मंगोलिया, तिबत, पूर्वी तुर्किस्तान आदि इसी के अधीन हैं। अभी हाल में यहाँ प्रजातंत्र राज्य हुआ है। यहाँ के अधिकांश निवासी प्रायः बौद्ध हैं। चीन के निवासी अपनी भाषा में अपने देश को "चंगकूह" कहते हैं। कदाचित् इसी लिये भारत तथा फारस के प्राचीन निवासियों ने इस देश का नाम अपने यहाँ "चीन" रख लिया था। चीन देश का उल्लेख महाभारत, मनुस्मृति, ललितविस्तर आदि ग्रंथों में बराबर मिलता है। यहाँ के रेशमी कपड़े भारत में चीनांशुक नाम से इतने प्रसिद्ध थे कि रेशमी कपड़े का नाम ही "चीनांशुक" पड़ गया है। चीन में बहुत प्राचीन काल का क्रमबद्ध इतिहास सुरक्षित है। ईसा से २६५० वर्ष पूर्व तक के राजवंश का पता चलता है। चीन की सभ्यता बहुत प्राचीन है, यहाँ तक कि यूरोप की सभ्यता का बहुत कुछ अंश—जैसे पहनावा, बैठने और खाने पीने आदि का ढंग, पुस्तक छापने की कला आदि—चीन से लिया गया है। यहाँ ईसा के २१७ वर्ष पूर्व से बौद्ध धर्म का संचार हो गया था, पर ईसवी सन् ६१ में मिंगती राजा के शासनकाल में जब कि भारतवर्ष से ग्रंथ और मूर्त्तियाँ गईं, लोग बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित होने लगे। सन् ६७ में कश्यप मतंग नामक एक बौद्ध पंडित चीन में गए और उन्होंने 'द्वाचत्वारिंशत् सूत्र' का चीनी भाषा में अनुवाद किया। तब से बराबर चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार बढ़ता गया। चीन से झुंड के झुंड यात्री विद्याध्ययन के लिये भारतवर्ष में आते थे। चीन में अब तक कई स्तूप पाए जाते हैं, जिनके विषय में चीनियों का कथन है कि वे सम्राट् अशोक के बनवाए हैं।

यौ०—चीन की दीवार = एक प्रसिद्ध दीवार जिसे ईसा से प्रायः दो सौ पूर्व एक चीनी सम्राट् ने उत्तरीय जातियों के आक्रमण से अपने देश की रक्षा करने के लिये बनवाया था। यह दीवार प्रायः १५०० मील लंबी है और बहुत ऊँची, चौड़ी और दृढ़ बनी है। इसका कुछ अंश मंगोलिया और चीन देश की विभाजक सीमा है। इसकी गणना संसार के सात सब से अधिक आश्चर्य्यदायक पदार्थों (सप्ताश्चर्य्य) में की जाती है।

मुहा०—चीन का, या चीनी का बरतन या खिलौना आदि = दे० "चीनी मिट्टी"।

(९) उक्त देश का निवासी।

‡ संज्ञा पुं० (१) दे० "चिह्न"। (२) दे० "चुनन"।

चीनक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चेना नामक अन्न। (२) कँगनी नामक अन्न। (३) चीनी कपूर।

चीनकपूर-संज्ञा पुं० [सं०] चीनी कपूर।

चीनज-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का इस्पात लोहा जो चीन से आता है।

चीनना†-क्रि० स० दे० "चीन्हना"। उ०—द्वादश धनुष द्वादशै बिष्का मनमोहन षटै चिबुक चिह्न चित चीन।—सूर।

चीनपिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंदूर। सेंदुर। (२) इस्पात लोहा।

चीनवंग-संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु।

चीनांशुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की लाल बनात जो पहले चीन से आती थी। (२) चीन से आनेवाला एक प्रकार का कपड़ा।

चीना-संज्ञा पुं० [हिं० चीन] (१) चीन देशवासी। (२) एक तरह का साँवाँ।

विशेष—दे० "चेना"।

संज्ञा पुं० [सं० चिह्न] एक प्रकार का सफ़ेद कबूतर जिसके शरीर पर लाल या काली चित्तियाँ होती हैं।

वि० चीन देश संबंधी। चीन देश का। जैसे, चीना बादाम।

चीनाक—संज्ञा पुं० [सं०] चीनी कपूर।

चीना ककड़ी—संज्ञा पुं० [सं० चीना + कर्करी] एक प्रकार की छोटी ककड़ी। वैद्यक में इसे शीतल, मधुर, रुचिकारक, भारी, वातवर्द्धक, पित्तरोग-नाशक और दाहशोष आदि को हरनेवाला कहा है।

चीनाचंदन—संज्ञा पुं० [हिं० चीना + चंदन] एक प्रकार का पक्षी जो दक्षिण-भारत में पाया जाता है। इसके पीले शरीर पर काली धारियाँ होती हैं और इसका स्वर मनोहर होता है। मधुर-भाषी होने के कारण यह पाला जाता है।

चीना बादाम—संज्ञा पुं० [हिं० चीन + फ़ा० बादाम] मूँगफली।

चीनिया—वि० [देश०] चीन देश का। चीन देश संबंधी।

चीनी—संज्ञा स्त्री० [सं० (देश) + ई (प्रत्य०)] सफ़ेद रंग का एक प्रसिद्ध मीठा पदार्थ जो चूर्ण के रूप में होता है और ईख के रस, चुकंदर, खजूर आदि कई पदार्थों से बनाया जाता है। इसका व्यवहार प्रायः मिठाइयाँ बनाने और पीने के लिये दूध या पानी आदि को मीठा करने में होता है। तरल पदार्थ में यह बहुत सरलता से घुल जाती है।

विशेष—भारतवर्ष में चीनी केवल ईख के रस से ही उसको बार बार उबाल और साफ़ करके बनाई जाती है। पर संसार के अन्य भागों में यह और भी बहुत से पौधों के मीठे रस से और विशेषतः चुकंदर के रस से बनाई जाती है। जिस देशी चीनी में मैल अधिक हो उसे "कच्ची चीनी" और जिसमें मैल कम हो उसे "पक्की चीनी" कहते हैं। इधर कुछ दिनों से भारत में विलायती चीनी भी आने लगी है, जिसका व्यवहार बहुत से हिंदू धार्म्मिक दृष्टि से अनुचित समझते हैं। चीनी की खपत भारतवर्ष में अपेक्षाकृत बहुत अधिक होती है। खांड, राब, गुड़ आदि इसी के पूर्व और अपरिष्कृत रूप हैं। प्राचीन भारतियों ने इसकी गणना मंगल-द्रव्यों में की है। सुश्रुत के अनुसार ईख का रस उबाल कर बनाए हुए पदार्थ ज्यों ज्यों साफ़ होकर राब, गुड़, चीनी, मिसरी आदि बनते हैं त्यों त्यों वे उत्तरोत्तर शीतल, स्निग्ध, भारी, मधुर और तृष्णा शांत करनेवाले होते जाते हैं।

वि० चीन देश संबंधी। चीन देश का। जैसे, चीनी मिट्टी, कबाब चीनी, चीनी भाषा।

चीनी कपूर—संज्ञा पुं० [हिं० चीन + सं० कर्पूर] एक प्रकार का कपूर।

चीनी कबाब—संज्ञा स्त्री० दे० "कबाबचीनी"।

चीनी चंपा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत उत्तम केला जो आकार में छोटा होता है। इसी को 'चिनिया केला' भी कहते हैं।

चीनी मिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीनी (वि०) + मिट्टी] एक प्रकार की मिट्टी जो पहले पहल चीन के किंग-वि-चिन् नामक पहाड़ से निकली थी और अब अन्य देशों में भी कहीं कहीं पाई जाती है। इसके ऊपर पालिश बहुत अच्छी होती है और इससे तरह तरह के खिलौने, गुलदान और छोटे बड़े बरतन बनाए जाते हैं जो "चीन के" या "चीनी के" कहलाते हैं। आज कल इस प्रकार की मिट्टी मध्य प्रदेश तथा बंगाल के कुछ जिलों में भी पाई जाती है।

चीनी मोर—संज्ञा पुं० [हिं० चीनी + मोर] सोहन चिड़िया की जाति का एक पक्षी जो संयुक्त प्रांत, बंगाल और आसाम में अधिकता से होता है। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है, इसलिये अँगरेज़ प्रायः इसका शिकार करते हैं।

चीन्ह†—संज्ञा पुं० दे० "चिह्न"।

चीन्हना†—क्रि० स०[सं० चिह्न] पहचानना।

यौ०—चीन्हा परिचय = जान पहचान।

चीन्हा†—संज्ञा पुं० दे० "चिह्न"।

चीप—संज्ञा० स्त्री० [देश०] (१) चार अंगुल की एक लकड़ी जो जूते के कलबूत में सबसे पीछे भरी या चढ़ाई जाती है। (चमारों की परि०)। (२) ज़मीन में से निकली हुई मिट्टी का वह अंश जो एक बार फावड़ा चलाने से खुद कर निकल आवे। (३) दे० "चेप"।

चीपड़—संज्ञा पुं० [हिं० कीचड़] वह सफ़ेद लसदार पदार्थ जो आँख के कोनों से निकलता है। आँख का कीचड़।

चीफ़—संज्ञा पुं० [अं०] बड़ा सरदार या राजा, विशेषतः किसी जाति वा प्रांत का अधिकारप्राप्त प्रधान।

यौ०—रूलिंग चीफ़ = (भारतवर्ष में) वह राजा जिसे अपने राज्य के आंतरिक कार्य्यों के संबंध में पूर्ण अधिकार हो।

वि० प्रधान। श्रेष्ठ। बड़ा। जैसे, चीफ़ एडीटर।

चीफ़ कमिश्नर—संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह प्रधान अधिकारी जिसको किसी कार्य्य करने का अधिकार-पत्र मिला हो। (२) किसी सूबे या कई कमिश्नरियों का प्रधान अधिकारी।

विशेष—चीफ़ कमिश्नर का पद लेफ्टिनेंट गवर्नर (छोटे लाट) के पद से कुछ छोटा समझा जाता है और उसके अधिकार में स्वतंत्र प्रांत होता है। इसकी नियुक्ति स्वयं गवर्नर-जेनरल-इन-कौंसिल के द्वारा होती है और वह गवर्नर-जेनरल का विशिष्ट अधिकार-प्राप्त प्रतिनिधि होता है। सीमा-प्रांत तथा मध्य प्रदेश आदि प्रांत चीफ़ कमिश्नर के अधीन हैं।

चीफ़ कोर्ट—संज्ञा पुं० [अं०] किसी प्रांत का प्रधान न्यायालय।

विशेष—भारतवर्ष के पंजाब तथा दक्षिणी बरमा की सबसे बड़ी अदालत 'चीफ़ कोर्ट' कहलाती है। इसके चीफ़ जज

और जजों की नियुक्ति गवर्नर-जेनरल-इन-कौंसिल द्वारा होती है।

चीफ़ जज–संज्ञा पुं० [अं०] चीफ़ कोर्ट के जजों में प्रधान। चीफ़-कोर्ट का प्रधान जज।

चीफ़ जस्टिस–संज्ञा पुं० [अं०] हाई कोर्ट का प्रधान जज।

चीमड़–वि० [हिं० चमड़ा] जो खींचने, मोड़ने या झुकाने आदि से न फटे या टूटे। जैसे, चीमड़ कपड़ा, चीमड़ कागज़, चीमड़ लकड़ी, आदि।

विशेष—यह विशेषण केवल उन्हीं पदार्थों के लिये व्यवहृत होता है जो खींचने से बढ़ या मोड़ने अथवा झुकाने से टूट सकते हों।

संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मक] अमलतास की जाति का पर बहुत छोटा, एक प्रकार का पौधा जिसके बीज दस्तावर होते हैं और आँख आने पर पीस कर आँखों में डाले जाते हैं। इसे चाकसू या बनार भी कहते हैं।

चीमर–संज्ञा पुं० और वि० दे० "चीमड़"।

चीयाँ–संज्ञा पुं० दे "चियाँ"।

चीर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वस्त्र। कपड़ा। उ०—(क) प्रातकाल असनान करन को यमुना गोपि सिधारी। लै कै चीर कदंब चढ़े हरि बिनवत हैं ब्रजनारी।—सूर। (ख) कीके कागर ज्यों नृप चीर विभूषन उपमा अंगन पाई।—तुलसी। (ग) चीर मध्ये ज्यों तंतु है तंतु मध्ये ज्यों चीर। ज्यों जग मध्ये ब्रह्म है ब्रह्म मध जगत कबीर।—कबीर। (२) वृक्ष की छाल। (३) पुराने कपड़े का टुकड़ा। चिथड़ा। लत्ता। (४) गौ का थन। (५) चार लड़ियोंवाली मोतियों की माला। (६) मुनियों, विशेषतः बौद्ध भिक्षुकों के पहनने का कपड़ा। (७) एक बड़ा पक्षी जो प्रायः तीन फुट लंबा होता है और जिसका शिकार किया जाता है। यह कमाऊँ, गढ़वाल तथा अन्य पहाड़ी जिलों में पाया जाता है। इसकी दुम लंबी और बहुत ख़ूबसूरत होती है। यह 'चीर चीर' शब्द करता है, इसीसे इसे चीर कहते हैं। (८) धूप का पेड़।

विशेष—दे० "चीड़"।

(९) मथौथ। छप्पर का मँगरा। (१०) सीसा नामक धातु।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चीरना] (१) चीरने का भाव वा क्रिया।

यौ०—चीर फाड़ = चीरने या फाड़ने का भाव वा क्रिया।

(२) चीर कर बनाया हुआ शिगाफ़ या दरार।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

(३) कुश्ती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब जोड़ (विपक्षी) पीछे से कमर पकड़े होता है। इसमें दाहिने हाथ से जोड़ का दाहिना हाथ और बाएँ से बायाँ हाथ पकड़ कर पहलवान उसके दोनों हाथों को अलग करता हुआ निकल आता है।

चीरक–संज्ञा पुं० [सं०] लिखित प्रमाण के दो भेदों में से एक। विकृत लेख।

चीर-चरम†*–[सं० चीरचर्म] बाघंबर। मृगचर्म। मृगछाला।

चीरना–क्रि० स० [सं० चीर्ण = चीरा हुआ] [संज्ञा चीरा] किसी पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान तक एक सीध में योंही अथवा किसी धारदार वा दूसरी चीज़ से धँसा या फाड़ कर खंड या फांक करना। फाड़ना। विदीर्ण करना। जैसे, आरी से लकड़ी चीरना, नश्तर से घाव चीरना, नाव का पानी चीरना, दोनों हाथों से भीड़ चीरना, आदि।

यौ०—चीरना फाड़ना।

मुहा०—माल (या रुपया आदि) चीरना = किसी प्रकार विशेषतः कुछ अनुचित रूप से बहुत धन कमाना।

चीरनिवसन–संज्ञा० पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक देश का नाम जो कूर्म विभाग के ईशान कोण में बतलाया जाता है। (२) उक्त देश का निवासी।

चीरल्लि–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का पक्षी।

चीरपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चेंच नाम का साग।

चीरपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] साल का पेड़।

चीरफाड़–संज्ञा स्त्री० [हिं० चीर + फाड़] (१) चीरने फाड़ने का काम। (२) चीरने फाड़ने का भाव।

चीरवासा–संज्ञा पुं० [सं० चीरवासस्] (१) शिव। महादेव। (२) यक्ष।

चीरा–संज्ञा पुं० [हिं० चीरना] (१) एक प्रकार का लहरियेदार रंगीन कपड़ा जो पगड़ी बनाने के काम में आता है।

क्रि० प्र०—बाँधना।—बनाना।

यौ०—चीराबंद।

(२) गाँव की सीमा पर गाड़ा हुआ पत्थर या खंभा आदि।

(३) चीर कर बनाया हुआ क्षत वा घाव।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।—लगाना।

मुहा०—चीरा उतारना या तोड़ना = (किसी पुरुष का स्त्री के साथ) प्रथम समागम करना। कुमारी का कौमार नष्ट करना।

यौ०—चीराबंद।

चीराबंद–संज्ञा पुं० [हिं० चीरा = कपड़ा + फ़ा० बंद] चीरा बाँधनेवाला। जो लोगों के लिये चीरे बाँध कर तैयार करता हो।

वि० स्त्री० [हिं० चीरा (क्षत) + फ़ा० बंद] कुमारी। जिसने पुरुष के साथ समागम न किया हो। (बाज़ारू)।

चीराबंदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चीरा = पगड़ी का कपड़ा + फ़ा० बंदी] एक प्रकार की बुनावट जो पगड़ी बनाने के लिये ताश के कपड़े पर कारचोबी के साथ की जाती है। इस बुनावट की पगड़ी कुछ जातियों में विवाह के समय वर को पहनाई जाती है।

चीरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] झींगुर। झिल्ली।

चीरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बदरीनारायण के निकट की एक प्राचीन नदी का नाम जिसके पास वैवस्वत मनु ने तपस्या की थी। इसका नाम महाभारत में आया है।

चीरितच्छया—संज्ञा स्त्री० [सं०] पालक का साग।

चीरी†—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) झींगुर। झिल्ली। (२) एक प्रकार की छोटी मछली।

†*संज्ञा स्त्री० [हिं० चिड़िया] चिड़िया। पक्षी। उ०—सासति सहत दास कीजे पेखि परिहास चीरी को मरन खेलु बालकनि को सोहै।—तुलसी।

‡संज्ञा स्त्री० दे० "चीढ़"।

चीरीवाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा। मनु के मत से नमक चुरानेवाला मनुष्य दूसरे जन्म में इसी योनि में जन्म लेता है।

चीरु†—संज्ञा पुं० दे० "चीर"।

चीरुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का फल जिसे वैद्यक में रुचिकर, दाहजनक और कफ़-पित्त-वर्द्धक माना है।

चीरू†—संज्ञा पुं० [सं० चीर] लाल रंग का सूत जो विदेश से आता है।

चीर्ण—वि० [सं०] फाड़ा या फटा हुआ। चीरा या चिरा हुआ।

चीर्णपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीम का पेड़। (२) खजूर का पेड़।

चील—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्ल] गिद्ध और बाज आदि की जाति की पर उनसे कुछ दुर्बल एक प्रसिद्ध बड़ी चिड़िया जो संसार के प्रायः सभी गरम देशों में पाई जाती है और कई प्रकार और रंगों की होती है। यह बहुत तेज़ उड़ती है और आसमान में बहुत ऊँचाई पर प्रायः बिना पर हिलाए चक्कर लगाया करती है। यह कीड़े, मकोड़े, चूहे, मछलियाँ, गिरगिट और छोटे छोटे पक्षी खाती है। यह अपने शिकार को देख कर तिरछे उतरती है और बिना ठहरे हुए झपट्टा मार कर उसे लेती हुई आकाश की ओर निकल जाती है। बाज़ारों में मछली और मांस की दूकानों के आस पास प्रायः बहुत सी चीलें बैठी रहती हैं और रास्ता-चलते लोगों के हाथ से झपट्टा मार कर खाद्य पदार्थ ले जाती हैं। यह ऊँचे ऊँचे वृक्षों पर अपना घोंसला बनाती है और पूस माघ में तीन चार अंडे देती है। अपने बच्चों को यह दूसरे पक्षियों के बच्चे लाकर खिलाती है। यह बहुत ज़ोर से चीं चीं शब्द करती है, इसी से इसका नाम चिल्ल या चील पड़ा है। हिंदू लोग अपने मकानों पर इसका बैठना अशुभ समझते हैं और बैठते ही इसे तुरंत उड़ा देते हैं।

पर्य्या०—आतापी। शकुनि। खभ्रांत। कंठनीड़क। चिलंतन।

यौ०—चील झपट्टा = (१) किसी चीज़ को औचक में झपट्टा मार कर लेने की क्रिया। (२) लड़कों का एक खेल जिसमें वे परस्पर एक दूसरे के सिर पर, उसकी टोपी उतार कर धौल लगाते हैं।

मुहा०—चील का मूत = वह चीज़ जिसका मिलना बहुत कठिन, प्रायः असम्भव हो।

चीलड़—संज्ञा पुं० दे० "चीलर"।

चीलर—संज्ञा पुं० [देश०] जूँ की तरह का पर सफ़ेद रंग का एक छोटा कीड़ा जो मैले कपड़ों में पड़ जाता है। दे० "चिल्लड़"।

क्रि० प्र०—पड़ना।

चीलवा†—संज्ञा पुं० [देश०] चिलड़ा नाम का पकवान।

विशेष—दे० "उलटा"।

चीला—संज्ञा पुं० दे० "चिलड़ा" या "चिल्ला"।

चीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झिल्ली। झींगुर।

चीलु—संज्ञा पुं० [सं०] आड़ू की तरह का एक प्रकार का पहाड़ी मेवा।

चीलुक—संज्ञा पुं० [सं०] झिल्ली। झींगुर।

चीलह—संज्ञा स्त्री० दे० "चील" (पक्षी)।

चीलहड़, चीलहर—संज्ञा पुं० दे० "चीलर"।

चीलही†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का तंत्रोपचार जिसे बालकों के कल्याणार्थ स्त्रियाँ करती हैं। उ०—भनै रघुराज मुख चूमति चरण चापि चील्ही करवाय राई लोन उतरायो है।—रघुराज।

चीवर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) योगियों, संन्यासियों वा भिक्षुकों का फटा पुराना कपड़ा। (२) बौद्ध संन्यासियों के पहनने के वस्त्र का ऊपरी भाग।

विशेष—बौद्ध-संन्यासियों के पहनने का वस्त्र दो भागों में होता है, ऊपरी भाग को चीवर और नीचे के भाग को निवास कहते हैं।

चीवरी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बौद्ध भिक्षुक। (२) भिक्षुक। भिखमंगा।

चीस—संज्ञा स्त्री० दे० "टीस"।

चीह†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चीख़] चिल्लाहट। चीत्कार।

चुँगना—क्रि० स० दे० "चुगना"।

चुंगल—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + अंगुल। वा फ़ा० चंगाल] (१) चिड़ियों वा जानवरों का पंजा जो कुछ टेढ़ा वा झुका हुआ होता है। चंगुल। उ०—ज्यों छुधित बाज लखि गन कुलंग। चुंगल चपेट करि देत भंग।—सूदन। (२) मनुष्य के पंजे की वह स्थिति जो उँगलियों को बिना हथेली से लगाए किसी वस्तु को लेने वा पकड़ने में होती है। बटोरा हुआ पंजा। बकोटा। चंगुल। उ०—चुंगल भर आटा साँईं को दो।

मुहा०—चुंगल में फँसना = वश में आना। क़ाबू में होना। पकड़ में आना।

चुंगली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] नाक में पहनने का एक आभूषण जिसे 'समथा' भी कहते हैं। एक प्रकार की नथ।

चुँगवाना–क्रि॰ स॰ दे॰ "चुगवाना"।

चुँगाना–क्रि॰ स॰ दे॰ "चुगाना"।

चुंगी–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चुंगल] (१) चुंगल भर वस्तु। चुटकी भर चीज़।

यौ॰—चुंगी पैंठ=वह पैंठ या बाज़ार जिसमें हर एक दूकानदार से ज़र्मीनदार को चुंगल भर चीज़ मिलती हो।

(२) वह महसूल जो शहर के भीतर आनेवाले बाहरी माल पर लगता हो।

चुँघाना–क्रि॰ स॰ [हिं॰] चुसाना। चुसा कर पिलाना। उ॰—अब न तो कुछ शीत उष्ण में बचाव करना पड़ेगा और न भूख प्यास के समय दूध ही चुँघाना पड़ेगा, ये सिद्ध लोगों के दिए हुए धागे और यंत्र आपही बालक की रक्षा करेंगे।—श्रद्धाराम।

चुंच†–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "चोंच"।

चुंचु–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) छछूँदर। (२) वैदेहिक स्त्री और ब्राह्मण से उत्पन्न एक संकर जाति।

संज्ञा स्त्री॰ एक बूटी वा पौधा। चिनियारी।

चुंचुक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] बृहत्संहिता के अनुसार नैऋत्य कोण पर स्थित एक देश।

चुंचुरी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह जूआ जो इमली के चिंओं से खेला जाय।

चुंचुल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम जो संगीत शास्त्र का बड़ा भारी पंडित था।

चुंचुली–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "चुंचुरी"।

चुंटली†–संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] घुँघची।

चुंटा–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "चुंडा"।

चुंडा–संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ अल्प॰ चुंडी] कुआँ। कूप।

चुंडित*–वि॰ [हिं॰ चुंडी] चुटियावाला। चुंडीवाला। उ॰—योगी कहै योग है नीको द्वितीया और न भाई। चुंडित मुंडित मौन जटाधरि तिनहुँ कहाँ सिधि पाई।—कबीर।

चुंडी–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "चुंदी"।

चुँदरी†–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "चुनरी"।

चुंदी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] कुटनी। दूती।

संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ चूड़ा] बालों की शिखा जिसे हिंदू सिर पर रखते हैं। चुटैया।

चुँधलाना†–क्रि॰ अ॰ [हिं॰ चौ=चार+अंध=अंधा] आँखों का सहसा अधिक प्रकाश के सामने पड़ने के कारण स्तब्ध होना। चौंधना। चकाचौंध होना। आँखों का तिलमिलाना।

चुंधा–वि॰ [हिं॰ चौ=चार+अंध] [स्त्री॰ चुंधी] जिसे सुझाई न पड़े। छोटी छोटी आँखोंवाला।

चुँधियाना–क्रि॰ अ॰ दे॰ "चुँधलाना"।

चुंबक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) वह जो चुंबन करे। (२) कामुक। कामी। (३) धूर्त्त मनुष्य। (४) ग्रंथों को केवल इधर उधर उलटनेवाला। विषय को अच्छी तरह न समझनेवाला। (५) पानी भरते समय घड़े के मुँह पर बँधा हुआ फंदा। फाँस। (६) एक प्रकार का पत्थर वा धातु जिसमें लोहे को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति होती है। चुंबक दो प्रकार का होता है—एक प्राकृतिक, दूसरा कृत्रिम। प्राकृतिक चुंबक एक प्रकार का लोहा मिला हुआ पत्थर होता है जो बहुत कम मिलता है। इससे कृत्रिम वा बनावटी चुंबक ही अधिक देखने में आता है जो या तो घोड़े की नाल के आकार का बनता है या सीधे छड़ के आकार का। यदि चुंबक के छड़ को लोहे के चूर के ढेर में डालें तो दिखाई पड़ेगा कि लोहे का चूर उस छड़ में यहां से वहाँ तक बराबर नहीं लिपटता बल्कि दोनों छोरों पर सबसे अधिक लिपटता है। इन दोनों छोरों को आकर्षण-प्रांत कहते हैं। छड़ के मध्य भाग को मध्य वा शून्य प्रांत कहते हैं। कभी कभी किसी छड़ के आकर्षण प्रांत दो से अधिक होते हैं। यदि किसी चुंबक-शलाका को उसके मध्य भाग (मध्याकर्षण केंद्र) पर से ऐसा ठहरावें कि वह चारों ओर घूम सके तो वह घूम कर उत्तर-दक्खिन रहेगी अर्थात् उसका एक सिरा उत्तर की ओर दूसरा दक्खिन की ओर रहेगा। ध्रुवदर्शक यंत्र में इसी प्रकार की शलाका लगी रहती है। पर ध्यान रखना चाहिए कि शलाका का यह उत्तर और दक्षिण हमारे भौगोलिक उत्तर-दक्षिण से ठीक ठीक मेल नहीं खाता, कहीं ठीक उत्तर से कई अंश पूर्व और कहीं पश्चिम की ओर होता है। इस अंतर को चुंबक-प्रवृत्ति कहते हैं और इसे निकालने के लिये भी एक यंत्र होता है। यह चुंबक-प्रवृत्ति पृथ्वी के भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न होती है जिसका हिसाब-किताब जहाज़ी रखते हैं। इसके अतिरिक्त किसी स्थान की यह चुंबक प्रवृत्ति सब काल में एक सी नहीं रहती, शताब्दियों के हेर-फेर के अनुसार कुछ भौतिक परिवर्त्तनों के कारण वह बदला करती है। किसी चुंबक का एक प्रांत दूसरे चुंबक के उसी प्रांत को आकर्षित न करेगा अर्थात् एक चुंबक-शलाका का उत्तर प्रांत दूसरी चुंबक-शलाका के उत्तर प्रांत को आकर्षित न करेगा, दक्षिण प्रांत को करेगा। जिस वस्तु को चुंबक के दोनों प्रांत आकर्षित करें वह स्थायी चुंबक नहीं है, केवल आकर्षित होने की शक्ति रखनेवाला है। जैसे, साधारण लोहा आदि। स्थायी चुंबक के पास लोहे का टुकड़ा लाने से उसमें भी चुंबक गुण आ जायगा अर्थात् वह भी दूसरे लोहे को आकर्षित कर सकेगा। ऐसे चुंबक को अस्थायी चुंबक कहते हैं। इस्पात में यद्यपि चुंबक-शक्ति अधिक नहीं दिखाई देती पर एक बार यदि उसमें चुंबक-शक्ति आ जाती है तो फिर वह जल्दी नहीं जाती। इसीसे जितने कृत्रिम स्थायी चुंबक मिलते हैं वे इस्पात ही के होते

हैं। कृत्रिम चुंबक या तो चुंबक के संसर्ग द्वारा बनाए जाते हैं अथवा इस्पात की छड़ में विद्युत्प्रवाह दौड़ाने से। विद्युत्प्रवाह द्वारा बड़े शक्तिशाली चुंबक तैयार होते हैं।

चुंबन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चुंबनीय, चुंबित] प्रेम के आवेग में होंठों से (किसी दूसरे के) गाल आदि अंगों को स्पर्श करने वा दबाने की क्रिया। चुम्मा। बोसा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

चुंबना*–क्रि० स० [सं० चुंबन] (१) चूमना। बोसा लेना। उ०—कबहुँक माखन रोटी लै कै खेल करत पुनि माँगत। मुख चुंबत जननी समझावत आय कंठ पुनि लागत।—सूर। (२) स्पर्श करना। छूना। उ०—धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रवि ससि दुति निंदत।—तुलसी।

चुंबा–संज्ञा पुं० दे० "सुंबा"। (लश०)

चुंबित–वि० [सं०] (१) चूमा हुआ। (२) प्यार किया हुआ। (३) स्पर्श किया हुआ। छुआ हुआ।

चुंबी–वि० [सं०] चूमनेवाला। जो चूमें।

विशेष—यौगिक शब्द बनाने में इसका प्रयोग अधिक होता है जैसे, गगनचुंबी।

चुँभना*†–क्रि० अ० दे० "चुभना"।

चुअना†*–क्रि० अ० दे० "चूना"।

चुआ–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी गेहूँ।

संज्ञा पुं० दे० "चोआ"।

चुआई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुआना] (१) चुआने का काम। टपकाने की क्रिया। (२) चुआने की मज़दूरी।

चुआक–संज्ञा पुं० [हिं० चुआना = टपकना] वह छेद जिससे पानी आवे। (लश०)

चुआन–संज्ञा स्त्री० [हिं० चूना] खांई। नहर। गड्ढा। जल आने का स्थान। सोता। उ०—(क) सब देवताओं को वश कर नगर में चारों ओर जल की चुआन चौड़ी करवाई और अग्नि पवन का कोट बनाय निर्भय हो वह सुख से राज्य करने लगा।—लल्लू। (ख) वह पुरी कैसी है कि जिसके चहूँ ओर तांबे का कोट और पक्की चुआन, चौड़ी खाई, स्फटिक के चार फाटक इत्यादि हैं।—लल्लू।

चुआना–क्रि० स० [हिं० चूना = टपकना] (१) टपकाना। बूँद बूँद गिराना। *(२) चुपड़ना। चिकनाना। रसमय करना। रसीला बनाना। उ०—वेष सुबनाइ सुचि बचन कहै चुआइ जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की।—तुलसी। (३) भभके से अर्क उतारना। जैसे, शराब चुआना।

चुआव–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुआना] चुआने की क्रिया या भाव।

चुकंदर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] गाजर वा शलगम की तरह की एक जड़ जो सुर्खी लिए होती है और तरकारी के काम में आती है। इसका स्वाद कुछ मीठापन लिए होता है। कहीं कहीं इससे खाँड़ भी निकाली जाती है। चुकंदर ऐसे स्थानों पर बहुत उपजता है जहाँ खारी मिट्टी वा खारा पानी मिलता है। समुद्र के किनारे चुकंदर की पैदावार अच्छी होती है। इसके लिये शोरा और नमक मिला पानी खाद का काम करता है।

चुक–संज्ञा पुं० दे० "चूक"।

चुकचुकाना–क्रि० अ० [हिं० चूना = टपकना] (१) किसी द्रव पदार्थ का बहुत बारीक छेदों से हो कर सूक्ष्म कणों के रूप में बाहर आना। रस कर बाहर फैलना। उ०—चमड़े पर रगड़ लगने से खून चुकचुका आया। (२) पसीजना। आर्द्र होना। चुचाना।

चुकचुहिया–संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) एक छोटी चिड़िया जो बहुत तड़के बोलने लगती है। (२) काग़ज़ या चमड़े का बना हुआ एक खिलौना जो हिलाने या दबाने से चूँ चूँ शब्द करता है।

चुकटा–संज्ञा पुं० [हिं० चुटका] चंगुल। चुटकी।

मुहा०—चुटका भर = चंगुल भर। उतना (आटा आदि) जितना चंगुल वा चुटकी में आवे।

चुकटी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चुटकी"।

चुकता–वि० [हिं० चुकना] बेबाक। निःशेष। अदा। (ऋण वा रुपये पैसे के हिसाब किताब के संबंध में इसे बोलते हैं) उ०—एक महीने में हम तुम्हारा सब रुपया चुकता कर देंगे।

चुकती–वि० दे० "चुकता"।

चुकना–क्रि० अ० [सं० च्युत्क, प्रा० चुक्कि] (१) समाप्त होना। ख़तम होना। निःशेष होना। न रह जाना। बाक़ी न रहना। उ०—(क) सारी किताब छपने को पड़ी है, काग़ज़ अभी से चुक गया। (ख) प्रान पियारे की गुन गाथा साधु कहाँ तक मैं गाऊँ। गाते गाते चुकै नहीं वह चाहे मैं ही चुक जाऊँ।—श्रीधर पाठक। (२) बेबाक़ होना। अदा होना। चुकता होना।—उ०—उनका सब ऋण चुक गया। (३) तै होना। निबटना। जैसे, झगड़ा चुकना। *(४) चूकना। भूल करना। त्रुटि करना। कसर करना। अवसर के अनुसार कार्य्य न करना। उ०—(क) काल सुभाउ करम बरियाई। भलेउ प्रकृति बस चुकइँ भलाई।—तुलसी। (ख) तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं।—तुलसी। *(५) ख़ाली जाना। निष्फल होना। व्यर्थ होना। लक्ष्य पर न पहुँचना। उ०—चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी।—तुलसी।

विशेष—यह क्रिया और क्रियाओं के साथ समाप्ति का अर्थ देने के लिये संयुक्त रूप में भी आती है। जैसे, तुम यह काम कर चुके?, तुम कब तक खा चुकोगे?, वह अब चल चुके होंगे। व्यंग्य के रूप में भी इस क्रिया का प्रयोग बहुत होता है। जैसे, तुम अब आ चुके, अर्थात् तुम अब नहीं आओगे। 'वह दे चुका' अर्थात् वह अब न देगा।

चुकरी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] रेवंद चीनी।

चुकरैंड-संज्ञा पुं० [देश०] दोमुहाँ साँप जिसे गूँगी भी कहते हैं । उ०—लेखनि डंक भुजंग की रसना अयननि जानि । गज रद मुख चुकरैंड के कच्छा शिखा बखानि ।—केशव ।

चुकवाना-क्रि० स० [हिं० चुकाना का प्रे०] अदा कराना । दिलाना । बेबाक़ कराना ।

चुकाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चुकता] चुकने या चुकता होने का भाव ।

चुकाना-क्रि० स० [हिं० चुकाना] (१) बेबाक़ करना । किसी प्रकार का देना साफ़ करना । अदा करना । परिशोध करना । जैसे, दाम चुकाना, रुपया चुकाना, ऋण चुकाना । (२) निबटाना । तै करना । ठहराना । जैसे, सौदा चुकाना, झगड़ा चुकाना ।

चुकिया-संज्ञा स्त्री० [देश०] तेलियों की घानी में पानी देने का छोटा बरतन । कुल्हिया ।

चुकौता-संज्ञा पुं० [हिं० चुकाना + औता (प्रत्य०)] ऋण का परिशोध । कर्ज़ की सफ़ाई ।

मुहा०—चुकौता लिखना = भरपाई का कागज़ लिख कर देना । क़र्ज़ा चुकता पाने की रसीद देना । भरपाई करना ।

चुक्कड़-संज्ञा पुं० [हिं० चखना ?] मिट्टी का गोल छोटा बरतन जिसमें पानी शराब आदि पीते हैं । पुरवा ।

चुक्का †-संज्ञा पुं० दे० "चूक" ।

चुक्कार-संज्ञा पुं० [सं०] सिंहनाद । गर्जन । गरज ।

चुक्की †-संज्ञा स्त्री० [हिं० चूक] धोखा । छल । कपट ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।

चुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूक नाम की खटाई । चुक महाम्ल । वृक्षाम्ल । (२) एक प्रकार का खट्टा शाक । चूका का साग । (३) अमलवेद । (४) काँजी । सड़ाया हुआ अम्लरस । संधान ।

चुक्रक-संज्ञा पुं० [सं०] चूका का साग ।

चुक्रफल-संज्ञा पुं० [सं०] इमली ।

चुक्रवास्तुक-संज्ञा पुं० [सं०] अमलोनी का साग ।

चुक्रवेधक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की काँजी ।

चुक्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अमलोनी का साग । (२) इमली ।

चुक्राम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूक नाम की खटाई । (२) चूका का साग ।

चुक्राम्ला-संज्ञा स्त्री० [सं०] अमलोनी का साग ।

चुक्रिका, चुक्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नोनिया । अमलोनी का साग । (२) इमली ।

चुक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंसा ।

चुखाना †-क्रि० [सं० चुष] (१) दुहते समय गाय के थन से दूध उतारने के लिये पहले उसके बछड़े को पिलाना । उ०—आई ही गाइ दुहाइबे कों सु चुखाइ चली न बछानि को घेरति । नैकु डेराय नहीं कब की वह माय रिसाय अटा चढ़ि टेरति ।—देव । (२) चखाना ।—उ०—भरि अपने कर कनक कचोरा पीवति प्रियहिं चुखाए ।—सूर ।

चुग़द-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) उल्लू पक्षी । (२) मूर्ख । मूढ़ । बेवक़ूफ़ ।

चुगना-क्रि० स० [सं० चयन] चिड़ियों का चोंच से दाना उठा कर खाना । चोंच से दाना बिनना । उ०—उथलहिं सीप मोति उतराहीं । चुगहिं हंस औ केलि कराहीं ।—जायसी ।

चुगल-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) परोक्ष में दूसरे की निंदा करनेवाला । पीठ पीछे शिकायत करनेवाला । इधर की उधर लगानेवाला । लुतरा । उ०—कहा करै रसखान को, कोऊ चुगल लबार । जो पै राखनहार है माखन चाखनहार ।—रसखान । (२) वह कंकड़ जिसे चिलम के छेद पर रख कर तंबाकू भरते हैं । गिट्टी । गिट्टक ।

चुगलखोर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] परोक्ष में निंदा करनेवाला । पीठ पीछे शिकायत करनेवाला । इधर की उधर लगानेवाला । लुतरा ।

चुगलखोरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चुगली खाने का काम । परोक्ष में निंदा करने की क्रिया वा भाव ।

चुगलस-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक तरह की लकड़ी ।

चुगलाना †-क्रि० स० दे० "चुभलाना" ।

चुगली-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पीठ पीछे की शिकायत । दूसरे की निंदा जो उसकी अनुपस्थिति में किसी तीसरे से की जाय । उ०—अपने नृप को इहै सुनायो । ब्रजनारी बटपारिन हैं सब चुगली आपहिं जाय लगायो ।—सूर ।

क्रि० प्र०—करना ।—खाना ।—लगाना ।

चुगा-संज्ञा पुं० [हिं० चुगना] (१) वह अन्न आदि जो चिड़ियों के आगे चुगने के लिये डाला जाय । चिड़ियों का चारा । (२) दे० "चोगा" ।

चुगाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चुगाना + ई (प्रत्य०)] चुगने का भाव वा क्रिया ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चुगाना + ई (प्रत्य०)] (१) चुगाने की क्रिया वा भाव । (२) चुगाने की मज़दूरी ।

चुगाना-क्रि० स० [हिं० चुगना] चिड़ियों को दाना खिलाना । चिड़ियों को चारा डालना । उ०—छाँड़ु मन हरि बिमुखन को संग । जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग । कहा होत पय पान कराये, विष नहिं तजत भुजंग । कागहि कहा कपूर चुगाये स्वान न्हवाए गंग ।—सूर ।

संयो० क्रि०—देना ।

चुगुल *†-संज्ञा पुं० दे० "चुगल" ।

चुगुलखोर-संज्ञा पुं० दे० "चुगलखोर" ।

चुगुलखोरी-संज्ञा स्त्री० दे० "चुगलखोरी" ।

चुगुली†*–संज्ञा स्त्री० दे० "चुगली"।

चुग्गा–संज्ञा पुं० दे० "चुगा"।

चुग्घी–संज्ञा स्त्री० [देश०] चखने की थोड़ी सी वस्तु। चाट। चसका।

चुचकारना–क्रि०स० [अनु०] प्यार से चुंबन के ऐसा शब्द मुँह से निकाल कर बोलना। चुमकारना। पुचकारना। दुलारना। प्यार दिखाना। उ०—(क) मैया बहुत बुरो बलदाऊ। कहन लगे बन बड़ो तमासो, सब मोंड़ा मिलि आऊ। मोहूँ को चुचकारि गये लै, जहाँ सघन बन झाऊ। भागि चले कहि गयो उहाँ ते, काटि खाइहै हाऊ।—सूर। (ख) चाहि चुचकारि चूँबि लालत लावत उर तैसे फल पावत जैसे सुबीज बये हैं।—तुलसी।

चुचकारी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] चुचकारने की क्रिया वा भाव।

चुचाना–क्रि० अ० [सं० च्यवन] चूना। टपकना। रसना। निचुड़ना। गरना। कण कण या बूँद बूँद करके निकलना। ('चूना' या 'टपकना' क्रिया के समान इसका प्रयोग भी टपकनेवाली वस्तु (जैसे पानी) तथा जिसमें से टपके (जैसे घर) दोनों के लिये होता है)। उ०—(क) अकुलित जे पुलकित गात। अनुराग नैन चुचात।—सूर। (ख) बाल भाव जिय में सुख आई अस्तन चले चुचाय।—सूर। (ग) चौगुनो रंग चढ़ो चित मैं चुनरी के चुचात लला के निंचोरत।—देव। (घ) रहौ गुही बेनी लखे, गुहिबे के त्यौहार। लागे नीर चुचावने, नीठि सुखाए बार।—बिहारी। (च) घोरि डारी केसरि सुबेसरि बिलोरि डारी बोरि डारी चूनरि चुचात रँग रैनी ज्यों।—पद्माकर।

चुचु–संज्ञा पुं० दे० "चच्चु"।

चुचुआना–क्रि० अ० दे० "चुचाना"।

चुचुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुचाग्र भाग। स्तन के सिरे वा नोक पर का भाग जो गोल घुंडी के रूप में होता है। ढिपनी। (२) दक्षिण भारत का एक प्राचीन देश। (३) उक्त देश का निवासी।

चुचुकना†–क्रि० अ० [सं० शुष्क + ना (प्रत्य०)] सूख कर सिकुड़ जाना। ऐसा सूखना जिसमें झुर्रियाँ पड़ जायँ। नीरस होकर संकुचित हो जाना। जैसे, फल का चुचुकना, चेहरे का चुचुकना।

चुच्चु–संज्ञा पुं० [सं०] पालक की तरह का एक प्रकार का साग जिसे चौपतिया भी कहते हैं।

चुटक–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गलीचा वा कालीन।

†संज्ञा पुं० [हिं० चोट + क = करनेवाला] कोड़ा। चाबुक।

संज्ञा स्त्री० [अनु० चुट चुट] चुटकी।

चुटकना–क्रि० स० [हिं० चोट] कोड़ा मारना। चाबुक मारना। उ०—करे चाह सों चुटकि कै खरे उड़ौहैं मैन। लाज नवाए तरफरत करत खूँद सी नैन।—बिहारी।

क्रि० स० [हिं० चुटकी] (१) चुटकी से तोड़ना। जैसे, साग चुटकना, फूल चुटकना। (२) साँप काटना।

चुटकला–संज्ञा पुं० दे० "चुटकुला"।

चुटका–संज्ञा पुं० [हिं० चुटकी] (१) बड़ी चुटकी। (२) चुटकी भर आटा या और कोई अन्न।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

चुटकी–संज्ञा स्त्री० [अनु० चुट चुट] (१) अँगूठे और बीच की उँगली (अथवा तर्जनी) की वह स्थिति जो दोनों को मिलाने वा एक को अन्य पर रखने से होती है। किसी वस्तु को पकड़ने, दबाने वा लेने आदि के लिये अँगूठे और बीच की (अथवा और किसी) उँगली का मेल। जैसे, चुटकी में लेना, चुटकी से उठाना।

मुहा०—चुटकी देना = चुटकी बजाना। उ०—जो मूरति जल थल मों व्यापक निगम न खोजत पाई। सो मूरति तू अपने आँगन चुटकी दै दै नचाई।—सूर। चुटकी बजाना = अँगूठे को बीच की उँगली पर रख कर ज़ोर से छटका कर शब्द निकालना। (चुटकी प्रायः संकेत करने, किसी का ध्यान आकर्षित करने, किसी को बुलाने, जगाने अथवा ताल देने आदि के लिये बजाई जाती है। हिंदुओं में यह प्रथा है कि जब किसी को जँभाई आती है तब पास के लोग चुटकियाँ बजाते हैं)। चुटकी बजाते में या चुटकी बजाते = उतनी देर में जितनी देर में चुटकी बजती है। चट पट। देखते देखते। बात की बात में। उ०—यह काम तो चुटकी बजाते होगा। चुटकी बजानेवाला = ख़ुशामदी। चापलूस। चुटकी भर = उतना जितना अँगूठे और मध्यमा के मिलाने पर दोनों के बीच में आ जाय। बहुत थोड़ा। ज़रा सा। जैसे, चुटकी भर आटा, चुटकी भर नमक। चुटकी बैठना = किसी ऐसे काम का अभ्यास होना जो चुटकी से पकड़ कर किया जाय। जैसे, उखाड़ना, नोचना आदि। चुटकियों में = बहुत शीघ्र। चट पट। उ०—देखते रहो, अभी चुटकियों में यह काम होता है। चुटकियों में वा पर उड़ाना = बात की बात में निबटाना। अत्यंत तुच्छ वा सहज समझना। कुछ न समझना। कुछ परवाह न करना। उ०—(क) ऐसे मामलों को तो मैं चुटकियों में उड़ाता हूँ। (ख) वह मेरा क्या कर सकता है, ऐसों को तो मैं चुटकियों पर उड़ाता हूँ। चुटकी लगाना = (१) किसी वस्तु को पकड़ने नोचने, खींचने, दबाने आदि के लिये अँगूठे और मध्यमा (अथवा और किसी उँगली) को मिला कर काम में लाना। (२) कपड़े के थान को उँगलियों से फाड़ना। थान पर से कपड़ा उतारना। (३) रुपया पैसा चुराने के लिये उँगलियों से जेब फाड़ना। जेब काटना। (४) दूध दुहने के लिये चुटकी से गाय का थन पकड़ना। (५) चुटकी से पत्तों को मोड़ कर दोना बनाना।

(२) चुटकी भर आटा। थोड़ा आटा । उ०—साधु को चुटकी दे दो।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—चुटकी माँगना = भिक्षा माँगना।

(३) चुटकी बजने का शब्द। वह शब्द जो अँगूठे को बीच की उँगली पर रख कर ज़ोर से छटकाने से होता है। उ०—किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि डरपति जननि पानि छुटकाएँ।—तुलसी। (४) अँगूठे और तर्जनी के संयोग से किसी प्राणी के चमड़े को दबाने वा पीड़ित करने की क्रिया।

क्रि० प्र०—काटना।

मुहा०—चुटकी भरना = (१) चुटकी काटना। (२) चुभती वा लगती हुई बात कहना। दे० "चुटकी लेना।" चुटकी लेना = (१) हँसी उड़ाना। दिल्लगी उड़ाना। ठट्ठा करना। उपहास करना। (२) व्यंग्य वचन बोलना। चुभती वा लगती बात कहना। (३) चुटकी से खोदना। चुटकी से दबाना। चुटकी भरना। उ०—बार बार कर गहि गहि निरखत घूँघट ओट करौ किन न्यारो। कबहुँक कर परसत कपोल छुइ चुटकि लेत ह्याँ हमहिँ निहारो।—सूर।

(५) अँगूठे और उँगली से मोड़ कर बनाया हुआ गोखरू, गोटा या लचका। कभी कभी यह किश्तीनुमा भी होता है, जिसे किश्ती की चुटकी कहते हैं। (६) बंदूक के प्याले का ढकना। बंदूक का घोड़ा। (लश०)। (७) कटारदार गुलबदन या मशरू। (८) पैर की उँगलियों में पहनने का चाँदी का एक गहना। एक प्रकार का चौड़ा छल्ला। (९) कपड़ा छापने की एक रीति। (१०) काठ आदि की बनी हुई एक प्रकार की चिमटी जिसमें कागज या किसी और हलकी वस्तु को पकड़ा देने से वह इधर उधर उड़ने नहीं पाती। (११) पेंचकश। (१२) दरी के ताने का सूत।

चुटकुला—संज्ञा पुं० [हिं० चोट + कला] (१) विलक्षण बात। विनोदपूर्ण बात। चमत्कारपूर्ण उक्ति। थोड़े में कही हुई ऐसी बात जिससे लोगों को कुतूहल हो। मज़ेदार बात।

मुहा०—चुटकुला छोड़ना = (१) विलक्षण बात कह बैठना। दिल्लगी की बात कहना। (२) कोई ऐसी बात कहना जिससे एक नया मामला खड़ा हो जाय। उ०—उसने एक ऐसा चुटकुला छोड़ दिया कि दोनों आपस ही में लड़ पड़े।

(२) दवा का कोई छोटा नुसखा जो बहुत गुण-कारक हो। लटका।

चुटफुट†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] फुटकर वस्तु। फुटकर चीज़।

चुटला†—वि० दे० "चुटीला"।

संज्ञा पुं० [हिं० चोटी] (१) एक गहना जो सिर पर चोटी वा वेणी के ऊपर पहना जाता है। (२) स्त्रियों की बँधी हुई वेणी। जूरा।

चुटाना†—क्रि० अ० [हिं० चोट] चोट खाना। घायल होना।

चुटिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोटी] (१) वह बालों की लट जो सिर के बीचो बीच रक्खी जाती है। शिखा। चुंदी। (हिंदू, चीनी आदि इस प्रकार की शिखा रखते हैं)।

मुहा०—(किसी की) चुटिया हाथ में होना = (किसी का) अपने अधीन होना। (किसी का) अपने नीचे दबना।

(२) चोरों या ठगों का सरदार।

चुटियाना†—क्रि० स० [हिं० चोट] चोट पहुँचाना। घाव करना। घायल करना। जख़मी करना। काटना। डसना।

चुटीलना—क्रि० स० [हिं० चोट] चोट करना या पहुँचाना।

चुटीला—वि० [हिं० चोट] चोट खाया हुआ। जिसे चोट लगी हो। जिसे घाव लगा हो।

संज्ञा पुं० [हिं० चोटी] छोटी चोटी। अगल बगल की पतली चोटी। मेंढ़ी। उ०—(क) चोटी चुटिल सीसफूल वर। बैना बंदी बंदनी सुबर।—सूदन। (ख) सखि, राधावर कैसा सजीला। देखो री गुइयाँ नजर नहिँ लागे अँगुरिन कर चट काट चुटीला।—हरिश्चंद्र।

वि० चोटी का। सिरे का। सबसे बढ़िया। भड़कदार।

चुटैल—वि० [हिं० चोट] (१) जो चोट खाए हो। जिसे चोट लगी हो। घायल। (२) चोट करनेवाला। आक्रमण करनेवाला।

चुट्टा—संज्ञा पुं० दे० "चुटला"।

चुड—संज्ञा स्त्री० दे० "चुड्ड"।

चुड़ना—क्रि० अ० दे० "चुटना"।

चुड़ाव—संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली जाति।

चुड़िया†—संज्ञा स्त्री० दे० "चूड़ी"।

चुड़िहारा—संज्ञा पुं० [हिं० चूड़ी + हारा (प्रत्य०)] [स्त्री० चुड़िहारिन] चूड़ी बनाने या बेचनेवाला।

चुडुका—संज्ञा पुं० [हिं०] लाल की तरह की एक छोटी सी चिड़िया। इसकी चोंच और पैर काले, पीठ मटमैले रंग की तथा पूँछ कुछ लंबी होती है।

चुड़ेलवाल—संज्ञा स्त्री० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

चुड़ैल—संज्ञा स्त्री० [सं० चूड़ा = चोटी + ऐल (प्रत्य०)] (१) भूत की स्त्री। भूतनी। डायन। प्रेतनी। पिशाचिनी।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि चुड़ैलों के सिर में बड़ी भारी चोटी होती है जिसे काट लेने से वे वशीभूत हो सकती हैं।

(२) कुरूपा और विकराल स्त्री। (३) दुष्टा। क्रूर स्वभाव की स्त्री।

चुड्डु—संज्ञा स्त्री० [सं० च्युत = भग] भग। योनि। (पंजाबी)।

चुड्डो—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुड] एक प्रकार की गाली जो स्त्रियों को दी जाती है। छिनाल।

चुत-संज्ञा पुं० [सं०] गुदद्वार ।

चुत्थल-वि० [हिं० चुहल] ठट्ठेबाज । ठठोल । विनोदप्रिय । मसखरा ।

चुत्थलपना-संज्ञा पुं० [हिं० चुत्थल + पन] ठठोली । हँसी दिल्लगी । मसखरापन ।

चुत्था-संज्ञा पुं० [हिं० चोंथना] वह बटेर जिसे लड़ाई में दूसरे बटेर ने घायल किया हो ।

चुदक्कड़-वि० [हिं० चोदना] बहुत अधिक चोदनेवाला । अत्यंत कामी ।

चुदना-क्रि० अ० [हिं० चोदना] चोदा जाना । पुरुष से संयुक्त होना ।

चुदवाई-संज्ञा स्त्री० दे० "चुदाई" ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चुदवाना] वह धन जो प्रसंग करने वा कराने के बदले में दिया जाय ।

चुदवाना-क्रि० अ०, क्रि० स० दे० "चुदाना" ।

चुदवास-संज्ञा स्त्री० [हिं० चुदवाना + आस (प्रत्य०)] चुदवाने की इच्छा । मैथुन कराने की कामना ।

क्रि० प्र०—लगना ।

चुदवासी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चुदवाना] वह स्त्री जिसे मैथुन कराने की कामना हो ।

चुदवैया-संज्ञा पुं० [हिं० चोदना + वैया (प्रत्य०)] चोदनेवाला । स्त्री-प्रसंग करनेवाला ।

चुदाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना] (१) चोदने की क्रिया वा भाव । स्त्री-प्रसंग । मैथुन । (२) दे० "चुदवाई" ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चुदाना] [स्त्री० चुदासी] वह धन जो चुदाने के बदले में मिले ।

चुदाना-क्रि० अ० [हिं० चोदना का प्रे०] चोदने का काम कराना । (स्त्री का) पुरुष से प्रसंग कराना । मैथुन कराना ।

क्रि० स० किसी स्त्री को पुरुष-समागम कराना । किसी स्त्री को पुरुष से संयुक्त कराना ।

चुदास-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना + आस (प्रत्य०)] चोदने की इच्छा । स्त्री-प्रसंग करने की कामना ।

चुदासा-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना] वह पुरुष जिसे स्त्री-प्रसंग करने की कामना हो ।

चुदैया-वि० दे० "चुदवैया" ।

चुदौवल-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना] चोदने का भाव वा क्रिया ।

चुन-संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण, हिं० चून] (१) आटा । पिसान । (२) चूर । चूर्ण । बुकनी । रेत ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग समास में प्रायः होता है, जैसे, लोहचुन, बैरचुन ।

चुनचुना-संज्ञा पुं० [देश०] कसेरों का एक लोहे का औज़ार ।

वि० [देश०] (१) जिसके छूने वा खाने से चुनचुनाहट उत्पन्न हो । जिसके स्पर्श से कुछ जलन लिए हुए पीड़ा उत्पन्न हो । जिसकी झाल वा तीक्ष्णता छूने से जान पड़े । (२) चिढ़नेवाला । रोनेवाला । बात बात पर ठिनकनेवाला (लड़का) ।

संज्ञा पुं० [हिं० चुनचुनाना] सूत के ऐसे महीन सफ़ेद कीड़े जो पेट में पड़ जाते हैं और मल के साथ निकलते हैं । बच्चों को ये कीड़े बहुत कष्ट देते हैं ।

मुहा०— चुनचुना लगना = मलद्वार में कृमियों के काटने के कारण जलन और खुजली होना ।

चुनचुनाना-क्रि० अ० [देश०] (१) जीभ वा चमड़े पर तीक्ष्ण लगना । कुछ जलन लिए हुए चुभने की सी पीड़ा करना । उ०—राई का लेप बदन पर चुनचुनाता है । (२) ठिनकना । रोना । चीँ चीँ करना । (लड़कों के लिये) ।

चुनचुनाहट-संज्ञा स्त्री० [देश०] शरीर पर कुछ जलन लिए चुभने की सी पीड़ा । झाल वा तीक्ष्णता जिसका अनुभव त्वचा को हो ।

चुनट-संज्ञा स्त्री० [हिं०] वह सिकुड़न जो दाब पड़ने के कारण कपड़े, कागज़ आदि में पड़ जाती है । चुनन । चुनावट । बल । शिकन । सिलवट ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पड़ना ।—लाना ।

विशेष—प्रायः लोग धोती, टोपी, कुरते आदि पर उँगली या चियाँ आदि से दबा दबा कर शोभा के लिये चुनट डालते हैं ।

चुनन-संज्ञा स्त्री० दे० "चुनट" ।

चुनन-संज्ञा पुं० [हिं० चुनना] वह सिकुड़न जो दाब पाकर कपड़े कागज़ आदि पर पड़ती है । सिलवट । शिकन । चुनट ।

चुननदार-वि० [हिं० चुनन + दार] जिसमें चुनन पड़ी हो । जो चुनी गई हो ।

चुनना-क्रि० स० [सं० चयन] (१) छोटी वस्तुओं को हाथ चोंच आदि से एक एक कर के उठाना । एक एक करके इकट्ठा करना । बीनना । जैसे, दाना चुनना । (२) बहुतों में से छाँट छाँट कर अलग करना । समूह में से एक एक वस्तु पृथक् करके निकालना वा रखना । जैसे, अनाज में से कंकड़ियाँ चुन कर फेंकना । (३) बहुतों में से कुछ को पसंद करके रखना वा लेना । समूह वा ढेर में से यथारुचि एक एक को छाँटना । इच्छानुसार संग्रह करना । जैसे, (क) इनमें जो पुस्तकें अच्छी हों उन्हें चुन लो । (ख) इस संग्रह में अच्छी अच्छी कविताएँ चुन कर रक्खी गई हैं ।

मुहा०—चुना हुआ = बढ़िया । उत्तम । श्रेष्ठ ।

(४) सजाना । सजा कर रखना । तरतीब से लगाना । क्रम से स्थापित करना । उ०—आलमारी में किताबें चुन दो । (५) तह पर तह रखना । जोड़ाई करना । दीवार उठाना । उ०—कंकड़ चुन चुन महल उठाया लोग कहैं घर मेरा । ना घर मेरा ना घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा ।

मुहा०—दीवार में चुनना = किसी मनुष्य को खड़ा कर के उसके ऊपर ईंटों की जोड़ाई करना। जीते जी किसी को दीवार में गड़वा देना।

(६) चुटकी या खरें से दबा दबा कर कपड़े में चुनन वा सिकुड़न डालना। शिकन डालना। जैसे, धोती चुनना, कुरता चुनना, इत्यादि। (७) नाखून या उँगलियों से खोंटना। चुटकी से कपटना। चुटकी से नोच कर अलग करना। जैसे, फूल चुनना। उ०—माली आवत देखि कै, कलियाँ करी पुकार। फूली फूली चुन लईं, कालि हमारी बार।—कबीर।

चुनरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनना] (१) एक प्रकार का लाल रंगा हुआ कपड़ा जिसके बीच में थोड़ी थोड़ी दूर पर सफ़ेद बुँदकियाँ होती हैं। (अब चुनरी कई रंगों और कई प्रकार की बूटियों की बनती है)।

विशेष—चुनरी रँगते समय कपड़े को स्थान स्थान पर चुन कर बाँध देते हैं जिससे रंग में बोरने पर बँधे हुए स्थानों पर सफ़ेद सफ़ेद बुँदकियाँ छूट जाती हैं।

(२) चुन्नी। लाल रंग के एक नग का छोटा टुकड़ा। याकूत।

चुनवाँ—संज्ञा पुं० [हिं० चुनना] लड़का। शागिर्द। (सुनार)।

वि० चुना हुआ। चुनिंदा। बढ़िया।

चुनवाना—क्रि० स० [हिं० चुनना का प्रे०] चुनने का काम कराना। दे० "चुनाना"।

चुनाँ चुनीँ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) ऐसा वैसा। इस तरह उस तरह। (२) इधर उधर की बात। वह जो मतलब की बात न हो। उ०—अब चुनाँ चुनीँ मत करो, रुपया लाओ। (३) बनावटी बात।

क्रि० प्र०—करना।

चुनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनना] (१) चुनने की क्रिया वा भाव। बिनने की क्रिया वा भाव। (२) दीवार की जोड़ाई। दीवार की जोड़ाई का ढंग। (३) चुनने की मज़दूरी।

चुनाखा—संज्ञा पुं० [हिं० चूड़ी + नख] वृत्त बनाने का औज़ार। परकार। कंपास।

चुनाना—क्रि० स० [हिं० चुनने का प्रे०] (१) बिनवाना। इकट्ठा करवाना। (२) अलग करवाना। छँटवाना। (३) सजवाना। क्रम वा ढंग से लगवाना। (४) दीवार की जोड़ाई कराना। (५) दीवार में गड़वाना। (६) चुनन या शिकन डलवाना।

चुनाव—संज्ञा पुं० [हिं० चुनना] (१) चुनने का काम। बिनने का काम। (२) बहुतों में से कुछ को किसी कार्य्य के लिये पसंद वा नियुक्त करने का काम। उ०—इस वर्ष कौंसिल का चुनाव अच्छा हुआ है।

चुनावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनना] चुनन। चुनट।

चुनिंदा—वि० [हिं० चुनना + दा (प्रत्य०)] (१) चुना हुआ। छँटा हुआ। (२) बहुतों में से पसंद किया हुआ। अच्छा। बढ़िया। (३) गण्य। प्रधान। ख़ास ख़ास।

चुनिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] सुनारों की बोली में लड़की को कहते हैं।

चुनिया गोंद—संज्ञा पुं० [हिं० चूना + गोंद] ढाक का गोंद। पलाश का गोंद। कमरकस। (यह औषध के काम में आता है।)

चुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण] (१) चूनी। चुन्नी। मानिक या और किसी रत्न का बहुत छोटा टुकड़ा। उ०—चहचही चहल चहूँघा चारु चंदन की चंदक चुनीन चौक चौकन चढ़ी है आब।—पद्माकर। (२) मोटे अन्न या दाल आदि का पीसा हुआ चूर्ण जिसे प्रायः ग़रीब लोग खाते हैं।

यौ०—चुनी भूसी = मोटे अन्न का पीसा हुआ चूर्ण या चोकर आदि।

चुनुवाँ—संज्ञा पुं० दे० "चुनवाँ"।

चुनैटी—संज्ञा स्त्री० दे० "चुनौटी"।

चुनौटिया (रंग)—संज्ञा पुं० [हिं० चुनौटी] एक रंग जो कालापन लिए लाल होता है। एक प्रकार का खैरा वा काकरेजी रंग जिसकी रँगाई लखनऊ में होती है। यह आकिल खानी रंग से कुछ अधिक काला होता है। उ०—पचरँग रँग बेंदी बनी, खरी उठी मुख जोति। पहिरै चीर चुनौटिया, चटक चौगुनी होति।—बिहारी।

विशेष—यह रंग हल्दी, हर्रा, कसीस और पतंग (बक्कम) की लकड़ी के संयोग से बनता है।

चुनौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूना + औटी (प्रत्य०)] वह बरतन जिसमें पान लगाने वा तंबाकू में मिलाने के लिये गीला चूना रक्खा जाय।

चुनौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनचुनाना या चूना] (१) प्रवृत्ति बढ़ानेवाली बात। उत्तेजना। बढ़ावा। चिट्टा। उ०—मदन नृपति को देश महामद बुधि बल बसि न सकत उर चैन। सूरदास प्रभु दूत दिनहि दिन पठवत चरित चुनौती दैन।—सूर। (२) युद्ध के लिये उत्तेजना वा आह्वान। ललकार। प्रचार। उ०—(क) लछिमन अति लाघव सों, नाक कान बिनु कीन्हि। ताके कर रावन कहँ मनहुँ चुनौती दीन्हि।—तुलसी। (ख) चतुरंगिनी सैन संग लीन्हे। विचरत सबहि चुनौती दीन्हे।—तुलसी। (ग) छठे-मास नहिँ करि सकै बरस दिना करि लेय। कहै कबीर सो संत जन यमै चुनौती देय।—कबीर। (घ) दगा देत दूतन चुनौती चित्रगुप्तै देत यम को जरब देत पापी लेत शिवलोक।—पद्माकर।

क्रि० प्र०—देना।

संज्ञा स्त्री० दे० "चुनौटी"।

चुन्नट—संज्ञा स्त्री० दे० "चुनट"।

चुन्नत—संज्ञा स्त्री० दे० "चुनट"।

चुन्नन–संज्ञा स्त्री० दे० "चुनन"।

चुन्ना–संज्ञा पुं० दे० "चुरना"।
†क्रि० स० दे० "चुनना"।
‡ संज्ञा पुं० दे० "चूना"।

चुन्नी–संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण] (१) मानिक, याकूत या और किसी रत्न का बहुत छोटा टुकड़ा। बहुत छोटा नग। (२) अनाज का चूर। भूसी मिले अन्न के टुकड़े। (३) ओढ़नी। स्त्रियों की चद्दर। (४) लकड़ी का बारीक चूर जो आरी से रेतने पर निकलता है। कुनाई।

चुप–वि० [सं० चुप (चोपन) = मौन] जिसके मुहँ से शब्द न निकले। अवाक्। मौन। ख़ामोश। उ०—चुप रहो, बहुत मत बोलो।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—साधना।—होना।

यौ०—चुपचाप = (१) मौन। ख़ामोश। (२) शांत भाव से। बिना चंचलता के। उ०—यह लड़का घड़ी भर भी चुपचाप नहीं बैठता। (३) बिना कुछ कहे सुने। बिना प्रकट किए। गुप्त रीति से। धीरे से। छिपे छिपे। उ०—(क) वह चुपचाप रुपया लेकर चलता हुआ। (ख) उसने चुपचाप उसके हाथ में रुपए दे दिए। (४) निरुद्योग। प्रयत्नहीन। अयत्नवान्। निठल्ला। उ०—अब उठो, यह चुपचाप बैठने का समय नहीं है। चुप चुप = दे० "चुपचाप"। चुप छिनाल = (१) छिपे छिपे व्यभिचार करनेवाली स्त्री। (२) छिपे छिपे कोई काम करनेवाला। गुप्त गुंडा। छिपा रुस्तम।

मुहा०—चुप करना = (१) बोलने न देना। † (२) चुप होना। मौन रहना। उ०—चुप करके बैठो। चुप नाधना, लगाना, साधना = मौनावलंबन करना। ख़ामोश रहना। † चुप मारना = मौन होना। चुपके से = दे० "चुपका" का मुहा०।

संज्ञा स्त्री० मौन। ख़ामोशी। जैसे, सब से भली चुप। उ०—ऐसी मीठी कुछ नहीं जैसी मीठी चुप।—कबीर।

संज्ञा पुं० [देश०] पक्के लोहे की वह तलवार जिसमें टूटने से बचाने के लिये एक कच्चा लोहा लगा रहता है।

चुपका–वि० [हिं० चुपका] [स्त्री० चुपकी] (१) मौन। ख़ामोश।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—चुपके से = (१) बिना किसी से कुछ कहे सुने। शांत भाव से। (२) छिपाकर। गुप्त रूप से।

(२) चुप्पा। घुन्ना।

चुपकाना†–क्रि० स० [हिं० चुपका] मौन करना। न बोलने देना। ख़ामोश कराना।

चुपकी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुप] मौन। ख़ामोशी।

क्रि० प्र०—साधना।

मुहा०—चुपकी लगना = मुहँ से बात न निकालना। सन्नाटे में रहना।

चुपचाप–क्रि० वि० दे० "चुप" के मुहा०।

चुपड़ना–क्रि० स० [हिं० चिपचिपा] (१) किसी गीली वस्तु को फैला कर लगाना। किसी चिपचिपी वस्तु का लेप करना। पोतना। जैसे, रोटी में घी चुपड़ना। (२) दोष छिपाना। किसी दोष का आरोप दूर करने के लिये इधर उधर की बातें करना। उ०—उसने अपराध तो किया ही है, अब आप के चुपड़ने से क्या होता है? (३) चिकनी चुपड़ी कहना। चापलूसी करना। ख़ुशामद करना।

चुपड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० चिपचिपा] वह जिसकी आँखों में बहुत कीचड़ हो। कीचड़ से भरी आँखोंवाला।

चुपरी आलू–संज्ञा पुं० [देश०] पिंडालू या रतालू जो मद्रास और मध्य भारत में अधिकता से होता है।

चुपाना†*–क्रि० अ० [हिं० चुप] चुप हो रहना। मौन रहना। ख़ामोश रहना। न बोलना।

चुप्पा–वि० [हिं० चुप] [स्त्री० चुप्पी] जो बहुत कम बोले। जो अपनी बात को मन में लिए रहे। जो बात का उत्तर जल्दी न दे। घुन्ना।

चुप्पी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुप] मौन। ख़ामोशी।

क्रि० प्र०—साधना।

चुबलाना–क्रि० स० [हिं०] किसी वस्तु को जीभ पर रख कर स्वाद लेने के लिये मुँह में इधर उधर डुलाना। मुँह में ले कर धीरे धीरे आस्वादन करना।

चुभकना–क्रि० अ० [अनु०] पानी में चुभ चुभ शब्द करते हुए गोता खाना। बार बार डूबना उतराना।

चुभकाना–क्रि० स० [अनु०] पानी में गोता देना। बार बार पकड़ कर डुबाना।

चुभकी–संज्ञा० स्त्री० [अनु० चुभ चुभ] डुब्बी। गोता। उ०—(क) लै चुभकी चलि जाति तित जित जलकेलि अधीर। कीजत केसर नीर से तित तित केसर नीर।—बिहारी। (ख) जल बिहार मिस भीर में लै चुभकी इक बार। दह भीतर मिलि परस्पर दोऊ करत बिहार।—पद्माकर।

चुभना–क्रि० स० [हिं०] (१) गड़ना। धँसना। किसी नुकीली वस्तु का दबाव पा कर किसी नरम वस्तु के भीतर घुसना। जैसे, काँटा चुभना, सुई चुभना। (२) हृदय में खटकना। चित्त पर चोट पहुँचना। मन में व्यथा उत्पन्न करना। उ०—उसकी चुभती हुई बातें कहाँ तक सुनें? (३) मन में बैठना। हृदय पर प्रभाव करना। चित्त में बना रहना। उ०—(क) उसकी बात मेरे मन में चुभ गई। (ख) टरति न टारे यह छबि मन में चुभी।—सूर। (४) मग्न। लीन। तन्मय। उ०—जिमि

बालि चल्यो लखि दुंदुभी तिमि सोह्यो मति रन चुभी।—गोपाल।

चुभर चुभर–क्रि० वि० [अनु०] ओंठ से चूस चूस कर पीने का शब्द। बच्चों के दूध पीने का शब्द।

चुभलाना–क्रि० स० दे० "चुबलाना"।

चुभवाना–क्रि० स० [हिं० चुभना का प्रे०] चुभाने का कार्य्य दूसरे से कराना।

चुभाना–क्रि० स० [हिं० चुभना का प्रे०] धँसाना। गड़ाना।

चुभोना–क्रि० स० दे० "चुभाना"।

चुमकार–संज्ञा० स्त्री० [हिं० चूमना + कार] चूमने का सा शब्द जो प्यार दिखाने के लिये निकालते हैं। पुचकार।

चुमकारना–क्रि० स० [हिं० चुमकार] प्यार दिखाने के लिये चूमने का सा शब्द निकालना। पुचकारना। दुलारना। उ०—वह बच्चे से चुमकार कर सब बातें पूछने लगा।

चुमकारी–संज्ञा स्त्री० दे० "चुमकार"।

चुमवाना–क्रि० स० [हिं० चूमना का प्रे०] चूमने का कार्य्य दूसरे से कराना।

चुमाना–क्रि० स० [हिं० चूमना] किसी दूसरे के सामने चूमने के लिये प्रस्तुत करना।

चुम्मक†–संज्ञा पुं० दे० "चुंबक"।

चुम्मा†–संज्ञा पुं० [हिं०] चुंबन। बोसा।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

चुर–संज्ञा पुं० [देश०] (१) बाघ आदि के रहने का स्थान। मांद। (२) चार पाँच आदमियों के बैठने का स्थान। बैठक। उ०—घाट, बाट, चौपार, चुर, देवल, हाट, मसान।—भगवतरसिक।

संज्ञा पुं० [अनु०] कागज, सूखे पत्ते आदि के मुड़ने वा टूटने का शब्द।

*वि० [सं० प्रचुर] बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—प्रेम प्रशंसा विनय युत वेग वचन ये आहिँ। तेहि ते होत अनंद चुर फुर उर लागत नाहिँ।—विश्राम।

चुरकना–क्रि० अ० [अनु०] (१) बोलना। चहचहाना। चहकना। चीँ चीँ करना। चेँ चेँ करना। (व्यंग्य वा तिरस्कार से बोलते हैं)। † (२) चटकना। चूर होना। टूटना। फटना।

चुरकी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोटी] चुटिया। शिखा।

चुरकुट–क्रि० वि० [हिं० चूर + कूटना] चकनाचूर। चूर चूर। चूर्णित। उ०—मुष्टिकौ गद मरदि चार गूर चुरकुट करयो कंस मनुकंप भयो भई रंगभूमि अनुराग रागी।—सूर।

चुरकुस†*–संज्ञा पुं० [हिं०] चूर चूर। चूर मूर। चूर्ण। बुकनी। उ०—तिलक पलीता माथे दसन बज्र के बान। जेहि हेरहिँ तेहि मारहिँ चुरकुस करैं निदान।—जायसी।

चुरगना–क्रि० अ० दे० "चुरकना"।

चुरचुरा–वि० [अनु०] जो खरा होने के कारण जरा से दबाने से चूर चुर शब्द करके टूट जाय। जैसे, कुमकुमा, पापड़ आदि।

चुरचुराना†–क्रि० अ० [अनु०] (१) बहुत थोड़े आघात से चूर चूर हो जाना। (२) चुर चुर शब्द करना।

क्रि० स० (१) किसी खरी चीज़ को चूर चूर करना। (२) चुर चुर शब्द उत्पन्न करना।

चुरट–संज्ञा पुं० दे० "चुरुट"।

चुरना†–क्रि० अ० [सं० चूर = जलना, पकना] (१) आँच पर खौलते हुए पानी के साथ किसी वस्तु का पकना। सीझना। गीली वस्तु का गरम होना। जैसे, "दाल चुरना"। (२) आपस में गुप्त मंत्रणा या बातचीत होना।

संज्ञा पुं० [हिं० चुनचुनाना] सूत के ऐसे महीन सफेद कीड़े जो पेट में पड़ जाते हैं और मल के साथ निकलते हैं। ये कीड़े बच्चों को बहुत कष्ट देते हैं। चुनचुना।

क्रि० प्र०—लगना।

चुरमुर–संज्ञा पुं० [अनु०] खरी वा कुरकुरी वस्तु के टूटने का शब्द। करारी चीजों के टूटने की आवाज। जैसे, सूखी पत्तियों का चुरमुर होना। उ०—चना चुरमुर बोलै। बाबू खाने को मुँह खोलै।—हरिश्चंद्र।

चुरमुरा–वि० [अनु०] जो खरेपन के कारण दबाने पर चुर चुर शब्द करके टूट जाय। करारा। जैसे, पापड़, सूखे पत्ते, आदि।

चुरमुराना–क्रि० अ० [अनु०] चुरमुर शब्द करके टूटना।

क्रि० स० [अनु०] चुरमुर शब्द करके तोड़ना। जैसे चना, पापड़ आदि चुरमुराना।

चुरवाना–क्रि० स० [हिं० चुराना = पकाना] पकाने का काम कराना।

क्रि० स० दे० "चोरवाना"।

चुरस–संज्ञा स्त्री० [देश०] कपड़े आदि की शिकन। सिलवट। सिकुड़न।

चुरा*†–संज्ञा पुं० दे० "चूरा"। उ०—देखत चुरे कपूर ज्यों उपै जाय जिन लाल। छिन छिन होत खरी खरी छीन छबीली बाल।—बिहारी।

चुराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुरना] चुरने की क्रिया वा भाव। पकाने का काम।

चुराना–क्रि० स० [सं० चुर = चोरी करना] (१) किसी वस्तु को उसके स्वामी के परोक्ष वा अनजान में ले लेना। किसी दूसरे की वस्तु को इस प्रकार ले लेना कि उसे खबर न हो। गुप्त रूप से पराई वस्तु हरण करना। चोरी करना।

मुहा०—चित्त चुराना = मन को आकर्षित करना। मन मोहित करना।

(२) छिपाना। परोक्ष में करना। लोगों की दृष्टि से बचाना उ०—वह लड़का पैसा हाथ में चुराए है।

मुहा०—आँख चुराना = नज़र बचाना। सामने मुँह न करना।
(३) किसी वस्तु के देने वा करने में कसर करना। उ०—जैसे, वह गाय दूध चुराती है, यह गवैया सुर चुराता है।
क्रि० स० [हिं० चुरना] पकाना। किसी गीली वस्तु को इतना गरम करना कि वह ऊपर उठने लगे।

चुरिला—संज्ञा पुं० [हिं० चूड़ी] (१) काँच का मोटा टुकड़ा जिस से लड़के तख्ती वा पट्टी को रगड़ कर चमकाते हैं। (२) लोहे की एक चूड़ी जिसमें तागा बाँध कर नचनी के बीचो बीच में बाँध देते हैं। (जुलाहे)।

चुरिहारा—संज्ञा पुं० दे० "चुड़िहारा"।

चुरी*†—संज्ञा स्त्री० दे० "चूड़ी"। उ०—(क) किंकिनी कटि कुनित कंकन कर चुरी झनकार। हृदय चौकी चमकि बैठी सुभग मोतिन हार।—सूर। (ख) घर घर हिंदुनि तुरकिनी देति असीस सराहि। पतिन राखि चादर चुरी तैं राखी जय साहि।—बिहारी।

चुरुट—संज्ञा पुं० [अं० शेरूट—चेरूट] तंबाकू के पत्ते वा चूर की बत्ती जिसका धुआँ लोग पीते हैं। सिगार।

चुरू*†—संज्ञा पुं० [सं० चुलुक] चुल्लू। उ०—(क) हँसि जननी चुरु भरवाए। तब कछु कछु मुख पखराए।—सूर। (ख) धरि तुष्टी झारी जल ल्याई। भरयो चुरू खरिका लै आई।—सूर।

चुरैल†—संज्ञा स्त्री० दे० "चुड़ैल"।

चुर्ट—संज्ञा पुं० दे० "चुरुट"।

चुर्स—संज्ञा पुं० दे० "चुरुट"।

चुल—संज्ञा स्त्री० [सं० चल = चंचल] खुजलाहट। किसी अंग के मले वा सहलाए जाने की इच्छा। मस्ती। कामोद्वेग।
मुहा०—चुल उठना = (१) खुजलाहट होना। (२) प्रसंग की इच्छा होना। काम का वेग होना। चुल मिटना = कामवासना तृप्त करना।

चुलका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण की एक नदी का नाम।

चुलचुलाना—क्रि० अ० [हिं० चुल] खुजलाहट होना। चुल होना।

चुलचुलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुलचुलाना] चुल वा खुजली उठने का भाव। चुल। खुजलाहट।
क्रि० प्र०—उठना।—मिटना।—मिटाना।

चुलचुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुलचुलाना] चुल। खुजलाहट।
क्रि० प्र०—उठना।—मिटना।—मिटाना।

चुलबुल—संज्ञा स्त्री० [सं० चल + बल] चुलबुलाहट। चंचलता। चपलता।

चुलबुला—वि० [सं० चल + बल] [स्त्री० चुलबुली] (१) चंचल। चपल। जिसके अंग उमंग के कारण बहुत अधिक हिलते डोलते रहें। (२) नटखट।

चुलबुलाना—क्रि० अ० [अनु०] (१) चुलबुल करना। रह रह कर हिलना डोलना। (२) चंचल होना। चपलता करना।

चुलबुलापन—संज्ञा पुं० [हिं० चुलबुला + पन (प्रत्य०)] चंचलता। चपलता। शोख़ी।

चुलबुलाहट—संज्ञा स्त्री० [देश०] चंचलता। चपलता। शोख़ी।

चुलबुलिया†—वि० दे० "चुलबुला"।

चुलाना—क्रि० स० दे० "चुवाना"।

चुलाव—संज्ञा पुं० [देश०] वह पुलाव जिसमें मांस न पड़ा हो।
संज्ञा पुं० [हिं० चुवाना] चुलाने वा चुवाने का भाव वा क्रिया।

चुलियाला—संज्ञा पुं० [?] एक मात्रिक छंद का नाम जिसमें १३ और १६ के विश्राम से २९ मात्राएँ होती हैं। इसके अंत में एक जगण और एक लघु होता है। दोहे के अंत में एक जगण और एक लघु रखने से यह छंद सिद्ध होता है। कोई इसके दो और कोई चार पद मानते हैं। जो दो पद मानते हैं वे दोहे के अंत में एक जगण और एक लघु रखते हैं। जो चार पद मानते हैं वे दोहे के अंत में एक यगण रखते हैं। उ०—(क) मेरी विनती मानि कै हरि जू देखो नेक दशा करि। नाहीं तुम्हरी जात है दुख हरिबे की टेक सदा कर। (ख) हरि प्रभु माधव बीर बर मन मोहन गोपति अविनासी। कर मुरलीधर धीर नरवर दायक काटत भव-फाँसी। जन विपदाहर राम प्रिय मन भावन संतन घट-बासी। अब मम ओर निहारि दुख दारिद हरि कीने सुखरासी।

चुलुक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उर्द के डूबने भर को जल। (२) भारी दलदल। गहरा कीचड़। (३) चुल्लू। गहरी की हुई हथेली जिसमें पानी इत्यादि पी सकें। (४) एक प्रकार का बरतन जो नापने के काम में आता था। (५) एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

चुलुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है।

चुलुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिशुमार। सुइँस नाम का जलजंतु।

चुल्ला—संज्ञा पुं० [सं० चूडा = वलय] काँच का छोटा छल्ला जो जुलाहों के करघे में लगाया जाता है।
† वि० [अनु०] चिलबिल्ला। नटखट। पाजी।

चुल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अग्न्याधान। चूल्हा। (२) चिता।
† वि० चिलबिला। नटखट।

चुल्लू—संज्ञा पुं० [सं० चुलुक] गहरी की हुई हथेली जिसमें भर कर पानी आदि पी सकें। एक हाथ की हथेली का गड्ढा। (इस शब्द का प्रयोग पानी आदि द्रव पदार्थों के ही संबंध में होता है, जैसे, चुल्लू भर पानी, चुल्लू से दूध पीना। इत्यादि।)
मुहा०—चुल्लू भर = उतना (जल, दूध आदि) जितना चुल्लू में आ सके। चुल्लू भर पानी में डूब मरो = मुँह न दिखाओ

लज्जा के मारे मर जाओ। (जब कोई अत्यंत अनुचित कार्य्य करता है तब उसके प्रति धिक्कार के रूप में यह मुहा० बोलते हैं।) चुल्लू में उल्लू होना = बहुत थोड़ी सी भाँग वा शराब में बेसुध होना। चुल्लुओं रोना = बहुत रोना। बहुत आँसू गिराना। चुल्लुओं लहू पीना = बहुत सताना। चुल्लू में समुद्र न समाना = छोटे पात्र में बहुत वस्तु न आना। कुपात्र या क्षुद्र मनुष्य से कोई बड़ा या अच्छा काम न हो सकना।

विशेष—यद्यपि कुछ लोग दोनों हथेलियों को मिला कर बनाई हुई अंजली को भी चुल्लू कहते हैं पर यह ठीक नहीं है।

चुल्हौना†–संज्ञा पुं० दे० "चूल्हा"। उ०—समधी के घर समधी आयो, आयो बहू को भाइ। गोड़ चुल्हौने दै रहे, चरखा दियो उड़ाइ।—कबीर।

चुवना–क्रि० अ० दे० "चूना"।

चुवा†–संज्ञा पुं० [देश०] मज्जा। भेजा। हड्डी की नली के भीतर का मांस।

चुवाना–क्रि० स० [हिं० चूना का प्रे०] टपकाना। गिराना। बूँद बूँद करके गिराना। थोड़ा थोड़ा गिराना। उ०—(क) राँभत गाय बच्छ हित सुधि करि प्रेम उमँगि थन दूध चुवावत। जसुमति बोली उठि हरषित ह्वै कान्हैं धेनु चराये आवत।—सूर। (ख) कोई मुख सीतल नीर चुवावैं। कोइ अंचल सों पवन डोलावैं।—जायसी।

चुसकी–संज्ञा स्त्री० [सं० चषक] पानपात्र। मद्य पीने का पात्र। प्याला। (डिं०)

संज्ञा स्त्री० [हिं० चूसना] (१) ओंठ से किसी पीने की चीज़ को सुड़कने की क्रिया। ओंठ से लगा कर थोड़ा थोड़ा करके पीने की क्रिया। सुड़क। (२) उतना जितना एक बार सुड़का जाय। घूँट। दम। उ०—दो चुसकियां और लेने दो।

क्रि० प्र०—लगाना।—लेना।

चुसना–क्रि० अ० [हिं० चूसना] (१) चूसा जाना। ओंठ से खींच कर पिया जाना। चचोड़ा जाना। (२) निचुड़ जाना। गर जाना। निकल जाना। (३) सार-हीन होना। शक्ति-हीन होना। (४) धन-शून्य होना। देते देते पास में कुछ न रह जाना। उ०—हम तो चुस गए, अब हमारे पास रहा क्या?

संयो० क्रि०—जाना।

चुसनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चूसना] (१) बच्चों का एक खिलौना जिसे वे मुँह में डाल कर चूसते हैं। (२) दूध पिलाने की शीशी।

चुसवाना–क्रि० स० [हिं० चूसने का प्रे०] चूसने का काम कराना। चूसने देना। चूसने में प्रवृत्त करना।

चुसाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चूसना] चूसने की क्रिया वा भाव।

चुसाना–क्रि० स० [हिं० चूसना का प्रे०] चूसने का काम कराना। चूसने देना। चूसने में प्रवृत्त करना।

चुसौअल–संज्ञा स्त्री० दे० "चुसौवल"।

चुसौवल–संज्ञा स्त्री० [हिं० चूसना] (१) अधिकता से चूसने की क्रिया। (२) बहुत से आदमियों द्वारा चूसने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

चुस्त–वि० [फ़ा०] (१) कसा हुआ। जो ढीला न हो। संकुचित। उ०—यह अंगा बहुत चुस्त है। (२) फुरतीला। जिसमें आलस्य न हो। तत्पर। चलता।

यौ०—चुस्त चालाक = तेज़ और समझदार।

(३) कसा हुआ। दृढ़। मज़बूत।

संज्ञा पुं० जहाज़ का वह भाग जो भीतर की ओर झुका हो। सूढ़। (लश०)

चुस्ता–संज्ञा पुं० [सं० चुस्त = मांसपिंड विशेष] बकरी के बच्चे का आमाशय जिसमें पिया हुआ दूध भरा रहता है।

चुस्ती–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) फुरती। तेज़ी। (२) कसावट। तंगी। (३) मज़बूती। दृढ़ता।

चुहँटी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] चुटकी। उ०—चुहँटी चिबुक चाँपि चूँमि लोल लोयन कौं रस मैं बिरस कह्यों बचन मलीनो है।

चुहचाहट†–संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों का शब्द। चहकार।

चुहचुहा–वि० [अनु०] [स्त्री० चुहचुही] (१) चुहचुहाता हुआ। रसीला। चटकीला। शोख़। उ०—पहिरे चीर सुही सुरंग सारी चुहचुहु चूनरी बहुरंगनो। नील लहँगा लाल चोली कसि उबटि केसरि सुरंगनो।—सूर।

चुहचुहाता–वि० [हिं० चुहचुहाना] रस भरा। रसीला। सरस। रँगीला। मज़ेदार। उ०—कोई चुहचुहाता कवित्त सुनाइए।

चुहचुहाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) रस टपकाना। चटकीला लगना। (२) चिड़ियों का बोलना। चहचहाना। चहकार मचाना। कलरव करना। उ०—(क) चिरई चुहचुहानी चंद की ज्योति परानी रजनी बिहानी प्राची पियरी प्रवीन की।—सूर। (ख) मैं जानी जिय जहँ रति मानी। तुम आए हौ ललना जब चिरियां चुहचुहानी।—सूर।

चुहचुही–संज्ञा स्त्री० [अनु०] चमकीले काले रंग की एक बहुत छोटी चिड़िया जो प्रायः फूलों पर बैठती है। देखने में यह बहुत चंचल और तेज़ होती है। बोली भी इसकी प्यारी होती है। इसे 'फुलसुँघनी' भी कहते हैं। उ०—भोर होत बोलहिँ चुहचूही। बोलै पांडुक एकै तूही।—जायसी।

चुहटना*–क्रि० स० [देश०] रौंदना। कुचलना। उ०—फिरि फेरि अहुटत चलत चुहटत दुहू पहटत आइ।—सूदन।

चुहड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० चुहड़ी] भंगी। हलालखोर। श्वपच। चांडाल।

चुहना†–क्रि० स० [सं० चूषण] दाँतों से दबा कर किसी वस्तु के रस को चूसना। जैसे, ऊख चुहना।

चुहल–संज्ञा स्त्री० [अनु० चुहचुह = चिड़ियों की बोली] हँसी। ठठोली। विनोद। मनोरंजन।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

चुहलपन–संज्ञा पुं० दे० "चुहलबाजी"।

चुहलबाज़–वि० [हिं० चुहल + बाज़ (फ़ा० प्रत्य०)] ठठोल। मसखरा। दिल्लगीबाज। ठट्ठेबाज़। विनोदी।

चुहलबाज़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुहलबाज] हँसी ठठोली। दिल्लगी। मसख़रापन।

चुहादंती–संज्ञा स्त्री० दे० "चूहादंती"।

चुहिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० चूहा] चूहा का स्त्री० और अल्प० रूप।

चुहिल†–वि० [हिं० चुहचुहाना] रमणीक। जहाँ रौनक़ हो। (स्थान के संबंध में बोलते हैं।)

चुहिली–संज्ञा स्त्री० [देश०] चिकनी सुपारी।

चुहुकना†–क्रि० स० [सं० चूष] चूसना।

चूँ–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) छोटी चिड़ियों के बोलने का शब्द। उ०—चूँ चूँ चूँ चूँ क्या करती हैं बेचूँ बेचूँ करती हैं।—नज़ीर। (२) चूँ शब्द।

मुहा०—चूँ करना = (१) कुछ कहना। (२) प्रतिवाद करना। विरोध में कुछ कहना।

यौ०—चूँ चाँ = दे "चूँचरा"।

चूँकि–क्रि० वि० [फ़ा०] इस कारण से कि। क्योंकि। इस लिये कि।

चूँचरा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) प्रतिवाद। विरोध। (२) आपत्ति। उज्र। (३) बहाना। मिस।

चूँची†–संज्ञा स्त्री० दे० "चूची"।

चूँचूँ–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) चिड़ियों के बोलने का शब्द। दे० "चूँ"। (२) किसी प्रकार का "चूँ चूँ" शब्द। (३) एक प्रकार का खिलौना जिसे दबाने वा खींचने से चूँ चूँ शब्द होता है।

चूँदरी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चुनरी"। उ०—दै उर जेब जवाहिर की चुनि चोष सों चूँदरी लै पहिरावत।

चूँदी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चुंदी"।

चूअरी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] जरदालू। खूबानी।

चूऊ–संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का महीन ऊनी कपड़ा जो पहाड़ी देशों में बनता है।

चूक–संज्ञा स्त्री० [हिं० चूकना] (१) भूल। ग़लती।

क्रि० प्र०—करना।—जाना।—पड़ना।—होना।

(२) दरार। दर्ज। शिगाफ। (लश०)

संज्ञा पुं० [सं० चुक्र] (१) नींबू, इमली, आम, अनार या आँवले आदि किसी खट्टे फल के रस को गाढ़ा करके बनाया हुआ एक पदार्थ जो अत्यंत खट्टा होता है। वैद्यक में इसे दीपन और पाचन मानते हैं। (२) एक प्रकार का खट्टा साग।

विशेष—दे० "चूका"।

वि० बहुत अधिक खट्टा। इतना खट्टा जो खाया न जा सके।

चूकना–क्रि० अ० [सं० च्युतक्, प्रा० चुक्कि] (१) भूल करना। ग़लती करना। (२) लक्ष्य-भ्रष्ट होना। (३) सुअवसर खो देना। उ०—समय चूकि पुनि का पछताने।—तुलसी।

संयो० क्रि०—जाना।

चूका–संज्ञा पुं० [सं० चुक्र] एक प्रकार का खट्टा साग जिसे चूक भी कहते हैं। (वैद्यक में इसे हलका, रुचिकारक और दीपक माना है।)

चूची–संज्ञा स्त्री० [सं० चूचुक] (१) स्तन का अग्र भाग। कुच के ऊपर की घुंडी। (२) स्तन। कुच। स्त्री की छाती।

मुहा०—चूची पीता = बहुत छोटा (बच्चा)। नासमझ। नादान। चूची पीना = चूची को मुहँ में लगा कर उसका दूध पीना। स्तनपान करना। चूची मलना = संभोग के समय आनंद-वृद्धि के लिये स्त्री के स्तन को (पुरुष का) हाथों से दबाना, मलना या मर्दन करना।

चूचुक–संज्ञा पुं० [सं०] कुच का अग्र भाग। चूची की ढेपनी। उ०—चूचुक सारी परसि रहे तेहि निहुरि लखति सी। सुकबि श्याम को निरखि निरखि बिहँसति सकुचति सी।—व्यास।

चूज़ा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] मुरगी का बच्चा।

वि० जिसकी अवस्था अधिक न हो। (बाजारू)

चूड़, चूड़क–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोटी। शिखा। (२) मस्तक पर की कलगी, जैसी मुरगे वा मोर के सिर पर होती है। (३) शंखचूड़ नामक दैत्य। (४) खंभे मकान या पहाड़ आदि का ऊपरी भाग। कंकण। (५) छोटा कुआँ।

चूड़ांत–वि० [सं०] चरमसीमा। पराकाष्ठा।

क्रि० वि० अत्यंत। बहुत अधिक।

चूड़ा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चोटी। शिखा। चुरकी।

यौ०—चूड़ाकरण। चूड़ाकर्म। चूड़ामणि।

(२) मोर के सिर पर की चोटी। (३) छाजन आदि में वह सब से ऊँचा भाग जिसे मँगरा कहते हैं। (४) कुआँ। (५) घुँघची। (६) मस्तक। (७) प्रधान नायक। (८) बाँह में पहनने का एक प्रकार का अलंकार। (९) चूड़ाकरण नाम का संस्कार।

संज्ञा पुं० [सं० चूड़ा = बाहु-भूषण] (१) कंकण। कड़ा। बलय। (२) हाथों में पहनने के लिये छोटी बड़ी बहुत सी चूड़ियों का समूह जो किसी जाति में नव-वधू और किसी किसी जाति में प्रायः सब विवाहिता स्त्रियाँ पहनती हैं। चूड़ियाँ प्रायः हाथी-दाँत की बनती हैं। उसमें की सब से छोटी

चूड़ी पहुँचे के पास और सबसे बड़ी चूड़ी कुहनी के पास रहती है और बीच की चूड़ियां गावदुम रहती हैं।

संज्ञा पुं० दे० "चुहड़ा"।

संज्ञा पुं० दे० "चिउड़ा"।

चूड़ाकरण-संज्ञा पुं० [सं०] किसी बच्चे का पहले पहल सिर मुड़वा कर चोटी रखवाना। हिंदुओं के १६ संस्कारों में से यह भी एक संस्कार है। यह बच्चे की उत्पत्ति से तीसरे वा पांचवें वर्ष होता है। मुंडन।

चूड़ाकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] चूड़ाकरण।

चूड़ामणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिर में पहनने का शीश फूल नाम का गहना। बीज। (२) सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति। सब में श्रेष्ठ। सरदार। मुखिया। अग्रगण्य। (३) घुघची। गुंजा।

चूड़ाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] इमली।

चूड़ाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद घुँघची। (२) नागरमोथा। (३) एक प्रकार की घास जिसे निर्विषी भी कहते हैं।

चुड़िया-संज्ञा पुं० [हिं० चूड़ी + इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का धारीदार कपड़ा।

चूड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चूड़ा] (१) वह मंडलाकार पदार्थ जिसकी परिधि मात्र हो और जिसके मध्य का स्थान बिलकुल खाली हो। वृत्ताकार पदार्थ। जैसे, मशीन की चूड़ी, (जो किसी पुरजे को खसकने से बचाने के लिये पहनाई जाती है), फोनोग्राफ़ की चूड़ी (जिसमें गाना भरा रहता है और जो घूमनेवाले बेलन में पहनाई जाती है।) (२) हाथ में पहनने का एक प्रकार का वृत्ताकार गहना जो लाख, कांच, चांदी या सोने आदि का बनता है।

विशेष-भारतीय स्त्रियां चूड़ी को सौभाग्य-चिह्न समझती हैं और प्रत्येक हाथ में कई कई चूड़ियां पहनती हैं। पहनी हुई चूड़ी का टूट जाना अशुभ समझा जाता है। यूरोप अमेरिका आदि की स्त्रियां केवल दाहिने हाथ में और प्रायः एक ही चूड़ी पहनती हैं।

क्रि० प्र०-उतारना।—चढ़ाना।—पहनना।

मुहा०-**चूड़ियां ठंढी करना या तोड़ना** = पति के मरने के समय स्त्री का अपनी चूड़ियाँ उतारना या तोड़ना। वैधव्य का चिह्न धारण करना। **चूड़ियाँ पहनना** = स्त्रियों का वेष धारण करना। औरत बनना। (व्यंग्य और हास्य) जैसे, जब तुम इतना भी नहीं कर सकते तो चूड़ियाँ पहन लो। (किसी पर या किसी के नाम की) **चूड़ियाँ पहनना** = स्त्री का किसी को अपना उपपति बना लेना। स्त्री का किसी के घर बैठ जाना। **चूड़ियाँ पहनाना** = विधवा स्त्री से अथवा विधवा स्त्री का विवाह करना। **चूड़ियाँ बढ़ाना** = चूड़ियाँ उतारना। चूड़ियों को हाथों से अलग करना। (चूड़ियों के साथ "उतारना" शब्द का प्रयोग स्त्रियों में अनुचित और अशुभ समझा जाता है।)

(३) फोनोग्राफ़ या ग्रामोफ़ोन बाजे का रेकर्ड जिसमें गाना भरा रहता अथवा भरा जाता है।

विशेष—पहले पहल जब केवल फोनोग्राफ़ का अविष्कार हुआ था तो उसके रेकर्ड लंबे और कुंडलाकार बनते थे और उक्त बाजे में लगे हुए एक लंबे नल पर चढ़ा कर बजाए जाते थे। उन्हीं रेकर्डों को चूड़ी कहते थे। पर आज कल ग्रामोफ़ोन के रेकर्डों को भी जो तवे के आकार की गोल पटरियां होती हैं, चूड़ी कहते हैं।

(४) चूड़ी की आकृति का गोदना जो स्त्रियां हाथों पर गोदाती हैं। (५) रेशम साफ़ करनेवालों का एक औजार। यह चंद्राकार मोटे कड़े की शकल का होता है और मकान की छत में बांस की एक कमानी के साथ बँधा रहता है। इसके दोनों ओर दो टेकुरियां होती हैं। बाईं ओर की टेकुरी में साफ़ किया हुआ और दाहिनी ओर की टेकुरी में उलझा हुआ रेशम लपेटा रहता है।

चूड़ीदार—वि० [हिं० चूड़ी + फ़ा० दार] जिस में चूड़ी या छल्ले अथवा इसी आकार के घेरे पड़े हों।

यौ०—**चूड़ीदार पायजामा** = तंग और लंबी मोहरी का एक प्रकार का पायजामा जिसमें चुस्त ऐंठन के कारण पैर के पास चूड़ी के आकार के घेरे या शिकन पड़ी रहती हैं।

चूड़ो†—संज्ञा पुं० दे० "चुहड़ा"

चूत—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

यौ०—चूतमंजरी। चूतलतिका। चूतांकुर। चूतकलिका।

संज्ञा स्त्री० [सं० च्युति = भग] स्त्रियों की भगेंद्रिय। योनि। भग।

चूतक—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

चूतड़—संज्ञा पुं० [हिं० चूत + तल] कमर के नीचे और जंघा के ऊपर गुदा के बगल का माँसल भाग। नितंब।

मुहा०—**चूतड़ दिखाना** = कठिन समय पर भाग जाना। पीठ दिखाना। **चूतड़ पीटना या बजाना** = बहुत प्रसन्न होना। ख़ूब ख़ुश होना। **चूतड़ों का लहू मरना** = एक स्थान पर जम कर बैठने के योग्य होना।

चूतर†—संज्ञा पुं० दे० "चूतड़"

चूतिया—वि० [हिं० चूत + इया (प्रत्य०)] बेसमझ। मूर्ख। गावदी।

क्रि० प्र०—बनाना।—फँसाना।

चूतिया चक्कर—वि० दे० "चूतिया"

चूतियापंथी—संज्ञा स्त्री० [चूतिया + पंथी] मूर्खता। बेसमझी बेवकूफ़ी।

चून—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] (१) पिसान। आटा। (२) दे० "चूना"।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा थूहड़ जो हिमालय के

दक्षिणी भाग में तथा पंजाब के कुछ ज़िलों में अधिकता से होता है। इसके दूध में गटापारचा का अंश बहुत अधिक होता है। ताजे दूध में बहुत सुगंधि होती है और वह आँख के लिये बहुत हानिकारक होता है। बासी दूध लगने से शरीर में छाले पड़ जाते हैं।

चूनर, चूनरी—संज्ञा० स्त्री० दे० "चुनरी"

चूना—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] एक प्रकार का तीक्ष्ण क्षारभस्म जो पत्थर, कंकड़, मिट्टी, सीप, शंख या मोती आदि पदार्थों को भट्ठियों में फूँक कर बनाया जाता है। तुरंत फूँक कर तैयार किए हुए चूने को कली या बिना बुझा हुआ चूना कहते हैं। यह ढोंके वा उसी स्वरूप में होता है जिसमें उसका मूल पदर्थ फूंके जाने से पहले रहता है। कंकड़ का बिना बुझा चूना 'बरी' कहलाता है। बिना बुझा चूना हवा लगने से अपनी शक्ति और गुण के अनुसार तुरंत या कुछ समय में चूर्ण के रूप में हो जाता है और उसकी शक्ति और गुण में कमी होने लगती है। पर पानी के संयोग से बिना बुझे चूने की यह दशा बहुत जल्दी हो जाती है। उस अवस्था में उसे "भरका" या बुझा हुआ चूना कहते हैं। बिना बुझे चूने पर जब पानी डाला जाता है तो पहले तो वह पानी को ख़ूब सोखता है, पर थोड़ी ही देर बाद उस में से बुलबुले छूटने लगते हैं और उस में से बहुत तेज़ गरमी निकलती है। तेज चूने के संयोग से शरीर चरॉने लगता है और उस में कभी कभी छाले तक पड़ जाते हैं। पत्थर का चूना बहुत तेज़ होता है और मकान की दीवारों पर सफ़ेदी करने, खेत में खाद की तरह डालने, छींटें आदि छापने, पान के साथ लगा कर खाने और दवाओं आदि के काम में आता है। कंकड़ का चूना भी प्रायः इन्हीं कामों में आता है, पर इसका सब से अधिक उपयोग इमारत के काम में, ईंट पत्थर आदि जोड़ने और दीवारों पर पलस्तर करने के लिये होता है। संख, सीप और मोती आदि का चूना प्रायः खाने और औषध के काम में ही आता है।

मुहा०—चूना छूना या फेरना = चूने को पानी में घोल कर दीवारों पर उन्हें सफ़ेद करने के लिये पोतना। दीवारों पर चूने की सफ़ेदी करना। चूना लगाना = ख़ूब धोखा देना, हानि पहुँचाना या दिक करना। बहुत लज्जित करना।

यौ०—चूनादानी। चुनौटी।

क्रि० अ० [सं० च्यवन] (१) पानी या किसी दूसरे द्रव पदार्थ का किसी छेद या छोटी दरज में से बूँद बूँद हो कर नीचे गिरना। टपकना। जैसे, छत में से पानी चूना, लोटे में से दूध चूना, आदि।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

‡ (२) किसी चीज़ का विशेषतः फल आदि का, अचानक ऊपर से नीचे गिरना। जैसे, आम चूना, महुआ चूना।

(३) किसी चीज़ में ऐसा छेद या दरज हो जाना जिसमें से होकर कोई द्रव पदार्थ बूँद बूँद गिरे। जैसे, छत चूना, लोटा चूना, पीपा चूना, आदि।

† वि० [हिं० चूना (क्रि० अ०)] जिसमें किसी चीज़ के चूने योग्य छेद या दरज हो। जैसे, चूना घड़ा, चूना घर।

चूनादानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूना + सं० आधान] वह छोटी डिबिया या इसी प्रकार का और कोई पात्र जिसमें पान या सुरती के साथ खाने के लिये चूना रखा जाता है। चुनौटी।

चूनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्णिका] (१) अन्न का छोटा टुकड़ा। अन्नकण।

यौ०—चूनी भूसी = मोटे अन्न का पीसा हुआ चूर्ण या चोकर आदि।

(२) रत्नकण। चुन्नी।

विशेष—दे० "चुन्नी"।

चूनेदानी—संज्ञा स्त्री० दे० "चूनादानी"।

चूमना—क्रि० स० [सं० चुम्बन] प्रेम के आवेग में अथवा यों ही होठों से (किसी दूसरे के) गाल आदि अंगों को अथवा किसी और पदार्थ को स्पर्श करना वा दबाना। चुम्मा लेना। बोसा लेना।

मुहा०—चूम कर छोड़ देना = किसी भारी कार्य्य को आरंभ करके, या किसी वस्तु को छू कर बिना उसका पूरा उपयोग किए छोड़ देना। चूमना चाटना = चूमना। प्यार करना।

विशेष—किसी किसी देश में आदर या सम्मान के लिये भी बड़ों के हाथ आदि अंगों को चूमते हैं।

संज्ञा पुं० हिंदुओं में विवाह की एक रस्म जिसमें वर की अंजुली में चावल, जौ, गुड़ भर कर पाँच सोहागिनी स्त्रियाँ मंगल-गीत गाती हुई वर के माथे, कंधे और घुटने आदि पाँच अंगों को हरी दूब से छूती और तब उस दूब को चूम कर फेंक देती हैं।

चूमा—संज्ञा पुं० [सं० चुम्बन, हिं० चूमना] चूमने की क्रिया। चुंबन। चुम्मा। मिट्टी।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

यौ०—चूमा चाटी।

चूमाचाटी—संज्ञा० स्त्री० [हिं० चूमना + चाटना] चूमने और चाटने का काम। चूम और चाट कर प्रेम प्रकट करने की क्रिया।

चूर—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] किसी पदार्थ के बहुत छोटे छोटे टुकड़े जो उस पदार्थ को खूब तोड़ने, कूटने आदि से बनते हैं।

मुहा०—चूर करना या चूर चूर करना = किसी पदार्थ को तोड़ फोड़ कर उसके बहुत छोटे छोटे टुकड़े करना।

(२) किसी पदार्थ के वे बहुत महीन कण जो उस पदार्थ को रेती से रेतने अथवा आरी से चीरने आदि से निकलते हैं। बुरादा। भूर।

वि० (१) (किसी कार्य्य आदि में) तन्मय। निमग्न। तल्लीन। जैसे, काम में चूर, शेखी में चूर। (२) जिस पर नशे का बहुत अधिक प्रभाव हो। नशे में बहुत बदमस्त। जैसे, भाँग में चूर, शराब में चूर, गांजे में चूर।

संज्ञा स्त्री० दे० "चूल"।

चूरण–संज्ञा पुं० दे० "चूर्ण"।

चूरन–संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] (१) दे० "चूर्ण"। (२) बहुत महीन पीसी हुई कई पाचक औषधों का चूर्ण।

चूरनहार–संज्ञा पुं० [सं० चूर्णहार] एक प्रकार की जंगली बेल जिसके पत्ते बहुत लंबे, चिकने और कुछ मोटे होते हैं। इसमें मीठी गंधवाले छोटे छोटे फूल भी लगते हैं। इसकी जड़, पत्तियों और छाल आदि का व्यवहार औषधों में होता है। वैद्यक में इसे कसैला, गरम, त्रिदोषनाशक, रुधिर-विकार को दूर करनेवाला और कृमिनाशक माना है। कहते हैं, विषम ज्वर की यह बहुत अच्छी दवा है।

चूरना†*–क्रि० स० [सं० चूर्णन्] (१) चूर करना। टुकड़े टुकड़े करना। (२) तोड़ना। तोड़ डालना। उ०—(क) ब्रह्मरंध्र फोर जीव यों मिल्यो द्युलोक जाइ। गेह चूरि ज्यों चकोर चंद्रमैं मिलै उड़ाय।—केशव। (ख) बाँधि गा सुआ करत सुख केली। चूरि पाँख मेलेसि धरि डेली।—जायसी।

चूरमा–संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] रोटी या पूरी को चूर चूर करके घी में भूना हुआ और चीनी मिलाया हुआ एक खाद्य पदार्थ।

चूरमूर–संज्ञा पुं० [देश०] वे खूँटियाँ जो जौ या गेहूँ के कट जाने पर खेत में रह जाती हैं।

चूरा–संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] किसी वस्तु का पिसा हुआ भाग। चूर्ण। बुरादा।

विशेष—दे० "चूर"।

संज्ञा पुं० दे० "चूड़ा"।

संज्ञा पुं० दे० "चिउड़ा"।

चूरामणि*–संज्ञा स्त्री० दे० "चूड़ामणि"।

चूरी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चूड़ी"।

‡ संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण] (१) चूर। चूरा। (२) चूरमा।

चूरू–संज्ञा पुं० [हिं० चूर] एक प्रकार का चरस जो गांजे के मादा पेड़ों से निकलता और कुछ निकृष्ट समझा जाता है।

चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूखा पिसा हुआ अथवा बहुत ही छोटे छोटे टुकड़ों में किया हुआ पदार्थ। सफूफ। बुकनी। (२) कई पाचक औषधों का बारीक पीसा हुआ सफूफ। (३) अबीर। (४) धूल। गर्द। (५) चूना। (६) कौड़ी। कपर्दक।

वि० जो किसी प्रकार तोड़ा फोड़ा या नष्ट भ्रष्ट किया गया हो। जैसे, गर्व चूर्ण करना।

चूर्णक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्तू। सतुआ। (२) वह गद्य जिसमें छोटे छोटे शब्द हों और लंबे समासवाले शब्द और कठोर या श्रुतिकटु अक्षर न हों। (३) एक प्रकार का वृक्ष। (४) एक प्रकार का शालिधान्य।

चूर्णकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूर्ण करनेवाला। (२) आटा बेचनेवाला। (३) एक वर्ण-संकर जाति। पराशर के मत से यह नट जाति की स्त्री और पुंड्रक जाति के पुरुष से उत्पन्न हुई थी।

चूर्ण कुंतल–संज्ञा पुं० [सं०] अलक। ज़ुल्फ़। लट।

चूर्णखंड–संज्ञा पुं० [सं०] कंकड़।

चूर्णपारद–संज्ञा पुं० [सं०] शिंगरफ।

चूर्णयोग–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत से सुगंधित पदार्थों का मिश्रण।

चूर्णशाकांक–संज्ञा पुं० [सं०] गौर सुवर्ण नाम का साग जो चित्रकूट में अधिकता से होता है।

विशेष—दे० "गौर सुवर्ण"।

चूर्णहार–संज्ञा पुं० [सं०] चूरनहार नाम की बेल।

चूर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] आर्या छंद का दसवाँ भेद जिसमें १८ गुरु और २१ लघु होते हैं।

चूर्णि–संज्ञा स्त्री० [सं०] कौड़ी। कपर्दक।

चूर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्तू। सतुआ। (२) गद्य का एक भेद।

विशेष—दे० "चूर्णक"।

चूर्णिकृत–संज्ञा पुं० [सं०] महाभाष्यकार पतंजलि मुनि।

चूर्णित–वि० [सं०] चूर्ण किया हुआ।

चूर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कार्षापण नामक पुराना सिक्का या कौड़ी। (२) एक प्राचीन नदी का नाम। (३) पतंजलि प्रणीत पाणिनि व्याकरण का भाष्य।

चूर्मा–संज्ञा पुं० दे० "चूरमा"।

चूल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोटी। शिखा। (२) रीछ के बाल। (कलंदरों की भाषा)

संज्ञा स्त्री० [देश०] किसी लकड़ी का वह पतला सिरा जो किसी दूसरी लकड़ी के छेद में उसके साथ जोड़ने के लिये ठोंका जाय।

मुहा०—चूलें ढीली होना = अधिक परिश्रम के कारण बहुत थकावट होना।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का थूहड़। दे० "चून"।

चूलक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी की कनपटी। (२) हाथी के कान की मैल। (३) खंभे का ऊपरी भाग (४) किसी घटना या विषय की परोक्ष से सूचना।

चूलदान–संज्ञा पुं० [सं० चुल्लि+आधान] (१) बावर्चीखाना। रसोईघर। पाकशाला। (लश०)। (२) बैठने या चीज़ें आदि रखने के लिये सीढ़ीनुमा बना हुआ स्थान। गैलरी। (लश०)

चूलिक–संज्ञा पुं० [सं०] लूची नामक पकवान। मैदे की पतली पूरी। लुचुई।

चूलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चूलक। (२) नाटक का एक अंग जिसमें नेपथ्य से किसी घटना के हो जाने की सूचना दी जाती है।

विशेष—संस्कृत-साहित्य के नियमानुसार रंगशाला पर युद्ध या मृत्यु आदि का दृश्य दिखलाना निषिद्ध है। इसलिये उसकी सूचना नेपथ्य से हो जाया करती है। संस्कृत के वीरचरित नाटक में इस प्रकार की एक चूलिका है। उसमें नैपथ्य से कहा जाता है—"राम ने परशुराम पर विजय पा ली है; अतः हे विमान पर बैठनेवालो, आप लोग मंगल-गीत आरंभ करें।"

चूलिकोपनिषद्–संज्ञा स्त्री० [सं० चुलि] अथर्ववेदीय एक उपनिषद् का नाम।

चूल्हा–संज्ञा पुं० [सं०] अँगीठी की तरह का मिट्टी या लोहे आदि का बना हुआ पात्र जिसका आकार प्रायः घोड़े की नाल का सा या अर्द्धचंद्राकार होता है और जिस पर, नीचे आग जला कर, भोजन पकाया जाता है।

यौ०—दोहरा चूल्हा = वह चूल्हा जिस पर एक साथ दो चीज़ें पकाई जा सकें।

मुहा०—चूल्हा जलना = भोजन बनना। जैसे, आज उनके घर चूल्हा नहीं जला। चूल्हा न्यौतना = घर के सब लोगों का निमंत्रण देना। चूल्हा फूँकना = भोजन पकाना। चूल्हे में जाना = नष्ट भ्रष्ट होना। अस्तित्व मिटना। चूल्हे में डालना = (१) नष्ट भ्रष्ट करना। (२) दूर करना। चूल्हे में पड़ना = दे० "चूल्हे में जाना"। (इन मुहावरों का प्रयोग क्रोध में या अत्यंत निरादर प्रकट करने के समय होता है। जैसे, चूल्हे में जाय तुम्हारा तमाशा। चूल्हे में डालो अपनी सौगात।) चूल्हे से निकल कर भाड़ या भट्ठी में पड़ना = छोटी विपत्ति से निकल कर बड़ी विपत्ति में फँसना।

चूषण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चूषणीय, चूष्य] चूसने की क्रिया।

चूषणीय–वि० [सं०] चूसने योग्य। जो चूसा जाय।

चूषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी की कमर में बाँधी जानेवाली बड़ी पेटी या पट्टा।

चूष्य–वि० [सं०] चूसने के योग्य। जो चूसा जाय या चूसा जा सके।

चूसना–क्रि० स० [सं० चूषण] (१) जीभ और होंठ के संयोग से किसी पदार्थ का रस खींच खींच कर पीना। जैसे, आम चूसना, गँडेरी चूसना। (२) किसी चीज़ का सार भाग ले लेना। जैसे, किसी स्त्री का पुरुष को चूस लेना। किसी बदमाश का भले आदमी को चूसना (उसका धन आदि अपहरण करना)।

संयो० क्रि०—डालना।—लेना।

चूहड़–संज्ञा पुं० दे० "चूहड़ा"।

चूहड़ा–संज्ञा पुं० [ ] [स्त्री० चूहड़ी] भंगी या मेहतर। चांडाल। श्वपच।

चूहर–संज्ञा पुं० दे० "चूहड़ा"।

चूहरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुरिहारिन का अपभ्रंश] चूड़ी बेचने या पहनानेवाली स्त्री। चुड़िहारिन।

संज्ञा स्त्री० "चूहड़ा" का स्त्री०।

चूहा–संज्ञा पुं० [अनु० चूँ + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्प० चुहिया, चूही आदि] चार पैरोंवाला एक प्रसिद्ध छोटा जंतु जो प्रायः घरों या खेतों में बिल बना कर रहता है। यह समस्त एशिया, युरोप और अफ्रिका में पाया जाता है और इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियां होती हैं। साधारणतः भारतीय चूहों का रंग कालापन लिए खाकी होता है पर नीचे के भाग में कुछ सफ़ेदी भी होती है। इसके दांत बहुत तेज़ होते हैं और यह खाने पीने की चीजों के सिवा कपड़ों और दूसरी चीज़ों को काट कर भी बहुत हानि पहुँचाता है। कभी कभी यह मनुष्यों को भी काटता है। इसके काटने से एक प्रकार का हलका विष चढ़ता है। किसी किसी जाति के चूहे बहुत लड़ाके होते हैं और आपस में खूब लड़ते हैं। इसकी मादा एक साथ कई बच्चे देती है। इस देश में विलायत से खरगोश से मिलते जुलते एक प्रकार के सफ़ेद चूहे भी आते हैं जिन्हें विलायती चूहा कहते हैं। इनके एक जोड़े से बढ़ कर एक साल के अंदर कई सौ चूहे हो जाते हैं। इस जाति के चूहे प्रायः अपने बच्चों को जन्मते ही या कुछ दिनों के अंदर खा जाते हैं। साधारणतः चूहे प्रायः कुत्तों और विशेषतः बिल्लियों के शिकार हो जाते हैं। मूसा।

चूहादंती–संज्ञा स्त्री० [हिं० चूहा + दाँत] स्त्रियों के पहनने की एक प्रकार की पहुँची जो चांदी या सोने की बनती है। इसके दाने चूहे के दांत से लंबे और नुकीले होते हैं और रेशम या सूत में पिरोए रहते हैं।

वि० चूहे के दांत के आकार का।

चूहादान–संज्ञा पुं० [हिं० चूहा + फा० दान] चूहों को फँसाने का एक प्रकार का पिंजड़ा।

चूहेदानी–संज्ञा स्त्री० दे० "चूहादान"।

चेँ–संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों के बोलने का शब्द। चेँ चेँ।

मुहा०—चेँ बोलना = दे० "चीँ" के मुहा० में "चीँ बोलना"।

चेँगड़ा†–संज्ञा पुं० [अनु०] [स्त्री० चेंगड़ी] छोटा बच्चा। बालक।

चेँगा†–संज्ञा पुं० दे० "चेँगड़ा"।

संज्ञा स्त्री० दे० "चेनगा"।

चेँगी–संज्ञा स्त्री० [देश०] चमड़े की चकती या सन वा सुतली

का घेरा जिसे पैंजनी और पहिये के बीच में इसलिये पहना देते हैं कि जिसमें दोनों एक दूसरे से रगड़ न खांय।

चैंघी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चैंगी"।

चैंच–संज्ञा पुं० [सं० चञ्चु] एक साग जो बरसात में बहुत उगता है। इसमें पीले फूल और फलियां लगती हैं। इसकी पत्तियां लुआबदार होती हैं।

चैंचर†–वि० [चें चें से अनु०] बकवादी। बक्की। चैं चैं करनेवाला।

चैंचुआ†–संज्ञा पुं० [चें चें से अनु०] चातक का बच्चा।

चैंचुला†–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पकवान। इसके बनाने में पहले गूँधे हुए आटे या मैदे को पूरी की तरह पतला बेल कर गोंठते और चौखूटा बना कर कुछ दबा देते हैं और तब घी आदि में तल लेते हैं।

चैंचैं–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) चिड़ियों के बोलने का शब्द। चीं चीं। (२) व्यर्थ की बकवाद। बकबक।

चैंटुआ†–संज्ञा पुं० [हिं० चिड़िया] चिड़िया का बच्चा। उ०—अंड फोरि कर्यो चेंटुआ तुष पर्यो नीर निहारि। गहि चंगुल चातिक चतुर डार्यो बाहिर बारि।—तुलसी।

चैंटियारी–संज्ञा स्त्री० [देश०] अबलक रंग का एक प्रकार का बहुत बड़ा जल-पक्षी जिसके पैर प्रायः हाथ भर लंबे और चोंच एक बालिश्त की होती है। इसके सिर पर बाल या पर नहीं होते। इसका मांस स्वादिष्ट होता है और इसीलिये इसका शिकार किया जाता है।

चैंटी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चिँउटी"।

चैंडा†–संज्ञा पुं० दे० "चेंगड़ा"।

चैंधी–संज्ञा स्त्री० दे० "चेंगी"।

चैंपैं–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) वह धीमा शब्द या कार्य्य जो किसी बड़े के सामने किसी प्रकार का विरोध प्रकट करने के लिये किया जाय। चीं चपड़। (२) व्यर्थ की बकवाद। बकबक।

चैंफ†–संज्ञा पुं० [देश०] ऊँख का छिलका।

चेंबर–संज्ञा पुं० [अं०] वह बड़ा कमरा जिसमें किसी विषय की मंत्रणा हो। सभा-गृह।

चेंबर आफ़ कामर्स–संज्ञा पुं० [अं०] किसी नगर के प्रधान व्यापारियों की वह सभा जिसका संगठन उन व्यापारियों के व्यापार-संबंधी स्वत्वों की रक्षा के लिये हुआ हो।

चेअर–संज्ञा स्त्री० [अं०] बैठने की कुरसी।

यौ०—ईज़ी चेअर = आराम कुरसी।

चेअरमेन, चेअरमैन–संज्ञा पुं० [अं०] किसी सभा या बैठक का प्रधान। सभापति।

चेउरी†–संज्ञा पुं० [हिं० जेवड़ी = रस्सी] कुम्हार का वह डोरा जिसके द्वारा चाक पर तैयार किया हुआ बरतन शेष मिट्टी से काट कर अलग किया और उतारा जाता है।

चेक–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह रुक्का या लिखा हुआ आज्ञापत्र जो किसी बंक आदि के नाम लिखा गया हो और जिसके देने पर वहां से उस पर लिखी हुई रक़म मिल जाय।

विशेष—साधारणतः चेकों का एक निश्चित स्वरूप हुआ करता है। किसी बंक के नाम लिखने का अधिकार उसी को होता है जिसका रुपया उस बंक में चलते खाते में जमा हो।

मुहा०—चेक काटना = चेक लिख कर (किताब में से काट कर) देना।

यौ०—चेक बुक = बहुत से सादे चेकों को एक साथ सीकर बनाई हुई किताब।

(२) बहुत सी सीधी रेखाओं पर ऐसी आड़ी खींची हुई रेखाएँ जिनसे बहुत से चौकोर खाने बन जांय। चारखाना।

चेकित–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

वि० बहुत बड़ा ज्ञानी।

चेकितान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव। शिव। (२) केकय देश के राजा धृष्टकेतु के पुत्र का नाम जिसने महाभारत के युद्ध में पांडवों की सहायता की थी।

वि० बहुत बड़ा ज्ञानी।

चेचक–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] शीतला या माता नामक रोग।

चेचकरू–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जिसके मुँह पर शीतला के दाग़ हों।

चेजा–संज्ञा पुं० [हिं० छेद ?] सूराख़। छेद। छिद्र। उ०—आंखड़ियां रतनालिया चेजा करै पताल। मैं तोहि बूझौं माछली तूँ क्यों बंधी जाल।—कबीर।

चेट–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चेटी वा चेटिका] (१) दास। सेवक। नौकर। (२) पति। ख़ाविंद। (३) नायक और नायिका को मिलानेवाला प्रवीण पुरुष। भँडुवा (४) एक प्रकार की मछली। (५) भांड़।

चेटक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेवक। दास। नौकर। (२) चटक मटक। (३) दूत। (४) जल्दी। फुरती। (५) चाट। चसका। मज़ा।

क्रि० प्र०—लगना।

(६) जादू या इंद्रजाल विद्या। नजरबंद का तमाशा। (७) भांडों का तमाशा। कौतुक। उ०—(क) कतहूँ नाद शब्द हो भला। कतहूँ नाटक चेटक कला।—जायसी। (ख) नट ज्यों जिन पेट कुपेट कुकोटिक चेटक कौटिक ठाट ठट्यो।—तुलसी।

चेटकनी*–संज्ञा स्त्री० [सं० चेटक] "चेटक" का स्त्री०।

चेटका–संज्ञा स्त्री० [सं० चिता] (१) मुरदा जलाने की चिता। (२) श्मशान। मरघट। उ०—जरे जूह नारी चढ़ी चित्रसारी, मनो चेटका में सती सत्यधारी।—केशव।

चेटकी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्रजाली। जादूगर। उ०—किसमी किसान कुल बनिक भिखारी भाट चाकर चपल नट चोर

चार चेटकी।—तुलसी। (२) कौतुकी। अनेक प्रकार के कौतुक करनेवाला। उ०—परम गुरु रतिनाथ हाथे शिर दियो प्रेम उपदेश। चतुर चेटकी मथुरानाथ सो कहियो जाय आदेश।—सूर।

चेटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवा करनेवाली स्त्री। दासी।

चेटिकी*-संज्ञा स्त्री० दे० "चेटिका"।

चेटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। लौंडी।

चेटुवा-संज्ञा पुं० [हिं० चिड़िया] चिड़िया का बच्चा। उ०—देव मृदु निनद विनोद मदनालै रव रटत समोद चारु चेटुवा चटक के।—देव।

चेड़क-संज्ञा पुं० दे० "चेटक"।

चेत्-अव्य० [सं०] (१) यदि। अगर। (२) शायद। कदाचित्।

चेत-संज्ञा पुं० [सं० चेतस्] (१) चित्त की वृत्ति। चेतना। संज्ञा। होश। (२) ज्ञान। बोध। उ०—मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिँ विरंचि सम।—तुलसी। (३) सावधानी। चौकसी। (४) खयाल। स्मरण। सुध।

क्रि० प्र०—कराना।—रखना।—पड़ना।—होना।—दिलाना।—धराना।

(५) चित्त।

चेतकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हरीतकी। साधारण हड़। (२) सात प्रकार की हड़ों में से एक विशेष प्रकार की हड़ जिस पर तीन धारियाँ होती हैं। यह हड़ दो प्रकार की होती है। एक सफ़ेद और बड़ी जो प्रायः ५,६ अंगुल लंबी होती है; और दूसरी काली और छोटी जो प्रायः एक अंगुल लंबी होती है। भावप्रकाश के अनुसार पहले प्रकार की हड़ के पेड़ के नीचे जाने से भी पशुओं और पक्षियों तक को दस्त हो जाता है। आज कल के बहुत से देशी चिकित्सकों का विश्वास है कि इस प्रकार की हड़ को हाथ में लेने या सूँघने से दस्त हो जाता है, पर इस जाति की हड़ अब कहीं नहीं मिलती। (३) चमेली का पौधा। (४) एक रागिनी का नाम जिसे कुछ लोग श्री राग की प्रिया मानते हैं।

चेतन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आत्मा। जीव। (२) मनुष्य। आदमी (३) प्राणी। जीवधारी। (४) परमेश्वर।

चेतनकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी। हड़।

चेतनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] चैतन्य। चेतन का धर्म। सज्ञानता।

चेतनत्व-संज्ञा पुं० दे० "चेतनता"।

चेतना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुद्धि। (२) मनोवृत्ति। (३) ज्ञानात्मक मनोवृत्ति। (४) स्मृति। सुधि। याद। (५) चेतनता। चैतन्य। संज्ञा। होश।

क्रि० अ० (१) संज्ञा में होना। होश में आना। (२) सावधान होना। चौकस होना। उ०—यह तन हरिहर खेत, तरुनी हरनी चर गई। अबहूँ चेत अचेत, यह अधचरा बचाय लै।—तुलसी।

क्रि० स० [सं० चिन्तन] विचारना। समझना। ध्यान देना। सोचना। जैसे, धर्म चेतना, आगम चेतना, भला चेतना, बुरा चेतना।

चेतनीय-वि० [सं०] जो चेतन करने योग्य हो। जानने योग्य।

चेतनीया-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋद्धि नामक लता।

चेतन्य-वि० दे० "चैतन्य"।

चेतवनि†*-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "चेतावनी।" (२) दे० "चितवन।"

चेतव्य-वि० [सं०] जो चयन (संग्रह) करने योग्य हो। इकट्ठा करने लायक।

चेतावनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चेतना] वह बात जो किसी को होशियार करने के लिये कही जाय। सतर्क होने की सूचना।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।

चेतिका†*-संज्ञा स्त्री० [सं० चिति] मुरदा जलाने की चिता। सरा। उ०—चेतिका करुणा रची, सब छाड़ि और उपाइ। क्यों जियों जननी बिना, मरि हूँ मिलै जो आइ।—केशव।

चेतुरा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जो संसार के सब भागों में पाई जाती है। इसके नर और मादा के रंग में भेद होता है। यह पेड़ों पर कटोरे के आकार का घोंसला बनाती है।

चेतोजन्मा-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

चेतौनी†-संज्ञा स्त्री० दे० "चेतावनी"।

चेत्य-वि० [सं०] (१) जो जानने योग्य हो। ज्ञातव्य। (२) जो स्तुति करने योग्य हो।

चेदि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम जो किसी समय शुक्तिमती नदी के पास था। महाभारत का शिशुपाल इसी देश का राजा था। वर्त्तमान बुंदेलखंड का चँदेरी नगर उसी प्राचीन देश की सीमा के अंतर्गत है। इस देश का नाम त्रैपुर और चैद्य भी है। (२) इस देश का राजा। (३) इस देश का निवासी। (४) कौशिक मुनि के पुत्र का नाम।

चेदिक-संज्ञा पुं० दे० "चेदि"।

चेदिराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिशुपाल नामक राजा जिसका वध श्रीकृष्ण ने किया था। (२) एक वसु का नाम जिन्हें इंद्र से एक विमान मिला था और जो पृथ्वी पर नहीं चलते थे, ऊपर ही ऊपर आकाश में भ्रमण करते थे। इनका दूसरा नाम उपरिचर भी था।

चेन-संज्ञा स्त्री० [अं०] बहुत सी छोटी छोटी कड़ियों को एक में गूथ कर बनाई हुई शृंखला। सिकरी। जँजीर। जैसे, रेलगाड़ी के दो डिब्बों को जोड़ने की चेन, घड़ी में लगाने की चेन।

चेनआ-संज्ञा स्त्री० दे० "चेनवा"।

चेनगा-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली जो उत्तर तथा पश्चिम भारत की नदियों और बड़े बड़े तालाबों, विशेषतः

ऐसी नदियों और तालाबों में जिनमें घास अधिक हो, पाई जाती है। यह प्रायः एक बालिश्त लंबी होती है और इसका सिर गिरई से कुछ बड़ा होता है। इसे प्रायः नीच जाति के और गरीब लोग खाते हैं। इसे चेंगा या चेनआ भी कहते हैं।

चेनवाँ†–संज्ञा पुं० दे० "चेना"।

चेना–संज्ञा पुं० [सं० चणक] कँगनी या सांवां की जाति का एक अन्न जो चैत, बैसाख में बोया और असाढ़ में काटा जाता है। इसके दाने छोटे, गोल और बहुत सुंदर होते हैं। इसे पानी की बहुत आवश्यकता होती है, यहाँ तक कि काटने से तीन चार दिन पहले तक इसमें पानी दिया जाता है। इसीलिये खेतिहरों में एक मसल है—"बारह पानी चेन, नहीं तो लेन का देन।" कहते हैं कि यह अन्न मिस्र या अरब से इस देश में आया है। यह हिमालय में १०००० फुट की ऊँचाई तक होता है। यह पानी या दूध में चावल की तरह पका कर खाया जाता है और बहुत पौष्टिक समझा जाता है। शिमले के आस पास के लोग इसकी रोटियाँ भी बना कर खाते हैं। पंजाब में इसकी खेती प्रायः चारे के लिये ही होती है। वैद्यक में इसे शीतल, कसैला, शक्तिवर्धक और भारी माना है।

संज्ञा पुं० दे० चीनी कपूर।

चेप–संज्ञा पुं० [चिपचिप से अनु०] (१) कोई गाढ़ा चिपचिपा या लसदार रस। जैसे, आम का चेप, शीतला का चेप। (२) लासा जो चिड़ियों को फँसाने के लिये उन के परों में लगाया जाता है। उ०—बनतन कौ निकसत लसत, हँसत हँसत उत आय। दगखंजन गहि लै गयो, चितवनि चेप लगाय।—बिहारी।

संज्ञा पुं० चाव। उत्साह।

चेपदार–वि० हिं० [चेप + फा० दार] जिसमें चेप या लस हो। चिपचिपा।

चेपना†–क्रि० स० [हिं० चेप] चिपकाना। सटाना।

चेपांग–संज्ञा पुं० [देश०] नैपाल में रहनेवाली एक पहाड़ी जाति।

चेबुला–संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी छाल चमड़ा सिझाने और रंगों में काम आती है। यह ऊँचाई में ८० वा १०० फुट तक होता है और समस्त भारत में पाया जाता है।

चेय–वि० [सं०] जो चयन करने योग्य हो। जो संग्रह करने योग्य हो।

संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं०] वह अग्नि जिसका विधान-पूर्वक संस्कार हुआ हो।

चेयर–संज्ञा स्त्री० दे० "चेअर"।

चेयरमैन–संज्ञा पुं० दे० "चेअरमैन"।

चेरई†*–संज्ञा पुं० [हिं० चेला] दास। सेवक। गुलाम।

चेरना–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छेनी जिससे नकाशी करनेवाले सीधी लकीर बनाते हैं।

चेरा†*–संज्ञा पुं० [सं० चेटक, प्रा० चेडअ, चेडा] [स्त्री० चेरी] (१) नौकर। दास। सेवक। गुलाम। (२) चेला। शिष्य। शागिर्द। विद्यार्थी।

संज्ञा पुं० [देश०] मोटे ऊन का बना हुआ गलीचा।

चेराई†*–संज्ञा स्त्री० [हिं०] दासत्व। सेवा। नौकरी। गुलामी। उ०—ऐसे करि मोकों तुम पायो मना इनकी मैं करों चेराई। सूरश्याम वे दिन बिसराये जब बांधे तुम ऊखल लाई।—सूर।

चेरायता†–संज्ञा पुं० दे० "चिरायता"।

चेरि, चेरी†*–संज्ञा स्त्री० "चेरा" का स्त्री०।

चेरु–वि० [सं०] संग्रह करनेवाला। जिसे संग्रह करने का अभ्यास हो।

चेरुआ†–संज्ञा पुं० [देश०] एक खाद्य पदार्थ जो सतुआ सान कर पिठौरा की तरह बना कर अदहन में पकाने से तैयार होता है।

चेरुई†–संज्ञा स्त्री० [देश०] बड़े के आकार का पर उससे कुछ बड़ा एक प्रकार का मिट्टी का बरतन।

चेरू–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की जंगली जाति जिसकी बहुत सी रस्में आदि क्षत्रियों से मिलती जुलती होती हैं। पाँच छः सौ वर्ष पहले भारत के अनेक स्थानों में इस जाति का बहुत ज़ोर था, और अनेक प्रदेशों में इसका राज्य था। कहते हैं, यह नाग जाति के अंतर्गत हैं। बिहार के अनेक स्थानों में इस जाति के लोगों की बनवाई हुई बहुत सी पुरानी इमारतें हैं। आज कल इस जाति के लोग मिर-ज़ापुर ज़िले तथा दक्षिण भारत में पाए जाते हैं।

चेल–संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। कपड़ा।

चेलक–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक मुनि का नाम।

चेलकाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं०] चेलहाई। चेलों का समूह। शिष्य वर्ग। उ०—रैनि दिवस मैं तहवां नारि पुरुष समताई हो। ना मैं बालक ना मैं बूढ़ो ना मोरे चेलिकाई हो।—कबीर।

चेलगंगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जो किसी समय गोकर्ण-क्षेत्र (वर्त्तमान मालाबार) में बहती थी, और जिसका उल्लेख महाभारत में आया है।

चेलवा†–संज्ञा स्त्री० दे० "चेल्हवा"।

चेलहाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चेलन + हाई (प्रत्य०)] चेलों का समूह। शिष्यवर्ग।

मुहा०—चेलहाई करना = भेंट और पूजा आदि संग्रह करने के लिये चेलों में घूमना।

चेला–संज्ञा पुं० [सं० चेटक, प्रा० चेडअ, चेडा] [स्त्री० चेलिन, चेली] (१) वह जिसने दीक्षा ली हो। वह जिसने कोई धार्मिक उपदेश लिया हो। शिष्य।

क्रि० प्र०—करना। —बनना।—होना।—बनाना।

मुहा०—चेला मूँड़ना = चेला बनाना। शिष्य बनाना।

विशेष—संन्यासियों में दीक्षा के समय दीक्षित का सिर मूँड़ा जाता है, उसी से यह मुहावरा बना।

(२) वह जिसने शिक्षा ली हो। वह जिसने कोई विषय सीखा हो। शागिर्द। विद्यार्थी। छात्र।

विशेष—दीक्षा या शिक्षा देनेवाले को गुरु और दीक्षा या शिक्षा लेनेवाले को उस (गुरु) का चेला कहते हैं।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का साँप जो बंगाल में अधिकता से पाया जाता है। (२) एक प्रकार की छोटी मछली।

चेलान, चेलाल—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज की लता।

चेलाशक—संज्ञा पुं० दे० "चलौशक"।

चेलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिउली नाम का रेशमी कपड़ा।

चेलिकाई—संज्ञा स्त्री० दे० "चेलहाई" या "चेलकाई"।

चेलिन, चेली—संज्ञा स्त्री० चेला का स्त्री०।

चेलुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बौद्ध भिक्षुक।

चेल्हवा—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्ल (मछली)] एक तरह की छोटी मछली जो चमकीली और पतली होती है।

चेवारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो दक्षिण और पश्चिम भारत में होता है। इसकी चटाइयाँ और टोकरियाँ बनाई जाती हैं। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं।

चेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी का नाम।

चेष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो चेष्टा करे। चेष्टा करनेवाला। (२) एक प्रकार का रतिबंध।

चेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शरीर के अंगों की वह गति या अवस्था जिससे मन का भाव या विचार प्रकट हो। वह कायिक व्यापार जो आंतरिक विचार या भाव का द्योतक हो। (२) नायिका या नायक का वह प्रयत्न या उपाय जो नायक या नायिका के प्रति प्रेम प्रकट करने के लिये हो (३) उद्योग। प्रयत्न। कोशिश। (४) कार्य्य। काम। (५) श्रम। परिश्रम। (६) इच्छा। कामना। ख्वाहिश।

चेष्टानाश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय। सृष्टि का अंत।

चेष्टाबल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में ग्रहों का विशेष गति वा स्थिति के अनुसार अधिक बलवान् हो जाना। जैसे उत्तरायण में सूर्य्य या वक्रगामी मंगल अथवा चंद्रमा के साथ संयुक्त कोई ग्रह। इससे ग्रह का शुभ या अशुभ फल बढ़ जाता है।

चेस—संज्ञा पुं० [अं०] (१) एक प्रकार का लोहे का चौकठा, जिस के बीच में कंपोज़ किए हुए टाइप रख कर प्रेस पर छापने के लिये कसे जाते हैं। जब टाइप इसमें रख कर कस दिए जाते हैं तब वे फिर कहीं इधर उधर खसक नहीं सकते। (२) शतरंज का खेल।

यौ०—चेस-बोर्ड = शतरंज की बिसात।

चेहरई—वि० [हिं० चेहरा] हलका गुलाबी (रंग)।

चेहरा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) शरीर का वह ऊपरी गोला और अगला भाग जिसमें मुँह, आँख, माथा, नाक आदि सम्मिलित हैं। मुखड़ा। बदन।

यौ०—चेहरा मोहरा = सूरत शकल। आकृति। चेहरा शाही = वह रुपया जिस पर किसी बादशाह का चेहरा बना हो, तात्पर्य्य प्रचलित रुपया।

मुहा०—चेहरा उतरना = लज्जा, शोक, चिंता या रोग आदि के कारण चेहरे का तेज जाता रहना। चेहरा तमतमाना = गरमी या क्रोध आदि के कारण चेहरे का लाल हो जाना। चेहरा बिगड़ना = मार खाने के कारण चेहरे की रंगत फीकी पड़ जाना। चेहरा बिगाड़ना = इतना मारना कि सूरत पहचानी न जाय। बहुत मारना। चेहरा होना = फौज में नाम लिखा जाना।

(२) किसी चीज़ का अगला भाग। समने का रुख। आगा। (३) कागज, मिट्टी या धातु आदि का बना हुआ किसी देवता, दानव या पशु आदि की आकृति का वह साँचा जो लीला या स्वाँग आदि में स्वरूप बनने के लिये चेहरे के ऊपर पहना या बाँधा जाता है। प्रायः बालक भी मनोविनोद और खेल के लिये ऐसा चेहरा लगाया करते हैं।

क्रि० प्र०—उतारना।—बाँधना।—लगाना।

मुहा०—चेहरा उठाना = नियम-पूर्वक पूजन आदि के उपरांत किसी देवी या देवता का चेहरा लगाना।

विशेष—हिंदुओं का नियम है कि जिस दिन नृसिंह, हनुमान या काली आदि देवी देवताओं का चेहरा उठाना (लगाना) होता है उस दिन वे दिन भर उस देवी या देवता के नाम से व्रत या उपवास करते हैं और तब संध्या समय विधि-पूर्वक उस देवी या देवता का पूजन करने के उपरांत चेहरा उठाते हैं।

चेहलुम—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह रसम जो मुसलमानों में मुहर्रम के चालीसवें दिन होती है।

चैंटी—संज्ञा स्त्री० दे० "चिउँटी"।

चैंबर—संज्ञा पुं० दे० "चेंबर"।

चैंसलर—संज्ञा पुं० दे० "चैंसेलर"।

चैंसेलर—संज्ञा पुं० [अं०] यूनीवर्सिटी का प्रधान। विश्वविद्यालय का मुखिया।

विशेष—युनिवर्सिटी में चैंसेलर का वही काम है जो प्रायः सभा समितियों में सभापति का हुआ करता है। भारत में किसी प्रांत की युनिवर्सिटी का चैंसेलर प्रायः उस प्रांत का प्रधान अधिकारी हुआ करता है। चैंसेलर के साथ एक सहायक या वाइस-चैंसेलर भी होता है। चैंसेलर के अधिकांश कार्य्य प्रायः वाइस-चैंसेलर को ही करने पड़ते हैं।

चै*—संज्ञा पुं० [सं० चय] समूह। ढेर। उ०—उठ्यो चट चौंकि

चहुँ ओर चितवन लग्यो चित्त चिंता जगी चैन चै चोरिगो।—रघुराज।

चैक—संज्ञा पुं० दे० "चेक"।

चैकित—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

चैकितान—वि० [सं०] जो चेकितान के वंश में उत्पन्न हुआ हो।

चैकित्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो चैकित ऋषि के गोत्र का हो।

चैत—संज्ञा पुं० [सं० चैत्र] (१) वह चांद्र मास जिसकी पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र पड़े। फागुन के बाद और बैसाख से पहले का महीना। † (२) चैती फसल। रब्बी की फसल।

चैतन्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्स्वरूप आत्मा। चेतन आत्मा। (२) ज्ञान।

विशेष—न्याय में तो ज्ञान और चैतन्य को एक ही माना है और उसे आत्मा का धर्म बतलाया है। पर सांख्य के मत से ज्ञान से चैतन्य भिन्न है। यद्यपि इसमें रूप, रस, गंध आदि विशेष गुण नहीं हैं तथापि संयोग, विभाग और परिमाण आदि गुणों के कारण सांख्य में इसे अलग द्रव्य माना है और ज्ञान को बुद्धि का धर्म बतलाया है।

(३) परमेश्वर (४) प्रकृति। (५) एक प्रसिद्ध बंगाली वैष्णव धर्म-प्रचारक जिनका पूरा नाम श्रीकृष्ण चैतन्य चंद्र था। इनका जन्म नवद्वीप में १४०७ शकाब्द के फागुन की पूर्णिमा को रात में चंद्रग्रहण के समय हुआ था। इनकी माता का नाम शची और पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र था। कहते हैं कि बाल्यावस्था से ही इन्होंने अनेक प्रकार की विलक्षण लीलाएँ दिखलानी आरंभ कर दी थीं। पहले इनका विवाह हुआ था पर पीछे ये संन्यासी हो गए थे। ये सदा भगवद्-भजन में मग्न रहते थे। पहले इनके शिष्यों और तदुपरांत अनुगामियों की भी संख्या बहुत बढ़ गई थी। अब भी बंगाल में इनके चलाए हुए संप्रदाय के बहुत से लोग हैं जो इन्हें श्रीकृष्णचंद्र का पूर्ण अवतार मानते हैं। ४८ वर्ष की अवस्था में इनका शरीरांत हो गया था। इनके चैतन्य महाप्रभु और निमाई आदि और भी कई नाम हैं।

वि० (१) चेतनायुक्त। सचेत। (२) होशियार। सावधान।

चैतन्यता—संज्ञा स्त्री० दे० "चेतनता"।

चैतन्यभैरवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक भैरवी का नाम।

चैता—संज्ञा पुं० [सं० चित्रित] एक पक्षी जिसका सिर काला, छाती चितकबरी और पीठ काली होती है।

संज्ञा पुं० दे० "चैती"।

चैती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चैत+ई (प्रत्य०)] (१) वह फसल जो चैत में काटी जाय। रब्बी। (२) जमुआ नील जो चैत में बोया जाता है। (३) एक प्रकार का चलता गाना जो चैत में गाया जाता है।

वि० चैत संबंधी। चैत का। जैसे, चैती गुलाब।

चैत्त—वि० [सं०] चित्त संबंधी। चित्त का।

संज्ञा पुं० बौद्धों के मत से विज्ञान-स्कंध के अतिरिक्त शेष सब स्कंध।

विशेष—बौद्ध लोग रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार ये पांच स्कंध मानते हैं। दे० "स्कंध" और "पांचों संज्ञाएँ"।

चैत्तक—वि० दे० "चैत" (वि०)।

चैत्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकान। घर। (२) मंदिर। देवालय। (३) वह स्थान जहां यज्ञ हो। यज्ञशाला। (४) वृक्षों का वह समूह जो गांव की सीमा पर रहता है। (५) बुद्ध। (६) बुद्ध की मूर्त्ति। (७) अश्वत्थ का पेड़। (८) बेल का पेड़। (९) बौद्ध संन्यासी या भिक्षुक। (१०) बौद्ध संन्यासियों के रहने का मठ। विहार (११) वह मंदिर जो आदि बुद्ध के उद्देश्य से बना हो। (१२) चिता।

वि० चिता संबंधी। चिता का।

चैत्यक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वत्थ। पीपल। (२) वर्त्तमान राजगृह के पास के एक प्राचीन पर्वत का नाम। इस पर्वत पर एक चरण-चिह्न है जिसके दर्शनों के लिये प्रायः जैनी वहां जाते हैं।

चैत्यतरु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वत्थ। पीपल। (२) गाँव का कोई प्रसिद्ध वृक्ष।

चैत्यद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वत्थ। पीपल। (२) अशोक का पेड़।

चैत्यपाल—संज्ञा पुं० [सं०] चैत्य का रक्षक। चैत्यक। प्रधान अधिकारी।

चैत्यमुख—संज्ञा पुं० [सं०] कमंडलु।

चैत्ययज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसका वर्णन आश्वलायन गृह्य सूत्र में आया है।

विशेष—प्राचीन काल में इस यज्ञ का संकल्प किसी चीज़ के खो जाने पर और उसका अनुष्ठान उस चीज़ के मिल जाने पर होता था।

चैत्यवंदन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैनियों या बौद्धों की मूर्त्ति। (२) जैनियों या बौद्धों का मंदिर। (३) चैत्य या देवालय संबंधी धन की रक्षा।

चैत्यविहार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बौद्धों का मठ। (२) जैनियों का मठ।

चैत्यवृक्ष—संज्ञा० पुं० दे० "चैत्यतरु"।

चैत्यस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहां बुद्ध देव की मूर्त्ति स्थापित हो। (२) कोई पवित्र स्थान।

चैत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मास जिसकी पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र पड़े। चैत। संवत् का प्रथम मास। (२) सात वर्ष पर्वतों में से एक। (३) बौद्ध भिक्षुक। (४) यज्ञभूमि।

(५) देवालय । मंदिर । (६) चैत्य । (७) पुराणानुसार चित्रा नक्षत्र के गर्भ से उत्पन्न बुध-ग्रह का एक पुत्र जो पुराणोक्त सातों द्वीपों का स्वामी माना जाता है।

वि० चित्रा नक्षत्र संबंधी। चित्रा नक्षत्र का।

चैत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] चैत्र मास। चैत।

चैत्रगौड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं०] ओड़व जाति की एक रागिनी जो संध्या समय अथवा रात के पहले पहर में गाई जाती है। कोई कोई आचार्य्य इसे श्री राग की पुत्रवधू मानते हैं।

चैत्रमख–संज्ञा पुं० [सं०] चैत मास के उत्सव जो प्रायः मदन संबंधी होते हैं।

चैत्ररथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुबेर के बाग़ का नाम जो चित्ररथ का बनाया हुआ और इलावर्त्त खंड के पूरब में अवस्थित माना जाता है। (२) एक प्राचीन मुनि का नाम जिनका जिक्र महाभारत में आया है।

चैत्ररथ्य–संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का बाग़। चैत्ररथ।

चैत्रवती–संज्ञा० स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका नाम हरिवंश में आया है।

चैत्रसखा–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। मदन।

चैत्रावली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चैत्र शुक्ला त्रयोदशी। (२) चैत्र की पूर्णिमा।

पर्य्या०—मधूत्सववासुवसंत। काममह। वासंती। कर्द्दमी।

चैत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रा नक्षत्र-युक्त पूर्णिमा। चैत की पूर्णिमा।

चैदिक–वि० [सं०] चेदि देश-संबंधी। चेदि देश का।

चैद्य–संज्ञा पुं० [सं०] शिशुपाल।

चैन–संज्ञा पुं० [सं० शयन] आराम। सुख। आनंद।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—देना।—पड़ना।—मिलना।—होना।

मुहा०—चैन उड़ाना = चैन करना। आनंद करना। **चैन पड़ना** = शांति मिलना। सुख मिलना। **चैन से कटना** = सुख पूर्वक समय बीतना।

संज्ञा पुं० [सं० चैलक ?] एक नीच जाति।

चैपला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी। उ०—कहत पीपलौ पीपलौ, नितहि चैपला आइ। मीत खूब यह अरथ कौ समझ लेहु चित लाइ।—रसनिधि।

चैयाँ†*–संज्ञा स्त्री० [?] बाँह। उ०—चैयाँ चैयाँ गहौ चैयाँ बैयाँ बैयाँ ऐसे बोल्यो।—सूर

चैरही†–वि० दे० "चेहरई" (रंग)।

चैल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़ा। वस्त्र। (२) पोशाक पहनने के योग्य बना हुआ कपड़ा।

चैलक–संज्ञा पुं० [सं०] शूद्रपिता और क्षत्रिया माता से उत्पन्न एक प्राचीन वर्ण-संकर जाति।

चैला–संज्ञा पुं० [हिं० चीरना, छीलना] [स्त्री० अल्प० चैली] कुल्हाड़ी से चीरी हुई लकड़ी का टुकड़ा जो जलाने के काम में आता है।

चैलाशक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो कपड़े में लगनेवाले कीड़ों को खाता है।

चैलिक–संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े का टुकड़ा।

चैली–संज्ञा स्त्री० [हिं० चैला] (१) लकड़ी का छोटा टुकड़ा जो छीलने वा काटने से निकलता है। (२) जमे हुए ख़ून का टुकड़ा वा लच्छा जो गरमी के कारण नाक से निकलता है।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

चैलेंज–संज्ञा पुं० [अं०] किसी प्रकार लड़ने, झगड़ने अथवा मुकाबला या वादविवाद आदि करने के लिये दी हुई ललकार।

क्रि० प्र०—करना। —देना। —मिलना।

चोंक–संज्ञा स्त्री० [?] वह चिह्न जो चुंबन में दाँत लग जाने के कारण गाल पर पड़ जाता है। उ०—चहचही चुभकै चुभी हैं चोंक चुबंन की लहलही लटैं लटकी सुलंक पर।—पद्माकर।

चोंकर†–संज्ञा पुं० दे० "चोकर"।

चोंगा–संज्ञा पुं० [?] (१) बाँस की वह खोखली नली या पोर जिसका एक सिरा गाँठ के कारण बंद हो और दूसरा सिरा खुला हो। सोनार आदि इसमें प्रायः अपने औज़ार रखते हैं। (२) इस आकार की काग़ज़ आदि की बनी हुई नली जो कोई चीज़ रखने के लिये बनाई जाय।

चोंगी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोंगा का स्त्री० अल्प०] भाथी में की वह नली जिसके द्वारा हो कर हवा निकलती है।

चोंथना*†–क्रि० स० दे० "चुगना"। उ०—कबिरा टुक टुक चोंथता, पल पल गई बिहाय। जीव जंजालों परि रहा, दिया दमामा आय।—कबीर।

चोंच–संज्ञा स्त्री० [सं० चंचु] (१) पक्षियों के मुँह का अगला भाग जो हड्डी का होता है और जिसके द्वारा वे कोई चीज़ उठाते, तोड़ते और खाते हैं। पक्षियों के लिये यह सम्मिलित हाथ, होंठ और दाँत का काम देती है। टोंट। तुंड। (२) मुँह। (हास्यरस या व्यंग्य)। जैसे, बहुत हुआ, अब अपनी चोंच बंद करो।

मुहा०—दो दो चोंचें होना = कहा सुनी होना। कुछ लड़ाई झगड़ा होना।

चोंचला†–संज्ञा पुं० दे० "चोचला"।

चोंटली–संज्ञा स्त्री० [?] सफ़ेद घुँघची।

चोंडा†–संज्ञा पुं० [सं० चूड़ा] स्त्रियों के सिर के बाल। झोंटा।

मुहा०—**चोंडे पर (कोई काम करना)** = सिर पर चढ़ कर या सामने होकर (कोई काम करना)।

चोंड़ा–संज्ञा पुं० [सं० चुंडा = छोटा कुआँ] वह छोटा कच्चा

कुआँ जो खेत के आस पास सिंचाई के लिये खोद लिया जाता है।

† संज्ञा पुं० [सं० चूड़ा] सिर। माथा।

चोंथ—संज्ञा पुं० [अनु०] गाय भैंस आदि के उतने गोबर का ढेर जितना हगने समय एक बार गिरे।

मुहा०—चोंथ लगाना = हग कर गुह का ढेर लगाना।

चोंथना†—क्रि० स० [अनु०] किसी चीज़ में से उसका कुछ अंश बुरी तरह फाड़ना या नोचना। चीथना।

चोंधर—वि० [हिं० चौंधियाना] (१) जिसकी आँखें बहुत छोटी हों। (२) मूर्ख। गावदी।

चोंधरा†—वि० दे० "चोंधर"।

चोंप†—संज्ञा पुं० दे० "चोप"।

संज्ञा स्त्री० दे० "चोब"।

चोआ—संज्ञा पुं० [हिं० चुआना = टपकाना] (१) एक प्रकार का सुगंधित द्रव पदार्थ जो कई गंध-द्रव्यों को एक साथ मिला कर गरमी की सहायता से उनका रस टपकाने से तैयार होता है। इसके तैयार करने की कई रीतियां हैं। (क) चंदन का बुरादा, देवदार का बुरादा और मरसे के फूलों को एक में मिलाते और गरम करके उनमें से रस टपकाते हैं। (ख) केसर, कस्तूरी आदि को मरसे के फूलों के रस में मिलाते और गरम करके उनमें से रस टपकाते हैं। (ग) देवदार के निर्यास को गरम करके टपकाते हैं। (२) वह कंकड़, पत्थर या इसी प्रकार की और कोई चीज़ जो किसी बाट की कमी को पूरा करने के लिये पलड़े पर रखी जाती है। (३) वह थोड़ी चीज़ जो किसी प्रकार की कमी पूरी करने के लिये उसी जाति की अधिक चीज़ के साथ रखी जाती है। (४) दे० "चोटा"।

चोई—संज्ञा स्त्री० [?] दाल का वह छिलका जो उसको भिगो और मल कर अलग किया जाता है अथवा जो दाल चुरते समय आप से आप दाने से अलग हो कर ऊपर उतरा आता है।

चोक—संज्ञा पुं० [सं०] भड़भाँड़ या सत्यानासी नामक क्षुप की जड़ जिसका व्यवहार औषध में होता है।

चोकर—संज्ञा पुं० [हिं० चून = आटा + कराई = छिलका] आटे का वह अंश जो उसे छानने के बाद छलनी में बच जाता है। यह प्रायः पीसे हुए अन्न (गेहूं, जौ आदि) की भूसी या छिलका होता है।

चोक्ष—वि० [सं०] शुद्ध। पवित्र। (२) दक्ष। होशियार। (३) तीक्ष्ण। तेज। (४) जिसकी प्रशंसा की गई हो।

चोख†*—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोखा] तेज़ी। फुरती। बेग। उ०—एक जे सयाने भर माठी जल आने लै चढ़ाए धाम धाम फेंट बाँधि ठाढ़े चोख सों।—हनुमान।

वि० दे० "चोखा"।

चोखना†—क्रि० स० [हिं० चूसना] चूसना या चूस कर पीना।

चोखरा†—संज्ञा पुं० [सं० चिक्किर] चूहा। मूसा।

चोखा—वि० [सं० चोक्ष] (१) जिसमें किसी प्रकार की मैल, खोट या मिलावट आदि न हो। जो शुद्ध और उत्तम हो। जैसे, चोखा घी, चोखा माल। (२) जो सच्चा और ईमानदार हो। खरा। जैसे, चोखा असामी। (३) जिसकी धार तेज़ हो। धारदार। (४) सब में चतुर वा श्रेष्ठ। जैसे, तुम्हीं चोखे निकले जो अपना सब काम करके छुट्टी पा गए।

संज्ञा पुं० (१) उबाले या भूने हुए बैंगन, आलू या अरुई आदि को नमक मिर्च आदि के साथ मल कर (और कभी कभी घी या तेल में छौंक कर) तैयार किया हुआ सालन। भरता। भुरता। (२) चावल। (डिं०)

चोखाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोखा + ई (प्रत्य०)] "चोखा" भाव का चोखापन।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चोखना] "चोखना" का भाव वा काम। चुसाई। चूसने की क्रिया या भाव।

चोगर—संज्ञा पुं० [फा० चुगद] वह घोड़ा जिसकी आँखें उल्लू की सी हों। ऐसा घोड़ा ऐबी समझा जाता है।

चोग़ा—संज्ञा पुं० [तु०] पैरों तक लटकता हुआ और बहुत ढीला ढाला एक प्रकार का पहनावा जिसका आगा बंद नहीं होता और जिसे प्रायः बड़े आदमी पहनते हैं। लबादा।

चोगा—संज्ञा पुं० दे० "चुगा"।

चोच—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छाल। वल्कल। (२) चचड़ा। (३) तेजपत्ता। (४) दालचीनी। (५) नारियल। (६) केला।

चोचलहाई†—वि० स्त्री० [हिं० चोचला + हाई (प्रत्य०)] चोचला करनेवाली, नखरेबाज़।

चोचला—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) अंगों की वह गति वा चेष्टा जो प्रिय के मनोरंजनार्थ, या किसी को मोहित करने के लिये अथवा हृदय की किसी प्रकार की, विशेषतः जवानी की, उमंग में की जाती है। हाव भाव। (२) नखरा। नाज़।

चोज—संज्ञा पुं० [?] (१) वह चमत्कार-पूर्ण उक्ति जिससे लोगों का मनोविनोद हो। दूसरों को हँसानेवाली युक्ति-पूर्ण बात। सुभाषित। (२) हँसी ठट्ठा, विशेषतः व्यंग्यपूर्ण उपहास। उ०—किहि के बल उत्तर दीजै उन्हें सो सुनै बनै चोज चवाइन के।—प्रताप।

चोट—संज्ञा स्त्री० [सं० चुट = काटना) (१) एक वस्तु पर किसी दूसरी वस्तु का वेग के साथ पतन वा टक्कर। आघात। प्रहार। मार। जैसे, लाठी की चोट, हथौड़े की चोट। उ०—पत्थर की चोट से यह शीशा फूटा है।

क्रि० प्र०—देना।—पड़ना।—पहुँचाना।—मारना लगना।—लगाना।—सहना।

मुहा०—चोट खाना = आघात ऊपर लेना। प्रहार सहना।
(२) आघात वा प्रहार का प्रभाव। घाव। जख्म। उ०—(क) चोट पर पट्टी बाँध दो। (ख) उसे सिर में बड़ी चोट आई।
यौ०—चोट चपेट = घाव जख्म।
क्रि० प्र०—आना।—लगना।—पहुँचना।
मुहा०—चोट उभरना = चोट में फिर से पीड़ा होना। चोट खाए हुए स्थान का फिर से दर्द करना।
(३) किसी को मारने के लिए हथियार आदि चलाने की क्रिया। वार। आक्रमण।
क्रि० प्र०—करना।
मुहा०—चोट खाली जाना = वार का निशाने पर न बैठना। आक्रमण व्यर्थ होना। चोट बचाना = चोट न लगने देना।
(४) किसी हिंसक पशु का आक्रमण। किसी जानवर का काटने वा खाने के लिये झपटना। उ०—यह जानवर आदमियों पर बहुत कम चोट करता है।
क्रि० प्र०—करना।
(५) हृदय पर का आघात। मानसिक व्यथा। मर्मभेदी दुःख। शोक। संताप। उ०—इस दुर्घटना से उन्हें बड़ी चोट पहुँची। (६) किसी के अनिष्ट के लिये चली हुई चाल। एक दूसरे को परास्त करने की युक्ति। एक दूसरे की हानि के लिये दाँव पेंच। चकाचकी। उ०—आज कल दोनों में खूब चोटें चल रही हैं।
क्रि० प्र०—चलना।
(७) व्यंग्य-पूर्ण विवाद। आवाज़ा। बौछार। ताना। उ०—इन दोनों कवियों में खूब चोटें चली हैं। (८) विश्वासघात। धोखा। दग़ा। उ०—यह आदमी ठीक वक्त पर चोट कर जाता है। (९) बार। दफ़ा। मरतबा। उ०—(क) आओ एक चोट हमारी तुम्हारी हो जाय। (ख) कल यह बुलबुल कई चोट लड़ा।
विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः ऐसे ही कार्यों के लिये होता है जिसमें विरोध की भावना होती है।

चोटइल†–वि० दे० "चुटैल"।

चोटहा–वि० [हिं० चोट + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० चोटही] जिस पर आघात का चिह्न हो। जिस पर चोट का निशान हो।

चोटा–संज्ञा पुं० [हिं० चोआ] राब का वह पसेव जो उसे कपड़े में रख कर दबाने या छानने से निकलता है। इसका व्यवहार प्रायः तंबाकू या देसी शराब आदि में होता है। लपटा। चोआ। माठ।

चोटाना†–क्रि० अ० [हिं० चोट] चोट खाना। घायल हो जाना।

चोटार†–वि० [हिं० चोट + आर (प्रत्य०)] (१) चोट करनेवाला। चोट पहुँचानेवाला। उ०—आयसि कवनेउ ओरवा सुगना सार। परिगौ दाग अधरवा चोप चोटार।—रहीम। (२) चोट खाया हुआ। चुटैल।

चोटारना†*–क्रि० अ० [हिं० चोट] चोट करना। उ०—पहले निहारि नैन चोटनि चोटारि फेरि हाय मोहिं सौंप्यो पास प्यारी पंचसर के।—रसकुसुमाकर।

चोटिया†–संज्ञा स्त्री० दे० "चोटी"।

चोटियाना†–क्रि० स० [हिं० चोट] चोट लगाना या मारना।
क्रि० स० [हिं० चोटी] (१) चोटी पकड़ना। (२) बल-प्रयोग करना।

चोटी–संज्ञा स्त्री० [सं० चूड़ा] (१) सिर के मध्य के वे थोड़े से और कुछ बड़े बाल जिन्हें प्रायः हिंदू नहीं मुड़ाते या कटाते। शिखा। चुंदी।
मुहा०—चोटी दबना = दे० "चोटी हाथ में होना"। चोटी रखना = चोटी के लिये सिर के बीच के बाल बढ़ाना। (किसी की) चोटी (किसी के) हाथ में होना = किसी प्रकार के दबाव में होना। काबू में होना। जैसे, अब वे कहाँ जायँगे, उनकी चोटी तो हमारे हाथ में है।
यौ०—चोटीवाला = भूत। प्रेत।
(२) एक में गुँथे हुए स्त्रियों के सिर के बाल।
मुहा०—चोटी करना = सिर के बालों को एक में मिला कर गूथना। दे० "कंघी चोटी करना"।
क्रि० प्र०—गूँधना।—बाँधना।
(३) सूत या ऊन आदि का वह डोरा जिसका व्यवहार स्त्रियों की चोटी गूँधने और अंत में बालों को बाँधने में होता है। (४) पान के आकार का एक प्रकार का आभूषण जिसे स्त्रियाँ अपने जूड़े में खोंसती या बाँधती हैं। (५) पक्षियों के सिर के वे पर जो आगे की ओर ऊपर उठे रहते हैं। कलगी। (६) शिखर। सब से ऊपर का उठा हुआ भाग। जैसे, पहाड़ की चोटी, मकान की चोटी।
मुहा०—चोटी का = सब से बढ़िया या अच्छा। सर्वोत्तम।

चोटीदार–वि० [हिं० चोटी + फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसके चोटी हो। चोटीवाला।

चोटी पोटी†–वि० स्त्री० [देश०] (१) चिकनी चुपड़ी (बात)। खुशामद से भरी हुई (बात)। (२) झूठी या बनावटी (बात)। इधर उधर की (बात) उ०—तुम जानति राधा है छोटी। चतुराई अँग अंग भरी है पूरन ज्ञान न बुद्धि की मोटी। हम सों सदा दुरावति सो यह बात कहत मुख चोटी पोटी।—सूर।

चोटीवाला–संज्ञा पुं० [हिं० चोटी + वाला] भूत, प्रेत या पिशाच।

चोट्टा–संज्ञा पुं० [हिं० चोर + टा (प्रत्य०)] [स्त्री० चोट्टी] वह जो चोरी करता हो। चोर।
मुहा०—चोट्टी का या चोट्टीवाला = एक प्रकार की गाली।

चोड़–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तरीय वस्त्र। (२) चोल नामक प्राचीन देश।

चोड़क–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पहनने का कपड़ा।

चोड़ा–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी गोरखमुंडी।

चोड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों के पहनने की साड़ी।

चोतक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दालचीनी। (२) छाल। वल्कल।

चोथ–संज्ञा पुं० दे० "चौंथ"।

चोद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाबुक। (२) वह लंबी लकड़ी जिसके सिरे पर कोई नुकीला और तेज लोहा लगा हो।

चोदक–वि० [सं०] चोदना करनेवाला। प्रेरणा करनेवाला। कोई काम करने के लिये उसकानेवाला।

चोदकड़–संज्ञा पुं० [हिं० चोदना] बहुत अधिक स्त्री-प्रसंग करनेवाला। अत्यंत कामी। (बाजारू)

चोदन–संज्ञा पुं० दे० "चोदना" संज्ञा।

चोदना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह वाक्य जिसमें कोई काम करने का विधान हो। विधि-वाक्य। (२) प्रेरणा। (३) योग आदि के संबंध का प्रयत्न।

क्रि० स० स्त्री-प्रसंग करना। संभोग करना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

चोदाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना + ई (प्रत्य०)] (१) चोदने की क्रिया। संभोग। (२) चोदने का भाव।

चोदास–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना] स्त्री को पुरुष-प्रसंग की अथवा पुरुष को स्त्री-प्रसंग की प्रबल कामना। कामेच्छा।

क्रि० प्र०—लगना।

चोदासा–वि० पुं० [हिं० चोदास] [स्त्री० चोदासी] जिसे चोदास लगी हो। जिसे संभोग की प्रबल इच्छा हो।

चोदू–संज्ञा पुं० दे० "चोदकड़"।

चोद्य–वि० [सं०] जो प्रेरणा करने योग्य हो।

संज्ञा पुं० (१) प्रश्न। सवाल। (२) वाद विवाद में पूर्व-पक्ष।

चोप*–संज्ञा पुं० [हिं० चाव] (१) चाह। इच्छा। ख़ाहिश। (२) चाव। शौक। रुचि उ०—दै उर जेब जवाहिर की पुनि चोप सो चूँदरी लै पहिरावत।—सुंदरी सिंदूर। (३) उत्साह। उमंग। उ०—(क) अरुन नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन सकोप। मनहु मत्त गजगन निरखि सिंह-किसोरहि चोप।—तुलसी। (ख) चीर के चोंच चकोरन की मनो चोप ते चंद चुगावत चारे।

क्रि० प्र०—चढ़ना।

(४) बढ़ावा। उत्तेजना।

क्रि० प्र०—देना।

संज्ञा पुं० [हिं० चूना = टपकना] कच्चे आम की ढेपनी का वह रस जो उसमें से सींके से तोड़ते समय बहता है। इसका असर तेजाब का सा होता है। शरीर में यह जहाँ लग जाता है वहाँ छाला पड़ जाता है।

संज्ञा पुं० दे० "चोब"।

चोपदार–संज्ञा पुं० दे० "चोबदार"।

चोपना*–क्रि० अ० [हिं० चोप] किसी वस्तु पर मोहित हो जाना। मुग्ध होना।

चोपी*–वि० [हिं० चोप] (१) इच्छा रखनेवाला। चाह रखनेवाला। (२) उत्साही। जिसके मन में उत्साह हो।

चोब–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) शामियाना खड़ा करने का बड़ा खंभा। (२) नगाड़ा वा ताशा बजाने की लकड़ी। (३) सोने या चाँदी से मढ़ा हुआ डंडा।

यौ०—चोबदार।

(४) छड़ी। सोंटा। डंडा।

चोबकरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार का ज़रदोज़ी का काम।

चोबचीनी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक काष्ठौषध। यह चीन और जापान में होनेवाली एक लता की जड़ है जिसके पत्ते अश्वगंधा के पत्तों के समान होते हैं। इसका रंग कुछ पीलापन लिए हुए सफ़ेद होता है। यह रक्तशोधक होती है और गरमी तथा गठिया आदि की दवाओं में पड़ती है। वैद्यक में इसे तिक्त,उष्णवीर्य्य, अग्निदीपक, मलमूत्र-शोधक, और शूल, वात, फिरंग, उन्माद तथा अपस्मार आदि रोगों को दूर करनेवाली कहा है।

चोबदार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह नौकर जिसके पास चोब या असा रहता है। असा-बरदार।

विशेष—ऐसे नौकर प्रायः राजों, महाराजों और बहुत बड़े रईसों की ड्योढ़ियों पर समाचार आदि ले जाने और ले आने तथा इसी प्रकार के दूसरे कामों के लिये रहते हैं। सवारी या बरात आदि में ये आगे आगे भी चलते हैं।

चोबा–संज्ञा पुं० दे० "चोब (१)"।

चोभाना–क्रि० स० दे० "चुभाना"।

चोभा–संज्ञा पुं० [हिं० चोभना] वह पोटली जिसमें कई दवाएँ बँधी होती हैं और जिससे शरीर के किसी पीड़ित अंग विशेषतः आँख को सेंकते हैं। लोथा।

मुहा०—चोभा देना = औषध की पोटली में बाँध कर उससे शरीर के किसी पीड़ित अंग को सेंकना।

चोया–संज्ञा पुं० दे० "चोआ"।

चोर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो छिप कर पराई वस्तु का अपहरण करे। स्वामी की अनुपस्थिति या अज्ञानता में छिप कर कोई चीज़ ले लेनेवाला मनुष्य। चुराने या चोरी करनेवाला। तस्कर।

मुहा०—चोर पड़ना = चोर का आ कर कुछ चुरा लेजाना। चोर पर मोर पड़ना = धूर्त्त से धूर्त्तता होना। चालाक के साथ

चालाकी होना। **मन में चोर बैठना** = मन में किसी प्रकार का खटका या संदेह होना।

यौ०—कामचोर। चोर चकार (चोर उचक्का)। मुँहचोर। चोर के घर मोर पड़ना = धूर्त के साथ धूर्तता होना।

(२) घाव आदि में वह दूषित या विकृत अंश जो अनजान में भीतर रह जाता है और जिसके ऊपर का घाव अच्छा हो जाता है। ऐसा दूषित अंश भीतर ही भीतर बढ़ता रहता है और शीघ्र ही उस घाव का मुँह फिर से खोलना पड़ता है। (३) वह छोटी संधि या अवकाश जिसमें से हो कर कोई पदार्थ बह या निकल जाय या जिसके कारण इसी प्रकार का और कोई अनिष्ट हो। जैसे, छत में का चोर। मेंहदी का चोर। मेहँदी का चोर हथेली की संधियों आदि का वह सफ़ेद अंश कहलाता है जिस पर असावधानी से मेहँदी नहीं लगती या दाब पड़ने से मेहँदी के सरक जाने के कारण रंग नहीं चढ़ता। यद्यपि इससे किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होता तथापि यह देखने में भद्दा जान पड़ता है। (४) खेल में वह लड़का जिस से दूसरे लड़के दाँव लेते हैं और जिसे औरों की अपेक्षा अधिक श्रम का काम करना पड़ता है। चोर को प्रायः दूसरे खिलाड़ियों को छूना, ढूँढ़ना, या अपनी पीठ पर चढ़ा कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना पड़ता है। चोर जिसे छूता या ढूँढ़ लेता है वही चोर हो जाता है। (५) ताश या गंजीफ़े आदि का वह पत्ता जिसे खिलाड़ी अपने हाथ में दबाए या छिपाए रहता है और जिसके कारण दूसरे खिलाड़ियों की जीत में बाधा पड़ती है।

यौ०—गुलाम चोर = ताश का एक खेल जिसमें गड्डी में का एक पत्ता गुप्त रूप से निकाल कर छिपा दिया जाता है और शेष पत्ते सब खिलाड़ियों में रंग और टिप्पियों के हिसाब से जोड़ा मिलाने के लिये बाँट दिए जाते हैं। अंत में किसी खिलाड़ी के हाथ में छिपाए हुए पत्ते के जोड़ का पत्ता रह जाता है। जिसके हाथ में वह पत्ता रह जाता है वह भी चोर कहलाता है।

(६) चोरक नाम का गंध-द्रव्य।

वि० जिसके वास्तविक स्वरूप का ऊपर से देखने से पता न चले।

चोर उरद—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + उरद] उरद का वह कड़ा दाना जो न तो चक्की में पिसता है और न गलाने से गलता है।

चोर कंटक—संज्ञा पुं० [सं०] चोरक नामक गंध-द्रव्य।

चोरक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का गठिवन जिसकी गणना गंध-द्रव्य में होती है। वैद्यक में इसे तीव्रगंध, कड़ुआ और वात, कफ, नाक तथा मुँह के रोग, अजीर्ण, कृमिदोष, रुधिरविकार और मेद आदि का नाशक माना है। (२) एक प्रकार का गंध-द्रव्य जिसका व्यवहार औषधों में भी होता है और जिसे असवरग भी कहते हैं।

चोरकट—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + कट = काटनेवाला] चोर। उचक्का।

चोर खाना—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + फ़ा० खाना] (१) संदूक आदि में का गुप्त खाना। (२) पिंजड़े आदि में का वह छोटा खाना जो बड़े खाने के अंदर हो।

चोर खिड़की—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर + खिड़की] छोटा चोर दरवाज़ा।

चोर गणेश—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के एक गणेश जिनके विषय में यह विश्वास है कि यदि जप करने के समय हाथ की उँगलियों में संधि रह जाय तो ये उसका फल हरण कर लेते हैं।

चोर गली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर + गली] (१) वह पतली और तंग गली जिसे बहुत कम लोग जानते हों। (२) पायजामे का वह भाग जो दोनों जाँघों के बीच में रहता है।

चोर चकार—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + अनु० चकार] चोर। उचक्का।

चोर छिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] संधि। दरज। दो चीजों के बीच का अवकाश।

चोर जमीन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर + जमीन] वह जमीन जो ऊपर से देखने में तो ठीक जान पड़े पर नीचे से पोली हो और जिस पर पैर रखते ही नीचे धँस जाय।

चोरटा—संज्ञा पुं० दे० "चोट्टा"।

चोर ताला—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + ताला] वह ताला जिसका पता दूर या ऊपर से न लगे।

विशेष—ऐसा ताला प्रायः किवाड़ों के पल्ले में अंदर लगा रहता है।

चोर थन—वि० [हिं० चोर + थन] दुहने के समय अपना पूरा दूध न देनेवाली और थनों में कुछ दूध चुरा रखनेवाली (गौ, भैंस या बकरी आदि)।

चोर दंत—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + दंत] वह दाँत जो बत्तीस दाँतों के अतिरिक्त निकलता और निकलने के समय बहुत कष्ट देता है।

चोर दरवाज़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + दरवाज़ा] किसी मकान में पीछे की ओर या अलग कोने में बना हुआ कोई ऐसा गुप्त द्वार जिसका ज्ञान बहुत कम लोगों को हो।

चोर द्वार—संज्ञा पुं० दे० "चोर दरवाज़ा"।

चोरपट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + पाट = सन] एक प्रकार का जहरीला पौधा जो दक्षिण हिमालय, आसाम, बरमा तथा लंका में अधिकता से होता है। अगिया की तरह इसके पत्तों और डंठलों पर भी बहुत जहरीले रोएँ होते हैं जो शरीर में लगने से सूजन पैदा करते हैं। सूजे हुए स्थान पर बड़ी जलन होती और वह कई दिनों तक रहती है। इसमें से बहुत

बढ़िय रेशा निकल सकता है, पर इसी दोष के कारण कोई इसे छूता नहीं और इसी लिये इसका कोई उपयोग भी नहीं हो सकता। इसे सूरत भी कहते हैं।

चोर पहरा–संज्ञा पुं० [हिं० चोर = गुप्त + पहरा] (१) वह पहरा जो शत्रु के जासूसों से सेना की रक्षा के लिये गुप्त रूप से बैठाया जाता है। (२) किसी प्रकार का गुप्त पहरा।

चोरपुष्प–संज्ञा पुं० दे० "चोरपुष्पी"।

चोरपुष्पिका–संज्ञा स्त्री० दे० "चोरपुष्पी"।

चोरपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जिसका डंठल कुछ लाली लिए होता है। इसके पत्ते लंबे और रोएँदार होते हैं। इसमें आसमानी रंग का फूल लगता है जो नीचे की ओर लटका रहता है। वैद्यक में इसे नेत्रों के लिये हितकारी और गूढ़ गर्भ को आकर्षण करनेवाला माना है। इसे अंधाहुली या शंखाहुली भी कहते हैं।

पर्य्या०—शंखिनी। केशिनी। अधःपुष्पी। भ्रमर-पुष्पी। राशी।

चोर पेट–संज्ञा पुं० [हिं० चोर + पेट] (१) वह पेट जिसमें के गर्भ का जल्दी पता न लगे। (२) किसी चीज़ के मध्य में वह गुप्त स्थान जिसमें रक्खी हुई कोई चीज़ लोगों पर प्रकट न हो। (३) वह चीज़ जिसके मध्य में कोई ऐसा गुप्त स्थान हो।

चोर बदन–संज्ञा पुं० [हिं० चोर + फ़ा० बदन] वह मनुष्य जिसकी मोटाई प्रकट न हो। वह मनुष्य जो वास्तव में बलवान् हो पर देखने में दुबला जान पड़े।

चोर बालू–संज्ञा पुं० [हिं० चोर + बालू] वह बालू या रेत जिसके नीचे दलदल हो।

चोर महल–संज्ञा पुं० [हिं० चोर + महल] वह महल या बड़ा मकान जहाँ राजा और रईस अपनी अविवाहिता स्त्री या प्रेमिका रखते हैं।

विशेष—कभी कभी लोग "चोर महल" से अविवाहिता स्त्री या गुप्त प्रेमिका का भी अर्थ लेते हैं।

चोरमिहीचनी†*–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर + मीचना = बंद करना] आँखमिचौली नाम का खेल।

चोर मूँग–संज्ञा पुं० [हिं० चोर + मूँग] मूँग का वह कड़ा दाना जो न तो चक्की में पिसता है और न गलाने से गलता है।

चोर रस्ता–संज्ञा पुं० दे० "चोर गली"।

चोर सीढ़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर + सीढ़ी] गुप्त सीढ़ी। वह सीढ़ी जिसका पता जल्दी न लगे।

चोरस्नायु–संज्ञा पुं० [सं०] कौवाठोंठी।

चोरहटिया†–संज्ञा पुं० [हिं० चोर + हटिया] वह दूकानदार जो चोरों से माल खरीदता हो।

चोरहुली–संज्ञा स्त्री० दे० "चोरपुष्पी"।

चोरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] चोरपुष्पी।

चोरा चोरी*†–क्रि० वि० [हिं० चोर + चोरी] छिपे छिपे। चुपके चुपके।

चोराख्य–संज्ञा पुं० दे० "चोरपुष्पी"।

चोराना†–क्रि० स० दे० "चुराना"।

चोरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चोरी। चुराने का काम।

चोरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर] (१) छिप कर किसी दूसरे की वस्तु के लेने का काम। चुराने की क्रिया। (२) चुराने का भाव।

यौ०—चोरी यारी या चोरी छिनाला = दूषित और निंदित कर्म।

मुहा०—चोरी चोरी = छिपा कर। गुप्त रूप से। चोरी लगना = चोरी के दोष का आरोपण होना। चोरी लगाना = चोरी लगने का दोष आरोपित करना। चोरी का अभियोग लगना।

चोरीठा†–संज्ञा पुं० दे० "चौरेठा"।

चोरीला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया चारा जिसके दाने कभी कभी गरीब लोग भी अनाज की तरह खाते हैं। पशुओं को यह चारा बीज पड़ने से पहले खिलाया जाता है।

चोल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम जिसका विस्तार मदरास प्रांत के वर्तमान कोयंबतूर त्रिचनापल्ली और तंजौर आदि से मैसूर के आधे दक्षिणी भाग तक था। रामायण और महाभारत आदि में इस देश का जिक्र आया है। (२) उक्त देश का निवासी। (३) स्त्रियों के पहनने की एक प्रकार की अँगिया। चोली। (४) कुरते के ढंग का एक प्रकार का बहुत लंबा पहनावा जिसे चोला कहते हैं। (५) मजीठ। (६) छाल। वल्कल। (७) कवच। जिरह-बकतर।

चोलक–संज्ञा पुं० दे० "चोल"।

चोलकी–संज्ञा पुं० [सं० चोलकिन्] (१) बाँस का कल्ला। (२) नारंगी का पेड़। (३) हाथ की कलाई। (४) करील का पेड़।

चोलखंड–संज्ञा पुं० [सं० चोल + खंड] कपड़े का वह टुकड़ा जो ऐसे हिसाब से बुना जाता है कि उसमें से एक चोली बन कर तैयार हो। इसके गले और बाँहवाले अंशों पर प्रायः कलाबत्तू या जरदोजी आदि की बेलें बनी होती हैं।

चोलन–संज्ञा पुं० दे० "चोलकी"।

चोलना†–संज्ञा पुं० दे० "चोला"। उ०—भला बना संजोग प्रेम का चोलना। तन मन अर्पों सीस साहेब हँसि बोलना।—कबीर।

चोलरंग–संज्ञा पुं० [सं० चोल = मजीठ + रंग] मजीठ का रंग जो पक्का और लाल होता है।

चोलसुपारी–संज्ञा स्त्री० [सं० चोल + हिं० सुपारी] चिकनी सुपारी जो प्रायः चोल देश में अधिकता से होती है।

चोला–संज्ञा पुं० [सं० चोल] (१) एक प्रकार का बहुत लंबा और ढीला ढाला कुरता जो प्रायः साधु फकीर और मुल्ला आदि

ऊपर किसी प्रकार की छाजन न हो। सहन। (३) चौखूँटा चबूतरा। बड़ी वेदी। (४) मंगल अवसरों पर आँगन में या और किसी समतल भूमि पर आटे, अबीर आदि की रेखाओं से बना हुआ चौखूँटा क्षेत्र जिसमें कई प्रकार के खाने और चित्र बने रहते हैं। इसी क्षेत्र के ऊपर देवताओं का पूजन आदि होता है। उ०—(क) कदली खंभ, चौक मोतिन के, बांधे बंदनवार।—सूर। (ख) मंगलचार भए घर घर में मोतिन चौक पुराए।—सूर।

क्रि० प्र०—पूरना।

(५) नगर के बीच वह लंबा चौड़ा खुला स्थान जहां बड़ी बड़ी दूकानें आदि हों। शहर का बड़ा बाज़ार। (६) नगर के बीच वह स्थान जहां से चारों ओर रास्ते गए हों। चौराहा। चौमुहानी। (७) चौसर खेलने का कपड़ा। बिसात। उ०—राखि सत्रह पुनि अठारह चोर पांचो मारि। डारि दे तू तीन काने चतुर चौक निहारि।—सूर। (८) सामने के चार दांतों की पंक्ति। उ०—दसन चौक बैठे जनु हीरा। औ बिच बिच रँग स्याम गँभीरा।—जायसी। † (९) सीमंत कर्म। अठवांसा। भोड़े।

चौकगोभी—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की गोभी।

चौकठ—संज्ञा पुं० दे० "चौखट"।

चौकठा—संज्ञा पुं० दे० "चौखटा"।

चौकड़—वि० [हिं० चौ + सं० कला = अंग, भाग] दुरुस्त। बढ़िया। अच्छा। जैसे, चौकड़ माल।

चौकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + कड़ा] (१) कान में पहनने की बाली जिसमें दो दो मोती हों। (२) फ़सल की एक बँटाई जिसमें से ज़मीदार को चौथाई मिलता है।

चौकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + सं० कला = अंग] (१) हरिण की वह दौड़ जिसमें वह चारों पैर एक साथ फेंकता हुआ जाता है। चौफाल कुदान। फलांग। कुलांच। उड़ान। छलांग।

क्रि० प्र०—भरना।

मुहा०—चौकड़ी भूल जाना = एक भी चाल न सूझना। बुद्धि का काम न करना। किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ होना। सिटपिटा जाना। घबरा जाना। भौचक्का रह जाना।

(२) चार आदमियों का गुट्ट। मंडली।

यौ०—चंडाल चौकड़ी = उपद्रवी मनुष्यों की मंडली।

(३) एक प्रकार का गहना। (४) चार युगों का समूह। चतुर्युगी। (५) पलथी।

क्रि० प्र०—मारना।

(६) चारपाई की वह बुनावट जिसमें चार चार सुतड़ियां इकट्ठी करके बुनी गई हों।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + घोड़ी] वह गाड़ी जिसमें चार घोड़े जुतें। चार घोड़ों की गाड़ी।

चौकनिकास—संज्ञा पुं० [हिं० चौक + निकास] वह कर या महसूल जो किसी चौक (बाज़ार) में बैठनेवाले दूकानदारों से लिया जाता है।

चौकन्ना—वि० [हिं० चौ = चारों ओर + कान] (१) सावधान। होशियार। चौकस। सजग। (२) चौंका हुआ। आशंकित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

चौकरी†*—संज्ञा स्त्री० दे० "चौकड़ी"।

चौकल—संज्ञा पुं० [सं०] चार मात्राओं का समूह। इसके पाँच भेद हैं (ऽऽ, ।।ऽ, ।ऽ।, ऽ।।, ।।।।)।

चौकस—वि० [हिं० चौ = चार + कस = कसा हुआ] (१) सावधान। सचेत। चौकन्ना। होशियार। ख़बरदार। (२) ठीक। दुरुस्त। पूरा। जैसे, चौकस माल।

चौकसाई*†—संज्ञा स्त्री० दे० "चौकसी"।

चौकसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौकस] सावधानी। होशियारी। निगरानी। निगहबानी। ख़बरदारी।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

चौका—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्क, प्रा० चउक्क] (१) पत्थर का चौकोर टुकड़ा। चौखूँटी सिल। (२) काठ वा पत्थर का पाटा जिस पर रोटी बेलते हैं। चकला। (३) सामने के चार दाँतों की पंक्ति। उ०—नैकु हँसौंहीं बानि तजि लख्यो परत मुख नीठि। चौका चमकनि चौंध में परति चौंधि सी दीठि।—बिहारी। (४) सिर पर का एक गहना। सीसफूल। (५) वह ईंट जिसकी लंबाई चौड़ाई बराबर हो। (६) वह लिपा पुता स्थान जहां हिंदू लोग रसोई बनाते वा खाते हैं। (इस स्थान पर बाहरी लोग या बिना नहाए धोए घर के लोग भी नहीं जाने पाते। (७) मिट्टी वा गोबर का लेप जो सफ़ाई के लिये किसी स्थान पर किया जाय। मिट्टी वा गोबर की तह जो लिपने या पोतने में भूमि पर चढ़े।

क्रि० प्र०—देना।—फेरना।—लगाना।

यौ०—चौका बरतन।

मुहा०—चौका बरतन करना = बरतन मांजने और रसोई का घर लीपने-पोतने का काम करना। चौका पोतना = दे० "चौका लगाना"। चौका लगाना = (१) लीप पोत कर बराबर करना। (२) सत्यानाश करना। चौपट करना। उ०—कियो तीन तेरह सबै चौका चौका लाय।—हरिश्चंद्र।

(८) एक प्रकार का जंगली बकरा जिसे चार सींग होते हैं। यह प्रायः जलाशय के आसपास ही झाड़ियों में रहता है। इसके बाल पतले और रूखे होते हैं। रंग इसका बादामी होता है। यह दो फुट ऊँचा और ४, ५ फुट लंबा होता है। बचपन ही से यदि यह पाला जाय तो रह सकता है। इसे चौसिंघा भी कहते हैं। (९) एक ही स्थान पर मिला वा सटा कर रक्खी हुई एक ही प्रकार की चार वस्तुओं का

समूह। जैसे, अँगौछे का चौका, चुनरी का चौका, चौकी का चौका, मोतियों का चौका। (१०) ताश का वह पत्ता जिसमें चार बूटियाँ हों। जैसे, ईंट का चौका। (११) एक प्रकार का मोटा कपड़ा जो फर्श या जाजिम बनाने के काम में आता है। (१२) एक बरतन का नाम।

चौकिया सोहागा—संज्ञा पुं० [हिं० चौकी + सोहागा] छोटे छोटे टुकड़ों में कटा हुआ सोहागा जो औषध के लिये विशेष उपयुक्त होता है।

चौकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्की] (१) काठ या पत्थर का चौकोर आसन जिसमें चार पाए लगे हों। छोटा तख्त। उ०—चौक में चौकी जराय जरी तिहि पै खरी बार बगारत सौंधे।—पद्माकर। (२) कुरसी।

मुहा०—चौकी देना = बैठने के लिए कुरसी देना। कुरसी पर बिठाना।

(३) मंदिर में मंडप की ओर के खंभों के ऊपर का वह घेरा जिस पर उसका शिखर स्थित रहता है। (४) मंदिर में मंडप के खंभों के बीच का स्थान जिसमें से होकर मंडप में प्रवेश करते हैं। (५) पड़ाव या ठहरने की जगह। टिकान। अड्डा। सराय। उ०—चले चलो, आगे की चौकी पर डेरा डालेंगे।

मुहा०—चौकी जाना = कसब कमाने जाना। खरची पर जाना।

(६) वह स्थान जहाँ आस पास की रक्षा के लिये थोड़े से सिपाही आदि रहते हों। जैसे, पुलिस की चौकी। (७) किसी वस्तु की रक्षा के लिये वा किसी व्यक्ति को भागने से रोकने लिये रक्षकों वा सिपाहियों की नियुक्ति। पहरा। खबरदारी। रखवाली। उ०—करिके निसंक तट बट के तरे तू बास चौंकै मति चौकी यहाँ पाहरू हमारे की।—कविंद।

यौ०—चौकी पहरा।

मुहा०—चौकी देना = पहरा देना। रखवाली करना। चौकी बिठना = पहरा बिठाना। खबरदारी के लिये सिपाही तैनात करना। चौकी बैठना = पहरा बैठना वा निगरानी के लिये सिपाही तैनात होना। चौकी भरना = (१) पहरा पूरा करना। अपनी बारी के अनुसार पहरा देना। (२) किसी देवी या देवता के दर्शनों को मन्नत के अनुसार जाना।

(८) वह भेंट वा पूजा जो किसी देवी, देवता, ब्रह्म, पीर आदि के स्थान पर चढ़ाई जाती है।

क्रि० प्र०—भरना।

(९) जादू। टोना। (१०) तेलियों के कोल्हू में लगी हुई एक लकड़ी। (११) गले में पहनने का एक गहना जिसमें चौकोर पटरी होती है। एक प्रकार की जुगनी। पटरी। उ०—(क) चौकी बदलि परी प्यारे हरि।—हरिदास। (ख) मानो लसी तुलसी हनुमान हिए जग जीते जराय की चौकी।—तुलसी। (१२) रोटी बेलने का छोटा चकला। (१३) भेड़ों और बकरियों का रात के समय किसी खेत में रहना। (खाद के लिये किसान प्रायः भेड़ों को खेत में रखते हैं)।

चौकीदार—संज्ञा पुं० [हिं०] (१) पहरेवाला। पहरा देनेवाला। सिपाही। गोड़ैत। (२) जो खूटा महतों की बगल में भांज की डोरी फँसाने के लिये गड़ा रहता है उसे जुलाहे चौकीदार कहते हैं।

चौकीदारा—संज्ञा पुं० दे० "चौकीदारी (३)"।

चौकीदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) पहरा देने का काम। रखवाली। खबरदारी। (२) चौकीदार का पद। (३) वह चंदा वा कर जो चौकीदार रखने के लिये लिया जाय।

चौकुरा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + कूरा] फ़सल की वह बटाई जिसमें से तीन चौथाई असामी और एक चौथाई जिमींदार लेता है।

चौकोना—वि० दे० "चौकोना"।

चौकोना—वि० [सं० चतुष्कोण, प्रा० चउक्कोण,] [स्त्री० चौकोनी] जिसके चार कोने हों। चौखूँटा। चतुष्कोण।

चौकोर—वि० [सं० चतुष्कोण, प्रा० चउक्कोण, चउक्कोड] (१) चौखूँटा। जिसके चार कोने हों। चतुष्कोण। (२) क्षत्रियों की एक जाति वा शाखा।

चौखंड—संज्ञा पुं० [देश०] (१) वह घर जिसमें चार खंड हों। चौमंजिला मकान। (२) वह घर जिसमें चार आँगन वा चौक हों।

चौखट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + काठ] (१) द्वार पर लगी हुई चार लकड़ियों का ढाँचा जिसमें किवाड़ के पल्ले लगे रहते हैं। (२) देहली। डेहरी। दहलीज।

मुहा०—चौखट लाँघना = घर के भीतर या बाहर जाना।

चौखटा—संज्ञा पुं० [हिं० चौखट] चार लकड़ियों का ढाँचा जिसमें मुहँ देखने का या तसवीर का शीशा जड़ा जाता है। आइने तसवीर आदि का फ्रेम।

चौखना—वि० [हिं० चौखंड] चार खंड का। चौमंजिला (मकान)।

चौखा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + ?] वह स्थान जहाँ चार गावों की सीमा मिलती हो।

चौखानि—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + खानि = जाति, प्रकार] अंडज, पिंडज, स्वेदज, उद्भिज आदि चार प्रकार के जीव। उ०—मानुष तें बड़ पापिया, अक्षर गुरुहि न मानि। बार बार बन कूकुही, गर्भ धरे चौखानि।—कबीर।

चौखूँट—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + खूँट] (१) चारों दिशा। (२) भूमंडल।

क्रि० वि० चारों ओर।

चौखूँटा—वि० [हिं० चौ + खूँट] जिसमें चार कोने हों। चौकोना। चतुष्कोण।

चौगड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + गोड़ = पैर] (१) खरहा । खरगोश । (२) दे० "चौघड़ा" ।

चौगड्डा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + गड्ड बड = मेल] (१) वह स्थान जहाँ चार गाँवों की सीमा मिली हों । चौहद्दा । चौसिंहा । चौखा । (२) चार चीजों का समूह ।

चौगड्डी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + गड्डा] बांस की फट्टियों का वह ढाँचा जिसमें जानवर फँसाते हैं ।

चौगान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक खेल जिसमें लकड़ी के बल्ले से गेंद मारते हैं । यह घोड़े पर चढ़ कर भी खेला जाता है। यह खेल हाकी या पोलो नामक अँगरेज़ी खेलों ही के समान होता है । उ०—(क) ते तव सिर कंदुक इव नाना । खेलिहहिँ भालु कीस चौगाना ।—तुलसी । (ख) श्री मोहन खेलत चौगान । द्वारावती कोट कंचन में रच्यो रुचिर मैदान । यादव बीर बराइ बटाई इक हलधर इक आपै ओर । निकसे सबै कुँवर असवारी उच्चैश्रवा के पोर । लीले सुरंग, कुमैत स्याम तेहिपर दै सब मन रंग ।—सूर । (२) चौगान खेलने की लकड़ी जो आगे की ओर टेढ़ी वा झुकी होती है । उ०—(क) कर कमलनि विचित्र चौगाने खेलन लगे खेल रिझए ।—तुलसी । (ख) लै चौगान बटा करि आगे प्रभु आए जब बाहर । सूर स्याम पूछत सब ग्वालन खेलैंगे केहि ठाहर ।—सूर । (३) चौगान खेलने का मैदान । उ०—अंतःपुर चौगान लौं निकसत कसमस होइ । नरनारी धावत सुख छावत पूछत कोउ नहिँ कोइ ।—रघुराज । (४) नगाड़ा बजाने की लकड़ी ।

चौगानी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चौगान ?] हुक्के की सीधी नली जिससे धुआँ खींचते हैं । निगाली । सटक ।

चौगिर्द-क्रि० वि० [हिं० चौ + फ़ा० गिर्द = तरफ़] चारों ओर । चारों तरफ़ ।

चौगुन†-वि० दे० "चौगुना" ।

चौगुना-वि० [सं० चतुर्गुण, प्रा० चउग्गुण] [स्त्री० चौगुनी] चार बार और उतना ही । चतुर्गुण । चहारचंद ।

मुहा०—मन चौगुना होना = उत्साह बढ़ना । चित्त और प्रसन्न होना । उ०—विंध्यावली तिया सी न देखी कहूँ तिया नैन बीध्यो प्रभु पिया देखि कियो मन चौगुनो ।—प्रिया ।

चौगून*-वि० दे० "चौगुना" ।

चौगोड़ा-वि० [हिं० चौ + गोड़ = पैर] (१) चार पैरवाला । (२) खरगोश । खरहा ।

चौगोड़िया-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + गोड़ = पैर] (१) एक प्रकार की ऊँची चौकी जिसके पायों में चढ़ने के लिये सीढ़ी की तरह डंडे लगे रहते हैं । टिकटी । (यह छत दीवार आदि ऊँचे स्थानों तक पहुँचने, झाड़ने पोंछने, सफ़ेदी वा रंग आदि करने के काम में आती है ।) (२) बाँस की तीलियों का बना हुआ एक ढाँचा वा फंदा जिसके चारों पल्लों में तेल में पकाया हुआ पीपल का गोंद लगा रहता है । बहेलिए इससे चिड़िया फँसाते हैं ।

चौगोशा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + फ़ा० गोशा] चौखूँटी तश्तरी जिस में मेवे, मिठाइयाँ आदि रख कर कहीं भेजते हैं ।

चौगोशिया-वि० स्त्री० [फ़ा०] चार कोनेवाली ।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की टोपी जो कपड़े के चार तिकोने टुकड़ों की सी कर बनाई जाती है ।

संज्ञा पुं० तुरकी घोड़ा ।

चौघड़-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + दाढ़] दाढ़ का वह चौड़ा और चिपटा दाँत जो आहार कूचने वा चबाने के काम में आता है ।

चौघड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + घर = खाना] (१) चाँदी सोने आदि का बना हुआ एक प्रकार का डिब्बा जिसमें चारखाने बने होते हैं ।

विशेष—यह कई आकार का बनता है । विशेषतः गोल होता है और खाने फूल की पखुड़ी के आकार के बनाए जाते हैं । इन खानों में इलायची, लौंग, जावित्री, सुपारी इत्यादि भर कर मुहफ़िलों में रखते हैं ।

(२) चार खानों का बरतन जिसमें मसाला आदि रखते हैं । (३) दिवाली के दिनों में बिकनेवाला मिट्टी का एक खिलौना जिसमें आपस में जुड़ी हुई चार छोटी छोटी कुल्हियां होती हैं । लड़के इसमें मिठाई आदि रख कर खाते हैं । (४) पत्ते की खोंगी जिसमें चार बीड़े पान हों । उ०—दो चौघड़े उधर दे आओ । (५) बड़ी जाति की गुजराती इलायची ।

चौघड़ी†-वि० स्त्री० [हिं० चौ + घेरा] चार तह वा परत की ।

चौघर†-वि० [देश०] घोड़ों की एक चाल । चौफाल । पोइयाँ । सरपट । उ०—अबलक अबरस लखी सिराजी । चौघर चाल समुँद सब ताजी ।—जायसी ।

चौघरा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + घर] (१) पीतल की दीयट जिसके दीये में चार बत्तियाँ जलती हैं । (२ दे० "चौघड़ा" ।

चौघोड़ी*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + घोड़ा] चौकड़ी गाड़ी । चार घोड़ों की गाड़ी वा रथ । उ०—सौ तुषार तीस गज पावा । दुंदुभि औ चौघोड़ि देवावा ।—जायसी ।

चौचँद*†-संज्ञा पुं० [हिं० चौथ + चंद वा चवाव + चंड] कलंक-सूचक अपवाद । बदनामी की चर्चा । निंदा । उ०—सखि ! हौं वा रँगीले के रंग रँगी ये चबाइनै चौचंद कीबो करै ।—शृं० सत० ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—चौचंद पारना = चवाव करना । बदनामी करना ।

चौचंदहाई-वि० स्त्री० [हिं० चौचंद + हाई (प्रत्य०)] चवाव

करनेवाली। बदनामी फैलानेवाली। दूसरों की बुराई करनेवाली। उ०—चौचंदहाई जरैं ब्रज की जे परायो अनो सब भाँति बिगारैं।—ठाकुर।

चौज-संज्ञा पुं० दे० "चोज"।

चौजुगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + सं० युग] चार युगों का काल।

चौड़-संज्ञा पुं० [सं०] चूड़ाकरण संस्कार।

वि० [हिं० चौपट] चौपट। सत्यानाश।

चौड़ा-वि० [हिं० चौ = चार + पट = चौड़ाई वा सं० चिपिट = चिपटा] [स्त्री० चौड़ी] लंबाई की ओर के दोनों किनारों के बीच विस्तृत। लंबाई से भिन्न दिशा की ओर फैला हुआ। चकला। लंबा का उलटा।

यौ०—चौड़ा चकला।

संज्ञा पुं० [सं० चुंटा = कुएँ के पास का गड्ढा] वह गड्ढा जिसमें अनाज रखते हैं।

चौड़ाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौड़ा + ई (प्रत्य०)] लंबाई से भिन्न दिशा की ओर का विस्तार। लंबाई के दोनों किनारों के बीच का फैलाव।

चौड़ान-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौड़ा] चौड़ाई।

चौड़ाना†-क्रि० स० [हिं० चौड़ा] चौड़ा करना। फैलाना।

चौड़ाव†-संज्ञा पुं० दे० "चौड़ान"।

चौड़ी-वि० स्त्री० दे० "चौड़ा"।

चौडोल†-संज्ञा पुं० दे० "चंडोल"।

चौतग्गी-वि० [हिं० चौ + तागा] वह डोरा जिसमें चार तागे लगे हों।

चौतनियाँ-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + तनी = बंद] (१) चौतनी। उ०—(क) करत सिंगार चार भैया मिलि शोभा बरनि न जाई। चित्र विचित्र सुभग चौतनिया इंद्र धनुष छवि छाई।—सूर। (ख) भाल तिलक मसि बिंदु बिराजत सोहति सीस लाल चौतनियाँ।—तुलसी। (२) अँगिया। चोली। चौबंदी। उ०—नारंगी नीवू उरोजनि जानि दये नख वानर चौतनियाँ में।—सेवक स्याम।

चौतनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + तनी = बंद] बच्चों की टोपी जिसमें चार बंद लगे रहते हैं। उ०—(क) पीत चौतनी सिरन सुहाई।—तुलसी। (ख) रुचिर चौतनी सुभग सिर मेचक कुंचित केस। नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस।—तुलसी।

चौतरका-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + तड़क = लकड़ी, धरन] एक प्रकार का खेमा वा तंबू।

चौतरा-संज्ञा पुं० दे० "चबूतरा"।

चौतही-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + तह] खेस की बिनावट (लहरियेदार) का एक कपड़ा जो इतना लंबा होता है कि चार तह करके बिछाने पर भी एक मनुष्य के लेटने भर को होता है।

चौतारा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + तार] एकतारे की तरह का एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिये चार तार होते हैं।

वि० चार तारोंवाला। जिसमें चार तार हों।

चौताल-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + ताल] (१) मृदंग का एक ताल। इसमें ६ दीर्घ अथवा १२ लघु मात्राएँ होती हैं जिसमें से ४ आघात और २ खाली होते हैं। इसका बोल यह है—धा धा धिनता कत्ता गेदिनता तेटेकता गेदिघिन। (२) एक प्रकार का गीत जो होली में गाया जाता है।

चौताला-वि० [हिं० चौ + ताल] चार तालवाला। जिसमें चार ताल हों।

चौताली†-संज्ञा स्त्री० [देश०] कपास की ढेँढी वा डोडा जिसमें से रुई निकलती है।

चौतुका-वि० [हिं० चौ + तुक] जिसमें चार तुक हों।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का छंद जिसके चारों चरणों की तुक मिली हो।

चौथ-संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्थी, प्रा० चउत्थि, हिं० चउथि] (१) प्रति पक्ष की चौथी तिथि। हर पखवारे का चौथा दिन। चतुर्थी।

मुहा०—चौथ का चांद = भाद्र शुक्ल चतुर्थी का चंद्रमा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यदि कोई देख ले तो उसे झूठा कलंक लगता है। भागवत आदि पुराणों में लिखा है कि श्रीकृष्ण ने चौथ का चंद्रमा देखा था इसीसे उन्हें मणि की चोरी लगी थी। अब तक हिंदू भादों सुदी चौथ के चंद्रमा का दर्शन बचाते हैं और यदि किसी को झूठ मूठ कलंक लगता है तो कहते हैं कि उसने चौथ का चांद देखा है। उ०—लगै न कहुँ ब्रज गलिन में आवत जात कलंक। निरखि चौथ को चंद यह सोचत सुमुखि ससंक।—पद्माकर।

(२) चतुर्थांश। चौथाई भाग। (३) मरहठों का लगाया हुआ एक प्रकार का कर जिसमें आमदनी वा तहसील का चतुर्थांश ले लिया जाता था।

*† वि० चौथा। उ०—चंपक लता चौथ दिन जान्यो मृगमद सीर लगायो।—सूर।

चौथपन*-संज्ञा पुं० [हिं० चौथा + पन] मनुष्य के जीवन की चौथी अवस्था। बुढ़ाई। बुढ़ापा। उ०—होइ न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु।—तुलसी।

चौथा-वि० [सं० चतुर्थ, प्रा० चउत्थ] [स्त्री० चौथी] क्रम में चार के स्थान पर पड़नेवाला। तीसरे के उपरांत का। जिसके पहले तीन और हों।

संज्ञा पुं० मृतक के घर होनेवाली एक रीति जिसमें संबंधी तथा बिरादरी के लोग इकट्ठे होते हैं और दाह करनेवाले को रुपया, पगड़ी आदि देते हैं। यदि मृतक की विधवा स्त्री जीवित हो तो उसे धोती चद्दर आदि दी जाती है। उ०—कल तुम उनके चौथे में गए थे?

चौथाई–संज्ञा पुं० [हिं० चौथा + ई (प्रत्य०)] चौथा भाग। चार सम भागों में से एक भाग। चतुर्थांश। चहारुम।

चौथि†*–संज्ञा स्त्री० दे० "चौथ"।

चौथिआई†–संज्ञा पुं० दे० "चौथाई"।

चौथिया–संज्ञा पुं० [हिं० चौथा] (१) वह ज्वर जो प्रति चौथे दिन आवे।

क्रि० प्र०—आना।

(२) चौथाई का हक़दार। चतुर्थांश का अधिकारी।

चौथी–वि० स्त्री० दे० "चौथा"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चौथा] (१) विवाह की एक रीति जो विवाह हो जाने पर चौथे दिन होती है। इसमें वर कन्या के हाथ के कंगन खोले जाते हैं। उ०—(क) सकल चार चौथी कर कीन्हें अंतःपुर बासिन सुख दीन्हें।—रघुराज। (ख) चौथे दिवस रंगपति आए। विधि चौथी कर चार कराए।—रघुराज।

मुहा०—चौथी का जोड़ा = वह जोड़ा वा लहँगा जो वर के घर से आता है और जिसे दुलहिन चौथी के दिन पहनती है। चौथी खेलना = चौथी के दिन दूल्हा दुलहिन का एक दूसरे के ऊपर मेवे फल आदि फेंकना। चौथी छूटना = चौथी के दिन वर कन्या के हाथों के कंगन खुलना। चौथी की रीति होना। चौथी छुड़ाना = चौथी की रीति करना।

(२) फ़सल की बाँट जिसमें ज़मींदार चौथाई लेता है और असामी तीन चौथाई। चौकुर।

चौथैया†–संज्ञा पुं० [हिं० चौथाई] चौथाई। चतुर्थांश।

संज्ञा स्त्री० छोटी नाव जिसमें बहुत थोड़ा बोझ लद सके।

चौदंता–वि० [सं० चतुर्दंत] [स्त्री० चौदंती] (१) चार दाँतोंवाला। जिसके चार दाँत हों। जो पूरी बाढ़ को न पहुँचा हो। बचपन और जवानी के बीच का। उभड़ती जवानी का। (इस शब्द का व्यवहार घोड़े के बच्चों और बैलों आदि के लिये होता है।) (२) अल्हड़। उग्र। उद्दंड। (३) स्याम देश के हाथी की एक जाति जिसे चार दाँत होते हैं।

चौदंती–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौदंता] अल्हड़पन। उद्दंडता। धृष्टता। ढिठाई।

वि० स्त्री० दे० "चौदंता"।

चौदश–संज्ञा स्त्री० दे० "चौदस"।

चौदस–संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्दशी, प्रा० चउद्दसि] वह तिथि जो किसी पक्ष में चौदहवें दिन होती है। चतुर्दशी। उ०—फागुन बदि चौदस को शुभ दिन अरु रविवार सुहायो। नखत उत्तरा आप विचारयो काल कंस को आयो।—सूर।

चौदह–वि० [सं० चतुर्दश, प्रा० चउद्दस, अप० प्रा० चउद्दह] जो गिनती में दस और चार हों। जो दस से चार अधिक हों।

संज्ञा पुं० दस और चार के जोड़ की संख्या जो अंको में इस प्रकार लिखी जाती है—१४।

मुहा०—चौदह विद्या चौदह भुवन, चौदह रत्न = दे० "विद्या" "भुवन" और "रत्न"।

चौदहवाँ–वि० [हिं० चौदह + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान तेरहवें स्थान के उपरांत हो। जिसके पहले तेरह और हों।

चौदाँत†*–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + दाँत] दो हाथियों की लड़ाई। हाथियों की मुठभेड़। उ०—पीलहि पील देखावा भयो दोहूँ चौदांत। राजा चहै बुर्द भा शाह चहै शह मात।—जायसी।

चौदाँवाँ–वि० [हिं० चौ = चार + दाँव] वह खेल (विशेषतः सोरही या इसी प्रकार का और कोई जूए का खेल) जिसमें चार दाँव हों। वह खेल जिसमें चार दाँव लग सकें।

चौदा–संज्ञा पुं० दे० "चौना"।

चौदानिया–संज्ञा स्त्री० दे० "चौदानी"।

चौदानी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + दाना + ई (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार की बाली जिसमें चार पत्तियों की सोने की जड़ाऊ टिकड़ी लगी होती है। (२) कान की वह बाली जिसमें मोती के चार दाने लगे हों।

चौदायनि–संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

चौदाँआँ, चौदौवाँ–वि० दे० "चौदाँवाँ"।

चौधराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौधरी] (१) चौधरी का काम। (२) चौधरी का पद।

चौधरात–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौधरी] चौधराना।

चौधराना–संज्ञा पुं० [हिं० चौधरी] (१) चौधरी का काम। (२) चौधरी का पद। (३) वह धन जो चौधरी को उसके कामों के बदले मिले।

चौधरी–संज्ञा पुं० [सं० चतुर = तकिया, मसनद + धर = धरनेवाला] किसी जाति, समाज या मंडली का मुखिया जिसके निर्णय को उस जाति, समाज या मंडली के लोग मानते हैं। प्रधान। उ०—भनै रघुराज कारपण्य पण्य चौधरी हैं जग के विकार जेते सबै सरदार हैं।

विशेष—कुछ लोग इस शब्द की व्युत्पत्ति "चतुधुरीण" शब्द से बतलाते हैं।

चौना†–संज्ञा पुं० [सं० च्यवन] कूएँ पर का वह ढाल स्थान जहाँ खेत सींचनेवाले ढेंकुली या चरस आदि से पानी निकाल कर गिराते हैं। चीकर। लिलारी।

चौप–संज्ञा पुं० दे० "चोप"।

चौपई–संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्पदी] एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ होती हैं और अंत में गुरु लघु होते हैं। जैसे, राम रमापति तुम मम देव। नहिँ प्रभु होत तुम्हारी सेव। दीन दयानिधि भेद अभेव। मम दिशि देखो यह यश लेव।

चौपखा†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + सं० पक्ष, हिं० पाख] परिखा। चहार दीवारी।

चौपग†–संज्ञा पुं० [हिं० चौ + पग] चौपाया । चार पैरोंवाला पशु ।

चौपट–वि० [हिं० चौ = चार + पट = किंवाड़ा, वा हिं० चापट] चारों ओर से खुला हुआ । अरक्षित ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।

वि० [हिं० चौ = चार + पट = सतह, तात्पर्य चारों तरफ से बराबर] नष्ट भ्रष्ट । विध्वंस । तबाह । बरबाद । सत्यानाश । उ०—जो दिन प्रति अहार कर सोई । बिस्व बेगि सब चौपट होई । —तुलसी ।

यौ०—चौपट चरण = जिसके कहीं पहुँचते सब कुछ नष्ट भ्रष्ट हो जाय । सब्ज़ क़दम । चौपटा ।

चौपटहा†–वि० [हिं० चौपट + हा (प्रत्य०)] चौपट करनेवाला । नष्ट करनेवाला । सर्वनाशी । सत्यानाशी ।

चौपटा–वि० [हिं० चौपट] चौपट करनेवाला । नाश करनेवाला । काम बिगाड़नेवाला । सत्यानाशी ।

चौपड़–संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्पट, प्रा० चउप्पट] (१) चौसर नामक खेल । नर्दबाजी । (२) इस खेल की बिसात और गोटियाँ आदि । (३) पलंग आदि की वह बुनावट जिसमें चौसर के से खाने बने हों ।

चौपत†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + परत] कपड़े की तह या घड़ी जो लगाई जाती है ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।

संज्ञा स्त्री० दे० "चौपतिया" ।

संज्ञा पुं० पत्थर का वह टुकड़ा जिसमें एक कील लगी रहती है और जिस पर कुम्हार का चाक रहता है ।

✓**चौपताना**†–क्रि० स० [हिं० चौपत] कपड़े आदि की तह लगाना । घड़ी लगाना ।

चौपतिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + पत्ती] (१) एक प्रकार की घास जो गेहूँ के खेत में उत्पन्न होकर फसल को बहुत हानि पहुँचाती है । (२) एक प्रकार का साग । उटंगन । (३) कशीदे आदि में वह बूटी जिसमें चार पत्तियाँ हों ।

चौपथ–संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पथ] (१) चौराहा । चौरस्ता । चौमुहानी । (२) चौपत नाम का पत्थर जिस पर चाक रहता है ।

चौपद†*–संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पद] चार पैरोंवाला पशु । चौपाया ।

चौपया†–संज्ञा पुं० दे० "चौपाया" ।

चौपर†–संज्ञा स्त्री० दे० "चौपड़" ।

✓**चौपरतना**–क्रि० स० [हिं० चौ = चार + परत + ना (प्रत्य०)] कपड़े आदि की तह लगाना । कपड़े आदि को चारों ओर से कई फेर मोड़ कर परत बैठाना ।

चौपल–संज्ञा पुं० [सं० चतुष्फलक] चौपत नाम का पत्थर जिसपर कुम्हार का चाक रहता है ।

चौपहरा–वि० [हिं० चौ = चार + पहर] चार पहर का । चार पहर संबंधी । चार चार पहर के अंतर का ।

मुहा०—चौपहरा देना = चार चार पहर के अंतर पर घोड़े से काम लेना ।

चौपहल–वि० [हिं० चौ + फ़ा० पहलू; सं० फलक] जिसके चार पहल वा पार्श्व हों । जिसमें लंबाई चौड़ाई और मोटाई हो । वर्गात्मक ।

चौपहला–वि० दे० "चौपहल" ।

संज्ञा पुं० [हिं० चौपहल + आ (प्रत्य०)] एक प्रकार का डोला । दे० "चौपाल (२)" ।

चौपहलू–वि० दे० "चौपहला" ।

चौपहिया†–वि० [हिं० चौ + पहिया] चार पहियों का । जिसमें चार पहिये हों ।

संज्ञा स्त्री० चार पहियों की गाड़ी ।

चौपहिलू–वि० दे० "चौपहला" । उ०—हाथनि चारि चारि चूरी पाइनि इक सार चूरा चौपहिलू इक टक रहे हरि हेरी ।—स्वामी हरिदास ।

चौपा†–संज्ञा पुं० दे० "चौपाया" ।

चौपाई–संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्पदी] (१) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं । इसके बनाने में केवल द्विकल और त्रिकल का ही प्रयोग होता है । इसमें किसी त्रिकल के बाद दो गुरु और सब से अंत में जगण या तगण न पड़ना चाहिए । इसे रूप चौपाई या पादाकुलक भी कहते हैं ।

विशेष—वास्तव में चौपाई (चतुष्पदी) वही है जिसमें चार चरण हों और चारों चरणों का अनुप्रास मिला हो । जैसे, छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन ते न काठ कठिनाई । तरनिउ मुनि-घरनी होइ जाई । बाट परइ मोरि नाव उड़ाई । पर साधारणतः लोग दो चरणों को ही (जिन्हें वास्तव में अर्द्धाली कहते हैं) चौपाई कहते और मानते हैं । मात्रिक के अतिरिक्त कुछ चौपाइयाँ ऐसी भी होती हैं जो वर्ण वृत्त के अंतर्गत आती हैं और जिनके अनेक भेद और भिन्न भिन्न नाम हैं । उनका वर्णन अलग अलग दिया गया है ।

†(२) चारपाई । खाट ।

चौपाड़–संज्ञा पुं० दे० "चौपाल" ।

चौपायनि–संज्ञा पुं० [सं०] चुप नामक ऋषि के वंशज ।

चौपाया–संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पद, प्रा० चउप्पाव] चार पैरोंवाला पशु । गाय, बैल, भैंस आदि पशु । (प्रायः गाय बैल आदि के लिये ही अधिक बोलते हैं)

चौपार†–संज्ञा स्त्री० दे० "चौपाल" ।

चौपाल–संज्ञा पुं० [हिं० चौबार] (१) खुली हुई बैठक । लोगों के बैठने उठने का वह स्थान जो ऊपर से छाया हो पर चारों

ओर खुला हो। (गाँवों में ऐसे स्थान प्रायः रहते हैं जहाँ लोग बैठ कर पंचायत, बातचीत आदि करते हैं। (२) बैठक। उ० – सब चौपारहिं चंदन खँभा। बैठा राजा भद्द तब सभा।—जायसी। (३) दालान । बरामदा। (४) घर के सामने का छायादार चबूतरा। (५) एक प्रकार की खुली पालकी जिसमें परदे वा किवाड़ नहीं होते। चौपहला।

चौपुरा–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + पुर = चरस + आ (प्रत्य०)] वह कुआँ जिस पर चारपुर या मोट एक साथ चल सकें। वह कुआँ जिसपर चार चरसे एक साथ चलते हों।

चौपैया–संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पदी] (१) चार चरणोंवाले एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १०, ८ और १२ के विश्राम से ३० मात्राएँ होती हैं और अंत में एक गुरु होता है। इसके आरंभ में एक द्विकल के उपरांत सब चौकल होने चाहिएं और प्रत्येक चौकल में सम के उपरांत सम और विषम के उपरांत विषम कल का प्रयोग होना चाहिए और चारों चरणों का अनुप्रास भी मिलना चाहिए। जैसे, भै प्रगट कृपाला, दीन दयाला, कौशल्या हितकारी। हर्षित महतारी, मुनि-मन-हारी अद्भुत रूप निहारी। लोचन अभिरामा, तनु घनश्यामा, निज आयुध भुजचारी । भूषन बनमाला, नयन विशाला, शोभा सिंधु खरारी। † (२) चारपाई। खाट।

चौफला–वि० हिं० चौ + फल] जिसमें चार फल या धारदार लोहे हों। (चाकू)

चौफेर–क्रि० वि० [हिं० चौ + फेर] चारों ओर। चारों तरफ।

चौफेरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + फेरा] चारों ओर घूमना। परिक्रमा। †क्रि० वि० चारों ओर।

संज्ञा स्त्री० मुगदर का एक हाथ जिसमें बगली का हाथ कर के मुगदर को पीठ की ओर से सामने छाती के समानांतर लाकर इतना तानते हैं कि वह छाती की बगल में बहुत दूर तक निकल जाता है।

चौबंदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + बंद] (१) एक प्रकार का छोटा चुस्त अंगा वा कुरती जिसमें जामे की तरह एक पल्ला नीचे और एक पल्ला ऊपर होता है और दोनों बगल चार बंद लगते हैं। बगलबंदी। †(२) राजस्व। कर। (३) घोड़े के चारों सुमों की नालबंदी।

चौबंसा–संज्ञा पुं० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक यगण होता है। जैसे, नय धरु एका। न भजु अनेका । इसे शशिवंदना, चंडरसा और पादांकुलक भी कहते हैं।

चौबगला–संज्ञा पुं० [हिं०] मिरजई, फतुही, कुरती, अंगे इत्यादि में बगल के नीचे और कली के ऊपर का भाग।

वि० चारों ओर का। जो चारों ओर हो।

चौबगली–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + अ० बगल] बगलबंदी।

चौबच्चा–संज्ञा पुं० [फा० चह = कूँआ + हिं० बच्चा] (१) कुंड। हौज़। छोटा गड्ढा जिसमें पानी रहता है। (२) वह गड्ढा जिसमें से धन गड़ा हो। उ०—किले के भीतर कई चौबच्चे भरे पड़े हैं।

चौबरदी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + बर्द = बैल] चार बैलों की गाड़ी।

चौबरसी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + बरस] (१) वह उत्सव या क्रिया आदि जो किसी घटना के चौथे बरस हो। (२) वह श्राद्ध आदि जो किसी के निमित्त उसके मरने के चौथे बरस हो।

चौबरा†–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + बखरा] फसल की वह बटाई जिसमें से जिमींदार चतुर्थांश लेता है।

चौबा–संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वेदी] [स्त्री० चौबाइन] (१) ब्राह्मणों की एक जाति वा शाखा। (२) मथुरा का पंडा। दे० "चौबे"।

चौबाइन–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौबे] चौबे की स्त्री।

चौबाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + बाई = हवा] (१) चारों ओर से बहनेवाली हवा। (२) अफवाह। किंवदंती। उड़ती खबर। (३) धूमधाम की चर्चा।

चौबाछा–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + बाछना = कर वा चंदा वसूल करना] एक प्रकार का कर जो दिल्ली के बादशाहों के समय में लगता था। यह कर चार वस्तुओं पर लगता था—पाग (प्रति मनुष्य), ताग (करधनी अर्थात् प्रति बालक), कूरी (अलाव या कौड़ा, अर्थात् प्रति घर), और पूँछी (प्रति चौपाया)।

चौबार–संज्ञा पुं० दे० "चौबारा"।

चौबारा–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + बार = द्वार] (१) कोठे के ऊपर की वह कोठरी जिसके चारों ओर दरवाज़े हों। बँगला। बालाखाना। (२) खुली हुई बैठक। लोगों के बैठने उठने का एक ऐसा स्थान जो ऊपर से छाया हो पर चारों ओर खुला हो।

क्रि० वि० [हिं० चौ = चार + बारा = दफा] चौथी दफ़ा। चौथी बार।

चौबिस†–वि० दे० "चौबीस"।

चौबीस–वि० [सं० चतुर्विंशत्, प्रा० चउवीसा] जो गिनती में बीस और चार हो। बीस से चार अधिक।

संज्ञा पुं० बीस से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—२४।

चौबीसवाँ–वि० [हिं० चौबीसवाँ] क्रम में जिसका स्थान तेइसवें के आगे हो। जिसके पहले तेईस और हों।

चौबे–संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वेदी, प्रा० चउब्वेदी, हिं० चउबेजी] [स्त्री० चौबाइन] ब्राह्मणों की एक जाति वा शाखा।

विशेष—मथुरा के पंडे सब चौबे कहलाते हैं।

चौबोला—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + बोल] एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ८ और ७ के विश्राम से १५ मात्राएँ होती हैं। अंत में लघु गुरु होता है। उ०—रघुबर तुम सों विनती करौं। कीजै सोई जाते तरौं। भिखारीदास ने इसके दुगने को चौबोला मान कर १६ और १४ मात्राओं पर यति मानी है।

चौभड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + दाढ़] दाढ़ का वह चौड़ा, चिपटा और गड्ढेदार दाँत जिससे आहार कूँचते वा चबाते हैं।

चौमंज़िला—वि० [हिं० चौ = चार + फ़ा० मंजिल] चार मरातिब या खंडोंवाला (मकान आदि)।

चौमसिया—वि० [हिं० चौ + मास] चार महीने का। वर्षा के चार महीनों में होनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) वह हलवाहा जो चार महीने के लिये नौकर रखा गया हो।

संज्ञा पुं० [हिं० चार + माशा] चार माशे का बाट। चार माशे तौल का बटखरा।

चौमहला—वि० [हिं० चौ + महल] चार खंडों का। चार मरातिब का (मकान)।

चौमार्ग†*—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्मार्ग] चौरस्ता। चौमुहानी।

चौमास—संज्ञा पुं० दे० "चौमासा"।

चौमासा—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्मास] (१) वर्षा काल के चार महीने आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन। चातुर्मास। (२) वर्षाऋतु के संबंध की कविता। वर्षा के चार महीनों के वर्णन की कविता। (३) खरीफ की फसल उगने का समय। (४) वह खेत जो वर्षा काल के चार महीनों (असाढ़, सावन, भादों और कुवार) में जोता गया हो। (५) दे० "चौमसिया"।

चौमासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौमासा + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का रंगीन वा चलता गाना जो प्रायः बरसात में गाया जाता है।

चौमुख—क्रि वि० [हिं० चौ = चार + मुख = ओर] चारों ओर। चारों तरफ। उ०—चमचमात चामीकर मंदिर चौमुख चित्त विचारू।—रघुराज।

चौमुखा—वि० [हिं० चौ = चार + मुख + आ = (प्रत्य०)] [स्त्री० चौमुखी] चार मुहोंवाला। जिसके मुँह चारों ओर हों।

यौ०—चौमुखा दीया = वह दीपक जिसमें चारों ओर चार बत्तियाँ जलती हों।

मुहा०—चौमुखा दीया जलाना = दिवाला निकालना।

विशेष—लोग कहते हैं कि प्राचीन समय में जब किसी महाजन को अपने दिवाले की सूचना देनी होती थी तो वह अपनी दूकान पर चौमुखा दीया जला देता था।

चौमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + फा० मुहाना] चौराहा। चौरस्ता। चतुष्पथ।

चौमेंड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + मेंड़ + आ (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ पर चार मेंड़ या सीमाएँ मिलती हों।

चौमेखा—वि० [हिं० चौ = चार + मेख] चार मेखोंवाला। जिसमें चार मेखें या कीलें हों।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का कठोर दंड जिसमें अपराधी को जमीन पर चित या पट लेटा कर उसके हाथों और पैरों में मेखें ठोंक देते थे।

चौरंग—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + रंग = प्रकार, ढब] तलवार का एक हाथ। तलवार चलाने का एक ढब जिससे चीजें कट कर चार टुकड़े हो जाती हैं। खड्ग-प्रहार का एक ढंग।

वि० तलवार की वार से कई टुकड़ों में कटा हुआ। खड्ग के आघात से खंड खंड। उ०—कहूँ तेग को घालिकै, करहिं टूक चौरंग। सुनि, लखि पितु विसुनाथ नृप, होत मनहिं मन दंग।

क्रि० प्र०—करना।—काटना।

मुहा०—चौरंग उड़ाना या काटना = (१) तलवार आदि से किसी चीज़ को बहुत सफ़ाई से काटना। (२) एक में बँधे हुए ऊँट के चारों पैरों को तलवार के एक हाथ में काटना।

विशेष—देशी रियासतों तथा अन्य स्थानों में वीरता की परीक्षा के लिये ऊँट के चारों पैर एक साथ बाँध दिए जाते हैं। ऊँट के पैर की नलियाँ बहुत मजबूत होती हैं; इस लिये जो उन चारों पैरों को एक ही हाथ में काट देता है वह बहुत वीर समझा जाता है।

चौरंगा—वि० [हिं० चौ + रंग] [स्त्री० चौरंगी] चार रंगों का। जिसमें चार रंग हों।

चौरंगिया—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + रंग] मालखंभ की एक कसरत जिसमें बेंत को एक जंघे पर बाहर की ओर से लेकर पिंडरी को छुलाते हुए उसी पैर के अँगूठे में अँटकाते हैं और फिर दूसरे जंघे से उसे भीतर लेकर पिंडरी से बाहर करते हुए दूसरे अँगूठे में अँटकाते हैं।

चौर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। दूसरों की वस्तु चुरानेवाला। (२) एक गंध-द्रव्य। (३) चौर पुष्पी।

संज्ञा पुं० [सं० चुंडा] ताल जिसमें बरसाती पानी बहुत दिन तक रुका रहे। खादर।

चौरस—वि० [हिं० चौ = चार + (एक) रस = समान] (१) जो ऊँचा नीचा न हो। समथल। हमवार। बराबर। जैसे, चौरस मैदान। (२) चौपहल। वर्गात्मक।

संज्ञा पुं० (१) ठठेरों का एक औजार जिससे वे खुरच कर बरतन चिकने करते हैं। (२) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और एक यगण होता है। इसको "तनुमध्या" भी कहते हैं। उ०—तू यों किमि आली। घूमै मतवाली।

चौरसा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + रस] (१) ठाकुर जी की शय्या की चद्दर। (२) चार रुपए भर का बाट। (सुनार)
वि० जिसमें चार रस हों। चार रसोंवाला।

चौरसाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौरसाना] (१) चौरसाने की क्रिया। (२) चौरसाने का भाव। (३) चौरसाने की मज़दूरी।

चौरसाना—क्रि० स० [हिं० चौरस] चौरस करना। बराबर करना। हमवार करना।

चौरसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौरस] (१) बाँह पर पहनने का एक चौखूँटा गहना। सीतापुर आदि ज़िलों में इसका प्रचार है। (२) चौरस करने का औज़ार। (३) अन्न रखने का कोठा वा बखार।

चौरस्ता—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + फ़ा० रास्ता] चौराहा।

चौरहा—संज्ञा पुं० दे० "चौराहा"।

चौरा—संज्ञा पुं० [सं० चतुर, प्रा० चउर] [स्त्री० अल्प० चौरी] (१) चौतरा। चबूतरा। बेदी। (२) किसी देवी, देवता, सती, भूत महात्मा, भूत प्रेत आदि का स्थान जहाँ बेदी या चबूतरा बना रहता है। जैसे, सती का चौरा। उ०—पेट को मारि मरैं पुनि भूत ह्वै चौरा पुजावत देव समानै।—रघुराज। (३) चौपाल। चौबारा। (४) लोबिया। बोड़ा। अरवाँ। रवाँस। उ०—गेहूँ चाँवर चना उरद जव मूँग मौठतिल। चौरा मटर मसूर तुवर सरसों मड़वा मिल।—सूदन। (५) वह बैल जिसकी पूँछ सफ़ेद हो।
संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री का एक नाम।

चौराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + राई] (१) चौलाई नाम का साग। उ०—चौराई तो राई तोरई सुरइ मुरब्बा भारी जी।—विश्राम। (२) अगरवाले बनियों की एक रीति जिसमें किसी उत्सव पर किसी को निमंत्रण देते समय उसके द्वार पर हलदी में रँगे पीले चावल रख आते हैं। (३) एक चिड़िया जिसकी गरदन मटमैली, डैने चितकबरे, दुम नीचे सफेद और ऊपर लाल और चोंच पीली होती है। पैर भी पीले ही होते हैं।

चौरानबे—वि० [सं० चतुर्नवति, प्रा० चउरणवइ] नब्बे से चार अधिक।
संज्ञा पुं० नब्बे से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—९४।

चौरासी—वि० [सं० चतुराशीति, प्रा० चउरासीइ] अस्सी से चार अधिक। जो संख्या में अस्सी और चार हों।
संज्ञा पुं० (१) अस्सी से चार अधिक की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—८४। (२) चौरासी लक्ष योनि। (पुराणों के अनुसार जीव चौरासी लाख प्रकार के माने गए हैं) उ०—आकर चारि लाख चौरासी। जीव चराचर जल थल वासी।—तुलसी।
मुहा०—चौरासी में पड़ना वा भरमना = निरंतर बार बार कई प्रकार के शरीर धारण करना। आवागमन के चक्र में पड़ना। उ०—चौरासी पर नाचत अस उपदेसत छबिधारी।—देवस्वामी।
(३) एक प्रकार का घुँघरू। पैर में पहनने का घुघुरुओं का गुच्छा (इसे नाचते समय पहनते हैं।) उ०—मानिक जड़े सीस औ काँधे। चँवर लाग चौरासी बाँधे।—जायसी। (४) पत्थर काटने की एक प्रकार की टाँकी। (५) एक प्रकार की रुखानी।

चौराष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] षाड़व जाति का एक संकर राग जो प्रातःकाल गाया जाता है।

चौराहा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + राह = रास्ता] वह स्थान जहाँ चार रास्ते वा सड़कें मिलती हों। वह स्थान जहाँ से चार तरफ़ को चार रास्ते गए हों। चौरस्ता। चौमुहानी।

चौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौरा] छोटा चबूतरा। बेदी। उ०—रची चौरी आप ब्रह्मा चरित खंभ लगाइ कै।—सूर।
संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक पेड़ जो हिमालय पर तथा रावी नदी के किनारे के जंगलों में होता है। मदरास और मध्य प्रदेश में भी यह पेड़ मिलता है। इसकी लकड़ी चिकनी और बहुत मज़बूत होती है और मेज़, कुरसी, अलमारी, तसबीर के चौखटे आदि बनाने के काम में आती है। इसकी छाल दवा के काम में आती है (२) एक पेड़ जिसकी छाल से रंग बनता और चमड़ा सिझाया जाता है।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चोरी। (२) गायत्री का एक नाम।

चौरेठा—संज्ञा पुं० [हिं० चाउर + पीठा] पानी के साथ पीसा हुआ चावल।

चौर्य्य—संज्ञा पुं० [सं०] चोरी। स्तेय।

चौल—संज्ञा पुं० [सं०] चोल नामक देश विशेष। "दे० चोल"।

चौलकर्म—[सं०] चूड़ाकर्म। मुंडन।

चौलड़ा—वि० [हिं० चौ + लड़] जिसमें चार लड़ें हों। (माला आदि)

चौला—संज्ञा पुं० [देश] लोबिया। बोड़ा।

चौलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + राई = दाने] एक पौधा जिसका साग खाया जाता है। यह हाथ भर के करीब ऊँचा होता है। इसकी गोल पत्तियाँ सिरे पर चिपटी होती हैं और डंठलों का रंग लाल होता है। यह पौधा वास्तव में छोटी जाति का मरसा है। इस में भी मरसे के समान मंजरियाँ लगती हैं जिन में राई के इतने बड़े काले दाने पड़ते हैं। वैद्यक में चौलाई हलकी, शीतल, रूखी, पित्त-कफ-नाशक, मल-मूत्र-निःसारक, विषनाशक और दीपन मानी जाती है। उ०—चौलाई लालहा अरु पोई। मध्य मेलि निबुआन निचोई।—सूर।
पर्य्या०—तंडुलीय। मेघनाद। कांडेर। तंडुलेरक। भंडीर। विषघ्न। अल्पमारिष, इत्यादि।

चौलावा†–संज्ञा पुं०[हिं० चौ + लाना = लगाना] ऐसा कुआँ जिसमें एक साथ चार मोट चल सकें।

चौलि–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

चौलुक्य†–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चुलुक ऋषि के वंशज। (२) चालुक्य।

चौली–संज्ञा पुं० [देश०] बोड़ा।

चौवन–वि० [सं० चतुःपञ्चाशत्, पा० चतुपन्नासो, प्रा० चउवण्ण] पचास से चार अधिक। जो गिनती में पचास से चार ऊपर हो।

संज्ञा पुं० पचास से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—५४।

चौवा–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार] (१) हाथ की चार उँगलियों का समूह। (२)अँगूठे को छोड़ हाथ की बाकी चार उँगलियों की पंक्ति में लपेटा हुआ तागा। जैसे, एक चौवा तागा।

मुहा०—चौवा करना = चार उँगलियों में तागा आदि लपेटना।

(३) हाथ की चार उँगलियों का विस्तार। चार अंगुल की माप। (४) ताश का वह पत्ता जिसमें चार बूटियां हों।

† संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पाद] चौपाया। गाय बैल आदि पशु।

चौवाई–संज्ञा स्त्री० दे० "चौबाई"।

चौवालीस–वि० [सं० चतुश्चत्वारिंशत, पा० चतुचत्तालीसति, प्रा० चउव्वालीसइ] चालीस से चार अधिक। जो गिनती में चार ऊपर चालीस हो।

संज्ञा पुं० चालीस से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—४४।

चौस–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + स (प्रत्य०)] वह खेत जो चार बार जोता गया हो। चार बार जोता हुआ खेत।

† संज्ञा पुं० [देश०] बुकनी। चूर। चूर्ण।

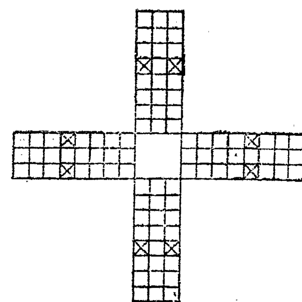
चौसर–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + सर = बाजी अथवा सं० चतुस्सारि] (१) एक प्रकार का खेल जो बिसात पर चार रंगों की चार चार गोटियों और तीन पासों से दो मनुष्यों में खेला जाता है। दोनों खेलनेवाले दो दो रंगों की आठ आठ गोटियां ले लेते हैं और बारी बारी से पाँसे फेंकते हैं। पांसों के दांव आने पर कुछ विशेष नियमों के अनुसार गोटियां चली जाती हैं। चौपड़। नर्दबाजी।

विशेष—यह खेल जब पाँसों के बदले सात कौड़ियां फेंक कर खेला जाता है तब उसे पचीसी कहते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।

(२) इस खेल की बिसात जो प्रायः कपड़े की बनी होती है। इसका मध्य भाग थैली का सा होता है जिसमें खेल की समाप्ति पर गोटियाँ भर कर रक्खी जाती हैं। मध्य भाग के चारों सिरों की तरफ चार लंबे चौकोर टुकड़े सिले रहते हैं जिनमें से हर एक पर लंबाई में आठ आठ चौकोर खानों की तीन तीन पंक्तियां होती हैं।

क्रि० प्र०—बिछाना।



यौ०—चौसर का बाजार = चौक बाजार। वह स्थान जिसके चारों ओर एक ही तरह के चार बाजार हों।

संज्ञा पुं० [चतुस्स्रक्] चौलड़ी। चार लड़ों का हार। उ०—(क) चौसर हार अमोल गरे को देहु न मेरी माई।—सूर। (ख) और भांति भये बए चौसर चंदन चंद। पति बिन अति पारत विपति मारत मारुत मंद।—बिहारी।

चौसरी–संज्ञा स्त्री० दे० "चौसर"।

चौसिंघा–वि० [हिं० चौ = चार + सींग] चार सींगोंवाला। जिसके चार सींग हों। जैसे, चौसिंघा बकरा।

संज्ञा पुं० दे० "चौसिंहा"।

चौसिंहा–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + सींव = सीमा] वह स्थान जहां चार गांवों की सीमाएँ मिलती हों।

चौहट†*–संज्ञा पुं० दे० "चौहट्टा"। उ०—चौहट्ट हाट समान वेद चहुँ जानिये। विविध भांति की वस्तु बिकत तहँ मानिये।—विश्राम।

चौहट्ट†*–संज्ञा पुं० दे० "चौहट्टा"। उ०—चौहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहु बिधि बना।—तुलसी।

चौहट्टा–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + हाट] (१) वह स्थान जिसके चारों ओर दूकानें हों। चौक। (२) चौमुहानी। चौरस्ता। चौराहा।

चौहड़–संज्ञा पुं० दे० "चौभड़"।

चौहत्तर–वि० [सं० चतुःसप्ततिः, प्रा० चौहत्तरि] सत्तर से जो चार अधिक हो। जो गिनती में सत्तर और चार हो।

संज्ञा पुं० तिहत्तर के बाद की संख्या। सत्तर से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—७४।

चौहद्दी–संज्ञा स्त्री० [सं० चातुर्भद्र, प्रा० चाउहद्द + ई (प्रत्य०)] एक अवलेह जो जायफल, पिप्पली, काकड़ासींगी और पुष्करमूल को पीस कर शहद में मिलाने से बनता है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + फा० हद] चारों ओर की सीमा।

चौहरा–वि० [हिं० चौ = चार + हर (प्रत्य०)] (१) जिसमें चार फेरे या तहें हों। चार परतवाला। जैसे, चौहरा कपड़ा। † (२) चौगुना। जो चार बार हो। उ०—दोहरे तिहरे चौहरे भूषण जाने जात।—बिहारी।

संज्ञा पुं० वह पत्ता जिसमें पान के बीड़े लपेटे हों। चौपड़ा।

चौहलका—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + फा० हलका ?] गलीचे की बुनावट का एक प्रकार।

चौहान—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + भुजा] अग्निकुल के अंतर्गत क्षत्रियों की एक प्रसिद्ध शाखा जिसके मूल-पुरुष के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि उसके चार हाथ थे और उसकी उत्पत्ति राक्षसों का नाश करने के लिये वशिष्ठजी के यज्ञकुंड से हुई थी। प्रायः एक हजार वर्ष पहले मालवे और राजपूताने में इस जाति के राजाओं का राज्य था और पीछे इसका विस्तार दिल्ली तक हो गया था। भारत के प्रसिद्ध अंतिम सम्राट् पृथ्वीराज इसी चौहान जाति के थे। कुछ लोगों का यह भी अनुमान है कि इस जाति के मूल-पुरुष माणिक्य नामक एक राजा थे, जो लगभग ८०० सन् ईस्वी में अजमेर में राज्य करते थे। इस जाति के क्षत्रिय प्रायः सारे उत्तरीय भारत में फैले हुए हैं।

चौहैं—क्रि० वि० [देश०] चारों ओर। चारों तरफ़। उ०—राम कहै चकित सुरैलैं चहुँ अल्लैं त्यों सखी सकरि भल्लैं चौहैं चकित मसान को।—राम कवि।

च्यवन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूना। झरना। टपकना। (२) एक ऋषि का नाम जिनके पिता भृगु और माता पुलोमा थीं। इनके विषय में कथा है कि जब ये गर्भ में थे तब एक राक्षस इनकी माता को अकेली पा हर ले जाना चाहता था। यह देख च्यवन गर्भ से निकल आए और उस राक्षस को इन्होंने अपने तेज से भस्म कर डाला। ये आप से आप गर्भ से गिर पड़े थे इसी से इनका नाम च्यवन पड़ा। एक बार एक सरोवर के किनारे तपस्या करते करते इन्हें इतने दिन हो गए कि इनका सारा शरीर वल्मीक (बेमौट, दीमक की मिट्टी) से ढक गया, केवल चमकती हुई आँखें खुली रह गईं। राजा शर्याति की कन्या सुकन्या ने इनकी आँखों को कोई अद्भुत वस्तु समझ उनमें काँटे चुभा दिए। इस पर च्यवन ऋषि ने क्रुद्ध होकर राजा शर्याति की सारी सेना और अनुचर-वर्ग का मल-मूत्र रोक दिया। राजा ने घबरा कर च्यवन ऋषि से क्षमा माँगी और उनकी इच्छा देख अपनी कन्या सुकन्या का ऋषि के साथ व्याह कर दिया। सुकन्या ने भी उस वृद्ध ऋषि से विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं की। विवाह के पीछे एक दिन अश्विनीकुमारों ने आकर सुकन्या से कहा, "बूढ़े पति को छोड़ दो, हम लोगों से विवाह कर लो"। सुकन्या जब किसी प्रकार सम्मत न हुई तब अश्विनीकुमारों ने प्रसन्न होकर च्यवन ऋषि को बूढ़े से सुंदर युवक कर दिया। इसके बदले में च्यवन ऋषि ने राज शर्याति के यज्ञ में अश्विनीकुमारों को सोमरस प्रदान किया। इंद्र ने इस पर आपत्ति की। जब इन्होंने नहीं माना तब इंद्र ने इन पर वज्र चलाया। च्यवन ऋषि ने इस पर क्रुद्ध होकर एक महा विकराल असुर उत्पन्न किया जिस पर इंद्र भयभीत होकर इनकी शरणागत आया।

च्यवनप्राश—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद में एक प्रसिद्ध अवलेह जिसके विषय में यह कथा है कि च्यवन ऋषि का वृद्धत्व और अंधत्व नाश करने के लिये अश्विनीकुमारों ने इसे बनाया था। इसका वर्णन इस प्रकार है—पके हुए बड़े ताजे ५०० आँवले लेकर मिट्टी के पात्र में पका कर रस निकाले और इस रस में ५०० टके भर मिस्री डाल कर चाशनी बनावे। (यदि संभव हो तो इसे चाँदी के बरतन में धरे नहीं तो उसी मिट्टी के पात्र में ही रहने दे।) फिर उसमें मुनक्का, अगर, चंदन, कमलगट्टा, इलायची, हड़ का छिलका, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभ, गुरच, काकड़ासिंगी, पुष्करमूल, कचूर, अडूसा, विदारीकंद, बरियारा, जीवंती, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोना, कटियाली, बेल की गिरी, अरलू, कुंभेर और पाठा—ये सब चीजें टके टके भर मिलावे और ऊपर से मधु ६ टके भर, पिप्पली २ टके भर, तज २ टंक, तेजपात २ टंक, नागकेसर २ टंक, इलायची २ टंक और बंसलोचन २ टंक इन सब का चूर्ण कर डाले। फिर सबको मिला कर रख ले। इससे स्वरभंग, यक्ष्मा, शुक्रदोष आदि दूर होते हैं तथा स्मृति, कांति, इंद्रिय-सामर्थ्य, वल वीर्य्य आदि की अत्यंत वृद्धि होती है।

च्युत—वि० [सं०] (१) टपका हुआ। गिरा हुआ। चुवा हुआ। झड़ा हुआ। (२) गिरा हुआ। पतित। (३) भ्रष्ट। (४) अपने स्थान से हटा हुआ। (५) विमुख। पराङ्मुख। जैसे, कर्त्तव्य से च्युत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

च्युतमध्यम—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो प्रीति नामक श्रुति से आरंभ होता है। इसमें दो श्रुतियाँ होती हैं।

च्युतषड्ज—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो मंदा नामक श्रुति से आरंभ होता है। इसमें भी दो श्रुतियाँ होती हैं।

च्युतसंस्कारता—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्यदर्पण के मत से काव्य का वह दोष जो व्याकरण-विरुद्ध पदविन्यास से होता है। काव्य का व्याकरण-संबंधी दोष। (यह दोष प्रधान दोषों में है)

च्युतसंस्कृति—संज्ञा स्त्री० दे० "च्युत-संस्कारता"।

च्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पतन। स्खलन। झड़ना। गिरना। (२) गति। उपयुक्त स्थान से हटना। (३) चूक। कर्त्तव्य-विमुखता। (४) अभाव। कसर। (५) गुदद्वार। (५) भग।

च्यूड़ा—संज्ञा पुं० दे० "चिउड़ा"।

च्यूत—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़ वा फल।

———:o:———

छ

छ–हिंदी वर्णमाला में व्यंजनों के स्पर्श नामक भेद के अंतर्गत चवर्ग का दूसरा व्यंजन। इसके उच्चारण का स्थान तालु है। इसके उच्चारण अघोष और महाप्राण नामक प्रयत्न लगते हैं।

छंग*–संज्ञा पुं० [सं० उत्संग, प्रा० उच्छंग] गोद। अंक। उ०—खर को कहा अरगजा लेपन मर्कट भूषण अंग। गज को कहा न्हवाये सरिता बहुरि धरै खहि छंग।

छंगा–वि० [हिं० छ + अंगुली] छ उँगलियोंवाला। जिसके एक पंजे में छ उँगलियाँ हों।

छँगुनिया*†–संज्ञा स्त्री० दे० "छगुनी"।

छँगुलिया, छँगुली–संज्ञा स्त्री० दे० "छगुनी"।

छंगू–वि० दे० "छंगा"।

छंछाल*–संज्ञा पुं० [हिं०] हाथी।

छंछोरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँछ + बरी] एक प्रकार का पकवान जो छाँछ में बनाया जाता है। उ०—डुभकौरी, मुँगछौरी, रिकवछ, इँडहर खीर, छँछोरी जी।—रघुनाथ।

छँटना–क्रि० अ० [सं० चटन = तोड़ना, छेदना] (१) कट कर अलग होना। किसी वस्तु के अवयवों का छिन्न होना। जैसे, पेड़ की डाल छँटना, सिर के बाल छँटना। (२) अलग होना। दूर होना। निकल जाना। जैसे, मैल छँटना। (३) समूह से अलग होना। तितर बितर होना। छितराना। जैसे, बादल छँटना, गोल के आदमियों का छँटना। (४) साथ छोड़ना। संग से अलग हो जाना।

मुहा०—छँटे छँटे फिरना वा रहना = दूर दूर रहना। साथ बचाना। कुछ संबंध वा लगाव न रखना।

(५) चुना जाना। चुन कर अलग कर लिया जाना। जैसे, इसमें से अच्छे अच्छे आम तो छँट गए हैं।

मुहा०—छँटा हुआ = चुना हुआ। चालाक। चतुर। धूर्त।

(६) साफ़ होना। मैल निकलना। जैसे, कुआँ छँटना, पेट छँटना। (७) क्षीण होना। दुबला होना। जैसे, बदन छँटना।

छँटवाना–क्रि० स० [हिं० छाँटना] (१) किसी वस्तु का व्यर्थ वा अधिक भाग कटवा देना। (२) बहुत सी वस्तुओं में से कुछ वस्तुओं को पृथक् कराना। चुनवाना। (३) कटवाना। छिलवाना।

छँटा–वि० [हिं० छानना] [स्त्री० छँटी] (पशु) जिसके पैर छाने गए हों। जिसके पिछले पैर बाँध कर उसे चरने के लिये छोड़ा जाय।

विशेष—यह शब्द प्रायः लद्दू घोड़ों गदहों आदि के लिये आता है।

छँटाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँटना] (१) छाँटने का काम। छिन्न करने का काम। अलग अलग करने का काम। बिलगाने का काम। (२) चुनाई। चुनने की क्रिया। (३) साफ़ करने का काम। (४) छाँटने की मज़दूरी।

छँटाना–क्रि० स० दे० "छँटवाना"।

छँटाव–संज्ञा पुं० [हिं० छाँटना] (१) छाँटन। (२) छाँटने का भाव और क्रिया।

छंडना*–क्रि० स० [हिं० छोड़ना] (१) छोड़ना। त्यागना। (२) अन्न को ओखली में डाल कर कूटना। छाँटना।
क्रि० अ० [सं० छर्दन] कै करना। वमन करना।

छँडरना–क्रि० अ० [सं० छिन्न] छिनकना। छेद का फैल कर वा दबाव से कट जाना।

छँड़ाना*†–क्रि० स० [हिं० छुड़ाना] छीनना। छुड़ा कर ले लेना। उ०—(क) लेहु छँड़ाइ सीय कहँ कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ।—तुलसी। (ख)। सखन संग हरि जेवँत जात। ......सुबल सुदामा श्री दामा सँग सब मिलि भोजन रुचि सों खात। ग्वालन करते कौर छँडावत मुख लै मेलि सराहत जात।—सूर।

छँडुआ†–वि० [हिं० छाँड़ना] (१) जो छोड़ा दिया गया हो। मुक्त। (२) अदंड्य। जो दंड आदि से मुक्त हो। (३) जिसके ऊपर किसी प्रकार का दबाव वा शासन न हो।
संज्ञा पुं० (१) वह पशु जो किसी देवता के उद्देश से छोड़ा गया हो। देवता को उत्सर्ग किया हुआ पशु। (२) ब्याज, कर वा ऋण आदि का वह भाग जिसे पानेवाले ने छोड़ दिया हो। छूट।

छंद–संज्ञा पुं० [सं० छंदस्] (१) वेदों के वाक्यों का वह भेद जो अक्षरों की गणना के अनुसार किया गया है। इसके मुख्य सात भेद हैं—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति त्रिष्टुप् और जगती। इनमें प्रत्येक के आर्षी, दैवी, आसुरी, प्राजापत्या, याजुषी, साम्नी, आर्ची और ब्राह्मी नामक आठ आठ भेद होते हैं। इनके परस्पर सम्मिश्रण से अनेक संकर जाति के छंदों की कल्पना की गई है। इन मुख्य सात छंदों के अतिरिक्त अतिजगती, शकारी, अतिशकारी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति, अतिधृति, कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संस्कृति, अभिकृति और उत्कृति नाम के छंद भी हैं जो केवल यजुर्वेद के यजुओं में होते हैं। वैदिक पद्य के छंदों में मात्रा अथवा लघु गुरु का कुछ विचार नहीं किया गया है; उनमें छंदों का निश्चय केवल उनके अक्षरों की संख्या के अनुसार होता है। (२) वेद। (३) वह वाक्य जिस में वर्ण वा मात्रा की गणना के अनुसार विराम आदि का नियम हो। यह दो प्रकार का होता है—वर्णिक और मात्रिक। जिस छंद के प्रति पाद में अक्षरों की संख्या और लघु गुरु के क्रम का नियम होता है

वह वर्णिक वा वर्णवृत्त और जिसमें अक्षरों की गणना और लघु गुरु के क्रम का विचार नहीं, केवल मात्राओं की संख्या का विचार होता है वह मात्रिक छंद कहलाता है । रोला, रूपमाला, दोहा, चौपाई इत्यादि मात्रिक छंद हैं । वंशस्थ, इंद्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, मालिनी, मंदाक्रांता इत्यादि वर्णवृत्त हैं । पादों के विचार से वृत्तों के तीन भेद होते हैं, समवृत्ति, अर्द्धसमवृत्ति और विषमवृत्ति । जिस वृत्त में चारों पाद समान हों वह समवृत्ति, जिसमें वे असमान हों वह विषमवृत्ति और जिसके पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरण समान हों वह अर्द्ध समवृत्ति कहलाता है । इन भेदों के अनुसार संस्कृत और भाषा के छंदों के अनेक भेद होते हैं । (४) वह विद्या जिसमें छंदों के लक्षण आदि का विचार हो । यह छ वेदांगों में मानी गई है । इसे पाद भी कहते हैं । (५) अभिलाषा । इच्छा । (६) स्वेराचार । स्वेच्छाचार । मनमाना व्यवहार । (७) बंधन । गांठ । (८) जाल । संघात । समूह । उ०—बीज के वृंद में है तम छंद कलिंद जा बुंद लसे दरसानी । (९) कपट । छल । मकर । उ०—(क) राजबार असगुणी न चाही जेहि दूना कर खोज । यही छंद ठग विद्या छला सो राजा भोज ।—जायसी । (ख) कहा कहति तू बात अयानी । वाके छंद भेद को जानै मीन कबहुँ धौं पीवत पानी ।—सूर ।

मुहा०—छल छंद = कपट । धोखेबाजी । चालबाजी । उ०—छोभ छल छंदन को बाढ़ै पाप द्वंदन को फिकिर के फंदन को फारिहै पै फारिहै ।—पद्माकर ।

(१०) चाल । युक्ति । कला । चालबाजी । उ०—(क) योगिहि बहुत छंद औराहीं । बूँद सुआती जैसे पानी ।—जायसी । (ख) योगी सबै छंद अस खेला । तू भिखार केहि माहँ अकेला ।—जायसी । (ग) सुनि नंद नंद प्यारे तेरे मुख चंद सम चंद पै न भयो कोटि छंद करि हारयो है ।—केशव । (११) रंग ढंग । आकार । चेष्टा । उ०—गिरगिट छंद धरै दुख तेता । खन खन पीत रात खन सेता ।—जायसी । (१२) अभिप्राय । मतलब । (१३) एकांत । निर्जन । (१४) विष । ज़हर । (१५) ढक्कन । आवरण । (१६) पत्ती ।

संज्ञा पुं० [सं० छंदक] एक आभूपण जो हाथ में चूड़ियों के बीच में पहना जाता है ।

छंदक—वि० [सं०] (१) रक्षक । (२) छली ।

संज्ञा पुं० (१) कृष्णचंद्र का एक नाम । (२) बुद्धदेव के सारथी का नाम । (३) छल ।

छंदज—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक देवता । ऐसे देवता जिनकी स्तुति वेदों में है । वसु आदि देवता ।

छंदना—क्रि० अ० [सं० छंद = बंधन] पैरों में रस्सी लगा कर बाँधा जाना ।

छंदपातन—संज्ञा पुं० [सं०] बनावटी साधु । साधु-वेषधारी ठग । छली । धोखेबाज ।

छंदबंद—संज्ञा पुं० [हिं० छंद + बंद] छल । कपट । धोखा ।

छंदस्कृत—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० छंदस्कृता] (१) वेद जिसमें गायत्री आदि छंद हैं । (२) वेद मंत्र ।

छंदःस्तुभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैदिक देवता जिनकी स्तुति वेदों में की गई है । (२) ऋषि जो वैदिक छंदों द्वारा देवताओं की स्तुति करें । (३) सूर्य्य का सारथी । अरुण ।

छंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छंद = बंधन] एक आभूपण जिसे स्त्रियां हाथों में कलाई के पास पहनती हैं । यह गोल कंगन की तरह का होता है जिस पर रवे की जगह गोल चिपटी टिकिया बैठाई रहती है । यह कंगन और पछेले के बीच में पहना जाता है ।

वि० [हिं० छंद] कपटी । धोखेबाज । छली ।

छंदेली—संज्ञा स्त्री० दे० "छंदी" ।

छंदोग—संज्ञा पुं० [सं०] सामगान करनेवाला पुरुष । सामग । सामवेदी ।

छंदोगपरिशिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के गोभिल सूत्र का परिशिष्ट । यह कात्यायन जी का बनाया हुआ है ।

छंदोदेव—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार मतंग नामक चांडाल जिनकी उत्पत्ति नापित पिता और ब्राह्मणी माता से हुई थी । इन्हों ने ब्राह्मणत्व लाभ करने के लिये जब बड़ी तपस्या की तब इंद्र ने इन्हें वर दिया कि तुम कामरूप विहंग होगे । तुम्हारा नाम छंदोदेव होगा और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सब वर्णों की स्त्रियां तुम्हारी पूजा करेंगी ।

छंदोबद्ध—वि [सं०] श्लोक-बद्ध । जो पद्य के रूप में हो । जैसे, छंदोबद्ध ग्रंथ ।

छंदोभंग—संज्ञा पुं० [सं०] छंद रचना का एक दोष जो मात्रा वर्ण आदि की गणना वा लघु गुरु आदि नियम का पालन न होने के कारण होता है ।

छंदोम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वादशाह याग के अंतर्गत एक कृत्य का नाम । यह आठवें, नवें और दसवें दिन तीन दिन तक होता था और प्रति दिन उन तीन स्तोमों का गान होता था जो इसी नाम से विख्यात हैं । इस यज्ञ का फल कोई कोई राज्यप्राप्ति मानते हैं । (२) वे तीन स्तोम जिनका गान छंदोम में होता था ।

छ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काटना । (२) ढांकना । आच्छादन । (३) घर । (४) खंड । टुकड़ा ।

वि० [सं०] (१) निर्मल । साफ़ । (२) तरल । चंचल ।

वि० [सं० षट्, प्रा० छ] गिनती में पाँच से एक अधिक । जो संख्या में पाँच और एक हो ।

संज्ञा पुं० (१) वह संख्या जो पांच से एक अधिक हो । (२)

उस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६ ।

छई—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "क्षयी" ।

छकड़ा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ शकट, प्रा॰ सगडो, छगडो] बोझ लादने की दुपहिया गाड़ी जिसे बैल खींचते हैं । बैलगाड़ी । सग्गड़ । लढ़ी ।

क्रि॰ प्र॰—चलना ।—चलाना ।

मुहा॰—छकड़ा लादना = छकड़े में बोझ वा सामान भरना ।

वि॰ जिसका ढाँचा ढीला हो गया हो । जिसके अंजर पंजर ढीले हो गए हों । टूटा फूटा ।

क्रि॰ प्र॰—होना ।

छकड़िया—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ छ + करी] वह पालकी जिसे छ कहार उठाते हों ।

छकड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ छ + कड़ी] (१) छ का समूह । (२) वह पालकी जिसे छ कहार उठाते हों । छकड़िया । (३) चारपाई बुनने का एक प्रकार जिसमें छ बाध उठाए और छ बैठाए जाते हैं ।

वि॰ जिसमें छ अवयव हों । छ से बना हुआ ।

छकना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ चकन = तृप्त होना] [संज्ञा छाक] (१) खा पीकर अघाना । तृप्त होना । अफरना । उ॰—उसने खूब छक कर खाया ।

संयो॰ क्रि॰—जाना ।

(२) तृप्त होकर उन्मत्त होना । मद्य आदि पीकर नशे में चूर होना । उ॰—(क) ते छकि नव रस केलि करेहीं । जोग लाइ अधरन रस लेहीं ।—जायसी । (ख) केशवदास घर घर नाचत फिरहिं गोप एक रहे छकि तें मरेई गुनियत है ।—केशव ।

क्रि॰ अ॰ [सं॰ चक = भ्रांत] (१) चकराना । अचंभे में आना । (२) हैरान होना । तंग होना । दिक होना । उ॰—वहाँ जाकर हम खूब छके, कहीं कोई भी नहीं था ।

छकरी—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "छकड़ी" ।

छकाछक—वि॰ [हिं॰ छकना] (१) तृप्त । अघाया हुआ । संतुष्ट । (२) परिपूर्ण । भरा हुआ ।

क्रि॰ प्र॰—करना ।

(३) उन्मत्त । नशे में चूर । मदमत्त ।

छकाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ छकना] (१) खिला पिला कर तृप्त करना । खूब खिलाना पिलाना ।

संयो॰ क्रि॰—देना ।

(२) मद्य आदि से उन्मत्त करना ।

क्रि॰ स॰ [सं॰ चक = भ्रांत] अचंभे में डालना । चक्कर में डालना ।

(३) हैरान करना । दिक करना । तंग करना । उ॰—तुमने तो कल हमें खूब छकाया ।

संयो॰ क्रि॰—डालना ।

छकुर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ छ + कूरा] फसल की वह बँटाई जिसमें उपज का छठा भाग जमींदार पाता है ।

छक्का—संज्ञा पुं॰ [सं॰ षट्क, प्रा॰ छक्को] (१) छ का समूह वा वह वस्तु जो छ अवयवों से बनी हो । (२) जूए का एक दाँव जिसमें कौड़ी वा चित्ती फेंकने से छ कौड़ियाँ चित पड़ें । यही दावँ दो, वा दस, वा चौदह कौड़ियों के चित्त पड़ने पर माना जाता है ।

मुहा॰—छक्का पंजा = दाँव पेंच । चालबाजी । छक्का पंजा भूलना = युक्ति काम न करना । चाल न चलना । कर्त्तव्य न सुझाई पड़ना । बुद्धि का काम न करना ।

(३) पासे का एक दावँ जिसमें पासा फेंकने से छ बिंदियाँ ऊपर पड़ें ।

क्रि॰ प्र॰—डालना ।—पड़ना ।—फेंकना ।

(४) जुआ ।

क्रि॰ प्र॰—खेलना ।—फेंकना ।—डालना ।

(५) वह ताश जिसमें छ बूटियाँ हों । (६) पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और छठे मन का समूह । होशहवाश । सुध । संज्ञा । औसान ।

मुहा॰—छक्के छूटना = (१) होशहवास जाता रहना । होश उड़ना । बुद्धि का काम न करना । स्तब्ध होना । (२) हिम्मत हारना । साहस छूटना । घबरा जाना । उ॰—नई सेना के आते ही शत्रुओं के छक्के छूट गए । छक्के छुड़ाना = (१) चकित करना । विस्मित करना । हैरान करना । (२) साहस छुड़ाना । अधीर करना । घबरा देना । पस्त करना । पैर उखाड़ देना । उ॰—सिखों ने काबुलियों के छक्के छुड़ा दिए ।

छग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] छाग । बकरा ।

छगड़ा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ छागल] [स्त्री॰ छगड़ी] बकरा । उ॰—एक छगड़ी एक छगड़ा लीलिसि नौ मन लीलिसि केराव । बारह भैंसा सरसों लीलिसि औ चौरासी गांव ।—कबीर ।

छगण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सूखा गोबर । कंडा ।

छगन—संज्ञा पुं॰ [सं॰ चंगट = एक छोटा मछली] छोटा बच्चा । प्रिय बालक ।

वि॰ बच्चों के लिये एक प्यार का शब्द । उ॰—कहत मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया ।—तुलसी ।

यौ॰—छगन मगन = छोटे छोटे बच्चे । प्यारे बच्चे । हँसते खेलते बच्चे । (प्यार का शब्द) उ॰—(क) गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई । बाछरू छबीले छौना छगन मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाई । सानुज हिय हुलसति तुलसी के प्रभु कि ललित लरिकाई ।—तुलसी । (ख) गिरि परत घुटुरुवनि टेकत खेलत हैं दोउ छगन मँगन ।—सूर ।

(ग) कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायो। सुफलक सुत मेरे प्राण हतन को काल रूप ह्वै आयो।—सूर।

छगरी—संज्ञा स्त्री० [सं० छाल] छोटी बकरी।

छगल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छाग। बकरा। (२) वृद्धदारक नामक पेड़। विधारा। (३) एक ऋषि का नाम। (४) नीले रंग का कपड़ा। (५) वह देश जहाँ बहुत बकरे होते हैं।

छगुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी + अँगुली] हाथ के पंजे की सब से छोटी उँगली। कनिष्ठिका। कानी उँगली।

छछिआ, छछिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँछ] (१) छाँछ पीने वा नापने का छोटा पात्र। उ०—ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं। (२) छाछ। मट्ठा। तक्र।

छछुंदरी—संज्ञा स्त्री० दे० "छछूंदर"।

छछूंदर—संज्ञा पुं० [सं० छुछुंदरी] (१) चूहे की जाति का एक जंतु। इसकी बनावट चूहे की सी होती है पर इसका थूथन अधिक निकला हुआ और नुकीला होता है। इसके शरीर के रोएं भी छोटे और कुछ आसमानी रंग लिए खाकी वा राख के रंग के होते हैं। यह जंतु दिन को बिलकुल नहीं देखता और रात को छू छू करता चरने के लिये निकलता है और कीड़े मकोड़े खाता है। इसके शरीर से एक बड़ी तीव्र दुर्गंध आती है। लोगों का विश्वास है कि छछूंदर के छू जाने से तलवार का लोहा खराब हो जाता है और फिर वह अच्छी काट नहीं करता। यह भी कहा जाता है कि जब साँप छछूँदर को पकड़ लेता है तब उसे दोनों प्रकार से हानि पहुँचती है; यदि छोड़ दे तो अंधा होजाय और यदि खा ले तो वह मर जाता है; इसी से तुलसीदासजी ने कहा है—धर्म सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछूँदरि केरी। छछूँदर तंत्रों के प्रयोगों में भी काम आता है। (२) एक प्रकार का यंत्र या तावीज जिसे राजपूताने में पुरोहित अपने यजमानों को पहनाता है। यह गुल्ली के आकार का सोने चाँदी आदि का बनाया जाता है। (३) एक आतशबाजी जिसके छोड़ने से छू छू का शब्द निकलता है।

मुहा०—छछूंदर छोड़ना = ऐसी बात कहना जिस से लोगों में हलचल मच जाय। आग लगाना।

छछेरू—संज्ञा पुं० [हिं० छाँछ] घी का वह फेन वा मैल जो खर करते समय उसके ऊपर आ जाता है।

छजना—क्रि० अ० [सं० सज्जन, हिं० सजना] (१) शोभा देना। सजना। अच्छा। लगना। सोहना। उ०—(क) बालम के बिछुरे ब्रजबालक को हाल कह्यो न परै कछु छाँहीं। चवैसी गई दिन तीन ही में तब औधि लौं क्यों छजिहैं छहीं छाहीं।—केशव। (ख) कूबर अनूप रूप छतुरी छजत तैसी छज्जन में मोती लटकत छबि छावने।—गिरधर। (२) उपयुक्त जान पड़ना। ठीक जँचना। उचित जान पड़ना।

छज्जा—संज्ञा पुं० [हिं० छाजना वा छाना] (१) छाजन वा छत का वह भाग जो दीवार के बाहर निकला रहता है। ओलती। उ०—कूबर अनूप रूप छतरी छजत तैसी छज्जन में मोती लटकत छबि छावने।—गिरधर। (२) कोठे वा पाटन का वह भाग जो कुछ दूर तक दीवार के बाहर निकला रहता है और जिस पर लोग हवा खाने वा बाहर का दृश्य देखने के लिये बैठते हैं। उ०—छज्जन तें छूटति पिचकारी। रँगि गई बाखरि महल अटारी।—सूर। (३) दीवार वा दरवाजे के ऊपर लगी हुई पत्थर की पट्टी जो दीवार से बाहर निकली रहती है। (४) टोपी के किनारे का निकला हुआ भाग जिससे धूप से बचाव होता है।

मुहा०—छज्जेदार = जिसका किनारा आगे की ओर निकला हुआ हो। जिसमें छज्जा हो। जैसे, छज्जेदार टोपी।

छटंकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छटाँक] (१) छटांक का बटखरा। वह बाट जिससे छटांक वस्तु तौली जाय। (२) बहुत छोटा।

छटक—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्रताल के ग्यारह भेदों में से एक।

छटकना—क्रि० अ० [अनु० वा हिं० छूटना] (१) किसी वस्तु का दाब वा पकड़ से वेग के साथ निकल जाना। वेग से अलग हो जाना। सटकना। जैसे, हाथ के नीचे से गोली छटक गई। मुट्ठी में से मछली छटक गई। (२) दूर दूर रहना। अलग अलग फिरना। जैसे, वह कई दिनों से छटका छटका फिरता है। (३) वश में से निकल जाना। बहक जाना। दावँ से निकल जाना। हत्थे न चढ़ना। हाथ न आना। उ०—देखना, उसे दम दिलासा देते रहना, छटकने न पावे। (४) कूदना। उछलना।

छटका—संज्ञा पुं० [हिं० छटकना] मछलियों के फँसाने का एक गड्ढा जो दो जलाशयों के बीच तंग मेड़ पर खोदा जाता है। यह गड्ढा चार छ हाथ लंबा और हाथ दो हाथ चौड़ा तथा दो तीन हाथ गहरा होता है। मछलियां एक जलाशय से दूसरे जलायश में जाने के लिये कूदती हैं और इसी गड्ढे में गिर कर रह जाती हैं। यह गड्ढा प्रायः धान के खेतों की मेंड़ पर पानी सूखने के समय खोदा जाता है।

क्रि० प्र०—लगाना।

छटकाना—क्रि० अ० [हिं० छटकना] (१) छटक जाने देना। किसी वस्तु को दाब वा पकड़ से बलपूर्वक निकल जाने देना। (२) छुड़ाना। बलपूर्वक झटका देकर पकड़ वा बंधन से छुड़ाना। जैसे, हाथ छटकाना। उ०—रिसि करि खीझि खीझि लट झटकति स्याम भुजनि छटकाये दीन्हो।—सूर। (३) पकड़ वा दबाव में रखनेवाली वस्तु का बलपूर्वक अलग

करना। बंधन को जोर करके दूर करना। जैसे, रस्सी छटकाना।

छटना–क्रि० अ० दे० "छँटना"।

छटपट–संज्ञा पुं० [अनु०] छटपटाने की क्रिया। बंधन वा पीड़ा के कारण हाथ पैर फटकारने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

वि० चंचल। चपल। नटखट।

छटपटाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) बंधन वा पीड़ा के कारण हाथ पैर फटकारना। तड़फना। तड़फड़ाना। उ०—(क) देखो बछड़े का गला फँस गया है, वह छटपटा रहा है। (ख) वह दर्द के मारे छटपटा रहा है। (२) बेचैन होना, व्याकुल होना। विकल होना। अधीर होना। (३) किसी वस्तु के लिये आकुल होना। अधीरतापूर्वक उत्कंठित होना।

छटपटी–संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) घबराहट। व्याकुलता। बेचैनी। अधीरता। (२) किसी वस्तु के लिये आकुलता। गहरी उत्कंठा।

क्रि० प्र०—पड़ना।

छटाँक–संज्ञा स्त्री० [हिं० छ + टंक] एक तौल जो सेर का सोलहवाँ भाग है। पाव भर का चौथाई।

मुहा०—छटाँक भर = (१) तौल में पाव का चौथाई भाग। (२) बहुत थोड़ा। स्वल्प। कम।

छटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दीप्ति। प्रकाश। प्रभा। झलक। (२) शोभा। सौंदर्य। छवि। (३) बिजली। उ०—चमकहिं खड्ग छटा सी राजैं।—रघुनाथ।

छटाफल–संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

छटाभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिजली। बिजली की चमक। (२) चेहरे की कांति।

छटैल–वि० [हिं० छँटना] छँटा हुआ। चालाक।

छट्ठ–संज्ञा स्त्री० दे० "छठ"।

छट्ठी–संज्ञा स्त्री० दे० "छठी"।

छठ–संज्ञा स्त्री० [सं० षष्ठी, प्रा० छट्ठी] पखवारे का छठा दिन। प्रति पक्ष की छठी तिथि।

छठई–वि० स्त्री० दे० "छठवाँ"।

छठवाँ–वि० दे० "छठा"।

छठा–वि० [सं० षष्ठ] [स्त्री० छठी] जो क्रम में पाँच और वस्तुओं के उपरांत हो। गिनती के क्रम से जिसका स्थान छ पर हो।

मुहा०—छठे छमासे = कभी कभी। बहुत दिनों पर।

छठी–संज्ञा स्त्री० [सं० षष्ठी, प्रा० छट्ठी] (१) छट्ठी। जन्म से छठे दिन की पूजा। उ०—छठी बारही लोक वेद विधिकारी सुविधा न विधानी। राम लखन रिपुदवन भरत धरे नाम ललित मुनि ज्ञानी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।—पूजना।—पुजाना।

मुहा०—छठी का दूध निकलना = कठिन श्रम पड़ना। बहुत हैरानी होना। भारी संकट पड़ना। छठी का दूध निकालना = बहुत हैरान करना। अधिक परिश्रम लेना। बहुत कष्ट देना। छठी का दूध याद आना = सब सुख भूल जाना। बचपन की सारी खिलाई पिलाई निकल आना। घोर परिश्रम पड़ना। बहुत हैरानी होना। भारी संकट पड़ना। छठी का राजा = पुश्तैनी अमीर। पुराना रईस। छठी में नहीं पड़ना = (१) भाग्य में न होना। (२) प्रकृति में न होना। प्रकृतिविरुद्ध होना। स्वभाव के प्रतिकूल होना। जैसे, देना तो उनकी छठी में नहीं पड़ा है।

(२) एक देवी जिसकी पूजा छठी के दिन होती है।

छड़–संज्ञा स्त्री० [सं० शर] धातु वा लकड़ी आदि का लंबा पतला बड़ा टुकड़ा। धातु या लकड़ी का डंडा। जैसे, लोहे की छड़, बाँस की छड़।

विशेष—बहुत से स्थानों में यह शब्द पुं० भी बोला जाता है।

छड़ना–क्रि० स० [हिं० छाँटना] अनाज आदि को ओखली में कूट कर साफ़ करना। ओखली में रख कर अनाज कूटना जिसमें कने निकल जांय और अनाज साफ़ हो जाय। छाँटना। जैसे, चावल छड़ना।

छड़बाँस–संज्ञा पुं० [हिं० छड़ + बाँस] जहाज़ पर की झंडी। फरहरा। (लश०)

छड़वालों–संज्ञा पुं० दे० "छड़ियाल"।

छड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० छड़] (१) पैर में पहनने का चूड़ी के आकार का एक गहना। यह चाँदी की पतली छड़ वा एँठे हुए तारों का बनाया जाता है और पाँच से दस बीस तक एक एक पैर में पहना जाता है। (२) मोतियों की लड़ों का गुच्छा। लच्छा।

वि० [हिं० छाँड़ना] अकेला। एकाकी।

यौ०—छड़ी सवारी। छड़ी छटाँक।

छड़िया–संज्ञा पुं० [हिं० छड़ी] डेवढ़ीदार। दरबान। द्वारपाल। उ०—पटिया आँगन और को लट छुट छड़िया काम। तिल जो चिबुक पर लसत है सो सिंगार रस धाम।—मुबारक।

छड़ियाल–संज्ञा पुं० [हिं० छड़ी] एक प्रकार का भाला वा बरछा।

छड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छड़] (१) सीधी पतली लकड़ी। पतली लाठी। (२) लहँगे पाजामे आदि में गोखरू चुटकी आदि की सीधी टँकाई। (दरज़ी)। (३) झंडी जिसे लोग मुसलमान पीरों की मज़ार पर चढ़ाते हैं। सदा। झंडी। जैसे, मदार की छड़ी। (४) गुड़िया पीटने वा चौथी छुड़ाने की पतली लकड़ी।

वि० स्त्री० [हिं० छाँड़ना] अकेली। एकाकिनी।

मुहा०—छड़ी छटाँक या छड़ी सवारी = (१) बिना किसी संगी

साथी के। अकेले। एकाकी। (२) बिना कोई बोझ या असबाब लिए। तन तनहा।

छड़ीदार—वि० [हिं० छड़ी + दार (प्रत्य०)] (१) जो छड़ी लिए हो। छड़ीवाला। (२) जिसमें सीधी पतली लकीरें हों। लकीरदार। सीधी लकीरोंवाला (कपड़ा)। जैसे, छड़ीदार छींट, छड़ीदार गलता।

संज्ञा पुं० चोबदार। आसा-बरदार। द्वारपालक। रक्षक।

छड़ीबरदार—संज्ञा पुं० [हिं० छड़ी + फ़ा० बरदार] चोबदार। बड़े आदमियों की सवारी के साथ सोने चांदी की छड़ी लिए हुए चलनेवाला सेवक।

छड़ीला—संज्ञा पुं० दे० "छरीला"।

छण—संज्ञा पुं० दे० "क्षण"।

छणदा—संज्ञा स्त्री० दे० "क्षणदा"।

छत—संज्ञा स्त्री० [सं० छत्र, प्रा० छत्त] (१) घर की दीवारों के ऊपर की पटिया, चूना, कंकड़ आदि डाल कर बनाई हुई फर्श। पाटन। उ०—छिति पर, छान पर, छाजत छतान पर, ललित लतान पर, लाड़िली की लट पै।—पद्माकर।

मुहा०—छत पटना वा पड़ना = दीवार के ऊपर बैठाई हुई कड़ियों पर कंकड़, सुरखी, चूना आदि पीटा जाना। छत बनना।

(२) घर के ऊपर की खुली हुई पाटन। ऊपर का खुला हुआ कोठा। उ०—गरमी में लोग छत पर सोते हैं। (३) छतगीर। ऊपर तानने की चादर। चाँदनी।

मुहा०—छत बँधना = बादलों का घेर कर छाना।

*संज्ञा पुं० [सं० क्षत] घाव। ज़ख्म।

*क्रि० वि० [सं० सत्] होते हुए। रहते हुए। आछत। उ०—(क) गनती गनिबे तें रहे छतहू अछत समान। अलि अब ये तिथि औम लौं परे रहौ तन प्रान।—बिहारी। (ख) प्रान पिंड को तजि चलै मुवा कहै सब कोय। जीव छतें जामें मरै सूछम लखै न सोय। मरिए तो मरि जाइए छूटि परै जंजार। ऐसा मरना को मरै दिन में सौ सौ बार।—कबीर।

छतना*—संज्ञा पुं० [हिं० छाता, अवधी० छतौना] पत्तों का बना हुआ छाता। उ०—सौंहन सचाई बात करत रचाई दोऊ छवि सों बचाई छीटैं ओर छतनान की।—रसकुसुमाकर।

छतनार†—वि० [हिं० छाता वा छतना] छाते की तरह फैला हुआ। दूर तक फैला हुआ। विस्तृत।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः वृक्षों के लिये होता है।

छतरिया विष—संज्ञा पुं० [सं० छत्र] एक प्रकार की खुमी जो बहुत विषैली होती है।

छतरी—संज्ञा स्त्री० [सं० छत्र] (१) छाता। (२) पत्तों का बना हुआ छाता। उ०—लै कर सुघर खुरुपिया पिय के साथ। छइबै एक छतरिया बरखत पाथ।—रहीम। (३) मंडप। (४) राजाओं की चिता वा साधु महात्माओं की समाधि के स्थान पर स्मारक रूप से बना हुआ छज्जेदार मंडप। (५) कबूतरों के बैठने के लिये बांस की फट्टियों का बना हुआ टट्टर जो एक ऊँचे बांस के सिरे पर बँधा रहता है। (६) कहारों की डोली के ऊपर छाया के लिये रक्खा हुआ बांस की फट्टियों का टट्टर जिस पर कपड़ा डालते हैं। (७) बहल वा इक्के आदि के ऊपर की छाजन। (८) जहाज़ के ऊपर का भाग। (६) खुमी। कुकुरमुत्ता।

छतलोट—संज्ञा स्त्री० [हिं० छत + लोटना] एक प्रकार की कसरत जिसमें गच के ऊपर पेट के बल पट लेट कर लोटते हैं। इससे तोंद नहीं निकलती।

छता†—संज्ञा पुं० [सं० छत्र] छाता। उ०—सीस भयो हर हार सुमेरु छता भयो आपु सुमेरु को वासी।—मतिराम।

छतिया*†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाती] छाती। वक्षस्थल। उ०—सुनहु स्याम तुम कों ससि डरपत है कहत ए सरन तुम्हारी। सूर स्याम बिरुझाने सोए लिए लगाइ छतियाँ महतारी।—सूर।

छतियाना—क्रि० स० [हिं० छाती] (१) छाती के पास ले जाना। (२) बंदूक छोड़ने के समय कुंदे को छाती के पास लगाना। बंदूक तानना।

छतिवन—संज्ञा पुं० [सं० सप्तपर्णी प्रा० सत्तवन्ना] एक पेड़ जो भारत के प्रायः सभी तर प्रदेशों में थोड़ा बहुत मिलता है। इसके एक एक पत्ते में सात सात छोटी छोटी पत्तियाँ होती हैं। इसका पेड़ बड़ा होता है और इसकी टहनियों को तोड़ने से दूध निकलता है। इसकी छाल वृष्य, कृमिनाशक, पुष्टिकारक, ज्वरघ्न और संकोचक होती है। इसका दूध फोड़े पर लगाया जाता है और तेल में मिला कर दर्द दूर करने के लिये कान में डाला जाता है। इसकी लकड़ी संदूक, अलमारी आदि बनाने के काम में आती है। दशमूल नामक काढ़े में इसकी छाल पड़ती है।

छतीसा—वि० [हिं० छत्तीस] [स्त्री० छतीसी] (१) जिसे छत्तीस बुद्धि हो। चतुर। सयाना। चालाक। उ०—पीसी है मनोज की सी छूटेगी छतीसी छूँटी सुरत उड़ी सी भरी भाग की नदी सी है।—रघुराज। (२) मक्कार। धूर्त्त। उ०—नाई की जाति बड़ी छतीसी होती है।

छतीसापन—संज्ञा पुं० [हिं० छतीसा] मक्कारी। चालाकी। धूर्त्तता।

छतौना—संज्ञा पुं० [हिं० छाता] (१) छाता। (२) छत्राक। खुमी।

छत्त†—संज्ञा पुं० दे० "छत"।

छत्तर†—संज्ञा पुं० (१) दे० "छत्र"। (२) दे० "सत्र"।

छत्ता—संज्ञा पुं० [सं० छत्र, प्रा० छत्त] †(१) छाता। छतरी। (२) पटाव वा छत जिसके नीचे से रास्ता चलता हो। (३)

मधुमक्खी, भिड़ आदि के रहने का घर जो मोम का होता है और जिसमें बहुत से खाने रहते हैं। (४) छाते की तरह दूर तक फैली हुई वस्तु। छतनार चीज़। चकत्ता। जैसे, दूब का छत्ता, दाद का छत्ता। (५) कमल का बीजकोश।

छत्तीस–वि० [सं० षट्त्रिंशति, प्रा० छत्तीसा] जो गिनती में तीस और छ हो।

संज्ञा पुं० (१) तीस और छ के योग की संख्या। (२) इस संख्या को सूचित करनेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—३६।

छत्तीसवाँ–वि० [हिं० छत्तीस + वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में पैंतीस और वस्तुओं के उपरांत हो। क्रम में जिसका स्थान छत्तीस पर हो।

छत्तीसा–संज्ञा पुं० [हिं० छत्तीस] (छत्तीसो जातियों की सेवा करनेवाला वा जिसे छत्तीस बुद्धि हो) नाई। हज्जाम।

वि० [स्त्री० छत्तीसी] धूर्त्त। चालाक। चतुर।

छत्तीसी–वि० [हिं० छत्तीस] (१) गहरे छल छंदवाली (स्त्री)। (२) छिनाल।

छत्तुर†–संज्ञा पुं० [सं० छत्र] (१) छाता। (२) वह गोबर जो कंडों के ढेर (कंडौर) की चोटी पर छोपा जाता है। (३) वह गोबर जो खलिहान में अनाज की राशि के सिर पर चोरी वा नज़र से बचाने के लिये रख वा छोप दिया जाता है। (४) वह छप्पर जो भूसे की राशि के ऊपर छाया या रक्खा जाता है। (५) दे० "छतरी"।

छत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छाता। छतरी। (२) राजाओं का छाता जो राजचिह्नों में से है। यह छाता बहुमूल्य स्वर्णदंड आदि से युक्त रत्नजटित तथा मोती की झालरों आदि से अलंकृत होता है। भोजराज कृत युक्तकल्पतरु नामक ग्रंथ में छत्रों के परिमाण वर्ण आदि का विस्तृत विवरण है। जिस छत्र का कपड़ा सफ़ेद हो और जिसके सिरे पर सोने का कलश हो उसका नाम कनकदंड है। जिसका डंडा, कमानी कील आदि विशुद्ध सोने की हों, कपड़ा और डोरी कृष्ण वर्ण हों, जिसमें बत्तीस बत्तीस मोतियों की बत्तीस लड़ों की झालरें लटकती हों और जिसमें अनेक रत्न जड़े हों, उस छत्र का नाम नवदंड है। इसी नवदंड छत्र के ऊपर यदि आठ अंगुल की एक पताका लगा दी जाय तो यह दिग्विजयी छत्र हो जाता है।

यौ०—छत्रछाँह = रक्षा। शरण।

मुहा०—**किसी की छत्रछाँह में होना** = किसी की शरण में होना। किसी की संरक्षा में रहना।

(३) खुमी। भूफोड़। कुकुरमुत्ता। (४) बच की तरह का एक पेड़। (५) छतरिया विष। खर विष। अतिच्छत्र।

छत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खुमी। भूफोड़। कुकुरमुत्ता। (२) छाता। (३) तालमखाने की जाति का एक पौधा जिसके पत्ते और फल ललाई लिए होते हैं। (४) कौड़िल्ला नाम की चिड़िया। मछरंग। (५) मंदिर। मंडप। देवमंदिर। (६) शहद का छत्ता। (७) मिस्री का कूज़ा।

छत्रकदेही–संज्ञा पुं० [सं० छत्रकदेहिन्] रावण वाकी नामक जल-जंतु जिसके शरीर के ऊपर एक गोल छाता सा रहता है। यह समुद्र में होता है।

छत्रचक्र–संज्ञा पुं० [सं०] शुभाशुभ फल निकालने के लिये फलित ज्योतिष का एक चक्र। इसमें नौ नौ घरों की तीन पंक्तियाँ बनाते हैं जिनमें क्रमशः अश्विनी से लेकर अश्लेषा तक, मघा से ज्येष्ठा तक और मूल से रेवती तक नौ नौ नक्षत्रों के नाम रखते हैं। फिर नक्षत्र के नाम के अनुसार शुभाशुभ की गणना करते हैं।

छत्रधर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छत्र धारण करनेवाला मनुष्य। (२) राजा। (३) वह सेवक जो राजा के ऊपर छाता लगावे।

छत्रधारी–संज्ञा पुं० [सं० छत्रधारिन्] जो छत्र धारण करे। जैसे, छत्रधारी राजा।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) (छत्र धारण करनेवाला) राजा। (२) वह सेवक जो राजाओं के ऊपर छाता लगावे।

छत्रपति–संज्ञा पुं० [सं०] छत्र का अधिपति। राजा।

छत्रपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थलपद्म। (२) भोजपत्र का वृक्ष। पदुम। (३) मानपत्ता। मानकच्चू। मान। (४) छतिवन।

छत्रपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] तिलकपुष्प।

छत्रबंधु–संज्ञा पुं० [सं०] नीच कुल का क्षत्रिय। क्षत्रियाधम। उ०—छत्रबंधु तैं विप्र बोलाई। घालै लिये सहित समुदाई।—तुलसी।

छत्रभंग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा का नाश। (२) ज्योतिष का एक योग जिसे राजा का नाशक माना है। (३) वैधव्य। (४) स्वतंत्रता। अराजकता। (५) हाथी का एक दोष जो उसके दोनों दाँतों के कुछ नीचे ऊपर होने के कारण माना जाता है।

छत्रमहाराज–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार आकाशस्थ चार दिक्पाल जिनके नाम ये हैं—प्रथम बीणाराज जो पूर्व दिशा के अधिपति हैं और हाथ में वीणा लिए रहते हैं; दूसरे खड्गराज जो पश्चिम दिशा के अधिपति हैं और हाथ में खड्ग लिए रहते हैं; तीसरे ध्वजराज जो उत्तर दिशा के अधिपति हैं और हाथ में ध्वजा लिए रहते हैं, चौथे चैत्यराज जो दक्षिण दिशा के अधिपति हैं और हाथ में चैत्य धारण करते हैं। बौद्ध मंदिरों में प्रायः इनकी मूर्तियाँ रहती हैं।

छत्रवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन राज्य जो पांचाल के

उत्तर पड़ता था। इसे अहिच्छत्र वा अहिक्षेत्र भी कहते थे। महाभारत, हरिवंश और विष्णु पुराण इत्यादि में इसका उल्लेख है।

छत्रवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] मुचकुंद का पेड़।

छत्रांग—संज्ञा पुं० [सं०] गोदंती हरताल।

छत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खुमी। ढिँगरी। (२) धनियाँ। (३) सोवा। (४) मजीठ। (५) रास्ना। रासन। (६) सुश्रुत के अनुसार एक रसायन औषध।

छत्राक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खुमी। ढिँगरी। (२) कुकुरमुत्ता। (३) जलबबूल।

छत्राकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रास्ना नाम की ओषधि। (२) सर्पाक्षी।

छत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खुमी। ढिँगरी।

छत्री—वि० [सं० छत्रिन्] छत्रयुक्त। छत्र धारण करनेवाला।

संज्ञा पुं० नापित। नाई।

संज्ञा पुं० दे० "क्षत्रिय"।

छत्वर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर। (२) कुंज।

छद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आवरण। ढकनेवाली वस्तु। ढकन, छाल इत्यादि। जैसे, रदच्छद। उ०—चारु विधु मंडल में विद्रुम विराजै, छद मोतिन के छाजै ते छपाए छपते नहीं। (२) पत्र। चिड़ियों का पंख। (३) पत्ता। (४) ग्रंथिपर्णी वृक्ष। गँठिवन। (५) तमाल वृक्ष। (६) तेजपत्ता।

छदन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आवरण। आच्छादन। ढकन। (२) पत्ता। (३) चिड़ियों का पंख। (४) तमालपत्र। (५) तेजपत्ता।

छदपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेजपत्ता। (२) भोजपत्र।

छदम*—संज्ञा पुं० दे० "छद्म"।

छदाम—संज्ञा पुं० [हिं० छ+दाम] पैसे का चौथाई भाग।

छद्दर†—संज्ञा पुं० [हिं० छ+सं० रद वा हिं० दाँत] (१) वह पशु जो छः दाँत तोड़ चुका हो। (२) नटखट लड़का। शरीर लड़का।

छद्म—संज्ञा पुं० [सं० छद्मन] (१) छिपाव। गोपन। (२) व्याज। बहाना। हीला। (३) छल। कपट। धोखा। जैसे, छद्मवेश।

छद्मवेश—संज्ञा पुं० [सं०] बदला हुआ वेश। कृत्रिम वेश। दूसरों को धोखा देने के लिये बनाया हुआ वेश।

छद्मवेशी—वि० [सं० छद्मवेशिन्] जो वेश बदले हो। जो अपना असली रूप छिपाए हो।

छद्मिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुडुच। गिलोय।

छद्मी—वि० [सं० छद्मिन्] [स्त्री० छद्मिनी] (१) बनावटी वेश धारण करनेवाला। अपना असली रूप छिपानेवाला। छली। कपटी।

छन—संज्ञा पुं० दे० "क्षण"।

छनक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) झनझनाहट। झनकार। छन छन करने का शब्द। उ०—कवि मतिराम भूषननि की छनक सुनि चौंद भो चपल चित रसिक रसाल को।—मतिराम। (२) जलती वा तपती हुई वस्तु पर पानी आदि पड़ने के कारण छन छन होने का शब्द।

संज्ञा स्त्री० [सं० शंका] किसी आशंका से चौंक कर भागने की क्रिया। भड़क।

संज्ञा पुं० [सं० क्षण, हिं० छन+एक] एक क्षण। उ०—अरि छोटो गनिए नहीं, जातें होत बिगार। तृन समूह को छनक में, जारत तनिक अँगार।—वृंद।

छनकना—क्रि० अ० [अनु० छन छन] (१) किसी तपती हुई धातु (जैसे गरम तवा) पर से पानी आदि के बूँद का छन छन शब्द करके उड़ जाना। उ०—मैं दै लयो सुकर छुवत छनकि गो नीर। लाल तुम्हारो अरगजा उर ह्वै लग्यो अबीर।—बिहारी। (२) * छन छन शब्द करना। झनकार करना। झनझनाना। उ०—खनकंत सेल बखत्तर तोर। छनकंत तेग जंजीरनु मोर।—सूदन।

क्रि० अ० [सं० शंका] चौकन्ना होकर भागना। भड़कना। उ०—यह गाय, पास जाते ही छनकती है।

छनक मनक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) गहनों के बजने का शब्द। आभूषणों की झनकार। (२) साज बाज। ठसक। उ०—न्योते में स्त्रियाँ बड़ी छनक मनक से जाती हैं। (३) दे० "छगन मगन"।

छनकाना—क्रि० स० [हिं० छनकना] (१) पानी को आँच पर रख कर भाप बना कर उड़ाना जिससे इसका परिमाण कुछ कम हो जाय। (२) तपे हुए बरतन में पानी या और कोई द्रव पदार्थ डाल कर गरम करना। बलकाना।

क्रि० स० [हिं० छनकना] चौंकाना। चौकन्ना करना। भड़काना।

छनछनाना—क्रि० अ० [अनु०] (१) किसी तपी हुई धातु (जैसे गरम तवा) पर पानी आदि पड़ने के कारण छन छन शब्द होना। (२) खौलते हुए घी, तेल आदि में किसी गीली वस्तु (जैसे, आटे की लोई, तरकारी आदि) के पड़ने के कारण छन छन शब्द होना। छन्न छन्न का शब्द होना। (३) झनझनाना। झनकार होना।

क्रि० स० (१) छन छन का शब्द उत्पन्न करना। (२) झनकार करना।

छनछवि*—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणछवि] क्षणप्रभा। बिजली।

छनदा*—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणदा] रात। रात्रि। उ०—तजि संक सकुचति न चित, बोलति बाक कुबाक। दिन छनदा छाकी रहत, छुटत न छिन छवि छाक।—बिहारी।

छनन मनन–संज्ञा पुं० [अनु०] कड़ाह के खौलते घी या तेल में किसी तली जानेवाली गीली वस्तु के पड़ने का शब्द ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—छनन मनन होना = कड़ाह में पूरी कचौरी आदि निकलना । पूरी, पकवान आदि बनना ।

छनना–क्रि० अ० [सं० क्षरण] (१) किसी चूर्ण (जैसे आटा) वा द्रव पदार्थ (जैसे, दूध, पानी) का किसी कपड़े वा जाली के महीन छेदों में से होकर इस प्रकार नीचे गिरना कि मैल, खूद, सीठी आदि अलग होकर ऊपर रह जाय । छननी से साफ़ होना । (२) छोटे छोटे छेदों से होकर आना । उ०—पेड़ की पत्तियों के बीच से धूप छन छन कर आ रही थी । (३) किसी नशे का पिया जाना । जैसे, भाँग छनना, शराब छनना ।

मुहा०—गहरी छनना = (१) खूब मेल जोल होना । गाढ़ी मैत्री होना । परस्पर रहस्य की बातें होना । खूब घुट घुट कर बातें होना । (२) आपस मे चलना । बिगाड़ होना । लड़ाई होना । एक दूसरे के विरुद्ध प्रयत्न होना । उ०—उन दोनों में आज कल गहरी छन रही है ।

(४) बहुत से छेदों से युक्त होना । स्थान स्थान पर छिद जाना । छलनी हो जाना । जैसे, इस कपड़े में अब क्या रह गया है, बिलकुल छन गया है । (५) बिध जाना । अनेक स्थानों पर चोट खाना । जैसे, उसका सारा शरीर तीरों से छन गया है । † (६) छान बीन होना । निर्णय होना । सच्ची और झूठी बातों का पता चलना । जैसे, मामला छनना । (७) कड़ाह में से पूड़ी पकवान आदि तलकर निकलना । जैसे, पूरी छनना ।

संज्ञा पुं० छानने की वस्तु । जैसे, महीन छनना (कपड़ा) ।

छनवाना–क्रि० स० दे० "छनाना" ।

छनाका–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) खनाका । ठनाका । झनकार । (२) रुपयों के बजने का शब्द ।

छनाना–क्रि० स० [हिं० छानना] (१) किसी दूसरे से छानने का काम कराना । (२) नशा आदि पिलाना । जैसे, भाँग छनाना । (३) कड़ाह में पकवान तलवाना ।

छनिक*–वि० दे० "क्षणिक" ।

संज्ञा पुं० [हिं० छन + एक] एक क्षण । अल्प काल ।

छन्न–वि० [सं०] (१) आवृत । आच्छादित । ढका हुआ । (२) लुप्त । गायब ।

संज्ञा पुं० (१) एकांत स्थान । निर्जन स्थान । (२) गुप्त स्थान ।

संज्ञा पुं० [सं० छंद] छंदी नाम का गहना ।

संज्ञा पुं० [अनु०] (१) किसी तपी हुई चीज पर पानी आदि पड़ने से उत्पन्न शब्द । (२) कड़कड़ाते तेल वा घी में तलने की वस्तु पड़ने का शब्द ।

मुहा०—छन्न होना = सूख जाना । उड़ जाना ।

(३) धातुओं के पत्तरों के परस्पर टकर से उत्पन्न शब्द । छनकार । ठनकार । † (४) छोटी छोटी कंकड़ियाँ । बजरी ।

छन्नमति–वि० [सं०] जिसकी बुद्धि पर परदा पड़ा हो । जड़ । मूर्ख ।

छन्ना–संज्ञा पुं० दे० "छनना" ।

छप–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) पानी में किसी वस्तु के एक बारगी जोर से गिरने का शब्द । (२) पानी के एक बारगी पड़ने का शब्द । पानी का छींटा के जोर से पड़ने का शब्द ।

यौ०—छपछप = भरपूर ।

छपकना†–क्रि० स० [छप से अनु०] (१) पतली कमची से किसी को मारना । पतली लचीली छड़ी से पीटना । (२) कटारी या तलवार के आघात से किसी वस्तु को काट डालना । काट डालना । छिन्न करना ।

छपका–संज्ञा पुं० [हिं० चपकना] सिर में पहनने का एक गहना जिसे लखनऊ में मुसलमान स्त्रियाँ पहनती हैं ।

†संज्ञा पुं० [हिं० छपकना] पतली कमची । साँटा ।

संज्ञा पुं० [हिं० चार + पका] खुरवाले पशुओं का एक रोग जिसमें पशुओं के खुर पक जाते हैं । खुरपका ।

संज्ञा पुं० [अनु०] (१) पानी का भरपूर छींटा । छींटा । (२) एक प्रकार का जाल जिसमें कबूतर फँसाए जाते हैं । (३) लकड़ी के संदूक में वह ऊपर का पटरा जिसमें कुंडे की जंजीर लगी रहती है । (४) पानी में हाथ पैर मारने की क्रिया वा भाव ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लेना ।

छपछपाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) पानी पर कोई वस्तु जोर से पटक कर छपछप शब्द उत्पन्न करना । पानी पर हाथ पाँव मारना । पानी पर हाथ पाँव पटकना । (२) कुछ तैर लेना । जैसे, वे तैरते क्या हैं, यों ही पानी पर छपछपाते हैं ।

क्रि० स० [अनु०] पानी को छड़ी या हाथ आदि पटक कर इस प्रकार हिलाना जिस में छप छप शब्द उत्पन्न हो ।

छपटना†–क्रि० अ० [सं० चिपिट, हिं० चिपटना] (१) चिपकना । किसी वस्तु से लगना वा सटना । (२) आलिंगित होना ।

छपटाना†–क्रि० स० [हिं० छपटना] (१) चिपकाना । चिमटाना । (२) छाती से लगाना । आलिंगन करना ।

छपटी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० छपटना] चैली । लकड़ी का टुकड़ा जो छीलने से निकले ।

वि० पतला । दुबला । कृश ।

छपड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का भुजंगा पक्षी ।

छपद*–संज्ञा पुं० [सं० षट्पद] भ्रमर । भौंरा । उ०—(क) उलटि तहाँ पग धारिये जासों मन मान्यौ । छपद कंज तजि बेलि सौं लटि प्रेम न जान्यौ ।—सूर । (ख) छपद सुनहि

वर बचन हमारे। बिन ब्रजनाथ ताप नैनन की कौन हरै हरि अंतर कारे।—तुलसी।

छपन‡–वि० [हिं० छिपना] गुप्त। गायब। लुप्त। (पंजाबी) उ०—न जाने कहाँ छपन हो गई।—श्रद्धाराम।

संज्ञा पुं० [सं० क्षपण] विनाश। नाश। संहार। उ०—छोनी में न छाड़यो छप्यो, छोनिप को छौना छोटो छोनिप छपन बाँको बिरुद बहत हौं।—तुलसी।

छपना–क्रि० अ० [हिं० चपना = दबना] (१) छापा जाना। चिह्न या दाब पड़ना। (२) चिह्नित होना। अंकित होना। जैसे, छीँट छपना, मुहर छपना। (३) यंत्रालय में किसी लेख आदि का मुद्रित होना। छापेखाने में अक्षरों आदि का अंकित होना। जैसे, पुस्तक छपना। (४) शीतला का टीका लगना।

†क्रि० अ० दे० "छिपना"।

छपरखट, छपरखाट–संज्ञा स्त्री० [हिं० छप्पर + खाट] मसहरीदार पलंग। वह पलंग जिसके ऊपर डंडों के सहारे कपड़ा तना हो।

छपरबंद–वि० [हिं० छप्पर + बंध] [संज्ञा छपरबंदी] (१) जिनका घर बना हो। आबाद। बसे हुए। पाही का उलटा। जैसे, छपरबंद असामी, छपरबंद बाशिंदा। (२) छप्पर छाने का काम करनेवाला। छप्पर छानेवाला। (३) पूना के आस पास बसनेवाली एक जाति जो अपने को राजपूत कुल से उत्पन्न बतलाती है।

छपरबंदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छपरबंद] (१) छवाई। छप्पर छाने का काम। (२) छाने की मजदूरी। छवाई।

छपरा†–संज्ञा [हिं० छप्पर] (१) बाँस का टोकरा जो पत्तों से मढ़ा होता है और जिसमें तमोली पान रखते हैं। (२) दे० "छप्पर"।

छपरिया–संज्ञा स्त्री० (१) दे० "छपरी"। (२) छोटा छप्पर।

छपरी*†–संज्ञा स्त्री० [हिं० छप्पर] झोपड़ी। मढ़ी। उ०—चंदन की चुटकी भली, कहा बबूल बनराव। साधुन की छपरी भली, बुरो असाधु को गाँव।—कबीर।

छपवाई–संज्ञा स्त्री० दे० "छपाई"।

छपवाना–क्रि० स० दे० "छपाना"।

छपवैया†–संज्ञा पुं० [हिं० छापना] (१) छापनेवाला। (२) छपवानेवाला। (३) मुद्रित करानेवाला। उ०—मंगल सदाहीँ करैं राम ह्वै प्रसन्न सदा राम रसिकावली या ग्रंथ छपवैया को।—जुगलेश।

छपही†–संज्ञा स्त्री० [देश०] सोने या चाँदी का एक गहना जिसे स्त्रियाँ हाथ की उँगलियों में पहनती हैं।

छपा–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षपा] (१) रात्रि। रात उ०—छपन छपा के। रवि इव भा के। दंड उतंग उड़ाके। विविध कता के बँधे पताके। छुवैं जे रवि रथ चाके।—रघुराज। (२) हलदी।

छपाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० छापना] (१) छापने का काम। मुद्रण। अंकन। (२) छापने का ढंग। (३) छापने की मजदूरी।

छपाकर–संज्ञा पुं० [सं० क्षपाकर] (१) चंद्रमा। चाँद। (२) कपूर। कपूर।

छपाका–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) पानी पर किसी वस्तु के जोर से पड़ने का शब्द। (२) छींटा। जोर से उछला या फेंका हुआ पानी।

क्रि० प्र०—मारना।

छपाना–क्रि० स० [हिं० छापना का प्रे०] (१) छापने का काम कराना। (२) चिह्नित कराना। अंकित कराना। (३) छापे-खाने में पुस्तक आदि अंकित कराना। मुद्रित कराना। (४) शीतला का टीका लगवाना।

क्रि० स० दे० "छिपाना"।

क्रि० स० [अनु० छप छप या हिं० छोपना] जोतने के लिये खेत को सींचना।

छपानाथ–संज्ञा पुं० दे० "क्षपानाथ"।

छपाव*†–संज्ञा पुं० दे० "छिपाव"।

छप्पन–वि० [सं० षट्पंचाशत्, प्रा० छप्पणम्, छप्पण] जो गिनती में पचास और छ हो। पचास से छ अधिक।

संज्ञा पुं० (१) पचास और छ की संख्या। (२) इस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५६।

छप्पय–संज्ञा स्त्री० [सं० षट्पद] एक मात्रिक छंद जिसमें ६ चरण होते हैं। इस छंद में पहले रोला के चार पद, फिर उल्लाला के दो पद होते हैं। लघु गुरु के क्रम से इस छंद के ७१ भेद होते हैं। उ०—अजय विजय बलकर्ण बीर बैताल बिहंकर। मर्कट हरि हर ब्रह्म इंद्र चंदन सु शुभंकर। श्वान सिंह शार्दूल कच्छ कोकिल खर कुंजर। मदन मत्स्य ताटंक शेष सारंग पयोधर। शुभकमल कंद वारण शलभ, भवन अजंगम सर सरस। गणि समर सु सारस मेरु कहि, मकर अली सिद्धिहि सरस।

छप्पर–संज्ञा पुं० [हिं० छोपना] (१) बाँस या लकड़ी की फट्टियों और फूस आदि की बनी हुई छाजन जो मकान के ऊपर छाई जाती है। छाजन। छान।

क्रि० प्र०—छाना।—डालना।—पड़ना।—रखना।

यौ०—छप्परबंद।

मुहा०—छप्पर पर रखना = दूर रखना। अलग रखना। रहने देना। छोड़ देना। चर्चा न करना। जिक्र न करना। उ०—तुम अपनी घड़ी सड़ी छप्पर पर रक्खो, लावो हमारा रुपया दो। छप्पर पर फूस न होना = अत्यंत निर्धन होना। कंगाल होना। अकिंचन होना। छप्पर फाड़कर देना = अना-

ग्रास देना। बिना परिश्रम प्रदान करना। बैठे बैठाए अकस्मात देना। घर बैठे पहुँचाना। उ०—जब देना होता है तो ईश्वर छप्पर फाड़ कर देता है। छप्पर रखना = (१) एहसान रखना। बोझ रखना। निहोरा लगाना। उपकृत करना। (२) दोषारोपण करना। दोष लगाना। कलंक लगाना।

(२) छोटा ताल या गड्ढा जिसमें बरसाती पानी इकट्ठा रहता है। डाबर। पोखर। तलैया।

छप्परबंद—संज्ञा पुं० [हिं० छप्पर + फ़ा० बंद] (१) छप्पर छानेवाला (२) पूना के आस पास बसनेवाली एक जाति जो अपने को राजपूत कुल से उत्पन्न बतलाती है।

वि० जिसने घर बना लिया हो। जो बस गया हो। बसा हुआ। आबाद। जैसे, छप्परबंद असामी।

छबा†—संज्ञा स्त्री० दे० "छवि"।

छबड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्प० छबड़ी] (१) टोकरा। डला। झाबा। छितना। (२) खांचा।

छबतख़ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० छवि + अ० तक़तीअ] शरीर की सुंदर बनावट। सुंदरता। सज धज।

छबरा—संज्ञा पुं० दे० "छबड़ा"।

छबि—संज्ञा स्त्री० दे० "छवि"।

छबीला—वि० [हिं० छवि + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० छबीली] शोभायुक्त। सुहावना। सुंदर। सज धज का। बांका। उ०—छला छबीले छैल कौ, नवल नेह लहि नारि। चूमति चाहति लाइ उर, पहिरति धरति उतारि।—बिहारी।

छबुँदकिया—संज्ञा पुं० दे० "छबुंदा"।

छबुंदा—संज्ञा पुं० [हिं० छ + बुंदकी] गुबरैले की तरह का एक कीड़ा जिसकी पीठ पर छ काली बुँदकियां होती हैं। यह बड़ा विषैला होता है। कहते हैं कि इसका काटा नहीं जीता।

छब्बी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पैसा। (दलाल)

छब्बीस—वि० [सं० षड्विंश, प्रा० छब्बीसा] जो गिनती में बीस और छ हो।

संज्ञा पुं० (१) बीस से छ अधिक की संख्या। (२) इस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—२६।

छब्बीसवाँ—वि० [हिं० छब्बीस = वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में पचीस और वस्तुओं के उपरांत हो। जिसका स्थान छब्बीस पर हो।

छब्बीसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छब्बीस] (१) छब्बीस वस्तुओं का समूह। (२) फलों की बिक्री का सैकड़ा जो छब्बीस गाही वा १३० का होता है।

छमंड—संज्ञा पुं० [सं०] पितृविहीन बालक। वह बालक जिसका पिता मर गया हो।

छम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) घुँघुरू आदि के बजने का शब्द। (२) पानी बरसने का शब्द।

यौ०—छमाछम।

संज्ञा पुं० दे० "क्षम"।

छमक—संज्ञा स्त्री० [हिं० छम] चाल ढाल की बनावट। ठसक। ठाटबाट। (स्त्रियों के लिये)

छमकना—क्रि० अ० [हिं० छम + क] (१) घुँघुरू आदि हिला कर छम छम करना। (२) गहने आदि बजाना। गहनों की झनकार करना। ठसक दिखाना। (स्त्रियों के लिये) † (३) दे० "छौंकना"।

छमछम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) वह शब्द जो चलने में पैर में पहने हुए गहनों के बजने से होता है। नूपुर, पायल, घुँघुरू आदि के बजने का शब्द। उ०—छमछम करि छिति चलति छुटी पायल दोउ छजी।—सुकवि। (२) मेह बरसने का शब्द।

क्रि० वि० छम छम शब्द के साथ।

छमछमाना—क्रि० अ० [अनु०] (१) छम छम शब्द करना। (२) छम छम शब्द करके चलना।

छमना†—क्रि० स० [सं० क्षमन, प्रा० छमन] क्षमा करना। उ०—छमिहँहि सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिँ बाल बचन मन लाई।—तुलसी।

छमा—संज्ञा स्त्री० दे० "क्षमा"।

छमाछम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) गहनों के बजने का शब्द। (२) पानी बरसने का शब्द।

क्रि० वि० लगातार छम छम शब्द के साथ, जैसे छमाछम पानी बरसना।

छमापन—संज्ञा पुं० दे० "क्षमापन"।

छमावान—वि० दे० "क्षमावान्"।

छमाशी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छ + माशा] छ माशे का बाट।

छमासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छ + सं० मास] वह श्राद्ध जो किसी की मृत्यु से छ महीने पर उसके संबंधी करते हैं।

छमिच्छा†—संज्ञा स्त्री० [सं० समस्या] (१) समस्या। (२) इशारा। संकेत।

छमुख—संज्ञा पुं० [हिं० छ + मुख] षडानन। कार्त्तिकेय।

छय—संज्ञा पुं० [सं० क्षय] नाश। विनाश।

विशेष—दे० "क्षय"। उ०—जेहि रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ।—तुलसी।

छर—संज्ञा पुं० दे० "छल"।

विशेष—दे० "क्षर"।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] छर्रों वा कणों के वेग से निकलने वा गिरने का शब्द। उ०—छर छर कंकड़ियां गिर रही हैं।

यौ०—छर छर।

छरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक तरह का ठप्पा।

छरकना—क्रि० अ० [अनु० छर छर] (१) छर छर करके छिटकना वा बिखरना। (२) किसी पदार्थ का कभी तल को स्पर्श करते और कभी उछलते हुए वेग से किसी ओर जाना।

क्रि० अ० दे० "छलकना"।

छरछंद†—संज्ञा पुं० दे० "छलछंद"।

छरछंदी†—वि० दे० "छलछंदी"।

छरछर—संज्ञा पुं० [हिं० छर] (१) कणों वा छर्रों के वेग से निकलने और दूसरी वस्तुओं पर गिरने का शब्द। उ०—तिहि फिर मंडल बीच परी गोली झर झर झर। तहँ कुछिप कर गौर श्रोन छुट्टिय छत छर छर।—सूदन। (२) पतली लचीली छड़ी के लगने का शब्द। सट सट। उ०—काहे को हरि इतनो त्रास्यो। सुन री मैया मेरो भैया कितनो गोरस नास्यो। जब रजु सों कर गाढ़ो बाँधे छर छर मारी साँटी।—सूर।

छरछराना—क्रि० अ० [सं० क्षार, हिं० छार] (१) नमक या क्षार आदि लगने से शरीर के घाव या छिले हुए स्थान में पीड़ा होना। जैसे, हाथ छरछरा रहा है। (२) क्षार, नमक आदि का शरीर के घाव या कटे हुए स्थान पर लगा कर पीड़ा उत्पन्न करना। उ०—नमक घाव पर छरछराता है।

क्रि० अ० [अनु० छर छर] कणों को वेग से किसी वस्तु पर गिराना वा बिखराना।

छरछराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० छरछराना] (१) छर्रों वा कणों के वेगपूर्वक एक साथ निकलने और गिरने का भाव। (२) घाव में नमक आदि लगने से उत्पन्न पीड़ा।

छरना—क्रि० अ० [सं० क्षरण, प्रा० छरण] (१) चूना। बहना। टपकना। झरना। उ०—ऊँची अटा घटा इव राजहिँ छरति छटा छिति छोरैं।—रघुराज।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) चकचकाना। चुचुवाना। उ०—विथुरी अलक, शिथिल कटि डोरी नखछत छरितु मरालगामिनी।—सूर। (३) छूँटना। दूर होना। न रह जाना। उ०—अब हरि मुरली अधर धरत। खग मोहे, मृगयूथ भुलाने, निरखि मदन छवि छरत।—सूर।

क्रि० अ० [हिं० छलना] भूत प्रेत आदि द्वारा मोहित होना।

संयो० क्रि०—जाना।

†*क्रि० स० [हिं० छलना] छलना। धोखा देना। ठगना। मोहित करना। भुलाना। उ०—तू काँवरू परावस टोना। भूला योग छरा तेहि सोना।—जायसी।

क्रि० स० दे० "छड़ना"।

छरपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० शैल + फूल] (१) छरीला। (२) एक पुड़िया जिसमें छरपुरी आदि सुगंधित द्रव्य होते हैं और जो विवाहों में चढ़ाए जाते हैं।

छरभार*†—संज्ञा पुं० [सं० सार + भार] (१) प्रबंध वा कार्य्य का बोझा। कार्य्यभार। उ०—(क) देस कोस परिजन परिवारू गुरु पद रजहिँ लाग छर भारू।—तुलसी। (ख) लखि अपने सिर सब छर भारू। कहि न सकहिँ कछु करहिँ बिचारू।—तुलसी। (२) झंझट। बखेड़ा।

छरहरा—वि० [हिं० छड़ + हरा (प्रत्य०)] [स्त्री० छरहरी, संज्ञा छरहरापन] (१) क्षीणांग। सुबुक। हलका। जो मोटा या भद्दा न हो। जैसे, छरहरा बदन। उ०—राधिका संग मिलि गोप नारी। चलीं हिलि मिलि सबै रहसि विहँसति तरुनि परस्पर कौतुहल करत भारी।............... युवति आनंद भरी भई जुरि कै खरी नई छरहरी उठि बैस थोरी।—सूर। (२) चुस्त। चालाक। तेज़। फुरतीला।

† वि० [हिं० छल + हारा (प्रत्य०)] बहुरूपिया।

छरहरापन—संज्ञा पुं० [हिं० छरहरा + पन] (१) क्षीणांगता। सुबुकपना। (२) चुस्ती। फुरती।

छरा—संज्ञा पुं० [सं० शर, हिं० छड़] (१) छड़ा। (२) लर। लड़ी। उ०—गुंजहरा के छरा उर में पट पीत पितंबर की छबि न्यारी। (३) रस्सी। उ०—टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सो सबै धन दैहौं।—रसखान। (४) नारा। इजारबंद। नीवी। उ०—(क) कहै पद्माकर नवीन अधनीबी खुली अध खुले छहरि छरा के छोर छलकैं।—पद्माकर। (ख) तहँ प्रीतम ढीठ भए रस के बस हाथ चलावत जोरी करें। गिरि जच्छ-वधून के बस्त्र कछू खिँचि, छोर छरान की डोरी परें।—लछमणसिंह।

छरिंदा—वि० दे० "छरीदा"।

छरिया—संज्ञा पुं० [हिं० छड़ी] छड़िया। छड़ी बरदार। चोबदार।

छरिला—संज्ञा पुं० दे० "छरीला"।

छरी†*—संज्ञा स्त्री० दे० "छड़ी"।

वि० (१) दे० "छड़ो"। (२) दे० "छली"।

छरीदा—वि० [अ० जरीदः] (१) अकेला। तने तनहा। बिना किसी संगी साथी का। (२) बिना कोई बोझ वा असबाब लिए। (यात्रा के संबंध में इस शब्द का प्रयोग अधिक होता है)।

छरीदार*—वि० संज्ञा पुं० दे० "छड़ीदार"।

छरीला—संज्ञा पुं० [सं० शैलेय] काई की तरह का एक पौधा जिसमें केसर वा फूल नहीं लगते। यह वास्तव में खुमी के समान परांगभक्षी (Parasite) पौधा है जो भिन्न भिन्न प्रकार की काइयों पर जम कर उन्हीं के साथ मिल कर अपनी वृद्धि करता है। यह सीड़वाली ज़मीन तथा कड़ी से कड़ी चट्टानों पर उभड़े हुए चकत्तों वा बाल के लच्छों के रूप में फैलता है और कुछ भूरापन लिए होता है। यह पौधा अधिक से अधिक गरमी या सरदी सह सकता है, यहाँ तक कि जहाँ और कोई वनस्पति नहीं हो सकती वहाँ भी यह पाया जाता है। सूखने पर इसमें से एक प्रकार की मीठी सुगंध आती है जिसके कारण यह मसालों में पड़ता है। औषध में भी इसका प्रयोग होता है। वैद्यक में यह चरपरा, कड़ुआ, कफ

और वात-नाशक और तृष्णा वा दाह को दूर करनेवाला माना जाता है तथा खाज, कोढ़, पथरी आदि रोगों में दिया जाता है। इसे पथरफूल और बुढ़ना भी कहते हैं। हिमालय पर यह चट्टानों, पेड़ों आदि पर बहुत दिखाई देता है।

पर्य्या०—शैलेय। शैलाख्य। वृद्ध। शिलापुष्प। गिरिपुष्पक। शिलासन। शैलज। शिलेय। कालानुसार्य। गृह। पलित। जीर्ण। शिलादद्रु।

छरोरा—संज्ञा पुं० [सं० क्षुर, पू० हिं० छिलोरा = छिलना] खरोंच। शरीर में काँटे या और किसी नुकीली वस्तु के खुभ कर कुछ दूर तक खिंच जाने के कारण पड़ी हुई लकीर। उ०—पैहैं छरोर जो पातन को फटिहैं पटके हूँ तो हैं न डरैहैं।

छर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] वमन। कै करना।

छर्दि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वमन। कै। उलटी। (२) एक रोग जिसमें रोगी के मुँह से पानी छूटता है और उसे मतली आती है और वमन होता है। वैद्यक में इस रोग के दो भेद माने गए हैं—एक साधारण जो कड़ुई, नमकीन, पनीली वा तेल की चीजें अधिक खाने तथा अधिक और अकाल भोजन करने से हो जाता है। अन्य रोगों के समान इसके भी चार भेद हैं—वातज, पित्तज, श्लेष्मज और त्रिदोषज। दूसरा आगंतुक जो अत्यंत श्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण आदि के कारण से उत्पन्न होता है। वैद्यक में यह पाँच प्रकार का माना गया है—वीभत्स, दौहृदज, आमज, असात्म्यज और कृमिज। इस रोग से कास, श्वास, ज्वर आदि भी हो जाते हैं।

पर्य्या०—प्रच्छर्दिका। छर्द। वमन। वमि। छर्दिका। वांति। उद्गार। छर्दन। उत्कासिका।

संज्ञा स्त्री० [सं० छर्दिस्] (१) घर। (२) तेज। (३) उद्गार। वमन।

छर्दिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वमन। (२) विष्णुक्रांता।

छर्दिकारिपु—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची।

छर्दिघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] महानिंब। बकाइन।

छर्रा—संज्ञा पुं० [हिं० छरना, झरना वा अनु० छरछर] (१) छोटी कंकड़ी। कंकड़ आदि का छोटा टुकड़ा। (२) लोहे वा सीसे के छोटे छोटे टुकड़ों का समूह जो बंदूक में भर कर चलाया जाता है। (३) वेग से फेंके हुए पानी के छोटे छोटे छींटों वा कणों का समूह।

छलंक, छलंगा—संज्ञा स्त्री० दे० "छलांग"।

छल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वास्तविक रूप को छिपाने का कार्य्य जिससे कोई वस्तु या कोई बात और की और देख पड़े। वह व्यवहार जो दूसरे को धोखा देने वा बहलाने के लिये किया जाता है। (२) व्याज। मिस। बहाना। (३) धूर्त्तता। वंचना। ठगपना।

यो०—छल कपट। छल छिद्र।

(४) कपट। दंभ। (५) युद्ध के नियम के विरुद्ध शत्रु पर शस्त्र-प्रहार। (६) न्याय शास्त्र के सोलह पदार्थों में से चौदहवां पदार्थ जिसके द्वारा प्रतिवादी वक्ता की बात का वाक्य के अर्थ-विकल्प द्वारा विघात वा खंडन करता है। यह तीन प्रकार का माना गया है—वाक्छल, सामान्यछल और उपचारछल—। जिसमें साधारणतः कहे हुए किसी वाक्य का वक्ता के अभिप्राय से भिन्न अर्थ कल्पित किया जाता है वह वाक्छल कहलाता है; जैसे किसी ने कहा कि 'यह बालक नव कंबल लिए है'। इस पर प्रतिवादी वा छलवादी नव शब्द का वक्ता के अभिमत अर्थ से भिन्न अर्थ कल्पित करके खंडन करता है और कहता है कि "बालक नव कंबल कहाँ लिए है, उसके पास तो एक ही है।" जिसमें संभावित अर्थ का अति सामान्य के योग से असंभूत अर्थ कल्पित किया जाय वह सामान्य छल है, जैसे किसी ने कहा कि 'ब्राह्मण विद्याचरण संपन्न होता है। इस पर छलवादी कहता है "हाँ विद्याचरण संपन्न होना तो ब्राह्मण का गुण ही है पर यदि यह गुण ब्राह्मण का है तो व्रात्य भी विद्याचरणसंपन्न होगा क्योंकि वह भी ब्राह्मण ही है।" धर्मविकल्प (मुहाविरा, अलंकार, लक्षणा, व्यंजना आदि) द्वारा सूचित अभिप्रेत अर्थ का जहाँ शब्दों के मूल अर्थ आदि को लेकर निषेध किया जाय वहाँ उपचारछल होता है, जैसे, किसी ने कहा—'सारा घर गया है", इस पर प्रतिवादी कहता है कि "घर कैसे जायगा ? घर तो जड़ है।"

संज्ञा पुं० [अनु०] जल के छींटों के गिरने का शब्द। पानी की धार जो पथिकों को ऊपर से पानी पिलाने में बँध जाती है।

मुहा०—छल पिलाना = कटोरे बजा बजा कर राह चलते पथिकों को पानी पिलाना।

छलक—संज्ञा स्त्री० [हिं० छलकना] छलकने का भाव वा क्रिया।

संज्ञा पुं० [सं०] छल करनेवाला।

छलकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० छलकना] (१) छलकने का भाव। पानी आदि की उछाल। पानी या और किसी पतले पदार्थ के हिलने डोलने के कारण उछल कर बरतन से बाहर आने का भाव। (२) उद्गार। स्फुरण। उ०—छवि छलकन भरी पीक पलकन त्योंही श्रम जलकन अधिकाने च्वै।—पद्माकर।

छलकना—क्रि० अ० [अनु०] (१) पानी या और किसी पतली चीज का हिलने डोलने आदि के कारण बरतन से उछल कर बाहर गिरना। आघात के कारण पानी आदि का बरतन से ऊपर उठ कर बाहर आना। (इस शब्द का प्रयोग पात्र और पात्र में भरे हुए जल आदि दोनों के लिये होता है, जैसे, अधजल गगरी छलकत जाय।) (२) उमड़ना। बाहर प्रकट होना।

उद्गारित होना। उ०—(क) मनहु उमगि अँग अँग छवि छलकै।—तुलसी।—(ख) गोकुल में गोपिन गोबिंद संग खेली फाग राति भरि, प्रात समय ऐसी छवि छलकै।—पद्माकर।

छलकाना—क्रि० स० [हिं० छलकना] किसी पात्र में भरे जल आदि को हिला डुला कर बाहर उछालना।

छलछंद—संज्ञा पुं० [हिं० छल + छंद] [वि० छलछंदी] कपट का जाल। कपट का व्यवहार। चालबाजी। धूर्त्तता।

छलछंदी—वि० [हिं० छलछंद] कपटी। धूर्त्त। चालबाज़। धोखेबाज़।

छलछलाना—क्रि० अ० [अनु०] छल छल शब्द करना। पानी आदि थोड़ा थोड़ा करके गिराना जिसमें छल छल शब्द उत्पन्न हो।

छलछिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] कपट व्यवहार। धूर्त्तता। धोखेबाज़ी। उ०—मोहिं सपनेहु छलछिद्र न भावा।—तुलसी।

छलछिद्री—संज्ञा पुं० [हिं० छलछिद्र] धोखेबाज। छली। कपटी।

छलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छलित] छल करने का कार्य्य।

छलना—क्रि० स० [सं० छल] किसी को धोखा देना। भुलावे में डालना। दग़ा देना। प्रतारित करना।

संज्ञा स्त्री० [सं०] धोखा। छल। प्रतारणा।

छलनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चालना वा सं० क्षरण] महीन कपड़े वा छेददार चमड़े से मढ़ा हुआ एक मँडरेदार बरतन जिसमें चोकर, भूसी आदि अलग करने के लिये आटा छानते हैं। आटा चालने का बरतन। चलनी।

मुहा०—किसी वस्तु को छलनी कर डालना वा देना = (१) किसी वस्तु में बहुत से छेद कर डालना। (२) किसी वस्तु को बहुत से स्थानों पर फाड़ कर बेकाम कर डालना। (किसी वस्तु का) छलनी हो जाना = (१) किसी वस्तु में बहुत से छेद हो जाना। (२) किसी वस्तु का स्थान स्थान पर फट कर बेकाम हो जाना। छलनी में डाल छाज में उड़ाना = बात का बतंगड़ करना। थोड़ी सी बुराई या दोष को बहुत बढ़ा कर कहना। थोड़ी सी बात को लेकर चारों ओर बढ़ा बढ़ा कर कहते फिरना। (स्त्रि०) कलेजा छलनी होना = (१) दुःख वा झंझट सहते सहते हृदय जर्जर हो जाना। निरंतर कष्ट से जी ऊब जाना। (२) जी दुखानेवाली बात सुनते सुनते घबड़ा जाना।

छलहाई*†—वि० स्त्री० [सं० छल + हा (प्रत्य०)] छली। कपटी। चालबाज। धूर्त्त। उ०—ये छलहाई लुगाई सबै निसि द्यौस निवाज हमें दहती हैं।—निवाज।

† संज्ञा स्त्री० छल। कपट।

छलाँग—संज्ञा स्त्री० [हिं० उछल + अंग] पैरों को एक बारगी दूर तक फेंक कर वेग के साथ आगे बढ़ने का कार्य्य। कुदान। फलाँग। चौकड़ी।

क्रि० प्र०—भरना।—मारना।

छलाँगना†—क्रि० अ० [हिं० छलांग] चौकड़ी भरना। कूद कर आगे बढ़ना। फलांग मारना।

छला*†—संज्ञा पुं० [सं० छल्ली = लता] छल्ला। उँगली में पहनने का गहना। उ०—छला परोसिनि हाथ तें छल करि लियो पिछानि। पियहिँ दिखायो लखि बिलखि रिससूचक मुसकानि।—बिहारी।

† संज्ञा स्त्री० [सं० छटा] आभा। चमक। दीप्ति। झलक।

छलाई*—संज्ञा स्त्री० [हिं० छल + आई (प्रत्य०)] छल का भाव। कपट। उ०—पंडु के पूत कपूत सपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई।—तुलसी।

छलाना—क्रि० स० [हिं० छलना का प्रे०] धोखे में डलवाना। धोखा दिलाना। प्रतारित कराना। उ०—कुमुदिनि तुव बैरिनि नहिँ धाई। मोहि मसि बोलि छलावसि आई।—जायसी।

छलावा—संज्ञा पुं० [हिं० छल] (१) भूत प्रेत आदि की छाया जो एक बार दिखाई पड़ कर फिर झट से अदृश्य हो जाती है। मायादृश्य।

मुहा०—छलावा सा = बहुत चंचल। उ०—कर तेँ छटकि छूटी छलकि छलावा सी।—हरिश्चंद्र।

(२) अगिया बैताल। उल्कामुख प्रेत। वह प्रकाश या लुक जो दलदलों के किनारे वा जंगलों में रह रह कर दिखाई पड़ता है और गायब हो जाता है।

मुहा०—छलावा खेलना = अगिया बैताल का इधर उधर दिखाई पड़ना। इधर उधर लुक फिरता हुआ दिखाई देना।

(३) चपल। चंचल। शोख। (४) इंद्रजाल। जादू।

छलिक—संज्ञा पुं० [सं०] नाट्य शास्त्र में रूपक का एक भेद।

छलित—वि० [सं०] छला हुआ। जिसे धोखा दिया गया हो। प्रतारित। वंचित।

छलितक—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक का एक भेद।

छलिया—वि० [सं० छल + हिं० इया (प्रत्य०)] छल करनेवाला। कपटी। धोखेबाज। उ०—(क) यह छलिया सपने मिलि मोसों। गयो पराय कहाँ सति तोसों।—रघुराज। (ख) वा छलिया ने बनाय के खासो पठायो है याहि न जाने कहाँ सों।—हरिश्चंद्र।

छली—वि० [सं० छलिन] छल करनेवाला। कपटी। धोखेबाज।

छलौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाला] एक रोग जिस में उँगलियों के नाखून के भीतर छाला पड़ जाता है और पीड़ा होने लगती है। कभी कभी नाखून पक भी जाता है। लोगों में यह प्रवाद है कि यह रोग उस मिट्टी के लगने से होता है जिस पर साँप का मद गिरा रहता है।

छल्ला–संज्ञा पुं० [सं० छल्ली = लता] (१) वह सादी अँगूठी जो धातु के तार के टुकड़े को मोड़ कर बनाई जाती है। मुँदरी। (यह हाथ पैर की उँगलियों में पहनी जाती है।) (२) अँगूठी की तरह की कोई मंडलाकार वस्तु। कड़ा। कुंडली। (३) नैचे की बंदिश में वे गोल चिह्न जो रेशम वा तार लपेट कर बनाए जाते हैं। (४) वह पक्की पतली दीवार जो ऊपर से दिखाने वा रक्षा के लिये कच्ची दीवार से लगा कर बनाई गई हो। (५) तेल की बूँदें जो नीबू आदि के अर्क़ की बोतल में ऊपर से इसलिये डाल दिए जाते हैं जिसमें अर्क़ बिगड़ने न पावे। (६) एक प्रकार का पंजाबी गीत वा तुकबंदी जिसे गा गा कर हिँजड़े भीख माँगते हैं।

छल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छाल। (२) लता। (३) संतति। (४) एक प्रकार का फूल।

छल्लेदार–वि० [हिं० छल्ला + फा० दार] (१) जिसमें छल्ले लगे हों। (२) जिसमें मंडलाकार चिह्न वा घेरे बने हों।

छवना–संज्ञा पुं० [सं० शाव, शावक] [स्त्री० छवनी] (१) बच्चा। उ०—भई है प्रगट अति दिव्य देह धरि मानो त्रिभुवन-छवि छवनी।—तुलसी। (२) सूअर का बच्चा।

छवा*†–संज्ञा पुं० [सं० शावक] बछड़ा। किसी पशु का बच्चा। उ०—(क) तैं रनकेहरि केहरी के विदले अरि कुंजर छैल छवा से।—तुलसी। (ख) हय हंकि धमंकि उठाइ रनं। जिमि सिंह छवा कढ़ि रैन वनं।—सूदन।

संज्ञा पुं० [देश०] एँड़ी। उ०—(क) छवान की छुई न जाति शुभ साधु माधुरी।—केशव। (ख) ऐसे दुराज दुहूँ वय के रुव ही को लगे अब चौचँद सूझन। लूटन लागी प्रभा कढ़ि कै बढ़ि केस छवान सों लागे अरूझन।—रसकुसुमाकर।

छवाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० छाना, छावना] (१) छाने का काम (२) छाने की मज़दूरी।

छवाना–क्रि० स० [हिं० छाना का प्रे०] छाने का काम कराना।

छवि–संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० छवीला] (१) शोभा। सौंदर्य्य। (२) कांति। प्रभा। चमक।

संज्ञा स्त्री० [अ० शबीह] चित्र। फोटो। प्रतिकृति।

छवाली–संज्ञा स्त्री० [हिं० छ + वाला] छोटी जटवाली जो पत्थर आदि उठाने के काम में आती है।

छवैया–संज्ञा पुं० [हिं० छाना] छानेवाला। जो छप्पर आदि छावे।

छहा†–वि० दे० "छ"।

छही–संज्ञा स्त्री० [देश०] वह चिड़िया (प्रायः कबूतर) जो अपने अड्डे से उड़ कर दूसरे के अड्डे पर जा रहे और फिर कुछ दिनों में वहाँ की कुछ चिड़ियों को बहका कर अपने अड्डे पर ले आवे। कुट्टा। मुल्लां।

छहरना*–क्रि० अ० [सं० क्षरण, प्रा० खरण, छरण] (१) छितराना। बिखरना। छिटकना। फैलना। उ०—(क) छवि केसरि की छहरै तन तें कढ़ि बाहर से तन चोलिन पै।—सुंदरीसर्वस्व। (ख) जनु इंदु उयो अवनी तल तें चहुँ ओर छटा छवि की छहरी।—सुंदरीसर्वस्व।

छहरा†–वि० [हिं० छ + हरा (प्रत्य०)] (१) छ परत का। छ पल्लेवाला। (२) उपज का छठाँ (भाग)।

छहराना*–क्रि० अ० [सं० क्षरण] छितराना। बिखरना। चारों ओर फैलना। उ०—(क) कंचुकि चूर चूर भइ तानी। टूटे हार मोति छहरानी।—जायसी। (ख) नीरज तें कढ़ि नीर नदी छवि छीजत छीरधि पै छहरानी। (ग) जेहि पहिरे छगुनी अरी, छिगुनी छवि छहराहिं।

क्रि० स० बिखराना। छितराना। फैलाना। उ०—सीख लै संग सखी सुमुखी छवि कोटि छपाकर की छहरावति।—देव।

क्रि० स० [सं० क्षार] क्षार करना। भस्म करना। उ०—न्यौछावर कै तन छहरावहुँ। छार होहुँ सँग बहुरि न आवहुँ।—जायसी।

छहरीला†–वि० [हिं० छरहरा] [स्त्री० छहरीली] (१) छरहरा। हलका। (२) फुरतीला। चुस्त।

छहियाँ†–संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँहीं] छाँह। छाया। उ०—दशरथ कौशल्या आगे लसत सुमन की छहियाँ। मानो चारि हंस सरवर ते बैठे आइ सदहियाँ।—सूर।

छाँ–संज्ञा स्त्री० दे० "छाँह"।

छाँक–संज्ञा पुं० [फा० चाक] खंड। टुकड़ा। जैसे, बदली का छाँक। (लश०)

छाँगना–क्रि० स० [सं० छिन्न + करण] काटना। छाँटना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग प्रायः कुल्हाड़ी आदि से पेड़ की डाल टहनी आदि काटने के अर्थ में होता है। पूरबी हिंदी में 'छिनगाना' कहते हैं।

छाँगुर–संज्ञा पुं० [हिं० छ + अंगुल] छ उँगलीवाला। वह मनुष्य जिसके पंजे में छ उँगलियाँ हों।

छाँछ–संज्ञा स्त्री० दे० "छाछ"।

छाँट–संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँटना] (१) छाँटने की क्रिया। छिन्न करने की क्रिया। काटने वा कतरने की क्रिया।

यौ०—काट छाँट।

(२) काटने वा कतरने का ढँग।

यौ०—काट छाँट।

(३) बेकाम टुकड़े जो किसी वस्तु के विशेष रूप से कटने पर निकलते हैं। कतरन। (४) भूसी वा कना जो अनाज छाँटने पर निकलता है। (५) अलग की हुई निकम्मी वस्तु।

†संज्ञा स्त्री० [सं० छर्दि, प्रा० छड्डि] वमन। कै।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

छाँटन–संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँटना] (१) वह वस्तु जो छाँट दी जाय। कतरन। (२) अलग की हुई निकम्मी वस्तु।

छाँटना–क्रि० स० [सं० खंडन] (१) किसी पदार्थ से उसके किसी अंश को काट कर अलग करना। छिन्न करना। काट कर अलग करना। जैसे, कलम छाँटना, पेड़ छाँटना, सिर के बाल छाँटना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अंग और अंगी दोनों के लिये होता है, जैसे, डाल छाँटना, पेड़ छाँटना।

(२) किसी वस्तु को किसी विशेष आकार में लाने के लिये काटना वा कतरना। जैसे, कपड़ा छाँटना। (दरजी)

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(३) अनाज में से कन वा भूसी कूट फटकार कर अलग करना। अनाज को साफ करने के लिये कूटना फटकना। जैसे चावल छाँटना, तिल छाँटना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

(४) बहुत सी वस्तुओं में से कुछ को प्रयोजनीय वा निकम्मी समझ कर अलग करना। लेने के लिये चुनना वा निकालने के लिये पृथक् करना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

विशेष—चुनने के अर्थ में संयो० क्रि०—'लेना' का प्रयोग होता है और निकालने के अर्थ में संयो० क्रि०—'देना' का प्रयोग होता है। जैसे, (क) हम अच्छे अच्छे आम छाँट लेंगे। (ख) हम सड़े आम छाँट देंगे। पर जहाँ दूसरे के द्वारा छाँटने का काम कराना होता है वहाँ संयो० क्रि०—'देना' का प्रयोग चुनने वा ग्रहण करने के अर्थ में भी होता है, जैसे, मेरे लिये अच्छे अच्छे आम छाँट दो।

(५) गंदी वा बुरी वस्तु निकालना। दूर करना। हटाना। उ०—(क) यह दवा ख़ूब कफ़ छाँटती है। (ख) यह साबुन ख़ूब मैल छाँटता है। (६) साफ करना। गंदी वा निकम्मी वस्तुओं को निकाल कर शुद्ध करना। जैसे, कुआँ छाँटना। उ०—उस दवा ने ख़ूब पेट छाँटा। (७) किसी वस्तु का कुछ अंश निकाल कर उसे छोटा या संक्षिप्त करना। (८) गढ़ गढ़ कर बातें करना। हिंदी की चिंदी निकालना। जैसे, क़ानून छाँटना, बातें छाँटना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता कुछ शब्दों के साथ ही होता है।

(९) अलग रखना। दूर रखना। सम्मिलित न करना। उ०—तुम समय पर हमें इसी तरह छाँट दिया करते हो।

छाँड़ चिट्ठी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँड़ना + चिट्ठी] वह पत्र वा परवाना जिसे देख कर उसके रखनेवाले व्यक्ति को कोई रोक न सके। रवन्ना।

छाँड़ना*†–क्रि० स० [सं० छर्दन, प्रा० छड्डन] छोड़ना। त्यागना। उ०—सप्त दीप भुज बल बस कीन्हें। लेइ लेइ दंड छाँड़ि सब दीन्हें।—तुलसी।

छाँद–संज्ञा स्त्री० [छंद = बंधन] (१) एक छोटी रस्सी जिससे घोड़े गदहे आदि के दो पैरों को एक दूसरे से सटा कर बाँध देते हैं जिसमें वे दूर तक भाग न सकें बल्कि कूद कूद कर इधर उधर चरते रहें। (२) वह रस्सी जिससे अहीर गाय दुहते समय बछड़े को गाय के पैर में बाँध देते हैं। नोई।

छाँदना–क्रि० स० [सं० छंदन] (१) रस्सी आदि से बाँधना। जकड़ना। कसना।

यौ०—बाँधना छाँदना। उ०—असबाब बाँध छाँद कर रख दो।

(२) घोड़े या गदहे के पिछले पैरों को एक दूसरे से सटा कर बाँध देना जिसमें वह दूर तक भाग न सके, आस ही पास चरता रहे। (३) किसी के पैरों को दोनों हाथों से जकड़ कर बैठ जाना और उसे जाने न देना। उ०—वह स्त्री अपने स्वामी का पैर छाँद कर बैठ गई और रोने लगी।

मुहा०—पैर छाँदना = जाने से रोकना। रोकना।

छांदस–वि० [सं०] (१) वेदज्ञ। वेदपाठी। (२) वेद संबंधी। (३) रट्टू। (४) मूर्ख।

छाँदा†–संज्ञा पुं० [हिं० छाँदना] हिस्सा। बखरा। भाग।

संज्ञा पुं० [हिं० छानना] उत्तम भोजन। पकवान।

क्रि० प्र०—उड़ाना।

छांदोग्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सामवेद का एक ब्राह्मण जिसके प्रथम दो भागों में विवाह आदि संस्कारों का वर्णन है और अंतिम आठ प्रपाठकों में उपनिषद है। इस पर स्वामी शंकराचार्य्य का भाष्य है। (२) छांदोग्य ब्राह्मण का उपनिषद्। प्रथम प्रपाठक (ब्राह्मण के तृतीय) में १३ खंड हैं जिनमें प्रायः ओ३म् का ही वर्णन है। दूसरे में २४ खंड हैं जिनमें यज्ञों की विधि और मंत्रों के गायन की शिक्षा बड़े विस्तार से है। तीसरे प्रपाठक के १९ खंड हैं जिनमें सृष्टि की उत्पत्ति आदि का वर्णन तथा ब्रह्म-विद्या का सूक्ष्म विचार है। त्रिकाल संध्या और सूर्य्य के जप आदि का भी विवरण है। चौथे प्रपाठक में १७ खंड हैं जिनमें सत्यकाम जाबालि के प्रति उपदेश है, यज्ञों की विधियाँ बताई गई हैं और ऋक् यजु साम के भूः भुवः स्वः यथाक्रम तीन देवता मान कर तप के विधान का प्रतिपादन है। पाँचवें प्रपाठक के २४ खंड हैं। इसी में प्राण और इंद्रियों का वर्णन है और गाथा द्वारा यह बतलाया गया है कि अग्निहोत्र से सृष्टि की वृद्धि होती है, उसी से मेघ होता है, मेघ से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न होता है, अन्न से रस होता है और रस से संतान आदि की वृद्धि होती है। छठें प्रपाठक में १६ खंड हैं जिनमें उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को सृष्टि की

उत्पत्ति आदि का वर्णन करके कहा है कि "हे श्वेतकेतु ! तू ही ब्रह्म है"। इस प्रपाठक में वेदांत का महावाक्य "तत्त्वमसि" कई बार आया है। सातवें प्रपाठक में, जिसमें २६ खंड हैं, सनत्कुमारों ने नारद को आतुर देख उन्हें ब्रह्म विद्या का उपदेश किया है। नारद जी ने कहा है कि मैंने वेद, इतिहास, पुराण, राशिविद्या, दैवविद्या, निधिविद्या वाकोवाक्य विद्या, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्र विद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पदेवजन-विद्या, इत्यादि बहुत सी विद्याएँ सीखी हैं। इन विद्याओं से आज कल लोग भिन्न भिन्न अभिप्राय निकालते हैं। आठवें प्रपाठक में ब्रह्म-विद्या का स्पष्टता और विस्तार के साथ उपदेश देकर कहा गया है कि ब्रह्मज्ञान के पश्चात् जन्म नहीं होता।

छाँवँ–संज्ञा स्त्री० दे० "छावँ"।

छाँवड़ा*–संज्ञा पुं० [सं० शावक, हिं० छौना] [स्त्री० छाँवड़ी छौंड़ी] (१) जानवर का बच्चा। किसी पशु का छोटा बच्चा। उ०—धरिये न पाँव वलि जाँव राधे चंद्रमुखी वारौं गति मंद पै गयंदपति छाँवड़े।—देव। (२) छोटा बच्चा। बालक।

छाँस–संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँटना] (१) भूसी वा कन जो अनाज छाँटने से निकलता है। (२) कूड़ा करकट।

छाँह–संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] (१) छाया। वह स्थान जहाँ आड़ वा रोक के कारण धूप वा चाँदनी न पड़ती हो। जैसे, पेड़ की छाँह। उ०—हरखित भये नँदलाल बैठि तरु छाँह में। —सूर।

मुहा०—छाँह में होना = ओट में होना। छिपना। उ०—पंथ अति कठिन पथिक कोऊ संग नाहिँ तेज भए तारागन छाँह भयो रवि है।

(२) ऐसा स्थान जिसके ऊपर मेह आदि रोकने के लिये कोई वस्तु हो। ऊपर से आवृत या छाया हुआ स्थान। (३) शरण। संरक्षा। बचाव या निर्वाह का स्थान। उ०—अब तो तुम्हारी छाँह में आ गए हैं जो चाहे सो करो।

यौ०—छत्रछाँह।

(४) पदार्थों का छायारूप आकार जो उनके पिंडों पर प्रकाश रुकने के कारण धूप, चाँदनी वा प्रकाश में दिखाई पड़ता है। परछाईं। उ०—आँगन में आई पछताई ठाढ़ी देहली में, छाँह देखै आपनी औ राह देखै पिय की।

मुहा०—छाँह न छूने देना = पास न फटकने देना। निकट तक न आने देना। छाँह बचाना = दूर दूर रहना। पास न जाना। अलग रहना। छाँह छूना = पास जाना। पास फटकना। उ०—मुँह माहीँ लगी जक नाहीँ मुबारक, छाहीं छुए छरकै उछलै।—मुबारक।

(५) प्रतिबिंब। पदार्थों का आकार जो पानी, शीशे आदि में दिखाई पड़ता है। उ०—केहि मग प्रविसति जाति कहँ ज्यों दरपन महँ छाँह। तुलसी त्यों जगजीव गति करी जीव के नाँह।—तुलसी। (६) भूत-प्रेत आदि का प्रभाव। आसेब। बाधा। उ०—भाल की, कि काल की, कि रोष की, त्रिदोष की है, वेदना विषम पाप ताप छल छाँह की।—तुलसी।

छाँहगीर–संज्ञा पुं० [हिं० छाँह + फा० गीर] (१) छत्र। राजछत्र। उ०—उयो सरद राका ससी करति क्यों न चित चेत। मनों मदन छितिपाल की छाँहगीर छवि देत।—बिहारी। (२) दर्पण। आइना। (३) छड़ी के सिरे पर बँधा हुआ एक आइना जिसके चारों ओर पान के आकार की किरनें लगी रहती हैं और जो विवाह में दुलहे के साथ आसा आदि की तरह चलता है।

छाँहीं†–संज्ञा स्त्री० दे० "छाँह"।

छाई†–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) राख। (२) पाँस। खाद।

छाक–संज्ञा स्त्री० [हिं० छकना] (१) तृप्ति। इच्छापूर्त्ति। जैसे, छाक भर खाना, प्यास भर पीना। (२) वह भोजन जो काम करनेवाले दोपहर को करते हैं। दुपहरिया। उ०—(क) बलदाऊ देखियत दूर ते आवति छाक पठाई मेरी मैया।—तुलसी। (ख) सुनो महाराज प्रात होते ही एक दिन श्रीकृष्ण बछड़े चरावने बन को चले जिनके साथ सब ग्वाल-बाल भी अपने अपने घर से छाक ले ले हो लिए।—लल्लू। (ग) आई छाक बुलायो स्याम।—सूर। (३) नशा। मस्ती। मद। उ०—(क) उर न टरै नींद न परै, हरै न काल-बिपाक। छिन छाकै उछकै न फिर खरी विषम छवि छाक।—बिहारी। (ख) तजी संक सकुचति न चित बोलति वाक कुवाक। दिन छनदा छाकी रहति छुटति न छिन छवि छाक।—बिहारी। (४) मैदे के बने हुए बड़े बड़े सहाल जो विवाहों में जाते हैं। माठ।

छाकना†*–क्रि० अ० [हिं० छकना] (१) खा पी कर तृप्त होना। अघाना। अफरना। उ०—षट रस भोजन नाना विधि के करत महल के माहीं। छाके खात ग्वाल मंडल में वैसो तो सुख नाहीं।—सूर। (२) मस्त होना। शराब आदि पीकर मातना। उ०—सुख के निधान पाए हिय के पिधान लाए ठग के से लाड़ू खाए प्रेम मधु छाके हैं।—तुलसी।

क्रि० अ० [हिं० छकना = हैरान होना] चकित होना। भौचक्का रह जाना। हैरान होना। उ०—विविधि कला के जिन्हैं ताके सुर बृंद छाके, वासव-धनुष उपमा के तुंगता के हैं।—रघुराज।

छाग–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० छागी] बकरा।

छागन–संज्ञा पुं० [सं०] कंडी वा उपली की आग।

छागभोजी–संज्ञा पुं० [सं० छागभोजिन्] भेड़िया।

छागमय–संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय का आठवाँ मुख।

छागमित्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम।

छागमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्त्तिकेय का छठाँ मुख जो बकरे का सा है। (२) कार्त्तिकेय का एक अनुचर।

छागरा†-संज्ञा स्त्री० [सं० छगल] बकरी।

छागरथ-संज्ञा पुं० [सं] अग्नि।

छागल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बकरा। (२) बकरे की खाल की बनी हुई चीज़।

संज्ञा स्त्री० (१) चमड़े का डोल वा छोटी मशक जिसमें पानी भरा वा रक्खा जाता है। यह प्रायः बकरे के चमड़े का बनता है। (२) मिट्टी का करवा।

संज्ञा स्त्री० [हिं० साँकल] एक गहना जिसे स्त्रियाँ पैरों में पहनती हैं। यह चाँदी की पटरी का गोल कड़ा होता है जिसमें घुँघुरू लगे रहते हैं। झाँजन।

छाछ-संज्ञा स्त्री० [सं० छच्छिका] (१) मथा हुआ दही। वह पनीला दही या दूध जिसका घी वा मक्खन निकाल लिया गया हो। मट्ठा। मही। सारहीन तक्र। (२) वह मट्ठा जो घी या मक्खन तपाने पर नीचे बैठ जाता है। उ०—ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं।

छाछठ†-वि० दे० "छासठ"।

छाछि†-संज्ञा० स्त्री० दे० "छाछ"।

छाज-संज्ञा पुं० [सं० छाद] (१) अनाज फटकने का सींक का बरतन। सूप।

मुहा०—छाज सी दाढ़ी = बड़ी और चौड़ी दाढ़ी। छाजों मेंह बरसना = बहुत पानी बरसना। मूसलाधार पानी बरसना।

(२) छाजन। छप्पर। (३) गाड़ी वा बग्घी के आगे छज्जे की तरह निकला हुआ वह भाग जिसपर कोचवान के पैर रहते हैं।

छाजन-संज्ञा स्त्री० [सं० छादन] (१) आच्छादन। वस्त्र। कपड़ा। उ०—छाजन भोजन प्रीति सों दीजै साधु बुलाय। जीवत जस हो जगत में अंत परमपद पाय।—कबीर।

यौ०—भोजन छाजन = खाना कपड़ा।

(२) छप्पर। छान। खपरैल। उ०—तपै लागि जब जेठ असाढ़ी। भइ मो कँह यह छाजन गाढ़ी।—जायसी। (३) छाने का काम वा ढंग। छवाई। (४) कोढ़ की तरह का एक रोग जिस में उँगलियों के जोड़ के पास तलवा चिड़-चिड़ा कर फटता है और उसमें घाव हो जाता है। यह रोग हाथियों को भी होता है। अपरस।

छाजना-क्रि० अ० [सं० छादन] [वि० छाजित] (१) शोभा देना। अच्छा लगना। भला लगना। फबना। उपयुक्त जान पड़ना। उ०—(क) ओही छाज छत्र औ पाटू। सब राजन भुइँ धरा ललाटू।—जायसी। (ख) जो कछु कहहु तुमहि सब छाजा।—तुलसी। (२) शोभा के सहित विद्यमान् होना। विराजना। सुशोभित होना। उ०—मुकुट मोर पर पुंज मंजु सुर-धनुष विराजत। पीत वसन छिन छिन नवीन छिनछवि छवि छाजत।—मतिराम।

छाजा*†-संज्ञा पुं० [सं० छाद] छज्जा। उ०—ऊँचे भवन मनोहर छाजा, मणि कंचन की भीति।—सूर।

छाजित*-वि० [हिं० छाजना] शोभित।

छाडना, छाड़ना†-क्रि० अ० [सं० छर्दि] कै करना। उलटी करना। वमन करना।

क्रि० स० दे० "छाँड़ना", "छोड़ना"।

छात*-संज्ञा पुं० [सं० छत्र, प्रा० छत्त] (१) छाता। छतरी। (२) राजछत्र। उ०—(क) ओही छाज छात औ पाटा। सब राजै भुइ धरा ललाटा।—जायसी। (ख) रूपवंत मनि दिये ललाटा। माथे छात बैठ सब पाटा।—जायसी। (३) आश्रय। आधार। उ०—हम से ओछ कै पावा छातू। मूल गये सँग रहा न पातू।—जायसी।

वि० [सं०] (१) छिन्न। (२) दुर्बल। कृश।

†संज्ञा स्त्री० दे० "छत"।

छाता-संज्ञा पुं० [सं० छत्र, प्रा० छत्त।] (१) लोहे बाँस आदि की तीलियों पर कपड़ा चढ़ा कर बनाया हुआ आच्छादन जिसे मनुष्य धूप मेंह आदि से बचने के लिये काम में लाते हैं। बड़ी छतरी।

मुहा०—छाता देना वा लगाना = (१) छाते का व्यवहार करना। (२) छाता ऊपर तानना।

(२) छत्ता। खुमी। (३) चौड़ी छाती। विशाल वक्षस्थल। (४) वक्षस्थल की चौड़ाई की नाप।

छाती-संज्ञा स्त्री० [सं० छादिन्, छादी = आच्छादन करनेवाला] (१) हड्डी की ठटरियों का पल्ला जो कलेजे के ऊपर पेट तक फैला होता है। वक्षस्थल। सीना। पेट के ऊपर का भाग जो गरदन तक होता है।

विशेष—छाती की पसलियाँ पीछे की ओर रीढ़ और आगे की ओर एक मध्यवर्ती अस्थिदंड से लगी रहती हैं। इनके भीतर के कोठे में फुप्फुस और कलेजा रहता है। दूध पिलानेवाले जीवों में यह कोठा पेट के कोठे से जिसमें अतड़ी आदि रहती है एक परदे के द्वारा बिलकुल अलग रहता है। पर पक्षियों और सरीसृपों में यह विभाग उतना स्पष्ट नहीं रहता। जलचरों तथा बहुत से रेंगनेवाले जीवों में तो यह विभाग ही नहीं होता।

मुहा०—छाती का जम = (१) दुःखदायक वस्तु वा व्यक्ति। हर घड़ी कष्ट पहुँचानेवाला आदमी वा वस्तु। (२) कष्ट पहुँचाने के लिये सदा घेरे रहनेवाला आदमी। (३) धृष्ट मनुष्य। ढीठ आदमी। छाती पर का पत्थर वा पहाड़ = (१) ऐसी वस्तु जिसका खटका सदा बना रहता हो। चिंता उत्पन्न करनेवाली वस्तु। जैसे, कुआरी लड़की जिसके विवाह

की चिंता सदा बनी रहती है । (२) सदा कष्ट देनेवाली वस्तु । निरंतर दुःख देनेवाली वस्तु । दुःख से दबाए रहनेवाली वस्तु । **छाती कूटना** = दे० 'छाती पीटना' । **छाती के किवाड़** = छाती का पंजर । छाती का परदा वा विस्तार । **छाती के किवाड़ खुलना** = (१) छाती फटना । (२) कंठ से चीत्कार निकलना । गहरी चीख निकलना । उ०—**मैं तो आता ही था तेरी छाती के किवाड़ क्या खुल गए ।** (३) हृदय के कपाट खुलना । हिए की आँख खुलना । हृदय में ज्ञान का उदय होना । अंतर्बोध होना । तत्व का बोध होना । (४) बहुत आनंद होना । **छाती के किवाड़ खोलना** = (१) कलेजा टुकड़े टुकड़े करना । (२) जी खोल कर बात करना । हृदय की बात स्पष्ट कहना । मन में कुछ गुप्त न रखना । (३) हृदय का अंधकार दूर करना । अज्ञान मिटाना । अंतर्बोध कराना । **छाती तले रखना** = (१) पास से अलग न होने देना । सदा अपने समीप व अपनी रक्षा में रखना । (२) अत्यंत प्रिय करके रखना । **छाती तले रहना** = (१) पास रहना । आँखों के सामने रहना । (२) अत्यंत प्रिय होकर रहना । **छाती दरकना** = "दे० छाती फटना" । **छाती निकाल कर चलना** = तन कर चलना । अकड़ कर चलना । ऐंठ कर चलना । **छाती पत्थर की करना** = भारी दुःख सहने के लिये हृदय कठोर करना । **छाती पर मूँग या कोदो दलना** = (१) किसी के सामने ही ऐसी बात करना जिससे उसका जी दुखे । किसी को दिखा दिखा कर ऐसा काम करना जिससे उसे क्रोध वा संताप हो । किसी की आँख के सामने ही उसकी हानि वा बुराई करना । जैसे, **यह स्त्री बड़ी कुलटा है अपने पति की छाती पर कोदो दलती है (अर्थात् अन्य पुरुष से बात चीत आदि करती है)** । (२) अत्यंत कष्ट पहुँचाना । खूब पीड़ित करना । (**स्त्रियाँ 'तेरी छाती पर मूँग दलूँ' कह कर प्रायः गाली देती हैं**) । **छाती पर चढ़ना** = कष्ट पहुँचाने के लिये पास जाना । **छाती पर चढ़ कर ढाई चुल्लू लहू पीना** = कठिन दंड देना । प्राणदंड देना । **छाती पर धर कर ले जाना** = अपने साथ परलोक में ले जाना । (**धन आदि के विषय में लोग बोलते हैं कि "क्या छाती पर धर कर ले जाओगे?"**) । **छाती पर पत्थर रखना** = किसी भारी शोक वा दुःख के आघात का सहना । दुःख सहने के लिये हृदय कठोर करना **छाती पर बाल होना** = उदारता न्यायशीलता आदि के लक्षण होना । (**लोगों में प्रवाद है कि सूम या विश्वासघातक की छाती पर बाल नहीं होता**) । **छाती पर साँप लोटना या फिरना** = (१) दुःख से कलेजा दहल जाना । हृदय पर दुःख शोक आदि का आघात पहुँचना । मन मसोसना । मानसिक व्यथा होना । (२) ईर्ष्या से हृदय व्यथित होना । डाह होना । जलन होना । **छाती पीटना** = (१) छाती पर जोर जोर से हाथ पटकना । (२) दुःख वा शोक से व्याकुल होकर छाती पर हाथ पटकना । शोक के आवेग में हृदय पर आघात करना । (**छाती पर हाथ पटकना शोक प्रकट करने का चिह्न है**) । **जैसे, छाती पीट पीट कर रोना** । **छाती फटना** = (१) दुःख से हृदय व्यथित होना । दुःख शोक आदि से चित्त व्याकुल होना । अत्यंत मानसिक क्लेश होना । अत्यंत संताप होना । (२) ईर्ष्या से हृदय व्यथित होना । चित्त में डाह होना । जी जलना । कुढ़न होना । उ०—**दूसरे की बढ़ती देख कर तुम्हारी छाती क्यों फटती है ?** **छाती फुलाना** = (१) अकड़ कर चलना । तन कर चलना । इतरा कर चलना । (२) घमंड करना । अभिमान दिखलाना । **छाती से पत्थर टलना** = (१) किसी ऐसे भारी काम का हो जाना जिसका भार अपने ऊपर रहा हो । किसी कठिन वा बड़े काम के पूरे होने पर चित्त निश्चिंत होना । किसी ऐसे कार्य्य का पूरा हो जाना जिसका खटका सदा बना रहता हो । (२) बेटी का व्याह हो जाना । **छाती से लगना** = आलिंगन होना । गले लगना । हृदय से लिपटना । **छाती से लगाना** = आलिंगन करना । गले लगाना । प्यार करना । प्रेम से दोनों भुजाओं के बीच दबाना । **छाती से लगा रखना** = (१) अपने पास से जाने न देना । प्रेमपूर्वक सदा अपने समीप रखना । (२) अत्यंत प्रिय करके रखना । अपनी देख रेख और रक्षा में रखना । **बज्र की छाती** = ऐसा कठोर हृदय जो दुःख सह सके । अत्यंत सहिष्णु हृदय ।

(२) **कलेजा । हृदय । मन । जी ।**

मुहा०—छाती उड़ी जाना = दुःख वा आशंका से चित्त व्याकुल होना । कलेजा दहलना । जी घबड़ाना । **छाती उमड़ आना** = प्रेम वा करुणा के आवेग से हृदय परिपूर्ण होना । प्रेम वा करुणा से गद्गद होना । **छाती छलनी होना** = कष्ट वा अपमान सहते सहते हृदय जर्जर हो जाना । बार बार के दुःख वा कुढ़न से चित्त का अत्यंत व्यथित होना । दुःख झेलते झेलते वा कुढ़ते कुढ़ते जी ऊब जाना । उ०—**तुम्हारी बातें सुनते सुनते तो छाती छलनी होगई** । **छाती जलना** = (१) कलेजे पर गरमी मालूम होना । अजीर्ण आदि के कारण हृदय में जलन मालूम होना । (२) शोक से हृदय व्यथित होना । हृदय दग्ध होना । मानसिक व्यथा होना । संताप होना । (३) ईर्ष्या वा क्रोध से चित्त संतप्त होना । डाह होना । जलन होना । उ०—**जौ वह भली नेक हू होती तौ मिलि सबनि बताती । वह पापिनी दाहि कुल आई देखि जरत मोरि छाती ।—सूर ।** **छाती जलाना** = (१) हृदय संतप्त करना । संताप देना । मानसिक व्यथा पहुँचाना । जी जलाना । कष्ट पहुँचाना । (२) कुढ़ाना । चिढ़ाना । **छाती जुड़ाना** = † (१) (क्रि० अ०) दे० "छाती ठंढी होना" । (२) (क्रि० स०) "**छाती ठंढी करना**" । हृदय शीतल करना । चित्त शांत और प्रसन्न करना । हृदय संतुष्ट और प्रफुल्लित करना । इच्छा वा हौसला पूरा

करना। कामना पूर्ण करना। मन का आवेग संग्रह करना। उ०—(क) लेहिँ परस्पर अति प्रिय पाती। हृदय लगाय जुड़ावहिँ छाती।—तुलसी। (ख) खोजत रहेउँ तोंहि सुत घाती। आजु निपाति जुड़ावहुँ छाती।—तुलसी। छाती ठंढी करना = हृदय शीतल करना। चित्त शांत और प्रफुल्लित करना। मन का आवेग शांत करना। मन की अभिलाषा पूर्ण करना। हौंसला पूरा करना। छाती ठंढी होना = हृदय शीतल होना। चित्त शांत और प्रफुल्लित होना। मन का आवेग शांत होना। कामना पूर्ण होना। हौंसला पूरा होना। छाती ठुकना = हिम्मत बँधना। साहस बँधना। चित्त में दृढ़ता होना। उ०—मुंशी चुन्नीलाल और बाबू बैजनाथ ने इनको हिम्मत बँधाने में कसर नहीं रक्खी परंतु इनका मन कमजोर है इससे इनकी छाती नहीं ठुकती। छाती ठोकना = किसी कठिन कार्य्य के करने की साहसपूर्वक प्रतिज्ञा करना। किसी भारी वा कठिन कार्य्य के करने का दृढ़तापूर्वक निश्चय दिलाना। कोई दुष्कर कार्य्य करने का साहस प्रकट करना। हिम्मत बांधना। उ०—मैं छाती ठोक कर कहता हूँ कि उसे आज पकड़ लाऊँगा। छाती धड़कना = भय वा आशंका से हृदय कंपित होना। कलेजा धक धक करना। खटके वा डर से कलेजा जल्दी जल्दी उछलना। जी दहलना। छाती थाम कर रह जाना = ऐसा भारी शोक वा दुःख अनुभव करना जो प्रकट न किया जा सके। कोई भारी मानसिक आघात सह कर स्तब्ध हो जाना। शोक से ठक रह जाना। छाती पकड़ कर रह जाना वा बैठ जाना = दे० 'छाती थाम कर रह जाना'। छाती पक जाना = दे० 'छाती छलनी होना'। छाती पत्थर की करना = अत्यंत शोक वा दुःख सहने के लिये जी कड़ा करना। भारी कष्ट वा संताप सह लेना वा सहने के लिये प्रस्तुत होना। छाती पत्थर की होना = अत्यंत शोक वा दुःख सहने के लिये जी कड़ा होना। हृदय इतना कठोर होना कि वह शोक वा दुःख का आघात सह ले। छाती पर फिरना = घड़ी घड़ी ध्यान में आना। बार बार स्मरण होना। छाती भर आना = प्रेम वा करुणा के आवेग से हृदय परिपूर्ण होना। प्रेम वा करुणा से गद्गद होना। उ०—वारि विलोचन बाँचत पाती। पुलकि गात भरि आई छाती।—तुलसी। छाती मसोसना = चुपचाप हृदय में ऐसा घोर दुःख होना जो प्रकट न किया जा सके। मन ही मन संतप्त होना। छाती में छेद होना वा पड़ना = कष्ट वा अपमान सहते सहते हृदय जर्जर होना। बार बार के दुःख वा कुढ़न से चित्त अत्यंत व्यथित होना। कुढ़ते कुढ़ते वा दुःख झेलते झेलते जी ऊब जाना। उ०—भेदिया सो भेद कहिबो छेद सो छाती परो।—सूर।

(३) स्तन। कुच। उ०—छाइ रहे छद छाती कपोलनि आनन ऊपर ओप चढ़ाई।—'कविराज'।

मुहा०—छाती उभरना = युवावस्था आरंभ होने पर स्त्रियों के स्तन का उठना वा बढ़ना। छाती देना = बच्चे के मुँह में पीने के लिये स्तन डालना। दूध पिलाना। बच्चे को दूध पिलाना। छाती पकना = स्तनों पर क्षत होना। स्तनों पर घाव होना। छाती भर आना = (१) छाती में दूध भर आना। दूध उतरना। (२) दे० "छाती उमड़ना"। (३) अत्यंत दुःख होना। आंखों में आंसू भर आना। छाती मसलना = छाती मलना। स्तन दबाना या मरोड़ना। (संयोग का एक अंग)

(४) हिम्मत। साहस। दृढ़ता। उ०—किस की छाती है जो उसका सामना करे। (५) एक प्रकार की कसरत जो दुबगली के ढंग की होती है। उ०—छाती के डंडे = एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब विपक्षी दोनों ओर से हाथ कमर पर ले जाकर कमर बांध कर झोंका देना चाहता है। इसमें विपक्षी के हाथ को ऊपर से लपेटते हुए खेलाड़ी अपने हाथ मजबूत बांध कर बाहरी वा बगली टांग मारता है।

छात्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिष्य। चेला। विद्यार्थी। अंतेवासी। (२) मधु। (३) छतया नामक मधुमक्खी जो कुछ पीले और कपिल वर्ण की होती है। सरघा। (४) छतया नामक मधु-मक्खी का मधु।

छात्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छतया वा सरघा नामक मधुमक्खी का बनाया मधु। (२) विद्यार्थी।

छात्रगंड—संज्ञा पुं० [सं०] वह शिष्य जो श्लोक का एक चरण मात्र सुन कर सारे श्लोक का भाव समझ जाय। तीक्ष्ण बुद्धिवाला शिष्य।

छात्रदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] ताजा मक्खन।

छात्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वृत्ति वा धन जो विद्यार्थी को विद्याभ्यास की दशा में सहायतार्थ मिला करे।

छात्रालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ विद्यार्थियों के ठहरने का प्रबंध हो। बोर्डिंग हाउस।

छादक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छानेवाला। आच्छादन करनेवाला। (२) छपरबंद। खपरैल वा छप्पर छानेवाला। (३) कपड़ा लत्ता देनेवाला।

छादन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छादित] (१) छाने वा ढकने का कार्य्य। (२) वह जिससे छाया वा ढका जाय। आवरण। आच्छादन। (३) नीला म्लान वृक्ष। नील कोरैया। (४) छिपाव।

छादित—वि० [सं०] ढका हुआ। छाया हुआ। आच्छादित।

छादी—वि० [सं० छादिन्] [स्त्री० छादिनी] छादक। आवरणकारी। आच्छादन करनेवाला।

छाद्मिक—वि० [सं०] (१) वह जो वेश छिपाए हो। पाखंडी। मक्कार। (२) बहुरूपिया।

छान—संज्ञा स्त्री० [सं० छादन = छाजन, छान] छप्पर। घास फूस

की छाजन। उ०—टूटी छानि मेघ जल बरसै टूटे पलंग बिछाइये।—सूर।

यौ०—छान छप्पर = छाजन। खपरैल।

संज्ञा स्त्री० [सं० छंद] वह रस्सी जिससे किसी पशु के पैर बाँधे जांय। बंधन।

छानना-क्रि० स० [सं० चालन वा क्षरण] (१) किसी चूर्ण वा तरल पदार्थ को महीन कपड़े या और किसी छेददार वस्तु के पार निकालना जिसमें उसका कूड़ा करकट अथवा खुरदुरा वा मोटा अंश निकल जाय। जैसे, पानी छानना, शरबत छानना, आटा छानना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

(२) मिली जुली वस्तुओं को एक दूसरे से अलग करना। भली और बुरी अथवा ग्राह्य और त्याज्य वस्तुओं को परस्पर पृथक् करना। बिलगाना। उ०—(क) जानि कै अनजान हुआ तत्व न लीया छानि।—कबीर। (ख) मज्जन पान कियो को सुरसरि कर्मनास जल छानी?—तुलसी। (३) विवेक करना। अन्वीक्षण करना। जांचना। पड़तालना। (४) देख भाल करना। ढूँढ़ना। अनुसंधान करना। अन्वेषण करना। तलाश करना। खोजना। उ०—सारा घर छान डाला पर कागज न मिला।

संयो० क्रि०—डालना।

(५) भेद कर पार करना। किसी वस्तु को छेद कर इस पार से उस पार निकालना। उ०—जब ही मारयो खैंचि के तब मैं मूवा जानि। लागी चोट जो सबद की गई करेजे छानि।—कबीर। (६) नशा पीना। जैसे, भांग छानना, शराब छानना।

क्रि० स० [सं० छंदन, हिं० छाँदना] (१) रस्सी से बाँधना। जकड़ना। रस्सी आदि से कसना।

यौ०—बाँधना छानना। उ०—असबाब बाँध छान कर पहले से रख दो।

(२) घोड़े गदहे आदि के पैरों को रस्सी से जकड़ कर बाँधना। उ०—कबीर प्रगटहि राम कहि छाने राम न गाय। फूस क जोड़ा दूर करु बहुरि न लागै लाय।—कबीर।

छानबीन-संज्ञा स्त्री० [हिं० छानना + बीनना] (१) पूर्ण अनुसंधान था अन्वेषण। जाँच पड़ताल। गहरी खोज। (२) पूर्ण विवेचना। विस्तृत विचार। पूर्ण समीक्षा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

छाना-क्रि० स० [सं० छादन] (१) किसी वस्तु के सिरे वा ऊपर के भाग पर कोई दूसरी वस्तु इस प्रकार रखना वा फैलाना जिसमें वह पूरा पूरा ढक जाय। ऊपर से आच्छादित करना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(२) पानी, धूप आदि से बचाव के लिये किसी स्थान के ऊपर कोई वस्तु तानना वा फैलाना। जैसे, छप्पर छाना, मंडप छाना, घर छाना। उ०—(क) पुष्प नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाहँ मँदिर को छावा?—जायसी। (ख) ऊपर राता चँदवा छावा। औ भुँइ सुरँग बिछाव बिछावा।—जायसी।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग आच्छादन और आच्छादित दोनों के लिये होता है, जैसे, छप्पर छाना, घर छाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

(३) बिछाना। फैलाना। उ०—मायके की सखी सों मँगाय फूल मालती के चादर सों ढांपे छाय तोसक पहल में।—रघुनाथ। (४) शरण में लेना। रक्षा करना। उ०—छत्रहिं अछत, अछत्रहिं छावा। दूसर नाहिं जो सरिबरि पावा।—जायसी।

क्रि० अ० (१) फैलना। पसरना। बिछ जाना। भर जाना। जैसे, बादल छाना, हरियाली छाना। उ०—(क) फूले कांस सकल महि छाई।—तुलसी। (ख) बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए।—तुलसी। (ग) कैसे धरौं धीर वीर पावस प्रबल आयो, छाई हरियाई छिति, नभ बग-पांती है।—बासीराम।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

(२) डेरा डालना। बसना। रहना। टिकना। उ०—(क) जब सुग्रीव भवन फिरि आये। राम प्रवर्षन-गिरि पर छाए।—तुलसी। (ख) हम तो इतने ही सचु पायो। सुंदर श्याम कमल-दल लोचन बहुरि दरस दिखरायो। कहा भयो जो लोग कहत हैं कान्ह द्वारका छायो। सुनि यह दशा बिरहि लोगन की उठि आतुर ह्वै धायो।—सूर।

छानबे-वि० [सं० षण्णवति, प्रा० छण्णवइ वा छ + नब्बे] जो संख्या में नब्बे और छ हो। नब्बे से छ अधिक।

संज्ञा पुं० छानबे की संख्या वा अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—९६।

छानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छान। सं० छादन] ईख के रस की नाद के ऊपर का ढकन जो सरकंडे वा बाँस की पतली फट्टियों का बनता है।

छाप-संज्ञा स्त्री० [हिं० छापना] (१) वह चिह्न जो किसी रंग पुते हुए साँचे को किसी वस्तु पर दबाकर बनाया जाय। खुदे वा उभरे हुए ठप्पे का निशान। जैसे, चंदन वा गेरू की छाप, बूटी की छाप, हथेली की छाप।

क्रि० प्र०—डालना।—लगना।—लगाना।

(२) मुहर का चिह्न। मुद्रा। उ०—दान दिए बिनु जान न पैहौ। माँगत छाप कहा दिखराओं को नहिं हमको जानत। सूरस्याम तब कह्यो ग्वारि सों तुम मों कों क्यों मानत।—सूर।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।—लगाना।

(३) शंख चक्र आदि के चिह्न जिन्हें वैष्णव अपने अंगों पर गरम धातु से अंकित कराते हैं। मुद्रा। उ०—(क) द्वारका छाप लगे भुज मूल पुरानन माहिँ महातम भौन हैं। (ख) मेटे क्यों हूँ न मिटति छाप परी टटकी। सूरदास प्रभु की छवि हिरदय मौ अटकी।—सूर। (४) वह निशान जो साँचे से अन्न की राशि के ऊपर मिट्टी डाल कर लगाया जाता है। चाँक। (५) एक प्रकार की अंगूठी जिसमें नगीने की जगह पर अक्षर आदि खुदा हुआ ठप्पा रहता है। उ०—विद्रुम अंकुर अंगुरि पानि चरै रँग सुंदरता सरसाने। छाप छला मुँदरी झमकैं, दमकैं पहुँची गजरा मिलि माना।—गुमान। (६) कवियों का उपनाम।

संज्ञा स्त्री० [सं० क्षेप = खेप] (१) काँटे वा लकड़ी का बोझ जिसे लकड़िहारे जंगल से सिर पर उठा कर लाते हैं। (२) बाँस की बनी हुई टोकरी जिससे सिँचाई के लिये जलाशय से पानी उलीच कर ऊपर चढ़ाते हैं।

छापना—क्रि० स० [सं० चपन] (१) किसी ऐसी वस्तु को जिस पर स्याही गीला रँग आदि पुता हो दूसरी वस्तु पर रखकर वा छुलाकर उसकी आकृति चिह्नित करना। (२) किसी साँचे को किसी वस्तु पर इस प्रकार दबाना कि उसकी, अथवा उसपर के खुदे वा उभरे हुए चिह्नों की, आकृति उस वस्तु पर उतर आवे। ठप्पे से निशान डालना। मुद्रित करना। अंकित करना। (३) कागज आदि को छापे की कल में दबाकर उसपर अक्षर वा चित्र अंकित करना। मुद्रित करना। जैसे, पुस्तक छापना, अखबार छापना।

छापा—संज्ञा पुं० [हिं० छापना] (१) ऐसा साँचा जिस पर गीला रंग या स्याही आदि पोत कर किसी वस्तु पर उसकी अथवा उसपर खुदे वा उभरे हुए चिह्नों की आकृति उतारते हैं। ठप्पा। जैसे, छीपियों का छापा, तिलक लगाने का छापा। (२) मुहर। मुद्रा। (३) ठप्पे वा मुहर से दबाकर डाला हुआ चिह्न वा अक्षर। (४) व्यापार के माल पर डाला हुआ चिह्न। मारका। (५) शंख, चक्र आदि का चिह्न जिसे वैष्णव अपने बाहु आदि अंगों पर गरम धातु से अंकित कराते हैं। उ०—जप माला छापा तिलक सरे न एकौ काम।—विहारी। (६) पंजे का वह चिह्न जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर हलदी आदि से छाप कर (दीवार कपड़े आदि पर) डाला जाता है। (७) वह कल जिससे पुस्तकें आदि छापी जाती हैं। छापे की कल। मुद्रा यंत्र। प्रेस। दे० 'प्रेस'।

यौ०—छापाखाना।

(८) एक प्रकार का ठप्पा जिससे खलिहानों में राशि पर राख रखकर चिह्न डाला जाता है। यह ठप्पा गोल या चौकोर होता है जिसमें डेढ़ दो हाथ का डंडा लगा रहता है। (९) किसी वस्तु की ठीक ठीक नकल। प्रतिकृति। (१०) रात में सोते हुए वा बेखबर लोगों पर सहसा आक्रमण। रात्रि में असावधान शत्रु पर धावा या वार।

क्रि० प्र०—मारना।

छापाखाना—संज्ञा पुं० [हिं० छापा + फा० खाना] वह स्थान जहाँ पुस्तकें आदि छापी जाती हैं। मुद्रालय। प्रेस।

छाम*—वि० [सं० क्षाम] क्षीण। पतला। कृश। उ०—सीस फूल सरकि सुहावने ललाट लाग्यो लाँबी लटैं लटकि परी हैं कटि छाम पै।—द्विजदेव।

छामोदरी*—वि० [सं० क्षामोदरी] छोटे पेटवाली। कृशोदरी। (छोटा पेट सौंदर्य्य का चिह्न माना जाता है)। उ०—तैहैं सूच्छम छामोदरी कटि केहरि की हरि लंक ना ऐसी।—व्रज।

छायल—संज्ञा पुं० [हिं० छाना] स्त्रियों का एक पहरावा। उ०—भै कटाव कस अंगिया राती। छायल बँद लाए गुजराती।—जायसी।

छायांक—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकाश का अभाव जो उसकी किरनों के व्यवधान के कारण किसी स्थान पर होता है। उजाला डालनेवाली वस्तु और किसी स्थान के बीच कोई दूसरी वस्तु पड़ जाने के कारण उत्पन्न कुछ अंधकार वा कालिमा। वह थोड़ी थोड़ी दूर तक फैला हुआ अँधेरा जिसके आस पास का स्थान प्रकाशित हो। साया। जैसे, पेड़ की छाया, मंडप की छाया।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(२) वह स्थान जहाँ किसी प्रकार की आड़ वा व्यवधान के कारण सूर्य्य, चंद्रमा, दीपक या और किसी आलोकप्रद वस्तु का उजाला न पड़ता हो। (३) फैले हुए प्रकाश को कुछ दूर तक रोकनेवाली वस्तु की आकृति जो किसी दूसरी ओर अंधकार के रूप में दिखाई पड़ती है। परछाईं। जैसे, खंभे की छाया। दे० "छाँह"। (४) जल, दर्पण आदि में दिखाई पड़नेवाली वस्तुओं की आकृति। अक्स। (५) तद्रूप वस्तु। प्रतिकृति। अनुहार। सदृश वस्तु। पटतर। उ०—कहहु सप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कवि मति अनुसरई।—तुलसी। (६) अनुकरण। नकल। उ०—यह पुस्तक एक बँगला उपन्यास की छाया है। (७) सूर्य्य की एक पत्नी का नाम।

विशेष—इनकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है। विवस्वान सूर्य्य की पत्नी संज्ञा थी जिसके गर्भ से वैवस्वत, श्राद्ध देव, यम और यमुना का जन्म हुआ। सूर्य्य का तेज न सह सकने के कारण संज्ञा ने अपनी छाया से अपनी ही ऐसी एक स्त्री उत्पन्न की और उससे यह कह कर कि तुम हमारे स्थान पर इन पुत्रों का पालन करना और यह भेद सूर्य्य पर

न खोलना अपने पिता विश्वकर्मा के घर चली गई। सूर्य्य ने छाया को संज्ञा ही समझ कर उससे सावर्णि और शनैश्चर नामक दो पुत्र उत्पन्न किए। छाया इन दोनों पुत्रों को संज्ञा की संतति की अपेक्षा अधिक चाहने लगी। इसपर यम क्रुद्ध होकर छाया को लात मारने चले। छाया ने शाप दिया कि तुम्हारा पैर कट कर गिर जाय। जब सूर्य्य ने यह सुना तब उन्होंने छाया से इस भेद भाव का कारण पूछा, पर उसने कुछ न बताया। अंत में सूर्य्य ने समाधि द्वारा सब बातें जान लीं और छाया ने भी सारी व्यवस्था ठीक ठीक बतला दी। जब सूर्य्य क्रुद्ध होकर विश्वकर्मा के यहाँ गए तब उन्होंने कहा कि "संज्ञा तुम्हारा तेज न सह सकने के कारण ही यहाँ चली आई थी और अब एक घोड़ी का रूप धारण करके तप कर रही है"। इसपर सूर्य्य संज्ञा के पास गए और उसने अपना रूप परिवर्त्तित किया।
(८) कांति। दीप्ति। (९) शरण। रक्षा। उ०—अब तुम्हारी छाया के नीचे आ गए हैं जो चाहे सो करो। (१०) उत्कोच। घूस। रिशवत। (११) पंक्ति। (१२) कात्यायनी। (१३) अंधकार। (१४) आर्य्या छंद का एक भेद जिसमें १७ गुरु और २३ लघु होते हैं। (१५) एक रागिनी। संगीतसार के मत से यह हम्मीर और शुद्ध नट के योग से उत्पन्न है। पंचम वादी, ऋषभ संवादी और अवरोहण में तीव्र मध्यम लगता है। दामोदर के मत से यह ओड़व है जिसका सरगम है—नि ध म ग सा। (१६) भूत प्रेत का प्रभाव। आसेब। जैसे इस पर किसी की छाया है।

छाया गणित—संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया जिसमें छाया के सहारे ग्रहों की गति, अयनांश का गमनागमन आदि निरूपित किया जाता है। इसमें एक शंकु के द्वारा विषुवन्मंडल स्थिर करके छायाकर्ण निर्धारित किया जाता है।

छायाग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] दर्पण। आइना।

छायाग्राहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसने समुद्र फांदते हुए हनुमान की छाया पकड़ कर उन्हें खींच लिया था। उ०—या भव पारावार कौं उलघि पार को जाय। तिय छवि छाया-ग्राहनी गहै बीच ही आय।—बिहारी।

छायातनय—संज्ञा पुं० [सं०] शनैश्चर।

छायातरु—संज्ञा पुं० [सं०] सुरपुन्नाग। छतिवन।

छायादान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दान।
विशेष—दान करनेवाला घी या तेल से भरे काँसे के कटोरे में अपनी छाया या परछाईं देख और उसमें कुछ दक्षिणा डाल कर दान करता है। यह दान ग्रहजनित शरीर के अरिष्ट की शांति के निमित्त किया जाता है और इसे कुलीन ब्राह्मण नहीं ग्रहण करते।

छायानट—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो केदार नट, कल्याण नट आदि नव नटों के अंतर्गत है। यह छाया और नट के योग से उत्पन्न है। अवरोहण में तीव्र मध्यम लगता है। सा वादी ग संवादी। संगीतसार के मत से यह संपूर्ण जाति का राग है और इसका ग्रह तथा अंश और न्यास धैवत है। यह संध्या के समय एक दंड से पाँच दंड तक गाया जाता है। इसकी स्वर-लिपि इस प्रकार है—ध स स रे ग म प ध स नि ध प म म म रे ध ध प म प म म म म रे ध प स म म रे स रे स स स।

छायान्वित—वि० [सं०] छायायुक्त। सायादार।

छायापथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाशगंगा। हाथी की डहर। डहर। आकाश जनेऊ। (२) देवपथ। (३) आकाश।

छायापद—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक यंत्र। इसमें बारह अंगुल का शंकु होता था जिसकी छाया से काल का ज्ञान होता था।

छायापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] हठ योग के अनुसार मनुष्य की छायारूप आकृति जो आकाश की ओर स्थिर दृष्टि से बहुत देर तक देखते रहने की साधना करने से दिखाई पड़ती है। तंत्र में लिखा है कि इस छायारूप आकृति के दर्शन से छ महीने के भीतर होनेवाली भविष्य बातों का पता लग जाता है। यदि पुरुष की आकृति पूरी पूरी दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि छ महीने के भीतर मृत्यु नहीं हो सकती। यदि आकृति मस्तक शून्य दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि छ महीने के भीतर अवश्य मृत्यु होगी। यदि चरण न दिखाई पड़े तो भार्य्या की मृत्यु और यदि हाथ न दिखाई पड़े तो भाई की मृत्यु निकट समझनी चाहिए। यदि छायापुरुष की आकृति रक्त वर्ण दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि धन की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार की और बहुत सी कल्पनाएँ हैं।

छायामान—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

छायामित्र—संज्ञा पुं० [सं०] छाता। छतरी।

छायायंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह यंत्र जिससे छाया द्वारा काल का ज्ञान हो। सूर्यसिद्धांत में शंकु, धनु, चक्र आदि इसके अनेक प्रकार बतलाए गए हैं। (२) धूपघड़ी।

छायावान्—वि० [सं० छायावत] [स्त्री० छायावती] (१) छायायुक्त। सायादार। छाँहवाला। (२) शांतियुक्त।

छायाविप्रतिपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आयुर्वेद का एक प्रकरण जिसके अनुसार रोगी की कांति, आभा, चेष्टा आदि में उलट फेर वा परिवर्त्तन देख कर यह निश्चय किया जाता है कि अब यह आसन्न-मरण है वा नहीं अच्छा होगा।

छार—संज्ञा पुं० [सं० क्षार] (१) कुछ जली हुई वनस्पतियों या रासायनिक क्रिया से घुली हुई धातुओं की राख का नमक। क्षार। (२) खारी नमक। नमक। (३) खारी पदार्थ। (४)

भस्म। राख। खाक। उ०—(क) जो निश्चान तन होइहि छारा। माटी पोखि मरइ को भारा।—जायसी। (ख) तुरतहिं काम भयो जरि छारा।—तुलसी।

यौ०—छार खार करना = भस्म करना। नष्ट भ्रष्ट करना। सत्यानाश करना। उ०—उपजा ईश्वर कोप ते आया भारत बीच। छार खार सब हिंद करूँ मैं उत्तम नहिं नीच।—हरिश्चंद्र। (२) धूल। गर्द। रेणु। उ०—(क) गति तुलसीस की लखै न कोऊ जो करति पब्बै ते छार, छार पब्बै सो उपलक ही।—तुलसी। (ख) मूढ़ छार डारे गजराज ऊ पुकार करैं, पुंडरीक बूड्यो री, कपूर खायो कदली।—केशव।

छारकर्दम–संज्ञा पुं० दे० "क्षारकर्दम"। इस नाम का एक नरक।

छारछबीला–संज्ञा पुं० दे० "छरीला"।

छाल–संज्ञा स्त्री० [सं० छल्ल, छाल] (१) पेड़ों के धड़, शाखा, टहनी और जड़ के ऊपर का आवरण जो किसी किसी में मोटा और कड़ा होता है और किसी में पतला और मुलायम। बक्कल। वल्कल। वृक्ष की त्वचा। जैसे, नीम की छाल, बबूल की छाल। (२) एक प्रकार की मिठाई। उ०—भई मिठाई कही न जाई। मुख मेलत खन जाइ बिलाई। मतलड्डु, छाल, और मरकोरी। माठ, पिराकें और बुँदौरी।—जायसी। (३) चीनी जो ख़ूब साफ़ न की गई हो।

छालटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छाल + टी] (१) छाल का बना हुआ वस्त्र। सन वा पाट का बना हुआ कपड़ा। (यह पहले अलसी की छाल का बनता था और इसी को फारसी में कर्ताँ कहते थे)। (२) सन वा पाट का बना हुआ एक प्रकार का चिकना और फूलदार कपड़ा जो देखने में रेशम की तरह जान पड़ता है।

छालना–क्रि० स० [सं० चालन] (१) चालना। छानना। छलनी में रख कर (आटा आदि) साफ़ करना। (२) छेद करना। छलनी की तरह छिद्रमय करना। झँझरा करना।

छाला–संज्ञा पुं० [सं० छाल] (१) छाल वा चमड़ा। चर्म। जिल्द। जैसे, मृगछाला। (२) किसी स्थान पर जलने, रगड़ खाने वा और किसी कारण से उत्पन्न चमड़े की ऊपरी झिल्ली का फूल कर उभरा हुआ तल जिसके भीतर एक प्रकार का चेप वा पानी भरा रहता है। फफोला। आबला। झलका। उ०—पाँयन में छाले परे नाँघिबे को नाले परे तऊ, लाल, लाले परे रावरे दरस को।—हरिश्चंद्र।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(३) वह उभरा हुआ दाग जो लोहे या शीशे आदि में पड़ जाता है।

छालिया–संज्ञा पुं० [सं० स्थाली, थाली] काँसे का एक बरतन जिसमें घी तेल आदि भर कर छायादान दिया जाता है। छाया-पात्र। छाया-दान की कटोरी।

संज्ञा स्त्री० दे० "छाली"।

छाली–संज्ञा स्त्री० [हिं० छाला] (१) कटी हुई सुपारी का चिपटा टुकड़ा। सुपारी का फाल। (२) सुपारी।

छाली*–संज्ञा पुं० [सं० छागल, प्रा० छाअलो] बकरा। (डिं०)

छावँ–संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] (१) छाया। साया। (२) शरण। उ०—अब तो हम तुम्हारी छावँ में आगए हैं जो चाहो सो करो। (३) प्रतिबिंब। अक्स।

विशेष—दे० "छाँह"।

छावना†*क्रि० स० दे० "छाना"। उ०—चरण धोइ चरणोदक लीनो माँगि देउँ मनभावन। तीन पैंड़ बसुधा हौं चाहौं परण-कुटी को छावन।—सूर।

छावनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छाना] (१) छप्पर। छान।

क्रि० प्र०—छाना।

(२) डेरा। पड़ाव।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

(३) सेना के ठहरने का स्थान। फ़ौज की बारिक।

छावर–संज्ञा स्त्री० [सं० शावक] मछलियों के छोटे छोटे बच्चे जो झुंड बाँध कर एक साथ तैरते हैं।

छावरा†*–संज्ञा पुं० [सं० शावक] [स्त्री० छावरी] छौना। जानवर का बच्चा। उ०—भूषन भनत कीजै उत्तरी भुवाल बस पूरब के लीजिए रसाल गज छावरे।—भूषन।

छावा–संज्ञा पुं० [सं० शावक] (१) बच्चा। (२) पुत्र। बेटा। (डिं०)। (३) १० से २० वर्ष तक का हाथी। जवान हाथी।

छासठ–वि० [सं० षट्षष्टि, प्रा० छछठि] जो गिनती में साठ और छ हो।

संज्ञा पुं० साठ और छ की संख्या तथा उसका सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६६।

छाह*–संज्ञा स्त्री० दे० "छाछ"।

छिउँका–संज्ञा पुं० [हिं० चिउँटा] [स्त्री० छिउँकी। वि० छिउँकहा] जो साधारण चिउँटे से छोटा और पतला तथा भूरे रंग का होता है और बड़े जोर से काटता है। यह प्रायः पेड़ों पर होता है।

छिउँकहा†–वि० [हिं० छिउँकाँ] [स्त्री० छिउँकही] (लकड़ी, पेड़, पेड़ की डाल आदि) जिसमें छिउँके लगे हों वा जिसे छिउँकों ने खा लिया हो।

छिउँकी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिउँटी] (१) एक प्रकार की छोटी चींटी जो बड़े जोर से काटती है। (२) एक छोटा उड़नेवाला कीड़ा जिसके काटने से बड़ी जलन होती है। (३) लोहे का एक औजार जो छुवाली से छोटा होता है और धंधार में लगाया जाता है। यह लकड़ी उठाने के काम में आता है। (४) रस्सी की वह मुद्धी जो बोरों में इस लिये लगी रहती

है कि घोड़े की पीठ पर लादने पर उनमें एक लकड़ी फँसा दी जाय।

छिँकाना–क्रि० स० [हिं० छींकना का प्रे०] छींकने की क्रिया कराना। छींक लाना।

छिँगुनी, छिँगुनिया–संज्ञा स्त्री० दे० "छिँगुनी"।

छिँगुली, छिँगुलिया–संज्ञा स्त्री० दे० "छिँगुनी"।

छिँछि*–संज्ञा स्त्री० [अनु०] छींटा। धार। फौवारा। उ०—(क) शोणित छिंछि उछरि आकासहिं गज बाजिन सर लागी।—सूर। (ख) शोन छिंछि छूटत वदन भीम भई तेहि काल। मानो कृत्या कुटिलयुत पावक ज्वाल कराल।—केशव। (ग) अति उच्छलि छिंछि त्रिकूट छयो। पुर रावण के जल जोर भयो।—केशव।

छिँटुआ, छिंटुवा–संज्ञा पुं० [हिं० छींटना] बीज बोने का एक ढंग जिसमें बीज को हाथों में लेकर खेत में बिखराते हैं। छींटा।

छिँड़ाना–क्रि० स० [हिं० छीनना] छीनना। जबरदस्ती ले लेना। उ०—(क) श्याम सखन सों कहेउ टेर दै घेरौ सब अब जाय। बहुत ढीठ यह भई ग्वालिनी मटुकी लेहु छिँड़ाय।—सूर। (ख) गोरस लेहु री कोउ आय।.........डरनि तुम्हरे जाति नाहीं लेत दहिउ छिँड़ाय।—सूर।

छि–अव्य० [अनु०] (१) घृणासूचक शब्द। घिन जताने का शब्द। जैसे, छि, छि! देखो तो तुम्हारे हाथ में कितनी मैल लगी है। (२) तिरस्कार वा अरुचि सूचक शब्द। जैसे, छि! तुम्हें माँगते लज्जा नहीं आती।

छिउल†–संज्ञा पुं० दे० "छीउल"

छिउला†–संज्ञा पुं० [सं० क्षुप + ला (प्रत्य०)] छोटा पेड़। पौधा।

छिकनी–संज्ञा स्त्री० [सं० छिक्कनी] एक प्रकार की बहुत छोटी घास वा बूटी जो जमीन ही पर फैलती है, ऊपर नहीं बढ़ती। इसमें छोटी छोटी घुंडियों की तरह के मूँग के दाने के बराबर गोल फूल लगते हैं जिन्हें सूँघने से बहुत छींक आती है। यह घास प्रायः ऐसे स्थानों पर अधिक होती है जहाँ कुछ दिनों तक पानी जमा रह कर सूख गया हो, जैसे छिछले ताल आदि। यह ओषध के काम में आती है और वैद्यक में गरम, रुचिकारक, अग्निदीपक तथा श्वेत कुष्ठ आदि त्वचा के रोगों को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसे नकछिकनी भी कहते हैं।

पर्य्या०—छिक्कनी। क्षवकृत्। तीक्ष्णा। उग्रा। उग्रगंधा। क्षवक। क्रूरनासा। घ्राणदुःखदा।

छिकरा–संज्ञा [सं० छिक्कर] हिरन की जाति का एक जानवर जो बहुत तेज होता है। बृहत्संहिता के अनुसार ऐसे मृग का दाहिनी ओर से निकलना शुभ है।

छिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छींक। (२) दे० "छींका"।

छिक्कर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग। छिकरा।

छिक्कार–संज्ञा पुं० [सं०] छिक्कर नामक मृग।

छिक्किका–संज्ञा स्त्री० [सं०] छिकनी। नकछिकनी।

छिगुनिया–संज्ञा स्त्री० दे० "छिगुनि"।

छिगुनी–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद्र + अँगुली] सबसे छोटी उँगली। कनिष्ठिका। उ०—(क) गोरी छिगुनी नख अरुन छला स्याम छवि देइ। लहत मुकति रति छिनेक यह नैन त्रिवेनी सेइ।—बिहारी। (ख) आपे आप भली करी मेट न मान मरोर। करो यह दूर देखिहै छला छिगुनियाँ छोर।—बिहारी।

छिगुली–संज्ञा स्त्री० दे० "छिगुनी"

छिच्छ*–संज्ञा स्त्री० [अनु०] बूँद। छींटा। सीकर। उ०—(क) राम शर लागि मनु आगि गिरि पर जरी उछलि छिच्छिन शरनि भानु छाए।—सूर। (ख) कहुँ श्रोन छिच्छ अति लाल लाल। मनु इंदुवधू करि रहिय जाल।—सूदन।

छिछकारना†–क्रि० स० [अनु०] छिड़कना।

छिछड़ा–संज्ञा पुं० दे० "छीछड़ा"

छिछयाना†–क्रि० स० [अनु० छि छि] निंदा करना। घिन करना।

छिछला–वि० [हिं० छूछा + ला (प्रत्य०)] [स्त्री० छिछली] (पानी की सतह) जो गहरी न हो। उथला। जैसे छिछला पानी, छिछला घाट, छिछली नदी।

छिछलाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० छिछला] छिछला होने का भाव।

छिछली–वि० स्त्री० दे० "छिछला"।

संज्ञा स्त्री० (अनु०) लड़कों का एक खेल जिसमें वे एक पतले ठीकरे को पानी पर इस तरह फेंकते हैं कि वह दूर तक उछलता हुआ चला जाता है।

क्रि० प्र०—खेलना।

छिछोरपन, छिछोरापन–संज्ञा पुं० [हिं० छिछोरा] छिछोरा होने का भाव। क्षुद्रता। ओछापन। नीचता।

छिछोरा–वि० [हिं० छिछला] [स्त्री० छिछोरी] क्षुद्र। ओछा। जो गंभीर वा सौम्य न हो। नीच प्रकृति का।

छिजना†–क्रि० अ० दे० "छीजना"।

छिजाना–क्रि० स० [हिं० छीजना] किसी वस्तु को ऐसा करना कि वह छीज जाय। छीजने वा नष्ट होने देना।

छिटकना–क्रि० अ० [सं० क्षिप्त, प्रा० खित्त, छित्त + करण] (१) इधर उधर पड़ कर फैलना। चारों ओर बिखरना। छितराना। बगरना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) प्रकाश की किरनों का चारों ओर फैलना। प्रकाश का व्याप्त होना। उजाला छाना। जैसे, चाँदनी छिटकना, तारे छिटकना। उ०—(क) जहँ जहँ बिहँसि सभा महँ हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।—जायसी। (ख) नखत

सुमन नभ विटप ओढ़ि मनो छपा छिटिकि छवि छाई।—तुलसी।

छिटकनी†–संज्ञा स्त्री० दे० "सिटकनी"।

छिटका†–संज्ञा पुं० [हिं० छिटकना] पालकी के ओहार का वह भाग जो दरवाजे के सामने रहता है और जिसे उठा कर लोग पालकी में घुसते निकलते वा उसमें से बाहर देखते हैं। परदा।

छिटकाना–क्रि० स० [हिं० छिटकना] चारों ओर फैलाना। इधर उधर डालना। बिखराना।

छिटकी†–संज्ञा स्त्री० दे० "छींट", "छींटा"।

छिटकुनी†–संज्ञा स्त्री० [अनु०] पतली छड़ी। कमची।

छिटनी–संज्ञा स्त्री० [सं० शिक्य वा हिं० छींटना] बाँस की फट्टियों या पेड़ के डंठलों आदि की बनी हुई छोटी टोकरी। झौवा। डलिया।

छिटवा–संज्ञा पुं० [सं० शिक्य वा हिं० छींटना] [स्त्री० अल्प० छिटनी] बाँस की फट्टियों आदि का टोकरा।

छिटाका–संज्ञा पुं० [हिं० छिटकाना] एक बालिश्त लंबी मोटी लकड़ी जिसे धुनिए पैर के अँगूठे और उसके पास की उँगली से दबा कर और उसमें फटके की ताँत फँसा कर रुई धुनते हैं।

छिट्टी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० छींटा] छोटा छींटा। सीकर। सूक्ष्म जलकण।

छिड़कना–क्रि० स० [हिं० छींटा + करना] (१) पानी या किसी और द्रव पदार्थ को इस प्रकार फेंकना कि उसके महीन महीन छींटे फैल कर इधर उधर पड़ें। पानी आदि के छींटे डालना। भिगोने या तर करने के लिये किसी वस्तु पर जल बिखराना। जैसे, पानी छिड़कना, रंग छिड़कना, गुलाब-जल छिड़कना। उ०—पानी छिड़क दो तो यहाँ की धूल बैठ जाय। (२) न्योछावर करना। जैसे, जान छिड़कना। (क्वि०)।

छिड़कवाना–क्रि० स० [हिं० छिड़कना] छिड़कने का काम कराना।

छिड़काई–संज्ञा स्त्री० [हिं० छिड़कना] (१) छिड़काव। छिड़कने की क्रिया वा भाव। (२) छिड़कने की मज़दूरी।

छिड़काना–क्रि० स० दे० "छिड़कवाना"।

छिड़काव–संज्ञा पुं० [हिं० छिड़कना] पानी आदि छिड़कने की क्रिया। छींटों से तर करने का काम। उ०—यहाँ सड़कों पर छिड़काव नहीं होता।

छिड़ना–क्रि० अ० [हिं० छेड़ना] आरंभ होना। शुरू होना। चल पड़ना। जैसे, बात छिड़ना, झगड़ा छिड़ना, चर्चा छिड़ना, सितार छिड़ना।

छिण*†–संज्ञा पुं० दे० 'क्षण'।

छितनी–संज्ञा स्त्री० [सं० छत्र, प्रा० छत्त] टोकरी। छोटी और छिछली टोकरी।

छितरना–क्रि० अ० दे० "छितराना"।

छितर बितर†–वि० दे० "तितर बितर"।

छितराना–क्रि० अ० [सं० क्षिप्त + करण, प्रा० छित्तकरण, छित्तरण अथवा सं० संस्तरण] खंडों वा कणों का गिर कर इधर उधर फैलना। बहुत सी वस्तुओं का बिना किसी क्रम के इधर उधर पड़ना। बिखरना। तितर बितर होना। उ०—(क) हाथ से गिर कर सब चने जमीन पर छितरा गए। (ख) सब चीज़ें इधर उधर छितराई पड़ी हैं, उठा कर ठिकाने से रख दो।

क्रि० स० खंडों वा कणों को गिरा कर इधर उधर फैलाना। बहुत सी वस्तुओं को बिना किसी क्रम के इधर उधर डालना। बिखराना। छींटना।

(२) सटी वस्तुओं को अलग अलग करना। दूर दूर करना। घनी वस्तुओं को बिरल करना।

मुहा०—टाँग छितराना = दोनों टाँगों को बगल की ओर दूर दूर रखना। टाँगों को बगल या पार्श्व की ओर फैलाना। जैसे, टाँग छितरा कर चलना।

छितराव–संज्ञा पुं० [हिं० छितराना] छितराने का भाव। बिखरने का भाव।

छिति*–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिति] (१) भूमि। पृथ्वी। (२) एक का अंक। उ०—संवत् ग्रह ससि जलधि छिति छठ तिथि वासर चंद। चैत मास पछ कृष्ण में पूरन आनँदकंद।—बिहारी।

छितिकंत*–संज्ञा पुं० [सं० क्षितिकांत] भूपति। राजा।

छितिपाल*–संज्ञा पुं० [सं० क्षितिपाल] भूपाल। राजा।

छितिरुह*–संज्ञा पुं० [सं० क्षितिरुह] पेड़। वृक्ष।

छितीस*–संज्ञा पुं० [सं० क्षितीश] राजा।

छित्वर–वि० [सं०] (१) छेदक। (२) धूर्त्त। (३) बैरी।

छिदना–क्रि० अ० [हिं० छेदना] (१) छेद से युक्त होना। सूराखदार होना। भिदना। बिधना। उ०—इस पतली सुई से यह कागज़ नहीं छिदेगा। (२) क्षतपूर्ण होना। घायल होना। ज़ख़मी होना। उ०—सारा शरीर तीरों से छिद गया था।

† क्रि० स० थाम लेना। सहारे के लिये पकड़ लेना।

† संज्ञा पुं० बरच्छा। फलदान। मँगनी।

छिदरा–वि० [हिं० छिद्र] (१) विरल। छितराया हुआ। जो घना न हो। (२) झँझरीदार। छेददार। (३) फटा हुआ। जर्जर।

† वि० [सं० क्षुद्र] ओछा।

छिदवाना–क्रि० स० दे० छेदाना।

छिदाना–क्रि० स० दे० "छेदाना"।

छिद्र–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छिद्रित] (१) छेद । सूराख । बिल । (२) गड्ढा । विवर । (३) अवकाश । जगह । (४) दोष । त्रुटि, जैसे छिद्रान्वेषण ।

यौ०—छल छिद्र ।

(५) फलित ज्योतिष के अनुसार लग्न से आठवाँ घर । (६) नौ की संख्या ।

छिद्रदर्शी–वि० [सं० छिद्रदर्शिन्] पराया दोष देखनेवाला । नुक्स निकालनेवाला । खुचर निकालनेवाला ।

संज्ञा पुं० एक योगभ्रष्ट ब्राह्मण का नाम । हरिवंश के अनुसार यह वाभ्रव्य का पुत्र था ।

छिद्रवैदेही–संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली । गजपीपर ।

छिद्रात्मा–वि० [सं० छिद्रात्मन्] खलस्वभाव । कुटिल । खल ।

छिद्रान्वेषण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छिद्रान्वेषी] दोष ढूँढ़ना । नुक्स निकालना । खुचर निकालना ।

छिद्रान्वेषी–वि० [छिद्रान्वेषिन्] [स्त्री० छिद्रान्वेषिणी] छिद्र ढूँढ़नेवाला । पराया दोष ढूँढ़नेवाला । खुचुर निकालनेवाला ।

छिद्राफल–संज्ञा पुं० [सं०] माजूफल ।

छिद्रित–वि० [सं०] (१) छेदा हुआ । बेधा हुआ । (२) जिसमें दोष लगा हो । दूषित ।

छिद्रोदर–संज्ञा पुं० [सं०] क्षतोदर नामक पेट का रोग ।

छिन*†–संज्ञा पुं० दे० "क्षण" ।

छिनक*–क्रि० वि० [सं० क्षण + एक] एक क्षण । दम भर । थोड़ी देर । उ०—तृन समूह को छिनक में जारत तनिक अँगार ।

छिनकना–क्रि० स० [हिं० छिड़कना] नाक का मल ज़ोर से साँस बाहर करके निकालना । जैसे, नाक छिनकना ।

क्रि० अ० [हिं० चमकना] †(१) भड़क कर भागना । चमकना । दे० "छनकना" । । (२) रंजक चाट जाना । (बंदूक) ।

छिनछवि*–संज्ञा० स्त्री० [सं० क्षण + छवि] बिजली ।

छिनदा*–संज्ञा स्त्री० दे० "क्षणदा" ।

छिनना–क्रि० अ० [हिं० छीनना] छीन लिया जाना । हरण होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

क्रि० स० [सं० छिन्न] (१) पत्थर का छेनी वा टाँकी के आघात से कटना । (२) सिल, चक्की आदि का छेनी के आघात से खुरदरी वा गड्ढेदार होना । कुटना ।

छिनरा–वि० [हिं० छिनार] [स्त्री० छिनार, छिनाल] पर-स्त्री-गामी पुरुष । लंपट । वृषल ।

छिनवाना–क्रि० स० [हिं० 'छीनना का' प्रे०] छीनने का काम कराना ।

क्रि० स० [सं० छिन्न] (१) पत्थर को छेनी से कटवाना । (२) सिल चक्की आदि को छेनी से खुरदुरी कराना । कुटाना ।

छिनाना–क्रि० स० [हिं० 'छीनना' का प्रे०] छीनने का काम कराना ।

† क्रि० स० छीनना । हरण करना । उ०—कामधेनु जमदग्नि की लै गयो नृपति छिनाय ।—सूर ।

क्रि० स० [सं० छिन्न] (१) टाँकी वा छेनी से पत्थर आदि कटाना । (२) टाँकी वा छेनी से सिल चक्की आदि को खुरदुरी कराना ।

छिनार–वि० स्त्री० दे० "छिनाल" ।

छिनाल–वि० स्त्री० [सं० छिन्ना + नारी, पू० हिं० छिनारि] व्यभिचारिणी । कुलटा । परपुरुषगामिनी ।

संज्ञा स्त्री० व्यभिचारिणी स्त्री ।

छिनालपन,छिनालपना–संज्ञा पुं० [हिं० छिनाल + पन] व्यभिचार । छिनाला ।

छिनाला–संज्ञा पुं० [हिं० छिनाल] व्यभिचार । स्त्री-पुरुष का अनुचित सहवास ।

छिन्न–वि० [सं०] जो कट कर अलग हो गया हो । जो काट कर पृथक् कर दिया गया हो । खंडित ।

यौ०—छिन्न भिन्न ।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का मंत्र । (२) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का फोड़ा । इसका क्षत सीधी वा टेढ़ी लकीर के रूप में होता है और इसमें मनुष्य का अंग गलने लगता है ।

छिन्न भिन्न–वि० [सं०] (१) कटा कुटा । खंडित । टूटा फूटा । (२) नष्ट भ्रष्ट । (३) तितर बितर । जिसका क्रम खंडित हो गया हो । अस्त व्यस्त ।

छिन्नपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा । पाढ़ा ।

छिन्नपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष ।

छिन्नमस्ता–वि० [सं०] जिसका माथा कटा हो ।

संज्ञा स्त्री० एक देवी जो महा विद्याओं में छठीं हैं । इनका ध्यान इस प्रकार है—अपना ही कटा हुआ सिर अपने बाएँ हाथ में लिए, मुँह खोले और जीभ निकाले हुए अपने ही गले से निकली हुई रक्त धारा को चाटती हुई, हाथ में खड्ग लिए, मुँडों की माला धारण किए और दिगंबरा । इनका नाम प्रचंडिका भी है । तंत्रसार में इनका पूरा विवरण लिखा है ।

छिन्नरुह–संज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष । पुन्नाग ।

छिन्नरुहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुडुच । गिलोय ।

छिन्नव्रण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी शस्त्र से कटा हुआ घाव । (२) वह फोड़ा जो किसी ऐसे घाव पर हो जो शस्त्र से लगा हो ।

छिन्नवेशिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा ।

छिन्नश्वास–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग । यह श्वास का भेद माना जाता है । इसमें रोगी का पेट फूलता है, पसीना आता

है और साँस रुकता है तथा शरीर का रंग बदल जाता है।

छिन्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुड़च। गिलोय। (२) पुंश्चली। छिनाल।

छिपकली–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपकना] (१) पेट जमीन पर रख कर पंजों के बल चलनेवाला एक सरीसृप वा जंतु जो एक बित्ते के लगभग लंबा होता है और मकान की दीवार आदि पर प्रायः दिखाई पड़ता है। यह जंतु गोधा या गोह की जाति का है और छोटे छोटे कीड़े पकड़ कर खाता है। छिपकली चिकनी से चिकनी खड़ी सतह पर सुगमता से दौड़ सकती है।

पर्य्या०—पलभी। मुषली। गृहगोधा। विशंवरी। ज्येष्ठा। कुड्यमत्स्य। गृहगोलिका। माणिक्या। भित्तिका। गृहोलिका।

विशेष—प्रायः दुबली पतली स्त्री को लोग विनोदवश छिपकली कह देते हैं।

(२) कान का एक गहना।

छिपना–क्रि० अ० [सं० क्षिप = डालना] (१) आवरण वा ओट में होना। ऐसी स्थिति में होना जहाँ से दिखाई न पड़े। जैसे, (क) वह लड़का हमें देख कर छिपने का यत्न करता है। (ख) यहाँ न जाने कितने ग्रंथरत्न छिपे पड़े हैं। (२) आवरण या ओट में होने के कारण दिखाई न देना। अदृश्य होना। देखने में न आना। जैसे, सूर्य्य का छिपना। (३) जो प्रकट न हो। जो स्पष्ट न हो। गुप्त। जैसे, इसमें उनका कुछ छिपा हुआ मतलब तो नहीं है।

छिपा छिपी–क्रि० वि० [हिं० छिपना] चुपके से छिपा कर। गुप्त रीति से। चुपचाप। गुपचुप।

छिपाना–क्रि० स० [सं० क्षिप = डालना] [संज्ञा छिपाव] (१) आवरण या ओट में करना। ऐसी स्थिति में करना जिसमें किसी को दिखाई न पड़े वा पता न चले। ढाँकना। आड़ में करना। दृष्टि से ओझल करना। गोपन करना। (२) प्रकट न करना। सूचित न करना। गुप्त रखना। जैसे, बात छिपाना, दोष छिपाना। उ०— तो सों न छिपावति हौं, एरी भटू, अपराध इतनो कीन्हों मैं जो कही हँसि के। —रघुराज।

छिपा रुस्तम–संज्ञा पुं० [हिं० छिपना + फा० रुस्तम] (१) वह व्यक्ति जो अपने गुण में पूर्ण हो, परंतु प्रख्यात न हो। (२) ऐसा दुष्ट जिसकी दुष्टता लोगों पर प्रकट न हो। गुप्त गुंडा।

छिपाव–संज्ञा पुं० [हिं० छिपना] किसी बात वा भेद को छिपाने का भाव। बातों को एक दूसरे से गुप्त रखने का भाव। किसी बात को एक दूसरे पर प्रकट न करने का भाव। दुराव। परस्पर के व्यवहार में हृदय के भावों का गोपन।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

छिप्र* क्रि० वि० दे० "क्षिप्र"।

संज्ञा पुं० [सं० क्षिप्र] एक मर्मस्थान जो पैर अँगूठे और उसके पास की अँगुलियों के बीच में होता है।

छिबड़ा–संज्ञा पुं० दे० "छाबड़ा"।

छिबड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० शिविरथ] खटोली के आकार की एक डोली जिस पर रेतीले मैदानों में यात्रा करते हैं।

संज्ञा स्त्री० [हिं० छिबड़ा] (१) छोटा टोकरा। (२) खाँचा।

छिमा*†–संज्ञा स्त्री० दे० "क्षमा"।

छिया–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिप, प्रा० छिव, हिं० छि:] (१) वह जिसे देखे लोग छी छी करें। घृणित वस्तु। घिनौनी चीज। (२) मल। गलीज। मैला। उ०—हौं समुझत, साईं, द्रोह की गति छार छिया रे।—तुलसी।

मुहा०—छिया छरद करना = छी छी करना। घिनाना। मल और वमन के समान घृणित समझना। उ०—जो छिया छरद करि सकल संतन तजी।तासु मतिमूढ़ रस प्रीति ठानी।—सूर।

वि० मैला। मलिन। घृणित।

संज्ञा स्त्री० [हिं० बछिया] छोकरी। लड़की। उ०—कौन की छाँह छिपैगी छिया छहियाँ तजि नाह की माह निसा में।—सुं० सर्व०।

छियाज–संज्ञा पुं० [सं० क्षय + व्याज] कटुआँ व्याज।

छियानबे†–संज्ञा पुं० दे० "छानबे"।

छियालिस वि० दे० "छियालीस"।

छियालीस–वि० [सं० षड्चत्वारिंश, हिं० छ + चालीस] जो संख्या में चालीस और छ हो।

संज्ञा पुं० छियालीस की संख्या तथा अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४६।

छियासी–वि० [सं० षड्शीति, पा० छासीति, प्रा० छासी] छ और अस्सी। जो गिनती में अस्सी से छ अधिक हो।

संज्ञा पुं० (१) छ और अस्सी की संख्या। (२) उक्त संख्या का द्योतक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८६।

छिरकना*–क्रि० स० [हिं०] छिड़कना। उ०—एकादशी एक सखि आई डारयो सुभग अबीर। एक हाथ पीतांबर पकरयो छिरकत कुंकुम नीर।—सूर।

छिरकाना–क्रि० स० दे० "छिड़काना"।

छिरहटा–संज्ञा पुं० दे० "छिरेटा"।

छिरहा†–वि० [हिं० छेड़ना] हठी। जिद्दी।

छिरेटा–संज्ञा पुं० [सं० छिलहिंड] [स्त्री० अल्प० छिरेटी] एक छोटी बेल जो मैदानों, नदी के करारों आदि पर होती है। इसकी पत्तियों का कटाव सीके की ओर कुछ पान का सा होता है, पर थोड़ी ही दूर चल कर पत्तियों की चौड़ाई एक बारगी कम हो जाती है और वे दूर तक लंबी बढ़ जाती हैं। यह चौड़ाई सिरे पर भी उतनी ही बनी रहती है। इन पत्तियों

की लंबाई ढाई तीन अंगुल से अधिक नहीं होती और इन का रस निचोड़ कर जल, दूध आदि में डालने से जल वा दूध गाढ़ा होकर जम जाता है। इस बेल में बहुत छोटे छोटे फल गुच्छों में लगते हैं जो पकने पर काले हो जाते हैं। वैद्यक में छिरेटा मधुर, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक तथा पित्त, दाह और विष को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्य्या० छिलहिंड। पातालगरुड़। महामूल। वत्सादनी। तिक्तांगा। मोचकाभिद्या। तार्क्षी। सौपर्णी। गारुड़ी। दीर्घ कांडा। महाबला। दीर्घवल्ली। दढ़लता।

छिलकना*†–क्रि० स० "छिड़कना"।

छिलका–संज्ञा पुं० [हिं० छाल] फलों कंदों तथा इसी प्रकार की और वस्तुओं के ऊपर का कोश या बाहरी आवरण जो छीलने, काटने वा तोड़ने से सहज में अलग हो सकता है। फलों की त्वचा या ऊपरी झिल्ली। एक परत की खोल जो फलों, बीजों आदि के ऊपर होती है। जैसे, सेब का छिलका, कटहल का छिलका, गन्ने का छिलका, अंडे का छिलका।

विशेष—छाल, छिलका और भूसी में अंतर है। छाल पेड़ों के धड़, डाल और टहनियों के ऊपरी आवरण को कहते हैं, छिलका, कंद, मूल, फल आदि के ऊपर के आवरण को कहते हैं जो काटने छीलने आदि से जल्दी अलग हो जाता है। भूसी महीन दानों के सूखे हुए आवरण को कहते हैं जो कूटने से अलग होता है।

छिलछिला†–वि० दे० "छिछला"।

छिलना–क्रि० अ० [हिं० छीलना] (१) इस प्रकार कटना जिसमें ऊपरी सतह या आवरण निकल जाय। छिलके वा चमड़े का कट कर अलग होना। उधड़ना। (२) रगड़ या आघात से ऊपरी चमड़े का कुछ भाग कट कर अलग हो जाना। खरोंच जाना। उ०—पैर में जरा सा छिल गया है। (३) गले के भीतर चुनचुनाहट वा खुजली सी होना। जैसे, सूरन से सारा गला छिल गया।

संयो० क्रि०—जाना।—उठना।

छिलवा–संज्ञा पुं० [हिं० छीलना] वह मनुष्य जो ईख के खेतों में ईख काट कर उसकी पत्तियों को छील कर दूर करता है।

छिलवाना–क्रि० स० [हिं० छीलना का प्रे०] छीलने के लिये प्रेरित करना। छीलने का काम कराना। जैसे, घास छिलवाना।

छिलहिंड–संज्ञा पुं० [सं०] छिरहटा। छिरेटा।

छिलाना–क्रि० स० दे० "छिलवाना"।

छिलाव, छिलावट–संज्ञा स्त्री० [हिं० छीलना] छिलाई। छीलने का भाव वा क्रिया।

छिलौरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छाला] छोटा छाला। आबला।

क्रि० प्र०—पड़ना।

छिलड़ा†–संज्ञा पुं० [हिं० छिलका] छिलका। भूसी।

छिहत्तर–वि० [सं० षट्सप्तति, प्रा० छसत्तति, पा० छसत्तरि, छहत्तरि] छ और सत्तर। जो गिनती में सत्तर से छ अधिक हो।

संज्ञा स्त्री० (१) छ और सत्तर की संख्या। (२) उक्त संख्या को सूचित करनेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७६।

छिहाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० छिहाना] (१) छिहाने का काम। (२) चिता। सरा। (३) मरघट।

छिहाना†–क्रि० स० [सं० चयन] [संज्ञा छिहानी] किसी वस्तु को तले ऊपर रख कर राशि वा ढेर लगाना। गाँजना। ढेर लगाना।

छिहानी–संज्ञा पुं० [हिं० छिहाना] श्मशान। मसान। मरघट।

छिहरना†–क्रि० अ० [हिं० छितरना] बिखरना। फैलना। छितराना। दे० "छहराना"।

छिहराना†–क्रि० स० दे० "छहराना"।

छींक–संज्ञा स्त्री० [सं० छिक्का] नाक और मुँह से वेग के साथ सहसा निकलनेवाला वायु का झोंका वा स्फोट। यह स्फोट नाक की झिल्ली में चुनचुनाहट होने से, आँख में तीक्ष्ण प्रकाश पड़ने के कारण तिलमिलाहट होने से होता है। इसमें कभी कभी पानी वा श्लेष्मा भी नाक और मुँह से निकलती है। हिंदुओं में एक प्राचीन रीति है कि जब कोई छींकता है तब कहते हैं 'शतं जीव' वा 'चिरं जीव'। यह प्रथा यूनानियों, रोमनों और यहूदियों में भी थी। अँगरेजों में भी जब कोई छींकता है तब पुरानी परिपाटी के लोग कहते हैं कि 'ईश्वर कल्याण करे'। हिंदुओं में किसी कार्य्य के आरंभ में छींक होना अशुभ माना जाता है।

क्रि० प्र०—आना।—होना।—मारना।—लेना।

मुहा०—छींक होना = बुरा शकुन होना।

छींकना–क्रि० अ० [हिं० छींक] नाक और मुँह से वेग के साथ वायु निकालना जिससे शब्द होता है।

मुहा०—छींकते नाक काटना = थोड़ी थोड़ी बात पर चिढ़ना वा दंड देना। अत्याचार करना।

छींट–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिप्त, प्रा० छित्त] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ का महीन बूँद। जलकण। सीकर। उ०—राधे छिरकति छींट छबीली। कुच कुंकुम कंचुकि बँद टूटे, लटकि रही लट गीली।—सूर। (२) पानी आदि के पड़े हुए बूँद वा कण का चिह्न जो किसी वस्तु पर पड़ जाय। (३) वह कपड़ा जिस पर रंग विरँग के बेल बूटे रंगों से छाप कर बनाए गए हों।

विशेष—प्राचीन काल में कपड़े पर रंग विरँग के छींटे डाल कर छींट बनाते थे।

यौ०—मोमी छींट = एक प्रकार का छपा हुआ कपड़ा जो स्त्रियों के पहरावे के काम में आता है।

छौंटना†–क्रि० स० [सं० क्षिप्त, प्रा० छित्त + ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु के कणों को इधर उधर गिरा कर फैलाना। बिखराना। छितराना।

संयो० क्रि०—देना।

छौंटा–संज्ञा पुं० [सं० क्षिप्त प्रा० छित्त] (१) पानी (या और किसी द्रव पदार्थ) का महीन बूँद जो पानी को उछालने वा ज़ोर से फेंकने से इधर उधर पड़े। जलकण। सीकर।

क्रि० प्र०—उड़ना।—पड़ना।

यौ०—छौंटा गोला = तोप का गोला जिसके भीतर बहुत सी छोटी छोटी गोलियाँ या कील कांटे आदि भरे होते हैं।

(२) महीन महीन बूँदों की हलकी वृष्टि। झड़ी। उ०—मेंह का एक छौंटा आया था। (३) किसी द्रव पदार्थ के पड़े हुए बूँद का चिह्न। जैसे, इन स्याही के छौंटों को धोकर छुड़ा दो। (४) मदक वा चंडू की एक मात्रा। दम। (५) व्यंग्यपूर्ण उक्ति जो किसी को लक्ष्य करके कही गई हो। हलका आक्षेप। छिपा हुआ ताना।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—देना।

छौंदा–संज्ञा स्त्री० [सं० शिंबी, हिं० छीमी] छीमी। फली।

छी–अव्य० [सं०] घृणासूचक शब्द। घिन प्रकट करने का शब्द। जैसे, छी! तुम्हें ऐसा करते लज्जा नहीं आती।

मुहा०—छी छी करना = घिनाना। अरुचि वा घृणा प्रकट करना। उ०—वेष भये विष भावे न भूषन भोजन की कछुहू नहि ईछी। मीच के साधन सोंध सुधा, दधि दूध औ माखन आदिहु छी! छी।

संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो घाट पर कपड़ा धोते समय धोबियों के मुँह से निकलता है। उ०—घाट पर ठाढी बाट पारति बटोहिन की चेटकी सी डीठ मन का को न हरति है। लटकि लटकि 'छी' करति खुले भुजमूल झुकि झुकि स्वेद कण फूल से झरत है।—देव।

छीउल†–संज्ञा पुं० [देश०] पलाश। ढाक।

छीका–संज्ञा पुं० [सं० शिक्य] (१) गोल पात्र के आकार का रस्सियों का बुना हुआ जाल जो छत में इस लिये लटकाया जाता है कि उस पर रक्खी हुई खाने पीने की चीज़ों (जैसे दूध दही आदि) को कुत्ते बिल्ली आदि न पा सकें। सीका। सिकहर। उ०—अब कहि देउ कहत किन यों कहि माँगत दही धरयो जो है छीके।—सूर।

मुहा०—छीका टूटना = अनायास ऐसी घटना होना जिससे किसी को कुछ लाभ हो जाय। जैसे, बिल्ली के भाग से छीका टूटा।

(२) जालीदार खिड़की वा झरोखा। (३) रस्सियों का जाल जो काम लेते समय बैलों के मुँह में इस लिये पहनाया जाता है जिस में वे कुछ खाने के लिये इधर उधर मुँह न चला सकें। जाबा। मुसका।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

(४) रस्सियों का बना हुआ झूलनेवाला पुल। झूला। (५) बाँस वा पतली टहनियों को बुन कर बनाया हुआ टोकरा जिस में बड़े बड़े छेद छूटे रहते हैं। छिटनी। खँचिया।

छीछड़ा–संज्ञा पुं० [सं० तुच्छ, प्रा० छुच्छ] (१) मांस का तुच्छ और निकम्मा टुकड़ा। मांस का बेकाम लच्छा। जैसे, बिल्ली को छीछड़े ही भाते हैं। (२) पशुओं की अंतड़ी का वह भाग जिसमें मल भरा रहता है। मल की थैली।

छीछल†–वि० दे० "छिछला"।

छीछालेदर–संज्ञा स्त्री० [हिं० छी छी] दुर्दशा। दुर्गति। खराबी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

छीज–संज्ञा स्त्री० [हिं० छीजना] घाटा। कमी। उ०—रातहि दिवस रहै सब भीजा। लाभ न देखत देखी छीजा।—जायसी।

छीजना–क्रि० अ० [सं० क्षयण वा क्षीण] (१) क्षीण होना। घटना। कम होना। ह्रास होना। अवनत होना। उ०—(क) छीजहिं निशिचर दिन औ राती। निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती।—तुलसी। (ख) लहर झकोर उड़हिं जल भीजा। तौहू रूप रंग नहिं छीजा।—जायसी। (ग) सखि! जा दिन तें परदेस गए पिय ता दिन तें तन छीजत है।—सुं० सर्व०।

संयो० क्रि०—जाना।

छीट–संज्ञा स्त्री० दे० "छींट"।

छीटा–संज्ञा पुं० [सं० शिक्य, हिं० छीका] [स्त्री० अल्प० छिटनी] (१) बाँस की कमचियों वा पतली टहनियों को परस्पर जाल की तरह बुन कर बनाया हुआ टोकरा। खाँचा।

यौ०—छीटा गोला = ढोल वा पीपे के आकार का बना हुआ टोकरा।

(२) चिलमन।

छीड़†–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीण] आदमियों की कमी। भीड़ का उलटा।

छीतना–क्रि० स० [सं० छिद + ना (प्रत्य०)] (१) बिच्छू, भिड़ आदि का डंक मारना। (२) मारना। कूटना।

छीतस्वामी–संज्ञा पुं० [हिं० छीत + स्वामी] अष्टछाप के एक वैष्णव भक्त। ये बल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। कृष्ण संबंधी इनके रचे पद इनके संप्रदाय के लोग अब तक गाते हैं।

छीता–संज्ञा पुं० [देश०] बहू के मायके या ससुराल जाने की साइत।

छीति*–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षति] (१) हानि। घाटा। (२) बुराई (?) उ०—अब राधे नाहिन ब्रज नीति। नृप भयो कान्ह काम अधिकारी उपजी है यह कठिन कुरीति।............ तेरो तन धन रूप महा गुन सुंदर स्याम सुनी यह कीति सो करु सूर जेहि भाँति रहै पति जनि बल बाँधि बढावहु छीति।—सूर।

छीती छान-वि० [सं० क्षति + छिन्न] छिन्न भिन्न। तितर बितर। उ०—वह सब सेना असुरों की छीती छान हो वहीं की वहीं बिलाय गई।—लल्लू।

छीदा-वि० [सं० छिद्र] (१) जिसमें बहुत से छेद हों। झाँझरा। छिदरा। जिसके तंतु दूर दूर पर हों। जिसकी बुनावट घनी न हो। (२) जो दूर दूर पर हों। जो घना न हो। विरल।

छीन-वि० [सं० क्षीण] (१) दुबला। पतला। कृश। (२) शिथिल। मंद। मलिन। उ०— पूँछ को तजि असुर दौरि के मुख गह्यो सुरन तब पूँछ की ओर लीनी। मथत भए छीन तब बहुरि अस्तुति करी श्री महाराज निज शक्ति दीनी।—सूर।

छीन चंद्र-संज्ञा पुं० [सं० क्षीणचंद्र] द्वितीया का चंद्रमा।

छीनता-संज्ञा स्त्री० दे० "क्षीणता"।

✓**छीनना**-क्रि० स० [सं० छिन्न + ना (प्रत्य०)] (१) छिन्न करना। काट कर अलग करना। उ०—नीर हू ते न्यारे कीनो चक्रन चक्र सीस छीनो देवकी के नंदलाल ऐंचि भुव तल में।—सूर। (२) किसी दूसरे की वस्तु ज़बरदस्ती ले लेना। किसी वस्तु को दूसरे के अधिकार से बलात् अपने अधिकार में कर लेना। हरण करना।

यौ०—छीना खसोटी। छीना झपटी। छीना छीनी।

(३) अनुचित रूप से अधिकार करना। (४) सिल चक्की आदि को छेनी से खुरदुरा करना। कुटना। रेहना। (५) छेनी से पत्थर आदि काटना वा बराबर करना। (६) दे० "छेना"।

छीना खसोटी-संज्ञा स्त्री० दे० "छीना झपटी"।

छीना छीनी--संज्ञा स्त्री० दे० "छीना झपटी"।

छीना झपटी--संज्ञा स्त्री० [हिं छीनना + झपटना] जबरदस्ती वा झाड़ झपट के साथ किसी वस्तु को लेने की क्रिया।

✓**छीना**†-क्रि० स० [सं० छुप = छूना] छूना। स्पर्श करना। उ०—(क) ग्वालि वचन सुनि कहति जसोमति भले भूमि पर बादर छीवो।—तुलसी। (ख) हरि राधिका मानसरोवर के तट ठाढ़े री हाथ सो हाथ छिए।—केशव।

संज्ञा पुं० [सं० छिन्न] (१) घड़े के नीचे का वह कपाल वा गोल भाग जो फोड़ कर अलग कर दिया गया हो। (२) मिट्टी का वह साँचा जिस पर कुम्हार घड़े कुंडे आदि की पेंदी वा कपाल को रख कर थापी से पीटते हैं।

छीप-वि० [सं० क्षिप्र] तेज। बेगवान। शीघ्र। उ०—सात दीप नृप दीप छीप गति चहत समर सरि।—गोपाल।

संज्ञा स्त्री० दे० "सीप"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० छाप] (१) छाप। चिह्न। दाग़। (२) वह दाग़ वा धब्बा जो छोटी छोटी बिंदियों के रूप में शरीर पर पड़ जाता है। सेहुआँ। (यह एक प्रकार का चर्म्म-रोग है)।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) वह छड़ी जिसमें डोरी बाँध कर मछली फँसाने की कटिया लगाई जाती है। डगन। बंसी। (२) एक पेड़ का नाम जिसके फल की तरकारी होती है। इसे खीप और चीप भी कहते हैं।

✓**छीपना**-क्रि० स० [सं० क्षिप] कटिया में मछली फँसने पर उसे बंसी के द्वारा खींच कर बाहर फेंकना।

छीपा†-संज्ञा पुं० [सं० क्षिप] (१) तंग मुँह का मिट्टी का एक बरतन जिसमें अहीर दूध दुह कर डालते जाते हैं। (२) दे० 'छीपी'।

छीपी-संज्ञा पुं० [हिं० छीप] [स्त्री० छीपिन] छींट छापनेवाला। कपड़े पर बेलबूटे छापनेवाला।

संज्ञा पुं० [देश०] वह लंबी छड़ी जिससे लोग कबूतर आदि उड़ाते हैं। इसके सिरे पर कपड़ा बँधा रहता है।

छीबर-संज्ञा स्त्री० [देश०, हिं० छापना] मोटी छींट। कपड़ा जिस पर बेल बूटे छपे हों। उ०—हा हा हमारी सौं साँची कहौ वह को हुती छोहरी छीबर वारी।

छीमी†-संज्ञा स्त्री० [सं० शिम्बा] फली। जैसे, मटर की छीमी।

छीर-संज्ञा पुं० दे० "क्षीर"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० छोर] (१) कपड़े आदि का वह किनारा जहाँ लंबाई समाप्त हो। छोर।

मुहा०—छीर डालना = धोती आदि में किनारे का तागा निकाल कर झालर बनाना।

(२) वह चिह्न जो कपड़े पर डाला जाय। (३) कपड़े के फटने का चिह्न।

क्रि० प्र०—पड़ना।

छीरज*-संज्ञा पुं० [सं० क्षीरज] दधि। दही।

छीरधि*-संज्ञा पुं० [सं० क्षीरधि] क्षीरसागर। दूध का समुद्र।

छीरप*-संज्ञा पुं० [सं० क्षीरप] बालक। बच्चा।

छीरफेन*-संज्ञा पुं० [सं० क्षीरफेन] दूध की मलाई।

छीरसागर*-संज्ञा पुं० दे० "क्षीरसागर"।

✓**छीलना**-क्रि० अ० [हिं० छाल] (१) किसी वस्तु का छिलका वा छाल उतारना। लगी हुई छाल वा ऊपरी आवरण को काट कर अलग करना। ऊपरी सतह की कुछ मोटाई काट कर अलग करना। जैसे, सेब छीलना, गन्ना छीलना, लकड़ी छीलना, पेंसिल छीलना। (२) ऊपर लगी हुई वा जमी हुई वस्तु को खुरच कर अलग करना। जैसे, चाकू से हरफ छीलना, घास छीलना। (३) गले के भीतर चुनचुनाहट वा खुजली सी उत्पन्न करना। जैसे, सूरन ने गला छील डाला।

छीलर-संज्ञा पुं० [हिं० छिछला अथवा सं० क्षीण] (१) एक छोटा गड्ढा जो कुएँ पर इस लिये बना रहता है कि मोट का पानी उसमें ढाला जाय। छिउला। लिलारी। (२) छोटा

छिछला गड्ढा। तलैया। उ०—(क) कबिरा राम रिझाइ ले जिह्वा सों करि मित्त। हरि सागर जनि बीसरै छीलर देखि अनित्त।—कबीर। (ख) अब न सुहात विषय रस छीलर वा समुद्र की आस।—सूर। (ग) याको कहा परेखो हरषो मधु छीलर, सरितापति खारो। (घ) पून्योई को पूरन पै प्रति दूनो दूनौं छन छन छीन होत छीलर को जलसों। —केशव।

छीव*-संज्ञा पुं० दे० "क्षीव"।

छुँगली*-संज्ञा स्त्री० [हिं० छँगली] एक प्रकार की अँगूठी जिसमें घुँघुरू लगे होते हैं। यह छोटी उँगली में पहनी जाती है।

छुआना†-क्रि० स० दे० 'छुलाना'।

छुआ छूत-संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना] (१) अछूत को छूने की क्रिया। अस्पृश्य स्पर्श। अशुचि संसर्ग। उ०—यहाँ छूआ छूत मत करो। (२) स्पृश्य अस्पृश्य का विचार। छूत का विचार। उ०—वहाँ छूआ छूत का बखेड़ा नहीं है।

छुईमुई-संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना मुवना] एक छोटा कटीला पौधा जिसकी पत्तियाँ बबूल की सी होती हैं। इसमें यह विशेषता है कि जहाँ पत्तियों को किसी ने छूआ कि वे बंद हो जाती हैं और उनके सींके लटक जाते हैं। लज्जालु। लज्जावंती। लजाधुर। लजारो। दे० "लज्जावंती"।

छुगुनू†-संज्ञा पुं० [अनु० छुनछुन] घुँघुरू उ०—कटि करधन छुगुनू छजत श्यामल वदन सुहाय। मनहु नीलमणि मंदिर बसेउ वासुकी आय।—शृं० सत०।

छुच्छा-वि० दे० "छूछा"।

छुच्छी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छूछा] (१) पतली पोली छोटी नली। (२) नरकट की चार पाँच अंगुल लंबी नली जिसमें जोलाहे तागा लपेट कर उसे ढरकी में लगा कर बुनते हैं। नरी। (३) नाक में पहनने का एक गहना। यह लौंग की तरह का होता है पर इसमें फूल की जगह चारों ओर उभड़े रवे अथवा चंदक रहती है जिस पर नग जड़े जाते हैं। इसके बीच में एक छेद भी होता है जिसमें नथ डाल कर पहनी जाती है। नाक की कील। लौंग। (४) एक पतली नली जो एक तिकोनिये पर लगी होती है और जिसमें बत्ती लगा कर गिलास में जलाई जाती है। (५) वह पतली नली जिसका एक छोर गिलास की तरह चौड़ा होता है और जिसे लगा कर एक बरतन से दूसरे बरतन में तेल आदि ढालते हैं। कीप।

छुछकारना†-क्रि० स० [अनु०] (१) कुत्ते को शिकार आदि के पीछे लगाना। लहकारना। (२) झिड़कना। डाँट फटकार बताना।

छुछहँड़†-संज्ञा स्त्री० [हिं० छूछी + हंडी] छूछी हाँड़ी।

मुहा०—छुछहँड़ दिखाना = माँगने पर किसी वस्तु को देने से इनकार करना वा उसका अभाव बतलाना।

छुछुंदर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० छुछुंदरी] छछूँदर।

छुछुआना-क्रि० अ० [अनु० छु छु] छछूँदर की तरह छू छू करते फिरना। व्यर्थ इधर उधर घूमते फिरना।

छुट*-अव्य० [हिं० छूटना,] छोड़ कर। सिवाय। अतिरिक्त। उ०—जब ते जग जन्म पाय जीव है कहायो। तब ते छुट अवगुण इक नाम न कहि आयो।—सूर।

छुटकाना*-क्रि० स० [हिं० छूटना] [संज्ञा छुटकारा] (१) छोड़ना। अलग करना। पकड़े न रहना। उ०—किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि डरपति जननि पानि छुटकाए।—तुलसी। (२) छोड़ना। साथ न लेना। उ०—माधव जू गज ग्राह ते छुड़ायो।........चितवत चित ही में चिंतामणि चक्र लए कर धायो। अति करुणा करि करुणामय हरि गरुडहि हूँ छुटकायो।—सूर। (३) छुड़ाना। मुक्त करना। छुटकारा देना। उ०—(क) लागि पुकार तुरत छुटकायो काट्यो बंधन वाको।—सूर। (ख) हौं बसि के वन, भूपति को, सुनु, कैकयि के ऋण ते छुटकाऊँ। —हनुमान।

छुटकारा-संज्ञा पुं० [हिं० छुटकाना वा छूट] (१) किसी बंधन आदि से छूटने का भाव वा क्रिया। मुक्ति। रिहाई। (२) किसी बाधा, आपत्ति वा चिंता आदि से रक्षा। निस्तार। जैसे, ऋण से छुटकारा, विपत्ति से छुटकारा।

क्रि० प्र०—करना। पाना।—मिलना।—होना।

(३) किसी काम से छुट्टी। किसी कार्यभार से मुक्ति।

क्रि० प्र०—देना।

छुटना†*-क्रि० अ० दे० "छूटना"।

छुटपन†-संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + पन (प्रत्य०)] (१) छोटाई। लघुता। (२) बचपन। लड़कपन।

छुटवाना†-क्रि० स० दे० "छोड़वाना"।

छुटाई†-संज्ञा स्त्री० दे० "छोटाई"।

छुटाना†-क्रि० स० [सं० छुट = काट कर अलग करना] छुड़ाना। उ०—(क) तब गज हरि की शरण आयो। सूरदास प्रभु ताहि छुटायो।—सूर। (ख) छुटे छुटावें जगत तें सटकारे सुकुमार। मन बाँधत बेनी बँधे नील छबीले बार।—बिहारी।

क्रि० अ० गाय या भैंस का दूध देना बंद कर देना।

छुटैयाँ-संज्ञा स्त्री० [हिं० छूट] भाँड़ों और स्वांग करनेवालों के चुटकले।

छुटौती†-संज्ञा स्त्री० [हिं० छूट] वह सूद वा लगान जो छोड़ दिया जाय। छूँडुआ।

छुट्टा-वि० [हिं० छूटना] [स्त्री० छुट्टी] (१) जो बँधा न हो।

यौ०—छुट्टा पान = बिना लगा हुआ पान। पान का पत्ता।

(२) एकाकी। अकेला। (३) जिसके साथ कुछ माल असबाब न हो।

मुहा०—छुट्टा छरिंदा = एकाकी। अकेला। जिसके साथ यात्रा में माल असबाब वा साथी न हो। छुट्टे हाथ = खाली हाथ। हाथ में बिना छड़ी या हथियार आदि लिए।

छुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूट] (१) छुटकारा। मुक्ति। रिहाई। उ०—बिना लगान दिए छुट्टी नहीं है।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

मुहा०—छुट्टी पाना = झंझट से बचना। पीछा छुड़ाना। जवाब देही वा जिम्मेदारी से अलग होना। उ०—तुम तो यह कह कर छुट्टी पा जाओगे, तंग होंगे हम। छुट्टी होना = झंझट दूर होना। काम निबटना वा समाप्त होना।

(२) वह समय जिसमें कोई कार्य्य न हो। काम से खाली वक्त। अवकाश। फुरसत। उ०—(क) आज कल मेरे सिर इतना काम है कि खाने पीने तक की छुट्टी नहीं। (ख) उसने तीन महीने की छुट्टी ली है।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

मुहा०—छुट्टी पर जाना या होना = नियत कार्य्य से अवकाश ग्रहण करना।

(३) वह दिन जिसमें नियत कार्य बंद रहे। कार्यालय के बंद रहने का दिन। तातील। उ०—आज स्कूल में छुट्टी है।

मुहा०—छुट्टी मनाना = अवकाश का दिन आनंद से बिताना।

(४) काम से छुड़ाए जाने की क्रिया। मौकूफी। (५) प्रस्थान करने की अनुमति। जाने की आज्ञा। उ०—अब छुट्टी दीजिए, बहुत देर हो रही है। (६) भाँडों का चुटकुला।

छुड़वाना—क्रि० स० [हिं० छोड़ना का प्रे०] छोड़ने का काम कराना। छोड़ने के लिये प्रेरित वा उद्यत करना। जैसे, बहेलिये से नीलकंठ छुड़वाना।

छुड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुड़ाना] (१) छोड़ने की क्रिया।

यौ०—छोड़ छोड़ाई = माफी।

(२) वह धन जो किसी व्यक्ति वा वस्तु के छोड़ने के बदले में दिया वा लिया जाय। जैसे, पशुओं की छुड़ाई, नील कंठ की छुड़ाई। (३) बड़े कनकौए को दूर लेजाकर ऊपर उछालना जिससे कि पतंग ऊपर उड़ जाय। छुड़ैया। (पतंग)

क्रि० प्र०—करना।—देना।

छुड़ाना—क्रि० स० [हिं० छोड़ना] (१) किसी वस्तु को ऐसा करना जिसमें वह छूट जाय। दूसरे की पकड़ से अलग करना। बँधी, फँसी, उलझी वा लगी हुई वस्तु को पृथक करना। जैसे, वह हाथ छुड़ा कर भागा, लड़के का पैर चारपाई में फँस गया है छुड़ा दो, गाँठ छुड़ाना। उ०—बाँह छुड़ाए जात हौ निबल जानि के मोहिं। हिरदय में से जाइयो मरद बदूँगी तोहि। (२) दूसरे के अधिकार से अलग करना। जैसे, रेहन रखा हुआ खेत छुड़ाना, माल छुड़ाना, बिल्टी छुड़ाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(३) किसी वस्तु पर पुती हुई वस्तु को दूर करना। जैसे, रंग छुड़ाना, दाग छुड़ाना, मैल छुड़ाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

(४) कार्य्य से अलग करना। नौकरी से हटाना। बरखास्त करना। उ०—उसने उस पुराने नौकर को छुड़ा दिया।

संयो० क्रि०—देना।

(५) किसी नियमित क्रिया का त्याग कराना। किसी प्रवृत्ति को दूर कराना। जैसे, अभ्यास छुड़ाना, आदत छुड़ाना। मुक्त कराना। उ०—हम उसका आना जाना छुड़ा देंगे।

['छोड़ना' का प्रे०] छोड़ने का काम कराना। दे० "छुड़वाना"।

छुड़ौती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुड़ाना] (१) देनदार वा असामी से पावना छोड़ देने की क्रिया। (२) वह रुपया जो असामी वा देनदार से दया वश या और किसी कारण से न लिया जाय, सब दिन के लिये छोड़ दिया जाय। छूट। (३) वह धन जो किसी को बंधन मुक्त करने के लिये दिया जाय।

छुत्*—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुत्] क्षुधा। भूख।

छुतिहर†—संज्ञा पुं० [हिं० छूत + हंडी] (१) वह घड़ा या बरतन जो किसी अशुचि वस्तु के संसर्ग से अशुद्ध हो गया हो और जिसमें खाने पीने की वस्तु न रखी जाती हो। (२) कुपात्र। नीच आदमी।

छुतिहा†—वि० [हिं० छूत + हा (प्रत्य०)] (१) छूतवाला। जिसमें छूत लगी हो। जो छूने योग्य न हो। अस्पृश्य। (२) कलंकित। दूषित। पतित। निकृष्ट।

संज्ञा पुं० वह नमक जो नोनी मिट्टी से निकाला जाता है। शोरे का नमक।

छुद्र—संज्ञा पुं० दे० "क्षुद्र"।

छुद्र घंटिका—संज्ञा स्त्री० दे० "क्षुद्र घंटिका"।

छुधा—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुधा] [वि० छुधित] क्षुधा। भूख।

छुधित*—वि० [सं० क्षुधित] भूखा। उ०—खेद खिन्न छुधित तृषित राजा बाजि समेत। खोजत ब्याकुल सरित सर जल बिनु भयउ अचेत।—तुलसी।

छुनछुनाना—क्रि० अ० [अनु०] 'छुन छुन' शब्द करना। झनकार के साथ बजना।

छुनमुन, छुनन मुनन—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) दे० "छुनन मनन"। (२) बच्चों के पैर के आभूषण का शब्द।

छुप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्पर्श। (२) झाड़ी। क्षुप। (३) वायु। वि० चंचल।

छुपना—क्रि० अ० दे० "छिपना"।

छुपाना—क्रि० स० दे० "छिपाना"।

छुबुक—संज्ञा पुं० [सं०] चिबुक। ठुड्डी।

छुभित*—वि० [सं० क्षुभित] (१) विचलित। चंचलचित्त। (२) घबराया हुआ।

छुभिराना*—क्रि० अ० [हिं० क्षोभ] क्षोभ को प्राप्त होना। क्षुब्ध होना। चंचल होना। उ०—चैयाँ चैयाँ गहौ चैयाँ नैयाँ ऐसे बोलौ बढ़ि दैया करो दया हमें काहे छुभराने है।—सूदन।

छुरधार*—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुरधार] छुरे की धार। पतली धार जिससे छू जाते ही कोई वस्तु कट जाय। उ०—देव विकटतर वक्र छुरधार प्रमदा तीव्र दर्प कंदर्प खर खड्ग धारा।—तुलसी।

छुरहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुरा + धरना] नाऊ की पेटी जिसमें वह छुरे रखता है। किसबत।

छुरा—संज्ञा पुं० [सं० क्षुर] [स्त्री० अल्प० छुरी] (१) वह हथियार जिसमें एक बेंट में लोहे का एक धारदार लंबा टुकड़ा लगा रहता है। यह आक्रमण करने वा मारने के काम में आता है। (२) वह हथियार जिससे नाई बाल मूँड़ते हैं। उस्तरा।

छुरित—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लास्य नामक नृत्य का एक भेद। इस नृत्य में नायक और नायिका दोनों रसपूर्ण हो परस्पर प्रेमप्रदर्शन पूर्वक चुंबनादि करते हुए नृत्य करते हैं। (२) बिजली की चमक।

वि० खचित। जड़ित। खुदा हुआ।

छुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुरा] (१) काटने वा चीरने फाड़ने का एक छोटा हथियार जिसमें एक बेंट में लोहे का लंबा धारदार टुकड़ा लगा रहता है। इससे नित्य प्रति के व्यवहार की वस्तु जैसे, फल तरकारी, कलम आदि काटते हैं। (२) लोहे का एक धारदार हथियार जिसमें बेंट लगा रहता है।

मुहा०—छुरी चलना = (१) छुरी से लड़ाई होना। (२) चीरने आदि के लिये छुरी का प्रयोग होना। **किसी पर छुरी चलाना** = घोर कष्ट पहुँचाना। घोर दुःख देना। भारी हानि पहुँचाना। घोर अनिष्ट करना। बुराई करना। अहित साधन करना। **छुरी देना** = मारना। गला काटना। **(किसी पर) छुरी तेज करना** = हानि पहुँचाने की तैयारी करना। **(किसी पर छुरी तेज होना** = अनिष्ट करने वा हानि पहुंचाने की तैयारी होना। **(किसी पर) छुरी फेरना** = किसी का अनिष्ट करना। किसी को भारी हानि पहुँचाना। **(किसी के) गले पर छुरी फेरना** = दे० 'छुरी फेरना'। **छुरी कटारी रहना** = लड़ाई झगड़ा रहना। बिगाड़ रहना। बैर रहना। **किसी के छुरियाँ कटावन पड़ना** = (१) किसी के कारण वा उसके द्वारा किसी वस्तु का नष्ट वा खर्च होना। कट्टे लगना। उ०—यहाँ आम रखे थे न जाने किसके छुरियाँ कटावन पड़े (अर्थात न जाने किसने ले लिए या खा लिये। यह वाक्य प्रायः स्त्रियाँ क्रोध में शाप के रूप में बोलती हैं)। (२) रक्तातीसार होना। लोहू गिरना।

छुरीधार—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुरी + धार] छुरे के आकार का हाथी दाँत का एक औज़ार जिसमें जाली कटी रहती है।

छुलछुल—संज्ञा पुं० [अनु०] थोड़ा थोड़ा करके मूतने से निकला हुआ शब्द।

छुलकना—क्रि० अ० [अनु० छुल छुल] थोड़ा थोड़ा करके मूतना।

छुलकी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] थोड़ा थोड़ा करके पेशाब करने की क्रिया।

छुलछुलाना—क्रि० अ० [अनु० छुल छुल] (१) थोड़ा थोड़ा करके मूतना। (२) थोड़ा थोड़ा करके पानी डालना। † (३) इतराना।

छुलाना—क्रि० स० [हिं० छूना] स्पर्श कराना। एक वस्तु को दूसरी वस्तु के इतने पास ले जाना कि एक दूसरे से लग या मिल जाय।

छुवना†—क्रि० स० दे० "छूना"।

छुवा छूत—संज्ञा स्त्री० दे० "छुआ छूत"।

छुवाना†—क्रि० स० [हिं० छूना का सकर्मक रूप] स्पर्श कराना। छुलाना। उ०—चितई ललचौंहैं चखनि डटि घूँघट पट माँहि। छल सों चली छुवाय कै छनक छबीली छाँहि।—बिहारी।

छुवाव†—संज्ञा पुं० [हिं० छुवाना] लगाव। संबंध। संसर्ग।

छुवारी अजवायन—दे० "छुहारी अजवायन"

छुहना*—क्रि० अ० [हिं० छुवना] (१) छू जाना। (२) रँगा जाना। लिपना। पुतना। रंजित होना। उ०—कवि देव कह्यो किन काहू कछू जब ते उनके अनुराग छुही।—देव।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० स० दे० "छूना"।

छुहाना—क्रि० स० दे० "छोहाना"।

छुहार बेर—संज्ञा पुं० [हिं० छुहारा] पका हुआ बेर।

छुहारा—संज्ञा पुं० [सं० क्षुत + हार] (१) एक प्रकार का खजूर जिसका फल खाने में अधिक मीठा होता है। इसका पेड़ अरब, सिंध आदि मरु स्थानों में होता है। वैद्यक में यह पुष्टिकारक, शुक्र और बल को बढ़ानेवाला, तथा मूर्छा और वात पित्त का नाश करनेवाला माना गया है। खुरमा। पिंड खजूर। खरिक खुरमा। (२) पिंडखजूर का फल।

विशेष—दे० "खजूर"।

छुहारी—संज्ञा स्त्री० [देश० छुहारा] छोटी और निकृष्ट जाति का छुहारा।

छुहारी अजवायन—संज्ञा स्त्री० [सं० चौहार + यवानी] फारस से आनेवाली अजमोदा।

छुही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना] खरिया। सफेद मिट्टी।

छू—संज्ञा पुं० [अनु०] मंत्र पढ़ कर फूँक मारने का शब्द मंत्र की फूँक।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—छू बनना या होना = चलता बनना। चंपत होना।

गायब होना । उड़ जाना । जाता रहना । छू छू बनाना = उल्लू बनाना । बेवक़ूफ़ बनाना । छू मंतर = मंत्र की फूँक । छू मंतर होना = चट पट दूर होना । मिट जाना । गायब होना । जाता रहना । न रहना । जैसे, दर्द का छू मंतर होना । (इंद्रजालिक वा बाजीगर प्रायः मंत्र पढ़ते हुए छू कह कर वस्तुओं को गायब कर देते हैं)

छूचक†-संज्ञा पुं० [सं० सूतक] (१) अशौच । सूतक । (२) बच्चा उत्पन्न होने पर छः दिन का काल ।

छू छू-वि० [सं० तुच्छ, हिं० छूछा] मूर्ख । जड़ । अहमक ।
संज्ञा स्त्री० [अनु०] दाई । बच्चों को खेलानेवाली ।

छूँछा†-वि० दे० "छूँछा" ।

छूँछा-वि० [सं० तुच्छ, प्रा० चुच्छ, छुच्छ] [स्त्री० छूँछी] (१) जिसके भीतर कोई वस्तु न हो । खाली । रीता । रिक्त । जैसे, छूँछा घड़ा, छूँछी नली, छूँछा हाथ । उ०—(क) पैठे सखनि सहित घर सूने माखन दधि सब खाई । छूँछी छाँड़ि मटुकिया दधि की हँसि सब बाहिर आई ।—सूर । (ख) जब बिन प्रान पिंड है छूँछा । धर्म लाग कहिए जो पूँछा ।—जायसी ।

मुहा०—छूँछा हाथ = (१) द्रव्य से खाली हाथ । (२) बिना हथियार का हाथ । हाथ जिसमें छुड़ी या डंडा आदि न हो ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः छोटी वस्तुओं के लिये होता है, मकान आदि बड़ी वस्तुओं के लिये नहीं ।

(२) निःसार । जिसके भीतर कुछ तत्त्व वा सार न हो । (३) निर्धन । जिसके पास रुपया पैसा न हो । जैसे, छूँछे को कौन पूछे ?

छूँछी-संज्ञा स्त्री० दे० "छुच्छी" ।

छूछा-वि० दे० "छूँछा" ।

छूट-संज्ञा स्त्री [हिं० छूटना] (१) छूटने का भाव । छुटकारा । मुक्ति ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।—होना ।

(२) अवकाश । फ़ुरसत ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।—लेना ।—होना ।

(३) देनदारों या असामियों के ऋण वा लगान की माफ़ी । उस रुपये या धन को अपनी इच्छा से छोड़ देना जो किसी के यहाँ चाहता हो । छुड़ौती । (४) किसी कार्य्य या उसके किसी अंग को भूल से न करने का भाव । किसी कार्य्य से संबंध रखनेवाली किसी बात पर ध्यान न जाने का भाव । उ०—करि स्नान अन्न दै दाना । एको तासै नाम बखाना । यहि के माहिँ छूट जो होई । एकादसि बिसरावा सोई ।—सबल ।

क्रि० प्र०—देना ।—मिलना ।—पाना ।

(५) वह धन या रुपया जो किसी के यहाँ चाहता हो पर किसी कारण से जमींदार या महाजन जिसे छोड़ दे । वह देना जो माफ हो जाय । (६) स्वतंत्रता । स्वच्छंदता । आजादी । (७) वह उपहास की बात जो किसी पर लक्ष्य करके निःसंकोच कही जाय । वह उक्ति जो बिना शिष्टता आदि का विचार किए किसी पर कही जाय । गाली गलौज ।

क्रि० प्र०—चलना ।—होना ।

(८) पटैत, फेंकैत, बंकैत आदि की वह लड़ाई जिसमें जहाँ जिसे दाँव मिले वह बेधड़क वार करे ।

क्रि० प्र०—लड़ना ।

(९) स्त्री पुरुष का परस्पर संबंध त्याग । तिलाक़ । (१०) वह स्थान जहाँ से कबूतर बाज शर्त बद कर कबूतर छोड़ें । (११) बौछार । छींटा । (१२) मालखंभ की एक कसरत जिसमें कोई पकड़ करके हाथों के थपेड़े देकर नीचे कूदते हैं । यह दो प्रकार की होती है, एक "दो हत्थी" दूसरी 'उलटी' । दो हत्थी में दोनों हाथों से बेंत पकड़ते हैं फिर जिस प्रकार उड़ान की थी उसी प्रकार पैरों को पीठ के पास ले जाकर उलटा उतारते हैं ।

छूटना-क्रि० अ० [सं० छुट = काटना (बंधन आदि)] (१) किसी बँधी, लगी, फँसी, उलझी या पकड़ी हुई वस्तु का अलग होना । लगाव में न रहना । संलग्न न रहना । दूर होना । जैसे, (खूँटे से) घोड़ा छूटना, छिलका छूटना, (चिपका हुआ) टिकट छूटना, गाँठ छूटना, (पकड़ा हुआ) हाथ छूटना । उ०—सखि, सरद-निसा-विधुवदनि बधूटी । ऐसी ललना सलोनी न भई, न हैं, न होनी रतिहु रची विधि जो छोलत छवि छूटी ।—तुलसी ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—शरीर छूटना = मृत्यु होना । प्राण छूटना = मृत्यु होना । साहस या हिम्मत छूटना = साहस न रहना । छूट पड़ना = किसी पकड़ी वा बँधी हुई वस्तु का अलग होकर नीचे गिर जाना । जैसे, गिलास हाथ से छूट पड़ा और फूट गया ।

(२) किसी बाँधने वा पकड़नेवाली वस्तु का ढीला पड़ना वा अलग होना । जैसे, रस्सी छूटना, बंधन छूटना । (३) किसी पुती या लगी हुई वस्तु का अलग होना या दूर होना । जैसे, रंग छूटना, मैल छूटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(४) किसी बंधन से मुक्त होना । छुटकारा होना । रिहाई होना । किसी ऐसी स्थिति से दूर होना जिसमें स्वच्छंद गति आदि का अवरोध हो । जैसे, कैद से छूटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(५) प्रस्थान करना । रवाना होना । चल पड़ना । चला

जाना। जैसे, गाड़ी छूटना। उ०—चोरों को पकड़ने के लिये चारों ओर सिपाही छूटे हैं। (६) किसी वस्तु, व्यक्ति वा स्थान का अपने से दूर पड़ जाना। वियुक्त होना। बिछुड़ना। जैसे, घर छूटना, भाई बंधु छूटना। उ०—वह दूकान तो पीछे छूट गई।

संयो० क्रि०—जाना।

(७) किसी दूर तक जानेवाले अस्त्र का चल पड़ना। जैसे, तीर छूटना, गोली छूटना।

मुहा०—बंदूक छूटना = बंदूक से गोली निकलना और शब्द होना। बंदूक चलना।

विशेष—बंदूक, पड़ाके आदि के संबंध में केवल शब्द होने के अर्थ में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है।

(८) किसी बात का जो रह रह कर बराबर होती रहे, बंद होना। किसी क्रिया का जो समय समय पर बराबर होती रहे दूर होना। न रह जाना। जैसे, आना जाना छूटना, आदत छूटना, अभ्यास छूटना, शराब (अर्थात् शराब का पीना) छूटना, दम छूटना, बुखार छूटना, रोग छूटना, चौथिया छूटना।

विशेष—फोड़ा, बवासीर, फीलपाव आदि बाहरी शरीर पर स्थायी लक्षण रखनेवाले रोगों के लिये इस क्रिया का व्यवहार प्रायः नहीं होता। इसी प्रकार समय समय पर होनेवाली बात का किसी एक विशेष समय में न होना छूटना नहीं कहलाता। जैसे, यदि किसी को बुखार चढ़ा है या सिर में दर्द है और वह दवा देने से उस समय दूर होगया तो उसे 'छूटना' नहीं कहेंगे 'उतराना' वा 'दूर होना' ही कहेंगे।

मुहा०—नाड़ी छूटना = (१) नाड़ी का चलना बंद हो जाना। (२) नाड़ी की गति का अपने स्थान पर न मिलना।

(९) किसी वस्तु में से वेग के साथ निकलना। उ०—रक्त की धार छूटना। (१०) रस रस कर (पानी) निकलना। जैसे, इस तरकारी में से पकाते वक्त पानी बहुत छूटता है। (११) किसी ऐसी वस्तु का अपनी क्रिया में तत्पर होना जिसमें से कोई वस्तु कणों वा छींटों के रूप में वेग से बाहर निकले। जैसे, पिचकारी छूटना, फौवारा छूटना, आतिशबाजी छूटना।

मुहा०—पेट छूटना = दस्त जारी होना।

(१२) काम में आने से बचना। शेष रहना। बाकी रहना। जैसे, उसके आगे जो छूटा है तुम खा लो। (१३) किसी काम का या उसके किसी अंग का, भूल से न किया जाना। कोई काम करते समय उससे संबंध रखनेवाली किसी बात या वस्तु पर ध्यान न जाना। भूल या प्रमाद से किसी वस्तु का कहीं पर प्रयुक्त न होना, रक्खा न जाना या लिया न जाना। रह जाना। जैसे, लिखने में अक्षर छूटना, इकट्ठा करने में कोई वस्तु छूटना, रेल पर छाता छूट जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

(१४) किसी कार्य से हटाया जाना। नौकरी से अलग किया जाना। बरखास्त होना। जैसे, नौकरी से छूटना। (१५) किसी वृत्ति वा जीविका का बंद होना। रोज़ी वा जीविका का न रह जाना। जैसे, नौकरी छूटना। बँधं हुआ सीधा छूटना। (१६) पशुओं का अपनी मादा से संयोग करना।

मुहा०—किसी पर छूटना = किसी मादा से संयोग करना।

छूत—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना] (१) छूने का भाव। स्पर्श। संसर्ग। छुवाव।

यौ०—छुआ छूत। छूत छात।

(२) गंदी अशुचि वा रोग-संचारक वस्तु का स्पर्श। अस्पृश्य का संसर्ग। उ०—(क) बहुत से रोग छूत से फैलते हैं। (ख) शीतला में लोग छूत बचाते हैं।

यौ०—छूत का रोग = वह रोग जो किसी से छू जाने से हो।

(३) अशुचि वस्तु के छूने का दोष वा दूषण। उ०—इस बरतन में कौन सी छूत लगी है?

मुहा०—छूत उतरना = अशुचि स्पर्श का दोष दूर होना।

(४) किसी मनहूस आदमी या भूत-प्रेत की छाया। भूत आदि लगने का बुरा प्रभाव।

मुहा०—छूत उतारना = भूत प्रेत की छाया का प्रभाव मंत्र से दूर करना। छूत झाड़ना = दे० "छूत उतारना"।

छूना—क्रि० अ० [सं० छुप, प्रा० छुव + ना (प्रत्य०), पू० हिं० छुवना] एक वस्तु का दूसरी वस्तु के इतने पास पहुँचना कि दोनों के कुछ अंश एक दूसरे से लग जाँय। एक वस्तु के किसी अंश का दूसरी वस्तु के किसी अंश से इस प्रकार मिलना कि दोनों के बीच कुछ अंतर वा अवकाश न रह जाय। स्पृष्ट होना। आंशिक संयोग होना। जैसे, चारपाई ऐसे ढँग से बिछाओ कि कहीं दीवार से न छू जाय।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० स० (१) किसी वस्तु तक पहुँच उसके किसी अंग को अपने किसी अंग से सटाना या लगाना। किसी वस्तु की ओर आप बढ़ कर उसे इतना निकट करना कि बीच में कुछ अवकाश या अंतर न रह जाय। स्पर्श करना। संसर्ग में लाना। जैसे, धीरे धीरे यह डाल छत को छू लेगी।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—आकाश छूना = बहुत ऊँचे तक जाना। बहुत ऊँचा होना।

(२) हाथ बढ़ा कर उँगलियों के संसर्ग में लाना। हाथ लगाना। त्वगिंद्रिय द्वारा अनुभव करना। जैसे, (क) इसे छूकर देखो कितना कड़ा है। (ख) इस पुस्तक को मत छूओ।

मुहा०—छूने से होना या छूने को होना = रजस्वला होना।

† (३) दान देने के लिये किसी वस्तु को स्पर्श करना। दान

देना। जैसे, खिचड़ी छूना, बछिया छूना या छू कर देना, सोना छूना।

विशेष—दान देने के समय वस्तु को मंत्र पढ़ कर स्पर्श करने का विधान है।

(४) दौड़ की बाजी में किसी को पकड़ना। (५) उन्नति की समान श्रेणी में पहुँचना। उ०—यह लड़का अभी छठें दरजे में है पर दो बरस में तुम्हें छू लेगा। (६) धीरे से मारना। जैसे, तुम ज़रा सा छूने से रोने लगते हो। (७) थोड़ा व्यवहार करना। बहुत कम काम में लाना। जैसे, छुट्टी में तुमने कभी किताब छुई है। (८) पोतना। लगाना। जैसे, चूना छूना, रंग छूना।

छूरा—संज्ञा पुं० दे० "छुरा"।

छूरी†—संज्ञा स्त्री० दे० "छुरी"।

छेँकना—क्रि० स० [सं० छद = ढाँकना + करण] (१) आच्छादित करना। स्थान घेरना। जगह लेना। जैसे, (क) कितनी जगह तो यह पेड छेँके है। (ख) इस रोग की दवा करो नहीं तो यह सारा चेहरा छेँक लेगा। (२) घेरना। रोकना। गति का अवरोध करना। रास्ता बंद करना। जाने न देना। उ०—(क) प्रभु करुणामय परम विवेकी। तनु तजि रहत छाँह किमि छेँकी।—तुलसी। (ख) मेघनाद सुनि स्रवन अस गढ़ पुनि छेँका आइ। उतरि दुर्ग तेँ बीर बर सम्मुख चलेउ बजाइ।—तुलसी। (३) लकीरों से घेरना। रेखा के भीतर डालना। (४) लिखे हुए अक्षर को लकीर से काटना। मिटाना। जैसे, इस पोथी में जहाँ जहाँ अशुद्ध हो छेँक दो। उ०—सोइ गोसाइँ विधि गति जेइ छेँकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।—तुलसी।

छेँवर—संज्ञा पुं० [देश०] दे० "घंटील"।

छेक—संज्ञा पुं० [हिं० छेद] (१) छेद। सूराख। उ०—सत गुरु साँचा सूरमा शब्द जो मारा एक। लागत ही भय मिट गया परा कलेजे छेक।—कबीर। (२) कटाव। विभाग। उ०—कबिरा सपने रैन में परा जीव में छेक। जैसे हुतो दुइ जना जो जागूँ तो एक।—कबीर।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर के पालतू पशु पक्षी। (२) नागर। (३) छेकानुप्रास।

छेकानुप्रास—संज्ञा पुं० [सं०] एक शब्दालंकार। एक अनुप्रास जिसमें एक ही चरण में दो वा अधिक वर्णों की आवृत्ति कुछ अंतर पर होती है। उ०—अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई।

छेकापह्नुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें दूसरे के ठीक अनुमान वा अटकल का अयथार्थ उक्ति से खंडन किया जाता है। उ०—सी सी करन सिखात है करत अधर छत पीर। कहा मिल्यो नागर पिया ? नहि सखि सिसिर समीर। यहाँ नायिका के अधर पर क्षत देख कर सखी अपना अनुमान प्रकट करती है कि क्या नायक मिला था। इस पर नायिका ने यह कह कर कि नहीं "शिशिर की हवा लगी है" उसके अनुमान का खंडन किया।

छेकोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लोकोक्ति जो अर्थांतर-गर्भित हो अर्थात् जिससे अन्य अर्थ की भी ध्वनि निकले। जैसे, जानत सखे भुजंग ही जग में चरण भुजंग।

छेटा†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिप्त, प्रा० छित्त] बाधा। रुकावट। उ०—कह्यो कुलिंद भूप कर बेटा। डाँड़ देत में डारत छेटा।—रघुराज।

छेड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० छेद] (१) छू या खोद खाद कर तंग करने की क्रिया। (२) व्यंग्य उपहास आदि के द्वारा किसी को चिढ़ाने वा तंग करने की क्रिया। हँसी ठठोली करके कुढ़ाने का काम। चुटकी।

यौ०—छेड़खानी। छेड़छाड़।

(३) ऐसी बात वा क्रिया जिससे दूसरा कोई चिढ़े। चिढ़ाने-वाली बात।

मुहा०—छेड़ निकालना = चिढ़ानेवाली बात स्थिर करना। उ०—उसे चिढ़ाने के लिये तुमने यह अच्छी छेड़ निकाली है।

(४) रगड़ा। झगड़ा। परस्पर की चोटें। एक दूसरे के विरुद्ध दाँव पेच। विरोध। जैसे, उन दोनों में खूब छेड़ चली है (५) बाजे में गति या शब्द उत्पन्न करने के लिये उसे छूने की क्रिया। बजाने के लिये किसी (विशेषतः तार-वाले जैसे सितार) वाद्य यंत्र का स्पर्श।

† संज्ञा पुं० छेद। सूराख।

छेड़ना—क्रि० स० [हिं० छेदना] (१) छूना या खोदना खादना। दबाना। कोंचना। उ०—इस फोड़े को छेड़ना मत, दवा लगा कर छोड़ देना। (२) छू या खोदखाद कर भड़काना या तंग करना। उ०—कुत्ते को मत छेड़ो, काट खायगा। (३) किसी को उत्तेजित करने वा चिढ़ाने के लिये उसके विरुद्ध कोई ऐसा कार्य्य करना जिससे वह बदला लेने के लिये तैयार हो। उ०—तुम पहले उसे न छेड़ते तो वह तुम्हारे पीछे क्यों पड़ता। (४) व्यंग्य, उपहास आदि द्वारा किसी को चिढ़ाना या तंग करना। हँसी-ठिठोली करके कुढ़ाना। चुटकी लेना। दिल्लगी करना। (५) कोई बात या कार्य्य आरंभ करना। उठाना। शुरू करना। जैसे, काम छेड़ना, बात छेड़ना, चर्चा छेड़ना, राग छेड़ना। (६) बाजे (विशेषतः तारवाले) में शब्द वा गति उत्पन्न करने के लिये उसे छूना। वाद्य यंत्र में क्रिया वा शब्द उत्पन्न करने के लिये उसे स्पर्श करना। बजाने के लिये बाजे में हाथ लगाना। जैसे, सितार छेड़ना, सारंगी छेड़ना। † (७) छेद करना। † (८) नश्तर से फोड़ा चीरना।

छेड़वाना–क्रि० स० [हिं० 'छेड़ना' का प्रे०] छेड़ने का काम कराना।

छेड़ा–संज्ञा पुं० [?] रस्सी। सांट। (लश०)। जैसे, बारीक छेड़ा।

छेत्र*†–संज्ञा पुं० दे० "क्षेत्र"।

छेद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छेदन। काटने का काम। (२) नाश। ध्वंस। जैसे, उच्छेद, वंशच्छेद। (३) छेदन करनेवाला। (४) गणित में भाजक। (५) खंड। टुकड़ा। (६) श्वेतांबर जैन संप्रदाय के ग्रंथों का एक भेद।

संज्ञा पुं० [सं० छिद्र] (१) किसी वस्तु में वह खाली स्थान जो फटने वा सुई, काँटे हथियार आदि के आर पार चुभने से होता है। किसी वस्तु में वह शून्य वा खुला स्थान जिसमें होकर कोई वस्तु इस पार से उस पार जा सके। सूराख। छिद्र। रंध्र। जैसे, छलनी के छेद, कपड़े में छेद, सुई का छेद। उ०—दीवार के छेद में से बाहर की चीज़ें दिखाई पड़ती हैं।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) वह खाली स्थान जो (खुदने कटने फटने या और किसी कारण से) किसी वस्तु में कुछ दूर तक पड़ा हो। बिल। दरज। खोखला। विवर। कुहर। (३) दोष। दूषण। ऐब।

क्रि० प्र०—ढूँढ़ना।—मिलना।

छेदक–वि० [सं०] (१) छेदनेवाला। काटनेवाला। (२) नाश करनेवाला। (३) विभाजक। भाजक। छेद।

छेदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) काटने वा आर पार चुभाने की क्रिया या भाव। काट कर अलग करने का काम। चीर फाड़।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) नाश। ध्वंस। (३) छेदक। (४) काटने वा छेदने का अस्त्र। (५) वह औषध जो कफ़ आदि को छाँट कर निकाल दे।

छेदना–क्रि० स० [सं० छेदन] (१) किसी वस्तु को सुई काँटे भाले वरछी आदि से इस प्रकार दबाना कि उसमें आर पार छेद हो जाय। सुई, कील या और किसी नुकीली वस्तु एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व तक चुभा कर किसी वस्तु को छिद्रयुक्त करना। बेधना। भेदना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

विशेष—यदि कैंची से कतर कर, या और किसी ढंग से किसी वस्तु में छेद बनाए जाँय तो उस वस्तु को 'छेदना' नहीं कहलावेगा।

(२) क्षत करना। घाव करना। जैसे, तीरों ने उसका सारा शरीर छेद डाला। † (३) काटना। छिन्न करना।

संज्ञा पुं० वह औज़ार जिससे छेद किया जाय। जैसे, सूआ, सुतारी।

छेदनहार†–वि० [हिं० छेदना + हारा (प्रत्य०)] छेदनेवाला। उ०—सहस बाहु भुज छेदनिहारा। परसु विलोकु महीपकुमारा।—तुलसी।

छेदा–संज्ञा पुं० [हिं० छेदना] (१) घुन नाम का कीड़ा। (२) अन्न में वह विकार जो इस कीड़े के कारण पैदा होता है। घुन द्वारा खाए जाने के कारण अनाज के खोखले होने का दोष।

छेदोपस्थानिकचारित्र–संज्ञा पुं० [सं०] गणाधिप के दिए हुए प्राणातिपातादि पाँच महाव्रतों का पालन। छेदोपस्थानीय। (जैन)।

छेद्य–वि० [सं०] छेदन करने योग्य। छेदनीय।

संज्ञा पुं० (१) परेवा। कबूतर। (२) वैद्यक में आँख के रोगों की चिकित्सा का एक ढंग। इसमें आँख में नमक का चूर्ण डालते हैं तथा कभी कभी शस्त्र चिकित्सा भी करते हैं।

छेद्यकंठ–संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर। परेवा।

छेना–संज्ञा पुं० [सं० छेदन] (१) फाड़ा हुआ दूध जिसका पानी निचोड़ कर निकाल दिया गया हो। फटे दूध का खोया। पनीर।

विशेष—इसके बनाने की रीति यह है कि खौलते हुए दूध में खटाई वा फिटकरी डाल देते हैं जिससे वह फट जाता है अर्थात् उसके पानी का अंश सफेद भुरभुरे अंश से अलग हो जाता है। फिर फटे हुए दूध को एक कपड़े में रख कर निचोड़ते हैं जिससे पानी निकल जाता है और दूध का सफेद भुरभुरा अंश बच रहता है जो छेना कहलाता है। इस छेने से बंगाल में अनेक प्रकार की मिठाइयाँ बनती हैं। दही गरम करके भी एक प्रकार का छेना बनाया जाता है।

† (२) कंडा। उपला।

क्रि० स० (१) छिनगाना। कुल्हाड़ी आदि से काटना वा घाव करना। (२) दे० "छैना"।

छेनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छेना] (१) लोहे का वह औज़ार जिससे धातु, पत्थर आदि काटे या नकाशे जाते हैं। टाँकी।

विशेष—यह पाँच छ अंगुल लंबा लोहे का पतला टुकड़ा होता है जिसके एक ओर चौड़ी धार होती है। नक़ाशी करते समय इसे नोक के बल रख कर ऊपर से ठोंकते हैं। नक़ाशी करने की छेनी के सोलह भेद हैं—(१) खेरना। इससे गोल लकीर बनाई जाती है। (२) चेरना। इससे सीधी लकीर बनाई जाती है। (३) पगेरना। इससे लहर बनाई जाती है। (४) गुलसुम। इससे गोल गोल दाने बनाए जाते हैं। (५) फुलना। इससे फूल और पत्तियाँ बनाई जाती हैं। (६) बलिस्त। इससे बड़ी बड़ी पत्तियाँ बनाई जाती हैं। (७) दोअर्द। इससे छोटी पत्तियाँ बनाई जाती हैं। (८) तिलरा, (९) डिंगा। इनसे गोल महराब काटा जाता है। (१०) किर्रा। इससे

बेल और पत्तियाँ बनाई जाती हैं। (११) मलकरना। इससे दोहरी लकीर बनती है। (१२) सूतदार पगेरना। इससे एक बार में दोहरी लहर बनती है। (१३) गोटरा। इससे गोल नक्काशी बनाई जाती है। (१४) पानदार गोटरा। इससे पान बनाया जाता है। (१५) चौकोना गुलसुम। (१६) तिकोना गुलसुम। इन दोनों से चौकोनी और तिकोनी नक्काशी बनाई जाती है। (२) वह नहरनी जिससे पोस्ते से अफीम पोंछ कर निकाली जाती है।

छेमंड–संज्ञा पुं० [सं०] बिना बाप माँ का लड़का। अनाथ। यतीम।

छेम*‡–संज्ञा पुं० दे० "क्षेम"। उ०—(क) जाय कहब करतूति बिनु जाय जोग बिनु छेम। तुलसी जाय उपासब बिना राम-पद-प्रेम। —तुलसी। (ख) बड़ि प्रतीति गठबंध ते बड़ो जोग ते छेम। बड़ो सुसेवक साइँ ते बड़ो नाम ते प्रेम।—तुलसी।

छेमकरी*–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षेमकरी] सफेद चील। उ०—(क) छेमकरी कह छेम विशेषी। स्यामा वाम सुतरु पर देखी।—तुलसी। (ख) लाभ लाभ लोवा कहत छेमकरी कह छेम। चलत विभीषनु सगुन सुनि तुलसी पुलकत प्रेम।—तुलसी।

छेरना†–क्रि० अ० [सं० क्षरण] अपच के कारण बार बार पाखाना फिरना

छेरी–संज्ञा स्त्री० [सं० छेलिका] बकरी। अजा।

छेली†–संज्ञा स्त्री० दे० "छेरी"।

छेव–संज्ञा पुं० [सं० छेद, प्रा० छेव] (१) काटने छीलने आदि के लिये किया हुआ आघात। वार। चोट। उ०—तबै मेव यह कही बीर ठाढ़ो रहु ठाढ़ो। अब नहिं जीवत जाइ लोह करिहौं रन गाढ़ो। सुनत राव ह्वै क्रुद्ध उद्ध में तेगहि झारी। तहाँ मेव गहि छेव तुरंगम ते गहि डारी। भू परयो परी ह्वैं तीन असि बड़ गूजर के अंग पर। लियो सीस काटि साथी सहित राव रुंड सोयो समर।—सूदन।

क्रि० प्र०—चलाना।—मारना।—लगना।—लगना।

(२) वह चिह्न जो काटने छीलने आदि से पड़े। जखम। घाव। जैसे, उसने इस पेड़ में कुल्हाड़ी से कई छेव लगाए हैं। उ०—अरिन के उर माहिं कीन्हयों इमि छेव है। —भूषण।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।—पड़ना।

मुहा०—छल छेव=कपट व्यवहार। कुटिलता का दाव पेंच। छल छिद्र। उ०—जानति नहीं कहाँ ते सीखे चोरी के छल छेव।—सूर

† (३) आनेवाली आपत्ति। होनहार दुःख। किसी दुष्कर्म वा क्रूर ग्रह आदि के प्रभाव से होनेवाला अनिष्ट।

क्रि० प्र०—उतरना।—छूटना।—टलना।—मिटना।

संज्ञा स्त्री० दे० "टेव"।

छेवन–संज्ञा पुं० [हिं० छेवना=काटना] वह तागा जिससे कुम्हार चाक पर के बरतन को काट कर अलग करते हैं।

छेवना*–संज्ञा स्त्री० [हिं० छेना] ताड़ी।

क्रि० स० [सं० छेदन] (१) काटना। छिन्न करना। छिनगाना। (२) चिह्नित करना। चिह्न लगाना।

* क्रि० स० [सं० क्षेपण] फेंकना। मिलाना। उ०—अंत भयो प्रारब्ध को पायो निश्चल गेह। आतम परमातम मिल्यो देह खेह मँह छेव।—निश्चल।

छेवर†–संज्ञा पुं० [हिं० छेवना] (१) छाल। बक्कल। (२) छिलका। (३) चमड़ा। त्वचा।

क्रि० प्र०—उधड़ना।

छेवरा†–संज्ञा पुं० दे० "छेवर"।

छेवा–संज्ञा पुं० [हिं० छेव] (१) छीलने या काटने का काम। (२) वह आघात जो छीलने वा काटने के लिये किया जाय। चोट। (३) छीलने वा काटने का चिह्न। घाव। जखम। (४) अत्यंत वेग से बहनेवाला जल। (मल्लाह)

छेह*–संज्ञा पुं० [हिं० छेव] (१) दे० "छेव"। (२) खंडन। नाश। उ०—ब्रह्म भिन्न मिथ्या सब भाख्यो। तिन को भेद हेत कहि राखौ। उपजो यह मोको संदेहा। प्रभुता को अब कीजै छेहा।—निश्चल।

वि० खंडित। टुकड़े टुकड़े किया हुआ। न्यून। कम। उ०—पूरा सहजै गुण करै गुण ना आवै छेह। सायर पोसे सर भरे दामन भीगे मेह।—कबीर।

संज्ञा पुं० [?] नृत्य का एक भेद।

*संज्ञा स्त्री० [सं० क्षार] मिट्टी। राख। दे० "खेह"।

†संज्ञा स्त्री० [हिं० छाया] छाया।

छेहर†–संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] छाया। साया।

छै†–वि० दे० "छः"।

*संज्ञा स्त्री० दे० "क्षय", "क्षय"।

छैना*–क्रि० अ० [हिं० छय+ना (प्रत्य०)] (१) छीजना। क्षीण होना। कम होना। * (२) नष्ट होना।

मुहा०—छै जाना=छेद का फट जाना। किसी छेद का फैल कर इतना बढ़ जाना कि उसके आस पास का स्थान फट जाय। जैसे, कान छै जाना अर्थात् कान में किए हुए छेद का इतना फैल जाना कि लौ फट जाय।

छैया†*–संज्ञा पुं० [हिं० छवना] बच्चा। वत्स। (प्यार का शब्द) उ०—(क) कहति मल्हाइ मल्हाइ उर छिन छिन छगन छबीरे छोटे छैया।—तुलसी। (ख) भूतनु के छैया आस पास के रखैया और काली के नथैया हू ध्यान इते न चलै।—सूर।

छैल*–संज्ञा पुं० [सं० छवि+इल्ल (प्रा० प्रत्य०), प्रा० छविल्ल, छइल्ल] सुंदर और बना ठना आदमी। सुंदर वेश विन्यासयुक्त पुरुष। वह पुरुष जो अपना अंग खूब सजाए हो। बाँका। शौकीन।

रँगीला। उ०—(क) ते सब छैल भए असवारा। भरत सरिस वय राजकुमारा।—तुलसी। (ख) छरे छबीले छैल सब सूर सुजान नवीन। जुग पद चर असवार प्रति जे असि कला प्रवीन।—तुलसी।

यौ०—छैल चिकनियाँ। छैल छबीला।

छैल चिकनियाँ—संज्ञा पुं० [देश०] शौकीन। बना ठना आदमी।

छैल छबीला—संज्ञा पुं० [देश०] (१) सजाबजा और युवा पुरुष। रँगीला पुरुष। बाँका। (२) छरीला नाम का पौधा।

छैला—संज्ञा पुं० [सं० छवि + इल्ल (प्रा० प्रत्य०), प्रा० छविल्ल, छइल्ल] सुंदर और बना ठना आदमी। सुंदर वेश विन्यास युक्त पुरुष। वह पुरुष जो अपना अंग खूब सजाए हो। सजीला। बाँका। रँगीला। शौकीन।

छोंकर, छोंकरा—संज्ञा पुं० [सं० शंकरा] शमी का वृक्ष। सफेद कीकर।

छोंड़ा†*—संज्ञा पुं० [सं० क्ष्वेड] वह लकड़ी जिससे दही मथा जाता है। मथानी।

छोंड़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ष्वेडिका] मथानी।

संज्ञा स्त्री० [सं० क्षोणि] बड़ा बरतन।

छो—संज्ञा पुं० [सं० क्षोभ, हिं० छोह] (१) छोह। प्रेम। प्रीति। चाह। (२) दया। कृपा। (३) क्षोभ। क्रोधजनित दुःख। कोप। गुस्सा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—रखना।

छोई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छीलना] (१) ईख की पत्तियाँ जो उसमें से छील कर फेंक दी जाती हैं। (२) गन्ने की वह गँड़ेरी जिसका रस चूस कर वा पेर कर निकाल लिया गया हो। बिना रस की गँड़ेरी। सीठी।

छोकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० शावक, प्रा० छावक + रा (प्रत्य०)] [स्त्री० छोकड़ी] लड़का। बालक। अनुभवशून्य वा अपरिपक्व बुद्धि का युवक। लौंडा (प्रायः बुरे भाव से बोलते हैं)।

छोकड़ापन—संज्ञा पुं० [देश०] (१) लड़कपन। (२) छिछोरापन। नादानी।

छोकड़िया‡—संज्ञा स्त्री० दे० "छोकड़ी"।

छोकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोकड़ा] लड़की। कन्या। बेटी।

छोकरा†—संज्ञा पुं० दे० "छोकड़ा"।

संज्ञा पुं० दे० "छोंकरा"।

छोकला†—संज्ञा स्त्री० [सं० छल्ल] छाल। छिलका। बक्कल।

छोट†—वि० दे० "छोटा"।

छोटका‡—वि० [हिं० छोटा + का (प्रत्य०)] [स्त्री० छोटकी] छोटा।

विशेष—पूरबी प्रत्यय (का, की) ऐसी विशेष वस्तुओं के लिये आता है जो सामने होती हैं, जिनका उल्लेख पहले हो चुका रहता है, वा जिनका परिचय सुननेवाले को कुछ रहता है।

छोटपन†—संज्ञा पुं० छोटापन।

छोटफन्नी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा + फन] कम चौड़े मुँहवाली मटकी। छोटे मुँह की ठिलिया। तंग मुँह की गगरी।

छोटभैया—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + भाई] पद वा मान मर्य्यादा में छोटा आदमी। कम हैसियत का आदमी।

छोटा—वि० [सं० क्षुद्र] [स्त्री० छोटी] (१) जो बड़ाई या विस्तार में कम हो। आकार में लघु वा न्यून। डील डौल में कम। जैसे, छोटा घोड़ा, छोटा घर, छोटा पेड़, छोटा हाथ।

यौ०—छोटा मोटा = छोटा। जैसे, छोटा मोटा घर।

(२) जो अवस्था में कम हो। जिसका वय अल्प हो। जो थोड़ी उम्र का हो। जैसे, छोटा भाई। उ०—हम तुमसे तीन बरस छोटे हैं। (३) जो पद प्रतिष्ठा में कम हो। जो शक्ति, गुण, योग्यता, मान मर्य्यादा आदि में न्यून हो। जैसे, बड़े आदमियों के सामने छोटे आदमियों को कौन पूछता है?। उ०—अरि छोटो गनिए नहीं जातें होत बिगार।—वृंद।

यौ०—छोटा मोटा।

(४) जो महत्व का न हो। जिसमें कुछ सार या गौरव न हो। सामान्य। उ०—इतनी छोटी बात के लिये लड़ना ठीक नहीं। (५) ओछा। क्षुद्र। जिसमें गंभीरता उदारता वा शिष्टता न हो। जिसका आशय महद् वा उच्च न हो। उ०—(क) किसी से कुछ माँगना बड़ी छोटी बात है। (ख) वह बड़े छोटे जी का आदमी है।

छोटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा + ई (प्रत्य०)] (१) छोटापन। लघुता। (२) नीचता। क्षुद्रता।

छोटा-कुँवार—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा + सं० कुमारी] एक जाति का घीकुँआर जिसके पत्ते छोटे होते हैं और चीनी में मिला कर दस्त की बीमारी में खाए जाते हैं। यह मैसूर प्रांत में अधिक होता है।

छोटा-कचूर—संज्ञा पुं० [हिं०] कपूर कचरी। गंधपाली।

छोटा-कपड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + कपड़ा] अँगिया। चोली।

छोटा-चाँद—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + चाँद] एक लता जिसकी जड़ साँप के विष की उत्तम औषध कही जाती है। जड़ को सुखा कर और चूर्ण करके साँप के काटे हुए स्थान पर लगाते और उसका काढ़ा करके २४ घंटे में ⟆।= तक पिलाते हैं।

छोटापन—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + पन (प्रत्य०)] (१) छोटा होने का भाव। छोटाई। लघुता। (२) बचपन। बालपन। लड़कपन।

छोटा-पाट—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + पाट] रेशम के कीड़े का एक भेद।

छोटा-पीलू—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा + पीलू] रेशम के कीड़े का एक भेद।

छोटी इलायची-संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी + इलायची] सफ़ेद वा गुजराती इलायची। दे० "इलायची"।

छोड़ चिट्ठी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छोड़ना + चिट्ठी] वह लेख वा कागज जिसके कारण कोई व्यक्ति किसी प्रकार के ऋण वा बंधन से मुक्त समझा जाय। फारखती।

छोटी मैल-संज्ञा स्त्री० एक चिड़िया का नाम।

छोटी रकरिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी + रकरिया] एक घास जो पंजाब के हिसार आदि स्थानों में मिलती है। यह पाँच चार साल तक रहती है और इसे घोड़े चाव से खाते हैं।

छोटी सहेली-संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी + सहेली] एक छोटी चिड़िया का नाम जो देखने में बड़ी सुंदर होती है।

छोटी हाजिरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी + हाजिरी] भारत में रहनेवाले अँगरेजों या यूरोपियनों का प्रातःकाल का कलेवा। (खानसामा)

छोड़ छुट्टी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छोड़ना + छुट्टी] नाता टूटना वा संबंध-त्याग।

क्रि० प्र०—बोलना।

छोड़ना-क्रि० स० [सं० छोरण] (१) किसी पकड़ी हुई वस्तु को पृथक् करना। पकड़ से अलग करना। जैसे, हमारा हाथ क्यों पकड़े हो छोड़ दो।

संयो० क्रि०—देना।

(२) किसी लगी या चिपकी हुई वस्तु का उस वस्तु से अलग हो जाना जिससे वह लगी या चिपकी हो। उ०—बिना आँच दिखाए यह पट्टी चमड़े को न छोड़ेगी। (३) किसी जीव या व्यक्ति को बंधन आदि से मुक्त करना। छुटकारा देना। रिहाई देना। जैसे, कैदियों को छोड़ना, चौपायों को छोड़ना। (४) दंड आदि न देना। अपराध क्षमा करना। मुआफ करना। जैसे, (क) इस बार तो हम छोड़ देते हैं फिर कभी ऐसा न करना। (ख) जज ने अभियुक्तों को छोड़ दिया। (५) न ग्रहण करना। न लेना। हाथ से जाने देना। जैसे, मिलता हुआ धन क्यों छोड़ते हो। (६) उस धन को दयावश या और किसी कारण से न लेना जो किसी के यहाँ चाहता हो। देना मुआफ़ करना। ऋणी वा देनदार को ऋण से मुक्त करना। छूट देना। उ०—(क) महाजन ने सूद छोड़ दिया है, केवल मूल चाहता है। (ख) हम एक पैसा न छोड़ेंगे सब वसूल करेंगे। (७) अपने से दूर वा अलग करना। त्यागना। परित्याग करना। पास न रखना। जैसे, वह घर बार लड़के बाले छोड़ कर साधु हो गया। (८) साथ न लेना। किसी स्थान पर पड़ा रहने देना। न उठाना या लेना। जैसे, (क) तुम हमें वहाँ अकेले छोड़ कर कहाँ चले गए। (ख) वहाँ एक भी चीज़ न छोड़ना, सब उठा लाना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—स्थान (घर, गाँव, नगर आदि) छोड़ना = स्थान से चला जाना वा गमन करना। उ०—हमें घर छोड़े आज तीन दिन हुए।

(९) प्रस्थान कराना। गमन कराना। चलाना। दौड़ाना। जैसे, गाड़ी छोड़ना, घोड़ा छोड़ना, सिपाही छोड़ना, सवार छोड़ना।

मुहा०—किसी पर किसी को छोड़ना = किसी के पीछे किसी को दौड़ाना। किसी को पकड़ने, तंग करने वा चोट पहुँचाने के लिये उसके पीछे किसी को लगा देना। जैसे, हिरन पर कुत्ते छोड़ना, चिड़िया पर बाज छोड़ना। मादा (पशु) पर नर (पशु) छोड़ना = जोड़ा खाने के लिये नर को मादा के सामने करना।

(१०) किसी दूर तक जानेवाले अस्त्र को चलाना या फेंकना। क्षेपण करना। जैसे, गोली छोड़ना, तीर छोड़ना।

विशेष—बंदूक पड़ाके आदि के संबंध में केवल शब्द करने के अर्थ में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है।

(११) किसी वस्तु, व्यक्ति वा स्थान से आगे बढ़ जाना। जैसे, उसका घर तो तुम पीछे छोड़ आए।

संयो० क्रि०—आना।

(१२) किसी काम को बंद कर देना। किसी हाथ में लिए हुए कार्य्य को न करना। किसी कार्य्य से अलग होना। त्याग देना। जैसे, काम छोड़ना, आदत छोड़ना, अभ्यास छोड़ना, आना जाना छोड़ना। उ०—(क) सब काम छोड़कर तुम इसे लिख डालो। (ख) उसने नौकरी छोड़ दी। (१३) किसी रोग व्याधि का दूर होना। जैसे, बुखार नहीं छोड़ता है। (१४) भीतर से वेग के साथ बाहर निकालना। उ०—ह्वेल अपने मुँह से पानी की धार छोड़ती है। (१५) किसी ऐसी वस्तु को चलाना वा अपने कार्य्य में लगाना जिसमें से कोई वस्तु कणों वा छींटों के रूप में वेग से बाहर निकले। जैसे, पिचकारी छोड़ना, फौवारा छोड़ना, आतशबाजी छोड़ना। (१६) बचाना। शेष रखना। बाकी रखना। व्यवहार वा उपयोग में न लाना। उ०—(क) उसने अपने आगे कुछ भी नहीं छोड़ा, सब खा गया। (ख) उसने किसी को नहीं छोड़ा है सब की दिल्लगी उड़ाई है।

मुहा०—(किसी को) छोड़ वा छोड़ कर = (किसी के) अतिरिक्त। सिवाय। जैसे, तुम्हें छोड़ और कौन हमारा सहायक है।

(१७) किसी कार्य्य को या उसके किसी अंग को भूल से न करना। कोई काम करते समय उससे संबंध रखनेवाली किसी बात या वस्तु पर ध्यान न देना। भूल या विस्मृति से किसी वस्तु को कहीं से न लेना, न रखना वा न प्रयुक्त करना।

जैसे, लिखने में अक्षर छोड़ना, इकट्ठा करने में कोई वस्तु छोड़ना, रेल पर छाता छोड़ना। (१८) ऊपर से गिराना वा डालना। जैसे (क) हाथ पर थोड़ा पानी तो छोड़ दो। (ख) इस पर थोड़ी राख छोड़ दो।

छोड़वाना–क्रि० स० [हिं० छोड़ना का प्रे०] छोड़ने का काम कराना।

क्रि० स० [हिं० छुड़ाना का प्रे०] छुड़ाने का काम कराना।

छोड़ाना–क्रि० स० दे० "छुड़ाना"।

छोनिप*–संज्ञा पुं० [सं० क्षोणिप] राजा। उ०—रहे असुर छल छोनिप वेखा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा।—तुलसी।

छोनी*–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षोणी] पृथ्वी। भूमि। उ०—सोक कनक लोचन मति छोनी। हरी विमल गुन गन जग जोनी। —तुलसी।

छोप–संज्ञा पुं० [सं० क्षेप, हिं० खेप] (१) किसी गाढ़ी वा गीली वस्तु की मोटी तह जो किसी वस्तु पर चढ़ाई जाय। मोटा लेप।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

(२) गाढ़ी वा गीली वस्तु की मोटी तह चढ़ाने का कार्य्य। (३) गीली मिट्टी या और किसी पानी में सनी हुई वस्तु का लोंदा जो दीवार अथवा और किसी वस्तु पर गड्ढे मूँदने वा सतह बराबर करने आदि के लिये रक्खा और फैलाया जाय।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—रखना।

यौ०—छोप छाप = मरम्मत।

(४) आघात। वार। प्रहार। उ०—जहाँ जात जूटि तहाँ टूटि परैं बादर लौं ऊटि बल भट, सीस फूटि डारैं छोप सों।—गोपाल। (५) छिपाव। बचाव।

यौ०—छोप छाप = (१) दोष आदि का छिपाव। (२) बचाव। रक्षा।

छोपना–क्रि० स० [हिं० छुपाना] (१) किसी गीली वा गाढ़ी वस्तु को दूसरी वस्तु पर इस प्रकार रख कर फैलाना कि उसकी मोटी तह चढ़ जाय। गाढ़ा लेप करना। उ०–नीम की पत्ती पीस कर फोड़े पर छोप दो।

संयो० क्रि०—देना।

(२) गीली मिट्टी या और किसी पानी में सनी हुई वस्तु के लोंदे को किसी दूसरी वस्तु पर इस प्रकार फैला कर रखना कि वह उससे चिपक जाय। गिलावा लगाना। थोपना। जैसे, दीवार में जहाँ जहाँ गड्ढे हैं वहाँ मिट्टी छोप दो।

यौ०—छोपना छापना = गड्ढे आदि मूँद कर मरम्मत करना फटे वा गिरे पड़े को दुरुस्त करना।

संयो० क्रि०—देना।

(३) किसी वस्तु पर इस प्रकार पड़ना कि वह बिलकुल ढक जाय। किसी पर इस प्रकार चढ़ बैठना कि वह इधर उधर अंग न हिला सके। धर दबाना। ग्रसना। जैसे, शेर बकरी को छोप कर बैठा रहा।

संयो० क्रि०—लेना।

† (४) ढकना। आच्छादित करना। छेंकना। † (५) किसी बात को छिपाना। परदा डालना। † (६) किसी के वार वा आघात से बचाना। आक्रमण आदि से रक्षा करना।

छोपा–संज्ञा पुं० [हिं० छोपना] पाल के चारों कोनों पर बँधी हुई रस्सियाँ जिनसे उसे ऊपर चढ़ाते हैं।

छोपाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० छोपना] (१) छोपने का भाव। (२) छोपने की क्रिया। (३) छोपने की मजदूरी।

छोभ–संज्ञा पुं० [सं० क्षोभ] [वि० छोभित] (१) चित्त की विचलता जो दुःख, क्रोध, मोह, करुणा आदि मनोवेगों के कारण होती है। जी की खलबली। उ०—तात तीन अति प्रबल खल काम, क्रोध अरु लोभ। मुनि विज्ञान धाम-मन करहिं निमिष महँ छोभ।—तुलसी। (२) नदी तालाब आदि का भर कर उमड़ना।

छोभना*–क्रि० अ० [हिं० छोभ + ना (प्रत्य०)] चित्त का विचलित होना। करुणा, दुःख, शंका, मोह, लोभ आदि के कारण चित्त का चंचल होना। जी में खलबली होना। क्षुब्ध होना। उ०—(क) जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा।—तुलसी। (ख) नीके निरखि नयन भरि सोभा। पितु पन सुमिरि बहुरि मन छोभा।—तुलसी।

छोभित*–वि० [सं० क्षोभित] क्षोभित। चंचल। विचलित। उ०—हे हरि छोभित करि दई मयन पयन सर मारि। हरिहि हरिन नयनी लगी हेरन हार निहारि।—श्टं० सत०।

छोम*–वि० [सं० क्षौम = अलसी का बना चिकना कपड़ा] (१) चिकना। (२) कोमल। उ०—मोम सरिस मन छोम, खरे करि रोम भजहिं भट।—गोपाल।

छोर–संज्ञा स्त्री० [हिं० छोड़ना] (१) किसी वस्तु का वह किनारा जहाँ उसकी लंबाई का अंत होता हो। आयत विस्तार की सीमा। चौड़ाई का हाशिया। जैसे, दुपट्टे का छोर, तागे का छोर। उ०—काननि कनकफूल उपवीत अनुकूल पियरे दुकूल विलसत आछे छोर हैं।—तुलसी।

यौ०—ओर छोर = आदि अंत।

(२) विस्तार की सीमा। हद। (३) कोर कोना। किनारे पर का सूक्ष्म भाग। नोक। उ०—सिला छोर छुवत अहल्या भई दिव्य देह गुन पेखु पारस पंकरुह पाय के।—तुलसी।

छोर छुट्टी†–संज्ञा स्त्री० दे० "छोड़ छुट्टी"।

छोरना†–क्रि० स० [सं० छोरण = परित्याग] (१) बंधन आदि अलग करना। उलझन या फँसाव आदि दूर करना। (२) बंधन से मुक्त करना। (३) छीनना। हरण करना

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

छोरा†–संज्ञा पुं० [सं० शावक, हिं० छावक+रा (प्रत्य०)] [स्त्री० छोरी] छोकड़ा। लड़का। बालक।

संज्ञा पुं० [देश०] एक नाव को दूसरी नाव के साथ बाँध कर ले जाने का कार्य्य।

छोरा छोरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० छोरना] (१) छीन खसोट। छीना छीनी। (२) झगड़ा। बखेड़ा। झंझट। उ०—आतम देव-राम नित विहरत यामें नहि कछु छोरा छोरी।—देवस्वामी।

छोरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० छोरा] लड़की। छोकड़ी।

छोल–संज्ञा स्त्री० [हिं० छोलना] (१) छिल जाने का चिह्न वा घाव। (२) साँप के काटने में उसके दाँत लगने का एक भेद जिसमें केवल चमड़े में खरोंच लग जाता है।

छोलदारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छोरना+धरना=छोरधरी। वा अं० सोलजरी=सेना] एक प्रकार का छोटा खेमा। छोटा तंबू।

छोलना†–क्रि० स० [हिं० छाल] (१) छीलना। सतह का ऊपरी हिस्सा काटना। उ०—सखि सरद विमल विधु बदन बधूटी। ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होनी रतिउ रची विधि जो छोलत छवि छूटी।—तुलसी। (२) खुरचना। उ०—कलेजा छोलना=हृदय को अत्यंत व्यथित करना।

संज्ञा पुं० [स्त्री० छोलनी] लोहे का एक औजार जिससे सिकलीगर हथियारों का मुरचा खुरचते हैं।

छोलनी†–संज्ञा स्त्री [हिं० छोलना] (१) छीलने का औजार। (२) ऊँख छीलने का औजार। (३) चिलम में छेद बनाने का औजार। (४) हलवाइयों का कड़ाही खुरचने का औजार जो खुरपी के आकार का होता है। खुरचनी।

छोला–संज्ञा पुं० [हिं० छोलना] (१) वह पुरुष जो ईख को काटता और छीलता है। (२) चना।

छोवन–संज्ञा पुं० [हिं० छेवना] कुम्हारों का वह डोरा जिससे वे चाक पर चढ़े हुए बरतन को काट कर अलग करते हैं। (इस डोरे को एक सरकंडे में बाँध कर वे पानी में रखे रहते हैं)

छोह–संज्ञा पुं० [हिं० छोभ] (१) ममता। प्रेम। स्नेह। उ०—तजब छोभ जनि छाँड़िय छोहू। कर्म कठिन कछु दोष न मोहू।—तुलसी। (२) दया। अनुग्रह। कृपा। उ०—पारवती सम पति प्रिय होहू। देवि न हम पर छाँड़िय छोहू।—तुलसी।

छोहगर†–वि० [हिं० छोह+गर (प्रत्य०)] प्रेमी। स्नेही। ममता रखनेवाला।

छोहना*–क्रि० अ० [हिं० छोह+ना (प्रत्य०)] विचलित होना। चंचल होना। क्षुब्ध होना। उ०—बड़गूजरहूँ कोहयो। पंचानन ज्यों छोहयो।—सूदन।

छोहरा†*–संज्ञा पुं० [सं० शावक, प्रा० छावक, छाव+रा (प्रत्य)०] [स्त्री० छोहरी] लड़का। बालक। छोकड़ा। उ०—आपुस ही में कहत हँसत हैं प्रभु हिरदै यह सालत। तनक तनक से ग्वाल छोहरन कंस अबहि बधि घालत।—सूर।

छोहरी*–संज्ञा स्त्री० [हिं० छोहरा] लड़की। बालिका। छोकड़ी। उ०—ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं।

छोहाना*–क्रि० अ० [हिं० छोह] (१) मुहब्बत करना। प्रेम दिखाना। उ०—मग गोहूँ कर हिया चराना। पै सो पिता न हिये छोहाना।—जायसी। (२) अनुग्रह करना। दया करना। उ०—तुलसी तिहारे विद्यमान युवराज आज कोपि पाउँ रोपि बसि कै छोहाय छाड़िगो।—तुलसी।

मुहा०—किसी पर छोहाना=(१) किसी पर स्नेह प्रकट करना। (२) किसी पर दया वा अनुग्रह करना।

छोहारा–संज्ञा पुं० दे० "छुहारा"।

छोहिनी*–संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षौहिणी] अक्षौहिणी।

छोही*†–वि० [हिं० छोह] प्रेमी। स्नेही। ममता रखनेवाला। अनुरागी। उ०—कियो नेत यह वैष्णवद्रोही। राजा अहै साधु को छोही।—रघुराज।

संज्ञा स्त्री० [हिं० छोलना] खोइया। चूसी हुई गंडेरी की सीठी। पेरी हुई गँड़ेरी की सीठी। उ०—रस छाँड़ि छोही गहै कोल्हू पेरत देख। गहै असार असार को हिरदे नाहिं विवेक।—कबीर।

छौंक–संज्ञा स्त्री० [अनु०] बघार। तड़का।

यौ०—छौंक बघार।

छौंकना–क्रि० स० [अनु० छायँ छायँ=तपी हुई वस्तु पर पानी पड़ने का शब्द] (१) हींग, मिरचा, जीरा, राई, लहसुन आदि से मिले हुए कड़कड़ाते घी को दाल आदि में डालना जिसमें वह सोंधी या सुगंधित हो जाय। बघारना। जैसे, दाल छौंकना। (२) मेथी, मिरचा, हींग आदि से मिले हुए कड़कड़ाते घी में कच्ची तरकारी अन्न के दले वा भीगे दाने आदि को भूनने के लिये डालना। तड़का देना। जैसे, तरकारी छौंकना।

छौंड़ा–संज्ञा पुं० [सं० चुंडा=गड्ढा] ज़मीन में खोदा हुआ वह गडढा जिसमें अनाज रखते हैं। खत्ता। गाड़।

छौकना†–क्रि० अ० [सं० चतुष्क, प्रा० चउक्क] किसी जानवर (शेर बिल्ली आदि) का चारों पैर उठाकर किसी की ओर कूदना वा झपटना। चौकड़ी के साथ झपटना।

छौना–संज्ञा पुं० [सं० सूनु=पुत्र। सं० शावक, प्रा० छाव+औना (प्रत्य०)] [स्त्री० छौनी] पशु का बच्चा। किसी जानवर का बच्चा जैसे, मृग छौना, सूअर का छौना। उ०—बाछरू छबीले छौना छगन मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाई।—तुलसी।

छौर–संज्ञा पुं० दे० "छौरा"।

संज्ञा पुं० दे० "चौर"।

संज्ञा पुं० [हिं० छेवर = चमड़ा] पुराने समय में सरहद के झगड़ों के संबंध में शपथ खाने की एक रीति। इसमें वादी प्रतिवादी या किसी तीसरे व्यक्ति को जिसके सत्य कथन पर झगड़े का निपटेरा छोड़ दिया जाता था। गाय का चमड़ा सिर पर रख कर उस सरहद वा सिवान पर घूमना पड़ता था।

छौरा–संज्ञा पुं० [सं० क्षर = नाशवान्, नष्ट] (१) ज्वार या बाजरे का डंठल जो चारे के काम में आता है। डाँठ। कोयर। गर्री। खरई। (२) कपास का डंठल।

—:०:—

ज

ज–हिंदी भाषा का एक व्यंजन वर्ण। यह स्पर्श वर्ण है और चवर्ग का तीसरा अक्षर है। इसका बाह्य प्रयत्न संवार और नाद घोष है। यह अल्पप्राण माना जाता है। झ इस वर्ण का महाप्राण है। 'च' के समान ही इसका उच्चारण तालु से होता है।

जंग–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] [वि० जंगी] लड़ाई। युद्ध। समर। उ०—असदखान करि हल्ल जंग दुहुँ ओर मचाइय। सनमुख अरि डट्टि सुभट बहु कट्टि हटाइय।—सूदन।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

यौ०—जंगआवर। जंगजू।

संज्ञा स्त्री० [अं० जंक] एक प्रकार की बड़ी नाव जो बहुत चौड़ी होती है।

क्रि० प्र०—खोलना।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] लोहे का मोरचा।

क्रि० प्र०—लगना।

जंगआवर–वि० [फ़ा०] लड़नेवाला। योद्धा। लड़ाका।

जंगजू–वि० [फ़ा०] लड़ाका। वीर। योद्धा। उ०—और सुना है प्रताप बड़े जोश के साथ फौज मुहय्या कर रहा है और जंगजू राजपूत व भील बराबर आते जाते हैं।—महाराणा प्रताप।

जंगम–वि० [सं०] (१) चलने फिरनेवाला। चलता फिरता। चर। (२) जो एक स्थल से दूसरे स्थल पर लाया जा सके। जैसे, जंगम संपत्ति, जंगम विष। (३) दाक्षिणात्य लिंगायत शैव संप्रदाय के गुरु। ये दो प्रकार के होते हैं—विरक्त और गृहस्थ। विरक्त सिर पर जटा रखते हैं और कौपीन पहनते हैं। इन लोगों का लिंगायतों में बड़ा मान है।

जंगम-गुल्म–संज्ञा पुं० [सं०] पैदल सिपाहियों की सेना।

जंगम-विष–संज्ञा पुं० [सं०] वह विष जो चर प्राणियों के दंश आघात वा विकार आदि से उत्पन्न हो। सुश्रुत ने सोलह प्रकार के जंगम विष माने हैं—दृष्टि, निश्वास, द्रंष्ट्रा, नख, मूत्र, पुरीष, शुक्र, लाला, आर्तव, आल (आड़), मुख-संदेश, अस्थि, पित्त, विशर्द्धित, शूक, और शव वा मृत देह। उदाहरण के लिये जैसे, दिव्य सर्प के श्वास में विष; साधारण सर्प के दंशन में विष; कुत्ते, बिल्ली, बंदर, गोह आदि के नख और दाँत में विष; बिच्छू, भिड़ सकुची मछली आदि के आड़ में विष होता है।

जँगरा–संज्ञा पुं० [देश०] उर्द, मूँग इत्यादि के वे डंठल जो दाना निकाल लेने के बाद शेष रह जाते हैं। जेंगरा।

जँगरैत–वि० [हिं० जाँगर] [स्त्री० जँगरैतिन] (१) जाँगरवाला। (२) परिश्रमी। मेहनती।

जंगल–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जंगली] (१) जल-शून्य भूमि। रेगिस्तान। (२) वन। अरण्य।

मुहा०—जंगल में मंगल = सुनसान स्थान में चहल पहल
जंगल जाना = टट्टी जाना। पाखाने जाना।

(३) माँस।

जंगल-जलेबी–संज्ञा पुं० [हिं० जंगल + जलेबी] गू। गलीज़। गू का लेंड।

जँगला–संज्ञा पुं० [पुर्त्त० जेंगिला] (१) खिड़की, दरवाजे, बरामदे आदि में लगी हुई लोहे की छड़ों की पंक्ति। कठहरा। बाड़। (२) चौखट वा खिड़की जिसमें जाली वा छड़ लगी हों।

क्रि० प्र०—लगाना।

(३) दुपट्टे आदि के किनारे पर काढ़ा हुआ बेल बूटा।

संज्ञा पुं० [सं० जांगल्य] (१) संगीत के बारह मुकामों में से एक। (२) एक राग का नाम। (३) एक मछली जो बारह इंच लंबी होती है और बंगाल की नदियों में बहुत मिलती है। (४) अन्न के वे पेड़ वा डंठल जिनसे कूट कर अन्न निकाल लिया गया हो।

जंगली–वि० [हिं० जंगल] (१) जंगल में मिलने वा होनेवाला। जंगल संबंधी। जैसे, जंगली लकड़ी, जंगली कंडा। (२) आपसे आप होनेवाला (वनस्पति)। बिना बोए वा लगाए उगनेवाला। जैसे, जंगली आम, जंगली कपास। (३) जंगल में रहनेवाला। बनैला। जैसे, जंगली हाथी, जंगली आदमी। (४) जो घरेलू वा पालतू न हो। जैसे, जंगली कबूतर।

जंगली बादाम–संज्ञा पुं० [हिं० जंगली + बादाम] (१) कतीले की जाति का एक पेड़ जो भारतवर्ष के पश्चिमी घाट के पहाड़ों

तथा मर्तबान और टनासरिम के ऊपरी भागों में होता है। इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है। यह पेड़ फागुन चैत में फूलता है और इसके फूलों से कड़ी दुर्गंध आती है। इसके फलों के बीज को उबाल कर तेल निकाला जाता है। इन बीजों को महँगी के दिनों में लोग भून कर भी खाते हैं। फूल और पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं। इसे पून और पिनार भी कहते हैं। (२) हड़ की जाति का एक पेड़। यह अंडमन के टापू तथा भारतवर्ष और बर्मा में भी उत्पन्न होता है। इसकी छाल से एक प्रकार का गोंद निकलता है और इसके बीज से एक प्रकार का बहुमूल्य तेल निकलता है जो गंध और गुण में बादाम के तेल के समान ही होता है। इसकी पत्तियाँ कसैली होती हैं और चमड़ा सिझाने के काम में आती हैं। इसके बीज को लोग गजक की तरह खाते हैं और इसकी खली सुअरों को खिलाई जाती है। इसकी छाल, पत्ती, बीज, तेल आदि सब औषध के काम में आते हैं। लोग इसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को भी खिलाते हैं। इसे हिंदी बदाम और नट बदाम भी कहते हैं।

जंगली रेंड—संज्ञा पुं० दे० "बन रेंड"।

जंगा—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ंगूला] बोर। घुँघुरू का दाना।

जंगार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० जंगारी] (१) ताँबे का कसाव। तूतिया। (२) एक रंग। यह ताँबे का कसाव है जिसे सिरकाकश लोग निकालते हैं। वे ताँबे के चूर्ण को सिरके के अर्क में डाल देते हैं। सिरके का बरतन रात भर मुँह बंद करके और दिन को मुँह खोल करके रखा रहता है। चौबीस घंटे के बाद सिरके को उस बरतन से निकाल कर छिछले बरतन में सूखने के लिये रख देते हैं। जब पानी सूख जाता है तब उसके नीचे चमकीली नीले रंग की बुकनी निकलती है जो रँगाई के काम में आती है।

जंगारी—वि० [फ़ा० जंगार] नीले रंग का। नीला।

जंगाल—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंगार] दे० "जंगार"।

संज्ञा पुं० [सं०] पानी रोकने का बाँध।

जंगाली—वि० दे० "जंगारी"।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो चमकीले नीले रंग का होता है।

जंगी—वि० [फ़ा०] (१) लड़ाई से संबंध रखनेवाला। जैसे, जंगी जहाज, जंगी कानून। (२) फौजी। सैनिक। सेना संबंधी। जैसे, जंगी लाट, जंगी अफसर।

मुहा०—जंगी लाट = प्रधान सेनापति।

(३) बड़ा। बहुत बड़ा। दीर्घकाय। जैसे, जंगी घोड़ा। (४) वीर। लड़ाका। बहादुर। जैसे, जंगी आदमी।

संज्ञा पुं० कहारों की बोलचाल में घोड़ा'। जैसे, "दाहने जंगी, बचा के"।

वि० [फ़ा०] जंगबार का। हबश देश का। जैसे, जंगी हड़।

संज्ञा पुं० जंगबार देश का निवासी। हबशी।

जंगी हड़—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जंगी + हड़] काली हड़। छोटी हड़।

जंगुल—संज्ञा पुं० [सं०] जहर। विष।

जंगैं—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंगा] बड़ी घुँघुरू लगी कमरपट्टी जिसे अहीर वा धोबी अपने जातीय नाच के समय कमर में बाँधते हैं।

जंघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पिँडली। (२) जांघ। रान। उरु। (३) कैंची का दस्ता जिसमें फल और दस्ताने लगे रहते हैं। यह प्रायः कैंची के फलों के साथ ढाला जाता है पर कभी कभी यह पीतल का भी होता है।

जंघाफार—संज्ञा पुं० [हिं० जंघा + फारना] कहारों की बोली में वह खाईं जो पालकी के उठानेवाले कहारों के रास्ते में पड़ती है।

जंघामथानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंघा + मथानी] छिनाल स्त्री। पुंश्चली। कुलटा।

जँघार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंघा + आर] वह फोड़ा जो जाँघ में हो। यह आकृति में लंबा और कड़ा होता है और बहुत दिनों में पकता है। इसमें अधिक पीड़ा और जलन होती है।

जंघारथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) जंघारथ नाम ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

जंघारा—संज्ञा पुं० [देश०] राजपूतों की एक जाति जो बड़ी झगड़ालू होती है।

जंघारि—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

जंघाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धावन। धावक। दूत। (२) भावप्रकाश के अनुसार मृग की सामान्य जाति। हरिण, एण, कुरंग, ऋष्य, पृषत, न्यंकु, शंबर, राजीव, मुंडी आदि इसी जाति के अंतर्गत हैं। तामड़े रँग के हिरन को हरिण, कृष्ण वर्ण को एण, कुछ ताम्र वर्ण लिए काले को कुरंग, नील वर्ण को ऋष्य, हरिण से कुछ छोटे चंद्रविंदुयुक्त को पृषत, बहुत से सींगोंवाले को मृग, न्यंकु इत्यादि कहते हैं।

जंघाबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

जँचना—क्रि० अ० [हिं० जाँचना] (१) जाँचा जाना। देखा भाला जाना। (२) जाँच में पूरा उतरना। दृष्टि में ठीक वा अच्छा ठहरना। उचित वा अच्छा ठहरना। उचित वा अच्छा प्रतीत होना। ठीक वा अच्छा जान पड़ना। उ०—(क) हमें तो उसके सामने यह कपड़ा नहीं जँचता। (ख) मुझे उसकी बात जँच गई। (३) जान पड़ना। प्रतीत होना। निश्चय होना। मन में बैठना। उ०—मुझे तुम्हारी बात ठीक नहीं जँचती।

जँचा—वि० [हिं० जँचना] (१) जाँचा हुआ। सुपरीक्षित। (२) अव्यर्थ। अचूक। जैसे, जँचा हाथ।

मुहा०—जँचा तुला = (१) सुपरीक्षित। सधा या मँजा। अव्यर्थ। (२) ठीक ठीक। जिसकी सचाई में कुछ भी कसर न हो। जैसे, जँची तुली बात।

जंजर*†–वि० दे० "जंजल"।

जंजल*†–वि० [सं० जर्जर] पुराना और कमजोर। बेकाम।

जंजाल–संज्ञा पुं० [हिं० जग + जाल] [वि० जंजालिया, जंजाली] (१) प्रपंच। झंझट। बखेड़ा। उ०—अस प्रभु दीन बंधु हरि कारन रहित दयाल। तुलसिदास सठ ताहि भजु छाड़ि कपट जंजाल।—तुलसी। (२) बंधन। फँसाव। उलझन। उ०—(क) आज्ञा लै के चल्यो नृपति वहँ उत्तर दिशा विशाल। करि तप विप्र जनम जब लीन्हों मिट्यो जन्म जंजाल।—सूर। (ख) हृदय की कबहुँ न पीर घटी। दिन दिन हीन छीन भइ काया दुख जंजाल जटी।—सूर। (ग) भव जंजाल तोरि तरु बन के पल्लव हृदय विदारयो।—सूर।

मुहा०—जंजाल में पड़ना वा फँसना = कठिनता में पड़ना। संकट में पड़ना। उलझन में फँसना।

(३) पानी का भँवर। (४) एक प्रकार की बड़ी पलीतेदार बंदूक जिसकी नाल बहुत लँबी होती है। यह बहुत भारी होती है और दूर तक मार करती है। उ०—सूरज के सूरज गहि लुट्टिय। तुपक तेग जंजालन छुट्टिय। (५) एक बड़े मुँह की तोप। इसमें कंकड़ पत्थर आदि भर कर फेंके जाते थे। यह बहुधा किले का धुस तोड़ने के काम में आती थी। (६) बड़ा जाल।

जंजालिया–वि० [हिं० जंजाल + इया (प्रत्य०)] जंजाल रचनेवाला। बखेड़ा करनेवाला। झगड़ालू। उपद्रवी। फ़सादी।

जंजाली–वि० [हिं० जंजाल] झगड़ालू। बखेड़िया। फ़सादी।
संज्ञा स्त्री० वह रस्सी और घिरनी जिससे पाल चढ़ाते वा गिराते हैं।

जंजीर–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] [वि० जंजीरी] (१) साँकल। सिकड़ी। कड़ियों की लड़ी। जैसे, लोहे की ज़ंजीर। (२) बेड़ी।

मुहा०—जंजीर डालना = पैर में बेड़ी डालना। बाँधना। बंदी करना। पैर में जंजीर पड़ना = जंजीर से जकड़ा जाना। बंदी होना।

(३) किवाड़ की कुंडी। सिकड़ी।

मुहा०—जंजीर बजाना = कुंडी खटखटाना। जंजीर लगाना = कुंडी बंद करना।

जंजीरा–संज्ञा पुं० [हिं० जंजीर] एक प्रकार की सिलाई जो देखने में जंजीर की तरह मालूम पड़ती है। यह फाँस डाल कर सी जाती है। यह केवल कसीदे और सूईकार में काम आती है। लहरिया।

क्रि० प्र०—डालना।

जंजीरी–वि० [हिं० जंजीर] जंजीरदार। जिसमें जंजीर लगी हो।

मुहा०—जंजीरी गोला = तोप के वे गोले जो कई एक साथ जंजीर में लगे रहते हैं। ये साधारण गोलों की अपेक्षा अधिक भयानक होते हैं।

जंजीरेदार–वि० [हिं० जंजीरा + दार] जिसमें जंजीरा पड़ा हो। जंजीरा डाला हुआ।

विशेष—यह केवल सिलाई के लिये प्रयुक्त होता है, जैसे, जंजीरेदार सिलाई।

जंट–संज्ञा पुं० [अं० ज्वाइंट] जिला मजिस्ट्रेट के नीचे का सिवीलियन मजिस्ट्रेट। जंट मजिस्टर।

जंटिलमैन–संज्ञा पुं० [अं०] (१) भला मानुस। सभ्य पुरुष। (२) अंग्रेजी चाल ढाल से रहनेवाला आदमी।

जंड–संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली पेड़ जिसे साँगर भी कहते हैं। इसकी फलियों का अचार बनाया जाता है।

जंतर–संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] (१) कल। औज़ार। यंत्र। (२) तांत्रिक यंत्र।

यौ०—जंतर मंतर।

(३) चौकोर वा लंबी तावीज जिसमें तांत्रिक यंत्र वा कोई टोटके की वस्तु रहती है। इसे लोग अपनी रक्षा वा किसी इष्टि की सिद्धि के लिये पहनते हैं। (४) गले में पहनने का एक गहना जिसमें चाँदी या सोने के चौकोर या लंबे टुकड़े पाट में गुँथे होते हैं। कठुला। तावीज। (५) यंत्र जिससे वैद्य या रासायनिक तेल और आसव आदि तैयार करते हैं। (६) जंतर मंतर। मानमंदिर। आकाशलोचन। †(७) पत्थर, मिट्टी आदि का बड़ा ढोका। (८) वीणा। बीन नामक बाजा।

जंतर मंतर–संज्ञा पुं० [हिं० यंत्र मंत्र] (१) यंत्र मंत्र। टोना टोटका। जादू टोना। (२) आकाशलोचन। मानमंदिर जहाँ ज्योतिषी नक्षत्रों की स्थिति, गति आदि का निरीक्षण करते हैं।

जंतरा, जंत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० यंत्री] एक रस्सी जो गाड़ी के ढाँचे पर कसी वा तानी जाती है।

जंतरी–संज्ञा स्त्री० [सं० यंत्र] (१) छोटा जंता जिसमें सोनार तार बढ़ाते हैं। दे० जंता (२)"।

मुहा०—जंतरी में खींचना = (१) तारों को जंते में डाल कर पतला और लंबा करना। (२) सीधा करना। दुरुस्त करना। कज निकालना। टेढ़ापन दूर करना।

(२) पत्रा। तिथिपत्र। (३) जादूगर। भानमती। (४) बाजा बजानेवाला। वाद्यकुशल।

जँतसार–संज्ञा स्त्री० [सं० यंत्रशाला] जाँता गाड़ने का स्थान। वह स्थान जहाँ जाँता गाड़ा जाता है।

जंता–संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] [स्त्री० जंती, जंतरी] (१) यंत्र। कल। जैसे, जंताघर। (२) सोनारों और तारकशों का

एक औजार जिसमें डाल कर वे तार खींचते हैं। यह औजार लोहे की एक लंबी पटरी होती है जिसमें बहुत से ऐसे छेद कई पाँतियों में होते हैं जो क्रमशः छोटे होते जाते हैं। सोनार सोने या चांदी के तारों को पहले बड़े छेदों में, फिर उनसे छोटे छेदों में, फिर और छोटे छेदों में क्रमानुसार निकाल कर खींचते हैं जिससे तार पतले होकर बढ़ते जाते हैं।

वि० [सं० यंतृ = यंता] यंत्रणा देनेवाला। दंड देनेवाला। शासन करनेवाला। उ०—डाकिनी शाकिनी पूतना प्रेत वैताल भूत प्रमथ यूथ जंता।—तुलसी।

जँताना–क्रि० अ० [हिं० जँता] जांते में पिस जाना। कुचल जाना। चूर चूर होना।

जंती–संज्ञा स्त्री० [हिं० जंता] छोटा जंता जिससे सोनार बारीक तार खींचते हैं। जंतरी।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० जनना] माता। मा।

जंतु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्म लेनेवाला जीव। प्राणी। जानवर।

यौ०—जीवजंतु = प्राणी। जानवर।

(२) महाभारत के अनुसार सोमक राजा का एक पुत्र जिसकी वपा से होम करने के पीछे सौ पुत्र होगए।

जंतुकंबु–संज्ञा पुं० [सं०] शंख का कीड़ा। शंख।

जंतुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] लाख। लाक्षा।

जंतुघ्न–वि० [सं०] प्राणिनाशक। कृमिघ्न।

संज्ञा पुं० (१) बिडंग। बायबिड़ंग। (२) हींग। (३) बिजौरा नीबू। (४) वह औषध जिसके संपर्क से कीड़े मर जाते हों।

जंतुघ्नी–संज्ञा० स्त्री० [सं०] बायबिड़ंग।

जंतुनाशक–संज्ञा पुं० [सं०] हींग।

जंतुफल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उदुंबर। गूलर। ऊमर।

जंतुमारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नीबू।

जंतुला–संज्ञा स्त्री० [सं०] कास नाम की घास।

जंत्र–संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] (१) कल। औज़ार। (२) तांत्रिक यंत्र। (३) ताला।

विशेष—दे० "यंत्र"।

जंत्रना–क्रि० स० [हिं० जंत्र] ताला लगाना। ताले के भीतर बंद करना। जकड़बंद करना। उ०—सभा राउ गुरु महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जंत्री।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० दे० "यंत्रणा"।

जंत्र मंत्र–संज्ञा पुं० दे० "जंतर मंतर", "यंत्र मंत्र"।

जंत्रा–संज्ञा पुं० दे० "जंतरा"।

जंत्रित–वि० [सं० यंत्रित] (१) दे० "यंत्रित"। (२) बंद। बँधा। उ०—जयति निरुपाधि भक्ति भाव जंत्रित हृदय बंधु हित चित्रकूटाद्रि चारी।—तुलसी।

जंत्री–संज्ञा पुं० [सं० यंत्रिन्] वीणा आदि बजानेवाला। बाजा बजानेवाला।

वि० यंत्रित करनेवाला। बद्ध करनेवाला। जकड़बंद करनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] बाजा। उ०—बाजन दे बैजंतरी जग जंत्री ना छेड़। तुझे बिरानी क्या पड़ी अपनी आप निबेर।—कबीर।

संज्ञा स्त्री० दे० "जंतरी (२)"।

जंद–संज्ञा पुं० [फ़ा० زند मि० सं० छंदस्] (१) पारसियों का अत्यंत प्राचीन धर्मग्रंथ। इस की भाषा वैदिक भाषा से मिलती जुलती है। इसके श्लोक को 'गाथा' वा 'मंथ्र' कहते हैं। इसके छंद और देवता वेदों के छंद और देवताओं से मिलते हैं। (२) वह भाषा जिसमें पारसियों का जंद-अवस्था नामक धर्मग्रंथ लिखा गया है।

जंदरा–संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] (१) यंत्र। कल।

मुहा०—जंदरा ढीला होना = (१) कल पुर्जे बेकार होना। (२) हाथ पैर सुस्त होना। नस ढीली होना। थकावट आना।

(२) जाँता। जैसे, कुछ गेहूँ गीले, कुछ जंदरे ढीले। † (३) ताला।

जंबाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कीचड़। कांदो। पंक। (२) सेवार। शैवाल। (३) काई। (४) केवड़ा।

जंबाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी का वृक्ष।

जंबीर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंबीरी नीबू। (२) मरुवा। (३) सफ़ेद वा हलके रंग की तुलसी। (४) बन तुलसी।

जंबीरी नीबू–संज्ञा पुं० [सं० जंबीर] एक प्रकार का खट्टा नीबू। इसका फल कागजी नीबू से बड़ा और फल के ऊपर का छिलका मोटा और उभड़े महीन महीन दानों के कारण खुरदुरा होता है। कच्चा फल श्यामता लिए गहरा हरा होता है पर पकने पर पीला हो जाता है। पेड़ इसका बड़ा और कँटीला होता है। वसंत ऋतु में इसमें फूल लगते हैं और बरसात में फल दिखाई पड़ते हैं जो कार्त्तिक के उपरांत खाने योग्य होते हैं। फल इसमें बहुत आते हैं और बहुत दिनों तक रहते हैं।

जंबु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंबू वृक्ष। जामुन। (२) जामुन का फल।

जंबुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा जामुन। फरेंदा। (२) श्योनाक वृक्ष। (३) सुवर्ण केतकी। केवड़ा। (४) शृगाल। गीदड़। (५) वरुण। (६) बहन वृक्ष। (७) टेंटू का पेड़। सोना पाठा। (८) स्कंद का एक अनुचर।

जंबुखंड–संज्ञा पुं० [सं०] दे० "जंबुद्वीप"।

जंबुद्वीप–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक द्वीप। यह द्वीप पृथिवी के मध्य में माना गया है। पुराण का

मत है कि यह गोल है और चारों ओर से खारे समुद्र से घिरा है। यह एक लाख योजन विस्तीर्ण है और इसके नौ खंड माने गए हैं जिनमें प्रत्येक खंड नव नव हज़ार योजन विस्तीर्ण है। इन नौ खंडों को वर्ष भी कहते हैं। इलावृत खंड इन नौ खंडों के बीच में बतलाया गया है। इलावृत खंड के उत्तर में तीन खंड है—रम्यक, हिरण्मय और कुरुवर्ष। नील, श्वेत और श्रृंगवान् नामक पर्वत क्रमशः इलावृत और रम्यक, रम्यक और हिरण्मय और हिरण्मय और कुरुवर्ष के मध्य में है। इसी प्रकार इलावृत के दक्षिण में भी तीन वर्ष हैं जिनका नाम हरिवर्ष, पुरुष और भारतवर्ष है, और दो दो वर्षों के बीच एक एक पर्वत है जिनका नाम निषध, हेमकूट और हिमालय है। इलावृत के पूर्व में भद्राश्व और पश्चिम में केतुमाल वर्ष है तथा गंधमादन और माल्य नाम के दो पर्वत क्रमशः इलावृत खंड के पूर्व और पश्चिम सीमारूप हैं। पुराणों का कथन है कि इस द्वीप का नाम जंबुद्वीप इस लिये पड़ा है कि इसमें एक बहुत बड़ा जंबू का पेड़ है जिसमें हाथी के इतने बड़े फल लगते हैं। बौद्ध लोग जंबू द्वीप से केवल भारतवर्ष का ही ग्रहण करते हैं।

जंबुध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] जंबूद्वीप।

जंबुमत्—संज्ञा पुं० [सं०] एक बानर का नाम जिसे जांबवान् भी कहते हैं।

जंबुमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

जंबुमाली—संज्ञा पुं० [सं० जंबूमालिन्] एक राक्षस का नाम

जंबुप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर जिसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है। भरत जब अपने ननिहाल केकय देश से लौट रहे थे तब मार्ग में उन्हें यह नगर पड़ा था। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि आज कल का जंबू (काश्मीर) वही नगर है।

जंबुल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंबू। जामुन। (२) केतकी का पेड़। (३) कर्णपाली नामक रोग। इसमें कान की लौ पक जाती है। सुप-कनवा।

जंबुस्वामी—संज्ञा स्त्री० [सं० जंबुस्वामिन्] एक जैन स्थविर का नाम जिनका जन्म राजा श्रेणिक के समय में ऋषभदत्त सेठ की स्त्री धारिणी के गर्भ से हुआ था।

जंबू—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जामुन। (२) जामुन का फल। (३) नागदमनी। दौना। (४) कश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द स्त्री० है पर जामुन के फल के अर्थ में क्लीव भी है।

† वि० बहुत बड़ा। बहुत ऊँचा।

जंबूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसमिस।

जंबूखंड—संज्ञा पुं० दे० "जंबुखंड"।

जंबूद्वीप—संज्ञा० पुं० दे० "जंबुद्वीप"।

जंबूनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार जंबु द्वीप की एक नदी। यह नदी उस जामुन के वृक्ष के रस से निकली हुई मानी जाती है जिसके कारण द्वीप का नाम जंबुद्वीप पड़ा है और जिसके फल हाथी के बराबर होते हैं। महाभारत में इस नदी को सात प्रधान नदियों में गिनाया है और इसे ब्रह्म-लोक से निकली हुई लिखा है।

जंबूर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) जंबूरा। जमुरका। (२) तोप की चरख। (३) पुरानी छोटी तोप जो प्रायः ऊँटों पर लादी जाती थी। जंबूरक।

जंबूरक—[फ़ा० जंबूरची] (१) छोटी तोप जो प्रायः ऊँटों पर लादी जाती है। (२) तोप की चर्ख़। (३) भँवर कली।

जंबूरची—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) जंबूर नामक छोटी तोप का चलानेवाला। तोपची। (२) बर्क़ंदाज। सिपाही। तुपकची।

जंबूरा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंबूर = भौंरा] (१) चर्ख़ जिस पर तोप चढ़ाई जाती है। (२) भँवर कड़ी। भँवर कली। (३) सोने लोहे आदि धातुओं के बारीक काम करनेवालों का एक औज़ार जिससे वे तार आदि पकड़ कर ऐंठते, रेतते वा घुमाते हैं। यह काम के अनुसार छोटा या बड़ा होता है और प्रायः लकड़ी के टुकड़े में जड़ा रहता है। इसमें चिमटे की तरह चिपक कर बैठ जानेवाले दो चिपटे पल्ले होते हैं। इन पल्लों की बगल में एक पेंच रहता है जिससे पल्ले खुलते और कसते हैं। कारीगर इसमें चीज़ों को दबा कर ऐंठते रेतते तथा और काम करते हैं। बाँक। (४) एक लकड़ी का बल्ला जो मस्तूल पर आड़ा लगा रहता है और जिस पर पाल का ढाँचा रहता है। (लश०)

जंबूल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जामुन का वृक्ष। (२) केवड़े का वृक्ष।

जंबूसनज—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत जपा पुष्प। सफ़ेद गुड़हल का फूल।

जंभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाढ़। चौभड़। (२) जबड़ा। (३) एक दैत्य का नाम। यह महिषासुर का पिता था और इसे इंद्र ने मारा था। उ०—इंद्र ज्यों जंभ पर, बाडौ सुअंभ पर, रावण सदंभ पर रघुकुल राज है।—भूषण। (४) प्रह्लाद के तीन पुत्रों में से एक। (५) हिरण्यकशिपु के पुत्रों में से एक। (६) जँबीरी नीबू। (७) कंधा और हँसली। (८) भक्षण। (९) जम्हाई।

जंभक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जँबीरी नीबू। (२) शिव। (३) एक राजा।

वि० [सं०] (१) जँभाई वा नींद लानेवाला। (२) हिंसक। भक्षक। (३) कामुक।

जंभका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जँभाई।

जंभन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भक्षण। (२) रति। संभोग। (३) जँभाई।

जंभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जँभाई। जमुहाई।

जँभाई-संज्ञा स्त्री० [सं० जृम्भा] मुँह के खुलने की एक स्वाभाविक क्रिया जो निद्रा या आलस्य मालूम पड़ने, शरीर से बहुत अधिक खून निकल जाने, या दुर्बलता आदि के कारण होती है। इसमें मुँह के खुलते ही साँस के साथ बहुत सी हवा धीरे धीरे भीतर की ओर खिँच आती है और कुछ क्षण ठहर कर धीरे धीरे बाहर निकलती है। यद्यपि यह क्रिया स्वाभाविक और बिना प्रयत्न के आपसे आप होती है, तथापि बहुत अधिक प्रयत्न करने पर दबाई भी जा सकती है। हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि जिस वायु के कारण जँभाई आती है उसे देवदत्त कहते हैं। वैद्यक के अनुसार जँभाई आने पर उत्तम सुगंधित पदार्थ खाना चाहिए। प्रायः दूसरे को जँभाई लेते हुए देख कर भी जँभाई आने लगती है। उबासी।

क्रि० प्र०—आना।—लेना।

जँभाना-क्रि० अ० [सं० जृम्भण] जँभाई लेना।

जंभारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) अग्नि। (३) वज्र। (४) विष्णु।

जंभी, जंभीर-संज्ञा पुं० दे० "जंबीरी"।

जंभीरी-संज्ञा पुं० दे० "जंबीरी नींबू"।

जंभूरा-संज्ञा पुं० दे० "जंबूरा"।

जंवालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

ज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृत्युंजय। (२) जन्म। (३) पिता। (४) विष्णु। (५) विष। (६) मुक्ति। (७) तेज। (८) पिशाच। (९) वेग। (१०) छंदःशास्त्रानुसार एक गण जो तीन अक्षरों का होता है। इसके आदि और अंत के वर्ण लघु और मध्य का वर्ण गुरु होता है (। ऽ।), जैसे, महेश, रमेश, सुरेश आदि। इस गण का देवता साँप और फल रोग माना गया है।

वि० (१) वेगवान्। वेगित। तेज। (२) जीतनेवाला। जेता।

प्रत्य०-उत्पन्न। जात। जैसे, देशज, पित्तज, वातज आदि।

विशेष—यह प्रत्यय प्रायः तत्पुरुष समास के पदों के अंत में आता है। पंचमी तत्पुरुष आदि में पंचम्यंत पदों की विभक्ति लुप्त हो जाती है, जैसे, पादज, द्विज इत्यादि। पर सप्तमी तत्पुरुष में 'प्रावृट्' 'शरत्' 'काल' और 'द्यु' इन चार शब्दों के अतिरिक्त जहाँ विभक्ति बनी रहती है (जैसे प्रावृषिज, शरदिज, कालेज, दिविज) शेष स्थलों में विभक्ति का लोप विवक्षित होता है। जैसे, मनसिज, मनोज; सरसिज, सरोज इत्यादि।

जई-संज्ञा स्त्री० [हिं० जौ] (१) जौ की जाति का एक अन्न जिसका पौधा जौ के पौधे से बहुत मिलता जुलता होता है और जो जौ से अधिक बढ़ता है। जौ गेहूँ आदि की तरह यह अन्न भी वर्षा के अंत में बोया जाता है। बोने के प्रायः एक महीने बाद इसके हरे डंठल काट लिए जाते हैं जो पशुओं के चारे के काम में आते हैं। काटने के बाद डंठल फिर बढ़ते हैं और थोड़े ही दिनों में फिर काटने के योग्य हो जाते हैं। इस प्रकार जई की फसल तीन महीने में तीन बार हरी काटी जाती है और अंत में अन्न के लिये छोड़ दी जाती है। चौथी बार इस में प्रायः हाथ भर या इस से कुछ कम लंबी बालें लगती हैं। इन्हीं बालों में जई के दाने लगते हैं। बोने के प्रायः साढ़े तीन या चार महीने बाद इसकी फसल तैयार हो जाती है। फसल पकने पर पीली हो जाती है और पूरी तरह पकने से कुछ पहले ही काट ली जाती है, क्योंकि अधिक पकने से इसके दाने झड़ जाते हैं और डंठल भी निकम्मे हो जाते हैं। एक बीघे में प्रायः बारह तेरह मन अन्न और अठारह मन डंठल होते हैं। इसके लिये दोमट भूमि अच्छी होती है और अधिक सिँचाई की आवश्यकता पड़ती है। इस देश में जई बहुधा घोड़ों आदि को ही खिलाई जाती है, पर जिन देशों में गेहूँ, जौ आदि अच्छे अन्न नहीं होते वहाँ इसके आटे की रोटियाँ भी बनती हैं। इसके हरे डंठल गेहूँ और जौ के भूसे से अधिक पोषक होते हैं और गाएँ, भैंसें और घोड़े आदि उन्हें बड़े चाव से खाते हैं। (२) जौ का छोटा अंकुर।

विशेष—हिंदुओं के यहाँ नौरात्र में देवी की स्थापना के साथ थोड़े से जौ भी बोए जाते हैं। अष्टमी या नौमी के दिन वे अंकुर उखाड़ लिए जाते हैं और ब्राह्मण उन्हें लेकर मंगल स्वरूप अपने यजमानों की भेंट करते हैं। उन्हीं अंकुरों को जई कहते हैं। इस अर्थ में इनके साथ "देना", "खोंसना" आदि क्रियाओं का भी प्रयोग होता है।

(३) अंकुर। अँखुआ।

मुहा०—जई डालना = अंकुर निकालने के लिये किसी अन्न को भिगोना या तर स्थान में रखना। जई लेना = किसी अन्न को इस बात की परीक्षा के लिये बोना कि वह अंकुरित होगा या नहीं। जैसे, धान की जई लेना, गेहूँ की जई लेना, आदि।

(४) उन फलों की बतिया जिन में बतिया के साथ फूल भी लगा रहता है। जैसे, खीरे की जई, कुम्हड़े की जई। उ०—सरुख बरजि तरजिये तरजनी कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है।—तुलसी।

क्रि० प्र०—निकलना।—लगना।

वि० दे० "जयी"।

जईफ-वि० [अ०] बुड्ढा। वृद्ध।

जईफी-संज्ञा पुं० [फ़ा०] बुढ़ापा । वृद्धावस्था ।

जकंद*-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जगंद] छलांग । चौकड़ी । उछाल ।

जकंदना*†-क्रि० अ० [हिं० जकंद] (१) कूदना । उछलना । (२) टूट पड़ना । उ०—जमन जोर करि धाइया तब भरत जकंदे । मानो राहु सपट्टिया भच्छन नू चंदे ।—सूदन ।

जक-संज्ञा पुं० [सं० यक्ष] (१) यक्ष । धनरक्षक भूत प्रेत । (२) कंजूस आदमी ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० झक] [वि० झकी] (१) जिद्द । हठ । अड़ । उ०—मोहि प्रभु तुम सों होड परी ।........ पतित समूहनि उद्धरिबे को तुम जिय जक पकड़ी ।—सूर ।

क्रि० प्र०—पकड़ना ।

(२) धुन । रट उ०—जदपि नाहिँ नाहीं नहीं बदन लगी जक जाति । तदपि भौंह हांसी भरिनु हाँसी पै ठहराति ।—बिहारी ।

क्रि० प्र०—लगना ।

मुहा०—जक बँधना = रट लगना । धुन लगना । उ०—तव पद चमक चकचाने चंद्रचूड़ चख चितवत एकटक जक बँध गई है ।—चरण ।

(३) हार । पराजय । (४) हानि । घाटा । टोटा ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—पाना ।

(५) पराभव । लज्जा । (६) डर । खौफ़ ।

जकड़-संज्ञा स्त्री० [हिं० जकड़ना] जकड़ने का भाव । कस कर बाँधना ।

मुहा०—जकड़बंद करना = (१) खूब कस कर बाँधना । (२) अच्छी तरह फँसा लेना । पूरी तरह अपने अधिकार में कर लेना ।

जकड़ना-क्रि० स० [सं० युक्त + करण वा शृंखल = सिकड़ी] कस कर बाँधना । कड़ा बाँधना । जैसे, उसका हाथ पैर जकड़ दो ।

संयो० क्रि०—देना ।—डालना ।

†क्रि० अ० अकड़ने आदि के कारण अंगों का हिलने डुलने के योग्य न रह जाना । जैसे, हाथ पैर जकड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—उठना ।

जकना†*-क्रि० अ० [हिं० जक या चकपकाना] [वि० जाकित] अचंभे में आना । भौचक्का होना । चकपकाना । उ०—(क) तकि तकि चहूँ ओर जकि सी रही थकि बकि बकि उठै छकि छैल की लगन में ।—दीनदयालु । (ख) तरु दोऊ धरनि परे भहराई । ...... कोऊ रहे अकाश देखत कोऊ रहे सिरनाई । घरिक लों जकि रहे जहँ तहँ रहे गति विसराई ।—सूर । (ग) दूत दबकाने, चित्रगुप्त चुपकाने, औ जकाने यमजाल पाय पुंज लुंज ह्वै गये ।—पद्माकर ।

ज़कात-संज्ञा पुं० [अ०] (१) दान । खैरात ।

क्रि० प्र०—देना ।

(२) कर । महसूल ।

जकाती-संज्ञा पुं० दे० "जगाती" ।

जकित†*-वि० [हिं० चकित] चकित । । विस्मित । स्तंभित । उ०—हरिमुख किधौं मोहनी माई ।... ... ... सूरदास प्रभु वदन विलोकत जकित थकित चित अनत न जाई ।—सूर ।

जकुट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलयाचल । (२) कुत्ता । (३) बैंगन का फूल ।

जक्की-संज्ञा स्त्री० [देश०] बुलबुल की एक जाति । इस जाति की बुलबुल आकार में छोटी होती है और जाड़े के दिनों में उत्तर या पश्चिम हिंदुस्तान के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष में पाई जाती है । गरमी के महीनों में यह हिमालय पर चली जाती है ।

वि० दे० "झक्की" ।

जक्त‡-संज्ञा पुं० दे० "जगत्" ।

जक्ष†-संज्ञा पुं० दे० "यक्ष" ।

जक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] भक्षण । भोजन । खाना ।

जक्ष्मा†-संज्ञा स्त्री० दे० "यक्ष्मा" या "क्षयी" ।

जखनी-संज्ञा स्त्री० दे० "यक्षिणी" ।

जखम-संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ख्म । मि० सं० यक्ष्म] (१) वह क्षत जो शरीर में आघात या अस्त्र आदि के लगने के कारण हो जाय । घाव । (२) मानसिक दुःख का आघात । सदमा ।

क्रि० प्र०—करना ।—खाना ।—देना ।—पूजना ।—भरना ।—लगना ।—होना ।

मुहा०—जखम ताजा या हरा हो आना = बीते हुए कष्ट का फिर लौट आना । गई हुई विपत्ति का फिर आ जाना ।

जखमी-वि० [फ़ा० जख्मी] घायल । जिसे जखम लगा हो ।

ज़खीरा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह स्थान जहां एक ही प्रकार की बहुत सी चीज़ों का संग्रह हो । कोष । खजाना । (२) संग्रह । ढेर । समूह ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।

(३) वह बाग या स्थान जहाँ विक्री के लिये तरह तरह के पेड़, पौधे और बीज आदि मिलते हों ।

जखेड़ा†-संज्ञा पुं० (१) दे० "ज़खीरा" । (२) दे० "बखेड़ा" । (३) जमाव । यूथ । समूह ।

जखैया†-संज्ञा पुं० [सं० यक्ष] एक प्रकार का कल्पित भूत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह लोगों को अधिक कष्ट देता है ।

जख्म-संज्ञा पुं० दे० "जखम" ।

जग-संज्ञा पुं० [सं० जगत्] (१) संसार । विश्व । दुनिया । उ०—तुलसी या जग आइ के सबसे मिलिये धाय । का जाने केहि भेष में नारायण मिलि जाँय ।—तुलसी ।

(२) संसार के लोग। जन समुदाय। उ०—साँच कहो तो मारन धावै झूँठे जग पतियाना।—कबीर। (३) दे० "यज्ञ"।

जगच्चक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

जगजगा†-संज्ञा पुं० [जगमग से अनु०] पीतल आदि का बहुत पतला चमकीला तख्ता जिसके छोटे छोटे टुकड़े काट कर टिकुली और ताजिये आदि पर चिपकाए जाते हैं। पन्नी।

वि० चमकीला। प्रकाशित। जो जगमगाता हो।

जगजगाना†-क्रि० अ० [अनु०] चमकना। जगमगाना।

जगमगाहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० जगमगाना] चमक दमक। चमकीलापन। झलझलाहट।

जगजोनि-संज्ञा पुं० [जगयोनिः] ब्रह्मा।

जगण-संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल के अनुसार तीन अक्षरों का समूह जिसका मध्याक्षर दीर्घ मात्रा युक्त हो और आदिम तथा अंतिम अक्षर ह्रस्व हों। जैसे, रसाल, तमाल, जमाल।

जगझंप-संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े से मढ़ा हुआ एक प्रकार का बाजा जो प्राचीन काल में युद्ध में बजाया जाता था। आज कल भी कहीं कहीं विवाह तथा पूजा आदि के अवसरों पर इसका व्यवहार होता है।

जगड्वाल-संज्ञा पुं० [सं०] आडंबर। व्यर्थ का आयोजन।

जगण-संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल शास्त्र के अनुसार तीन अक्षरों का एक गण जिसमें मध्य का अक्षर गुरु और आदि और अंत के अक्षर लघु होते है। जैसे, महेश, रमेश, गणेश, हसंत।

विशेष—दे० "ज (१०)"।

जगत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) महादेव। (३) जंगम। (४) विश्व। संसार।

यौ०—जगतसेठ।

पर्य्या०—जगती। लोक। भुवन। विश्व।

(५) गोपीचंदन।

जगत-संज्ञा स्त्री० [सं० जगति = घर की कुरसी] कुएँ के ऊपर चारों ओर बना हुआ चबूतरा जिस पर खड़े होकर पानी भरते हैं।

संज्ञा पुं० दे० "जगत्"।

जगतसेठ-संज्ञा पुं० [सं० जगत + श्रेष्ठ] बहुत बड़ा धनी महाजन, जिसकी साख सारे संसार में मानी जाय।

जगती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संसार। भुवन। (२) पृथ्वी। (३) एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह बारह अक्षर होते हैं।

जगतीतल-संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी। भूमि।

जगतीधर-संज्ञा पुं० [सं०] बोधिसत्व।

जगत्साक्षी-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

जगत्सेतु-संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

जगदंतक-संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु।

जगदंबा, जगदंबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

जगद-संज्ञा पुं० [सं०] पालक। रक्षक।

जगदादि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) परमेश्वर।

जगदाधार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर। (२) वायु। हवा।

जगदानंद-संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

जगदायु-संज्ञा पुं० [सं०] वायु।

जगदीश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर। (२) विष्णु। (३) जगन्नाथ।

जगदीश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

जगदीश्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवती।

जगद्गुरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर। (२) शिव। (३) नारद। (४) अत्यंत पूज्य वा प्रतिष्ठित पुरुष जिसका सब लोग आदर करें। (५) शंकराचार्य्य की गद्दी पर के महंतों की उपाधि।

जगद्गौरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) मनसा देवी का एक नाम। यह नागों की बहन और जरत्कारु ऋषि की स्त्री थी।

जगद्दीप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) महादेव।

जगद्धाता-संज्ञा पुं० [सं० जगद्धातृ] [स्त्री० जगद्धात्री] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) महादेव।

जगद्धात्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा की एक मूर्त्ति। (२) सरस्वती।

जगद्बल-संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

जगद्योनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) ब्रह्मा। (४) पृथ्वी। (५) परमेश्वर।

जगद्रुहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

जगद्विनाश-संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय काल।

जगनक-संज्ञा पुं० [देश०] महोबाधीश परमाल के दरबार का प्रसिद्ध कवि।

जगना-क्रि० अ० [सं० जागरण] (१) नींद से उठना। निद्रा त्याग करना। सोने की अवस्था में न रहना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।—पड़ना।

(२) सचेत होना। सावधान होना। खबरदार होना। (३) देवी देवता या भूत प्रेत आदि का अधिक प्रभाव दिखाना। (४) उत्तेजित होना। उमड़ना या उभड़ना। वेग से प्रकट होना। जैसे, शरीर में काम जगना। (५) (आग का) जलना। बलना। दहकना, जैसे, आग जगना। उ०—करि उपचार थकी सबै, चल उताल नँदनंद। चंदक चंदन चंद तें ज्वाल जगी चौचंद।—शृं० सत०। (६) जगमगाना। चमकना। जैसे, ज्योति जगना।

जगन्नाथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जगत् का नाथ, ईश्वर। (२) विष्णु। (३) विष्णु की एक प्रसिद्ध मूर्त्ति जो उड़ीसा के अंतर्गत पुरी नामक स्थान में स्थापित है। यह मूर्त्ति अकेली

नहीं रहती बल्कि इसके साथ सुभद्रा और बलभद्र की भी मूर्त्तियाँ रहती हैं। तीनों मूर्त्तियाँ चंदन की होती हैं; समय समय पर पुरानी मूर्त्तियों का विसर्जन किया जाता है और उनके स्थान पर नई मूर्त्तियाँ प्रतिष्ठित की जाती हैं। सर्वसाधारण इस मूर्त्ति बदलने को "नव कलेवर" या "कलेवर बदलना" कहते हैं। साधारणतः लोगों का विश्वास है कि प्रति बारहवें वर्ष जगन्नाथ जी का कलेवर बदलता है। पर पंडितों का मत है कि जब आषाढ़ में मल मास और दो पूर्णिमाएँ हों, तब कलेवर बदलता है। कूर्म्म, भविष्य, ब्रह्म वैवर्त्त, नृसिंह अग्नि, ब्रह्म और पद्म आदि पुराणों में जगन्नाथ की मूर्त्ति और तीर्थ के संबंध में बहुत से कथानक और माहात्म्य दिए गए हैं। इतिहासों से पता चलता है कि सन् ३१८ ई० में जगन्नाथजी की मूर्त्ति पहले पहल किसी जंगल में पाई गई थी। उसी मूर्त्ति को उड़ीसा के राजा ययाति केसरी ने जो सन् ४७४ में सिंहासन पर बैठा था, जंगल से ढूँढ़ कर पुरी में स्थापित किया था। जगन्नाथजी का वर्त्तमान् भव्य और विशाल मंदिर गंगवंश के पाँचवें राजा अनंग भीमदेव ने सन् ११८४ से सन् ११६८ तक में बनवाया था। सन् १५६८ में प्रसिद्ध मुसलमान सेनापति कालापहाड़ ने उड़ीसा को जीत कर जगन्नाथजी की मूर्त्ति आग में फेंक दी थी। जगन्नाथ और बलराम की आज कल की मूर्त्तियों में पैर बिलकुल नहीं होते और हाथ बिना पंजों के होते हैं। सुभद्रा की मूर्त्ति में न हाथ होते हैं और न पैर। अनुमान किया जाता है कि या तो आरंभ में जंगल में ही ये मूर्त्तियाँ इसी रूप में मिली हों और या सन् १५६८ में अग्नि में से निकाले जाने पर इस रूप में पाई गई हों। नए कलेवर में मूर्त्तियाँ पुराने आदर्श पर ही बनती हैं। इन मूर्त्तियों को अधिकांश भात और खिचड़ी का ही भोग लगता है जिसे महाप्रसाद कहते हैं। भोग लगा हुआ महाप्रसाद चारों वर्ण के लोग बिना स्पर्शास्पर्श का विचार किए ग्रहण करते हैं। महाप्रसाद का भात अटका कहलाता है जिसे यात्री लोग अपने साथ अपने निवास-स्थान तक ले जाते और अपने संबंधियों में प्रसाद-स्वरूप बाँटते हैं। जगन्नाथ को जगदीश भी कहते हैं। (४) बंगाल के दक्षिण उड़ीसा के अंतर्गत समुद्र के किनारे का एक प्रसिद्ध तीर्थ जो हिंदुओं के चारों धामों के अंतर्गत है। इसे पुरी, जगदीशपुरी और जगन्नाथपुरी भी कहते हैं। अधिकांश पुराणों में इस क्षेत्र को पुरुषोत्तम क्षेत्र कहा गया है। जगन्नाथजी का प्रसिद्ध मंदिर यहीं है। इस क्षेत्र में जानेवाले यात्रियों में जाति-भेद आदि बिलकुल नहीं रह जाता। पुरी में समय समय पर अनेक उत्सव होते हैं जिनमें से "रथ-यात्रा" और "नव कलेवर" के उत्सव बहुत प्रसिद्ध हैं। इन अवसरों पर वहाँ लाखों यात्री आते हैं। यहाँ और भी कई छोटे बड़े तीर्थ हैं।

जगन्निवास—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। परमेश्वर। (२) विष्णु।

जगन्नियंता—संज्ञा पुं० [सं० जगन्नियंतृ] परमात्मा। ईश्वर।

जगन्नु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) जंतु।

जगन्मय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

जगन्मयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) समस्त संसार को चलानेवाली शक्ति।

जगन्माता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

जगन्मोहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) महामाया।

जगमग, जगमगा—वि० [अनु०] (१) प्रकाशित। जिस पर प्रकाश पड़ता हो। (२) चमकीला। चमकदार।

जगमगाना—क्रि० अ० [अनु०] किसी वस्तु का स्वयं अथवा किसी का प्रकाश पड़ने के कारण खूब चमकना। झलकना। दमकना।

जगमगाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जगमग] चमक। चमचमाहट। जगमगाने का भाव।

जगर—संज्ञा पुं० [सं०] कवच।

जगरनाथ‡—संज्ञा पुं० दे० "जगन्नाथ"।

जगर मगर—वि० दे० "जगमग"।

जगरा†—संज्ञा स्त्री० [सं० शर्करा] खजूर की खाँड़।

जगल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पृष्टी नामक सुरा। पीठी से बना हुआ मद्य। (२) शराब की सीठी। कल्क। (३) मदन वृक्ष। मैनी। (४) कवच। (५) गोमय। गोबर।

वि० धूर्त्त। चालाक।

जगवाना—क्रि० स० [हिं० जगना] (१) सोते से उठवाना। निद्रा भंग करवाना। (२) किसी वस्तु को अभिमंत्रित करा के उसमें कुछ प्रभाव कराना।

जगह—संज्ञा स्त्री० [फा० जायगाह] (१) वह अवकाश जिस में कोई चीज रह सके। स्थान। स्थल। जैसे, (क) उन्हों ने मकान बनाने के लिये जगह ली है। (ख) यहाँ तिल धरने को जगह नहीं है।

क्रि० प्र०—करना।—छोड़ना।—देना।—निकालना।—पाना।—बनाना।—मिलना आदि।

मुहा०—जगह जगह = सब स्थानों पर। सब जगह।

(२) स्थिति। पद।

विशेष—कुछ लोग इस अर्थ में "जगह" को क्रिया विशेषण रूप में बिना विभक्ति के ही बोलते हैं। जैसे, हम उन्हे भाई की जगह समझते हैं।

(३) मौका। स्थल। अवसर। (४) पद। ओहदा। जैसे, (क) दो महीने हुए उन्हे कलक्टरी में जगह मिल गई। (ख) इस दफ्तर में तुम्हारे लिये कोई जगह नहीं है।

जगहर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जगना] जगना। जगने की अवस्था। जगने का भाव।

जगात†-संज्ञा पुं० [अ० जकात] (१) वह जो पुण्य के लिये दिया जाय। दान। खैरात। (२) महसूल। कर।

जगाती†-संज्ञा पुं० [हिं० जगात वा फ़ा० जगाती] (१) महसूल वा कर लगानेवाला कर्म्मचारी। वह जो कर वसूल करे। (२) कर उगहने का काम या भाव।

जगाना-क्रि० स० [हिं० जागना] (१) जागने या 'जगने' का प्रेरणार्थक रूप। नींद त्यागने के लिये प्रेरणा करना। जैसे, वे बहुत देर से सोए हैं, उन्हें जगाओ। (२) चेत में लाना। होश दिलाना। उद्बोधन कराना। चैतन्य करना। † (३) फिर से ठीक स्थिति में लाना। † (४) सुलगाना। बुझती हुई या बहुत धीमी आग को तेज़ करना। † (५) मंत्र या सिद्धि आदि का साधन करना। जैसे, मंत्र जगाना, भूत प्रेत जगाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—रखना।—लेना।

जगार†-संज्ञा स्त्री० [हिं० जागना] जागरण। जागृति। उ०—नैना ओछे चोर सखी री। श्यामरूप निधि नेखें पाई देखत गये भरी री। ....कहा लेहि, कह तजै विवश भय तैसी करनि करी री। भोरे भए भोर सों ह्वै गयो धरे जगार परी री।—सूर।

जगी-संज्ञा स्त्री० [देश०] मोर की जाति का एक पक्षी जो शिमले के आस पास के पहाड़ों में मिलता है। यह प्रायः दो हाथ लंबा होता है। नर के सिर पर लाल कलगी होती है और मादा के सिर पर गुलाबी रंग की गाठें होती हैं। नर का सिर काला, गला लाल और पीठ गुलाबी रंग की होती है और उसके पंखों पर गुलाबी धारियाँ होती हैं। उसकी दुम लंबी और काली होती है और छाती और पेट के नीचे के पर भी काले होते हैं जिन पर ललाई की झलक होती है और एक छोटी सफेद बिंदी होती है। मादा का रंग कुछ मैला और पीलापन लिए होता है। यह दस दस बारह बारह की झुंड में रहता है। जाड़े के दिनों में यह गरम देशों में आकर रहता है। इसकी बोली बकरी के बच्चे की तरह होती है और यह उड़ते समय चीत्कार करता है। इसका चीत्कार बहुत दूर तक सुनाई पड़ता है। अंगरेज़ लोग इसका शिकार करते हैं। इसे जवाहिर भी कहते हैं।

जगीला†-वि० [हिं० जागना] उनींदा। जागने के कारण अलसाया हुआ। उ०—दुरति दुराये ते न रति बलि कुंकुम उर मैन। प्रगट कहैं पति रतजगे जगी जगीले नैन। श्रृं० सत०।

जगुरि-संज्ञा पुं० [सं०] जंगम।

जग्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खाने की क्रिया। भोजन। (२) कई आदमियों का साथ मिल कर खाना। सहभोजन।

जग्मि-संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

वि० जो चलता हो। जो गति में हो।

जघन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कटि के नीचे आगे का भाग। पेड़ू। (२) नितंब। चूतड़। उ०—सरस विपुल मम जघनन पर कल किंकिनि कलश सजावो।—हरिश्चंद्र।

यौ०—जघनकूपक।

(३) सेना का सबसे पिछला भाग।

जघनकूपक-संज्ञा पुं० [सं०] चूतड़ पर का गड्ढा।

जघनचपला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कामुकी स्त्री। (२) कुलटा। (३) आर्य्या छंद के सोलह भेदों में से एक। वह मात्रा वृत्त जिसका प्रथमार्द्ध आर्य्या छंद के प्रथमार्द्ध का सा और द्वितीयार्द्ध चपला छंद के द्वितीयार्द्ध का सा हो।

जघनेला-संज्ञा स्त्री० [सं०] कठूमर।

जघन्य-वि० [सं०] (१) अंतिम। चरम। (२) गर्हित। त्याज्य। अत्यंत बुरा। (३) क्षुद्र। नीच। निकृष्ट।

संज्ञा पुं० (१) शूद्र। (२) नीच जाति। हीन वर्ण। (३) पीठ का वह भाग जो पुट्ठे के पास होता है। (४) राजाओं के पाँच प्रकार के संकीर्ण अनुचरों में से एक। बृहत्संहिता के अनुसार ऐसा आदमी धनी, मोटी बुद्धि का, हँसोड़ और क्रूर होता है और उसमें कुछ कवित्व शक्ति भी होती है। ऐसे मनुष्य के कान अर्द्धचंद्राकार, शरीर के जोड़ अधिक दृढ़ और उँगलियाँ मोटी होती हैं। इसकी छाती, हाथों और पैरों में तलवार और खाँड़े आदि के से चिह्न होते हैं। (५) दे० "जघन्यभ"।

जघन्यज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूद्र। (२) अंत्यज।

जघन्यभ-संज्ञा पुं० [सं०] आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा, भरणी और शतभिषा ये छ नक्षत्र।

जघ्नि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वध करता हो। (२) वह अस्त्र जिससे वध किया जाय।

जचना-क्रि० अ० दे० "जँचना"।

जच्चा-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़च्चा] प्रसूता स्त्री। वह स्त्री जिसे तुरंत संतान हुई हो।

विशेष—प्रसव के बाद चालीस दिनों तक स्त्रियाँ जच्चा कहलाती हैं।

यौ०—जच्चाखाना = सूतिकागृह। सौरी।

जच्छ†-संज्ञा पुं० दे० "यक्ष"।

जज-संज्ञा पुं० [अं०] (१) न्यायाधीश। विचारपति। न्याय करनेवाला। (२) दीवानी और फ़ौजदारी के मुकदमों का फैसला करनेवाला हाकिम।

विशेष—भारतवर्ष में प्रायः एक वा अधिक जिलों के लिये एक जज होता है, जो डिस्ट्रिक्ट जज कहलाता है। जिले के अंदर अंतिम अपील जज के यहाँ ही होती है।

यौ०—दौरा या सेशंस जज = वह जज जो कई जिलों में घूम घूम कर कुछ विशेष बड़े मुकदमों का फैसला कुछ विशिष्ट अवसरों पर करे। सब-जज = दे० "सदराला"।

संज्ञा पुं० [सं०] योद्धा।

जजमान—संज्ञा पुं० दे० "यजमान"।

जजिमान—संज्ञा पुं० दे० "यजमान"।

जज़िया—संज्ञा पुं० [अ०] (१) दंड। (२) एक प्रकार का कर जो मुसलमानी राज्य-काल में अन्य धर्मवालों पर लगता था।

जजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जज+ई (प्रत्य०)] (१) जज की कचहरी। जज की अदालत। (२) जज का काम। (३) जज का पद या ओहदा।

जज़ीरा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] टापू। द्वीप।

जज्ज—संज्ञा पुं० दे० "जज"।

जझरा—संज्ञा पुं० [हिं० झरना] लोहे की चद्दर का तिकोना टुकड़ा जो उसमें से तवे काटने के बाद बच रहता है।

जट—संज्ञा पुं० [देश० वा झाड़] एक प्रकार का गोदना जो झाड़ी के आकार का होता है।

संज्ञा पुं० दे० "जाट"।

जटना—क्रि० स० [हिं० जाट] ठगना। धोखा देकर कुछ लेना।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

* क्रि० स० [सं० जटन] जड़ना। ठोंक कर लगाना। उ०—पाट जटी अति श्वेत सौं हीरन की अवली।—केशव।

जटल—संज्ञा स्त्री० [सं० जटिल] व्यर्थ और झूठ मूठ की बात। गप। बकवास। उ०—अपना बहुत समय.......... इधर उधर की जटल हाँकने में खो देते हैं।—परीक्षागुरु।

क्रि० प्र०—मारना।—हाँकना।

यौ०—जटल काफिया = गपशप। बेतुकी बात। ऊटपटाँग बात।

जटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक में उलझे हुए सिर के बहुत से बड़े बड़े बाल, जैसे प्रायः साधुओं के होते हैं।

पर्य्या०—जटा। जटि। जटी। जूट। शट। कोटीर। हस्त।

(२) जड़ के पतले पतले सूत। झकरा। (३) एक में उलझे हुए बहुत से रेशे आदि। जैसे, नारियल की जटा, बरगद की जटा। (४) शाखा। (५) जटामांसी। (६) जूट। पाट। (७) कौंछ। केवाँच (८) शतावर। (९) रुद्र जटा। बालछड़। (१०) वेदपाठ का एक भेद जिसमें मंत्र के दो वा तीन पदों को क्रमानुसार पूर्व और उत्तर पद को पृथक् पृथक् फिर मिला कर दो बार पढ़ते हैं।

जटाचीर—संज्ञापुं० [सं०] महादेव। शिव।

जटाजिनी—संज्ञा पुं० [सं०] जटा और मृगचर्म धारण करनेवाला।

जटाजूट—संज्ञा पुं [सं०] (१) जटा का समूह। बहुत से लंबे बढ़े हुए बालों का समूह। (२ शिव की जटा।

जटाटंक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

जटाटीर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

जटाधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) एक बुद्ध का नाम। (३) दक्षिण के एक देश का नाम जिसका वर्णन बृहत्संहिता में आया है। (४) जटाधारी।

जटाधारी—वि० [सं०] जो जटा रखे हो। जिसके जटा हो।

संज्ञा पुं० (१) शिव। महादेव। (२) मरसे की जाति का एक पौधा जिसके ऊपर कलगी के आकार के लहरदार लाल फूल लगते हैं। मुर्गकेश।

जटाना—क्रि० स० [हिं० जटना] जटने का प्रेरणार्थक रूप।

क्रि० अ० [हिं० जटना] ठगा जाना। धोखे में आकर अपनी हानि कर बैठना।

जटापटल—संज्ञा पुं० [सं०] वेद पाठ करने का एक बहुत जटिल प्रकार वा क्रम। कहते हैं कि यह क्रम हयग्रीव ने निकाला था।

जटामाली—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

जटामासी—संज्ञा स्त्री० [सं० जटामांसी] एक सुगंधित पदार्थ जो एक वनस्पति की जड़ है। यह वनस्पति हिमालय में १७००० फुट तक की ऊँचाई पर होती है। इस की डालियाँ एक हाथ से डेढ़ दो हाथ तक लंबी और सींके की तरह होती हैं जिनमें आमने सामने डेढ़ दो अंगुल लंबी और आधी से एक अंगुल तक चौड़ी पत्तियाँ होती हैं। इसके लिये पथरीली भूमि, जहाँ पानी पड़ा करता हो वा सर्दी बनी रहती हो, अधिक उत्तम है। इसमें छोटी उँगली के बराबर मोटी काली भूरी पत्तियाँ होती हैं जिन पर तामड़े रंग के बाल वा रेशे होते हैं। इसकी गंध तेज और मीठी तथा स्वाद कड़ुआ होता है। वैद्यक में जटामासी बलकारक, उत्तेजक, विषघ्न तथा उन्माद और कासश्वास आदि को दूर करनेवाली मानी गई है। लोगों का कथन है कि इसे लगाने से बाल बढ़ते और काले होते हैं। खींचने से इसमें से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो औषध और सुगंधि के काम में आता है। २८ सेर जटामांसी में से डेढ़ छटाँक के लगभग तेल निकलता है। इसे बालछड़, बालूचर आदि भी कहते हैं।

जटायु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामायण का एक प्रसिद्ध गिद्ध। यह सूर्य्य के सारथी अरुण का पुत्र था जो उसकी श्येनी नाम्नी स्त्री से उत्पन्न हुआ था। यह दशरथ का मित्र था और रावण से, जब वह सीता को हर कर लिए जाता था, लड़ा था। इस लड़ाई में वह घायल हो गया था। रामचंद्र के आने पर उसने रावण के सीता को हर ले जाने का समाचार उनसे कहा था। उसी समय उसके प्राण भी निकल गए थे। रामचंद्र ने स्वयं इस की अंत्येष्टि क्रिया की थी। संपाति इसका भाई था। (२) गुग्गुल।

जटाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बटवृक्ष। बरगद। (२) कचूर। (३) मुष्कक। मोखा। (४) गुग्गुल।

वि० जटाधारी। जो जटा रखे हो।

जटाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

जटाव—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली मिट्टी जिससे कुम्हार घड़े आदि बनाते हैं। कुम्हरौटी।

जटावती–संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी ।

जटावल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रुद्रजटा । शंकरजटा । (२) एक प्रकार की जटामासी जिसे गंधमासी भी कहते हैं ।

जटासुर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध राक्षस जो द्रौपदी के रूप पर मोहित होकर ब्राह्मण के भेस में पांडवों के साथ मिल गया था। एक बार इसने भीम की अनुपस्थिति में द्रौपदी, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव को हर ले जाना चाहा था, पर मार्ग में ही भीम ने इसे मार डाला था । (२) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम ।

जटि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्लक्ष वृक्ष । पाकर का पेड़ । (२) बरगद का पेड़ । (३) जटा । (४) समूह । (५) जटामासी ।

जटित–वि० [सं०] जड़ा हुआ । जैसे, रत्नजटित ।

जटिल–वि० [सं०] (१) जटावाला । जटाधारी । (२) अत्यंत कठिन । जटा के उलझे हुए बालों की तरह जिसका सुलझना बहुत कठिन हो । दुरूह । दुर्बोध । (३) क्रूर । दुष्ट । हिंसक ।

संज्ञा पुं० (१) सिंह । (२) ब्रह्मचारी । (३) जटामासी । (४) शिव । (जिस समय शिव के लिये पार्वती हिमालय पर तपस्या कर रही थीं, उस समय शिव जो जटिल-वेष धारण करके उनके पास गए थे, उसी के कारण उनका यह नाम पड़ा ।)

जटिलक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम । (२) इस ऋषि के वंशज ।

जटिला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ब्रह्मचारिणी । (२) जटामासी । (३) पिप्पली । पीपल । (४) बचा । वच । (५) दोना । दमनक । (६) महाभारत के अनुसार गौतमवंश की एक ऋषि-कन्या का नाम जिसका विवाह सात ऋषि-पुत्रों से हुआ था । यह बड़ी धर्म्म-परायणा थी ।

जटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाकर । (२) जटामासी ।

जटुल–संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के चमड़े पर का एक विशेष प्रकार का दाग या धब्बा जो जन्म से ही होता है । लोग इसे लच्छन या लक्षण कहते हैं ।

जठर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेट । कुक्षि ।

यौ०—जठराग्नि । जठरानल ।

(२) भागवत पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो मेरु के पूर्व उन्नीस हजार योजन लंबा है और नील पर्वत से निषध गिरि तक चला गया है । यह दो हजार योजन चौड़ा और इतना ही ऊँचा है । (३) एक देश का नाम । बृहत्संहिता के मत से यह देश श्लेषा, मघा और पूर्वा फाल्गुणी के अधिकार में है । महाभारत में इसे कुक्कुर देश के पास लिखा है । (४) सुश्रुत के अनुसार एक उदर रोग जिस में पेट फूल आता है । इसमें रोगी बल और वर्णहीन हो जाता है और उसे भोजन से अरुचि हो जाती है । (५) शरीर । (६) मर्कत मणि का एक दोष । इस दोषयुक्त मर्कत के रखने से मनुष्य दरिद्र होता है ।

वि० (१) वृद्ध । बूढ़ा । (२) कठिन ।

जठरनुत्–संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास ।

जठराग्नि–संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट की वह गरमी या अग्नि जिससे अन्न पचता है । पित्त की कमी बेशी से जठराग्नि चार प्रकार की मानी गई है, मंदाग्नि, विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि और समाग्नि ।

जठरामय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अतीसार रोग । (२) जलोदर रोग ।

जठल–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल का एक प्रकार का जलपात्र जिस का आकार उदर का सा होता है ।

जठेरा‡–वि० [हिं० जेठ वा जठर] [स्त्री० जठेरी] जेठा । बड़ा ।

जड़–वि० [सं०] (१) जिस में चेतनता न हो । अचेतन । (२) जिसकी इंद्रियों की शक्ति मारी गई हो । चेष्टाहीन । स्तब्ध । (३) मंद बुद्धि । ना समझ । मूर्ख । (४) सरदी का मारा या ठिठुरा हुआ । (५) शीतल । ठंढा । (६) गूँगा । मूक । (७) बहरा । जिसे सुनाई न दे । (८) अनजान । अनभिज्ञ । (९) जिस के मन में मोह हो । (१०) जो वेद पढ़ने में असमर्थ हो । (दायभाग)

संज्ञा पुं० (१) जल । पानी । (२) सीसा नाम की धातु ।

संज्ञा स्त्री० [सं० जटा = वृक्ष की जड़] (१) वृक्षों और पौधों आदि का वह भाग जो जमीन के अंदर दबा रहता है और जिस के द्वारा उन का पोषण होता है । जड़ के मुख्य दो भेद हैं । एक मूसला जो मुसल या डंडे के आकार की होती है और ज़मीन के अंदर सीधी नीचे की ओर जाती है, और दूसरी झकरा जिस के रेशे जमीन के अंदर बहुत नीचे नहीं जाते और थोड़ी ही गहराई में चारों तरफ फैलते हैं । सिंचाई का पानी और खाद आदि जड़ के द्वारा ही वृक्षों और पौधों तक पहुँचती है । मूल । सोर ।

यौ०—जड़मूल ।

(२) वह जिसके ऊपर कोई चीज स्थित हो । नीवँ । बुनियाद ।

मुहा०—जड़ उखाड़ना या खोदना = किसी प्रकार की हानि पहुँचा कर या बुराई कर के समूल नाश करना । ऐसा नष्ट करना जिस में वह फिर अपनी पूर्व स्थिति तक न पहुँच सके । जड़ जमना = दृढ़ या स्थायी होना । जड़ पकड़ना = जमना । दृढ़ होना । मजबूत होना । जड़ पड़ना = नीवँ पड़ना । बुनियाद पड़ना ।

(३) हेतु । कारण । सबब । जैसे, यही तो सारे झगड़ों की जड़ है । (४) वह जिस पर कोई चीज अवलंबित हो । आधार ।

जड़-आमला–संज्ञा पुं० [हिं० जड़ + आमला] भुइँ आँवला ।

जड़क्रिया–वि [सं०] जिसे कोई काम करने में बहुत देर लगे । सुस्त । दीर्घसूत्री ।

जड़ता-संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ का भाव] (१) अचेतनता । (२) मूर्खता । बेवकूफी । (३) साहित्यदर्पण के अनुसार एक संचारी भाव जो किसी घटना के होने पर चित्त के विवेक-शून्य होने की दशा में होता है । यह भाव प्रायः घबराहट दुःख भय या मोह आदि में उत्पन्न होता है । (४) स्तब्धता । अचलता । चेष्टा न करने का भाव । उ०—निज जड़ता लोगन पर डारी । होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी ।—तुलसी ।

जड़ताई†-संज्ञा स्त्री० दे० "जड़ता" ।

जड़त्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चेतनता का विपरीत भाव । अचेतन पदार्थों का वह गुण जिस से वे जहाँ के तहाँ पड़े रहते हैं और स्वयं हिल डोल वा किसी प्रकार की चेष्टा आदि नहीं कर सकते । (२) स्थिति और गति की इच्छा का अभाव । वैशेषिक के अनुसार यह परमाणुओं का एक गुण है ।

जड़ना-क्रि० स० [सं० जटन] [संज्ञा जड़िया वि० जड़ाऊ, जड़ाई,] (१) एक चीज को दूसरी चीज में पच्ची करके बैठाना । पच्ची करना । जैसे, अँगूठी में नग जड़ना । (२) एक चीज को दूसरी चीज में ठोंक कर बैठाना । जैसे, कील जड़ना, नाल जड़ना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—रखना ।

(३) किसी वस्तु से प्रहार करना । जैसे, धौल जड़ना, थप्पड़ जड़ना । (४) चुगली या शिकायत के रूप में किसी के विरुद्ध किसी से कुछ कहना । कान भरना । जैसे, किसी ने पहले ही उनसे जड़ दिया था, इसी लिये वह यहाँ नहीं आए ।

संयो० क्रि०—देना ।

जड़भरत-संज्ञा पुं० [सं०] अंगिरस गोत्री एक ब्राह्मण जो जड़वत् रहते थे । भागवत में लिखा है कि राजा भरत ने अपने वानप्रस्थ आश्रम में एक हिरन के बच्चे को पाला था और उसके साथ उनका इतना प्रेम था कि मरते दम तक उन्हें उसकी चिंता बनी रही । मरने पर वे हिरन की योनि में उत्पन्न हुए पर उन्हें पुण्य के प्रभाव से पूर्व जन्म का ज्ञान बना रहा । उन्होंने हिरन का शरीर त्याग कर फिर ब्राह्मण के कुल में जन्म लिया । वह संसार की वासना से बचने के लिये जड़वत् रहते थे, इसी लिये लोग उन्हें जड़ भरत कहते थे ।

जड़वाना-क्रि० स० [हिं० जड़ना] (१) नग इत्यादि जड़ने के लिये प्रेरणा करना । जड़ने का काम कराना । (२) कील इत्यादि गड़वाना ।

जड़वी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़] धान का छोटा पौधा जिसे जमे हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ हो ।

जड़हन-संज्ञा पुं० [हिं० जड़ + हनन = गाड़ना] धान का एक प्रधान भेद जिसके पौधे एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह बैठाए जाते हैं । यह धान असाढ़ में घना बोया जाता है । जब पौधे एक वा दो फुट ऊँचे हो जाते हैं तब किसान उन्हें उखाड़ कर ताल के किनारे नीचे खेतों में बैठाते हैं । वह खेत, जिसमें इस के बीज पहले बोए जाते हैं, बियाड़ कहलाता है, और पौधे के बीज को "बेहन" तथा बीज बोने को "बेहन डालना" कहते हैं । बीज को बियाड़ से उखाड़ कर दूसरे खेत में बैठाने को रोपना और बैठाना कहते हैं, और वह खेत, जिसमें इसके पौधे रोपे जाते है, सोई, डाबर आदि कहलाता है । जड़हन पौधों में कुआर के अंत में बाल फूटने लगती है, और अगहन में खेत पक कर कटने के योग्य हो जाता है । इस प्रकार के धान की अनेक जातियाँ होती हैं जिनमें से कुछ के चावल मोटे और कुछ के महीन होते हैं । यह कभी कभी तालों के किनारे वा बीच में भी थोड़ा पानी रहने पर बोया जाता है और ऐसी बोआई को "बोवारी" कहते हैं । अगहनी के अतिरिक्त धान का एक और भेद होता है जिसे कुवाँरी कहते हैं । इस भेद के धान ओसहन कहलाते हैं ।

जड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भुइँ आमला । (२) कौंछ । केवाँच ।

जड़ाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना] (१) जड़ने का काम । पच्चीकारी । (२) जड़ने का भाव । (३) जड़ने की मज़दूरी ।

जड़ाऊ-वि० [हिं० जड़ना] जिस पर नग या रत्न आदि जड़े हों । पच्चीकारी किया हुआ ।

जड़ान†-संज्ञा स्त्री० दे० "जड़ाई (१) और (२) ।"

जड़ाना-क्रि० स० [हिं० जड़ना] जड़ने का प्रेरणार्थक रूप । जड़ने का काम दूसरे से कराना ।

‡ क्रि० अ० [हिं० जाड़ा] जाड़ा सहना । ठंढ खाना । सरदी की बाधा होना । शीत लगना ।

जड़ाव†-संज्ञा पुं० [हिं० जड़ना] जड़ने का काम या भाव । उ०—पुनि अभरन बहु काढ़ा नाना भाँति जड़ाव । फेरि फेरि सब पहिरहिँ जैस जैस मन भाव ।—जायसी ।

जड़ावट-संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना] जड़ाव । जड़ने का काम वा भाव ।

जड़ावर-संज्ञा पुं० [हिं० जाड़ा] जाड़े में पहनने के कपड़े । गरम कपड़े ।

जड़ावल†-संज्ञा पुं० दे० "जड़ावर" ।

जड़ित*-वि० [हिं० जड़ना वा सं० जटित] (१) जो किसी चीज में जड़ा हुआ हो । (२) जिसमें नग आदि जड़े हों ।

जड़िमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जड़ता । जड़त्व । (२) एक भाव जिसमें मनुष्य को इष्ट अनिष्ट का ज्ञान नहीं होता और वह जड़ की तरह हो जाता है ।

जड़िया-संज्ञा पुं० [हिं० जड़ना] (१) नगों के जड़ने का काम करनेवाला पुरुष । वह जो नग जड़ने का काम करता हो । कुंदनसाज । (२) सोनारों की एक जाति जो गहने में नग जड़ने का काम करती है ।

जड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़] वह वनस्पति जिसकी जड़ औषध के काम में लाई जाय। बिरई।

यौ०—जड़ी बूटी = जंगली ओषधि या वनस्पति।

जड़ीला–संज्ञा पुं० [हिं० जड़ + ईला (प्रत्य०)] (१) वह वनस्पति जिसकी जड़ काम में आती हो। जैसे, मूली, गाजर। (२) वह ऊँची उठी हुई जड़ जो रास्ते में मिले। (कहार)।

† वि० जड़दार। जिसमें जड़ हो।

जड़ुआ–संज्ञा पुं० [हिं० जड़ना] चाँदी का एक गहना जो छल्ले की तरह पैर के अँगूठे में पहना जाता है।

जड़ुल–संज्ञा पुं० दे० "जटुल"।

जड़ैया†–संज्ञा स्त्री० [हिं० जाड़ा + ऐया (प्रत्य०)] वह बुखार जिस के आरंभ में जाड़ा लगता हो। जूड़ी।

जढ़†–वि० दे० "जड़"।

जढ़ता–संज्ञा स्त्री० दे० "जड़ता"।

जढ़ाना†–क्रि० अ० [हिं० जड़ वा जढ़] (१) जड़ हो जाना। (२) हठ करना। जिद करना। अपनी बात पर अड़े रहना।

जत†*–वि० [सं० यत्] जितना। जिस मात्रा का।

संज्ञा पुं० [सं० यति] वाद्य के बारह प्रबंधों में से एक। होली का ठेका वा ताल।

जतन*†–संज्ञा पुं० दे० "यत्न"। उ०—बार बार मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।—तुलसी।

जतनी–संज्ञा पुं० [सं० यत्न] (१) यत्न करनेवाला। (२) सुचतुर। चालाक।

संज्ञा स्त्री० [सं० यत = रक्षा] वह रस्सी वा डोरी जिसे चर्खे (रहँट) की पँखुरियों के किनारे पर माल के टिकाव के लिये बाँधते हैं।

जतलाना–क्रि० स० दे० "जताना"।

जतसर–संज्ञा पुं० दे० "जँतसर"।

जताना–क्रि० स० [सं० ज्ञात] (१) जानने का प्रेरणार्थक रूप। ज्ञात कराना। बतलाना। (२) पहले से सूचना देना। आगाह करना।

‡ क्रि० अ० दे० "जँताना"।

जतारा†–संज्ञा पुं० [हिं० जाति वा यूथ] वंश। खानदान। कुल। जाति। घराना।

जति†–संज्ञा पुं० दे० "यति"।

जती–संज्ञा पुं० [सं० यतिन्] संन्यासी।

संज्ञा स्त्री० दे० "यति"।

जतु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष का निर्य्यास। गोंद। (२) लाख। लाह। (३) शिलाजतु। शिलाजीत।

जतुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हींग। (२) लाख। लाह। (३) शरीर के चमड़े पर का एक विशेष प्रकार का चिह्न जो जन्म से ही होता है। इसे "लच्छन" या "लक्षण" भी कहते हैं।

जतुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पहाड़ी नामक लता जिसकी पत्तियाँ ओषधि के काम में आती हैं। (२) चमगादड़।

जतुकारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पपड़ी नाम की लता।

जतुकृष्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका या पपड़ी नाम की लता।

जतुगृह–संज्ञा पुं० [सं०] घास फूस आदि ऐसी चीजों का बना हुआ घर जो जल्दी जल सके।

जतुनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादर।

जतुपुत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शतरंज का मोहरा। (२) चौसर की गोटी।

जतुमणि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें चमड़े पर दाग पड़ जाता है। जटुल। जतुक।

जतुमुख–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का धान।

जतुरस–संज्ञा पुं० [सं०] लाख का बना हुआ रंग। अलक्तक। महावर।

जतू–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक पक्षी का नाम। (२) लाख का बना हुआ रंग।

जतूकर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

जतूका–संज्ञा स्त्री० दे० "जतुका"।

जतेक†*–क्रि० वि० [सं० यत् या हिं० जितना + एक] जितना। जिस मात्रा का।

जत्था–संज्ञा पुं० [सं० यूथ] बहुत से जीवों का समूह। झुंड। गरोह।

क्रि० प्र०—बाँधना।

जत्रानी–संज्ञा स्त्री० [?] जाटों की एक जाति जो रुहेलखंड में बसती है।

जत्रु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गले की सामने की दोनों ओर की वह हड्डी जो कंधे तक कमानी की तरह लगी रहती है। हँसली। हँसिया। (२) कंधे और बाँह का जोड़।

जत्वश्मक–संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

जथा–क्रि० वि० (१) दे० "यथा"।

संज्ञा स्त्री० [सं० यूथ] मंडली। गरोह। समूह। टोली।

क्रि० प्र०—बाँधना।

संज्ञा स्त्री० [सं० गय] पूँजी। धन। संपत्ति।

यौ०—जमा जथा।

जद†–क्रि० वि० [सं० यदा] जब। जब कभी।

अव्य० [सं० यदि] यदि। अगर।

जदपि–क्रि० वि० दे० "यद्यपि"।

जदबद‡–संज्ञा पुं० दे० "जद्दबद्द"।

जदवर, जदवार–संज्ञा पुं० [अ० जदवार] निर्विषी। निर्विसी।

जदीद–वि० [अ०] नया। हाल का। नवीन।

जदु–संज्ञा पुं० दे० "यदु"।

जदुपति*–संज्ञा पुं० [सं० यदुपति] श्रीकृष्ण। उ०—कोऊ कोरिक

संग्रहौ कोऊ लाख हजार। मो संपति जदुपति सदा विपति विदारनहार।—बिहारी।

जदुपाल*–संज्ञा पुं० [सं० यदुपाल] श्रीकृष्ण।

जदुपुर*–संज्ञा पुं० [सं० यदुपुर] राजा यदु का नगर। यदुकुल की राजधानी, मथुरा।

जदुबंसी–संज्ञा पुं० दे० "यदुवंशी"।

जदुराइ*–संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] यतुपति। श्रीकृष्ण चंद्र।

जदुराज*–संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] श्रीकृष्णचंद्र।

जदुराम*–संज्ञा पुं० [सं० यदुराम] यदुकुल के राम। बलदेव।

जदुराय*–संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] श्रीकृष्णचंद्र।

जदुवर*–संज्ञा पुं० [सं० यदुवर] श्रीकृष्ण चंद्र।

जदुवीर*†–संज्ञा पुं० [सं० यदुवीर] श्रीकृष्णचंद्र।

जद्द†*–वि० [अ० ज्यादा] अधिक। ज्यादा।

वि० [सं० योद्धा] प्रचंड। प्रबल। उ०—छागलि अलेउ समद्द भूप बलहद्द जद्द अति।—गोपाल।

संज्ञा पुं० [अ०] दादा। पितामह। बाप का बाप।

जद्यपि†*–क्रि० वि० दे० "यद्यपि"।

जद्वद्–संज्ञा पुं० [सं० यत् + अवद्य] अकथनीय बात। वह बात जो न कहने योग्य हो। दुर्वचन।

जनंगम–संज्ञा पुं० [सं०] चांडाल।

जन–संज्ञा पुं०] सं०] (१) लोक। लोग।

यौ०—जनप्रवाद। जनक्षय। जनश्रुति। जनवल्लभ। जनसमूह आदि।

(२) प्रजा। (३) गँवार। देहाती। (४) अनुयायी। अनुचर। दास। उ०—(क) हरिजन हँस दशा लिए डोलैं। निर्मल नाम चुनी चुनि बोलैं।—कबीर। (ख) हरि अर्जुन निज जन जान। लै गए तहाँ न जहँ शशि भान।—सूर। (ग) जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किए तिलक गुन गन बस करनी।—तुलसी।

यौ०—हरिजन।

(५) समूह। समुदाय। जैसे, गुणिजन। (६) भवन। (७) वह जिसकी जीविका शारीरिक परिश्रम करके दैनिक वेतन लेने से चलती हो। (८) सात महाव्याहतियों में से पाँचवीं व्याहृति। (९) सात लोकों में से पाँचवाँ लोक। पुराणानुसार चौदह लोकों में ऊपर के सात लोकों में पाँचवाँ लोक जिसमें ब्रह्मा के मानसपुत्र और बड़े बड़े योगींद्र रहते हैं। (१०) एक राक्षस का नाम।

जनक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्मदाता। उत्पादक। (२) पिता। बाप। (३) मिथिला के एक राजवंश की उपाधि। ये लोग अपने पूर्वज निमि विदेह के नाम पर वैदेह भी कहलाते थे। सीता जी इस कुल में उत्पन्न सीरध्वज की पुत्री थीं। इस कुल में बड़े बड़े ब्रह्मज्ञानी उत्पन्न हुए हैं जिनकी कथाएँ ब्राह्मणों, उपनिषदों, महाभारत और पुराणों में भरी पड़ी हैं। (४) संबरासुर का चौथा पुत्र। (५) एक वृक्ष का नाम।

जनकता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पन्न करने का भाव या काम। (२) उत्पन्न करने की शक्ति।

जनकनंदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता। जानकी।

जनकपुर–संज्ञा पुं० [सं०] मिथिला की प्राचीन राजधानी। इसका स्थान आज कल लोग नेपाल की तराई में बतलाते हैं। यह हिंदुओं का प्रधान तीर्थ है और हिंदू यात्री प्रति वर्ष यहाँ दर्शन के लिये जाते हैं।

जनकारी–संज्ञा पुं० [सं० जनकारिन्] लाख का बना हुआ रंग। अलक्तक।

जनकौर–संज्ञा पुं० [हिं० जनक + औरा (प्रत्य०)] (१) जनक का स्थान। जनक नगर। उ०—बाजहिं ढोल निसान सगुन सुभ पायेन्हि। सीय नैहर जनकौर नगर नियरायेन्हि।—तुलसी। (२) जनक राजा के वंशज या संबंधी। उ०—कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोक बस बौरा।—तुलसी।

जनखा–वि० [फ़ा० जनकः] (१) जिसके हाव भाव आदि औरतों के से हों। (२) हीजड़ा। नपुंसक।

जनगी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] मछली।

जनघर–संज्ञा पुं० [सं० जन + गृह] मंडप। (डिं०)

जनचक्षु–संज्ञा पुं० [सं० जनचक्षुस्] सूर्य्य।

जनचर्चा–संज्ञा स्त्री० [सं०] लोकवाद। सर्वसाधारण में फैली हुई बात।

जनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जनन का भाव। (२) जनसमूह। सर्वसाधारण।

जनत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] छाता या इसी प्रकार की और कोई चीज जिससे धूप और वृष्टि आदि से रक्षा हो।

जनथोरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] कुकड़बेल। बेंदाल।

जनदेव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा। नरपति। (२) मिथिला के एक प्राचीन राजा का नाम जो बड़ा जिज्ञासु था और जिसने महर्षि पंचशिख के उपदेश से मोक्ष प्राप्त किया था। इसका वर्णन महाभारत में आया है।

जनधा–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

जनन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्पत्ति। उद्भव। (२) जन्म। (३) आविर्भाव। (४) तंत्र के अनुसार मंत्रों के दस संस्कारों में से पहला संस्कार जिसमें मंत्रों का मात्रिका वर्णों से उद्धार किया जाता है। (५) यज्ञ आदि में दीक्षित व्यक्ति का एक संस्कार जिसके उपरांत उसका दीक्षित रूप में फिर से जन्म ग्रहण करना माना जाता है। (६) वंश। कुल। (७) पिता। (८) परमेश्वर।

जनना–क्रि० स० [सं० जनन = जन्म] संतान को जन्म देना। प्रसव करना। उ०—(क) जनत पुत्र नभ बाजे नगारा। तदपि

जननि उर सोच अपारा।—कबीर। (ख) रंभ खंभ जंघन दुति देखत नशत जनत जगमाँही।—रघुराज।

जननाशौच–संज्ञा पुं० [सं०] वह अशौच जो घर में किसी का जन्म होने के कारण लगता है। वृद्धि।

जननि*–संज्ञा स्त्री० दे० "जननी"।

जननी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पन्न करनेवाली। (२) माता। मा। उ०—(क) जनत पुत्र नभ बजे नगारा। तदपि जननि उर सोच अपारा।—कबीर। (ख) समुझि महेस समाज सब, जननि जनक मुसुकाहिँ। बाल बुझाए बिबिध बिधि, निडर होहु डर नाहि।—तुलसी। (ग) जननी जनकादि हितू भए भूरि बहोरि भई उर की जरनी।—तुलसी। (घ) हौं इहाँ तेरे ही कारण आयो। तेरी सौं सुन जननि यशोदा हठि गोपाल पठायो।—सूर। (३) जूही का पेड़। (४) कुटकी। (५) मजीठ। (६) जटामाँसी। (७) अलता। (८) पपड़ी। पपरिका। (९) चमगादड़। (१०) दया। कृपा। (११) जनी नाम का गंध-द्रव्य।

जननेंद्रिय–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह इंद्रिय जिससे प्राणियों की उत्पत्ति होती है। भग। योनि।

जनपद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देश। (२) सर्वसाधारण। निवासी। देशवासी। प्रजा। लोक। लोग। उ०—ज्यों हुलास रनिवाँस नरेसहिँ त्यों जनपद रजधानी।—तुलसी।

जनपाल, जनपालक,–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्यों का पोषण करनेवाला। (२) सेवक वा अनुचर का पालनेवाला।

जनप्रवाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोकप्रवाद। लोकनिंदा। (२) जनरव। अफवाह। किंवदंती।

जनप्रिय–वि० [सं०] सब से प्रेम रखनेवाला। सर्व प्रिय। सब का प्यारा।

संज्ञा पुं० (१) धान्यक। धनिया। (२) शोभांजन वृक्ष। सहँजन का पेड़। (३) महादेव। शिव।

जनप्रियता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सब के प्रिय होने का भाव। सर्व-प्रियता।

जनप्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] हुलहुल का साग।

जनबगुल–संज्ञा पुं० [हिं० जन + बगुला] एक प्रकार का बगुला।

जनम–संज्ञा पुं० [सं० जन्म] (१) उत्पत्ति। जन्म। दे० "जन्म" उ०—बहु बिधि राम सियहिँ समुझावा। पारबती कर जनम सुनावा।—तुलसी।

क्रि० प्र०—धारना।—पाना।—लेना।

यौ०—जनमघूँटी। जनमपत्ती। जनमपत्री।

(२) जीवन। जिंदगी। आयु। उ०—(क) होय न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु।—तुलसी। (ख) तुलसीदास मोको बड़ो सोचु है तू जनम कवन विधि भरिहै।—तुलसी।

मुहा०—जनम गँवाना = व्यर्थ जनम या समय नष्ट करना। जनम बिगड़ना = धर्म्म नष्ट होना।

जनमघूँटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जनम + घूँटी] वह घूँटी जो बच्चों को जन्मते समय से दो तीन वर्ष तक दी जाती है।

मुहा०—(किसी बात का) जनमघूँटी में पड़ना = जन्म से ही (किसी बात की) आदत पड़ना। (किसी बात का) इतना अभ्यस्त हो जाना कि उससे पीछा न छूट सके। जैसे, झूठ बोलना तो इनकी जनमघूँटी में पड़ा है।

जनमदिन–संज्ञा पुं० दे० "जन्मदिन"।

जनम-धरती†–संज्ञा स्त्री० दे० "जन्मभूमि"।

जनमना–क्रि० अ० [सं० जन्म] (१) पैदा होना। उत्पन्न होना। जन्म लेना। (२) चौसर आदि खेलों में किसी नई या मरी हुई गोटी का, उन खेलों के नियमानुसार खेले जाने के योग्य होना।

जनमपत्ती–संज्ञा स्त्री० [हिं० जनम + पत्ती] चाय की वह छोटी पत्ती या फुनगी जो पहले पहल निकलती है। (चाय-कुलियों की भाषा)।

जनमपत्री–संज्ञा स्त्री० दे० "जन्मपत्री"।

जनमरक–संज्ञा पुं० [सं०] वह बीमारी जिससे थोड़े समय में बहुत से लोग मर जाँय। महामारी।

जनमर्य्यादा–संज्ञा स्त्री० [सं०] लौकिक आचार या रीति।

जनमसँघाती†*–संज्ञा पुं० [हिं० जन्म + संघाती] (१) वह जिसका साथ जन्म से ही हो। बहुत दिनों से साथ रहनेवाला मित्र। (२) वह जिसका साथ जन्म भर रहे

जनमाना–क्रि० स० [हिं० जनम] (१) जनमने का काम कराना। प्रसव कराना। (२) दे० "जनमना"।

जनमेजय–संज्ञा पुं० दे० "जन्मेजय"।

जनयिता–संज्ञा पुं० [सं० जनयितृ] [स्त्री० जनयित्री] जन्मदाता। पिता। बाप।

जनयित्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म देनेवाली। माता। मा। उ०—सीतलता, सरलता मइत्री। द्विजपद प्रीति धरम जनयित्री।

जनरल–संज्ञा पुं० [अं०] फ़ौजों का एक बड़ा अफ़सर जिसके अधिकार में कई रेजिमेंटें होती हैं। अंग्रेजी सेना का सेनापति या सेना-नायक।

वि० साधारण। आम। जैसे, इंस्पेक्टर-जनरल।

जनरव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किंवदंती। जनश्रुति। अफ़वाह। (२) लोकनिंदा। बदनामी। (३) बहुत से लोगों का कोलाहल। शोर।

जनलोक–संज्ञा पुं० दे० "जन (६)।"

जनवरी–संज्ञा स्त्री० [अ० जनुअरी] अंगरेजी साल का पहला महीना जो इकतीस दिनों का होता है।

जनवल्लभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्वेत रोहित का पेड़। सफेद रोहिड़ा। (२) जनप्रिय। लोकप्रिय।

जनवाई–संज्ञा स्त्री० दे० "जनाई (२)"।

जनवाद–संज्ञा पुं० दे० "जनरव"।

जनवाना–क्रि० स० [हिं० जनना] जनने का प्रेरणार्थक रूप। प्रसव कराना। लड़का पैदा कराना।

† क्रि० स० [हिं० जानना] समाचार दिलवाना। किसी दूसरे के द्वारा सूचित कराना।

जनवास–संज्ञा पुं० [सं० जन+वास] (१) सर्वसाधारण के ठहरने वा टिकने का स्थान। लोगों के निवास का स्थान। (२) बरातियों के ठहरने का स्थान। वह जगह जहाँ कन्या पक्ष की ओर से बरातियों के ठहरने का प्रबंध हो। उ०—(क) सकल सुपास जहाँ दीन्ह्यो जनवास तहाँ कीन्ह्यो सन्मान दे हुलास त्यों समाज को।—कबीर। (ख) दीन्ह जाय जनवास सुपास किये सब। घर घर बालक बात कहन लागे सब।—तुलसी। (३) सभा। समाज।

जनवासा–संज्ञा पुं० दे० "जनवास (२)"।

जनश्रुत–वि० [सं०] प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर।

जनश्रुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] अफवाह। वह खबर जो बहुत से लोगों में फैली हुई हो पर जिसके सच्चे या झूठे होने का कोई निर्णय न हुआ हो। अफवाह। किंवदंती।

क्रि० प्र०—उठना।—फैलना।

जनस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] दंडकारण्य। दंडकवन।

जनहरण–संज्ञा पुं० [सं०] एक दंडक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में तीस लघु और एक गुरु होता है। यह 'मुक्तक' का दूसरा भेद है। उ०—लघु सब गुरु इक तिसर न मन धर भजु भजु नर प्रभु अघ जन हरण।

जनांत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह प्रदेश जिसकी सीमा निश्चित हो। (२) यम। (३) वह स्थान जहाँ मनुष्य न रहते हों।

वि० मनुष्यों का नाश करनेवाला।

जनांतिक–संज्ञा पुं० [सं०] दो आदमियों में परस्पर वह सांकेतिक बात चीत जिसे और उपस्थित लोग न समझ सकें।

विशेष—इसका व्यवहार बहुधा नाटकों में होता है।

जना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पत्ति। पैदाइश। (२) माहिष्मती के राजा नीलध्वज की स्त्री का नाम। जैमिनी भारत के अनुसार पांडवों के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़नेवाला प्रवीर इसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। उस घोड़े के लिये प्रवीर और पांडवों में जो युद्ध हुआ था उसमें इसने अपने पुत्र को बहुत सहायता और उत्तेजना दी थी। जब युद्ध में प्रवीर मारा गया तब वह स्वयं युद्ध करने लगी। श्रीकृष्ण को इससे पांडवों की रक्षा करने में बहुत कठिनता हुई थी।

संज्ञा पुं० दे० "ज़िना"।

वि० उत्पन्न किया हुआ। जन्माया हुआ।

जनाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० जनना] (१) जनानेवाली। दाई। (२) जनाने की उजरत। पैदा कराई का हक़ वा नेग। दाई की मज़दूरी।

जनाउ*†–संज्ञा पुं० दे० "जनाव"। उ०—अवधनाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ। भए प्रेम बस सचिव सुनि, विप्र सभासद राउ।—तुलसी।

जनाचार–संज्ञा पुं० [सं०] लोकाचार। देश या समाज आदि की प्रचलित रीति।

जनाज़ा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) मृतक शरीर। शव। लाश। (२) अरथी या वह संदूक जिसमें लाश को रख कर गाड़ने, जलाने या और किसी प्रकार की अंतिम क्रिया करने के लिये ले जाते हैं।

क्रि० प्र०—उठना।—निकलना।

जनाधिनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) राजा।

ज़नानखाना–संज्ञा पुं० [फ़ा०] घर का वह भाग जिसमें स्त्रियाँ रहती हों। स्त्रियों के रहने का घर।

जनाना–क्रि० स० [हिं० जानना] मालूम कराना। जताना।

संयो० क्रि०—देना।—रखना।

क्रि० स० [हिं० जनना] जानने का प्रेरणार्थक रूप। उत्पन्न कराना। जनन का काम कराना।

संयो० क्रि०—देना।

ज़नाना–वि० [फ़ा०] [स्त्री० ज़नानी] (१) स्त्रियों का। स्त्री संबंधी। जैसे, ज़नाना काम, ज़नानी सूरत, ज़नानी बोली। (२) नामर्द। नपुंसक। हीजड़ा। (३) निर्बल। डरपोक।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) जनखा। मेहरा। (२) अंतःपुर। ज़नानखाना।

मुहा०—ज़नाना करना = पर्दा करना। स्थान को पर्देवाली स्त्रियों के आने जाने योग्य करना।

ज़नानापन–संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़नाना + पन (प्रत्य०)] मेहरापन। स्त्रीत्व।

जनाब–संज्ञा पुं० [अ०] बड़ों के लिये आदरसूचक शब्द। महाशय। महोदय। जैसे, जनाब मौलवी साहब।

जनाबआली–संज्ञा पुं० [अ०] मान्यवर। महोदय। प्रतिष्ठित पुरुषों के लिये आदर-सूचक संबोधन।

जनार्दन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) शालग्राम की बटिया का एक भेद।

वि० लोगों को कष्ट पहुँचानेवाला। दुखदायी।

जनाव–संज्ञा पुं० [हिं० जनाना] जनाने की क्रिया। सूचना। इत्तिला।

उ०—चलत न काहुहि कियो जनाव। हरि प्यारी सौं बाढ्यो भाव। रास रसिक गुण गाइ हो।—सूर।

जनावर†—संज्ञा पुं० दे० "जानवर"।

जनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भेड़िया। (२) मनुष्यभक्षक। वह जो आदमियों को खाता हो। (३) आदमियों के खाने का काम।

जनाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्मशाला या सराँय आदि जहाँ यात्री ठहरते हों। (२) वह मकान या मंडप आदि जो किसी विशेष कार्य्य या समय के लिये बनाया जाय। (३) साधारण घर। मकान।

जनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पत्ति। जन्म। पैदाइश। (२) जिससे कोई उत्पन्न हो। नारी। स्त्री। (३) माता। (४) जनी नामक गंधद्रव्य। (५) पुत्र-बधू। पतोहू। (६) भार्य्या। पत्नी। (७) जतुका। (८) जन्मभूमि।

*†अव्य० मत। नहीं। न। (निषेधार्थक)

जनिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनाना] पहेली। मुअम्मा। बुझौवल।

जनित—वि० [सं०] (१) उत्पन्न। जन्मा हुआ। जन्य। उपजा हुआ। (२) उत्पन्न किया हुआ।

जनिता—संज्ञा पुं० [सं० जनितृ] पैदा करनेवाला। उत्पन्न करनेवाला। पिता।

जनित्र—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मस्थान। जन्मभूमि।

जनित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पन्न करनेवाली। माता। मा।

जनिनीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का बड़ा पेड़।

जनियाँ*—संज्ञा स्त्री० [सं० जानि] प्रियतमा। प्राणप्यारी। प्रिया। प्रेयसी।

जनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जन] (१) दासी। सेविका। अनुचरी। (२) स्त्री। (३) उत्पन्न करनेवाली। माता। (४) जन्माई हुई। कन्या। लड़की। पुत्री।

वि० स्त्री० उत्पन्न की हुई। पैदा की हुई। जनमाई हुई।

जनीपर—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम।

जनु—क्रि० वि० [हिं० जानना] मानो।

संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म। उत्पत्ति।

जनेंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

जनेऊ†—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ वा जन्म] (१) यज्ञोपवीत। ब्रह्मसूत्र।

मुहा०—जनेऊ का हाथ = पटेबाजी वा तलवार का एक हाथ जिसमें प्रतिद्वंदी की छाती पर ऐसा आघात लगाया जाता है जैसे जनेऊ पड़ा रहता है।

(२) यज्ञोपवीत संस्कार।

जनेत—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + एत (प्रत्य०)] वरयात्रा। बरात। उ०—बीच बीच वर वास करि, मग लोगन सुख देत। अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आय जनेत।—तुलसी।

जनेता—संज्ञा पुं०—[सं० जनयिता] पिता। बाप। (डिं०)

जनेरा—संज्ञा पुं० [हिं० जुवार] एक प्रकार का बाजरा जिसके पेड़ बहुत बड़े होते हैं। इसमें बालें भी बहुत लंबी आती हैं।

जनेव—संज्ञा पुं० दे० "जनेऊ"।

जनेवा—संज्ञा पुं० [हिं० जनेऊ] (१) लकड़ी आदि में बनाई या पड़ी हुई लकीर या धारी। (२) एक प्रकार की ऊँची घास जिसे घोड़े बहुत प्रसन्नता से खाते हैं।

जनेश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। नरेश। भूपति।

जनेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हल्दी। (२) चमेली का पेड़। (३) पपड़ी। पर्पटी। (४) वृद्धि नाम की ओषधि।

जनैया—वि० [हिं० जनना + ऐया (प्रत्य०)] जाननेवाला। जानकार। उ०—(क) बदले को बदलो लै जाहु। उनकी एक हमारी देइ तुम बड़े जनैया आहु।—सूर। (ख) तृण के समान धन धान राज त्याग करि पाल्यो पितु बचन जो जानत जनैया है।—पद्माकर। (ग) जो आयसु अब होइ स्वामिनी ल्यावहुँ ताहि लेवाई। योगी बाबा बड़ो जनैया लखै कुँवर सुखदाई।—रघुराज।

जनो‡—संज्ञा पुं० दे० "जनेऊ"।

क्रि० वि० [हिं० जानना] मानो। गोया।

जन्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भ में से निकल कर जीवन धारण करने की क्रिया। उत्पत्ति। पैदाइश।

यौ०—जन्मांध। जन्माष्टमी। जन्मभूमि। जन्मपत्री। जन्मरोगी। जन्मदिन। जन्मकुंडली। जन्ममरण आदि।

पर्य्या०—जनु। जन। जनि। उद्भव। जनी। प्रभव। भाव। भव। संभव। जनू। प्रजनन। जाति।

क्रि० प्र०—देना।—धारना।—लेना।

मुहा०—जन्म लेना = उत्पन्न होना। पैदा होना।

(२) अस्तित्व प्राप्त करने का काम। आविर्भाव। जैसे, इस वर्ष कई नए पत्रों ने जन्म लिया है। (३) जीवन। जिंदगी।

मुहा०—जन्म बिगड़ना = बेधर्म होना। धर्म नष्ट होना। जन्म जन्म = सदा। नित्य। †जन्म में थूकना = घृणापूर्वक धिक्कारना। जन्म हारना = (१) व्यर्थ जन्म खोना। (२) दूसरे का दास हो कर रहना।

(४) फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली का वह लग्न जिसमें कुंडलीवाले का जन्म हुआ हो।

जन्मअष्टमी—संज्ञा स्त्री० दे० "जन्माष्टमी"।

जन्मकील—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विशेष—पुराणानुसार विष्णु की उपासना करने से मनुष्य का मोक्ष हो जाता है और उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। इसीसे विष्णु को जन्मकील कहते हैं।

जन्मकुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष के अनुसार वह चक्र जिससे किसी के जन्म के समय में ग्रहों की स्थिति का पता चले।

जन्मकृत्–संज्ञा पुं० [सं०] पिता । जन्मदाता ।

जन्मग्रहण–संज्ञा पुं० [सं०] उत्पत्ति ।

जन्मतिथि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जन्म की तिथि । जन्मदिन । (२) वर्षगाँठ ।

जन्मतुआ†–वि० [हिं० जन्म + तुआ (प्रत्य०)] [स्त्री० जन्मतुई] थोड़े दिनों का पैदा हुआ । नवोत्पन्न । दुधमुहाँ ।

जन्मदिन–संज्ञा पुं० [सं०] वह दिन जिसमें किसी का जन्म हुआ हो । जन्म का दिन । वर्षगाँठ । जैसे, आज महाराज का जन्मदिन है ।

जन्मनक्षत्र–संज्ञा पुं० [सं०] जन्म-समय का नक्षत्र ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार किसी को अपने जन्म-नक्षत्र में यात्रा न करनी चाहिए और हजामत न बनवानी चाहिए, उस दिन उसे कुछ दान पुण्य आदि करना चाहिए ।

जन्मना–क्रि० अ० [सं० जन्म + ना (प्रत्य०)] (१) जन्म लेना । जन्म ग्रहण करना । पैदा होना । (२) आविर्भूत होना । अस्तित्व में आना ।

जन्मप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) फलित ज्योतिष में जन्म लग्न का स्वामी । (२) फलित ज्योतिष में जन्म राशि का स्वामी ।

जन्मपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंडली में जन्म राशि का मालिक । (२) जन्म लग्न का स्वामी ।

जन्मपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्मपत्री । (२) जन्म का विवरण । जीवनचरित्र । (३) किसी चीज का आदि से अंत तक विस्तृत विवरण ।

जन्मपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्मपत्री ।

जन्मपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पत्र या खर्रा जिसमें किसी की उत्पत्ति के समय के ग्रहों की स्थिति, उनकी दशा, अंतर्दशा आदि और फलित ज्योतिष के अनुसार उनके फल आदि दिए हों ।

जन्मप्रतिष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माता । मा । (२) जन्म होने का स्थान ।

जन्मभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्म समय का लग्न । (२) जन्म समय का नक्षत्र । (३) जन्म की राशि । (४) जन्म नक्षत्र के सजातीय नक्षत्र आदि ।

जन्मभूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जन्मस्थान । जिस स्थान पर किसी का जन्म हुआ हो । (२) वह देश जहाँ किसी का जन्म हुआ हो ।

जन्मभृत्–संज्ञा पुं० [सं०] जीव । प्राणी ।

जन्मराशि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लग्न जिसमें किसी के उत्पन्न होने के समय चंद्रमा उदय हो ।

जन्मवर्त्म–संज्ञा पुं० [सं०] योनि । भग ।

जन्मविधवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो बचपन में विवाह होने पर विधवा हो गई हो और अपने पति के साथ जिसका संपर्क न हुआ हो । अक्षतयोनि ।

जन्मस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्मभूमि । (२) माता का गर्भ । (३) कुंडली में वह स्थान जिसमें जन्म समय के ग्रह रहते हैं ।

जन्मांतर–संज्ञा पुं० [सं०] दूसरा जन्म ।

जन्मांध–वि० [सं०] जन्म का अंधा ।

जन्मा–संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्] वह जिसका जन्म हो । जन्मवाला । जैसे, द्विजन्मा, शूद्रजन्मा ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार समासांत में होता है ।

वि० उत्पन्न । जो पैदा हुआ हो ।

जन्माधिप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव का एक नाम । (२) जन्म-राशि का स्वामी । (३) जन्म लग्न का स्वामी ।

जन्माना–क्रि० स० [हिं० जन्मना] जन्मने का सकर्मक रूप । उत्पन्न करना । जन्म देना ।

जन्माष्टमी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों की कृष्णाष्टमी, जिस दिन आधी रात के समय भगवान श्रीकृष्णचंद्र का जन्म हुआ था । इस दिन हिंदू व्रत तथा श्रीकृष्ण के जन्म का उत्सव करते हैं ।

विशेष—विष्णु पुराण में लिखा है कि श्रीकृष्णचंद्र का जन्म श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हुआ था । इसका कारण मुख्य चांद्रमास और गौण चांद्रमास का भेद मालूम होता है, क्योंकि जन्माष्टमी किसी वर्ष सौर श्रावण मास में होती है और किसी वर्ष सौर भाद्र मास में होती है ।

जन्मास्पद–संज्ञा पुं० [सं०] जन्मभूमि । जन्मस्थान ।

जन्मी–संज्ञा पुं० [सं० जन्मिन्] प्राणी । जीव ।

वि० जो उत्पन्न हुआ हो ।

जन्मेजय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) कुरुवंशी प्रसिद्ध राजा परीक्षित के पुत्र का नाम जो बड़ा प्रतापी राजा था । इसने तक्षक नाग से अपने पिता का बदला लिया था और एक अश्वमेध यज्ञ भी किया था । वैशंपायन ने इसे महाभारत सुनाया था । (३) एक प्रसिद्ध नाग का नाम ।

जन्मेश–संज्ञा पुं० [सं०] जन्म राशि का स्वामी ।

जन्मोत्सव–संज्ञा पुं० [सं०] किसी के जन्म के स्मरण का उत्सव तथा नवग्रह, अष्ट चिरजीवी और कुल-देवता आदि का पूजन ।

जन्य–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जन्या] (१) साधारण मनुष्य । जनसाधारण । (२) किंवदंती । अफ़वाह । (३) राष्ट्र । किसी एक देश के वासी । (४) लड़ाई । युद्ध । (५) हाट । बाजार । (६) निंदा । परिवाद । (७) वर । दूलह । (८) वर के संबंधी । वर पक्ष के लोग । (९) बराती । (१०) जामाता । दामाद ।

(११) पुत्र। बेटा। (१२) पिता। (१३) महादेव। (१४) देह। शरीर। (१५) जन्म। (१६) जाति।

वि० (१) जन संबंधी। (२) किसी जाति, देश, वंश वा राष्ट्र से संबंध रखनेवाला। (३) दैशिक। राष्ट्रीय। जातीय। (४) जो उत्पन्न हुआ हो। उद्भूत।

जन्यता–संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म होने का भाव।

जन्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बधू की सहेली। (२) बधू। (३) माता की सखी। (४) प्रीति। स्नेह।

जन्यु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) ब्रह्मा। विधाता। (३) प्राणी। जीव। (४) जन्म। उत्पत्ति। (५) हरिवंश के अनुसार चौथे मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम।

जप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी मंत्र वा वाक्य का बार बार धीरे धीरे पाठ करना। (२) पूजा वा संध्या आदि में मंत्र का संख्यापूर्वक पाठ करना। पुराणों में जप तीन प्रकार का माना गया है—मानस, उपांशु और वाचिक। कोई कोई उपांशु और मानस जप के बीच जिह्वा जप नाम का एक चौथा जप भी मानते हैं। ऐसे लोगों का कथन है कि वाचिक जप से दसगुना फल उपांशु में, शतगुना फल जिह्वा जप में, और सहस्रगुना फल मानस जप में होता है। मन ही मन मंत्र का अर्थ मनन करके उसे धीरे धीरे इस प्रकार उच्चारण करना कि जिह्वा और ओंठ में गति न हो, मानस जप कहलाता है। जिह्वा और ओंठ को हिला कर मंत्रों के अर्थ का विचार करते हुए इस प्रकार उच्चारण करना कि कुछ सुनाई पड़े, उपांशु जप कहलाता है। जिह्वा जप भी उपांशु ही के अंतर्गत माना जाता है, भेद केवल इतना ही है कि जिह्वा जप में जिह्वा हिलती है पर ओंठ में गति नहीं होती, और न उच्चारण ही सुनाई पड़ सकता है। वर्णों का स्पष्ट उच्चारण करना वाचिक जप कहलाता है। जप करने में मंत्र की संख्या का ध्यान रखना पड़ता है, इस लिये जप में माला की भी आवश्यकता होती है।

यौ०—जपमाला। जपयज्ञ। जपस्थान।

(३) जपनेवाला। जैसे, करणेजप।

जपजी–संज्ञा पुं० [हिं० जप] सिक्खों का एक पवित्र धर्मग्रंथ, जिसका नित्य पाठ करना वे अपना मुख्य धर्म समझते हैं।

जप तप–संज्ञा पुं० [हिं० जप + तप] संध्या, पूजा, जप और पाठ आदि। पूजा पाठ।

जपता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जप करने का काम। (२) जप करने का भाव।

जपन–संज्ञा पुं० [सं०] जपने का काम। जप।

जपना–क्रि० स० [सं० जपन] (१) किसी वाक्य वा वाक्यांश को बराबर लगातार धीरे धीरे देर तक कहना या दोहराना। उ०—राम राम के जपे ते जाय जिय की जरनि।—तुलसी। (२) किसी मंत्र का संध्या, यज्ञ वा पूजा आदि के समय संख्यानुसार धीरे धीरे बार बार उच्चारण करना। (३) खा जाना। जल्दी जल्दी निगल जाना। (बाज़ारू)

जपनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जपना] (१) माला। (२) गोमुखी। वह थैली जिसमें माला रख कर जप किया जाता है। गुप्ती।

जपनीय–वि० [सं०] जप करने योग्य। जो जपने योग्य हो।

जपमाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह माला जिसे लेकर लोग जप करते हैं। यह माला संप्रदायानुसार रुद्राक्ष, कमलाक्ष, पुत्र-जीव, स्फटिक, तुलसी आदि के मनकों की होती है। इनमें प्रायः एक सौ आठ, चौवन या अट्ठाइस दाने होते हैं और बीच में जहाँ गाँठ होती है, एक सुमेरु होता है।

विशेष—हिंदुओं के अतिरिक्त बौद्ध, मुसलमान और ईसाई आदि भी माला से जप करते हैं।

जपयज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] जप। इसके तीन भेद हैं—वाचिक, उपांशु, और मानसिक। दे० "जप (२)"।

जपहोम–संज्ञा पुं० [सं०] जप।

जपा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जवा। अड़हुल।

जपाना†–क्रि० स० [हिं० जप वा जपना] जपने का प्रेरणार्थक रूप। जप कराना।

जपी–संज्ञा पुं० [हिं० जप + ई (प्रत्य०)] जप करनेवाला। वह जो जप करता हो।

जप्त–संज्ञा पुं० दे० "जब्त"।

जप्तव्य–वि० [सं०] जो जपने योग्य हो। जपनीय।

जप्ती–संज्ञा स्त्री० दे० "जब्ती"।

जप्य–वि० [सं०] जपने योग्य।

संज्ञा पुं० मंत्र का जप।

जफा–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अन्याय और अत्याचारपूर्ण व्यवहार। सख्ती।

जफाकश–वि० [फ़ा०] (१) सहिष्णु। सहनशील। (२) मेहनती। परिश्रमी।

जफीर–संज्ञा स्त्री० दे० "जफील"।

जफीरी–संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की कपास जो मिस्र देश में होती है।

जफील–संज्ञा स्त्री० [अ० ज़फ़ीर] (१) सीटी का शब्द, विशेषतः उस सीटी का शब्द जो कबूतरबाज कबूतर उड़ाने के समय मुँह में दो उँगलियाँ रख कर बजाते हैं। (२) वह जिससे सीटी बजाई जाय। सीटी।

क्रि० प्र०—बजाना।—देना।

जफीलना†–क्रि० अ० [हिं० जफील] सीटी बजाना। सीटी देना।

जब–क्रि० वि० [सं० यावत्, प्रा० याव, जाव] जिस समय। जिस वक्त। उ०—जब ते राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये।—तुलसी।

मुहा०—जब जब = जब कभी। जिस जिस समय। उ०—जब जब होइ धरम की हानी। बाढै़ं असुर अधम अभिमानी। तब तब प्रभु धरि मनुज शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।—तुलसी। **जब तब** = कभी कभी। जैसे, जब तब वे यहाँ आजाया करते हैं। **जब होता है तब** = प्रायः। बराबर। जैसे, जब होता है तब तुम मार दिया करते हो। **जब देखो तब** = सदा। सर्वदा। हमेशा। जैसे, जब देखो तब तुम यहीं खड़े रहते हो।

जबड़ा—संज्ञा पुं० [सं० जंभ] मुहँ में दोनों ओर ऊपर नीचे की वे हड्डियाँ जिनमें डाढे़ं जड़ी रहती हैं। कल्ला।

मुहा०—जबड़ा फाड़ना = मुहँ खोलना। मुँह फाड़ना।

यौ०—जबड़ातोड़ = जबरदस्त। बलवान। मुँहतोड़।

जबदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का धान जो रुहेलखंड में पैदा होता है।

जबर—वि० [फ़ा० ज़बर] (१) बलवान्। बली। ताक़तवर। (२) दृढ़। मजबूत।

जबरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जबर] अन्याययुक्त अत्याचार। सख्ती। ज्यादती।

जबरजद्द—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का पन्ना जो पीलापन लिए हरे रंग का होता है।

जबरदस्त—वि० [फ़ा०] [संज्ञा जबरदस्ती] (१) बलवान्। बली। शक्तिवाला। (२) दृढ़। मजबूत। पक्का।

जबरदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अत्याचार। सीनाजोरी। प्रबलता। जि़यादती। अन्याय।

क्रि० वि० बलपूर्वक। दबाव डाल कर। इच्छा के विरुद्ध।

जबरन्—क्रि० वि० [अ० जब्रन] बलात्। जबरदस्ती। बलपूर्वक।

जबरा—वि० [हिं० जबर] बलवान्। बली। प्रबल। जबरदस्त। जैसे, जबरा मारे, रोने न दे।

संज्ञा पुं० [हिं० जबर = दृढ़] चौड़े मुँह का एक प्रकार का कुठला या अनाज रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन।

संज्ञा पुं० [अं० जेबरा] घोड़े और गदहे के मध्य का एक बहुत सुंदर जंगली जानवर जो मटमैले सफेद रंग का होता है और जिसके सारे शरीर पर लंबी लंबी सुंदर और काली धारियाँ होती हैं। यह कंधे तक प्रायः तीन हाथ ऊँचा और छरहरे पर मजबूत बदन का होता है। इसके कान बड़े, गरदन छोटी और दुम गुच्छेदार होती है। यह बहुत चौकन्ना, चपल, जंगली और तेज दौड़नेवाला होता है और बड़ी कठिनता से पकड़ा या पाला जाता है। यह कभी सवारी या लादने का काम नहीं देता। दक्षिण अफ्रिका के जंगलों और पहाड़ों में इसके झुंड के झुंड पाए जाते हैं। जहाँ तक हो सकता है यह बहुत ही एकांत स्थान में रहता है और मनुष्यों आदि की आहट पाकर तुरंत भाग जाता है। इसका शिकार बहुत किया जाता है जिससे इसकी जाति के शीघ्र ही नष्ट हो जाने की आशंका है।

ज़बह—संज्ञा पुं० [अ०] गला काट कर प्राण लेने की क्रिया। हिंसा।

मुहा०—ज़बह करना = बहुत कष्ट देना। अत्यंत दुःख देना।

जबहा—संज्ञा पुं० [हिं० जीव] जीवट। साहस। हिम्मत। जैसे, उसने बड़े जबहे का काम किया।

ज़बाँ—संज्ञा स्त्री० दे० "ज़बान"।

ज़बाँदराज़—वि० दे० "ज़बानदराज"।

ज़बाँदराज़ी—संज्ञा स्त्री० दे० "ज़बानदराजी"।

ज़बान—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] [वि० जबानी] (१) जीभ। जिह्वा।

यौ०—जबानदराज। जबानबंदी।

मुहा०—ज़बान खींचना = बहुत अनुचित या धृष्टतापूर्ण बातें करने के लिये कठोर दंड देना। **जबान खुलना** = मुँह से बात निकलना। **ज़बान खोलना** = मुँह से बात निकालना। बोलना। **ज़बान चलना** = (१) मुँह से जल्दी जल्दी शब्द निकलना। (२) मुँह से अनुचित शब्द निकलना। (३) खाया जाना। मुँह चलना। **ज़बान चलाना** = (१) बोलना, विशेषतः जल्दी जल्दी बोलना। (२) मुँह से अनुचित शब्द निकालना। **ज़बान चाटना** = दे० "ओंठ चाटना"। **ज़बान टूटना** = (बालक का) स्पष्ट उच्चारण आरंभ करना। † **ज़बान डालना** = (१) माँगना। याचना करना। (२) पूछना। प्रश्न करना। **ज़बान थामना या पकड़ना** = बोलने न देना। कहने से रोकना। **ज़बान पर आना** = कहा जाना। मुँह से निकलना। **ज़बान पर रखना** = (१) किसी चीज को थोड़ी मात्रा में खाकर उसका स्वाद देखना। चखना। (२) स्मरण रखना। याद रखना। **ज़बान पर लाना** = मुँह से कहना। बोलना। **ज़बान पर होना** = हर दम याद रहना। स्मरण रहना। **ज़बान बंद करना** = (१) चुप होना। (२) बोलने से रोकना। (३) विवाद में हराना। **ज़बान बंद होना** = (१) मुँह से शब्द न निकलना। (२) विवाद में हार जाना। निग्रह स्थान में आना। **ज़बान बिगड़ना** = (१) मुँह से अपशब्द निकलने का अभ्यास होना। (२) मुँह का स्वाद इस प्रकार खराब होना कि खाने की कोई चीज़ अच्छी न लगे। (३) ज़बान चटोरी होना। **ज़बान में लगाम न होना** = अनुचित बातें कहने का अभ्यास होना। सोच समझ कर बोलने के अयोग्य होना। **ज़बान रोकना** = (१) ज़बान पकड़ना। (२) चुप करना। **ज़बान सँभालना** = मुँह से अनुचित शब्द न निकलने देना। सोच समझ कर बोलना। **ज़बान सीना** = दे० "मुँह सीना"। **ज़बान से निकलना** = उच्चारण होना। बोला जाना। **ज़बान से निकालना** = उच्चारण करना। बोलना। कहना। **ज़बान हिलाना** = बोलने का प्रयत्न करना। मुँह से शब्द निकालना। **दबी ज़बान से बोलना या कहना** = कम ज़ोर होकर बोलना। अस्पष्ट रूप से बोलना।

इस प्रकार बोलना जिसमें सुननेवाले को उस बात के संबंध में संदेह रह जाय। बदज़बानी = अनुचित और अशिष्ट बात। बर ज़बान = जो बहुत अच्छी तरह याद हो। कंठस्थ। उपस्थित। बेज़बान = जो अधिक न बोलता हो। बहुत सीधा। (२) ज़बान से निकला हुआ शब्द। बात। बोल। जैसे, मरद की एक ज़बान होती है।

मुहा०—ज़बान बदलना = कही हुई बात से फिर जाना।

(३) प्रतिज्ञा। वादा। क़ौल।

मुहा०—ज़बान देना या हारना = प्रतिज्ञा करना। वचन देना। वादा करना।

(४) भाषा। बोल चाल।

ज़बानदराज़–वि० [फ़ा०] [संज्ञा ज़बानदराज़ी] (१) जो बहुत सी न कहने योग्य और अनुचित बातें कहे। बहुत धृष्टतापूर्वक अनुचित बातें करनेवाला। (२) बढ़ बढ़ कर बातें करनेवाला। शेखी या डींग हाँकनेवाला।

ज़बानदराज़ी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बहुत धृष्टतापूर्वक अनुचित बातें करने की क्रिया या भाव। धृष्टता। ढिठाई। गुस्ताखी।

ज़बानबंदी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) किसी घटना आदि के संबंध में साक्षी स्वरूप वह कथन जो लिख लिया जाय। लिखा जानेवाला इज़हार। (२) मौन। चुप्पी।

ज़बानी–वि० [हिं० ज़बान] जो केवल ज़बान से कहा जाय, (पर कार्य्य अथवा और किसी रूप में परिणत न किया जाय)। मौखिक। जैसे, ज़बानी जमा-खर्च। ज़बानी सँदेसा।

जबाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्य काम जाबाल ऋषि की माता का नाम जो एक दासी थी। इसकी कथा छांदोग्य उपनिषद में है।

विशेष—दे० "जाबाल"।

ज़बून–वि० [तु०] बुरा। खराब। निकम्मा। निकृष्ट।

ज़ब्त–संज्ञा पुं० [अ०] (१) अधिकारी या राज्य द्वारा दंड स्वरूप किसी अपराधी की संपत्ति का हरण। किसी अपराधी को दंड देने के लिये सरकार का उसकी जायदाद छीन लेना। (२) अपने अधिकार में आई हुई किसी दूसरे की चीज को अपना लेना। कोई वस्तु किसी अधिकार से ले लेना।

ज़ब्ती–संज्ञा स्त्री० [अ० जब्त] ज़ब्त।

मुहा०—ज़ब्ती में आना = ज़ब्त हो जाना।

जब्भा†–संज्ञा पुं० दे० "जबहा"।

जब्र–संज्ञा पुं० [अ०] कठोर व्यवहार। ज़्यादती। सख्ती।

जब्रन–क्रि० वि० [अ०] बलात्। जबरदस्ती से। ज़्यादती से। बलपूर्वक।

जभन–संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन। स्त्री-प्रसंग।

जम–संज्ञा पुं० दे० "यम"।

जमई–वि० [फ़ा०] जो जमा हो। नगदी। जमा संबंधी।

विशेष—यह शब्द उस भूमि के लिये आता है जिसका लगान नगद लिया जाता है। जैसे, जमई खेत। अथवा इसका व्यवहार उस लगान के लिये होता है जो जिंस के रूप में नहीं बल्कि नगद हो। जैसे, जमई लगान, जमई बंदोबस्त।

जमक–संज्ञा पुं० दे० "यमक"

जमकना†–क्रि० अ० दे० "चमकना"।

जमकातर†*–संज्ञा पुं० [सं० यम + हिं० कातर] भँवर। संज्ञा स्त्री० [सं० यम + कर्त्तरी] यम का छुरा या खाँडा।

जमकाना–क्रि० स० [हिं० जमकना] जमकना का सकर्मक रूप।

जमघंट–संज्ञा पुं० दे० "यमघंट"।

जमघट–संज्ञा पुं० [हिं० जमना + घट] मनुष्यों की भीड़ जिसमें लोग ठसाठस भरे हों और जिसे कोई आदमी सुगमता से पार न कर सके। ठट्ट। बहुत से मनुष्यों की भीड़। जमावड़ा।

क्रि० प्र०—लगना।

जमघटा†–संज्ञा पुं० दे० "जमघट"।

जमघट्ट†–संज्ञा पुं० दे० "जमघट"।

जमज–वि० दे० "यमज"।

जमजोहरा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जो जाड़े के दिनों में उत्तर-पश्चिम भारत में दिखाई पड़ती है और गरमी में फ़ारस और तुर्किस्तान को चली जाती है। यह प्रायः एक बालिश्त लंबी होती है और ऋतु परिवर्त्तन के समय रंग बदलती है।

जमडाढ़–संज्ञा स्त्री० [सं० यम + डाढ़] कटारी की तरह का एक हथियार जिसकी नोक बहुत पैनी और आगे की ओर झुकी हुई होती है। इसे शत्रु के शरीर में भोंकते हैं। जमधर।

जमदग्नि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रकार वैदिक ऋषि जिनकी गणना सप्तर्षियों में की जाती है। ये भृगुवंशी ऋचीक के पुत्र थे। वेदों में इनके बहुत से मंत्र मिलते हैं। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों से जाना जाता है कि विश्वामित्र के साथ ये भी वशिष्ठ के विपक्षी थे। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि हरिश्चंद्र के नरमेध यज्ञ में ये अध्वर्य्यु हुए थे।

विशेष—जमदग्नि का जिक्र महाभारत, हरिवंश और विष्णुपुराण में आया है। इनकी उत्पत्ति के संबंध में लिखा है कि ऋचीक ऋषि ने अपनी स्त्री सत्यवती, जो राजा गाधि की कन्या थी, तथा उनकी माता के लिये भिन्न गुणोंवाले दो चरु तैय्यार किए थे। दोनों चरु अपनी स्त्री सत्यवती को देकर उन्हों ने बतला दिया था कि ऋतु-स्नान के उपरांत यह चरु तुम खा लेना और दूसरा चरु अपनी माता को खिला देना। सत्यवती ने दोनों चरु अपनी माता को देकर उसके संबंध में सब बातें बतला दीं। उसकी माता ने यह समझ

कर कि ऋचीक ने अपनी स्त्री के लिये अधिक उत्तम गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चरु तैय्यार किया होगा, उसका चरु स्वयं खा लिया और अपना चरु उसे खिला दिया। जब दोनों गर्भवती हुईं तब ऋचीक ने अपनी स्त्री के लक्षण देख कर समझ लिया कि चरु बदल गया है। ऋचीक ने उससे कहा कि मैंने तुम्हारे गर्भ से निष्ठ पुत्र और तुम्हारी माता के गर्भ से महाबली और क्षात्र गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चरु तैय्यार किया था; पर तुम लोगों ने चरु बदल लिया। इस पर सत्यवती ने दुखी हो कर अपने पति से कोई ऐसा प्रयत्न करने की प्रार्थना की जिसमें उसके गर्भ से उग्र क्षत्रिय न उत्पन्न हो, और यदि उसका उत्पन्न होना अनिवार्य्य ही हो तो वह उसकी पुत्रवधू के गर्भ से उत्पन्न हो। तदनुसार सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि और उसकी माता के गर्भ से विश्वामित्र का जन्म हुआ। इसी लिये जमदग्नि में भी बहुत से क्षत्रियोचित गुण थे। जमदग्नि ने राजा प्रसेनजित् की कन्या रेणुका से विवाह किया था और उसके गर्भ से उन्हें रुमन्वान्, सुषेण, वहु, विश्वावहु और परशुराम नाम के पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे। ऋचीक के चरु के प्रभाव से उनमें से परशुराम में सभी क्षत्रियोचित गुण थे। जमदग्नि की मृत्यु के संबंध में विष्णुपुराण में लिखा है कि एक बार हैहय के राजा कार्त्तवीर्य्य उनके आश्रम से उनकी कामधेनु ले गए थे। इसपर परशुराम ने उनका पीछा करके उनके हजार हाथ काट डाले। जब कार्त्तवीर्य्य के पुत्रों को यह बात मालूम हुई तब उन लोगों ने जमदग्नि के आश्रम पर जाकर उन्हें मार डाला।

जमधर–संज्ञा पुं० [हिं० जमडाढ़] (१) जमडाढ़ नामक हथियार। (२) एक प्रकार का बादामी कागज़।

जमन–संज्ञा पुं० दे० "यवन"।

जमना–क्रि० अ० [सं० यमन = जकड़ना। मि० अ० जमा] (१) किसी द्रव पदार्थ का, ठंढक के कारण, समय पाकर अथवा और किसी प्रकार गाढ़ा होना। किसी तरल पदार्थ का ठोस हो जाना। जैसे, पानी से बरफ़ जमना, दूध से दही जमना। (२) किसी एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ पर दृढ़तापूर्वक बैठना। अच्छी तरह स्थित होना। जैसे, जमीन पर पैर जमना, चौकी पर आसन जमना, बरतन पर मैल जमना, सिर पर पगड़ी या टोपी जमना।

मुहा०—दृष्टि जमना = दृष्टि का स्थिर होकर किसी ओर लगना। नज़र का बहुत देर तक किसी चीज़ पर ठहरना। मन में बात जमना = किसी बात का हृदय पर भली भाँति अंकित होना। किसी बात का मन पर पूरा पूरा प्रभाव पड़ना। रंग जमना = प्रभाव दृढ़ होना। पूरा अधिकार होना।

(३) एकत्र होना। इकट्ठा होना। जमा होना। जैसे, भीड़ जमना, तलछट जमना। (४) अच्छा प्रहार होना। खूब चोट पड़ना। जैसे, लाठी जमना, थप्पड़ जमना। (५) हाथ से होनेवाले काम का पूरा पूरा अभ्यास होना। जैसे, लिखने में हाथ जमना। (६) बहुत से आदमियों के सामने होनेवाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक होना। बहुत से आदमियों के सामने किसी काम का इतनी उत्तमता से होना कि सब पर उसका पूरा प्रभाव पड़े। जैसे, व्याख्यान जमना, गाना जमना, खेल जमना। (७) सर्व साधारण से संबंध रखनेवाले किसी काम का अच्छी तरह चलने योग्य हो जाना। जैसे, पाठशाला जमना, दूकान जमना। (८) घोड़े का बहुत ठुमक ठुमक कर चलना।

क्रि० अ० [सं० जन्म + ना (प्रत्य०)] उगना। उपजना। उत्पन्न होना। फूटना। जैसे, पौधा जमना, बाल जमना।

संज्ञा पुं० [हिं० जमना = उत्पन्न होना] वह घास जो पहली वर्षा के उपरांत खेतों में उगती है।

‡संज्ञा स्त्री० दे० "यमुना"।

जमनिका–संज्ञा स्त्री० [सं० जवनिका] (१) जवनिका। परदा। (२) काई। उ०—हृदय जमनिका बहु बिधि लागी।—तुलसी।

जमनौता–संज्ञा पुं० [अ० जमानत + औता (प्रत्य०)] वह रकम जो कोई मनुष्य अपनी जमानत करने के बदले में ज़मानत करनेवाले को दे।

विशेष—मुसलमानी राज्यकाल में इस प्रकार की रकम देने की प्रथा प्रचलित थी। यह रकम प्रायः ५) प्रति सैकड़े के हिसाब से दी जाती थी।

जमनौती†–संज्ञा स्त्री० दे० "जमनौता"।

जमरूद–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा लंबोतरा फल।

जमवट–संज्ञा स्त्री० [हिं० जमना] पहिए के आकार का लकड़ी का वह गोल चक्कर जो कुआँ बनाने में भगाड़ में रक्खा जाता है और जिसके ऊपर कोठी की जोड़ाई होती है।

जमा–वि० [अ०] (१) जो एक स्थान पर संग्रह किया गया हो। एकत्र। इकट्ठा।

मुहा०—कुल जमा या जमा कुल = सब मिला कर। कुल। सब। जैसे, वह कुल जमा पाँच रुपए लेकर घर से चले थे।

(२) जो अमानत के तौर पर या किसी खाते में रक्खा गया हो। जैसे, उनका सौ रुपया बंक में जमा है, तुम्हारे चार थान हमारे यहाँ जमा हैं।

संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मूल धन। पूँजी। (२) धन। रुपया पैसा। जैसे, उसके पास बहुत सी जमा है।

यौ०—जमाजथा।

मुहा०—जमा मारना = अनुचित रूप से किसी का धन ले लेना। बेईमानी से किसी का माल हज़म करना।

(२) भूमि-कर। मालगुजारी। लगान।

यौ०—जमाबंदी।

(३) संकलन। जोड़। (गणित) (४) बही आदि का वह भाग या कोष्ठक जिसमें आए हुए धन या माल आदि का विवरण दिया जाता है।

यौ०—जमाखर्च।

जमाई–संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दामाद। जँवाई। जामाता।

संज्ञा स्त्री० [हिं० जमना] (१) जमने की क्रिया। (२) जमने का भाव।

संज्ञा स्त्री० [हिं० जमाना] (१) जमाने की क्रिया। (२) जमाने का भाव। (३) जमाने की मजदूरी।

जमाखर्च–संज्ञा पुं० [फ़ा० जमा + खर्च] आय और व्यय।

जमाजथा–संज्ञा स्त्री० [हिं० जमा + गथ = पूँजी] धन-संपत्ति। नगदी और माल।

जमात–संज्ञा स्त्री० [अ० जमाअत] (१) बहुत से मनुष्यों का समूह। आदमियों का गरोह या जत्था। जैसे, साधुओं की जमात। (२) कक्षा। श्रेणी। दरजा। जैसे, वह लड़का पाँचवीं जमात में पढ़ता है।

जमादार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [संज्ञा जमादारी] (१) कई सिपाहियों या पहरेदारों आदि का प्रधान। वह जिसकी अधीनता में कुछ सिपाही, पहरेदार या कुली आदि हों। (२) पुलिस का वह बड़ा सिपाही जिसकी अधीनता में कई और साधारण सिपाही होते हैं। हेड कांसटेबल। (३) कोई सिपाही या पहरेदार।

जमादारी–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) जमादार का पद। (२) जमादार का काम।

जमानत–संज्ञा स्त्री० [अ०] वह जिम्मेदारी जो कोई मनुष्य किसी अपराधी के ठीक समय पर न्यायालय में उपस्थित होने, किसी कर्जदार के कर्ज अदा करने अथवा इसी प्रकार के किसी और काम के लिये अपने ऊपर ले। वह जिम्मेदारी जो जबानी, कोई कागज़ लिख कर अथवा कुछ रुपया जमा करके ली जाती है। जामिनी। जैसे, (क) वे सौ रुपए की जमानत पर छूटे हैं। (ख) उन्होंने हमारी जमानत पर उनका सब माल छोड़ दिया।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

यौ०—जमानतनामा।

जमानतनामा–संज्ञा पुं० [अ० ज़मानत + फ़ा० नामा] वह कागज जो जमानत करनेवाला जमानत के प्रमाण-स्वरूप लिख देता है।

जमानती–संज्ञा पुं० [अ० जमानत + ई (प्रत्य०)] जमानत करनेवाला। वह जो जमानत करे। जामिन। जिम्मेदार। (क्व०)

जमाना–क्रि० स० [हिं० जमना का स० रूप] (१) किसी द्रव पदार्थ को ठंढा करके अथवा किसी और प्रकार से गाढा करना। किसी तरल पदार्थ को ठोस बनाना। जैसे, चाशनी से बरफी जमाना। (२) किसी एक पदार्थ को दूसरे पर दृढ़तापूर्वक बैठाना। अच्छी तरह स्थित करना। जैसे, जमीन पर पैर जमाना।

मुहा०—दृष्टि जमाना = दृष्टि को स्थिर करके किसी ओर लगाना। (मन में) बात जमाना = हृदय पर बात को भली भाँति अंकित करा देना। रंग जमाना = अधिकार दृढ़ करना। पूरा पूरा प्रभाव डालना।

(३) प्रहार करना। चोट लगाना। जैसे, हथौड़ा जमाना, थप्पड़ जमाना। (४) हाथ से होनेवाले काम का अभ्यास करना। जैसे, अभी तो वे हाथ जमा रहे हैं। (५) बहुत से आदमियों के सामने होनेवाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक करना। जैसे, व्याख्यान जमाना, खेल जमाना, गाना जमाना (६) सर्व साधारण से संबंध रखनेवाले किसी काम को उत्तमतापूर्वक चलने योग्य बनाना। जैसे, कारखाना जमाना, स्कूल जमाना। (७) घोड़े को इस प्रकार चलाना जिसमें वह ठुमक ठुमक कर पैर रक्खे।

क्रि० स० [हिं० जमना = उत्पन्न होना] उत्पन्न करना। उपजाना। जैसे, पौधा जमाना।

संज्ञा पुं० दे० "ज़माना"।

ज़माना–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) समय। काल। वक्त। (२) बहुत अधिक समय। मुद्दत। जैसे, उन्हें यहाँ आए ज़माना हुआ। (३) प्रताप या सौभाग्य का समय। एकबाल के दिन। जैसे, आजकल आप का ज़माना है। (४) दुनिया। संसार। जगत्। जैसे, सारा ज़माना उसे गाली देता है।

मुहा०—ज़माना देखना = बहुत अनुभव प्राप्त करना। तजरबा हासिल करना। जैसे, आप बुजुर्ग हैं, ज़माना देखे हुए हैं।

यौ०—ज़मानासाज़। ज़मानासाज़ी।

ज़मानासाज़–वि० [फ़ा०] जो अपने स्वार्थ के लिये समय समय पर अपना व्यवहार बदलता रहता है। अपना मतलब साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखनेवाला।

ज़मानासाज़ी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अपना मतलब साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखना। अपने स्वार्थ के लिये समयानुसार अनुचित रूप से अपना व्यवहार बदलना।

जमाबंदी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पटवारी का एक कागज जिसमें असामियों के नाम और उनसे मिलनेवाले लगान की रकमें लिखी जाती हैं।

जमामार–वि० [हिं० जमा + मारना] अनुचित रूप से दूसरों का धन दबा रखने या ले लेनेवाला।

जमालगोटा–संज्ञा पुं० [सं० जयपाल = जमाल + गोटा] एक पौधे का बीज जो अत्यंत रेचक होता है। यह पौधा करोटन की

जाति का है और समुद्र से ३००० फुट की ऊँचाई तक परती भूमि में होता है। यह पौधा दूसरे वर्ष फलने लगता है। इसका फल छोटी इलायची के बराबर होता है जिसके भीतर सफेद गरी होती है। गरी में तेल का अंश बहुत होता है और उसे खाने से बहुत दस्त आते हैं। गरी से एक प्रकार का तेल निकलता है जो बहुत तीक्ष्ण होता है और जिसके लगने से बदन पर फफोला पड़ जाता है। तेल गाढ़ा और साफ़ होता है और औषध के काम में आता है। इसकी खली चाह के खेत की मिट्टी में मिलाने से पौधों में दीमक और दूसरे कीड़े नहीं लगते। इसके पेड़ कहवे के पेड़ के पास छाया के लिये भी लगाए जाते हैं। जयपाल। दंतीफल।

जमाव—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमाना] (१) जमने का भाव। (२) जमाने का भाव।

जमावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमाना] जमने का भाव।

जमावड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० जमना = एकत्र होना] बहुत से लोगों का समूह। भीड़।

जमींकंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० जमीन + कंद] सूरन। ओल।

जमींदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] जमीन का मालिक। भूमि का स्वामी।

विशेष—मुसलमानों के राजत्वकाल में जो मनुष्य किसी छोटे प्रांत, जिले या कुछ गाँवों का भूमिकर उगाहने और सरकारी ख़जाने में जमा करने के लिये नियुक्त होता था वह जमींदार कहलाता था और उसे उगाहे हुए कर का दसवाँ भाग पुरस्कार स्वरूप दिया जाता था। पर जब अंत में मुसलमान शासक कमजोर हो गए तब ये जमींदार अपने अपने प्रांतों के स्वतंत्र रूप से प्रायः मालिक बन गए। अंगरेजी राज्य में जमींदार लोग अपनी अपनी भूमि के पूरे मालिक समझे जाते हैं और जमींदारी पैतृक होती है। वे सरकार को कुछ निश्चित वार्षिक कर देते हैं और अपनी जमींदारी का संपत्ति की भाँति जिस प्रकार चाहें, उपयोग कर सकते हैं। काश्तकारों आदि को, कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार वे अपनी जमीन स्वयं ही जोतने बोने आदि के लिये देते और उनसे लगान आदि लेते हैं।

जमींदारा†—संज्ञा पुं० दे० "जमींदारी"।

जमींदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) जमींदार की वह ज़मीन जिसका वह मालिक हो। (२) जमींदार होने की दशा वा अवस्था। (३) जमींदार का हक़ वा स्वत्व।

ज़मींदोज़—वि० [फ़ा०] जो गिरा, तोड़ या उखाड़ कर ज़मीन के बराबर कर दिया गया हो।

ज़मीन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) पृथ्वी। (ग्रह)। जैसे, ज़मीन बराबर सूरज के चारों तरफ़ घूमती है। (२) पृथ्वी का वह ऊपरी ठोस भाग जो मिट्टी का है और जिसपर हम लोग रहते हैं। भूमि। धरती।

मुहा०—ज़मीन आसमान एक करना = किसी काम के लिये बहुत अधिक परिश्रम या उद्योग करना। बहुत बड़े बड़े उपाय करना। ज़मीन आसमान का फ़रक़ = बहुत अधिक अंतर। बहुत बड़ा फ़रक़। आकाश पाताल का अंतर। ज़मीन आसमान के कुलाबे मिलाना = बहुत डींग हाँकना। बहुत शेखी करना। ज़मीन का पैरों तले से निकल जाना = सन्नाटे में आ जाना। होश हवास जाता रहना। ज़मीन चूमने लगना = इस प्रकार गिर पड़ना कि जिसमें ज़मीन के साथ मुँह लग जाय। जैसे, जरा से धक्के से वह ज़मीन चूमने लगा। ज़मीन देखना = (१) गिर पड़ना। पटका जाना। (२) नीचा देखना। ज़मीन दिखाना = (१) गिराना। पटकना। जैसे, एक पहलवान का दूसरे पहलवान को ज़मीन दिखाना। (२) नीचा दिखाना। ज़मीन पकड़ना = जम कर बैठना। ज़मीन पर चढ़ना = (१) घोड़े को तेज़ दौड़ने का अभ्यस्त होना। (२) किसी कार्य्य का अभ्यस्त होना। ज़मीन पर पैर न रखना = बहुत इतराना। बहुत अभिमान करना। ज़मीन पर पैर न पड़ना = बहुत अभिमान होना।

(३) सतह, विशेष कर कपड़े, कागज या तख्ते आदि की वह सतह जिस पर किसी तरह के बेल बूटे आदि बने हों। जैसे, काली ज़मीन पर हरी बूटी की कोई छींट मिले तो लेते आना। (४) वह सामग्री जिसका व्यवहार किसी द्रव्य के प्रस्तुत करने में आधार रूप से किया जाय। जैसे, अतर खींचने में चंदन की ज़मीन, फुलेल में तिली के तेल की ज़मीन। (५) किसी कार्य्य के लिये पहले से निश्चय की हुई प्रणाली। पेशबंदी। भूमिका। आयोजन।

मुहा०—ज़मीन बाँधना = किसी कार्य्य के लिये पहले से प्रणाली निश्चित करना।

ज़मीमा—संज्ञा पुं० [अ०] क्रोड़पत्र। पूरक। अतिरिक्तपत्र।

जमुआ†—संज्ञा पुं० दे० "जामुन"।

जमुआर†—संज्ञा पुं० [हिं० जमुआ + आर (प्रत्य०)] जामुन का जंगल।

जमुकना†—क्रि० अ० [?] पास पास होना। सटना उ०—जब जमुक्यो कछु पृथु तनय, तब तरंग तहँ छोड़ि। भयो पुरंदर अलख उर, सक्यो न सन्मुख दौड़ि।—रघुराज।

जमुना—संज्ञा स्त्री० दे० "यमुना"।

जमुनियाँ†—संज्ञा पुं० [हिं० जामुन] जामुन का रंग। जामुनी। वि० जामुन के रंग का। जामुनी रंग का।

जमुरका†—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंबूर] कुलाबा।

जमुरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जंबूर] (१) चिमटी के आकार का नालबंदों का एक औजार जिससे वे घोड़ों का नाखून काटते हैं। †(२) चिमटी। (३) सँड़सी।

जमुर्रद–संज्ञा पुं० [?] पन्ना नामक रत्न।

जमुर्रदी–वि० [फ़ा० जमुर्रदीन] जमुर्रद के रंग का हरा। जो मोर की गर्दन की तरह नीलापन लिए हुए हरे रंग का हो।

संज्ञा पुं० जमुर्रद का रंग। नीलापन लिए हुए हरा रंग।

जमुवाँ†–संज्ञा पुं० [हिं० जमुआ] जामुनी। जामुन का रंग।

जमुहाना–क्रि० अ० दे० "जम्हाना"।

जमूरक†–संज्ञा पुं० [फ़ा० जंबूरक] एक प्रकार की छोटी तोप जो घोड़े या ऊँट पर रहती है। उ०—सब के आगे सुतर सवार अपार सिंगार बनाये। धरे जमूरक तिन पीठन पर सहित निसान सुहाये।—रघुराज।

जमूरा–संज्ञा पुं० दे० "जमूरक"।

जमोग†–संज्ञा पुं० [?] (१) जमोगने अर्थात् स्वीकार कराने की क्रिया। सरेख। (२) किसी तीसरे के द्वारा किसी दूसरे की बात का समर्थन। सामने का निश्चय। तसदीक़। (३) देहाती लेन देन की एक रीति जिसके अनुसार कोई ज़मींदार किसी महाजन से ऋण लेने के समय उसके चुकाने का भार उस महाजन के सामने अपने काश्तकारों पर छोड़ देता और काश्तकारों से लगान के मद्धे उसका चुकाना स्वीकार करा देता है।

यौ०—सही-जमोग।

जमोगदार–संज्ञा पुं० [अ० जमा + सं० योग] वह व्यक्ति जो जमोग की रीति से ज़मींदार को रुपया देता है।

जमोगना†–क्रि० स० [अ० जमा + योग] (१) हिसाब किताब की जाँच करना। (२) व्याज को मूल धन में जोड़ना। (३) स्वयं किसी उत्तरदायित्व से मुक्त होने के लिये किसी दूसरे को उसका भार सौंपना और उससे उस उत्तरदायित्व की स्वीकृति कराना। सरेखना। (४) किसी को किसी दूसरे के पास ले जाकर उससे अपनी बात का समर्थन कराना। तसदीक़ कराना।

जमोगवाना†–क्रि० स० [हिं० जमोगना] जमोगने का काम किसी दूसरे से कराना। सरेखवाना।

जम्मू–संज्ञा पुं० दे० "जंबू"।

जम्हाई–संज्ञा स्त्री० दे० "जँभाई"।

जम्हाना–क्रि० अ० दे० "जँभाना"।

जयंत–वि० [सं०] [स्त्री० जयंती] (१) विजयी। (२) बहुरूपिया। अनेक रूप धारण करनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक रुद्र का नाम। (२) इंद्र के पुत्र उपेंद्र का नाम। (३) संगीत में ध्रुवक जाति के एक ताल का नाम। (४) स्कंद। कार्त्तिकेय। (५) धर्म के एक पुत्र का नाम। (६) अक्रूर के पिता का नाम। (७) भीमसेन का उस समय का बनावटी नाम जब वे विराट के यहाँ अज्ञातवास करते थे। (८) दशरथ के एक मंत्री का नाम। (९) एक पर्वत का नाम। जयंतिया की पहाड़ी। (१०) जैनों के अनुत्तर देवों का एक भेद। (११) फलित ज्योतिष में यात्रा का एक योग जो उस समय पड़ता है जब कि चंद्रमा उच्च होकर यात्री की राशि से ग्यारहवें स्थान में पहुँच जाता है। इसका विचार बहुधा युद्धादि के लिये यात्रा करने के समय होता है, क्योंकि इस योग का फल शत्रु-पक्ष का नाश है।

जयंतपुर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम जिसे निमिराज ने स्थापित किया था और जो गौतम ऋषि के आश्रम के निकट था।

जयंतिका–संज्ञा स्त्री० दे० "जयंती"।

जयंती–वि० स्त्री० [सं०] विजय करनेवाली। विजयिनी। (१) ध्वजा। पताका। (२) हलदी। (३) दुर्गा का एक नाम। (४) पार्वती का एक नाम। (५) किसी महात्मा की जन्मतिथि पर होनेवाला उत्सव। वर्षगाँठ का उत्सव। (६) एक बड़ा पेड़ जिसे जैंत या जैंता भी कहते हैं। इसकी डालियाँ बहुत पतली और पत्तियाँ अगस्त की पत्तियों की तरह की, पर उनसे कुछ छोटी होती हैं। फूल अरहर की तरह पीले पीले होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर बित्ते सवा बित्ते लंबी पतली फलियाँ लगती हैं। फलियों के बीज उत्तेजक और संकोचक होते हैं और दस्त की बीमारियों में औषध के रूप में काम में आते हैं। खाज का मरहम भी इनसे बनता है। पत्तियाँ फोड़े वा सूजन पर बाँधी जाती हैं और गिलटियों के गलाने का काम करती हैं। जड़ पीस कर बिच्छू के काटने पर लगाई जाती है। यह जंगली भी होता है और लोग इसे लगाते भी हैं। बीज जेठ असाढ़ में बोया जाता है। इसकी एक छोटी जाति होती है जिसे चक्रभेद कहते हैं। इसके रेशे से जाल बनता है। बंगाल में इसे लोग अप्रैल, मई में बोते हैं और सितंबर अक्तूबर में काटते हैं। पौधा सन की तरह पानी में सड़ाया जाता है। पान के भीटों पर भी यह पेड़ लगाया जाता है। (७) वैजंती का पौधा। (८) ज्योतिष का एक योग। जब श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी की आधी रात के प्रथम और शेष दंड में रोहिणी नक्षत्र पड़े तब यह योग होता है। (९) जन्माष्टमी। (१०) जौ के छोटे पौधे जिन्हें विजयादशमी के दिन ब्राह्मण लोग यजमानों को मंगल-द्रव्य के रूप में भेंट करते हैं। जई। (११) अरणी का वृक्ष।

जय–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) युद्ध, विवाद आदि में विपक्षियों का पराभव। विरोधियों को दमन करके स्वत्व वा महत्त्व स्थापन। जीत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जय मनाना = विजय की कामना करना। समृद्धि

चाहना। जय हो = आशीर्वाद जो ब्राह्मण लोग प्रणाम के उत्तर में देते हैं।

विशेष—आशीर्वाद के अतिरिक्त इस शब्द का प्रयोग देवताओं वा महात्माओं की अभिवंदना सूचित करने के लिये भी होता है जिसमें कुछ याचना का भाव मिला रहता है। जैसे, जय काली की, रामचंद्रजी की जय। उ०—जय जय जगजननि देवि, सुर नर मुनि असुर सेव्य भुक्तिमुक्तिदायिनि भयहरणि कालिका।—तुलसी।

यौ०—जयगोपाल। जय श्रीकृष्ण। जयराम, आदि (अभिवादन वचन)।

(२) ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति के प्रौष्ठपद नामक छठे युग का तीसरा वर्ष। फलित ज्योतिष के अनुसार इस वर्ष में बहुत पानी बरसता है और क्षत्रिय, वैश्य आदि को बहुत पीड़ा होती है। (३) विष्णु के एक पार्षद का नाम। पुराणों में लिखा है कि सनकादिक ने भगवान् के पास जाने से रोकने पर क्रोध करके इसे और इसके भाई विजय को शाप दिया था। उसी से जय को संसार में तीन बार हिरण्याक्ष, रावण और शिशुपाल का अवतार तथा विजय को हिरण्यकशिपु, कुंभकर्ण और कंस का जन्म ग्रहण करना पड़ा था। (४) महाभारत वा भारत ग्रंथ का नाम। (५) जयंती वा जैत के पेड़ का नाम। (६) लाभ। (७) युधिष्ठिर का उस समय का बनावटी नाम जब वे विराट के यहाँ अज्ञातवास करते थे। (८) अयन। (९) वशीकरण। (१०) एक नाग का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है। (११) भागवत के अनुसार दसवें मन्वंतर के एक ऋषि का नाम। (१२) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (१३) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (१४) राजा संजय के एक पुत्र का नाम। (१५) उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न पुरुवसु के एक पुत्र का नाम। (१६) वह मकान जिसका दरवाजा दक्खिन की तरफ़ हो। (१७) सूर्य्य। (१८) अरणी या अग्निमंथ नाम का पेड़। (१९) इंद्र। (२०) इंद्र का पुत्र जयंत।

विशेष—पुराणों आदि में और भी बहुत से "जय" नामक पुरुषों के वर्णन आए हैं।

वि० विजयी। जीतनेवाला। (समास में)

जयकंकण—संज्ञा पुं० [सं०] वह कंकण जो प्राचीन काल में वीर पुरुषों को किसी युद्ध आदि के विजय करने की दशा में आदरार्थ प्रदान किया जाता था।

जयकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] 'चौपाई' नामक छंद का एक नाम।

जयकोलाहल—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का जूआ खेलने का एक प्रकार का पासा।

जयखाता—संज्ञा पुं० [हिं० जय = लाभ + खाता] बनियों की एक बही जिसमें वे नित्य अपना मुनाफा वा लाभ आदि लिखा करते हैं। (क्व०)

जयजयवंती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जय + जयवंती] संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी जो धूलश्री, बिलावल और सोरठ के योग से बनती है। इसमें सब स्वर शुद्ध लगते हैं और यह रात को ६ दंड से १० दंड तक गाई जाती है पर वर्षा ऋतु में लोग इसे सभी समय गाते हैं। कुछ लोग इसे मेघराज की भार्य्या मानते हैं और कुछ लोग मालकोश की सहचरी भी बताते हैं।

जयजीव*—संज्ञा पुं० [हिं० जय + जी] एक प्रकार का अभिवादन जिसका अर्थ है जय हो और जियो। इसका प्रयोग प्रणाम आदि के समान होता था। उ०—कहि जयजीव सीस तिन्ह नाये। भूप सुमंगल वचन सुनाये।—तुलसी।

जयढक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बड़ा ढोल।

जयताल—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक। यह सात ताला ताल है और इसमें क्रम से एक लघु, एक गुरु, दो लघु, दो द्रुत और एक प्लुत होता है। इसका बोल यह है,—ताहं। तत्थरि थरिथाऽताहं। ताहं। तत० था० तत्था ताथरि थरिथों ऽ।

जयति, जयत्—संज्ञा पुं० [सं० जयेत्] एक संकर राग जो गौरी और ललित के मेल से बनता है। कोई कोई इसे पूरिया और कल्याण के योग से बना मानते हैं। दे० "जयेत्"।

जयतिश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो दीपक राग की भार्य्या मानी जाती है।

जयती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयेती] श्री राग की एक रागिनी। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। कोई कोई इसे टोडी, विभास और चढ़ाना के योग से बनी हुई बताते हैं। कितने लोग इसे पूरिया, सामंत और ललित के मेल से बनी मानते हैं। दे० "जयेती"।

जयत्कल्याण—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो कल्याण और जयतिश्री को मिला कर बनता है। यह रात के पहले पहर में गाया जाता है।

जयदुर्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार दुर्गा की एक मूर्त्ति।

जयदेव—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के प्रसिद्ध काव्य गीतगोविंद के रचयिता प्रसिद्ध वैष्णव कवि जिनका जन्म आज से प्रायः आठ नौ सौ वर्ष पहले बंगाल के वर्त्तमान् वीरभूम जिले के अंतर्गत केंदु बिल्व नामक ग्राम में हुआ था। ऐसा प्रसिद्ध है कि ये गौड़ के महाराज लक्ष्मणसेन की राजसभा में रहते थे। इनका वर्णन भक्तमाल में भी आया है।

जयद्रथ—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार सिंधु-सौवीर वा सौराष्ट्र का राजा जो दुर्योधन का बहनोई था। इसने एक

बार जंगल में द्रौपदी को अकेली पा कर हर ले जाने का प्रयत्न किया था; उस समय भीम और अर्जुन ने इसकी बहुत दुर्दशा की थी। यह महाभारत के युद्ध में लड़ा था और अर्जुन के हाथों से मारा गया था।

जयध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तालजंघा के पिता का नाम जो अवंती के राजा कार्त्तवीर्य्यार्जुन का पुत्र था। (२) जय-पताका। जयंती।

जयना*†–क्रि० स० [सं० जयन्] जीतना। उ०—भरत धन्य तुम जग जस जयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ।—तुलसी।

जयनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की कन्या।

जयपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पत्र जो पराजित पुरुष अपने पराजय के प्रमाण में विजयी को लिख देता है। विजय पत्र। (२) वह राजाज्ञा जो अर्थी प्रत्यर्थी के बीच विवाद के निबटेरे के लिये लिखी जाय। वह कागज जिस पर राजा की ओर से किसी विवाद का फैसला लिखा हो। प्राचीन काल में ऐसे पत्र पर वादी और प्रतिवादी के कथन, प्रमाण और धर्म्मशास्त्र तथा राजसभा के सभ्यों के मत लिखे हुए होते थे और उस पर राजा का हस्ताक्षर और मोहर होती थी।

जयपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री।

जयपाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जमालगोटा। (२) विष्णु। (३) राजा।

जयपुत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का जूआ खेलने का एक प्रकार का पासा।

जयप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा विराट् के भाई का नाम। (२) ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक जिसमें एक लघु, एक गुरु और तब फिर एक लघु होता है। यह तिताला ताल है और इसका बोल यह है,—ताहं। धिधिकिट ताहंऽगन थों।

जयमंगल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह हाथी जिस पर राजा विजय करने के उपरांत सवार होकर निकले। (२) राजा के सवार होने योग्य हाथी। (३) ताल के साठ भेदों में एक। यह शृंगार और वीर रस में बजाया जाता है। यह चौताला ताल है और इसका बोल यह है—तकि तकि। दांतकि। धिमि धिमि। थों०।

जयमल्लार–संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

जयमाल–संज्ञा स्त्री० [सं० जयमाला] (१) वह माला जो विजयी को विजय पाने पर पहनाई जाय। (२) वह माला जिसे स्वयंबर के समय कन्या अपने वरे हुए पुरुष के गले में डालती है। उ०—गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली।—तुलसी।

जययज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ।

जयरात–संज्ञा पुं० [सं०] कलिंग देश के एक राजकुमार का नाम जो कौरवों की ओर से महाभारत के युद्ध में लड़ा था और भीम के हाथ से मारा गया था।

जयलेख–संज्ञा पुं० [सं०] जयपत्र।

जयवाहिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्राणी। शची।

जयशाल–संज्ञा पुं० यादव वंश के प्रसिद्ध राजा जिन्होंने जैसलमेर नगर बसाया और वहाँ का किला बनवाया था। अपने पिता के सब से बड़े पुत्र होने पर भी पहले इन्हें राजसिंहासन नहीं मिला था। पर अपने छोटे भाई के मर जाने पर इन्होंने शहाबुद्दीन गोरी से सहायता ले कर अपने भतीजे भोजदेव को मारा और राज्याधिकार प्राप्त किया था। सिंहासन पर बैठने के बाद संवत् १२१२ में इन्हों ने जैसलमेर नगर बसाया और किला बनवाया था।

जयश्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विजयलक्ष्मी। विजय। (२) ताल के मुख्य साठ भेदों में से एक। (३) देशकार राग से मिलती जुलती संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो संध्या के समय गाई जाती है। कुछ लोग इसे देशकार राग की रागिनी मानते हैं।

जयस्तंभ–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्तंभ जो विजयी राजा किसी देश को विजय करने के उपरांत, विजय के स्मारकस्वरूप बनवाता है।

जया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा का एक नाम। (२) पार्वती का एक नाम। (३) हरी दूब। (४) अरणी नामक वृक्ष। (५) जयंती वा जैंत का पेड़। (६) हरीतकी। हड़। (७) दुर्गा की एक सहचरी का नाम। (८) पताका। ध्वजा। (९) ज्योतिष शास्त्र के अनुसार दोनों पक्षों की तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी तिथियाँ। (१०) सोलह मातृकाओं में से एक। (११) माघ-शुक्ल एकादशी। (१२) एक प्राचीन बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे। (१३) जया पुष्प। गुड़हल का फूल। अड़हुल। (१४) भाँग (१५) शमीवृक्ष। छौंकर।

जयादित्य–संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्राचीन राजा का नाम जो काशिकावृत्ति के कर्त्ता थे।

जयाद्वय–संज्ञा स्त्री० [सं०] जयंती और हड़।

जयानीक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्रुपद राजा के एक पुत्र का नाम। (२) राजा विराट के एक भाई का नाम।

जयापीड़–संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्रसिद्ध राजा जो ईसवी आठवीं शताब्दी में हुए थे। ये एक बार दिग्विजय करने के लिये निकले थे, पर रास्ते में सैनिक इन्हें छोड़ कर भाग गए। इस पर ये प्रयाग चले गए थे जहाँ इन्होंने ९९९९९ घोड़े दान किए थे।

जयावती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम। (२) एक संकर रागिनी जो धवलश्री, बिलावल और सरस्वती के योग से बनती है।

जयावहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्रदंती का वृक्ष ।

जयाश्रया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जरड़ी घास ।

जयाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] राजा विराट के एक भाई का नाम ।

जयाहा—संज्ञा स्त्री० दे० "जयावहा" ।

जयिष्णु—वि० [सं०] जयशील । जो जीतता हो ।

जयी—वि० [सं० जयिन्] विजयी । जयशील ।

संज्ञा स्त्री० दे० "जई" ।

जयेंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] काशमीर के राजा विजय के पुत्र का नाम जो आजानु-बाहु थे ।

जयेती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो गौरी और जयत्-श्री के मेल से उत्पन्न होती है । यह सामंत, ललित और पूरिया अथवा टोड़ी, सहाना और विभास के योग से भी बन सकती है ।

जयेत्—संज्ञा पुं० [सं०] षाडव जाति के एक राग का नाम जो पूरिया और कल्याण के योग से बनता है । इसमें पंचम स्वर नहीं लगता ।

जयेत् गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो जयेत् और गौरी के मेल से बनती है ।

जय्य—वि० [सं०] जय करने योग्य । जो जीतने योग्य हो ।

जर*—संज्ञा पुं० [सं० जरा] जरा । वृद्धावस्था ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाश वा जीर्ण होने की क्रिया । (२) जैन दर्शन के अनुसार वह कर्म जिससे पाप पुण्य कलुष राग द्वेषादि सब शुभाशुभ कर्म्मों का क्षय होता है ।

†संज्ञा पुं० [हिं० ज्वर] दे० "ज्वर" ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का समुद्री सेवार । कचरा । (लश०)

†संज्ञा स्त्री० दे० "जड़" ।

ज़र—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सोना । स्वर्ण ।

यौ०—ज़रबफ़्त । ज़रबाफ़ी । ज़रदोज़ । ज़रदोज़ी ।

(२) धन । दौलत । रुपया ।

जरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़] (१) धान आदि के वे बीज जिनमें अंकुर निकले हों ।

विशेष—धान को दो दिन तक दिन में दो बार पानी से भिगोते हैं; फिर तीसरे दिन उसे पयाल के नीचे ढक कर ऊपर से पत्थरों से दबा देते हैं जिसे मारना कहते हैं । फिर एक दिन तक उसे उसी तरह पड़ा रहने देते हैं, दूसरे वा तीसरे दिन फिर खोलते हैं । उस समय तक बीजों में से सफेद सफेद अंकुर निकल आते हैं । फिर उन्हें फैला देते हैं और कभी कभी सुखाते भी हैं । ऐसे बीजों को जरई और इस क्रिया को 'जरई करना' कहते हैं । यह जरई खेत में बोने के काम आती है और शीघ्र जमती है । कभी कभी धान की मुजारी भी बंद पानी में डाल दी जाती है और दो तीन दिन तक वैसे ही पड़ी रहती है; चौथे दिन उसे खोलते हैं । उस समय वे बीज जरई हो जाते हैं । कभी कभी इस बात की परीक्षा के लिये कि बीज जम गया या नहीं भिन्न भिन्न अन्नों की भिन्न भिन्न रीति से जरई की जाती है ।

(२) दे० "जई"

जरकटी—संज्ञा पुं० [देश०] एक शिकारी पक्षी । उ०—जुर्रा बाज बाँसे कुही बहरी लगर लोने, टोने जरकटी त्यों शचान सान पार है ।—रघुराज ।

जरकस, जरकसी*—वि० [फ़ा० जरकश] जिसपर सोने के तार आदि लगे हों । उ०—(क) छोटिऐ धनुहियाँ पनहियाँ पगन छोटी छोटिऐ कछोटी कटि छोटिऐ तरकसी । लसत झँगूली झीनी दामिनी की छबि छीनी सुंदर बदन सिर पगिया जरकसी ।—तुलसी । (ख) अब झकि झाँकि झमकि झुकी उझकि झरोखे ऐन । कसे कंचुकी जरकसी लसी बसी ही नैन ।—शृं० सत० ।

जरखेज़—वि० [फ़ा०] उपजाऊ । जिसमें ख़ूब अन्न पैदा होता हो । उर्वरा (जमीन का विशेषण) ।

जरगह, जरगा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जर + गियाह] एक घास जिसे चौपाए बड़े स्वाद से खाते हैं । यह घास राजपूताने आदि में बहुत बोई जाती है । किसान इसे खेतों में कियारियाँ बना कर बोते हैं और छठे सातवें दिन पानी देते हैं । पंद्रह बीस दिन में यह काटने लायक हो जाती है । एक बार बोने पर कई महीनों तक यह बराबर पंद्रहवें दिन काटी जा सकती है । यह दाने की तरह दी जाती है और बैल घोड़े इसके खाने से जल्दी तैयार हो जाते हैं ।

जरज—संज्ञा पुं० [देश०] एक कंद जिसकी तरकारी बनाई जाती है । यह दो प्रकार का होता है । एक की जड़ गाजर वा मूली की तरह होती है और दूसरे की जड़ शलजम की तरह होती है ।

जरजर—वि० दे० 'जर्जर' ।

जरछार†—वि० [हिं० जरना + क्षार] (१) भस्मीभूत । (२) नष्ट ।

जरठ—वि० [सं०] (१) कर्कश । कठिन । (२) वृद्ध । बुड्ढा । (३) जीर्ण । पुराना । (४) पाँडु । पीलापन लिए सफ़ेद रंग का ।

संज्ञा पुं० बुढ़ापा ।

जरडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घास का नाम जिसे खाने से गाय भैंस अधिक दूध देती हैं । वैद्यक में इसे मधुर, शीतल, दाह नाशक, रक्तशोधक और रुचिकर माना है ।

पर्य्या०—गर्मोटिका । सुनाला । जयाश्रया ।

जरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हींग । (२) जीरा । (३) काला नमक । सौवर्चल । (४) कासमर्द । कसौंजा । (५) जरा । बुढ़ापा । (६) दस प्रकार के ग्रहणों में से एक जिसमें पश्चिम से मोक्ष होना प्रारंभ होता है ।

जरणद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साखू का वृत्त। (२) सागौन का पेड़।

जरणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काला जीरा। (२) वृद्धावस्था। बुढ़ापा। (३) स्तुति। प्रशंसा। (४) मोक्ष। मुक्ति।

जरता बरता†–संज्ञा पुं० दे० "जलना" के अंतर्गत। "जलता बलता"।

जरतार*–संज्ञा पुं० [फ़ा० जर + तार] सोने वा चाँदी आदि का तार। जरी। उ०—बीच जरतारन की हीरन की हार की जगमगी जोतिन की मोतिन की झालरैं।—देव।

जरतारा†–वि० [हिं० जरतार] [स्त्री० जरतारी] जिसमें सुनहले या रुपहले तार लगे हों। जरी के काम का।

जरतुआ†–वि० [हिं० जलना] जो दूसरों को देख कर बहुत जलता या बुरा मानता हो। ईर्ष्या करनेवाला।

जरतुश्त–संज्ञा पुं० दे० "ज़रदुश्त"।

जरत्–वि० [सं०] [स्त्री० जरती] (१) बुड्ढा। वृद्ध। (२) पुराना। बहुत दिनों का।

जरत्करण–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

जरत्कारु–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिन्होंने वासुकि नाग की मनसा नाम की कन्या से ब्याह किया था। आस्तिक मुनि इनके पुत्र थे।

संज्ञा स्त्री० [सं०] जरत्कारु ऋषि की स्त्री जो वासुकि नाग की कन्या थी। इसका नाम मनसा भी था।

जरद–वि० [फ़ा० ज़र्द] पीला। जर्द। पीत।

जरदक–संज्ञा पुं० [फ़ा०] जरदा या पीलू नाम का पक्षी।

जरदष्टि–वि० [सं०] (१) वृद्ध। बुड्ढा (२) दीर्घजीवी। बहुत दिनों तक जीनेवाला।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुढ़ापा। वृद्धावस्था। (२) दीर्घ जीवन।

ज़रदा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रकार का व्यंजन जिसे प्रायः मुसलमान लोग खाते हैं। इसके बनाने की विधि यह है कि चावल में पहले हलदी डाल कर उसे पानी में उबालते हैं; फिर उसमें से पानी पसा लेते हैं और उसे दूसरे बर्तन में घी डाल कर शक्कर के शर्बत में पकाते हैं। पीछे से इसमें लौंग इलायची आदि सुगंधित द्रव्य और मसाले छोड़ दिए जाते हैं। (२) एक विशेष क्रिया से बनाई हुई खाने की सुगंधित सुरती जो प्रायः काले रंग की होती है। (३) पीले रंग का घोड़ा। (४) पीले रंग की एक प्रकार की छींट।

संज्ञा पुं० [सं० जरदक] एक प्रकार का पक्षी जिसकी कनपटी पीली, पीठ खाकी, पेट सफेद और चोंच तथा पैर पीले होते हैं। इसे पीलू भी कहते हैं।

जरदालू–संज्ञा पुं० [फ़ा०] खूबानी नाम का मेवा।

विशेष—दे० "खूबानी"।

जरदी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) पीलाई। पीलापन।

मुहा०—ज़रदी छाना = किसी मनुष्य के शरीर का रंग बहुत दुर्बलता, ख़ून की कमी या किसी दुर्घटना आदि के कारण पीला हो जाना।

(२) अंडे के भीतर का वह चेप जो पीले रंग का होता है।

जरदुश्त–संज्ञा पुं० [फ़ा० । मि० सं० जरदष्टि = दीर्घजीवी, वृद्ध] फारस देश के प्राचीन पारसी धर्म का प्रतिष्ठाता एक आचार्य जो ईसा से ६ सौ वर्ष पूर्व हुआ था। इसने सूर्य्य और अग्नि की पूजा की प्रथा चलाई थी और पारसियों का प्रसिद्ध धर्म ग्रंथ जंद-अवस्था बनाया था। शाहनामे में लिखा है कि यह तूरानियों के हाथ से मारा गया था।

जरदोज़–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [संज्ञा जरदोज़ी] वह मनुष्य जो कपड़ों पर कलाबत्तू और सलमे सितारे आदि का काम करता हो। जरदोज़ी का काम करनेवाला।

जरदोज़ी–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार की दस्तकारी जो कपड़ों पर सुनहले कलाबत्तू वा सलमे सितारे आदि से की जाती है।

जरद्गव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुड्ढा बैल। (२) बृहत्संहिता के अनुसार एक वीथी जिसमें विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं। यह चंद्रमा की वीथी है।

वि० जीर्ण। प्राचीन।

जरद्विष–संज्ञा पुं० [सं०] जल।

जरन–†*संज्ञा स्त्री० दे० "जलन"।

जरनल–संज्ञा पुं० [अं०] वह सामयिक पत्र या पुस्तक जिसमें क्रम से किसी प्रकार की घटनाएँ आदि लिखी हों। सामयिक पत्र।

संज्ञा पुं० दे० "जनरल"।

जरना–क्रि० अ० दे० "जलना"।

जरनि*–संज्ञा स्त्री० [हिं० जरना = जलना] (१) जलने की पीड़ा। जलन। (२) व्यथा। पीड़ा। उ०—(क) ताते हौं देत न दूखन तोहूँ। राम विरोधी उर कठोर ते प्रगट कियो है विधि मोहूँ। सुंदर सुखद सुसील सुधानिधि जरनि जाय जेहि जोए। विष वारुणी बंधु कहियत विधु नातो मिटत न धोए।—तुलसी। (ख) आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहिं सिर नाइ। देखे बिनु रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाय।—तुलसी। (ग) सुनु नृप जासु विमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं।—तुलसी।

ज़रनिशाँ–संज्ञा पुं० [फ़ा०] कोफ़्त का एक भेद जिसमें गुल बूटे कलई करने के पहले उभाड़े जाते हैं।

जरनैल-संज्ञा पुं० (१) दे० "जनरल"। (२) दे० "जरनल"।

ज़रब–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) आघात। चोट।

यौ०—ज़रब ख़फ़ीफ़ = हलकी चोट। ज़रब शदीद = भारी चोट।

मुहा०—ज़रब देना = चोट लगाना। पीटना। उ०—दगा देत दूतन चुनौती चित्र गुसै देत जम को जरब देत पापी लेत शिव लोक।—पद्माकर।
(२) तबले मृदंग आदि पर का आघात। थाप। थाप दो तरह की होती है, एक खुली और दूसरी बंद। (३) गुणा। (गणित) (४) कपड़े पर छपी या काढ़ी हुई बेल।

ज़रबफ़्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह रेशमी कपड़ा जिसकी बुनावट में कलाबत्तू दे कर कुछ बेल बूटे बनाए जाते हैं।

ज़रबाफ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] सोने के तारों से कपड़े पर बेल बूटे बनानेवाला कारीगर। ज़रदोज़।

ज़रबाफ़ी—वि० [फ़ा०] जरबाफ के काम का। जिस पर जरबाफ का काम बना हो।
संज्ञा स्त्री० ज़रदोज़ी।

जरबीला—*†वि० [फ़ा० जरब + ईला (प्रत्य०)] जो देखने में बहुत भड़कीला और सुंदर हो। उ०—(क) श्रवण झुकैं झुमका अति लोल कपोल जराइ जरे जरबीले।—गुमान। (ख) आयो तहँ भावतो कहँ पायो सीर सोरह में पीठ पीछे चीन्हे चीन्हें पोति जरबीली की।—रघुराथ।

जरबुलंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कोफ़्त का एक भेद जिसके गुल बूटे जिन पर सोने वा चाँदी की कलई होती है, बहुत उभड़े रहते हैं।

जरमन—संज्ञा पुं० [अं०] (१) जरमनी देश का निवासी। (२) जरमनी देश की भाषा।
वि० जरमनी देश-संबंधी। जरमनी का, जैसे, जरमन माल, जरमन सिलवर।

जरमन सिलवर—संज्ञा पुं० [अं०] एक सफेद और चमकीली यौगिक धातु जो जस्ते, ताँबे और निकल के संयोग से बनती है। इसमें आठ भाग ताँबा, दो भाग निकल और तीन से पाँच भाग तक जस्ता पड़ता है। निकल की मात्रा बढ़ा देने से इसका रंग अधिक सफेद और अच्छा हो जाता है। इस धातु के बरतन और गहने आदि बनाए जाते हैं।

जरमनी—संज्ञा पुं० [अं०] मध्य यूरोप का एक प्रसिद्ध देश।

जरमुआ—†वि० [हिं० जरना + मुअना] [स्त्री० जरमुई] जल मरनेवाला। बहुत ईर्ष्या करनेवाला।

ज़रर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) हानि। नुकसान। क्षति। (२) आघात। चोट।
क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।—पहुँचाना।
(३) आफ़त। मुसीबत।

जरल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बारहमासी घास जो मध्य प्रदेश और बुंदेलखंड में बहुत होती है। इसे सेवाती भी कहते हैं।

जरवारा*†—वि० [फ़ा० जर + वाला] रुपए पैसेवाला। धनी। उ०—ते धन जिनकी ऊँची नजर है। कइक बनाय दिए जरवारे जिनकी कतहुँ न जर है।—देव स्वामी।

जरस—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की समुद्र की घास। (लश०)।

जरांकुश—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञकुश] मूँज के प्रकार की एक सुगंधित घास जिसमें नीबू की सी सुगंध आती है। यह कई प्रकार की होती है। दक्षिण भारत में यह बहुत अधिकता से होती है। इससे एक प्रकार का तेल निकलता है जिसे नीबू का तेल कहते हैं और जो साबुन और सुगंधित तेल आदि बनाने में काम आता है।

जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुढ़ापा। वृद्धावस्था।
यौ०—जराग्रस्त।
(२) पुराणानुसार काल की कन्या का नाम। विस्रसा। (३) एक राक्षसी का नाम जो मगध देश की गृहदेवी थी। इसी को षष्ठी भी कहते हैं। (४) खिरनी का पेड़।
संज्ञा पुं० [सं०] एक व्याध का नाम। इसी के बाण से भगवान कृष्णचंद्र देवलोक सिधारे थे।

ज़रा—वि० [अ० ज़र्रा] थोड़ा। कम। जैसे, ज़रा से काम में तुमने इतनी देर लगा दी।
क्रि० वि० थोड़ा। कम। जैसे, जरा दौड़ो तो सही।

जराकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध।

जराग्रस्त—वि० [सं०] बुड्ढा। वृद्ध।

जराती—संज्ञा पुं० [हिं० जलना] वह शोरा जो चार बार उड़ाया गया हो।

जराद—संज्ञा पुं० [सं०] टिड्डी।

जराना‡—क्रि० स० दे० "जलाना"।

जरापुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम।

जराबोध—संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जो स्तुति करके प्रज्वलित की गई हो। (वैदिक)

जराबोधीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

जराभीरु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

जरायणि—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम।

जरायु—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा जरायुज] (१) वह झिल्ली जिसमें बच्चा बँधा हुआ उत्पन्न होता है। आँवल। खेड़ी। उल्व। (२) गर्भाशय। (३) योनि (४) जटायु। (५) अग्निजार या समुद्रफल नामक वृक्ष। (६) कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

जरायुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्राणी जो आँवल या खेड़ी में लिपटा हुआ अपनी माता के गर्भ से उत्पन्न हो। पिंडज।

जराव*†—वि० [हिं० जड़ना] जड़ाऊ। जिसमें नगीने आदि जड़े हों। उ०—(क) बेंदी जराव लिलार दिए गहि डोरी दोऊ पटिया पहिराई।—सुंदरी सर्वस्व। (ख) सुंदर सूधी सुगोल रची बिधि कोमलता अति ही सरसात है। त्यों हरिऔध जराव जरे खरे कंकन कंचन के दरसात हैं।—अयोध्या।

जराशोष–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शोष रोग जो लोगों को वृद्धावस्था में हो जाता है। इसमें रोगी दुर्बल हो जाता है, भोजन से अरुचि हो जाती है और बल वीर्य्य तथा बुद्धि का क्षय हो जाता है।

जरासंध–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार मगध देश का एक राजा। यह बृहद्रथ का पुत्र और कंस का श्वसुर था। कंस के मरने पर इसने मथुरा पर अठारह बार आक्रमण किया था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में कृष्ण, अर्जुन और भीम को साथ लेकर इसकी राजधानी गिरिव्रज में गए थे। वहीं भीम ने द्वंद्व युद्ध में इसे मार डाला था।

जरासुत–संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध।

जराह–संज्ञा पुं० दे० "जर्राह"।

जरिमा–संज्ञा स्त्री० [सं० जरिमन्] बुढ़ापा। जरा। वृद्धावस्था।

जरिया*†–संज्ञा पुं० दे० "जड़िया"।

वि० [हिं० जरना] जो जलाने से उत्पन्न हो। जला कर बनाया या तैयार किया हुआ। जैसे, जरिया शोरा, जरिया नमक।

यौ०—**जरिया शोरा** = एक प्रकार का शोरा जो भाफ उड़ा कर बनाया जाता है। **जरिया नमक** = वह खारा नमक जो आँच से तैयार किया जाता है।

ज़रिया–संज्ञा पुं० [अ०] (१) संबंध। लगाव। द्वार। जैसे, उनके यहाँ अगर आपका कोई ज़रिया हो तो बहुत जल्दी काम हो जायगा। (२) हेतु। कारण। सबब।

ज़रिश्क–संज्ञा पुं० [फ़ा०] दारु हलदी।

जरी–वि० [सं० जरिन्] बुड्ढा। वृद्ध।

ज़री–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) ताश नामक कपड़ा जो बादले से बुना जाता है। (२) सोने के तारों आदि से बना हुआ काम।

ज़रीनाल–संज्ञा स्त्री० [हिं० जरी + नाल = ठोकर] कहारों की बोलचाल में वह स्थान जहाँ ईंटें और रोड़े पड़े हों।

जरीब–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) एक माप जिससे भूमि नापी जाती है। हिंदुस्तानी जरीब ५५ गज की और अंग्रेजी जरीब ६० गज की होती है। एक जरीब में बीस गट्ठे होते हैं।

यौ०—जरीबकश।

मुहा०—**जरीब डालना** = भूमि को जरीब से नापना।

(२) लाठी। छड़ी।

जरीबकश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह मनुष्य जो भूमि नापने के समय जरीब खींचने का काम करता है।

जरीबाना, जरीमाना†–संज्ञा पुं० दे० "जुरमाना"।

जरूथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) माँस। गोश्त। (२) कटुभाषी।

ज़रूर–क्रि० वि० [अ०] [वि० ज़रूरी। संज्ञा ज़रूरत] अवश्य। निःसंदेह। निश्चय करके।

ज़रूरत–संज्ञा स्त्री० [अ०] आवश्यकता। प्रयोजन।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

ज़रूरी–वि० [फ़ा०] (१) जिसकी ज़रूरत हो। जिसके बिना काम न चले। प्रयोजनीय। (२) जो अवश्य होना चाहिए। आवश्यक। सापेक्ष्य।

ज़रोल–संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है और इमारत, जहाज़ और तोपों के पहिए बनाने के काम में आती है। यह बंगाल में, विशेष कर सिलहट के कछार में, चटगाँव और उत्तरीय नीलगिरि में बहुत होता है।

जरौट†*–वि० [हिं० जड़ना] जड़ाऊ। उ०—कोउ कजरौट जरौट लिए कर कोउ मुरछल कोउ छाता।—रघुराज।

ज़र्क़बर्क़–वि० [फ़ा०] जिसमें खूब तड़क भड़क हो। भड़कीला। चमकीला। भड़कदार।

जर्जर–वि० [सं०] (१) जीर्ण। जो बहुत पुराना होने के कारण बेकाम हो गया हो। (२) फूटा। टूटा। खंडित। (३) वृद्ध। बुड्ढा।

संज्ञा पुं० छरीला। बुढ़ना। पत्थरफूल।

जर्जरानना–संज्ञा स्त्री० [सं० जर्ज्जरानना] कार्त्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम।

जर्जरित–वि० [सं० जर्ज्जरित] (१) जीर्ण। पुराना। (२) टूटा फूटा। खंडित।

जर्जरीक–वि० [सं०] (१) बहुत वृद्ध। बुड्ढा। (२) जिसमें बहुत से छेद हो गए हों।

जर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) वृक्ष।

वि० जीर्ण।

जर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी। (२) योनि।

जर्त्तिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन वाहीक देश का एक नाम। (२) उक्त देश का निवासी।

जर्त्तिल–संज्ञा पुं० [सं०] जंगली तिल। बन तिलवा।

जर्त्तु–संज्ञा पुं० दे० "जर्त्त"।

ज़र्द–वि० [फ़ा०] पीला। पीत।

ज़र्दा–संज्ञा पुं० दे० "जरदा"।

ज़र्दालू–संज्ञा पुं० दे० "जरदालू"।

ज़र्दी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पीलापन। पीलाई।

विशेष—दे० "जरदी"।

ज़र्दोज़–संज्ञा पुं० दे० "जरदोज"।

ज़र्दोज़ी–संज्ञा स्त्री० दे० "जरदोजी"।

जर्नैल–संज्ञा पुं० दे० "जरनल"।

ज़र्रा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) अणु। (२) वे छोटे छोटे कण जो सूर्य्य के प्रकाश में उड़ते हुए दिखाई देते हैं। (३) जौ का सौवाँ भाग। (४) बहुत छोटा टुकड़ा या खंड।

वि० दे० "ज़रा"।

जर्रार–वि० [अ०] [संज्ञा जर्रारी] (१) बलिष्ट। प्रबल। (२) लड़ाका। बहादुर। वीर।

जरीरी–संज्ञा स्त्री० [अ० जरीर + ई (प्रत्य०)] बहादुरी । वीरता । सूरमापन ।

जर्राह–संज्ञा पुं० [अ०] [संज्ञा जर्राही] चीर फाड़ का काम करनेवाला । फोड़ों आदि को चीर कर चिकित्सा करनेवाला । शस्त्र चिकित्सक ।

जर्राही–संज्ञा स्त्री० [अ०] चीर फाड़ का काम । चीर फाड़ की सहायता से चिकित्सा करने का काम । शस्त्र-चिकित्सा ।

जर्वर–संज्ञा पुं० [सं०] नागों के एक पुरोहित का नाम जिसने एक बार यज्ञ करके साँपों की रक्षा की थी ।

जर्हिल–संज्ञा पुं० [सं०] जंगली तिल । जर्त्तिल ।

जलंग–संज्ञा पुं० [सं०] महाकाल नाम की एक लता ।

जलंगम–संज्ञा पुं० [सं०] चांडाल ।

जलंधर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पौराणिक राक्षस का नाम जो शिव जी की कोपाग्नि से समुद्र में उत्पन्न हुआ था । पद्म पुराण में लिखा है कि यह जनमते ही इतने जोर से रोने लगा कि सब देवता व्याकुल हो गए । उनकी ओर से जब ब्रह्मा ने जा कर समुद्र से पूछा कि यह किसका लड़का है तब उसने उत्तर दिया कि यह मेरा पुत्र है, आप इसे ले जाइए । जब ब्रह्मा ने उसे अपनी गोद में लिया तब उसने उनकी डाढ़ी इतने जोर से खींची कि उनकी आँखों से आँसू निकल पड़ा । इसी लिये ब्रह्मा ने उसका नाम जलंधर रखा । बड़े होने पर इसने इंद्र की अमरावती पर अधिकार कर लिया । अंत में शिव जी इंद्र की ओर से उससे लड़ने गए । उसकी स्त्री वृंदा ने (जो कालनेमि की कन्या थी) अपने पति के प्राण बचाने के लिये ब्रह्मा की पूजा आरंभ की । जब देवताओं ने देखा कि जलंधर किसी प्रकार नहीं मर सकता तब अंत में जलंधर का रूप धारण करके विष्णु उसकी स्त्री वृंदा के पास गए । वृंदा ने उन्हें देखते ही पूजन छोड़ दिया । पूजन छोड़ते ही जलंधर के प्राण निकल गए । वृंदा क्रुद्ध होकर ब्रह्मा को शाप देना चाहती थी पर ब्रह्मा के बहुत कुछ समझाने बुझाने पर वह सती हो गई । (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम । (३) योग का एक बंध ।

संज्ञा पुं० दे० "जलोदर" ।

जलंबल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नदी । (२) अंजन ।

जल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी । (२) उशीर । खस । (३) पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र । (४) ज्योतिष के अनुसार जन्म-कुंडली में चौथा स्थान । (५) सुगंधबाला । नेत्रबाला ।

जल-अलि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी का भँवर । (२) एक काला कीड़ा जो पानी पर तैरा करता है । इसकी बनावट खटमल की सी होती है, परंतु आकार में यह खटमल से बहुत बड़ा होता है । इसका स्वभाव है कि यह प्रायः एक ही ओर घूम घूम कर तैरता है । जलप्रवाह के विरुद्ध भी यह तेजी से तैर सकता है । पैरौवा । भौंतुआ । उ०—भरत दशा तेहि अवसर कैसी । जल प्रवाह जल-अलि गति जैसी ।—तुलसी ।

जलई–संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना या बीजल] वह काँटा जिसके दोनों ओर दो अँकुड़े होते हैं और जो दो तख्तों के जोड़ पर जड़ा जाता है । यह प्रायः नाव के तख्तों के जड़ने में काम आता है ।

जलकंटक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंघाड़ा । (२) कुंभी ।

जलकंडु–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की खुजली जो पानी में बहुत काल तक लगातार रहने से पैरों में उत्पन्न होती है ।

जलकंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) केला । (२) काँदा । जल-कँदरा ।

जलकंदरा–संज्ञा पुं० [सं० जल + कंदली] काँदा नामक गुल्म जो प्रायः तालों के किनारे होता है ।

जलक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संख । (२) कौड़ी ।

जलकपि–संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार वा सूँस नामक जलजंतु ।

जलकपोत–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया जो पानी के किनारे होती है ।

जलकरंक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारियल । (२) पद्म । कमल (३) शंख । (४) जललता ।

जलकर–संज्ञा पुं० [हिं० जल + कर] (१) वह पदार्थ जो जलाशयों आदि में हो और जिसपर जमींदार की ओर से कर लगाया जाय । जैसे मछली, सिंघाड़ा, कमलगट्टा आदि । (२) इस प्रकार के पदार्थों पर का कर ।

जलकल्क–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेवार । (२) कीचड़ । (३) काई ।

जलकांक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलकांक्षी] हाथी ।

जलकांत–संज्ञा पुं० [सं०] वरुण ।

जलकांतार–संज्ञा पुं० [सं०] वरुण ।

जलकाँदा–संज्ञा पुं० दे० "काँदा" ।

जलकाक–संज्ञा पुं० [सं०] जलकौआ नामक पक्षी ।

पर्य्या०—दात्यूह । कालकंटक ।

जलकामुक–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यमुखी ।

जलकाय–संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह शरीरधारी जिनका जल ही शरीर है ।

जलकिनार–संज्ञा पुं० [हिं० जल + किनारा] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा ।

जलकिराट–संज्ञा पुं० [सं०] ग्राह या नाक नामक जलजंतु ।

जलकुंतल–संज्ञा पुं० [सं०] सेवार ।

जलकुंभी–संज्ञा पुं० [हिं० जल + कुंभीर] कुंभी नाम की वनस्पति जो जलाशयों में पानी के ऊपर होती है ।

विशेष—दे० "कुंभी" ।

जलकुक्कुट–संज्ञा पुं० [सं०] मुरगाबी ।

जलकुक्कुभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की जल की चिड़िया। कुकुही। बनमुर्गी।
पर्य्या०—कोयष्टि। शिखरी।

जलकुब्जक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेवार। (२) काई।

जलकूर्म्म—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार या सूँस नामक जलजंतु।

जलकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पुच्छल तारा जो पश्चिम में उदय होता है। इसकी चोटी वा शिखा पश्चिम की ओर होती है और स्निग्ध तथा मूल में मोटी होती है। यह देखने में स्वच्छ होता है। फलित ज्योतिष के अनुसार इसके उदय से नौ मास तक सुभिक्ष रहता है।

जलकेश—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार।

जलकौआ—संज्ञा पुं० [हिं० जल + कौआ] एक जल-पक्षी जिसकी गर्दन सफेद, चोंच भूरी और शेष सारा शरीर काला होता है। मादा के पैर नर से कुछ विशेष बड़े होते हैं। यह चिड़िया सारे युरोप, एशिया, अफ्रिका और उत्तरीय अमेरिका में पाई जाती है। इसकी लंबाई दो से तीन हाथ तक होती है और यह एक बार में चार से छ तक अंडे देती है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस खाने में स्निग्ध, भारी, वातनाशक, शीतल और बल-वर्द्धक होता है।

जलक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] देव और पितृ आदि का तर्पण।

जलक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रीड़ा जो जलाशयों आदि में की जाय। जलविहार। जैसे, तैरना आदि।

जलखग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जो पानी के किनारे रहता है।

जलखर—संज्ञा पुं० [हिं० जाल] जलखरी।

जलखरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाल + काढ़ना वा खारी] रस्सी वा तागे की जाल की बनी हुई थैली वा झोली जिसमें लोग फल आदि रख कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं।

जलखावा†—संज्ञा पुं० [हिं० जल + खाना] जलपान। कलेवा।

जलगर्द—संज्ञा पुं० [सं० जल + फा० गर्द] पानी में रहनेवाला साँप। डेड़हा।

जलगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध के प्रधान शिष्य आनंद का पूर्व जन्म का नाम।

जलगुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी में का भँवर। (२) कछुआ। (३) वह देश जिसमें जल कम हो।

जलचत्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह देश जिसमें जल कम हो।

जलघड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + घड़ी] एक यंत्र जिससे समय का ज्ञान होता है। इसमें एक कटोरा होता है जिसके पेंदे में छेद होता है। यह कटोरा पानी की नाँद में पड़ा रहता है। पेंदी के छेद से धीरे धीरे कटोरे में पानी जाता है और कटोरा एक घंटे में भरता और डूब जाता है। डूबने के बाद फिर कटोरे को पानी से निकाल कर खाली करके पानी की नाँद में डाल देते हैं और उसमें फिर पहले की तरह पानी भरने लगता है। इस प्रकार एक एक घंटे पर वह कटोरा डूबता और फिर खाली करके पानी के ऊपर छोड़ा जाता है।

जलघुमर†—संज्ञा पुं० [हिं० जल + घूमना] पानी का भँवर। जलावर्त्त। चक्कर।

जलचर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलचरी] पानी में रहनेवाले जंतु। जैसे, मछली, कछुआ, मगर आदि। जलजंतु।

जलचरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मछली। उ०—मधुकर मो मन अधिक कठोर। बिगसिन गए कुंभ का चेलौं बिछुरत नंद-किसोर। हमते भली जलचरी बपुरी अपनो नेम निबाह्यो। जल ते बिछुरि तुरत तनु त्याग्यो तउ कुल जल को चाह्यो। —सूर।

जलचारी—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलचारिणी] जल में रहनेवाला जीव। जलचर।

जलचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] कुंभीर या नाक नामक जलजंतु।

जलचौलाई—संज्ञा स्त्री० दे० "चौलाई"।

जलजंतु—संज्ञा पुं० [सं०] जल में रहनेवाले जीव जंतु। जलचर।

जलजंतुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलजंबुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल-जामुन जो साधारण जामुन से छोटा होता है।
विशेष—दे० "जलजामुन"।

जलज—वि० [सं०] जल में उत्पन्न होनेवाला। जो जल में उत्पन्न हो।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) शंख। (३) मछली। (४) पनिहाँ नाम का वृक्ष। (५) सेवार। (६) अंबुवेत। जलवेत। (७) जलजंतु। (८) सामुद्रिक वा लोनार नमक। (९) मोती (१०) कुचले का पेड़। (११) चौलाई।

जलजन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

ज़लज़ला—संज्ञा पुं० [फा०] भूकंप। भूडोल।

जलजात—वि० [सं०] जो जल में उत्पन्न हो। जलज।
संज्ञा पुं० पद्म। कमल।

जलजामुन—संज्ञा पुं० [हिं० जल + जामुन] एक प्रकार का जामुन जिसके वृक्ष जंगलों में नदियों के किनारे आप से आप उगते हैं। इसके फल बहुत छोटे और पत्ते कनेर के पत्तों के समान होते हैं।

जलजासन—संज्ञा पुं० [सं०] कमल पर बैठनेवाले, ब्रह्मा।

जलडिंब—संज्ञा पुं० [सं०] शंबूक। घोंघा।

जलतरंग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जो धातु की बहुत सी छोटी बड़ी कटोरियों को एक क्रम से रख कर

बनाया और बजाया जाता है। बजाने के समय सब कटोरियों में पानी भर दिया जाता है और उन कटोरियों पर किसी हलकी मुँगरी से आघात करके तरह तरह के ऊँचे नीचे स्वर उत्पन्न किए जाते हैं।

जलतरोई–संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + तरोई] मछली। (हास्य)

जलतापिक, जलतापी–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे हुल कहते हैं।

जलतिक्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सलई का पेड़।

जलत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छाता। (२) वह कुटी जो एक स्थान से हटा कर दूसरे स्थान तक पहुँचाई जा सके।

जलत्रास–संज्ञा पुं० [सं०] वह भय जो कुत्ते, शृगाल आदि जीवों के काटने पर मनुष्य को जल देखने अथवा उसका नाम सुनने से उत्पन्न होता है।

जलद–वि० [सं०] जल देनेवाला। जो जल दे।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) मोथा। (३) कपूर। (४) पुराणानुसार शाकद्वीप के अंतर्गत एक वर्ष का नाम।

जलदकाल–संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु। बरसात।

जलदक्षय–संज्ञा पुं० [सं०] शरद ऋतु।

जलदतिताला–संज्ञा पुं० [हिं० जल्दी + तिताला] वह साधारण तिताला ताल जिसकी गति साधारण से कुछ तेज हो। यह कौवाली से कुछ विलंबित होता है।

जलदाशन–संज्ञा पुं० [सं०] साखू का पेड़।

विशेष—प्राचीन काल में प्रवाद था कि बादल साखू की पत्तियाँ खाते हैं, इसी से साखू का यह नाम पड़ा।

जलदुर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] वह दुर्ग जो चारों ओर नदी झील आदि से सुरक्षित हो।

जलदेव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्वाषाढ़ा नाम का नक्षत्र। (२) वरुण।

जलदेवता–संज्ञा पुं० [सं०] वरुण।

जलदोदो–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पौधा जो काई की तरह पानी पर फैलता है। इसके शरीर में लगने से खुजली पैदा होती है।

जलद्रव्य–संज्ञा पुं० [सं०] मुक्ता, शंख आदि द्रव्य जो जल से उत्पन्न होते हैं।

जलद्रोणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दोन जिससे खेतों में पानी देते हैं।

जलधर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादल। (२) मुस्ता। (३) समुद्र। (४) तिनिश। तिनस का पेड़।

जलधर केदारा–संज्ञा पुं० [सं० जलधर + हिं० केदारा] एक संकर राग जो मेघ और केदारा के योग से बनता है।

जलधरमाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बादलों की श्रेणी। (२) बारह अक्षरों की एक वृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में (म भ स भ) SSS, SII, IIS, SSS होते हैं। उ०—मो भासै मोहन हम को दै योगा। ठानो ऊधो उन कुब्जा सों भोगा। साँचो ग्वालागन कर नेहा देखी। प्रेमाभक्ती जलधरमाला लेखी।

जलधरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्थर या धातु आदि का बना हुआ वह अर्घा जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता है। जलहरी।

जलधार–संज्ञा० पुं० [सं०] शाक द्वीप का एक पर्वत।

*संज्ञा स्त्री० दे० "जलधारा"।

जलधारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पानी का प्रवाह। पानी की धारा। (२) एक प्रकार की तपस्या जिसमें तपस्या करनेवाले पर कोई मनुष्य बराबर धार बाँध कर पानी डालता रहता है।

जलधारी–वि० [सं० जलधारिन्] [स्त्री० जलधारिणी] पानी का धारण करनेवाला। जलधारक।

संज्ञा पुं० बादल। मेघ। उ०—श्रवण न सुनत, चरणगति थाके, नैन भये जलधारी।—सूर।

जलधि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) एक संख्या जो दस शंख की होती है।

जलधिगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) नदी। दरिया।

जलधिज–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

जलधेनु–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार की कल्पित धेनु जिसकी कल्पना जल के घड़े में दान के लिये की जाती है। इस दान का विधान अनेक प्रकार के महापातकों से मुक्त होने के लिये है, और इस दान का लेनेवाला भी सब प्रकार के पातकों से मुक्त हो जाता है।

जलन–संज्ञा स्त्री० [हिं० जलना] (१) जलने की पीड़ा या दुःख। दाह। बहुत अधिक ईर्ष्या या दाह।

मुहा०—जलन निकालना = द्वेष वा ईर्ष्या से उत्पन्न इच्छा पूरी करना।

जल-नकुल–संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलना–क्रि० अ० [सं० ज्वलन] (१) किसी पदार्थ का अग्नि के संयोग से अंगारे या लपट के रूप में हो जाना। दग्ध होना। भस्म होना। बलना। जैसे, लकड़ी जलना, मशाल जलना, घर जलना, दीपक जलना।

यौ०—जलता बलता = होलिकाष्टक या पितृपक्ष का कोई दिन जिसमें कोई शुभ कार्य्य नहीं किया जाता।

मुहा०—जलती आग = भयानक विपत्ति। जलती आग में कूदना = जान बूझ कर भारी विपत्ति में फँसना।

(२) किसी पदार्थ का बहुत गरमी या आँच के कारण भाफ या कोयले आदि के रूप में हो जाना। जैसे, तवे पर रोटी जलना, कड़ाही में घी जलना, धूप में घास या पौधे का जलना। (३) आँच लगने के कारण किसी अंग का पीड़ित और विकृत होना। झुलसना। जैसे, हाथ जलना।

मुहा०—जले पर नमक छिड़कना या लगाना=किसी दुःखी या व्यथित मनुष्य को और अधिक दुःख या व्यथा पहुँचाना। जले फफोले फोड़ना=दुःखी या व्यथित को किसी प्रकार, विशेष कर अपना बदला चुकाने की इच्छा से और अधिक दुःखी या व्यथित करना। जले पाँव की बिल्ली=जो स्त्री हर दम घूमती फिरती रहे और एक स्थान पर न ठहर सके।

(४) बहुत अधिक डाह, ईर्ष्या या द्वेष आदि के कारण कुढ़ना। मन ही मन संतप्त होना।

यौ०—जलना भुनना=बहुत कुढ़ना।

मुहा०—जली कटी या जली भुनी बात=वह लगती हुई बात जो द्वेष, डाह या क्रोध आदि के कारण बहुत व्यथित होकर कही जाय। जल मरना=डाह या ईर्ष्या आदि के कारण बहुत कुढ़ना। द्वेष आदि के कारण बहुत व्यथित हो उठना। उ०—तुम्ह अपनायो तब जनिहौं जब मनु फिरि परिहै। हरखिहै न अति आदरे निदरे न जरि मरिहै।—तुलसी।

जलनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) चार की संख्या।

जलनिर्गम—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का निकास।

जल नीम—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल+निंब] एक प्रकार की लोनिया जो कड़ुई होती है और प्रायः जलाशयों के निकट दलदली भूमि में उत्पन्न होती है।

जलनीलिका, जलनीली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार।

जलपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० जलपक्षिन्] वह पक्षी जो जल के आस पास रहता हो।

जलपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण। (२) समुद्र। (३) पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

जलपथ—संज्ञा पुं० [सं०] नाली, नहर जिसमें से पानी बहता हो।

जलपाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] रुद्राक्ष की जाति का एक पेड़ जो हिमालय के उत्तर-पूर्व भाग में तीन हजार फुट की ऊँचाई पर होता है और उत्तरी कनारा और ट्रावंकोर के जंगलों में भी मिलता है। यह रुद्राक्ष के पेड़ से छोटा होता है। इसका फल अधिक गूदेदार होता है और जंगली जैतून कहलाता है। इसके कच्चे फलों की तरकारी और अचार बनाया जाता है और पक्के फल यों ही खाए जाते हैं।

जलपाटल—संज्ञा पुं० [हिं० जल+पटल] काजल। उ०—कज्जल जलपाटल मुखी नाग दीपसुत सोय। लोपाँजन दग लै चली ताहि न देखै कोय।—नंददास।

जलपान—संज्ञा पुं० [सं०] वह थोड़ा और हलका भोजन जो प्रातःकाल कार्य्य आरंभ करने से पहले अथवा संध्या को कार्य्य समाप्त करने के उपरांत साधारण भोजन से पहले किया जाता है। कलेवा। नाश्ता।

जलपारावत—संज्ञा पुं० [सं०] जलकपोत नाम की चिड़िया जो जलाशयों के किनारे रहती है।

जलपिंड—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

जलपिप्पली—संज्ञा० स्त्री० [सं०] जलपीपल नाम की ओषधि।

जलपिप्पलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल।

जलपिप्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मछली।

जलपीपल—संज्ञा स्त्री० [सं० जलपिप्पली] पीपल के आकार की एक प्रकार की गंधहीन ओषधि। इसका पेड़ खड़े पानी में उत्पन्न होता है। पत्तियाँ बेंत की पत्तियों से मिलती जुलती और कोमल होती हैं और तने में पास पास बहुत सी गाँठे होती हैं। इसकी डालियाँ दो ढाई हाथ लंबी होती हैं। इसके फल पीपल के फल की तरह होते हैं। पर उनमें गंध नहीं होती। यह खाने में तीखी, कड़ुई, कसैली और गुण में मल-शोधक, दीपक, पाचक और गरम होती है। इसे गंगतिरिया भी कहते हैं।

पर्य्या०—महाराष्ट्री। शारदी। तोयबल्लरी। मत्स्यादिनी। मत्स्यगंधा। लांगली। शकुलादनी। चित्र-पत्री। प्राणदा। तृणशीता। बहुशिखा।

जलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लज्जावंती की तरह का एक पौधा जो दलदली भूमि में पैदा होता है। (२) कमल आदि फूल जो जल में उत्पन्न होते हैं।

जलपृष्ठजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार।

जलप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेत वा पितर आदि की उदकक्रिया। तर्पण।

जलप्रपा—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ सर्वसाधारण को पानी पिलाया जाता हो। पौंसरा। सबील। प्याऊ।

जलप्रपात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी नदी आदि का ऊँचे पहाड़ पर से नीचे स्थान पर गिरना। (२) वह स्थान जहाँ किसी ऊँचे पहाड़ पर से नदी नीचे गिरती हो।

जलप्रवाह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी का बहाव। (२) किसी के शव को नदी आदि में बहा देने की क्रिया वा भाव। (३) किसी पदार्थ को बहते हुए जल में छोड़ देना।

जलप्रांत—संज्ञा पुं० [सं०] जलाशय के आस पास का स्थान।

जलप्राय—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रदेश या स्थान जहाँ जल अधिकता से हो। अनूप देश।

जलप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मछली। (२) चातक। पपीहा।

जलप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलप्लावन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी की बाढ़ जिससे आस पास की भूमि जल में डूब जाय। (२) पुराणानुसार एक प्रकार का प्रलय जिसमें सब देश डूब जाते हैं।

विशेष—इस प्रकार के प्लावन का वर्णन अनेक जातियों के धर्म्म-ग्रंथों में पाया जाता है। हमारे यहाँ के (शतपथ ब्राह्मण, महाभारत तथा अनेक पुराणों में वर्णित) वैवस्वत

मनु का प्लावन तथा मुसलमानों और ईसाइयों के हज़रत नूह का तूफान इसी कोटि का है।

जलफल–संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

जलबंध–संज्ञा पुं० [सं०] मछली।

जलबंधक–संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर मिट्टी आदि का बाँध जो किसी जलाशय का जल रोक रखने के लिये बनाया जाता है।

जलबंधु–संज्ञा पुं० [सं०] मछली।

जलबालक–संज्ञा पुं० [सं०] बिंध्याचल पर्वत।

जलबालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजली।

जलबिंदुजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] यावनाल शर्करा नाम की दस्तावर ओषधि जिसे फारसी में शीरखिश्त कहते हैं।

जलबिंब–संज्ञा पुं० [सं०] पानी का बुलबुला।

जलबिडाल–संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलबिल्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह देश जहाँ जल कम हो। (२) केकड़ा।

जलबुद्बुद–संज्ञा पुं० [सं०] पानी का बुल्ला। बुलबुला।

जलबेंत–संज्ञा पुं० [सं० जलवेत्र] जलाशयों के निकट की भूमि में पैदा होनेवाला एक प्रकार का बेंत जिसका पेड़ लता के आकार का होता है। इसके पत्ते बाँस के से होते हैं और इसमें फल फूल आते ही नहीं। कुरसियाँ बेंचे इत्यादि इसी बेंत के छिलके से बुनी जाती हैं।

जलब्रह्मी, जलब्राह्मी–संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलमोचो या हुरहुर का साग।

जलभँगरा–संज्ञा पुं० [हिं० जल+भँगरा] एक प्रकार का भँगरा जो पानी में या जलाशयों के किनारे होता है।

जलभँवरा–संज्ञा पुं० [हिं० जल+भँवरा] काले रंग का एक कीड़ा जो पानी पर बड़ी शीघ्रता से दौड़ता है। इसे भँवरा भी कहते हैं।

जलभालू–संज्ञा पुं० [हिं० जल+भालू] सील की जाति का एक जंतु जो आकार में आठ नौ हाथ लंबा होता है। इसके सारे शरीर में बड़े बड़े बाल होते हैं। यह झुंडों में रहता है और इसकी सत्तर से अस्सी तक मादीनों के झुंड में एक नर रहता है। यह पूर्व तथा उत्तर-पूर्व एशिया और प्रशांत महासागर के उत्तरीय भागों में अधिकता से पाया जाता है।

जलभू–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। (२) एक प्रकार का कपूर। (३) जलचौंलाई।

संज्ञा स्त्री० वह भूमि जहाँ जल अधिक रहे। जलप्राय भूमि। कच्छ। अनूप।

जलभूषण–संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

जलभृत्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) एक प्रकार का कपूर। (३) जल रखने का बरतन।

जलमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बड़ी मकड़ी जिसके विष के संसर्ग से मनुष्य मर जा सकता है। चिरैया बुदकर।

जलमंडूक–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

जलम†–संज्ञा पुं० [सं०] दे० "जन्म"।

जलमद्गु–संज्ञा पुं० [सं०] मछरंग। कौड़िल्ला।

जलमधूक–संज्ञा पुं० [सं०] जल-महुआ।

जलमय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) शिव की एक मूर्त्ति।

जलमल–संज्ञा पुं० [सं०] फेन। झाग।

जलमसि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादल। मेघ। (२) एक प्रकार का कपूर।

जल-महुआ–संज्ञा पुं० [सं० जलमधूक] एक प्रकार का महुआ जो दक्षिण में कोंकण की ओर जलाशयों के निकट होता है। इसकी पत्तियाँ उत्तरी भारत के महुए की पत्तियों से बड़ी होती हैं और फूल छोटे होते हैं। वैद्यक में यह ठंढा, व्रण-नाशक, बलवीर्य्यवर्द्धक तथा रसायन और वमन को दूर करनेवाला माना गया है।

पर्य्या०—दीर्घपत्रक। ह्रस्वपुष्पक। स्वादु। गौलिका। मधूलिका। क्षौद्रप्रिय। पतंग। कीरेष्ट। गौरिकाक्ष। मांगल्य। मधुपुष्प।

जलमातृका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की देवियाँ जो जल में रहनेवाली मानी गई हैं। ये गिनती में सात हैं—मत्सी, कूर्मी, वाराही, दर्दुरी, मकरी, जलूका और जंतुका।

जलमानुष–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलमानुषी] परीरू नामक कल्पित जलजंतु जिसकी नाभि से ऊपर का भाग मनुष्य का सा और नीचे का मछली के ऐसा होता है। उ०—तुरत तुरंगम देव चढ़ाई। जलमानुष अगुआ सँग लाई।—जायसी।

जलमार्जार–संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलमुच्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादल। मेघ। (२) एक प्रकार का कपूर।

जलमुलेठी–संज्ञा स्त्री० [सं० जलयष्ठी] जलाशय के तट पर पैदा होनेवाली मुलेठी।

जलमूर्त्ति–संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

जलमूर्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] करका। ओला।

जलमोद–संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

जलयंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह यंत्र जिससे कूएँ आदि नीचे स्थानों से पानी ऊपर निकाला वा उठाया जाता है। (२) फौआरा। (३) जलघड़ी।

जलयात्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह यात्रा जो अभिषेक आदि के लिये पवित्र जल लाने के लिये की जाती है।

(२) राजपूताने का एक उत्सव। यह देवोत्थापिनी एकादशी के बाद चतुर्दशी को होता है। उस दिन उदयपुर के राणा अपने सर्दारों के साथ सज के बड़े समारोह से किसी ह्रद के पास जाके जल की पूजा करते हैं। (३) वैष्णवों का एक उत्सव जो ज्येष्ठ की पूर्णिमा को होता है। इस दिन विष्णु की मूर्त्ति को खूब ठंढे जल से स्नान कराया जाता है।

जलयान–संज्ञा पुं० [सं०] वह सवारी जो जल में काम आती हो। जैसे, नांव, जहाज आदि।

जलरंक–संज्ञा पुं० [सं०] बक। बगुला।

जलरंकु–संज्ञा पुं० [सं०] बनमुर्गी।

जलरंज–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बगुला।

जलरंड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भँवर। (२) पानी की बूँद। जलकण। (३) साँप।

जलरस–संज्ञा पुं० [सं०] नमक।

जलराशि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कर्क, मकर, कुंभ और मीन राशि। (२) समुद्र।

जलरुह–संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

जलरूप–संज्ञा पुं० [सं०] मकर राशि।

जललता–संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी की लहर। तरंग।

जललोहित–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

जलवर्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ का एक भेद। उ०—सुनत मेघ वर्तक साजि सैन लै आये। जलवर्त, वारिवर्त पवन-वर्त, बीजुवर्त, आगिवर्तक जलद संग ल्याये।—सूर। (२) दे० "जलावर्त्त"।

जलवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंघाड़ा।

जलवल्कल–संज्ञा पुं० [सं०] जलकुंभी।

जलवाना–क्रि० स० [हिं० जलाना] जलाने का प्रेरणार्थक रूप। जलाने का काम दूसरे से कराना।

जलवानीर–संज्ञा पुं० [सं०] जलबेंत। अंबुवेतस।

जलवायस–संज्ञा पुं० [सं०] कौड़िल्ला पक्षी।

जलवास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उशीर। खस। (२) विष्णुकंद।

जलवाह–संज्ञा पुं० [सं०] मेघ।

जलविषुव–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक योग जो सूर्य्य के कन्या राशि से निकल कर तुला राशि में संक्रमित होने के समय होता है। तुलासंक्रांति।

जलवीर्य–संज्ञा पुं० [सं०] भरत के एक पुत्र का नाम।

जलवृश्चिक–संज्ञा पुं० [सं०] झींगा मछली।

जलवेतस–संज्ञा पुं० [सं०] जलबेंत।

जलवैकृत–संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार पानी वा जलाशय में आकस्मिक विकार या अद्भुत बातों का दिखाई पड़ना। जैसे, नगर के पास से नदी का सरक जाना, तालाबों का अचानक एक बारगी सूख जाना, नदी के पानी में तेल, रक्त, माँस आदि बहना, जल का अकारण मैला हो जाना, कुएँ में धुआँ, ज्वाला आदि देख पड़ना, उसके पानी का खौलने लगना या उसमें से रोने गाने गर्जने आदि के शब्दों का सुनाई पड़ना, जल के गंध रस आदि का अचानक बदल जाना, जलाशय के पानी का बिगड़ जाना इत्यादि इत्यादि। यह अशुभ माना गया है और इसकी शांति का कुछ विधान भी उसमें दिया गया है।

जलव्यथ, जलव्यध–संज्ञा पुं० [सं०] कंकमोट या कौआ नाम की मछली।

जलव्याघ्र–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलव्याघ्री] सील की जाति का एक जंतु जो बड़ा क्रूर और हिंसक होता है। डील डौल में यह जलभालू से कुछ ही बड़ा होता है पर इसके शरीर पर के बाल जलभालू के बालों की तरह बहुत बड़े नहीं होते। इसके शरीर पर चीते की तरह दाग या धारियाँ होती हैं। यह प्रायः दक्षिण सागर में सेटलैंड टापू के पास होता है।

जलव्याल–संज्ञा पुं० [सं०] जलगर्द साँप। पानी में का साँप।

जलशय, जलशयन–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

जलशायी–संज्ञा पुं० [सं० जलशायिन्] विष्णु।

जलशूक–संज्ञा पुं० [सं०] सेवार

जलशूकर–संज्ञा पुं० [सं०] कुंभीर या नाक नामक जल-जंतु।

जलसंध–संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। महाभारत में लिखा है कि इसने सात्यकि के साथ भीषण युद्ध करके तोमर से उसका बायाँ हाथ तोड़ दिया था। अंत में यह उसी के हाथ से मारा गया था।

जलसंस्कार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नहाना। स्नान करना। (२) धोना। पखारना। (३) मुर्दे को जल में बहा देना।

जलसमुद्र–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से अंतिम समुद्र।

जलसर्पिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलसा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) आनंद या उत्सव मनाने के लिये बहुत से लोगों का एक स्थान पर एकत्र होना, विशेषतः लोगों का वह जमावड़ा जिसमें खाना, पीना, गाना, बजाना, नाच रंग और आमोद प्रमोद हो। जैसे, कल रात को सभी लोग जलसे में गए थे। (२) सभा समिति आदि का बड़ा अधिवेशन जिसमें सर्व साधारण सम्मिलित हों। जैसे, परसों आर्य्य-समाज का सालाना जलसा होगा।

जलसिंह–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलसिंही] सील की जाति का एक जंतु जो पाँच सात गज लंबा होता है और जिसके सारे शरीर में ललाई लिए पीले रंग के वा काले भूरे बाल होते हैं। उसकी गर्दन पर सिंह की तरह लंबे लंबे बाल होते हैं। यह अत्यंत बली और शांत प्रकृति का होता है। यह

अमेरिका और एशिया के बीच कमसकटका उपद्वीप तथा क्यूरायल आदि द्वीपों के आस पास मिलता है। यह झुंड में रहता है। इसकी गरज बड़ी भयानक होती है और तंग किए जाने पर यह भयंकर रूप से आक्रमण करता है।

जलसिरस—संज्ञा पुं० [सं० जलशिरिष] जल में या जलाशय के अति निकट पैदा होनेवाला एक प्रकार का सिरस वृक्ष। यह वृक्ष साधारण सिरस से बहुत छोटा होता है। इसे कहीं कहीं ढाढोन भी कहते हैं।

जलसीप—संज्ञा स्त्री० [सं० जलशुक्ति] वह सीप जिसमें मोती होता है।

जलसूचि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूँस। शिशुमार। (२) बड़ा कछुआ। (३) जोंक। (४) एक प्रकार का पौधा जो जल में पैदा होता है। (५) कौआ। (६) कंकमोट या कौआ नाम की मछली। (७) सिंघाड़ा।

जलसूत—संज्ञा पुं० [सं०] नहरुआ रोग।

जलसेनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

जलस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक दैवी घटना जिसमें जलाशयों वा समुद्र में आकाश से बादल झुक पड़ते हैं और बादलों से जल तक एक मोटा स्तंभ सा बन जाता है। कभी कभी यह सौ सवा सौ गज तक व्यास का होता है। जब यह बनने लगता है तब आकाश में बादल स्तन के समान नीचे झुकते हुए दिखाई पड़ते हैं और थोड़ी ही देर में बढ़ते हुए जलतल तक पहुँच कर एक मोटे खंभे का रूप धारण कर लेते हैं। यह स्तंभ नीचे की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है। यह बीच में भूरे रंग का पर किनारे की ओर काले रंग का होता है। इसमें एक केंद्र-रेखा भी होती है जिसके आस पास भाप की एक मोटी तह होती है। इससे जलाशय का पानी ऊपर को खिँचने लगता है और बड़ा शोर होता है। यह स्तंभ प्रायः घंटों तक रहता है और बहुधा बढ़ता भी है। कभी कभी कई स्तंभ एक साथ ही दिखाई पड़ते हैं। स्थल में भी कभी कभी ऐसा स्तंभ बनता है जिसके कारण उस स्थान पर जहाँ यह बनता है, गहरा कुंड बन जाता है। जब यह नष्ट होने को होता है तब ऊपर का भाग तो उठ कर बादल में मिल जाता है और नीचे का पानी होकर बरस पड़ता है। लोग इसे प्रायः अशुभ और हानिकारक समझते हैं। सूँड़ी।

जलस्तंभन—संज्ञा पुं [सं०] मंत्रादि से जल की गति का अवरोध करना। पानी बाँधना।

जलस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडदूर्वा।

जलहर—वि० [हिं० जल + हर] जलमय। जल से भरा हुआ। उ०—दादू करता करत निमिष में जल माँहै थल थाप। थल माँहै जलहर करै, ऐसा समरथ आप।—दादू।

संज्ञा पुं० [हिं० जलघर] जलाशय। उ०—(क) विरह जलाई मैं जलूँ जलती जलहर जाऊँ। मों देखे जलहर जलै संतो कहा बुझाऊँ।—कबीर। (ख) नैना भये अनाथ हमारे। मदन गोपाल वहाँ ते सजनी सुनियत दूर सिधारे। वे जलहर हम मीन बापुरी कैसे जियहिं निनारे। हम चातक चकोर श्यामघन बदन सुधा निधि प्यारे।—सूर।

जलहरण—संज्ञा पुं० [सं०] बत्तीस अक्षरों की एक वर्ण वृत्ति या दंडक जिसके अंत में दो लघु पड़ते हैं। इसमें सोलहवें वर्ण पर यति होती है। उ०—भरत सदा ही पूजे पादुका उतै सनेम, इते राम सिय बंधु सहित सिधारे बन। सूपनखा कै कुरूप मारे खल झुंड घने, हरी दससीस सीता राघव विकल मन।

जलहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलधरी] (१) पत्थर या धातु आदि का वह अर्घा जिसमें शिव-लिंग स्थापित किया जाता है। (२) एक बर्तन जिसमें नीचे पानी भरा रहता है। लोहार इसमें लोहा गरम करके बुझाते हैं। (३) मिट्टी का घड़ा जो गरमी के दिनों में शिवलिंग के ऊपर टाँगा जाता है। इसके नीचे एक बारीक छेद होता है जिसमें से दिन रात शिवलिंग पर पानी टपका करता है।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।

जलहस्ती—संज्ञा पुं० [सं०] सील की जाति का एक जल-जंतु जो स्तनपायी होता है। यह प्रायः छः से आठ गज तक लंबा होता है और इसके शरीर का चमड़ा बिना बालों का और काले रंग का होता है। इसके मुँह में ऊपर की ओर १६ और नीचे की ओर १४ दाँत होते हैं। यह प्रायः दक्षिण महासागर में पाया जाता है, पर जब वहाँ अधिक सरदी पड़ने लगती है तब यह उत्तर की ओर बढ़ता है। नर की नाक कुछ लंबी और सूँड़ की तरह आगे को निकली हुई होती है और वह प्रायः १५—२० मादाओं के झुंड में रहता है। गरमी के दिनों में इसकी मादा एक या दो बच्चे देती है। इसका माँस काले रंग का और चरबी मिला होता है और बहुत गरिष्ठ होने के कारण खाने योग्य नहीं होता। इसकी चरबी के लिये जिससे मोमबत्तियाँ आदि बनती हैं, इसका शिकार किया जाता है। प्रयत्न करने पर यह पाला भी जा सकता है।

जलहार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलहारी] पानी भरनेवाला पनिहारा।

जलहालम—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का हालम या चंसुर वृक्ष जो जलाशयों के निकट होता है। इसकी पत्तियाँ सलाद या मसाले की तरह काम में आती हैं और बीजों का उपयोग औषध में होता है।

जलहास—संज्ञा पुं० [सं०] फेन। समुद्र का फेन।

जलहोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का होम जिसमें वैश्वदेवादि के उद्देश्य से जल में आहुति दी जाती है।

जलांचल–संज्ञा पुं० [सं०] पानी की नहर।

जलांजल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेवार। (२) सोता। स्रोत।

जलांजलि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पानी-भरी अँजुली। (२) पितरों वा प्रेतादिक के उद्देश्य से अंजुली में जल भर कर देना।

जलांतक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सात समुद्रों में से एक समुद्र (२) हरिवंश के अनुसार कृष्णचंद्र का एक पुत्र जो सत्यभामा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

जलांबिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कूप। कुआँ।

जलाका–संज्ञा स्त्री० [हिं० जलना] (१) पेट की जलन। (२) तीक्ष्ण धूप की लपट। (३) लू।

जलाकर–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र, नदी, जलाशय आदि।

जलाकांक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

जलाका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलाक्षी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल। जलपिप्पली।

जलाखु–संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलाजल–संज्ञा पुं० [हिं० झलाझल] गोटे आदि की झालर। झलाझल। उ०—गति गयंद कुच कुंभ किंकिणी मनहुँ घंट झहनावै। मोतिन हार जलाजल मानो खुमीदंत झलकावै।—सूर।

जलाटन–संज्ञा पुं० [सं०] कंक नामक पक्षी।

जलाटनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलाटीन–संज्ञा पुं० दे० "जेलाटीन"।

जलातंक–संज्ञा पुं० [सं०] जलत्रास नामक रोग।

जलातन–वि० [हिं० जलना + तन] (१) क्रोधी। बिगड़ैल। बदमिजाज। (२) ईर्षालु। डाही।

जलात्मिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जोंक। (२) कूआँ। कूप।

जलात्यय–संज्ञा पुं० [सं०] शरत् काल।

जलाद–संज्ञा पुं० दे० "जल्लाद"।

जलाधिदैवत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण। (२) पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

जलाधिप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण। (२) फलित ज्योतिष के अनुसार वह ग्रह जो संवत्सर में जल का अधिपति हो।

जलाना–क्रि० स० [हिं० जलना का सकर्मक रूप] (१) किसी पदार्थ को अग्नि के संयोग से अंगारे या लपट के रूप में कर देना। प्रज्वलित करना। जैसे, आग जलाना, दीआ जलाना। (२) किसी पदार्थ को बहुत गरमी पहुँचा कर या आँच की सहायता से भाप या कोयले आदि के रूप में करना। जैसे, अंगारे पर रोटी जलाना, काढ़े का पानी जलाना। (३) आँच के द्वारा विकृत या पीड़ित करना। झुलसना। जैसे, अंगारे से हाथ जलाना। (४) किसी के मन में डाह ईर्ष्या या द्वेष आदि उत्पन्न करना। किसी के मन में संताप उत्पन्न करना।

मुहा०—जला जला कर मारना = बहुत दुःख देना। खूब तंग करना।

जलापा–संज्ञा पुं० [हिं० जलना + आपा (प्रत्य०)] डाह या ईर्ष्या आदि के कारण होनेवाली जलन।

क्रि० प्र०—सहना।

संज्ञा पुं० [अं० जेलप पाउडर] एक विलायती औषध जो रेचक होती है।

जलापात–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत ऊँचे स्थान पर से नदी आदि के जल का गिरना। जलप्रपात।

जलायुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलार्णव–संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाकाल। बरसात।

जलाल–संज्ञा पुं० [अ०] (१) तेज। प्रकाश। (२) महिमा के कारण उत्पन्न होनेवाला प्रभाव। आतंक।

जलालुक–संज्ञा पुं० [सं०] कमल की जड़। भसीड़।

जलालुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलाव–संज्ञा पुं० [हिं० जलना + आव (प्रत्य०)] (१) खमीर वा आटे आदि का उठना।

क्रि० प्र०—आना।

(२) खमीर। वह आटा जो उठाया हो। (३) क़िवाम। पतला शीरा।

जलावतन–वि० [अ०] [संज्ञा स्त्री० जलावतनी] जिसे देश निकाले का दंड मिला हो। निर्वासित।

जलावतनी–संज्ञा स्त्री० [अ०] दंड स्वरूप किसी अपराधी का शासक द्वारा देश से निकाल दिया जाना। देश-निकाला। निर्वासन।

जलावन–संज्ञा पुं० [हिं० जलाना] (१) लकड़ी कंडे आदि जो जलाने के काम में आते हैं। ईंधन। (२) किसी वस्तु का वह अंश जो आग में उसके तपाए, जलाए वा गलाए जाने पर जल जाता है। जलता।

क्रि० प्र०—जाना।—निकलना।

(३) मौसिम में कोल्हू के पहले पहल चलने का उत्सव। इसमें वे सब काश्तकार जो उस कोल्हू में अपनी ईख पेरना चाहते हैं अपने अपने खेत से थोड़ी थोड़ी ईख लाकर वहाँ पेरते हैं और उसका रस ब्राह्मणों, भिखारियों आदि को पिलाते तथा उससे गुड़ बना कर बाँटते हैं। भँडरव।

जलावर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] पानी का भँवर। नाल।

जलाशय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ पानी जमा हो। जैसे, गड़हा, तालाब, नदी, नाला, समुद्र आदि। (२) उशीर। खस। (३) सिँघाड़ा। (४) लामज्जक नाम का तृण।

जलाशया–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुँदला। नागरमोथा।

जलाश्रय–संज्ञा पुं० [सं०] वृत्तगुंड या दीर्घनाल नाम का तृण।

जलाश्रया–संज्ञा स्त्री० [सं०] शूली घास।

जलासुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलाहल–वि० [हिं० जलाजल वा सं० जलस्थल] जलमय। उ०—प्रानप्रिया अँसुआन के नीर पनारे भये बहि के भये नारे। नारे भये ते भई नदियाँ नद ह्वै गये काटि किनारे। वेगि चलो जू चलो ब्रज को नँदनंदन चाहत चेत हमारे। वे नद चाहत सिंधु भये अब सिंधु ते ह्वैहैं जलाहल सारे।

जलाह्वय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) कुमुद। कुईं।

जलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

ज़लील–वि० [सं०] (१) तुच्छ। बेक़दर। (२) जिसे नीचा दिखाया गया हो। अपमानित।

जलुक, जलूका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलूस–संज्ञा पुं० [अ०] बहुत से लोगों का किसी उत्सव के उपलक्ष में सज धज कर विशेषतः किसी सवारी के साथ, किसी विशिष्ट स्थान पर जाने या नगर की परिक्रमा करने के लिये चलना।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।

जलेंद्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण। (२) महासागर।

जलेंधन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाड़वाग्नि। (२) वह पदार्थ जिसकी गरमी से पानी सूखता है। जैसे, सूर्य्य, विद्युत् आदि।

जलेचर–वि० [सं०] जलचर।

जलेच्छया–संज्ञा पुं० [?] हाथीसूँड़ नाम का पौधा जो पानी में उत्पन्न होता है।

जलेज–संज्ञा पुं० [सं०] कमल

जलेतन–वि० [हिं० जलना + तन] (१) जिसे बहुत जल्दी क्रोध आ जाता हो। जिसमें सहनशीलता बिलकुल न हो। (२) जो डाह, ईर्ष्या आदि के कारण बहुत जलता हो।

जलेबा–संज्ञा पुं० [हिं० जलाव] बड़ी जलेबी।

जलेबी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जलाव = खमीर या शीरा] (१) एक प्रकार की मिठाई जो कुंडलाकार होती और खमीर उठाए हुए पतले मैदे से बनाई जाती है। पतले उठे हुए मैदे को मिट्टी के किसी ऐसे बरतन में भर लेते हैं जिसके नीचे छेद होता है। तब उस बरतन को घी की कड़ाही के ऊपर रख कर इस प्रकार घुमाते हैं कि उसमें से मैदे की धार निकल कुंडलाकार होती जाती है। पक चुकने पर उसे घी में से निकाल शीरे में थोड़ी देर तक डुबो देते हैं। मिट्टी के बरतन की जगह कभी कभी कपड़े की पोटली का भी व्यवहार किया जाता है। (२) बरियारे की जाति का चार पाँच हाथ ऊँचा एक प्रकार का पौधा जिसमें पीले रंग के फूल लगते हैं। इसके फूल के अंदर कुंडलाकार लिपटे हुए बहुत से छोटे छोटे बीज होते हैं। (३) गोल घेरा। कुंडली। लपेट।

यौ०—जलेबीदार = जिसमें कई घेरे हों।

जलेभ–संज्ञा पुं० [सं०] जलहस्ती।

जलेरुहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूरजमुखी नाम के फूल का पौधा।

जलेला–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम।

जलेवाह–संज्ञा पुं० [सं०] पानी में गोता लगा कर चीज़ें निकालनेवाला मनुष्य। गोताखोर।

जलेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण। (२) समुद्र। (३) जलाधिप।

जलेशय–संज्ञा० पुं० [सं०] (१) मछली। (२) विष्णु। (जिस समय सृष्टि का लय होता है, उस समय विष्णु जल में सोते हैं, इसीसे उनका यह नाम पड़ा—)

जलेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) वरुण।

जलोका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलोच्छ्वास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जलाशयों में उठनेवाली लहरें जो उनकी सीमा को उल्लंघन करके बाहर गिरती हैं। (२) वह प्रयत्न जो किसी स्थान से जल को बाहर निकालने अथवा उसे किसी स्थान में प्रविष्ट करने के लिये किया जाय।

जलोत्सर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार ताल कुआँ या बावली आदि का विवाह।

जलोदर–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें नाभि के पास पेट के चमड़े के नीचे की तह में पानी एकत्र हो जाता है जिससे पेट फूल आता है और आगे की ओर निकल पड़ता है। वैद्यों का मत है कि घृतादि पान करने और बस्तिकर्म रेचन और वमन के पश्चात् चटपट ठंढे जल से स्नान करने से जल-वाहिनी नसें दूषित हो जाती हैं और पानी उतर आता है। इसमें रोगी के पेट में शब्द होता है और उसका शरीर काँपने लगता है।

जलोद्धति गति–संज्ञा स्त्री० [सं०] बारह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में जगण, सगण, जगण और सगण होता है। (।ऽ। , ।।ऽ, ।ऽ। , ।।ऽ) उ०—जु साजि सुपली हरी हि सिर में। धसे जु वसुदेव रैन जल में। प्रभू चरण को छुआ जमुन में। जलोद्धति गती हरी छिनक में।

जलोद्भवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुंदला। (२) छोटी ब्राह्मी।

जलोद्भूता–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंदला नाम की घास।

जलोन्माद–संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम।

जलोरगी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलौका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जल्द–क्रि० वि० [अ०] [संज्ञा जल्दी] (१) शीघ्र। चटपट। बिना विलंब। (२) तेजी से।

जल्दबाज़–वि० [फ़ा०] [संज्ञा जल्दबाज़ी] जो किसी काम के

करने में बहुत, विशेषतः आवश्यकता से अधिक जल्दी करता हो। बहुत अधिक जल्दी करनेवाला।

जल्दी–संज्ञा स्त्री० [अ०] शीघ्रता। फुरती।

† क्रि० वि० दे० "जल्द"।

जल्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कथन। कहना। (२) बकवाद। व्यर्थ की बात। प्रलाप। (३) न्याय के अनुसार सोलह पदार्थों में से एक पदार्थ। यह एक प्रकार का वाद है जिसमें वादी छल, जाति और निग्रह स्थान को लेकर अपने पक्ष का मंडन और विपक्षी के पक्ष का खंडन करता है। इसमें वादी का उद्देश्य तत्त्वनिर्णय नहीं होता किंतु स्वपक्षस्थापन और परपक्ष खंडन मात्र होता है। वाद के समान इसमें भी प्रतिज्ञा हेतु आदि पाँच अवयव होते हैं।

जल्पक–वि० [सं०] बकवादी। वाचाल। बातूनी।

जल्पन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बकवाद। प्रलाप। गपशप। व्यर्थ की बातें। (२) डींग। बहुत बढ़ कर कही हुई बात।

जल्पना–क्रि० अ० [सं० जल्पन] व्यर्थ बकवाद करना। बहुत बढ़ बढ़ कर बात करना। डींग मारना। सीटना। उ०—(क) कहु जल्पसि जड़ कपि बल जाके। बल प्रताप बुधि तेज न ताके।—तुलसी। (ख) जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु। लोकपाल बल विपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु।—तुलसी।

जल्पाक–वि० [सं०] जल्पक। बकवादी। वाचाल। व्यर्थ की बहुत सी बातें करनेवाला।

जल्पित–वि० [सं०] (१) मिथ्या। जो (बात) वास्तव में ठीक न हो (२) कथित। कहा हुआ।

जल्ला†–संज्ञा पुं० [हिं० झील] (१) झील। (लश०), (२) ताल। (३) हौज़। हद।

जल्लाद–संज्ञा पुं० [अ०] वह जिसका काम ऐसे पुरुषों के प्राण लेना हो जिन्हें प्राणदंड की आज्ञा हो चुकी हो। घातक। बधुआ। उ०—हो मन रामनाम को गाहक। चौरासी लख जिया जोनि लख भटकत फिरत अनाहक। करि हियाव सौ सौ जलाद यह हरि के पुर लै जाहि। घाट बाट कहुँ अटक होय नहिं सब कोउ देहि निबाहि।

जल्ह–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

जव–संज्ञा पुं० [सं०] वेग।

† संज्ञा पुं० [सं० यव] जौ।

जवन–वि० [सं०] [स्त्री० जवनी] वेगवान। वेगयुक्त। तेज। संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेग। (२) स्कंद का एक सैनिक। (३) घोड़ा।

संज्ञा पुं० दे० "यवन"।

जवनाल–संज्ञा पुं० दे० "यवनाल"।

जवनिका–संज्ञा स्त्री० दे० "यवनिका"।

जवनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जवाइन। अजवायन। (२) तेज़ी। वेग।

जवस–संज्ञा पुं० [सं०] घास।

जवस्–संज्ञा पुं० [सं०] वेग।

जवाँमर्द–वि० [फ़ा०] [संज्ञा जवाँमर्दी] (१) शूर वीर। बहादुर। (२) वालेंटियर। स्वेच्छापूर्वक सेना में भरती होनेवाला सिपाही।

जवाँमर्दी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वीरता। बहादुरी।

जवा–संज्ञा स्त्री० दे० "जपा"।

†संज्ञा पुं० [सं० यव] (१) एक प्रकार की सिलाई जिसमें तीन बखिया लगाते हैं और इस प्रकार सिलाई करके दर्ज को चीर कर दोनों ओर तुरप देते हैं। (२) लहसुन का एक दाना।

जवाइन†–संज्ञा स्त्री० [सं० यवानी] अजवायन।

जवाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० जाना] (१) जाने की क्रिया। गमन। (२) जाने का भाव। (३) वह धन जो जाने के उपलक्ष में दिया जाय।

जवाखार–संज्ञा पुं० [सं० यवक्षार] एक प्रकार का नमक जो जौ के क्षार से बनता है। वैद्यक में यह पाचक माना गया है।

जवादानी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० जौ + दाना] चंपाकली नामक गहना जो गले में पहना जाता है।

जवादि, जवादि कस्तूरी–संज्ञा पुं०, स्त्री० [अ० ज़ब्बाद, ज़बाद] एक सुगंधित द्रव्य जो गंधमार्जार से निकाला जाता है। यह पीले रंग की एक चिकनी लसदार चीज़ है जो कस्तूरी की तरह महकती है। इसे गौरासार भी कहते हैं। दे० "गंधबिलाव"। उ०—पहिले तजि आरस आरसी देखि घरीक घसे घनसारहि लै। पुनि पोंछि गुलाब तिलौंछि फुलेल-अँगोछे में ओछे अँगोछन को। कहि केशव मेद जवादि सों माँजि इते पर आँजे में अंजन है। बहुरे हरि देखों तौ देखों कहा सखि लाज तें लोचन लागे दहै।—केशव।

जवाधिक–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत तेज दौड़नेवाला घोड़ा।

जवान–वि० [फ़ा०] (१) युवा। तरुण।

यौ०—जवाँमर्द।

(२) वीर।

† संज्ञा पुं० (१) मनुष्य। पुरुष। (२) सिपाही। (३) वीर पुरुष।

जवानी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जवाइन। अजवाइन।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] यौवन। तरुणाई। युवावस्था।

मुहा०—जवानी उठना वा उभड़ना = यौवन का प्रारंभ होना। तरुणाई का आरंभ होना। जवानी उतरना = उमर ढलना। बुढ़ापा आना। जवानी चढ़ना = (१) यौवन का आगमन होना। तरुणाई का प्रारंभ होना। (२) मद पर आना। मदमत्त

होना। जवानी ढलना = उमर खसकना। जवानी उतरना। बुढ़ापा आना। उठती जवानी = यौवनारंभ। चढ़ती जवानी। उतरती जवानी = यौवनावसान। उमर खसकने की अवस्था। चढ़ती जवानी = यौवनारंभ। जवानी का प्रारंभ होना। उठती जवानी।

जवाब–संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी प्रश्न या बात को सुन अथवा पढ़ कर उसके समाधान के लिये कही या लिखी हुई बात। उत्तर।

यौ०—जवाब-दावा। जवाब-देही।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—माँगना।—मिलना।—लिखना।

मुहा०—जवाब तलब करना = (किसी घटना का) कारण पूछना। कैफ़ियत माँगना। जवाब मिलना या कोरा जवाब मिलना = निषेधात्मक उत्तर मिलना।

(२) वह जो कुछ किसी के परिणाम स्वरूप या बदले में किया जाय। कार्य रूप में दिया हुआ उत्तर। बदला। जैसे, जब उधर से गोलियों की बौछार आरंभ हुई तो इधर से भी उसका जवाब दिया गया। (३) मुक़ाबले की चीज़। जोड़। जैसे, इस तस्वीर के जवाब में इसके सामने भी एक तस्वीर होनी चाहिए। (४) नौकरी छूटने की आज्ञा। मौक़ूफ़ी। जैसे, कल उन्हें यहाँ से जवाब हो गया।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

जवाब-तलब–वि० [फ़ा०] जिसके संबंध में समाधान-कारक उत्तर माँगा गया हो।

जवाबदावा–संज्ञा पुं० [अ०] वह उत्तर जो वादी के निवेदन-पत्र के उत्तर में प्रतिवादी लिख कर अदालत में देता है।

जवाबदेह–वि० [फ़ा०] उत्तरदाता। जिस पर किसी बात का उत्तरदायित्व हो।

जवाबदेही–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) उत्तर देने की क्रिया। (२) उत्तरदायित्व। उत्तर देने का भार। जिम्मेदारी। जैसे, मैं अपने ऊपर इतनी बड़ी जवाबदेही नहीं लेता।

जवाब सवाल–संज्ञा पुं० [अ० जवाब + सवाल] (१) प्रश्नोत्तर। (२) वाद विवाद।

जवाबी–वि० [फ़ा०] जवाब संबंधी। जवाब का। जिसका जवाब देना हो। जैसे, जवाबी तार, जवाबी कार्ड।

जवार–संज्ञा पुं० [अ०] (१) पड़ोस। (२) आस पास का प्रदेश।

संज्ञा स्त्री० दे० 'जुआर'।

* संज्ञा पुं० [अ० ज़वाल] (१) अवनति। बुरे दिन। (२) जंजाल। झंझट। भार। उ०—स्वारथ अगम परमारथ की कहा चली पेट की कठिन जग जीव को जवारु है।

जवारा–संज्ञा पुं० [हिं० जौ] जौ के हरे हरे अंकुर जिसे दशहरे के दिन स्त्रियाँ अपने भाई के कानों पर खोंसती हैं या श्रावणी में ब्राह्मण अपने यजमानों के हाथों में देते हैं। जई।

जवारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जव] एक प्रकार का हार जिसमें जौ, छुहारे, मोती आदि मिला कर गुँथे हुए होते हैं और जिसे कुछ जातियों में विवाह के उपरांत ससुर अपनी बहू को पहनाता है।

संज्ञा स्त्री० (१) सितार, तंबूरे, सारंगी आदि तारवाले बाजों में लकड़ी या हड्डी आदि का वह छोटा टुकड़ा जो इन बाजों में नीचे की ओर बिना जुड़ा हुआ रहता है और जिस पर होकर सब तार खूँटियों की ओर जाते हैं। यह टुकड़ा सब तारों को बाजों के तल से कुछ ऊपर उठाए रहता है। घोड़ी। (२) तारवाले बाजों में षडज का तार।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—बाँधना।—लगाना।

जवाल–संज्ञा पुं० [अ० ज़वाल] (१) अवनति। उतार। घटाव।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।

(२) जंजाल। आफत। झंझट। बखेड़ा।

मुहा०—जवाल में पड़ना वा फँसना = आफत में फँसना। झंझट या बखेड़े में फँसना। जवाल में डालना = आफत में फँसाना।

जवाशीर–संज्ञा पुं० [फ़ा० जावशीर] एक प्रकार का गंधाबिरोजा जो कुछ पीले रंग का और बहुत पतला होता है। इसमें से ताड़पीन की गंध आती है। इसका व्यवहार प्रायः औषधों में होता है। दे० 'गंधाबिरोजा'।

जवास, जवासा–संज्ञा पुं० [सं० यवासक, प्रा० यवासअ] एक कँटीला क्षुप जिसकी पत्तियाँ करौंदे की पत्तियों के समान होती हैं। यह नदियों के किनारे बलुई भूमि में आप से आप उगता है। बरसात के दिनों में इसकी पत्तियाँ गिर जाती हैं और कुँआर तक यह बिना पत्तियों के नंगा रहता है। वर्षा के बीत जाने पर यह फलता फूलता है। वैद्यक में इसको कड़ुआ, कसैला, हलका और कफ, रक्त, पित्त, खाँसी, तृष्णा, तथा ज्वर का नाशक और रक्तशोधक माना गया है। कहीं कहीं गरमी के दिनों में खस की तरह इसकी टट्टियाँ भी लगाते हैं।

पर्या०—यास। यवासक। अनंता। बालपत्र अधिककंटक। दूरमूल। समुद्रांत। दीर्घमूल। मरुद्भव। कंटकी। वनदर्भ। सूक्ष्मपत्रा।

जवाह†–संज्ञा पुं० [?] (१) आँख का एक रोग जिसमें पलक के भीतर की ओर किनारे पर बाल जम जाते हैं। प्रवाल। परवल। (२) बैलों की आँख का एक रोग जिसमें उसके नीचे माँस बढ़ आता है।

जवाहड़–संज्ञा स्त्री० [हिं० जवा = दाना + हड़] बहुत छोटी हड़।

जवाहर–संज्ञा पुं० [अ०] रत्न। मणि।

जवाहरखाना–संज्ञा पुं० [अ० जवाहर + फ़ा० ख़ाना] वह स्थान जिसमें बहुत से रत्न और आभूषण आदि रहते हों। रत्नकोष। तोशाखाना।

जवाहिर–संज्ञा पुं० दे० "जवाहर"।

जवाहिरात–संज्ञा पुं० दे० "जवाहरात"।

जवाही–वि० [हिं० जवाह] (१) जिसकी आँख में जवाह रोग हुआ हो। (२) जवाह रोग युक्त। जैसे, जवाही आँख।

जवी–वि० [सं० जविन्] वेगयुक्त। वेगवान्।
संज्ञा पुं० (१) घोड़ा। (२) ऊँट।

जवीय–वि० [सं० जवीयस्] अत्यंत वेगवान्। बहुत तेज।

जवैया†–वि० [हिं० जाना + ऐया] (प्रत्य०) जानेवाला। गमनशील।

जशन–संज्ञा पुं० [फ़ा० मि० सं० यजन] (१) धार्मिक उत्सव। (२) किसी प्रकार का उत्सव। जलसा। (३) आनंद। हर्ष।
क्रि० प्र०—मनाना।
(४) वह नाच और गाना जिसमें कई वेश्याएँ एक साथ सम्मिलित हों। यह बहुधा महफ़िल या जलसे की समाप्ति पर होता है।

जस*‡–क्रि० वि० [सं० यथा, प्रा० जहा] जैसा। उ०—जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दुगुन कपि रूप दिखावा।—तुलसी।
†–संज्ञा पुं० दे० "यश"।

जसद–संज्ञा पुं० [सं०] जस्ता।

जसुरि–संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

जस्त–संज्ञा पुं० दे० "जस्ता"।

जस्तई–वि० [हिं० जस्ता] जस्ते के रंग का। खाकी।

जस्ता–संज्ञा पुं० [सं० जसद] कालापन लिए सफेद या खाकी रंग की एक धातु जिसमें गंधक का अंश बहुत होता है। इसका व्यवहार अनेक प्रकार के कार्य्यों में विशेषतः लोहे की चादरों पर, उन्हें मोरचे से बचाने के लिये कलई करने, बैटरी में बिजली उत्पन्न करने तथा बरतन आदि बनाने में होता है। भारत में इसकी सुराहियाँ बनती हैं जिनमें रखने से पानी बहुत जल्दी और खूब ठंढा हो जाता है। इसे ताँबे में मिलाने से पीतल बनता है; जर्मन सिलवर बनाने में भी इसका उपयोग होता है। विशेष रासायनिक प्रक्रिया से इसका क्षार भी बनाया जाता है, जिसे सफ़ेदा कहते हैं और जिसका व्यवहार औषधों तथा रंगों आदि में होता है। पहले यह धातु भारत और चीन में ही मिलती थी पर आज कल बेलजियम तथा प्रूशिया में भी इसकी बहुत सी खानें हैं। युरोपवालों को इसका पता बहुत हाल में लगा है।

जहँ–क्रि० वि० दे० "जहाँ"। उ०—जँह जँह चरण पड़ें संतन के, तँह तँह बंटाधार। (कहावत)

जहँड़ना†–क्रि० अ० [सं० जहन, हिं० जहँड़ाना] (१) घाटा उठाना। हानि उठाना। उ०—(क) हिंदू गूँगा गुरु कहै, मुसलिम गोय मगोय। कहें कबीर जहँड़े दोउ, मोह नींद में सोय।—कबीर। (२) धोखे में आना। भ्रम में पड़ना। (ख) अब हम जाना हो हरि बाजी को खेल। डंक बजाय देखाय तमाशा बहुरि सो लेत सकेल। हरि बाजी सुर नर मुनि जहँड़े माया चेटक लाया। घर में डारि सबन भरमाया हृदया ज्ञान न आया।—कबीर।

जहँड़ाना†–क्रि० अ० [सं० जहन] (१) हानि उठाना। (२) धोखे में पड़ना। उ०—सबै लोग जहँड़ा दयी अंधा सभै भुलान। कहा कोई नहिं मानही सब एकै माँह समान।—कबीर।

जहकना†–क्रि० स० [हिं० झकना] चिढ़ना। कुढ़ना।

जहतिया–संज्ञा पुं० [हिं० जगात = कर] जगात उगाहनेवाला। भूमिकर या लगान वसूल करनेवाला। उ०—साँचो सो लिख धार कहावै। काया ग्राम मसाहत करि कै जमा बाँधि ठहरावै। मन्मथ करै कैद अपनी में जान जहतिया लावै। माँडि माँडि खरिहान क्रोध को फोता भजन भरावै।—सूर।

जहत्स्वार्था–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें पद वा वाक्य अपने वाच्यार्थ को छोड़ कर अभिप्रेत अर्थ को प्रकट करता है। जैसे 'मम घर गंगा माँहि' यहाँ गंगा माँहि से गंगा के बीच अर्थ नहीं है किंतु गंगा के किनारे अर्थ है। इसे जहल्लक्षणा भी कहते हैं।

जहदजहल्लक्षणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें एक वा एक से अधिक देश का त्याग और केवल एक देश का ग्रहण किया जाय। वह लक्षणा जिसमें बोलनेवाले को शब्द के वाच्यार्थ से निकलनेवाले कई एक भावों में कुछ का परित्याग कर केवल किसी एक का ग्रहण अभिप्रेत होता है। जैसे 'यह वही देवदत्त है' इस वाक्य से बोलनेवाले का अभिप्राय केवल देवदत्त से है न कि पहले के देवदत्त से वा अब के देवदत्त से। इसी प्रकार छांदोग्य उपनिषद् में आए हुए 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' अर्थात् हे श्वेतकेतु! वह तू ही है, आया है। इस वाक्य से कहनेवाले का अभिप्राय ब्रह्म के सर्वज्ञत्व और श्वेतकेतु के अल्पज्ञत्व वा ब्रह्म की सर्वव्यापिता और श्वेतकेतु की एकदेशिता को एक ठहराने का नहीं है किंतु दोनों की चेतनता ही की ओर लक्ष्य है।

जहदना–क्रि० अ० [हिं० जहदा] (१) कीचड़ होना। दल दल हो जाना।
संयो० क्रि०—जाना।—उठाना।
(२) शिथिल पड़ना। थक जाना। हाँफ जाना।

जहदा–संज्ञा पुं० [?] दलदल। बहुत अधिक कीचड़। उ०—जग जहदा में राचिया झूठे कुल की लाज। तन छीजे कुल विनसिहै रटै न नाम जहाज।—कबीर।

जहदम*†–संज्ञा पुं० दे० 'जहन्नुम'।

जहना*†–क्रि० स० [सं० जहन] (१) त्यागना। छोड़ना। परि-

त्याग करना। (२) नाश करना। नष्ट करना। उ०—जहि पर दोष अस्त भो कैसे। फिरि है अब उलूक सुख मैसे।

जहन्नुम–संज्ञा पुं० [अ०] (१) नरक। दोज़ख़।

मुहा०—जहन्नुम में जाय = चूल्हे में जाय। हमें कोई संबंध नहीं। (इस मुहावरे का प्रयोग दुःख-जनित उदासीनता प्रकट करने के लिये होता है। जैसे, जब वह मानता ही नहीं तब जहन्नुम में जाय।)

(२) वह स्थान जहाँ बहुत अधिक दुःख और कष्ट हो।

जहन्नुमरसीद–वि० [फ़ा०] नरक में गया हुआ। दोज़ख़ी।

जहन्नुमी–वि० [फ़ा०] नारकिक। जहन्नुम में जानेवाला।

जहमत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) आपत्ति। मुसीबत। आफत।

मुहा०—जहमत उठाना = दुःख भोगना। मुसीबत सहना।

(२) झंझट। बखेड़ा।

मुहा०—जहमत में पड़ना = झंझट में फँसना। बखेड़े में पड़ना।

जहर–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़ह्र] (१) वह पदार्थ जो शरीर के अंदर पहुँच कर प्राण ले ले अथवा किसी अंग में पहुँच कर उसे रोगी कर दे। विष। गरल।

यौ०—जहरबाद। जहरमोहरा।

मुहा०—जहर उगलना = (१) मर्म्मभेदी बात कहना जिससे कोई बहुत दुखी हो। (२) द्वेषपूर्ण बात कहना। जली कटी कहना। जहर करना या कर देना = (बहुत अधिक नमक मिर्च आदि डाल कर) किसी खाद्य पदार्थ को इतना कड़ुआ कर देना कि उसका खाना कठिन हो जाय। जहर का घूँट = बहुत कड़ुआ। बे-सवाद या कड़ुआ होने के कारण न खाने योग्य। जहर का घूँट पीना = किसी अनुचित बात को देख कर क्रोध को मन ही मन दबा रखना। क्रोध को प्रकट न होने देना। जहर का बुझाया हुआ = जो बहुत अधिक उपद्रव या अनिष्ट कर सकता हो। जहर की गाँठ = देखो "विष की गाँठ"। किसी पर जहर खाना = किसी बात या आदमी के कारण ग्लानि, दुःख, ईर्ष्या, लज्जा आदि से आत्महत्या पर उतारू होना। जैसे, तुम्हारे इस काम पर तो उन्हें ज़हर खा लेना चाहिए। जहर देना = जहर पिलाना या खिलाना। जहर मार करना = अनिच्छा या अरुचि होने पर भी जबरदस्ती खाना। जैसे, कचहरी जाने की जल्दी थी, किसी तरह दो रोटियाँ जहर मार करके चलते बने। जहर मारना = विष के प्रभाव या शक्ति को दबाना या शांत करना। जहर में बुझाना = धारदार (तीर, छुरी, तलवार, कटार, आदि) हथियारों को विषाक्त करना। (ऐसे हथियारों से जब वार किया जाता है तब उनसे घायल होनेवाले मनुष्य के शरीर में उनका विष प्रविष्ट हो जाता है जिसके प्रभाव से आदमी बहुत जल्दी मर जाता है।)

(२) अप्रिय बात या काम। वह बात या काम जो बहुत नागवार मालूम हो। जैसे, हमारा यहाँ आना उन्हें जहर मालूम हुआ।

मुहा०—जहर करना या कर देना = बहुत अधिक अप्रिय या असह्य कर देना। बहुत नागवार बना देना। जैसे, उन्होंने हमारा खाना पीना जहर कर दिया। जहर मिलाना = किसी बात को अप्रिय कर देना। जहर में बुझाना = किसी बात या काम को अप्रिय बनाना। जैसे, आप जो बात कहते हैं, जहर में बुझा कर कहते हैं। जहर लगना = बहुत अप्रिय जान पड़ना। बहुत नागवार मालूम होना।

वि० (१) घातक। मार डालनेवाला। प्राण लेनेवाला। (२) बहुत अधिक हानि पहुँचानेवाला। जैसे, ज्वर के रोगी के लिये घी जहर है।

†* संज्ञा पुं० दे० "जौहर"। उ०—ग्यारह पुत्र कटाइ बारहें अजय बचायो। साजि जहर व्रत नारि धर्म्म कुलधर्म्म रखायो।—राधाकृष्णदास।

जहरगत–संज्ञा स्त्री० [हिं० जहर + गति] नाच की एक गत जिसमें घूँघट काढ़ के नाचा जाता है।

जहरदार–वि० [फ़ा०] जहरीला। विषाक्त।

जहरबाद–संज्ञा पुं० [फ़ा०] रक्त के विकार के कारण उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का बहुत भयंकर और विषाक्त फोड़ा, जिस के आरंभ में शरीर के किसी अंग में सूजन और जलन होती है और तदुपरांत उस अंग में फोड़ा होकर बढ़ने लगता है। इसका विष शरीर के भीतर ही भीतर शीघ्रता से फैलने लगता है और फोड़ा बड़ी कठिनता से अच्छा होता है। यह रोग मनुष्यों के अतिरिक्त घोड़ों, बैलों और हाथियों आदि को भी होता है। कहते हैं कि इस फोड़े के अच्छे हो जाने पर भी रोगी अधिक दिनों तक नहीं जीता।

जहरमोहरा–संज्ञा पुं० [फ़ा० जहरमुहरा] (१) काले रंग का एक प्रकार का पत्थर जिसमें साँप काटने के कारण शरीर में चढ़े विष को खींच लेने की शक्ति होती है। यह पत्थर शरीर में उस स्थान पर रक्खा जाता है जहाँ साँप ने काटा हो; कहते हैं कि यह पत्थर उस स्थान पर आप से आप चिपक जाता है और जब तक सारा विष नहीं खींच लेता तब तक वहाँ से नहीं छूटता। यह भी प्रवाद है कि यह पत्थर बड़े मेंढक के सिर में से निकलता है। (२) हरे रंग का एक प्रकार का पत्थर जो कई तरह के विषों को खींच लेता है। यह बहुत ठंढा होता है इसलिये गरमी के दिनों में लोग इसे घिस कर शरबत में मिला कर पीते हैं। खुतन देश का यह पत्थर, जिसे "जहरमोहरा खताई" कहते हैं, बहुत अच्छा होता है।

जहरीला–वि० [हिं० जहर + ईला (प्रत्य०)] जिसमें जहर हो। जहरदार। विषाक्त। जैसे, जहरीला फल, जहरीला जानवर।

जहलक्षणा–संज्ञा स्त्री० दे० "जहत्स्वार्था"।

जहाँ–क्रि० वि० [सं० यत्र, पा० यत्थ, प्रा० जह] (१) स्थानसूचक

एक शब्द। जिस स्थान पर। जिस जगह। उ०—धन्य सो देस जहाँ सुरसरी धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी।—तुलसी।

मुहा०—जहाँ का तहाँ = अपने पहले के स्थान पर। जिस जगह पर हो उसी जगह पर। जहाँ का तहाँ रह जाना = (१) दब जाना। आगे न बढ़ना। (२) कुछ कार्रवाई न होना। जहाँ तहाँ = (१) इतस्ततः। इधर उधर। उ०—जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच। मास दिवस बीते मोहिं मारिहिं निसिचर पोच।—तुलसी।

(२) सब जगह। सब स्थानों पर। उ०—रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग। जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तनु राम वियोग।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] जहान। संसार। लोक।

विशेष—इस रूप में इस शब्द का व्यवहार केवल कविता या यौगिक शब्दों में होता है। जैसे, (क) जहाँ में जहाँ तक जगह पाइए इमारत बनाते चले जाइए। (ख) जहाँगीरी। जहाँपनाह।

जहाँगीरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) हाथ में पहनने का एक प्रकार का जड़ाऊ गहना। यह कई प्रकार का होता है। साधरणतः हाथ में पहनने की सोने की वे पटरियाँ जहाँगीरी कहलाती हैं जिन पर नग जड़े होते हैं। कहीं कहीं पटरियों में कोंढ़े भी जड़े होते हैं जिनमें बहुत छोटे छोटे घुँघरुओं के फूल के आकार के गुच्छे पिरो दिए जाते हैं। इन पटरियों को भी जहाँगीरी कहते हैं। (२) हाथ में पहनने की लाख की एक प्रकार की चूड़ी।

जहाँदीद, जहाँदीदा—वि० [फ़ा०] अनुभवी। जिसने दुनिया को देख कर बहुत कुछ तजरुबा किया हो।

जहाँपनाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] संसार का रक्षक।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल बहुत बड़े राजा के लिये ही किया जाता है।

जहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुँडी।

जहाज—संज्ञा पुं० [अ०] बहुत अधिक बड़ी नाव जो बहुत गहरे जल विशेषतः समुद्र में चलती है।

विशेषः—आज कल के जहाजों का अधिकांश भाग लोहे का ही होता है और उन के चलाने के लिये भाप के बड़े बड़े इंजिनों से काम लिया जाता है। यात्रियों को ले जाने, माल ढोने, देशों की रक्षा करने, लड़ने भिड़ने आदि कामों के लिये अलग अलग तरह के जहाज हुआ करते हैं। यात्रा आदि के कामों के लिये साधारण जहाजों की लंबाई छः सौ फुट तक होती है।

मुहा०—जहाज का कौवा या काग = दे० "जहाजी कौआ"। उ०—सीतापति रघुनाथ जू तुम लग मेरी दौर। जैसे काग जहाज को सूझत और न ठौर।—तुलसी।

जहाजी—वि० [अ०] जहाज से संबंध रखनेवाला। जैसे, जहाजी बेड़ा।

यौ०—जहाजी इत्र = एक प्रकार का निकृष्ट इत्र जो कन्नौज में बनता है। जहाजी कौआ = (१) वह कौआ जो किसी जहाज के छूटने के समय उस पर बैठ जाता है और जहाज के बहुत दूर समुद्र में निकल जाने पर जब वह उड़ता है तब चारों ओर कहीं स्थल न देख कर फिर उसी जहाज पर आ बैठता है। साधारणतः इससे ऐसे मनुष्य का अभिप्राय लिया जाता है जिसे अपने ठहरने बैठने या किसी काम करने के लिये एक के सिवा और कोई दूसरा स्थान न मिलता हो। (२) बहुत बड़ा धूर्त। भारी चालाक। जहाजी डाकू = वे डाकू जो समुद्रों में अपना जहाज लेकर घूमते रहते हैं और साधारण जहाजों के यात्रियों को लूट लेते हैं। समुद्री डाकू। जहाजी सुपारी = एक प्रकार की सुपारी जो साधारण सुपारी से दूनी बड़ी होती है।

जहान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] संसार। लोक। जगत। जैसे, जान है तो जहान है। (कहावत)

विशेष—कविता और यौगिक शब्दों में इस शब्द का रूप "जहाँ" हो जाता है। दे० "जहाँ" (संज्ञा)।

जहानक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय।

जहालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] अज्ञान। मूर्खता।

जहिया*†—क्रि० वि० [सं० यद् + हिया] जब। जिस समय। उ०—(क) कह कबीर कुछ अछलो न जहिया। हरि बिरवा प्रतिपालेसि तहिया।—कबीर। (ख) भुज बलविश्व जितब तुम जहिया। धरिहैं विष्णु मनुज तनु तहिया।—तुलसी।

जहीं*‡—क्रि० वि० [सं० यत्र, पा० यत्थ] (१) जहाँ ही। जिस स्थान पर। उ०—(क) सप्त खंड सात ही तरंगिनी बहै जहीं। सोय रूप ईश को अशेष जंतु सेवहीं।—केशव। (ख) जहीं जहीं विराम लेत राम जू तहीं तहीं अनेक भाँति के अनेक भोग भाग सों बढ़ै।—केशव। (२) ज्यों ही। उ०—सीय जहीं पहिराई। रामहि मान सुहाई। दुंदुभि देव बजाये। फूल तहीं बरसाये।—केशव।

ज़हीन—वि० [अ०] (१) बुद्धिमान्। समझदार। (२) धारणा शक्तिवाला।

जहु—संज्ञा पुं० [सं०] संतान।

ज़हूर—संज्ञा पुं० [अ०] प्रकाश।

मुहा०—ज़हूर में आना = प्रकट होना। ज़हूर में लाना = प्रकट करना।

जहूरा‡—संज्ञा पुं० [अ० ज़हूर] (१) देखावा। दृश्य। (२) ठाठ। (३) लड़का। (बाजारू)

जहेज़—संज्ञा पुं० [अ० मि० सं० दायज] वह धन-संपत्ति जो कन्या के विवाह में पिता की ओर से वर को अथवा उसके घरवालों को दी जाती है। दहेज।

जह्नु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) एक राजर्षि का नाम। पुराणों के अनुसार जब भगीरथ गंगा को लेकर आ रहे थे तब ये मार्ग में यज्ञ कर रहे थे। गंगा के कारण यज्ञ में विघ्न होने के भय से इन्होंने उसको पी लिया था। भगीरथजी के बहुत प्रार्थना करने पर इन्होंने फिर गंगा को कान से निकाल दिया था। तभी से गंगा का नाम जाह्नवी पड़ा।

विशेष—इस शब्द के साथ कन्या, सुता, तनया आदि पुत्री वाचक शब्द लगाने से गंगा का अर्थ होता है।

जह्नुतनया–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

जह्नुसप्तमी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख की शुक्ला सप्तमी। कहते हैं कि इसी दिन जह्नु ने गंगा को पान कर लिया था। गंगा-सप्तमी।

जाँ–संज्ञा स्त्री० दे० "जा"।

वि० दे० "जा"

जाँग–संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों की एक जाति। उ०—जरदा, जिरही, जाँग, सुनौंची, ऊदे खंजन। कर रकवाहे कवल गिलगिली गुलगुल रंजन।—सूदन।

संज्ञा स्त्री० दे० "जाँघ"।

जाँगड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] राजाओं का यश गानेवाला। भाट। बंदी। उ०—करैं जाँगरे आलाप बिरद कलाप भूप प्रताप। अतिशय मिजाजी चढ़े बाजी करत अरि उर ताप।—रघुराज।

जाँगर–संज्ञा पुं० [हिं० जान या जाँघ] (१) शरीर। देह। (२) हाथ पैर।

यौ०—जाँगर-चोर = आलसी। जो काम करने से जी चुराता हो। डील-हराम।

जाँगरा–संज्ञा पुं० दे० "जाँगड़ा"।

जांगल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीतर। (२) मांस। (३) वह देश जहाँ जल बहुत कम बरसता हो, धूप और गरमी अधिक पड़ती हो, हरे वृक्षों या घास आदि का अभाव हो, करील, मदार, बेल, और शमी आदि के पेड़ हों और बारहसिंघे और हिरन आदि पशु रहते हों। (४) ऐसे प्रदेश में पाए जानेवाले हिरन और बारहसिंघे आदि जंतु जिनका मांस मधुर, रूखा, हलका, दीपन, रुचिकारक, शीतल और प्रमेह, कंठमाला और श्लीपद आदि रोगों का नाशक होता है।

वि० जंगल संबंधी। जंगली।

जांगलि, जांगलिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सँपेरा। साँप पकड़नेवाला मदारी। (२) विष वैद्य। साँप की जहर उतारनेवाला।

जांगली–संज्ञा स्त्री० [सं०] कौंछ। केंवाच।

जाँगलू–वि० [फ़ा० जंगल] गँवार। जंगली। उजड्ड।

जाँगी–संज्ञा पुं० [?] नगारा। (डिं०)

जांगुल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोरई। तरोई। (२) विष। (३) दे० "जंगुल"।

जांगुलि, जांगुलिक–संज्ञा पुं० [सं०] साँप पकड़नेवाला। गारुड़ी। सँपेरा।

जांगुली–संज्ञा स्त्री० [सं०] साँप का विष उतारने की विद्या।

जाँघ–संज्ञा स्त्री० [सं० जंघा = पिंडली] घुटने और कमर के बीच का अंग। उरु।

जाँघा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) हल। (पूरब)। (२) कुएँ के ऊपर गड़ारी रखने का खंभा। (३) लकड़ी या लोहे का वह धुरा जिसमें गड़ारी पहनाई हुई होती है।

जांघिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊँट। (२) एक प्रकार का मृग जिसे ओकारी भी कहते हैं। (३) वह जिसकी जीविका बहुत दौड़ने आदि से ही चलती हो। जैसे, हरकारा।

जाँघिया–संज्ञा पुं० [हिं० जाँघ + इया (प्रत्य०)] (१) पायजामे की तरह का कमर में पहनने का एक प्रकार का सिला हुआ कपड़ा जिसकी मोहरियाँ घुटनों के ऊपर तक ही रहती हैं। काछा। इसे प्रायः पहलवान और नट आदि पहनते हैं। (२) मालखंभ की एक प्रकार की कसरत जिसमें बेंत को पैर के अँगूठे और दूसरी उँगली से पकड़ कर पिंडली में लपेटते हुए दूसरी पिंडली पर भी लपेटते हैं और तब दूसरे पैर के अँगूठे से बेंत को पकड़ कर नीचे की ओर सिर करके लटक जाते हैं।

जाँघिल–संज्ञा पुं० [हिं० जाँघ] वह बैल जिसका पिछला पैर चलने में लच खाता हो।

† वि० जिसका पैर चलने में लच खाता हो।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) खाकी रंग की एक चिड़िया जिसकी गरदन लंबी होती है। इसका मांस स्वादिष्ट होता है और उसी के लिये इसका शिकार किया जाता है। (२) प्रायः एक बालिश्त लंबी एक प्रकार की छोटी चिड़िया जिसकी छाती और पीठ सफेद, पर काले, चोंच और सिर पीला, पैर खाकी और दुम गुलाबी रंग की होती है।

जाँच–संज्ञा स्त्री० [हिं० जाँचना] (१) जाँचने की क्रिया या भाव। परीक्षा। परख। इम्तहान। आजमाइश। (२) गवेषणा। तहकीकात।

यौ०—जाँच पड़ताल = खोज के साथ किसी बात का पता लगाना। छान बीन।

जाँचक*†–संज्ञा पुं० दे० "जाचक" या "याचक"।

जाँचकता*†–संज्ञा स्त्री० दे० "जाचकता" या "याचकता"। उ०—(क) जेहि जाँचत जाँचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहानहि रे।—तुलसी। (ख) सुख दीनता दुखी इनके दुख जाँचकता अकुलानी।—तुलसी।

जाँचना–क्रि० स० [सं० याचन्] (१) किसी विषय की सत्यता या असत्यता अथवा योग्यता वा अयोग्यता का निर्णय करना। सत्यासत्य आदि का अनुसंधान करना। यह देखना कि कोई चीज ठीक है या नहीं। जैसे, हिसाब जाँचना, काम जाँचना।

संयो० क्रि०—देखना।—रखना।—डालना।

† (२) किसी बात के लिये प्रार्थना करना। माँगना। उ०—(क) जिन जाँच्यो जाइ रस नंदराय ढरे। मानों बरसत मास असाढ़ दादुर मोर ररे।—सूर। (ख) रावन मरन मनुज कर जाँचा। प्रभु विधि वचन कीन्ह चह साँचा।—तुलसी। (ग) यही उदर के कारने जग जाँच्यो निसि याम। स्वामिपनो सिर पर चढ्यो सर्यो न एकौ काम।—कबीर।

जाँजरा*†–वि० [सं० जर्जर] जो बहुत ही जीर्ण हो। जर्जर। उ०—लाग्यो यहै दोष जु में रोष ह्वै धनुष तोरो जाँजरो। पुरानो हो मैं जानो गयो काम सों।—हनुमान।

जाँझ*‡–संज्ञा पुं० [सं० झंझा] वह वर्षा जिसके साथ तेज हवा भी हो।

जाँट–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसे रीया भी कहते हैं।

जाँत–संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] जाँता। आटा पीसने की बड़ी चक्की। उ०—धरती स्वरग जाँत पर दोऊ। जो एहि बिच जिव राख न कोऊ।—जायसी।

जाँता–संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] (१) आटा पीसने की पत्थर की बड़ी चक्की जो प्रायः जमीन में गड़ी रहती है।

क्रि० प्र०—चलाना।—पीसना।

(२) सुनारों और तारकशों आदि का एक औजार। यह इसपात या फौलाद लोहे की एक पटरी होती है जिसमें क्रमशः बड़े छोटे अनेक छेद होते हैं। उन्हीं में कोई धातु की बत्ती या मोटा तार आदि रख कर उसे खींचते खींचते लंबा और महीन तार बना लेते हैं। इसे जंती भी कहते हैं।

जाँद–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के पेड़ का नाम।

जाँपनाह‡–संज्ञा पुं० दे० "जहाँपनाह"।

जाँब*†–संज्ञा पुं० [सं० जम्बा] जंबू फल। जामुन। जाम। उ०—(क) काहू गही अंब की डारा। कोई विरह जाँब अति छारा।—जायसी। (ख) श्याम जाँब कस्तूरी चोवा। अंब जो ऊँच हृदय तेहि रोवा।—जायसी।

जाँबवंत–संज्ञा पुं० दे० "जाँबवान्"। उ०—(क) महाधीर गंभीर बचन सुनि जाँबवंत बचन समझाए। बढ़ी परस्पर प्रीति रीति तब भूषण सिया दिखाए।—सूर। (ख) जांबवंत सुतासुत कहाँ मम सुता बुद्धिवंत पुरुष यह सब संभारै।—सूर।

जाँबव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जामुन का फल। जंबू फल। (२) जामुन के फल से बनी हुई स्पिरिट। जामुन का बना मद्य। (३) जामुन का सिरका। (४) सोना। स्वर्ण।

जांबवक–संज्ञा पुं० दे० "जांबव"।

जांबवती–संज्ञा स्त्री० [सं० जाम्बवती] (१) जांबवान की कन्या जिसके साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था।

विशेष—भागवत में लिखा है कि श्रीकृष्ण जब स्यमंतक मणि की खोज में जंगल में गए थे तो वहीं उन्होंने जांबवान को परास्त करके वह मणि पाई थी और उसकी कन्या जांबवती से विवाह किया था। उ०—(क) जांबवती अपनी कन्या भरि मणि राखी समुहाय। करि हरि ध्यान गए हरि पुर को जहाँ योगेश्वर जाय।—सूर। (ख) ऋक्षराज वह मणि तासों लै जाँबवती को दीन्हीं। प्रसमन को विलंब भयो तब सत्राजित सुध लीन्हीं।

(२) नागदमनी। नागदौन।

जांबवान्–संज्ञा पुं० [सं०] सुग्रीव के मंत्री का नाम जो ब्रह्मा का पुत्र माना जाता है और जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह रीछ था। रावण के साथ युद्ध करने में त्रेता युग में इसने रामचंद्र को बहुत सहायता दी थी। भागवत में लिखा है कि द्वापर युग में इसीकी कन्या जाँबवती के साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था। यह भी कहा जाता है कि सतयुग में इसने वामन भगवान् की परिक्रमा की थी।

जांबवि–संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

जांबवी–संज्ञा स्त्री० दे० "जांबवती"।

जांबवौष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] जँबोष्ठ नामक छोटा अस्त्र जिससे प्राचीन काल में फोड़े आदि जलाए जाते थे।

जांबीर–संज्ञा पुं० [सं०] जंबीरी नीबू।

जांबील–संज्ञा पुं० [सं०] पैर के घुटने में बीचवाली गोल हड्डी।

जांबुमाली–संज्ञा पुं० [सं०] प्रहस्त नामक राक्षस के पुत्र का नाम जिसे अशोक वाटिका उजाड़ते समय हनुमान ने मार डाला था।

जांबुवत्–संज्ञा पुं० दे० "जांबवान्"।

जांबुवान–संज्ञा पुं० दे० "जांबवान्"।

जांबू–संज्ञा पुं० दे० "जंबू" (द्वीप)। उ०—जांबू और पलाक्ष है शालमली कुश चारि। क्रौंच संकला द्वीप षट पुष्कर सात विचार।

जांबूनद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धतूरा। (२) सोना।

जांबोष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का छोटा अस्त्र जिससे फोड़े आदि जलाए जाते थे।

जाँवत*–दे० "जावत" या "यावत"। उ०—जाँवत जग साखा बन ढाँखा। जाँवत केस रोम पखि पाँखा।—जायसी। (ख) पुन रूपवंत बखानो काहा। जाँवत जगत सबै मुख चाहा।—जायसी।

जाँवर*†—संज्ञा पुं० [हिं०] गमन । प्रस्थान । जाना । उ०—नव नव लाड़ लड़ाइ लाड़िल नाहीं नाहीं कहूँ व्रज जाँवरो । —स्वामी हरिदास ।

जा—संज्ञा स्त्री० [सं] (१) माता । माँ । (२) देवरानी । देवर की स्त्री ।

वि० स्त्री० उत्पन्न । संभूत । जैसे, गिरिजा, जनकजा ।

*†सर्व० [हिं० जो] जो । जिस । उ०—(क) जा कर जा पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिले न कछु संदेहू ।—तुलसी । (ख) इक समान जब ह्वै रहत लाज मदन में दोय । जा तिय के तन में तबहिं मध्या कहिए सोय ।—पद्माकर । (ग) मेरी भव बाधा हरौ राधा नागर सोइ । जा तन की झाईं परे स्याम हरित दुति होइ ।—बिहारी ।

वि० [फ़ा०] मुनासिब । उचित । वाजिब । जैसे, जैसे आपकी बात बहुत जा है ।

यौ०—बेजा = नामुनासिब । जो ठीक न हो ।

जाइंट—संज्ञा पुं० [अं० ज्वाइंट] (१) जोड़ । पैबंद । (२) गिरह । गाँठ । (मिस्त्री) । (३) दे० ज्वाइंट ।

जाइ*†—वि० [हिं० जाना] व्यर्थ । वृथा । निष्प्रयोजन । बेफायदा । उ०—सुमन सुमन अरपन लिये उपवन ते धन ल्याइ । धरनी धरि हरि तकि कही हाइ भयो श्रम जाइ ।

जाइफर, जाइफल—संज्ञा पुं० दे० "जायफल" ।

जाइस—संज्ञा पुं० दे० "जायस" ।

जाई—संज्ञा स्त्री० [सं० जा = उत्पन्न] (१) कन्या । बेटी । पुत्री । लड़की । (२) जाती । चमेली ।

जाउँनि*†—संज्ञा स्त्री० दे० "जामुन" ।

जाउर‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाउर = चावल] मीठा और चावल डाल कर पकाया हुआ दूध । खीर ।

जाएल†—संज्ञा पुं० [देश०] दो बार जोता हुआ खेत ।

जाएस—संज्ञा पुं० दे० "जायस" ।

जाक*†—संज्ञा पुं० [सं० यत्त] यत्त ।

जाकट—संज्ञा स्त्री० दे० "जाकेट" ।

जाकड़—संज्ञा पुं० [हिं० जा कर] (१) दूकानदार के यहाँ से कोई माल इस शर्त पर ले आना कि यदि वह पसंद न होगा तो फेर दिया जायगा । पक्का का उलटा । (२) इस प्रकार (शर्त पर) लाया हुआ माल ।

यौ०—जाकड़ बही ।

जाकड़ बही—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाकड़ + बही] वह बही जिसमें दूकानदार जाकड़ दिए हुए माल का नाम और दाम आदि टाँक लेते हैं ।

जाकेट—संज्ञा स्त्री० [अं० जैकेट] कुर्त्ती या सदरी की तरह का एक प्रकार का अँग्रेज़ी पहनावा ।

जाखन†—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहिए के आकार का लकड़ी का गोल चक्कर जो कुओं की नींव में दिया जाता है । जमवट । नेवार ।

जाग—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] (१) यज्ञ । मख । उ०—(क) तप कीन्हें से देहैं आग । ता सेती तुम कीजो जाग । यज्ञ किये गंधर्व लोक सिधैहैं । तहाँ जाय मोको तुम पैहौ ।—सूर । (ख) चहत महा मुनि जाग जयो । नीच निसाचर देत दुसह दुख कृस तनु ताप तयो ।—तुलसी । (ग) दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग । नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग ।—तुलसी ।

‡संज्ञा स्त्री० [हिं० जगह] (१) जगह । स्थान । ठिकाना । उ०—(क) तुहिका न मुहिकाँ कहीं लुहिकाँ रही न जाग भाग कुल और तोपखाना बाघ ब्यावा है ।—सूदन । (ख) कुदरत वाकी भर रही रसनिधि सबही जाग । ईंधन बिन बनियौ रहै ज्यों पाहन में आग ।—रसनिधि । (२) गृह । घर । मकान । (डिं०)

संज्ञा स्त्री० [हिं० जागना] जागने की क्रिया या भाव । जागरण । उ०—घटती होइ जाहि ते आपनी ताको कीजै त्याग । धोखे कियो वास मन भीतर अब समझे भाई जाग ।

संज्ञा पुं० [देश०] वह कबूतर जो बिलकुल काले रंग का हो ।

संज्ञा पुं० [अं० जैक] जहाज का भंडार-रक्षक ।

जागत—संज्ञा पुं० [सं०] जगती छंद ।

जागती कला—संज्ञा स्त्री० दे० "जागती जोत" ।

जागती जोत—संज्ञा स्त्री० [हिं० जागना + ज्योति] (१) किसी देवता विशेषतः देवी की प्रत्यक्ष महिमा वा चमत्कार । (२) चिराग । दीपक ।

जागना—क्रि० अ० [सं० जागरण] (१) सोकर उठना । नींद त्यागना । उ०—आइ जगावहिं चेला जागहु । आया गुरू पाय उठि लागहु ।—जायसी ।

संयो० क्रि०—उठना ।—पड़ना ।

(२) निद्रा रहित रहना । जागृत अवस्था में होना । (३) सजग होना । चैतन्य होना । सावधान होना । उ०—जरठाई दसा रवि काल उयो अजहूँ जड़ जीवन जागहि रे ।—तुलसी । (४) उदित होना । चमक उठना । उ०—(क) भागत अभाग अनुरागत विराग भाग जागत आलस तुलसी से निकाम के ।—तुलसी । (ख) निश्चय प्रेम पीर एहि जागा । कसे कसौटी कंचन लागा ।—जायसी ।

मुहा०—जागता = प्रत्यक्ष । साक्षात् । जैसे, जागती जोत, जागती कला । उ०—जाहिरै जागति सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी ।—पद्माकर ।

(५) समृद्ध होना । बढ़ चढ़ कर होना । उ०—पद्माकर स्वादु सुधा तें सरें मधु तें महा माधुरी जागती है ।—पद्मा-

कर। (६) जोर शोर से उठना। समुत्थित होना। जैसे, लोकमत का जागना। (७) प्रज्वलित होना। जलना। (८) प्रादुर्भूत होना। अस्तित्व प्राप्त करना।

जगनौल–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का हथियार।

जागबलिक†*–संज्ञा पुं० दे० "याज्ञवल्क्य" उ०—जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिवरहिँ सुनाई।—तुलसी।

जागर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जागरण। जाग। जागने की क्रिया। उ०—सुनि हरिदास यहै जिय जानौ सुपने को सौ जागर।—हरिदास। (२) कवच। (३) अंतःकरण की वह अवस्था जिसमें उसकी सब (मन बुद्धि अहंकार आदि) वृत्तियाँ प्रकाशित या जागृत हों।

जागरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) निद्रा का अभाव। जागना। (२) किसी व्रत, पर्व या धार्मिक उत्सव के उपलक्ष में अथवा इसी प्रकार के किसी और अवसर पर भगवत् भजन करते हुए सारी रात जागना। उ०—बासर ध्यान करत सब बीत्यो। निशि जागरन करत मन भीत्यो।—सूर।

जागरित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जागरण। नींद का न होना। (२) सांख्य और वेदांत के मत से वह अवस्था जिसमें मनुष्य को इंद्रियों द्वारा सब प्रकार के व्यवहारों और कार्यों का अनुभव होता रहे।

जागरित स्थान–संज्ञा पुं० [सं०] वह आत्मा जो जागरित स्थिति में हो।

जागरितांत–संज्ञा पुं० [सं०] वह आत्मा जो जागरित स्थिति में हो। जागरित स्थान।

जागरूं†–संज्ञा पुं० [देश०] (१) भूसा आदि मिला हुआ वह खराब अन्न जो दँवाई के बाद अच्छा अन्न निकाल लेने पर बच रहता है। (२) भूसा।

जागरूक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो जागृत अवस्था में हो। चैतन्य।

जागरूप–वि० [हिं० जागना + रूप] जो बहुत ही प्रत्यक्ष और स्पष्ट हो।

जागा‡–संज्ञा स्त्री० दे० "जगह"।

जागर्त्ति–संज्ञा स्त्री [सं०] (१) जागरण। जाग्रति (२) चेतनता।

जागी*†–संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] भाट।

जागीर–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जमीन मुआफ़ी। तअल्लुका। परगना। ऐसी भूमि जो राजा बादशाह नव्वाब आदि किसी को प्रदान करते हैं। वह गाँव या जमीन आदि जो किसी राज्य या शासक आदि की ओर से किसी को उसकी सेवा के उपलक्ष में मिले। सेवा के पुरस्कार में मिली हुई भूमि।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

जागीरदार–संज्ञा पुं० [फ़ा] वह जिसे जागीर मिली हो। जागीर का मालिक।

जागीरी†*–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जागीर + ई (प्रत्य०)] (१) जागीरदार होने का भाव। (२) अमीरी। रईसी। उ०—भागता सो जूझिय पीठ जो लागा धाय। जागीरी सब ऊतरी धनी न कहसी आव।—कबीर।

जागुड़–संज्ञा पुं० [सं०] (१) केसर। (२) एक प्राचीन देश का नाम। (३) उस देश का निवासी।

जागृवि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा। (२) आग।

जाग्रत–वि० [सं०] (१) जो जागता हो। (२) वह अवस्था जिसमें सब बातों का परिज्ञान हो।

जाग्रति–संज्ञा स्त्री० [सं० जागृत] जागरण। जागने की क्रिया।

जाघनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] उरु। जाँघ। जंघा।

जाचक†*–संज्ञा पुं० [सं० याचक] (१) माँगनेवाला। वह जो माँगता हो। भिक्षुक। मंगन। भिखारी। उ०—नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम्ह सों मन भावत पायो न कै।—तुलसी। (२) भिखमंगा। भीख माँगनेवाला। उ०—दोऊ चाह भरे कछू चाहत कह्यो कहै न। नहिं जाचक सुनि सूम लौं बाहर निकसत बैन।—बिहारी।

जाचकता†*–संज्ञा स्त्री० [सं० याचकत्व] (१) माँगने का भाव। (२) भिखमंगी। भीख माँगने की क्रिया। उ०—जेहि जाचे सो जाचकता बस फिरि बहु नाच न नाच्यो।—तुलसी

जाचना*†–क्रि० [सं० याचन] माँगना।

जाजम–संज्ञा [तु०] एक प्रकार की चादर जिस पर बेल बूटे आदि छपे होते हैं और जो फर्श पर बिछाने के काम में आती है।

जाजमलार–संज्ञा पुं० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

जाजरा†*–वि० [देश०। सं० जर्ज्जर] जर्जर। जीर्ण। उ०—(क) ज्यों घुन लगाई काठ को लोहइ लागइ काँट। काम किया घट जाजरा दादू बारह बाट।—दादू। (ख) आँधरो अधम जड़ जाजरो जरा जवन सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग मैं।—तुलसी।

जाजरी†–संज्ञा पुं० [देश०] बहेलिया। चिड़ीमार।

जाज़रूर–संज्ञा पुं० [फ़ा० जा + अ० ज़रूर] शौच क्रिया करने का स्थान। पाखाना। टट्टी।

जाजल–संज्ञा पुं० [सं०] अथर्व वेद की एक शाखा का नाम।

जाजलि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रवर-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

जाजात‡–संज्ञा स्त्री० दे० "जायदाद"।

जाजिम–संज्ञा स्त्री० [तु० जाजम] (१) एक प्रकार की छपी हुई चादर जो बिछाने के काम में आती है। (२) गलीचा। कालीन।

जाज्वल्य–वि० [सं०] (१) प्रज्वलित। प्रकाशयुक्त। (२) तेजवान्।

जाज्वल्यमान–वि० [सं०] (१) प्रज्वलित। दीप्तिमान्। (२) तेजस्वी। तेजवान्।

जाट–संज्ञा पुं० [?] (१) भारतवर्ष की प्रसिद्ध जाति जो समस्त पंजाब, सिंध, राजपूताना और संयुक्त प्रदेश के कुछ भागों में फैली हुई है। इस जाति के लोग संख्या में बहुत अधिक हैं और भिन्न भिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं। इस जाति के अधिकांश आचार व्यवहार आदि राजपूतों से मिलते जुलते होते हैं। कहीं कहीं ये लोग अपने को राजपूतों के अंतर्गत बतलाते हैं। राजपूतों के ३६ वंशों में जाटों का भी नाम आया है। कुछ देशों में जाटों और राजपूतों का विवाह-संबंध भी होता है पर कहीं कहीं के जाटों में विधवाविवाह और सगाई की प्रथा भी प्रचलित है। जाटों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कोई कहता है कि इन की उत्पत्ति शिव की जटा से हुई और कोई जाटों को यदुवंशी और जाट शब्द को यदु या यादव से संबद्ध बतलाता है। अधिकांश जाट खेती बारी से ही अपना निर्वाह करते हैं। पंजाब, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान में बहुत से मुसलमान जाट भी हैं। (२) एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना।

संज्ञा स्त्री० दे० "जाठ"।

जाटालि–संज्ञा स्त्री० [सं०] पलाश की जाति का एक पेड़ जिसे मोखा कहते हैं।

जाटालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

जाटिकायन–संज्ञा पुं० [सं०] अथर्व वेद के एक ऋषि का नाम।

जाठ–संज्ञा पुं० [सं० यष्टि] (१) लकड़ी का वह मोटा और ऊँचा लट्ठा जो कोल्हू की कूँड़ी के बीच में लगा रहता है और जिसके घूमने और जिसका दाब पड़ने से कोल्हू में डाली हुई चीज़ें पेरी जाती हैं। (२) किसी चीज विशेषतः तालाब आदि के बीच में गड़ा हुआ लकड़ी का ऊँचा और मोटा लट्ठा।

जाठर–संज्ञा पुं० [सं० जठर] (१) पेट। उदर। (२) पेट की वह अग्नि जिसकी सहायता से खाया हुआ अन्न आदि पचता है। जठराग्नि। (३) भूख। क्षुधा।

वि० (१) जठर संबंधी। (२) जो जठर से उत्पन्न हो। (संतान)

जाठराग्नि–संज्ञा स्त्री० दे० "जठराग्नि"।

जाठि–संज्ञा स्त्री० दे० "जाठ"।

जाड़‡–संज्ञा पुं० दे० "जाड़ा"।

‡ वि० अत्यंत। बहुत अधिक।

जाड़ा–संज्ञा पुं० [सं० जड़] (१) वह ऋतु जिसमें बहुत ठंढ पड़ती हो। शीत काल। सरदी का मौसम।

विशेष—भारतवर्ष में जाड़ा प्रायः अगहन के मध्य से आरंभ होता है और फागुन के आरंभ तक रहता है।

(२) सरदी। शीत। पाला। ठंढ।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

जाड्य–संज्ञा पुं० [सं०] जड़ का भाव। जड़ता।

जाड्यारि–संज्ञा पुं० [सं०] जंभीरी नींबू।

जात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्म। (२) पुत्र। बेटा। (३) चार प्रकार के पारिभाषिक पुत्रों में से एक। वह पुत्र जिसमें उसकी माता के से गुण हों। (४) जीव। प्राणी।

वि० (१) उत्पन्न। जन्मा हुआ। जैसे, जलजात। उ०—देखत उदधिजात देखि देखि निज गात चंपक के पात कछू लिख्यौ है बनाइ के।—केशव। (२) व्यक्त। प्रकट। (३) प्रशस्त। अच्छा। (४) जिसने जन्म ग्रहण किया हो। जैसे, नवजात।

संज्ञा स्त्री० दे० "जाति"।

संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ात] शरीर। देह। काया। जैसे, उसकी जात से तुम्हें बहुत फायदा होगा।

संज्ञा स्त्री० दे० "जाति"।

जातक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बच्चा। उ०—(क) तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नयन सु खंजन जातक से।—तुलसी। (ख) जानै कहाँ बाँझ ब्यावर दुख जातक जनहि न पीर है कैसी।—सूर। (२) कारंडी। बत। (३) भिक्षु। (४) फलित ज्योतिष का एक भेद जिसके अनुसार कुंडली देख कर उसके फल को कहते हैं। (५) एक प्रकार के बौद्ध ग्रंथ जिनमें महात्मा बुद्धदेव के पूर्व जन्मों की कथाएँ लिखी हैं।

संज्ञा पुं० हींग का पेड़।

जातकर्म्म–संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के दस संस्कारों में से चौथा संस्कार जो बालक के जन्म के समय होता है। उ०—तब नंदीमुख श्राद्ध करि जातकरम सब कीन्ह।—तुलसी।

विशेष—इस संस्कार में बालक के जन्म का समाचार सुनते ही पिता मना कर देता है कि अभी बालक की नाल न काटी जाय। तदुपरांत वह पहने हुए कपड़ों सहित स्नान करके कुछ विशेष पूजन और वृद्ध-श्राद्ध आदि करता है। इसके अनंतर ब्रह्मचारी, कुमारी, गर्भवती या विद्वान् ब्राह्मण द्वारा धोई हुई सिल पर लोहे से पीसे हुए चावल और जौ के चूर्ण को अँगूठे और अनामिका से लेकर मंत्र पढ़ता हुआ बालक की जीभ पर मलता है। दूसरी बार वह सोने से घी लेकर मंत्र पढ़ता हुआ उसकी जीभ पर मलता है और तब नाल काटने और दूध पिलाने की आज्ञा देकर स्नान करता है। आज कल यह संस्कार बहुत कम लोग करते हैं।

जातक्रिया–संज्ञा स्त्री० दे० "जातकर्म्म"।

जातजात रोग–संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जो बच्चे को गर्भ ही से माता के कुपथ्य आदि के कारण हो।

जातना–संज्ञा स्त्री० दे० "यातना"। उ०—(क) गर्भ वास दुख रासि जातना तीव्र विपति बिसरायो।—तुलसी।

जात पाँत–संज्ञा स्त्री० [सं० जाति + पंक्ति] जाति। बिरादरी। जैसे, जात पाँत पूछे नहिं कोइ। हरि को भजे सो हरि का होइ।

जातरा†–संज्ञा स्त्री० दे० "यात्रा"।

जातरूप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुवर्ण। सोना। (२) धतूरा।

जातवेद–संज्ञा पुं० [सं० जातवेदस्] (१) अग्नि। (२) चित्रक वृक्ष। चीते का पेड़। (३) अंतर्यामी। परमेश्वर। (४) सूर्य्य।

जातवेश्म–संज्ञा पुं० [सं० जातवेश्मन्] वह घर जिसमें बालक का जन्म हो। सौरी। सूतिकागार।

जाता–संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। पुत्री।

वि० उत्पन्न।

संज्ञा पुं० दे० "जाँता"।

जाति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिंदुओं में मनुष्य समाज का वह विभाग जो पहले पहल कर्म्मानुसार किया गया था पर पीछे से स्वभावतः जन्मानुसार हो गया। उ०—कामी क्रोधी लालची इन पै भक्ति न होय। भक्ति करे कोइ सूरमा जाति बरन कुल खोय।—कबीर।

विशेष—यह जाति-विभाग आरंभ में वर्ण विभाग के रूप में ही था, पर पीछे से प्रत्येक वर्ण में भी कर्मानुसार कई शाखाएँ हो गईं, जो आगे चल कर भिन्न भिन्न जातियों के नामों से प्रसिद्ध हुईं। जैसे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, सोनार, लोहार, कुम्हार आदि।

(२) मनुष्य समाज का वह विभाग जो निवास-स्थान या वंश-परंपरा के विचार से किया गया हो। जैसे, अँगरेज जाति, मुगल जाति, पारसी जाति, आर्य्य जाति आदि। (३) वह विभाग जो गुण धर्म्म आकृति आदि की समानता के विचार से किया जाय। कोटि। वर्ग। जैसे, मनुष्य जाति, पशु जाति, कीट जाति। उ०—(क) सकल जाति के बँधे तुरंगम रूप अनूप विशाला।—रघुराज। (ख) यह अच्छी जाति का घोड़ा है। (ग) यह दोनों आम एक ही जाति के हैं।

विशेष—न्याय के अनुसार द्रव्यों में परस्पर भेद रहते हुए भी जिस से उनके विषय में समान बुद्धि उत्पन्न हो उसे जाति कहते हैं। जैसे, घटत्व, मनुष्यत्व, पशुत्व, आदि। "सामान्य" भी इसी का पर्य्याय है।

(४) न्याय में किसी हेतु का वह अनुपयुक्त खंडन या उत्तर जो केवल साधर्म्य या वैधर्म्य के आधार पर हो। जैसे, यदि वादी कहे कि आत्मा निष्क्रिय है क्योंकि वह आकाश के समान विभु है, और इस पर प्रतिवादी यह उत्तर दे कि विभु आकाश के समान धर्म्मवाला होने के कारण यदि आत्मा निष्क्रिय है तो क्रिया-हेतु-गुण युक्त लोष्ठ के समान होने के कारण वह क्रियावान् क्यों नहीं है, तो उसका यह उत्तर केवल साधर्म्य के आधार पर होने के कारण अनुपयुक्त होगा और जाति के अंतर्गत आवेगा। इसी प्रकार यदि वादी कहे कि शब्द अनित्य है क्योंकि वह उत्पत्ति-धर्म्मवाला है और आकाश उत्पत्ति-धर्मवाला नहीं है और इसके उत्तर में प्रतिवादी कहे कि यदि शब्द उत्पत्ति-धर्मवाला और आकाश के असमान होने के कारण अनित्य है तो वह घट के असमान होने के कारण नित्य क्यों नहीं है? तो उसका यह उत्तर केवल वैधर्म्म्य के आधार पर होने के कारण अनुपयुक्त होगा और जाति के अंतर्गत आ जायगा।

विशेष—न्याय में जाति सोलह पदार्थों के अंतर्गत मानी गई है। नैयायिकों ने इसके और भी सूक्ष्म २४ भेद किए हैं जिनके नाम ये हैं—(१) साधर्म्य सम। (२) वैधर्म्य सम। (३) उत्कर्ष सम। (४) अपकर्ष सम। (५) वर्ण्य सम। (६) अवर्ण्य सम। (७) विकल्प सम। (८) साध्य सम। (९) प्राप्ति सम। (१०) अप्राप्ति सम। (११) प्रसंग सम। (१२) प्रतिदृष्टांत सम। (१३) अनुत्पत्ति सम। (१४) संशय सम। (१५) प्रकरण सम। (१६) हेतु सम। (१७) अर्थापत्ति सम। (१८) अविशेष सम। (१९) उपपत्ति सम। (२०) उपलब्धि सम। (२१) अनुपलब्धि सम। (२२) नित्य सम। (२३) अनित्य सम। (२४) कार्य्य सम।

(५) वर्ण। (६) कुल। वंश। (७) गोत्र। (८) जन्म। (९) आमलकी। छोटा आँवला। (१०) सामान्य। साधारण। आम। (११) चमेली। (१२) जावित्री। (१३) जायफल। जाती फल। (१४) वह पद्य जिसके चरणों में मात्राओं का नियम हो। मात्रिक छंद।

जातिकर्म–संज्ञा पुं० दे० "जातकर्म्म"।

जातिकोश, जातिकोष–संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिकोशी, जातिकोषी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री।

जातिच्युत–वि० [सं०] जाति से गिरा या निकाला हुआ। जो जाति से अलग या बाहर हो।

जातित्व–संज्ञा पुं० [सं०] जातीयता। जाति का भाव।

जातिधर्म–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जाति या वर्ण का धर्म्म। (२) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि का अलग अलग कर्त्तव्य।

जातिपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री।

जातिपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री।

जातिपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री।

जाति पाँति–संज्ञा स्त्री० [सं० जाति + हिं० पाँति (पंक्ति)] जाति या

वर्ण आदि। उ०—जाति पाँति उन सम हम नाहीं। हम निगुंण सब गुण उन पाहीं।—सूर।

जातिफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिबैर—संज्ञा पुं० [सं०] स्वाभाविक शत्रुता। सहज बैर।

विशेष—महाभारत में जाति बैर पाँच प्रकार का माना गया है,—(१) स्त्री कृत। (२) वास्तुज। (३) वाग्ज। (४) सापत्न। और (५) अपराधज।

जातिब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जिसका केवल जन्म किसी ब्राह्मण के घर में हुआ हो और जिसने तपस्या या वेद-अध्ययन आदि न किया हो।

जातिभ्रंशकर—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार नौ प्रकार के पापों में से एक प्रकार का पाप जिसका करनेवाला जाति और आश्रम आदि से भ्रष्ट हो जाता है। इसके अंतर्गत ब्राह्मणों को पीड़ा देना, मदिरा पीना अथवा अखाद्य पदार्थ खाना, कपट-व्यवहार करना और पुरुष-मैथुन आदि कई निंदनीय काम हैं। यह पाप यदि अनजान में हो तो पापी को प्राजापत्य प्रायश्चित्त और यदि जानकारी में हो तो सांतपन प्रायश्चित्त करना चाहिए।

जातिशस्य—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिसंकर—संज्ञा पुं० [सं०] वर्णसंकर। दोगला।

जातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिसूत—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल। जातीफल।

जातिस्वभाव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अलंकार जिसमें आकृति और गुण का वर्णन किया जाता है।

जाती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमेली। (२) आमलकी। छोटा आँवला। (३) मालती। (४) जायफल।

†* संज्ञा स्त्री० दे० "जाति"।

संज्ञा पुं० हाथी। (डिं०)

ज़ाती—वि० [अ० ज़ात] (१) व्यक्तिगत। (२) अपना। निज का।

जातीकोश, जातीकोष—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातीपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री। जायपत्री।

जातीपूग—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातीफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातीय—वि० [सं०] जाति संबंधी। जाति का। जातिवाला।

जातीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाति का भाव। जातित्व। जाति की ममता।

जातीरस—संज्ञा पुं० [सं०] बोल नामक गंध द्रव्य।

जातु—अव्य० [सं०] कदाचित्।

जातुक—संज्ञा पुं० [सं०] हींग।

जातुज—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भवती स्त्री की इच्छा।

जातुधान—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस। निशाचर। असुर।

जातुष-वि० [सं०] जतु या लाख का बना हुआ।

जातू—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

जातूकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] उपस्मृति बनानेवाले एक ऋषि का नाम। हरिवंश के अनुसार इनका जन्म अट्ठाइसवें द्वापर में हुआ था।

जातूकर्णी—संज्ञा पुं० [सं०] महाकवि भवभूति के पिता का नाम।

जातेष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] जातकर्म्म।

जातोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह बैल जो बहुत ही छोटी अवस्था में बधिया कर दिया गया हो।

जात्य—वि० [सं०] (१) कुलीन। उत्तम कुल में उत्पन्न। (२) श्रेष्ठ। (३) सुंदर। जो देखने में बहुत अच्छा हो।

जात्य त्रिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिभुज क्षेत्र जिसमें एक सम कोण हो। जैसे, ◺

जात्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का एक आसन जिसमें हाथ और पैर जमीन पर रख कर चलते हैं। कहते हैं इस आसन के सिद्ध हो जाने से पूर्व जन्म की सब बातें याद हो आती हैं।

जात्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में वह दूषित उत्तर जिसमें व्याप्ति स्थिर न हो। यह अठारह प्रकार का माना गया है।

जात्यारोह—संज्ञा पुं० [सं०] खगोल के अक्षांश की गिनती में वह दूरी जो मेष से पूर्व की ओर प्रथम अंश से ली जाती है।

जात्रा‡—संज्ञा स्त्री० दे० "यात्रा"।

जात्री‡ संज्ञा पुं० दे० "यात्री"।

जाथका*†—संज्ञा स्त्री० [सं० जूथिका] ढेरी। ढेर। राशि।

जादव*†—संज्ञा पुं० [सं० यादव] यादव। यदुवंशी।

जादवपति*†—संज्ञा पुं० [सं० यादवपति] श्रीकृष्णचंद्र।

जादसपति, जादसपती*†—संज्ञा पुं० [सं० यादसांपति] जल-जंतुओं का स्वामी। वरुण।

जादा*†—वि० दे० "ज्यादः"।

जादू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह अद्भुत और आश्चर्यजनक कृत्य जिसे लोग अलौकिक और अमानवी समझते हैं। इंद्रजाल। तिलस्म।

विशेष—प्राचीन काल में संसार की प्रायः सभी जातियों के लोग किसी न किसी रूप में जादू पर बहुत विश्वास करते थे। उन दिनों रोगों की चिकित्सा, बड़ी बड़ी कामनाओं की सिद्धि और इसी प्रकार की अनेक दूसरी बातों के लिये अच्छे अच्छे जादूगरों और सयानों से अनेक प्रकार के जादू ही कराए जाते थे। पर अब जादू पर से लोगों का विश्वास बहुत अंशों में उठ गया है।

क्रि० प्र०—चलना।—करना।

मुहा०—जादू जगाना = प्रयोग आरंभ करने से पहले जादू को चैतन्य करना।

(२) वह अद्भुत खेल या कृत्य जो दर्शकों की दृष्टि और बुद्धि को धोखा देकर किया जाय। ताश, अंगूठी, घड़ी, छुरी और सिक्के आदि के तरह तरह के विलक्षण और बुद्धि को चकरानेवाले खेल इसी के अंतर्गत हैं। (३) टोना। टोटका। (४) दूसरे को मोहित करने की शक्ति। मोहिनी। जैसे, उसकी आँखों में जादू है।

क्रि० प्र०—डालना।

जादूगर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० जादूगरनी] वह जो जादू करता हो। तरह तरह के अद्भुत और आश्चर्यजनक कृत्य करनेवाला मनुष्य।

जादूगरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जादू करने की क्रिया। जादूगर का काम।

जादूनज़र-संज्ञा पुं० [फ़ा०] दृष्टि मात्र से मोहित कर लेनेवाला। देखते ही मन लुभानेवाला। जिसके नेत्रों में जादू हो।

जादौ*†-संज्ञा पुं० [सं० यादव] (१) यदुवंशी। यदुवंश में उत्पन्न। उ०—सुमति विचारहिं परिहरहिं दल सुमनहु संग्राम। सकल गए तन बिनु भये साखी जादौ काम।—तुलसी। (२) नीच जाति। नीच कुलोत्पन्न।

जादौराय*†-संज्ञा पुं० [सं० यादव] श्रीकृष्णचंद्र। उ०—गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ। मातु की गति दई ताहि कृपाल जादौराइ।—तुलसी।

जान-संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञान] (१) ज्ञान। जानकारी। उ०—हमारी जान में तो कोई ऐसा आदमी नहीं है। (२) समझ। अनुमान। ख्याल। उ०—मेरे जान इन्हहिं बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इतो री।—तुलसी।

यौ०—जान पहचान = परिचय। एक दूसरे से जानकारी उ०—(क) हमारी उनकी जान पहचान नहीं है। (ख) तुमसे जान पहचान होगी।

मुहा०—जान में = जानकारी में। जहाँ तक कोई जानता है वहाँ तक। उ०—मेरी जान में तो यहाँ ऐसा कोई नहीं है।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल समास में या "में" विभक्ति के साथ ही होता है। लिंग के विषय में भी मतभेद है।

वि० सुजान। जानकार। ज्ञानवान। चतुर। उ०—(क) तुम परिपूरन काम जान सिरोमनि भाव प्रिय। जन गुन गाहक राम दोषदलन करुनायतन।—तुलसी। (ख) जान सिरोमनि हौ हनुमान सदा जन के मन बास तिहारो।—तुलसी। (ग) प्रभु को देखौ एक सुभाय। अति गभीर उदार उदधि सरि जान सिरोमनि राय।—सूर। (घ) प्रेम समुद्र रूप रस गहिरे कैसे लागै घाट। बेकाव्यो है जान कहावत जान पनो कि कहा परी बाट।—हरिदास।

संज्ञा पुं० दे० "जानु"।

संज्ञा पुं० दे० "यान"।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) प्राण। जीव। प्राणवायु। दम।

मुहा०—जान आना = जी ठिकाने होना। चित्त में धैर्य्य होना। चित्त स्थिर होना। शांति होना। जान का गाहक = (१) प्राण लेने की इच्छा रखनेवाला। मार डालने का यत्न करनेवाला। भारी शत्रु। (२) बहुत तंग करनेवाला। पीछा न छोड़नेवाला। जान का रोग = ऐसा दुःखदायी व्यक्ति वा वस्तु जो पीछा न छोड़े। सब दिन कष्ट देनेवाला। जान का लागू = दे० "जान का गाहक"। जान के लाले पड़ना = प्राण बचना कठिन दिखाई देना। जी पर आ बनना। अपनी जान को जान न समझना = प्राण जाने की परवाह न करना। अत्यंत अधिक कष्ट वा परिश्रम सहना। दूसरे की जान को जान न समझना = किसी को अत्यंत कष्ट वा दुःख देना। किसी के साथ निष्ठुर व्यवहार करना। (किसी की) जान को रोना = किसी के कारण कष्ट पाकर उसका स्मरण करते हुए दुखी होना। किसी के द्वारा पहुँचाए हुए कष्ट को याद करके दुखी होना। उ०—तुमने उसकी जीविका ली, वह अब तक तुम्हारी जान को रोता है। जान खाना = (१) तंग करना। बार बार घेर कर दिक करना। (२) किसी बात के लिये बार बार कहना। उ०—चलते हैं क्यों जान खाते हो। जान खोना = प्राण देना। मरना। जान चुराना = दे० "जी चुराना"। जान छुड़ाना = (१) प्राण बचाना। (२) किसी झंझट से छुटकारा करना। किसी अप्रिय वा कष्टदायक वस्तु को दूर करना। संकट टालना। छुटकारा करना। निस्तार करना। उ०—(क) जब काम करने का समय आता है तब लोग जान छुड़ा कर भागते हैं। (ख) इसे कुछ देकर अपनी जान छुड़ाओ। जान छूटना = किसी झंझट वा आपत्ति से छुटकारा मिलना। किसी अप्रिय वा कष्टदायक वस्तु का दूर होना। निस्तार होना। उ०—बिना कुछ दिए जान नहीं छूटेगी। जान जाना = प्राण निकलना। मृत्यु होना। (किसी पर) जान जाना = किसी पर अत्यंत अधिक प्रेम होना। जान जोखों = प्राण भय। प्राणहानि की आशंका। जीवन का संकट। प्राण जाने का डर। जान तोड़ कर = दे० "जी तोड़ कर"। जान दूभर होना = जीवन कटना कठिन जान पड़ना। जीना भार मालूम होना। दुःख पड़ने के कारण जीने की इच्छा न रह जाना। जान देना = प्राण त्याग करना। मरना। (किसी पर) जान देना = (१) किसी के किसी कर्म के कारण प्राण त्याग करना। किसी के किसी काम से रुष्ट वा दुखी होकर मरना। (२) किसी पर प्राण न्यौछावर करना। किसी को प्राण से बढ़ कर चाहना। बहुत ही अधिक प्रेम करना। (किसी के लिये) जान देना = किसी को बहुत अधिक चाहना। (किसी वस्तु के लिये वा पीछे) जान

देना = किसी वस्तु के लिये अत्यंत अधिक व्यग्र होना। किसी वस्तु की प्राप्ति वा रक्षा के लिये बेचैन होना। उ०—वह एक एक पैसे के लिये जान देता है, उसका कोई कुछ नहीं दबा सकता। **जान निकलना** = (१) प्राण निकलना। मरना। (२) भय के मारे प्राण सूखना। डर लगना। अत्यंत कष्ट होना। घोर पीड़ा होना। **जान पड़ना** = दे० "जान आना"। **जान पर आ बनना** = (१) प्राण भय होना। प्राण बचना कठिन दिखाई देना। (२) आपत्ति आना। चित्त संकट में पड़ना। (३) हैरानी होना। नाक में दम होना। गहरी व्यग्रता होना। **जान पर खेलना** = प्राणों को भय में डालना। जान को जोखों में डालना। अपने आप को ऐसी स्थिति में डालना जिसमें प्राण तक जाने का भय हो। **जान पर नौबत आना** = दे० "जान पर आ बनना"। **जान बचाना** = (१) प्राणरक्षा करना। (२) पीछा छुड़ाना। किसी कष्टदायक या अप्रिय वस्तु को दूर रखना। निस्तार करना। उ०—हम तो जान बचाते फिरते हैं तुम बार बार हमें आकर घेरते हो। **जान मार कर काम करना** = जी तोड़ कर काम करना। अत्यंत परिश्रम से काम करना। **जान मारना** = (१) प्राणहत्या करना। (२) सताना। दुःख देना। तंग करना। दिक करना। (३) अत्यंत परिश्रम कराना। कड़ी मेहनत लेना। उ०—उनके यहाँ कोई काम करने क्या जाय, दिन भर जान मार डालते हैं। **जान में जान आना** = धैर्य्य बँधना। ढाढ़स होना। चित्त स्थिर होना। व्यग्रता घबड़ाहट वा भय आदि का दूर होना। **जान लेना** = (१) मार डालना। प्राणघात करना। (२) तंग करना। दुःख देना। पीड़ित करना। उ०—क्यों धूप में दौड़ा कर उसकी जान लेते हो? **जान सी निकलने लगना** = कठिन पीड़ा होना। बहुत दुःख होना। **जान सूखना** = (१) प्राण सूखना। भय के मारे स्तब्ध होना। होश हवास उड़ना। उ०—शेर को देखते ही उसकी तो जान सूख गई। (२) बहुत अधिक कष्ट होना। (३) बहुत बुरा लगना। खलना। उ०—किसी को कुछ देते देख तुम्हारी क्यों जान सूखती है। **जान से जाना** = प्राण खोना। मरना। **जान से मारना** = मार डालना। प्राण ले लेना। **जान से हाथ धोना** = प्राण गँवाना। मर जाना। **जान हलाकान करना** = सताना। तंग करना। दिक करना। हैरान करना। **जान हलाकान होना** = तंग होना। दिक होना। हैरान होना। **जान होंठों पर आना** = (१) प्राण कंठगत होना। प्राण निकलने पर होना। (२) अत्यंत कष्ट होना। घोर पीड़ा होना।

(२) बल। शक्ति। बूता। सामर्थ्य। उ०—अब किसी में कुछ जान नहीं है जो तुम्हारा सामना करने आवे। (३) सार। तत्त्व। सब से उत्तम अंश। उ०—यही पद तो उस कविता की जान है। (४) अच्छा या सुंदर करनेवाली वस्तु। शोभा बढ़ानेवाली वस्तु। मजेदार करनेवाली चीज। चटकीला करनेवाली चीज। उ०—मसाला ही तो तरकारी की जान है।

मुहा०—**जान आना** = ओप चढ़ना। शोभा बढ़ना। उ०—रंग फेर देने से इस तसवीर में जान आ गई है।

जानकार—वि० [हिं० जानना + कार (प्रत्य०)] (१) जाननेवाला। अभिज्ञ। (२) विज्ञ। चतुर।

जानकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जानकार] (१) अभिज्ञता। परिचय। वाकफियत। (२) विज्ञता। निपुणता।

जानकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जनक की पुत्री सीता।

जानकी-जानि—संज्ञा पुं० [सं०] (जिसकी स्त्री जानकी हैं) रामचंद्र। उ०—बाहु बल विपुल परिमित पराक्रम अतुल गूढ़ गति जानकी-जानि जानी।—तुलसी।

जानकी-जीवन—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र। उ०—जानकी-जीवन को जन है जरि जाहु सो जीह जो जाँचत औरहि।—तुलसी।

जानकीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] जानकी के पति श्रीराम। उ०—सौ बातन की एकै बात। सब तजि भजौ जानकीनाथ।—सूर।

जानकी-मंगल—संज्ञा पुं० [सं०] गोस्वामी तुलसीदास का बनाया हुआ एक ग्रंथ जिसमें श्रीराम-जानकी के विवाह का वर्णन है।

जानकीरमण—संज्ञा पुं० [सं०] (जानकी के पति) श्रीरामचंद्र।

जानकीरवन*—संज्ञा पुं० दे० "जानकीरमण"।

जानदार—वि० [फा०] जिसमें जान हो। सजीव। जीवधारी।
संज्ञा पुं० जानवर। प्राणी।

जाननहार*—संज्ञा पुं० [हिं० जानना + हार (प्रत्य०)] जाननेवाला। समझनेवाला।

जानना—क्रि० स० [सं० ज्ञान] (१) किसी वस्तु की स्थिति, गुण, क्रिया वा प्रणाली इत्यादि निर्दिष्ट करनेवाला भाव धारण करना। ज्ञान प्राप्त करना। बोध प्राप्त करना। अभिज्ञ होना। वाकिफ़ होना। परिचित होना। अनुभव करना। मालूम करना। उ०—(क) वह व्याकरण नहीं जानता। (ख) तुम तैरना नहीं जानते। (ग) मैं उसका घर नहीं जानता।

संयो० क्रि०—जाना।—पाना।—लेना।

यौ०—**जानना बूझना** = जानकारी रखना। ज्ञान रखना।

मुहा०—**जान पड़ना** = (१) मालूम पड़ना। प्रतीत होना। (२) अनुभव होना। संवेदना होना। उ०—जिस समय मैं गिरा था उस समय तो कुछ नहीं जान पड़ा पर पीछे बड़ा दर्द उठा। **जान कर अनजान बनना** = किसी बात के विषय में जानकारी रखते हुए भी किसी को चिढ़ाने, धोखा देने वा अपना मतलब निकालने के लिये अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना।

जान बूझ कर = भूल से नहीं। पूरे संकल्प के साथ। नीयत के साथ। अनजान में नहीं। उ०—तुमने जान बूझ कर यह काम किया है। जान रखना = समझ रखना। ध्यान में रखना। मन में बैठाना। हृदयंगम करना। उ०—इस बात को जान रक्खो कि अब वह न आवेगा। किसी का कुछ जानना = किसी का सहायतार्थ दिया हुआ धन या किया हुआ उपकार स्मरण रखना। किसी के किए हुए उपकार के लिये कृतज्ञ होना। किसी का एहसानमंद होना। उ०—क्यों मुझे कोई दो बात कहे, मैं किसी का कुछ जानता हूँ। ......तो मैं जानूँ = (१) ......तो मैं समझूँ कि बड़ा भारी काम किया या बड़ी अनहोनी बात हो गई। उ०—(क) यदि तुम इतना कूद जाओ तो मैं जानूँ। (ख) यदि वह दो दिन में इसे कर लावे तो जानूँ। (२) ...... तो मैं समझूँ कि बात ठीक है। उ०—सुना तो है कि वे आनेवाले हैं पर आ जायँ तो जानें। (इस मुहावरे के प्रयोग द्वारा यह अर्थ सूचित किया जाता है कि कोई काम बहुत कठिन है या किसी बात के होने का निश्चय कम है। इसका प्रयोग "मैं" और "हम" दोनों के साथ होता है)। ......तो मैं नहीं जानता = ...तो मैं जिम्मेदार नहीं। तो मेरा दोष नहीं। उ०—उस पर चढ़ते तो हो पर यदि गिर पड़ोगे तो मैं नहीं जानता। मैं क्या जानूँ ? तुम क्या जानो ? वह क्या जाने ? = मैं नहीं जानता; तुम नहीं जानते; वह नहीं जानता। (बहु वचन में भी यह मुहावरा बोला जाता है)।

(२) सूचना पाना। खबर पाना या रखना। अवगत होना। पता पाना या रखना। उ०—हमें यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वे आनेवाले हैं। (३) अनुमान करना। सोचना। उ०—मैं जानता हूं कि वे कल तक आ जाँयगे।

जानपद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जनपद संबंधी वस्तु। (२) जनपद का निवासी। जन। लोक। मनुष्य। (३) देश। (४) कर। मालगुजारी। (५) मिताक्षरा के अनुसार लेख्य (दस्तावेज) के दो भेदों में से एक जिसमें लेख प्रजावर्ग के परस्पर व्यवहार के संबंध में होता है। यह दो प्रकार का होता है एक अपने हाथ से लिखा हुआ, दूसरा दूसरे के हाथ का लिखा हुआ। अपने हाथ से लिखे हुए में साक्षी की आवश्यकता नहीं होती थी।

जानपदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृत्ति। (२) एक अप्सरा जिसे इंद्र ने शरद्वान् ऋषि का तप भंग करने के लिये भेजा था। शरद्वान् ऋषि ने मोहित होकर जो शुक्रपात किया उससे कृप और कृपीय की उत्पत्ति हुई। (महाभारत आदि पर्व।)

जानपना*†–संज्ञा पुं० [हिं० जान + पन (प्रत्य०)] जानकारी। अभिज्ञता। चतुराई। होशियारी। उ०—बेकारथो दै जान कहावत जानपनो की कहा परी बाट।—हरिदास।

जानपनी*–संज्ञा स्त्री० [हिं० जान + पन (प्रत्य०)] बुद्धिमानी। जानकारी। चतुराई। होशियारी। उ०—(क) जानपनी को गुमान बड़ो तुलसी के विचार गँवार महा है।—तुलसी। (ख) जानी है जानपनी हरि की अब बाँधिएगी कछु मोठ कला की।—तुलसी। (ग) हम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता पर वंचन ताति घनी।—तुलसी।

जानबाज़–संज्ञा पुं० [फ़ा० जान + बाज] वलंटियर। वालंटियर। (लश०)

जानमनि*–संज्ञा पुं० [हिं० जान + मणि] ज्ञानियों में श्रेष्ठ। बड़ा ज्ञानी पुरुष। बहुत बुद्धिमान मनुष्य। उ०—रूप सील सिंधु गुन सिंधु गुन बंधु दीन को दया निधान जानमनि बीर बाँह बोल को।—तुलसी।

जानमाज़–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक पतला कालीन वा आसन जिस पर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं। नमाज पढ़ने का फर्श।

जानराय–संज्ञा पुं० [हिं० जान + राय] जानकारों में श्रेष्ठ। अत्यंत ज्ञानी पुरुष। बड़ा बुद्धिमान मनुष्य। सुजान। उ०—जागिए कृपानिधान जान राय रामचंद्र जननी कहै बार बार भोर भयो प्यारे।—तुलसी।

जानवर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) प्राणी। जीव। जीवधारी। (२) पशु। जंतु। हैवान।

वि० मूर्ख। अहमक। जड़।

जानशीन–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह जो दूसरे की स्वीकृति के अनुसार उसके स्थान, पद वा अधिकार पर हो। (२) वह जो व्यवस्थानुसार दूसरे के पद वा संपत्ति आदि का अधिकारी हो। उत्तराधिकारी।

जानहार*†–वि० [हिं० जाना + हारा] (१) जानेवाला। (२) खो जानेवाला। हाथ से निकल जानेवाला। (३) मरनेवाला। नष्ट होनेवाला।

जानहु*†–अव्य० [हिं० जानना] मानो। जैसे। उ०—धनि राजा अस सभा सँवारी। जानहु फूलि रही फुलवारी।—जायसी।

जाना–क्रि० अ० [सं० यान = जाना] (१) एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्राप्त होने के लिये गति में होना। गमन करना। किसी ओर बढ़ना। किसी ओर अग्रसर होना। स्थान परित्याग करना। जगह छोड़ कर हटना। प्रस्थान करना। जैसे, (क) वह घर की ओर जा रहा है। (ख) यहाँ से जाओ।

मुहा०—जाने दो = (१) क्षमा करो। माफ करो। (२) त्याग करो। छोड़ दो। (३) चर्चा छोड़ो। प्रसंग छोड़ो। जा पड़ना = किसी स्थान पर अकस्मात् पहुँचना। जा रहना = किसी स्थान पर जाकर वहाँ ठहरना। उ०—मुझे क्या, मैं किसी धर्मशाला में जा रहूँगा। किसी बात पर जाना = किसी बात के अनुसार कुछ अनुमान वा निश्चय करना। किसी बात को

ठीक मान कर उस पर चलना। किसी बात पर ध्यान देना। उ०—उसकी बातों पर मत जाओ अपना काम किए चलो।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में प्रायः सब क्रियाओं के साथ केवल पूर्णता आदि का बोध कराने के लिये होता है। जैसे, चले जाना, आ जाना, मिल जाना, खो जाना, डूब जाना, पहुँच जाना, हो जाना, दौड़ जाना, खा जाना इत्यादि। कहीं कहीं जाना का अर्थ भी बना रहता है। जैसे, कर जाना, इनके लिये भी कुछ कर जाओ। कर्म-प्रधान क्रियाओं के बनाने में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है। जैसे, किया जाना, खाया जाना। जहाँ 'जाना' का संयोग किसी क्रिया के पहले होता है वहाँ उसका अर्थ बना रहता है, जैसे, जा निकलना, जा डटना, जा भिड़ना।

(२) अलग होना। दूर होना। उ०—(क) बीमारी यहाँ से न जाने कब जायगी। (ख) सिर जाय तो जाय पीछे नहीं हटेंगे। (३) हाथ वा अधिकार से निकलना। हानि होना।

मुहा०—क्या जाता है? = क्या व्यय होता है? क्या लगता है? क्या हानि होती है? उ०—उनका क्या जाता है नुकसान तो होगा हमारा। किसी बात से भी गए = इतनी बात से भी वंचित रहे? इतना करने के भी अधिकारी वा पात्र न रहे? इतने में भी चूकनेवाले हो गए। जैसे, उसने हमारे साथ इतनी बुराई की, हम कुछ कहने से भी गए?

(४) खोना। गायब होना। चोरी होना। गुम होना। उ—(क) पुस्तक यहीं से गई है। (ख) जिसका माल जाता है वही जानता है। (५) बीतना। व्यतीत होना। गुजरना। (काल)। उ०—(क) चार दिन इस महीने में भी गए और रुपया न आया। (ख) गया वक्त फिर हाथ आता नहीं। (६) नष्ट होना। बिगड़ना। सत्यानाश। बरबाद होना। चौपट होना। उ०—यह घर भी अब गया।

मुहा०—गया घर = दुर्दशाप्राप्त घराना। वह कुल जिसकी समृद्धि नष्ट हो गई हो। गया बीता = (१) दुर्दशाप्राप्त। (२) निकृष्ट।

(७) मरना। मृत्यु को प्राप्त होना। (क्लि०)। उ०—उसके दो बच्चे जा चुके हैं। (८) प्रवाह के रूप में कहीं से निकलना। बहना। जारी होना। जैसे, आँख से पानी जाना, खून जाना, धातु जाना इत्यादि।

*†—क्रि० स० [सं० जनन] उत्पन्न करना। जन्म देना। पैदा करना। उ०—(क) मो सों कहत मोल को लीनो तोंहि कत जसुदा जायो।—सूर। (ख) कोशलेश दशरथ के जाए। हम पितु वचन मानि बन आए।—तुलसी।

जानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। भार्य्या। उ०—सो मय दीन्ह रावनहिं आनी। होइहि जातुधानपति जानी।—तुलसी।

*वि० [सं० ज्ञानी] जानकार। जाननेवाला। उ०—यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जानि सिरोमनि कोसलराऊ।—तुलसी।

जानिब—संज्ञा स्त्री० [अ०] तरफ़। ओर। दिशा।

जानिबदार—वि० [फ़ा०] तरफ़दार। पक्षपाती। हिमायती।

जानिबदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पक्षपात। तरफ़दारी।

जानी—वि० [फ़ा०] जान से संबंध रखनेवाला।

यौ०—जानी दुश्मन = जान लेने को तैयार दुश्मन। प्राणों का गाहक शत्रु। जानी दोस्त = दिली दोस्त। प्रिय दोस्त। प्राण-प्रिय मित्र।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जान] प्राणप्यारी।

जानु—संज्ञा पुं० [सं०] जाँघ और पिंडली के मध्य का भाग। घुटना। उ०—(क) श्याम भुजा की सुंदरताई। बड़े विशाल जानु लौं पहुँचत यह उपमा मन भाई।—तुलसी। (ख) जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [फ़ा० जानू] जाँघ। रान। उ०—बान है फाबत आन के मान है कै कदली विपरीत उठानु है।......का न करै यह सौतिन के पर प्रान से प्यारी सुजान की जानु है।—तोष।

*अव्य० दे० "जानो"। उ०—नरियर फरे फरे फरहरी। फरे जानु इंद्रासन पुरी।—जायसी।

जानुपाणि—क्रि० वि० [सं०] घुटरुवों। बैया पैयाँ। घुटनों और हाथों के बल (चलना, जैसे बच्चे चलते हैं)। उ०—(क) जानुपानि धाये मोहि धरना। श्यामल गात, अरुन कर चरना।—तुलसी। (ख) पीत झँगुलिया तनु पहिराई। जानुपानि विचरन मोहि भाई।—तुलसी। (ग) राजत सिसु रूप राम सकल गुन निकाय धाम, कौतुकी कृपालु ब्रह्म जानुपानि चारी।—तुलसी।

जानुपानि—क्रि० वि० दे० "जानुपाणि"।

जानुप्रहृतिक—संज्ञा पुं० [सं०] मल्ल युद्ध वा कुश्ती का एक ढंग जिसमें घुटनों का व्यवहार विशेष होता था।

जानुवाँ—संज्ञा पुं० [सं० जानु] एक रोग जो हाथी के अगले पिछले पैर के जोड़ों में होता है और जिसमें कभी कभी घुटने की हड्डी उभर आती है।

जानु विजानु—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक।

जानू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] जंघा। जाँघ।

जानो†—अव्य० [हिं० जानना] मानो। जैसे। ऐसा जान पड़ता है कि।

जान्य—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक ऋषि का नाम।

जाप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी मंत्र वा स्तोत्र आदि का बार बार मन में उच्चारण। मंत्र की विधिपूर्वक आवृत्ति। अनमिल आखर अर्थ न जापू। प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू।—तुलसी। (२) भगवान के नाम का बार बार स्मरण और उच्चारण।

जापक–संज्ञा पुं० [सं०] जपकर्त्ता । जप करनेवाला । जपनेवाला । उ०—(क) राम नाम नरकेशरी कनककसिपु कलि काल । जापक जन प्रह्लाद जिमि पालिहि दलि सुरसालु ।—तुलसी । (ख) चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत । राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत ।—तुलसी ।

जापन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जप । (२) निवर्त्तन ।

जापा–संज्ञा पुं० [सं० जनन] सौरी । प्रसूतिका ग्रह ।

जापान–संज्ञा पुं० एक द्वीप समूह जो चीन के पूरब है ।

जापानी–संज्ञा पुं० [देश०] जापान द्वीप निवासी । जापान का रहनेवाला ।

वि० जापान का । जापान का बना । जैसे, जापानी दियासलाई ।

जापी–संज्ञा पुं० [सं० जापिन्] जापक । जप करनेवाला । उ०—लंपट धूत पूत दमरी को विषय जाप को जापी ।—सूर ।

ज़ाफ़ा†–संज्ञा पुं० [अ० ज़ोफ़] (१) बेहोशी । (२) घुमरी । मूर्च्छा । थकावट । शिथिलता ।

क्रि० प्र०—आना ।

ज़ाफ़त–संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ियाफ़त] भोज । दावत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—खाना ।—खिलाना ।—देना ।

ज़ाफ़रान–संज्ञा पुं० [अ०] (१) केसर । (२) अफगानिस्तान की एक तातारी जाति ।

ज़ाफ़रानी–वि० [अ०] केसरिया । केसर के रंग का । केसर का सा पीला । जैसे, ज़ाफ़रानी रंग या कपड़ा ।

ज़ाफ़रानी ताँबा–संज्ञा पुं० [हिं०] पीला पन लिए हुए उत्तम ताँबा जो चाँदी सोने में मेल देने के काम में आता है ।

जाब प्रेस–संज्ञा पुं० [अं०] कार्ड नोटिस आदि छोटी छोटी चीजों के छापने की कल ।

जाबजा–क्रि० वि० [फ़ा०] जगह जगह । इधर उधर ।

जाबड़ा†–संज्ञा पुं० दे० "जबड़ा" ।

जाबता–संज्ञा पुं० दे० "जाब्ता" ।

जाबर–संज्ञा पुं० [देश०] घीए के महीन टुकड़ों के साथ पका हुआ चावल ।

†*–वि० [सं० जर्जरः] बुड्ढा । वृद्ध । (डिं०)

जाबाल–संज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि जिनकी माता का नाम जबाला था । जब ये ऋषियों के पास वेद की शिक्षा प्राप्त करने के लिये गए तब उन्होंने इनका गोत्र तथा इनके पिता का नाम आदि पूछा । ये न बतला सके और अपनी माता के पूछने गए । माता ने कहा कि मैं जवानी में बहुतों रही और उसी समय तू उत्पन्न हुआ । मैं नहीं जानती पुत्र है । जा और कह दे कि मेरी माता का नाम जबला है और मेरा जाबाल है । जब आचार्य ने यह सुना तब उन्हों ने कहा कि "हे जाबाल ! समिधा लाओ, मैं तुम्हारा यज्ञोपवीत करूँ क्योंकि ब्राह्मण के अतिरिक्त कोई ऐसा सत्य नहीं बोल सकता" । इनका नाम सत्यकाम भी है । यह आख्यान छांदोग्य उपनिषद् में आया है ।

जाबालि–संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप वंशीय एक ऋषि जो राजा दशरथ के गुरु और मंत्रियों में से थे । इन्हों ने चित्रकूट में रामचंद्र को बन से लौट जाने और राज्य करने के लिये बहुत समझाया था, यहाँ तक कि अपने उपदेश में इन्होंने चार्वाक से मिलते जुलते मत का आभास देकर भी राम को बन-गमन से विमुख करने का प्रयत्न किया था ।

जाबिर–वि० [फ़ा०] (१) जब्र करनेवाला । अत्याचार करनेवाला । ज़बरदस्ती करनेवाला । (२) जबरदस्त । प्रचंड ।

ज़ाब्ता–संज्ञा पुं० [अ०] नियम । कायदा । व्यवस्था । कानून । जैसे, जाब्ते की कार्रवाई, जाब्ते की पाबंदी ।

यौ०—जाब्ता दीवानी = सर्व साधारण के परस्पर आर्थिक व्यवहार से संबंध रखनेवाला कानून वा व्यवस्था । जाब्ता फौजदारी = दंडनीय अपराधों से संबंध रखनेवाला कानून ।

जाम–संज्ञा पुं० [सं० याम] पहर । प्रहर । ७½ घड़ी वा तीन घंटे का समय । उ०—गए जाम जुग भूपति आवा । घर घर उत्सव बाज बधावा ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) प्याला । (२) प्याले के आकार का बना हुआ कटोरा ।

संज्ञा पुं० [अनु० झम = जल्दी] जहाज की दौड़ । (लश०)

संज्ञा पुं० [अं० जैम] जहाज़ का दो चट्टानों या और किसी वस्तु के बीच अटकाव । फँसाव । (लश०)

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।—होना ।

संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] जामुन ।

जामगिरी–संज्ञा पुं० [?] बंदूक का फलीता । (लश०)

जामगी–संज्ञा पुं० [?] बंदूक वा तोप का फलीता । उ०—जोत जामगिन में जगी लागे नषत दिखान । रन अस-मान समान भौ रन समान असमान ।—लाल ।

जामदग्न्य–संज्ञा पुं० [सं०] जमदग्नि के पुत्र, परशुराम ।

जामदानी–संज्ञा पुं० [फ़ा० जामः दानी] (१) कपड़ों की पेटी । चमड़े का संदूक जिसमें पहिनने के कपड़े रक्खे जाते हैं । (२) एक प्रकार का कढ़ा हुआ फूलदार कपड़ा । बूटी-दार महीन कपड़ा । (३) शीशे वा अबरक की बनी हुई छोटी संदूकची जिसमें बच्चे अपनी खेलने की चीज़ें रखते हैं ।

जामन–संज्ञा पुं० [हिं० जमाना] वह थोड़ा सा दही या और कोई खट्टा पदार्थ जो दूध में उसे जमा कर दही बनाने के लिये डाला जाता है । उ०—फेरि कछु करि पौरि तें फिरि चितई मुसुकाय । आई जामन लेन कों नेहैं चली जमाय ।—बिहारी ।

संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] (१) दे० 'जामुन'। (२) आलू बुखारे की जाति का एक पेड़ जो हिमालय पर पंजाब से लेकर सिकिम और भूटान तक होता है। इसमें से एक प्रकार का गोंद तथा जहरीला तेल निकलता है जो दवा के काम में आता है। इसके फल खाए जाते हैं और पत्तियाँ चौपायों को खिलाई जाती हैं। लकड़ी से खेती के सामान बनाए जाते हैं। इसे पारस भी कहते हैं।

जामना†–क्रि० अ० दे० "जमना"। उ०—ऊसर बरसे तृण नहिं जामा।—तुलसी।

जामनी–वि० दे० "यावनी"।

जाम बेतुआ–संज्ञा पुं० [हिं० जाम + बेंत] एक प्रकार का बाँस जो प्रायः बरमा, आसाम और पूर्वी बंगाल में होता है। यह बाँस टट्टर बनाने, छत पाटने आदि के लिये बहुत अच्छा होता है।

जामल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तंत्र। जैसे, रुद्र जामल।

जामवंत–संज्ञा पुं० दे० "जांबवान्"।

जामा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) पहरावा। कपड़ा। वस्त्र। (२) एक प्रकार का घुटने के नीचे तक का पहरावा जिसका नीचे का घेरा बहुत बड़ा और लहँगे की तरह चुनवदार होता है। पेट के ऊपर इसकी काट बगलबंदी के ढँग की होती है। पुराने समय में लोग दरबार आदि में इसे पहन कर जाते थे। यह पहरावा प्राचीन कंचुक का रूपांतर जान पड़ता है जो मुसलमानों के आने पर हुआ होगा, क्योंकि यद्यपि यह शब्द फारसी है पर प्राचीन पारसियों में इस प्रकार का पहरावा प्रचलित नहीं था। हिंदुओं में अब तक विवाह के अवसर पर यह पहरावा दुलहे को पहनाया जाता है।

मुहा०—जामे से बाहर होना = आपे से बाहर होना। अत्यंत क्रोध करना। जामे में फूला न समाना = अत्यंत आनंदित होना।

जामात–संज्ञा पुं० दे० 'जामाता'।

जामाता–संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] (१) दामाद। कन्या का पति। उ०—सादर पुनि भेंटे जामाता। रूपसील गुन निधि सब भ्राता।—तुलसी। (२) हुरहुर का पौधा। हुलहुल।

जामातु*–संज्ञा पुं० दे० "जामाता"।

जामि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहिन। भगिनी। (२) लड़की। कन्या। (३) पुत्रवधू। बहू। पतोहू। (४) अपने संबंध वा गोत्र की स्त्री। (५) कुल स्त्री। घर की बहू-बेटी।

विशेष—मनुस्मृति में यह शब्द आया है जिसका अर्थ कुल्लूक ने भगिनी, सपिंड की स्त्री, पत्नी, कन्या, पुत्रवधू आदि किया है। मनु ने लिखा है जिस घर में जामि प्रतिपूजित होती हैं उसमें सुख की वृद्धि होती है और जिसमें अपमानित होती हैं उस कुल का नाश हो जाता है।

जामिक*–संज्ञा पुं० [सं० यामिक] पहरुआ। पहरा देनेवाला। रक्षक। उ०—चरन पीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।—तुलसी।

जामित्र–संज्ञा पुं० [सं०] विवाहादि शुभ कर्म के काल के लग्न से सातवाँ स्थान।

जामित्र वेध–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक योग जिसमें विवाह आदि शुभ कर्म दूषित होते हैं। कर्म का जो काल हो उसके नक्षत्र की राशि से सातवीं राशि पर यदि सूर्य्य शनि वा मंगल हो तब जामित्र वेध होता है। किसी किसी के मत से सप्तम स्थान में पाप ग्रह होने से ही जामित्र वेध होता है। किंतु यदि चंद्रमा अपने मूल त्रिकोण वा क्षेत्र में हो, अथवा पूर्ण चंद्र हो वा पूर्ण चंद्र अपने वा शुभ ग्रह के क्षेत्र में हो तो जामित्र वेध का दोष नहीं रह जाता।

जामिन–संज्ञा पुं० [अ०] (१) जिम्मेदार। जमानत करनेवाला। इस बात का भार लेनेवाला कि यदि कोई विशेष मनुष्य कोई विशेष कार्य्य करेगा वा न करेगा तो मैं उस कार्य्य की पूर्त्ति करूँगा वा दंड सहूँगा। प्रतिभू।

क्रि० प्र०—होना।

(२) दो अंगुल लंबी एक लकड़ी जो नैचे की दोनों नलियों को अलग रखने के लिये चिलमगर्दे और चूल के बीच में बाँधी जाती है।

जामिनदार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] जमानत करनेवाला।

जामिनी–संज्ञा स्त्री० दे० "यामिनी"।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जमानत। जिम्मेदारी।

जामी–संज्ञा स्त्री० दे० (१) "यामी"। (२) दे० 'जामि'।

* संज्ञा पुं० [हिं० जमना वा जनमना] बाप। पिता। (डिं०)

जामुन–संज्ञा पुं० [सं० जंबु] गरम देशों में होनेवाला एक सदा बहार पेड़ जो भारतवर्ष से लेकर बरमा तक होता है और दक्षिण अमेरिका आदि में भी पाया जाता है। यह नदियों के किनारे कहीं कहीं आप से आप उगता है, पर प्रायः फलों के लिये बस्ती के पास लगाया जाता है। इसकी लकड़ी का छिलका सफेद होता है और पत्तियाँ आठ दस अंगुल लंबी और तीन चार अंगुल चौड़ी तथा बहुत चिकनी, मोटे दल की ओर चमकीली होती हैं। बैसाख जेठ में इसमें मंजरी लगती है जिसके झड़ जाने पर गुच्छों में सरसों के बराबर फल दिखाई पड़ते हैं जो बढ़ने पर दो तीन अंगुल लंबे बेर के आकार के होते हैं। बरसात लगते ही ये फल पकने लगते हैं और पकने पर पहले बैंगनी रंग के, फिर खूब काले जाते हैं। ये फल कालेपन के लिये प्रसिद्ध हैं। लोग ' सा काला' प्रायः बोलते हैं। फलों का स्वाद लिए हुए मीठा होता है। फल में एक है। इसकी लकड़ी पानी में सड़ती